दुर्गति-नाशिनि दुर्गा जय जय, काल-विनाशिनि काली जय जय ।
उमा-रमा-ब्रह्माणी जय जय, राधा-सीता-रुक्मिणि जय जय ॥
साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, जय शंकर ।
हर हर शंकर दुखहर सुखकर अघ-तम-हर हर हर शंकर ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
जय-जय दुर्गा, जय मा तारा । जय गणेश जय शुभ-आगारा ॥
जयति शिवाशिव जानकिराम । गौरीशंकर सीताराम ॥
जय रघुनन्दन जय सियाराम । व्रज-गोपी-प्रिय राधेश्याम ॥
रघुपति राघव राजाराम । पतितपावन सीताराम ॥

[संस्करण १,५५,०००]

हरि-सम आपदा-हरन ।
नहिं कोउ सहज कृपालु दुसह दुख-सागर-तरन ॥
गज निज बल अवलोकि कमल गहि गयो सरन ।
दीन बचन सुनि चले गरुड़ तजि सुनाभ-धरन ॥
द्रुपदसुता को लग्यो दुसासन नगन करन ।
'हा हरि पाहि' कहत पूरे पट बिबिध बरन ॥
इहै जानि सुर-नर-मुनि-कोबिद सेवत चरन ।
'तुलसिदास' प्रभु को न अभय कियो नृग-उद्धरन ॥
(विनयपत्रिका, २१३)

वार्षिक मूल्य
भारतमें रु. १०.००
विदेशमें रु. १६.७०
(९० पेंस)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय । सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय ॥
जय जय विश्वरूप हरि जय । जय हर अखिलात्मन् जय जय ॥
जय विराट जय जगत्पते । गौरीपति जय रमापते ॥

इस अङ्कका मूल्य
भारतमें रु. १०.००
विदेशमें रु. १६.७०
(९० पेंस)

आदि सम्पादक—नित्यलीलालीन श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—चिम्मनलाल गोस्वामी, एम्० ए०, शास्त्री
मुद्रक-प्रकाशक—मोतीलाल जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर

कल्याण

श्रीनृसिंह

श्रीवामन

अवतारी श्रीविष्णु

श्रीराम

श्रीकृष्ण

'संभवामि युगे युगे'

वर्ष ४८

श्रीविष्णु-अङ्क

अङ्क १

श्रीहरिः

'कल्याण'के प्रेमी पाठकों और ग्राहकोंसे नम्र-निवेदन

(१) 'श्रीविष्णु-अङ्क' नामक यह विशेषाङ्क प्रस्तुत है । इस विशेषाङ्कमें ५४० पृष्ठोंकी पाठ्य-सामग्री है । सूची आदि अलग हैं । बहुत-से बहुरंगे, दोरंगे तथा एकरंगे चित्र भी हैं ।

(२) विशेषाङ्क कुछ देरसे जा रहा है । अनिवार्य परिस्थितिके कारण ही ऐसा हुआ है । ग्राहक महानुभावोंको थोड़ा परेशान होना पड़ा, हमें इस बातका बड़ा खेद है । ग्राहकोंकी सहज प्रीति तथा आत्मीयताके भरोसे हमारी उनसे क्षमा-प्रार्थना है ।

(३) जिन सज्जनोंके रुपये मनीआर्डरद्वारा आ चुके हैं, उनको अङ्क भेजे जानेके बाद शेष ग्राहकोंके नाम वी० पी० जा सकेगी । अतः जिनको ग्राहक न रहना हो, वे कृपा करके मनाहीका कार्ड तुरंत लिख दें, ताकि वी० पी० भेजकर 'कल्याण'को व्यर्थ नुकसान न उठाना पड़े ।

(४) मनीआर्डर-कूपनमें और वी० पी० भेजनेके लिये लिखे जानेवाले पत्रमें स्पष्टरूपसे अपना पूरा पता और ग्राहक-संख्या अवश्य लिखें । ग्राहक-संख्या स्मरण न हो तो 'पुराना ग्राहक' लिख दें । नया ग्राहक बनना हो तो 'नया ग्राहक' लिखनेकी कृपा करें । मनीआर्डर मैनेजर, 'कल्याण' के नाम भेजें, उसमें किसी व्यक्तिका नाम न लिखें ।

(५) ग्राहक-संख्या या 'पुराना ग्राहक' न लिखनेसे आपका नाम नये ग्राहकोंमें दर्ज हो जायगा । इससे आपकी सेवामें 'श्रीविष्णु-अङ्क' नयी ग्राहक-संख्यासे पहुँचेगा और पुरानी ग्राहक-संख्यासे वी० पी० चली जायगी । ऐसा भी हो सकता है कि उधरसे आप मनीआर्डरद्वारा रुपये भेजें और उनके यहाँ पहुँचनेके पहले ही इधरसे वी० पी० चली जाय । दोनों ही स्थितियोंमें आपसे प्रार्थना है कि आप कृपापूर्वक वी० पी० लौटायें नहीं, प्रयत्न करके किन्हीं सज्जनको नया ग्राहक बनाकर उनका नाम-पता साफ-साफ लिख भेजनेकी कृपा करें । आपके इस कृपापूर्ण सहयोगसे आपका 'कल्याण' नुकसानसे बचेगा और आप 'कल्याण'के प्रचारमें सहायक बनेंगे । आपके विशेषाङ्कके लिफाफेपर आपकी जो ग्राहक-संख्या और पता लिखा गया है, उसे आप खूब सावधानीसे नोट कर लें । रजिस्ट्री या वी० पी० नंबर भी नोट कर लेना चाहिये ।

(६) 'श्रीविष्णु-अङ्क' सब ग्राहकोंके पास रजिस्टर्ड पोस्टसे जायगा । हमलोग जल्दी-से-जल्दी भेजनेकी चेष्टा करेंगे तो भी सब अङ्कोंके जानेमें लगभग तीन सप्ताह तो लग ही सकते हैं । ग्राहक महोदयोंकी सेवामें विशेषाङ्क ग्राहक-संख्याके क्रमानुसार जायगा । इसलिये यदि कुछ देर हो जाय तो परिस्थिति समझकर कृपालु ग्राहकोंको हमें क्षमा करना चाहिये और धैर्य रखना चाहिये ।

(७) 'कल्याण-व्यवस्था-विभाग', 'कल्याण-कल्पतरु' (अंग्रेजी) तथा गीताप्रेसके नाम अलग-अलग पत्र, पारसल, पैकेट, रजिस्ट्री, मनीआर्डर, बीमा आदि भेजने चाहिये तथा उनपर केवल 'गोरखपुर' न लिखकर पत्रालय—गीताप्रेस, जनपद—गोरखपुर (उ० प्र०)—इस प्रकार पता लिखना चाहिये ।

(८) 'कल्याण-सम्पादन-विभाग' तथा 'साधक-संघ'के नाम भेजे जानेवाले पत्रादिपर पत्रालय—गीतावाटिका, जनपद—गोरखपुर (उ० प्र०)—इस प्रकार पता लिखना चाहिये ।

व्यवस्थापक—**'कल्याण', पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)**

वि० अं० क—

श्रीगीता-रामायण-प्रचार-संघ

श्रीमद्भगवद्गीता और रामचरितमानस हिंदू-समाजके ऐसे दिव्य ग्रन्थ हैं, जिनके अध्ययनसे तथा प्रतिपाद्य सिद्धान्तोंके मननसे अन्तरमें अचिन्त्य अलौकिक ज्योति प्रस्फुटित हो उठती है। एक ओर व्यक्तिका व्यक्तिगत जीवन समुन्नत होता है तो दूसरी ओर समाजका सम्पूर्ण वातावरण श्रेष्ठ गुणोंसे सुवासित होता है। आजके तमसाच्छन्न समाजमें तो ऐसे दिव्य ग्रन्थोंके अधिकाधिक पाठ और स्वाध्यायकी आवश्यकता है, जिससे इनके आदर्शोंका अधिकाधिक प्रचार हो तथा जन-मानसमें उनकी प्रतिष्ठा हो। इसी उद्देश्यसे कई वर्षों पूर्व 'गीता-रामायण-प्रचार-संघ' की स्थापना हुई थी। इसके सदस्यको नियमितरूपसे गीता और मानसका पाठ-स्वाध्याय करना होता है। इस समय सदस्योंकी संख्या ५१,००० से अधिक है। इस संस्थाके द्वारा श्रीगीताके ६ प्रकारके और श्रीरामायणके ३ प्रकारके एवं उसके उपासना-विभागके अन्तर्गत नित्य इष्टदेवके नामका जप, ध्यान और मूर्तिकी या मानसिक पूजा करनेवाले सदस्य बनाकर श्रीगीता और श्रीरामायणके अध्ययन एवं उपासनाके लिये प्रेरणा दी जाती है। विशेष जानकारीके लिये पत्र-व्यवहार करना चाहिये। पता इस प्रकार है—

मन्त्री—श्रीगीता-रामायण-प्रचार-संघ, गीताभवन, पत्रालय—स्वर्गाश्रम (ऋषिकेश होकर) जनपद—पौड़ी गढ़वाल (उ० प्र०)

साधक-संघ

उसी मानवका जीवन सफल है, जो भगवत्परायणता, दैवीसम्पत्तिके गुण, सदाचार, आस्तिकता और सात्त्विकतासे सम्पन्न है। मानवमात्रका जीवन ऐसे दिव्य भावोंसे परिपूर्ण हो, एतदर्थ लगभग २५ वर्ष पूर्व 'साधक-संघ'-की स्थापना की गयी थी। कोई भी व्यक्ति, चाहे वह किसी वर्ण या आश्रमका हो, नारी या पुरुष हो, हिंदू या अहिंदू हो, बिना कोई शुल्क दिये इस संघका सदस्य बन सकता है। इस संघके सदस्यको कुल २८ नियमोंका पालन करना होता है, जिसका स्पष्टीकरण एक प्रपत्रपर छपा है। प्रत्येक सदस्यको ४५ पैसे मनीआर्डरसे अथवा डाकटिकटके रूपमें भेजकर 'साधक-दैनन्दिनी' मँगवा लेनी चाहिये तथा प्रतिदिन उसमें नियम-पालनका विवरण लिख लेना चाहिये। इस संघके सदस्योंका यह एक अनुभूत तथ्य है कि जो श्रद्धा एवं तत्परतापूर्वक नियम-पालनमें संलग्न रहता है, उसके जीवनका स्तर श्रेष्ठसे श्रेष्ठतर होता चला जाता है। इस समय इसके १०,०००से अधिक सदस्य हैं। लोगोंको स्वयं इसका सदस्य बनना चाहिये तथा अपने सगे-सम्बन्धियों, स्वजनों-सुपरिचितोंको भी बनाना चाहिये। इससे सम्बन्धित किसी भी प्रकारका पत्र-व्यवहार नीचे लिखे पतेपर करना चाहिये—

संयोजक—साधक-संघ, पत्रालय—गीतावाटिका, जनपद—गोरखपुर (उ० प्र०)

श्रीगीता और रामायणकी परीक्षाएँ

हिंदू-वाङ्मयके दिव्यतम रत्न हैं—श्रीमद्भगवद्गीता और श्रीरामचरितमानस, जिनमें श्रेय-प्रेयका पूर्ण विवेचन है। ये वास्तवमें सार्वभौम तथा सर्वकल्याणकारी पवित्र ग्रन्थ हैं। इन ग्रन्थोंका आश्रय लेनेसे लोक, परलोक और परमार्थ—सभी सुधरते हैं। भारतमें ही नहीं, भारतके बाहर भी इन ग्रन्थोंकी गौरवपूर्ण तथा मङ्गलमयी श्रेष्ठताका समादर है। इन ग्रन्थोंका दिव्यालोक जन-जनतक पहुँच सके तथा उससे उनकी जागतिक एवं आध्यात्मिक उन्नतिका पथ आलोकित होवे, एतदर्थ गीता और रामायण-परीक्षाकी व्यवस्था की गयी है। परीक्षामें उत्तीर्ण छात्र पुरस्कृत भी होते हैं। लगभग पाँच सौ स्थानोंपर परीक्षा-केन्द्र हैं और लगभग बीस हजार परीक्षार्थी प्रति वर्ष परीक्षामें सम्मिलित होते हैं। विशेष विवरणकी जानकारी नियमावलीसे हो सकती है। परीक्षा-सम्बन्धी सभी बातोंकी जानकारीके लिये नीचे लिखे पतेपर पत्र-व्यवहार करें—

व्यवस्थापक—गीता-रामायण-परीक्षा-समिति, गीताभवन, पत्रालय—स्वर्गाश्रम (ऋषिकेश होकर) जनपद—पौड़ी गढ़वाल (उ० प्र०)

श्रीहरिः

'श्रीविष्णु-अङ्क'की विषय-सूची

विषय — पृष्ठ-संख्या

चित्र-सूची

बहुरंगे चित्र

दोरंगा चित्र

एकरंगे चित्र

गीताभवन, स्वर्गाश्रमके सत्सङ्गकी सूचना

प्रतिवर्षकी भाँति इस वर्ष भी **गीताभवन, स्वर्गाश्रममें** सत्सङ्गका आयोजन होनेकी बात है । प्रार्थना है कि सदाकी तरह सत्सङ्गी महानुभाव तथा माताएँ-बहिनें अधिकाधिक संख्यामें केवल सत्सङ्ग तथा भजनके पवित्र उद्देश्यसे स्वर्गाश्रम पधारें । श्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराजकी चैत्र शुक्ल १२ (ता० १४ अप्रैल १९७३) तक वहाँ पहुँचनेकी बात है । परमश्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराजसे भी प्रार्थना की गयी है तथा अन्यान्य महात्मागण भी पधारनेवाले हैं ।

नौकर-रसोइया आदि यथासम्भव साथ लाने चाहिये । स्वर्गाश्रममें नौकर-रसोइया मिलने कठिन हैं । स्त्रियाँ पीहर या ससुरालवालोंके अथवा अन्य किन्हीं सम्बन्धीके साथ वहाँ जायँ; अकेली न जायँ एवं अकेली जानेकी हालतमें कदाचित् स्थान न मिल सके तो कृपया दुःखित न हों । गहने आदि जोखिमकी चीजें साथ नहीं रखनी चाहिये । बच्चोंको जहाँतक बने साथ न ले जायँ । नितान्त निरुपाय हों तो बच्चोंको वे ही लोग साथ ले जायँ, जो उन्हें अलग डेरेपर रखनेकी व्यवस्था कर सकते हों; क्योंकि बच्चोंके कारण स्वाभाविक ही सत्सङ्गमें विघ्न होता है । खान-पानकी चीजोंका प्रबन्ध यथासाध्य किया जा रहा है, यद्यपि इस बार बड़ी कठिनता है; परंतु दूधका प्रबन्ध होना बहुत कठिन है ।

सदाकी भाँति यह नम्र निवेदन है कि सत्सङ्गमें पधारनेवालोंको ऐश-आराम या केवल जलवायु-परिवर्तन-की दृष्टिसे न जाकर सत्सङ्गके उद्देश्यसे ही वहाँ जाना चाहिये तथा यथासाध्य नियमित तथा संयमित साधक-जीवन बिताते हुए सत्सङ्गमें अधिक-से-अधिक भाग लेना चाहिये ।

आवश्यक सूचना

गीताप्रेसके प्रकाशनोंके प्रेमी सभी पाठक-पाठिकाओंसे विनम्र निवेदन है कि पहले गीताप्रेसकी ओरसे पुस्तकोंको जनताके लिये सुलभ बनानेके निमित्त प्रचार-वाहन नियुक्त किये गये थे । अब उनकी व्यवस्था पंजाब, चंडीगढ़ एवं हरियाणामें बंद कर दी गयी है । वहाँ हमारा कोई आदमी भी नहीं है ।

व्यवस्थापक—**गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)**

पूर्णमेवावशिष्यते ॥

लक्ष्मीसहित श्रीविष्णु

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

कल्याण

अविकाराय शुद्धाय नित्याय परमात्मने । सदैकरूपरूपाय विष्णवे सर्वजिष्णवे ॥
नमो हिरण्यगर्भाय हरये शंकराय च । वासुदेवाय ताराय सर्गस्थित्यन्तकारिणे ॥
(श्रीविष्णुपुराण १ । २ । १-२)

वर्ष ४७ } गोरखपुर, सौर माघ, श्रीकृष्ण-संवत् ५१९८, जनवरी १९७३ { संख्या १ पूर्ण संख्या ५५४

श्रीविष्णुसे प्रार्थना

श्रिया श्लिष्टो विष्णुः स्थिरचरवपुर्वेदविषयो
धियां साक्षी शुद्धो हरिरसुरहन्ताब्जनयनः ।
गदी शङ्खी चक्री विमलवनमाली स्थिररुचिः
शरण्यो लोकेशो मम भवतु कृष्णोऽक्षिविषयः ॥
(श्रीशंकराचार्य)

जो भगवती श्रीलक्ष्मीसे सदा युक्त हैं, परमाकर्षक हैं, सम्पूर्ण चराचर जिनका शरीर है, जो श्रुति-संवेद्य हैं, समस्त बुद्धियोंके साक्षी हैं, शुद्ध हैं, हरि (पापों एवं दुःखोंके हरनेवाले) हैं, दैत्य-दलन हैं, कमल-नयन हैं, शङ्ख-चक्र-गदा और (पद्मके साथ) विमल वनमाला धारण किये रहते हैं एवं स्थिरकान्तिमय हैं, वे शरणागतवत्सल, निखिल-भुवनेश्वर भगवान् विष्णु मेरे नेत्रोंके विषय हों ।

परमपुरुष (श्रीविष्णु)-स्तवन

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥

उन परमपुरुषके सहस्रों (अनन्त) मस्तक, सहस्रों नेत्र और सहस्रों चरण हैं । वे इस सम्पूर्ण विश्वकी समस्त भूमि (पूरे स्थान) को सब ओरसे व्याप्त करके इससे दस अङ्गुल (अनन्त योजन) ऊपर स्थित हैं । अर्थात् वे ब्रह्माण्डमें व्यापक होते हुए उससे परे भी हैं । (यह मन्त्र भगवान् विष्णुके देशगत विभुत्वका प्रतिपादक है ।)

पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम् ।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥

यह जो इस समय वर्तमान (जगत्) है, जो बीत गया और जो आगे होनेवाला है, यह सब वे परम पुरुष ही हैं । इसके अतिरिक्त वे देवताओंके तथा जो अन्नसे (भोजनद्वारा) जीवित रहते हैं, उन सबके भी ईश्वर (अधीश्वर—शासक) हैं । (यह मन्त्र भगवान्के सर्वकालव्यापी रूपका वर्णन करता है ।)

एतावानस्य महिमातो ज्यायांश्च पूरुषः ।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥

यह भूत, भविष्य, वर्तमानसे सम्बद्ध समस्त जगत् इन परमपुरुषका वैभव है । वे अपने इस विभूति-विस्तारसे भी महान् हैं । उन परमेश्वरकी एकपाद्विभूति (चतुर्थांश)-में ही यह पञ्चभूतात्मक विश्व है । उनकी शेष त्रिपाद्विभूतिमें शाश्वत दिव्यलोक (वैकुण्ठ, गोलोक, साकेत, शिवलोक आदि) हैं । (यह मन्त्र भगवान्के वैभवका वर्णन करता है और नित्य लोकोंके वर्णनद्वारा उनके मोक्षपदत्वको भी बतलाता है ।)

त्रिपादूर्ध्व उदैत् पुरुषः पादोऽस्येहाभवत्पुनः ।
ततो विष्वङ् व्यक्रामत् साशनानशने अभि ॥

वे परमपुरुष स्वरूपतः इस मायिक जगत्से परे त्रिपाद्विभूतिमें प्रकाशमान हैं । (वहाँ मायाका प्रवेश न होनेसे उनका स्वरूप नित्य प्रकाशमान है ।) इस विश्वके रूपमें उनका एक पाद ही प्रकट हुआ है, अर्थात् एक पादसे वे ही विश्वरूप भी हैं । इसलिये वे ही सम्पूर्ण जड एवं चेतनमय—उभयात्मक जगत्को परिव्याप्त किये हुए हैं । (इस मन्त्रमें भगवान्के चतुर्व्यूहरूपमेंसे चतुर्थ अनिरुद्धरूपका वर्णन हुआ है । यही रूप एकपाद ब्रह्माण्ड-वैभवका अधिष्ठान है ।)

तस्माद् विराळजायत विराजो अधि पूरुषः ।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद् भूमिमथो पुरः ॥

उन्हीं आदिपुरुषसे विराट् (ब्रह्माण्ड) उत्पन्न हुआ । वे परमपुरुष ही विराट्के

अधिपुरुष—अधिदेवता (हिरण्यगर्भ)-रूपसे उत्पन्न होकर अत्यन्त प्रकाशित हुए। पीछे उन्होंने भूमि (लोकादि) तथा शरीर (देव, मानव, तिर्यक् आदि) उत्पन्न किये। (इस मन्त्रमें श्रीनारायणसे माया एवं जीवोंकी उत्पत्तिका वर्णन है।)

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद् वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत॥

ब्राह्मण इसका मुख था (मुखसे ब्राह्मण उत्पन्न हुए)। क्षत्रिय दोनों भुजाएँ बना (दोनों भुजाओंसे क्षत्रिय उत्पन्न हुए)। इस पुरुषकी जो दोनों जङ्घाएँ थीं, वे ही वैश्य हुईं अर्थात् उनसे वैश्य उत्पन्न हुए और पैरोंसे शूद्र-वर्ण प्रकट हुआ।

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत।
मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद् वायुरजायत॥

इस परमपुरुषके मनसे चन्द्रमा उत्पन्न हुए, नेत्रोंसे सूर्य प्रकट हुए, मुखसे इन्द्र और अग्नि तथा प्राणसे वायुकी उत्पत्ति हुई।

नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ अकल्पयन्॥

उन्हीं परमपुरुषकी नाभिसे अन्तरिक्षलोक उत्पन्न हुआ, मस्तकसे स्वर्ग प्रकट हुआ, पैरोंसे पृथिवी, कानोंसे दिशाएँ हुईं। इस प्रकार समस्त लोक उस पुरुषमें ही कल्पित हुए।

सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः।
देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन् पुरुषं पशुम्॥

देवताओंने जब यज्ञ करते समय (संकल्पसे) पुरुषरूप पशुका बन्धन किया, तब सात समुद्र इसकी परिधि (मेखलाएँ) थे। इक्कीस प्रकारके छन्दोंकी (गायत्री, अतिजगती और कृतिमेंसे प्रत्येकके सात-सात प्रकारसे) समिधाएँ बनीं। (इस मन्त्रमें सृष्टि-यज्ञकी समिधाका वर्णन है।)

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः॥

देवताओंने (पूर्वोक्त रूपसे) यज्ञके द्वारा यज्ञस्वरूप परमपुरुषका यजन (आराधन) किया। इस यज्ञसे सर्वप्रथम सब धर्म उत्पन्न हुए। उन धर्मोंके आचरणसे वे देवता महान् महिमावाले होकर उस स्वर्गलोकका सेवन करते हैं, जहाँ प्राचीन साध्य-देवता निवास करते हैं।

(ऋग्वेद १०। ९०। १-५, १२—१६)

श्रीलक्ष्मी-स्तवन

हिरण्यवर्णां हरिणीं सुवर्णरजतस्रजाम्।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आ वह॥

हे जातवेदा (सर्वज्ञ) अग्निदेव ! आप सुवर्णके-से रंगवाली, किंचित् हरितवर्ण-विशिष्टा, सोने और चाँदीके हार पहननेवाली, चन्द्रवत् प्रसन्नकान्ति, स्वर्णमयी लक्ष्मीदेवीका मेरे लिये आवाहन करें ।

कां सोस्मितां हिरण्यप्राकारामार्द्रां ज्वलन्तीं तृप्तां तर्पयन्तीम्।
पद्मे स्थितां पद्मवर्णां तामिहोपह्वये श्रियम्॥

जो साक्षात् ब्रह्मरूपा, मन्द-मन्द मुसकरानेवाली, सोनेके परकोटेसे आवृत, दयार्द्र, तेजोमयी, स्वयं पूर्णकामा, भक्तोंको पूर्णकाम बना देनेवाली, कमलके आसनपर विराजमान तथा पद्मवर्णा हैं, उन लक्ष्मीदेवीका मैं यहाँ आवाहन करता हूँ ।

चन्द्रां प्रभासां यशसा ज्वलन्तीं श्रियं लोके देवजुष्टामुदाराम्।
तां पद्मिनीमीं शरणं प्रपद्येऽलक्ष्मीर्मे नश्यतां त्वां वृणे॥

जो चन्द्रके समान शुभ्र कान्तिवाली, अमित-द्युतिशालिनी, यशसे दीप्तिमती, स्वर्गलोकमें देवगणोंके द्वारा सेविता, उदारशीला और पद्महस्ता हैं, उन लक्ष्मीदेवीकी मैं शरण ग्रहण करता हूँ। मेरा (लौकिक-पारमार्थिक) दारिद्रय दूर हो जाय। मैं आपको शरण्यके रूपमें वरण करता हूँ।

आदित्यवर्णे तपसोऽधि जातो वनस्पतिस्तव वृक्षोऽथ बिल्वः।
तस्य फलानि तपसा नुदन्तु या अन्तरायाश्च बाह्या अलक्ष्मीः॥

हे सूर्यके समान प्रकाशस्वरूपे ! तुम्हारे ही तपसे वृक्षोंमें श्रेष्ठ मङ्गलमय बिल्ववृक्ष उत्पन्न हुआ। उसके फल हमारे बाहरी और भीतरी दारिद्र्यको दूर करें ।

गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम्।
ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम्॥

जिनका कोई पराभव नहीं कर सकता, जो नित्यपुष्टा हैं तथा गोबरसे (पशुओंसे) युक्त गन्धगुणवती पृथिवी ही जिनका स्वरूप है, सब भूतोंकी स्वामिनी उन लक्ष्मीदेवीका मैं यहाँ—अपने घरमें आवाहन करता हूँ ।

आर्द्रां पुष्करिणीं पुष्टिं पिङ्गलां पद्ममालिनीम्।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आ वह॥

अग्ने ! आर्द्रस्वभावा, कमलहस्ता, पुष्टिरूपा, पीतवर्णा, पद्मोंकी माला धारण करनेवाली, चन्द्रमाके समान शुभ्र कान्तिसे युक्त, स्वर्णमयी लक्ष्मीदेवीको आप मेरे यहाँ ले आयें ।

आर्द्रां यःकरिणीं यष्टिं सुवर्णां हेममालिनीम्।
सूर्यां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आ वह॥

अग्ने ! जो दुष्टोंका निग्रह करनेवाली होनेपर भी कोमल स्वभावकी हैं, जो मङ्गलदायिनी, अवलम्बन प्रदान करनेवाली यष्टिरूपा, सुन्दर वर्णवाली, सुवर्णमालाधारिणी, सूर्यस्वरूपा तथा हिरण्मयी हैं, उन लक्ष्मीदेवीको आप मेरे घरमें ले आयें ।

(ऋक्परिशिष्टान्तर्गत श्रीसूक्त १, ४, ५, ६, ९, १३-१४)

श्रीलक्ष्मी-विष्णुकी एकरूपता तथा सर्वमयता

श्रीपराशर उवाच

नित्यैवैषा जगन्माता विष्णोः श्रीरनपायिनी । यथा सर्वगतो विष्णुस्तथैवेयं द्विजोत्तम ॥
अर्थो विष्णुरियं वाणी नीतिरेषा नयो हरिः । बोधो विष्णुरियं बुद्धिर्धर्मोऽसौ सत्क्रिया त्वियम् ॥
स्रष्टा विष्णुरियं सृष्टिः श्रीर्भूमिर्भूधरो हरिः । संतोषो भगवाँल्लक्ष्मीस्तुष्टिर्मैत्रेय शाश्वती ॥
इच्छा श्रीर्भगवान्कामो यज्ञोऽसौ दक्षिणा त्वियम् । आज्याहुतिरसौ देवी पुरोडाशो जनार्दनः ॥
पत्नीशाला मुने लक्ष्मीः प्राग्वंशो मधुसूदनः । चितिर्लक्ष्मीर्हरिर्यूप इध्मा श्रीर्भगवान् कुशः ॥
सामस्वरूपी भगवानुद्गीतिः कमलालया । स्वाहा लक्ष्मीर्जगन्नाथो वासुदेवो हुताशनः ॥
शंकरो भगवाञ्छौरिर्गौरी लक्ष्मीर्द्विजोत्तम । मैत्रेय केशवः सूर्यस्तत्प्रभा कमलालया ॥
विष्णुः पितृगणः पद्मा स्वधा शाश्वतपुष्टिदा । द्यौः श्रीः सर्वात्मको विष्णुरवकाशोऽतिविस्तरः ॥
शशाङ्कः श्रीधरः कान्तिः श्रीस्तथैवानपायिनी । धृतिर्लक्ष्मीर्जगच्चेष्टा वायुः सर्वत्रगो हरिः ॥
जलधिर्द्विज गोविन्दस्तद्वेला श्रीर्महामुने । लक्ष्मीस्वरूपमिन्द्राणी देवेन्द्रो मधुसूदनः ॥
यमश्चक्रधरः साक्षाद्धूमोर्णा कमलालया । ऋद्धिः श्रीः श्रीधरो देवः स्वयमेव धनेश्वरः ॥
गौरी लक्ष्मीर्महाभागा केशवो वरुणः स्वयम् । श्रीर्देवसेना विप्रेन्द्र देवसेनापतिर्हरिः ॥
अवष्टम्भो गदापाणिः शक्तिर्लक्ष्मीर्द्विजोत्तम । काष्ठा लक्ष्मीर्निमेषोऽसौ मुहूर्त्तोऽसौ कला त्वियम्॥
ज्योत्स्ना लक्ष्मीः प्रदीपोऽसौ सर्वः सर्वेश्वरो हरिः । लताभूता जगन्माता श्रीर्विष्णुर्द्रुमसंज्ञितः ॥
विभावरी श्रीर्दिवसो देवश्चक्रगदाधरः । वरप्रदो वरो विष्णुर्वधूः पद्मवनालया ॥
नदस्वरूपी भगवाञ्छ्रीर्नदीरूपसंस्थिता । ध्वजश्च पुण्डरीकाक्षः पताका कमलालया ॥
तृष्णा लक्ष्मीर्जगन्नाथो लोभो नारायणः परः । रती रागश्च मैत्रेय लक्ष्मीर्गोविन्द एव च ॥
किं चातिबहुनोक्तेन संक्षेपेणेदमुच्यते ॥
देवतिर्यङ्मनुष्यादौ पुन्नामा भगवान् हरिः । स्त्रीनाम्नी श्रीश्च विज्ञेया नानयोर्विद्यते परम् ॥

(श्रीविष्णुपुराण १ । ८ । १७–३५)

(श्रीमैत्रेयजीके प्रश्नके उत्तरमें) श्रीपराशरजी बोले—हे द्विजोत्तम ! भगवान्‌का कभी सङ्ग न छोड़नेवाली जगज्जननी लक्ष्मीजी नित्य हैं और जिस प्रकार श्रीविष्णुभगवान् सर्वव्यापक हैं, वैसे ही ये भी हैं। विष्णु अर्थ हैं तो लक्ष्मीजी वाणी हैं; हरि न्याय हैं तो ये नीति हैं; भगवान् विष्णु बोध हैं तो ये बुद्धि हैं; तथा वे धर्म हैं तो लक्ष्मीजी सत्क्रिया हैं। मैत्रेय ! भगवान् जगत्‌के स्रष्टा हैं तो लक्ष्मीजी सृष्टि हैं। श्रीहरि भूधर (पर्वत अथवा राजा) हैं तो लक्ष्मीजी भूमि हैं; भगवान् संतोष हैं तो लक्ष्मीजी नित्य-तुष्टि हैं । भगवान् काम हैं तो लक्ष्मीजी इच्छा हैं; वे यज्ञ हैं तो ये दक्षिणा हैं; श्रीजनार्दन पुरोडाश हैं तो देवी लक्ष्मीजी आज्याहुति (घृतकी आहुति) हैं । मुने ! मधुसूदन यजमानगृह हैं तो लक्ष्मीजी पत्नीशाला हैं; श्रीहरि यूप (यज्ञस्तम्भ) हैं तो लक्ष्मीजी चिति (इष्टका-चयन) हैं; भगवान् कुशा हैं तो लक्ष्मीजी समिधा हैं । भगवान् सामस्वरूप हैं तो श्रीकमलादेवी उद्गीति हैं; जगत्पति भगवान् वासुदेव हुताशन हैं तो लक्ष्मीजी (उनकी पत्नी) स्वाहा हैं । द्विजोत्तम ! भगवान् विष्णु शंकर हैं तो श्रीलक्ष्मीजी गौरी हैं; इसी प्रकार हे मैत्रेय ! श्रीकेशव सूर्य हैं तो कमलवासिनी श्रीलक्ष्मीजी उनकी प्रभा हैं । श्रीविष्णु पितृगण हैं तो श्रीकमला नित्य पुष्टिदायिनी (उनकी पत्नी) स्वधा हैं; विष्णु अति विस्तीर्ण सर्वात्मक आकाश हैं तो लक्ष्मीजी स्वर्गलोक हैं । भगवान् श्रीधर चन्द्रमा हैं तो श्रीलक्ष्मीजी उनकी अक्षय कान्ति हैं; श्रीहरि सर्वगामी वायु हैं तो लक्ष्मीजी जगच्चेष्टा (जगत्‌की गति) और धृति (आधार) हैं । हे महामुने ! श्रीगोविन्द समुद्र हैं तो हे द्विज ! लक्ष्मीजी उसकी तटभूमि हैं । भगवान् मधुसूदन देवराज इन्द्र हैं तो लक्ष्मीजी इन्द्राणी हैं । चक्रपाणि भगवान् साक्षात् यम हैं तो श्रीकमला यमपत्नी धूमोर्णा हैं; देवाधिदेव श्रीविष्णु स्वयं कुबेर हैं तो श्रीलक्ष्मीजी साक्षात् ऋद्धि हैं । श्रीकेशव स्वयं वरुण हैं तो महाभागा लक्ष्मीजी गौरी हैं; हे द्विजराज ! श्रीहरि देवसेनापति

स्वामिकार्तिकेय हैं तो श्रीलक्ष्मीजी देवसेना हैं । हे द्विजोत्तम ! भगवान् गदाधर (शक्तिके) आधार हैं तो लक्ष्मीजी शक्ति हैं; भगवान् निमेष हैं तो लक्ष्मीजी काष्ठा हैं; वे मुहूर्त हैं तो ये कला हैं। सर्वेश्वर सर्वरूप श्रीहरि दीपक हैं तो श्रीलक्ष्मीजी ज्योति हैं; श्रीविष्णु वृक्षरूप हैं तो जगन्माता श्रीलक्ष्मीजी लता हैं । चक्र-गदाधर देव श्रीविष्णु दिन हैं तो लक्ष्मीजी रात्रि हैं; वरदायक श्रीहरि वर (दूल्हा) हैं तो पद्मनिवासिनी श्रीलक्ष्मीजी वधू (दुलहिन) हैं । भगवान् नद हैं तो श्रीजी नदी हैं। कमल-नयन भगवान् ध्वजा (झंडा) हैं तो कमलालया लक्ष्मीजी पताका हैं। जगदीश्वर परमात्मा नारायण लोभ हैं तो लक्ष्मीजी तृष्णा हैं तथा हे मैत्रेय ! रति और राग भी साक्षात् श्रीलक्ष्मी और गोविन्दरूप ही हैं। अधिक क्या कहा जाय, संक्षेपमें यह कहना चाहिये कि देव, तिर्यक् और मनुष्य आदिमें पुरुषवाची तत्त्व भगवान् श्रीहरि हैं और स्त्रीवाची तत्त्व श्रीलक्ष्मीजी; इनके परे और कोई नहीं है ।

श्रीशिवकृत श्रीविष्णुस्तुति

श्रीहर उवाच

नमस्ते देवतानाथ नमस्ते गरुडध्वज। शङ्खचक्रगदापाणे वासुदेव नमोऽस्तु ते॥
नमस्ते निर्गुणानन्त अप्रतर्क्याय वेधसे। ज्ञानाज्ञान निरालम्ब सर्वालम्ब नमोऽस्तु ते॥
रजोयुक्त नमस्तेऽस्तु ब्रह्ममूर्ते सनातन। त्वया सर्वमिदं नाथ जगत्सृष्टं चराचरम्॥
सत्त्वाधिष्ठित लोकेश विष्णुमूर्ते अधोक्षज। प्रजापाल महाबाहो जनार्दन नमोऽस्तु ते॥
तमोमूर्ते अहं ह्येष त्वदंशक्रोधसम्भवः। गुणाभियुक्तो देवेश सर्वव्यापिन्नमोऽस्तु ते॥
भूरियं त्वं जगन्नाथ जलमम्बरपावकौ। वायुर्बुद्धिर्मनश्चापि शर्वरी त्वं नमोऽस्तु ते॥
धर्मो यज्ञस्तपः सत्यमहिंसा शौचमार्जवम्। क्षमा दानं दया लक्ष्मीर्ब्रह्मचर्यं त्वमीश्वर॥
त्वं हि साङ्गाश्चतुर्वेदास्त्वं वेद्यो वेदपारगः। उपवेदो भवानीश सर्वोऽसि त्वं नमोऽस्तु ते॥

(वामनपुराण ३ । १४—२१)

श्रीमहादेवजी कहते हैं—देवताओंके अधीश्वर ! आपको नमस्कार है । अपनी ध्वजामें गरुड़-चिह्न धारण करनेवाले भगवन् ! आपको प्रणाम है । हाथोंमें शङ्ख-चक्र-गदा धारण करनेवाले वासुदेव ! आपको अभिवादन है । हे निर्गुण ! आप तर्कसे परे हैं । हे अनन्त ! ब्रह्मा आपके ही स्वरूप हैं, आपको नमस्कार है । आप ज्ञान और अज्ञानस्वरूप हैं तथा आलम्बनरहित होते हुए सबके अवलम्ब हैं, आपको प्रणाम है । सनातन देव ! आपने ही रजोगुणसे युक्त होकर ब्रह्माका रूप धारण करके इस सारे स्थावर-जंगम जगत्की रचना की है, अतः नाथ ! आपको अभिवादन है । अधोक्षज ! आप ही सत्त्वगुणके आश्रयसे विष्णुरूप होकर प्रजाओंकी रक्षा करते हैं, महाबाहो ! आप लोकोंके अधीश्वर हैं, जनार्दन ! आपको नमस्कार है । देवेश ! यह मैं तमोमूर्तिधारी आपके अंशभूत क्रोधसे उत्पन्न हुआ हूँ । सर्वव्यापिन् ! इस प्रकार आप तीनों गुणोंसे युक्त हैं, आपको प्रणाम है । जगन्नाथ ! यह पृथ्वी तथा जल, आकाश, अग्नि, वायु, बुद्धि और मन आप ही हैं । रात भी आप ही हैं, आपको अभिवादन है । ईश्वर ! धर्म, यज्ञ, तप, सत्य, अहिंसा, शौच (पवित्रता), आर्जव (सरलता), क्षमा, दान, दया, लक्ष्मी और ब्रह्मचर्य—ये सभी आपके ही स्वरूप हैं । आप ही अङ्गोंसहित चारों वेद हैं । आप ही (वेदोंद्वारा) जाननेयोग्य तथा वेदोंके पारंगत हैं । उपवेद भी आप ही हैं । ईश ! आप सब कुछ हैं, आपको नमस्कार है ।

श्रीब्रह्माकृत श्रीविष्णु-स्तुति

ब्रह्मोवाच

नमामि सर्वं सर्वेशमनन्तमजमव्ययम्। लोकधाम धराधारमप्रकाशमभेदिनम्॥
नारायणमणीयांसमशेषाणामणीयसाम्। समस्तानां गरिष्ठं च भूरादीनां गरीयसाम्॥
यत्र सर्वं यतः सर्वमुत्पन्नं मत्पुरस्सरम्। सर्वभूतश्च यो देवः पराणामपि यः परः॥
परः परस्मात् पुरुषात् परमात्मस्वरूपधृक्। योगिभिश्चिन्त्यते योऽसौ मुक्तिहेतोर्मुमुक्षुभिः॥
सत्त्वादयो न सन्तीशे यत्र च प्राकृता गुणाः। स शुद्धः सर्वशुद्धेभ्यः पुमानाद्यः प्रसीदतु॥
कलाकाष्ठामुहूर्त्तादिकालसूत्रस्य गोचरे। यस्य शक्तिर्न शुद्धस्य स नो विष्णुः प्रसीदतु॥
प्रोच्यते परमेशो हि यः शुद्धोऽप्युपचारतः। प्रसीदतु स नो विष्णुरात्मा यः सर्वदेहिनाम्॥
यः कारणं च कार्यं च कारणस्यापि कारणम्। कार्यस्यापि च यः कार्यं प्रसीदतु स नो हरिः॥

× × ×

भोक्तारं भोग्यभूतं च स्रष्टारं सृज्यमेव च। कार्यकर्तृस्वरूपं तं प्रणताः स्म परं पदम्॥
विशुद्धबोधवन्नित्यमजमक्षयमव्ययम्। अव्यक्तमविकारं यत्तद्विष्णोः परमं पदम्॥
न स्थूलं न च सूक्ष्मं यन्न विशेषणगोचरम्। तत्पदं परमं विष्णोः प्रणमामः सदामलम्॥

× × ×

यद्योगिनः सदोद्युक्ताः पुण्यपापक्षयेऽक्षयम्। पश्यन्ति प्रणवे चिन्त्यं तद्विष्णोः परमं पदम्॥
यन्न देवा न मुनयो न चाहं न च शंकरः। जानन्ति परमेशस्य तद्विष्णोः परमं पदम्॥
शक्तयो यस्य देवस्य ब्रह्मविष्णुशिवात्मिकाः। भवन्त्यभूतपूर्वस्य तद्विष्णोः परमं पदम्॥
सर्वेश सर्वभूतात्मन् सर्व सर्वाश्रयाच्युत। प्रसीद विष्णो भक्तानां व्रज नो दृष्टिगोचरम्॥

(श्रीविष्णुपुराण १। ९। ४०—४७, ५०—५२, ५४—५७)

श्रीब्रह्माजी बोले—जो समस्त अणुओंसे भी अणु और पृथिवी आदि समस्त गुरुओं (भारी पदार्थों) से भी गुरु (भारी) हैं, उन निखिललोकविश्राम, पृथिवीके आधारस्वरूप, अव्यक्त, अभेद, सर्वरूप, सर्वेश्वर, अनन्त, अज और अविनाशी नारायणको मैं नमस्कार करता हूँ। मेरेसहित सम्पूर्ण जगत् जिनमें स्थित है, जिनसे उत्पन्न हुआ है और जो देव सर्वभूतमय हैं तथा जो पर (प्रधानादि) से भी पर हैं; जो पर पुरुषसे भी पर हैं, मुक्ति-लाभके लिये मोक्षकामी मुनिजन जिनका ध्यान धरते हैं तथा जिन ईश्वरमें सत्त्वादि प्राकृतिक गुणोंका सर्वथा अभाव है, वे समस्त शुद्ध पदार्थोंसे भी परम शुद्ध परमात्मस्वरूप आदिपुरुष हमपर प्रसन्न हों। जिन शुद्धस्वरूप भगवान्‌की शक्ति (विभूति) कला-काष्ठा-मुहूर्त्त आदि काल-क्रमका विषय नहीं है, वे भगवान् विष्णु हमपर प्रसन्न हों। जो शुद्धस्वरूप होकर भी उपचारसे परमेश्वर (परमा=महालक्ष्मी+ईश्वर=पति) अर्थात् लक्ष्मीपति कहलाते हैं और जो समस्त देहधारियोंके आत्मा हैं, वे श्रीविष्णुभगवान् हमपर प्रसन्न हों। जो कारण और कार्यरूप हैं तथा कारणके भी कारण और कार्यके भी कार्य हैं, वे श्रीहरि हमपर प्रसन्न हों।··· जो भोक्ता और भोग्य, स्रष्टा और सृज्य तथा कर्त्ता और कार्यरूप स्वयं ही हैं, उन परमपदस्वरूपको हम प्रणाम करते हैं। जो विशुद्ध बोधसम्पन्न, नित्य, अजन्मा, अक्षय, अव्यय, अव्यक्त और अविकारी है, वही विष्णुका परमपद (परस्वरूप) है। जो न स्थूल है न सूक्ष्म और न किसी अन्य विशेषणका विषय है, वही भगवान् विष्णुका नित्य-निर्मल परमपद है; हम उसको प्रणाम करते हैं।······नित्य-युक्त योगिगण अपने पुण्य-पापादिका क्षय हो जानेपर ओंकारके माध्यमसे चिन्तनीय जिस अविनाशी पदका साक्षात्कार करते हैं, वही भगवान् विष्णुका परमपद है। जिसको देवगण, मुनिगण, शंकर और मैं—कोई भी नहीं जान सकते, वही परमेश्वर श्रीविष्णुका परमपद है। जिस अभूतपूर्व देवकी ब्रह्मा, विष्णु और शिवरूप शक्तियाँ हैं, वही भगवान् विष्णुका परमपद है। हे सर्वेश्वर! हे सर्वभूतात्मन्! हे सर्वरूप! हे सर्वाधार! हे अच्युत! हे विष्णो! हम भक्तोंपर प्रसन्न होकर हमें दर्शन दीजिये।

श्रीदशावतारस्तोत्रम्

प्रलयपयोधिजले धृतवानसि वेदम् । विहितवहित्रचरित्रमखेदम् ॥
केशव धृतमीनशरीर जय जगदीश हरे ॥ १ ॥
क्षितिरतिविपुलतरे तव तिष्ठति पृष्ठे । धरणिधरणकिणचक्रगरिष्ठे ॥
केशव धृतकच्छपरूप जय जगदीश हरे ॥ २ ॥
वसति दशनशिखरे धरणी तव लग्ना । शशिनि कलङ्ककलेव निमग्ना ॥
केशव धृतसूकररूप जय जगदीश हरे ॥ ३ ॥
तव करकमलवरे नखमद्भुतशृङ्गम् । दलितहिरण्यकशिपुतनुभृङ्गम् ॥
केशव धृतनरहरिरूप जय जगदीश हरे ॥ ४ ॥
छलयसि विक्रमणे बलिमद्भुतवामन । पदनखनीरजनितजनपावन ॥
केशव धृतवामनरूप जय जगदीश हरे ॥ ५ ॥
क्षत्रियरुधिरमये जगदपगतपापम् । स्नपयसि पयसि शमितभवतापम् ॥
केशव धृतभृगुपतिरूप जय जगदीश हरे ॥ ६ ॥
वितरसि दिक्षु रणे दिक्पतिकमनीयम् । दशमुखमौलिबलिं रमणीयम् ॥
केशव धृतरघुपतिवेष जय जगदीश हरे ॥ ७ ॥
वहसि वपुषि विशदे वसनं जलदाभम् । हलहतिभीतिमिलितयमुनाभम् ॥
केशव धृतहलधररूप जय जगदीश हरे ॥ ८ ॥
निन्दसि यज्ञविधेरहह श्रुतिजातम् । सदयहृदयदर्शितपशुघातम् ॥
केशव धृतबुद्धशरीर जय जगदीश हरे ॥ ९ ॥
म्लेच्छनिवहनिधने कलयसि करवालम् । धूमकेतुमिव किमपि करालम् ॥
केशव धृतकल्किशरीर जय जगदीश हरे ॥ १० ॥
श्रीजयदेवकवेरिदमुदितमुदारम् । शृणु सुखदं शुभदं भवसारम् ॥
केशव धृतदशविधरूप जय जगदीश हरे ॥ ११ ॥

॥ इति श्रीजयदेवविरचितं दशावतारस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

हे मत्स्यरूपधारी केशव ! हे जगदीश्वर ! हे हरे ! प्रलयकालके बढ़े हुए समुद्रजलमें बिना क्लेश नौका चलानेकी लीला करते हुए आपने वेदोंकी रक्षा की थी, आपकी जय हो ॥ १ ॥ हे केशव ! पृथ्वीके धारण करनेके कारण पड़े हुए घट्ठोंसे कठोर और अत्यन्त विशाल आपकी पीठपर पृथ्वी स्थित है, ऐसे कच्छपरूपधारी जगत्पति आप हरिकी जय हो ॥ २ ॥ चन्द्रमामें स्थित कलङ्करेखाके समान यह पृथ्वी आपके दाँतकी नोकपर अटकी हुई सुशोभित हो रही है, ऐसे शूकररूपधारी जगत्पति हरि केशवकी जय हो ॥ ३ ॥ हिरण्यकशिपुरूपी तुच्छ भृङ्गको चीर डालनेवाले विचित्र नुकीले नख आपके कर-कमलमें हैं, ऐसे नृसिंहरूपधारी जगत्पति हरि केशवकी जय हो ॥ ४ ॥ हे आश्चर्यमय-वामनरूपधारी केशव ! आपने पैर बढ़ाकर राजा बलिको छला तथा अपने चरण-नखोंके जलसे लोगोंको पवित्र किया, ऐसे आप जगत्पति हरिकी जय हो ॥ ५ ॥ हे केशव ! आप जगत्के लोगोंको क्षत्रियोंके रुधिररूप जलसे स्नान कराके उनके ताप और पापोंका नाश करते हैं, ऐसे आप परशुरामरूपधारी जगत्पति हरिकी जय हो ॥ ६ ॥ जो युद्धमें सब दिशाओंमें लोकपालोंके लिये लोभनीय रावणके सिरोंकी सुन्दर बलि देते हैं, ऐसे श्रीरामावतारधारी आप जगत्पति भगवान् केशवकी जय हो ॥ ७ ॥ जो अपने गौर शरीरमें हलकी चोटके भयसे आकर मिली हुई यमुना और मेघके सदृश नीलाम्बर धारण किये रहते हैं, ऐसे आप बलरामरूपधारी जगत्पति भगवान् केशवकी जय हो ॥ ८ ॥ सदय हृदयके कारण पशुहत्याकी कठोरता दिखाते हुए यज्ञविधानसम्बन्धी श्रुतियोंकी

निन्दा करनेवाले आप बुद्धरूपधारी जगत्पति भगवान् केशवकी जय हो ॥ ९ ॥ जो म्लेच्छ-समूहका नाश करनेके लिये धूमकेतुके समान अत्यन्त भयंकर तलवार चलाते हैं, ऐसे कल्किरूपधारी आप जगत्पति भगवान् केशवकी जय हो ॥ १० ॥ जयदेव कविकी कही हुई इस मनोहर, आनन्ददायक, कल्याणजनक, संसारमें साररूपा स्तुतिको सुनो; हे दशावतारधारी जगत्पति हरि ! आपकी जय हो ॥ ११ ॥

षट्पदी-स्तोत्रम्

अविनयमपनय विष्णो दमय मनः शमय विषयमृगतृष्णाम् ।
भूतदयां विस्तारय तारय संसारसागरतः ॥ १ ॥
दिव्यधुनीमकरन्दे परिमलपरिभोगसच्चिदानन्दे ।
श्रीपतिपदारविन्दे भवभयखेदच्छिदे वन्दे ॥ २ ॥
सत्यपि भेदापगमे नाथ तवाहं न मामकीनस्त्वम् ।
सामुद्रो हि तरंगः क्वचन समुद्रो न तारंगः ॥ ३ ॥
उद्धृतनग नगभिदनुज दनुजकुलामित्र मित्रशशिदृष्टे ।
दृष्टे भवति प्रभवति न भवति किं भवतिरस्कारः ॥ ४ ॥
मत्स्यादिभिरवतारैरवतारवतावता सदा वसुधाम् ।
परमेश्वर परिपाल्यो भवता भवतापभीतोऽहम् ॥ ५ ॥
दामोदर गुणमन्दिर सुन्दरवदनारविन्द गोविन्द ।
भवजलधिमथनमन्दर परमं दरमपनय त्वं मे ॥ ६ ॥
नारायण करुणामय शरणं करवाणि तावकौ चरणौ ।
इति षट्पदी मदीये वदनसरोजे सदा वसतु ॥ ७ ॥

इति श्रीशंकराचार्यकृतं षट्पदीस्तोत्रं सम्पूर्णम्

हे विष्णो ! (मेरे) अविनयको दूर करो, मनको दमन करो, विषयरूपी मृगतृष्णा (के मोह) का निवारण करो । भूतों (प्राणियों) के प्रति दयाके भावका विस्तार करो, (और मेरा) संसार-सागरसे उद्धार करो ॥ १ ॥ सुरधुनी (गङ्गा) जिनका मकरन्द है, जिन युगल चरण-कमलोंके सौरभका सम्भोग ही सच्चिदानन्दरूप है तथा जो जन्म-मृत्यु-भयसे उत्पन्न खेदके नाशक हैं, श्रीपति भगवान् विष्णुके उन चरण-कमलोंकी मैं वन्दना करता हूँ ॥ २ ॥ हे नाथ ! मुझमें और तुममें भेद न होनेपर भी मैं तुम्हारा हूँ, तुम मेरे नहीं हो; क्योंकि (समुद्र और तरंगमें भेद न होनेपर भी) समुद्रका तरंग होता है, तरंगका समुद्र कदापि नहीं होता ॥ ३ ॥ जिन्होंने (गोवर्द्धन) पर्वतको उठा लिया, जो (उपेन्द्ररूपमें) पर्वतोंका छेदन करनेवाले इन्द्रके अनुज हैं, जो दनुज-कुलके शत्रु हैं, सूर्य-चन्द्र जिनके चक्षु हैं, सर्वसमर्थ आपका साक्षात्कार होनेपर क्या भव (जन्म-मरण) का तिरस्कार नहीं होता ? ॥ ४ ॥ हे परमेश्वर ! मत्स्यादि अवतारोंके रूपमें प्रकट होकर (तुमने) सदा ही वसुधाका पालन किया है; भव-तापसे भयभीत मैं (सुतरां) तुम्हारेद्वारा परिपालनयोग्य हूँ ॥ ५ ॥ हे दामोदर (बालकृष्णरूपमें उदर-बन्धन स्वीकार करनेवाले) ! हे गुणोंके मन्दिर ! हे सुन्दर-मुख-कमल-विशिष्ट गोविन्द ! संसार-समुद्रके मन्थनके लिये मन्दराचलस्वरूप ! तुम मेरे परम भयको दूर करो ॥ ६ ॥ हे नारायण ! करुणामय !! मैं तुम्हारे उभय चरणोंकी शरण लेता हूँ । उपर्युक्त छः पदोंकी समष्टिरूप भ्रमरी सदा मेरे मुख-कमलमें वास करे ॥ ७ ॥

'इहै परम फलु, परम बड़ाई'

भगवान् श्रीविष्णुके स्मरण-चिन्तनका माहात्म्य

नित्योत्सवोऽभवत्तेषां नित्यं नित्यं च मङ्गलम्।
येषां हृदिस्थो भगवान्मङ्गलायतनं हरिः॥
(श्रीपाण्डवगीता ४४)

'जिनके हृदयमें जब भी मङ्गलधाम श्रीहरि बस जाते हैं, तभीसे उनके लिये नित्य उत्सव है, और नित्य नित्य मङ्गल है।'

विपदो नैव विपदः सम्पदो नैव सम्पदः।
विपद् विस्मरणं विष्णोः सम्पन्नारायणस्मृतिः॥

'विपत्ति सच्ची विपत्ति नहीं है और सम्पत्ति भी सच्ची सम्पत्ति नहीं है, अपितु विष्णुका विस्मरण ही विपत्ति है और नारायणका स्मरण ही सम्पत्ति है।'

प्रातर्निशि तथा संध्यामध्याह्नादिषु संस्मरन्।
नारायणमवाप्नोति सद्यः पापक्षयं नरः॥
तस्मादहर्निशं विष्णुं संस्मरन्पुरुषो मुने।
न याति नरकं मर्त्यः संक्षीणाखिलपातकः॥
(श्रीविष्णुपुराण २।७।४१, ४५)

'प्रातःकाल, सायंकाल, रात्रिमें अथवा मध्याह्नमें—किसी भी समय श्रीनारायणका स्मरण करनेसे पुरुषके समस्त पाप तत्काल क्षीण हो जाते हैं।' 'मुने! अतएव श्रीविष्णुभगवान्‌का अहर्निश स्मरण करनेवाला मनुष्य सम्पूर्ण पाप क्षीण हो जानेके कारण फिर नरकमें नहीं जाता।'

तवामृतस्यन्दिनि पादपङ्कजे निवेशितात्मा कथमन्यदिच्छति।
स्थितेऽरविन्दे मकरन्दनिर्भरे मधुव्रतो नेक्षुरकं हि वीक्षते॥
(श्रीआळवन्दारस्तोत्र ३०)

'जो पुरुष भगवान् विष्णुके अमृतवर्षी चरण-कमलोंमें दत्तचित्त है, वह किसी और पदार्थकी इच्छा कैसे कर सकता है? मधुसे भरे हुए पङ्कजपर बैठा हुआ भ्रमर इक्षुरक (तालमखानेके पुष्प) की ओर दृष्टिपात भी नहीं करता।'

त्वदङ्घ्रिमुद्दिश्य कदापि केनचिद्यथा तथा वापि सकृत्कृतोऽञ्जलिः।
तदेव मुष्णात्यशुभान्यशेषतः शुभानि पुष्णाति न जातु हीयते॥
(श्रीआळवन्दारस्तोत्र ३१)

'आपके चरणोंके प्रति किसी भी समय, किसीने भी, जैसे-तैसे एक बार भी हाथ जोड़ दिया तो वह (नमस्कार) उसके समस्त पापोंको हर लेता है, पुण्यराशिकी वृद्धि करता है और उसका फिर कभी पतन नहीं होता।'

उदीर्णसंसारदवाशुशुक्षणिं क्षणेन निर्वाप्य परां च निर्वृतिम्।
प्रयच्छति त्वच्चरणारुणाम्बुजद्वयानुरागामृतसिन्धुशीकरः॥
(श्रीआळवन्दारस्तोत्र ३२)

'आपके युगल चरणरूपी अरुण कमलोंके अनुरागसे उत्पन्न हुए अमृत-सिन्धुका एक जलकण भी बढ़े हुए संसार-दावाग्निको क्षणमात्रमें शान्त करके परमानन्द देता है।'

यो वा अनन्तस्य गुणाननन्ताननुक्रमिष्यन् स तु बालबुद्धिः।
रजांसि भूमेर्गणयेत् कथंचित् कालेन नैवाखिलशक्तिधाम्नः॥
(श्रीमद्भागवत ११।४।२)

'भगवान् अनन्त हैं। उनके गुण भी अनन्त हैं। जो यह सोचता है कि मैं उनके गुणोंको गिन लूँगा, वह मूर्ख है, बालक है। यह तो सम्भव है कि कोई किसी प्रकार कभी पृथ्वीके धूलि-कणोंको गिन ले; परंतु समस्त शक्तियोंके आश्रय भगवान्‌के अनन्त गुणोंका कोई कभी किसी प्रकार पार नहीं पा सकता।'

भगवती श्रीलक्ष्मीदेवीकी चरण-वन्दना एवं प्रार्थना

विष्णुपत्नीं क्षमां देवीं माधवीं माधवप्रियाम्।
लक्ष्मीं प्रियसखीं भूमिं नमाम्यच्युतवल्लभाम्॥
(ऋग्वेदीय श्रीसूक्त २५)

'विष्णुकी पत्नी, क्षमास्वरूपिणी, दिव्यरूपिणी, माधवप्रिया, माधवी लक्ष्मीको तथा उनकी प्रिय सखी अच्युत-वल्लभा भूमिदेवीको भी नमस्कार करता हूँ।'

श्रुत्यै नमोऽस्तु शुभकर्मफलप्रसूत्यै
रत्यै नमोऽस्तु रमणीयगुणार्णवायै।
शक्त्यै नमोऽस्तु शतपत्रनिकेतनायै
पुष्ट्यै नमोऽस्तु पुरुषोत्तमवल्लभायै॥
(शंकराचार्यकृत कनकधारास्तव ११)

'यज्ञादि शुभ कर्मोंके फलको प्रकट करनेवाली श्रुतिरूपिणी,

सुन्दर गुणोंकी आश्रयभूता रतिरूपिणी, कमलवासिनी शक्तिरूपिणी और पुरुषोत्तम विष्णुकी प्रियतमा पुष्टिरूपिणी लक्ष्मीको बारंबार नमस्कार ।'

मम न भजनशक्तिः पादयोस्ते न भक्ति-
र्न च विषयविरक्तिर्ध्यानयोगे न सक्तिः ।
इति मनसि सदाहं चिन्तयन्नाद्यशक्ते
रुचिरवचनपुष्पैरर्चनं संचिनोमि ॥

(श्रीशंकराचार्यकृतत्रिपुरसुन्दरी-मानसपूजा-स्तोत्र १ । १)

'हे आदिशक्ते ! मुझमें न तो आपकी आराधना करनेकी शक्ति है, न आपके चरणोंमें भक्ति है, न विषयोंसे वैराग्य है और न ध्यानमें ही अनुराग है—मनमें यह सोचकर मैं सदा मधुर वचनरूपी पुष्पोंसे ही आपकी पूजा करता हूँ ।'

सरसिजनिलये सरोजहस्ते धवलतरांशुकगन्धमाल्यशोभे ।
भगवति हरिवल्लभे मनोज्ञे त्रिभुवनभूतिकरि प्रसीद मह्यम् ॥

(ऋग्वेदीय श्रीसूक्त २४)

'कमल-वन ही जिनका निवासस्थान है, जो हाथोंमें कमल धारण किये रहती हैं, जो अत्यन्त उज्ज्वल वस्त्र और गन्ध (चन्दन)-माल्यादिसे सुशोभित हैं, ऐसी हे त्रिलोकको ऐश्वर्य प्रदान करनेवाली सुन्दरी भगवती हरिप्रिये ! तुम मुझपर प्रसन्न होओ ।'

भगवान् श्रीविष्णुकी वन्दना

यं ब्रह्मा वरुणेन्द्ररुद्रमरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवै-
र्वेदैः साङ्गपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः ।
ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो
यस्यान्तं न विदुः सुरासुरगणा देवाय तस्मै नमः ॥

(श्रीमद्भागवत १२ । १३ । १)

'ब्रह्मा, वरुण, इन्द्र, रुद्र और मरुद्गण जिनका दिव्य स्तोत्रोंद्वारा स्तवन करते हैं, सामगान करनेवाले लोग अङ्ग, पद, क्रम और उपनिषदोंके सहित वेदोंद्वारा जिनका गान करते हैं, ध्यानमग्न एवं तल्लीन चित्तसे योगी जिनका साक्षात्कार करते हैं और जिनका पार सुर और असुर कोई भी नहीं पाते, उन भगवान् विष्णुको नमस्कार है ।'

शान्ताकारं भुजगशयनं पद्मनाभं सुरेशं
विश्वाधारं गगनसदृशं मेघवर्णं शुभाङ्गम् ।
लक्ष्मीकान्तं कमलनयनं योगिभिर्ध्यानगम्यं
वन्दे विष्णुं भवभयहरं सर्वलोकैकनाथम् ॥

'सर्वलोकोंके एकमात्र स्वामी भव-भय-हारी भगवान् विष्णुकी मैं वन्दना करता हूँ, जो शान्तस्वरूप हैं, शेषशायी हैं, कमलनाभ और सुरेश्वर हैं, जो विश्वके आधार, आकाशके समान निर्लेप, मेघवर्ण और सुन्दर शरीरवाले हैं तथा जो लक्ष्मीजीके आनन्दवर्धक, कमलनयन और योगियोंके द्वारा ध्यानगम्य हैं ।'

सशङ्खचक्रं सकिरीटकुण्डलं सपीतवस्त्रं सरसीरुहेक्षणम् ।
सहारवक्षःस्थलकौस्तुभश्रियं नमामि विष्णुं शिरसा चतुर्भुजम् ॥

'उन चतुर्भुज भगवान् विष्णुको मैं सिर झुकाकर प्रणाम करता हूँ, जो शङ्ख-चक्र धारण किये हैं, किरीट और कुण्डलोंसे विभूषित हैं, पीताम्बर ओढ़े हुए हैं, सुन्दर कमलके समान जिनके नेत्र हैं और जिनके हारयुक्त वक्षःस्थलपर कौस्तुभमणिकी अनूठी शोभा है ।'

मेघश्यामं पीतकौशेयवासं श्रीवत्साङ्कं कौस्तुभोद्भासिताङ्गम् ।
पुण्योपेतं पुण्डरीकायताक्षं विष्णुं वन्दे सर्वलोकैकनाथम् ॥

(श्रीपाण्डवगीता ५)

'नवीन मेघके समान श्यामसुन्दर, रेशमी पीताम्बर धारण किये हुए, श्रीवत्सचिह्नाङ्कित, कौस्तुभमणिसे देदीप्यमान अङ्गोंवाले, पुण्यात्मा, कमल-नयन और सम्पूर्ण लोकोंके एकमात्र स्वामी श्रीविष्णुभगवान्को मैं प्रणाम करता हूँ ।'

यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु ।
न्यूनं सम्पूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम् ॥

'जिनके स्मरणसे ही नहीं, नामोच्चारणमात्रसे तप, यज्ञ एवं कर्मकाण्ड आदिमें हुई त्रुटि तत्काल पूर्ण हो जाती है, उन भगवान् विष्णुकी मैं वन्दना करता हूँ ।'

क्षीरसागरतरंगसीकरासारतारकितचारुमूर्तये ।
भोगिभोगशयनीयशायिने माधवाय मधुविद्विषे नमः ॥

(श्रीमुकुन्दमाला २२)

'क्षीरसागरकी उज्ज्वल तरंगोंके छींटोंकी वर्षासे जिनकी श्यामल मूर्ति तारोंसे आवृत हुई-सी अत्यन्त सुन्दर प्रतीत होती है तथा जो शेषनागके शरीररूपी शय्यापर शयन करते हैं, उन मधुसूदन भगवान् माधवको नमस्कार है ।'

किरातहूणान्ध्रपुलिन्दपुक्कसा
आभीरकङ्का यवनाः खसादयः।
येऽन्ये च पापा यदुपाश्रयाश्रयाः
शुध्यन्ति तस्मै प्रभविष्णवे नमः॥
(श्रीमद्भागवत २ । ४ । १८)

'किरात, हूण, आन्ध्र, पुलिन्द, पुक्कस, आभीर, कङ्क, यवन और खस तथा अन्य पापीजन भी जिनके शरणागत भक्तोंका आश्रय लेनेसे ही शुद्ध हो जाते हैं, उन भगवान् विष्णुको नमस्कार है।'

तपस्विनो दानपरा यशस्विनो
मनस्विनो मन्त्रविदः सुमङ्गलाः।
क्षेमं न विन्दन्ति विना यदर्पणं
तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः॥
(श्रीमद्भागवत २ । ४ । १७)

'जिनको आत्मार्पण किये बिना मङ्गलमय तपस्वी, दानी, यशस्वी, मनस्वी और मन्त्रवेत्ता सच्चे कल्याण-भाजन नहीं हो सकते, उन मङ्गलकीर्ति भगवान्‌को नमस्कार है।'

यत्कीर्तनं यत्स्मरणं यदीक्षणं
यद्वन्दनं यच्छ्रवणं यदर्हणम्।
लोकस्य सद्यो विधुनोति कल्मषं
तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः॥
(श्रीमद्भागवत २ । ४ । १५)

'उन कल्याणकीर्ति भगवान्‌को बारंबार नमस्कार है, जिनका कीर्तन, जिनका स्मरण, जिनका दर्शन, जिनका वन्दन, जिनके नाम-गुणोंका श्रवण और जिनका पूजन लोगोंके उत्कट पापोंका शीघ्र ध्वंस कर देता है।'

आम्नायाभ्यसनान्यरण्यरुदितं वेदव्रतान्यन्वहं
मेदश्छेदफलानि पूर्तविधयः सर्वं हुतं भस्मनि।
तीर्थानामवगाहनानि च गजस्नानं विना यत्पद-
द्वन्द्वाम्भोरुहसंस्मृतिं विजयते देवः स नारायणः॥
(श्रीमुकुन्दमाला २०)

'जिन भगवान्‌के चरण-युगलोंका प्रेमपूर्वक स्मरण किये बिना वेदाभ्यास अरण्यरोदन, व्रत शरीर-शोषणमात्र, वापी-तड़ाग आदि खुदवाना, बगीचा लगाना आदि लोकोपकारी कार्य भस्ममें छोड़ी हुई आहुतिके समान और तीर्थस्नान गजस्नानके समान निरर्थक हो जाते हैं, उन नारायणदेवकी जय हो।'

नमो नमो वाङ्मनसातिभूमये नमो नमो वाङ्मनसैकभूमये।
नमो नमोऽनन्तमहाविभूतये नमो नमोऽनन्तदयैकसिन्धवे॥
(श्रीआलवन्दारस्तोत्र २४)

'मन और वाणीके अगोचर आपको प्रणाम है, (ऐसे होते हुए भी भक्तजनोंके) मन-वाणीके एकमात्र विश्राम-स्थान आपको नमस्कार है; अनन्त महाविभूतियोंसे सम्पन्न एवं अनन्त दयाके एकमात्र सागर आपको बारंबार प्रणाम है।'

नमोऽस्तु विष्णवे तस्मै यस्याभिन्नमिदं जगत्।
ध्येयः स जगतामाद्यः स प्रसीदतु मेऽव्ययः॥
यत्रोतमेतत्प्रोतं च विश्वमक्षरमव्ययम्।
आधारभूतः सर्वस्य स प्रसीदतु मे हरिः॥
ॐ नमो विष्णवे तस्मै नमस्तस्मै पुनः पुनः।
यत्र सर्वं यतः सर्वं यः सर्वं सर्वसंश्रयः॥
(श्रीविष्णुपुराण १ । १९ । ८२—८४)

'जिनसे यह जगत् सर्वथा अभिन्न है, उन श्रीविष्णु-भगवान्‌को नमस्कार है। वे विश्वके आदिकारण और मूर्तिके माध्यमसे ध्येय अविनाशी श्रीहरि मुझपर प्रसन्न हों। जिनमें यह सम्पूर्ण विश्व ओत-प्रोत है, वे अक्षर, अव्यय और सबके आधारभूत श्रीहरि मुझपर प्रसन्न हों। ओंकार-वाच्य उन श्रीविष्णुभगवान्‌को नमस्कार है—उन्हें बारंबार नमस्कार है, जिनमें सब कुछ स्थित है, जिनसे सब उत्पन्न हुआ है और जो स्वयं सब कुछ तथा सबके आधार हैं।'

भगवान् श्रीविष्णुका प्रातःस्मरण

प्रातः स्मरामि भवभीतिमहार्तिशान्त्यै
नारायणं गरुडवाहनमब्जनाभम्।
ग्राहाभिभूतवरवारणमुक्तिहेतुं
चक्रायुधं तरुणवारिजपत्रनेत्रम्॥ १॥

प्रातर्नमामि मनसा वचसा च मूर्ध्ना
पादारविन्दयुगलं परमस्य पुंसः।
नारायणस्य नरकार्णवतारणस्य
पारायणप्रवणविप्रपरायणस्य॥ २॥

प्रातर्भजामि भजतामभयंकरं तं
प्राक्सर्वजन्मकृतपापभयापहत्यै ।
यो ग्राहवक्त्रपतिताङ्घ्रिगजेन्द्रघोर-
शोकप्रणाशनकरो धृतशङ्खचक्रः ॥ ३ ॥

'गरुडवाहन, कमलनाभ, ग्राहके द्वारा ग्रस्त गजेन्द्रकी मुक्तिके कारण, सुदर्शनचक्रधारी, नवविकसित कमलकी पँखुड़ी-के सदृश नेत्रवाले भगवान् नारायणका भव-भयरूपी महान् दुःखकी शान्तिके लिये मैं प्रातःकाल स्मरण करता हूँ।

'वेदोंका स्वाध्याय करनेवाले विप्रोंके परम आश्रय, नरकरूप संसार-समुद्रसे तारनेवाले, उन परमपुरुष भगवान् नारायणके चरणारविन्द-युगलमें सिर झुकाकर मैं मन-वचनसे प्रातःकाल नमस्कार करता हूँ।

'जिन्होंने शङ्ख-चक्र धारण करके ग्राहके मुखमें पड़े हुए चरणवाले गजेन्द्रके घोर संकटका नाश किया, भक्तोंको अभय करनेवाले उन भगवान्का मैं अपने पूर्वजन्मोंमें किये हुए सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेके लिये प्रातःकाल भजन करता हूँ।'

श्रीविष्णुभक्तकी अभिलाषा

यन्नामकीर्तनपरः श्वपचोऽपि नूनं
हित्वाखिलं कलिमलं भुवनं पुनाति ।
दग्ध्वा ममाघमखिलं करुणेक्षणेन
दृग्गोचरो भवतु मेऽद्य स दीनबन्धुः ॥
(स्वामिब्रह्मानन्दकृत दीनबन्ध्वष्टकस्तोत्र ८)

'जिनके नाम-कीर्तनमें तत्पर चण्डाल भी अपने समस्त कलि-मलका नाश करके सारे संसारको निश्चय ही पवित्र कर देता है, वे दीनबन्धु हमारे सभी पापोंको अपनी दया-दृष्टिसे भस्म करके हमारी आँखोंके सामने आज ही प्रकट हों।'

जपो जल्पः शिल्पं सकलमपि मुद्राविरचना
गतिः प्रादक्षिण्यक्रमणमशनाद्याहुतिविधिः ।
प्रणामः संवेशः सुखमखिलमात्मार्पणदृशा
सपर्यापर्यायस्तव भवतु यन्मे विलसितम् ॥
(श्रीशंकराचार्य)

'हे भगवन्! मेरा बोलना आपका जप हो, सब प्रकारकी शिल्प (हाथकी कारीगरी) मुद्रा-रचना हो, चलना-फिरना प्रदक्षिणा हो, भोजन करना हवनक्रिया हो और (विश्रामके लिये) लेटना प्रणाम हो; इस प्रकार आत्मार्पणबुद्धिसे किया गया मेरा सम्पूर्ण सुखभोग आपकी पूजारूप ही हो।'

कदा प्रेमोद्गारैः पुलकिततनुः साश्रुनयनः
स्मरन्नुच्चैः प्रीत्या शिथिलहृदयो गद्गदगिरा ।
अये श्रीमन् विष्णो रघुवर यदूत्तंस नृहरे
प्रसीदेत्याक्रोशन् निमिषमिव नेष्यामि दिवसान् ॥

''प्रेमोद्गारोंसे पुलकितशरीर, सजलनयन और प्रेमसे शिथिलहृदय होकर गद्गद वाणीसे 'हे श्रीमन् विष्णो! हे रघुवर! हे यदुवंशभूषण! हे नृसिंह! प्रसन्न होइये'—यों उच्चस्वरसे कहता हुआ मैं अपने दिनोंको क्षणके समान कब बिताऊँगा?''

श्रीवल्लभेति वरदेति दयापरेति
भक्तप्रियेति भवलुण्ठनकोविदेति ।
नाथेति नागशयनेति जगन्निवासे-
त्यालापिनं प्रतिदिनं कुरु मां मुकुन्द ॥
(श्रीमुकुन्दमाला २)

''हे मुकुन्द! मुझे ऐसा बनाइये कि मैं 'हे रमानाथ! वरदाता! दयापरायण! भक्तप्रेमी! आवागमनको छुड़ानेमें चतुर! नाथ! शेषशायी! जगदाधार!'—इस प्रकार निरन्तर बोलता रहूँ।''

मज्जन्मनः फलमिदं मधुकैटभारे
मत्प्रार्थनीयमदनुग्रह एष एव ।
त्वद्भृत्यभृत्यपरिचारकभृत्यभृत्य-
भृत्यस्य भृत्य इति मां स्मर लोकनाथ ॥
(श्रीपाण्डवगीता २४)

'हे मधु-कैटभका उद्धार करनेवाले लोकनाथ! मेरे जन्मका यही फल है तथा मेरी प्रार्थनासे मुझपर होनेवाली दया भी यही है कि आप मुझे अपने भृत्यके भृत्यके सेवकके सेवकके दासके दासानुदासरूपसे याद रखें।'

दिवि वा भुवि वा ममास्तु वासो नरके वा नरकान्तक प्रकामम् ।
अवधीरितशारदारविन्दौ चरणौ ते मरणेऽपि चिन्तयामि ॥
(श्रीमुकुन्दमाला ८)

'हे नरकनाशक! मैं चाहे स्वर्गमें, पृथ्वीपर या नरकमें रहूँ, किंतु शरत्कालीन कमलको तिरस्कृत करनेवाले आपके चरण-युगलको मरते समय भी याद करता रहूँ।'

स्वकर्मफलनिर्दिष्टां यां यां योनिं व्रजाम्यहम् ।
तस्यां तस्यां हृषीकेश त्वयि भक्तिर्दृढास्तु मे ॥
(श्रीपाण्डवगीता १०)

'हे इन्द्रियोंके सूत्रधार ! मैं अपने कर्मोंके अनुसार जिस-किसी भी योनिमें जाऊँ, वहाँ तुमसे मेरा अटूट प्रेम बना रहे ।'

न कामये नाथ तदप्यहं क्वचिन्-
न यत्र युष्मच्चरणाम्बुजासवः ।
महत्तमान्तर्हृदयान्मुखच्युतो
विधत्स्व कर्णायुतमेष मे वरः ॥
(श्रीमद्भागवत ४ । २० । २४)

'मुझे उस मोक्षपदकी भी इच्छा नहीं है, जिसमें महापुरुषोंके हृदयसे उनके मुखद्वारा निकला हुआ आपके चरण-कमलोंका मकरन्द नहीं है—जहाँ आपकी कीर्तिकथा सुननेका सुख नहीं मिलता । इसलिये मेरी तो यही प्रार्थना है कि आप मुझे दस हजार कान दे दीजिये, जिनसे मैं आपके लीलागुणोंको सुनता ही रहूँ ।'

नाथ योनिसहस्रेषु येषु येषु व्रजाम्यहम् ।
तेषु तेष्वच्युताभक्तिरच्युतास्तु सदा त्वयि ॥
या प्रीतिरविवेकानां विषयेष्वनपायिनी ।
त्वामनुस्मरतः सा मे हृदयान्मापसर्पतु ॥
(श्रीविष्णुपुराण १ । २० । १८-१९)

'नाथ ! चाहे मुझे सहस्रों योनियोंमेंसे गुजरना पड़े, मैं जिन-जिन योनियोंमें जाऊँ, उन-उनमें, हे अच्युत ! मेरी आपमें भक्ति सर्वदा अक्षुण्ण रहे । अविवेकी पुरुषोंकी विषयोंमें जैसी अविचल प्रीति होती है, वैसी ही आपका स्मरण करते हुए मेरे हृदयसे कभी दूर न हो ।'

अहं हरे तव पादैकमूलदासानुदासो भवितास्मि भूयः ।
मनः स्मरेतासुपतेर्गुणांस्ते गृणीत वाक्कर्म करोतु कायः ॥
न नाकपृष्ठं न च पारमेष्ठ्यं न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम् ।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा समञ्जस त्वा विरहय्य काङ्क्षे ॥
अजातपक्षा इव मातरं खगाः स्तन्यं यथा वत्सतराः क्षुधार्ताः ।
प्रियं प्रियेव व्युषितं विषण्णा मनोऽरविन्दाक्ष दिदृक्षते त्वाम् ॥
ममोत्तमश्लोकजनेषु सख्यं संसारचक्रे भ्रमतः स्वकर्मभिः ।
त्वन्माययाऽऽत्मात्मजदारगेहेष्वासक्तचित्तस्य न नाथ भूयात् ॥
(श्रीमद्भागवत ६ । ११ । २४–२७)

'प्रभो ! आप मुझपर ऐसी कृपा कीजिये कि अनन्य-भावसे आपके चरण-कमलोंके आश्रित सेवकोंकी सेवा करनेका अवसर मुझे अगले जन्ममें भी प्राप्त हो । प्राणवल्लभ ! मेरा मन आपके मङ्गलमय गुणोंका स्मरण करता रहे, मेरी वाणी उन्हींका गान करे और शरीर आपकी सेवामें ही संलग्न रहे । सर्वसौभाग्यनिधे ! मैं आपको छोड़कर स्वर्ग, ब्रह्मलोक, अखण्ड भूमण्डलका साम्राज्य, रसातलका एकच्छत्र राज्य, योगकी सिद्धियाँ—यहाँतक कि मोक्ष भी नहीं चाहता । जैसे पक्षियोंके पंखहीन बच्चे अपनी माँकी बाट जोहते रहते हैं, जैसे भूखे बछड़े अपनी माका दूध पीनेके लिये छटपटाते रहते हैं और जैसे वियोगिनी पत्नी अपने प्रवासी प्रियतमसे मिलनेके लिये उत्कण्ठित रहती है, वैसे ही हे कमलनयन ! मेरा मन आपके दर्शनके लिये अधीर हो रहा है । प्रभो ! अपने कर्मोंके फलस्वरूप मुझे बार-बार जन्म-मृत्युके चक्करमें भटकना पड़े, इसकी मुझे परवा नहीं, परंतु मैं जहाँ-जहाँ जाऊँ, जिस-जिस योनिमें जन्म लूँ, वहाँ-वहाँ भगवान्के प्यारे भक्तजनोंसे मेरी प्रेम-मैत्री बनी रहे । स्वामिन् ! मैं केवल यही चाहता हूँ कि जो लोग आपकी मायासे देह-गेह और स्त्री-पुत्र आदिमें आसक्त हो रहे हैं, उनके साथ मेरा कभी किसी प्रकारका भी सम्बन्ध न हो ।'

विलासविक्रान्तपरावरालयं नमस्यदार्तिक्षपणे कृतक्षणम् ।
धनं मदीयं तव पादपङ्कजं कदा नु साक्षात्करवाणि चक्षुषा ॥
कदा पुनः शङ्खरथाङ्गकल्पकध्वजारविन्दाङ्कुशवज्रलाञ्छनम् ।
त्रिविक्रम त्वच्चरणाम्बुजद्वयं मदीयमूर्द्धानमलंकरिष्यति ॥
(श्रीआलवन्दारस्तोत्र ३३-३४)

'लीलामात्रसे ही नीचे-ऊपरके सम्पूर्ण लोकोंको (त्रिविक्रम रूपमें) नापनेवाले और प्रणतजनोंकी पीड़ाको हरनेके लिये कटिबद्ध मेरे परमधन आपके पाद-पङ्कजको नेत्रोंसे मैं कब प्रत्यक्ष देखूँगा ? हे त्रिविक्रम ! शङ्ख, चक्र, कल्पवृक्ष, ध्वजा, कमल, अङ्कुश, वज्र आदि शुभ चिह्नोंवाले आपके चरण-युगल मेरे मस्तकको कब अलंकृत करेंगे ?'

कदा शृङ्गैः स्फीते मुनिगणपरीते हिमनगे
द्रुमावीते शीते सुरमधुरगीते प्रतिवसन् ।
क्वचिद्ध्यानासक्तो विषयसुविविक्तो भवहर
स्मरंस्ते पादाब्जं जनिहर समेष्यामि विलयम् ॥
(स्वामिब्रह्मानन्दकृत विष्णुमहिम्नस्तोत्र २८)

'हे संसारतापहारिन् ! हे पुनर्जन्मसे छुड़ानेवाले ! (ऊँची-ऊँची) चोटियोंसे बड़े प्रतीत होनेवाले, वृक्षोंसे घिरे हुए, देवोंके मधुर संगीतसे सुशोभित और मुनिगणोंसे सेवित ठंडे हिमालयमें निवास करता हुआ कहीं विषयोंसे विरक्त और ध्यानमें मग्न होकर, आपके चरणारविन्दोंका स्मरण करता हुआ मैं कब तन्मय हो जाऊँगा ?'

श्रीविष्णुभक्तकी प्रार्थना

अमर्यादः क्षुद्रश्चलमतिरसूयाप्रभवभूः
कृतघ्नो दुर्मानी स्मरपरवशो वञ्चनपरः ।
नृशंसः पापिष्ठः कथमहमितो दुःखजलधे-
रपारादुत्तीर्णस्तव परिचरेयं चरणयोः ॥

(श्रीआलवन्दारस्तोत्र ६५)

'भगवन् ! मैं तो मर्यादाहीन, नीच, चञ्चलमति और (गुणोंमें भी दोषदर्शनरूप) असूयाकी जन्मभूमि हूँ; साथ ही कृतघ्न, दुरभिमानी, कामी, ठग, क्रूर और महापापी हूँ; भला, मैं किस प्रकार इस अपार दुःख-सागरसे पार होकर आपके चरणोंकी परिचर्या करूँ ।'

अपराधसहस्रभाजनं पतितं भीमभवार्णवोदरे ।
अगतिं शरणागतं हरे कृपया केवलमात्मसात्कुरु ॥
अविवेकघनान्धदिङ्मुखे बहुधा संततदुःखवर्षिणि ।
भगवन् भवदुर्दिने पथःस्खलितं मामवलोकयाच्युत ॥

(श्रीआलवन्दारस्तोत्र ५१-५२)

'हे हरे ! हजारों अपराध करनेवाले, भयंकर संसार-समुद्र-तलमें पड़े हुए और निराश्रय मुझ शरणागतको आप केवल अपनी कृपासे ही अपना लीजिये । हे भगवन् ! हे अच्युत ! जिसने अविवेकरूपी बादलोंद्वारा दिशाओंको अन्धकाराच्छन्न कर दिया है और जिसके कारण निरन्तर दुःखरूपी वृष्टि हो रही है, उस जन्म-मृत्युरूपी दुर्दिनमें पथभ्रष्ट हुए मेरी ओर आप निहार लीजिये ।'

अवबोधितवानिमां यथा मयि नित्यां भवदीयतां स्वयम् ।
कृपयैवमनन्यभोग्यतां भगवन् भक्तिमपि प्रयच्छ मे ॥

(श्रीआलवन्दारस्तोत्र ५७)

'हे भगवन् ! जिस प्रकार आपने मुझे अपनी नित्यस्थित भवदीयता ('मैं आपका हूँ'—इस भाव) को स्वयं जनाया, इसी तरह कृपा करके मुझे अपनी अनन्यभोग्यतारूपा भक्ति भी दीजिये ।'

तृष्णातोये मदनपवनोद्धूतमोहोर्मिमाले
दारावर्ते तनयसहजग्राहसंबाकुले च ।
संसाराख्ये महति जलधौ मज्जतां नस्त्रिधामन्
पादाम्भोजे वरद भवतो भक्तिभावं प्रदेहि ॥

(श्रीमुकुन्दमाला १८)

'हे सर्वव्यापी ! हे वरदाता ! तृष्णारूपी जल, कामरूपी आँधीसे उठी हुई मोहमयी तरंगमाला, पत्नीरूप भँवर और भाई-पुत्ररूपी ग्राहोंसे भरे हुए इस संसाररूपी महान् समुद्रमें डूबते हुए हमलोगोंको अपने चरणारविन्दकी भक्ति दीजिये ।'

ग्राहग्रस्ते गजेन्द्रे रुदति सरभसं तार्क्ष्यमारुह्य धावन्
व्याघूर्णन्माल्यभूषावसनपरिकरो मेघगम्भीरघोषः ।
आबिभ्राणो रथाङ्गं शरमसिमभयं शङ्खचापौ सखेटौ
हस्तैः कौमोदकीमप्यवतु हरिरसावंहसां संहतेर्नः ॥

'ग्राहसे ग्रस्त होकर गजेन्द्रके चिग्घाड़नेपर अपने (आठ) हाथोंमें चक्र, बाण, तलवार, अभयमुद्रा (भयभीत न होनेका आश्वासन), शङ्ख, धनुष, ढाल और कौमोदकी गदा धारण करके मेघकी-सी गम्भीर गर्जना करते हुए जो गरुड़पर चढ़कर शीघ्रतासे दौड़ पड़े और उस समय उतावलीके कारण जिनकी वनमाला, भूषण, पीताम्बर एवं कमरबंद आदि फहराने लगे थे, वे भगवान् विष्णु हमारी पाप-समूहसे रक्षा करें ।'

नक्राक्रान्ते करीन्द्रे मुकुलितनयने मूल मूलेति खिन्ने
नाहं नाहं न चाहं न भवति पुनर्मादृशस्त्वादृशेषु ।
इत्येवं त्यक्तहस्ते सपदि सुरगणे भावशून्ये समस्ते
मूलं यत्प्रादुरासीत्स दिशतु भगवान् मङ्गलं संततं नः ॥

''जब गजेन्द्र ग्राहके द्वारा आक्रान्त हो आँखें मीचकर दुःखी हो, 'हे विश्वके मूलाधार ! (मेरी रक्षा करो)'—इस प्रकार पुकारने लगा, उस समय 'तुम्हारे-जैसे महाविपन्नोंकी रक्षा करनेको मैं नहीं ! मैं भी नहीं !! और मैं भी नहीं समर्थ हूँ'—यों कहकर सहसा सब देवता हाथ छुड़ाकर भावशून्य हो गये, तब जो सर्वमूलाधार प्रकट हुए, वे श्रीहरि हमारा निरन्तर मङ्गल करें ।''

श्रीविष्णुभक्तकी अनन्यता

त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥
(पाण्डवगीता २८)

'हे देवाराध्य! तुम ही मेरी माता हो, तुम ही पिता हो; तुम ही बन्धु हो, तुम ही सखा हो; तुम ही विद्या हो, तुम ही धन हो और तुम ही मेरे सर्वस्व हो।'

सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं सत्यस्य योनिं निहितं च सत्ये।
सत्यस्य सत्यमृतसत्यनेत्रं सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्नाः॥
(श्रीमद्भागवत १०। २। २६)

'सत्य जिनका व्रत है, जो सत्यपरायण, तीनों कालमें सत्य, सत्य (भाव)-स्वरूप, संसारके उद्भवस्थान और अन्तर्यामीरूपसे सत्य (संसार) में निहित हैं तथा सत्य और ऋत जिनके नेत्र हैं, उन सत्यके सत्य आप सत्यस्वरूपकी हम शरण हैं।'

न धर्मनिष्ठोऽस्मि न चात्मवेदी न भक्तिमांस्त्वच्चरणारविन्दे।
अकिंचनोऽनन्यगतिः शरण्यं त्वत्पादमूलं शरणं प्रपद्ये॥
(श्रीआळवन्दारस्तोत्र २५)

'मैं न धर्मनिष्ठ हूँ, न आत्मज्ञानी हूँ और न आपके चरणोंमें भक्तिमान् ही हूँ; मैं तो अकिंचन हूँ, अनन्यगति हूँ और आपके शरणागत-रक्षक चरण-कमलोंकी शरणमें आया हूँ।'

मधुमर्दि महन्मञ्जु वन्द्यं मतिमतामहम्।
मन्येऽमलमदोऽमन्दमहिम श्यामलं महः॥

'मतिमान् महात्माओंके वन्दनीय, मधु दैत्यका मर्दन करनेवाले, महनीय, मनोहर और उत्कृष्ट महिमाशाली इस निर्मल श्यामल तेजको ही मैं अपना आराध्यदेव मानता हूँ।'

वपुरादिषु योऽपि कोऽपि वा गुणतोऽसानि यथातथाविधः।
तदयं तव पादपद्मयोरहमद्यैव मया समर्पितः॥
(श्रीआळवन्दारस्तोत्र ५५)

'हे नाथ! शरीर, इन्द्रिय, मन, प्राण और बुद्धि आदिमें मैं जो कोई भी होऊँ, गुणके अनुसार (भला-बुरा) जैसा भी होऊँ, मैं तो आज ही अपनेको आपके चरण-कमलोंमें समर्पण कर चुका।'

पिता त्वं माता त्वं दयिततनयस्त्वं प्रियसुहृ-
त्त्वमेव त्वं मित्रं गुरुरपि गतिश्चासि जगताम्।
त्वदीयस्त्वद्भृत्यस्तव परिजनस्त्वद्गतिरहं
प्रपन्नश्चैवं सत्यहमपि तवैवास्मि हि भरः॥
(श्रीआळवन्दारस्तोत्र ६३)

'हे हरे! आप ही विश्वके पिता-माता, प्रिय पुत्र, प्यारे सुहृद्, मित्र, गुरु और गति हैं; मैं आपका ही सम्बन्धी, आपका ही दास, आपका ही परिचारक, आपको ही (एकमात्र) गति माननेवाला और आपके ही शरण हूँ। इस प्रकार अब आपपर ही मेरा सारा भार है।'

भक्तका प्रभुको उपालम्भ

काहे तें हरि मोहि बिसारो।
जानत निज महिमा मेरे अघ, तदपि न नाथ सँभारो॥
पतित-पुनीत, दीन-हित, असरन-सरन कहत श्रुति चारो।
हौं नहिं अधम, सभीत, दीन, किधौं बेदन मृषा पुकारो?॥
खग-गनिका-गज-ब्याध-पाँति जहँ, तहँ हौंहूँ बैठारो।
अब केहि लाज कृपानिधान! परसत पनवारो फारो॥
जो कलिकाल प्रबल अति होतो, तुव निदेस तें न्यारो।
तौ हरि! रोष-भरोस, दोष-गुन, तेहि भजते तजि गारो॥
मसक बिरंचि, बिरंचि मसक-सम करहु प्रभाउ तुम्हारो।
यह सामरथ अछत मोहि त्यागहु, नाथ तहाँ कछु चारो॥
नाहिन नरक परत मो कहँ डर, जद्यपि हौं अति हारो।
यह बड़ि त्रास दास तुलसी प्रभु! नामहु पाप न जारो॥

भगवान् श्रीविष्णुकी रूप-माधुरीका चिन्तन

(नित्यलीलालीन परमश्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

वज्र, ध्वजा, अङ्कुश, सरसिजके मङ्गलमय चिह्नोंसे युक्त।
उभरे हुए अरुण शोभामय नख-शशि-किरणोंसे संयुक्त॥
चिन्तन-कर्त्ताओंके हृदयोंका जो हरते तम-अज्ञान।
श्रीहरिके उन चरण-सरोजोंका मनसे नित करिये ध्यान॥

जिनकी धोवनसे निकली अति पावन भागीरथी उदार।
शिव हो गये परम शिव जिसके शुचि जलको निज मस्तक धार॥
ध्याताओंके पाप-पर्वतोंपर निपतित जो वज्र-समान।
श्रीहरिके उन चरण-सरोजोंका मनसे करिये चिर-ध्यान॥

विधि-जननी श्रीलक्ष्मीजी जिनको अपनी गोदीपर धार।
जलज-लोचना देव-वन्दिता करतीं जिन्हें हृदयसे प्यार॥
कान्तिमान निज कर-कमलोंसे लालित करतीं अति सुख मान।
अज-भव-भय-हर हरिके दोनों घुटने, पिंडली शोभा-खान॥

जङ्घा बलनिधि, नीलवर्ण अलसीके कुसुम-सदृश सुन्दर।
परम सुशोभित होती हैं जो ज्ञान-धाम खगपति ऊपर॥
रुचिर नितम्ब-बिम्ब युग पावन पीताम्बरसे परिवेष्टित।
स्वर्णमयी काञ्चीकी लड़ियोंसे जो रहते आलिङ्गित॥

भुवन-कोश-गृह उदर-देशमें नाभि-कूप सौन्दर्य-निधान।
ब्रह्माके आधार विश्वमय वारिजका उत्पत्तिस्थान॥
मरकत-मणि-समान दोनों स्तन वक्षःस्थलपर चमक रहे।
शुभ्र हारकी किरणावलिसे गौरवर्ण हो दमक रहे॥

पुरुषोत्तम हरिका मुनि-जन-मोहन विशाल अति उर उन्नत।
नयन-हृदयको सुखदायक लक्ष्मीका जहाँ निवास सतत॥
अखिल लोक वन्दित श्रीहरिका कम्बुकण्ठ शोभा-आगार।
परम सुशोभित करता कौस्तुभ-मणिको भी अपनेमें धार॥

राजहंस-सम शङ्ख सुशोभित कर-पङ्कजमें दिव्य ललाम।
शत्रुवीर-रुधिराक्त गदा हरिकी प्रिय कौमोदकी सुनाम॥
वनमाला शोभित सुकण्ठमें, मधुप कर रहे मधु गुंजार।
जीवोंके मलरहित तत्त्वसम कौस्तुभमणि अति शोभा-सार॥

भक्तानुग्रहरूपी श्रीविग्रहका मुख-सरोज मनहर।
सुघड़ नासिका, कानोंमें मकराकृति कुण्डल अति सुन्दर॥

स्वच्छ कपोलोंपर कुण्डल-किरणोंका पड़ता शुभ्र प्रकाश।
इससे मुख-सरोजकी सुन्दरताका होता और विकास॥

कुञ्चित केश-राशिसे मण्डित मुख सब दिक् मधुमय करता।
निज छविद्वारा मधुकर-सेवित कमल-कोशकी छवि हरता॥
नयन-कमल चञ्चल विशाल हरते उन मीनद्वयका मान।
कमल-कोशपर सदा उछलते बनते जो शोभाकी खान॥

उन्नत भृकुटि सुशोभित हरिके मुख-सरोजपर मन-हरणी।
नेत्रोंकी चितवन अति मोहिनि सर्व सुखोंकी निर्झरणी॥
बढ़ती रहती सदा प्राप्तकर प्रेम प्रसाद-भरी मुसकान।
विपुल कृपाकी वर्षा करती हरती त्रय तापोंके प्रान॥

श्रीहरिका मृदु हास मनोहर अति उदार शरणागत-पाल।
तीव्र शोकके अश्रु-उदधिको पूर्ण सुखा देता तत्काल॥
भूमण्डलकी रचना की मायासे प्रभुने मुनि-हितहेतु।
कामदेवको मोहित करने, जो तोड़ा करते श्रुति-सेतु॥

तदनन्तर हरिके मन-मोहक हँसनेका करिये शुभ ध्यान।
जिससे अधर ओष्ठकी विकसित होती अरुण छटा सुख-खान॥
कुन्द-कली-से शुभ्र दाँत उससे कुछ अरुणिम हो जाते।
हरिकी इस शोभासे जगके संस्कार सब खो जाते॥

भगवान् श्रीविष्णुसे विनय

(१)

चरन-कमल बंदौं हरिराई।
जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै, अँधरे कौं सब कछु दरसाई॥
बहिरौ सुनै, गूँग पुनि बोलै, रंक चलै सिर छत्र धराई।
'सूरदास' स्वामी करुनामय, बारंबार नमो तिहि पाई॥

(२)

हरि ! हम कौन भरोसे जीयैं।
तुमरे रुख फेरें, करुनानिधि ! काल-गुदरिया सीयैं॥
यौं तो सब ही खात उदर भरि, अरु सब ही जल पीयैं।
पै धिक-धिक तुम बिन सब माधौ, बादिहिं सासा लीयैं॥
नाथ बिना सब व्यर्थ धरम अरु अधरम दोऊ कीयैं।
हरीचंद अब तो हरि ! बनिहै कर-अवलम्बन दीयैं॥

विष्णुभगवान्‌का स्वरूप

(अनन्तश्रीविभूषित शृङ्गेरीक्षेत्रस्थ शारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी अभिनवविद्यातीर्थ महाराज)

आदि शंकराचार्यभगवत्पाद 'हरिस्तुति' (१) में निम्नलिखित श्लोकसे भगवान् विष्णुका स्तवन आरम्भ करते हैं—

स्तोष्ये भक्त्या विष्णुमनादिं जगदादिं
यस्मिन्नेतत् संसृतिचक्रं भ्रमतीत्थम्।
यस्मिन् दृष्टे नश्यति तत्संसृतिचक्रं
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥

'मैं भक्तिपूर्वक उन विष्णुकी स्तुति करूँगा, जो जगत्‌के आदि कारण हैं, किंतु जिनका अपना कोई आदि नहीं है, जिनमें यह संसाररूपी चक्र इस प्रकार घूम रहा है तथा जिनके दृष्टिपथमें आनेपर वह संसार-चक्र समाप्त हो जाता है; संसृतिरूप अन्धकारको नष्ट करनेवाले उन श्रीहरिकी मैं स्तुति करता हूँ।'

श्रीशंकराचार्य निर्गुण अद्वय परब्रह्मके अतिरिक्त दूसरी वस्तुका अस्तित्व स्वीकार नहीं करते थे, ऐसी मान्यता होते हुए भी उन्होंने भगवान् विष्णुका स्तवन किया। ऐसे महिमामय भगवान् विष्णुकी उपलब्धि जबतक नहीं होती, तबतक संसारके लोग कैसे भव-सागर पार कर सकेंगे ? सभी लोगोंको भगवान् विष्णुका स्वरूप जानना चाहिये। ऊपरकी स्तुतिमें भगवान्‌का लक्षण बताया गया है। भगवान् विष्णु अनादि हैं, अर्थात् उनका जन्म नहीं है। वे जगत्‌के आदि कारण हैं और जगत्‌के अधिष्ठान भी। उनके स्वरूपका अपरोक्षानुभव होनेके बाद संसार न दीखता है और न रहता ही है।

इन वचनोंका तात्पर्य यही है कि स्वयं अनादि होकर जो संसारकी सृष्टि करते हैं, अपनेमें रखकर उसका पालन करते हैं और फिर उसका विलय भी करते हैं, वे ही भगवान् 'विष्णु' हैं। इसी तत्त्वको वेदोंने 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' कहकर समझाया है। 'बृहत्त्वाद् ब्रह्म'—सबसे बड़ा होनेके कारण ही वह ब्रह्म है; "व्यापकत्वाद् विष्णुः—व्यापक होनेके कारण वे 'विष्णु' हैं।" इस प्रकार एक ही तत्त्व नाना शब्दोंसे प्रतिपादित किया गया है। वे ही विष्णु तत्तत्कार्यके अनुरूप सत्त्वरजस्तमोरूप गुणोंको अधीन करके शरीर ग्रहण करते हैं—'अजायमानो बहुधा विजायते।' गीता (४।६) में भी इसका उद्घोष है—

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया॥

'मैं अजन्मा और अविनाशी होते हुए भी तथा समस्त भूत-प्राणियोंका ईश्वर होते हुए भी अपनी प्रकृतिको अधीन करके अपनी योगमायासे प्रकट होता हूँ।'

पुराणोंमें भी स्पष्ट प्रतिपादित किया गया है कि—

सृष्टिस्थित्यन्तकरणीं ब्रह्मविष्णुशिवात्मिकाम्।
स संज्ञां याति भगवानेक एव जनार्दनः॥
(विष्णुपुराण १ । २ । ६६)

'वे एक ही भगवान् जनार्दन जगत्‌की सृष्टि, स्थिति और संहारके लिये ब्रह्मा, विष्णु और शिव—इन तीन संज्ञाओंको धारण करते हैं।'

भगवान् अजन्मा हैं, तो भी 'परित्राणाय भूतानाम्' वे जन्म ले सकते हैं और लेते हैं।

रूपभेदसे वे ही ब्रह्मा-विष्णु-महेश हैं। तत्त्वतः भेद न होते हुए भी तत्तत्कर्मके अनुरूप आकार-भेद होनेमें कोई बाधा नहीं है। जब हम अपने कल्याणके लिये उपासना करते हैं, तब प्रश्न उठता है कि हम किस रूपका अवलम्बन करें। शास्त्रोंने कहा है—

मुक्तिं जनार्दनादिच्छेज्ज्ञानमिच्छेन्महेश्वरात्।
आरोग्यं भास्करादिच्छेद् धनमिच्छेद्धुताशनात्॥

'जो भवबन्धनसे मुक्ति चाहते हैं, उनको विष्णुका; ज्ञान चाहते हैं, उनको महेश्वर शिवजीका; आरोग्य चाहते हैं, उनको भास्कर (सूर्य) का तथा धन चाहते हैं, उनको अग्निका भजन-ध्यान करना चाहिये।'

तत्तद्देवतामें भक्ति भी जन्मजन्मान्तरकृत उपासनाके अनुसार इस जन्ममें पनपती है। जो मनुष्य मुक्तिकामनासे अनादि, अनन्त, अज, अक्षर एवं अव्यय जनार्दनको नमस्कार करता है, वह सभी लोगोंका नमस्कारपात्र बन जाता है—

मुक्तिहेतुमनाद्यन्तमजमक्षरमव्ययम् ।
यो नमेत्सर्वलोकस्य नमस्यो जायते नरः॥

प्रश्न होता है कि भगवान्‌का चिन्तन हम कैसे करें। इसके उत्तरमें शास्त्र कहता है—

ध्येयः सदा सवितृमण्डलमध्यवर्ती
नारायणः सरसिजासनसंनिविष्टः।
केयूरवान् मकरकुण्डलवान् किरीटी
हारी हिरण्मयवपुर्धृतशङ्खचक्रः॥

'सूर्यमण्डलके बीचमें कमलासनपर सुखपूर्वक बैठे हुए भगवान् नारायणका, जो केयूर, मकराकृति-कुण्डल, मुकुट एवं हार धारण किये रहते हैं तथा जिनका स्वर्णके समान देदीप्यमान शरीर है एवं जो शङ्ख-चक्र धारण किये हुए हैं, सदा ध्यान करना चाहिये।'

भगवान्‌का भजन भव-बन्धन-मुक्तिके लिये नहीं, हर एक आपदासे मुक्तिके लिये भी हम कर सकते हैं।

वात्सल्यादभयप्रदानसमयादार्तार्तिनिर्वापणा-
दौदार्यादघशोषणादगणितश्रेयःपदप्रापणात् ।
सेव्यः श्रीपतिरेव सर्वजगतामेकान्ततः साक्षिणः
प्रह्लादश्च विभीषणश्च करिराट् पाञ्चाल्यहल्या ध्रुवः ॥
(मुकुन्दमाला, २९)

भागवतादि पुराणोंसे भगवान्‌की अपार महिमाका यत्किंचित् परिचय मिल सकता है। प्रह्लाद नन्हा-सा बच्चा था, उसपर भगवान्‌का अपार वात्सल्य था। विभीषण शत्रुका भाई था, पर था शरणागत; अतः उसको भी अभयदान मिला। हाथी जातिसे पशु था, तो भी उसने भगवान्‌का स्मरण किया और स्मरण करते ही उस आर्तकी आर्ति दूर हो गयी। पाञ्चाली स्त्री थी, लेकिन थी परम भक्ता। उसके प्रति भगवान्‌की महान् उदारता थी। अहल्यासे अनजानमें बड़ा पाप हो गया था, पर उसका परिमार्जन भगवान्‌ने किया। ध्रुव पितासे तिरस्कृत—उपेक्षित था। उसपर भी भगवान्‌ने दया की और उसको अपरिमित श्रेय दिया। भगवान् कितनी रीतियोंसे अपने भक्तोंका उद्धार करते हैं, यह तो वे ही जानें। मानव-जन्म मिलनेपर भी ऐसे दयालु भगवान्‌का भजन करके यदि हम नहीं तर सकते तो 'मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम् ॥'—यह गीतावाक्य ही जीवनमें चरितार्थ होगा और जीव भगवान्‌को उपलब्ध न करके निकृष्ट परिणामोंको भोगेगा। अतः भगवान् विष्णुका भजन कर जन्म सफल बनाना हमारा कर्तव्य है—

हृदि रूपं मुखे नाम नैवेद्यमुदरे हरेः ।
पादोदकं च निर्माल्यं मस्तके यस्य सोऽच्युतः ॥

'जो हृदयमें भगवान्‌का रूप, मुखमें भगवान्‌का नाम, उदरमें भगवान्‌का नैवेद्य तथा मस्तकपर भगवान्‌का पादोदक और निर्माल्य धारण करते हैं, वे स्वयं अच्युतरूप हैं।'

'सर्वं विष्णुमयं जगत्'

(अनन्तश्रीविभूषित श्रीद्वारकाक्षेत्रस्थ शारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी अभिनवसच्चिदानन्दतीर्थ महाराज)

सर्वव्यापक परमात्मा ही भगवान् विष्णु हैं। 'वेवेष्टि—व्याप्नोतीति विष्णुः।' नुक्-प्रत्ययान्त—व्याप्त्यर्थक 'विष्लृ व्याप्तौ' धातुसे यह 'विष्णु'-पद व्युत्पन्न है। महाभारतमें इसका निर्वचन इस प्रकार मिलता है—

व्याप्ता मे रोदसी पार्थ कान्तिश्चाभ्यधिका मम ॥
× × ×
क्रमणाच्चाप्यहं पार्थ विष्णुरित्यभिसंज्ञितः ॥
(महाभारत, शान्तिपर्व ३४१ । ४२-४३)

भगवान् कहते हैं कि "पृथ्वी और आकाश मुझसे व्याप्त हैं, मेरा विस्तार भी बहुत है और इसी विस्तारके कारण ही मैं 'विष्णु' कहलाता हूँ।" तात्पर्य यह है कि देश-काल-वस्तुरूप त्रिविध परिच्छेद-शून्य जो है, वही 'विष्णु' है। अथर्वणशाखाके 'त्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषद्के प्रथम अध्यायके अन्तमें यह वचन मिलता है—'स एव तुरीयं ब्रह्म स एव विष्णुः। स एव समस्तब्रह्म-वाचकवाच्यः······परं ज्योतिः।' अर्थात् उपनिषद्‌ने जिन्हें जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्ति तीनों अवस्थाओंसे अतीत तुरीय ब्रह्म बतलाया है, वे ही भगवान् विष्णु हैं। वे ही परम ज्योतिःस्वरूप सच्चिदानन्दघन परमात्मा विष्णु ब्रह्मवाचक सम्पूर्ण नामोंके वाच्य हैं। भगवान् विष्णुकी दिव्य व्यापकता जिस प्रकार निर्गुण-निराकार स्वरूपमें है, उसी तरह सगुण-साकार स्वरूपमें भी है।

विष्णुपुराणमें 'विष्णु' शब्दकी व्युत्पत्ति इस रूपमें मिलती है—'विशतीति विष्णुः'।

यस्माद्विष्टमिदं विश्वं तस्य शक्त्या महात्मनः ।
तस्मात् स प्रोच्यते विष्णुर्विशेर्धातोः प्रवेशनात् ॥
(३ । १ । ४५)

"यह सम्पूर्ण विश्व उन परमात्माकी ही शक्तिसे व्याप्त है, अतः वे 'विष्णु' कहलाते हैं; क्योंकि 'विश्' धातुका अर्थ प्रवेश करना है।" जिन कारण-ब्रह्म परमात्माकी माया-शक्तिसे जड-चेतनात्मक कार्य ब्रह्माण्ड उत्पन्न होता है और जो चराचर विश्वके अभ्यन्तरमें प्रविष्ट होकर उन्हें धारण करते हैं, वे ही सचराचर विश्वकी उत्पत्ति एवं

पालन करनेके कारण भगवान् 'विष्णु'के नामसे पुकारे जाते हैं। उन सर्वव्यापक सगुण विष्णुके उन्मेष और निमेषमात्रसे संसारकी उत्पत्ति एवं प्रलय होते हैं।

सगुण-साकार विष्णु ही एकसे अनेक होकर 'एकोऽहं बहु स्याम्' के स्वरूपमें व्यक्त होते हैं। अनन्त मुख-पाणि-पादादि अवयवोंवाले भगवान् विष्णुका विराट् कलेवर ही वह स्वरूप है। भगवान् विष्णुके एक ही विराट् स्वरूपमें ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र, वरुण, कुबेर, अग्नि, वायु, सूर्य, दिक्पाल आदि तैंतीस कोटि देवता उत्पन्न होते हैं। भगवान् विष्णुका सगुण-साकार सौम्य चतुर्भुज स्वरूप भक्तजनोंको प्रत्यक्ष होता है। धर्म-अर्थ-काम-मोक्षरूप चतुर्विध पुरुषार्थ प्रदान करनेके लिये भगवान् विष्णु अपने चारों हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा एवं पद्म धारण किये रहते हैं। जब कभी इस भूतलपर धर्मकी रक्षा और अधर्मका परिहार करनेकी आवश्यकता पड़ती है, तब भगवान् विष्णु ही मत्स्य आदि अनेक दिव्य अवतार धारणकर जन्म लेते हैं।

भगवान् विष्णुके प्रत्येक अवतार-चरितकी लोकोत्तर लीलाकथाएँ नित्य एवं व्यापक हैं, जिनके श्रवण-मनन-ध्यान करनेमात्रसे मनुष्य संसारके शोक-मोहसे मुक्त होकर पुण्यपरायण होने लगता है। भगवान् आदि शंकराचार्य विष्णुसहस्रनामभाष्यमें कहते हैं—'शोकमोहविनिर्मुक्तो विष्णुं ध्यायन् न सीदति।' अर्थात् भगवान् विष्णुके स्वरूपका ध्यान करनेवाला भक्त शोक-मोह आदि मायादोषसे विमुक्त होकर कभी भी दुःखी नहीं होता। वेदमें भी भगवान् विष्णुका नाम-संकीर्तन सम्यग्ज्ञानाप्तिके लिये विहित है—

तमु स्तोतारः पूर्व्यं यथा विद ऋतस्य गर्भं जनुषा पिपर्तन।
आस्य जानन्तो नाम चिद्विवक्तन महस्ते विष्णो सुमतिं भजामहे ॥
(ऋक्संहिता १। १५६। ३)

मनुष्यमात्रके लिये भगवान् विष्णुके अवतार-चरितका श्रवण-चिन्तन कल्याणप्रदायक है। श्रीमद्भागवतमें लिखा है—

'अवतारा ह्यसंख्येया हरेः सत्त्वनिधेर्द्विजाः।'
(१। ३। २६)

जिस तरह पुण्यसलिला गङ्गाकी निर्मल जलधारामेंसे अगणित स्रोत स्फुटित होते हैं, उसी तरह भगवान् विष्णुके दिव्य स्वरूपसे अगणित अवतार आविर्भूत होते हैं। उन सबका स्वरूप-चिन्तन एवं चरित-कथा-श्रवण करना प्राणिमात्रके लिये श्रेयोदायक है। अद्वैतसिद्धान्त-प्रतिष्ठापनाचार्य भगवान् आदि शंकराचार्यजी भगवान् विष्णुके परम उपासक थे। अतएव अपने स्तोत्र-ग्रन्थोंमें भक्तिरससे ओत-प्रोत होकर उन्होंने भगवान् विष्णुकी स्तुति की है। इतना ही नहीं, स्वसंस्थापित चार पीठोंके स्थानोंमेंसे पुण्यधाम बदरिकाश्रम, द्वारकापुरी तथा जगन्नाथपुरी—इन तीन धामोंमें भगवान् विष्णुकी ही प्रतिमा पुनः संस्थापित करके पञ्चायतन-पूजाकी प्रथाको प्रचलित कर दिया और ज्ञानाप्तिमें विष्णुभक्तिको उत्तम मार्ग बतलाया।

भगवान् नारायणके भक्तका कोई कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता

नारायणं परं देवं सच्चिदानन्दविग्रहम्। भज सर्वात्मना विप्र यदि मुक्तिमभीप्ससि ॥
रिपवस्तं न हिंसन्ति न बाधन्ते ग्रहाश्च तम्। राक्षसाश्च न चेक्षन्ते नरं विष्णुपरायणम् ॥
भक्तिर्दृढा भवेद्यस्य देवदेवे जनार्दने। श्रेयांसि तस्य सिध्यन्ति भक्तिमन्तोऽधिकास्ततः ॥
(नारदपुराण, पूर्वभाग ३४। ४-६)

'विप्र (नारदजी)! यदि मुक्ति चाहते हो तो सच्चिदानन्दस्वरूप परमदेव भगवान् नारायणका सम्पूर्ण चित्तसे भजन करो। भगवान् विष्णुकी शरण लेनेवाले मनुष्यको शत्रु मार नहीं सकते, ग्रह पीड़ा नहीं दे सकते तथा राक्षस उसकी ओर आँख उठाकर भी नहीं देख सकते। देवपूज्य भगवान् जनार्दनमें जिसकी दृढ़ भक्ति है, उसके सम्पूर्ण श्रेय सिद्ध हो जाते हैं। अतः भक्त पुरुष सबसे बढ़कर हैं।'

निर्गुण और सगुण-तत्त्वकी एकता और भेद

(लेखक—अनन्तश्रीविभूषित श्रीबदरीक्षेत्रस्थज्योतिष्पीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी शान्तानन्द सरस्वती महाराज)

सशङ्खचक्रं सकिरीटकुण्डलं सपीतवस्त्रं सरसीरुहेक्षणम् ।
सहारवक्षःस्थलकौस्तुभश्रियं नमामि विष्णुं शिरसा चतुर्भुजम् ॥

जले विष्णुः स्थले विष्णुर्विष्णुः पर्वतमस्तके ।
ज्वालामालाकुले विष्णुः सर्वं विष्णुमयं जगत् ॥

(विष्णुपञ्जरस्तोत्र २३)

'उन चतुर्भुज भगवान् श्रीविष्णुको मैं सिर झुकाकर प्रणाम करता हूँ, जो शङ्ख-चक्र धारण किये हैं, किरीट और कुण्डलोंसे विभूषित हैं, पीताम्बर पहने हैं, कमलके समान जिनके नेत्र हैं और जिनके वक्षःस्थलमें वनमालासहित कौस्तुभमणिकी अद्भुत शोभा हो रही है ।'

'वे भगवान् विष्णु जलमें, स्थलमें, पर्वतशिखरोंपर और ज्वालामालाओंमें—सर्वत्र विराजमान हैं । समस्त विश्व-ब्रह्माण्ड—चराचर जगत् विष्णुमय है ।'

वे निर्गुण भी हैं और सगुण भी, तथा निर्गुण-सगुण—दोनोंसे विलक्षण भी हैं । सम्पूर्ण विश्व-ब्रह्माण्ड जिनसे प्रकट होता है, जिनमें स्थित है तथा अन्तमें जिनमें विलीन हो जाता है, वे भगवान् चराचरके पालक, पोषक, संहारक, षडैश्वर्य-सम्पन्न, कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं समर्थ होते हुए भी भक्तोंके लिये अत्यन्त सुलभ हैं; निराकार-निर्विशेष होते हुए भी भक्तोंकी पुकार सुनते आये हैं, व्यापक होकर भी एकदेशमें अवतरित होते हैं । इस प्रकार विचारदृष्टिसे जो निर्गुण है, भावदृष्टिसे वही सगुण बन जाता है; जो अव्यक्त है, वही भक्तोंके लिये 'व्यक्त'की संज्ञा धारण कर लेता है । अव्यक्तके समस्त विशेषण मूर्त्तिमंत-से होकर उस व्यक्तित्ववान् परमात्मामें प्रत्यक्ष विराजने लगते हैं । जिस प्रकार अग्नि-तत्त्व अलक्षितरूपसे विश्व (लकड़ियों)में भी व्याप्त है और प्रज्वलित होकर लक्षितरूपसे एकदेशीय भी बन जाता है, ठीक वही बात निर्गुण और सगुण अथवा निराकार और साकारके सम्बन्धमें समझनी चाहिये ।

जिस समय गजेन्द्रने एक पुष्प सूँड़में लेकर आर्त्तभावसे प्रभुको पुकारा, उसी समय निर्गुण-निराकार परमात्माने भाववश सगुण-साकार-विग्रहमें अवतरित होकर उसका उद्धार किया ।

श्रीमद्भागवतमें यह प्रसङ्ग इस प्रकार है—

तं वीक्ष्य पीडितमजः सहसावतीर्य
सग्राहमाशु सरसः कृपयोज्जहार ।
ग्राहाद् विपाटितमुखादरिणा गजेन्द्रं
सम्पश्यतां हरिरमूमुचदुस्रियाणाम् ॥

(८ । ३ । ३३)

'जब भगवान्‌ने देखा कि गजेन्द्र अत्यन्त पीड़ित हो रहा है, तब वे एकबारगी गरुड़को छोड़कर कूद पड़े और कृपा करके गजेन्द्रके साथ ही ग्राहको भी बड़ी शीघ्रतासे सरोवरसे बाहर निकाल लाये । फिर सब देवताओंके देखते-देखते भगवान् श्रीहरिने चक्रसे ग्राहका मुँह फाड़ डाला और गजेन्द्रको छुड़ा लिया ।'

पुराणोंके अतिरिक्त वेदोंमें भी निर्गुण और निराकार ब्रह्मके सगुण-साकाररूपमें अवतरित होनेके अनेक उदाहरण मिलते हैं । उदाहरणार्थ—

विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्र वोचं यः पार्थिवानि विममे रजांसि ।
यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः ॥
प्र तद् विष्णुः स्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः ।
यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा ॥
प्र विष्णवे शूषमेतु मन्म गिरिक्षित उरुगायाय वृष्णे ।
य इदं दीर्घं प्रयतं सधस्थमेको विममे त्रिभिरित् पदेभिः ॥

(ऋग्वेद १ । १५४ । १–३)

मैं विष्णुके पराक्रमका वर्णन करता हूँ । उन्होंने तीन पैरोंसे सम्पूर्ण लोकोंको नाप लिया और आकाशको स्थिर किया । विष्णुके तीन पदोंमें सम्पूर्ण जगत् निवास करता है । अतः पर्वतपर रहनेवाले भयंकर पशुकी शक्तिके समान यह संसार विष्णुके पराक्रमकी प्रशंसा करता है । जिन विष्णुने अकेले ही अपने तीन पैरोंसे तीनों लोकोंको नाप लिया, उन महाबली विष्णुकी बहुत-से जीव स्तुति करते हैं ।

तत्तदिदस्य पौंस्यं गृणीमसीनस्य त्रातुरवृकस्य मीळ्हुषः ।
यः पार्थिवानि त्रिभिरिद् विगामभिरुरु क्रमिष्टोरुगायाय जीवसे॥
द्वे इदस्य क्रमणे स्वर्दृशोऽभिख्याय मर्त्यो भुरण्यति ।
तृतीयमस्य नकिरा दधर्षति वयश्चन पतयन्तः पतत्रिणः ॥

(ऋग्वेद १ । १५५ । ४-५)

अर्थात् सबके स्वामी, रक्षक, शत्रुरहित, युवा विष्णुके बल-वीर्यकी हम स्तुति करते हैं, जिन्होंने लोकरक्षाके लिये तीन पाँव रखकर ही सब लोकोंको लाँघ डाला। सभी प्राणी इन विष्णुके दो पदोंको ही देख सकते हैं, तीसरे पदतक पहुँचनेका कोई साहस भी नहीं करता। आकाशमें गमन करनेवाले मरुद्गण भी उसे प्राप्त नहीं कर सकते।

इसी प्रकार अनेक प्रसङ्ग वेदोंमें बिखरे पड़े हैं। सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेदसे भी इसी प्रकारके बहुत-से उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं, जहाँ परब्रह्मके निर्गुण और सगुण— दोनों तत्त्वोंकी समन्वयात्मक व्याख्या मिलती है। इन प्रसङ्गोंके अध्ययनमात्रसे हमारा रोम-रोम पुलकित हो उठता है। वास्तवमें परब्रह्मके निर्गुण अथवा सगुण तत्त्वमेंसे किसी एकमें स्थित हो जानेपर साधकको परमानन्दकी प्राप्ति हो जाती है। साथ ही एक तत्त्वसे दोनोंका सुगमतासे बोध हो जाता है। दोनों तत्त्व एक ही सिक्केके दो पहलू हैं।

आरण्यकों, ब्राह्मण-ग्रन्थों एवं उपनिषदोंमें निर्गुण और सगुण ब्रह्मकी यह समन्वयात्मक व्याख्या और भी प्रखर हो उठती है।

स्मृति-ग्रन्थोंमें भगवान्‌के निर्गुण-सगुण-तत्त्वोंके पार्थक्य और अपार्थक्यके अनेक प्रमाण मिलते हैं। अन्तमें दोनोंके बीच अद्भुत एकता स्थापित की गयी है। उदाहरणार्थ—

मत्तः परतरं नान्यत्किंचिदस्ति धनंजय।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव॥

(गीता ७। ७)

'धनंजय, मेरे सिवा किंचिन्मात्र भी दूसरी वस्तु नहीं है। यह सम्पूर्ण जगत् सूत्रमें सूत्रके मणियोंके सदृश मुझमें गुँथा हुआ है।'

अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम्।
भूतभर्तृ च तज्ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च॥

(गीता १३। १६)

'वह विभागरहित, एक रूपसे आकाशके सदृश परिपूर्ण हुआ भी चराचर सम्पूर्ण भूतोंमें पृथक्-पृथक्‌के सदृश प्रतीत होता है तथा वह जाननेयोग्य परमात्मा विष्णुरूपसे भूतोंको धारण-पोषण करनेवाला, रुद्ररूपसे संहार करनेवाला तथा ब्रह्मारूपसे सबकी उत्पत्ति करनेवाला है। जैसे महाकाश अविभक्त अथवा विभागरहित स्थित होता हुआ भी घड़ोंमें पृथक्-पृथक्‌के सदृश प्रतीत होता है, वैसे ही परमात्मा सब भूतोंमें एक रूपसे स्थित होता हुआ भी पृथक्-पृथक्‌की भाँति प्रतीत होता है।

इसीलिये भगवान्‌ने संकेत भी किया है—'**जन्म कर्म च मे दिव्यम्**'—अर्थात् परमात्माके जन्म-कर्म—सभी दिव्य हैं; वे लौकिक नहीं, अलौकिक हैं।

भाषा-ग्रन्थोंमें भी भगवान्‌के सगुण-निर्गुण रूपोंमें एकता स्थापित की गयी है। भाषा-ग्रन्थोंमें गोस्वामी तुलसीदासका 'रामचरितमानस' अप्रतिम है। बालकाण्डमें गोस्वामीजीने प्रभुके अवतारका कारण इस प्रकार बताया है—

बिप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार।
निज इच्छा निर्मित तनु माया गुन गो पार॥

(१। १९२)

इस प्रकार ब्राह्मण, गौ, देवता और संतोंके रक्षाहित भगवान्‌ने मनुष्यका अवतार ग्रहण किया है। वे माया (अज्ञानरूपी मलिनता) और उसके तीनों गुणों—सत्त्व, रज, तम एवं बाह्य-आभ्यन्तर इन्द्रियोंसे परे हैं। उन्होंने स्वेच्छासे दिव्यातिदिव्य शरीर धारण किया है।

निर्गुण ब्रह्म अनन्य भक्तके भाववश अपना साकार विग्रह प्रकट करके उनके साथ भाँति-भाँतिकी मानवी लीलाएँ तो अवश्य करता है, परंतु वे मानवी होतीं नहीं। उनके पीछे भी गुह्यतम रहस्य अन्तर्हित है, जिसे उनका अनन्य भक्त ही समझ सकता है। कभी-कभी तो उनके महान् भक्तोंको भी उनकी दिव्य लीलाओंके सम्बन्धमें भ्रम हो जाता है। सती, गरुड़, काकभुशुण्डि आदि भक्त इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं।

वही निर्गुण ब्रह्म भक्तके भावसे विभोर होकर अनेक प्रकारकी क्रीड़ाएँ करता है—

भए प्रगट कृपाला दीनदयाला कौसल्या हितकारी।
हरषित महतारी मुनि मन हारी अद्भुत रूप बिचारी॥
लोचन अभिरामा तनु घनस्यामा निज आयुध भुजचारी।
भूषन बनमाला नयन बिसाला सोभा सिंधु खरारी॥

(मानस १। १९१ छंद १)

ब्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुन बिगत बिनोद।
सो अज प्रेम भगति बस कौसल्या कें गोद॥

(मानस १। १९८)

'जो सर्वव्यापक, निरञ्जन (मायारहित), निर्गुण, विनोदरहित और अजन्मा ब्रह्म है, वही प्रेम और भक्तिसे वशीभूत होकर कौसल्याकी गोदीमें नाना भाँतिकी क्रीड़ाएँ कर रहा है।'

भगवान् निर्गुण, सगुण तथा उससे भी विलक्षण, सत्-चित्-आनन्दघन एवं तुरीय तत्त्व कैसे हैं, अनेक उदाहरणोंसे इसकी पुष्टि की जा सकती है। जैसे पृथ्वी आदि व्यापक शरीरवाले उनके अधिष्ठातृ देवता अपने पृथ्वीरूपी भौतिक शरीर एवं देवत्व दोनोंसे युक्त रहते हैं, दोनोंमें किंचिन्मात्र भी अन्तर नहीं है, वैसे ही निर्गुण और सगुण ब्रह्म पृथक्-पृथक् होते हुए भी अभिन्न हैं, उनमें रंचमात्र भी अन्तर नहीं है। इसी प्रकार अग्नि और वायुमें अनेकताके बीच एकता स्थापित की जा सकती है। अग्नि सामान्यरूपसे सब स्थानोंपर अवस्थित है, पर विशेषरूपमें प्रज्वलित भी दीख पड़ती है; वायु भी महावायुके रूपमें सर्वत्र विराजमान है, किंतु वही महावायु प्राणवायुके भीतर विशिष्टरूपमें सभी प्राणियोंमें विराजमान है। किंतु जिस प्रकार सामान्य अग्नि और विशेष अग्नि एवं सामान्य वायु और विशेष वायुमें कोई अन्तर नहीं है, उसी प्रकार निर्गुण और सगुण-तत्त्वमें पृथक्त्व दिखायी पड़ते हुए भी कोई भी पृथक्त्व नहीं है।

भगवान् विष्णुके साकार-निराकार तत्त्वमें किंचित् भेदकी कल्पना करनेपर भी अभेद ही सिद्ध होता है। भेदवादीकी दृष्टिमें भेद है, अभेदवादीकी दृष्टिमें एकमात्र विष्णु ही समस्त जगत् हैं, सभी चराचरके बीच उन्हींका चिद्-विलास हो रहा है।

अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोंकी उत्पत्ति-स्थिति-प्रलयादि समस्त कार्य एवं कारण-समूहोंके (प्रकृतिरूप) परम कारणके भी कारणरूप, महामायातीत, तुरीयतत्त्वस्वरूप भगवान् विष्णु ही सर्वोपरि विराजमान हैं। वे अवर्णनीय, अनन्तगुणगणसंयुक्त, दिव्यातिदिव्य, परम तेजोराशि हैं। अविद्याके सम्पूर्ण अणु-अणुमें व्यापक हैं और महामायाके अनन्त विलासोंके अधिष्ठान भी हैं।

अतः निर्गुण और सगुण तथा दोनोंका एकत्व, अभेद-तत्त्व भी भगवान् विष्णु ही हैं। इस प्रकार यह दृश्य और अदृश्य जो कुछ भी कल्पनामें आता है और जो कल्पनातीत है, जो कुछ भूत, भविष्य, वर्तमान एवं त्रिकालातीत है, सब कुछ विष्णु ही है। विष्णुसे कोई वस्तु न परे है और न भिन्न ही है। यही भगवान्‌के निर्गुण और सगुण-तत्त्वका गुह्यतम रहस्य है।

श्रीविष्णुतत्त्व

(लेखक—अनन्तश्रीविभूषित तमिलनाडुक्षेत्रस्थ श्रीकाञ्चीकामकोटिपीठारूढ जगद्गुरु शंकराचार्य कनिष्ठ स्वामी जयेन्द्र सरस्वती (पुडु पेरियवाल) महाराज)

एक ही परब्रह्म निराकार होकर भी अपने आश्रित मायाके वैभवसे त्रिगुणात्मक होता है और तत्तत् गुणोंकी प्रधानताका अनुसरण करके ब्रह्मा, विष्णु और शिवरूप त्रिविध मूर्तिको प्राप्तकर संसारकी सृष्टि, स्थिति और संहार करता है। उनमें सब लोकोंका पालन करनेके कारण विष्णु-मूर्तिको विशिष्ट स्थान प्राप्त है—

सर्वदा सर्वकार्येषु नास्ति तेषाममङ्गलम्।
येषां हृदिस्थो भगवान् मङ्गलायतनं हरिः॥

(महाभारत, शान्तिपर्व)

'उनका कभी किसी कार्यमें अमङ्गल नहीं होता, जिनके हृदयमें सम्पूर्ण मङ्गलोंके आधार भगवान् श्रीहरि विराजित रहते हैं।'

तथा—

अवशेनापि यन्नाम्नि कीर्तिते सर्वपातकैः।
पुमान् विमुच्यते सद्यः सिंहत्रस्तैर्वृकैरिव॥

(विष्णुपुराण ६। ८। १९)

'भगवान् विष्णुके किसी नामका हठात् (अनिच्छा-पूर्वक) उच्चारण करनेपर भी मनुष्य सम्पूर्ण पापोंसे तत्काल उसी प्रकार सर्वथा छूट जाता है, जैसे सिंहके भयसे भेड़िये जन्तुका पीछा करना छोड़ देते हैं।'

इस प्रकारकी महिमासे युक्त पुरुषोत्तम श्रीविष्णु-भगवान्‌की पूजा सबको करनी चाहिये।

इस तत्त्वको जानकर लोक-कल्याणमें लगे हुए 'कल्याण'-पत्रिकाके संचालक श्रीविष्णुसम्बन्धी विशेषाङ्क प्रकाशित करनेके लिये उत्साहित हैं, यह जानकर हमें बड़ी प्रसन्नता हुई है।

आस्तिकजन इस अङ्कके द्वारा श्रीविष्णुकी तथा उनके सांनिध्यसे सुदीप्त तीर्थस्थलोंकी महिमाको जानकर अभीष्ट मूर्तिकी पूजा करते हुए उनके कृपापात्र बनकर अखिल प्रेय-श्रेयकी परम्पराको प्राप्त करेंगे, ऐसी हम आशा करते हैं। नारायणस्मृतिः।

त्रिमूर्ति और त्रिशक्ति

(ब्रह्मलीन अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु पुरी-शंकराचार्य स्वामी भारतीकृष्णतीर्थ महाराज)

त्रिमूर्ति और त्रिशक्तिके सम्बन्धमें सनातनधर्मका यही सिद्धान्त है कि एक ही परमात्मा, जो निर्गुण, निष्क्रिय, निराकार और निरञ्जन (निर्लिप्त) है, वही अपनी त्रिगुणात्मक, त्रिशक्त्यात्मक मायाशक्तिसे शबलित होकर जगत्की सृष्टि, पालन और संहाररूपी त्रिविध कार्यके भेदसे ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र—इन तीन नामोंको और मूर्तियोंको धारण करता है और जिन तीन प्रकारकी शक्तियोंसे शबलित होकर त्रिमूर्तिरूपमें आता है, उन्हींके नाम महासरस्वती, महालक्ष्मी और महाकाली हैं। अर्थात् ब्रह्माजीकी शक्ति, जिससे सृष्टि होती है, वह महासरस्वती है। विष्णुशक्ति, जो पालन करती-कराती है, महालक्ष्मी है और रुद्रशक्ति, जिससे संहार होता है, उसका नाम महाकाली है। इसीलिये भगवान् श्रीशंकराचार्यने भी 'सौन्दर्यलहरी' में कहा है—

'शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुम्॥'

'भगवान् अपनी शक्तिसे शबलित होकर ही अपना काम करनेमें समर्थ होते हैं (नहीं तो नहीं)।' इससे स्पष्ट है कि वास्तवमें (अर्थात् अपने मूलस्वरूपमें) भगवान् निरञ्जन, अतएव निष्क्रिय होते हुए भी अपनी मायाशक्तिसे शबलित होकर जगदीश्वर होते हैं, अर्थात् जगत्स्रष्टा, जगत्पालक और जगत्संहर्ता होते हैं।

तीनों कार्योंका ऐतिहासिक दृष्टिसे क्रम

इन कार्योंके क्रमका दो प्रकारसे विचार किया जा सकता है। एक है ऐतिहासिक क्रम (Historical and Chronological Sequence), जिसमें इस दृष्टिसे विचार होता है कि सबसे पहले हर एक चीजकी सृष्टि की जाती है, उसके बाद उसकी स्थिति होती है और अन्तमें उसका नाश हो जाता है। इसी कारण 'ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र'—ये तीनों नाम हमारे ग्रन्थोंमें इसी क्रमसे पाये जाते हैं।

उनका आध्यात्मिक साधनकी दृष्टिसे क्रम

इन तीनों कार्योंके क्रमका दूसरे प्रकारका विचार साधककी आध्यात्मिक दृष्टिसे (from the psychological standpoint of the spiritual aspirant) होता है। इसमें अवधूतराज श्रीसदाशिवब्रह्मेन्द्र सरस्वती महाराजकृत वर्णनके अनुसार—'जनिविपरीतक्रमतः'—विपरीत-क्रमसे अर्थात् लयके क्रमसे गणना होती है, सृष्टिके क्रमसे नहीं। इसी कारण 'महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती'—ये तीन नाम उपासनाकाण्डके ग्रन्थोंमें इसी नियत क्रमसे आते हैं।

व्याधिकी चिकित्साका दृष्टान्त

लौकिक व्यवहारमें सर्वसाधारणके अनुभवसे सिद्ध एक दृष्टान्तसे इस क्रमका तात्पर्य और आवश्यकता स्पष्ट होगी। व्याधिकी चिकित्सामें वैद्य या डाक्टरका पहला कर्तव्य है—व्याधिका मूलसे संहार। अतः उस समयपर, वह वैद्य या डाक्टर रुद्रका काम करता है। परंतु रुद्रका यह काम करते हुए—व्याधिको जड़से काट डालनेके समय उसे ऐसी अत्यन्त जागरूकता और सावधानीके साथ काम करना पड़ता है, जिससे केवल बीमारी ही नष्ट हो, न कि साथ-साथ बीमार भी चल बसे। इस प्रकार वह यह प्राणका पालन या विष्णुका भी काम करता है और जब व्याधि जड़से कट गयी तथा जान बच गयी, तब शरीरमें खूब ताकत लानेवाली औषध (Tonic), पोषक आहार आदि चीजोंको देते हुए वही वैद्य या डाक्टर नयी सृष्टि या ब्रह्माका भी काम करता है।

अज्ञान-निवारणका दृष्टान्त

इसी प्रकारसे गुरुके सम्बन्धमें कही हुई—'गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः।' यह बात भी चरितार्थ होती है; क्योंकि जब गुरु अपने शिष्यके अन्यथाभानरूपी अज्ञान (या गलत समझ) का निवारण करता है, तब वह संहार या रुद्रका काम करता है; प्रामादिक ज्ञानको काटते हुए साथ-साथ जब वह शिष्यके मनमें जो यथार्थ ज्ञान है, उसकी रक्षा करता है, तब वह पालन या विष्णुका काम करता है; और जब अज्ञानको हटाते हुए तथा ज्ञानकी रक्षा करते हुए वह नयी बातोंको सिखाता है, तब सृष्टि या ब्रह्माका काम करता है।

अन्यान्य दृष्टान्त

इस प्रकारसे और-और दृष्टान्तोंको लेकर पाठक अपने-आप सोच सकते हैं और निश्चय कर सकते हैं कि शारीरिक, बौद्धिक, आर्थिक, राजनीतिक आदि प्रत्येक कार्य-क्षेत्रमें इसी प्रकारसे साधना हुआ करती है। अर्थात् सबसे पहले बुरी चीजों, गुणों और आदतोंका संहार करना चाहिये। साथ-ही-साथ अच्छी चीजों, गुणों और अभ्यासोंको सुरक्षित रखना चाहिये; और जब बुरी चीजें निकल जायँ तथा प्राण बच

जायँ, तब अच्छी चीजोंका क्रमशः पोषण और वर्धन करते जाना चाहिये। सारांश यह कि संहार, पालन और सृष्टिकी सभी प्रकारके साधकोंको आवश्यकता है और इसी क्रमसे महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती—इन तीनों नामोंका शास्त्रसिद्ध अनुक्रम स्पष्ट है।

तीनों शक्तियों और मूर्तियोंका पारस्परिक सम्बन्ध

इन तीनों मूर्तियों और शक्तियोंके इस प्रकारसे कर्तव्यक्षेत्र सिद्ध हुए हैं कि महाकाली-शक्तिसहित रुद्र संहार करता है, महालक्ष्मी-शक्तिसहित विष्णु पालन करता है और महासरस्वती-शक्तिसहित ब्रह्मा सृष्टि करता है। अब और आगे बढ़कर देखना है कि इनका आपसमें सम्बन्ध क्या है। शास्त्रोंका विचार करनेपर यह बड़े चमत्कारकी बात होती है कि त्रिमूर्तियोंमेंसे किसी एकको लेकर विचार करें तो शेष दोनोंमेंसे एक उसकी पत्नीका भाई होता है और दूसरा उसका बहनोई होता है। प्रकारान्तरसे देखें और त्रिशक्तियोंमेंसे किसी एक शक्तिको लेकर विचार करें तो शेष दोनोंमेंसे एक उनकी ननद बनती हैं और दूसरी उनकी भावज; क्योंकि संहार करनेवाले रुद्रकी शक्ति महाकालीके भाई हैं पालन करनेवाले विष्णु; उनकी शक्ति महालक्ष्मीके भाई हैं सृष्टि करनेवाले ब्रह्मा और उनकी शक्ति महासरस्वतीके भाई हैं संहार करनेवाले रुद्र।

इनका आध्यात्मिक रहस्य

इन तीनों शक्तियों और मूर्तियोंके रूप, अवयव, आयुध, रंग आदि सब पदार्थोंके सम्बन्धमें उपासना-काण्डके ग्रन्थोंमें, जो अत्यन्त विस्तारके साथ वर्णन मिलते हैं, उनमेंसे एक छोटी-से-छोटी बात भी ऐसी नहीं है, जो अनेक अत्युपयोगी तत्त्वोंसे भरी हुई न हो और जो जिज्ञासुओं एवं साधकोंके लिये अत्युत्तम आध्यात्मिक शिक्षा देनेवाली न हो। परंतु समयके संकोचके कारण उन सब बातोंका यहाँ विवरण नहीं दिया जा सकता। फिर भी स्थालीपुलाकन्यायके अनुसार इन चमत्कारोंके दृष्टान्तरूपसे और केवल दिग्दर्शनार्थ इन त्रिशक्तियों और त्रिमूर्तियोंके रंगोंके बारेमें कुछ उल्लेख किया जाता है—

तीन प्रकारके रंग

इनके रंगोंके सम्बन्धमें चमत्कारकी बात यह है कि संहार करनेवाले रुद्र तथा उनकी बहन महासरस्वती श्वेत रंगके हैं। पालन करनेवाले विष्णु एवं उनकी बहन महाकाली नीले रंगके हैं और सृष्टि करनेवाले ब्रह्मा एवं उनकी बहन महालक्ष्मी स्वर्ण-वर्णके हैं। यह तो बिल्कुल ठीक है, स्वाभाविक है और युक्तियुक्त भी है कि कोई भी शक्ति अपने पतिके रंगकी नहीं होती और सब-की-सब अपने भाईके रंगकी होती हैं। परंतु इस बातपर ध्यान देना है कि इन तीनों रंगोंका जो इनमें विभाग हुआ है, उसका आध्यात्मिक तत्त्व क्या है? शास्त्रोंने इसके सम्बन्धमें यह सिद्धान्त बतलाया है कि इन तीनों मूर्तियोंके कार्योंमें कोई परस्पर विरोध नहीं है, बल्कि ये परस्पर सहायक ही हैं। अतः त्रिमूर्तियोंका भी इसी तरहका आपसमें सम्बन्ध है।

आपसका सम्बन्ध

जो यह समझते हैं कि पालन करनेवाले और संहार करनेवाले परस्पर विरुद्ध काम करनेवाले हैं, अतः हरि और हरका अवश्य ही अत्यन्त विरोध और शत्रुत्व हो सकता है; वे केवल ऊपर-ऊपरसे ही विचार कर, पालन और संहारके भीतरी अर्थको न सोचकर बड़ी भारी गलती कर रहे हैं। यह ठीक है कि यदि हरि और हर एक ही वस्तुके पालक और संहारक होते तो उनका आपसमें शत्रुत्व भी हो सकता, परंतु यह बात नहीं है। जिस पदार्थकी रक्षा करनी होती हो, उसके शत्रुका संहार जब हरके द्वारा होता है, तब विरोध कहाँ है? उदाहरणार्थ, बीमारके प्राणोंकी रक्षाके लिये जब डाक्टर शस्त्रका प्रयोग (Surgical operation) करता है और व्याधिका संहार करता है, तब तो एक ही आदमीसे हरि और हर दोनोंके काम होनेकी बात है। यही सम्बन्ध पालक हरि और संहारक हरका है।

महाकाली और रुद्रका काम

तीनों शक्तियोंके रंगों और कार्योंका यह चमत्कारी सम्बन्ध है कि रुद्रको जो संहाररूपी काम करना है, उसे करानेवाली महाकालीरूपी रुद्रशक्ति अपने भयंकर कार्यके अनुरूप और योग्य काले रंगकी होती हैं। परंतु यह संहारका काम संहारके लिये नहीं, बल्कि सारे संसारके रक्षण और कल्याणके लिये होता है। इसलिये वे खराब हिस्सेका संहार करके, अपने पतिका काम पूरा करके, खराबीसे बचायी हुई असली चीजको अपने भाई अर्थात् विष्णुके हाथमें सौंपकर कहती हैं कि 'भाईजी! मैंने अपने पति श्रीमहादेव—रुद्रकी शक्तिके रूपमें खराबीका संहार कर डाला। अतएव हम दम्पतिका काम पूरा हो गया है। अब तुम इस चीजको लेकर, अपना जो पालनेका काम है, उसे करो।'

राजनीतिक्षेत्रमें शिक्षा

इससे राजनीतिक्षेत्रमें भी यह स्पष्ट शिक्षा हमें मिलती

है कि प्रजाकी रक्षा ही राजाका प्रधान कर्तव्य है। अतएव कहा गया है—

राज्ञा स्वविषये रक्षा कर्तव्या भूतिमिच्छता।
यज्ञेनावाप्यते स्वर्गो रक्षणात्प्राप्यते तथा॥

'इसलिये ऐश्वर्यकामी राजाको चाहिये कि वह अपने देशकी रक्षा करे। प्रजापालनसे भी उसी प्रकार स्वर्गकी प्राप्ति होती है, जैसे यज्ञादिके द्वारा।'

इसपर आक्षेपरूपसे पूछा जा सकता है कि यदि ऐसी बात हो तो फिर राजा दुष्टोंको दण्ड क्यों देते हैं? क्योंकि भगवान् मनुने तो यह कहा है—

अदण्ड्यान्दण्डयन् राजा दण्ड्यांश्चैवाप्यदण्डयन्।
अयशो महदाप्नोति नरकं चैव गच्छति॥
(मनु० ८।१२८)

'अदण्डनीयोंको दण्ड देनेवाला और इसी प्रकार दण्डनीयोंको दण्ड न देनेवाला राजा महान् अयशका भागी होता है और मरकर नरकमें जाता है।'

इस शङ्काका समाधान यह है कि प्रजाकी रक्षा और दुष्टोंका दमन—ये दोनों ही काम राजाके हैं, परंतु इनमेंसे दूसरा (दुष्टोंको दण्ड देनेका) जो काम है, वह दण्ड देनेके लिये नहीं है, बल्कि सज्जनोंकी रक्षारूपी असली राजधर्मकी पूर्तिके लिये एक अनिवार्य (unavoidable) अङ्ग या साधनरूपी काम है। अतएव पाश्चात्त्य राजनीतिके ग्रन्थकारोंने भी 'Doctrine of vindictive punishment' (बदला लेनेके लिये सजा देनेके सिद्धान्त) को छोड़कर अब यह स्वीकार कर लिया है कि 'The king's Punitive Function is there, only as a means towards adequate fulfilment of his Protective Function.' (अर्थात् दण्ड देना भी प्रजाकी रक्षाके अङ्गरूपसे ही राजाका कर्तव्य है।)

अवतारोंका प्रयोजन

इसीलिये भगवान् श्रीकृष्णने गीता (४।८) में अपने अवतारोंका उद्देश्य और प्रयोजन बतलाते हुए पहले कहा—**'परित्राणाय साधूनाम्'** और तत्पश्चात् कहा—**'विनाशाय च दुष्कृताम्॥'**

अर्थात् जैसे बीमारकी सड़ी हुई एक अँगुलीके जहरको सारे शरीरमें फैलनेसे रोकनेके लिये डाक्टर शस्त्र (operation) से काटते हैं, उसी प्रकार भगवान् श्रीरुद्र संहारका जो काम करते हैं, वह जगत्के पालनके लिये है, और किसी प्रयोजनके लिये नहीं।

महालक्ष्मी और विष्णुका काम

विष्णुको जो पालनरूपी काम करना है, उसे करानेवाली महालक्ष्मीरूपी विष्णु-शक्ति अपने पालनात्मक कार्यके अनुरूप और योग्य स्वर्णवर्णकी होती हैं। परंतु वह पालनका काम केवल पालन करके छोड़ देनेके लिये नहीं, बल्कि पोषण और वर्धन करनेके उद्देश्यसे किया जाता है। इसलिये वे पालनका काम करके, अपने पतिके कार्यको पूर्ण करके, अपनी पाली हुई उस चीजको अपने भ्राता अर्थात् ब्रह्माके हाथमें सौंपकर कहती हैं—'भाईजी! मैंने अपने पति श्रीमहाविष्णुकी शक्तिके रूपमें इस बीजको पाला है। इससे अब हम दम्पतिका काम पूरा हो गया है। अब आप इसे लेकर अपना कार्य, जो नयी चीजोंको उत्पन्न करना अर्थात् उनका पोषण और वर्धन करना है, वह करें।'

महासरस्वती और ब्रह्माका काम

ब्रह्माको जो नयी चीजोंका आविष्कार या सृष्टिरूपी काम करना है, उसे करानेवाली महासरस्वतीरूपी ब्रह्मशक्ति अपने सृष्ट्यात्मक कार्यके अनुरूप और योग्य श्वेत वर्णकी होती हैं। परंतु वह पोषण एवं वर्धनका काम आगे-आगे बढ़ाते जानेके ही उद्देश्यसे नहीं है, बल्कि पोषण और वर्धन करनेके समय जो बुरे या अनिष्ट पदार्थ भी उसके साथ सम्मिलित हो जाया करते हैं, उनको दूर हटाकर ठीक कर लेनेके उद्देश्यसे ही होता है। इसलिये वे वर्धनका काम हो जानेके बाद, अपनी बढ़ायी हुई चीजको अपने भ्राता अर्थात् रुद्रके हाथमें देकर कहती हैं—'भाईजी! मैंने अपने पति श्रीहिरण्यगर्भ ब्रह्माकी शक्तिके रूपमें इस चीजका पोषण और वर्धन किया है। इससे अब हम दम्पतिका काम पूरा हो गया है। अब इसके पोषण और वर्धनके समयमें इसमें जो खराबियाँ और त्रुटियाँ आ गयी हों, उनका संहार करनेका काम हमारा नहीं है—आपका है। इसलिये इन्हें हाथमें लेकर, इनपर नश्तरका प्रयोग करें।'

एवं प्रवर्तितं चक्रम्

इस प्रकारसे एक ही परमात्मा जगदीश्वर महाप्रभु सृष्टि, पालन और संहार—इन तीनों कर्मोंके चक्रको लगातार चलाते हुए ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र—इन तीनों नामोंसे दुनियामें प्रसिद्ध होते हैं और उसके इन तीनों कामोंको करानेवाली जगन्माता भगवती महामायाके अन्तर्गत जो सृष्टि-शक्ति, पालन-शक्ति और संहार-शक्ति हैं, उन्हींके नाम (पूर्वोक्त कारणसे, उल्टे क्रमसे) महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती हैं।

श्रीविष्णु-तत्त्व

(लेखक—अनन्तश्रीविभूषित स्वामी करपात्रीजी महाराज)

व्याप्त्यर्थक 'विष्लृ' धातुसे विष्णु-शब्दकी निष्पत्ति होती है, तथा च व्यापक परब्रह्म परमात्माको ही 'विष्णु' कहा जाता है। 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति, यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति (तैत्तिरीयोपनिषद् ३।१)'—इस श्रुतिके अनुसार यही जान पड़ता है कि 'सम्पूर्ण जगत्‌की जिससे उत्पत्ति होती है, जिसमें स्थिति होती है और जिसमें विलय होता है, वही ब्रह्म है।' विशेषरूपसे अनन्तकोटिब्रह्माण्डोत्पादिनी शक्तिमें कार्योत्पत्तिके लिये प्रकाशात्मक सत्त्व, चलनात्मक रज तथा अवष्टम्भात्मक तमकी अपेक्षा होती है। तत्तद्गुणोंकी प्रधानतासे ब्रह्म ही रजके सम्बन्धसे ब्रह्मा, तमके सम्बन्धसे रुद्र एवं सत्त्वके सम्बन्धसे विष्णु बन जाता है। प्रकारान्तरेण उत्पादिनीशक्ति-विशिष्ट ब्रह्म 'ब्रह्मा', संहारिणीशक्ति-विशिष्ट ब्रह्म 'रुद्र' तथा पालिनीशक्ति-विशिष्ट ब्रह्म 'विष्णु' शब्दसे व्यवहृत होता है। प्रकारान्तरसे समष्टि-कारण-प्रपञ्चाभिमानी अव्याकृत 'रुद्र', समष्टि-सूक्ष्म-प्रपञ्चाभिमानी हिरण्यगर्भ 'विष्णु' और समष्टि-स्थूल-प्रपञ्चाभिमानी विराट् 'ब्रह्मा' कहा जाता है। मुख्यरूपसे अव्यक्तादिके नियामक अन्तर्यामीको ही रुद्र, विष्णु, ब्रह्मा आदि कहा जाता है। जहाँ-कहीं उपासना-विशेषके कारण किसी जीवका ब्रह्मा होना सुना जाता है, वह अन्तर्यामी न होकर अभिमानी समझा जाना चाहिये। 'स एकाकी न रेमे', 'सोऽबिभेत्' इत्यादि श्रुतिवचनोंमें जहाँ हिरण्यगर्भमें भय, अरमण आदिका श्रवण है, वहाँ हिरण्यगर्भमें जीवभावका ही निर्णय किया गया है; क्योंकि परमेश्वरमें भय, अरमण आदि कथमपि सम्भव नहीं। अभिमानी जीव भी हो सकता है, परंतु अन्तर्यामी सर्वत्र परमेश्वर ही है। पुराणोंसे ब्रह्माण्डोंकी अनन्तताका पता लगता है, अतएव तदनुसार विराट्, हिरण्यगर्भ आदिकी भी अनन्तता ही जान पड़ती है। उत्पादक-पालक-संहारक दृष्टिसे ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्रकी अनन्तता ही सिद्ध होती है। अन्तर्यामी होनेसे सभी परमेश्वर ही हैं, इस विचारसे उपनिषदोंका विराट् पुराणोंका महाविराट् है। अनन्तकोटि-ब्रह्माण्डात्मक समष्टि-स्थूल प्रपञ्चका एकमात्र अभिमानी एवं अन्तर्यामी उपनिषदोंका 'विराट्' है। यही बात हिरण्यगर्भ और अव्यक्तके सम्बन्धमें भी समझनी चाहिये। तदनुसार ही अनन्तकोटिब्रह्माण्डात्मक सम्पूर्ण विश्वके उत्पादक ब्रह्मा, पालक विष्णु और संहारक रुद्र सर्वथा एक ही हैं। वे ही महाविष्णु, महारुद्र आदि नामोंसे भी तत्र-तत्र व्यवहृत होते हैं। जैसे गोधूमादि सस्योंका एक ही कृषक उत्पादक, पालक तथा लावक (काटनेवाला) होता है, वैसे ही विश्वका भी उत्पादक, पालक तथा संहारक एक ही है; अन्यथा सर्वशक्तिमान् विष्णु परमात्मासे पालित जगत्‌का संहार दूसरा कैसे कर सकता है। यदि सर्वसंहारक रुद्रको ही परमेश्वर मानें तो फिर संजिहीर्षित विश्वको पालनेवाला कौन हो सकता है? यदि विष्णुसे भिन्न ही रुद्र हैं, तब सर्वसंहारक रुद्रके द्वारा विष्णुके भी संहारका अवसर उपस्थित हो जायगा। अतएव विष्णु एवं रुद्र दोनोंको एक ही परमेश्वर मानना समुचित है। कोई भी संहारक अपनी अन्तरात्माका संहार नहीं कर सकता। तभी सर्वसंहारक शिवके आत्मा होनेसे ही विष्णु बने रहते हैं। अनेक ईश्वरोंका मानना सर्वथा युक्तिविरुद्ध भी है; क्योंकि जब दोनोंमें मतभेद होगा और साथ ही विरुद्ध प्रकारके संकल्प होंगे, तब दो ईश्वर कथमपि नहीं टिक सकेंगे। यदि परस्परके विरुद्ध संकल्पसे दोनोंके ही संकल्प प्रतिरुद्ध होकर वितथ (असत्य) हो गये, तब तो दोनों ही अनीश्वर सिद्ध होंगे। यदि एकके संकल्पसे दूसरेका संकल्प कट गया, तो सिद्धसंकल्प ही परमेश्वर हुआ, तदतिरिक्तमें असत्यसंकल्पता होनेसे अर्थसिद्ध अनीश्वरता हुई। अतः जगत्‌का उत्पादक, पालक, संहारक एक ही परमेश्वर है। उसका किसी भी नामसे भले ही व्यवहार हो, परंतु प्रमाणभूत शास्त्रसे जिसमें जगत्कारणत्व-सर्वज्ञत्व-सर्वशक्तिमत्त्वादि अवगत हों, उसे ही परमेश्वर समझा जा सकता है। विष्णु-रुद्र-ब्रह्मा आदि नामोंके अतिरिक्त आकाशादि शब्दोंसे भी जगत्कारणत्वादि हेतुओंसे ही परमेश्वरका बोध हुआ है।

अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोंकी उत्पत्ति-स्थिति-प्रलयकारिणी महाशक्ति ही सम्पूर्ण अवान्तर अचिन्त्य अनन्त शक्तियोंकी केन्द्र है। उन्हीं शक्तियोंसे अनन्त ब्रह्माण्ड बनते हैं। प्रत्येक ब्रह्माण्डकी शक्तियोंमें तमःप्रधान शक्तिसे भूत—भौतिक प्रपञ्च-की सृष्टि होती है। तामस भूतोंमें भी सत्त्व-रज-तम आदिका अंश रहता है। अतएव सात्त्विक भूतोंसे अन्तःकरण एवं ज्ञानेन्द्रियाँ, राजससे प्राण एवं कर्मेन्द्रियाँ उत्पन्न होती हैं और तामससे स्थूल भूत बनते हैं। ब्रह्माण्डशक्तिके तामस-अंशसे

जैसे उपर्युक्त प्रपञ्च बनता है, वैसे ही रजस्तमोलेशानुविद्ध सत्त्वांशसे अविद्या एवं रज आदिसे अननुविद्ध सत्त्वसे विद्या या मायाका आविर्भाव होता है। अविद्याएँ रज आदिके अनुवेध-वैचित्र्यसे अनन्त हैं, अतः उनमें प्रतिबिम्बित चैतन्यरूप जीव भी अनन्त हैं। जो लोग अविद्याको भी एक मानते हैं, उनके मतसे जीव भी एक ही होता है। विशुद्ध सत्त्वप्रधाना विद्यामें भी अंशतः सत्त्व-रज-तम होते हैं। उसी सत्त्वप्रधाना शक्तिस्वरूपा विद्याके सात्त्विक अंशसे विष्णु, राजस अंशसे ब्रह्मा और तामस अंशसे रुद्रका आविर्भाव होता है। अवान्तर शक्तिके विभागके समान ही महाशक्तिके भी विभाग समझने चाहिये। महाशक्तिके तमःप्रधान अंशसे जडवर्गका, अशुद्ध सत्त्वप्रधान शक्तिसे भोक्तृवर्गका और विशुद्ध सत्त्वप्रधान शक्तिसे महेश्वरका आविर्भाव होता है। महाशक्तिविशिष्ट ब्रह्म एक ही है, अतः एक ब्रह्मका ही भोग्य, भोक्ता तथा महेश्वरके रूपमें आविर्भाव समझा जाता है। भोग्यवर्ग एवं भोक्तृवर्गकी एकता-अनेकताका प्रश्न उठ सकता है, परंतु महेश्वरकी अनेकताका प्रश्न ही नहीं उठ सकता। उत्पत्ति-स्थिति-लयका कारण एक ही है, तथापि उत्पत्ति-कारणत्वादिकी पृथक्-पृथक् विवक्षासे ब्रह्मा-विष्णु-रुद्र आदि कहा जाता है। तमःप्रधान-शक्तिविशिष्ट चित्में उपादानता तथा विशुद्ध सत्त्वप्रधान-विद्याशक्ति-विशिष्टमें निमित्तता होनेपर भी एक मूलप्रकृतिविशिष्ट ब्रह्म ही जगत्का अभिन्न निमित्तोपादान कारण है। उसमें नानात्व नहीं है। उपादानसे कार्यकी सदृशता होती है, अतः जडकार्यके अनुरूप ही तमःप्रधान-शक्तिविशिष्ट चित्तमें जडताके अनुरोधसे उपादानता मानी गयी है। कुलालादिके सदृश निमित्तमें कार्यसे विलक्षणता होती है, अतः तदनुरूप ही विद्याविशिष्टमें निमित्तकारणता मानी गयी है। सर्वापेक्षया प्रबल ही सर्वसंहारक होता है, वही पालक भी हो सकता है, वही विश्वका उत्पादक भी है। अनन्तब्रह्माण्डनायक भगवान् ही 'विष्णु-पद्म' आदि पुराणोंमें विष्णु तथा रामायण-महाभारत आदिमें राम-कृष्ण आदि रूपोंमें गाये गये हैं। 'शिव-स्कन्दादि' पुराणोंमें वे ही शिव 'रुद्र' आदि नामोंसे कहे जाते हैं। शिवपरक पुराणोंमें कार्यविष्णु अर्थात् एक-एक ब्रह्माण्डके विष्णुका वर्णन है, इसीलिये वहाँ उनका कुछ अपकर्ष भी भासित होता है। विष्णुपरक पुराणोंमें शिव भी कार्यान्तःपाती ही हैं। अनन्तब्रह्माण्डनायककी प्राप्तिमें अपकर्षकी कल्पना भी संगत ही है। फलतः अनन्तब्रह्माण्डनायक परब्रह्म परमात्मा ही वेद, रामायण, महाभारत, पुराण आदिकोंमें अनेक रूपों एवं नामोंसे गाये गये हैं। वे ही भगवान् 'विष्णु' शब्दसे प्रसिद्ध हैं।

जगत्के पालनमें सर्वातिशायी ऐश्वर्यकी अपेक्षा होती है, अतः विष्णुभगवान्में परमैश्वर्यका अस्तित्व है। समग्र ऐश्वर्य, समग्र धर्म, समग्र यश, समग्र श्री, समग्र ज्ञान, समग्र वैराग्य जिसमें हों, वही 'भगवान्' है। अथवा प्राणियोंकी उत्पत्ति, प्रलय, गति, आगति, विद्या, अविद्याको जाननेवाला ही 'भगवान्' है। विश्वमात्रको फलित-प्रफुल्लित करना, अनेक ऐश्वर्यसे पूर्ण करना पालकका काम है। इसीलिये विष्णु-भगवान्में पराकाष्ठाका ऐश्वर्य पाया जाता है। यद्यपि परम-विष्णु साक्षात् चैतन्यघन ही हैं, तथापि उपासनामें उनके पादादि अङ्ग-उपाङ्गों, गरुडादि वाहनों, सुदर्शनादि आयुधों तथा कौस्तुभादि आभूषणोंकी कल्पना की जाती है।

माया, सूत्रात्मा, महान्, अहंकार, पञ्चतन्मात्रा, ग्यारह इन्द्रियों एवं पञ्चमहाभूतोंके साथ महाविराट् भगवान्का स्थूल रूप है। भगवान्के उसी स्थूल रूपमें तीनों भुवन प्रतिभासित होते हैं। यही उनका पौरुष रूप है। भूलोक ही इस पुरुषका पाद है, द्युलोक सिर, अन्तरिक्ष नाभि, सूर्य नेत्र, वायु नासिका, दिशाएँ कान, प्रजापति प्रजनेन्द्रिय, मृत्यु पायु (गुदा), लोकपाल बाहु, चन्द्रमा मन और यम ही भगवान्की भ्रुकुटी है। उत्कृष्टताके अभिप्रायसे द्युलोकको सिर कहा गया है, गम्भीरताके अभिप्रायसे अन्तरिक्षको नाभि कहा गया है, प्रतिष्ठा (आधार) के अभिप्रायसे भूलोकको पाद कहा गया है, नेत्रानुग्राहक तथा सर्वप्रकाशक होनेके कारण सूर्यको चक्षु कहा गया है। लज्जा भगवान्का उत्तरोष्ठ है (लज्जासे जैसे प्राणी उन्मुख न होकर अवनतानन हो जाता है, तद्वत् उत्तरोष्ठ अवनत ही रहता है) और लोभ अधरोष्ठ है, ज्योत्स्ना दन्त है, माया ही मन्दहास है, सम्पूर्ण भूरुह (वृक्षादि) लोम हैं, मेघ मूर्धज (केश) हैं। जैसे सप्तवितस्ति (साढ़े तीन हाथ) का यह व्यष्टि पुरुष है, वैसे ही अपने मानसे समष्टि पुरुष भी सप्तवितस्ति है— 'सप्तवितस्तिकायः' (श्रीमद्भा० १०। १४। ११) परमेश्वराधिष्ठित होनेसे वैराजरूपकी उपासना होती है। इसीलिये 'पुरुषसूक्त'में तथा अन्यत्र पुराणोंमें उपर्युक्त सभी अङ्ग-प्रत्यङ्गोंकी भावना भगवान् विष्णुमें की गयी है। वैसे तो भगवान् विष्णुका स्वरूप अखण्ड सच्चिदानन्द ही है, तथापि भक्तानुग्रहार्थ

भगवान् विशुद्ध-सत्त्वमयी लीलाशक्तिके योगसे चिदानन्दमय विग्रहको भी धारण करते हैं। वही अतसीपुष्पसंकाश तथा नवनीलनीरदश्यामल या नीलकमलकान्ति भगवान्‌का सगुण-साकार स्वरूप है। उसी स्वरूपको कोई केकीकण्ठाभ कहते हैं, कोई तमालश्यामल कहते हैं। जैसे शैत्यके योगसे निर्मल जल ही शुद्ध बर्फ बनता है, घृतवर्तिकाके योगसे केवल अग्नि ही दाहकत्व-प्रकाशकत्व-विशिष्ट दीपशिखाके रूपमें प्रकट होता है, वैसे ही विशुद्ध सत्त्वमयी लीलाशक्तिके योगसे चिदानन्द ब्रह्म ही सगुण-साकार श्रीविष्णुरूपमें प्रकट होता है। जैसे निराकार तथा अतिगम्भीर आकाशका श्यामलरूप ही तत्त्ववेत्ताओंको अभिमत है, वैसे ही निराकार-निर्विकार, परम गम्भीर विष्णुतत्त्वका भी श्यामल रूप ही श्रुतिसम्मत है। तमकी उपाधिसे उपहित, तमके नियामक भगवान् शिवका वर्ण श्यामल है; उन्हींका ध्यान करते-करते विष्णु श्यामल हो जाते हैं। विष्णुका ध्यान करते-करते उनका स्वाभाविक शुक्लरूप शंकरमें प्रकट हो जाता है। ये दोनों ही परस्परानुरक्त एवं परस्परात्मा हैं। युगके अनुरूप ही युगनियामक भगवान्‌का रूप होता है। जैसे मनुष्योंका नियमन करनेके लिये भगवान्‌को मनुष्यानुरूप बनना पड़ता है, वैसे ही युग-नियमनके लिये भगवान्‌को युगानुरूप बनना पड़ता है। स्वतः अरूप भगवान्‌में उपाधिके संसर्गसे ही रूपकी आविर्भूति होती है। सत्त्वप्रधान कृतयुग, रजोमिश्रित सत्त्वप्रधान त्रेता, रजःप्रधान द्वापर और तमःप्रधान कलि होता है। अतः कृतके अनुरूप ही कृतयुगीन भगवान् शुक्लरूपमें प्रकट होते हैं। त्रेताके अनुरूप भगवान्‌का रक्त रूप है, द्वापरके अनुरूप पीत एवं कलिके अनुरूप भगवान्‌का कृष्ण रूप होता है—

'शुक्लो रक्तस्तथा पीत इदानीं कृष्णतां गतः।'

(श्रीमद्भागवत १०।८।१३)

इस दृष्टिसे कलिनियामक होनेसे इस समय भगवान् श्यामल हैं।

भगवान् जीव-चैतन्य-ज्योतिःसमूहको ही कौस्तुभमणिके रूपमें धारण करते हैं। वेदान्तसिद्धान्तके अनुसार एक, अखण्ड, अनन्त, सच्चिदानन्द भगवान्‌के ही समाश्रित सम्पूर्ण जीव-चैतन्य होते हैं, अतः अवश्य ही जीव भगवान्‌के भूषण हो सकते हैं। विशेषतः भगवत्प्राप्त भगवद्भक्त तो अवश्य ही भगवान्‌के कण्ठके देदीप्यमान, चमत्कारपूर्ण भूषण बनते हैं। भक्तलोग तभी तो इनसे ईर्ष्या करते हैं—

अहो सुमनसो मुक्ता वक्षाण्यपि हरेरहः।
न त्यजन्ति वयं तत्र का वा स्मरवशाः स्त्रियः॥

'अर्थात् अहो! मुक्ता (मोती) एवं सुमनस् (पुष्प) (पक्षान्तरमें मुक्तलोग तथा देवतालोग), हीरा आदि (पक्षान्तरमें कूटस्थ-ब्रह्मभावापन्न लोग) भी जब श्रीहरिके उरःस्थलको छोड़ना नहीं चाहते, तब भला, स्मरवशा हम गोपाङ्गनाएँ उन भगवान्‌को कैसे छोड़ दें?' उस कौस्तुभमणिकी व्यापिनी साक्षात् प्रभाको ही श्रीवत्सके रूपमें भगवान् धारण करते हैं। दक्षिण वक्षःस्थलपर कमल-नाल-तन्तुके सदृश दक्षिणावर्त श्वेत रोमराजि 'श्रीवत्स' कही जाती है। वाम वक्षःस्थलपर वामावर्त सुवर्णवर्णा रोमराजि श्रीलाञ्छन लक्ष्मीका चिह्न है। एतावता भोक्तृवर्गका सार तथा भोग्यवर्गका सार क्रमशः श्री एवं श्रीवत्सके रूपमें भगवान्‌के वक्षःस्थलपर विराजमान है। ऐश्वर्याधिष्ठात्री महाशक्ति भगवती लक्ष्मी 'श्री' है। परमात्मकर्तृक गर्भाधानकी महिमासे श्रीप्रसूत जीव चैतन्यसार 'श्रीवत्स' है। श्री वाम वक्षःस्थलमें और श्रीवत्स दक्षिण वक्षःस्थलमें है और बीचमें भृगुचरण-चिह्न है। एतावता विप्रचरणारविन्दका समादरपूर्वक सेवन करनेसे ही श्री एवं श्रीवत्सकी प्राप्ति सूचित होती है। नाना गुणमयी त्रिगुणात्मिका माया ही 'वनमाला' है। परम सौगन्ध्य तथा अनेक रंगके तुलसी, कुन्द, मन्दार, पारिजात एवं सरोरुहोंसे विरचित माला त्रिगुणात्मिका प्रकृतिके ही मनोहर पुष्पोंकी बनी समझनी चाहिये। छन्दःसमूह ही भगवान्‌का 'पीताम्बर' है। जैसे छन्दोंसे भगवान्‌का स्वरूप चमत्कृत एवं शोभित होता है, वैसे ही पीताम्बरसे भगवान्‌का स्वरूप चमत्कृत एवं सुशोभित होता है। किन्हीं-किन्हीं स्थानोंपर मोहिनी मायाको ही 'पीताम्बर' बतलाया गया है। जैसे मायाकी निजी चमक-दमकसे ब्रह्मस्वरूप तिरोहित हो जाता है, वैसे ही पीताम्बरसे भगवान्‌का मङ्गलमय श्रीअङ्ग आवृत रहता है। मायाके चाक्यचिक्यसे अनासक्त एवं अप्रभावित ही जैसे भगवत्स्वरूपको जानता है, वैसे ही पीताम्बरकी चमक-दमकको पार करनेपर ही भगवत्स्वरूपका उपलम्भ होता है। छन्दोंको पहले छादक भी बतलाया गया है।

त्रिवृत् अर्थात् त्रिमात्र प्रणव ही भगवान्‌का उपवीत है। सांख्य एवं योगको भगवान्‌ने मकराकृत कुण्डलके रूपमें कानोंमें धारण कर रखा है। पारमेष्ठ्य-पद ही भगवान्‌का मुकुट है। अनन्त नामक अव्याकृत ही भगवान्‌का आसन है। प्रकृतिरूप कारण-देहाभिमानी समष्टि चैतन्य ही

'अव्याकृत' कहलाता है। उसीको 'शेष' भी कहा जाता है। कार्य-प्रपञ्चके प्रलय हो जानेपर जो अवशिष्ट रहता है, वही 'शेष' है। उन अनन्त शेषरूप अव्याकृतपर ही चतुर्भुज-मूर्ति भगवान् विष्णु विराजते हैं। यों भी अव्याकृतके ऊपर ही कार्य-कारणातीत तुरीयतत्त्व विद्यमान रहता है। चतुर्वर्गप्रद, चतुर्वेदात्मा, चतुर्युगस्वरूप एवं चतुरस्र भगवान्‌की चार भुजाएँ हैं। एक हाथमें वे धर्म-ज्ञानादियुक्त सत्त्वमय पद्मको धारण किये हैं। पद्मकी-सी ही सुन्दरता, मधुरता, सरसता, सुगन्धता धर्मादिमय सत्त्वमें होती है। ओजो-बलादियुक्त प्राणतत्त्व ही भगवान्‌की गदा है। उन्होंने जलतत्त्वको शङ्खके रूपमें एवं तेजस्तत्त्वको सुदर्शनके रूपमें दो हाथोंमें धारण कर रखा है। वे आकाशतत्त्वको ही तलवार एवं अन्धकारको ही चर्म (ढाल) के रूपमें, कालको शार्ङ्गधनुषके रूपमें तथा कर्मोंको ही निषङ्गके रूपमें धारण करते हैं। इन्द्रियाँ ही भगवान्‌के तूणीरोंमें रहनेवाले बाण हैं, क्रियाशक्तियुक्त मन ही रथ है, शब्दादि पञ्च-तन्मात्राएँ इस रथका अभिव्यक्त रूप हैं। जैसे रथारूढ़ होकर व्यक्ति तूणीरसे बाण निकालकर धनुषपर रखकर संधान करता है, वैसे ही क्रियाशक्तियुक्त मनपर आरूढ़ होकर प्रत्यक्‌चैतन्याभिन्न भगवान् ही कालरूप धनुषपर इन्द्रियोंको प्रतिष्ठित करके उनका संधान करते हैं। वर, अभय आदिकी मुद्राओंके रूपमें भगवान् अर्थ-क्रिया (प्रयोजन-सम्पत्ति)को धारण करते हैं। देव-पूजा योग्यता-सम्पत्ति है, भगवान्‌की परिचर्या ही अपने सम्पूर्ण दुरितोंके क्षयका कारण है। भग-शब्दार्थ—ऐश्वर्यादि षाड्गुण्य ही भगवान्‌के श्रीहस्तमें विराजमान लीलाकमल है। इस दृष्टिसे प्रथम वर्णित कमल आसनभूत कमल है। धर्म और यश ही भगवान्‌के ऊपर डुलनेवाला चमर और व्यजन हैं, अकुतोभय वैकुण्ठधाम ही छत्र है, वेदत्रयीरूप गरुड़ ही यज्ञस्वरूप भगवान्‌के वाहन हैं, ऋग्यजुःसाम—इन्हीं तीनों वेदोंसे ही यज्ञकी सम्पन्नता होती है; अतः वेदात्मा ही गरुड़ है। यज्ञस्वरूप विष्णु ही उनपर विराजमान होकर चलते हैं। चिद्रूपा भगवती शक्ति ही भगवत्प्रिया लक्ष्मी हैं, भगवदुपासना-विधायक पञ्चरात्रादि आगम ही पार्षदाधिप विष्वक्सेन हैं। अणिमा, महिमा आदि अष्ट विभूतियाँ ही भगवान्‌के नन्द-सुनन्दादि पार्षद हैं। वासुदेव-संकर्षण-प्रद्युम्न-अनिरुद्धरूपसे विराट्-हिरण्यगर्भ-अव्याकृत अथवा तुरीय-विश्व-तैजस-प्राज्ञ-तुरीयादि रूपमें उन्हीं चतुर्व्यूह, चतु-र्मूर्ति भगवान्‌का स्वरूप वर्णित है। ये भगवान् वेदोंके भी कारण हैं। स्वयंदृक् एवं स्वमहिमपूर्ण हैं। परमार्थतः सर्वविध-भेद-विवर्जित होनेपर भी भगवान् अपनी शक्तिभूता मायासे ही विश्वका उत्पादन, पालन एवं संहरण करते हैं; अतएव ब्रह्मरूप विष्णु इन आख्याओं (नामों)से अनाच्छन्न ज्ञात होते हुए भी विभिन्न रूपोंमें प्रतीत होते हैं। फिर भी वे वस्तुतः भिन्न नहीं हैं; क्योंकि तत्त्वदर्शी विद्वानोंको आत्म-रूपसे ही भगवान्‌का उपलम्भ होता है।

श्रीविष्णुसहस्रनामके पाठसे श्रीविष्णुकी कृपा-प्राप्ति

(ब्रह्मलीन स्वामी श्रीएकरसानन्दजी सरस्वती महाराज)

मैं पहले सी० पी० (मध्यप्रान्त) के एक छोटे-से गाँवमें रहता था। बाल्यावस्थामें ही मुझको ईश्वरसे प्रेम था, अतएव साक्षर होनेके बादसे नित्य ही मैं श्रीविष्णुसहस्रनामका पाठ करके ही भोजन करता था। जब मेरी अवस्था सोलह वर्षकी हुई, तब एक रातको मैंने स्वप्नमें देखा कि एक तेजस्वी वृद्ध महात्मा तपस्वी-वेषमें मेरे सामने खड़े हैं और मुझसे कह रहे हैं—'जिनके नामोंका तू नित्य पाठ करता है, वह विष्णु मैं ही हूँ। मैं सदा अपने भक्तोंकी रक्षा करता हूँ। आज अभी दो घंटेके बाद तुम्हारे गाँवमें आग लगेगी। तुम जल्दीसे अपना माल-असबाब एक बैलगाड़ीपर लाद लो और गाँवके बाहर चले जाओ।' इतनेमें मेरी नींद टूट गयी। ऐसी बातोंपर पहलेसे विश्वास था ही, अतएव मुझको प्रसन्नता हुई कि प्रभुने दर्शन देकर मुझे विपत्तिसे बचा लिया। मैंने झटपट अपना माल-असबाब बैलगाड़ीपर लादा तथा गाँवके बाहर चला गया। इस बातको मैंने गाँवके अन्य भाइयोंसे भी कहा, परंतु किसीने मेरी नहीं सुनी। थोड़ी देर बाद सचमुच धाँय-धाँय करके गाँव जल उठा। आगकी लपटें आकाशको छूने लगीं। हाहाकार मच गया! आग बुझानेका बहुत प्रयत्न हुआ, लेकिन हवाके जोरसे सब स्वाहा हो गया। उस समय मेरी आँखोंमें आँसू थे, परंतु भगवान्‌की कृपाका स्मरण करके मैं फूला न समाता था।

भगवान् विष्णु, शिव और ब्रह्मा तत्त्वतः एक ही हैं

(ब्रह्मलीन परमश्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

विज्ञानानन्दघन परमात्माके वेदोंमें दो स्वरूप माने गये हैं। प्रकृतिरहित ब्रह्मको 'निर्गुण-ब्रह्म' कहा गया है और जिस स्वरूपमें प्रकृति या त्रिगुणमयी माया है, उस प्रकृतिसहित ब्रह्मके स्वरूपको 'सगुण' कहते हैं। सगुण-ब्रह्मके भी दो भेद माने गये हैं—एक निराकार, दूसरा साकार। निराकार-सगुण-ब्रह्मको ही 'महेश्वर', 'परमेश्वर' आदि नामोंसे पुकारा जाता है। वे ही सर्वव्यापी निराकार सृष्टिकर्ता परमेश्वर स्वयं ब्रह्मा, विष्णु, महेश—इन तीनों रूपोंमें प्रकट होकर सृष्टिकी उत्पत्ति, पालन और संहार किया करते हैं। इस प्रकार पाँच रूपोंमें विभक्त से हुए परात्पर परब्रह्म परमात्माको ही शिवके उपासक 'सदाशिव', विष्णुके उपासक 'महाविष्णु' और शक्तिके उपासक 'महाशक्ति' आदि नामोंसे पुकारते हैं। श्रीशिव, विष्णु, ब्रह्मा, शक्ति, राम, कृष्ण आदि सभीके सम्बन्धमें ऐसे प्रमाण मिलते हैं। शिवके उपासक नित्य विज्ञानानन्दघन निर्गुण ब्रह्मको सदाशिव; सर्वव्यापी, निराकार, सगुण ब्रह्मको महेश्वर; सृष्टिके उत्पन्न करनेवालेको ब्रह्मा, पालनकर्ताको विष्णु और संहारकर्ताको रुद्र कहते हैं और इन पाँचोंको ही शिवका रूप बतलाते हैं। भगवान् विष्णुके प्रति भगवान् महेश्वर कहते हैं—

त्रिधा भिन्नो ह्यहं विष्णो ब्रह्मविष्णुहराख्यया।
सर्गरक्षालयगुणैर्निष्कलोऽपि सदा हरे॥

× × ×

यथा च ज्योतिषः सङ्गाज्जलादेः स्पर्शता न वै।
तथा ममागुणस्यापि संयोगाद्बन्धनं न हि॥

× × ×

यथैकस्या मृदो भेदो नानापात्रे न वस्तुतः।
कारणस्यैव कार्ये च संनिधानं निदर्शनम्॥

× × ×

एवं ज्ञात्वा भवद्भ्यां च न दृश्यं भेदकारणम्॥
वस्तुतः सर्वदृश्यं च शिवरूपं मतं मम।
अहं भवानजश्चैव रुद्रो योऽयं भविष्यति॥
एकरूपा न भेदस्तु भेदे वै बन्धनं भवेत्।
तथापि च मदीयं हि शिवरूपं सनातनम्॥
मूलीभूतं सदोक्तं च सत्यं ज्ञानमनन्तकम्॥

(शिव०, रुद्र०, सृष्टि० ९। २८, ३२, ३६—४०)

'विष्णो! हरे!! मैं स्वभावसे अखण्ड होता हुआ भी संसारकी रचना, स्थिति एवं प्रलयके लिये रजः-सत्त्व आदि गुणोंसे क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र—इन नामोंके द्वारा तीन रूपोंमें विभक्त हो रहा हूँ।' 'जिस प्रकार जलादिके संसर्गसे अर्थात् उनमें प्रतिबिम्ब पड़नेसे सूर्य आदि ज्योतियोंका उन जलादिके साथ सम्पर्क नहीं होता, उसी प्रकार मुझ निर्गुणका भी गुणोंके संयोगसे बन्धन नहीं होता।' 'मिट्टीके नाना प्रकारके पात्रोंमें केवल नाम और आकारका ही भेद है, वास्तविक भेद नहीं है—एक मिट्टी ही है। कार्यमें कारणकी स्थिति ही इसका प्रमाण है।

× × ×

यह समझकर आपलोगोंको भेदका कोई कारण नहीं देखना चाहिये। वस्तुतः सम्पूर्ण दृश्य-पदार्थ शिवरूप ही हैं, ऐसा मेरा मत है। मैं, आप, ये ब्रह्माजी और आगे चलकर मेरी जो रुद्रमूर्ति उत्पन्न होगी—ये सब एकरूप ही हैं; इनमें कोई भेद नहीं है। भेद ही बन्धनका कारण है। फिर भी यहाँ मेरा यह शिवरूप नित्य, सनातन एवं सबका मूल स्वरूप कहा गया है। यही सत्य, ज्ञान एवं अनन्तरूप गुणातीत परब्रह्म है।'

साक्षात् महेश्वरके इन वचनोंसे उनका 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म'—नित्य विज्ञानानन्दघन निर्गुणरूप, सर्वव्यापी-सगुण-निराकाररूप और ब्रह्मा-विष्णु-रुद्ररूप—ये पाँचों सिद्ध होते हैं। ये ही पञ्चवक्त्र सदाशिव हैं।

इसी प्रकार श्रीविष्णुके उपासक निर्गुण परात्पर ब्रह्मको 'महाविष्णु'; सर्वव्यापी, निराकार, सगुण ब्रह्मको 'वासुदेव' तथा सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले रूपोंको क्रमशः 'ब्रह्मा', 'विष्णु' और 'महेश' कहते हैं। महर्षि पराशर भगवान् विष्णुकी स्तुति करते हुए कहते हैं—

अविकाराय शुद्धाय नित्याय परमात्मने।
सदैकरूपरूपाय विष्णवे सर्वजिष्णवे॥
नमो हिरण्यगर्भाय हरये शंकराय च।
वासुदेवाय ताराय सर्गस्थित्यन्तकारिणे॥
एकानेकस्वरूपाय स्थूलसूक्ष्मात्मने नमः।
अव्यक्तव्यक्तरूपाय विष्णवे मुक्तिहेतवे॥

सर्गस्थितिविनाशानां जगतो यो जगन्मयः।
मूलभूतो नमस्तस्मै विष्णवे परमात्मने॥
आधारभूतं विश्वस्याप्यणीयांसमणीयसाम्।
प्रणम्य सर्वभूतस्थमच्युतं पुरुषोत्तमम्॥
(विष्णुपुराण १।२।१—५)

'निर्विकार, शुद्ध, नित्य, परमात्मा, सर्वदा एकरूप, सर्वविजयी, हरि, हिरण्यगर्भ, शंकर एवं वासुदेव आदि नामोंसे प्रसिद्ध, संसार-तारक, विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति तथा लयके कारण, एक और अनेक स्वरूपवाले, स्थूल-सूक्ष्म—उभयात्मक, व्यक्ताव्यक्तस्वरूप एवं मुक्तिदाता भगवान् विष्णुको मेरा बारंबार नमस्कार है। जो जगन्मय भगवान् इस संसारकी उत्पत्ति, पालन एवं विनाशके मूल कारण हैं, उन सर्वव्यापी भगवान् वासुदेव परमात्माको मेरा नमस्कार है। विश्वाधार, अत्यन्त सूक्ष्मसे भी अति सूक्ष्म, सर्वभूतोंके अंदर रहनेवाले, अच्युत पुरुषोत्तम भगवान्‌को मेरा प्रणाम है।'

यहाँ अव्यक्तसे निर्विकार, नित्य, शुद्ध परमात्माका निर्गुण स्वरूप समझना चाहिये। व्यक्तसे सगुण स्वरूप समझना चाहिये। उस सगुणके भी स्थूल और सूक्ष्म—दो स्वरूप बतलाये गये हैं। यहाँ सूक्ष्मसे सर्वव्यापी भगवान् वासुदेवको समझना चाहिये, जो ब्रह्मा, विष्णु और महेशके भी मूल-कारण हैं एवं सूक्ष्मसे भी अति सूक्ष्म पुरुषोत्तम-नामसे बतलाये गये हैं। तथा स्थूलस्वरूप यहाँ संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और लय करनेवाले ब्रह्मा, विष्णु और महेशके वाचक हैं, जो हिरण्यगर्भ, हरि और शंकरके नामसे कहे गये हैं। इन्हीं सब वचनोंसे श्रीविष्णुभगवान्‌के उपर्युक्त पाँचों रूप सिद्ध होते हैं।

इसी प्रकार भगवती महाशक्तिकी स्तुति करते हुए देवगण कहते हैं—

सृष्टिस्थितिविनाशानां शक्तिभूते सनातनि।
गुणाश्रये गुणमये नारायणि नमोऽस्तु ते॥
(मार्कण्डेय० ९१।१०)

'ब्रह्मा, विष्णु और महेशके रूपसे सृष्टिकी उत्पत्ति, पालन और विनाश करनेवाली हे सनातनी शक्ति! हे गुणाश्रये! हे गुणमयी नारायणी देवी! तुम्हें नमस्कार हो।'

स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—

त्वमेव सर्वजननी मूलप्रकृतिरीश्वरी।
त्वमेवाद्या सृष्टिविधौ स्वेच्छया त्रिगुणात्मिका॥
कार्यार्थे सगुणा त्वं च वस्तुतो निर्गुणा स्वयम्।
परब्रह्मस्वरूपा त्वं सत्या नित्या सनातनी॥
तेजस्स्वरूपा परमा भक्तानुग्रहविग्रहा।
सर्वस्वरूपा सर्वेशा सर्वाधारा परात्परा॥
सर्वबीजस्वरूपा च सर्वपूज्या निराश्रया।
सर्वज्ञा सर्वतोभद्रा सर्वमङ्गलमङ्गला॥
(ब्रह्मवै०, प्रकृति० ६६।७—११)

'तुम्हीं विश्वजननी, मूल-प्रकृति ईश्वरी हो; तुम्हीं सृष्टिकी उत्पत्तिके समय आद्याशक्तिके रूपमें विराजमान रहती हो और स्वेच्छासे त्रिगुणात्मिका बन जाती हो। यद्यपि वस्तुतः तुम स्वयं निर्गुण हो, तथापि प्रयोजनवश सगुण हो जाती हो। तुम परब्रह्मस्वरूपा, सत्या, नित्या एवं सनातनी हो; परमतेजःस्वरूप और भक्तोंपर अनुग्रह करनेके हेतु शरीर धारण करनेवाली हो; तुम सर्वस्वरूपा, सर्वेश्वरी, सर्वाधारा एवं परात्परा हो। तुम सर्वबीजस्वरूपा, सर्वपूज्या एवं आश्रयरहित हो। तुम सर्वज्ञा, सब प्रकारसे मङ्गल करनेवाली एवं सर्व-मङ्गलोंका भी मङ्गल हो।'

ऊपरके उद्धरणसे महाशक्तिका विज्ञानानन्दघनस्वरूपके साथ ही सर्वव्यापी सगुण ब्रह्म एवं सृष्टिके उत्पत्ति, पालन और विनाशके लिये ब्रह्मा, विष्णु और शिवके रूपमें होना सिद्ध है।

इसी प्रकार ब्रह्माजीके विषयमें कहा गया है—

जय देवाधिदेवाय त्रिगुणाय सुमेधसे।
अव्यक्तजन्मरूपाय कारणाय महात्मने॥
एतत्त्रिभावभावाय उत्पत्तिस्थितिकारक।
रजोगुणगुणाविष्ट सृजसीदं चराचरम्॥
सत्त्वपाल महाभाग तमः संहरसेऽखिलम्।
(देवीपुराण ८३।१३—१५)

'आपकी जय हो! उत्तम बुद्धिवाले, अव्यक्त-व्यक्तरूप, त्रिगुणमय, सबके कारण, विश्वकी उत्पत्ति, पालन एवं संहार करनेवाले ब्रह्मा, विष्णु और महेशरूप तीनों भावोंसे भावित होनेवाले महात्मा देवाधिदेव ब्रह्मदेवके लिये नमस्कार है। हे महाभाग! आप रजोगुणसे आविष्ट होकर हिरण्य-गर्भरूपसे चराचर संसारको उत्पन्न करते हैं तथा सत्त्वगुणयुक्त होकर विष्णुरूपसे पालन करते हैं एवं तमोमूर्ति धारण करके रुद्ररूपसे सम्पूर्ण संसारका संहार करते हैं।'

उपर्युक्त वचनोंसे ब्रह्माजीके भी परात्पर ब्रह्मसहित पाँचों रूपोंका होना सिद्ध होता है। अव्यक्तसे तो परात्पर परब्रह्म-

स्वरूप एवं कारणसे सर्वव्यापी, निराकार सगुणरूप तथा उत्पत्ति, पालन और संहारकारक होनेसे ब्रह्मा, विष्णु, महेशरूप होना सिद्ध होता है।

इसी तरह भगवान् श्रीरामके प्रति भगवान् शिवके वाक्य हैं—

एकस्त्वं पुरुषः साक्षात् प्रकृतेः पर ईर्यसे।
यः स्वांशकलया विश्वं सृजस्यवसि हंसि च॥
अरूपस्त्वमशेषस्य जगतः कारणं परम्।
एक एव त्रिधा रूपं गृह्णासि कुहकान्वितः॥
सृष्टौ विधातृरूपस्त्वं पालने स्वप्रभामयः।
प्रलये जगतः साक्षादहं शर्वाख्यतां गतः॥
(पद्म०, पाताल० ४६। ६—८)

'आप प्रकृतिसे अतीत साक्षात् अद्वितीय पुरुष कहे जाते हैं, जो अपनी अंशकलाके द्वारा ब्रह्मा-विष्णु-रुद्ररूपसे क्रमशः विश्वकी उत्पत्ति, पालन एवं संहार करते हैं। आप अरूप होते हुए भी अखिल विश्वके परम कारण हैं। आप एक होते हुए भी माया-संवलित होकर त्रिविध रूप धारण करते हैं। संसारकी सृष्टिके समय आप ब्रह्मारूपसे प्रकट होते हैं, पालनके समय स्वप्रभामय विष्णुरूपसे व्यक्त होते हैं और प्रलयके समय मुझ शर्व (रुद्र) का रूप धारण कर लेते हैं।'

श्रीरामचरितमानसमें भी भगवान् शंकरने पार्वतीजीसे भगवान् श्रीरामके सम्बन्धमें कहा है—

अगुन अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेम बस सगुन सो होई॥
जो गुन रहित सगुन सोइ कैसें। जलु हिम उपल बिलग नहिं जैसें॥
× × ×
राम सच्चिदानंद दिनेसा। नहिं तहँ मोह निसा लवलेसा॥
× × ×
राम ब्रह्म ब्यापक जग जाना। परमानंद परेस पुराना॥
(१। ११५ की चौपाइयाँ)

इसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्णके परब्रह्म परमात्मा होनेका विविध ग्रन्थोंमें उल्लेख है। ब्रह्मवैवर्तपुराणमें कहा है कि 'एक महासर्गके आदिमें भगवान् श्रीकृष्णके दिव्य अङ्गोंसे भगवान् नारायण और भगवान् शिव तथा अन्यान्य सब देवी-देवता प्रादुर्भूत हुए।' वहाँ श्रीशिवजीने भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति करते हुए कहा है—

विश्वं विश्वेश्वरेशं च विश्वेशं विश्वकारणम्।
विश्वाधारं च विश्वस्थं विश्वकारणकारणम्॥
विश्वरक्षाकारणं च विश्वघ्नं विश्वजं परम्।
फलबीजं फलाधारं फलं च तत्फलप्रदम्॥
(ब्रह्मवै०, सृष्टि० ३। २४-२५)

'आप विश्वरूप हैं, विश्वके स्वामी हैं, विश्वके स्वामियोंके भी स्वामी हैं, विश्वके कारण हैं—नहीं-नहीं, विश्वके कारणके भी कारण हैं, विश्वके आधार हैं, विश्वमें (अन्तर्यामीरूपसे) स्थित हैं, विश्वरक्षक हैं, विश्वका संहार करनेवाले हैं और नानारूपोंसे विश्वमें आविर्भूत होते हैं। आप फलोंके बीज हैं, फलोंके आधार हैं, फलस्वरूप हैं और फलदाता हैं।'

गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने स्वयं भी अपने लिये श्रीमुखसे कहा है—

ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च।
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च॥
(१४। २७)

गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत्।
प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम्॥
तपाम्यहमहं वर्षं निगृह्णाम्युत्सृजामि च।
अमृतं चैव मृत्युश्च सदसच्चाहमर्जुन॥
(९। १८-१९)

मत्तः परतरं नान्यत् किंचिदस्ति धनंजय।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव॥
(७। ७)

यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम्।
असम्मूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते॥
(१०। ३)

'अर्जुन! उस अविनाशी परब्रह्मका और अमृतका तथा नित्य धर्मका एवं अखण्ड एकरस आनन्दका मैं ही आश्रय हूँ। अर्थात् उपर्युक्त अविनाशी ब्रह्म, अमृत और शाश्वत-धर्म तथा ऐकान्तिक सुख—यह सब मैं ही हूँ।'

प्राप्त होनेयोग्य, भरण-पोषण करनेवाला, सबका स्वामी, शुभाशुभका देखनेवाला, सबका वासस्थान, आश्रय, प्रत्युपकार न चाहकर हित करनेवाला, उत्पत्ति-प्रलयरूप, सबका आधार, निधान * और अविनाशी कारण भी मैं ही हूँ। मैं ही सूर्यरूपसे तपता हूँ तथा वर्षाको आकर्षण करता हूँ और

* प्रलयकालमें सम्पूर्ण भूत सूक्ष्मरूपसे जिसमें लय होते हैं, उसका नाम 'निधान' है।

बरसाता हूँ एवं हे अर्जुन ! अमृत और मृत्यु एवं सत् और असत्—सब कुछ मैं ही हूँ ।'

'हे धनंजय ! मेरे सिवा किंचिन्मात्र भी दूसरी वस्तु नहीं है । यह सम्पूर्ण जगत् सूत्रमें सूत्रके मणियोंके सदृश मुझमें गुँथा हुआ है ।'

'जो मुझको अजन्मा (वास्तवमें जन्मरहित), अनादि* तथा लोकोंका महान् ईश्वर तत्त्वसे जानता है, वह मनुष्योंमें ज्ञानवान् पुरुष सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाता है ।'

ऊपरके इन अवतरणोंसे यह सिद्ध हो गया कि भगवान् श्रीशिव, विष्णु, ब्रह्मा, शक्ति, राम, कृष्ण तत्त्वतः एक ही हैं । इस विवेचनपर दृष्टि डालकर विचार करनेसे यही निष्कर्ष निकलता है कि सभी उपासक एक सत्य विज्ञानानन्दघन परमात्माको मानकर सच्चे सिद्धान्तपर ही चल रहे हैं । नाम-रूपका भेद है, परंतु वस्तु-तत्त्वमें कोई भेद नहीं । सबका लक्ष्यार्थ एक ही है । ईश्वरको इस प्रकार सर्वोपरि, सर्वव्यापी, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, निर्विकार, नित्य, विज्ञानानन्दघन समझकर शास्त्र और आचार्योंके बतलाये हुए मार्गके अनुसार किसी भी नाम-रूपसे उसकी जो उपासना की जाती है, वह उस एक ही परमात्माकी उपासना है ।

विज्ञानानन्दघन, सर्वव्यापी परमात्मा शिवके उपर्युक्त तत्त्वको न जाननेके कारण ही कुछ शिवोपासक भगवान् विष्णुकी निन्दा करते हैं और कुछ वैष्णव भगवान् शिवकी निन्दा करते हैं । कोई-कोई यदि निन्दा और द्वेष नहीं भी करते तो प्रायः उदासीन-से तो रहते ही हैं । परंतु इस प्रकारका व्यवहार वस्तुतः ज्ञानरहित समझा जाता है । यदि यह कहा जाय कि इस प्रकार न करनेसे एकनिष्ठ अनन्य उपासनामें दोष आता है, तो वह ठीक नहीं है । जैसे पतिव्रता स्त्री एकमात्र अपने पतिको ही इष्ट मानकर उसके आज्ञानुसार उसकी सेवा करती हुई, पतिके माता-पिता, गुरुजन तथा अतिथि-अभ्यागत और पतिके अन्यान्य सम्बन्धियों और प्रेमी बन्धुओंकी भी पतिके आज्ञानुसार पतिकी प्रसन्नताके लिये यथोचित आदरभावसे मन लगाकर विधिवत् सेवा करती है और ऐसा करती हुई भी वह अपने एकनिष्ठ पातिव्रत्य-धर्मसे जरा भी न गिरकर उल्टे शोभा और यशको प्राप्त होती है (वास्तवमें दोष पाप-बुद्धि, भोग-बुद्धि और द्वेष-बुद्धिमें है अथवा व्यभिचार और शत्रुतामें है, यथोचित वैध सेवा तो कर्तव्य है), उसी प्रकार परमात्माके किसी एक नाम-रूपको अपना परम इष्ट मानकर उसकी अनन्यभावसे भक्ति करते हुए ही अन्यान्य देवोंकी भी अपने इष्टदेवके आज्ञानुसार उसी स्वामीकी प्रीतिके लिये श्रद्धा और आदरके साथ यथायोग्य सेवा करनी चाहिये । उपर्युक्त अवतरणोंके अनुसार जब एक नित्य विज्ञानानन्दघन ब्रह्म ही है तथा वास्तवमें उनसे भिन्न कोई दूसरी वस्तु है ही नहीं, तब किसी एक नाम-रूपसे द्वेष या उसकी निन्दा, तिरस्कार और उपेक्षा करना उस परब्रह्मसे ही वैसा व्यवहार करना है । कहीं भी श्रीशिव या श्रीविष्णुने या श्रीब्रह्माने एक दूसरेकी न तो निन्दा आदि की है और न निन्दा आदि करनेके लिये किसीसे कहा ही है; बल्कि निन्दा आदिका निषेध और तीनोंको एक माननेवालेकी प्रशंसा ही की है । शिवपुराणमें कहा गया है—

एते परस्परोत्पन्ना धारयन्ति परस्परम् ।
परस्परेण वर्धन्ते परस्परमनुव्रताः ॥
क्वचिद्ब्रह्मा क्वचिद्विष्णुः क्वचिद्रुद्रः प्रशस्यते ।
नानेव तेषामाधिक्यमैश्वर्यं चातिरिच्यते ॥
अयं परस्त्वयं नेति संरम्भाभिनिवेशिनः ।
यातुधाना भवन्त्येव पिशाचा वा न संशयः ॥

'ये (ब्रह्मा, विष्णु और शिव) एक दूसरेसे उत्पन्न हुए हैं, एक दूसरेको धारण करते हैं, एक दूसरेके द्वारा वृद्धिगत होते हैं और एक दूसरेके अनुकूल आचरण करते हैं । कहीं ब्रह्माकी प्रशंसा की जाती है, कहीं विष्णुकी और कहीं महादेवकी । उनका उत्कर्ष एवं ऐश्वर्य एक दूसरेकी अपेक्षा इस प्रकार अधिक कहा गया है, जैसे वे अनेक हों । जो संशयात्मा मनुष्य यह विचार करते हैं कि अमुक बड़ा है और अमुक छोटा है, वे अगले जन्ममें राक्षस अथवा पिशाच होते हैं, इसमें कोई संदेह नहीं है ।'

स्वयं भगवान् शिव श्रीविष्णुभगवान्से कहते हैं—

मद्दर्शने फलं यद्वै तदेव तव दर्शने ।
ममैव हृदये विष्णुर्विष्णोश्च हृदये ह्यहम् ॥
उभयोरन्तरं यो वै न जानाति मतो मम ।
(शिव०, रुद्र०, सृष्टि० ९ । ५४–५६)

* 'अनादि' उसको कहते हैं, जो आदिरहित हो और सबका कारण हो ।

'मेरे दर्शनका जो फल है, वही आपके दर्शनका है। आप विष्णु मेरे हृदयमें निवास करते हैं और मैं आप विष्णुके हृदयमें रहता हूँ। जो हम दोनोंमें भेद नहीं समझता, वही मुझे मान्य है।'

भगवान् श्रीराम भगवान् श्रीशिवसे कहते हैं—

ममासि हृदये शर्व भवतो हृदये त्वहम्।
आवयोरन्तरं नास्ति मूढाः पश्यन्ति दुर्धियः॥
ये भेदं विदधत्यद्धा आवयोरेकरूपयोः।
कुम्भीपाकेषु पच्यन्ते नराः कल्पसहस्रकम्॥
ये त्वद्भक्तास्त एवासन्मद्भक्ता धर्मसंयुताः।
मद्भक्ता अपि भूयस्या भक्त्या तव नतिंकराः॥

(पद्म०, पाताल० ४६। २०-२२)

'शंकर! आप मेरे हृदयमें रहते हैं और मैं आपके हृदयमें रहता हूँ। हम दोनोंमें कोई भेद नहीं है। मूर्ख एवं दुर्बुद्धि मनुष्य ही हमारे अंदर भेद समझते हैं। हम दोनों एकरूप हैं; जो मनुष्य हम दोनोंमें भेद-भावना करते हैं, वे हजार कल्पपर्यन्त कुम्भीपाक नरकोंमें यातनाएँ भोगते हैं। जो आपके भक्त हैं, वे धार्मिक पुरुष ही मेरे भक्त रहे हैं और जो मेरे भक्त हैं, वे प्रगाढ़ भक्तिसे आपको भी प्रणाम करते हैं।'

इसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण भी भगवान् श्रीशिवसे कहते हैं—

त्वत्परो नास्ति मे प्रेयांस्त्वं मदीयात्मनः परः।
ये त्वां निन्दन्ति पापिष्ठा ज्ञानहीना विचेतसः॥
पच्यन्ते कालसूत्रेण यावच्चन्द्रदिवाकरौ।
कृत्वा लिङ्गं सकृत्पूज्य वसेत्कल्पायुतं दिवि॥
प्रजावान् भूमिमान् विद्वान् पुत्रबान्धववांस्तथा।
ज्ञानवान्मुक्तिमान् साधुः शिवलिङ्गार्चनाद् भवेत्॥
शिवेति शब्दमुच्चार्य प्राणांस्त्यजति यो नरः।
कोटिजन्मार्जितात् पापान्मुक्तो मुक्तिं प्रयाति सः॥

(ब्रह्मवैवर्त०, ब्रह्म० ६। ३१-३२, ४५, ४७)

"मुझे आपसे बढ़कर कोई प्यारा नहीं है, आप मुझे अपनी आत्मासे भी अधिक प्रिय हैं। जो पापी, अज्ञानी एवं बुद्धिहीन पुरुष आपकी निन्दा करते हैं, वे जबतक चन्द्र और सूर्यका अस्तित्व रहेगा, तबतक 'कालसूत्र' नामक नरकमें पचते रहेंगे। जो शिवलिङ्गका निर्माण कर एक बार भी उसकी पूजा कर लेता है, वह दस हजार कल्पतक स्वर्गमें निवास करता है। शिवलिङ्गके अर्चनसे मनुष्यको संतान, भूमि, विद्या, पुत्र, बान्धव, श्रेष्ठता, ज्ञान एवं मुक्ति—सब कुछ प्राप्त हो जाता है। जो मनुष्य 'शिव' शब्दका उच्चारण कर शरीर छोड़ता है, वह करोड़ों जन्मोंके संचित पापोंसे छूटकर मुक्तिको प्राप्त हो जाता है।"

भगवान् विष्णु श्रीमद्भागवत (४। ७। ५४) में दक्षप्रजापतिके प्रति कहते हैं—

त्रयाणामेकभावानां यो न पश्यति वै भिदाम्।
सर्वभूतात्मनां ब्रह्मन् स शान्तिमधिगच्छति॥

'विप्र! हम तीनों एकरूप हैं और समस्त भूतोंकी आत्मा हैं। हमारे अंदर जो भेद-भावना नहीं करता, निस्संदेह वह शान्ति (मोक्ष) को प्राप्त होता है।'

श्रीरामचरितमानसमें भगवान् श्रीरामने कहा है—

संकर प्रिय मम द्रोही सिव द्रोही मम दास।
ते नर करहिं कलप भरि घोर नरक महुँ बास॥

(६। २)

औरउ एक गुपुत मत सबहि कहउँ कर जोरि।
संकर भजन बिना नर भगति न पावइ मोरि॥

(७। ४५)

ऐसी अवस्थामें जो मनुष्य दूसरेके इष्टदेवकी निन्दा या अपमान करता है, वह वास्तवमें अपने ही इष्टदेवका अपमान या निन्दा करता है। परमात्माकी प्राप्तिके पूर्वकालमें परमात्माका यथार्थ रूप न जाननेके कारण भक्त अपनी समझके अनुसार अपने उपास्यदेवका जो स्वरूप कल्पित करता है, वास्तवमें उपास्यदेवका स्वरूप उससे अत्यन्त विलक्षण है; तथापि उसकी अपनी बुद्धि, भावना तथा रुचिके अनुसार की हुई सच्ची और श्रद्धायुक्त उपासनाको परमात्मा सर्वथा सर्वांशमें स्वीकार करते हैं; क्योंकि ईश्वर-प्राप्तिके पूर्व ईश्वरका यथार्थ स्वरूप किसीके भी चिन्तनमें नहीं आ सकता। अतएव ईश्वरके किसी भी नाम-रूपकी निष्काम-भावसे उपासना करनेवाला पुरुष शीघ्र ही उस नित्य विज्ञानानन्दघन परमात्माको प्राप्त हो जाता है। हाँ, सकाम-भावसे उपासना करनेवालेको विलम्ब हो सकता है; तथापि सकामभावसे उपासना करनेवाला भी श्रेष्ठ और उदार ही माना गया है (गीता ७। १८); क्योंकि अन्तमें वह भी ईश्वरको ही प्राप्त होता है—

'मद्भक्ता यान्ति मामपि।' (गीता ७। २३)

श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदायमें भगवान् विष्णु

(लेखक—अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्य श्री'श्रीजी' श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्यजी महाराज)

अनन्त विश्व-ब्रह्माण्ड एवं निखिल चराचर प्राणियोंके एकमात्र अधिष्ठान, अभिन्न निमित्तोपादानकारण, सर्वाधार, सर्वनियन्ता, सर्वशक्तिमान्, वैकुण्ठाधिपति, रमानाथ भगवान् श्रीविष्णु हैं। 'संकल्पादेव तु तच्छ्रुतेः।' 'लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्।' (ब्रह्मसूत्र ४।४।८; २।१।३३) के अनुसार पुराण-पुरुषोत्तम श्रीमन्नारायणकी अचिन्त्य शक्ति अघटन-घटना-पटीयसी विश्वविमोहिनी मायाके संकल्पमात्रपर ही नाना लीला-विलासके निमित्त इस जगत्का सृजन, पालन और लय होते हैं।

विधि-शिव-पुरंदर-गन्धर्व-किंनर आदि समस्त स्वर्गलोक-वासी इन श्रीहरिकी आज्ञाका अनुवर्तन एवं उनके द्वारा विहित विधानका परिपालन सतर्कतापूर्वक यथाविधि निरन्तर करते हैं। नवनीरद-श्यामल, कमल-लोचन, लक्ष्मी-वल्लभ श्रीचतुर्भुज प्रभुके अनन्त अचिन्त्य स्वाभाविक निरतिशय ज्ञान-शक्ति-बल-ऐश्वर्य-तेज-वीर्य-सौशील्य-वात्सल्य-सौहार्द-सर्वशरण्यत्व-धैर्य-दया-सौन्दर्य-माधुर्य-लावण्य-मार्दव आदि निखिल कल्याणगुण-समूहसे आकृष्ट होकर निखिल लोक अपनी अतृप्त दृगुराशिसे उनका दर्शन करनेके लिये उत्कण्ठित रहते हैं। श्रुति-सूत्र-स्मृति-पुराण-तन्त्र आदि शास्त्र उनके गुण एवं स्वरूपका प्रतिपल वर्णन करते नहीं अघाते।

क्षीरशायी पद्मनाभ भगवान् विष्णुके ही संकेतमात्रसे इस असीम सृष्टिका समस्त कार्य स्वतः संचालित है। इन्हींके नाभिप्रदेशसे ब्रह्माकी उत्पत्ति एवं उन्हीं ब्रह्मासे ही लोकसर्जनका शुभारम्भ होता है। विधाताकी मानसिक सृष्टिमें प्रथम सनकादिक-नारद प्रभृति हैं। मनुके अनन्तर ही बिन्दु-सृष्टिका उपक्रम है। जब सनकादिकोंने पितामह ब्रह्मासे एक गूढ़तम प्रश्न (भा० ११।१३।१७में) पूछा, तब चतुरानन निगूढ़ भाव-संवलित इस रहस्यमय प्रश्नका यथार्थ समाधान करनेमें स्वयंको असमर्थ जानकर समाधिस्थ हो मन-ही-मन परमकरुणा-वरुणालय श्रीविष्णुभगवान्का चिन्तन करने लगे। तभी दयार्णव श्रीविष्णुने हंसरूपसे आविर्भूत होकर सनकादि महर्षियोंके जटिलतम प्रश्नका यथोचित समाधान कर पञ्चपदी-विद्यात्मक श्रीगोपालमन्त्रराजका उपदेश किया। वे ही हंस-स्वरूप श्रीनारायण श्रीनिम्बार्काचार्यभगवान्के परमाराध्य हैं। श्रीनिम्बार्क-परम्पराका श्रीहंसभगवान्से ही सूत्रपात होता है। उसी श्रीगोपालमन्त्रराजका उपदेश हंसभगवान्से श्रीसनकादिकोंको प्राप्त होनेपर देवर्षिवर्य श्रीनारदजीको भी मिला और वही मन्त्रराज देवर्षिके द्वारा सुदर्शन-चक्रावतार श्रीनिम्बार्काचार्य भगवान्को विधिवत् उपदिष्ट हुआ। इस परम्पराका संकेत स्वयं श्रीनिम्बार्कभगवान्ने स्वप्रणीत 'वेदान्त-पारिजात-सौरभ' नामक 'ब्रह्मसूत्र'-भाष्यमें एवं 'वेदान्त-कामधेनु-दशश्लोकी'में सम्यक् प्रकारसे किया है।

इससे श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदायमें भगवान् श्रीविष्णुकी आराधना सुप्रमाणित है। श्रीहंसभगवान्की अभिवन्दना करते हुए पूर्वाचार्योंने इसे और भी स्पष्ट कर दिया है—

हंसस्वरूपं रुचिरं विधाय यः सम्प्रदायस्य प्रवर्तनार्थम्।
स्वतत्त्वमाख्यात् सनकादिकेभ्यो नारायणं तं शरणं प्रपद्ये॥

'जिन्होंने हंसका स्वरूप धारणकर सम्प्रदायके प्रवर्तनके लिये सनकादिको अपने तत्त्वका उपदेश दिया, उन भगवान् नारायणकी मैं शरण ग्रहण करता हूँ।'

इसके अतिरिक्त श्रीमन्निम्बार्कभगवान्से परवर्ती पूर्वाचार्यों-द्वारा विरचित 'सविशेष-निर्विशेष-श्रीकृष्णस्तवराज'में भगवान् श्रीविष्णुकी अनिर्वचनीय मधुरिमा एवं अप्राकृत दिव्य महिमाका वर्णन बड़ी ही सरलतापूर्वक किया गया है—

तत्त्वमादिपदवाच्यविष्णवे जिष्णवेऽखिलगुरो भविष्णवे।
आत्मनां यमयते प्रतेजसे नौमि ते मधुरिपो महौजसे॥

'मधु-नामक राक्षस तथा मधु (शहद) के सदृश मधुर प्रतीत होनेवाले इस जागतिक विषय-विषके विनाशक प्रभो! ब्रह्मा-शंकरादि देवोंके भी पथ-प्रदर्शक! 'तत्' और 'त्वम्' आदि पदोंके वाच्य, सर्वव्यापी, सर्वविजयी, सर्वत्र विस्तार करनेवाले, जीवसमूह और उनके अन्तःकरणोंका नियन्त्रण करनेवाले, प्रखर तेज और अनन्तशक्तिसम्पन्न, रमानाथ श्रीविष्णुकी वन्दना करता हूँ।'

पूर्वोक्त प्रकारसे ही जगद्गुरु श्रीदेवाचार्यजी महाराजने 'श्रीसर्वेश्वरप्रपत्तिस्तोत्र'में एवं 'नवरत्नयमुनाष्टकस्तोत्र' में श्रीमन्नारायणपरक अपनी अद्भुत निष्ठा प्रकट की है—

हे नारायण नारसिंह नर हे लीलापते भूपते
पूर्णाचिन्त्यविचित्रशक्तिक विभो श्रीश क्षमासागर।

आनन्दामृतवारिधे वरद हे वात्सल्यरत्नाकर
त्वामाश्रित्य न कोऽपि याति जठरं तस्मात् भवात्तारय ॥
(श्रीसर्वेश्वरप्रपत्तिस्तोत्र ११)

'निखिल-आनन्दामृतके अगाध सागर, भक्त-अभिवाञ्छित वरको प्रदान करनेवाले, सर्वोत्कृष्ट वात्सल्य-भावके सिन्धु, अचिन्तनीय विचित्रशक्ति (सामर्थ्य)के केन्द्र, सर्वव्यापी, पूर्ण-ब्रह्म, विश्वपति, अप्राकृत-ललितलीलानिकेतन, क्षमासागर, नर एवं नृसिंहस्वरूप, लक्ष्मीप्राणवल्लभ हे नारायण विष्णो! आपके सर्वोच्च दिव्याश्रयको प्राप्तकर फिर कोई भी प्राणी जन्म धारण नहीं करता; अतएव हे भगवन्! मुझ शरणागतको इस भव-सागरसे पार करनेका अनुग्रह करें।'

हमारे सम्प्रदायके उपर्युक्त श्लोकद्वयके अतिरिक्त श्रीविष्णु-आराधनापरक शतशः संस्कृत श्लोक तथा भाषा-पद्यावली विद्यमान हैं। हमारे सिद्धान्तानुसार श्रीकृष्ण और श्रीविष्णु-में किसी भी प्रकारका विभेद अस्वीकृत है। इसीलिये तो जगद्विजयी श्रीकेशवकाश्मीरी भट्टाचार्यजीने स्वप्रणीत 'श्रीकृष्णशरणापत्तिस्तोत्र'में इसका सम्यक् दर्शन कराया है—

ब्रह्मण्यदेवजनवल्लभ दीनबन्धो
लक्ष्मीनिवास करुणालय कंसशत्रो।
वैकुण्ठनाथ धरणीधर धर्मरूप
त्रायस्व केशव हरे शरणागतं माम्॥
नारायणाव्यय विभो भवबन्धनाश
वेदान्तवेद्य यदुनन्दन विश्वरूप।
श्रीवत्सश्रीधर गदाधर शङ्खपाणे
त्रायस्व केशव हरे शरणागतं माम्॥
(श्रीकृष्णशरणापत्तिस्तोत्र २, ५)

'हे ब्राह्मणोंके भक्त, भक्तप्रेमी, दीनबन्धो, लक्ष्मीनिवास, करुणानिधान, कंसका उद्धार करनेवाले, वैकुण्ठपति, धरणीधर, धर्मरूप केशव! मुझ शरणागतकी रक्षा करो। हे अविनाशी, सर्वव्यापक, संसार-बन्धनका उच्छेद करनेवाले, वेदान्तवेद्य, विश्वरूप, नारायण-नामसे प्रसिद्ध यदुनन्दन, हे श्रीवत्स और लक्ष्मीको वक्षःस्थलपर धारण करनेवाले गदाधर! शङ्खपाणे केशव! मुझ शरणागतको उबार लो।'

अन्य ग्रन्थोंमें भी इस प्रकारके अनेक पद्य मिलते हैं, जहाँ श्रीकृष्ण-श्रीविष्णुमें एकरूपताकी अभिव्यक्ति स्पष्ट है। श्रीनिम्बार्कभगवान्के उत्तरवर्ती आचार्यचरणोंने पर्याप्तरूपेण श्रीविष्णुपरक उपासनाका विवेचन किया है तथा वैष्णवोंकी वैष्णवता भी तो इसीका ही बोध कराती है। वैष्णवोंके सभी कर्म-धर्म श्रीविष्णुमय ही होते हैं। इसी प्रसङ्गका महामधुर वर्णन श्रीपरशुरामदेवाचार्यजी महाराजने अपने विशाल 'श्रीपरशुरामसागर' नामक ग्रन्थमें किया है—

जलि बसै, थलि बसै, बृक्ष महीतल,
बसै प्रिथि सुर्ग पाताल में बिष्णु सोई।
सकल कुल बिष्णु बककीट पाषान में,
जत्र दीसैं तोहि तत्र बिष्णु होई॥
अरु बिष्णु मैं सकल सामानि है सम,
देखिये बिष्णु बिनु और दूजा ना कोई।
वो ही बिष्णु वैकुंठपति भयो व्यापक,
सकल लहै 'परसा' निजदास कोई॥
(श्रीपरशुरामचरितावलियाँ ख० १। पृ० ४४)

एवंविध अगणित पद्य हैं, जिनमें पूर्वाचार्यपाद एवं अनेक संत-विद्वानों तथा भगवद्रसिक भक्तोंने अपने संस्कृत एवं भाषा-ग्रन्थोंमें श्रीविष्णु-आराधनाको ही सर्वोत्कृष्ट बताया है तथा उसीके आराधनपर विशेष बल दिया है। वस्तुतः इस सकल व्यापक ब्रह्माण्डके एकमात्र बीजरूप वैकुण्ठाधिपति श्रीमन्नारायण भगवान् श्रीविष्णु हैं और ये ही श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदायके श्रीराधा-कृष्णरूपेण परम उपासनीय तत्त्व हैं।

श्रीविष्णु-अंशसे प्रेम और भक्ति होती है

शिवके अंशसे पैदा होनेपर मनुष्य ज्ञानी होता है; ब्रह्म सत्य है और संसार मिथ्या—इसी भावकी ओर उसका मन झुका रहता है। विष्णुके अंशसे पैदा होनेपर प्रेम और भक्ति होती है। वह प्रेम और वह भक्ति मिट नहीं सकती। ज्ञान और विचारके बाद वह प्रेम और भक्ति अगर घट जाय, तो किसी दूसरे समय बड़े जोरोंसे बढ़ जाती है।

—श्रीरामकृष्ण परमहंस

भगवान् विष्णुका अवतार-रहस्य

(लेखक—श्रीजगदाचार्यसिंहासनाधीश महामहिमोपाध्याय श्रीकाञ्ची-प्रतिवादिभयंकर अण्णङ्गराचार्यजी महाराज)

'अजायमानो बहुधा विजायते' (यजु० ३१ । १९) 'स उ श्रेयान् भवति जायमानः', 'पिता पुत्रेण पितृमान् योनियोनौ'—इत्यादि श्रुति-प्रमाणोंके अनुसार तथा 'बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।' (गीता ४ । ५) —अर्जुन ! मेरे और तुम्हारे अनेकों जन्म हो चुके हैं।' —इस गीतोक्त प्रमाणके अनुसार भगवान्‌के अवतार होते रहते हैं। इनमें मत्स्य-कूर्म आदि दस अवतार विशिष्ट हैं। उनमें भी—

दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च ।
रामो राज्यमुपासित्वा'''(वा० रा० १ । १ । ९८)

—ग्यारह हजार वर्षोंतक भूतलको अलंकृत करनेवाले दशरथनन्दन परमपुरुष श्रीरामका मनुष्याकृतिमें दिव्य अवतार सभी अन्य अवतारोंसे विशिष्ट है।

श्रीरामायणमें प्रायः इनका मनुष्यत्व ही प्रकटित होता है। अपने आश्रममें आये हुए देवर्षि नारदसे वेदविद्याश्रेष्ठ वाल्मीकि मुनिने कहा—'ज्ञातुमेवंविधं नरम्।''''परं कौतूहलं हि मे॥' (वा० रा० १ । १ । ५) अर्थात् इस प्रकारके मनुष्यको जाननेके लिये मुझे परम कौतूहल हो रहा है। उत्तर देते हुए नारदजीने भी कहा—'मुने वक्ष्याम्यहं बुद्ध्वा तैर्युक्तः श्रूयतां नरः॥' (वा० रा० १ । १ । ७) अर्थात् हे मुने ! मैं इन गुणोंसे युक्त एक मनुष्यको बतला रहा हूँ, सुनिये। जिस प्रकार नारदजीने श्रीरामको 'नर' कहा है, उसी प्रकार अनेक स्थानोंपर श्रीरामको 'नर-शार्दूल', 'नर-व्याघ्र' आदि कहा गया है। स्थान-स्थानपर श्रीरामका 'नर' रूपमें वर्णन देखकर प्रश्न होता है कि 'मानवाकारमें श्रीराम-नामक विशिष्ट व्यक्ति क्या विष्णु थे ?'

विभिन्न वर्णनोंके आधारपर श्रीराममें सर्वथा विशिष्ट मनुष्यत्वका ही बोध होता है; नारायण महाविष्णुने ही रामके रूपमें अवतार लिया है, यह प्रतिपादन करनेके लिये शीघ्र अवकाश नहीं मिलता। किंतु जो श्रीरामको मात्र-मानव मानते हैं, उन्हें अयोध्याकाण्डका प्रारम्भिक अंश देखना चाहिये। महर्षि वाल्मीकिजीने स्वयं स्पष्ट लिखा है—

स हि देवैरुदीर्णस्य रावणस्य वधार्थिभिः ।
अर्थितो मानुषे लोके जज्ञे विष्णुः सनातनः ॥
(वा० रा० २ । १ । ७)

अर्थात् परम प्रचण्ड रावणके वधकी इच्छासे प्रेरित देवताओंके द्वारा प्रार्थना किये जानेपर सनातन विष्णु-भगवान्‌ने मनुष्यलोकमें जन्म लिया। 'एतस्मिन्नन्तरे विष्णुरुपयातो महाद्युतिः' (वा० रा० १ । १५ । १६)—इत्यादिसे विष्णु ही देवताओंकी प्रार्थनाके लक्ष्य हैं, यह बहुत स्पष्ट है। रावणके वधके पश्चात् 'भवान्नारायणो देवः' (वा० रा० ६ । ११७ । १३) (आप भगवान् विष्णु हैं) यह कहते हुए देवताओंके सम्मुख 'आत्मानं मानुषं मन्ये रामं दशरथात्मजम्।'* (वा० रा० ६ । ११७ । ११)—कहते हुए श्रीरामचन्द्रजीने अपने नारायण होनेका खण्डन नहीं किया है। उनके इस वचनसे यही ध्वनित होता है कि सार्वभौम साक्षात् नारायण देवताने ही दाशरथि श्रीरामचन्द्रके रूपमें दिव्य अवतार लिया।

अब एक दूसरा विचार प्रस्तुत है। नारायणने राम-रूपमें क्यों अवतार लिया ? स्वयं भगवान्‌ने साधुओंका परित्राण, दुष्टोंका विनाश तथा धर्मकी स्थापनाको अपने अवतारका प्रयोजन बतलाया है। श्रीरामायणमें भी 'उदीर्णस्य रावणस्य वधार्थिभिः देवैः अर्थितः विष्णुः मानुषे लोके जज्ञे'—इस प्रकार रावणके वधको ही रामावतारका मुख्य प्रयोजन बतलाया गया है; तथापि विचार-विचक्षण लोगोंकी इतनेसे ही तृप्ति नहीं होती। संकल्पमात्रसे सृष्टि-संहार आदि कार्यमें समर्थ उन परम पुरुषके लिये हिरण्यकशिपु-हिरण्याक्ष-रावण-कंस एवं शिशुपाल-कौरवादि क्षुद्र प्राणियोंके संहारके लिये इस मनुष्यलोकमें अवतार लेनेकी क्या आवश्यकता थी ? साधुओंका परित्राण हो, दुष्ट विनाशको प्राप्त हों—इस संकल्पमात्रसे उनके लिये क्या कुछ भी दुस्साध्य था ? जिनको श्रुति 'आनन्दमय' कहती है, उनको नाना प्रकारके दुःखोंसे भरपूर मानवाकारमें जन्म लेनेकी समुत्कण्ठा कैसे उत्पन्न हुई ?

भगवान् श्रीरामानुजाचार्यके चरणोंमें बैठकर शिक्षा प्राप्त किये हुए गुरुवर श्रीकूरनाथद्वारा रचित 'काव्यरत्न'से एक श्लोक यहाँ उद्धृत किया जा रहा है—

* मैं अपनेको दशरथनन्दन रामके रूपमें मनुष्य ही मानता हूँ।

अनाप्तं ह्यासव्यं न तत्र किल किंचिद् वरद ते
जगज्जन्मस्थेमप्रलयविधयो लीविलसितम्।
तथापि क्षोदीयस्सुरनरकुलेष्वाश्रितजनान्
समाश्लेष्टुं पेष्टुं तदसुखकृतां चावतरसि ॥

इसका भाव यह है कि सत्य ही भगवान् सर्वथा आप्तकाम हैं और उनके संकल्पमात्रसे जगत्की सृष्टि-स्थिति-संहारके कार्य होते रहते हैं; तथापि उनका अति क्षुद्र सुर-नर-कुलमें अवतार अपने आश्रितजनोंके समाश्लेषके लिये तथा उनके विद्वेषी लोगोंका दमन करनेके लिये होता है। श्रीकूरनाथने यहाँ जो 'आश्रितजनान् समाश्लेष्टुम्' कहा है, वह गीतोक्त 'साधूनां परित्राणाय' (४।८) पदमें विवक्षित अर्थका ही अनुवाद है। जो भगवान्का साक्षात्कार करना चाहते हैं, जो उनसे सम्भाषणकी अभिलाषा रखते हैं, जो उनका प्रगाढ़ आलिङ्गन करनेकी कामना करते हैं, जो उनके चरण-कमलोंकी स्वयं पूजा करनेकी इच्छा करते हैं, उन सबकी उन-उन कामनाओंकी (आत्म-दर्शन-आलाप-आश्लेष आदि प्रदानद्वारा) पूर्ति करके परित्राण करनेके लिये भगवान् अवतरित होते हैं—यह भाष्यकार भगवान् श्रीरामानुजाचार्यके भाष्यकी प्रक्रिया है। श्रीकूरनाथकी उक्ति इससे भी आगे बढ़ गयी है। उनकी 'आश्रितजनान् समाश्लेष्टुम्'—यह उक्ति अमूल्य ही है। भक्तलोगोंके चित्तमें भगवान्का आश्लेष करनेकी रुचि तो अलग रही, स्वयं भगवान्की अपने भक्तका संश्लेष करनेकी जो रुचि है, वह साक्षात् अवतार लिये बिना कैसे सफल हो सकती है—इस भावसे श्रीकूरनाथ गुरु हमें अनुगृहीत करते हैं।

फिर कहते हैं—

संश्लेषे भजतां स्वरापरवशः कालेन संशोध्य ता-
नानीय स्वपदे स्वसंगमकृतं सोढुं विलम्बं बत।
अक्षाम्यन् क्षमिणां वरो वरद सन्नत्रावतीर्णः……—

अर्थात् भक्तोंका आश्लेष करनेके लिये भगवान् अति आतुर हैं। उनकी संशुद्धि करके यथासमय अपने पास बुलाकर उनका आश्लेष करनेमें विलम्ब होगा, इसको वे सहन नहीं कर सकते; अतएव क्षमाशीलोंमें श्रेष्ठ, परमपद-प्रदानार्थ उत्सुक श्रीविष्णुभगवान् तुरंत अवतार लेते हैं।

यदि केवल रावण आदि दुष्टोंका संहार ही भगवान् करना चाहते तो संकल्पमात्रसे ही उसको पूरा कर डालते और सामान्यजनके द्वारा अभिप्रेत साधु-परित्राण भी सिद्ध हो जाता। किंतु वास्तविक तथ्य यह है कि भगवान् स्वकीय अचिन्त्य दिव्य गुणोंको प्रकट करनेकी इच्छासे ही मनुष्योंके बीच अवतीर्ण होकर हमको कृतार्थ करते हैं। इससे सब युक्तियुक्त हो जाता है।

पुराणपुरुष भगवान् विष्णु

एकं पुराणं रूपं वै तत्र पाद्मं परं महत्। ब्राह्मं मूर्धा हरेरेव हृदयं पद्मसंज्ञकम् ॥
वैष्णवं दक्षिणो बाहुः शैवं वामो महेशितुः। ऊरू भागवतं प्रोक्तं नाभिः स्यान्नारदीयकम् ॥
मार्कण्डेयं च दक्षाङ्घ्रिर्वामो ह्याग्नेयमुच्यते। भविष्यं दक्षिणो जानुर्विष्णोरेव महात्मनः ॥
ब्रह्मवैवर्तसंज्ञं तु वामजानुरुदाहृतः। लैङ्गं तु गुल्फकं दक्षं वाराहं वामगुल्फकम् ॥
स्कान्दं पुराणं लोमानि त्वगस्य वामनं स्मृतम्। कौर्मं पृष्ठं समाख्यातं मात्स्यं मेदः प्रकीर्त्यते ॥
मज्जा तु गारुडं प्रोक्तं ब्रह्माण्डमस्थि गीयते। एवमेवाभवद्विष्णुः पुराणावयवो हरिः ॥

(पद्मपुराण, स्वर्गखण्ड ६२। २–७)

नानारूपधारी परमेश्वर विष्णुका एक विग्रह पुराण भी है। पुराणोंमें पद्मपुराणका बहुत बड़ा महत्त्व है—(१) ब्रह्मपुराण श्रीहरिका मस्तक है, (२) पद्मपुराण हृदय है, (३) विष्णुपुराण उनकी दाहिनी भुजा है, (४) शिवपुराण उन महेश्वरकी बायीं भुजा है, (५) श्रीमद्भागवतको भगवान्का ऊरुयुगल कहा गया है, (६) नारदीयपुराण नाभि है, (७) मार्कण्डेयपुराण दाहिना तथा (८) अग्निपुराण बायाँ चरण है, (९) भविष्यपुराण महात्मा श्रीविष्णुका दाहिना घुटना है, (१०) ब्रह्मवैवर्तपुराणको बायाँ घुटना बताया गया है, (११) लिङ्गपुराण दाहिना और (१२) वाराहपुराण बायाँ गुल्फ (टखना) है, (१३) स्कन्दपुराण रोएँ तथा (१४) वामनपुराण त्वचा माना गया है, (१५) कूर्मपुराणको पीठ तथा (१६) मत्स्यपुराणको मेदा कहा जाता है, (१७) गरुड़पुराण मज्जा बताया गया है और (१८) ब्रह्माण्ड-पुराणको अस्थि (हड्डी) कहते हैं। इसी प्रकार पुराणविग्रहधारी सर्वव्यापक श्रीहरिका आविर्भाव हुआ है।

एकादशी-महाव्रत-महिमा

(लेखक—श्रीसीताराम ओंकारनाथजी महाराज)

उदारकीर्तेः श्रवणं च कीर्तनं हरेर्मुदा संस्मरणं पदश्रितिः ।
समर्चनं वन्दनदास्यसख्यमात्मार्पणं सा नवधेति गीयते ॥
(श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर ६५)

आचार्य रामानन्दस्वामी कहते हैं कि 'सबके प्रति सब प्रकारसे सहृदयताकी रक्षा तथा अर्थ-धर्म-काम-मोक्ष आदि सब प्रकारका कल्याण प्रदान करनेवाले उदारकीर्ति श्रीहरिका श्रवण, कीर्तन, उल्लासपूर्वक स्मरण, चरण-सेवा, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मसमर्पण—यह नौ प्रकारकी भक्ति कही गयी है ।'

श्रीमद्भागवत (७ । ५ । २३) में भी लिखा है—

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥

काम्य पराभक्ति आत्मसमर्पणके बाद होती है । श्रवण आदि आठ प्रकारकी भक्तिकी साधनाके द्वारा जीव आत्म-समर्पणका अधिकारी बनता है । आत्मसमर्पण होनेकी स्थिति यह है कि साधक सर्वथा सर्वदा अपनेको परमात्माके अधीन जानता है । भगवान्‌के चरणोंमें आत्मसमर्पित चित्तवाले भक्तके हृदयमें देह-गेह आदिको लेकर किसी प्रकारकी तरंग नहीं उठती । श्रीधरस्वामी कहते हैं कि 'किसीके पास एक गाय है । वह उस गायको दूसरेके हाथ बेंचकर जैसे अपनी उस गायकी चिन्तासे मुक्त हो जाता है, उसी प्रकार आत्मनिवेदनकारी भक्त अपने देह-गेह आदिके विषयमें किसी प्रकारकी चिन्ता नहीं करता ।'

इसी पराभक्तिकी बात गीतामें श्रीभगवान् कहते हैं—

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति ।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम् ॥
(१८ । ५४)

'ब्रह्मस्वरूपताको प्राप्त तथा आत्मप्रसादको प्राप्त किया हुआ साधक न किसी बातके लिये शोक करता है और न किसी वस्तुकी आकाङ्क्षा करता है । वह सब भूतोंमें समभावापन्न होकर मेरी पराभक्ति प्राप्त करता है ।'

भगवत्प्राप्तिका तथा देहात्मबन्धनके नाशका परम साधन 'भक्ति' है । उस भक्तिकी प्राप्तिके लिये मुमुक्षुको क्या करना चाहिये ?—इस प्रसङ्गमें आचार्य श्रीरामानन्द-स्वामी कहते हैं—

एकादशीत्यादिमहाव्रतानि
कुर्याद्विवेधानि हरिप्रियाणि ।
विद्धा दशम्या यदि सारुणोदये
स द्वादशीं तूपवसेद्विहाय ताम् ॥
(वैष्णवमताब्जभास्कर ६६)

'भगवत्प्राप्तिकी इच्छासे युक्त साधक श्रीभगवान्‌को प्रिय अरुणोदय-कालमें दशमी-वेधरहित एकादशी आदि महाव्रतोंका अनुष्ठान करे । यदि वह एकादशी अरुणोदयकालमें दशमी तिथिके द्वारा विद्ध हो तो उसे त्यागकर शुद्ध द्वादशीका व्रत करे ।'

जगत्‌में जितने प्रकारके व्रत हरिको संतुष्ट करनेवाले हैं, उनमें एकादशी-उपवासके समान दूसरा कोई व्रत नहीं है । यह एकादशीव्रत पञ्चदेव-उपासकोंका नित्य व्रत है । इस उपवास-प्रधान महाव्रतमें सब वर्णोंका अधिकार है । क्या गृहस्थ, क्या विरक्त—सबके लिये इस व्रतका करना आवश्यक है । इस व्रतके अनुष्ठानसे भगवान् प्रसन्न ही नहीं होते, उनको प्राप्त भी किया जा सकता है; अतएव मानवमात्रके लिये यह अवश्य-कर्तव्य है । 'अष्टाब्दादधिको मर्त्योऽपूर्णाशीतिवत्सरो नित्याधिकारी ।—आठ वर्षसे असी वर्षतकके नर-नारी इस व्रतके नित्य अधिकारी हैं ।' विधवाओं और ब्राह्मणोंके लिये यह अनिवार्य है । पुत्रवान् गृहस्थोंके लिये भी यह अवश्य-कर्त्तव्य है । इस महाव्रतका अनुष्ठान न करनेसे दोष लगता है । जो कोई श्रीभगवत्प्रीतिकी कामना करते हैं, उनके लिये तो यह महाव्रत अवश्य-कर्त्तव्य है ।

यदि कोई स्वयं उपवास करनेमें अशक्त हो तो पुत्र या ब्राह्मणके द्वारा उपवास कराके व्रतकी रक्षा करे, अथवा ब्राह्मणोंको अपनी शक्तिके अनुसार दान दे । मार्कण्डेयपुराणमें लिखा है कि बालक, वृद्ध, आतुर लोगोंको एकभुक्त या नक्त-व्रत करना चाहिये । दुग्ध-फल-मूल आदिका भोजन असमर्थ मनुष्य कर सकता है ।' गरुडपुराणमें लिखा है—

मच्छयने मदुत्थाने मत्पार्श्वपरिवर्तने ।
फलमूलजलाहारी हृदि शल्यं ममार्पयेत् ॥

'मेरे शयनकाल (देवशयनी)में, मेरे उत्थानकाल (देवोत्थानी) में, मेरे पार्श्वपरिवर्तन (भाद्रशुक्ल द्वादशी)-में फल-मूल या जल आहार करनेवाला व्यक्ति मेरे हृदयमें

शल्याघात करता है ।'*

एकादशीसमं किंचित् पावनं न च विद्यते ।
स्वर्गमोक्षप्रदा ह्येषा राज्यपुत्रप्रदायिनी ॥
(तत्त्वसागर)

'एकादशीके समान पवित्र और कुछ नहीं है। यह एकादशी स्वर्ग और मोक्ष तथा राज्य और पुत्र प्रदान करनेवाली है।' जो-जो कामना करके एकादशी-उपवास किया जायगा, वह-वह कामना पूरी होगी।

एकादशीव्रतं भक्त्या यः करोति नरः सदा।
स विष्णुलोकं व्रजति याति विष्णुसरूपताम् ॥
(गरुडपुराण)

'जो मनुष्य भक्तिपूर्वक सदा एकादशीव्रत करता है, वह विष्णुलोकको गमन करता है और विष्णुके सारूप्यको प्राप्त होता है।' दशमीयुक्त एकादशीमें उपवास न करे। ज्येष्ठ मासके शुक्लपक्षकी एकादशीका नाम 'निर्जला' है। इस एकादशीमें स्नान, आचमन आदिके अतिरिक्त जलत्यागपूर्वक उपवासी रहकर जो रात्रिमें जागरण करता है, वह बारहों महीनेकी एकादशियोंके उपवासका फल प्राप्त करता है।

धर्माचरण करनेवाले शुक्ल और कृष्ण—दोनों पक्षोंकी एकादशीको समानरूपसे मानते हैं; दोनों एकादशियोंमें भेद नहीं करना चाहिये। एकादशी तिथिके उपवासका अनन्त फल है। मनुष्य शङ्खोद्धार-तीर्थमें स्नान करके भगवान् गदाधरका दर्शन कर जो फल प्राप्त करता है, वह एकादशी-व्रतके सोलहवें भागकी भी बराबरी नहीं कर सकता। व्यतीपातमें दानका लक्षगुना फल होता है। संक्रान्तिके दानका चार लक्षगुना फल होता है तथा चन्द्र-सूर्य-ग्रहणमें कुरुक्षेत्र-स्नानका जो फल होता है, वह सब फल एकादशीको उपवास करनेवाला प्राप्त कर लेता है। अश्वमेध यज्ञ करनेसे जो फल होता है, उससे सौगुना अधिक फल एकादशीके उपवाससे होता है। साठ हजार वर्षोंतक लाखों तपस्वी जनोंको नित्य भोजन कराते रहनेसे जो पुण्य अर्जित होता है, उस फलको मनुष्य एकादशीके उपवासके द्वारा प्राप्त कर लेता है। वेदाङ्गपारग ब्राह्मणको सहस्र गोदान करनेपर जो पुण्य होता है, उससे दसगुना अधिक फल एकादशीको उपवास करनेवाला प्राप्त करता है।

एकादशी-व्रतके पुण्यकी संख्या ही नहीं है। इस पुण्यका प्रभाव देवताओंको भी दुर्लभ है। नक्तभोजीको अर्द्ध-फल होता है और उसका अर्द्धफल एकभुक्तको होता है—

एकभुक्तं च नक्तं च उपवासं तथैव च।
एतेष्वन्यतमं वापि व्रतं कुर्याद्धरेर्दिने ॥

दिनके अष्टम भागमें भोजन 'नक्त'भोजन कहलाता है और किसी भी समय एक बार फल-मूलादिका भोजन 'एकभुक्त' कहलाता है। नक्तभोजन, एकभुक्त तथा उपवास—इन तीनोंमें अपनी सामर्थ्यके अनुसार किसी एकका अनुष्ठान एकादशी तिथिमें किया जाता है। उपवासकी जिसमें सामर्थ्य है, वह यदि अनुकल्प करता है, अर्थात् फल-मूल-दुग्ध आदि भोजन करता है तो अपराधी बनता है। श्रीभगवान् अन्तर्यामी हैं। उनको धोखा देनेसे आध्यात्मिक हानिके सिवा कोई लाभ न होगा।

एकादशी तिथिमें उपवास और रात्रिमें जागरण करके आरती, पाठ, कीर्तन, नृत्य-गीत आदि किये जाते हैं। जो लोग उपवास करके शक्तिहीन होकर नाम-कीर्तन आदि करनेमें असमर्थ हो जाते हैं, उनके लिये दुग्ध-फल आदि ग्रहण करना अशास्त्रीय नहीं है। दशमी तिथिमें दिनके अष्टम भागमें दिनके अवसान होनेपर दन्तधावन करके नक्तव्रत करे। उस समयके भोजनका नाम 'नक्तभोजन' है, रातके भोजनका नाम 'नक्तभोजन' नहीं है।

भक्त नामदेवजीकी एकादशी-निष्ठा—भक्तशिरोमणि श्रीनामदेवजी सदैव एकादशीव्रत किया करते थे। एकादशीव्रतके प्रति उनकी अगाध निष्ठा थी। एक बार एकादशीके दिन एक वृद्ध वैष्णवने नामदेवजीके पास आकर भोजन माँगा। नामदेवजी बोले—'आज एकादशी है, भोजन नहीं करना चाहिये। मैं आपको चावल देता हूँ, कहीं जाकर पकाकर खा लें।' वैष्णव बोले—'मैंने नियम कर लिया है कि पकाकर भोजन नहीं करूँगा; जिसके घर जाऊँगा, उसीके साथ पका हुआ भोजन करूँगा। यह नियम मैं त्याग नहीं सकता। आपको भी मेरे साथ भोजन करना पड़ेगा। मैं तीन दिनसे भोजन नहीं

---

* इस श्लोकका स्पष्ट तात्पर्य इस प्रकार है—

आभाकासितपक्षेषु मैत्रश्रवणरेवती-
संगमे नहि भोक्तव्यं द्वादशद्वादशीर्हरेत् ॥ (भविष्यपुराण)

आ अर्थात् आषाढ़, भा अर्थात् भाद्रपद तथा का अर्थात् कार्तिक —इन मासोंके शुक्लपक्षकी द्वादशियोंमें यदि क्रमशः मैत्र—अनुराधाका प्रथम चरण, श्रवणका द्वितीय तथा रेवतीका अन्तिम चरण हो तो उस समय (उन छः घंटोंमें) पारणा या फलाहार आदि भी नहीं करना चाहिये। एक अन्य श्लोकमें भी यही भाव इस प्रकार स्पष्ट किया गया है—

मैत्राद्यपादे स्वपतीह विष्णुः श्रुतेश्च मध्ये परिवर्तमेति ।
जागर्ति पौष्णस्य तथावसाने नो पारणां तत्र बुधः प्रकुर्यात् ॥

—सम्पादक

कर रहा हूँ। बहुत ही भूखा हूँ, मुझे अन्न दें । मुझपर प्रसन्न हों ।' यह सुनकर वे अत्यन्त विस्मित होकर बोले—'भगवन्! आप मुझे क्षमा करें । हरिवासर मुझे प्राणसे भी प्रिय है । मैं प्राणत्याग कर सकता हूँ, किंतु एकादशीव्रत कदापि नहीं त्याग सकता । इसलिये मैं प्रार्थना करता हूँ कि आप नियम त्यागकर कच्चा अन्न ग्रहण करें ।' वृद्ध वैष्णव सहमत न हुए। दिनभर बिना कुछ खाये नामदेवजीके द्वारपर पड़े रहे। नामदेवजीने संध्या कालमें आकर उनसे भोजन करनेके लिये अनुरोध किया, फिर भी वैष्णव तैयार न हुए।

रातमें बहुत-से भक्तोंका समागम हुआ । नामकीर्तन, नृत्य-गीतमें रात बीत गयी। प्रातःकाल नामदेवजी वैष्णवके पास आकर बोले—'स्नान करके आइये । प्रसाद ग्रहण कीजिये।' वैष्णवके मुँहसे बात न निकली। नामदेवजीने पास जाकर देखा कि वैष्णवके प्राणपखेरू उड़ गये हैं। वे हाहाकार करने लगे । सब भक्तलोग वहाँ एकत्रित हुए। नामदेवजी बोले—'यह वैष्णव भूख-प्याससे मर गया है। मुझसे इसने बारंबार अन्न माँगा, किंतु मैंने उसे नहीं दिया। इस कारण मुझको हत्याका अपराध लग गया। मैं इनके साथ एक चितापर देह-विसर्जन करूँगा। आपलोगोंको भगवान्‌की शपथ है, मुझे बाधा न देंगे।' नामदेवकी माता और दूसरे लोग रोने-पीटने लगे। वैष्णवका मृत शरीर श्मशानमें पहुँचाया गया । चिता सजाकर शवको स्नान कराकर नामदेवने उसे चिताके ऊपर रखा और मुखमें अग्नि लगानेके लिये जैसे ही वे तैयार हुए, वैसे ही वह मृत व्यक्ति बोल उठा—'मेरे मुँहमें आग न लगाना, मैं जीवित हूँ।' ('तुम्हारे सत्यकी परीक्षा करनेके लिये ही मैंने ऐसा किया है)।'

'मा मा दीपय भो वह्निं मुखे मे न मृतो ह्यहम् ॥'

'जय, विठ्ठल भगवान्‌की जय!' की ध्वनिसे श्मशानभूमि प्रतिध्वनित हो उठी। भक्तोंके आनन्दकी सीमा न रही। वैष्णव चितासे उतरकर हँसने लगे । नामदेवने उनके चरणोंमें दण्डवत्-प्रणाम करके पूछा—'आप कौन हैं?' उन्होंने उत्तर दिया—'मेरा नाम-घर नहीं है, मैं वर्णाश्रमसे बहिर्भूत हूँ। इसी प्रकार घूमता रहता हूँ। तुमसे मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ, वर माँगो।' नामदेव बोले—'आप यदि प्रसन्न हैं तो यह वर दीजिये कि मेरी हरिभक्ति दृढ़ हो (**हरिभक्तिर्दृढास्तु मे**)।' वैष्णवने **'तथास्तु'** कहा। नामदेवने उनको घर ले जाकर भोजन कराया। जाते समय प्रभुने नामदेवको अपना स्वरूप दिखाकर प्रस्थान किया।

विष्णुसहस्रनाम

(संत श्रीविनोबा भावे)

हम जिस 'विष्णुसहस्रनाम'का पाठ करते हैं, उसमें केवल पारायणकी ही बात है। वहाँ तो केवल **'स्मरणमात्रेण'** शुद्धि होती है। वैसे तो सभी नाम एक भगवान्‌के ही हैं। शास्त्रोंने भी कहा है—

आकाशात् पतितं तोयं यथा गच्छति सागरम्। सर्वदेवनमस्कारः केशवं प्रति गच्छति ॥ (पाण्डवगीता)

'जैसे आकाशसे गिरा हुआ जल नदी-नालोंके रूपमें प्रवाहित होकर अन्ततोगत्वा समुद्रमें पहुँच जाता है, उसी प्रकार अन्य देवताओंको किया हुआ प्रणाम परिणामतः भगवान् विष्णुको ही प्राप्त होता है।'

ब्राह्मण जो संध्या करते हैं, उसमें भी प्रथम नाम जो उच्चारण किया जाता है, 'केशव' ही है। नामदेवको भी 'केशव' नाम अत्यन्त प्रिय था। पंढरपुरके विठ्ठलका मूल नाम 'केशव' है। .... महाराष्ट्रमें 'विठ्ठल' नाम प्रसिद्ध है, रामनाम तो है ही। हरिनाम भी है। 'राम-कृष्ण-हरि' तो रूढ है ही। इन सब नामोंका जप होता है । लेकिन एक ही नाम हजार-हजार बार बोला जाय तो उसमें मनुष्यको कभी थकान भी आ सकती है। विविधता हो तो थकान नहीं आती । विविध वृक्ष हों तो देखनेमें अच्छे लगते हैं । उसका एक अलग असर होता है। हजार पेड़ हैं, लेकिन एक प्रकारके ही हैं, तो देखते-देखते थकान आ जायगी । वैसे विष्णुसहस्रनाममें एक हजार अलग-अलग नाम हैं, इसलिये उसके पारायणमें थकान नहीं आती। उसमें चिन्तन-मननकी अपेक्षा नहीं । कोई उसका चिन्तन-मनन करे तो भी लाभ है; न करे और केवल पारायण ही करे तो भी लाभ है ।

× × × × ×

तुकारामने कहा—'ये हजार नाम हमारे हजार हथियार हैं।' उन्होंने अपनी कन्याकी शादी करायी तो दामादको दहेजके रूपमें क्या दिया ? अपने हाथसे लिखी 'विष्णुसहस्रनाम'की प्रति दी। अतः विष्णुसहस्रनामका पारायण करनेसे ही लाभ हो जाता है।

वैष्णव आचार्योंकी सामान्य विशेषता

(परमपूज्य योगिराज श्रीदेवरहवा बाबाजी महाराज)

वेदान्तसूत्रोंके सभी भाष्यकारोंका यह दावा है कि उनके भाष्य सोलहों आने सूत्र-सम्मत ही हैं और श्रुतिसम्मत भी हैं। प्रस्थानत्रयीसे उन्होंने अपने सिद्धान्तोंकी एकार्थता सिद्ध भी की है। आलोचकोंने तो सभी भाष्योंमें कोई-न-कोई त्रुटि निकालनेका प्रयास किया है, पर हमारी दृष्टिमें तो सभी दर्शन ठीक हैं और श्रुतिसम्मत हैं। वैष्णव आचार्योंने यह अनुभव किया कि शंकरके माया-मिथ्यात्वके कारण उपासना गौण हो गयी; क्योंकि उसमें निवृत्ति-मार्ग अथवा संन्यासधर्मका ही प्राधान्य है। शंकरने पारमार्थिक दृष्टिसे ब्रह्मको सगुण स्वीकार नहीं किया था, वे परमोच्च सत्ताको पारमार्थिकरूपमें निर्विशेष ही मानते थे। वैष्णव आचार्योंने उस सत्ताको सविशेष स्वीकार किया। आचरण-पक्षमें शंकरके अनुसार स्मृति-ग्रन्थोंमें निरूपित आचार-व्यवहार अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं; क्योंकि उनके बिना न तो चित्त-शुद्धि ही सम्भव है और न ब्रह्मात्मैक्य-ज्ञान प्राप्त करनेकी योग्यता हो सकती है। इसलिये कर्म करना भी अनिवार्य है, परंतु अन्तमें कर्मको त्यागकर संन्यास लेना पड़ेगा; क्योंकि सब वासनाओं और कर्मोंके छूटे बिना ब्रह्मज्ञान सम्भव ही नहीं। इस प्रकार शंकरने एक ओर तो ब्रह्मकी अद्वैतताको उस अमूर्त स्थितितक पहुँचा दिया, जो सामान्य व्यक्तिकी पहुँचसे बाहर है और दूसरी ओर संसारके महत्त्वको स्वीकार करते हुए भी उसकी निस्सारता और मिथ्यात्वके प्रतिपादनद्वारा साधारण मानव-समाजकी ओरसे मनुष्यको विमुख कर दिया। संन्यासकी अनिवार्यतासे समाज-धर्मकी भी उपेक्षा हो गयी। वैष्णवने परमतत्त्वको सविशेष माननेके अतिरिक्त उसकी विशिष्ट-व्यक्तित्व-सम्पन्न इष्टके रूपमें भी प्रतिष्ठा की। श्रुति-स्मृति-प्रतिपादित आचारको महत्त्व देते हुए भी इन्होंने आगमोंमें प्रतिपादित विशिष्ट आचारको भी महत्त्व दिया। इष्टके स्वरूपकी भिन्नताके कारण सविशेषवादी आचार्य भी प्रमुख दो वर्गोंमें विभाजित हो गये—वैष्णव और शैव। वैष्णव मतके प्रमुख आचार्य रामानुज, निम्बार्क, मध्व, वल्लभ और बलदेव विद्याभूषण हैं। रामानन्दी वैष्णव-सम्प्रदायके भी दो ब्रह्मसूत्र-भाष्य उपलब्ध हैं—एक 'आनन्दभाष्य', दूसरा 'जानकीभाष्य'। शैव-सम्प्रदायके प्रमुख भाष्यकार श्रीकण्ठ और श्रीकर हैं। दोनों वर्गोंके भाष्योंमें कोई बहुत बड़ा अन्तर नहीं है। एक वर्ग विष्णुको परमतत्त्व मानता है और वैष्णव-आगमोंमें प्रतिपादित आचारको विधेय कहता है। दूसरा वर्ग शिवको परम तत्त्व मानकर शैवागमोंको विधेय कहता है।

'प्रमेयरत्नावली'में इन चारों सम्प्रदायोंके प्रवर्तक आचार्योंका उल्लेख इस प्रकार हुआ है—

> रामानुजं श्रीः स्वीचक्रे मध्वाचार्यश्चतुर्मुखः।
> श्रीविष्णुस्वामिनं रुद्रो निम्बादित्यं चतुस्सनः॥

इस प्रकार रामानुजाचार्य श्री-सम्प्रदायके, मध्वाचार्य ब्रह्म-सम्प्रदायके, विष्णुस्वामी रुद्र-सम्प्रदायके और श्रीनिम्बार्काचार्य सनक-सम्प्रदायके प्रवर्तक माने जाते हैं।

वैष्णव-भाष्य-परम्पराका प्रवर्तन रामानुजाचार्यने किया। रामानुजाचार्यके परम गुरु श्रीयामुनाचार्यने अद्वैतवादके प्रतिवादमें तीन ग्रन्थोंकी रचना की—सिद्धित्रय, आगमप्रामाण्य, गीतार्थसंग्रहरक्षा। परंतु ब्रह्मसूत्रके भाष्यके बिना उनके सिद्धान्तोंको शास्त्रीय मान्यता नहीं मिल सकती थी। उनका यह मनोरथ उनके प्रशिष्य रामानुजने पूर्ण किया। इसलिये उन्हें सम्प्रदायमें 'भाष्यकार' कहा जाता है। उन्होंने बड़ी योग्यता और वैदुष्यसे अपने 'श्रीभाष्य'में शंकरके अद्वैतका खण्डन किया। उनके पश्चात् जो वैष्णवभाष्य लिखे गये, उनकी प्रमुख दृष्टि शांकर सिद्धान्तोंके निराकरणके प्रति इतनी नहीं रही, जितनी अपने विशिष्ट सिद्धान्तोंके प्रतिपादनके प्रति। उदाहरणके लिये निम्बार्काचार्यका 'वेदान्तपारिजातसौरभ' ब्रह्मसूत्रका वाक्यार्थ ही माना जाता है। उनके शिष्य श्रीनिवासाचार्यने जो 'वेदान्त-कौस्तुभ' नामक भाष्य प्रस्तुत किया, उसमें भी खण्डन-मण्डनकी प्रवृत्ति अधिक नहीं है, केवल अपने सिद्धान्तोंका प्रतिपादन है। मध्वाचार्यके 'पूर्णप्रज्ञ-भाष्य'में भी शंकरके सिद्धान्तोंका विस्तारसे खण्डन नहीं है। मध्वभाष्यके अध्ययनसे ऐसा लगता है कि उनके भाष्यका प्रधान लक्ष्य शैव-भाष्योंका खण्डन रहा है। अणुभाष्यकार वल्लभाचार्यकी दृष्टिमें शंकरका अद्वैत अवश्य रहा है, परंतु उन्होंने व्यङ्ग्य-वाक्योंका अधिक प्रयोग किया है। आचार्य बलदेवविद्याभूषणके भाष्यका नाम 'गोविन्दभाष्य' है। ये चैतन्य-सम्प्रदायके विशिष्ट पण्डित माने जाते हैं। इस सम्प्रदायमें श्रीमद्भागवतको ही ब्रह्मसूत्रका भाष्य माना जाता है, परंतु बादमें बलदेवविद्याभूषणने ब्रह्मसूत्रोंका एक स्वतन्त्र भाष्य लिखा। इस भाष्यमें मध्वाचार्य और रामानुजाचार्यका ही विशेष अनुसरण हुआ है। इन भाष्योंके मूल सिद्धान्तोंमें कोई तात्त्विक भेद नहीं है। उदाहरणके लिये निम्न सिद्धान्तोंका प्रतिपादन प्रायः सभी वैष्णव-भाष्योंमें समान है—

१—जगत्‌का सत्यत्व, सत्योपादानकत्व ।

२—जीवका स्वाभाविकरूपसे ज्ञानस्वरूपत्व, नित्यत्व, अणुत्व, ज्ञातृत्व, कर्तृत्व, भोक्तृत्व, ब्रह्मवश्यत्व एवं संख्यामें बहुत्व ।

३—ब्रह्मका परमार्थतः सविशेषत्व, निर्दोषत्व, सर्व-कल्याणगुणसम्पन्नत्व, परमेश्वरत्व, जगत्कर्तृत्व, सर्वव्यापकत्व, सर्वान्तर्यामित्व, मोक्षप्रदत्व, उपास्यत्व, मुक्तिप्राप्यत्व, विशिष्टदिव्यरूपसम्पन्नत्व ।

४—दिव्यलोकमें भगवान्‌के नित्यकैंकर्यकी प्राप्ति ही सर्वोत्तम मोक्ष ।

५—भक्ति या शरणागति ही उक्त मोक्षका सर्वोत्तम उपाय ।

६—कर्म, ज्ञान और योग आदि भक्तिके अङ्ग ।

७—किसी भी प्रकारकी उपाधिका अस्वीकार ।

८—ब्रह्मकी पारमैश्वर्यशक्तिके रूपमें मायाका स्वीकार ।

९—कार्य-कारण-सम्बन्धमें परिणामवादका स्वीकार, विवर्तवादका नहीं ।

श्रीविष्णुस्तवन

(रचयिता—साहित्याचार्य पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री 'राम')

(१)

विष्णु तुम, क्योंकि विश्व-व्यापक तुम्हारा रूप;
　　नारायण—नर समुदायके अयन हो ।
फुल्ल इन्दीवरके विनिन्दक विलोचन हैं,
　　अतएव कमलेश कमलनयन हो ।
सोते शेष ऊपर अशेष जग उर धार
　　इसीलिये जाते कहे भुजग-शयन हो ।
तुममें जगत, सारे जगमें तुम्हारा वास,
　　वासुदेव ! वासुदेव विश्व-उदयन हो ॥

(२)

ऊरु-जानु-जंघा-पादतल हैं पाताल, और
　　कटि पृथिवी है, अन्तरिक्ष कुक्षि धारे हैं ।
कोटि ब्रह्म-अण्ड रोम-रोममें विराज रहे,
　　सोम-व्योममणि दोनों लोचन तुम्हारे हैं ।
चक्र कालचक्र, शङ्खनाद अनहद नाद
　　पद्म पद्मनिधि गदा शेमुषी सँवारे हैं ।
पूजन-निरत विधि गङ्गा ले कमण्डलमें
　　भूषण विविध नभ-मण्डलके तारे हैं ॥

(३)

जिसने पुकारा, क्लेश-कारासे छुड़ाया उसे,
　　नतमाथ ऊपर वरद-हाथ तुम हो;
राखा गजराजको, बचायी द्रौपदीकी लाज,
　　संकटमें सबके सदा ही साथ तुम हो ।
योग-क्षेम भक्तका वहन करते हो, उसे—
　　भोजन खिलाते हो, पिलाते पाथ तुम हो;
कोपी शक्र देख हाथ गिरिवर-रोपी हुए
　　पूतना-विलोपी नाथ गोपीनाथ तुम हो ॥

प्रभु-विश्वास प्रभु-प्राप्तिका अचूक उपाय है

(एक महात्माका प्रसाद)

जिसकी माँग स्वभावसे मानवमात्रको है, जिसकी महिमा गुरुवाणी, वेदवाणी और भक्तवाणीमें सुनी जाती है, जो अद्वितीय समर्थ, अनन्त एवं विभु तत्त्व है, जिसको अनेक रूपोंमें आस्तिकोंने स्वीकार किया है, वह सदैव, सर्वत्र, सभीका है। जो सभीका है, उससे आत्मीय सम्बन्ध सभीके लिये सर्वदा सम्भव है। आत्मीय सम्बन्धसे ही आस्तिक साधकोंमें अखण्ड स्मृति तथा अगाध प्रियताकी अभिव्यक्ति होती है और फिर साधक अपनेमें ही अपने प्रेमास्पदको पाकर सदा-सदाके लिये कृतकृत्य हो जाता है। यह जीवनका सत्य है।

अद्वितीय समर्थ अनन्त तत्त्वसे मानवकी जातीय एकता, नित्य-सम्बन्ध एवं आत्मीयता है, इस वास्तविकतामें ही विश्वास-पथके साधकोंको अविचल आस्था रखनी चाहिये। तभी मानव सब ओरसे विमुख होकर अपनेमें ही अपने जीवन-धनको पा सकता है, जिसे पाकर कुछ और पाना शेष नहीं रहता।

जीवनकी जो वास्तविक माँग है, उसकी पूर्ति पराश्रय तथा परिश्रमसे साध्य नहीं है। पराश्रय तथा परिश्रमके द्वारा तो केवल पर-सेवा ही की जा सकती है, जिससे मानव विद्यमान रागसे रहित होकर योगका अधिकारी होता है। योग भौतिक विकासकी चरम सीमा है और अध्यात्म-जीवन तथा आस्तिकताका द्वार है। जिस प्रकार भोग-वासनाके रहते हुए कोई भी प्राणी मोह तथा आसक्तिसे रहित हो ही नहीं सकता, उसी प्रकार योगके बिना बोध और प्रेमकी प्राप्ति ही नहीं होती। अतः भोग-मोह-आसक्तिकी निवृत्ति तथा योग-बोध-प्रेमकी प्राप्ति मानव-जीवनका लक्ष्य है, जिससे कभी किसी सजग मानवको निराश नहीं होना चाहिये। जो साधक अविनाशी स्वाधीन रसरूप चिन्मय जीवनसे निराश नहीं होता, वह प्रत्येक परिस्थितिमें लक्ष्यको प्राप्त कर कृतार्थ हो जाता है, यह अनुभवसिद्ध सत्य है। सत्यमें कल्पनाभेद भले ही हो, स्वरूपभेद नहीं होता।

यह सर्वमान्य सत्य है कि कोई भी मानव किसी भी उत्पन्न हुई वस्तु, अवस्था, परिस्थितिके साथ सदैव नहीं रह सकता—कारण कि सतत परिवर्तनके प्रवाहसे भिन्न किसी भी परिस्थितिकी स्थिति ही नहीं है। जिसकी स्थिति नहीं है, उसकी प्रतीति भले ही हो, प्राप्ति नहीं होती। प्रतीतिके आकर्षणसे प्रवृत्तिकी उत्पत्ति होती है, किंतु परिणाममें अभाव ही शेष रहता है। अभावका अभाव तभी होता है, जब मानव उस अविनाशी, अनन्त, चिन्मय विभु तत्त्वको स्वीकार करे, जो सभीका होनेसे अपना और सदैव होनेसे तथा सभी एवं सर्वत्र होनेसे अपनेमें ही है। इस दृष्टिसे विष्णु-तत्त्वको स्वीकार करना अनिवार्य है। स्वीकृति अभ्यास नहीं है, अपितु विश्वास है। अभ्यास शरीरधर्म और स्वीकृति मानवका स्वधर्म है, जो 'गुरुवाणी' तथा वेदवाणीसे साध्य है। प्रभु-विश्वासी साधककी वाणीमें विकल्प-रहित विश्वास करना ही प्रभु-विश्वास-प्राप्तिका अचूक, अद्वितीय उपाय है।

ज्ञानका प्रकाश हमें उत्पन्न हुई, परिवर्तनशील सृष्टिसे मुक्त कर सकता है; परंतु अनुत्पन्न, अविनाशी, अनन्त तत्त्वकी प्राप्तिमें तो एकमात्र विश्वास ही समर्थ है।

पञ्चायुध

(लेखक—स्वामी श्रीचक्रपाणिजी महाराज वेदान्ताचार्य)

श्रीभगवान् विष्णुके पञ्चायुधोंका वर्णन वेदोंसे लेकर अर्वाचीन सद्ग्रन्थों-तकमें पाया जाता है। उन पञ्चायुधोंके नाम ये हैं—(१) हेति (अस्त्र) राज श्रीसुदर्शन, (२) पाञ्चजन्य शङ्ख, (३) कौमोदकी गदा, (४) नन्दक खड्ग, (५) शार्ङ्ग धनुष। जिस प्रकार श्रीविष्णुभगवान् अचिन्त्य-अनन्त-ऐश्वर्यसम्पन्न हैं, उसी प्रकार भगवान्‌के पञ्च अस्त्र भी अचिन्त्य एवं नित्य-शक्तिसे सम्पन्न हैं तथा प्राणी-हितके लिये सतत जागरूक रहते हैं।

भगवान् विष्णु इन पाँच आयुधोंका प्रयोग धर्मकी और भक्तोंकी रक्षाके लिये करते हैं। अम्बरीषजीके रक्षार्थ महर्षि दुर्वासाजीके ऊपर सुदर्शनचक्रका प्रयोग हुआ। हृषीकेश भगवान् श्रीकृष्णने पाञ्चजन्य शङ्ख बजाकर शत्रुओंके हृदयमें अनिर्वचनीय पीड़ा पहुँचायी। कौमोदकी गदाके द्वारा बड़े-बड़े दानवोंके दर्पको विदीर्ण किया गया। मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीरामके रूपमें भगवान् विष्णुने धनुष एवं खड्गका उपयोग किया।

भगवान् विष्णुकी पूजा-पद्धतिमें एवं ध्यानीय उपासनामें इन पञ्चायुधोंके पूजन एवं ध्यानकी परिपाटी आज भी है। आयुधार्चन भी उतना ही फलदायी है, जितनी स्वयं भगवान् विष्णुकी अर्चना। भगवान् विष्णुके ये अभिन्न स्वरूप हैं। यही कारण है कि भगवान् नारायणके ये असाधारण अस्त्र-शस्त्र अलंकारवत् सर्वदा उनके साथ विराजित एवं सुशोभित रहते हैं।

जगत्-पालक श्रीविष्णु

(लेखक—पूज्यपाद श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी)

करणं कारणं कर्ता त्वमेव परमेश्वर।
शङ्खचक्रगदापाणे ! मां समुद्धर माधव ॥
(स्कन्दपु०, वै० खं० १ । ८६)

'हे परमेश्वर ! आप करण हैं, कारण हैं और कर्ता भी आप हैं । हे माधव ! हे शङ्ख-चक्र-गदाको धारण करनेवाले प्रभो ! मुझे संसार-सागरसे उबार लो ।'

बिस्नु बिस्व ब्रह्मांड करैं पालन जीवनि कौ ।
सबके सारे काज करैं कल्यान सबनि कौ ॥
हर-अज मोरे देव देहिं असुरनि बर इच्छित ।
किंतु बिस्नु अति जुगुतिसहित करि देवैं सिच्छित ॥

जग पालन-हित सब करत, बिधि-निषेध तैं परै प्रभु ।
बेष बनावैं बिबिध बिधि, बिस्वंभर बिस्वेस बिभु ॥

हमारे शिवजी तो औढरदानी हैं, भोलेबाबा हैं । ब्रह्माजीको सृष्टि करनेकी धुन लगी रहती है । वे सृष्टि करनेमें ऐसे व्यस्त रहते हैं कि आगे-पीछेकी बिना सोचे ही असुरोंको वर दे देते हैं । किंतु हमारे ये चार हाथवाले देवता सबका ध्यान रखते हैं, चतुरतासे काम लेते हैं । ब्रह्माजी और शंकरजीके वचनोंका (वरदानोंका) भी निर्वाह करते हैं और युक्तिसे अपना काम भी निकाल लेते हैं । इनके लिये छोटा-बड़ा, ऊँच-नीच, कर्तव्य-अकर्तव्य कुछ भी नहीं । ये विधि-निषेध—सबसे परे हैं । सबके निर्माता तो ये हैं ही । चलती रेलमें चढ़नेका नियम नहीं । रेल-रक्षक किसीको चलती रेलमें चढ़ने नहीं देता; किंतु वह सदा चलती ही रेलपर चढ़ता है; क्योंकि उसीको तो सबकी देख-रेख रखनी पड़ती है । सबका समाधान, सबका मार्जन, सबका पालन, धर्मका संरक्षण तो विष्णुको ही करना पड़ता है । वे सबका सब प्रकारसे संरक्षण न करें तो असुरगण तो असमयमें ही जगत्का संहार कर दें । एक तो गिलोय, दूसरे नीम-चढ़ी । एक तो असुर वैसे ही बली और 'तामसी', फिर वे उग्र तपस्या करके शिवजी और ब्रह्माजीसे दुर्लभ वर भी प्राप्त कर लेते हैं । उनका युक्तिसहित भगवान् विष्णु संहार न करें तो जगत्का संरक्षण कैसे हो । इसलिये भगवान् जब जैसा अवसर देखते हैं, तब तैसा रूप बनाकर शिवजी और ब्रह्माजीके वरोंकी रक्षा करते हुए असुरोंका संहार कर देते हैं । यही:उनकी विशेषता है ।

(क) हिरण्यकशिपुने ब्रह्माजीसे इतने वरदान प्राप्त कर लिये थे—(१) आपके बनाये हुए पशु, पक्षी, मनुष्य, देवता तथा किसी भी प्राणीसे मेरी मृत्यु न हो । (२) मैं न भीतर मरूँ, न बाहर । (३) न दिनमें मरूँ, न रात्रिमें । (४) आपके बनाये प्राणियोंके अतिरिक्त और भी किसी जीवसे न मरूँ । (५) अस्त्र-शस्त्रसे न मरूँ । (६) पृथ्वी या आकाशमें न मरूँ । (७) युद्धमें मेरा कोई सामना न करे । (८) मैं समस्त प्राणियोंका एकच्छत्र सम्राट् होऊँ । (९) मुझे तपस्वियों और योगियोंका-सा अक्षय ऐश्वर्य प्राप्त हो । अब बताइये, इसमें कहीं मरनेका अवसर शेष रहा ? अपनी बुद्धिसे तो उसने अजर-अमर ऐश्वर्यवान् होनेके समस्त वरदान माँग लिये । ब्रह्माजीने भी कहा—'बेटा ! वरदान तो तैंने बहुत ही दुर्लभ माँगे हैं; किंतु जा, मैं तुझे तेरे मुँह-माँगे सभी वरोंको देता हूँ ।' सब वर उसे प्राप्त भी हो गये और वह तीनों लोकोंका ऐश्वर्य भोगता हुआ महान् अत्याचार करने लगा । अपने पुत्र भगवद्भक्त प्रह्लादको नाना भाँति-की यातनाएँ देने लगा । आप ही सोचिये, इतने वरदान पाये हुए उसे कोई मार सकता था क्या ? किंतु भगवान्की बुद्धिके सम्मुख किसीकी बुद्धि चल सकती है ? ब्रह्माजीके वरोंको सत्य करते हुए भी उसे मार ही तो डाला । कैसे मारा ? नरसिंह बनकर—आधे नर और आधे पशु ! यह ब्रह्माजीकी सृष्टिसे पृथक् ही जन्तु था । उसे न भीतर मारा न बाहर मारा, सभाभवनकी देहलीपर मारा । न पृथ्वीपर मारा न अन्तरिक्षमें मारा, जाँघोंपर रखकर मारा । न अस्त्रसे मारा न शस्त्रसे मारा, नखोंसे पेट फाड़ दिया । न दिनमें मारा न रात्रिमें, दोनोंकी संध्या-वेलामें मारा । बताइये, दूसरा कोई ऐसी युक्ति कर सकता है ? माता-पितासे पैदा न होकर खंभसे पैदा हो गये । बोलो, खंभसे प्रकट होनेवाले भगवान् विष्णुकी जय !

(ख) शकुनि-नामक असुरका पुत्र था वृकासुर । शिवजीको प्रसन्न करके उसने यह वर माँग लिया कि 'मैं जिसके सिरपर मारनेके संकल्पसे हाथ रखूँ, वह मर जाय ।' औढरदानी शिवजीने झटसे वरदान दे दिया । अब वह दुष्ट

गौरी-हरण-लालसासे शिवजीको ही मारनेपर उतारू हुआ। शिवजी मुट्ठी बाँधकर भागे। वह भी यह कहते हुए उनके पीछे भागा कि 'बाबा! मुझसे भागकर कहाँ जाओगे?' शिवजीने मन-ही-मन विष्णुभगवान्‌का स्मरण किया।

बहुरूपिया विष्णुभगवान्‌ने ब्रह्मचारीका कपट-वेष बना लिया और दण्ड-कमण्डलु लिये, मृगछाला ओढ़े, रुद्राक्षकी माला पहने, खड़ाऊँ खटकाते वृकके मार्गमें खड़े हो गये। जब वृकासुर दौड़ता हुआ इनके समीप आया तो बड़ी ही मीठी वाणीमें चिरपरिचितोंकी भाँति ललककर बोले—'आह! आज तो बड़ा सुदिवस है, श्रीमान् शकुनिनन्दनजीके दर्शन हो गये। वृकजी! जय शंकरजीकी! इतने झपट्टेके साथ कहाँ जा रहे हो, बड़े श्रमितसे प्रतीत हो रहे हो। तनिक बैठो तो सही। जलपान तो कर लो। ऐसी क्या शीघ्रता है?'

वृक बोला—'ब्रह्मचारीजी! मुझसे बोलिये नहीं। बड़े आवश्यक कार्यसे जा रहा हूँ।'

ब्रह्मचारीजी बोले—'हम भी तो सुनें, ऐसा कौन-सा कार्य है। कामका पता चले तो हम आपके कार्यमें सहायता करेंगे। परस्परके सहयोगसे ही संसारके सभी कार्य सम्पन्न हुआ करते हैं।'

वृकने पूरी कहानी सुना दी। आपने तो अपनी वाणीमें अमृत घोल रखा था। वृककी बात सुनकर बड़े वेगसे ठहाका मारकर हँसे और फिर बड़े प्यारसे अपनेपनके साथ बोले—'राजन्! हम तो आपको बहुत बुद्धिमान् समझते थे। आपके पिता शकुनि तो बड़े ही विद्वान् थे।'

वृक घबरा गया। बोला—'ब्रह्मचारीजी! मैंने कुछ गड़बड़-सड़बड़ कर दिया क्या?'

हँसते हुए आप बोले—'बहुत बड़ी भूल आपने कर दी।'

वृक चौंका और बोला—'वह क्या?'

कपटी-ब्रह्मचारी बोले—'आपने भी किनका विश्वास किया। शिवजी तो दक्षके शापसे पिशाच हो गये हैं। उनकी बातपर आपने कैसे विश्वास कर लिया?'

वृक बोला—'नहीं जी, वे तो जगद्गुरु हैं।'

ये बोले—'तुम उन्हें जगद्गुरु मानते हो और उनकी बातपर विश्वास करते हो तो हाथ कंगनको आरसी क्या! तुम्हें सिर मोल लेने तो जाना नहीं। क्या तुम्हारे सिर नहीं है? पहले अपने ही सिरपर हाथ रखकर परीक्षा कर लो।'

असुर इनकी उलटी पट्टीमें आ गया, इनके मोह-जालमें फँस गया। उसने झट अपना हाथ अपने सिरपर रखा, सटसे नीचे गिरा और फटसे मर गया। ऐसी मोहिनी माया दूसरा कोई कर सकता है? बोलो कपट-ब्रह्मचारी-वेषधारी भगवान् विष्णुकी जय!

(ग) एक असुरने शिवजीसे यह वर प्राप्त कर लिया कि 'मुझमें शत्रुभाव रखकर जो भी प्रहार करे, वही परास्त हो जाय। मुझे शत्रुभावसे कोई भी मार न सके।' जो लड़ने आयेगा, वह शत्रुभावसे ही लड़ेगा; अतः इन्द्रादि समस्त देवताओंको जीतकर वह स्वर्गका सम्राट् बन गया। समस्त देवताओंको उसने स्वर्गसे निकाल दिया। स्वयं स्वर्गके सिंहासनपर आरूढ़ होकर स्वर्गका शासन करने लगा।

देवता ब्रह्माजीके पास गये, ब्रह्माजी सबको लेकर शिवजीके पास गये। वे तो वरदान देकर स्वयं ही हाथ कटा चुके थे। सबने कहा—'भगवान् विष्णुके अतिरिक्त अन्य कोई इस संकटसे उद्धार नहीं कर सकता।' सभी भगवान्‌की शरणमें गये। सब सुनकर भगवान् क्रुद्ध होते हुए बोले—'आपलोग असुरोंको ऐसे दुर्लभ वर दे देते हैं, फिर आपत्ति पड़नेपर मेरे पास आते हैं। अब आप ही बतायें, उसे कोई कैसे मार सकता है। जो मारने जायगा, वह शत्रुभावसे ही तो मारेगा। अच्छी बात है; तुमलोग जाओ, मैं कुछ सोचूँगा।'

सबके चले जानेपर, भगवान्‌ने पीताम्बर धारण किया, शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म धारण किये और गरुड़पर चढ़कर स्वर्ग पहुँचे। द्वारपर जाकर निरायुध खड़े हो गये। द्वारपालसे कहा—'तुम अपने राजाको सूचना दो, विष्णु-भगवान् मित्रभावसे आपके स्वर्गाधिपति हो जानेपर बधाई देने आये हैं।'

द्वारपालने तुरंत जाकर सूचना दी। 'विष्णुभगवान् मित्रभावसे मुझे बधाई देने आये हैं'—यह सुनकर असुरके तो हर्षका कुछ ठिकाना ही न रहा। वह तुरंत सिंहासनसे कूद पड़ा और स्वयं दौड़ता हुआ भगवान् विष्णुकी अगवानी करने मित्रभावसे द्वारपर पहुँच गया और प्रेममें भरकर बड़े उल्लासके साथ बोला—'विष्णो! आज मैं कृतार्थ हो गया, जो आप मुझे मित्र मानकर स्वयं मेरे द्वारपर मुझे बधाई देने आये।'

ये बोले—'हाँ मित्र ! तुमने बड़ा दुष्कर कार्य किया है, इसीलिये मित्रभावसे मैं तुमसे मिलने आया हूँ। आओ, हम दोनों मित्र हृदयसे हृदय सटाकर एक बार मिल तो लें।'

यह कहकर भगवान्ने उसे आलिङ्गन करते हुए प्रेमसे कस लिया। भगवान्को इतना प्रेम उमड़ा कि अपने मित्रको कसते ही गये, कसते ही गये। मित्रजी हुच-हुच करने लगे, किंतु हमारे विष्णुभगवान्का प्रेम कम नहीं हुआ। अन्तमें असुरजी धम्मसे निर्जीव होकर गिर गये। बताइये, छली-कपटी असुरोंसे ऐसी मित्रता कौन कर सकता है। बोलो कपटी मित्र भगवान् विष्णुकी जय।

(घ) एक असुरने वर माँग लिया कि मैं जलमें डूबनेके सिवा कभी न मरूँ। अब तो वह पहाड़की चोटीपर, जहाँ बीसों योजनतक डूबनेयोग्य जल नहीं था, रहने लगा। पीनेको छोटे पात्रमें ही जल पीता। जलके निकट कभी जाता ही न था।

भगवान् विष्णुने समुद्रको बढ़ाया। बढ़ते-बढ़ते समुद्रने उस असुरके पहाड़की चोटीको चारों ओरसे घेर लिया। अब असुर क्या करता। उसी समय भगवान् विष्णु सैकड़ों योजन लंबे कछुएका रूप रखकर जलके ऊपर जम गये। असुरने कहीं भी अपना त्राण न देखकर सोचा, 'जलमें यह जो द्वीप है, चलकर उसीपर रहूँ।' बस, उस कछुएको द्वीप समझकर असुर उन कच्छपकी पीठपर बैठ गया। जब उन्होंने देखा कि असुर निश्चिन्त होकर बैठ गया, तब कच्छप-रूपधारी प्रभु शनैः-शनैः खिसके और उन्होंने जलमें एक डुबकी लगायी। असुर हुच-हुच करके जलमें डूब गया और मर गया। बोलो कच्छप-वपुधारी विष्णुभगवान्की जय !

पुराणोंमें ऐसी मनोरञ्जक दस या बीस या सौ नहीं, सहस्रों कथाएँ हैं और बड़ी ही मनोरंजक एवं शिक्षाप्रद भी। विस्तारभयसे अधिकका उल्लेख नहीं कर सकते। कहीं भगवान्ने असुरोंको यज्ञ-दान-वेदाध्ययन करते देखकर यह समझकर कि ये कुपात्र इन शुभ कर्मोंको करके अनर्थकी ही सृष्टि करेंगे, भिक्षु बनकर उन्हें इन शुभ कर्मोंसे विरत कराया है, कहीं नाना रूप धारण करके दुष्ट असुरोंसे साधुओंका परित्राण करके धर्म-संस्थापन-कार्य किया है। इससे यही सिद्ध होता है कि भगवान् विष्णु, जो भी कार्य करते हैं, जो भी रूप धारण करते हैं, धर्म-संस्थापनार्थ, साधु-रक्षणार्थ तथा दुष्कृतकारियोंके विनाशार्थ ही करते हैं। इस बातको उन्होंने स्वयं ही अपने श्रीमुखसे गीता (४। ७-८) में कहा है—

> भारत ! जब-जब होइ धरम की ग्लानि जगत में।
> बाढ़ैं पापी असुर, करैं उत्पात अवनि में॥
> हानि धरम की होइ, संत जन अति दुख पावैं।
> अधरम अति बढ़ि जाय, दुष्ट सज्जननि सतावैं॥
> तब-तब हौं बहु रूप धरि, बिबिध बेष धारन करूँ।
> जन सम्मुख साकार बनि, संतनि की बिपदा हरूँ॥

अवताराभिवन्दनका हेतु

(परमपूज्य गुरुजी श्रीमाधवराव सदाशिवराव गोलवलकर)

हमारे प्राचीन वाङ्मयमें जगत्स्थितिपालक श्रीपरमेश्वरके जो अनेक अवतार वर्णित हैं, उनमें मत्स्यादि दस अवतारोंको ही प्रमुख स्थान दिया गया है। उनके आविर्भावके समय तत्कालीन जनताकी दयनीय अवस्था, उनका जीवनकार्य, उनके श्रेष्ठ पराक्रम, उनके द्वारा किया हुआ दुष्ट-नियमन एवं साधु-सज्जनोंका संरक्षण इत्यादि अनेक बातें अखिल भारतके आबाल-वृद्धोंकी जिह्वापर हैं और यह बात भी सर्वविदित है कि भारतीय जनता, जिसे आज 'हिंदू' कहते हैं, उक्त दशावतारोंमें प्रमुख गिने जानेवाले श्रीरामचन्द्र एवं श्रीकृष्णकी उपासक है। प्रश्न उठ सकता है कि 'इन दस अवतारोंके प्रति ही जनतामें इतने एकमतसे आदरकी भावना क्यों है ? अखिल विश्व और विशेषकर इस पुण्य-पावन भारतभूमिमें, समय-समयपर ऐसे असंख्य महापुरुषोंके उत्पन्न होनेपर भी, जिनमें अवतारोंके विभूतिमत्त्व, श्रीमत्त्व एवं ऊर्जितत्वके लक्षण लागू हो सकते हैं, जनताने इन दसको ही चुनकर अपने हृदयोंमें क्यों बसाया ?' इसका एवं ऐसे अन्य प्रश्नोंका भी उत्तर अवतारके सर्वमान्य उद्देश्य—'परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्। धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥' (गीता ४। ८) **से प्राप्त हो सकता है।**

भक्तवत्सल भगवान् श्रीविष्णु

(लेखक—अनन्तश्रीविभूषित महामण्डलेश्वर स्वामी भजनानन्दजी सरस्वती)

भगवान् विष्णु गुणोंके आकर हैं, नहीं-नहीं, मूर्तिमान् सद्गुण हैं। नभके तारे, धरतीके रेणु तथा सागरके विन्दु गिन लिये जा सकते हैं; किंतु भगवान्के गुणोंका आकलन सम्भव नहीं। तभी तो त्रिदेवोंमें भगवान् विष्णुकी महिमा है और तभी तो भारत-भूमिपर एवं भारतेतर देशोंमें विष्णु-पूजा और वैष्णव-धर्मका विस्तार हुआ और हो रहा है। भगवान् विष्णुके अनेक गुणोंमें उनका भक्तवत्सलता-गुण सर्वोपरि है। चतुर्विध भक्त जिस भावनासे भगवान् विष्णुकी शरण ग्रहण करते हैं, जिस कामनासे भगवान् विष्णुका भजन करते हैं, सर्वसमर्थ भगवान् विष्णु उनकी उस-उस भावना-कामनाको पूर्ण करते हैं। भक्त-वाञ्छा-कल्पतरुकी श्रेष्ठताकी सर्वत्र प्रतिष्ठा होना स्वाभाविक है। गजराज, द्रौपदी आदि अनेक आर्तभक्त हुए हैं, जिनकी रक्षा भगवान् विष्णुने की है। भक्त प्रह्लादका चरित्र तो भगवान् विष्णुकी भक्तवत्सलताका अद्भुत उदाहरण है। जब प्रह्लादको किसी प्रकारसे हिरण्यकशिपु नष्ट न कर सका, तब उसने अन्तमें निश्चय किया कि मैं स्वयं ही प्रह्लादको मार डालूँगा। जब प्रह्लादने कहा कि 'खंभेमें भी राम हैं' तब दैत्यराज हिरण्यकशिपुने खंभेमें जो खड्ग मारा तो उसके दो टुकड़े हो गये और भगवान् नृसिंहरूपमें प्रकट हो गये। उन्होंने हिरण्यकशिपुको अपने नखोंसे विदीर्ण कर दिया।

ऐसे नृसिंहभगवान् जब हिरण्यकशिपुको समाप्त कर चुके, तब सभी देवताओंने उनसे प्रार्थना की। नृसिंहभगवान्के विकराल क्रोधको देखकर कोई उनके पास नहीं जा सका—यहाँतक कि श्रीलक्ष्मीजी जो सदैव उनके पास रहती हैं, वे भी डर गयीं और कहने लगीं—'मैंने प्रभुका ऐसा रूप तो कभी नहीं देखा था।' तब सभी देवताओंने कहा कि 'जिसके निमित्त भगवान्ने ऐसा विकराल रूप धारण किया है, उसीको उनके पास भेजना चाहिये।' प्रह्लाद निर्भय होकर नृसिंहभगवान्के पास चले गये। भगवान्ने प्रह्लादको गोदमें लेकर एक श्लोक पढ़ा, जो भक्तोंके लिये चिरस्मरणीय है—

> क्वेदं वपुः क्व च वयः सुकुमारमेतत्
>
> क्वैताः प्रमत्तकृतदारुणयातनास्ते ।
>
> आलोचितं विषयमेतदभूतपूर्वं
>
> क्षन्तव्यमङ्ग यदि मदागमने विलम्बः ॥

अर्थात् कहाँ तो तुम्हारा यह कोमल शरीर एवं सुकुमार अवस्था और कहाँ उसपर मतवाले जल्लादोंद्वारा दी गयी कठोर पीड़ाएँ! परंतु ये सब विषमताएँ मैं देखता ही रहा। मुझे आनेमें जो विलम्ब हुआ, उसके लिये तुमसे क्षमा चाहता हूँ।

इसी श्लोकका बड़ा सुन्दर भाव एक कविने कहा है—

> बोले प्रभु, 'प्यारे! अङ्ग कोमल तुम्हारे हाय!
>
> असुरने मारे मम नाम एक गानेमें ॥'
>
> × × ×
>
> गिरिसे गिराये पुनि जलमें डुबाये हाय!
>
> अग्निमें जलाये राखि कमी न सतानेमें।
>
> मंजुल मुखारविन्द चूमि-चूमि कहैं प्रभु
>
> क्षमा करो पुत्र मोहि देर भई आनेमें ॥

जब भगवान्ने उससे कुछ माँगनेको कहा, तब प्रह्लाद बोले—

> प्रायेण देव मुनयः स्वविमुक्तिकामा
>
> मौनं चरन्ति विजने न परार्थनिष्ठाः ।
>
> नैतान् विहाय कृपणान् विमुमुक्ष एको
>
> नान्यं त्वदस्य शरणं भ्रमतोऽनुपश्ये ॥
>
> (भागवत ७ । ९ । ४४)

'हे स्वामिन्! बड़े-बड़े ऋषि-मुनि तो प्रायः अपनी मुक्तिके लिये निर्जन वनमें जाकर मौनव्रत धारण कर लेते हैं; वे दूसरोंकी भलाईके लिये कोई विशेष प्रयत्न नहीं करते। परंतु मेरी दशा तो दूसरी ही हो रही है। मैं इन भूले हुए असहाय जीवोंको छोड़कर अकेला मुक्त होना नहीं चाहता और इन भवाटवीमें भटकते हुए प्राणियोंके लिये मुझे आपके सिवा और कोई सहारा भी नहीं दिखायी पड़ता।'

वस्तुतः प्रह्लाद तो प्रह्लाद ही हैं। हर प्रकारसे प्रह्लादका जीवन, उनका विश्वास, उनकी आस्था, उनकी सबसे एकात्मता अद्वितीय है। स्वर्णकी परीक्षा काटकर, छेदकर और जलाकर की जाती है, इसी प्रकार भक्त प्रह्लादकी परीक्षा भी सर्पोंसे कटाकर, अस्त्र-शस्त्रद्वारा छेदकर और अग्निमें जलाकर की गयी। सब परीक्षाओंमें उत्तीर्ण होनेपर वे उत्तम भक्तकी श्रेणीमें आये—यहाँतक कि भगवान्ने श्रीगीताजीके दसवें अध्यायके तीसवें श्लोकमें भक्तराज प्रह्लादको अपनी विभूति बताया है—'प्रह्लादश्चास्मि दैत्यानाम्'। जिन

बारह परम भक्तोंका नाम लेकर नमस्कार करनेसे प्राणीको सुख-शान्ति मिलती है, उनमें प्रह्लादजीका नाम सबसे पहले है—

प्रह्लादनारदपराशरपुण्डरीक-
व्यासाम्बरीषशुकशौनकभीष्मदाल्भ्यान्।
रुक्माङ्गदार्जुनवसिष्ठविभीषणादीन्
पुण्यानिमान् परमभागवतान् स्मरामि॥
(पाण्डवगीता १)

अर्थात् 'प्रह्लाद, नारद, पराशर, पुण्डरीक, व्यास, अम्बरीष, शुक, शौनक, भीष्म, दाल्भ्य, रुक्माङ्गद, अर्जुन, वसिष्ठ और विभीषण—इन परम भागवतोंको मैं स्मरण करता हूँ।'

भक्त प्रह्लादका जीवन जिस प्रकार एक ओर भक्त-हृदयके स्वरूपका दिग्दर्शन कराता है, उसी प्रकार दूसरी ओर भगवान् विष्णुकी भक्तवत्सलताका अनुपम उदाहरण प्रस्तुत करता है एवं जन-जनमें भगवान् विष्णुकी महिमाको प्रतिष्ठित करते हुए भक्ति-पूर्ण जीवन अङ्गीकार करनेकी प्रेरणा देता है।

जगन्निवास विष्णु

(रचयिता—श्रीरामपुनीतजी श्रीवास्तव)

घट-घटमें है वास तुम्हारा।
डोल रहा रवि-शशि-तारकमय नयनोंमें आकाश तुम्हारा॥
नर-समूहमें ठौर तुम्हारा, इसीलिये नारायण हो तुम;
सिया-राममय भक्ति-भावमय जीवनके रामायण हो तुम;
श्रद्धाका पालक-पोषक है, प्रेम-भरा विश्वास तुम्हारा। घट-घट०
सारा जगत समाया तुममें, तुम हो व्याप्त जगत्-कण-कणमें;
विश्व-श्वास-मिस घड़ी तुम्हारी, चलती रहती है क्षण-क्षणमें;
सुमनोंके उच्छ्वसित गन्धमें, विलसित श्वासोच्छ्वास तुम्हारा। घट-घट०
साहस-कौशल तुम्हीं कर्ममें, निष्ठा हो अर्चन-पूजनमें;
रमा-रमण हे राम! तुम्हीं तो रमते प्राण बने जन-जनमें;
कभी शौर्यमें, कभी दयामें, मिलता है आभास तुम्हारा। घट-घट०
सागरके विस्तृत प्रसारमें, भू-की विविध रङ्गशालामें;
सुछवि तुम्हारी है छवि-छविमें, सर-सरितामें, घन-मालामें;
छन्द-छन्दमें, कला-कलामें, भावुक लास-विलास तुम्हारा। घट-घट०
कर्म-कर्ममें, भाव-भावमें, हर स्वर-वाणीमें व्यापक हो;
यही कह रहा प्राणी-प्राणी, प्राणी-प्राणीमें व्यापक हो;
श्रमी-कर्षकोंके श्रम-कणमें झलक रहा आयास तुम्हारा। घट-घट०
गौओंके उपकारी तनमें, विहगोंके कूजन-निनादमें;
होती है अनुभूति तुम्हारी, जग-जीवनके विविध स्वादमें;
दीख रहा ऋतुराज-शरदमें, सुन्दर सफल विकास तुम्हारा। घट-घट०
हो तुम जगन्निवास विष्णु विभु! मुझमें भी है धाम तुम्हारा;
देखा करूँ तृषित नयनोंसे रूप ललाम प्रकाम तुम्हारा;
मेरे अन्तरतमको मिलता रहे 'पुनीत' प्रकाश तुम्हारा।
घट-घटमें है वास तुम्हारा॥

विष्णु-प्रतिमा-निदान

(लेखक—अनन्तश्री जगद्गुरु रामानुजाचार्य पुरुषोत्तमाचार्य रङ्गाचार्यजी)

'शतपथ'-ब्राह्मणमें उपलब्ध—'यद्वै प्रतिरूपं तत् शिल्पम्'के आधारपर तज्ज्ञ विद्वानोंने 'सदृशं शिल्पं प्रतिमा'—यह प्रतिमाका लक्षण बताया है। वैदिक ब्राह्मण-ग्रन्थोंमें सूर्य, पृथ्वी एवं चन्द्र आदि पिण्डोंको प्रजापति (परमात्मा)की प्रतिमा माना है। प्रतिमाका उपयोग पदार्थ-विज्ञान एवं 'उपासना' दोनोंमें होता है। वेदके 'आरण्यक' भागमें अनेकविध उपासनाओंका विधान है। उन सबका अन्तर्भाव सत्यवती, अङ्गवती, प्रतिमावती एवं निदानवती——इन चार उपासनाओंमें हो जाता है। इनमें सत्यवती उपासनाको छोड़कर शेष तीनों उपासनाओंमें प्रतिमाका उपयोग अनिवार्य है। इन्द्र, वरुण, सूर्य एवं अग्नि आदि प्रजापति परमात्माके अङ्ग हैं। इन अङ्गोंकी अङ्गीरूपसे उपासना करना 'अङ्गवती' उपासना है। वेदान्तसूत्रोंमें इसका नाम 'प्रतीकवती' उपासना है। 'प्रतिमावती' उपासनामें प्रतिरूप-प्रतिमा एवं भाव-प्रतिमा भेदसे दो प्रकारकी प्रतिमाओंका उपयोग होता है। इनमें शालग्राम ब्रह्माण्डमें स्थित हिरण्यगर्भ (परमात्मा) की प्रतिरूप-प्रतिमा है। पीली मिट्टी गणेशकी भाव-प्रतिमा है अथवा शून्य विन्दु भाव-प्रतिमा है।

प्रतिमा-निदान

साधर्म्यविशेषके न होनेपर भी यादृच्छिक किसी एक पदार्थका आहार्यारोप-ज्ञानसे सम्बन्ध स्थापित करके स्मारक बनाना 'निदान' है। संकेतका नाम 'निदान' है। अमुक वस्तुको अमुक समझो, यह निदान है। कमल पृथ्वीका निदान है। इसका अर्थ यह है कि कमलको पृथ्वी समझो। हाथी लक्ष्मीका निदान है—इसका अर्थ यह है कि हाथीको लक्ष्मी समझो। मदिरा मोहका निदान है—इसका तात्पर्य यह है कि मदिराको मोह समझो। कृष्ण रंग शोक एवं अकीर्तिका निदान है। शुक्ल रंग यश एवं मुक्तिका निदान है। वेदमें सम्पूर्ण यज्ञ-विद्या इस निदान-शास्त्रपर ही प्रतिष्ठित है, निदान-शास्त्रके आधारपर ही निर्गुण एवं निराकारकी प्रतिमाओंका निर्माण हुआ है। दूसरे शब्दोंमें जिस शास्त्रके निदान-संकेतोंद्वारा मूर्तियोंका निर्माण हुआ है, वह शास्त्र 'निदान-शास्त्र' है। यह शास्त्र आजकल उत्सन्नप्राय हो गया है। इसका वर्णन यत्र-तत्र पुराणों एवं शिल्पग्रन्थोंमें उपलब्ध होता है। इसके आधारपर विष्णु-प्रतिमाके निदान-भावोंका वर्णन किया जाता है।

विष्णुप्रतिमाके निदान-भाव

श्रीविष्णुप्रतिमाके निदान-भावोंका वर्णन विष्णु-धर्मोत्तर-पुराण, श्रीमद्भागवत एवं शिल्प-शास्त्रके आधारपर किया जा सकता है; किंतु यहाँ विष्णुपुराणसे विष्णु-प्रतिमाके निदानों (संकेतों) का वर्णन दिया जा रहा है। श्रीहरिके वक्षःस्थलमें स्थित कौस्तुभमणि निर्लेप एवं निर्गुण पुरुष (जीवात्मा) का संकेत है। दूसरे शब्दोंमें श्रीहरि कौस्तुभके व्याजसे इस जगत्‌में स्थित निर्मल क्षेत्रज्ञ (जीव)को ही धारण करते हैं। श्रीहरिका श्रीवत्सचिह्न प्रकृतिका निदान (संकेत) है। यह चिह्न भगवान्‌के वक्षःस्थलमें विद्यमान है। नारद-पञ्चरात्रमें विज्ञान है कि इस चिह्नसे ही श्रीलक्ष्मी, जया एवं कीर्ति आदि भगवान्‌की शक्तियोंका आविर्भाव है। दूसरे शब्दोंमें इस जगत्‌के चेतन एवं जड——ये दो अवयव हैं। इनमें चेतन कौस्तुभ है, जड श्रीवत्स है। इन दोनोंको श्रीअच्युतने धारण कर रखा है। अतः परमात्मा एवं जगत्‌का आधाराधेयभाव-सम्बन्ध है। यह सम्बन्ध श्रीविशिष्टाद्वैत (श्रीरामानुज) मतका जीवन है। श्रीहरिके हस्त-कमलमें स्थित गदा बुद्धिका निदान (संकेत) है। यह अष्टाश्रि है। वेदमें 'अश्रि' नाम धारका है। धर्म, ज्ञान, विराग, ऐश्वर्य, अधर्म, अज्ञान, अविराग एवं अनैश्वर्य——ये आठ उसकी अश्रियाँ (कोण) हैं। श्रीअच्युतके हस्त-कमलमें विराजमान 'शङ्ख' अहंकारका निदान है, जो आकाश आदि पञ्चमहाभूतोंका कारण है। पञ्चमहाभूतोंका कारण होनेसे इसका 'पाञ्चजन्य'——यह असाधारण नाम है। श्रीअनन्तके हस्त-कमलमें विराजमान शार्ङ्ग-चाप राजस अहंकारका निदान है, जो पाँच कर्मेन्द्रियों एवं पाँच ज्ञानेन्द्रियोंका कारण है। भगवान् विष्णुके हस्त-कमलमें स्थित चक्र सात्त्विक अहंकारका निदान है, जो मनका कारण है। मन सदा चल-स्वभाव एवं वायुसे भी अधिक वेग एवं बलसम्पन्न है। श्रीअच्युतकी वैजयन्ती माला पाँच तन्मात्राओंके संघातका निदान है। यह मुक्ता, पुष्पराग, माणिक्य, वज्र, इन्द्रनील एवं माणिक्यसे बनी है।

यह कण्ठसे लेकर चरणपर्यन्त लंबी होती है। इसके वनमाला एवं भूतमाला भी नामान्तर हैं। श्रीहरिके हस्त-कमलमें स्थित पाँच वाण पाँच कर्मेन्द्रियों एवं पाँच ज्ञानेन्द्रियोंके निदान हैं। श्रीअनन्तके हस्त-कमलमें विद्यमान असि (तलवार) एवं चर्म (ढाल) विद्या एवं अविद्याके निदान हैं। अज्ञाना-वरणका नाम अविद्या है। परमात्माके खड्गका असाधारण नाम 'नन्दक' है।

इस प्रकार श्रीहरि पुरुष, प्रकृति, बुद्धि, अहंकार, पञ्चतन्मात्रा, मन, इन्द्रियाँ, विद्या एवं अविद्या आदि सबको धारण करते हैं।

विष्णुका विश्वरूप

(लेखक—स्वामी श्रीअनिरुद्धाचार्यजी वेंकटाचार्यजी महाराज)

'ऋग्वेद'में उपलब्ध 'एकं वा इदं विबभूव सर्वम्' के अनुसार एक ही तत्त्व दृश्यमान विश्वके (अनेक) रूपोंमें परिणत हो गया है। विचक्षणोंकी यह उपलब्धि है कि इस विश्वमें परज्योतिरूप एक ही देवता है, जिसको 'परम पुरुष' कहते हैं। वह अपनी ही 'माया'-शक्तिसे अवच्छिन्न होकर इन विविध भावोंमें परिणत हो गया है। अपनेमें लीन (प्रसुप्त) मायाशक्तिको प्रकट (उद्बुद्ध) करके ही वह परम पुरुष सर्वप्रथम पुरुष (शक्तिमान्) एवं माया (शक्ति)—इन दो रूपोंमें प्रकट हुआ।

वेदोंमें आनन्द, ज्ञान, इच्छा, क्रिया एवं आवरण—इन पाँच गुणोंका समुदाय 'शक्ति' शब्दसे अभिहित है। तन्त्रोंमें ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, वीर्य, तेज—इन गुणोंके समुदायको 'शक्ति' कहा गया है। इनमें अवच्छेदरूप आवरण-शक्ति 'माया' है। मायारूप अवच्छेदसे अवच्छिन्न अखण्ड खण्डवत्, शान्त अशान्तवत्, अद्वय द्वयवत् भासता है; परंतु यह प्रतिभान मिथ्या नहीं है। माया (प्रकृति) के गुण-भेदसे वह तीन रूपोंमें—सत्त्वगुणसे विष्णु, रजोगुणसे ब्रह्मा एवं तमोगुणसे शिवरूपमें प्रकट होता है। इनके कार्य क्रमशः स्थिति, उत्पत्ति एवं प्रलय हैं। धर्म, ज्ञान, विराग एवं ऐश्वर्य—इन चार गुणोंके योगसे वह क्रमशः वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न एवं अनिरुद्ध—इन चार रूपोंमें प्रकट हुआ है। चार वर्ण, चार आश्रम, चार युग एवं चार पुरुषार्थ आदि परमात्माके चार-चार रूप हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं गन्ध—इन पाँच गुणोंके कारण क्रमशः परमेष्ठि, पुमान्, विश्व, निवृत्ति एवं सर्व—ये परमात्माके पाँच रूप हैं। श्रोत्र, चक्षु, घ्राण, रसना, त्वक् एवं मन—ये परमात्माके ही छः रूप हैं। वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरत्, हेमन्त एवं शिशिर—इन छः ऋतुओंके रूपमें भी वह प्रजापति ही परिणत हुआ है। भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः एवं सत्य—इन सात व्याहृतियोंमें वही परिणत हुआ है। गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप्, जगती—ये सात छन्द भी उसके ही रूप हैं। अग्निहोत्र, दर्श, पौर्णमास, चातुर्मास्य, वाजपेय अतिरात्र और ज्योतिष्टोम—ये सात रूप भी उस परात्परके ही हैं। इस प्रकारके यच्च-यावत् सात ज्ञात रूप हैं, उन रूपोंमें भी परमात्मा ही परिणत हुए हैं। अव्यक्त, महत्, अहंकार तथा शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं गन्ध—इन आठ रूपोंमें परमात्मा ही परिणत होते हैं। पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, चन्द्र, सूर्य एवं यजमान—इन आठ मूर्तियोंके रूपमें वही परिणत हुआ है। आठ दिक्पाल, आठ गुण एवं आठ सिद्धियाँ आदि रूपोंमें भी वही परिणत है। नरसिंह, वराह, वामन, राम, कृष्ण, ब्रह्मा, इन्द्र, सूर्य, चन्द्र—ये नौ रूप भी इस विश्वात्माके ही परिणाम हैं। इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, सोम, ईशान, ब्रह्मा, अनन्त नाग—इन दस रूपोंमें भी वही परिणत हुआ है। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ एवं मन—ये ग्यारह भी भगवान् श्रीहरिके ही रूप हैं। इन्द्र, भग, पूषा, पर्जन्य, अंशु, विष्णु, त्वष्टा, धाता, विवस्वान्, वरुण, अर्यमा, मित्र—ये बारह आदित्य भी परमात्मा श्रीहरिके ही रूप हैं। तेरह विश्वदेवों, चौदह मनुओं, पंद्रह तिथियोंके एवं सोलह दिशा-विदिशाओंके रूपमें भी वही परिणत हुआ है।

विश्वरूपके मुख-हस्त आदि

इन विश्वात्मा श्रीहरिके एक, दो, तीन, चार, पाँच, छः आदि अनेक मुख हैं। दो, चार, छः, आठ आदि अनेक हाथोंके भेद हैं। इन हाथोंमें विविध आभरण एवं विविध आयुध हैं। उनके मस्तक अनेकविध मुकुटोंसे मण्डित हैं। पुरुषसूक्तमें सहस्र-सहस्र पाँव, हाथ एवं

आँखोंका उल्लेख है। उनके दिव्य शरीरके नील, पीत, रक्त, श्याम एवं शुक्ल आदि अनेक रंग हैं। उन विश्वात्माके चन्द्र एवं सूर्य दो नेत्र हैं। द्युलोक उनका मस्तक है। वनस्पति उनके केश हैं। भ्रुवोंके मध्यमें क्रोध है। सोम उनका मन है। ग्यारह रुद्र उनके कण्ठमें हैं। नक्षत्र, ग्रह एवं तारे उनके दशन हैं। धर्म एवं अधर्म उनके होठ हैं। इन्द्र एवं अग्नि दोनों मिलकर उनके तालु हैं। सरस्वती उनकी जिह्वा है। चार दिशाएँ, छः विदिशाएँ उनके कानोंमें स्थित हैं। उनके पाँच प्राणोंमें वायु व्यवस्थित है। उन्चास मरुद्गण उनकी अँगुलियोंमें स्थित हैं। अनेक ऋषि उनके रोमोंमें स्थित हैं। सब समुद्र उनके बस्तिमें स्थित हैं। दोनों अश्विनीकुमार उनके जानुओंमें स्थित हैं। सब पर्वत उनके ऊरुमें स्थित हैं। उनके गुह्यमें सब गुह्यक-देव स्थित हैं। आठ वसुगण उनके वक्षःस्थलमें स्थित हैं। दिव्य ओषधियाँ उनके नखोंके अग्रभागमें स्थित हैं। उत्तरायण एवं दक्षिणायन उनके नासापुट हैं। छः ऋतुएँ उनके बाहुमूलोंमें स्थित हैं। उनके हाथोंमें बारह मास हैं। ललाटके अग्रभागमें सिद्ध स्थित हैं। दोनों भुजाओंमें विद्युत्‌के साथ मेघ स्थित हैं। यक्ष, गन्धर्व, किंनर, चारण, दैत्य, दानव, राक्षस आदि सब उनके जठरमें स्थित हैं। प्रेत, पितर, कूष्माण्ड, वेताल, प्रमथगण, पातालवासी जीव—ये सब इनके पाँवोंमें स्थित हैं। उनके दोनों पार्श्वोंमें वैदिक एवं तान्त्रिक दोनों यज्ञ प्रतिष्ठित हैं। अग्निहोत्र आदि धर्म, वर्णाश्रमानुगत धर्म, स्वाहाकार, वषट्कार आदि सब विश्वरूप भगवान्‌के हृदयमें स्थित हैं। इस विश्वरूपमें सब देवोंकी मूर्तियाँ स्थित हैं, अतः परमात्मा सहस्रमूर्ति होकर भी सर्वात्मक हैं; वेदोंमें 'सहस्र' शब्द अनेक संख्याका वाचक है; अतः इनकी मूर्तियाँ (स्वरूप) असंख्य हैं। प्रतिक्षण उनका उदय-अस्त होता रहता है। विष्णुके ये विश्वरूप शान्त, घोर एवं मूढ़ रूपसे तीन प्रकारके हैं। जिसके मुखसे ब्राह्मण, बाहुसे क्षत्रिय एवं ऊरुसे वैश्य उत्पन्न हुए हैं, वह 'तद्विष्णोः परमं पदम्' है। सब देवोंके आश्रय एवं उपादानकारण विष्णु हैं, विष्णु ही सब देवता हैं। सम्पूर्ण चराचर विष्णुसे व्याप्त हैं। सब देव 'विष्णुपर' हैं, अर्थात् सब देवोंमें विष्णु 'पर'-तत्त्व हैं। जिनसे सब सृष्टि हुई है, एवं अन्तमें जिनमें लीन हो जायगी, उन पुण्डरीकाक्षको छोड़कर दूसरा कौन विश्वको व्याप्त करके रह सकता है।

विष्णुके दो रूप

वे जनार्दन आधार एवं आधेयभावसे दो प्रकारके हैं। प्राणिमात्रके हितके लिये दो रूपोंमें परिणत हो गये हैं। एक रूप उनका सकल (सगुण) एवं दूसरा निष्कल (निर्गुण) है। इस प्रकार एक ही विष्णु परविष्णु एवं अवरविष्णु—इन दो रूपोंमें स्थित हैं। सकल-निष्कल, उभयरूप वे विष्णु प्रभविष्णु, महाविष्णु एवं सदाविष्णु भेदसे तीन प्रकारके हैं। वे ही क्रमशः आत्मा (जीवात्मा), अन्तरात्मा (अन्तर्यामी) एवं परमात्मा हैं। वे ही वैराज (वैश्वानर), लैङ्गिक (तैजस) एवं ऐश (प्राज्ञ) हैं। वे ही बाहर सूर्यरूप एवं भीतर प्राणरूपसे स्थित हैं। वेदान्तमें इनको अन्तर्व्याप्ति एवं बहिर्व्याप्ति कहते हैं। उनका शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं गन्ध—इन पाँच शक्तियोंसे बना हुआ रूप चिन्मयरूप है। इस चिन्मयरूपका जाग्रत्, स्वप्न एवं सुषुप्तिसे सम्बन्ध है। मन्त्रोंमें वे मन्त्र, अनुस्वार एवं नादके रूपमें क्रमशः स्थित हैं। वेद, सांख्य, योग, पञ्चरात्र, धर्मशास्त्र एवं पुराणमें मुनियों, देवों एवं मानुषोंसे यह कहा जाता है कि यह विश्व (जगत्) विष्णुमय है। जो अतीत है, अनागत है, वर्तमान है—जो कुछ है, वह सब विष्णुरूप है। सब इन्द्रियाँ, इन्द्रियोंके अर्थ, सब भूत, अन्तःकरण-चतुष्टय, अव्यक्त, त्रिगुणा माया, विद्या, धर्म, ज्ञान, विराग, ऐश्वर्य, अधर्म, अज्ञान, अविराग, अनैश्वर्य, नियति, कला, काल एवं अन्य जो कुछ भी है, सब विष्णुमय है। ये विष्णु 'पर' देव हैं। सब भूतों एवं प्राणियोंमें अवस्थित हैं। ऐसा कोई पदार्थ नहीं है, जहाँ वे न हों। देव, असुर, मर्त्य, पशु, पक्षी, सरीसृप, तरु, वल्ली, तृण, ओषधियाँ, महान्, अभ्र, विद्युत्, अशनि (वज्र), शैल, अब्धि, नदियाँ, आराम, नगर, तटाक, लोक, अनन्त, कालाग्नि, प्रेतावास (नरक), पाताल, भूः-भुवः-स्वः-महः-जनः-तपः एवं सत्य—ये सात स्वर्गलोक, जिनकी ब्राह्म, शैव एवं वैष्णव संज्ञा हैं, वे सब एक विष्णुसे व्याप्त हैं। वराह, भार्गव, राम, श्रीधर, वामन, हयग्रीव, कृष्ण, दिशाओंमें जो स्थित हैं, एवं जो यहाँ कहे गये हैं—वे सब भगवान् विष्णुकी विभूतियाँ हैं। दूसरे शब्दोंमें इन सब रूपोंमें वे ही सर्वत्र व्याप्त हो गये हैं।

भगवान् विष्णुके उपासक

(लेखक—साधुवेषमें एक पथिक)

जो साधक परमात्मा विष्णुके स्मरण-चिन्तन-ध्यानमें समग्र प्रीतिसे तल्लीन रहता है, वही 'वैष्णव' माना जाता है ।

परमात्मा विष्णुके निकट अपनेको उपस्थित रखते हुए सर्वभावसे सेवामें तन-मनको लगाये रहना 'उपासना' है ।

परमात्मा विष्णुसे अपने-आपको कभी और कहीं भी भिन्न न देखना, उन्हींके प्रेमसे आनन्दित रहना उपासनाकी पूर्णता है ।

जबतक साधक परमात्मा विष्णुको तत्त्वतः नहीं जान लेता, तबतक अज्ञानवश उपासना अपूर्ण रहती है । ज्ञानकी पूर्णतामें उपासनाकी पूर्णता है और प्रेमकी पूर्णतामें आनन्दकी पूर्णता है ।

भगवान् विष्णुकी मूर्तिमें पुष्प-चन्दन चढ़ा देना, आरती कर देना, स्तुति गा देना किसी बालकके लिये भी सरल है, परंतु भगवान् विष्णुके अखण्ड-अनन्त सत्-चित्-आनन्द-स्वरूपको जानकर समस्त विश्वमय, सर्वके आश्रय, सर्वात्मा परमात्मासे अपनेको अभिन्न देखना किसी ज्ञानदृष्टिसम्पन्न साधकके लिये भी श्रमसाध्य है; क्योंकि नित्यप्राप्त परमात्मा विष्णुकी अनुभूतिके लिये सतत सावधान रहना अर्थात् अपनेको नित्यप्राप्त प्रभुके निकट, अति निकट निरन्तर उपस्थित देखना उसीके लिये सम्भव है, जो ज्ञानमें निरन्तर जाग्रत् है ।

देहाभिमानीकी उपासना भगवान् विष्णुकी मूर्तिका आश्रय लेकर आरम्भ होती है । मूर्तिके निकटस्थ रहनेतक अपनी मान्यताके अनुसार पूजा-पाठ-जप-कीर्तन आदिके माध्यमसे उपासना चलती है और मूर्तिकी समीपतासे दूर हटनेपर उपासना समाप्त हो जाती है; किंतु ज्ञानमें देहा-भिमानका अन्त होनेपर जगदात्मा विष्णुकी उपासनाका आरम्भ होनेके पश्चात् अन्त नहीं होता ।

उपासनाकी पूर्णतामें वासना बाधक है और उपासनाके द्वारा ही वासनाका अन्त होता है । वासनाका आरम्भ 'स्व'से 'पर'की ओर प्रेरित करता है और उपासनाका आरम्भ 'पर'से 'स्व' की ओर एवं सत् परमात्मा विष्णुसे अभिन्नताका बोध कराता है । आरम्भमें कोई-कोई उपासक देहको प्रतिमाके निकट उपस्थित रखते हैं, पर मनको नहीं रख पाते; कोई मनको निकट रखते हैं, तनको नहीं स्थिर कर पाते और कुछ ऐसे भी उपासक हैं, जिन्हें तन-मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार—सभीको परमात्मा विष्णुमें स्थित देखनेकी दृष्टि सुलभ हो जाती है ।

जो यथार्थदर्शी परमात्मा विष्णुको तत्त्वतः जानते हैं, वे बिना कुछ किये ही अनुभव करते हैं कि जीवात्मा तो परमात्मा विष्णुका नित्य-निरन्तर उपासक है; क्योंकि वह परमात्मा विष्णुके इतना निकट स्थित है कि कभी कहीं दूर हो ही नहीं सकता ।

अपनेको परमात्मा विष्णुके नित्य निकटस्थ अनुभव करनेवाले उपासकको उपासनाके लिये कोई प्रयत्न नहीं करना होता; क्योंकि उसमें वह प्रज्ञादृष्टि खुली होती है, जिसके कारण वह परमात्मा विष्णुको तत्त्वतः देखते हुए अपनेको उनसे नित्ययुक्त पाता है ।

जो नित्य है, निरन्तर है, अखण्ड है, उन परमात्मा विष्णुसे जीवात्मा विमुख तो हो सकता है, परंतु भिन्न नहीं हो सकता । इसीलिये परमात्मा विष्णुकी उपासनाके लिये कहींसे आना अथवा कहीं अन्यत्र जाना नहीं है; प्रत्युत वह जहाँ-कहीं है, वहीं अपने-आपको शान्त होकर, स्थिर होकर परमात्मा विष्णुके लिये उपस्थित देखना है ।

भेदोपासनामें मन्दिरकी तथा प्रतिमामें भगवान् विष्णुकी प्रतिष्ठा आवश्यक है । तदनुसार उपासनाकी पूर्तिके लिये विविध प्रकारकी पूजा-सामग्री, स्तोत्र-पाठ, प्रार्थना-स्तुतिको नित्य नियमसे निभाते रहनेकी आवश्यकता है, परंतु अभेदोपासनामें स्वयंको जाननेकी और परमात्मा विष्णुके तात्त्विक स्वरूपको समझनेकी अपेक्षा है । जबतक साधक स्वयं अपनेको नहीं जान लेता और देहको ही अपना रूप मानता है, तबतक देहरूपसे भगवान् विष्णुको किसी मूर्तिमें व्यापक मानकर उसके निकट बैठकर बाह्य पूजा-पद्धतिके अनुसार उपासना चलानी आवश्यक है; लेकिन जो बुद्धियोगी साधक देहके भीतर अपने चेतनस्वरूपको जानता है, उसे ज्ञानसे, अखण्ड चेतनसे निरन्तर युक्त होनेकी स्मृतिको जगाये रहकर अपने-को निरन्तर अभिन्न अनुभव करते रहनारूप उपासना करनी होगी ।

तत्त्वदर्शी महात्मा हमें यही समझाते हैं कि जो नित्य है,

निरन्तर हैं, सर्वत्र हैं, अविनाशी हैं, सर्वप्रकाशक, सर्वव्यापक, हैं; जो अखण्ड, अनन्त, चेतन हैं, वे ही परमात्मा विष्णु हैं। वे ही अहंकारमें हैं, बुद्धिमें हैं, चित्तमें हैं, मनमें हैं। सबमें सर्वगत परमात्मा विष्णु ही हैं।

जो सनातन सत्य परमात्मा विष्णु हमारे परमाश्रय हैं, उन्हें कोई हमें दे नहीं सकता। उन्हें हम वासना-कामनाकी परिधिसे लौटकर, विनाशीसे असङ्ग होकर अभी इसी क्षण स्वयं ही, स्वयंमें ही पा सकते हैं।

जबतक जीवात्मा अपने सत्स्वरूपको नहीं जानता, तबतक बाहर सत्यकी खोज करता है और सत्यकी—परमात्मा विष्णुकी मनसे कल्पना करता है; परंतु माननेमें तथा जाननेमें और अनुभूतिमें एवं दर्शनमें जो अन्तर है, उसे कोई तत्त्ववेत्ता ही समझता है।

परमात्मा विष्णुका अनन्य अनुभव होना ही ज्ञानमें दर्शन है। अनन्य चिन्तन ही विष्णुकी भक्ति है। निरन्तर अपने आगे-पीछे, ऊपर-नीचे उन्हींकी सत्तामें गतिको देखते रहना ही यथार्थ उपासना है और इस प्रकारकी भक्तिसे, उपासनासे, जो विमुख बना देती है, वही जगत्की वासना है।

जो विनाशी देहमें अपने अविनाशी स्वरूपको जान लेता है, वही सच्चिदानन्द विष्णुकी नित्य-निरन्तर होनेवाली उपासनाका अधिकारी हो जाता है।

तत्त्ववेत्ता वैष्णव अपने समस्त कर्मोंद्वारा परमात्माकी ही पूजा करता है, समग्र भावद्वारा सर्वगत परमात्मा विष्णुकी ही भक्तिमें लीन रहता है और ज्ञानयोगद्वारा सबमें सच्चिदानन्द विष्णुका ही दर्शन करता है।

ज्ञानयोगी वैष्णव नित्य उपासनामें तृप्त रहकर देहादिक वस्तुओंके प्रति ममता नहीं रखता, इसीलिये वह निष्काम होता है। निष्कामताके कारण ही उसपर किसी सङ्गका प्रभाव नहीं पड़ता और असङ्गताके कारण ही वह परमात्मा विष्णुसे अभिन्नताका अनुभव कर अपनेको निरन्तर उपासक देखता है।

ऐसा उपासक किसी वस्तु, व्यक्तिसे प्रेम नहीं करता, प्रत्युत सभीके प्रति प्रेमसे भरा रहता है; इसीलिये उसके प्रेमका रस सभीको मिलता है। ऐसा उपासक किसीसे कुछ न चाहते हुए पूर्ण त्यागी होता है; वह सेवामें सब कुछका दानी होता है; साथ ही पूर्ण सहिष्णु होनेके कारण ही तपस्वी होता है। मनमें किसी प्रकारकी अनुकूल वेदनासे प्रतीत होनेवाले सुखोंके प्रति उसकी दासता नहीं रहती और प्रतिकूल वेदनासे प्रतीत होनेवाले दुःखका उसे भय नहीं रहता।

जिनकी ज्ञानदृष्टि खुली है, उनको परमात्मा विष्णु प्रेमके रूपमें ही मूर्तिमान् दीखते हैं; उनका मन्दिर केवल हृदय है। जो कल्याणार्थी बाहरकी खोजसे थककर, निराश होकर शान्त एवं स्वस्थ होता है, वह हृदयद्वारमें आते ही अनुभव करता है कि जहाँसे खोज आरम्भ होती है, वहीं लौटनेपर खोजका अन्त होता है। खोजका अन्त होते ही अनन्त विष्णु परमात्माके दर्शनका द्वार मिल जाता है।

इन्द्रियोंकी सार्थकता भगवान् विष्णुके अभिमुख होनेमें है

पादौ तौ सफलौ पुंसां यौ विष्णुगृहगामिनौ। तौ करौ सफलौ ज्ञेयौ विष्णुपूजापरौ तु यौ॥
ते नेत्रे सफले पुंसां पश्यतो ये जनार्दनम्। सा जिह्वा प्रोच्यते सद्भिर्हरिनामपरा तु या॥
सत्यं सत्यं पुनः सत्यमुद्धृत्य भुजमुच्यते। तत्त्वं गुरुसमं नास्ति न देवः केशवात् परः॥
सत्यं वच्मि हितं वच्मि सारं वच्मि पुनः पुनः। असारेऽस्मिंस्तु संसारे सत्यं हरिसमर्चनम्॥
संसारपाशं सुदृढं महामोहप्रदायकम्। हरिभक्तिकुठारेणच्छित्त्वात्यन्तसुखी भव॥
तन्मनः संयुतं विष्णौ सा वाणी तत्परायणा। ते श्रोत्रे तत्कथासारपूरिते लोकवन्दिते॥

(नारदपुराण, पूर्वभाग ३४। ७—१२)

'मनुष्योंके उन्हीं पैरोंको सफल जानना चाहिये, जो भगवान् विष्णुके मन्दिरमें दर्शनके लिये जाते हैं। उन्हीं हाथोंको सफल समझना चाहिये, जो भगवान् विष्णुकी पूजामें तत्पर रहते हैं। पुरुषोंके उन्हीं नेत्रोंको पूर्णतया सफल जानना चाहिये, जो भगवान् जनार्दनका दर्शन करते हैं। साधु-पुरुषोंने उसी जिह्वाको सफल बताया है, जो निरन्तर हरिनामके जप और कीर्तनमें लगी रहती है। भुजा उठाकर बार-बार सच्ची बात कही जाती है कि गुरुके समान कोई तत्त्व नहीं है और भगवान् विष्णुके समान कोई देवता नहीं है। मैं सत्य कहता हूँ, हितकी बात कहता हूँ और बार-बार सम्पूर्ण शास्त्रोंका सार बतलाता हूँ—इस असार संसारमें केवल श्रीहरिकी आराधना ही सत्य है। यह संसार-बन्धन अत्यन्त दृढ़ है और महान् मोहमें डालनेवाला है। भगवद्भक्तिरूपी कुठारसे इसको काटकर अत्यन्त सुखी हो जाओ। वही मन सार्थक है, जो भगवान् विष्णुके चिन्तनमें लगा है, वही वाणी सार्थक है, जो भगवान्‌के नाम-गुण-गानके परायण है तथा वे ही दोनों कान समस्त जगत्‌के लिये वन्दनीय हैं, जो भगवत्कथाकी सुधाधारासे परिपूर्ण रहते हैं।'

श्रीविष्णु-भजनसे परम कल्याण

[एक वैष्णव संतके सदुपदेश]

(प्रेषक—भक्त श्रीरामशरणदासजी)

एक विष्णुभक्त वैष्णव महान् संतके श्रीचरणोंमें बैठकर श्रीविष्णु-सम्बन्धी उनके ये सदुपदेश लिखे गये हैं, जो यहाँपर प्रश्नोत्तररूपमें दिये जा रहे हैं। पूज्य संतजी महाराजने नाम प्रकाशित करनेकी आज्ञा नहीं दी है, इसलिये नाम लिखनेमें विवशता है।

प्रश्न—पूज्य महाराजजी! जीवका परम कल्याण कैसे हो?

उत्तर—भगवान्‌का भजन करो, भगवान्‌की शरणमें जाओ और अहर्निश भगवान्‌का स्मरण करो।

प्रश्न—भजन किसका करें, भगवान् श्रीरामका या भगवान् श्रीकृष्णका—यह बतानेकी कृपा करें।

उत्तर—भजन करो अनन्तकोटिब्रह्माण्डनायक परात्पर ब्रह्म भगवान् श्रीविष्णुका। भगवान् श्रीविष्णुका भजन, उनका नाम-स्मरण, उनके नामका संकीर्तन, उनकी पूजा-आराधना ही सर्वोत्तम मानी गयी है। यही प्राचीन कालसे चली आयी है। भगवान् श्रीविष्णु ही हमारे परमाराध्य हैं, जीवन-सर्वस्व हैं, प्राणाधार हैं। भगवान् श्रीविष्णुकी उपासनासे बढ़कर कल्याणका दूसरा कोई अन्य साधन नहीं है। भगवान् श्रीविष्णुकी भक्ति किये बिना जीवका कल्याण नहीं हो सकता, यह हमारी निश्चित धारणा है।

प्रश्न—पूज्य महाराजजी! यदि हम भगवान् श्रीरामकी या श्रीकृष्णकी भक्ति करें तो क्या हमारा कल्याण नहीं होगा?

उत्तर—होगा क्यों नहीं? कल्याण तो भगवान् श्रीरामकी या भगवान् श्रीकृष्णकी भक्ति करनेसे भी होगा, पर श्रीराम और श्रीकृष्ण भी तो भगवान् श्रीविष्णुके ही अवतार हैं। श्रीराम एवं श्रीकृष्णकी पूजा करना भी तो प्रकारान्तरसे श्रीविष्णुकी ही पूजा करना है। श्रीराम, श्रीकृष्ण, श्रीपरशुराम, श्रीनृसिंह, श्रीवामन, श्रीबलराम आदि चौबीसों अवतार भगवान् श्रीविष्णुके हैं। इन सबकी पूजा, चाहे सीधे भगवान् श्रीविष्णुकी ही पूजा—दोनों बात एक ही है।

प्रश्न—महाराजजी! यदि भगवान् श्रीशंकरकी उपासना करें तो क्या कल्याण नहीं होगा?

उत्तर—शास्त्रोंमें आया है—**'वैष्णवानां यथा शम्भुः'** (श्रीमद्भाग० १२ । १३ । १६) भगवान् श्रीशंकर तो स्वयं भगवान् श्रीविष्णुके परम भक्त हैं और वैष्णवाग्रगण्य हैं। भगवान् श्रीशंकरकी उपासना करनेसे भी भगवान् श्रीविष्णुकी तुम्हें प्रसन्नता प्राप्त होगी। यदि तुम्हें श्रीविष्णुकी प्राप्ति करनी है तो तुम्हें श्रीशंकरकी प्रसन्नता बड़ा सहारा देगी और बहुत जल्दी श्रीविष्णुकी प्राप्ति करा देगी। भगवान् शंकरका अनादर करनेवाले विष्णुभक्त बहुत बड़ा पाप करते हैं और वे भगवान् श्रीविष्णुकी प्रसन्नतासे वञ्चित रह जाते हैं।

प्रश्न—महाराजजी! क्या भगवान् श्रीविष्णुकी भक्ति करनेका सबको अधिकार है?

उत्तर—जीवमात्रको भगवान् श्रीविष्णुकी उपासना करनेका अधिकार है; पर इसका यह आशय कदापि नहीं है कि श्रीविष्णु-भक्तिकी आड़में वर्णाश्रम-धर्मका उल्लङ्घन किया जाय और मर्यादाको न माना जाय। अपने-अपने वर्णाश्रम-धर्मके अनुसार चलते हुए एवं शास्त्रोंमें वर्णित मर्यादाको मानते हुए भगवान् श्रीविष्णुकी भक्ति करके सभीको अपना परम कल्याण करना चाहिये। जो भगवान् श्रीविष्णुकी भक्ति करता है, वही सबसे श्रेष्ठ है—

> श्वपचोऽपि द्विजश्रेष्ठो विष्णुभक्तिपरायणः।
> विष्णुभक्तिविहीनश्च द्विजोऽपि श्वपचाधमः॥

श्रीविष्णुभक्तिके प्रतापसे मानव परम श्रेष्ठ हो जाता है। मृत्युके उपरान्त उसे विष्णुलोककी प्राप्ति होती है। उसका जन्म सार्थक हो जाता है। वास्तवमें यह शरीर मिला ही है भगवान् श्रीविष्णुकी भक्ति करनेके लिये।

प्रश्न—महाराजजी! श्रीविष्णुभगवान्‌को प्रसन्न करनेका साधन क्या है?

उत्तर—अपने-अपने वर्णाश्रमके अनुसार स्वधर्मका पालन करते हुए भगवान् श्रीविष्णुकी भक्ति करना, यही उनको प्रसन्न करनेका साधन है। श्रीशालग्रामकी पूजा करना, श्री-तुलसीजीकी पूजा करना, श्रीविष्णुसहस्रनामका पाठ करना, विष्णु-मन्त्रका या विष्णु-नामका जप करना और भगवान् श्रीविष्णुको भोग लगाकर ही प्रसाद ग्रहण करना, वैष्णवोंका आदर-सत्कार करना, भगवती श्रीगङ्गाजीका सेवन-स्नान करना, गौ-ब्राह्मणोंका सम्मान करना, श्रीविष्णु-मन्दिरमें जाकर भगवान्

श्रीविष्णुका दर्शन करना, श्रीविष्णु-मन्दिरकी परिक्रमा करना, श्रीविष्णु-नाम-संकीर्तन और विष्णु-कथा-श्रवण करना—यही कल्याणका मार्ग है। भगवान् श्रीविष्णु बड़े दयालु हैं। वे नाम-स्मरणमात्रसे प्रसन्न हो जाते हैं। श्रीविष्णुभक्तको निर्भय होना चाहिये। जिसने अपने असली माता-पिता भगवान् श्रीलक्ष्मी-नारायणको पहचान लिया एवं जो श्रीलक्ष्मी-नारायणकी शरणमें आ गया, अब भला उन्हें चिन्ता किस बातकी है? महर्षि चाणक्यने कहा है—

माता च कमलादेवी पिता देवो जनार्दनः।
बान्धवा विष्णुभक्ताश्च स्वदेशो भुवनत्रयम्॥
(पाण्डवगीता)

'जिसकी लक्ष्मी माता हैं, विष्णुभगवान् पिता हैं और विष्णुके भक्त बान्धव हैं, उसके लिये तीनों लोक स्वदेशके सदृश हैं।'

प्रश्न—महाराजजी! भगवान् श्रीविष्णुके भक्तोंको किन-किन बातोंसे बचना चाहिये, श्रीविष्णुभक्तिमें कौन-कौन-सी चीजें बाधक हैं—वह भी बतानेकी कृपा करें।

उत्तर—भगवान् श्रीविष्णुके भक्तोंको निम्नलिखित बातोंपर ध्यान देना चाहिये—

१—श्रीविष्णुभक्तोंको वर्णाश्रमके अनुसार स्वधर्मका पालन करना चाहिये।

२—श्रीविष्णुभक्तोंको अपने खान-पानपर विशेष ध्यान रखना चाहिये। जो भी वस्तु खायें-पीयें, पहले उसमें तुलसीपत्र छोड़कर, उसे भगवान् श्रीविष्णुको भोग लगाकर ग्रहण करना चाहिये। भगवान् श्रीविष्णुको वही वस्तु समर्पित करें, जो शुद्ध, सात्त्विक, पवित्र और शास्त्रानुसार हो। विष्णुभक्तोंके लिये होटलोंका बना खाना-पीना, शराब, अंडे, मांस-मछली, बीड़ी-सिगरेट, चाय, सोडा, बिस्कुट, डबलरोटी, कोकाकोला, बिलायती डिब्बेका दूध, अंग्रेजी औषध आदिका प्रयोग सर्वथा वर्जित है।

३—विष्णुभक्तोंको हिंसासे दूर रहना चाहिये। पूज्या गोमाताकी हत्या करके अथवा अन्य जीवोंको मारकर अथवा कष्ट देकर जो वस्तु बनायी जाती है, वैष्णवोंको उस वस्तुका प्रयोग भूलकर भी नहीं करना चाहिये।

४—श्रीविष्णुभक्तोंको पर-स्त्री और परधनसे सर्वथा दूर रहना चाहिये।

५—श्रीविष्णुभक्तोंको छल-कपट, चोरी, व्यभिचार, रिश्वतखोरी, जूआ, सट्टा, जीव-पीडन आदि पापोंसे बचना चाहिये।

६—श्रीविष्णुभक्तोंको शुद्ध कमाईके पैसेसे अपना निर्वाह करना चाहिये। अंडे-मुर्गे, मांस-मछली बेचना, चर्बी बेचना, चर्बीसे बनी वस्तुएँ बेचना, चर्बीसे बने बिस्कुट-डबलरोटी बेचना, जीवित पशुओंको मारकर उनके चमड़ेसे बनायी गयी वस्तुओंको बेचना, हिंसाद्वारा निर्मित अंग्रेजी दवाओंको बेचना आदि एकदम बंद कर देना चाहिये। इस प्रकारकी पापकी कमाईके पैसेसे दूर रहना चाहिये।

७—गंदी बातें करना, किसीको गाली देना, असत्य-भाषण करना, किसीकी निन्दा करना अनुचित है। श्रीविष्णुभक्तोंकी वाणी तो परम सात्त्विक होनी चाहिये।

८—जो श्रीविष्णुभक्त हैं, उन्हें श्रीलक्ष्मीकी प्राप्ति अवश्य होती है। श्रीलक्ष्मी महारानी विष्णुपत्नी हैं और बड़ी पतिव्रता हैं। जहाँपर उनके पति भगवान् श्रीविष्णुका निवास है, वहींपर भगवान् श्रीविष्णुकी सेवाके लिये श्रीलक्ष्मीजीका भी वास होता है। ईमानदारीकी कमाईसे प्राप्त धनरूपी लक्ष्मीके द्वारा सच्चा श्रीविष्णुभक्त श्रीविष्णु-मन्दिर बनवायेगा और उसे देवकार्योंमें खर्च करेगा, तीर्थयात्रा करेगा, संस्कृत-पाठशालाएँ खुलवायेगा, ब्राह्मण-भोजन करायेगा, कथा-कीर्तन करायेगा, गौ-ब्राह्मणोंकी सेवा करेगा और इस प्रकार श्रीलक्ष्मीके द्वारा भगवान् श्रीविष्णुकी सेवा कर भगवान् श्रीविष्णुको और माता श्रीलक्ष्मी—दोनोंको प्रसन्न कर अपना लोक-परलोक दोनों बना लेगा।

श्रीविष्णुभक्तका स्वरूप

न चलति निजवर्णधर्मतो यः सममतिरात्मसुहृद्विपक्षपक्षे।
न हरति न च हन्ति किंचिदुच्चैः सितमनसं तमवेहि विष्णुभक्तम्॥
(श्रीविष्णुपुराण ३।७।२०)

यमराज बोले—'जो पुरुष अपने वर्ण-धर्मसे विचलित नहीं होता, अपने सुहृद् और विपक्षियोंके प्रति समान भाव रखता है, किसीका द्रव्य हरण नहीं करता तथा किसी जीवकी हिंसा नहीं करता, उस निर्मलचित्त व्यक्तिको भगवान् विष्णुका भक्त जानो।'

श्रीविष्णु-तत्त्व

(लेखक—राष्ट्रगुरु श्री १००८ श्रीस्वामीजी महाराज, पीताम्बरापीठ, दतिया)

'इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदं समूळ्हमस्य पांसुरे।'

(ऋग्वेद १। २२। १७)

'विष्लृ व्याप्तौ' इस धातुसे 'विष्णु' शब्द बनता है, जिसका अर्थ सर्वव्यापक परमात्मा है। उसकी पराशक्ति त्रिगुण-स्वरूपवाली है। उसकी सत्त्वगुणरूप परावस्थामें प्रतिफलित ब्रह्मतत्त्व ही 'विष्णु' कहा जाता है। इस सत्त्वगुणका परिचय ज्ञान एवं आनन्दसे होता है। भगवान् विष्णुमें ज्ञान एवं आनन्दका पूर्ण विकास है। रज एवं तमोगुणमें विकसित स्वरूप 'ब्रह्मा' एवं 'रुद्र' कहे जाते हैं। इच्छा-ज्ञान-क्रिया रूपसे व्यक्त शान्ता, अक्षोभ्य रूपवाली महाशक्ति विलोमक्रमसे रुद्र-विष्णु-ब्रह्माके स्वरूपको बनाती है। ये तीनों देव उक्त विष्णुस्वरूपसे पश्चाद्भावी हैं। इच्छाशक्तिमें प्रतिफलित स्वरूप स्वच्छ स्वरूप होनेसे परमात्मा विष्णुके ही सदृश है। उसे 'महारुद्र' संज्ञा दी जाती है। श्रीविष्णुको 'हरि' एवं महारुद्रको पुराणोंमें 'हर' नामसे बोधित किया गया है। दोनों स्वरूपोंकी प्रकृति एक 'हृ' धातु है, प्रत्ययमात्रसे भेद प्रतीत हो रहा है। ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र ही 'त्रेधा नि दधे पदम्' से मन्त्रमें कहे गये हैं। यास्कने 'विश्' धातुसे विष्णुका अर्थ बताया है—जो सारे जगत्में प्रविष्ट हो रहा है। यही विश्-धातुका अर्थ है।

शाकपूणि आचार्यके मतसे पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्युलोकका ग्रहण 'त्रेधा' पदसे किया गया है। प्रकृतिके स्थूल परिणामोंके कारण विष्णुलोक नहीं दीख रहा है। जो विद्वान् हैं, वे ही विष्णुके परमपदको देखते हैं। पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्युलोकसे जो परे है, ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रसे भी जो परे है, वही विष्णुलोकका परमपद है। वेदके वैष्णव-सूक्तोंमें विष्णु-तत्त्वका निरूपण किया गया है। यह 'तैत्तिरीयारण्यक'के नारायणोपनिषद्में 'नारायण' नामसे कहा गया है। विष्णुपुराण इसकी विशद व्याख्या करता है। उपासकोंमें पञ्चरात्रतन्त्रके नामसे साधनाके उपयोगी तत्त्वोंका योग कर दिया गया है। श्रीमद्भागवतपुराण प्रेमतत्त्वकी व्याख्या करता है। वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध—इन चार व्यूहोंके द्वारा भागवतधर्मका विस्तार किया गया है। श्रीमध्वाचार्यके मतसे 'नारायण'को भी व्यूह मानकर चतुर्व्यूहकी जगह पञ्चव्यूह माना गया है। 'तत्त्वत्रय' ग्रन्थमें वैष्णव-सिद्धान्तका रहस्य बताया गया है। इस प्रकार नारायण, वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—ये पाँच व्यूहोंके नाम हैं। 'सूर्यसिद्धान्त' नामक ज्योतिष-ग्रन्थमें पहलेके तीन व्यूहोंको और चौथा व्यूह सूर्यको माना गया है। सूर्य भी विष्णुका ही स्वरूप है। महाभारतके 'विष्णुसहस्रनाम'में भी चतुर्व्यूहका सिद्धान्त माना गया है। जैसे शैवोंके पञ्चब्रह्ममन्त्र—सद्योजात, वामदेव, अघोर, तत्पुरुष, ईशानका मूल वैदिक है, उस प्रकार वैष्णवोंका यह चतुर्व्यूह-सिद्धान्त वेदमन्त्रोंमें नहीं है। श्रीशंकराचार्यने वेदान्तदर्शनके द्वितीयाध्यायके द्वितीय पादके अन्तमें इस सिद्धान्तको 'अवैदिक' बताया है। श्रीवल्लभाचार्यने इसे पौराणिक अङ्गीकार किया है। विष्णुके अवतारोंकी स्पष्ट कथा भी वेदोंमें नहीं देखी जाती। ऋषभदेव-बुद्धका स्वीकार भी वैष्णवमतमें किया गया है, जिन्हें 'अवैदिक' ही कहा जाता है। समयके अनुसार समन्वय-दृष्टिसे बहुत-सी बातें वैष्णवमतमें मान ली गयी हैं।

सूर्य एवं चन्द्रमण्डलकी द्वादश एवं षोडश कलाओंका सम्बन्ध श्रीराम और श्रीकृष्ण—इन दो अवतारोंसे किया गया है तथा इनकी साधनाका वर्णन भी तन्त्रोंमें किया गया है। सत्त्वगुणसे व्यक्त ज्ञान एवं प्रेमतत्त्वका सम्बन्ध इन दोनों अवतारोंके साथ किया गया है। सूर्यवंशमें उत्पन्न श्रीरामके साथ ज्ञानात्मक कलायोग है, इसलिये इनके साथ आनन्दका योग सामान्यरूपमें है। चन्द्रकला-योगसे इन्हें भी 'श्रीरामचन्द्र' नामसे कहा जाता है; क्योंकि अमावस्याकी तिथिमें चन्द्रमा सूर्यमें चला जाता है, इसलिये उनके नामके आगे 'चन्द्र' लगा है, तथापि सूर्य-चन्द्र-कलाओंका साहचर्य एक कालमें न होनेसे आनन्द या प्रेमतत्त्वका विकास इनमें साधारण ही रहा है। चन्द्रवंशमें उत्पन्न श्रीकृष्णके साथ चन्द्रकी षोडश कलाओंका योग होनेसे उन्हें पूर्ण पुरुषोत्तम रूपमें माना गया है। इसीलिये भागवतकारने 'एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।' (१। ३। २८) कहा है। 'तत्त्वत्रय' ग्रन्थमें इन दोनों अवतारोंको ही प्रमुखता दी गयी है। 'सर्वं विष्णुमयं जगत्' (यह सब संसार विष्णुमय है)—ऐसा सिद्धान्त होनेसे वैष्णवोंका तात्त्विक सिद्धान्त अद्वैत

है। बादके वैष्णवोंने शुद्धाद्वैत, विशिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैत एवं द्वैतरूपमें वैष्णव-सिद्धान्तकी व्याख्या करके चार सम्प्रदायोंमें वष्णव-सम्प्रदायको विभक्त कर दिया है, तथापि विष्णुके स्वीकारमें किसीका मतभेद नहीं है।

सूर-तुलसी आदि संतोंने भक्तिके सिद्धान्तका प्रचार इन्हीं दोनों भगवत्स्वरूपोंका आधार लेकर किया है, जिससे भारतवासियोंको आज भी ईश्वरकी भक्ति एवं राष्ट्रीय जीवन प्राप्त हो रहा है।

वैष्णवी साधनाका स्वरूप—अनादिकालसे जीव अविद्यामें घूम रहा है, वास्तविक शान्तिकी खोज उसका लक्ष्य है; पर सद्गुरुकी कृपा बिना उसका मनोरथ पूरा नहीं हो रहा है। पहलेसे सद्गुरुओंने इस शान्तिकी प्राप्तिका साधन बता दिया है। जब ईश्वरकी कृपा होती है, तभी उसकी प्राप्ति होती है। भगवत्प्राप्तिके विषयमें श्वेताश्वतर उपनिषद्के छठे अध्यायके १३वें मन्त्रमें कहा गया है—'**तत्कारणं सांख्ययोगाधिगम्यं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः।**' भगवत्प्राप्तिके साधन सांख्य और योग हैं, उनके द्वारा भगवत्तत्त्वको जानकर ही मनुष्य सब बन्धनोंसे मुक्त होकर शान्तिको प्राप्त होता है। भगवद्गीता (३। ३) में भी सांख्य और योगका दो स्वतन्त्र निष्ठाओंके रूपमें वर्णन किया गया है—

लोकेऽस्मिन् द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ।
ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम्॥

और इन दोनों निष्ठाओंका लक्ष्य एक ब्रह्मकी प्राप्ति है—

सांख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः।
... ...
यत् सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते।
एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति॥

(गीता ५। ४-५)

इसलिये इन दोनों मार्गोंका लक्ष्य एक ही है।

वैष्णव-साधनका रहस्य—

'**एकोऽहं बहु स्याम्**'—इस श्रुतिके अनुसार एक भगवान् विष्णु ही अपनी परा प्रकृति मायाके योगसे अनेक रूप धारण करके इस विश्वमें व्याप्त हो रहे हैं। परा प्रकृति और विष्णुतत्त्वके योगसे ही जीवका आविर्भाव हुआ है, जिसे गीता (१५। ७)में इस प्रकार कहा गया है—

'**ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।**'

परंतु अविद्याके प्रभावसे जीव अपने मूलरूपको भूल गया है, उसको प्राप्त करना ही साधनाका लक्ष्य है।

प्रकृति और पुरुषके योगसे ही यह सारा जगत् उत्पन्न हुआ है। प्रकृति इसका उपादान है और पुरुष आधार है। प्रकृतिके अन्तिम दो कृत्योंपर गोस्वामी तुलसीदासने भी ऐसा लिखा है—

'तुलसिदास येहि जीव मोह-रजु, जेहि बांध्यो सोइ छोरै।'

(विनयपत्रिका १०२। ५)

मोह-रज्जुमें बाँधना 'तिरोधान' है और छोड़ना 'अनुग्रह' है।

त्रिपाद्विभूतिनारायणोपनिषद्में नारायणकी प्राप्तिका मन्त्र '**ॐ नमो नारायणाय**' बताया गया है। इसे शुभ-काल एवं वेलामें सद्गुरुसे प्राप्तकर विधिवत् इसका अनुष्ठान करना चाहिये। जपविधिके अनुसार इसका अभ्यास करनेसे सभी मानसिक विकारोंका निराकरण होता है और क्रमशः जीव अविद्याकी परिधिसे मुक्त होकर विष्णुतत्त्वके साथ अभिन्न हो जाता है।

ऊपर संक्षिप्त रूपमें विष्णुतत्त्वका स्वरूप बताया गया है। वेद, शास्त्र और पुराणोंमें इसकी बड़ी-बड़ी गाथाएँ हैं। इन सब कारणोंसे इस छोटे-से निबन्धसे उसका पूर्ण ज्ञान तो नहीं हो सकता, तथापि विष्णुतत्त्वके अन्वेषकोंका इससे मार्गदर्शन हो सकेगा, ऐसी आशा है।

श्रीहरिकी भक्तवत्सलता

श्रियमनुचरतीं तदर्थिनश्च द्विपदपतीन् विबुधांश्च यत्स्वपूर्णः।
न भजति निजभृत्यवर्गतन्त्रः कथममुमुद्विसृजेत्पुमान् कृतज्ञः॥

(श्रीमद्भागवत ४। ३१। २२)

'भगवान् स्वरूपानन्दसे ही परिपूर्ण हैं; उन्हें निरन्तर अपनी सेवामें रहनेवाली लक्ष्मीजी तथा उनकी इच्छा करनेवाले नरपतियों और देवताओंकी भी कोई परवाह नहीं है। इतनेपर भी वे अपने भक्तोंके तो अधीन ही रहते हैं। ऐसे करुणासागर श्रीहरिको कोई भी कृतज्ञ पुरुष थोड़ी देरके लिये भी कैसे छोड़ सकता है!'

वैष्णवताका स्वरूप एवं उसकी प्राप्तिके साधन

(लेखक—नित्यलीलालीन परमश्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

सर्व-त्याग कर जे सदा सेवत हरि-पद-मूल।
बंदौं तिन वैष्णव-चरन, सुचि पद-पंकज-धूल॥

वैष्णवधर्मका प्राचीन नाम है—'सात्वतधर्म'। इसीके भक्त, भागवत, वैष्णव, पाञ्चरात्र, वैखानस, कर्महीन आदि अनेक भेद प्राचीन शास्त्रोंमें पाये जाते हैं। वैष्णवधर्मका मूल 'वेद' है।

'तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम्॥' (शु० यजुर्वेद ६। ५)

विष्णुके इस परमपदका संधान ही 'वैष्णवधर्म' है। वैष्णवोंने प्रधानरूपमें चार महान् सद्गुरुओंकी परम्परा स्वीकार की है—श्री, ब्रह्मा, रुद्र और सनकादि। इन्हींके नामोंपर सम्प्रदाय चले। आजकल 'सम्प्रदाय' शब्दका बड़ा दूषित अर्थ किया जाता है। किसीको द्वेष-हिंसा करते देखकर ही उसे 'साम्प्रदायिक' कह दिया जाता है। वास्तवमें 'सम्प्रदाय' का अर्थ है—

'शिष्टानुशिष्टोपदिष्टो मन्त्रः सम्प्रदायः।'

''पूर्व आचार्यके समीप प्राप्त मन्त्र और साधनाका नाम ही 'सम्प्रदाय' है।'' इसमें द्वेष-हिंसाकी तो कहीं कल्पना ही नहीं है। वैष्णव-सम्प्रदाय तो भूतमात्रमें भगवान्‌को देखकर अत्यन्त विनम्रभावसे सबको नमस्कार, सबकी सेवा तथा सबका हित-साधन करता है। उपर्युक्त चार गुरु-परम्पराओंसे बने हुए चार सम्प्रदाय प्रधान माने जाते हैं—

रामानुजं श्रीः स्वीचक्रे मध्वाचार्यं चतुर्मुखः।
श्रीविष्णुस्वामिनं रुद्रो निम्बादित्यं चतुस्सनः॥

श्रीलक्ष्मीजीकी कृपासे रामानुज, ब्रह्माकी अनुकम्पासे मध्वाचार्य, रुद्रके अनुग्रहसे विष्णुस्वामी और सनकादि मुनियोंके प्रसादसे निम्बार्काचार्य साधनाका सन्मार्ग दिखलाते हुए आचार्यपदपर प्रतिष्ठित हुए। श्रीवल्लभाचार्य श्रीविष्णु-स्वामीके द्वारा प्रवर्तित सम्प्रदायके ही आचार्य माने जाते हैं। कुछ महानुभाव इनके पुष्टिमार्गको पृथक् भी मानते हैं। बंगालकी वैष्णव-प्रेम-सुधा-धारा बहुत अंशमें श्रीमध्वाचार्यके मतसे प्रभावित है, ऐसी महानुभावोंकी मान्यता है। इनमें श्रीरामानुजका श्री-सम्प्रदाय विशिष्टाद्वैतवादी और भगवान् लक्ष्मी-नारायणका उपासक है; श्रीमध्वाचार्यका द्वैतवादी और श्रीराधा-कृष्णका उपासक है, श्रीविष्णुस्वामी या वल्लभाचार्यका शुद्धाद्वैतवादी और भगवान् नन्दनन्दनका उपासक है, श्रीनिम्बार्काचार्यका द्वैताद्वैतवादी और श्रीराधा-कृष्णका उपासक है एवं बंगालके प्रेमके ठाकुर श्रीगौराङ्गदेवका गौड़ीय सम्प्रदाय अचिन्त्यभेदाभेदवादी कहा जाता है तथा श्रीराधा-कृष्णका उपासक है। ये सभी एक ही परमतत्त्वकी उपासना-सुधा-सरिताकी परम मधुर सुधा-तरंगें हैं और ये सभी वस्तुतः 'सात्वत'-सम्प्रदायके ही अन्तर्गत हैं। इसके अतिरिक्त श्रीरामानन्दाचार्यका सम्प्रदाय भी प्रमुख वैष्णव-सम्प्रदाय है। और भी बहुत-सी शाखा-उपशाखाएँ वैष्णव-सम्प्रदायोंकी हैं। महाराष्ट्रके निवृत्तिनाथ, ज्ञानदेव, सोपानदेव, मुक्ताबाई, नामदेव, तुकाराम, गुजरातके श्रीनरसिंह मेहता, उत्तरभारतके सूरदास, तुलसीदास आदि, आसामके श्रीशंकरदेव, राजस्थानकी मीराँबाई आदि सभी वैष्णवाग्रणी संत हुए हैं। दक्षिणमें श्रीरामानुजाचार्यसे बहुत पहले श्रीशठकोप, विष्णुचित्त, भक्तपदरेणु, कुलशेखर और देवी आंडाळ आदि आळवार वैष्णव महात्मा हो गये हैं, जो प्रेमोन्मत्तताके परम आदर्श हैं। ये सभी वैष्णवधर्मके परम सुन्दर स्वरूपका ही प्रकाश करते हैं।

वेद, उपनिषद्, नारद-पञ्चरात्र, महाभारत, रामायण, पुराण, तन्त्र आदि असंख्य महामान्य ग्रन्थोंमें वैष्णवधर्मके लक्षणोंका तथा इतिहासका बड़ा ही सुन्दर वर्णन है। श्रीमद्भागवतके, जो वैष्णवोंका सर्वमान्य ग्रन्थ है तथा जो परमहंस-संहिताके नामसे प्रख्यात है, ग्यारहवें स्कन्धमें भागवतधर्मके वर्णन-प्रसङ्गमें वैष्णवता या वैष्णवोंका स्वरूप-लक्षण बतलाते हुए कहा गया है—

सर्वभूतेषु यः पश्येद् भगवद्भावमात्मनः।
भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः॥
(११। २। ४५)

आत्मस्वरूप भगवान् समस्त प्राणियोंमें आत्मारूपसे—नियन्तारूपसे स्थित हैं। जो कहीं भी न्यूनाधिकता न देखकर सर्वत्र परिपूर्ण भगवत्सत्ताको ही देखता है और साथ ही समस्त प्राणी और समस्त पदार्थ आत्मस्वरूप भगवान्‌में ही स्थित हैं—वास्तवमें भगवत्स्वरूप ही हैं—इस प्रकारका

जिसका अनुभव है, उसे भगवान्का परम प्रेमी उत्तम भागवत—श्रेष्ठ वैष्णव समझना चाहिये।

ईश्वरे तदधीनेषु बालिशेषु द्विषत्सु च।
प्रेममैत्रीकृपोपेक्षा यः करोति स मध्यमः॥
(११।२।४६)

जो भगवान्से प्रेम, उनके भक्तोंसे मित्रता, दुःखी और अज्ञानियोंपर कृपा तथा भगवान्से द्वेष करनेवालोंकी उपेक्षा करता है, वह मध्यम कोटिका भागवत—वैष्णव है।

अर्चायामेव हरये पूजां यः श्रद्धयेहते।
न तद्भक्तेषु चान्येषु स भक्तः प्राकृतः स्मृतः॥
(११।२।४७)

जो भगवान्के अर्चा-विग्रह—मूर्ति आदिकी पूजा तो श्रद्धासे करता है, परंतु भगवान्के भक्तों या दूसरे लोगोंकी विशेष सेवा-शुश्रूषा नहीं करता, वह साधारण श्रेणीका भगवद्भक्त—वैष्णव है।

गृहीत्वापीन्द्रियैरर्थान् यो न द्वेष्टि न हृष्यति।
विष्णोर्मायामिदं पश्यन् स वै भागवतोत्तमः॥
(११।२।४८)

जो कर्ण-नेत्र आदि इन्द्रियोंके द्वारा शब्द-रूप आदि विषयोंका ग्रहण तो करता है, परंतु प्रतिकूल विषयोंसे द्वेष नहीं करता और अनुकूल विषयोंके मिलनेपर हर्षित नहीं होता—उसकी यह दृष्टि बनी रहती है कि यह सब हमारे भगवान्की लीलारूपा माया है, वह पुरुष उत्तम भागवत—श्रेष्ठ वैष्णव है।

देहेन्द्रियप्राणमनोधियां यो जन्माप्ययक्षुद्भयतर्षकृच्छ्रैः।
संसारधर्मैरविमुह्यमानः स्मृत्या हरेर्भागवतप्रधानः॥
(११।२।४९)

संसारके धर्म हैं—जन्म-मृत्यु, भूख-प्यास, श्रम-कष्ट, भय और तृष्णा। ये क्रमशः शरीर, प्राण, इन्द्रिय, मन और बुद्धिको प्राप्त होते ही रहते हैं। जो पुरुष भगवान्की स्मृतिमें इतना तन्मय रहता है कि इनके बार-बार होते-जाते रहनेपर भी उनसे तनिक भी मोहित नहीं होता, वह उत्तम भागवत—श्रेष्ठ वैष्णव है।

न कामकर्मबीजानां यस्य चेतसि सम्भवः।
वासुदेवैकनिलयः स वै भागवतोत्तमः॥
(११।२।५०)

जिसके मनमें विषय-भोगकी इच्छा, विषयार्थ कर्म-प्रवृत्ति और उनके बीज—वासनाओंका उदय नहीं होता और जो एकमात्र भगवान् वासुदेवमें ही निवास करता है, वह उत्तम भगवद्भक्त—श्रेष्ठ वैष्णव है।

न यस्य जन्मकर्मभ्यां न वर्णाश्रमजातिभिः।
सज्जतेऽस्मिन्नहम्भावो देहे वै स हरेः प्रियः॥
(११।२।५१)

जिसका इस शरीरमें न तो सत्कुलमें जन्मके कारण एवं तपस्या आदि कर्मको लेकर और न वर्ण, आश्रम एवं जातिमें ही अहंभाव होता है, वह निश्चय ही भगवान् श्रीहरिका प्यारा वैष्णव है।

न यस्य स्वः पर इति वित्तेष्वात्मनि वा भिदा।
सर्वभूतसमः शान्तः स वै भागवतोत्तमः॥
(११।२।५२)

जो धन-सम्पत्ति अथवा शरीर आदिमें यह अपना है और यह पराया—इस प्रकारका भेद-भाव नहीं रखता, समस्त प्राणि-पदार्थोंमें समस्वरूप परमात्माको देखता है, समभाव रखता है तथा किसी भी घटना अथवा संकल्पसे विक्षिप्त न होकर शान्त रहता है, वह भगवान्का उत्तम भक्त—श्रेष्ठ वैष्णव है।

त्रिभुवनविभवहेतवेऽप्यकुण्ठ-
स्मृतिरजितात्मसुरादिभिर्विमृग्यात्।
न चलति भगवत्पदारविन्दा-
ल्लवनिमिषार्धमपि यः स वैष्णवाग्र्यः॥
(११।२।५३)

राजन्! बड़े-बड़े देवता और ऋषि-मुनि भी अपने अन्तःकरणको भगवन्मय बनाते हुए जिन्हें ढूँढ़ते रहते हैं—भगवान्के ऐसे चरण-कमलोंसे जो त्रिभुवनकी सम्पत्ति दी जानेपर भी आधे क्षण, आधे पलके लिये भी कभी नहीं हटता, भगवत्स्मृतिमें निरन्तर लगा ही रहता है—उस सम्पत्तिकी ओर आँख उठाकर भी नहीं देखता, वही पुरुष वास्तवमें भगवद्भक्त वैष्णवोंमें अग्रगण्य है, सबसे श्रेष्ठ है

भगवत उरुविक्रमाङ्घ्रिशाखा-
नखमणिचन्द्रिकया निरस्ततापे।
हृदि कथमुपसीदतां पुनः स
प्रभवति चन्द्र इवोदितेऽर्कतापः॥
(११।२।५४)

निखिल सौन्दर्य-माधुर्य-निधि भगवान्‌के चरणाङ्गुलियोंके नखरूप मणियोंके शीतल प्रकाशसे जिन शरणागत भक्तजनोंके हृदयका संताप एक बार दूर हो चुका है, उनके हृदयमें वह ताप फिर कैसे आ सकता है, जैसे चन्द्रोदय होनेपर सूर्यका ताप नहीं लग सकता।

विसृजति हृदयं न यस्य साक्षा-
द्धरिरवशाभिहितोऽप्यघौघनाशः।
प्रणयरशनया धृताङ्घ्रिपद्मः
स भवति भागवतप्रधान उक्तः॥
(११।२।५५)

विवशतासे नामोच्चारण करनेपर भी सम्पूर्ण पापराशिको नष्ट कर देनेवाले स्वयं भगवान् श्रीहरि जिसके हृदयको क्षणभरके लिये भी नहीं छोड़ते—क्योंकि उसने प्रेमकी रस्सीसे उनके चरण-कमलोंको बाँध रखा है, वास्तवमें ऐसा पुरुष ही भगवान्‌के भक्तोंमें प्रधान कहा गया है।

इस श्रेष्ठ वैष्णवताकी प्राप्तिके लिये नीचे लिखे साधन करने चाहिये—

सर्वतो मनसोऽसङ्गमादौ सङ्गं च साधुषु।
दयां मैत्रीं प्रश्रयं च भूतेष्वद्धा यथोचितम्॥
(११।३।२३)

पहले सभी प्राणि-पदार्थोंके प्रति मनकी अनासक्ति सीखे। फिर भगवान्‌के भक्तोंसे प्रेम कैसा करना चाहिये—यह सीखे। इसके पश्चात् प्राणियोंके प्रति यथायोग्य दया, मैत्री और विनयकी निष्कपटभावसे शिक्षा ग्रहण करे।

शौचं तपस्तितिक्षां च मौनं स्वाध्यायमार्जवम्।
ब्रह्मचर्यमहिंसां च समत्वं द्वन्द्वसंज्ञयोः॥
(११।३।२४)

मिट्टी, जल आदिसे बाह्य शरीरकी पवित्रता, छल-कपट आदिके त्यागसे भीतरकी पवित्रता, अपने धर्मका अनुष्ठान, सहनशक्ति, मौन, स्वाध्याय, सरलता, ब्रह्मचर्य, अहिंसा तथा शीत-उष्ण, सुख-दुःख आदि द्वन्द्वोंमें हर्ष-विषादसे रहित होना सीखे।

सर्वत्रात्मेश्वरान्वीक्षां कैवल्यमनिकेतताम्।
विविक्तचीरवसनं संतोषं येन केनचित्॥
(११।३।२५)

सर्वत्र अर्थात् समस्त देश, काल और वस्तुओंमें चेतन-रूपसे आत्मा और नियन्तारूपसे ईश्वरको देखना, एकान्त-सेवन, घरमें ममता न रखना, गृहस्थ हो तो पवित्र वस्त्र पहनना और त्यागी हो तो फटे-पुराने पवित्र चिथड़ोंसे अङ्ग ढक लेना तथा प्रारब्धके अनुसार जो कुछ भी मिल जाय, उसीमें संतोष करना सीखे।

श्रद्धां भागवते शास्त्रेऽनिन्दामन्यत्र चापि हि।
मनोवाक्कर्मदण्डं च सत्यं शमदमावपि॥
(११।३।२६)

भगवान्‌की प्राप्तिका मार्ग बतलानेवाले शास्त्रोंमें श्रद्धा और दूसरे किसी भी शास्त्रकी निन्दा न करना, भगवच्चिन्तनके द्वारा मनका, मौनके द्वारा वाणीका और वासनाहीनताके अभ्याससे कर्मोंका संयम करना, सत्य बोलना, इन्द्रियोंको अपने-अपने गोलकोंमें स्थिर रखना और मनको कहीं बाहर न जाने देना सीखे।

श्रवणं कीर्तनं ध्यानं हरेरद्भुतकर्मणः।
जन्मकर्मगुणानां च तदर्थेऽखिलचेष्टितम्॥
(११।३।२७)

राजन्! भगवान्‌की लीलाएँ अद्भुत हैं। उनके जन्म, कर्म और गुण दिव्य हैं। उन्हींका श्रवण, कीर्तन और ध्यान करना तथा शरीरसे जितनी भी चेष्टाएँ हों, सब भगवान्‌के लिये करना सीखे।

इष्टं दत्तं तपो जप्तं वृत्तं यच्चात्मनः प्रियम्।
दारान् सुतान् गृहान् प्राणान् यत्परस्मै निवेदनम्॥
(११।३।२८)

यज्ञ, दान, तप अथवा जप, सदाचारका पालन और स्त्री, पुत्र, घर, अपना जीवन-प्राण तथा जो कुछ अपनेको प्रिय लगता हो—सब-का-सब भगवान्‌के चरणोंमें निवेदन करना, उन्हें सौंप देना सीखे।

एवं कृष्णात्मनाथेषु मनुष्येषु च सौहृदम्।
परिचर्यां चोभयत्र महत्सु नृषु साधुषु॥
(११।३।२९)

जिन संत पुरुषोंने सच्चिदानन्दस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णको अपनी आत्मा और स्वामीके रूपमें मान लिया हो, उनसे प्रेम और स्थावर-जंगम दोनों प्रकारके प्राणियोंकी—विशेष करके मनुष्योंकी, मनुष्योंमें भी परोपकारी सज्जनोंकी और उनमें भी भगवत्प्रेमी संतोंकी सेवा करना सीखे।

परस्परानुकथनं पावनं भगवद्यशः।
मिथो रतिर्मिथस्तुष्टिर्निवृत्तिर्मिथ आत्मनः॥
(११।३।३०)

भगवान्‌के परम पावन यशके सम्बन्धमें ही एक-दूसरेसे चर्चा करना और इस प्रकारके साधकोंका इकट्ठे होकर एक-दूसरेसे प्रेम करना, आपसमें संतुष्ट रहना और प्रपञ्चसे निवृत्त होकर आपसमें ही आध्यात्मिक शान्तिका अनुभव करना सीखे।

स्मरन्तः स्मारयन्तश्च मिथोऽघौघहरं हरिम्।
भक्त्या संजातया भक्त्या बिभ्रत्युत्पुलकां तनुम्॥
(११।३।३१)

राजन्! श्रीकृष्ण राशि-राशि पापोंको एक क्षणमें भस्म कर देते हैं। उन्हींका स्मरण करना और एक-दूसरोंको स्मरण कराना—इस प्रकार साधन-भक्तिका अनुष्ठान करते-करते साधकोंमें प्रेम-भक्तिका उदय हो जाता है और वे प्रेमोद्रेकसे पुलकित-शरीर धारण करते हैं।

क्वचिद् रुदन्त्यच्युतचिन्तया क्वचि-
द्धसन्ति नन्दन्ति वदन्त्यलौकिकाः।
नृत्यन्ति गायन्त्यनुशीलयन्त्यजं
भवन्ति तूष्णीं परमेत्य निर्वृताः॥
(११।३।३२)

उनके हृदयकी बड़ी विलक्षण स्थिति होती है। कभी तो वे इस प्रकार चिन्ता करने लगते हैं कि अबतक भगवान् नहीं मिले, क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, किससे पूछूँ, कौन मुझे उनकी प्राप्ति कराये? इस तरह सोचते-सोचते वे रोने लगते हैं। कभी भगवान्‌की लीलाकी स्फूर्ति हो जानेसे यह देखकर कि परमैश्वर्यशाली भगवान् गोपियोंके डरसे छिपे हुए हैं, खिलखिलाकर हँसने लगते हैं। कभी उनके प्रेम और दर्शनकी अनुभूतिसे आनन्दमग्न हो जाते हैं तो कभी लोकातीत भावमें स्थित होकर भगवान्‌के साथ बातचीत करने लगते हैं। कभी मानो उन्हें सुना रहे हों, इस प्रकार उनके गुणोंका गान छेड़ देते हैं और कभी नाच-नाचकर उन्हें रिझाने लगते हैं। कभी लीलाकी अनुकृति करने लगते हैं, तो कभी उनसे एक होकर, उनकी संनिधिमें स्थित होकर परम शान्तिका अनुभव करते और चुप हो जाते हैं।

इति भागवतान् धर्मान् शिक्षन् भक्त्या तदुत्थया।
नारायणपरो मायामञ्जस्तरति दुस्तराम्॥
(११।३।३३)

जो इस प्रकार भागवतधर्मोंकी शिक्षा ग्रहण करता है, उसे उनके द्वारा प्रेम-भक्तिकी प्राप्ति हो जाती है और वह भगवान् नारायणके परायण होकर उस मायाको अनायास ही पार कर जाता है, जिसके पंजेसे निकलना बहुत ही कठिन है।

इन लक्षणों तथा साधनोंसे वैष्णवताका स्वरूप भलीभाँति ध्यानमें आ गया होगा। वास्तवमें वैष्णव-भक्त अपनेको प्रभुका सेवक तथा समस्त जगत्‌को अपने परम प्रेमास्पद प्रभुका ही स्वरूप मानता है। तुलसीदासजी कहते हैं—

सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत॥
(मानस ४।३)

उमा जे रामचरन रत बिगत काम मद क्रोध।
निज प्रभुमय देखहिं जगत केहि सन करहिं बिरोध॥
(मानस ७।११२ ख)

'सीय राममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥'
(मानस १।७।१)

भगवान्‌के भक्त वैष्णवजन केवल मनुष्योंमें ही नहीं, चेतन प्राणियोंमें ही नहीं, जड-चेतन सभीमें अपने प्रभु भगवान्‌का दर्शन करके सबको नमस्कार करते हैं। श्रीमद्भागवतमें कहा गया है—

खं वायुमग्निं सलिलं महीं च
ज्योतींषि सत्त्वानि दिशो द्रुमादीन्।
सरित्समुद्रांश्च हरेः शरीरं
यत्किं च भूतं प्रणमेदनन्यः॥
(११।२।४१

आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, ग्रह-नक्षत्रादि, प्राणी, दिशाएँ, वृक्ष-लताएँ, नदियाँ और समुद्र—सब-के-सब भगवान् हरिके शरीर हैं—यह समझकर, जो कोई भी उसके सामने आ जाता है—चाहे वह प्राणी हो या अप्राणी—उसे वह अनन्यभावसे प्रणाम करता है।

श्रीमद्भगवद्गीतामें जिस परमधर्मका उपदेश भगवान्‌ने किया है, उसीका वस्तुतः पञ्चरात्र आगममें वर्णन है; अथवा उस अतिप्राचीन आगमोक्त भक्ति-धर्म-विग्रहको ही भगवान्‌ने परम सुन्दर नवीन वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित करके गीतोपदेशके रूपमें प्रकट किया है। यह भक्ति ही धर्मका सर्वस्व है। श्रीमद्भगवद्गीताके दार्शनिक विचारोंके समर्थनरूपमें

श्रीमद्भागवतका अवतार है। व्रजकी महाभाग्यवती रस-सुधामयी श्रीगोपाङ्गनाएँ इसी भक्तिकी माधुर्यमयी मूर्तियाँ हैं। वे गीताकी ही जंगम प्रतिमा हैं। उस श्रीमद्भगवद्गीतामें ११ वें अध्यायके अन्तमें वैष्णवके—अनन्य भक्तके लक्षण बतलाते हुए भगवान्‌ने कहा है—

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव॥
(११। ५५)

'अर्जुन! जो केवल मेरा ही कर्म करता है, मेरे ही परायण है और मेरा ही भक्त है, कहीं भी जिसकी आसक्ति नहीं है एवं समस्त प्राणियोंमें जो निर्वैर है, वह मुझे प्राप्त होता है।'

इसी गीताके बारहवें अध्यायके तेरहवेंसे बीसवें श्लोकतक भगवान् श्रीकृष्णने वैष्णवोंके—अपने प्रिय भक्तोंके स्वरूपका वर्णन करते हुए कहा है—'जो प्राणीमात्रमें द्वेष नहीं करता, जो सबका मित्र है, किसीको दुःखी देखकर जिसका हृदय करुणार्द्र हो जाता है, जो ममता तथा अहंकारसे रहित है, जिसकी अपने सुख-दुःखमें समबुद्धि है, जो बुरा करनेवालेका भी भला करता है, सदा संतुष्ट है, जो नित्य मुझ भगवान्‌से संयुक्त है, मन-इन्द्रियोंका विजेता है, दृढ़निश्चयी है, मुझ भगवान्‌को ही जिसके मन-बुद्धि समर्पित हैं; जिसके किसी भी आचरणसे लोग उद्विग्न नहीं होते, जो स्वयं लोगोंसे उद्विग्न नहीं होता, हर्ष-अमर्ष, भय-उद्वेगसे मुक्त है; जो किसी वस्तुकी अपेक्षा नहीं रखता, सदा पवित्र तन-मनवाला है, भगवत्सेवामें चतुर है, राग-द्वेषरहित—उदासीन है; जिसको कोई भी सांसारिक व्यथा नहीं सताती; जो सकाम भावसे कोई आरम्भ नहीं करता; जो अनुकूलकी प्राप्तिमें हर्षित नहीं होता, प्रतिकूलसे द्वेष नहीं करता, अनुकूलके विनाश तथा प्रतिकूलकी प्राप्ति होनेपर सोच नहीं करता और अनुकूलकी प्राप्ति एवं प्रतिकूलके नाशके लिये आकाङ्क्षा नहीं करता—इस प्रकार जो शुभाशुभका परित्यागी है; जो शत्रु-मित्र, मान-अपमान, शीत-उष्ण, सुख-दुःखमें समबुद्धि है, विषयासक्तिसे सर्वथा रहित है, स्तुति-निन्दाको समान मानता है, व्यर्थ-भाषण नहीं करता, जिस-किसी भी स्थितिमें संतुष्ट है; जिसकी घर-द्वारमें ममता नहीं है; जो स्थिरबुद्धि है—इस परम धर्मामृतके द्वारा जो श्रद्धापूर्वक नित्य मुझ भगवान्‌की उपासना करता है, श्रद्धायुक्त है और भगवत्परायण है, वह भक्तिमान् वैष्णव मुझ—भगवान्‌को अत्यन्त प्रिय है।'

ये वैष्णवताके सार्वभौम स्वरूप-लक्षण हैं। यद्यपि जैसे गेरुवा वस्त्र चतुर्थाश्रम—सर्वत्यागरूप संन्यासका प्रतीक है, वैसे ही माला-तिलक आदि भी वैष्णवताके बाह्य चिह्न हैं; तथापि केवल बाहरी वेष-भूषासे न कोई त्यागी होता है न वैष्णव। बाहरी दिखावा तो दम्भसे या बुरी नीयतसे भी हो सकता है—पुलिसकी पोशाक पहनकर डाकू लोगोंको लूट लेते हैं, खादी धारण करके जनताको लोग ठग लेते हैं, वैसे ही वैष्णवके तिलक-मालासे जनता ठगी जा सकती है। अतएव भीतरका स्वरूप ही असली स्वरूप है। इसीसे उपर्युक्त श्रीमद्भागवत तथा श्रीमद्भगवद्गीतामें निरूपित भक्तके स्वरूप-लक्षणोंमें बाहरी वेष-भूषाका वर्णन नहीं है। जीवनका बाह्याभ्यन्तर आचार ही उसका वास्तविक स्वरूप है।

वैष्णवताके इन्हीं स्वरूप-लक्षणोंका वर्णन गुजरातके महान् वैष्णव श्रीनरसिंह मेहताने अपने इस सरल गुजराती भाषाके भजनमें किया है। यह भजन महात्मा गांधीको बहुत ही प्रिय था—

वैष्णव जन तो तेने कहिए जे पीड़ पराई जाणे रे।
परदुःखे उपकार करे तोये, मन अभिमान न आणे रे॥
सकळ लोकमाँ सहुने वंदे, निंदा न करे केनी रे।
वाच काछ मन निश्चळ राखे, धन धन जननी तेनी रे॥
समदृष्टि ने तृष्णात्यागी, परस्त्री जेने मात रे।
जिह्वा थकी असत्य न बोले, पर-धन नव झाले हाथ रे॥
मोह-माया व्यापे नहिं जेने, दृढ़ वैराग्य जेना मनमाँ रे।
रामनामशुँ ताळी लागी, सकळ तीरथ तेना तनमाँ रे॥
वणलोभी ने कपट रहित छे, काम क्रोध निवार्या रे।
भणे नरसैयो तेनु दरसन करतां कुळ एकोत्तर तार्या रे॥

वस्तुतः वैष्णव वही है, जिसका जीवन सब समय, सब ओरसे, सभी प्रकारसे केवल भगवान्‌की सेवामें ही लगा है। वह कर्मसे विरत नहीं, परंतु उसका प्रत्येक कर्म, प्रत्येक विचार होता है केवल भगवत्सेवाके—भगवत्पूजाके लिये ही। वह सदा-सर्वदा अपने प्रत्येक कर्मसे, प्रत्येक व्यवहारसे अपने प्रभु भगवान्‌की पूजा ही करता है। यों तो जिसकी जीभसे भगवान्‌के मधुर मनोहर नामका उच्चारण होता है, वह भी वैष्णव तथा परम पूजनीय है। श्रीगौराङ्ग महाप्रभु कहते हैं—

प्रभु कहे यांर मुखे शुनि एक बार।
कृष्ण नाम सेई पूज्य श्रेष्ठ सवाकार॥
अतएव यांर मुखे एक कृष्ण नाम।
सेई त वैष्णव, करिह ताँहार सम्मान॥
कृष्ण नाम निरन्तर याँहार वदने।
से वैष्णवश्रेष्ठ भज ताँहार चरणे॥

महाप्रभु कहते हैं—'जिसके मुखसे एक बार भी कृष्णका नाम सुनता हूँ, वही सबसे श्रेष्ठ एवं पूज्य है। इसीलिये जिसके मुखसे एक बार भी कृष्णका नाम निकल गया, वही वैष्णव है और उसका सम्मान करना चाहिये। फिर जिसके मुखसे निरन्तर कृष्णका नाम निकलता है, वह तो वैष्णवाग्रगण्य है। उसके चरणोंका सेवन करना चाहिये।'

वस्तुतः वैष्णवका या वैष्णवके स्वरूपका वर्णन सहज नहीं है। यह तो वैष्णव हृदयके अनुभवकी वस्तु है। अतएव इसका वर्णन करने जाना अपनी अज्ञानताको ही प्रकट करना है। मुझ-सरीखा—अभिमानसे भरा सामान्य प्राणी पवित्रतम वैष्णवधर्मका क्या बखान करे। महाप्रभु श्रीचैतन्यदेवने कहा है—

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः॥
(श्रीचैतन्यशिक्षाष्टक ३)

'जो अपनेको तृणसे भी अधिक नीचा मानते हैं, जो वृक्षसे भी अधिक सहनशील हैं (पत्थर मारनेवालेको सुस्वादु रसपूर्ण फल देते हैं, काटने-चीरने-जलानेवालोंका भी भाँति-भाँतिसे उपकार करते हैं), जो स्वयं अमानी रहकर सबको मान देनेवाले हैं, उन्हींके द्वारा हरि सदा कीर्तनीय हैं।' ये ही सच्चे वैष्णवके लक्षण हैं।

आज सभी विषय-कामनाकी आगसे जल रहे हैं। सारा जगत् वस्तुतः आज इस प्रेममय वैष्णवधर्मकी प्रेमसुधा-धाराके अभावसे ही संत्रस्त है। जिस प्रेमकी बाढ़में एक दिन पूरा नवद्वीप डूब गया था—'डुबु-डुबु नदे भेसे जाय।'—उसका सृजन श्रीचैतन्यके द्वारा हुआ था। उन्हीं प्रेमके ठाकुर श्रीगौराङ्गके श्रीचरणोंमें हम सभी प्रार्थना करें कि आजका जलता हुआ जगत् एक बार फिर उसी पवित्र त्यागरूप प्रेमकी सुधा-धारासे आप्लावित हो। हम सभी श्रीचैतन्यमहाप्रभुके आदर्शके अनुसार प्रेमकी सुधा-धारासे आप्लावित होकर परम शान्ति तथा परम सुखका अनुभव करें—

स्वस्त्यस्तु विश्वस्य खलः प्रसीदतां
ध्यायन्तु भूतानि शिवं मिथो धिया।
मनश्च भद्रं भजतादधोक्षजे
आवेश्यतां नो मतिरप्यहैतुकी॥
(श्रीमद्भागवत ५। १८। ९)

'समस्त विश्वका कल्याण हो, दुष्ट प्रकृतिके लोग क्रूरताका त्याग करें। सब जीव एक-दूसरेका मङ्गल-चिन्तन करें। हमारा मन (सबका) भलाई ही सोचे और हमारी बुद्धि अधोक्षज श्रीभगवान्‌में अहैतुकी प्रीतिके साथ आविष्ट हो जाय—वहाँसे कभी हटे नहीं।'

गरुड़ासीन अष्टभुज श्रीविष्णुका ध्यान

सुंदर स्याम सरूप सोहावन। कटि किंकिनि सबके मनभावन॥
सुभग किरीट अर्क-दुति-हारी। पीतवसन कटि-तट सुभकारी॥
नील अलक मुखपर अति सोहन। मानहुँ भ्रमर कंज-मुख जोहन॥
चक्र, चाप, सर, असि कर धारे। जलज, संख, गद, ढाल सुधारे॥
भुज प्रलंब भूषन-जुत राजत। कंकन-केयुर की छबि छाजत॥

सुंदर उर राजत रमा, बनमाला सुभ रीति।
हास्य सहित अवलोकिबो, बिस्व सुखद अति प्रीति॥
(श्रीमद्भागवत ४। ७। १९ से २१ के आधारपर)

विष्णु-धर्म—एक विहंगावलोकन

(लेखक—गोस्वामि-तिलकायित श्री १०८ श्रीगोविन्दलालजी महाराज)

वैदिककाल श्रीविष्णुभक्तिका यदि अरुणोदय है तो पुराण-काल उसका मध्याह्न है । वैष्णव-भक्तिके उपास्य परब्रह्म विष्णु हैं । कृष्ण-भक्तिके अनुयायी भी 'वैष्णव' कहे जाते हैं । श्रीमद्भागवत श्रीकृष्णको ही परब्रह्म मानता है—कहीं-कहीं इनका विष्णु-नामसे भी निर्देश किया गया है; किंतु श्रीमद्भागवतके विष्णु कृष्णके ही एक आदर्श प्रतीकमात्र हैं । विष्णुपुराणके पाँचवें अंशमें श्रीकृष्णको श्रीविष्णुका अवतार कहा गया है; किंतु भागवतका मत है कि 'श्रीकृष्ण स्वयं भगवान् हैं—कृष्णस्तु भगवान् स्वयम् ।' (श्रीमद्भाग० १ । ३ । २९) उत्तरमीमांसाके भाष्यमें श्रीमद्वल्लभाचार्यने तो विष्णुको कार्यब्रह्मकी संरक्षणात्मिका-शक्तिकी साक्षात् अभिव्यक्ति माना है ।

वेदमें विष्णुकी, सौर-मण्डलके देवताके रूपमें स्तुति की गयी है । परमोच्च स्वर्लोक इनका निवासस्थान है—'**तद्विष्णोः परमं पदम्**' (ऋग्वेद १ । २२ । २०) । विष्णु-शब्दकी व्युत्पत्ति 'विश्' धातुसे है, जिसका अर्थ है—'प्रवेश करना—'**विशेर्धातोः प्रवेशनात्**' । अपने इस व्यापकत्व गुणमें विष्णु साक्षात् परब्रह्म ही हैं । श्रीमद्भागवतके पञ्चमस्कन्धमें 'शिशुमार-संस्था'-वर्णनके अन्तर्गत विष्णुके सर्वदेवतामय स्वरूपका वर्णन प्रायः वेदानुकूल ही किया गया है ।

वेदमें 'भग'-देवताके भी सूक्त हैं । ये देवता आनन्द एवं अनुग्रहके वितरक कहे गये हैं । आनन्दमय एवं अनुग्रहात्मक यही देवता भागवतके भगवान् श्रीकृष्ण हैं । 'भग'से युक्तको—अर्थात् ऐश्वर्य-वीर्य-यश-श्री-ज्ञान-वैराग्यसे समन्वितको 'भगवान्' कहते हैं । 'भज्' धातुसे भग-शब्द बना है तथा वैदिक निरुक्तिके अनुसार 'भज्' का अर्थ 'वितरक' होता है । भगवान्‌के अनुग्रह-प्राप्त जीवको 'भागवत' कहते हैं । जिसमें भक्तिके विषय केवल भगवान् श्रीकृष्ण ही हों, वह 'भागवत-धर्म' कहलाया । भागवतोंके उपास्य श्रीकृष्णका स्वरूप 'रसमय' है । वैष्णवधर्मके अनुसार शक्ति तथा कारुण्यसमन्वित उपास्यका स्वरूप 'ज्ञानमय' कहा गया है । अपने-अपने उपास्य-विशेष अथवा उपास्यगत गुण-विशेषके आग्रहसे भागवत-धर्म एवं वैष्णवधर्मकी भक्ति-भावनामें मूलतः तारतम्य आ गया है । वैष्णव-सम्प्रदायका भक्तियोग ज्ञान तथा कर्मपर आधारित है—'**ज्ञानकर्मानुगृहीतं भक्तियोगम्**' (श्रीरामानुजाचार्य गीता-भाष्य) । भागवतोंने भक्तिको कर्मसे सर्वथा असिद्ध माना है; क्योंकि कर्मके अन्तर्गत मानी गयी भक्तिमें 'भक्तित्व' नाम-मात्रसे भी नहीं है—'**कर्मान्तःपातित्वात् न तत्र भक्तित्वम् ।**' (गो० श्रीविठ्ठलेश्वर) ।

कालान्तरमें 'भगवत्' तथा 'भागवत' शब्द इतने रूढ एवं सर्वप्रिय हो गये कि ये सभी देवता और भक्तोंके लिये प्रयुक्त होने लगे । सूर्य-गणेश-राम आदिके लिये भी 'भगवान्' शब्द व्यवहृत किया गया ।

वस्तुतः वैष्णवधर्म, भागवत-धर्मका ही एक विस्तार-मात्र है, जिसमें विष्णु ही साक्षात् भगवान्‌के अभिन्नरूप माने गये हैं । विष्णुपुराणमें विष्णुकी ही भगवद्-रूपमें सर्वोपरिता सिद्ध की गयी है । पञ्चरात्र एवं हरिवंश विष्णुधर्मके सविस्तर व्याख्या-ग्रन्थ हैं । श्रीरामानुजका श्री-सम्प्रदाय, मध्वका ब्रह्म-सम्प्रदाय, विष्णुस्वामीका रुद्र-सम्प्रदाय तथा निम्बार्कका सनकादि-सम्प्रदाय—इन सम्प्रदाय-चतुष्टयसे वैष्णव-सम्प्रदाय बना । वैष्णव-भक्तिके दार्शनिक स्वरूपका भव्य विवेचन श्रीरामानुजने अपने श्रीभाष्यमें किया है ।

रामानुज-दर्शनमें जिस 'केवल' तत्त्वकी समीक्षा की गयी है, वह साक्षात् विष्णु ही हैं । यह तत्त्व अपने अर्चा, विभव (अवतार), व्यूह (वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध), सूक्ष्म एवं अन्तर्यामी—इन पञ्चविध विभिन्न स्वरूपोंसे सर्वदा स्थित रहता है ।

अपने भक्तोंके प्रति स्नेहातिशयके आग्रहसे विष्णु व्यूहोंका रूप धारण करते हैं । इनमेंसे संकर्षण जीवका, प्रद्युम्न मनका तथा अनिरुद्ध अहंकारका नियामक है । वासुदेव महदात्मक चित्त हैं—'**यदाहुर्वासुदेवाख्यं चित्तं तन्महदात्मकम् ॥**' (भागवत ३ । २६ । २१)

अप्राकृत (विष्णु) से प्राकृत-स्थितिमें अवतरितको 'अवतार' कहते हैं—पवित्रीकृत प्रतिमामें विष्णु साक्षात् निवास करते हैं, अन्तर्यामीरूपसे जीवमात्रमें विराजमान हैं तथा सूक्ष्म-रूपसे सर्वत्र व्याप्त हैं ।

लक्ष्मी विष्णुकी शक्ति हैं । लक्ष्मीकी नियामिका शक्ति

प्रभु कहे यांर मुखे शुनि एक बार।
कृष्ण नाम सेई पूज्य श्रेष्ठ सवाकार॥
अतएव यांर मुखे एक कृष्ण नाम।
सेई त वैष्णव, करिह ताँहार सम्मान॥
कृष्ण नाम निरन्तर याँहार वदने।
से वैष्णवश्रेष्ठ भज ताँहार चरणे॥

महाप्रभु कहते हैं—'जिसके मुखसे एक बार भी कृष्णका नाम सुनता हूँ, वही सबसे श्रेष्ठ एवं पूज्य है। इसीलिये जिसके मुखसे एक बार भी कृष्णका नाम निकल गया, वही वैष्णव है और उसका सम्मान करना चाहिये। फिर जिसके मुखसे निरन्तर कृष्णका नाम निकलता है, वह तो वैष्णवाग्रगण्य है। उसके चरणोंका सेवन करना चाहिये।'

वस्तुतः वैष्णवका या वैष्णवके स्वरूपका वर्णन सहज नहीं है। यह तो वैष्णव हृदयके अनुभवकी वस्तु है। अतएव इसका वर्णन करने जाना अपनी अज्ञानताको ही प्रकट करना है। मुझ-सरीखा—अभिमानसे भरा सामान्य प्राणी पवित्रतम वैष्णवधर्मका क्या बखान करे। महाप्रभु श्रीचैतन्यदेवने कहा है—

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः॥
(श्रीचैतन्यशिक्षाष्टक ३)

'जो अपनेको तृणसे भी अधिक नीचा मानते हैं, जो वृक्षसे भी अधिक सहनशील हैं (पत्थर मारनेवालेको सुस्वादु रसपूर्ण फल देते हैं, काटने-चीरने जलानेवालोंका भी भाँति-भाँतिसे उपकार करते हैं), जो स्वयं अमानी रहकर सबको मान देनेवाले हैं, उन्हींके द्वारा हरि सदा कीर्तनीय हैं।' ये ही सच्चे वैष्णवके लक्षण हैं।

आज सभी विषय-कामनाकी आगसे जल रहे हैं। सारा जगत् वस्तुतः आज इस प्रेममय वैष्णवधर्मकी प्रेमसुधा-धाराके अभावसे ही संत्रस्त है। जिस प्रेमकी बाढ़में एक दिन पूरा नवद्वीप डूब गया था—'डुबु-डुबु नदे भेसे जाय।' —उसका सृजन श्रीचैतन्यके द्वारा हुआ था। उन्हीं प्रेमके ठाकुर श्रीगौराङ्गके श्रीचरणोंमें हम सभी प्रार्थना करें कि आजका जलता हुआ जगत् एक बार फिर उसी पवित्र त्यागरूप प्रेमकी सुधा-धारासे आप्लावित हो। हम सभी श्रीचैतन्यमहाप्रभुके आदर्शके अनुसार प्रेमकी सुधा-धारासे आप्लावित होकर परम शान्ति तथा परम सुखका अनुभव करें—

स्वस्त्यस्तु विश्वस्य खलः प्रसीदतां
ध्यायन्तु भूतानि शिवं मिथो धिया।
मनश्च भद्रं भजतादधोक्षजे
आवेश्यतां नो मतिरप्यहैतुकी॥
(श्रीमद्भागवत ५।१८।९)

'समस्त विश्वका कल्याण हो, दुष्ट प्रकृतिके लोग क्रूरताका त्याग करें। सब जीव एक-दूसरेका मङ्गल-चिन्तन करें। हमारा मन (सबकी) भलाई ही सोचे और हमारी बुद्धि अधोक्षज श्रीभगवान्में अहैतुकी प्रीतिके साथ आविष्ट हो जाय—वहाँसे कभी हटे नहीं।'

गरुड़ासीन अष्टभुज श्रीविष्णुका ध्यान

सुंदर स्याम सरूप सोहावन। कटि किंकिनि सबके मनभावन॥
सुभग किरीट अर्क-दुति-हारी। पीतवसन कटि-तट सुभकारी॥
नील अलक मुखपर अति सोहन। मानहुँ भ्रमर कंज-मुख ओहन॥
चक्र, चाप, सर, असि कर धारे। जलज, संख, गद, ढाल सुधारे॥
भुज प्रलंब भूषन-जुत राजत। कंकन-केयुर की छबि छाजत॥
सुंदर उर राजत रमा, वनमाला सुभ रीति।
हास्य सहित अवलोकिबो, विस्व सुखद अति प्रीति॥
(श्रीमद्भागवत ४।७।१९ से २१ के आधारपर)

विष्णु-धर्म—एक विहंगावलोकन

(लेखक—गोस्वामि-तिलकायित श्री १०८ श्रीगोविन्दलालजी महाराज)

वैदिककाल श्रीविष्णुभक्तिका यदि अरुणोदय है तो पुराण-काल उसका मध्याह्न है । वैष्णव-भक्तिके उपास्य परब्रह्म विष्णु हैं । कृष्ण-भक्तिके अनुयायी भी 'वैष्णव' कहे जाते हैं । श्रीमद्भागवत श्रीकृष्णको ही परब्रह्म मानता है—कहीं-कहीं इनका विष्णु-नामसे भी निर्देश किया गया है, किंतु श्रीमद्भागवतके विष्णु कृष्णके ही एक आदर्श प्रतीकमात्र हैं । विष्णुपुराणके पाँचवें अंशमें श्रीकृष्णको श्रीविष्णुका अवतार कहा गया है; किंतु भागवतका मत है कि 'श्रीकृष्ण स्वयं भगवान् हैं—कृष्णस्तु भगवान् स्वयम् ।' (श्रीमद्भाग० १ । ३ । २९) उत्तरमीमांसाके भाष्यमें श्रीमद्वल्लभाचार्यने तो विष्णुको कार्यब्रह्मकी संरक्षणात्मिका-शक्तिकी साक्षात् अभिव्यक्ति माना है ।

वेदमें विष्णुकी, सौर-मण्डलके देवताके रूपमें स्तुति की गयी है । परमोच्च स्वर्लोक इनका निवासस्थान है—'तद्विष्णोः परमं पदम्' (ऋग्वेद १ । २२ । २०) । विष्णु-शब्दकी व्युत्पत्ति 'विश्' धातुसे है, जिसका अर्थ है—'प्रवेश करना—'विशेर्धातोः प्रवेशनात्' । अपने इस व्यापकत्व गुणमें विष्णु साक्षात् परब्रह्म ही हैं । श्रीमद्भागवतके पञ्चमस्कन्धमें 'शिशुमार-संस्था'-वर्णनके अन्तर्गत विष्णुके सर्वदेवतामय स्वरूपका वर्णन प्रायः वेदानुकूल ही किया गया है ।

वेदमें 'भग'-देवताके भी सूक्त हैं । ये देवता आनन्द एवं अनुग्रहके वितरक कहे गये हैं । आनन्दमय एवं अनुग्रहात्मक यही देवता भागवतके भगवान् श्रीकृष्ण हैं । 'भग'से युक्तको—अर्थात् ऐश्वर्य-वीर्य-यश-श्री-ज्ञान-वैराग्यसे समन्वितको 'भगवान्' कहते हैं । 'भज्' धातुसे भग-शब्द बना है तथा वैदिक निरुक्तिके अनुसार 'भज्' का अर्थ 'वितरक' होता है । भगवान्के अनुग्रह-प्राप्त जीवको 'भागवत' कहते हैं । जिसमें भक्तिके विषय केवल भगवान् श्रीकृष्ण ही हों, वह 'भागवत-धर्म' कहलाया । भागवतोंके उपास्य श्रीकृष्णका स्वरूप 'रसमय' है । वैष्णवधर्मके अनुसार शक्ति तथा कारुण्यसमन्वित उपास्यका स्वरूप 'ज्ञानमय' कहा गया है । अपने-अपने उपास्य-विशेष अथवा उपास्यगत गुण-विशेषके आग्रहसे भागवत-धर्म एवं वैष्णवधर्मकी भक्ति-भावनामें मूलतः तारतम्य आ गया है । वैष्णव-सम्प्रदायका भक्तियोग ज्ञान तथा कर्मपर आधारित है—'ज्ञानकर्मानुगृहीतं भक्तियोगम्' (श्रीरामानुजाचार्य गीता-भाष्य) । भागवतोंने भक्तिको कर्मसे सर्वथा असिद्ध माना है; क्योंकि कर्मके अन्तर्गत मानी गयी भक्तिमें 'भक्तित्व' नाम-मात्रसे भी नहीं है—'कर्मान्तःपातित्वात् न तत्र भक्तित्वम् ।' (गो० श्री-विट्ठलेश्वर) ।

कालान्तरमें 'भगवत्' तथा 'भागवत' शब्द इतने रूढ एवं सर्वप्रिय हो गये कि ये सभी देवता और भक्तोंके लिये प्रयुक्त होने लगे । सूर्य-गणेश-राम आदिके लिये भी 'भगवान्' शब्द व्यवहृत किया गया ।

वस्तुतः वैष्णवधर्म, भागवत-धर्मका ही एक विस्तार-मात्र है, जिसमें विष्णु ही साक्षात् भगवान्के अभिन्नरूप माने गये हैं । विष्णुपुराणमें विष्णुकी ही भगवद्-रूपमें सर्वोपरिता सिद्ध की गयी है । पञ्चरात्र एवं हरिवंश विष्णुधर्मके सविस्तर व्याख्या-ग्रन्थ हैं । श्रीरामानुजका श्री-सम्प्रदाय, मध्वका ब्रह्म-सम्प्रदाय, विष्णुस्वामीका रुद्र-सम्प्रदाय तथा निम्बार्कका सनकादि-सम्प्रदाय—इन सम्प्रदाय-चतुष्टयसे वैष्णव-सम्प्रदाय बना । वैष्णव-भक्तिके दार्शनिक स्वरूपका भव्य विवेचन श्रीरामानुजने अपने श्रीभाष्यमें किया है ।

रामानुज-दर्शनमें जिस 'केवल' तत्त्वकी समीक्षा की गयी है, वह साक्षात् विष्णु ही हैं । यह तत्त्व अपने अर्चा, विभव (अवतार), व्यूह (वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध), सूक्ष्म एवं अन्तर्यामी—इन पञ्चविध विभिन्न स्वरूपोंसे सर्वदा स्थित रहता है ।

अपने भक्तोंके प्रति स्नेहातिशयके आग्रहसे विष्णु व्यूहोंका रूप धारण करते हैं । इनमेंसे संकर्षण जीवका, प्रद्युम्न मनका तथा अनिरुद्ध अहंकारका नियामक है । वासुदेव महदात्मक चित्त हैं—'यदाहुर्वासुदेवाख्यं चित्तं तन्महदात्मकम् ॥' (भागवत ३ । २६ । २१)

अप्राकृत (विष्णु) से प्राकृत-स्थितिमें अवतरितको 'अवतार' कहते हैं—पवित्रीकृत प्रतिमामें विष्णु साक्षात् निवास करते हैं, अन्तर्यामीरूपसे जीवमात्रमें विराजमान हैं तथा सूक्ष्म-रूपसे सर्वत्र व्याप्त हैं ।

लक्ष्मी विष्णुकी शक्ति हैं । लक्ष्मीकी नियामिका शक्ति

'क्रिया' एवं उत्पादिका शक्ति 'भूति'—इन द्विविध शक्तियोंसे विष्णु जगत्के निमित्त तथा उपादान कारण बनते हैं।

मनुष्यमात्रके हृदय-प्रदेशमें विष्णुकी अवस्थिति नीलमेघके मध्यमें विद्युत्-प्रभाके स्फुरण-समान मानी गयी है—

'नीलतोयदमध्यस्था विद्युल्लेखेव भास्वरः।'

वेदवाङ्मयसे ही कृष्ण-तत्त्व तथा विष्णु-तत्त्वकी मन्दाकिनी क्रमशः रसमयी दो धाराओंमें प्रसरित हुई, जिसने भारतीय जीवनको भक्ति-रससे आप्लावित कर दिया।

नारायणावतरण

(लेखक—स्वामी श्रीकृष्णानन्दजी सरस्वती)

महाकाव्योंके मतानुसार नारायण वे आद्यदेव हैं, जिनके सृष्टिरचना-संकल्प (Creative will) से यह सम्पूर्ण विश्व प्रकट हुआ। शास्त्रोंका मत है कि 'नारायण' शब्द उस भागवत-सत्ताका सूचक है, जो विश्वके पूर्वकी अवस्थामें महार्णवमें शयन करते हैं अथवा जो समस्त नरों (प्राणियों) के जीवनोद्देश्य, आदर्श और गन्तव्य-स्थल हैं। इन्हीं नारायणको 'विष्णु' कहा जाता है और ये ही अखिल सृष्टिके सृजन-पालन-संहारका कार्य—ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव—इन तीन रूपोंसे करते हैं।

पञ्चरात्र-सिद्धान्तके अनुसार भगवान् पाँच रूपोंमें प्रकट होते हैं। उनके नाम हैं—(१) 'पर' अर्थात् अपने परम स्वरूपमें, (२) 'व्यूह' अर्थात् अपने रूप-समूहमें, जिसमें वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध आते हैं और जिनकी तुलना क्रमशः विश्वचैतन्य, विश्व-बुद्धि, विश्व-मनस् और विश्व-अहंकारसे की जाती है, (३) 'विभव', जिसमें वे अवतारद्वारा अपने ऐश्वर्यको प्रकट करते हैं, (४) 'अर्चा' अर्थात् भक्तोंद्वारा पूजित मूर्तियोंमें उनकी प्रकट उपस्थिति तथा (५) 'अन्तर्यामी' अर्थात् उनकी विश्वव्यापक उपस्थिति।

विष्णुके अनेक अवतार हैं। श्रीमद्भागवतमें कम-से-कम चौबीस अवतारोंकी चर्चा है, जिनमेंसे प्रसिद्ध दस अवतारोंको 'दशावतार' कहते हैं। जैसा कि भगवद्गीता (४। ७-८) में उद्घोषित किया गया है—'जब-जब धर्मका ह्रास और अधर्मका अभ्युदय होता है, तब-तब भगवान् साधुपुरुषोंके रक्षणार्थ एवं दुष्कर्मियोंके विनाशार्थ अवतार लेते हैं। सत्य और न्यायके स्थापनार्थ वे तात्कालिक परिस्थितिके अनुरूप अपनेको प्रकट करते हैं।' इन अवतारोंमेंसे जिसमें दिव्यताका पूर्ण प्रकटीकरण होता है, उसे 'पूर्णावतार' और जिसमें आंशिक प्रकटीकरण होता है, उसे 'अंशावतार' अथवा 'कलावतार' कहा जाता है। श्रीमद्भागवतके अनुसार श्रीकृष्ण भगवान्के पूर्णावतार थे।

विष्णुके अवतारोंमें, जो मुख्य दशावतारोंमें सम्मिलित नहीं किये गये, उन नारायण और नरकी गरिमाका महाकाव्यों और पुराणोंमें विशद वर्णन है। महाभारतमें कहा गया है कि 'उनके तेज और महिमाने सृष्टिकर्ता ब्रह्माकी महानताको भी आच्छादित कर लिया था। उनकी दिव्यात्मा अखिल विश्वको दीप्तिमान् करती हुई स्वर्गलोकतक जा पहुँची। वे अग्निकी भाँति तेजस्वी और निखिल सृष्टिमें अपराजेय हैं। वे सूर्यके समान भास्वर, वायुके समान बलशाली, अग्निकी भाँति द्युतिमान् और चन्द्रमाकी भाँति मनोरम हैं। उनकी शक्तिके समक्ष राजा दम्भोद्भवके दर्पका पराभव हुआ तथा उनको तपोभ्रष्ट करनेके प्रयासमें इन्द्रको लज्जावनत होना पड़ा।'

भगवान् विष्णुने मन्वन्तरके अन्तमें महाजलाप्लावनसे मनु और सप्तर्षियोंके रक्षणार्थ तथा वेदोंको प्रलय-सागरमें विनष्ट होनेसे बचानेके लिये 'मत्स्य'-अवतार धारण किया। 'कूर्मावतार'-में विष्णुने मन्दराचलको अपनी पीठपर उस समय धारण किया, जिस समय देवताओं और असुरोंने अमृतकी प्राप्तिके लिये सागर-मन्थनमें मन्दराचलको मथानीकी तरह प्रयुक्त किया था। 'वराह'-अवतारमें विष्णुने हिरण्याक्षका वध किया और महार्णवमें डूबी हुई पृथिवीका उद्धार किया। 'नरसिंह'के रूपमें विष्णुने खंभसे प्रकट हो हिरण्यकशिपुका वध किया था। बिजलीकी कड़कके साथ स्तम्भ फाड़कर नरसिंहके रूपमें निकलनेसे विष्णुभगवान्ने जड पदार्थोंमें भी अपनी अन्तर्व्यापकता प्रमाणित कर दी। भक्तजन वैशाखके शुक्लपक्षकी चतुर्दशीको नरसिंह-जयन्ती मनाते हैं। वामनरूपमें विष्णुने अपने शरीरसे अखिल विश्वको आवृत करते हुए दो ही डगोंसे तीनों लोकोंको नाप लिया तथा बलिको वशमें करके पाताललोकमें भेज दिया। 'परशुराम' अथवा परशुधारी रामके रूपमें विष्णुने उन उद्धत क्षत्रियोंसे पृथिवीका उद्धार किया, जो शिष्टता और सदाचारकी सीमाका उल्लङ्घन कर धार्मिक

संयुक्त श्रीलक्ष्मी-विष्णु [पृष्ठ ५०६]

श्रीहरिहर

'यथा शिवमयो विष्णुरेवं विष्णुमयः शिवः' [पृष्ठ ३२]

जीवनके लिये संकटकारक बन गये थे। भयावह अग्निके समान क्रुद्ध हो उन्होंने इक्कीस बार पृथ्वी छान मारी तथा अपने अपराजेय कुठारसे उसे क्षत्रिय-विहीन कर डाला। 'रामावतार'-में विष्णुने पृथ्वीपर धर्म-संस्थापनका एक महान् उदाहरण प्रस्तुत किया।

श्रीरामका महिमामय इतिहास ही वाल्मीकिके महाकाव्यका इतिवृत्त है। राजा दशरथके पुत्र राम धर्मकी पूर्णताके प्रतीक और शीलके प्रत्येक कल्पनीय रूपके आदर्श बन गये। अपने उदात्त काव्यमें वाल्मीकि रामको शक्ति, आत्म-संयम, साहस, विवेक, वाक्-शक्ति तथा अत्युत्तम आचरणके आगार, सबके हितैषी, धर्मके संरक्षक, समस्त शास्त्रों और कलाओंमें निष्णात, सागर-सा गरिमामय, हिमालय-सा महान्, क्रोधमें विश्वको ध्वंस करनेमें समर्थ अग्नि-ज्वालाके सदृश और क्षमामें पृथिवी-सदृश बताते हैं। रामका चित्राङ्कन उन्नत वक्ष, दीर्घ बाहु, सुन्दर गोल मस्तक, प्रशस्त ललाट, सुडौल अवयव, आकर्षक वर्ण, विशाल नेत्र तथा अति सुन्दर व्यक्तित्वके रूपमें किया गया है। उनका धनुष 'कोदण्ड' है और उनके बाण-संधानकी अमोघता सर्वविदित है। राक्षसराज रावणके वधके पश्चात् भगवान् रामने 'रामराज्य'की स्थापना की। रामकी महानताकी चर्चा सर्वत्र थी। राजाके रूपमें शासन करते समय समस्त देशमें उनका 'राम' नाम परिव्याप्त था। रामके रूपमें विष्णुके अवतारका प्रयोजन मानवताके समक्ष एक ऐसा आदर्श—पूर्णत्वका आदर्श प्रस्तुत करना था, जिसतक व्यक्ति नैतिक, बौद्धिक, आध्यात्मिक तथा सामाजिक जीवन-यापन करते हुए भी पहुँच सकता है। रामका जन्म चैत्रमासके शुक्लपक्षकी नवमीको 'रामनवमी'के रूपमें मनाया जाता है।

प्रायः यह माना जाता है कि रामके रूपमें विष्णु मानवी पूर्णता प्रदर्शित करने आये थे और कृष्णके रूपमें भागवती पूर्णता। इन दोनों अवतारोंने विश्व-मानवको जिस आदर्श और आचरणकी शिक्षा दी है तथा उनके समक्ष जो आदर्श प्रकट किया है, उनमें एक उल्लेखनीय अन्तर है। राम मर्यादा-पुरुषोत्तम हैं। अपनी लीलामें भगवान् अनुशासन, नियम, आचार और धर्मका आदर्श प्रस्तुत करते हैं, कृष्ण इससे भिन्न लीला-पुरुषोत्तम हैं। इस लीलामें भगवान् अपनी भावातीत, मनसे अतीत अपूर्वता, गरिमा और पूर्णताके साथ मर्त्यलोकमें भागवती लीला करते हैं।

कृष्णके प्रारम्भिक जीवनकी सर्वाधिक कौतुकयुक्त और महत्त्वपूर्ण घटना रासलीला है, जो वृन्दावनकी गोपियोंके साथ किया हुआ उनका प्रेम-नृत्य है। भगवान् कृष्णका यह क्रीडा-विलास बुद्धिसे अगम्य है। समीक्षकोंने इसे प्रेममयी गोपियोंद्वारा कृष्णकी भावभरी खोज बताया है। वस्तुतः यह जीवात्माद्वारा परब्रह्मकी खोज है, जिसमें आनन्दका अतिरेक है और जहाँ तर्क-बुद्धि मौन हो जाती है। प्रभुके लिये जीवका ऐसा प्रेमोन्माद, प्रभुद्वारा आत्मप्राकट्यके रूपमें दिव्य प्रतिक्रिया तथा जीव-पक्षमें निज व्यक्तित्वरूपी बुद्बुदको चूर्ण करनेवाली उत्कट प्रेमकी अतिचेतनताकी अवस्था, जिसमें मनुष्य अपनी सत्ताको विस्मृतकर केवल भगवान्‌की सत्ताकी अनुभूति करता है—यही है इस रासका अलौकिक अद्भुत स्वरूप। वस्तुतः गोपियोंके साथ भगवान् श्रीकृष्णका यह प्रेम-नृत्य एक लोकोत्तर क्रीड़ा-विलास है।

श्रीकृष्णका प्रारम्भिक जीवन माधुर्य-भक्तिद्वारा प्रेममयी भागवत-भक्ति और भगवान्‌के साथ आध्यात्मिक मिलन अर्थात् उस मधुरतामें निजके सहज विलयनको उत्प्रेरित करता है, परंतु उनका उत्तरकालीन जीवन मानव-जीवनके क्रममें एक सर्वथा नवीन अध्याय खोलता है। वह व्यक्तिके मनको 'ऐश्वर्य-भक्ति' अर्थात् श्रीकृष्णकी शक्ति और ज्ञान-गरिमाके अप्रतिहत आकर्षणसे उद्वेलित कर देता है।

अनन्तरूपधारी भगवान् विष्णुकी वन्दना

नमोऽस्त्वनन्ताय सहस्रमूर्तये सहस्रपादाक्षिशिरोरुबाहवे।
सहस्रनाम्ने पुरुषाय शाश्वते सहस्रकोटीयुगधारिणे नमः॥

'उन अनन्त शाश्वत पुरुष भगवान् विष्णुको प्रणाम है, जिनके हजारों (अनन्त) शरीर हैं, हजारों चरण, नेत्र, मस्तक, जाँघें और भुजाएँ हैं, हजारों नाम हैं, और जो हजारों करोड़ युगोंको अपने शरीरमें धारण करते हैं।'

श्रीवैभव

(लेखक—स्वामी श्रीसीतारामशरणजी महाराज)

ऋग्वेदके श्रीसूक्तमें वर्णित पंद्रह मन्त्रोंकी व्याख्या नितान्त मनोरम है । 'हिरण्यवर्णां हरिणीम्'—इस प्रथम मन्त्रमें ही श्रीजीकी महिमाका बहुत कुछ संकेत निहित है । 'हिरण्य'का साधारण अर्थ है—स्वर्ण (विपुल सम्पत्ति), किंतु विशेष अर्थ है—स्पृहणीय । श्रीजी स्वर्णके समान उज्ज्वल पीतवर्णा हैं तथा 'हिरण्यवर्णा' अर्थात् भगवान्‌को भी आह्लाद देनेवाले स्पृहणीय वर्णवाली हैं । 'हरिणी' अर्थात् हरिणके समान विशाल नेत्रवाली हैं । जीवोंको भगवदाश्रित करानेमें निरन्तर प्रयत्नशीला होनेके कारण भी 'हरिणी' कही जाती हैं—'हरिं नयति चेतनमिति हरिणी' । दिव्य विग्रहके अनुकूल ही स्वर्णरजतादिमय-महर्घमणिमाणिक्यभूषणविभूषिता हैं—भगवान्‌को आह्लाद देनेवाली हैं । हिरण्यके समान स्पृहणीय दिव्य-कल्याण-गुणगण-सम्पन्ना हैं ।

सेवा-श्रवण-हिंसा-विस्तारार्थक धातुओंसे 'श्री' शब्द निष्पन्न होता है । तदनुसार श्री-शब्दके छः प्रकारके अर्थ उपलब्ध होते हैं—

> श्रितास्त्वम्यैः सर्वैः श्रयसि रमणं संश्रितगिरः
> शृणोषि प्रेयांसं श्रितजनवचः श्रावयसि च ।
> शृणास्येतद्दोषाञ्जननि निखिलान् सर्वजगतीं
> गुणैः श्रीणासि त्वं तदिह भवतीं श्रीरिति विदुः ॥

"हे जननि ! समस्त जीवोंके द्वारा आप सेवित हैं । अपने भगवान्‌की सेवामें निरत हैं । आश्रितोंकी प्रार्थना सुनती हैं तथा प्रभुको भी सुनाती रहती हैं । आश्रितोंके सम्पूर्ण दोषोंका विनाश करती हैं तथा अपने दिव्य गुणोंसे जगत्‌का विस्तार करती हैं । अतएव आपको वेदज्ञजन 'श्री' कहते हैं ।"

जिस प्रकार सत्-चित्-आनन्द भगवान्‌के तीन वैभव हैं, उसी प्रकार संधिनी-संवित्-आह्लादिनी—ये श्रीजीके तीन वैभव हैं, यह विष्णुपुराणमें सुस्पष्ट है—

> ह्लादिनी संधिनी संवित्त्वय्येका सर्वसंस्थितौ ।
> ह्लादतापकरी मिश्रा त्वयि नो गुणवर्जिते ॥
> (विष्णुपुराण १ । १२ । ६९)

'सबके आधारभूत आपमें ह्लादिनी (निरन्तर आह्लादित करनेवाली) और संधिनी (विच्छेदरहित), संवित् (विद्याशक्ति) अभिन्नरूपसे रहती हैं । आपमें (विषयजन्य) आह्लाद या ताप देनेवाली (सात्त्विकी या तामसी) अथवा उभयमिश्रा (राजसी) कोई भी संवित् नहीं है; क्योंकि आप निर्गुण हैं ।'

संधिनी-सार होनेसे वे भूलोकसे ब्रह्मलोकपर्यन्त वैभव प्रदान करती हैं । संवित्-सार होनेसे कैवल्य-मुक्ति एवं ह्लादिनी-सार होनेसे भगवद्रस प्रदान करती हैं । स्वामी श्रीयामुनाचार्य चतुःश्लोकी (३)में कहते हैं—

> ईषत्त्वत्करुणानिरीक्षणसुधासंधुक्षणाद् रक्ष्यते
> नष्टं प्राक्तदलाभतस्त्रिभुवनं सम्प्रत्यनन्तोदयम् ।
> श्रेयो नह्यरविन्दलोचनमनःकान्ताप्रसादादृते
> संसृत्यक्षरवैष्णवाध्वसु नृणां सम्भाव्यते कर्हिचित् ॥

'हे श्रीजी ! आपकी कृपासुधाके लेशमात्र-सिञ्चनसे इस समय समस्त जगत् अपने सम्पूर्ण विकसित ऐश्वर्यरूपके साथ परिपूर्ण है । आपकी कृपाके अभावमें पूर्वकालमें जगत् नष्टप्राय था ।' भगवान्‌की लीला श्रीजीके बिना रसमयी नहीं हो सकती । एकमात्र श्रीजीके सम्पर्कसे ही भगवल्लीला रसमयी बन सकी । श्रीजीकी महिमाको भगवान् भी असीम-अनन्तरूपसे ही जानते हैं ।'

स्वामी श्रीयामुनाचार्य फिर कहते हैं—

> यस्यास्ते महिमानमात्मन इव त्वद्वल्लभोऽपि प्रभु-
> र्नालं मातुमियत्तया निरवधिं नित्यानुकूलं स्वतः ।
> (चतुःश्लोकी २)

'अपनी महिमाकी तरह श्रीजीकी महिमाकी सीमाको सर्वज्ञ स्वयं श्रीहरि भी नहीं जानते हैं; क्योंकि महिमाकी अवधि नहीं है ।' श्रीवत्साङ्क मिश्रने इसकी व्याख्या और भी स्पष्टरूपसे की है । उनका कथन है कि 'श्रीजी अपनी महिमाकी अवधि स्वयं भी नहीं जानतीं तथा श्रीहरि भी नहीं जानते'—

> देवि त्वन्महिमावधिर्न हरिणा नापि त्वया ज्ञायते
> यद्यप्येवमथापि नैव युवयोः सर्वज्ञता हीयते ।
> यन्नास्त्येव तदज्ञतामनुगुणां सर्वज्ञताया विदु-
> र्व्योमाम्भोजमिदंतया खिलु वदन् भ्रान्तोऽयमित्युच्यते ॥
> (श्रीस्तव, ८)

'हे देवि! आपकी महनीय महिमाकी अवधि न तो सर्वज्ञ भगवान् जानते हैं न आप ही जानती हैं। यद्यपि यह सर्वथा सत्य है, तथापि आप दोनोंकी सर्वज्ञतामें कोई दोष नहीं आ सकता; क्योंकि जो वस्तु नहीं है, उसको न जाननेमें सर्वज्ञता सर्वथा सुरक्षित रहती है—ऐसी अज्ञता सर्वज्ञताके समान ही है। यदि कोई आकाश-कुसुमकी सीमाके ज्ञानकी बात करता है तो उसको लोग भ्रान्त ही कहेंगे।'

आपकी महिमाकी जब सीमा—अवधि नहीं है, तब उसको जाननेकी आवश्यकता ही नहीं है। आप अपनी महिमाको निरवधिक—असीमरूपमें जान सकती हैं, सर्वाधिक-रूपमें नहीं। भगवान् श्रीरामानुजाचार्यने अपने 'शरणागति-गद्य'में श्रीजीके विपुल वैभवका गम्भीर विवेचन इस प्रकार किया है—

'भगवन्नारायणाभिमतानुरूपस्वरूपरूपगुणगणविभवैश्वर्यशीलाद्यनवधिकातिशयासंख्येयकल्याणगुणगणां पद्मवनालयां भगवतीं श्रियं देवीं नित्यानपायिनीं निरवद्यां देवदेवदिव्यमहिषीमखिलजगन्मातरमस्मन्मातरमशरण्यशरण्यामनन्यशरणः शरणमहं प्रपद्ये।'

'भगवान् श्रीनारायणके अभिमत एवं अनुरूप स्वरूप, रूप, गुणगण, वैभव, ऐश्वर्य और शील आदि असीम निरतिशय असंख्य कल्याण-गुणगणोंसे युक्त, कमलवन-निवासिनी, भगवान्‌से नित्यसंश्लिष्ट, निर्विकार देवदेव श्रीहरिकी दिव्य महिषी (पटरानी), समस्त जगत्‌की माता, हमारी माता, अशरण जीवोंकी रक्षा करनेवाली भगवती श्री-देवीकी मैं शरण ग्रहण करता हूँ; मेरा और कोई रक्षक नहीं है।'

श्रीजीकी संनिधिसे भगवान्‌में कृपाकी धारा अजस्र प्रवाहित रहती है। अतः भोग-मोक्ष, परमपद—तीनों वैभवोंको प्रदान करनेवाली श्रीजीकी कृपा जीवमात्रको अपेक्षित है। जिसपर श्रीजीकी कृपा होती है, वही सर्वगुण-सम्पन्न होता है; जिसपर उनकी कृपा नहीं होती, वह सर्वथा गुणहीन हो जाता है—

स श्लाघ्यः स गुणी धन्यः स कुलीनः स बुद्धिमान्।
स शूरः स च विक्रान्तो यस्त्वया देवि वीक्षितः॥
सद्यो वैगुण्यमायान्ति शीलाद्याः सकला गुणाः।
पराङ्मुखी जगद्धात्री यस्य त्वं विष्णुवल्लभे॥

(विष्णुपुराण १।९।१३१-१३२)

'हे देवि! जिसपर तुम्हारी कृपादृष्टि है, वही प्रशंसनीय है, वही गुणी है, वही धन्यभाग्य है, वही कुलीन और बुद्धिमान् है तथा वही शूरवीर और पराक्रमी है। हे विष्णुप्रिये! हे जगज्जननि! तुम जिससे विमुख हो, उसके तो शील आदि सभी गुण तुरंत अवगुणरूप हो जाते हैं।'

गोस्वामीजीने श्रीकिशोरीजीके आशीर्वादको अमोघ कहा है—

आसिष दीन्हि राम प्रिय जाना। होहु तात बल सील निधाना॥
अजर अमर गुननिधि सुत होहू। करहुँ बहुत रघुनायक छोहू॥
करहुँ कृपा प्रभु अस सुनि काना। निर्भर प्रेम मगन हनुमाना॥
बार बार नाएसि पद सीसा। बोला बचन जोरि कर कीसा॥
अब कृतकृत्य भयउँ मैं माता। आसिष तव अमोघ बिख्याता॥

(मानस ५।१६।१-३)

श्रीपति रूपमें भगवान्‌का वैभव तथा श्रीरामप्राण-वल्लभारूपमें श्रीजीका वैभव कहा गया है। दोनों एक दूसरेके पूरक हैं। 'अनन्या हि मया सीता भास्करस्य प्रभा यथा॥' (वा० रा० ६।११८।१९) श्रीराघवेन्द्रका वचन है, तो श्रीकिशोरीजी भी कहती हैं—

'अनन्या राघवेणाहं भास्करेण यथा प्रभा॥'

(वाल्मीकि-रा० ५।२१।१५)

इस प्रकार श्रीतत्त्व ही श्रीभगवत्तत्त्व है तथा भगवत्तत्त्व ही श्रीतत्त्व है। एक ही तत्त्व द्विधा स्थित है—

गिरा अरथ जल बीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न।
बंदउँ सीता राम पद जिन्हहि परम प्रिय खिन्न॥

(मानस १।१८)

—इस एक ही दोहेमें गोस्वामीजीने श्रीतत्त्वके साथ भगवत्तत्त्वका अपृथक्त्वरूप सम्बन्ध सूचित कर दिया है।

जब लगि तुझमें तू रहै, तब लगि वह रस नाहिं।
रज्जब आपा अरपि दे, तौ आवै हरि माहिं॥

—संत रज्जबजी

श्रीरामस्नेही-सम्प्रदायमें भगवान् विष्णु

(लेखक—श्रीरामस्नेही-सम्प्रदायाचार्य सिंहस्थलपीठाधीश्वर १००८ श्रीभगवद्दासजी महाराज, शास्त्री, आयु०)

निर्गुण-सगुण-धारामें होनेवाले संतोंने राम, कृष्ण, ईश्वर, ब्रह्म आदि अनेक नामोंसे भगवान्‌की आराधना की है। वह सब विष्णुकी ही उपासना है। जिस नामकी जिन संतने उपासना की है, वे संत अपने चराचर जगत्‌को इष्टदेवसे उत्पन्न मानते हैं—यहाँतक कि रामके उपासक विष्णु आदिको भी रामसे निर्मित मानते हैं। संतमतमें भी जिस रामका चिन्तन किया गया है, वह परात्पर ब्रह्म है, जिसके अंशभूत त्रिगुणात्मा त्रिदेव हैं। विष्णुसहस्रनाममें 'रामो विरामो विरजः' से विष्णुको ही राम कहा गया है। वहाँ राम और विष्णुमें द्वैत नहीं माना गया है। संतमतकी विचारधारा कुछ अलग बहती है। इसी हेतु गोस्वामीजीने रामचरितमानसमें संतमतकी अलग गणना की है—

'बेद पुरान संत मत एहू। सकल सुकृत फल राम सनेहू॥'

संतमतमें अध्यात्मचिन्तन और साधनाकी सबसे बड़ी इकाई है—अभेद या एकता। विष्णु, ब्रह्म और राम भिन्न दीखनेपर भी भिन्न नहीं हैं।

रामस्नेही-सम्प्रदायने विष्णुको ही राम माना है और विष्णुके नामोंको रामके लिये निर्भयतापूर्वक उपयोगमें लिया है।

हरि—

हरिजन हरिके बीच में, दुविधा धरौ न कोय।
हरिया दिल दुविधा धरै, तो हरि-मिलन ना होय॥

सारंगपाणी—

'जिन गजराज तारि कियो छिनमें सुमिरि सारंगपाणी।'
(हरिराम० वाणी)

विष्णु—

दुष्टी असन्नू वेद छिन्नू बहु रुदन्नू अज्ज ये।
हा हा विषन्नू हुय प्रसन्नू धारि तन्नू कज्ज ये॥
मच्छा हयग्रीवूं भक्ति सीवूं निगम कीवूं ठाम ये।
ऐसा गोबिंदू कृपासिंधू दीनबंधू राम ये॥
(दयालु० करुणासागर)

'राक्षसने वेद चुरा लिये, तब दुःखी होकर ब्रह्माने विष्णुकी प्रार्थना की, जिससे प्रसन्न होकर विष्णुने भगवान् मत्स्यावतार और हयग्रीव-अवतारद्वारा राक्षसोंका नाश करके भक्तिको बढ़ाते हुए, वेद वापस लाकर ब्रह्माको दे दिये! ऐसे कृपाके समुद्र दीनबन्धु गोविन्द-नामको सार्थक करनेवाले विष्णुरूपधारी हे राम! आप ही हो।'

सारांश यह है कि भक्तिका विस्तार करनेके लिये भगवान् अपनी विभूति संतरूपमें भेजते हैं और उस विभूतिके द्वारा भक्तिका प्रचार होनेपर फिर अपनी प्रेषित विभूतिको अपने स्वरूपमें लीन कर लेते हैं। हमारे सम्प्रदायमें राम और विष्णुका भेद नहीं है। यही रामस्नेही-सम्प्रदायमें राम-विष्णुका अभेद-सम्बन्ध है।

विष्णुभक्त प्रह्लादकी निर्मल दृष्टि

जलमें हैं, थलमें हैं, व्याप्त नभमण्डलमें,
पर्वतके शृङ्गमें भी करुणानिधान हैं।
चिताकी कराल वह्नि-ज्वालमें भी व्यापक हैं,
खड्ग और खंभमें भी विष्णु-भगवान हैं॥
दैत्यराज! आपमें भी प्रभु हैं विराज रहे,
कोटि-कोटि सूर्यके समान भासमान हैं।
हरते तम-तोम, सबके उर-व्योममें हैं,
मेरे रोम-रोममें रमेश विद्यमान हैं॥

—गोपीनाथ उपाध्याय, 'साहित्यरत्न'

श्रीविष्णु-तत्त्व

(लेखक—आचार्य श्री १०८ श्रीधर्मदासजी महाराज, व्याख्यान-वाचस्पति, सद्धर्मभूषण)

हमारे आर्यग्रन्थोंमें भगवान् विष्णुके मुख्यतया तीन रूप माने गये हैं—(१) परविष्णु, (२) महाविष्णु और (३) विष्णु । इन तीनोंका वर्णन करते हुए नारद-पुराणमें कहा गया है—

> विष्णोस्तु त्रीणि रूपाणि पुरुषाख्यान्यतो विदुः।
> एकं तु महतः स्रष्टृ द्वितीयं त्वण्डसंस्थितम् ॥
> तृतीयं सर्वभूतस्थं तानि ज्ञात्वा विमुच्यते ।

अर्थात् विष्णुभगवान्के तीन रूप हैं। विद्वान्लोग उन्हें 'पुरुष' नामसे जानते हैं। भगवान्का पहला रूप महत्तत्त्वका स्रष्टा है, दूसरा ब्रह्माण्डमें (अन्तर्यामीरूपसे) विराजमान है और तीसरा समस्त चेतन प्राणियोंमें (अन्तर्यामीरूपसे) विराजमान है। भगवान् विष्णुके इन तीनों स्वरूपोंको जो अच्छी तरहसे जान लेता है, वह प्रकृति-बन्धन (आवागमन)-से छूट जाता है ।

(१) **प्रथमं महतः स्रष्टृ**—विष्णुभगवान्का पहला स्वरूप महत्तत्त्वके स्रष्टाके रूपमें है । मनु महाराजका वचन है—

> ततः स्वयम्भूर्भगवानव्यक्तो व्यञ्जयन्निदम् ।
> महाभूतादि वृत्तौजाः प्रादुरासीत्तमोनुदः ॥
> (मनुस्मृति १ । ६)

'इसके अनन्तर महाभूतोंसे प्रारम्भ करके इस सम्पूर्ण सृष्टिको प्रकाशमें लाते हुए अप्रतिहत-सामर्थ्य-सम्पन्न तथा तमका नाश करनेवाले स्वयम्भू एवं अव्यक्त भगवान् स्वयं प्रकट हो गये ।'

परमात्माकी महिमाका वर्णन करते हुए वेदान्तदर्शनने कहा है—'अक्षरमम्बरान्तधृतेः ।' (१ । ३ । १०) अर्थात् क्षरित न होनेवाला अविनाशी ब्रह्म आकाशपर्यन्त सम्पूर्ण विश्वको धारण करता है । आगे और भी कहा है—'सा च प्रशासनात् ।' (१ । ३ । ११) अर्थात् वह अक्षर पुरुष सभीपर शासन करता है ।

स्वयं गीतावक्ता पद्मनाभ भगवान् विश्वकी उत्पत्तिके प्रसङ्गमें कह रहे हैं—

> मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम् ।
> सम्भवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत ॥
> (गीता १४ । ३)

'भरतवंशी अर्जुन ! विश्वकी उत्पत्तिमें मूलकारण महद् ब्रह्म (अव्याकृत मूलप्रकृति) है । उसमें मैं बीज-रूपसे स्थित हूँ । इस प्रकार उस मूलप्रकृतिसे ही सम्पूर्ण प्राणी उत्पन्न होते हैं ।'

(२) **द्वितीयं त्वण्डसंस्थितम्**—विष्णुभगवान्का दूसरा स्वरूप समष्टि-ब्रह्माण्डमें स्थित है । अर्थात् 'तत् सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत् ।'—इस श्रुत्युक्तिके अनुसार विश्व-स्रष्टा भगवान् श्रीविष्णुने विश्वके पालनके लिये अन्तर्यामी-रूपसे उसमें प्रवेश किया ।

(३) **तृतीयं सर्वभूतस्थम्**—विष्णुभगवान्का तीसरा स्वरूप व्यष्टि-ब्रह्माण्डमें तथा समस्त प्राणियोंमें अन्तर्यामी-रूपसे विराजमान है । उपनिषद्के मन्त्र '**य आत्मनि तिष्ठन् आत्मनोऽन्तरो यमात्मा न वेद यस्यात्मा शरीरम्**'में यह प्रतिपादन स्पष्ट हुआ है । गीताजीका भी वचन है—'**ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति** ।' (१८ । ६१) ।

विष्णुभगवान्के उक्त तीनों स्वरूपोंको यथार्थरूपसे जाननेवाला पुरुष प्रकृति-बन्धन (आवागमन)से छूट जाता है ।

विवेकी जिज्ञासु भक्त उक्त प्रकारसे विष्णुभगवान्के तीनों स्वरूपोंका श्रवण कर फिर इस प्रकारसे मनन करता है—भगवान्का पहला रूप 'अक्षर' अर्थात् महाप्रलयमें भी नष्ट नहीं होता तथा दूसरे दोनों रूप—महाविष्णु एवं विष्णु त्रिगुणात्मक प्रकृतिके साथ व्यापक रूपसे सम्बद्ध हैं । जिसकी उत्पत्ति होती है, उसका प्रलय भी सुनिश्चित है । शास्त्र भी आत्यन्तिक प्रलयमें ब्रह्माण्डसहित महाविष्णुका अपनेसे पर अक्षर-पुरुष परमात्मामें लय हो जाना स्पष्टरूपसे लिखते हैं । यथा—

> नारायणश्च शम्भुश्च संहृत्य स्वगणान् बहून् ।
> शुद्धसत्त्वस्वरूपे च कृष्णे लीनश्च निर्गुणे ॥

महाविष्णौ विलीनाश्च ते सर्वे क्षुद्रविष्णवः।
महाविष्णुः प्रकृत्यां च सा चैव परमात्मनि॥
(ब्रह्मवैवर्तपु०, प्रकृति० ५४। ९३, ९५)

'नारायण एवं शम्भु (अहंकार-तत्त्व) अपनेसे उत्पन्न पञ्च तन्मात्राएँ, पञ्च-महाभूत, दस इन्द्रियाँ एवं मन आदि प्रकृतिके तत्त्वोंको अपनेमें समेटकर शुद्ध सत्त्वस्वरूपी निर्गुण परमात्मामें लीन हो जाते हैं। इसमें प्रलयका क्रम इस प्रकारसे रहता है कि अनन्त ब्रह्माण्डोंमें व्यापक पराप्रकृतिरूप क्षुद्र-विराट्-व्यापक चैतन्य महाविष्णुमें विलीन हो जाते हैं, महाविष्णु प्रकृतिमें विलीन हो जाते हैं एवं प्रकृति अपनेसे पर अक्षर आत्मामें आश्रय पाती है।'

देवीभागवत स्कन्ध ९। ३। ४-५ में महाविष्णुको 'महाविराट्' नाम देकर प्राकृत बताया है। यथा—

स्थूलात् स्थूलतमः सोऽपि नाम्ना देवो महाविराट्।
परमाणुर्यथा सूक्ष्मात् परः स्थूलात् तथाप्यसौ॥
तेजसा षोडशांशोऽयं कृष्णस्य परमात्मनः।
आधारः सर्वविश्वानां महाविष्णुश्च प्राकृतः॥

''समष्टि-ब्रह्माण्डात्मक प्रकृति श्रीमहाविष्णुकी शरीर-स्थानीय है और वे उसके अन्तरात्मा हैं। प्रकृतिके अन्तर्यामी होनेके कारण वे 'प्राकृत' कहलाते हैं। श्रीमहाविष्णु तेजमें अर्थात् ऐश्वर्य, प्रभुत्व, यश, श्री, ज्ञान एवं वैराग्यमें परमात्मा श्रीकृष्णके सोलहवें भाग (कला) हैं। सम्पूर्ण ब्रह्माण्डोंके आधारभूत ये महाविष्णु प्रकृतिके अन्तरात्मा होनेके कारण 'प्राकृत' कहे गये हैं।''

इस सम्बन्धमें देवीभागवतमें आया है —

सर्वेषां परमात्मा च सच्चिदानन्दरूपधृक्।
ब्रह्मादयश्च तस्यांशास्तस्यांशश्च महाविराट्॥
तस्यांशश्च विराट् क्षुद्रः सैवेयं प्रकृतिः परा॥
× × × ×
ब्रह्मादितृणपर्यन्तं सर्वं प्राकृतिकं भवेत्।
यद्यत् प्राकृतिकं सृष्टं सर्वं नश्वरमेव च॥
(९। ८। ७९-८२)

अर्थात् सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मा ही सबका स्वामी है। महाविराट् और ब्रह्मादि देव सब उसीके अंशमात्र हैं। क्षुद्र विराट् (ब्रह्माण्ड)में व्यापक पराप्रकृति भी उसी परमात्मा (श्रीकृष्ण) का अंशमात्र है।.........इस ब्रह्माण्डमें ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त जो भी पदार्थ हैं, वे सब प्राकृत हैं एवं जो-जो पदार्थ प्राकृत (त्रिगुणात्मक) सृष्टिके होते हैं, वे सब नश्वर (प्रलयधर्मी) होते हैं।

उक्त प्रकारसे सार यह निकला कि 'परविष्णु' अथवा गोलोकनाथ श्रीकृष्ण ही एक त्रिगुणातीत तत्त्व हैं। प्रपञ्चान्तर्गत समष्टि-ब्रह्माण्डनाथ होनेसे वे 'महाविष्णु' कहलाते हैं और व्यष्टि-ब्रह्माण्डनाथ होनेसे वे ही 'विष्णु' कहलाते हैं। ये तीनों रूप अविनाशी हैं, अप्राकृत हैं, जैसा कि शास्त्रका वचन है—

सर्वे नित्याः शाश्वताश्च देहास्तस्य परात्मनः।
हानोपादानरहिता नैव प्रकृतिजाः क्वचित्॥

अब प्रश्न यह होता है कि 'एक अक्षर पुरुष ही अपनेसे विलोम (विपरीत) गुणोंवाला किस प्रकारसे हो सकता है?' इसका उत्तर देते हुए माहेश्वरतन्त्र (पटल ६) में कहा गया है—

'अक्षरः परमात्मा च जाग्रत् स्वप्नं प्रपश्यति।'

अर्थात् वह अक्षर परमात्मा अपनी त्रिपाद्विभूति (मूल गोलोकधाम, केवल एवं सत् स्वरूप) में सच्चिदानन्दमयी अखण्ड व्रजलीलाएँ एवं रासलीलाएँ करता है। इन लीलाओंमें वह अखण्ड एकरस जाग्रत् अवस्थामें रहकर अपने चतुर्थ अव्याकृत पादके षोडशांशसे अपनी एक चित्तवृत्तिमें निद्रा लेकर स्वप्नमें स्वयं नारायण (महाविष्णु) के रूपको धारण करता है एवं फिर अपने 'एकोऽहं बहु स्याम्' इस संकल्पसे अनन्त ब्रह्माण्डोंकी रचना करता है।

उपनिषद्, पुराण, तन्त्र एवं संहिताओंमें सर्वत्र ब्रह्मके दो रूप बताये गये हैं—(१) शब्दब्रह्म एवं (२) परब्रह्म। साथ ही यह भी कहा गया है कि 'जो शब्दब्रह्म (शास्त्रवाणी)में निष्णात (पारंगत) हो जाता है, वह इस ओंकारसे परे भी परब्रह्मको अच्छी तरहसे जान लेता है।'

भगवद्गीताके पंद्रहवें अध्यायमें भगवान्‌ने क्षर, अक्षर एवं उत्तम—इन तीनों पुरुषोंका वर्णन किया है—

ऊर्ध्वमूलमधःशाखम्—(गीता १५। १) इस संसाररूपी वृक्षका मूल (जड़) ऊपर और शाखाएँ नीचे हैं। अर्थात् यह प्रदेश अक्षरका स्वप्न होनेसे, आत्मा अपने वास्तविक स्वरूप-ज्ञानको भूलकर मायिक तन-मन-धनको सत्य समझने लगी है एवं मायिक प्रदेशके मायिक देवोंकी उपासनामें लगी है।

इस प्रकार भगवान्‌ने क्षर पुरुषका गुह्यतम शैलीसे वर्णन कर आगे इस वृक्षको असङ्ग (अनासक्ति) रूपी दृढ़ शस्त्रसे काटनेके लिये कहा है ।

पञ्चमात्रा-स्वरूप यह प्रणवाक्षर (ॐ) तो क्षर ही है; क्योंकि शास्त्रोंमें अक्षर स्वरूपको विन्दु, नाद एवं कलाओं (मात्राओं) से अतीत बताया है—

प्रणवाक्षरमात्रं हि तन्न जानीहि भो मुने ॥
अमात्रं शब्दरहितं स्वरव्यञ्जनवर्जितम् ।
बिन्दुनादकलातीतं ब्रह्माक्षरमुदाहृतम् ॥
(पुराण-संहिता २२ । ४५)

श्रीशिवजी श्रीद्वैपायन व्यासजीको अक्षर ब्रह्मके स्वरूपको समझाते हुए कहते हैं—"हे मुने ! जो तुम प्रणवाक्षर (ओंकार) को ही अक्षरब्रह्म माने हुए हो, यह तुम्हारे-जैसे ज्ञानावतारके अनुरूप नहीं । 'अक्षरब्रह्म' तो उसे कहते हैं, जो स्वर, व्यञ्जन, शब्द, मात्रा, विन्दु, नाद एवं कला आदिसे रहित हो ।"

पुरातनी सृष्टिके प्रारम्भमें श्रीकृष्णके वामाङ्गसे उत्पन्न होकर सबसे पहले श्रीकृष्ण-भक्त श्रीमहादेव बने । वे श्रीकृष्णके ज्ञानांशसे उत्पन्न होनेके कारण उत्पत्तिके साथ ही अपने पाँचों मुखोंसे परमात्मा श्रीकृष्णके नामका जप करते हुए प्रकट हुए—

प्रजपन् पञ्चवक्त्रेण ब्रह्मज्योतिः सनातनम् ।
सत्यस्वरूपं श्रीकृष्णं परमात्मानमीश्वरम् ॥
(देवीभाग० ९ । २ । ८६)

इसके अनन्तर पुरातनी सृष्टिके प्रारम्भमें श्रीकृष्ण परमात्मासे विधिपूर्वक मन्त्रदीक्षा लेनेवाले भक्त हुए—महाविष्णु । यथा—

इत्युक्त्वा तस्य कर्णे स महामन्त्रं षडक्षरम् ।
त्रिःकृत्वश्च प्रजजाप वेदाङ्गप्रवरं परम् ॥
प्रणवादि चतुर्थ्यन्तं कृष्ण इत्यक्षरद्वयम् ।
वह्निजायान्तमिष्टं च सर्वविघ्नहरं परम् ॥
(देवीभाग० ९ । ३ । २६-२७)

"श्रीमहाविष्णुको उक्त प्रकारसे बहुत वरदान देकर भगवान् श्रीकृष्णने उनके कानमें तीन बार षडक्षर महामन्त्रका उच्चारण किया । यह उत्तम मन्त्र वेदका प्रधान अङ्ग है । मन्त्रके आदिमें ॐका स्थान है । बीचमें चतुर्थी विभक्तिके साथ कृष्ण—ये दो अक्षर हैं । अन्तमें अग्निकी पत्नी स्वाहा सम्मिलित हो जाती हैं । इस प्रकार 'ॐ कृष्णाय स्वाहा' यह मन्त्रका स्वरूप है । इस मन्त्रका जप करनेसे सम्पूर्ण विघ्न टल जाते हैं ।"

उक्त लेखसे सार यह निकलता है कि पर विष्णु (अक्षर गोलोकी श्रीकृष्ण) की उपासना निवृत्तिमार्गरूपा या शुक्लगति-वाली है एवं क्षरकी उपासना प्रवृत्तिमार्गरूपा या कृष्णगति-वाली है ।

अतः अक्षर एवं क्षरकी उपासनाके फलको उपनिषद्-शैलीसे बताते हुए भगवान् श्रीगीतामें कहते हैं—

शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते ।
एकया यात्यनावृत्तिमन्ययाऽऽवर्तते पुनः ॥
(८ । २६)

इस सृष्टिके प्रारम्भिक कालसे ही दो प्रकारके उपास्य-स्वरूपोंके फलस्वरूप दो प्रकारकी गतियाँ मानी गयी हैं—(१) शुक्लगति एवं (२) कृष्णगति । इनमें शुक्लगति-को प्राप्त हुआ जीव फिर इस भवसागरमें नहीं आता एवं कृष्णगतिको प्राप्त हुआ जीव पुनः इस भवसागरमें लौट आता है ।'

अपनी माता देवहूतिजीको भक्तियोगका उपदेश देते हुए भगवान् कपिलने कहा था कि 'भक्तजन मेरी सेवासे रहित सालोक्य, सार्ष्टि, सामीप्य एवं सायुज्यनामक मुक्तियोंको दिये जानेपर भी ग्रहण नहीं करते ।'—

सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यसारूप्यैकत्वमप्युत ।
दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः ॥
(श्रीमद्भा० ३ । २९ । १३)

अतः यह सिद्ध हुआ कि विष्णुभगवान्‌के तीनों स्वरूपोंको जानकर शुक्लगतिको प्राप्त हुआ मनुष्य प्रकृति-बन्धन (आवागमन-चक्र) से छूट जाता है* ।

---

* विष्णु-तत्त्व एक है । अपने विलासमें वह अनेक भी हो जाता है । वही त्रिगुणात्मक प्रपञ्चमें प्रविष्ट है और वही त्रिगुणातीत भी है । त्रिगुणात्मिका प्रकृतिमें अनेक ब्रह्माण्ड हैं । विष्णु उन सभीमें अन्तर्यामीरूपसे ओत-प्रोत हैं; वे 'महतो महीयान्' जो हैं; एवं प्रकृतिके अणु-अणुमें और प्रत्येक चेतन जीवात्मामें भी विष्णु अन्तर्यामीरूपसे व्यापक हैं; क्योंकि वे 'अणोरणीयान्' भी हैं ।

वैदिक पुरुषसूक्तमें जो रहस्य 'पादोऽस्य विश्वा भूतानि' कहकर समझाया गया है, वही रहस्य देवीभागवतमें 'तस्यांशश्च

विष्णुसहस्रनाम

(लेखक—स्वामी श्रीचिन्मयानन्दजी महाराज)

अनन्त एक है । वह एक ही हो सकता है । असंख्य प्रकारके नाम और रूपके साथ यह नानात्वमय जगत् उसकी अभिव्यक्ति है । जिस प्रकार स्वर्ण-निर्मित सभी आकार-प्रकारकी वस्तुएँ स्वर्ण ही हैं, उसी प्रकार यह विभिन्नरूपमय जगत् उनकी आत्माभिव्यक्ति है । वस्तुतः कारणसे पृथक् कार्यका कोई अस्तित्व नहीं है ।

जो परिच्छिन्न है, वही इच्छा होनेसे इन्द्रियगम्य हो सकता है; उसीको मनुष्य मन और बुद्धिके द्वारा प्रत्यक्ष कर सकता है । आध्यात्मिक साधक साधनाके द्वारा अपने अनुभव-के वर्त्तमान उपकरणोंको लोकातीत अवस्थामें ले जाकर भगवद्भावकी उच्चस्थितिमें जागरूक होता है, जहाँसे वह अद्वयचेतनाकी अनुभूति करता है । विश्वके अन्तरालमें इस परमतत्त्वको यद्यपि महर्षियोंने अनुभव-गत किया था, तथापि अपने शिष्योंको स्पष्टतः इसका निर्वचन करने, समझाने या हृदयंगम करानेमें वे असमर्थ थे । असीम, अनन्त प्रभुको बतलानेके लिये परिच्छिन्न व्यक्त जगत्की जिन वस्तुओंके द्वारा उन्होंने निर्देश किये हैं, वे उनकी विभूतिमात्र हैं, जिनको धर्मग्रन्थोंमें भगवान्का पवित्र नाम माना गया है ।

सारांश यह कि विष्णुके ये 'सहस्रनाम' ज्ञातसे अज्ञातको निर्देश करनेवाले सहस्र सुस्पष्ट निर्देशक चिह्न हैं । इन नामोंका चिन्तन करते रहनेसे विष्णुभगवान्में हमारी आस्था दृढ़ होती है, ज्ञान परिपक्व होता है और भक्तिका विकास होता है । भक्त भक्तिके द्वारा अव्यक्त (प्रभु) की उपासना करता है और ज्ञानी विचार (चिन्तन) के द्वारा उसकी अनुभूति करता है । दोनोंकी साधनाके मार्गमें विभिन्नताके कारण साधन-विधिमें मौलिक विभिन्नता होती है । भक्त हृदयकी भावुकतासे अपने प्रियतमके मन्दिरमें जाता है और तत्त्वज्ञानी तर्क और हेतुके शस्त्रोंद्वारा सत्यके दुर्गपर आक्रमण करता है । वह मस्तिष्कके द्वारा सत्यका अनुसंधान करता है । चाहे जिस मार्गको पकड़ा जाय और जिस साधनका आश्रय लिया जाय, जबतक साधकको चरम लक्ष्यकी प्राप्ति नहीं होती, तबतक उसके लिये साधना-विधिका

महाविराट्' कहकर बताया गया है । महाविराट्में अन्य असंख्य स्वल्प ब्रह्माण्ड विद्यमान हैं, जिन्हें देवीभागवतमें 'क्षुद्र-विराट्' कहा गया है—'तस्यांशश्च विराट् क्षुद्रः ।' सभी क्षुद्र विराट् महाविराट्के अंश हैं । सभी ब्रह्माण्ड क्षरणशील त्रिगुणात्मक प्रपञ्चके अन्तर्गत हैं, अतः समय-समयपर उनके उदय और अस्त होते रहते हैं । विष्णुभगवान्का जो परमपद है, वह त्रिगुणातीत है । उसका अस्त और उदय नहीं होता । वह नित्य और शाश्वत है । परम-पदके परविष्णु ही जीव-जातके परमाराध्य हैं । पुराणोंमें जिन्हें 'विराट्-विष्णु' और 'महाविष्णु' कहा गया है, वे पञ्चरात्रकी भाषामें परविष्णुके ही विभिन्न व्यूह हैं । अवतार-विग्रहोंके समान व्यूह-विग्रह भी सच्चिदानन्दघन होते हैं । उन्हें प्राकृत जो कहा जाता है, वह प्रकृतिसे—उसके अन्तर्यामी और नियामकके रूपमें—सम्बद्ध होनेके कारण । श्रीकृष्णके लिये भागवतमें कहा गया है, 'बभूव प्राकृतः शिशुः' । उसका भाव है—प्राकृतवत् । यही संगति विराट्-विष्णु और महाविष्णुके (व्यूह) रूपोंमें लगानी चाहिये ।

पुराण-साहित्यमें जहाँ भगवान्के एक रूपकी अपेक्षा उनके दूसरे रूपकी प्रशंसा की गयी है, वहाँ उपासकके भक्तिभावका पोषण ही मुख्य उद्देश्य है । तत्त्वदृष्टिसे विष्णु और कृष्णमें अभेद है । श्रीकृष्णने ही (ब्रह्मवैवर्तपुराणके अनुसार) दो रूप धारण किये हैं—एक द्विभुज और दूसरा चतुर्भुज । चतुर्भुजरूपसे वे वैकुण्ठमें निवास करते हैं, और द्विभुजरूपसे गोलोकमें—

श्रीकृष्णश्च द्विधाभूतो द्विभुजश्च चतुर्भुजः ॥ चतुर्भुजश्च वैकुण्ठे गोलोके द्विभुजः स्वयम् ।

(ब्र० वै०, प्रथम खण्ड ५४ । १४-१५)

वैकुण्ठ और गोलोक दोनों ही नित्य हैं, शाश्वत हैं और अकृत्रिम हैं—

'नित्यौ गोलोकवैकुण्ठौ प्रोक्तौ शश्वदकृत्रिमौ ।' (देवीभाग० ९ । ३ । १६)

श्रीलक्ष्मीनारायण एवं श्रीराधाकृष्णमें अभेद है, जैसा कि शास्त्रका वचन है—

सा तु (राधा) साक्षान्महालक्ष्मीः कृष्णो नारायणः प्रभुः । नैतयोर्विद्यते भेदः स्वल्पोऽपि मुनिसत्तम ॥

— सम्पादक

सतत और पूरी लगनसे पालन करना आवश्यक होता है। विष्णुसहस्रनाम दोनोंमें सहायक होता है, सहस्र आश्रय प्रदान करता है। सहस्रनामके प्रत्येक पदसे भक्तको प्रेरणा मिलती है और उनमेंसे प्रत्येकके द्वारा बुद्धिको ज्ञानके शिखरपर आरूढ़ होनेकी प्रेरणा प्राप्त होती है।

उपास्यदेवके अनुसार भक्तको अपने विशिष्ट देवताके रूपका ध्यान करना पड़ता है, इस कारण हमलोगोंमें विभिन्न प्रकारके सहस्रनाम प्रचलित हैं—जैसे शिवसहस्रनाम, ललिता-सहस्रनाम, श्रीरामसहस्रनाम आदि। किंतु उन सब ग्रन्थोंमें निस्संदेह विष्णुसहस्रनाम अत्यधिक प्रचलित है।

परब्रह्म (Supreme) के विषयमें कहा जाता है कि "सृष्टिके आदिमें जिससे यह नाम-रूपात्मक सारा जगत् उत्पन्न हुआ, जिसके भीतर वह स्थित है तथा महाप्रलयके समय पुनः जिसके भीतर वह विलीन हो जाता है, वह 'परब्रह्म विष्णु' है।"

परब्रह्म अनिर्वचनीय है और सब गुणोंका आधार होनेके कारण किसी नामके द्वारा वह अभिहित नहीं हो सकता, किसी वाचकके द्वारा वाच्य नहीं हो सकता, अथवा किसी भी साहित्यिक रूपमें, अस्पष्टरूपसे भी, व्यक्त या अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता। वह 'ज्ञेय' और 'अज्ञेय' दोनोंसे परे है। वह स्वयं चेतनारूप वह प्रकाशक तत्त्व है, जो सारे प्रत्यक्षादि अनुभवोंको प्रकाशित करता है। तथापि वह नाना रूपोंमें अभिव्यक्त है और उन रूपोंके अनुसार उसके असंख्य नाम हैं। वाचकके द्वारा वाच्यकी परिभाषा स्पष्टरूपमें होती है और यहाँ हमको प्रकारान्तरसे निर्देश करनेवाली सहस्रों परिभाषाएँ प्राप्त हैं, जो सत्, अपरिच्छिन्नको असत् और परिच्छिन्नके परिवेशमें अभिव्यक्त करती हैं। भगवान्‌के ये सहस्रनाम ऋषियोंद्वारा विरचित और प्रदत्त हैं, आत्मदर्शी कवि व्यासजीके द्वारा श्रद्धा और भक्तिकी मालाके रूपमें विष्णुके आह्लादकारी स्तवनमें संगृहीत और ग्रथित हैं।

इनमें प्रत्येक नाम इस प्रकार ज्ञातके रूपोंमें अज्ञातके संकेतात्मक परिचायक हैं। यदि हम चिन्तनके द्वारा भगवान्‌की ओर अपने मनको समुन्नत करें तो आध्यात्मिक अनुभवके क्षेत्रमें इनमेंसे प्रत्येक नाम हमें स्वल्पकालमें बहुत ऊँची स्थितिमें पहुँचा सकता है।

इस प्रकार विष्णुसहस्रनामका उपयोग भगवान्‌की लीलामें सम्मिलित होनेके मधुर भावको ले आनेमें केवल भक्तोंके द्वारा ही नहीं हुआ है, बल्कि तत्त्वज्ञानकी साधनाके साधकोंके द्वारा भी अनुभूतिकी उच्चतम चेतनावस्थाके राज्यमें विचरण करनेके लिये स्वयंचालित वायुयान (glider) के रूपमें प्रयुक्त हुआ है।

श्रीविष्णुभक्तिकी महिमा

भक्तियोगेन दृश्येत भक्तैश्चैव सनातनः। इदं तत्त्वमिदं तत्त्वं मोहितो देवमायया॥
भक्तितत्त्वं यदा प्राप्तं तत्त्वं विष्णुमयं तदा। इन्द्राद्यैरमृतं प्राप्तं सुखार्थं शृणु सुन्दरि॥
तथापि दुःखितास्ते वै भक्त्या विष्णोर्यया विना। भक्तिमेवामृतं प्राप्य पुनर्दुःखं न चाप्नुयात्॥
वैकुण्ठाख्यं पदं प्राप्य मोदते विष्णुसंनिधौ। वारि त्यक्त्वा यथा हंसः पयः पिबति नित्यशः॥
एवं धर्मान् परित्यज्य विष्णोर्भक्तिं समाश्रयेत्। तोयं बद्ध्वा तु वस्त्रेण कृतं कार्यं कथं भवेत्॥
प्राप्य देहं विना भक्तिं क्रियते स वृथा श्रमः॥

(पद्मपुराण, उत्तर० १२८। १२५—३०)

महादेवजी कहते हैं—'पार्वती! भक्तियोगके प्रभावसे भक्त पुरुषोंको सनातन परमात्माका प्रत्यक्ष दर्शन होता है। भगवान्‌की मायासे मोहित पुरुष 'यह तत्त्व है, यह तत्त्व है' यों कहता हुआ संशयमें ही पड़ा रहता है। जब भक्ति-तत्त्व प्राप्त होता है, तभी उसे विष्णुमय तत्त्वकी उपलब्धि होती है। सुन्दरि! मेरी बात सुनो, इन्द्र आदि देवताओंने सुखके लिये अमृत प्राप्त किया था, तथापि वे श्रीविष्णुभक्तिके बिना दुखी ही रह गये। भक्ति ही एक ऐसा अमृत है, जिसको पाकर फिर कभी दुःख नहीं होता। भक्त पुरुष वैकुण्ठधामको प्राप्त होकर भगवान् विष्णुके समीप सदा आनन्दका अनुभव करता है। जैसे हंस हमेशा पानीको छोड़कर दूध पीता है, उसी प्रकार अन्य धर्मोंका आश्रय छोड़कर केवल श्रीविष्णु भक्तिकी शरण लेनी चाहिये। जलको वस्त्रसे बाँधनेपर उसकी रक्षा कैसे हो सकती है। इसी प्रकार शरीरको पाकर बिना भक्तिके जो कुछ भी किया जाता है, वह सब व्यर्थ—परिश्रममात्र होता है।

श्रीविष्णुदर्शन

(लेखक—आचार्य प्रभुपाद श्रीप्राणकिशोर गोस्वामी)

वैष्णवकी कृपाके बिना श्रीविष्णुका दर्शन नहीं होता। परम भागवत 'कल्याण'-सम्पादकके साग्रह निदेशके अनुसार विष्णुके दर्शनमें प्रवृत्त हो रहा हूँ। पुरी, बदरीनाथ, रामेश्वरम् और द्वारकाधाम-नामक विष्णुतीर्थ भारतके चार प्रान्तोंमें चार धामके रूपमें विख्यात हैं। समुद्रप्रान्तमें समुद्रमध्यस्थ द्वारकाधामका दर्शन करनेपर विष्णुकी महिमा नये भावसे चित्तको आन्दोलित करती है। समुद्रकी अपार, अगाध महिमासे भी अद्भुत महिमा श्रीविष्णुकी है; इसी कारण समुद्र-कन्या श्रीलक्ष्मीजी उनको वरण करके जयमाला पहनाकर चिरंतनी पतिव्रता-शिरोमणि बनी हैं। विष्णुकी शय्याका आधार और कौन होगा! इसी कारण अनन्तदेव उनकी शय्या बनकर अनन्त सेवा कर रहे हैं। अनन्त तरंगमय निःसीम कालजयी सागरके सिवा श्रीविष्णुका वासस्थान और कहाँ है! अनन्तकी अनन्त महिमा है। अनन्त विष्णु हैं, उनके परमपदका दर्शन ही वैष्णवके लिये चरम आनन्द है। वेद उनको 'सहस्रशीर्षा' कहकर उसी अनन्त विस्तारकी सूचना देते हैं। व्याप्य-व्यापक, बृहत्तम, नित्य-निरन्तर विस्तारशील, विभु होकर भी विष्णुकी वृद्धि होती है। वह वृद्धि भक्तके प्राणकी उत्कण्ठा और ललक होती है। विष्णुके नाना रूपमें अभिव्यक्त होनेका मुख्यतम प्रयोजन है—उनका भक्तोंके लिये सुख-सम्पादन करना। भक्तोंके मनोरथकी पूर्ति ही वैष्णवी लीला है। लीलाके सिवा परम तत्त्वका परिचय नहीं होता। वह लीला वैष्णवी शक्तिकी लीला है। सर्वमङ्गला शक्ति, नारायणी, वैष्णवी, अनन्तवीर्या शक्तिकी लीला ही विश्वकी सृष्टि, स्थिति और संहार है। विष्णु ही विश्वरूप हैं। विश्वका प्राण, जगत्का आश्रय विष्णुके सिवा और कोई नहीं है। विष्णु व्यक्त और अव्यक्त—सबमें अनुप्रविष्ट हैं। अनुप्रविष्ट होकर भी वे मायाद्वारा अदृष्ट हैं। मायातीत और मायावी होकर भी विष्णु मायामय हैं। माया ही दया है। उनकी करुणा अनन्त है। अनन्त ऐश्वर्य, असीम-वीर्य होकर भी करुणाकी निरभिमानतामें वे सबके बन्धु हैं, प्रेमके सेवक हैं। प्रेमिकको वे सिरपर लेकर नृत्य करते हैं। वे भक्तके द्वारपाल हैं, रथ-संचालक, बोझा उठानेवाले तथा भृत्यके समान पीछे-पीछे चलनेवाले हैं। ईश्वरभावका गौरव उनको प्रेम-पूजाके द्वारा अधिक शोभा-मण्डित करता है। भयंकर काल-चक्र शान्त श्यामल कमलनयन विष्णुके हाथमें सुदर्शन बन गया है। कालकी सहायिका दुरत्यया त्रिगुणमयी माया फूलकी माला बनकर विष्णुके गलेमें वैजयन्ती बन गयी है। विश्वका रहस्य, अनन्त प्राणोंके आराध्य विष्णुभगवान् हैं। वैष्णव उनका उपासक है।

परम उपनिषद् कहता है—

वर्जितः सर्वदोषैर्यो गुणसर्वस्वमूर्त्तिमान्।
स्वतन्त्रो यद्वशाः सर्वे स विष्णुः परमो मतः॥

(मध्वाचार्यकृत विष्णुतत्त्वविनिर्णय)

'जो सारे दोषोंसे वर्जित हैं, जिनका श्रीविग्रह गुणोंका सर्वस्व है, जो सर्वथा स्वाधीन हैं और सभी उनके अधीन हैं, वे भगवान् विष्णु ही सर्वोपरि मान्य हैं।'

यमराजका अपने अनुचरोंको आदेश

स्वपुरुषमभिवीक्ष्य पाशहस्तं वदति यमः किल तस्य कर्णमूले।
परिहर मधुसूदनप्रपन्नान् प्रभुरहमन्यनृणामवैष्णवानाम्॥
हरिममरवरार्चिताङ्घ्रिपद्मं प्रणमति यः परमार्थतो हि मर्त्यः।
तमपगतसमस्तपापबन्धं व्रज परिहृत्य यथाग्निमाज्यसिक्तम्॥

(श्रीविष्णुपुराण ३ । ७ । १४, १८)

'अपने अनुचरोंको हाथमें पाश लिये देखकर यमराजने उनके कानमें कहा—"भगवान् मधुसूदनके शरणागत व्यक्तियोंको छोड़ देना; क्योंकि मैं वैष्णवोंसे अतिरिक्त और सब मनुष्योंका ही स्वामी हूँ। जो भगवान्‌के सुरवर-वन्दित चरण-कमलोंकी परमार्थ-बुद्धिसे वन्दना करता है, घृताहुतिसे प्रज्वलित अग्निके समान समस्त पाप-बन्धसे मुक्त हुए उस पुरुषको तुम दूरसे ही छोड़कर निकल जाना।'

श्रीविष्णु—परतत्त्वरूपमें

(लेखक—शास्त्रार्थ-महारथी पं० श्रीमाधवाचार्यजी शास्त्री)

श्रीमन्नारायणभगवान् क्या हैं—यह जिज्ञासा न केवल सीधे-सादे भगवद्भक्तोंके हृदयोंको ही उद्वेलित करती रहती है, अपितु अनेक संस्कृत वाङ्मयके अध्येता विद्वान् भी इस विषयमें 'मुह्यन्ति यत्सूरयः' के निदर्शन-भूत देखे जाते हैं। अहिंदु-मतानुयायी ही नहीं, कुछ कथित एकेश्वरवादाभिमानी हिंदु-सम्प्रदायी भी वेदादि शास्त्रोंमें ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्र, वरुण और कुबेर आदि विभिन्न शब्द देखकर तथा च पुराणादि ग्रन्थोंमें उनकी पूजा-प्रतिष्ठा आदिके नानाविध वर्णन देखकर सनातन-धर्मपर बहुदेवतावादी होनेका आक्षेप किया करते हैं; परंतु यह उनका भ्रम ही है; क्योंकि संसारमें यदि कोई वस्तुतः एकेश्वरवादी है तो वह एकमात्र सनातन-धर्म ही। अन्य मतावलम्बी तो इसके सर्वथा विपरीत ईश्वरके साथ अपने किसी मतप्रवर्तक मनुष्यका साहचर्य भी अनिवार्य स्वीकार करते हैं।

परंतु सनातन-धर्ममें धर्माचार्यों, ऋषियों और मुनियोंकी कौन कहे, भगवान्के पूर्णावतार राम-कृष्णादिके भी किसी एक ही रूपमें विश्वास बाँधना अनिवार्य नहीं, किंतु साधक स्वेच्छासे 'यथाभिमतध्यानाद्वा।' (योगदर्शन १। ३९) के अनुसार अपना ध्येय चुन सकनेमें स्वतन्त्र है।

सर्वशास्त्रोंके समन्वित सिद्धान्तानुसार परमार्थतः उस परात्पर सत्ताका न कोई नाम है और न कोई रूप है। वेदादि शास्त्रोंमें जो अनन्त नाम और अनन्त रूप मिलते हैं, वे सब नाम भगवद्भक्तोंद्वारा ही निरूपित हुए हैं। तथा च वे सब गौण (तत्तद्गुणोंसे सम्बन्धित) ही नाम हैं। नामानुरूप ही फिर कल्पित तत्तद् रूप हैं। श्रीवेदव्यास महाराजने महाभारतोक्त प्रसिद्ध 'श्रीविष्णुसहस्रनाम' की प्रस्तावनामें स्वयं यह रहस्य घोषित किया है। यथा—

यानि नामानि गौणानि विख्यातानि महात्मनः।
ऋषिभिः परिगीतानि तानि वक्ष्यामि भूतये ॥१३॥

अर्थात्—ऋषियोंद्वारा परितःगान किये गये जो महात्मा कृष्णके गौण (गुणसम्बन्धी) नाम हैं, उक्त 'विष्णु-सहस्रनाम' स्तोत्रमें मैं उन्हीं नामोंका कथन करूँगा।

सारांश, ऋषियोंने समाधि-अवस्थामें अपनी 'ऋतम्भरा प्रज्ञा' द्वारा प्रभुको वशी, वदान्य, गुणवान्, ऋजु, शुचि, मृदु, दयालु, मधुर, स्थिर, सम, कृती और कृतज्ञ आदि जिन अप्राकृतिक दिव्य गुण-गणोंसे विभूषित देखा, शास्त्रोंमें उन-उन गुणोंवाले नामोंका ही अनुसंधान किया।

साधारण आस्तिकोंकी दृष्टिमें ब्रह्म, ईश्वर, परमात्मा, भगवान्—ये सब एक ही तत्त्वके पर्यायवाची शब्द हैं। श्रीमद्भागवतमें कहा गया है—

'ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते।'
(१। २। ११)

अर्थात्—वह एक ही तत्त्व तत्तत्कारणोंके तारतम्यसे ब्रह्म, परमात्मा, भगवान् आदि नामोंसे व्यपदिष्ट होता है।

परंतु दार्शनिक संदर्भमें 'ब्रह्म' आदि शब्द विशिष्ट पारिभाषिक रूपमें ग्राह्य होते हैं। यह तत्त्व एक लौकिक दृष्टान्तके परिप्रेक्ष्यमें इस प्रकार समझा जा सकता है।

एक दीपकको 'ज्योतिः' कहा जाता है। इस ज्योति-स्वरूपको ब्रह्म-पद-वाच्य समझ लिया जाय। उस ज्योतिःको यदि काचमय गोलेसे आवृत कर दिया जाय तो व्यवहारमें काचकी उपाधिके कारण उसका नाम लैम्प या लालटेन प्रसिद्ध हो जायगा।

कदाचित् यह आवरण-भूत काच भी तीन रंगवाला हो, अर्थात् उसका तृतीयांश लाल रंगका हो, तृतीयांश नीले रंगका हो और अपर तृतीयांश श्वेत रंगका हो, तो निर्विशेष एक ही ज्योतिःका वह प्रकाश तीन धाराओंमें विभक्त हुआ रक्त, नील और श्वेत प्रतिभासित होगा। इस निदर्शनमें परमार्थतः रङ्गोपाधिविवर्जित ज्योतिःका प्रकाश काचनिष्ठ रङ्गोपाधिके कारण त्रिविध हुआ प्रतीत होगा। बस, ठीक इसी प्रकार सर्वोपाधिविवर्जित ज्योतिःस्वरूप परमात्मा 'ब्रह्म'-शब्द-वाच्य है और काचरूप प्रकृतिके संयोगसे वही 'ईश्वर'-शब्दवाच्य हो जायगा। प्रकृतिके सत्त्व, रज और तम नामक गुणत्रयरूप काचके तीन रंगोंके कारण वही ईश्वर सर्जन, रक्षण और संहरण नामक क्रियाओंके तारतम्यसे क्रमशः 'ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र' शब्दका वाच्य कहा जायगा।

यह समस्त रहस्य श्रीवेदव्यास महाराजने श्रीमद्भागवतके एक पद्य-रत्नमें प्रतिपादित किया है। यथा—

सत्त्वं रजस्तम इति प्रकृतेर्गुणास्तै-
युक्तः परः पुरुष एक इहास्य धत्ते।
स्थित्यादये हरिविरिञ्चिहरेति संज्ञा
श्रेयांसि तत्र खलु सत्त्वतनोर्नृणां स्युः॥
(१ । २ । २३)

अर्थात् सत्त्व, रज और तम—ये तीन प्रकृतिके गुण हैं। उक्त गुणत्रयसे युक्त एक ही परमपुरुष परमात्मा सृष्टिके सर्जन, स्थिति और संहारके कारण विष्णु, ब्रह्मा और रुद्र-संज्ञा धारण करते हैं। इन तीनों स्वरूपोंमें सत्त्वगुणप्रधान जो विष्णुतत्त्व है, उसके आश्रयणसे ही निश्चित रूपमें मनुष्योंका कल्याण हो सकता है।

यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि वेदादि शास्त्रोंमें भगवान्‌के जितने नाम आते हैं, क्या वे सभी नाम 'गौण' ही हैं या भगवान्‌का कोई निज नाम भी है?

श्री-सम्प्रदायाचार्योंने इस विषयमें विशेषानुसंधानपूर्वक सप्रमाण यह सिद्ध किया है कि भगवान्‌का निज नाम 'नारायण' है। उनका कथन है कि 'नरः=नेता' के अनुसार 'नॄ नये' धातुसे निष्पन्न 'नर' शब्द नेता, स्वामी किंवा प्रभुका वाचक है। तथा 'नराज्जाताः नाराः'—उस नर-शब्द-वाच्य भगवान्‌से समुद्भूत पञ्चीकृत पञ्च-महाभूतोंका कलल ही 'नार'-शब्दवाच्य है। तथा च 'नारेषु अयनम्=स्थानम् यस्य स नारायणः'—इस निर्वचनके अनुसार उस पञ्च-भूतात्मक कललमें जो व्यापक हो, उस परात्पर पुरुषको 'नारायण' कहते हैं।

'नारायण' शब्द 'नर' और 'अयन' दो शब्दोंके योगसे बना है। यहाँ 'रषाभ्यां नो णः समानपदे'(८।४।१) इस पाणिनीय सूत्रसे 'णत्व' प्राप्त नहीं हो सकता; क्योंकि यह सूत्र समान पदमें ही णत्वका विधान करता है। यहाँ 'नार' और 'अयन' दो विभिन्न पद हैं, समान पद नहीं हैं। एतदर्थ 'पूर्वपदात् संज्ञायामगः' (८।४।३) इस दूसरे सूत्रद्वारा यहाँ पूर्वपदस्थ रेफसे परस्थ नकारको णकार होता है। किंतु वह भी तभी हो सकता है, जब 'नारायण' यह शब्द 'गौण' न होकर 'संज्ञा-वाचक' हो। इससे सिद्ध होता है कि 'नारायण' शब्द संज्ञा-वाचक है, गौण नहीं।

शास्त्र-प्रमाणानुसार परतत्त्वका एकत्व अव्याहत है। इस विषयमें शैव और वैष्णवोंके बीच—विशेषतया दाक्षिणात्योंमें जो विवाद चलता है, वह अविचारविजृम्भित ही है। कुछ वर्ष पूर्व काञ्चीके सुप्रसिद्ध श्रीवैष्णवाचार्य, महान् विद्वान् प्रतिवादिभयंकर स्वामी अण्णंगराचार्य महाराजके साथ न्यून तीन वर्षतक हमारा लेख-बद्ध विचार चलता रहा, उसका संक्षिप्त सारोद्धार इस प्रकार है—

(क) जगतः कारणं परम्। (श्रीमद्भागवत ४। ७। ५०)
(ख) एको देवः सर्वभूतेषु गूढः। (श्वेताश्वतर० ६। ११)
(ग) एको नारायणः। (नारायणोपनिषद् २)
(घ) एकं सन्तं बहुधा कल्पयन्ति। (ऋग्वेद १०। ११४। ५)
(ङ) यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते···तद् ब्रह्म।
(तैत्तिरीय० ३। १)

(च) परविद्यास्वक्षरशिवशम्भुपरब्रह्मपरज्योतिःपरतत्त्वपरमात्मादिशब्दनिर्दिष्टमुपास्यं वस्त्विह तैरेव शब्दैरनूद्य तस्य नारायणत्वं विधीयते।
(ब्रह्मसूत्र-श्रीभाष्य, लिङ्गभूयस्त्वाधिकरण)

अर्थात्—(क) पराख्य परमात्मा ही इस जगत्‌का कारण है। (ख) वह एक ही देव समस्त भूतोंमें छिपा हुआ है। (ग) वह एक नारायण है। (घ) उस एक ही परमात्माका नानाविध रूपोंसे वर्णन होता है। (ङ) जिससे यह समस्त भूत-ग्राम समुत्पन्न होता है···वह ब्रह्म है। (च) परतत्त्व-प्रतिपादक उपनिषद्ग्रन्थोंमें जो अक्षर, शिव, शम्भु, परब्रह्म, परज्योति, परत्व और परमात्मा आदि शब्दोंद्वारा प्रतिपादित उपास्य वस्तु है, उसे यहाँ उन्हीं शब्दोंद्वारा अनूदित करके उसका नारायणत्व सिद्ध किया जाता है।

कहना न होगा कि शास्त्रोंमें जो नाना नामोंसे नानाविध और विशेषतया विष्णु, शिव, शक्ति, सूर्य और गणपति—इन पाँच नामोंसे पञ्चविध उपासना वर्णित है, उसका अन्तिम पर्यवसान एकमात्र श्रीमन्नारायणमें ही होता है। इसीलिये शास्त्रका उद्घोष है—

(क) आकाशात्पतितं तोयं यथा गच्छति सागरम्।
सर्वदेवनमस्कारः केशवं प्रतिगच्छति॥
(पाण्डवगीता ८५
(ख) तथैव सर्वार्हणमच्युतेज्या ।
(श्रीमद्भागवत ४। ३१। १४)

अर्थात्—(क) जैसे आकाशसे गिरा हुआ जल समुद्रमें पहुँचता है, इसी प्रकार किसी भी देवविशेषको किया गया प्रणाम श्रीमन्नारायणको ही प्राप्त होता है। (ख) श्रीमन्नारायणकी पूजासे समस्त देवताओंकी पूजा होती है।

इस प्रकार समस्त शास्त्रोंका मथित सार यही है कि श्रीमन्नारायण ही एकमात्र परतत्त्व हैं, जो तत्तत् सम्प्रदायोंमें तत्तत् नामोंसे उपास्य बतलाये गये हैं।

'सर्वं विष्णुमयं जगत्'

(लेखक—स्वामी श्रीसनातनदेवजी)

जो सर्वत्र व्याप्त हो, उसका नाम है—'विष्णु'। यदि सूक्ष्म दृष्टिसे विचार किया जाय तो व्याप्य-व्यापकका भेद रहते हुए व्यापककी सर्वत्र व्याप्ति सिद्ध नहीं हो सकती। दुग्धमें शर्कराकी व्याप्ति मानी जाती है; किंतु ऐसी स्थितिमें दुग्ध और शर्कराके परमाणुओंका संयोग तो रह सकता है, पर तादात्म्य नहीं हो सकता। इसलिये यह वास्तविक व्याप्ति नहीं है। वस्तुमें वास्तविक व्याप्ति तो उसके उपादान कारणकी ही होती है—जैसे घटमें मृत्तिकाकी, आभूषणोंमें सुवर्णकी अथवा तरंगोंमें जलकी।

औपनिषद सिद्धान्तके अनुसार इस विश्व-प्रपञ्चका उपादान परब्रह्म ही है। दृष्टिकोणके भेदसे यद्यपि कोई दार्शनिक इसे ब्रह्मका परिणाम, कोई आभास और कोई विवर्त्त मानते हैं, तथापि यदि मूल कारण एक और अद्वितीय ही है तो उसका कार्य जगत् उससे किसी भी प्रकार भिन्न नहीं हो सकता। जो लोग परमार्थतः 'पुरुष' और 'प्रकृति'—दो विभिन्न तत्त्व मानते हैं, अथवा ईश्वर, जीव और प्रकृति—ये तीन तत्त्व स्वीकार करते हैं, उनका यह दृष्टिकोण विचारकी कसौटीपर खरा नहीं उतर सकता। दो या दोसे अधिक तत्त्व स्वीकार करनेपर यह प्रश्न होगा कि वे रहते किसमें हैं और उनके भेदका साक्षी कौन है। तब तो जो उनका आधार या साक्षी होगा, उसीको मूल-तत्त्व मानना होगा। अतः यह सर्वथा निर्विवाद सिद्धान्त है कि प्रपञ्चका मूल-तत्त्व एक और अद्वितीय ही है।

उस परमतत्त्वको कोई निराकार और कोई साकार मानते हैं। निराकारवादियोंमें भी कोई उसे निर्गुण और कोई सगुण स्वीकार करते हैं। वस्तुतः वह तत्त्व तो एक ही है। उसके ये भेद तो उसे स्वीकार करनेवालोंकी दृष्टियोंके भेदके कारण ही हैं। जिस प्रकार एक ही वस्तु लाल चश्मा लगानेवालेको लाल और हरा चश्मा लगानेवालेको हरी दीखती है, उसी प्रकार दृष्टियोंके भेदके कारण ही उस एक अद्वितीय वस्तुके विषयमें वादियोंकी विभिन्न धारणाएँ हैं। जो लोग दृश्य-प्रपञ्चको केवल मिथ्या प्रतीतिमात्र मानते हैं, उनकी दृष्टिमें वह तत्त्व निर्गुण-निराकार है, जो इसे उसका परिणाम स्वीकार करते हैं, उनके लिये वह सगुण-निराकार है और जो इसे उसका लीलाविलास या सत्य संकल्प मानते हैं, उनके लिये वह सगुण-साकार है। इनमें प्रथम कोटिके महापुरुष तत्त्वनिष्ठ हैं, द्वितीय कोटिके समाधिनिष्ठ और तृतीय कोटिके भगवन्निष्ठ। इन्हींको क्रमशः ज्ञानी, ध्यानी और प्रेमी भी कहा जाता है।

किंतु ये तो तत्त्वदर्शियोंकी अपनी-अपनी दृष्टियाँ हैं, वस्तुतः तत्त्व तो इन तीनोंसे विलक्षण है। कोई भी व्यक्ति अपने विचार या भावके अनुसार ही तत्त्वका आकलन कर सकता है, किंतु स्वयं तत्त्व तो किसीके विचार या भावके अधीन है नहीं। अतः सभी साधक अपने बुद्धिबल, भाव या श्रद्धा-विश्वासके अनुसार तत्त्वको स्वीकार करते और उसका प्रतिपादन भी करते हैं। किंतु जब उनमेंसे कोई बड़भागी प्रभुकी अहैतुकी कृपासे अपनी बुद्धिकी असमर्थता और परिच्छिन्नतासे परिचित होनेपर सीमित 'अहम्'के मोहजालका भेदन कर देते हैं, तब उन्हें जान पड़ता है कि वास्तवमें वे सर्वाधार तो मतिकी गतिसे अतीत हैं। उनके विषयमें जो कुछ कहा जाता है, वह तो बुद्धि महारानीका विलास और वाणीकी विडम्बनामात्र है। वे सर्वरूप हैं; अतः तत्त्वदर्शी मनीषियोंने उनके विषयमें जो कुछ कहा है, वह साधनदृष्टिसे सर्वथा समीचीन होनेपर भी उनका स्पर्शतक नहीं कर पाता।

इसी विषयका अब दृष्टान्तपूर्वक दूसरे प्रकारसे विवेचन किया जाता है। हमारे सामने एक वस्त्रखण्ड है। वह सूत्रसे संघटित होनेके कारण इस समय भी सूत्रसे भिन्न कुछ नहीं है। सूत्र रूईसे भिन्न कुछ नहीं है तथा रूई पार्थिव परमाणुओंसे भिन्न कुछ नहीं है। इस प्रकार इस समय जो वस्त्रखण्डरूपमें भासता है, वह इसी समय सूत्र, रूई और परमाणुरूप भी है। इनमेंसे वस्त्ररूपमें वह स्थूल है, सूत्र और रूईके रूपमें सूक्ष्म है तथा परमाणुरूपमें अव्यक्त है। इसी प्रकार किसी भी वस्तुका यदि कार्य-कारणदृष्टिसे विचार किया जाय तो वह एक ही कालमें कार्यदृष्टिसे स्थूल (व्यक्त) और कारणदृष्टिसे सूक्ष्म-सूक्ष्मतर होते हुए अव्यक्त जान पड़ेगी। विचारदृष्टिसे तो स्थूलरूपमें भासनेवाला हिमखण्ड भी अपने कारणरूप जल या भापसे सर्वथा अभिन्न

ही है। इस प्रकार जो वस्तु एक ही समयमें दृष्टिभेदसे स्थूल, सूक्ष्म और अव्यक्त भी भासती है, वह स्वरूपसे कैसी होगी; यह स्वदृष्टि ही वस्तुकी अपनी दृष्टि होनेके कारण तत्त्वदृष्टि है। तत्त्वमें यद्यपि सब प्रकारके विशेषोंका भास होता है, तथापि वह स्वयं उनसे सर्वथा असंश्लिष्ट रहता है। अतः व्यवहार-दृष्टिसे यह सर्वरूप होनेपर भी स्वदृष्टि या तत्त्व-दृष्टिसे सबसे असंश्लिष्ट रहता है। अतः वह 'सर्वातीत' कहा जाता है।

यदि सूक्ष्मदृष्टिसे विचार किया जाय तो हमें शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—इन पाँच विषयोंके सिवा और किसी वस्तुका भास नहीं होता। इनके कारण जो सुख-दुःखकी प्रतीति होती है, वह तो अपनी मानी हुई अनुकूलता-प्रतिकूलताके कारण है। अतः वह स्वाभाविक नहीं है। यदि विचार करें तो इन शब्दादिमेंसे कोई भी प्रतीति पदार्थरूप नहीं है। इनमें पदार्थत्वकी तो केवल कल्पना ही है। दार्शनिक दृष्टिसे भी ये सब गुण ही तो हैं, इनमें द्रव्य तो कोई है नहीं। और गुण उसे कहते हैं, जिसकी अपनी कोई सत्ता नहीं होती; केवल किसी द्रव्यके आश्रित प्रतीति होती है। इस प्रकार सत्ता द्रव्यकी होती है और प्रतीति गुणकी। तथा जिसकी प्रतीति तो हो, किंतु सत्ता न हो, उसे ही 'मिथ्या' कहा जाता है। इस न्यायसे यह शब्दादि सम्पूर्ण प्रतीति मिथ्या सिद्ध होती है। इसीसे दार्शनिकोंका यह सिद्धान्त है कि जो कुछ दिखायी देता है, वह असत् है—'यद् दृष्टं तदसत्।' इन असत् शब्दादिके कारण ही सम्पूर्ण भेदका भास होता है। यदि इसका निषेध कर दिया जाय तो इसके अधिष्ठानरूपसे जो तत्त्व रहेगा, उसमें किसी भी प्रकारके भेद, परिच्छेद या विशेषकी सम्भावना नहीं हो सकती। इससे सिद्ध हुआ कि सबकी अधिष्ठानभूत सद्वस्तु सर्वथा अखण्ड, असीम और निर्विशेष है। वही सर्वातीत सर्वगत विष्णु है और वही व्यवहारभूमिमें सर्वरूपसे भास रही है। अतः यह सम्पूर्ण प्रपञ्च उन विश्वम्भर विष्णु-भगवान्‌का ही लीलाविलास है।

यदि सम्पूर्ण विचारकोंकी दृष्टियोंका वर्गीकरण किया जाय तो वे तीन प्रकारसे ही सत्य या परमार्थ-तत्त्वका अनुसंधान करते हैं। कोई उसे दृश्यरूपसे देखना चाहते हैं, अतः वे दृश्य-पदार्थोंका ही विश्लेषण करते हैं। उनमें इन्द्रिय-दृष्टिकी प्रधानता होती है और वे 'भोगवादी' या 'भौतिक'विज्ञानवादी कहे जा सकते हैं। दूसरे वे हैं, जो इसे द्रष्टारूपमें अनुभव करना चाहते हैं। अतः वे सम्पूर्ण दृश्य-पदार्थोंका निरास करते हुए शुद्ध साक्षीका ही अनुसंधान करते हैं। इनमें बुद्धिदृष्टिकी प्रधानता होती है और वे 'अध्यात्मवादी' कहे जाते हैं। तीसरे वे हैं, जो परमतत्त्वको इन दोनोंसे विलक्षण, सर्वसमर्थ, सर्वकर्ता और सर्वेश्वर-रूपमें स्वीकार करते हैं। इनमें भाव (हृदय)-दृष्टिकी प्रधानता होती है और वे 'ईश्वरवादी' कहे जाते हैं। इस प्रकार विश्वके सम्पूर्ण दार्शनिकोंमेंसे कोई तो जो कुछ **'इदं'** (यह) रूपसे भासता है, उसे सत्य मानते हैं, कोई **'अहं'** (मैं) रूपसे सत्यका अनुसंधान करते हैं और कोई 'परोक्ष' (वह) रूपसे उसमें विश्वास करते हैं। जीवकी ये तीन ही दृष्टियाँ हो सकती हैं। इनसे भिन्न किसी अन्य दृष्टिकी कल्पना नहीं की जा सकती। विश्वके सम्पूर्ण मतवाद इन्हींमेंसे किसी-न-किसी दृष्टिकी देन हैं। किंतु वस्तुतत्त्व इन तीनों दृष्टियोंसे विलक्षण है। वह तो इन तीनोंका आधार है, जहाँ ये तीनों दृष्टियाँ स्फुरित होती हैं। अतः उसे न 'यह' कहा जा सकता है, न 'मैं' और न 'वह' ही कहा जा सकता है। कोई दार्शनिक (वेदान्ती) उसे 'है' कहते हैं, किंतु कोई (बौद्ध) उसे 'नहीं' (शून्य) भी तो कहते हैं। परंतु वस्तुतः वह 'है' और 'नहीं' से भी विलक्षण है। कोई उसे 'जड' (प्रकृति) कहते हैं और कोई 'चेतन' (ब्रह्म) बतलाते हैं। परंतु यह जड और चेतनका भेद तो स्वप्नमें भी भासता है। अतः वह जड और चेतनसे भी विलक्षण है। कोई उसे 'एक' (अद्वैत) कहते हैं और कोई 'अनेक' (द्वैत) बतलाते हैं, परंतु वह एक और अनेकसे भी विलक्षण है। किन्हीं महापुरुषने कहा है—

> अद्वैतं केचिदिच्छन्ति द्वैतमिच्छन्ति चापरे।
> समं तत्त्वं न जानन्ति द्वैताद्वैतविवर्जितम्॥*

इस प्रकार स्वरूपसे वह तत्त्व सबसे विलक्षण या सर्वातीत है, किंतु वही तो सर्वरूपमें भास रहा है। उससे भिन्न किसी अन्यकी जब सत्ता ही नहीं है, तब कोई भी वस्तु, व्यक्ति, क्रिया, गुण, जाति, परिस्थिति या अवस्था उससे भिन्न कैसे हो सकती है। अतः सम्पूर्ण शब्द उसीका

* कोई इसे अद्वैत सिद्ध करना चाहते हैं और कोई द्वैत। किंतु जो द्वैत और अद्वैतसे शून्य समतत्त्व है, उसे वे नहीं जानते।

उल्लेख करते हैं, सम्पूर्ण स्पर्शोंमें उसीका संश्लेष रहता है, सम्पूर्ण रूप उसीकी मधुर झाँकी कराते हैं, सम्पूर्ण रसोंमें उसीका आस्वादन होता है और सम्पूर्ण गन्ध उसीका अनुसंधान कराते हैं । सम्पूर्ण कर्म-कर्ता, ज्ञान-ज्ञाता और भोग्य-भोक्ताओंके रूपमें वही तो विलस रहा है। अतः जो सबसे अतीत है, वही सब कुछ है तथा वह सर्वातीत सब कुछ ही अपनी-अपनी भावनाके अनुसार विष्णु, रुद्र, शक्ति, सूर्य, गणेश, गॉड या अल्लाह आदि अनन्त रूपोंमें भक्तोंके हृत्प्राङ्गणमें आविर्भूत होता है । उसके वे रूप और उनके नाम एवं लीलाएँ भी नित्य एवं चिन्मय ही हैं; क्योंकि नित्य और चिन्मयका जो कुछ होता है, वह भी नित्य और चिन्मय ही होता है । नित्य और अनित्य तथा चित् और अचित्का परस्पर कभी कोई सम्बन्ध नहीं होता।

यहाँ यह शङ्का होती है कि परमतत्त्व तो विभु और नित्य है, किंतु विष्णु-रुद्रादि विग्रह तो परिच्छिन्न और किसी विशेष देश-कालमें ही होनेवाले हैं, अतः उससे अभिन्न कैसे हो सकते हैं। इसका समाधान यह समझना चाहिये कि जैसे विभु देशमें किसी वस्तुकी अपेक्षासे पूर्व-पश्चिम आदि दिशाओंका भास होने लगता है और जैसे नित्य कालमें सूर्यकी गतिके कारण दिन-रात तथा मास-वर्ष आदिका भेद भासने लगता है, उसी प्रकार भक्तोंकी भावनाकी पुष्टिके लिये वह एक अद्वितीय परमतत्त्व ही विभिन्न रूपोंमें भास रहा है। यह भास भी उसीका है, अतः इसका उससे किसी प्रकार भेद नहीं है। अपनी बुद्धिके परितोषके लिये केवल इतना भेद कर सकते हैं कि वे स्वयं भगवान् हैं और ये भक्तोंके भगवान् हैं । परंतु इससे उनकी भगवत्तामें कोई अन्तर नहीं आता, प्रत्युत इससे भक्तिरसकी अधिकाधिक पुष्टि ही होती है। इसी बातको इस प्रकार समझना चाहिये कि जिस प्रकार श्रीगङ्गाजी गोमुखसे गङ्गासागरतक प्रवाहित होती हैं, किंतु यदि किसीको उनमें स्नान करनेका आनन्द लेना है तो उसे किसी एक घाटपर ही स्नान करना होगा और वह गङ्गा-स्नान ही कहलायेगा, घाट-स्नान नहीं, उसी प्रकार जिन्हें भगवान्के प्रेमरसका आस्वादन करना है, उन्हें उनके किसी विशिष्ट रूपका ही आश्रय लेना होगा। अतः भगवत्प्रेमकी परिपुष्टिके लिये ही भगवान्के इन विशिष्ट रूपोंका आविर्भाव-तिरोभाव होता है। इससे उनकी विभुता, नित्यता या सर्वरूपतामें कोई बाधा नहीं आती। अतः यह सर्वथा निर्विवाद सिद्धान्त है कि यद्यपि परमतत्त्व स्वरूपसे निर्विशेष है, तथापि उसकी उपलब्धि सविशेष रूपमें ही होती है। वृत्त्यारूढ हुए बिना निर्विशेष ब्रह्मका भी बोध नहीं होता और सविशेष वृत्तिकी व्यावर्तिका होनेके कारण निर्विशेषता भी एक विशेष ही है। इस प्रकार सविशेष और निर्विशेष— ये एक ही तत्त्वके दो पक्ष या पार्श्व हैं। तत्त्वके ये दो स्वरूप या दो दृष्टियाँ हैं। वह स्वतः तो इन दोनोंसे विलक्षण है। उसे कोई किसी प्रकार, किन्हीं शब्दोंमें व्यक्त नहीं कर सकता । अतः उस सर्वातीतके विषयमें ही मनीषियोंने कहा है—

खं वायुमग्निं सलिलं महीं च
ज्योतींषि सत्त्वानि दिशो द्रुमादीन्।
सरित्समुद्रांश्च हरेः शरीरं
यत्किंच भूतं प्रणमेदनन्यः ॥ *
(श्रीमद्भागवत ११ । २ । ४१)

जगदेव हरिर्हरिरेव जगत्
जगतो हरितो नहि भिन्नतनुः।
इति यस्य मतिः परमार्थगतिः
स नरो भवसागरमुत्तरति ॥ †

जले विष्णुः स्थले विष्णुर्विष्णुः पर्वतमस्तके।
ज्वालमालाकुले विष्णुः सर्वं विष्णुमयं जगत् ॥ ‡
(विष्णुपञ्जरस्तोत्र २३)

---

* आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, ग्रह-नक्षत्र, सम्पूर्ण प्राणी, दिशाएँ, वृक्ष आदि तथा नदियाँ और समुद्र, जो कुछ भी है, सब श्रीहरिका ही शरीर है; अतः सबको अनन्यभावसे प्रणाम करे।

† जगत् ही हरि है और हरि ही जगत् हैं, जगत्से हरिका और हरिसे जगत्का तनिक भी भेद नहीं है। ऐसी जिसकी परमार्थगामिनी मति होती है, वह पुरुष संसार-सागरको पार कर लेता है।

‡ जलमें विष्णु हैं, स्थलमें विष्णु हैं, पर्वतके शिखरपर भी विष्णु हैं तथा अग्निकी ज्वालामालाओंसे व्याप्त स्थानमें भी विष्णु हैं। इस प्रकार सारा जगत् ही विष्णुमय है।

वैदिक वाङ्मयमें विष्णुदेवताका स्वरूप और महत्त्व

(लेखक—विद्यामार्तण्ड डॉ० श्रीमङ्गलदेवजी शास्त्री)

संस्कृत-साहित्यमें ही नहीं, तदुत्तरकालीन समस्त धार्मिक हिंदू-साहित्यमें भी विष्णुदेवताका जो अत्यन्त व्यापक महत्त्व है, वह सर्वविदित है। भारतीय संस्कृतिकी पौराणिक धाराका ब्रह्मा-विष्णु-महेशकी देवत्रयी ही मुख्य आधार है। उस देवत्रयीमें भी विष्णुका जो परमोत्कृष्ट महत्त्व है, उसका गान सर्वत्र किया गया है। उदाहरणार्थ, श्रीविष्णु-सहस्रनामके आरम्भमें भीष्मपितामहके द्वारा कहे गये इन पद्योंको देखिये—

जगत्प्रभुं देवदेवमनन्तं पुरुषोत्तमम्।
स्तुवन्नामसहस्रेण पुरुषः सततोत्थितः॥
तमेव चार्चयन्नित्यं भक्त्या पुरुषमव्ययम्।
ध्यायन् स्तुवन्नमस्यंश्च यजमानस्तमेव च॥
अनादिनिधनं विष्णुं सर्वलोकमहेश्वरम्।
लोकाध्यक्षं स्तुवन्नित्यं सर्वदुःखातिगो भवेत्॥

(महाभारत, अनु० ४९। ४–६)

मनुस्मृति (१२। ९७) का वचन है—'**भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं वेदात् प्रसिद्ध्यति।**'

अर्थात् (भारतीय संस्कृतिके सम्बन्धमें) भूत, वर्तमान और भविष्य—सबका स्वरूप वेदसे स्पष्ट होता है। इसीलिये वेदको विद्वानोंके लिये 'सनातन चक्षु' (आँख) कहा गया है। अतः विष्णुके सम्बन्धमें वेदोंके साक्ष्यका कितना अधिक वैशिष्ट्य है, यह कहनेकी आवश्यकता नहीं।

सामान्यरूपसे आधुनिक वैदिक विचारधाराके लोगोंका यही मत है कि वैदिक संहिताओंमें विष्णुका महत्त्व बहुत अधिक नहीं था, वेदोत्तरकालमें ही किन्हीं विशिष्ट कारणोंसे विष्णुका महत्त्व विशेषरूपसे विकसित हुआ और क्रमशः देवत्रयीमें उन्हें मुख्य स्थान प्राप्त हो गया। पर लेखके अन्तमें हम दिखलायेंगे कि हमारा मत ऐसा नहीं है। हमारे विचारमें प्रारम्भसे ही विष्णुदेवको अपना विशिष्ट महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त था।

पहले हम आधुनिक वैदिक विचारधाराको ही दिखाते हैं—

वैदिक वाङ्मयके अनुशीलनके लिये आचार्य यास्कके 'निरुक्त'का अद्वितीय स्थान है। निरुक्तके सातवें अध्यायमें कहा गया है—

तिस्र एव देवता इति नैरुक्ताः। अग्निः पृथिवीस्थानः। वायुर्वेन्द्रो वान्तरिक्षस्थानः। सूर्यो द्युस्थानः। तासां महाभाग्यादेकैकस्या अपि बहूनि नामधेयानि भवन्ति। अपि वा कर्मपृथक्त्वात्। (नि० ७। २। ५)

अर्थात् नैरुक्तोंके अनुसार वास्तवमें तीन ही देवता हैं। उनमें अग्निका स्थान यही पृथिवी है, वायु (अथवा इन्द्र)-का स्थान अन्तरिक्ष है और सूर्यका स्थान द्युलोक है। इन्हीं मौलिक तीन देवताओंके महाभाग्यसे या कर्म-भेदके कारण भिन्न-भिन्न नाम हो जाते हैं। उपर्युक्त तीन देवताओंमेंसे द्युस्थानीय सूर्य-देवताके साथ ही 'विष्णु'की व्याख्या निरुक्तके १२वें अध्यायमें की गयी है। दूसरे शब्दोंमें, निरुक्तके अनुसार वेदमें विष्णु सूर्यका ही एक रूपान्तर है। आगे चलकर इसीकी पुष्टि इस विचारसे भी होती है कि विष्णुको द्वादश आदित्योंमेंसे एक माना जाने लगा था।

दूसरी बात विष्णु-देवताके सम्बन्धमें विशेष ध्यान देनेकी यह है कि ऋग्वेदमें जहाँ इन्द्र, अग्नि तथा सोम देवताओंकी स्तुति क्रमसे लगभग २५०, २०० और १०० से अधिक सूक्तोंमें की गयी है, वहाँ विष्णु-देवताकी स्तुति केवल ५ सम्पूर्ण सूक्त और कतिपय अन्य ऋचाओंमें की गयी है। अन्य वेदोंमें विष्णु-देवताकी स्तुतिके मन्त्र अधिकतर तो वे ही हैं, जो ऋग्वेदमें आये हैं, या अन्य देवताओंके साथ सामान्यरूपसे ही विष्णुकी स्तुति की गयी है।

इससे स्पष्ट है कि स्तुतिके मन्त्रोंकी संख्याकी दृष्टिसे वेदोंमें विष्णु-देवताका स्थान कोई महत्त्वपूर्ण नहीं है। इस दृष्टिसे वैदिक देवताओंमें विष्णु चतुर्थ कोटिके ही देवता दीख पड़ते हैं।

यद्यपि वेदोंमें विष्णुदेवता-सम्बन्धी स्तुति-सूक्तोंकी संख्या बहुत कम है, फिर भी जितने सूक्त हैं, उनके अनुसार विष्णुका स्थान महत्त्वपूर्ण है। इस दृष्टिसे हम दो-चार मन्त्रोंको ही नीचे उद्धृत करते हैं।

ऋग्वेदके कुछ मन्त्र यहाँ दिये जाते हैं—

विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्र वोचं यः पार्थिवानि विममे रजांसि।
यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः॥

(ऋक्० १। १५४। १)

अर्थात् मैं अब महान् यशस्वी विष्णुके पराक्रमोंका गान करूँगा, जिन्होंने पार्थिव प्रदेशोंको मानो अपने विचरणसे नाप लिया है और ऊपरके द्युलोकको सहारा दिया है और जो दूर-दूर पद-निक्षेप करनेवाले तीनों विष्णु-स्थानों (अर्थात् पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोक) में विक्रमण करते हैं।

'यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा॥'
(ऋग्वेद १ । १५४ । २)

अर्थात् जिनके विस्तृत पाद-विक्रमणोंमें समस्त भुवन समा जाते हैं।

यस्य त्री पूर्णा मधुना पदान्यक्षीयमाणा स्वधया मदन्ति।
य उ त्रिधा तु पृथिवीमुत द्यामेको दाधार भुवनानि विश्वा॥
(ऋग्वेद १ । १५४ । ४)

अर्थात् जिन विष्णुदेवके मधु (मधुर अमृतरस) से परिपूर्ण और कभी क्षीण न होनेवाले तीनों पद (स्थान) स्वच्छन्द आनन्दमें मग्न रहते हैं और जिन्होंने अकेले होते हुए भी तीनों स्थानोंमें—पृथिवी, द्युलोक और समस्त प्राणियों (अथवा भुवनों) को आधार दे रखा है।

तदस्य प्रियमभि पाथो अश्यां नरो यत्र देवयवो मदन्ति।
.................'विष्णोः पदे परमे मध्व उत्सः॥
(ऋक्० १ । १५४ । ५)

अर्थात् विष्णुदेवके उस प्रिय स्थानको मैं प्राप्त करना चाहता हूँ, जहाँ देवभक्त पुरुष आनन्दसे विहार करते हैं। ....'विष्णुके उस परमपद (परमोच्च दिव्य स्थान) में मधु (मधुर अमृतरस) का निर्झर है।

ता वां वास्तून्युश्मसि गमध्यै यत्र गावो भूरिशृङ्गा अयासः।
अत्राह तदुरुगायस्य वृष्णः परमं पदमव भाति भूरि॥
(ऋक्० १ । १५४ । ६)

अर्थात् तुम दोनों (इन्द्र और विष्णु)के उन निवासस्थानोंमें जानेकी हम कामना करते हैं, जहाँ बहुत सींगोंवाली तथा कभी न थकनेवाली गौएँ (अर्थात् अति विस्तृत तथा गतिशील किरणें) वर्तमान हैं। यहींपर विस्तृत गतिशील वृषभ (रूप विष्णु) का वह उत्कृष्ट पद (स्थान) विशेषतः प्रकाशमान हो रहा है।

ऋग्वेदसे उद्धृत किये गये इन मन्त्रोंका बहुत बड़ा महत्त्व है; क्योंकि विष्णु-देवताके सम्बन्धमें विशेष ध्यान देने-योग्य जो बातें हैं, उन सबका उल्लेख या संकेत इन मन्त्रोंमें आ गया है। वे बातें ये हैं—

(१) सूर्यके रूपमें विष्णुके द्वारा प्रतिदिन पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्युलोक—तीनोंकी परिक्रमा।

(२) अतः परिक्रमाके आधारपर विष्णु-देवताकी महान् पराक्रमशीलताका प्रतिपादन।

(३) उनके सदा प्रकाशमान परमपद या दिव्यलोकका प्रतिपादन, जहाँ आनन्द-रसका निर्झर है और जहाँ सदा गतिशील प्रकाशमान किरणरूपी गौएँ विद्यमान हैं।

विष्णु-देवताकी वेद-मन्त्रोंद्वारा प्रतिपादित इन विशेषताओंपर गम्भीर विचारकी आवश्यकता है। इस विचारसे यह स्पष्ट हो जायगा कि यद्यपि स्तुति-सूक्तोंकी संख्या-की दृष्टिसे वेदमें विष्णुका स्थान आपाततः महत्त्वपूर्ण नहीं दीखता, तो भी उनकी उक्त विशेषताओंके पीछे ऐसी गम्भीर भावना सदासे विद्यमान है, जिसकी दृष्टिसे हमें उन्हें वेदका भी अत्यन्त उत्कृष्ट देवता (अथवा प्रधान देवता) मानना पड़ता है।

इस कथनकी संक्षेपमें व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है। पुराणोंमें विष्णुका अत्यन्त उत्कृष्ट स्थान है, यह सब जानते हैं। उनकी पौराणिक विशेषताओंका स्पष्ट संकेत उनकी उपर्युक्त वैदिक विशेषताओंसे मिलता है।

पहली विशेषतासे उनके वामनावतारका और उस अवतारमें तीन पाद-विक्रमणोंद्वारा तीनों लोकोंके लाँघ जानेका संकेत मिलता है। इसीलिये विष्णुको 'त्रिविक्रम' कहा गया है।

दूसरी विशेषतासे उनकी पराक्रमशीलताके आधारपर असुरोंके विरोधमें इन्द्रकी सहायता करनेका और इन्द्रकी असुरों-पर विजयमें विष्णुका हाथ बँटानेका संकेत मिलता है। इसी आधारपर विष्णुको 'इन्द्रावरज' अथवा 'उपेन्द्र' कहा गया है।

तीसरी विशेषतासे विष्णुके उस सारे माहात्म्यका संकेत मिलता है, जिसका गान 'विष्णुसहस्रनाम'-जैसे ग्रन्थोंमें किया गया है। इसीलिये उन्हें 'देवोंका देव', 'अनादिनिधन', 'विश्वमूर्ति' आदि नामोंसे स्मरण किया जाता है।

यह सब होते हुए भी विष्णुदेवकी उत्कृष्ट महत्ताकी और पौराणिक देवत्रयीमें उनको जो प्रधान स्थान दिया गया है, उसकी स्पष्ट व्याख्या उनकी उपर्युक्त वैदिक विशेषताओंसे नहीं की जा सकती।

हमें तो ऐसा प्रतीत होता है कि सदासे विष्णुदेवकी जो महत्ता ऋषि-मुनियोंमें परम्परया मानी जाती रही है, उसका

स्पष्ट प्रतिपादन वेदोंमें नहीं किया गया है, केवल उसका संकेतमात्र किया गया है।

वेदमें उनके उत्कृष्ट दिव्यस्थानको 'परमपद' कहा गया है, जिसमें आनन्दरसका निर्झर है और जो सदा प्रकाशमान है। अनुसंधान करनेपर भी हमें वेदमें किसी अन्य देवताके दिव्य स्थानका इन शब्दोंमें वर्णन नहीं मिला है। स्पष्टतया उपास्य 'परमदेव'के रूपमें विष्णु तत्त्वज्ञानियोंमें सदासे प्रसिद्ध रहे हैं। आध्यात्मिक दृष्टिसे उनकी इस महत्ताका संकेत उपनिषदोंमें भी **'तद्विष्णोः परमं पदम्'** (कठोपनिषद् १। ३। ९)—ऐसे शब्दोंमें मिलता है। इस सम्बन्धमें ऋग्वेदके ही निम्न-निर्दिष्ट दो मन्त्रोंको भी देखिये—

> **तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः।**
> **दिवीव चक्षुराततम्॥**
> **तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते।**
> **विष्णोर्यत्परमं पदम्॥** (ऋग्वेद १। २२। २०-२१)

अर्थात् विष्णुदेवके उस दिव्य परमपदको, जो द्युलोकमें विश्वके चक्षुके रूपमें विस्तृत है, सूरि (तत्त्वज्ञानी) सदा देखते हैं।

विष्णुदेवके उस दिव्य परमपदको उनके जागरणशील मेधावी स्तोता ही सम्यक्तया प्रकाशित करते हैं। स्पष्टतया इस परमपदसे विष्णुदेवके रहस्यात्मक आध्यात्मिक स्वरूपकी ओर ही संकेत है।

वास्तवमें सदासे तत्त्वज्ञानियोंद्वारा माने गये विष्णुदेवको ही पुराणोंमें ब्रह्मा-विष्णु-महेशकी देवत्रयीमें स्थान दिया गया है। सदासे उनकी मान्यता ही इसका कारण है।

ब्राह्मण-ग्रन्थोंमें उनके स्वरूपका जो वर्णन है, उसे संक्षेपमें यहाँ दिखाना प्रासङ्गिक प्रतीत होता है। ऐतरेय ब्राह्मणके प्रारम्भमें ही कहा गया है—

> **अग्निर्वै देवानामवमो विष्णुः परमः।**
> **तदन्तरेण सर्वा अन्या देवताः॥**

अर्थात् वैदिक देवोंमें अग्निका प्रथम स्थान है और विष्णुका अन्तिम। और सब देवता उन दोनोंके बीचमें आ जाते हैं। यही बात दूसरे ब्राह्मणोंमें शब्दान्तरोंसे कही गयी है। काठकसंहिता (४। १६) में भी यही बात कही गयी है।

विष्णुदेवको अन्तिम या उत्तम स्थान दिये जानेका कारण उनकी उपर्युक्त परम्पराप्राप्त महत्ता ही थी।

इसीलिये आगे चलकर ब्राह्मण-ग्रन्थोंमें **'अग्निर्वै सर्वा देवताः। विष्णुर्यज्ञः।'** (गोपथब्राह्मण २। १। १२), **'विष्णुर्वै यज्ञः'** (ऐतरेय-ब्राह्मण १। १५) अथवा **'विष्णुर्वै देवानां द्वारपः'** (ऐ० ब्राह्मण १। ३)—इस प्रकार विष्णुको देवताओंका द्वारपाल अथवा यज्ञ-स्वरूप ही कहा गया है।

स्पष्टतया यहाँ वैदिक देवताओंसे विष्णुकी अपने वैशिष्ट्यके कारण एक प्रकारसे पृथक्ता ही बतलायी गयी है।

इन्द्रके साथ विष्णुका साहचर्य

वेदमें इन्द्र और विष्णुकी साथ-साथ स्तुति की गयी है। इसका कारण ऐतरेय ब्राह्मण (६। १५) के शब्दोंमें ही यह था कि **'इन्द्रश्च ह वै विष्णुश्चासुरैर्युयुधाते'** अर्थात् इन्द्र और विष्णुने साथ-साथमें असुरोंके साथ युद्ध किया था। इसी कारणसे विष्णुको पुराण आदिमें 'उपेन्द्र' अथवा 'इन्द्रावरज' (इन्द्रका छोटा भाई) कहा गया है।

ये दोनों विशेषण सुननेवालेको खटकते हैं। इन्द्र और विष्णुमें विष्णुका दर्जा इन्द्रसे छोटा क्यों मान लिया गया? पौराणिक मान्यताके अनुसार विष्णुके सामने इन्द्रका कोई विशेष महत्त्व नहीं है। ऐसी दशामें यही कहना होगा कि वेदमें विष्णुका स्थान प्रारम्भसे ही गौण रहा था। इसीलिये जहाँ भी वैदिक देवताओंके साथ विष्णुको जोड़ा गया है, वहाँ उनके वेदमें गौण होनेकी छाया किसी-न-किसी रूपमें अवश्य दिखायी देती है। इसी कारणसे उनको 'उपेन्द्र' या 'इन्द्रावरज' कहा गया है।

दूसरी ओर सदासे आनेवाली वैष्णव-सम्प्रदायकी परम्परामें वैदिक कर्मकाण्डादिके प्रति एक प्रकारकी हीन भावना यत्र-तत्र प्रायः दिखायी देती है।

इस सम्बन्धमें प्रमाणोंकी आवश्यकता नहीं है; क्योंकि—

> **यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्यविपश्चितः।**
> **वेदवादरताः पार्थ नान्यदस्तीतिवादिनः॥**
> (गीता २। ४२)

> **'एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना गतागतं कामकामा लभन्ते॥'**
> (गीता ९। २१)

—इत्यादि पद्योंद्वारा भगवद्गीतामें और श्रीमद्भागवतके ग्यारहवें स्कन्धमें—

> **'मुह्यन्त्याम्नायवादिनः॥'**
> **'यजन्त्यसृष्टान्नविधानदक्षिणं वृत्त्यै परं घ्नन्ति पशूनतद्विदः॥'**
> (भागवत ११। ५। ५, ८)

—इत्यादि पद्योंसे वह हीन भावना अतीव स्पष्ट है।

पर-तत्त्व श्रीविष्णुभगवान्

(लेखक—डॉ० श्रीकृष्णदत्तजी भारद्वाज, एम्० ए०, आचार्य, पी०-एच्० डी०)

परत्वका प्रतिपादन

साङ्गोपाङ्ग वैदिक साहित्यके अनुशीलनसे हम इस सिद्धान्तपर पहुँचे हैं कि पर-तत्त्व ही सार है; इसी हेतुसे हम उसकी व्याख्यामें प्रवृत्त हो रहे हैं।

'पर' शब्दके अनेक अर्थ हैं। अमरकोशका वचन है—

'दूरानात्मोत्तमाः पराः।'

अर्थात् 'पर' शब्दका प्रयोग दूर, पराया और परेके अर्थमें होता है। मेदिनीकोशका वचन है—

'पराः श्रेष्ठारिदूरान्योत्तरे क्लीबं तु केवले।'

अर्थात् 'पर' शब्द जब नपुंसकलिङ्गमें प्रयुक्त होता है, तब उसका अर्थ होता है—केवल; और पुँल्लिङ्गमें प्रयुक्त होनेपर उसका अर्थ होता है—श्रेष्ठ, शत्रु, दूर, अन्य और परे। इन अर्थोंके अतिरिक्त पुँल्लिङ्ग संज्ञाके रूपमें इस शब्दका प्रयोग आत्मा, ईश्वर और ब्रह्माकी आयुके अर्थमें भी होता है। महर्षि बादरायणने—

'परात्तु तच्छ्रुतेः।'　(२ । ३ । ४०)

—इस वेदान्तसूत्रमें ईश्वरके लिये 'पर' शब्दका प्रयोग किया है।

गीताके—

'असक्तो ह्याचरन् कर्म परमाप्नोति पूरुषः॥' (३ । १९)

(अनासक्त रहकर कर्म करता हुआ मनुष्य आत्मस्वरूपकी उपलब्धि कर लेता है।)

—इस वचनमें 'पर' शब्दका प्रयोग आत्माके लिये है। कूर्मपुराणके—

निजेन तस्य मानेन चायुर्वर्षशतं स्मृतम्।
तत् पराख्यं तदर्धं च परार्धमभिधीयते॥

—इस वचनके अनुसार ब्रह्माजीकी पूर्णायुका नाम 'पर' है। गीताके—

'क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप॥' (२ । ३)

—इस वचनमें रिपुके अर्थमें 'पर' शब्दका प्रयोग हुआ है। सर्वनामके रूपमें जब इस शब्दका प्रयोग होता है, तब इसका अर्थ होता है—अन्य, इतर। उदाहरणार्थ—

'आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्॥'
(पद्म०, सृष्टि०, १९ । ३५५-६)

अर्थात् मनुष्य उन बातोंको दूसरोंके प्रति न करे, जो अपनेको बुरी लगती हैं।

विशेषणके रूपमें प्रयुक्त 'पर' शब्दके अर्थ होते हैं— दूर, अधिक, अधिक-देशवृत्ति, मुख्य (प्रधान), सर्वोत्तम और अतिक्रान्त। न्यायसिद्धान्तमुक्तावलीके—

'पाटलिपुत्रात् काशीमपेक्ष्य प्रयागः परः।'

—इस वाक्यमें 'पर'का अर्थ है— दूर, जो कि दैशिक है। गीताके—

'अपरं भवतो जन्म परं जन्म विवस्वतः।' (४ । ४)

—इस श्लोकार्धमें भी 'पर'का अर्थ दूर है; किंतु यह कालिक है। गीताके—

'इन्द्रियेभ्यः परं मनः।'　(३ । ४२)

—इस वचनमें 'पर'का अर्थ 'मुख्य' या 'प्रधान' है। परदशत, परस्सहस्र आदि प्रयोगोंमें 'पर' शब्दका अर्थ 'अधिक' है। अधिक-देश-वृत्ति भी इसका अर्थ है। इस अर्थमें यह वैशेषिक-शास्त्रोक्त सामान्यका विशेषण है—

'सामान्यं द्विविधं प्रोक्तं परं चापरमेव च।'
(कारिकावली ८)

इसकी व्याख्यामें मुक्तावलीका वचन है—

'परत्वमधिकदेशवृत्तित्वम्। सकलजात्यपेक्षयाधिकदेशवृत्तित्वात् सत्तायाः परत्वम्।'

गीताके—

'परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान्।'
(१० । १२)

—इस वचनमें 'पर' शब्दका अर्थ सर्वोत्तम है। भागवतके—

'ततो वैकुण्ठमगमद् भास्वरं तमसः परम्॥'
(१० । ८८ । २५)

—इस वचनमें 'पर' शब्दका अर्थ है—परे। उक्त ग्रन्थके—

'विदितोऽसि भवान् साक्षात् पुरुषः प्रकृतेः परः।'

(१०।३।१३)

—इस वचनमें 'पर' शब्दका अर्थ है—अतिक्रान्त। ईश्वर प्रकृतिमें रहकर उसका नियमन करते हुए उससे परे भी हैं, इस अर्थको सूचित करनेके लिये भी 'पर' शब्दका प्रयोग होता है।

वेदका—

'स भूमिं विश्वतो वृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्।'

(ऋक्संहिता १०।९०।१)

—यह ऋगंश ईश्वरको विश्वव्यापी कहकर विश्वातिग भी बता रहा है। इसी दृष्टिसे 'पर' शब्दका अर्थ है—अतिक्रान्त, अतिस्थित और अतिग। ईश्वरकी इस अतिक्रान्ति, अतिस्थिति और अतिगतिसे उसके विश्वव्यापित्वका विरोध नहीं है। वह अपनी महामहिमासे विश्वमें भी है और उससे परे भी है।

हम जिस तत्त्वकी व्याख्या करना चाहते हैं, वह स्वेतरसमस्तवस्तुविलक्षण है; त्रिगुणात्मिका जड प्रकृति और चेतन जीव-जातसे इतर है; अतएव 'पर' है। वह अपनेसे भिन्न समस्त वस्तुओंसे उत्तम, उत्कृष्ट, प्रकृष्ट वा श्रेष्ठ है; अतएव 'पर' है। वह अपने एकांशसे पुम्प्रकृतिमय समस्त लीलास्थल विश्वमें अन्तःप्रविष्ट होकर शासन करता है और साथ ही अपने त्रिपाद्रूपसे इस विश्वका देशतः अतिक्रमण करके इससे परे चिदानन्दमय रूपमें विराजमान है; इस हेतुसे भी वह 'पर' है।

यहाँ यह शङ्का की जा सकती है कि विशुद्धावस्थामें जीव भी प्रकृतिसे परे होता है, अतएव वही इस व्याख्याका लक्ष्य होना चाहिये। किंतु इसका समाधान यह है कि जीवका पर-तत्त्वके रूपसे प्रतिपादन हमें अभीष्ट नहीं है। यह ठीक है कि जीव आविर्भूतस्वरूप होकर प्रकृतिके परे हो जाता है, परंतु ईश्वर तो मुक्त जीवसे भी परे है। इसीलिये ईश्वरको 'परात्परः' कहा जाता है और उससे परे किसी तत्त्वान्तरकी परताका निषेध है। जैसा कि—

'यस्मात्परं नापरमस्ति किंचित्।' (श्वेताश्वतर उप० ३। ९)

'मत्तः परतरं नान्यत्' (गीता ७। ७)

—इत्यादि वचनोंसे स्पष्ट है। परत्वकी निरतिशयता जीवमें न होकर ईश्वरमें है। जीवमें वह सातिशय है। अतएव व्यासदेवने भी ब्रह्मको—

'पराभिध्यानात्तु तिरोहितं ततो ह्यस्य बन्धविपर्ययौ।'

(ब्रह्मसूत्र ३। २।५)

—इत्यादि सूत्रोंमें 'पर' शब्दसे ही स्मरण किया है, न कि 'परात्पर' शब्दसे।

'पर' शब्दकी व्याकरणसम्मत व्युत्पत्ति इस प्रकार है—पिपर्त्ति इति परः। पृणाति इति परः। पारयति इति परः। प्रथम पक्षमें 'पॄ पालनपूरणयोः' इस जुहोत्यादिगणीय धातुसे, दूसरे पक्षमें 'पॄ पालनपूरणयोः' इस क्र्यादिगणीय धातुसे और तीसरे पक्षमें 'पॄ पूरणे' इस चुरादिगणीय धातुसे 'अच्', 'अप्' अथवा 'घ' प्रत्यय लगाकर 'पर' शब्द निष्पन्न होता है।

जो पुम्प्रकृतिमय निखिल ब्रह्माण्डोंमें अन्तःप्रविष्ट होकर पालन-पोषण करे और जो भक्तोंकी अशेष कामनाओंको पूर्ण करे, वह 'पर' है—

पिपर्त्ति प्रकृतिं नित्यं पुमांसं च पृणाति यः।
यः पारयति भक्तानामशेषा एव कामनाः॥
विश्वं व्याप्यापि यो देव एतस्मात् परतः स्थितः।
परस्मै श्रीमते तस्मै विष्णवेऽस्तु नमो नमः॥

भाषा-विज्ञानकी दृष्टिसे 'पर' शब्दका प्रयोग सर्वप्रथम विशेषणके रूपमें रहा होगा। इस लेखके शीर्षकमें भी 'पर' शब्द विशेषणके रूपमें है। समय पाकर 'पर' शब्दका प्रयोग संज्ञाके रूपमें होने लगा। वैष्णव आगमोंके समयमें यह शब्द पारिभाषिक बन चुका था, जैसा कि निम्नाङ्कित उद्धरणसे विदित होता है—

मम प्रकाराः पञ्चेति प्राहुर्वेदान्तपारगाः।
परो व्यूहश्च विभवो नियन्ता सर्वदेहिनाम्॥
अर्चावतारश्च तथा दयालुः पुरुषाकृतिः।
इत्येवं पञ्चधा प्राहुर्मां रहस्यविदो जनाः॥

(विष्वक्सेनसंहिता)

ब्रह्मसूत्रमें महर्षि बादरायणने 'पराभिध्यानात्तु' (३। २। ५) आदि सूत्रोंमें पारिभाषिक 'पर' शब्दका ही प्रयोग किया है।

श्रीमन्नारायण

परतत्त्वका लोकविश्रुत नाम है—श्रीमन्नारायण। वेद एवं तदनुयायी वाङ्मयमें निर्भ्रान्तरूपसे श्रीमन्नारायणकी परताका सिद्धान्त प्रतिपादित हुआ है। किस ग्रन्थमें किन-किन वचनोंद्वारा इस बातका निर्देश है, यह आगे बताया जायगा।

नरोंके समूहको 'नार' कहते हैं। 'नर' शब्दमें—

'तस्य समूहः।' (पाणिनि ४। २। ३७)

—इस सूत्रके अनुसार समूहार्थक 'अण्' प्रत्यय लगानेसे 'नार' शब्द बनता है। यहाँ 'नार' शब्द प्रकृतिसंश्लिष्ट समस्त जीवोंका उपलक्षण है। 'नार' अर्थात् विश्व-ब्रह्माण्ड जिसका 'अयन' है, धाम है—निवास है, वह 'नारायण' है। इससे नारायणकी सर्वव्यापकता विशद है—

यच्च किंचिज्जगत्सर्वं दृश्यते श्रूयतेऽथवा।
अन्तर्बहिश्च तत्सर्वं व्याप्य नारायणः स्थितः॥
(महानारायणोप० ९। ५)

एवं विश्वब्रह्माण्डका निवास जिसमें है, वह नारायण है—
'तस्मिन् ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा।' (यजुर्वेद ३१। १९)
समस्त विश्व नारायणके एकांशमें विराजमान है—

'पादोऽस्य विश्वा भूतानि।' (यजुर्वेद ३१। ३)

त्रिपात्स्वरूपसे नारायण इस विश्व-प्रपञ्चसे उदित हैं—अतीत हैं—

'त्रिपादस्यामृतं दिवि।' (पूर्वोक्त)

इससे नारायणकी विश्वातिगता—परता स्पष्ट निश्चित होती है।

राजर्षि मनुने 'नारायण' शब्दका निर्वचन करते हुए कहा है—

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः।
ता यदस्यायनं प्रोक्तं तेन नारायणः स्मृतः॥
(१। १०)

अर्थात् 'नार' जलको कहते हैं और प्रलयपयोधिमें वा क्षीरसागरमें शेषपर्यङ्कपर शयन करनेके कारण पर-तत्त्वको 'नारायण' कहते हैं।

यहाँपर यह शङ्का हो सकती है कि पर-तत्त्व तो एक ही है, तब ऐसा कहना समीचीन होगा कि नारायण पर-तत्त्व हैं, न कि श्रीमन्नारायण; क्योंकि श्रीसहित नारायणकी परता प्रतिपादित होनेसे पर-तत्त्व दो हो जायँगे—एक तो 'श्री' और दूसरे 'नारायण'। इस शङ्काका समाधान यह है कि 'श्री' और 'नारायण' दोनों एक ही हैं, उन दोनोंमें अभेद है। यदि 'श्री' और 'नारायण'में भेदका आग्रह हो तो भी श्रीमन्नारायणकी परताका प्रतिपादन उचित है; क्योंकि शास्त्र-दृष्टिसे दोनों ही पर हैं, जैसा कि विष्णुपुराणका वचन है—

'नानयोर्विद्यते परम्॥' (१। ८। ३५)

अर्थात् श्री और नारायणके परे कुछ नहीं है। विष्णु-पुराणके इस वचनसे गीताके—

'मत्तः परतरं नान्यत्' (७। ७)

—इस वचनकी एक-वाक्यता करनेपर वास्तवमें 'श्री' और 'नारायण'में अभेद और पर-तत्त्वकी एकता ही सिद्ध होती है।

विष्णुभगवान्

पर-तत्त्वका दूसरा नाम 'विष्णु' है। "वेवेष्टि इति विष्णुः—जो तत्त्व चर-अचरमें, जड-चेतनमें व्याप्त है, सबमें समाया हुआ है, वह 'विष्णु' है।" 'विष्णु' शब्दके सूर्य, वसु, अग्नि आदि अनेक अर्थ होनेपर भी दार्शनिक चर्चामें 'विष्णु' शब्दका वाच्यार्थ वही पर-तत्त्व है, जिसका विवेचन ऊपर किया जा चुका है। विष्णु सब देवताओंमें श्रेष्ठ हैं—

'तस्मादाहुर्विष्णुर्देवानां श्रेष्ठः।' (शतपथ)

अतएव श्रीविष्णुकी कृपाके लिये प्रार्थना करती हुई श्रुति भगवती कहती है—

'महस्ते विष्णो सुमतिं भजामहे॥'
(ऋक्० १। १५६। ३)

अर्थात् हे विष्णो! आप महान्—महनीय—पूजनीय हैं; आपकी सुमतिका—दयादृष्टिका हम भजन करते हैं।

पर-तत्त्वके उपासक अपने उपास्यदेवके इसी श्रीविष्णु नामके आधारपर अपनेको 'श्रीवैष्णव' कहते हैं।

परम पुरुष

पर-तत्त्वका तीसरा नाम है—पुरुष। ये समस्त लोक पुरी हैं—

'इमे वै लोकाः पूः।' (शतपथ)

जो तत्त्व इस पुरीमें शयन करता है, वह पुरुष है—

'सोऽस्यां पुरि शेते तस्मात्पुरुषः।' (शतपथ)

इस पुरुषके माहात्म्यका प्रतिपादक ऋग्वेदीय सोलह ऋचाओंवाला सूक्त पुरुष-सूक्तके नामसे अत्यन्त प्रसिद्ध है और उसके द्वारा विष्णु-पूजनका सम्प्रदाय है। इस सूक्तका सार यह है कि पुरुष इस विश्वका सब ओरसे नियमन और पालन करके इससे परे भी रहा और इसीसे विराट्की उत्पत्तिके अनन्तर ऋगादि वेद, इन्द्र, अग्नि, वायु, आकाश, अन्तरिक्ष, सूर्य, चन्द्रमा, भूमि, दिशाएँ, अनेक लोक, ब्राह्मणादि वर्ण, ग्राम्य पशु एवं आरण्य पशु उत्पन्न हुए। यजुर्वेदमें जो पुरुषसूक्त है, उसमें छः मन्त्र अधिक हैं। 'पुरुष' शब्द जीवोंके लिये भी व्यवहृत होता है, यथा—

'द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च।'

(गीता १५। १६)

—इस गीता-वचनसे विदित होता है; किंतु प्रकृत प्रसङ्गमें वह शब्द पर-तत्त्वका ही अभिधायक है। पर-तत्त्व ही इस पुम्प्रकृतिमय विश्वमें, लोहेमें अग्निके समान व्याप्त होकर भिन्न होनेपर भी अभिन्नके समान विराजमान है—

अयःपिण्डे यथा वह्निर्भिन्नस्तिष्ठत्यभिन्नवत्।
तद्वत्सर्वमिदं देवो व्यावृत्य परितिष्ठति॥

(जयाख्यसंहिता ४। ८१)

परब्रह्म

अपने विनोदके लिये इस विश्वकी सृष्टि, स्थिति और प्रलय करते रहनेके कारण पर-तत्त्वका चौथा नाम 'ब्रह्म' है। स्वयं बृहत्, महतो महीयान्, परिमाणशून्य होनेसे एवं प्रकृतिमें प्रविष्ट होकर उसको विकसित करनेसे भी वह 'ब्रह्म' कहलाता है—'बृंहति वर्धते वर्धयति वा इति ब्रह्म।' भ्वादिगणीय 'बृंहि वृद्धौ' धातुसे 'मनिन्' प्रत्यय लगानेसे 'ब्रह्म' शब्द निष्पन्न होता है। 'ब्रह्म' शब्दके भी वेद, तप आदि अनेक अर्थ हैं—

'वेदास्तत्त्वं तपो ब्रह्म' (अमरकोश ३। ३। ११४)

—किंतु यहाँ प्रसङ्गानुसार ब्रह्मका अर्थ सृष्टिका कर्ता, धर्ता, हर्ता पर-तत्त्व ही है।

पर-तत्त्व निर्विकार है

ब्रह्म कारण है और जगत् कार्य है। इससे शङ्का होती है कि विकारी, परिणामी जगत्का कारण ब्रह्म भी विकारी और परिणामी होगा। इसका समाधान इस प्रकार है। जगत्के उपचय, अपचय, क्षय, वृद्धि आदि विकार त्रिगुणात्मिका प्रकृतिमें ही हुआ करते हैं, प्रकृतिके अधिष्ठाता ब्रह्ममें नहीं। देवदत्तमें जो केश-श्मश्रु-नखोद्गम होता है अथवा कौमार, यौवन और जराका उद्भव होता है, वह देवदत्तके शरीरमें ही होता है, चेतनांश तो निर्विकार ही रहता है। कृकलास (गिरगिट) में रक्त, नील, पीत, हरित वर्णका जो परिवर्तन होता रहता है, वह उसके जड शरीरमें ही होता है, चेतनांशमें नहीं। इसी प्रकार महत्तत्त्वादि पृथिव्यन्त परिणाम प्रकृतिमें ही होता है, ब्रह्ममें नहीं। ब्रह्मकी अध्यक्षतामें त्रिगुणमें परिणाम होता है, ब्रह्ममें नहीं—

'मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्।'

(गीता ९। १०)

शास्त्रमें जो ऐसे वचन मिलते हैं, जिनसे जगत्का उत्पत्त्यादि व्यापार ब्रह्मसे प्रतीत होता है, जैसे—

यतः सर्वाणि भूतानि भवन्त्यादियुगागमे।
यस्मिंश्च प्रलयं यान्ति पुनरेव युगक्षये॥

(विष्णुसहस्रनाम ११)

—उन सबका पर्यवसान इसीमें है कि ब्रह्मकी अध्यक्षतामें कल्पारम्भके समय त्रिगुणमें विकासोन्मुख परिणाम होने लगता है और कल्पान्तके समय उसमें विनाशोन्मुख परिणाम होने लगता है। ब्रह्मसे अधिष्ठित प्रकृतिसे ही विश्वका उद्भव होता है और उसीमें उसका विलय हो जाता है—जैसा कि गीताका वचन है—

सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामिकाम्।
कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम्॥

(९। ७)

देवदत्तमें चेतनांशके साथ जडांशका क्या सम्बन्ध है? देह-देही-सम्बन्ध, शरीर-शरीरी-सम्बन्ध, नियाम्य-नियन्ता-सम्बन्ध, प्रकार-प्रकारी-सम्बन्ध, शेष-शेषी-सम्बन्ध, शरीर-आत्मा-सम्बन्ध, विशेष्य-विशेषण-सम्बन्ध। ब्रह्मका भी जड जगत्के साथ ही नहीं, अपितु जीवात्माओंके साथ भी आत्म-शरीर-सम्बन्ध है। ब्रह्म आत्मस्थानीय है और पुरुष एवं प्रकृति शरीरस्थानीय हैं। प्रकृतिमें विचित्र विविध परिणाम हुआ करते हैं, किंतु पुरुषमें नहीं। पुरुषमें प्रकृतिके सङ्गसे उसके ज्ञानका संकोच-विकास हुआ करता है, किंतु ब्रह्ममें न तो परिणाम होता है और न ज्ञानका संकोच-विकास ही।

पर-तत्त्वके नामान्तर

पर-तत्त्वके केवल चार नाम (१) नारायण, (२) विष्णु, (३) पुरुष और (४) ब्रह्म अबतक बताये गये हैं। नाम तो बहुत हैं, कहाँतक गिनायेंगे; अतएव पर-तत्त्वके अन्यान्य नाम शास्त्रसे जान लेने चाहिये । 'शास्त्र' किसे कहते हैं ? सन्मार्गमें प्रवृत्त करनेवाले ग्रन्थ-कदम्बका नाम शास्त्र है—

ऋग्यजुस्सामाथर्वाश्च भारतं पञ्चरात्रकम् ।
मूलरामायणं चैव शास्त्रमित्यभिधीयते ॥
यच्चानुकूलमेतस्य तच्च शास्त्रं प्रकीर्तितम् ।
अतोऽन्यग्रन्थविस्तारो नैव शास्त्रं कुवर्त्म तत् ॥
(स्कन्दपुराण)

अर्थात् वेद, भारत, रामायण, पञ्चरात्रसंहिताएँ और तदनुकूल ग्रन्थराशि शास्त्र-नामसे अभिहित हैं । इनके अतिरिक्त अन्याग्य तत्प्रतिकूल ग्रन्थ उपादेय नहीं हैं ।

यों तो महाभारतके अनुशासन-पर्वमें पर-तत्त्वके सहस्रनाम उपवर्णित हैं, जो 'विष्णु-सहस्रनाम'के नामसे प्रसिद्ध हैं और जिनके अध्ययनका बड़ा माहात्म्य है; किंतु उनमेंसे 'भगवान्' और 'वासुदेव' नाम बहुत प्रचलित रहे हैं । पर-तत्त्वके दिव्य गुणोंसे विमुग्ध होकर भक्तजन उसे 'भगवान्' कहते हैं । इन गुणोंका विवेचन विषयान्तर होगा । पूज्यार्थमें भगवत्-शब्दका प्रयोग वेदमें भी उपलब्ध है । यथा—

(अ) भगो वा भगवाँ अस्तु ।
(आ) वयं भगवन्तः स्याम ।
(इ) ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि ।

जो देव विश्वमें निवास करता है, वह 'वासुदेव' है—

सर्वत्रासौ समस्तं च वसत्यत्रेति वै यतः ।
ततोऽसौ वासुदेवेति विद्वद्भिः परिगीयते ॥

इन दोनों नामोंका समावेश द्वादशाक्षर मन्त्रमें है ।

इनके अतिरिक्त पर-तत्त्वके सभी नाम मधुरातिमधुर हैं । 'श्रीराम' और 'श्रीकृष्ण' नामोंने न जाने कितने पतितोंका उद्धार किया है ।

वेदके मन्त्र-भागमें

श्रीभगवान्‌की पवित्र वाणीरूप जो वेद है—उसके दो भाग हैं—मन्त्र और ब्राह्मण । ऋगादि चार संहिताएँ मन्त्र-भागके ग्रन्थ हैं और उनमें यथास्थान पर-तत्त्वका प्रतिपादन सुन्दर-सुन्दर वचनोंमें हुआ है । दिग्दर्शनार्थ—

'वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।'
(यजुर्वेद ३१ । १८)

इसमें स्पष्ट ही उस महापुरुषको 'तमस्' अर्थात् प्रकृतिसे परे बताया गया है । इसी प्रकार ऋग्वेदके 'नासदीय सूक्त'में कहा गया है—

नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं
नासीद्रजो नो व्योमा परो यत् ।
× × ×
आनीदवातं स्वधया तदेकं
तस्माद्धान्यन्न परः किंचनास ॥
(ऋग्वेद १० । १२९ । १-२)

अर्थात् सृष्टिके प्रारम्भमें प्रकृतिके दोनों रूप—कार्य और कारण—नहींके समान थे ('नेव वा इदमग्रेऽसदासीत्, नेव सदासीत्' शतपथ १० । ५ । ३) । उस समय वही एक पर-तत्त्व पाञ्चभौतिक पवनके बिना ही केवल अपनी शक्तिसे जीवित था, उससे परे और कुछ नहीं था ।

ऋग्वेदीय विष्णु-सूक्तका वचन है—

'न ते विष्णो जायमानो न जातो
देव महिम्नः परमन्तमाप ।'
(७ । ९९ । २)

अर्थात् हे देवाधिदेव विष्णो ! आपकी महिमाका पार कोई भी जीव नहीं पा सका है ।

ब्राह्मण-भागमें

मन्त्र-भागके व्याख्यानस्वरूप ऐतरेय, शतपथ, षड्विंश, गोपथ आदि ग्रन्थ वेदके ब्राह्मण-भागके अन्तर्गत हैं । इनमें पर-तत्त्वका वर्णन मन्त्र-भागकी अपेक्षा अधिक विस्तारसे हुआ है ।

पर-तत्त्वका नारायण-नाम वैदिक साहित्यमें सर्वप्रथम ब्राह्मण-भागमें ही मिलता है । पुरुष-सूक्तका व्याख्यान करते हुए शतपथने कहा है—

'पुरुषो ह नारायणोऽकामयत
अतितिष्ठेयं सर्वाणि भूतानि ।'

अर्थात् परमपुरुष नारायणने यह इच्छा की कि मैं सब भूतोंको—प्रकृतिसंसृष्ट जीवोंको—अतिक्रमण करके अर्थात्

उनसे परे रहूँ। पर-तत्त्वकी इस अतिस्थितिके कारण उसकी श्रेष्ठता निरतिशय है—

'तस्माद्वाह्नुर्विष्णुर्देवानां श्रेष्ठः।'

आरण्यकोंमें

ब्राह्मण-ग्रन्थोंमें यज्ञविधानके साथ-साथ ज्ञान और भक्तिका भी समावेश है। वेदोंके उस अंशका, जो ज्ञान, वैराग्य और भक्तिका प्रतिपादक है, स्वाध्याय-प्रवचन वीतराग महात्मा बहुधा अरण्यमें किया करते थे। इससे उस अंशका नाम 'आरण्यक' पड़ा। आरण्यक-ग्रन्थोंमें भी स्थल-स्थलपर पर-तत्त्वका वर्णन प्राञ्जल भाषामें किया गया है। दिग्दर्शनार्थ—

'विरजः पर आकाशादज आत्मा महान् ध्रुवः।'

(बृहदारण्यक ४। ४। २०)

—इस वचनमें परमात्माको अजन्मा, एकरस, रजस् अर्थात् प्रकृतिसे अपरामृष्ट और इससे परे बताकर—

'सर्वस्य वशी सर्वस्येशानः सर्वस्याधिपतिः।'

(बृहदारण्यक ४। ४। २२)

—इस वचनमें उसे समस्त विश्वका प्रभु, शासक और नियामक बताया गया है।

उपनिषदोंमें

ब्राह्मण-भागके उपासना-प्रतिपादक ग्रन्थोंको 'उपनिषद्' कहते हैं। इन्होंने तो पर-तत्त्वकी इतनी चर्चा की है कि प्रतीत होने लगता है, जैसे वे उसीके उपासक हैं और अपनी स्तवाञ्जलियोंद्वारा उसीकी सतत उपासनामें निरत हैं। दिग्दर्शनार्थ—

'एतदेवाक्षरं परम्।' (कठ० १। २। १६)

'यह ही अविनाशी पर-तत्त्व है।'

'एतदालम्बनं परम्।' (कठ० १। २। १७)

'यही सर्वोत्तम आलम्बन है।'

'अक्षरं ब्रह्म यत् परम्।' (कठ० १। ३। २)

'अविनाशी ब्रह्म पर-तत्त्व है।'

'अक्षरात् परतः परः।' (मुण्डक० २। १। ४)

'प्रकृतिसे परे तथा जीवसे भी वह परे है।'

'परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम्।' (मुण्डक० ३। २। ८)

'ज्ञानी व्यक्ति परात्पर पुरुषका सामीप्य पाता है।'

'ब्रह्मविदाप्नोति परम्।' (तैत्तिरीय० २। १। १)

'ब्रह्मवेत्ता व्यक्ति पर-तत्त्वको प्राप्त करता है।'

'यस्मात्परं नापरमस्ति किंचित्।' (श्वेताश्वतर० ३। ९)

'उससे परे और कुछ नहीं है।'

'तत्त्वं नारायणः परम्।' (नारायणोपनिषद्)

'नारायण ही पर-तत्त्व हैं।'

रामायणमें

जिस रामायणके लिये यह सूक्ति प्रचलित है कि—

वेदवेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे।
वेदः प्राचेतसादासीत् साक्षाद्रामायणात्मना॥

अर्थात् दशरथ-कुमारके रूपमें वेदगम्य परमपुरुषके अवतीर्ण होनेपर वेद भी महर्षि वाल्मीकिके द्वारा रामायण-रूपसे प्रकट हुआ था, उसी रामायणमें पर-तत्त्वका सम्यक् निरूपण हुआ है। इस आदिकाव्यके नायक राम स्वयं भगवान् विष्णु ही हैं। इसके आदि-मध्य-अन्तसे यह सिद्ध है कि पर-तत्त्व श्रीविष्णुने ही राम-रूप धारण किया था। दिग्दर्शनार्थ—

'भवान्नारायणो देवः।' (६। ११७। १३)

'त्वमोंकारः परात्परः॥' (६। ११७। १९)

—इन वचनोंमें ब्रह्मदेव स्तुति करते हुए कहते हैं कि 'हे राम! आप नारायण हैं, प्रणवस्वरूप हैं और परात्पर हैं।' इसी प्रकार अध्यात्मरामायणके अयोध्याकाण्डमें कहा गया है कि महर्षि अत्रिने श्रीरामको पर-तत्त्व नारायण जानकर उनकी विधिपूर्वक पूजा की—

श्रुत्वा रामस्य वचनं रामं ज्ञात्वा हरिं परम्।
पूजयामास विधिवद् भक्त्या परमया मुनिः॥

(२। ९। ८२)

स्मृतिमें

साधारण धर्म, विशेष धर्म, वर्णाश्रम-धर्म, आचार, व्यवहार, प्रायश्चित्त आदि विषयोंपर प्रचुर प्रकाश डालनेवाले धर्म-ग्रन्थोंको 'स्मृति' कहते हैं। यद्यपि सामान्यरूपसे श्रुतीतर सभी ग्रन्थोंको 'स्मृति' कहते हैं, तथापि विशेषरूपसे—

'मन्वत्रिविष्णुहारीतयाज्ञवल्क्योशनोऽङ्गिराः।'

(याज्ञवल्क्यस्मृति १। १। ४)

—इत्यादि वचनके अनुसार मन्वादिद्वारा प्रणीत धर्मग्रन्थ स्मृतिरूपमें व्यवहृत होते हैं। इनमें यथास्थान पर-तत्त्वका स्मरण किया गया है। उदाहरणार्थ मनुस्मृतिका एक वचन है—

प्रशासितारं सर्वेषामणीयांसमणोरपि।
रुक्माभं स्वप्नधीगम्यं विद्यात्तं पुरुषं परम्॥
(१२। १२२)

अर्थात् समस्त जीव-निकायके शासक, अणु-स्वरूप, जीवोंसे भी अधिक अणु, सुवर्णोपम-वर्णविशिष्ट, निर्मल बुद्धि-द्वारा प्राप्य पुरुषको 'पर-तत्त्व' समझना चाहिये।

ब्रह्मसूत्रमें

अत्यन्त विस्तृत उपनिषद् ग्रन्थोंका एक संक्षेप महर्षि वेदव्यासने प्रस्तुत किया था, जिसका नाम 'ब्रह्मसूत्र' है। इस सूत्रग्रन्थमें ब्रह्मके नामसे पर-तत्त्वका ही वर्णन है। कई सूत्र ऐसे हैं, जिनमें 'पर' शब्दका भी साक्षात् प्रयोग किया गया है, जैसे—

'परात्तु तच्छ्रुतेः।' (२। ३। ४१)

ब्रह्मसूत्रमें एक 'पराधिकरण' नामक स्वतन्त्र अधिकरण है, जिसमें युक्तिपूर्वक यह सिद्धान्त स्थापित किया गया है कि ब्रह्मसे परे और कुछ नहीं है। विशेषणरूपमें प्रयुक्त 'पर' शब्द समय पाकर पारिभाषिक शब्द बन गया था, यह पहले भी बताया जा चुका है।

'अन्तस्तद्धर्मोपदेशात्।' (१। १। २०) इस ब्रह्मसूत्रके व्याख्यानमें आचार्योंने छान्दोग्य (१। ६। ७) के 'तस्य यथा कप्यासं पुण्डरीकमेवमक्षिणी' इस वचनका उद्धरण दिया है, जिसमें यह कहा गया है कि उस उपास्य परमपुरुषके दोनों नेत्र पुण्डरीकके समान सुन्दर हैं। 'पुण्डरीकाक्ष' भगवान् विष्णुका नाम है।

महाभारतमें

'महाभारत' नामक व्यासकृत ग्रन्थ अत्यन्त प्रसिद्ध है। इसमें स्थान-स्थानपर पर-तत्त्वकी महिमा गायी गयी है।

उदाहरणार्थ—

एष प्रकृतिरव्यक्ता कर्ता चैव सनातनः।
परश्च सर्वभूतेभ्यस्तस्मात् पूज्यतमो हरिः॥
(सभापर्व ३८। २४)

अर्थात् श्रीभगवान् अवाङ्मानसगोचर मूल-कारण हैं, जगत्के सनातन कर्ता हैं और समस्त भूतोंसे परे हैं, इससे वे पूज्यतम हैं। एवं—

नीलोत्पलदलश्याम पद्मगर्भारुणेक्षण।
पीताम्बरपरीधान लसत्कौस्तुभभूषण॥
त्वमादिरन्तो भूतानां त्वमेव च परायणम्।
परात्परतरं ज्योतिर्विश्वात्मा विश्वतोमुखः॥
(वनपर्व)

'हे नीले कमलके समान वर्णवाले, अरविन्दके अन्तस्तल-के समान अरुणाभ नयनवाले, पीताम्बरधारी, कौस्तुभविभूषित भगवन्! आप प्राणियोंके उत्पादक और विनाशक हैं। आपमें ही उनकी स्थिति है। आप इस विश्वकी अन्तरात्मा हैं। आप सर्वव्यापक हैं, प्रकाश-स्वरूप हैं और परात्पर हैं।' इसी प्रकार—

अपि देवा न जानन्ति गुह्यमाद्यं जगत्पतिम्।
नारायणं परं देवं परमात्मानमीश्वरम्॥
ज्ञानयोनिं हरिं विष्णुं मुमुक्षूणां परायणम्।
परं पुराणं पुरुषं पुराणानां परं च यत्॥
(द्रोणपर्व)

अर्थात् देवता भी पर-तत्त्व नारायणको नहीं जानते, जो गुह्य, आद्य, जगत्पति, परमात्मा, ईश्वर, वेदोंके रचयिता, हरि, विष्णु, मुमुक्षुओंकी परम गति, हिरण्यगर्भादि पूर्व-पुरुषोंके भी पूर्वज और सबसे परे हैं।

भगवद्गीतामें

यद्यपि गीता महाभारतका ही एक अंश है, तथापि उसके माहात्म्यातिशयके कारण हम गीताका पृथक् निर्देश कर रहे हैं। उपनिषदोंका सार-स्वरूप यह पवित्र गीता-ग्रन्थ पर-तत्त्वके गौरवका गान प्रचुर मात्रामें कर रहा है। दिग्दर्शनार्थ—

'स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम्॥' (८। १०)

अर्थात् साधक जीव उस दिव्य परम पुरुषके सामीप्यका लाभ प्राप्त करता है। एवं—

'पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया।'
(८। २२)

अर्थात् वह सर्वव्यापक पर-तत्त्व अनन्य भक्ति-भावसे ही प्राप्त किया जा सकता है।

पुराणोंमें

सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरितका प्रतिपादन करनेवाले शास्त्रका नाम 'पुराण' है। पहले व्यासजीने एक पुराणसंहिता बनायी थी—

'पुराणसंहितां चक्रे पुराणार्थविशारदः ॥'
(विष्णुपुराण ३ । ६ । १५)

इसीके आधारपर अन्यान्य पुराण-संहिताएँ यथासमय विरचित हुईं, जो 'महापुराण' और 'उपपुराण'के नामसे प्रसिद्ध हुईं। ब्रह्मपुराण आदि अठारह महापुराण हैं, जिनमें श्रीमद्भागवत मुकुट-मणि है। इन सभी पुराणोंमें पर-तत्त्वके वैभवका उल्लेख है। व्यासजी हाथ उठाकर बारंबार घोषणा कर रहे हैं कि—

सत्यं सत्यं पुनः सत्यं भुजमुत्थाप्य चोच्यते।
न वेदान्तात् परं शास्त्रं न देवः केशवात् परः ॥

अर्थात् वेदान्तसे बढ़कर कोई शास्त्र नहीं है और भगवान् केशव (नारायण) से परे और कोई देव नहीं है। विष्णुपुराणका वचन है—

त्वामाराध्य परं ब्रह्म याता मुक्तिं मुमुक्षवः।
वासुदेवमनाराध्य को मोक्षं समवाप्स्यति ॥
(१ । ४ । १८)

अर्थात् हे भगवन्! मुक्तिकी कामना करनेवाले अनेक जीवोंने परब्रह्म आपकी आराधना करके मुक्तिको प्राप्त कर लिया। वासुदेवकी आराधना किये बिना मोक्षको कौन प्राप्त कर सकता है।

आगमोंमें

'आगम'का अर्थ है—ज्ञान प्राप्त करानेवाला। 'आगमयतीति आगमः।' पञ्चरात्र शास्त्र, सात्त्वत शास्त्र, सात्त्वत तन्त्र, पञ्चरात्र तन्त्र—ये सब आगम (वैष्णव आगम) के पर्याय हैं। श्रीविष्णुके उपासकोंका—भागवतोंका प्राचीन वैष्णव-साहित्य 'पञ्चरात्र शास्त्र' कहलाता है, जिसकी तीन संहिताएँ (१) सात्त्वतसंहिता, (२) जयाख्यसंहिता और (३) पौष्करसंहिता 'रत्नत्रय' कहलाती हैं। समय पाकर पौराणिक साहित्यके समान पञ्चरात्र-साहित्यका भी अधिकाधिक विस्तार हुआ। उसकी १०८ संहिताएँ मानी जाती हैं, यद्यपि इससे भी अधिक संहिताओंकी नामावली आजकल मिलती है।

पञ्चरात्रमें पर-तत्त्वका वैभव पुनः-पुनः विस्तारपूर्वक समुपवर्णित है। दिग्दर्शनार्थ—

(अ) परमेतत् समाख्यातम्। (सात्त्वतसंहिता १ । २६)
(आ) वासुदेवः परः प्रभुः। (सात्त्वतसंहिता ३ । ४)
(इ) अप्रमेयमजं विष्णुं शरणं त्वां गतोऽस्म्यहम्।
गुणातीतं परं शान्तमब्जनाभं सुरेश्वरम् ॥
(ब्रह्मतन्त्र)

अर्थात् षाड्गुण्य-विग्रह ब्रह्मका नाम 'पर' है। 'वासुदेव' प्रभु हैं, पर-तत्त्व हैं। मैं श्रीविष्णु-नामक पर-तत्त्वकी शरण आया हूँ, जो अप्रमेय हैं, अज हैं, त्रिगुणातीत हैं, शान्त हैं, सुरेश्वर हैं और जिनकी नाभिसे ब्रह्मावास कमलका प्रादुर्भाव हुआ था।

आचार्योंकी रचनाओंमें

आचार्योंने पर-तत्त्व श्रीभगवान्के प्रति अपनी स्तवाञ्जलियाँ समर्पितकर अपना सपर्याभाव प्रदर्शित किया है।

उदाहरणार्थ—

दिव्यधुनीमकरन्दे परिमलपरिभोगसच्चिदानन्दे।
श्रीपतिपदारविन्दे भवभयखेदच्छिदे वन्दे ॥
(श्रीशंकराचार्यः षट्पदीस्तोत्र)

अर्थात् मैं श्रीमन्नारायणके उन चरणारविन्दोंको प्रणाम करता हूँ, जिनका मकरन्द गङ्गाजी हैं; सत्-चित्-आनन्दकी जिनमेंसे सुगन्ध निकल रही है और जो संसारके समस्त भय और खेदका शमन करनेवाले हैं।

अखिलभुवनजन्मस्थेमभङ्गादिलीले
विनतविविधभूतव्रातरक्षैकदीक्षे।
श्रुतिशिरसि विदीप्ते ब्रह्मणि श्रीनिवासे
भवतु मम परस्मिन् शेमुषी भक्तिरूपा ॥
(श्रीरामानुजाचार्यः श्रीभाष्य १)

अर्थात् लीलाके लिये निखिल ब्रह्माण्डोंका उदय, विभव और लय करनेवाले, शरणागत भक्तोंकी रक्षामें निरन्तर बद्धपरिकर, उपनिषदोंमें प्रतिपादित श्रीनिवास परब्रह्ममें मेरी भक्ति हो।

स्वभावतोऽपास्तसमस्तदोष-
मशेषकल्याणगुणैकराशिम्।
व्यूहाङ्गिनं ब्रह्म परं वरेण्यं
ध्यायेम कृष्णं कमलेक्षणं हरिम् ॥
(श्रीनिम्बार्काचार्य)

अर्थात् निखिलहेय-प्रत्यनीक, समस्त कल्याण-गुणाकर, व्यूहाङ्गी, वरणीय, कमल-नयन, हरि, परब्रह्म श्रीकृष्णका हम सब ध्यान करें।

अन्तःकरण मद्वाक्यं सावधानतया शृणु।
कृष्णात् परं नास्ति दैवं वस्तु दोषविवर्जितम्॥
(श्रीवल्लभाचार्य)

अर्थात् हे मेरे हृदय! सावधान होकर सुन ले—श्रीकृष्णसे परे कोई भी निर्दोष दिव्य वस्तु (तत्त्व) नहीं है।

संत-वाणियोंमें

सत्त्वगुण ही जिनका विभूषण है, ऐसे महामना संत-महात्माओंने पर-तत्त्वकी स्तुति, ध्यान एवं भजन करके अपना जन्म सफल बनाया है। ऐसे महात्मा भारतके सभी प्रान्तोंमें हुए हैं। दक्षिणमें आळवारोंने समय-समयपर प्रकट होकर पर-तत्त्वपूजाकी धाराको निर्मल और अक्षुण्ण बनाये रखनेका स्तुत्य प्रयत्न किया था। अपनी पवित्र, प्रेममयी वाणीसे उन्होंने भारत-भूमिको भावुकतासे आप्लावित कर दिया था। उनके वचनमें आकर्षण था। वे प्रेमोन्माद-मन्दिर थे। उनके नाम हैं—सर्वश्रीविष्णुचित्त, गोदा, सरोयोगी, भूतयोगी, महायोगी, मुनिवाहन, भक्ताङ्घ्रिरेणु, भक्तिसार, कुळशेखर, मधुर, शठकोप और परकाल। दिग्दर्शनार्थ कुळशेखर-विरचित 'मुकुन्दमालाका' एक श्लोक दिया जाता है—

चिन्तयामि हरिमेव संततं
मन्दमन्दहसिताननाम्बुजम्।
नन्दगोपतनयं परात्परं
नारदादिमुनिवृन्दवन्दितम्॥
(मुकुन्दमाला ८)

अर्थात् मन्द मुसकानसे विलसित वदनवाले, नारदादि मुनियोंद्वारा वन्दित, नन्दके नन्दन परात्पर श्रीहरिका मैं निरन्तर चिन्तन करता हूँ।

आळवारोंके शिरोमणि यामुनाचार्य 'आळवन्दार' कहलाते हैं। इनकी स्तुतिकी शैली ऐसी है—

न मृषा परमार्थमेव मे
शृणु विज्ञापनमेकमग्रतः।
यदि मे न दयिष्यसे ततो
दयनीयस्तव नाथ दुर्लभः॥
(आळवन्दारस्तोत्र ५०)

अर्थात् हे नाथ! मैं झूठ नहीं, सच कहता हूँ। मेरी इस सूचनाको तनिक सुन तो लीजिये। यदि मुझपर अब आप दया न करेंगे तो बस, फिर मुझसे अधिक दयनीय व्यक्ति आपको कोई कहीं न मिलेगा।

मधुसूदनसरस्वती अपने गीताभाष्यमें एक स्थानपर लिखते हैं—

वंशीविभूषितकरान्नवनीरदाभात्
पीताम्बरादरुणबिम्बफलाधरोष्ठात्।
पूर्णेन्दुसुन्दरमुखादरविन्दनेत्रात्
कृष्णात्परं किमपि तत्त्वमहं न जाने॥

अर्थात् कर-किसलयमें मधुर मुरलीको लिये हुए, नवनीरद-वर्ण, पीताम्बर-धारी, पके हुए बिम्बफलके समान आरक्त ओठोंवाले, राकाके चन्द्रमाको भी लज्जित करते हुए मुखवाले, कमल-नयन श्रीकृष्णसे परे मैं और किसी तत्त्वको नहीं जानता।

वेङ्कटनाथ 'पाञ्चरात्र-रक्षा'में एक स्थानपर लिखते हैं—

सव्यं पादं प्रसार्य श्रितदुरितहरं दक्षिणं कुञ्चयित्वा
जानुन्याधाय सव्येतरभुजमपरं नागभोगे निधाय।
पश्चाद् बाहुद्वयेन प्रतिभटशमने धारयन्शङ्खचक्रे
देवीभूषादिजुष्टो नवजलदनिभः पातु दिव्यः परो नः॥

अर्थात् बायें चरणको फैलाकर और दाहिनेको सिकोड़कर, दाहिने हाथको घुटनेपर रखकर और बायें हाथको शेषजीपर रखकर, ऊपरके दोनों हाथोंमें शङ्ख-चक्र धारण किये हुए, वक्षःस्थलपर लक्ष्मीजीके चिह्न तथा अलंकारोंसे अलंकृत, नील नीरदके समान वर्णवाले श्रीमान् दिव्य पर-तत्त्व नारायण हमारी रक्षा करें।

कवियोंकी कृतियोंमें

पुरातन और नूतन कविवरोंने पर-तत्त्वकी सपर्याके लिये अनेक कान्त पदावलियोंकी कमनीय मालाएँ सजा-सजाकर गूँथी हैं। संस्कृतके कालिदास, माघ, श्रीहर्ष आदि एवं हिंदीके सूर, तुलसी, केशव आदि कवियोंने राम और कृष्णके गुणचरित्रोंका उल्लेख करके अपनी लेखनीको पवित्र किया है। श्रीमद्भागवतकारने भगवद्गुणानुवादके विषयमें ठीक ही कहा है—

तव कथामृतं तप्तजीवनं
कविभिरीडितं कल्मषापहम् ।
श्रवणमङ्गलं श्रीमदाततं
भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जनाः ॥
(१० । ३१ । ९)

अर्थात् हे प्रभो ! इस भूवलयमें निवास करनेवाले वे मानव परम पुण्यात्मा हैं, जो आपके कलि-कल्मष-विनाशन, श्रुतिमधुर कथामृतका पान करते हैं, जिसे सत्कवियोंने अपने विभिन्न दृश्य और श्रव्य काव्योंका मूलाधार बनाया है और जो संतप्तोंके लिये जीवनरूप है ।

कवि कुल गुरु कालिदासने अपने 'रघुवंश'में लिखा है—

बहुधाप्यागमैर्भिन्नाः पन्थानः सिद्धिहेतवः ।
त्वय्येव निपतन्त्येव जाह्नवीया इवार्णवे ॥
(१० । २६)

अर्थात् हे भगवन् ! आपको प्राप्त करनेके लिये अनेक मार्ग शास्त्रोंने बताये हैं; किंतु वे सब भिन्न-भिन्न होते हुए भी आपमें इस प्रकार जा मिलते हैं, जैसे गङ्गाजीकी सब धाराएँ समुद्रमें ।

त्वय्यावेशितचित्तानां त्वत्समर्पितकर्मणाम् ।
गतिस्त्वं वीतरागाणामभूयः संनिवृत्तये ॥
(१० । २७)

अर्थात् हे भगवन् ! आपका निरन्तर चिन्तन करनेवाले, अपने समस्त कर्म आपको समर्पण करनेवाले वीतराग महात्माओंको आप अपने चरण-कमलोंमें रखते हैं । वे फिर संसार-बन्धनमें नहीं आते ।

अनवाप्तमवाप्तव्यं न ते किंचन विद्यते ।
लोकानुग्रह एवैको हेतुस्ते जन्मकर्मणोः ॥
(१० । ३१)

अर्थात् हे भगवन् ! आपके लिये न तो कोई वस्तु अप्राप्त है और न कोई वस्तु प्राप्तव्य ही है । फिर भी आप जो भूलोकमें समय-समयपर अवतीर्ण होकर विविध लीलाएँ करते हैं, उनका एकमात्र प्रयोजन आपका संसारपर अनुग्रह ही है ।

महिमानं यदुत्कीर्त्य तव संह्रियते वचः ।
श्रमेण तदशक्त्या वा न गुणानामियत्तया ॥
(१० । ३२)

अर्थात् हे भगवन् ! आपकी महिमाका कीर्तन करके जो हम अब चुप हो रहे हैं, उसका कारण यह नहीं है कि आपके गुण इतने ही हैं; प्रत्युत यह है कि अब हम थक गये हैं और आपके गुणोंके पूर्णरूपेण वर्णन करनेकी हममें शक्ति नहीं है ।

कविवर माघ 'शिशुपालवध'में लिखते हैं—

ध्येयमेकमपथे स्थितं धियः
स्तुत्यमुत्तममतीतवाक्पथम् ।
आमनन्ति यमुपास्यमादरा-
द्दूरवर्तिनमतीव योगिनः ॥
(१४ । ६०)

अर्थात् (युधिष्ठिरके प्रति श्रीकृष्ण-माहात्म्यका वर्णन करते हुए भीष्मपितामह बोले कि) योगिजन श्रीभगवान्‌को बुद्धिसे परे होनेपर भी एकमात्र ध्येय बताते हैं, अवर्णनीय होनेपर भी सर्वोत्तम स्तवनीय बताते हैं एवं अत्यन्त दूर होनेपर भी परमादरसे उपासना (निकट बैठाने)के योग्य बताते हैं ।

श्रौतमार्गसुखगानकोविद-
ब्रह्मषट्चरणगर्भमुज्ज्वलम् ।
श्रीमुखेन्दुसविधेऽपि शोभते
यस्य नाभिसरसीसरोरुहम् ॥
(१४ । ६९)

अर्थात् वेदमार्गके आनन्ददायक गानमें निष्णात ब्रह्माजी ही जिसमें भ्रमरके समान प्रतीत होते हैं, ऐसा श्रीभगवान्‌के नाभि-सरोवरका उज्ज्वल कमल श्रीलक्ष्मीजीके मुखरूपी चन्द्रमाके सांनिध्यमें भी विकसित होता है ।

सत्यवृत्तमपि मायिनं जगद्-
वृद्धमप्युचितनिद्रमर्भकम् ।
जन्म बिभ्रतमजं नवं बुधा
यं पुराणपुरुषं प्रचक्षते ॥
(१४ । ७०)

अर्थात् विद्वज्जन श्रीभगवान्‌को निष्कपट होनेपर भी

मायावी बताते हैं, सर्वलोक-पितामह होनेके नाते वृद्धतम होनेपर भी (बड़के पत्तेपर) सोनेवाला बालक बताते हैं, अजन्मा होनेपर भी (युग-युगमें) अवतार धारण करनेवाला बताते हैं और सर्वप्राचीन पुरुषको भी नवीन (नवयुवक—किशोर) बताते हैं ।

कविमुकुटमणि श्रीहर्षने अपने नैषधीय-चरितमें श्रीमन्नारायणकी गुणावलीका गान करके अपने कवित्वको सफल बनाया है । दिग्दर्शनार्थ—

निषधाधिपति महाराज नल उपासन-वेलामें स्तुति करते हैं—

स्वप्रकाश जड एष जनस्ते
वर्णनं यदभिलष्यति कर्तुम् ।
तन्वहर्पतिमहः प्रति स स्या-
न्न प्रकाशनरसस्तमसः किम् ॥
(२१ । ५४)

अर्थात् हे भगवन् ! आप स्वप्रकाश हैं । मैं जड आपकी स्तुति करनेकी जो इच्छा करता हूँ, वह ऐसी ही दुराप है, जैसे सूर्यदेवको प्रकाशित करनेके सम्बन्धमें अन्धकारकी इच्छा ।

लीलयापि तव नाम जना ये
गृह्णते नरकनाशकरस्य ।
तेभ्य एव नरकैरुचिता भी-
स्ते तु बिभ्यतु कथं नरकेभ्यः ॥
(२१ । ११२)

अर्थात् हे नरक-विनाशन ! आपके नामको जो लोग हँसीमें, खेलमें भी ले लेते हैं, उनसे नरकोंको ही डर लगने लगता है, उन्हें नरकोंसे डर कैसे हो सकता है ?

लङ्घयन्नहरहर्भवदाज्ञा-
मस्मि हा विधिनिषेधमयीं यः ।
दुर्लभं स तपसापि गिरैव
त्वत्प्रसादमहमिच्छुरलज्जः ॥
(२१ । ११७)

अर्थात् हे भगवन् ! श्रुति और स्मृतिमें लिखी हुई, पुण्यकर्मको करते रहनेका उपदेश देनेवाली एवं पापकर्मसे बचते रहनेका उपदेश देनेवाली आपकी आज्ञाओंका नित्य ही उल्लङ्घन करनेवाला मैं बड़ा निर्लज्ज हूँ; क्योंकि मैं स्तुतिमात्रसे आपकी उस कृपाका अभिलाषी हूँ, जो ऋषि-मुनियोंको दुष्कर तपस्याओंके द्वारा भी दुर्लभ है ।

कविवर लीलाशुक लिखते हैं—

मालाबर्हमनोज्ञकुन्तलभरां वन्यप्रसूनोक्षितां
शैलेयद्रवक्लृप्तचित्रतिलकां शश्वन्मनोहारिणीम् ।
लीलावेणुरवामृतैकरसिकां लावण्यलक्ष्मीमयीं
बालां बालतमालनीलवपुषं वन्दे परां देवताम् ॥
(कृष्णकर्णामृत ३ । ६६)

अर्थात् कुसुम-माला और मयूरपिच्छसे सुन्दर अलकावलीसे विभूषित, वनमालासे सुसज्जित, मलयज चन्दनका विचित्र तिलक मस्तकपर लगाये हुए, निरन्तर दर्शकोंके मनको हरनेवाले, लीलाके लिये वंशी बजाते समय सर्वत्र रसका संचार करनेवाले, तमालके समान नीली कान्तिवाले, मधुरमूर्ति पर-तत्त्व श्रीबालकृष्णको मैं प्रणाम करता हूँ ।

भगवन्माधुर्यके परिदर्शनसे परितृप्त एक सहृदय कविकी भावना है—

श्रुतिमपरे स्मृतिमपरे भारतमपरे भजन्तु भवभीताः ।
अहमिह नन्दं वन्दे यस्यालिन्दे परं ब्रह्म ॥

अर्थात् पुनरावर्तनके आवर्तोंसे विषम इस संसारसे त्रस्त होकर कुछ मुक्तिके साधक यदि वेद-वेदान्त पढ़ें तो पढ़ा करें, अन्य जन धर्मशास्त्रका मनन करें तो किया करें, अन्य व्यक्ति महाभारतका श्रवण करें तो किया करें, मैं तो यहाँ उन नन्दजीको ही प्रणाम करता हूँ, जिनके आँगनमें क्रीडासक्त परब्रह्म सदा सुलभ हैं ।

उत्तरभारतके महान् संत-कवि गोस्वामी तुलसीदासजी अपने रामचरितमानस (बालकाण्ड श्लोक ६ में) लिखते हैं—

यत्पादप्लवमेकमेव हि भवाम्भोधेस्तितीर्षावतां
वन्देऽहं तमशेषकारणपरं रामाख्यमीशं हरिम् ॥

अर्थात् मैं उन राम-नामवाले जगदीश्वर श्रीहरिको प्रणाम करता हूँ, जिनका चरण-कमल संसार-सागरको पार कर जानेकी इच्छावाले साधकोंके लिये सुदृढ़ जहाजका काम देता है और जो महत्तत्त्व आदि समस्त कारणोंसे भी परे हैं ।

श्रीविष्णुविषयक विविध विचारधाराएँ

(लेखक—पं० श्रीदीनानाथजी शर्मा शास्त्री, सारस्वत, विद्यावागीश, विद्यानिधि, विद्यावाचस्पति)

वेदोंमें श्रीविष्णुकी महिमा

'न ते विष्णो जायमानो न जातो देव महिम्नः परमन्तमाप ।'
(ऋक्० ७ । ९९ । २)

'हे विष्णुदेव ! कोई ऐसा प्राणी न तो पैदा हुआ है और न होनेवाला है, जिसने आपकी महिमाका अन्त पाया हो ।'

पुराणोंमें विष्णुदेवको जो महत्त्व प्राप्त है, उसके कारण कई भ्रान्त अर्वाचीन लोग श्रीविष्णुको 'पौराणिक देव' मानते हैं। यह उनका भ्रममात्र है। श्रीविष्णुको जो महत्त्व प्राप्त है, उसका कारण 'वेद' ही हैं।

वैसे सोचा जाय तो पुराण-साहित्य न तो कोई हीन साहित्य है और न अर्वाचीन ही। किंतु वेद एवं पुराण दोनों एक ही समयमें थे; किंतु श्रीब्रह्माजीने पहले पुराणोंका स्मरण किया; फिर वेदोंको अपने मुखसे कहा।

यह पुराणका प्रसिद्ध पद्य है—

प्रथमं सर्वशास्त्राणां पुराणं ब्रह्मणा स्मृतम् ॥
अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः ।
(श्रीशिवपुराण, वायुसंहिता, पूर्वखण्ड १ । ३१-३२)

'ब्रह्माजीने सब शास्त्रोंसे पहले पुराणका स्मरण किया। तत्पश्चात् श्रीब्रह्माजीके मुखसे वेद निकले।'

यह बात केवल इसी पुराणने नहीं कही है, किंतु अन्य पुराणोंमें भी यह स्पष्ट है। इस कथनकी सत्यताके विषयमें 'श्रीसनातनधर्मालोक' (७) (पृ० ३७७—३८५) में देखना चाहिये।

वेदोंमें श्रीविष्णुका विशेषरूपसे वर्णन है, परंतु 'स्थालीपुलाक' न्यायसे कुछ मन्त्र यहाँ उद्धृत किये जाते हैं—

प्र तद् विष्णुः स्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः ।
यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा ॥
(ऋक्० १ । १५४ । २)

वे श्रीविष्णुभगवान् अपने वीरोचित कर्मसे स्तुत हो रहे हैं। यहाँ उनकी उपमा सिंहसे दी गयी है। इससे नृसिंहावतारका भी बोध हो रहा है। 'भीमः'का अर्थ है—'भयजनक'। कृष्णयजुर्वेदके आरण्यकमें लिखा है—

'भीषा अस्माद् वातः पवते ।' (तै० आ० ८ । ८ । १)

'इस परमात्माके भयसे वायु नियमसे चलती है।' उसीके डरसे सूर्य एवं चन्द्रमाका समयपर उदय-अस्त हुआ करता है। उसीके भयसे पृथिवी स्थिर है। उसीके भयसे मृत्यु दौड़ा करती है।

'कु+चरः' से 'द्युलोकचारी' को 'पृथ्वीलोकचारी' बताकर उसका अवतार (अवतरण) बताया गया है। उत्तरार्धमें वामनावतारको संकेतित किया गया है, जिसके तीन बड़े-बड़े डगों (पादन्यासों) में सारे भुवन समा गये थे।

एक अन्य मन्त्रके देनेका लोभ भी मैं संवरण नहीं कर सकता। इससे वेद और पुराणकी 'एकवाक्यता' सिद्ध होती है। वह मन्त्र यह है—

विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्रवोचं यः पार्थिवानि विममे रजांसि ।
यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः ॥
(ऋक्० १ । १५४ । १)

अब इसीका रूपान्तर श्रीमद्भागवत-पुराणमें देखिये—

विष्णोर्नु वीर्यगणनां कतमोऽर्हतीह
यः पार्थिवान्यपि कविर्विममे रजांसि ।
चस्कम्भ यः स्वरंहसास्खलता त्रिपृष्ठं
यस्मात् त्रिसाम्यसदनादुरुकम्पयानम् ॥
(श्रीमद्भा० २ । ७ । ४०)

'अपनी प्रतिभाके बलसे पृथ्वीके एक-एक धूलि-कणको गिन चुकनेपर भी जगत्में ऐसा कौन पुरुष है, जो भगवान्की शक्तियोंकी गणना कर सके। जब वे त्रिविक्रम-अवतार लेकर त्रिलोकीको नाप रहे थे, उस समय उनके चरणोंके अदम्य वेगसे प्रकृतिरूप अन्तिम आवरणसे लेकर सत्यलोकतक सारा ब्रह्माण्ड काँपने लगा था। तब उन्होंने ही अपनी शक्तिसे उसे स्थिर किया था।'

'इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा नि दधे पदम् ।'
(ऋक्० १ । २२ । १७)

तब वेदको अवतारवाद भी इष्ट हुआ। इस प्रकार वेद एवं पुराणकी एकवाक्यता भी सिद्ध हो गयी।

२– श्रीविष्णुलोक वा गोलोक

ता वां वास्तून्युश्मसि गमध्यै यत्र गावो भूरिशृङ्गा अयासः।
अत्राह तदुरुगायस्य वृष्णः परमं पदमवभाति भूरि॥
(ऋक्० १। १५४। ६)

इस मन्त्रका अर्थ इस प्रकार है—'हे पत्नी-यजमान! हम तुम्हारे निवासार्थ उन लोकोंको चाहते हैं, जिनमें बड़े सींगोंवाली तथा तेज चलनेवाली गौएँ हैं। अर्थात् तुम्हारे लिये परलोकमें गोलोक चाहते हैं। वहाँ सबके द्वारा गाये जाते (स्तुति किये जाते) हुए विष्णुभगवान्‌का परमपद वैकुण्ठ शोभित हो रहा है।'

वैकुण्ठलोक एवं गोलोककी स्थिति सूर्यलोकके अन्तर्गत है, इसलिये श्रीयास्कमुनिने इसका सूर्यपरक अर्थ लगाया है। इसके अतिरिक्त उन्होंने अग्नि, वायु और सूर्य—इन तीन देवताओंमें ही अन्य देवताओंका अन्तर्भाव करके इस मन्त्रका अर्थ सूर्यपरक लगाया है। इसका अभिप्राय यह नहीं कि वे अन्य देवताओंको नहीं मानते। आज चन्द्रलोकमें निवासकी चर्चा चल रही है। चन्द्रमा सबसे नीचे है। उसके ऊपर तो अभी बुधलोक है, उससे ऊपर शुक्रलोक है, उसके ऊपर सूर्यलोक है। वहाँतक पहुँचनेमें वैज्ञानिकोंको अभी कई सहस्राब्दियाँ लगेंगी, पर वेद तो पहले पत्नी एवं यजमानोंको गोलोकमें निवासके लिये कह रहे हैं।

३–भगवान् विष्णुके अवतार धर्मरक्षा एवं लोकहितके लिये होते हैं

श्रीविष्णुका कार्य है—प्रजाका पालन। अतः प्रजाकी रक्षाके निमित्त अवतार भी भगवान् विष्णुके ही होते हैं। कई अर्वाचीन व्यक्ति श्रीमद्देवीभागवतपुराणके आधारपर श्रीविष्णुके अवतारोंकी निन्दा दिखलाते हैं। पर यह उनकी भूल है।

श्रीमद्देवीभागवतपुराणमें स्पष्ट कहा गया है—

युगे युगे विष्णुरवताराननेकशः।
करोति धर्मरक्षार्थं ब्रह्मणा प्रेरितो भृशम्॥
(४। २। १७)

इस श्लोकमें भगवान् विष्णुके अवतार युग-युगमें धर्म-रक्षार्थ ही बताये गये हैं।

ततस्तेनाथ शापेन नष्टे धर्मे पुनः पुनः।
लोकस्य च हितार्थाय जायते मानुषेष्विह॥
(४। १२। ९)

यहाँ भी उक्त पुराण शापके कारण अवतारका प्रयोजन लोक-कल्याण ही दिखलाता है।

४–शिव-विष्णुकी एकता

कई व्यक्तियोंका विश्वास है कि पुराणोंमें शिव एवं विष्णुकी अनेकता बताकर प्रजामें कलहका सूत्रपात किया गया है; परंतु हम समझते हैं कि यह कथन अदूर-दर्शियोंका है।

शिवपुराणकी रुद्रसंहिताके सृष्टि-खण्डमें कहा गया है—
'त्रिधा भिन्नो ह्यहं विष्णो ब्रह्मविष्णुभवाख्यया॥'
(९। ५७)

शिवजी कहते हैं कि 'मैं ब्रह्मा, विष्णु और शिव—इन तीन नामोंसे तीन भागोंमें बँटा हुआ हूँ।' यहाँ उपाधि-भेद बताया गया है।

नारदपुराणमें इन देवोंका परस्पर अभेद कहा गया है—

हरिशंकरयोर्मध्ये ब्रह्मणश्चापि यो नरः।
भेदं करोति सोऽभ्येति नरकं भृशदारुणम्॥
हरं हरिं विधातारं यः पश्यत्येकरूपिणम्।
स याति परमानन्दं शास्त्राणामेष निश्चयः॥
(६। ४८-४९)

'जो शिव, ब्रह्मा और विष्णुमें भेदका प्रसार करता है, वह घोर नरकमें जाता है। जो इनमें एकता देखता है, वह परमानन्दको प्राप्त करता है—यही शास्त्रोंका निश्चय है।'

हमारे यहाँ साम्प्रदायिक कलहोंका सूत्रपात नहीं हुआ करता। देखिये—'द्वन्द्वे घि' (अष्टा० २। २। ३२)—इस पाणिनीय सूत्रसे 'घि'संज्ञावाला शब्द पहले रखा जाता है। इसका उदाहरण है—'हरिहरौ'। 'हरि' विष्णुको कहते हैं, 'हर' महादेवको। कट्टर शैव भी इस सूत्रके अनुसार प्रत्येक दशामें 'हरि' को पहले ही रखेगा। 'हरहरौ' कहना अशुद्ध माना जायगा।

एक अन्य सूत्र है—'अल्पाच्तरम्' (अष्टा० २ । २ । ३४) । इस सूत्रके अनुसार थोड़े अचोंवाला पहले ही रहेगा। जैसे—'शिवकेशवौ'—यहाँ थोड़े अच्वाला 'शिव' शब्द पहले ही रहेगा और बहुत अचोंवाला 'केशव' शब्द पीछे। कट्टर वैष्णव भी 'केशव-शिवौ' कभी नहीं कहेगा; नहीं तो अशुद्धता होगी।

एक और पाणिनिसूत्र है—'अजाद्यदन्तम्' (२ । २ । ३३) । इसके अनुसार अजादि और अदन्तको पहले ही लिखा जाता है। इसका उदाहरण है—'ईशकृष्णौ'। यहाँ वैष्णव भी ईश (महादेव) को पहले ही रखेगा।

इससे स्पष्ट है कि हमारे यहाँ साम्प्रदायिक कलहोंकी सृष्टिके लिये स्थान नहीं है।

५–अवतार एवं उसके प्रयोजन

पहले हम बता चुके हैं कि अधर्मके निवृत्त्यर्थ जहाँ मानुषी शक्ति सफल नहीं हो पाती, वहाँ भगवान्‌की दिव्य शक्ति वैकुण्ठधामसे मनुष्यलोकमें अवतीर्ण होती है। वे अवतार कर्मभूमि भारतवर्षमें ही होते हैं और यह भारत संसारका केन्द्र होनेसे इसमें सब ठीक-ठाक हो जानेपर अन्यत्र भी सब ठीक-ठाक हो जाता है।

६–भगवान्‌के अनन्त अवतार

जहाँ किसी आपत्तिमें पड़े हुए सज्जनकी भगवान्‌के द्वारा जिस-किसी भी रूपमें रक्षा होती है, वही रूप वहाँ अवतार माना जाता है। इसीलिये कहा गया है—'अवतारा ह्यसंख्येयाः'।

७–भगवान्‌के पूर्णावतार

भगवान्‌के पूर्णावतार दो हैं— एक श्रीराम, दूसरे श्रीकृष्ण। श्रीराम सूर्यवंशके अवतार हैं। सूर्यकी बारह राशियाँ होती हैं। उन राशियोंमें भगवान् सूर्य पूर्ण होते हैं। अतः सूर्यवंशी श्रीराम भी पूर्णावतार हैं।

श्रीकृष्णचन्द्र चन्द्रवंशके अवतार हैं। चन्द्रमाकी सोलह कलाएँ होती हैं। अतः श्रीकृष्ण भी सोलह कलाके पूर्णावतार हैं।

८–अंशावतार

वेदोंमें वामनावतारका अधिक वर्णन मिलता है—'इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्।' (ऋक्० १ । २२ । १७) । 'विचक्रमे' में 'वेः पादविहरणे' (अष्टा० १ । ३ । ४१) इस सूत्रके अनुसार पाँव रखनेके अर्थमें 'वि' पूर्वक 'क्रम' धातुसे आत्मनेपद होता है। वामनावतारमें तीन डग रखना इतिहास-प्रसिद्ध है। उन्हींमें सारा ब्रह्माण्ड व्याप्त हो गया था, ऐसा मन्त्र हमने आरम्भमें भी दिया है।

वराहावतारका भी संकेत वेदमें आया है—'वराहेण पृथिवी संविदाना सूकराय वि जिहीते मृगाय ॥' (अथर्व० १२ । १ । ४८) । यह मन्त्र 'पृथिवीसूक्त' में है। पृथिवीके उद्धारमें वराहावतारका नाम आता है। उक्त मन्त्रमें वराह, सूकर, मृग शब्द इस विषयको स्पष्ट करते हैं।

'कुचरो गिरिष्ठाः' (यजु०, माध्यं० ५ । २०) के भाष्यमें उवट-महीधरने मत्स्य-कूर्मादि अवतारोंका स्मरण किया है। विष्णुभगवान् प्रजाके पालक हैं। जब प्रजापर अत्याचार होने लगता है, तब वे अवतार धारण करके उस अत्याचारका विनाश करते हैं।

अवतारके बीज वा सिद्धान्त वेदमें मिलते हैं, यह हम पूर्वमें सूचित कर चुके हैं। पुराणोंमें उसीको अङ्कुरित, पल्लवित, पुष्पित एवं फलित करके उसे उपबृंहित किया गया है। इन विषयोंकी अत्यन्त स्पष्टता हमारी 'श्रीसनातन-धर्मालोक' * की ग्रन्थमालामें देखी जा सकती है। उससे धर्मविषयक सभी आशङ्काएँ दूर हो सकती हैं।

---

* 'श्रीसनातनधर्मालोक' ग्रन्थमालाके अबतक ११ पुष्प निकल चुके हैं। १२ वें पुष्पकी तैयारी हो रही है। १-२ तथा तृतीय पुष्पका द्वितीय संस्करण भी हो चुका है। ४-५ पुष्प समाप्त हो चुके हैं। प्रायः प्रत्येक पुष्पके पृष्ठ एक सहस्रके लगभग होते हैं। अतः मँगानेवालोंको उन्हें 'आलोक ग्रन्थमाला, फरर्ड बी १९ पी०—लाजपतनगर, नयी दिल्ली २४' से मँगाना चाहिये।

अव्यक्त विष्णुकी उपासना

(लेखक—डा० श्रीयुत वी. वरदाचारी)

वैष्णव सम्प्रदाय उस सम्प्रदायका नाम है, जो विष्णुकी भगवत्तामें विश्वास करता है और अन्य देवताओंकी आशा छोड़कर केवल विष्णुकी उपासनाका पक्षपाती है।

संसारकी यथार्थतामें विश्वास करनेके कारण वैष्णव सम्प्रदाय विष्णुको अव्यक्त और व्यक्त—दोनों मानता है। जैसे—

एकानेकस्वरूपाय स्थूलसूक्ष्मात्मने नमः।
अव्यक्तव्यक्तरूपाय विष्णवे मुक्तिहेतवे॥
(विष्णुपुराण १। २। ३)

'जो एक होकर भी नाना रूपवाले हैं, स्थूल-सूक्ष्म हैं, अव्यक्त (कारण) एवं व्यक्त (कार्य) रूप हैं तथा [अपने अनन्य भक्तोंकी] मुक्तिके कारण हैं, उन श्रीविष्णुभगवान्को नमस्कार है।'

अव्यक्तरूपमें प्रभु इन्द्रियोंकी पहुँचसे परे हैं और कारणावस्थामें हैं तथा व्यक्तरूपमें वे कार्यावस्थामें अवस्थित हैं, जो उनका स्वयंरूप है।

अव्यक्तरूप केवल ज्ञान है; जिसमें सत्त्व, रज और तमसे निर्मित प्रकृतिका लेश भी नहीं है। वैकुण्ठ, जहाँ वे अव्यक्तरूपमें उपस्थित रहते हैं, अप्राकृतिक है अर्थात् प्रकृतिसे निर्मित नहीं है; बल्कि वह शुद्ध सत्त्वसे बना है। यथा—

'अप्राकृतं सुरैर्वन्द्यम्'—('जितन्ते' स्तोत्र १। २०)

उस अवस्थामें वे 'सदाविष्णु' कहलाते हैं और वासुदेवके साथ उनका तादात्म्य होता है। सदाविष्णु ज्ञानस्वरूप हैं (विष्णुपुराण ६। ४। ४३) और ज्ञान, वीर्य, बल, ऐश्वर्य, शक्ति और तेज—इन छः गुणोंसे निर्मित उनका शरीर है। वे हेय गुणोंसे मुक्त हैं, इसी कारण 'निर्गुण' कहलाते हैं। यथा—

ज्ञानशक्तिबलैश्वर्यवीर्यतेजांस्यशेषतः।
भगवच्छब्दवाच्यानि विना हेयैर्गुणादिभिः॥
(विष्णुपुराण ६। ५। ७९)

''त्याग करनेयोग्य [त्रिविध] प्राकृत गुण [और उसके परिणाम क्लेश] आदिको छोड़कर ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, वीर्य और तेज आदि सद्गुण ही 'भगवत्' शब्दके वाच्य हैं।''

उनके कोई नाम-रूप नहीं हैं। मनुष्य उनका अनुभव न कर सकनेके कारण अवताररूपमें उनकी अर्चना करता है। यथा—

नामरूपं न यस्यैको योऽस्तित्वेनोपलभ्यते॥
यस्यावताररूपाणि समर्चन्ति दिवौकसः।
अपश्यन्तः परं रूपं नमस्तस्मै महात्मने॥
(विष्णुपुराण १। १९। ७९-८०)

'जिनका कोई भी नाम अथवा रूप नहीं है और जो अपनी अद्वितीय सत्तासे उपलब्ध होते हैं, जिनके पर-स्वरूपको न जानते हुए ही देवतागण उनके अवतार-शरीरोंका सम्यक् अर्चन करते हैं, उन महात्माको नमस्कार है।'

महाभारतमें इस अव्यक्त विष्णु और केशवको अभिन्न बतलाया गया है। यथा—

यत्तदक्षरमव्यक्तममृतं ब्रह्म शाश्वतम्।
वदन्ति पुरुषव्याघ्र केशवं पुरुषर्षभम्॥
(शान्तिपर्व २१०। १४)

'पुरुषसिंह! पुरुषोत्तम केशवको ही अक्षर, अव्यक्त, अमृत एवं सनातन ब्रह्म कहते हैं।'

प्रभुका अव्यक्त स्वरूप इन्द्रियोंकी पहुँचसे परे है। केवल सूक्ष्मबुद्धिके द्वारा वे जाने जा सकते हैं। यथा—

'अतीन्द्रिय नमस्तुभ्यं लिङ्गैर्व्यक्तैर्न मीयसे।'
(महाभारत, शान्तिपर्व २०९ दाक्षिणात्य पाठ)

'इन्द्रियातीत परमेश्वर! आपको नमस्कार है। व्यक्त लिङ्गोंद्वारा आपका ज्ञान होना असम्भव है।'

सदाविष्णु अव्यक्त हैं, मन्त्रमें स्थित हैं और जप तथा योग-साधनाके द्वारा उनकी उपासना होती है। योगके आरम्भमें महाविष्णुकी पूजा की जाती है—

सर्वशक्तिमयो विष्णुः स्वरूपं ब्रह्मणः परम्।
मूर्तं यद्योगिभिः पूर्वं योगारम्भेषु चिन्त्यते॥
(विष्णुपुराण १। २२। ६१)

'सर्वशक्तिमय विष्णु ही ब्रह्मके पर-स्वरूप तथा मूर्त-स्वरूप हैं, जिनका योगिजन योगारम्भके पूर्व चिन्तन करते हैं ।'

वह ज्ञानके द्वारा जाना जाता है । यथा—

'ज्ञानदृश्यो ह्यसौ स्मृतः ।'

(महाभारत, शान्तिपर्व ३५१ । २)

यह यौगिक साधना 'मानसयाग' और 'बहिर्याग' कहलाती है तथा लक्ष्मीतन्त्र अ० ३६, परमेश्वरसंहिता अ० ५, श्रीप्रश्नसंहिता अ० ३, अहिर्बुध्न्यसंहिता अ० ३१ और सनत्कुमारसंहिता, ऋषिरात्र अ० २ में वर्णित है ।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि अति प्राचीन कालमें योग-साधनके द्वारा अव्यक्त विष्णुकी उपासना होती थी । उस समय, जैसा कि परमेश्वरसंहितासे स्पष्ट होता है, व्यक्त विष्णुकी उपासनामें भी यौगिक साधनाकी आवश्यकता पड़ती थी ।

वैदिक विष्णु

(लेखक—डॉ० श्रीमुन्शीरामजी शर्मा 'सोम')

व्याकरणके अनुसार 'विष्णु' शब्द 'विष्लृ' धातुसे बनता है, जिसका अर्थ है—व्यापक होना । "वेवेष्टि, व्याप्नोति इति विष्णुः—जो सबमें व्यापक है, वह 'विष्णु' है ।" परात्पर सत्ता सर्वव्यापक होनेके कारण 'विष्णु' कही जाती है । इसी व्यापकताके भावको लेकर अन्य शक्तियोंको भी विष्णुकी संज्ञा प्राप्त हुई है । सूर्य अपनी किरणोंके द्वारा लोक-लोकान्तरोंमें व्याप्त हो जाता है और सबको प्रकाशमय बना देता है; अतः सूर्यको भी 'विष्णु' कहा जाता है । 'शतपथ ब्राह्मण'में यज्ञको भी 'विष्णु' कहा गया है—'यज्ञो वै विष्णुः' । यज्ञकुण्डमें जो आहुतियाँ पड़ती हैं, वे अग्नि और वायुके संसर्गसे वायुमण्डलमें व्याप्त हो जाती हैं । यजमान यज्ञ करता है, परंतु उस यज्ञका फल बहुत दूर-दूरतक पहुँचकर अनेक रोगोंका शमन करता है, प्रजामें स्वास्थ्यका संचार करता है और यजमानको भी समृद्ध बनाता है । यज्ञोंके कई भेद हैं । उनमें आज्यकी तो विभिन्नता रहती ही है, उनके प्रयोगमें मन्त्रपाठ भी विभिन्न होते हैं । जो सामग्री अश्वमेध-यज्ञके लिये है, उसका प्रयोग सौत्रामणि-यज्ञमें नहीं हो सकता । जो मन्त्र वाजपेयमें पढ़े जाते हैं, वे अश्वमेधमें नहीं । यह विभिन्नता सोद्देश्य है । यजमानकी जैसी कामना है, वैसी ही यज्ञकी सामग्री होनी चाहिये और तदनुकूल ही मन्त्रपाठ होना चाहिये । सामग्री तथा मन्त्र दोनोंमें शक्ति निहित है । इस प्रकार यज्ञ और उसके अनेक भेद कई दृष्टियोंसे यजमान तथा प्रजा—दोनोंको लाभ पहुँचाते हैं । इसी व्याप्तिके कारण यज्ञको भी 'विष्णु' संज्ञा प्राप्त हुई है । वैष्णवधर्मकी व्यापकताका भी यही आधार है । आप भले ही अपने अन्तस्तलमें शाक्त हों और भले ही बाहरसे अपनेको शैव घोषित करते हों, परंतु सभीमें आपका रूप वैष्णव ही होना चाहिये । व्यक्ति संकीर्ण है तो समाज व्यापक है । गुजराती गीतमें, जो महात्मा गांधीको अत्यन्त प्रिय था, इसी व्यापक भावनाका समावेश है—

'वैष्णव जन तो तेने कहिये, जे पीड़ पराई जाणे रे ।'

अपनी पीड़ाका अनुभव तो सभीको होता है; परंतु वह व्यक्तिगत है, एक शरीरतक सीमित है । पराई पीड़ामें व्यापकताका भाव है । यही 'वैष्णवता' है ।

विष्णुकी व्यापकतामें तीन पद हैं । श्रुति भगवतीके शब्दोंमें—

'त्रीणि पदा विचक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः ।
अतो धर्माणि धारयन् ॥

(यजुर्वेद ३४ । ४३)

विष्णु 'गोपा' हैं । 'गो' का एक अर्थ भूमि है, दूसरा गौ और तीसरा किरण अथवा इन्द्रिय । विष्णु पृथ्वीका पालन करनेवाले हैं । पृथ्वीका अर्थ पृथिवी भी है और उपलक्षणद्वारा उससे समस्त ब्रह्माण्डका भी बोध होता है । परम प्रभु निखिल ब्रह्माण्डका पालन करनेवाले हैं, अतः वे 'गोपा' हैं । 'बृहस्पति' शब्दमें भी कुछ इसी प्रकारकी विशेषता है—

बृहतां—जगतां पतिः इति बृहस्पतिः ।

ब्रह्माण्डमें 'ब्रह्म' शब्दका अर्थ 'बृहत्' ही है । जो 'बृहत्'—ब्रह्माण्डोंका धारण और पालन करनेवाला है, उसे 'बृहस्पति'

भी कहा जा सकता है। गोका जो 'गौ' अर्थ है, उसमें भी एक विशेष तत्त्व सक्रिय रहता है। गौ सरल है, सात्त्विक है, उसका दुग्ध तेजोमय है। आँखोंकी ज्योतिके लिये गोदुग्ध अत्यन्त लाभकारी माना गया है। समाजमें ब्राह्मण इसी 'गो' का प्रतिनिधि है। उसमें भी सरलताके साथ तेजोमयता रहती है और गौ जैसे स्वास्थ्यके क्षेत्रमें अन्नदान-प्रक्रियामें लाभकारी है, वैसे ही ब्राह्मण ज्ञान-दानमें, प्रकाश-वितरणमें। आर्य-संस्कृतिमें गौ और ब्राह्मण—दोनोंका प्रतिपालक वन्दनीय समझा गया है। भगवान् इन दोनोंमें निहित सरलता और प्रकाशके रक्षक हैं। 'गो'का अर्थ इन्द्रिय या किरण भी है। शरीरके भीतर भरा हुआ चैतन्य इन्द्रियोंके द्वारा ही बाहर अभिव्यक्त होता है। सूर्य अपनी किरणोंके द्वारा ही प्रकाशको विकीर्ण करता है। भगवान्की किरणें या इन्द्रियाँ वे महापुरुष हैं, जो भगवान्के अपने बनकर समग्र समाजके लिये जीवन-धारण करते हैं। इन्हें 'विभूति' भी कहा जाता है। भगवान्की ये दैवी विभूतियाँ मानो भगवान्की किरणें हैं। विष्णु 'गोपा' होनेके साथ 'अदाभ्य' भी है। 'अदाभ्य'का अर्थ है—जिसे कोई न दबा सके। लौकिक राजाओंको उनके मन्त्री या सेनापति दबा लेते हैं। जायसीने कविको भी इसी प्रकारका लिखा है—'राजहु सों राखै अरगला।' परंतु भगवान् विष्णु ऐसे राजा नहीं हैं। वे 'अदाभ्य' हैं, उन्हें कोई अर्गला या बन्धनमें नहीं रख सकता। वे निर्बन्ध हैं और समग्र प्रपञ्चको अपने शासनमें अनुबद्ध कर रहे हैं। वायु उन्हींके निर्देशमें गतिमान् बनता है। अग्निकी दाहकता उन्हींके कारण है। वे सूर्योंके भी सूर्य हैं। जीव उन्हींके शासनमें आबद्ध रहकर विविध योनियोंमें भ्रमण करता है। जीव क्लेश, कर्म-विपाक और आशय—तीनोंसे परामृष्ट हुआ अपनी स्वाधीनता खो बैठता है। परंतु भगवान् इस प्रकारके क्लेश-कर्मादिके बन्धनसे पृथक् हैं। न उन्हें क्लेश दबा सकते हैं और न वासनाएँ। अपने इसी स्वभावके कारण वे धर्मोंको धारण कर रहे हैं। भगवान्के धर्म सृजन, पालन तथा संहारमें एक ओर दिखायी देते हैं, तो दूसरी ओर उनके धर्मोंका प्रकाश जीवोंके कर्म-फल-भोगमें दृष्टिगोचर होता है। इन सबसे भी ऊपर है उनका कारुण्य, जो भक्तोंपर तरण-तारणके रूपमें तथा उनके रक्षणमें दिखायी देता है। कबीरने अपने भगवान्को छप्पर फाड़कर देनेवाला लिखा है। बाइबिलमें क्राइस्ट एक रोटीसे अनेक संतोंको तृप्ति देते हैं। मूसाका वृत्तान्त भी ऐसा ही है। नानक, नामदेव आदि भक्तोंके सम्बन्धमें इसी प्रकारकी गाथाएँ प्रचलित हैं। इन संतोंके पास भगवान्के अतिरिक्त अन्य कुछ भी अपना नहीं था। प्रभुकी यह करुणा सभीको अपने जीवनमें अनुभूत होती है। एक दिन पहले ताप अपनी भीषणतासे संसारभरको संतप्त कर रहा था। दूसरे ही दिन आँधी आयी और पानी बरसा। जगत् और जीव सभी प्रसन्न हो उठे। यह कौन है, जो संतापकी विभीषिकामें अपनी कारुण्य-वर्षा करके सबको आह्लादित करता रहता है? सघन वन अपनी नीलिमामें आकर्षण रखते हैं तो विद्युत् अपनी तड़तड़ाहटमें भूकम्प पैदा कर देती है। प्रभुके ये दो रूप उनकी करुणाके ही दो पार्श्व हैं। दोनोंमें उनकी करुणा छिपी पड़ी है। मानवके सुख-दुःखमें विवेकी पुरुष उसीकी किरणोंके दर्शन करते हैं। वेदने इन्हें 'केतु' कहा है—'देवं वहन्ति केतवः।' ये केतु हैं, ध्वजाएँ हैं, किरणें हैं, जो प्रभुका ज्ञान कराया करती हैं; उसके अस्तित्वका भान इन्हींके द्वारा हुआ करता है—

'ऋतस्य मा प्रदिशो वर्धयन्ति'

'ज्ञानकी एक-एक किरण उस प्रभुतक पहुँचानेवाली है।'

धर्मोंका धारण इस प्रकार प्रभुके द्वारा ही हो रहा है और विष्णुकी प्रभविष्णुताका ज्ञापक है। तीन पग क्या हैं? महर्षि यास्कने तीन पगोंकी व्याख्यामें पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्युलोकका नाम लिया है। सूर्यके पग इन्हीं तीन स्थानोंपर पड़ते हैं। दिव्यताका आधान पृथ्वीपर, अग्निमें, उसके ऊपर अन्तरिक्षस्थानीय विद्युत्में और उसके भी ऊपर द्युस्थानीय सूर्यमें है। यह दिव्यता ही हमें प्रभुतक ले जाती है, उससे संधि करा देती है।

पुरुषसूक्तमें इन तीनों पगोंको 'एकपाद' कहा गया है। त्रिपाद इनसे भी ऊर्ध्व तथा अमृतरूप माने गये हैं। एकपादमें रचना है, प्रकृति-प्रसार है, जीवोंके नाना योनिगत रूप हैं, तो त्रिपाद् इस प्रपञ्चसे शून्य एकान्त अमृत अवस्था है। निम्नाङ्कित मन्त्रमें इन दोनों स्थितियोंका वर्णन उपलब्ध होता है—

यस्य त्रीपूर्णा मधुना पदा-
न्यक्षीयमाणाः स्वधया मदन्ति।
य उ त्रिधातु पृथिवीमुत द्या-
मेको दाधार भुवनानि विश्वा॥

(ऋग्वेद १। १५४। ४)

भगवान्के त्रिपाद् या तीन पद मधुसे पूर्ण, अक्षीयमाण—कभी क्षीण न होनेवाले और स्वधा अर्थात् अपनी धारण-शक्तिसे सम्पन्न हैं और निरन्तर आनन्दसे परिपूर्ण हैं । एक पदमें जो पृथ्वीसे द्यावातकका फैलाव है, वह त्रिधातु अथवा त्रिगुणात्मक है । यह त्रिगुणात्मकता प्रकृतिकी है । सत्त्व-रज-तम—तीन गुणोंका ही न्यूनाधिक्य इस ब्रह्माण्डभरमें प्रतिभात हो रहा है । द्यावामें सत्त्वगुणका आधिक्य है, मध्यस्थानीय लोकोंमें रजका और पृथ्वीमें तमका । परंतु न पृथ्वी सत्से शून्य है और न द्यावा तमसे । तीनों ही गुण कहीं अधिक, तो कहीं न्यूनमात्रामें ब्रह्माण्डभरमें पाये जाते हैं । तीनोंकी साम्यावस्था मूल प्रकृतिमें है । इस त्रिधातु अर्थात् त्रिगुणात्मक ब्रह्माण्डको, जिसमें अनेक भुवन संस्थित हैं, एक सर्वव्यापक विष्णु भगवान् ही धारण कर रहे हैं । वे एक हैं, परंतु बड़े आश्चर्यमय हैं और अपने व्रतोंके कारण महान् उग्र अर्थात् तेजस्वी भी हैं । विष्णुकी इन्हीं विशेषताओंका द्योतक निम्नाङ्कित मन्त्र भी है—

'इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा नि दधे पदम् । समूढमस्य पाᳫंसुरे स्वाहा ॥' (यजुर्वेद ५ । १५)

जिसे हम त्रिपाद् पुरुषकी संज्ञा देते हैं, उसे परम पद भी कहा जाता है । इस परम पदको प्राप्त करनेके लिये तीन साधनोंका वर्णन वेदमें हुआ है—

> तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवाᳫंसः समिन्धते ।
> विष्णोर्यत् परमं पदम् ॥ (यजु० ३४ । ४४)
>
> तद्विष्णोः परमं पदᳫंसदा पश्यन्ति सूरयः ।
> दिवीव चक्षुराततम् ॥ (वही ६ । ५)

परम पदकी प्राप्ति उन्हींको होती है, जो जागरूक, सावधान तथा पुरुषार्थशील होते हैं, जो 'विप्र' अर्थात् व्यापक ज्ञानवाले हैं और जो 'विपन्यु' अर्थात् भक्त हैं । इन्हीं तीन विशेषताओंको काण्डत्रयका नाम भी दिया गया है; ज्ञानकाण्ड, कर्मकाण्ड तथा उपासनाकाण्ड तीनों मिलकर प्रभु-प्राप्तिके साधन बनते हैं । इन तीनों साधनोंका समन्वय 'सूरि' शब्दमें होता है । 'सूरि' ज्ञानी है, कर्मकाण्डी है तथा भक्त है । दूसरे मन्त्रमें इसीलिये कहा गया है कि विष्णुके परम पदका दर्शन सूरियोंको सदैव होता रहता है । द्यावामें जैसे सूर्य आँख बनकर विस्तृत होता है, फैलता है, वैसे ही परम पदमें प्रकाश फैला हुआ दिखायी देता है । विष्णुसूक्तमें अनेक सींगोंवाली तथा गर्भवती गौओंका भी वर्णन आता है । सूर्यकी किरणें भी अनेक सींगोंवाली गायें हैं । सूर्यकी किरणोंमें सात रंग माने जाते हैं । सूर्यको हजारों रश्मियोंवाला भी कहा जाता है । इसी आधारपर वह सहस्राक्ष, अजर और भूरिरेता भी है । सूर्यके भी सूर्य विष्णुभगवान् हैं । पुरुषसूक्तमें उन्हें सहस्रों सिरों, सहस्रों आँखों और सहस्रों पैरोंवाला कहा गया है । यह सब दृश्यात्मक प्रपञ्च उन्हींकी महिमा है । इस विश्वका एक-एक भाग प्रभुकी महिमाका व्याख्यान कर रहा है । भगवान् विष्णु इससे भी श्रेष्ठ हैं और इस समग्र विश्वको अतिक्रान्त करके विद्यमान हैं । हमारे ऋषि तो ऐसी बात कहते ही रहे हैं, पश्चिमके वैज्ञानिक भी अब इस अतिक्रान्त अवस्थाका उल्लेख करने लगे हैं ।

'Transcendentalism' पर अनेक ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं । जर्मनीका प्रसिद्ध क्रान्ती लेखक तथा दार्शनिक नीत्शे भी इस अतिक्रान्तवादमें विश्वास रखता था । वह कहा करता था कि इन चर्चवालोंने ईश्वरको मार डाला है, परंतु साथ ही उसकी यह आस्था भी थी कि कोई तत्त्व इस ब्रह्माण्डको अतिक्रान्त करके भी विद्यमान है । पश्चिमके वैज्ञानिकोंमें सर जेम्स जीन्स, एडिंगटन तथा आइन्स्टीनके नाम भी उल्लेखनीय हैं । ये सभी वैज्ञानिक सर्वव्यापक परमात्माकी सत्तामें विश्वास रखते हैं । वेदने सृष्टिके आदिमें ही कह दिया था —'ज्ञानकी एक-एक किरण हमें विष्णुभगवान् तक ले जाती है; वह एक है, परंतु उसे विभिन्न वाणियोंमें विभिन्न नामोंद्वारा पुकारा गया है ।' विष्णु जहाँ सर्वव्यापक हैं, वहाँ वे अनन्तकर्मा, अनन्तज्ञानी और अनन्त रक्षण-शक्तियोंसे समन्वित भी हैं । उनके कर्म हम जीवोंके-से कर्म नहीं हैं । हमारे कर्म-कलापमें कभी नियमबद्धता होती है और कभी नियम-राहित्य; कभी वरणीय व्रत रहता है, कभी नहीं । हम अपने कर्मोंमें व्रतों और नियमोंका संयोजन या तो महान् पुरुषोंके आचरणोंको देखकर करते हैं या प्रभुकी कृति अर्थात् सृष्टिमें नियमों और व्रतोंको देखकर; और उनसे शिक्षा ग्रहण करके व्यवस्थित जीवनकी ओर प्रयाण करते हैं । प्रभुकी सृष्टिमें सर्वत्र व्यवस्था है, नियमबद्धता है । यहाँका एक-एक ग्रह, एक-एक पिण्ड और एक-एक लोक व्रतमय है । यह व्रत इन्हें स्वभावसे ही प्राप्त है । सभी व्रतोंके अनुकूल चल रहे हैं । सभीका पथ स्वस्तिका पथ है, स्वस्ति व्रतबद्धतामें है, अव्रतमें नहीं । निम्नाङ्कित मन्त्र इसी तथ्यका प्रतिपादन कर रहा है—

विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे ।
इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ (यजुर्वेद ६ । ४)

इन्द्र इन्द्रियोंका अधिष्ठाता जीवात्मा है । उसका उपयुक्त सखा, जो सदैव उससे संयुक्त रहता है, विष्णु है । हमें उसके सखा-भावतक पहुँचनेके लिये व्रती बनना पड़ता है । ये व्रत हमें उसकी कृतिमें दिखलायी देते हैं । सूर्य नियत समयपर हमारे सामने उदय होता है और नियत समयपर अस्त हो जाता है । चन्द्रमाकी गतिमें कृष्णपक्ष और शुक्लपक्ष क्रमबद्ध रूपमें आते रहते हैं । इसमें कहीं वक्रता नहीं आ पाती । जैसे सभीका यह सहज स्वभाव बना हुआ हो । सभी ब्रह्माण्डीय विधानमें चल रहे हैं । श्रद्धा और तपकी भावना सबके साथ संलग्न है । विनीत भावसे जैसे सब-के-सब एक-दूसरेकी सहायता करते हुए सेवाव्रती बने हुए हों । प्रभुके द्वारा धारित-स्थापित इन व्रतोंको देखकर ही हम अपने जीवनमें सहज स्वभावका आधान करते हैं, सदाचारी बनते हैं, आचारपरायण बनकर अपने तथा अपनोंके विकासमें पुरुषार्थ-शील होते हैं, तपश्चर्या करते हैं और जैसा गीता कहती है— **'श्रद्धामयोऽयं पुरुषः'**, हम श्रद्धावान् बनते हैं । मानव अपने व्यक्तित्वका विकास इन्हीं व्रतोंका आश्रय लेकर करता है । विष्णु 'उरुगाय' हैं । उनकी कीर्ति-गाथा, उनका विक्रम प्रशंसनीय है । वे पार्थिव तथा उत्तरसधस्थ—दोनोंके स्तम्भ हैं । समस्त भुवन उन्हींके अंदर निवास पाते हैं **'अधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा'** । हमारी स्तुति उन्हींके लिये की जानी चाहिये । दिव्यताकी कामना करनेवाले उन्हींके निर्देशित पथपर चलकर आनन्द प्राप्त करते हैं—**'नरो यत्र देवयवो मदन्ति'** । मधुका उत्स इन्हीं विष्णुके परमपदमें है । यह परमपद अपनी विशिष्ट दीप्तिसे दीप्तिमान् है । ऋग्वेद १ । १५६ । २ तथा ३ में विष्णुको 'पूर्व्य' और 'जगत्‌का उत्पादक' कहा गया है । इसी स्थलपर यह भी कहा गया है कि 'उनके नामका कीर्तन स्तोता या भक्तको यश तथा श्रीसे सम्पन्न कर देता है ।'

'शतपथ ब्राह्मण'में यज्ञको 'विष्णु' और ऋग्वेदके 'पुरुष-सूक्त'में पुरुषको 'यज्ञ' माना गया है । ऋषियोंने यज्ञका आरम्भ और धर्मकी स्थापना इसीके आधारपर की । जीवनके समस्त नियम उन्होंने यहींसे प्राप्त किये । वैष्णव आचार्योंने पुरुष और विष्णुमें एकता स्थापित की है । वैदिक वाङ्मयमें हिरण्यगर्भ, प्रजापति और क—तीनों विष्णुवाचक हैं । विष्णुका एक अर्थ सूर्य भी है । सूर्यकी पूजामें वेदके हिरण्यगर्भ (प्राजापत्य)-सूक्तका प्रयोग भी होता रहा है ।

इन्द्रका और विष्णुका भी योग है । ऋग्वेदमें अग्नि तथा इन्द्रके लिये सर्वाधिक सूक्त आते हैं । विष्णु इन्द्रके योग्य सखा हैं (**इन्द्रस्य युज्यः सखा**)—ऐसे स्थलोंपर इन्द्रका अर्थ आत्मा और विष्णुका अर्थ परमात्मा है । ऋग्वेदमें आत्मा और परमात्मा—दोनोंको 'सयुजा' तथा 'सखा' कहा गया है । ऋग्वेदमें विष्णुको जो 'त्रिविक्रम' कहा गया है, वह भावी पौराणिक गाथाओंका आधार बना है ।

ऐतरेय ब्राह्मण १ । १ । १ में अग्निको 'अवम' और विष्णुको 'परमदेव'का अभिधान दिया गया है । इन दोनोंके बीचमें अन्य सब देव हैं । इस कथनमें विष्णु सूर्य और परब्रह्म दोनोंका अर्थ देते हैं । परवर्ती साहित्यमें इन्द्र और विष्णुकी प्रीति-स्पर्धाका भी उल्लेख हुआ है । विष्णुपुराणमें दुर्वासाके शापसे इन्द्रकी श्री छीनी जाती है और वह विष्णुकी बन जाती है । श्रीमद्भागवतमें विष्णुके अवतार श्रीकृष्ण इन्द्रको पराजित करके स्वर्गसे पारिजात वृक्षको लाते हैं । वे इन्द्रकी पूजा मिटाकर गोवर्धनकी पूजाका प्रचार करते हैं । ऐसी कथाओंमें भागवतधर्मकी एक विशेषता छिपी है । यह विशेषता है—स्वर्गप्राप्तिकी आशा दिलानेवाले याज्ञिक कर्मकाण्डका खण्डन और उसके स्थानपर भागवत भक्तिकी प्रतिष्ठा । **'स्वर्गकामो यजेत'**के स्थानपर उन्होंने भक्तिको स्वर्गसे और मुक्तिसे भी बढ़कर स्थान दिया । भागवतोंने रुद्र और विष्णुकी अभिन्नताका प्रतिपादन अवश्य किया है । पद्मपुराणके भूमिखण्ड, अ० ७१ के निम्नाङ्कित श्लोक इसी तथ्यका उद्घाटन करते हैं । तीनों देवोंकी एकता भी इसी स्थलपर दिखायी गयी है—

शिवाय विष्णुरूपाय विष्णवे शिवरूपिणे ।
शिवस्य हृदये विष्णुर्विष्णोश्च हृदये शिवः ॥
एकमूर्तिस्त्रयो देवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।
त्रयाणामन्तरं नास्ति गुणभेदाः प्रकीर्तिताः ॥
(७१ । १९-२०)

'श्रीविष्णुरूपधारी शिव और श्रीशिवरूपधारी विष्णुको नमस्कार है । श्रीशिवके हृदयमें विष्णु और श्रीविष्णुके

हृदयमें भगवान् शिव विराजमान हैं। ब्रह्मा, विष्णु और शिव—ये तीनों देवता एकरूप ही हैं। इन तीनोंके स्वरूपमें कोई अन्तर नहीं है, केवल गुणोंका भेद बतलाया गया है।'

विष्णुपुराण ५।३३।४९ भी यही कहता है—

अविद्यामोहितात्मानः पुरुषा भिन्नदर्शिनः।
वदन्ति भेदं पश्यन्ति चावयोरन्तरं हर॥

'हे हर! जिन लोगोंका चित्त अविद्यासे मोहित है, वे भिन्नदर्शी पुरुष ही हम दोनोंमें भेद देखते और बतलाते हैं।'

ब्रह्मवैवर्त, श्रीकृष्णजन्म-खण्ड उत्तरार्द्ध ७३।५३ के अनुसार—'चतुर्भुजोऽहं वैकुण्ठे शिवलोके शिवः स्वयम्'—शिव और विष्णु एक ही हैं। इस प्रकार विष्णु परब्रह्मके वाचक-रूपमें भागवतोंद्वारा अधिक ख्यातिको प्राप्त हुए।

'सर्वं विष्णुमयं जगत्'

(लेखक—पं० श्रीदेवदत्तजी मिश्र, काव्य-व्याकरण-सांख्य-स्मृतितीर्थ)

यह आध्यात्मिक विषय अत्यन्त दुरूह है। इसमें बड़े-बड़े विद्वानों और विज्ञानियोंकी बुद्धि भी भ्रान्त हो जाती है। यह विष्णु-तत्त्व बुद्धिके परे है; क्योंकि विष्णु स्वयं त्रिगुणातीत हैं और मनुष्यकी बुद्धि त्रिगुणात्मिका है। वेदोंमें भी इनका वर्णन विलक्षण रूपसे किया गया है।

ईशोपनिषद्का प्रथम मन्त्र है—

ॐ ईशा वास्यमिदꣳ सर्वं यत्किं च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्॥

अर्थात् दृष्टिगोचर होनेवाले स्थावर-जङ्गम जितने पदार्थ हैं, सभी ईश्वरसे व्याप्त हैं। तात्पर्य यह है कि ईश्वर कण-कणमें प्रविष्ट हैं; जगत्का कोई भी अंश ऐसा नहीं है, जिसमें 'ईश' अर्थात् विष्णु प्रविष्ट न हों।

'ब्रह्म' नामसे प्रसिद्ध जो एक चिच्छक्ति है, वही तीन भागोंमें विभक्त होकर, 'ब्रह्मा', 'विष्णु' और 'शिव' नामोंसे प्रसिद्ध हुई। सृष्टि करनेका भार जिस अंशने ग्रहण किया, उसका नाम 'ब्रह्मा' हुआ; पालन करनेका भार जिस अंशने ग्रहण किया, उसका नाम 'विष्णु' हुआ एवं संहार करनेका भार जिसने स्वीकार किया, उसका नाम 'शिव' हुआ।

ये तीनों नाम सार्थक हैं। 'ब्रह्मा' शब्दका अर्थ होता है—बढ़ानेवाला। 'बृंहि वृद्धौ' धातुसे 'मनिन्' प्रत्यय करनेपर 'ब्रह्मन्' शब्द बनता है। 'विष्णु' शब्दका अर्थ व्याप्त होना है। 'विष्लृ व्याप्तौ' धातुसे 'नु' प्रत्यय करनेपर अथवा 'विश् प्रवेशने' धातुसे भी 'नु' प्रत्यय करनेपर 'विष्णु' शब्दकी निष्पत्ति होती है; अतः 'विष्णु' शब्दका अर्थ सब पदार्थोंमें प्रविष्ट रहनेवाला एवं सर्वत्र व्याप्त होकर रहनेवाला होता है। इसी अभिप्रायसे 'विष्णुः सर्वगुहाशयः'—ऐसा कथन शास्त्रोंमें पाया जाता है। 'शिव'का अर्थ होता है—कल्याण, और 'शिवं करोति इति शिवयति' इस नामधातुक 'शिव' धातुसे 'पचाद्यच्' इस नियमके अनुसार 'अच्' प्रत्यय करनेपर 'शिव' शब्द बनता है। यह शिव-नामक अंश दुःखमय संसारसे उद्धार करके जीवोंका कल्याण करता है।

मार्कण्डेयपुराणान्तर्गत 'दुर्गासप्तशती'में यह कथा आती है कि सृष्टिके प्रारम्भमें प्रलयपयोधिके जलमें स्थित शेष-शय्याशायी विष्णुकी नाभिसे उत्पन्न हुए कमलपर ब्रह्माका आविर्भाव हुआ। उस समय सर्वत्र जल-ही-जल दीख पड़ता था। योगनिद्राके वशीभूत हुए विष्णुके कानोंके मैलसे मधु और कैटभ नामके दो दैत्य उत्पन्न हुए। वे दोनों जलके ऊपरी सतहपर निकल पड़े। उस समय उन्होंने लाल कमलपर बैठे हुए लाल ही वर्णके एक चतुर्मुख जीवको देखा। तब वे आश्चर्यचकित होकर उस जीवके पास गये और उसे मारनेके लिये उद्यत हो गये। ब्रह्मा भयभीत हो गये और अपने बचनेका कोई उपाय न देख वे कमल-नालको पकड़कर जलके भीतर सोये हुए विष्णुके पास जा पहुँचे। वहाँ उनको निद्रित देखकर उन्होंने उच्चस्वरसे निद्रादेवीकी स्तुति की। उस स्तुतिसे प्रसन्न होकर योगनिद्राने विष्णुको छोड़ दिया। विष्णु जाग्रत् होकर बैठे ही थे कि वे दोनों दैत्य विष्णुके सामने उपस्थित होकर युद्धके लिये तैयार हो गये।

विष्णुके पास उस समय कोई शस्त्र नहीं था, इसलिये उन्होंने अपने बाहुओंके द्वारा ही युद्ध करना आरम्भ कर दिया। विष्णुने उन दोनों दैत्योंके साथ पाँच हजार वर्षतक युद्ध किया—

समुत्थाय ततस्ताभ्यां युयुधे भगवान् हरिः ॥
पञ्चवर्षसहस्राणि बाहुप्रहरणो विभुः ।
(दुर्गासप्तशती १ । ९३-९४)

वे दोनों बहुत बलवान् थे, अतः युद्ध करते थकते ही न थे। तब विष्णुकी मायासे उनकी बुद्धि मोहित हो गयी और उन दोनोंने अपने प्रतिपक्षी विष्णुसे वरदान माँगनेको कहा। विष्णुने कहा—'तुमलोग यदि मेरे पराक्रमसे संतुष्ट हो और मुझे वर देना चाहते हो तो यही वरदान दो कि तुम दोनों मेरे हाथसे मारे जाओ।' अब तो वे बड़े असमंजसमें पड़ गये; क्योंकि शत्रुके हाथसे अपनी मृत्यु चाहना वीरके लिये हास्यास्पद बात है। तब उन दोनोंने सोचा कि "जलसे रहित कोई स्थान दीखता नहीं है, इसलिये इससे कह दें कि 'तुम बिना जलके स्थानपर हम दोनोंको मारो।'" अस्तु, उन दोनोंने विष्णुसे यही कहा। तब विष्णुने उन्हें अपनी जाँघपर लिटाकर उनके सिरको चक्रसे काट डाला—

तावप्यतिबलोन्मत्तौ महामायाविमोहितौ ॥
उक्तवन्तौ वरोऽस्मत्तो व्रियतामिति केशवम् ॥

श्रीभगवानुवाच

भवेतामद्य मे तुष्टौ मम वध्यावुभावपि ॥
किमन्येन वरेणात्र एतावद्धि वृतं मम ॥

ऋषिरुवाच

वञ्चिताभ्यामिति तदा सर्वमापोमयं जगत् ॥
विलोक्य ताभ्यां गदितो भगवान् कमलेक्षणः ॥
आवां जहि न यत्रोर्वी सलिलेन परिप्लुता ॥
तथेत्युक्त्वा भगवता शङ्खचक्रगदाभृता ।
कृत्वा चक्रेण वै छिन्ने जघने शिरसी तयोः ॥
(दुर्गासप्तशती १ । ९४-१०३)

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रलयके समय सम्पूर्ण वस्तुओंको आत्मसात् करके एकमात्र विष्णु ही शेष रह जाते हैं।

महाभारतके अनुशासनपर्वमें लिखा है कि 'जब युधिष्ठिर महाराजने सब धर्मोंको सुननेके पश्चात् नैष्ठिक ब्रह्मचारी महात्मा भीष्मसे मोक्षधर्मके विषयमें प्रश्न किया, तब उन्होंने भगवान्‌के सहस्रनाम-कीर्तनको सबसे उत्तम धर्म बतलाया।' युधिष्ठिरने पूछा—

को धर्मः सर्वधर्माणां भवतः परमो मतः ।
किं जपन् मुच्यते जन्तुर्जन्मसंसारबन्धनात् ॥
(विष्णुसहस्रनाम, श्लोक ३)

'आपकी समझसे सब धर्मोंमें श्रेष्ठ धर्म कौन है? और किस मन्त्रके जपसे जीव जन्म-मृत्युरूप संसारके बन्धनसे छूट सकता है?' उत्तरमें भीष्मपितामहने कहा—

अनादिनिधनं विष्णुं सर्वलोकमहेश्वरम् ।
लोकाध्यक्षं स्तुवन्नित्यं सर्वदुःखातिगो भवेत् ॥
(वि० स० ६)

इस श्लोककी व्याख्या करते हुए श्रीशंकराचार्यजीने लिखा है कि 'जो विष्णु षड्‌विकाररहित अर्थात् होना, जन्म लेना, वृद्धि प्राप्त करना, बदलना, घटना और नष्ट होना—इन छः विकारोंसे परे हैं, व्यापनशील हैं, सम्पूर्ण लोकोंके महेश्वर एवं लोकाध्यक्ष अर्थात् निरन्तर सम्पूर्ण दृश्य पदार्थोंको देखनेवाले हैं, उन्हीं विष्णुकी स्तुति करनेसे प्राणी जन्म-मृत्युरूप सम्पूर्ण दुःखोंको पार कर जाता है।'

विष्णुपुराणमें भी आता है—जब हिरण्यकशिपुकी आज्ञासे दैत्योंने शस्त्रोंसे प्रह्लादपर प्रहार किया, तब प्रह्लादने कहा—

विष्णुः शस्त्रेषु युष्मासु मयि चासौ व्यवस्थितः ।
दैतेयास्तेन सत्येन माक्रमन्त्वायुधानि मे ॥
(विष्णुपुराण १ । १७ । ३३)

अर्थात् मेरे स्वामी विष्णु सर्वव्यापी हैं; वे शस्त्रोंमें, तुमलोगोंमें और मुझमें भी वर्तमान हैं—ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है। हे दैत्यगण! इस सत्यके बलसे ये शस्त्र मेरी हानि नहीं करेंगे। पुनः विष्णुपुराणमें प्रह्लादजीने स्तुति करते हुए कहा है—

यः स्थूलसूक्ष्मः प्रकटप्रकाशो
यः सर्वभूतो न च सर्वभूतः ।
विश्वं यतश्चैतदविश्वहेतो-
र्नमोऽस्तु तस्मै पुरुषोत्तमाय ॥
(विष्णुपुराण १ । २० । १३)

अर्थात् जो विष्णु स्थूल और सूक्ष्म—सबमें वर्तमान हैं, जिनका प्रकाश प्रत्यक्ष है, जो अधिष्ठानरूपसे सर्वभूतमय हैं, तथापि सम्पूर्ण भूतादिसे परे हैं, जो विश्वके कारण न होनेपर भी विश्व जिनसे उत्पन्न हुआ है, उन पुरुषोत्तम भगवान् श्रीविष्णुको नमस्कार है।

हृदयमें भगवान् शिव विराजमान हैं। ब्रह्मा, विष्णु और शिव—ये तीनों देवता एकरूप ही हैं। इन तीनोंके स्वरूपमें कोई अन्तर नहीं है, केवल गुणोंका भेद बतलाया गया है।'

विष्णुपुराण ५। ३३। ४९ भी यही कहता है—

अविद्यामोहितात्मानः पुरुषा भिन्नदर्शिनः।
वदन्ति भेदं पश्यन्ति चावयोरन्तरं हर॥

'हे हर! जिन लोगोंका चित्त अविद्यासे मोहित है, वे भिन्नदर्शी पुरुष ही हम दोनोंमें भेद देखते और बतलाते हैं।'

ब्रह्मवैवर्त, श्रीकृष्णजन्म-खण्ड उत्तरार्द्ध ७३। ५३ के अनुसार—'चतुर्भुजोऽहं वैकुण्ठे शिवलोके शिवः स्वयम्'—शिव और विष्णु एक ही हैं। इस प्रकार विष्णु परब्रह्मके वाचक-रूपमें भागवतोंद्वारा अधिक ख्यातिको प्राप्त हुए।

'सर्वं विष्णुमयं जगत्'

(लेखक—पं० श्रीदेवदत्तजी मिश्र, काव्य-व्याकरण-सांख्य-स्मृतितीर्थ)

यह आध्यात्मिक विषय अत्यन्त दुरूह है। इसमें बड़े-बड़े विद्वानों और विज्ञानियोंकी बुद्धि भी भ्रान्त हो जाती है। यह विष्णु-तत्त्व बुद्धिके परे है; क्योंकि विष्णु स्वयं त्रिगुणातीत हैं और मनुष्यकी बुद्धि त्रिगुणात्मिका है। वेदोंमें भी इनका वर्णन विलक्षण रूपसे किया गया है।

ईशोपनिषद्का प्रथम मन्त्र है—

ॐ ईशा वास्यमिदꣳ सर्वं यत्किं च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्॥

अर्थात् दृष्टिगोचर होनेवाले स्थावर-जङ्गम जितने पदार्थ हैं, सभी ईश्वरसे व्याप्त हैं। तात्पर्य यह है कि ईश्वर कण-कणमें प्रविष्ट हैं; जगत्का कोई भी अंश ऐसा नहीं है, जिसमें 'ईश' अर्थात् विष्णु प्रविष्ट न हों।

'ब्रह्म' नामसे प्रसिद्ध जो एक चिच्छक्ति है, वही तीन भागोंमें विभक्त होकर, 'ब्रह्मा', 'विष्णु' और 'शिव' नामोंसे प्रसिद्ध हुई। सृष्टि करनेका भार जिस अंशने ग्रहण किया, उसका नाम 'ब्रह्मा' हुआ; पालन करनेका भार जिस अंशने ग्रहण किया, उसका नाम 'विष्णु' हुआ एवं संहार करनेका भार जिसने स्वीकार किया, उसका नाम 'शिव' हुआ।

ये तीनों नाम सार्थक हैं। 'ब्रह्मा' शब्दका अर्थ होता है—बढ़ानेवाला। **'बृंहि वृद्धौ'** धातुसे 'मनिन्' प्रत्यय करनेपर **'ब्रह्मन्'** शब्द बनता है। 'विष्णु' शब्दका अर्थ व्याप्त होना है। **'विष्लृ व्याप्तौ'** धातुसे 'नु' प्रत्यय करनेपर अथवा **'विश् प्रवेशने'** धातुसे भी 'नु' प्रत्यय करनेपर 'विष्णु' शब्दकी निष्पत्ति होती है; अतः 'विष्णु' शब्दका अर्थ सब पदार्थोंमें प्रविष्ट रहनेवाला एवं सर्वत्र व्याप्त होकर रहनेवाला होता है। इसी अभिप्रायसे **'विष्णुः सर्वगुहाशयः'**—ऐसा कथन शास्त्रोंमें पाया जाता है। 'शिव'का अर्थ होता है—कल्याण, और **'शिवं करोति इति शिवयति'** इस नामधातुक 'शिव' धातुसे **'पचाद्यच्'** इस नियमके अनुसार 'अच्' प्रत्यय करनेपर 'शिव' शब्द बनता है। यह शिव-नामक अंश दुःखमय संसारसे उद्धार करके जीवोंका कल्याण करता है।

मार्कण्डेयपुराणान्तर्गत 'दुर्गासप्तशती'में यह कथा आती है कि सृष्टिके प्रारम्भमें प्रलयपयोधिके जलमें स्थित शेष-शय्याशायी विष्णुकी नाभिसे उत्पन्न हुए कमलपर ब्रह्माका आविर्भाव हुआ। उस समय सर्वत्र जल-ही-जल दीख पड़ता था। योगनिद्राके वशीभूत हुए विष्णुके कानोंके मैलसे मधु और कैटभ नामके दो दैत्य उत्पन्न हुए। वे दोनों जलके ऊपरी सतहपर निकल पड़े। उस समय उन्होंने लाल कमलपर बैठे हुए लाल ही वर्णके एक चतुर्मुख जीवको देखा। तब वे आश्चर्यचकित होकर उस जीवके पास गये और उसे मारनेके लिये उद्यत हो गये। ब्रह्मा भयभीत हो गये और अपने बचनेका कोई उपाय न देख वे कमल-नालको पकड़कर जलके भीतर सोये हुए विष्णुके पास जा पहुँचे। वहाँ उनको निद्रित देखकर उन्होंने उच्चस्वरसे निद्रादेवीकी स्तुति की। उस स्तुतिसे प्रसन्न होकर योगनिद्राने विष्णुको छोड़ दिया। विष्णु जाग्रत् होकर बैठे ही थे कि वे दोनों दैत्य विष्णुके सामने उपस्थित होकर युद्धके लिये तैयार हो गये।

विष्णुके पास उस समय कोई शस्त्र नहीं था, इसलिये उन्होंने अपने बाहुओंके द्वारा ही युद्ध करना आरम्भ कर दिया। विष्णुने उन दोनों दैत्योंके साथ पाँच हजार वर्षतक युद्ध किया—

समुत्थाय ततस्ताभ्यां युयुधे भगवान् हरिः ॥
पञ्चवर्षसहस्राणि बाहुप्रहरणो विभुः ।
(दुर्गासप्तशती १ । ९३-९४)

वे दोनों बहुत बलवान् थे, अतः युद्ध करते थकते ही न थे। तब विष्णुकी मायासे उनकी बुद्धि मोहित हो गयी और उन दोनोंने अपने प्रतिपक्षी विष्णुसे वरदान माँगनेको कहा। विष्णुने कहा—'तुमलोग यदि मेरे पराक्रमसे संतुष्ट हो और मुझे वर देना चाहते हो तो यही वरदान दो कि तुम दोनों मेरे हाथसे मारे जाओ।' अब तो वे बड़े असमंजसमें पड़ गये; क्योंकि शत्रुके हाथसे अपनी मृत्यु चाहना वीरके लिये हास्यास्पद बात है। तब उन दोनोंने सोचा कि "जलसे रहित कोई स्थान दीखता नहीं है, इसलिये इससे कह दें कि 'तुम बिना जलके स्थानपर हम दोनोंको मारो।'" अस्तु, उन दोनोंने विष्णुसे यही कहा। तब विष्णुने उन्हें अपनी जाँघपर लिटाकर उनके सिरको चक्रसे काट डाला—

तावप्यतिबलोन्मत्तौ महामायाविमोहितौ ॥
उक्तवन्तौ वरोऽस्मत्तो व्रियतामिति केशवम् ॥

श्रीभगवानुवाच

भवेतामद्य मे तुष्टौ मम वध्यावुभावपि ॥
किमन्येन वरेणात्र एतावद्धि वृतं मम ॥

ऋषिरुवाच

वञ्चिताभ्यामिति तदा सर्वमापोमयं जगत् ॥
विलोक्य ताभ्यां गदितो भगवान् कमलेक्षणः ॥
आवां जहि न यत्रोर्वी सलिलेन परिप्लुता ॥
तथेत्युक्त्वा भगवता शङ्खचक्रगदाभृता ।
कृत्वा चक्रेण वै छिन्ने जघने शिरसी तयोः ॥
(दुर्गासप्तशती १ । ९४–१०३)

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रलयके समय सम्पूर्ण वस्तुओंको आत्मसात् करके एकमात्र विष्णु ही शेष रह जाते हैं।

महाभारतके अनुशासनपर्वमें लिखा है कि 'जब युधिष्ठिर महाराजने सब धर्मोंको सुननेके पश्चात् नैष्ठिक ब्रह्मचारी महात्मा भीष्मसे मोक्षधर्मके विषयमें प्रश्न किया, तब उन्होंने भगवान्‌के सहस्रनाम-कीर्तनको सबसे उत्तम धर्म बतलाया।' युधिष्ठिरने पूछा—

को धर्मः सर्वधर्माणां भवतः परमो मतः ।
किं जपन् मुच्यते जन्तुर्जन्मसंसारबन्धनात् ॥
(विष्णुसहस्रनाम, श्लोक ३)

'आपकी समझसे सब धर्मोंमें श्रेष्ठ धर्म कौन है ? और किस मन्त्रके जपसे जीव जन्म-मृत्युरूप संसारके बन्धनसे छूट सकता है ?' उत्तरमें भीष्मपितामहने कहा—

अनादिनिधनं विष्णुं सर्वलोकमहेश्वरम् ।
लोकाध्यक्षं स्तुवन्नित्यं सर्वदुःखातिगो भवेत् ॥
(वि० स० ६)

इस श्लोककी व्याख्या करते हुए श्रीशंकराचार्यजीने लिखा है कि 'जो विष्णु षड्विकाररहित अर्थात् होना, जन्म लेना, वृद्धि प्राप्त करना, बदलना, घटना और नष्ट होना—इन छः विकारोंसे परे हैं, व्यापनशील हैं, सम्पूर्ण लोकोंके महेश्वर एवं लोकाध्यक्ष अर्थात् निरन्तर सम्पूर्ण दृश्य पदार्थोंको देखनेवाले हैं, उन्हीं विष्णुकी स्तुति करनेसे प्राणी जन्म-मृत्युरूप सम्पूर्ण दुःखोंको पार कर जाता है।'

विष्णुपुराणमें भी आता है—जब हिरण्यकशिपुकी आज्ञासे दैत्योंने शस्त्रोंसे प्रह्लादपर प्रहार किया, तब प्रह्लादने कहा—

विष्णुः शस्त्रेषु युष्मासु मयि चासौ व्यवस्थितः ।
दैतेयास्तेन सत्येन माक्रमन्त्वायुधानि मे ॥
(विष्णुपुराण १ । १७ । ३३)

अर्थात् मेरे स्वामी विष्णु सर्वव्यापी हैं; वे शस्त्रोंमें, तुमलोगोंमें और मुझमें भी वर्तमान हैं—ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है। हे दैत्यगण ! इस सत्यके बलसे ये शस्त्र मेरी हानि नहीं करेंगे। पुनः विष्णुपुराणमें प्रह्लादजीने स्तुति करते हुए कहा है—

यः स्थूलसूक्ष्मः प्रकटप्रकाशो
यः सर्वभूतो न च सर्वभूतः ।
विश्वं यतश्चैतदविश्वहेतो-
र्नमोऽस्तु तस्मै पुरुषोत्तमाय ॥
(विष्णुपुराण १ । २० । १३)

अर्थात् जो विष्णु स्थूल और सूक्ष्म—सबमें वर्तमान हैं, जिनका प्रकाश प्रत्यक्ष है, जो अधिष्ठानरूपसे सर्वभूतमय हैं, तथापि सम्पूर्ण भूतादिसे परे हैं, जो विश्वके कारण न होनेपर भी विश्व जिनसे उत्पन्न हुआ है, उन पुरुषोत्तम भगवान् श्रीविष्णुको नमस्कार है।

श्रीमद्भागवतमें कहा गया है—

स वा इदं विश्वममोघलीलः
सृजत्यवत्यत्ति न सज्जतेऽस्मिन् ।
भूतेषु चान्तर्हित आत्मतन्त्रः
षाड्वर्गिकं जिघ्रति षड्गुणेशः ॥

(१ । ३ । ३६)

अर्थात् भगवान्‌की लीला अमोघ है । वे लीलासे ही इस संसारका सृजन, पालन और संहार करते हैं, किंतु इसमें आसक्त नहीं होते । प्राणियोंके अन्तःकरणमें छिपे रहकर ज्ञानेन्द्रिय और मनके नियन्ताके रूपमें उनके विषयोंको ग्रहण भी करते हैं, परंतु उनसे अलग रहते हैं । वे परम स्वतन्त्र हैं । ये विषय कभी उनको लिप्त नहीं कर सकते ।

श्रीमद्भागवतमें ब्रह्माजीने स्तुति करते हुए कहा है—

ज्ञातोऽसि मेऽद्य सुचिरान्ननु देहभाजां
न ज्ञायते भगवतो गतिरित्यवद्यम् ।
नान्यत्त्वदस्ति भगवन्नपि तन्न शुद्धं
मायागुणव्यतिकराद्यदुरुर्विभासि ॥

(३ । ९ । १)

अर्थात् आज आपको बहुत दिनोंके बाद देख सका हूँ । अहो ! यह कैसे दुर्भाग्यकी बात है कि देहधारी जीव आपके स्वरूपको नहीं देख पाते । हे भगवन् ! आपके सिवा और कोई वस्तु नहीं है । जो वस्तु देखनेमें आती है, वह भी स्वरूपतः सत्य नहीं है; क्योंकि मायाके गुणोंके क्षुभित होनेके कारण केवल आप ही अनेक रूपोंमें प्रतीत हो रहे हैं ।

श्रीमद्भगवद्गीतामें भी इसी सर्वव्यापकताको बतलानेके लिये कहा गया है—

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति ।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ॥

(६ । ३०)

'जो पुरुष सम्पूर्ण भूतोंमें सबके आत्मरूप मुझ वासुदेवको ही व्यापक देखता है और सम्पूर्ण भूतोंको मुझ वासुदेवके अन्तर्गत देखता है, उसके लिये मैं अदृश्य नहीं होता और वह मेरे लिये अदृश्य नहीं होता ।'

यद्यपि गीताके सप्तम अध्यायमें भगवान् श्रीकृष्णने **'रसोऽहमप्सु कौन्तेय'** इत्यादि श्लोकोंसे अपनी विभूतियोंको स्वल्पमात्रमें बतलाया, परंतु उससे अर्जुनको संतोष नहीं हुआ । अतः दसवें अध्यायमें पुनः उन्होंने विस्तारपूर्वक अपनी विभूतियोंको कहनेके लिये कहा—

विस्तरेणात्मनो योगं विभूतिं च जनार्दन ।
भूयः कथय तृप्तिर्हि शृण्वतो नास्ति मेऽमृतम् ॥

(गीता १० । १८)

भगवान्‌ने कहा—

हन्त ते कथयिष्यामि दिव्या ह्यात्मविभूतयः ।
प्राधान्यतः कुरुश्रेष्ठ नास्त्यन्तो विस्तरस्य मे ॥

(गीता १० । १९)

अर्थात् मेरी विभूतियोंका अन्त नहीं है; इसलिये प्रधान-प्रधान विभूतियोंको ही कहूँगा । विभूतियोंका वर्णन करके भी अन्तमें भगवान्‌ने अर्जुनसे कहा—तुमको इन बहुत-सी बातोंको जाननेकी क्या आवश्यकता है; तुम सबका सारांश यही समझो कि—

'विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत् ।'

(गीता १० । ४२)

अर्थात् मैं अपने एक अंशसे ही सम्पूर्ण जगत्‌को धारण करके स्थित हूँ ।

इसपर भी अर्जुनके मनको बिना इस तरहके रूपको देखे शान्ति नहीं मिली, तब उन्होंने गीताके ११ वें अध्यायके तीसरे श्लोकमें भगवान्‌से कहा—

एवमेतद् यथात्थ त्वमात्मानं परमेश्वर ।
द्रष्टुमिच्छामि ते रूपमैश्वरं पुरुषोत्तम ॥

अर्थात् आपने अपने विषयमें जो कुछ कहा, वह सब यथार्थ है, परंतु आपके इस ऐश्वरस्वरूपको मुझे देखनेकी उत्सुकता हो रही है । यदि आप मुझे उसके योग्य समझते हैं तो कृपया दिखलाइये ।

अर्जुन भगवान्‌के भक्त और प्रिय मित्र थे । फिर वे अर्जुनकी इच्छाको अतृप्त कैसे रहने देते । अतः भगवान् श्रीकृष्णने उनको दिव्य दृष्टि दी; क्योंकि उस विराट् रूपको देखनेकी शक्ति इन भौतिक नेत्रोंमें नहीं है । भगवान्‌के उस विराट् रूपमें इतनी चमक थी कि यदि एक हजार सूर्य एक साथ आकाशमें उग जाते तो भी उसकी समता नहीं कर सकते थे । भला, जब हमारे ये नेत्र एक सूर्यको भी नहीं देख सकते, तब हजार सूर्योंको कैसे देख सकते ।

अतः शास्त्रोंसे यही सिद्ध होता है कि **'सर्वं विष्णुमयं जगत्'** अर्थात् जो कुछ दीख पड़ता है, वह सब भगवान् विष्णुका ही रूप है ।

परमाराध्य श्रीविष्णु

(लेखक—स्वामी श्रीपरमानन्दजी सरस्वती)

'विष्णु' संज्ञासे शास्त्रोंको परब्रह्म-तत्त्व ही इष्ट है। अनन्त-कोटि ब्रह्माण्डोंकी उत्पादिनी, पालिनी और संहारिणी माया-शक्तिके अधिष्ठान ये ही विशुद्ध चित्तत्त्व भगवान् विष्णु हैं। इन्हींको मुण्डकोपनिषद् कहता है—

यत्तदद्रेश्यमग्राह्यमगोत्रमवर्ण-
मचक्षुःश्रोत्रं तदपाणिपादम्।
नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं तदव्ययं
तद्भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीराः॥
(१।१।६)

'यह बुद्धिसे परे है, इन्द्रियादिके द्वारा ग्राह्य नहीं है। इसका कोई गोत्र नहीं, वर्ण नहीं, नेत्र नहीं, कान नहीं तथा हाथ-पैर भी नहीं है। यह नित्य है, विभु है, सबमें व्याप्त है, सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म है, अव्यय है, सभी प्राणियोंका परम कारण है। इसका साक्षात्कार धीरोंको ही होता है।'

श्रीराम और श्रीकृष्ण विष्णु-तत्त्वके ही अवतार हैं। वे ही महाविष्णु त्रेतायुगमें मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामरूपसे अवतरित होते हैं और वे ही द्वापरयुगमें अनन्तकोटिकंदर्प-दर्पदलन लीलापुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णके रूपमें अवतरित होते हैं। नारायण, विष्णु, राम और कृष्णमें जो भेद समझते हैं, वे वस्तुतः मोहाक्रान्त होनेके कारण शास्त्रके अभिप्रायको ठीक-ठीक ग्रहण नहीं कर पा रहे हैं।

विशुद्धान्तःकरण कल्याणकाङ्क्षियोंको परमाराध्य विष्णु, नारायण, राम, कृष्ण आदिकी उपासना और पूजाके अवसरपर उक्त तत्त्वका ही अनुसंधान करते रहना चाहिये। महर्षि पतञ्जलिने **'तज्जपस्तदर्थभावनम्'**में मन्त्र-जपके साथ-साथ उसके प्रतिपाद्य तत्त्वकी भावनासे अपने अन्तःकरणको भावित करनेका महान् फल समाधिकी उपलब्धि बताया है। जो भी जन तत्त्वाभिनिवेशपुरस्सर भगवान्की पूजा-उपासना आदिका अभ्यास करेंगे, उन्हें संसारका त्रिताप उसी प्रकार स्पर्श नहीं कर सकेगा, जिस प्रकार गङ्गाके निर्मल शीतल जलमें डुबकी लगानेवालेको निदाघका भीषण संताप।

विष्णु-तत्त्व

(लेखक—श्रीताराचन्दजी पांड्या)

समस्त विश्व अर्थात् विश्वका प्रत्येक पदार्थ (यानी प्रत्येक पदार्थका प्रत्येक अंश और प्रत्येक गुण) सर्वदा ब्रह्मा, विष्णु और शिव—इन तीन तत्त्वोंके ही रूप हैं। प्रत्येक पदार्थ सदा परिवर्तनशील (अनित्य) और साथ ही नित्य भी है। पुरानी अवस्थाका नाश (शिवतत्त्व), नवीन अवस्थाकी उत्पत्ति (ब्रह्मा-तत्त्व) और असली शाश्वतरूपका वर्तमान रहना (विष्णुतत्त्व)—ये तीनों प्रत्येक पदार्थमें निरन्तर रहते हैं। स्थूल उदाहरण दें तो स्वर्णका कुण्डल तोड़कर यदि कड़ा बनाया गया तो कुण्डल-रूपके नष्ट होनेपर कड़ा-रूपकी उत्पत्ति हुई; परंतु स्वर्णत्व तो दोनों अवस्थाओंमें स्थिर रहता है। कोई मनुष्य मरकर देव हुआ तो उसके मनुष्य-रूपका नाश होकर देवत्वकी उत्पत्ति हुई, किंतु जीवत्व तो दोनों अवस्थाओंमें विद्यमान रहता है। यह निरन्तर परिवर्तन और स्थिरता ही प्रत्येक पदार्थका स्वरूप और आधार है। ये तत्त्व क्रिया-दृष्टिसे अलग-अलग गिनाये जानेपर भी अभेद-रूप ही हैं—संहारके साथ ही, बल्कि संहारके रूपमें ही, सृजन (निर्माण) होता है और संहार और सृजन दोनों शाश्वतरूपके ही गुण हैं—पर्याय हैं।

भेद-दृष्टिसे, उपर्युक्त तीन तत्त्वोंमें विष्णु-तत्त्वका महत्त्व स्पष्ट है। इसका कभी नाश नहीं होता। यही असली स्वरूप है—शाश्वत सत्य है, यह अन्य दोनोंमें विद्यमान रहता है। जो इस तत्त्वका प्रेमी होता है, वह सब अवस्थाओंमें समस्थ, समताधारी, शान्त और सुखी रहता है।

'यज्ञो वै विष्णुः'

(लेखक—याज्ञिकसम्राट् पं० श्रीवेणीरामजी शर्मा गौड, वेदाचार्य)

वेदोंमें आता है कि यज्ञ ही विष्णु है और विष्णु ही यज्ञ है—

यज्ञो वै विष्णुः । (कृष्णयजुर्वेद ३ । ५ । २)
यज्ञो वै विष्णुः । (शतपथब्राह्मण १ । १ । २ । १३)
यज्ञो वै विष्णुः । (तैत्तिरीयब्रा० १ । २ । ५ । ४०)
यज्ञो वै विष्णुः । (ऐतरेयब्रा० १ । १५)
यज्ञो वै विष्णुः । (शाङ्खायनब्रा० ४ । २)
विष्णुर्वै यज्ञः । (ऐतरेयब्रा० १ । १५)
विष्णुर्वै यज्ञः । (कपि० शा० ३५ । ९)
विष्णुर्वै यज्ञः । (तैत्तिरीय शा० ६ । २ । ८ । ७)
विष्णुर्वै यज्ञः । (मैत्रा० शा० ४ । ६ । २)
यो वै विष्णुः स यज्ञः । (शतपथब्रा० ५ । २ । ३ । ६)

श्रीमद्भागवत आदि पुराणोंमें तो सभी यज्ञोंको विष्णु-परक ही स्वीकार किया गया है—

वासुदेवपरा मखाः । (श्रीमद्भागवत १ । २ । २८)
नारायणपरा मखाः ॥ (श्रीमद्भागवत २ । ५ । १५)
नारायणपरा यज्ञाः । (पद्मपुराण, उत्तरखण्ड ८० । ९२)
नारायणपरा यज्ञाः । (ब्रह्मपुराण ६० । २६)
नारायणपरो यज्ञः । (मत्स्यपुराण २४६ । ३६)

विष्णुधर्मोत्तरपुराण (१६२ । २) के **'यज्ञो हि भगवान् विष्णुः'**, देवीभागवत (९ । ४३ । १२) के **'यज्ञरूपो हि भगवान्'** और श्रीमद्भागवत (७ । १४ । १७) के **'भगवान् सर्वयज्ञभुक्'** के अनुसार भगवान् विष्णु यज्ञ, यज्ञस्वरूप और यज्ञभोक्ता हैं । भगवान् विष्णुसे ही समस्त यज्ञ प्रकट हुए हैं, अतः सभी यज्ञ भगवान्के ही स्वरूप हैं । इसलिये समस्त यज्ञोंके द्वारा भगवान् विष्णुका ही यजन-पूजन होता है ।

भागवतमें आया है—

देशः कालः पृथग्द्रव्यं मन्त्रतन्त्रर्त्विजोऽग्नयः ।
देवता यजमानश्च क्रतुर्धर्मश्च यन्मयः ॥
स एष भगवान् साक्षाद् विष्णुर्योगेश्वरेश्वरः ।
(१० । २३ । ४७-४८)

'देश, काल, पृथक्-पृथक् हवनीय द्रव्य, मन्त्र, तन्त्र, ऋत्विज्, अग्नि, देवता, यजमान, यज्ञ और धर्म—ये सभी साक्षात् भगवान् विष्णुके ही स्वरूप हैं ।'

पद्मपुराणमें भी कहा गया है—

असौ यज्ञेश्वरो यज्ञो यज्ञभुग् यज्ञकृद् विभुः ।
यज्ञभृद् यज्ञपुरुषः स एव परमेश्वरः ॥
(उत्तरखण्ड २२६ । ७६)

'ये भगवान् विष्णु यज्ञेश्वर, यज्ञ, यज्ञभोक्ता, यज्ञकर्ता, यज्ञस्वामी, यज्ञपोषक, यज्ञपुरुष और परमेश्वर कहे जाते हैं ।'

विष्णुसहस्रनाम११७—१८में आया है—

यज्ञो यज्ञपतिर्यज्वा यज्ञाङ्गो यज्ञवाहनः ॥
यज्ञभृद् यज्ञकृद्यज्ञी यज्ञभुग्यज्ञसाधनः ।
यज्ञान्तकृद् यज्ञगुह्यम् .... ॥

'भगवान् विष्णु स्वयं यज्ञ हैं, यज्ञपति हैं, यजमान हैं, यज्ञाङ्ग हैं, यज्ञनिर्वाहक हैं, यज्ञसंरक्षक हैं, यज्ञ-विस्तारक हैं, यज्ञशेषी हैं, यज्ञभोक्ता हैं, यज्ञद्वारा प्राप्य हैं, यज्ञफलकी प्राप्ति करानेवाले हैं और यज्ञके रहस्य हैं ।'

मार्कण्डेयपुराण (१०३ । १०) के **'विष्णुस्वरूपमखिलेष्टिमयं विवस्वन्'** इस वचनानुसार वेदोक्त समस्त इष्टियाँ—दर्शपौर्णमासेष्टि आदि श्रौतयाग भगवान् विष्णुके ही स्वरूप हैं । इसीलिये भगवान् विष्णुको समस्त यज्ञोंका स्वरूप कहा गया है—

'सर्वक्रतुमयो विष्णुः' (पद्मपुराण, उत्तरखण्ड ७१ । ३१४) भगवान्ने भी अपने सम्बन्धमें यों कहा है—**'यज्ञरूपी विष्णुरहम्'** (देवीभागवत ९ । ४५ । ७८) 'मैं ही यज्ञरूपी विष्णु हूँ ।'

'यज्ञरूपी विष्णुरहम् ।' (ब्रह्मवैवर्तपु० प्रकृतिखण्ड ४२।७९)

अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाहमहमौषधम् ।
मन्त्रोऽहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम् ॥
(गीता ९ । १६)

'मैं क्रतु (श्रौतयज्ञ) हूँ, मैं यज्ञ (स्मार्तयज्ञ) हूँ, मैं स्वधा हूँ, मैं औषध हूँ, मैं मन्त्र हूँ, मैं घृत हूँ, मैं अग्नि हूँ और मैं ही हवनरूप कर्म हूँ ।'

'अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च ।'
(गीता ९ । २४)

'समस्त यज्ञोंका भोक्ता और प्रभु (स्वामी) मैं ही हूँ ।'

दक्षप्रजापतिके यज्ञमें विघ्न उपस्थित होनेपर अनेक देवताओंकी प्रार्थनासे दक्षके यज्ञमें आये हुए भगवान् विष्णुकी स्तुति करते हुए ब्राह्मणोंने कहा है—

त्वं क्रतुस्त्वं हविस्त्वं हुताशः स्वयं
त्वं हि मन्त्रः समिद्दर्भपात्राणि च ।
त्वं सदस्यर्त्विजो दम्पती देवता
अग्निहोत्रं स्वधा सोम आज्यं पशुः ॥
(श्रीमद्भागवत ४ । ७ । ४५)

'भगवन् ! आप ही यज्ञ, हवि, अग्नि, मन्त्र, समिधा, कुशा और यज्ञपात्र हैं तथा आप ही सदस्य, ऋत्विज्, यजमान एवं उसकी धर्मपत्नी, देवता, अग्निहोत्र, स्वधा, सोमरस, घृत और पशु हैं ।'

स प्रसीद त्वमस्माकमाकाङ्क्षतां
दर्शनं ते परिभ्रष्टसत्कर्मणाम् ।
कीर्त्यमाने नृभिर्नाम्नि यज्ञेश ते
यज्ञविघ्नाः क्षयं यान्ति तस्मै नमः ॥
(श्रीमद्भागवत ४ । ७ । ४७)

'हे यज्ञेश्वर ! जब लोग आपके पवित्र नामका संकीर्तन करते हैं, तब यज्ञके समस्त विघ्न नष्ट हो जाते हैं । हमारा यह यज्ञरूप सत्कर्म नष्ट हो गया था, अतः हम आपके दर्शनोंकी इच्छा कर रहे थे । अब आप हमपर प्रसन्न हो जाइये; आपको नमस्कार है ।'

विष्णुपुराणमें आता है—

यज्ञैस्त्वमिज्यसेऽचिन्त्य सर्वदेवमयाच्युत ।
त्वमेव यज्ञो यष्टा च यज्वनां परमेश्वर ॥
(५ । २० । ९७)

'हे अचिन्त्य ! हे सर्वदेवमय ! हे अच्युत ! समस्त यज्ञोंसे आपका ही यजन किया जाता है तथा हे परमेश्वर ! आप ही यज्ञ करनेवालोंके यष्टा और यज्ञस्वरूप हैं ।'

जो विष्णु साक्षात् यज्ञस्वरूप और यज्ञपति हैं, उन भगवान् विष्णुका महत्त्व वेदादि शास्त्रोंमें इस प्रकार वर्णन किया गया है—

विष्णुमुखा वै देवाः । (नारायणोपनिषद् १०)
विष्णुः सर्वा देवताः । (ऐतरेयब्रा० १ । १ । १)
विष्णुर्वै देवानां परमः । (ऐतरेयब्रा० १ । १ । ९)
विष्णुर्देवानां श्रेष्ठः । (शतपथब्रा० १४ । १ । १ । ५)
मूलं हि विष्णुर्देवानाम् । (श्रीमद्भागवत १० । ४ । ३९)
विष्णुरेव परं ब्रह्म । (पद्मपुराण, पातालखण्ड ९७ । ९०)
ईश्वरो भगवान् विष्णुः । (पद्मपुराण, उत्तरखण्ड २२६ । ६९)
सर्वदेवमयो विष्णुः । (पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड ६४ । ३४)
सर्वतीर्थमयो विष्णुः । (पद्मपुराण, उत्तरखण्ड ७१ । ३१३)
सर्वपापहरो विष्णुः । (पद्मपुराण, उत्तरखण्ड १२६ । ८२)
नास्ति विष्णुसमो देवः । (पद्मपुराण, उत्तरखण्ड ३८ । ८९)

अतः मनुष्यको भगवान् विष्णुके यथार्थ स्वरूप और महत्त्वको समझकर यज्ञ करना चाहिये । जो मनुष्य भगवान् विष्णुके यथार्थ स्वरूप और महत्त्वको न जानकर यज्ञ करता है, उसे 'पाखण्डी' कहते हैं—

समस्तयज्ञभोक्तारमविदित्वाच्युतं हरिम् ।
उद्दिश्य देवता एव जुहोति च ददाति च ॥
स पाषण्डीति विज्ञेयः.................. ॥
(पद्मपुराण, उत्तरखण्ड २३५ । ८-९)

''समस्त यज्ञोंके भोक्ता भगवान् विष्णुको न जानकर केवल दूसरे देवताओंके उद्देश्यसे जो यज्ञ एवं दान करता है, उसे 'पाखण्डी' कहा गया है ।''

यह भारतवर्ष सर्वदासे 'यज्ञियदेश' कहा जाता है । यहाँ प्राचीन कालसे ही भारतके प्रत्येक प्रान्त, प्रत्येक नगर, प्रत्येक ग्राम और प्रत्येक घरमें सर्वदा यज्ञ होते थे । उस समय भारतवर्षकी स्थिति इस प्रकार थी—

ग्रामे ग्रामे स्थितो देवो ग्रामे ग्रामे स्थितो मखः ।
गेहे गेहे स्थितं द्रव्यं धर्मश्चैव जने जने ॥
(भविष्यपुराण, प्रतिसर्गपर्व)

'भारतके प्रत्येक ग्राममें देव-मन्दिर था, प्रत्येक देशमें यज्ञ होता था, प्रत्येक घरमें द्रव्यका अटूट भंडार भरा रहता था और प्रत्येक मनुष्यमें धर्मका अस्तित्व होता था ।'

भारतवर्षकी धार्मिकता और यज्ञ-परम्परा प्रसिद्ध है । भारतवर्षकी धार्मिकता और यज्ञ-परम्परासे संतुष्ट होकर देवगण सर्वदा भारतवर्षमें ही निवास करते हैं; वे दूसरे देशोंमें नहीं जाते । देवताओंके भारतवर्षमें रहनेके कारण

भारतवर्षका अत्यन्त महत्त्व है। इसीलिये भारतवर्षको 'देवभूमि' कहा गया है।

ब्रह्मपुराण (१९ । २२-२३) में आया है—

पुरुषैर्यज्ञपुरुषो जम्बूद्वीपे सदेज्यते।
यज्ञैर्यज्ञमयो विष्णुरन्यद्वीपेषु चान्यथा॥
अत्रापि भारतं श्रेष्ठं जम्बूद्वीपे महामुने।
यतो हि कर्मभूरेषा यतोऽन्या भोगभूमयः॥

"जम्बूद्वीपमें मनुष्योंके द्वारा यज्ञस्वरूप यज्ञपुरुष भगवान् विष्णुका सर्वदा यजन किया जाता है। दूसरे द्वीपोंमें अन्य प्रकारकी उपासनाएँ हैं। इस जम्बूद्वीपमें भी 'भारतवर्ष' विशेष श्रेष्ठ है, जो कि यज्ञोंके कारण 'कर्मभूमि' कहलाता है और दूसरे द्वीप 'भोगभूमि' कहलाते हैं।"

श्रीमद्भागवत (१० । ८४ । ३५) में कहा गया है—

कर्मणा कर्मनिर्हार एष साधु निरूपितः।
यच्छ्रद्धया यजेद् विष्णुं सर्वयज्ञेश्वरं मखैः॥

"कर्मोंके द्वारा कर्मवासनाओं और कर्मफलोंका आत्यन्तिक नाश करनेका सबसे श्रेष्ठ उपाय 'यज्ञ' है। अतः यज्ञादिके द्वारा समस्त यज्ञोंके अधिपति भगवान् विष्णुका श्रद्धापूर्वक आराधन करना चाहिये।"

भगवान् विष्णु सबके आराध्य और पूज्य हैं। अतः उन्हें संतुष्ट करनेके लिये यज्ञ ही एकमात्र साधन है। इसलिये प्रत्येक मनुष्यको परमाराध्य आदिनारायण भगवान् विष्णुका सर्वदा यजन करना चाहिये; क्योंकि वे यज्ञोंके द्वारा ही आराधनीय हैं—

'यज्ञैराराधितो विष्णुः'

(पद्मपुराण, उत्तरखण्ड २०२ । ८)

भगवान् विष्णुका स्वरूप

(लेखक—डॉ० श्रीवेदप्रकाशजी शास्त्री, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, डी० एस्-सी०)

'विष्णु' शब्दकी भाँति विष्णुका स्वरूप कितनी जटिलतासे युक्त है, इससे शास्त्रोंका सतत सेवन-मनन करनेवाला मनीषिवर्ग भलीभाँति परिचित है। प्रत्येक वस्तुके दो पक्षोंकी भाँति श्रीविष्णुके स्वरूपके भी दो पक्ष हैं—जटिल और सहज। श्रीविष्णुका जटिल रूप वह है, जिसे शास्त्रोंमें योगियोंके लिये भी अगम्य प्रतिपादित किया गया है और सहज रूप वह है, जिसे अहैतुकी कृपासे परिपूर्ण एवं सतत अनुग्रह करता हुआ, विश्व-भरण-रक्षणमें तत्पर प्रतिपादित किया गया है। श्रीविष्णुके इन उभयविशेषतासम्पन्न स्वरूपका निदर्शन निम्न दैनिक पठनीय श्लोकमें अतीव कुशलतापूर्वक गुम्फित किया गया है—

शान्ताकारं भुजगशयनं पद्मनाभं सुरेशं
विश्वाधारं गगनसदृशं मेघवर्णं शुभाङ्गम्।
लक्ष्मीकान्तं कमलनयनं योगिभिर्ध्यानगम्यं
वन्दे विष्णुं भवभयहरं सर्वलोकैकनाथम्॥

बाह्य दृष्टिसे यह सर्वथा सामान्य-सा विष्णुका स्तुतिपरक श्लोक है, परंतु सूक्ष्म दृष्टिसे इसका पर्यालोचन करनेपर विदित होता है कि श्रीविष्णुके अनन्त-ऐश्वर्यशाली रूपका सर्वाङ्गीण आकलन जिस कुशलतासे इस श्लोकमें किया गया है, वह अनुपम होनेके साथ-साथ अन्यत्र सर्वथा सुदुर्लभ है। गागरमें सागरकी भाँति इस श्लोकमें श्रीविष्णुके जिस स्वरूपका प्रतिपादन किया गया है, वह नवचेतनाकी पृष्ठभूमिपर और अधिक निखार लेकर अधिष्ठित होनेमें सक्षम हो गया है। इस श्लोकके प्रथम चरणके प्रथम दो विशेषणोंमें कहा गया है कि श्रीविष्णु शान्त आकारवाले हैं और वे भुजग (शेष) पर शयन करते हैं। सामान्य दृष्टिसे देखनेपर इस बातका महत्त्व भी सामान्य-सा ही दृग्गोचर होता है; परंतु सूक्ष्म दृष्टिसे उक्त विशेषणोंका पर्यवेक्षण करनेपर सहसा ही विचारोंकी बिजली कौंधती है कि 'वह (श्रीविष्णु) कितने असाधारण व्यक्तित्वके, ओजस्विताके स्वामी होंगे, जो कराल कालके प्रतीकभूत सर्पपर शयन करते हुए भी अपने आकारको शान्त बनाये रखते हैं। और फिर वह शान्ति भी ऐसी-वैसी सामान्य नहीं, अपितु ऐसी है, जिसके सम्बन्धमें श्रीगोस्वामी तुलसीदासजीने कहा है—

'शान्तं शाश्वतमप्रमेयमनघं निर्वाणशान्तिप्रदम्।'

(मानस, सुन्दरकाण्ड श्लोक १)

उनकी आकृतिपर विराजमान यह शान्ति केवल भक्तोंको ही परितोष देनेवाली हो, ऐसी बात नहीं, अपितु यह शान्ति

तो उनके शत्रुओंको भी पराभूत करनेवाली है । उनकी आकृतिपर सदैव खेलनेवाली शान्ति कितनी अनुपम, दिव्य और महान् है—इसका परिज्ञान श्रीविष्णुके अंशावतार श्रीराम और श्रीकृष्णके तत्तत् प्रसङ्गोंसे प्राप्त किया जा सकता है, जिनमें अत्यन्त प्रतिकूल परिस्थिति होनेपर भी उनकी शान्त आकृतिमें—सहज-सौजन्यपूर्ण मुखमुद्रामें तनिक भी अन्तर नहीं आता । वास्तवमें ऐसी ही शान्त आकृतिका स्वामी ही विनाशके कगारपर खड़े विश्वको बचानेमें सफल होता है और चुपचाप सारी हलचलको सहकर भी अपने आन्तरिक भावोंको प्रकट न कर अपनी महानताकी ऐसी छाप काल-पृष्ठपर अङ्कित कर देता है, जो युगोंतक अविकल बनी रहकर उसकी स्मृतिको अजरामर बना देती है । श्रीविष्णुके उक्त विशेषण भी यह स्पष्ट कर देते हैं कि वे भी विश्वकी सम्पूर्ण हलचलको देखकर न केवल उसे दुर्लक्ष्य बनाते हैं, अपितु अपने शयनीथकी ओर अप्रत्यक्षरूपसे इङ्गित कर महानताके सोपानपर आरूढ़ मानव-समुदायको भी यह बताते रहते हैं कि ईश्वरके अंशभूत प्राणियोंकी सफलता अशान्त होनेमें नहीं, अपितु विषमतम परिस्थितिमें रहकर भी शान्त बने रहनेमें है; विशेषतः किसी भी मानवकी सफलता तो एकमात्र निर्विकार या शान्त मुखमुद्रामें ही निहित है ।

इसी चरणके उत्तरार्द्धमें पुनः दो विशेषणोंका उल्लेख हुआ है—'पद्मनाभं सुरेशं ।' सामान्यरूपसे प्रथम पदका भाव है—कमलको नाभिमें धारण करनेवाले और दूसरेका देवताओंके स्वामी है; परंतु श्रीविष्णुसे सम्बद्ध इनका तात्त्विक भाव सर्वथा अपर है । प्रथम विशेषण, जिसका अर्थ कमल-नाभ है, बताता है कि जिस प्रकार कमल अनेक पँखुड़ियों, पराग, केशर और गम्भीर कोषसे युक्त होकर कवि, भ्रमर, वैद्य और वीतरागका कार्य-साधन करता है, उन्हें अपनी ओर उन्मुख बनाता है, ठीक उसी भाँति स्वयं कलामें व्यक्त होकर कलाकारको, अपरिमित गन्धका स्रोत होकर साधक-रूपी भ्रमरोंको, रसरूपमें ओषधियोंमें अवस्थित होकर चिकित्सक-समुदायको तथा गम्भीर-नाभिसम्पन्न होकर गम्भीरताप्रेमी वीतराग-वृन्दको श्रीविष्णु अपनी ओर उन्मुख बनाकर 'रसो वै सः' इस उपनिषद्वाक्यको अन्वर्थक बनाते हैं । इसके साथ ही श्रीविष्णुकी नाभि जगत्स्रष्टा श्रीब्रह्माका उद्भव-स्थान होनेके कारण उनकी प्रौढ़ता, उच्चाधिष्ठानिता अथच अतिशय गम्भीरता एवं कमल-गन्धवत् उनकी चराचरात्मक विश्वमें सूक्ष्मरूपमें विद्यमानताका परिचय देकर यह भी स्पष्ट कर देती है कि श्रीविष्णु यद्यपि अपने नामके अनुरूप चराचरात्मक इस अखिल विश्वमें व्याप्त हैं, तथापि वे 'कमलनाभ' विशेषणको अन्वर्थक बनाते हुए जल-सदृश विकारयुक्त विश्वसे सर्वथा असम्पृक्त भी हैं । श्रीविष्णुका यह पार्थक्य विदेहराजकी तरह है । जैसे विदेह महलोंमें रहकर भी सर्वथा 'वीतराग' थे, उसी प्रकार श्रीविष्णु भी सभीसे असम्पृक्त रहते हुए भी सम्पूर्ण देवताओंके ईश हैं । इसका भाव यही है कि न केवल भूतलकी, अपितु देवलोककी भी सम्पूर्ण सम्पदा उनके चरणोंमें लोटकर भी उन्हें अपनी ओर आकृष्ट करनेमें असमर्थ रही है और वे उस वैभवके मध्य जलमें अवस्थित कमलकी भाँति ही अपनी स्थिति बनाये हुए हैं । असङ्गता और स्वामित्व—दो विपरीत भावोंका एकत्र समावेश केवल श्रीविष्णुकी ही विशेषता है । इसके साथ ही 'पद्मनाभं' और 'सुरेशं' श्रीविष्णुकी दो अन्य विशेषताओंके भी परिचायक हैं । कमलके दो मुख्य गुण हैं—दिनान्तमें मुकुलित होना एवं दिनारम्भमें विकसित होना । श्रीविष्णुका 'पद्मनाभ' विशेषण भी श्रीविष्णुमें इन दोनों स्थितियोंकी विद्यमानता बताता है । प्रलयकालमें सब कुछ उनमें विलीन हो जाता है और प्रलयके पश्चात् उचित समयपर उनका नाभिकमल विकसित होकर सृष्टिका—जीवनका सुभग हास्य चारों ओर बिखेर देता है । कमलकी इन विशेषताओंसे सम्पन्न श्रीविष्णु ही 'सुरेश' अर्थात् सद्वृत्तियों, सद्विचारोंके स्वामी भी हैं । अतः सृष्टिके आदि और अन्त्य कारण होनेके कारण एवं सभी सद्विचारों, सद्वृत्तियों और सत्कल्पनाओंके मूलस्रोत होनेके कारण उक्त दोनों ही विशेषण श्रीविष्णुके अन्वर्थक कहे जा सकते हैं ।

श्लोकके दूसरे चरणमें श्रीविष्णुके दो अन्य विशेषणोंका स्थापन हुआ है—'विश्वाधारं' तथा 'गगनसदृशं' । इनका क्रमशः सामान्य भाव यही है कि श्रीविष्णु संसारके आधार अथवा आश्रय हैं और आकाशवत् हैं । परंतु तात्त्विक भाव यह है कि श्रीविष्णु विश्व अथवा सम्पूर्ण वस्तुओं किंवा चराचरात्मक अखिलवस्तुजातके आधार या आश्रय हैं । अर्थात् सभी वस्तुओंमें श्रीविष्णु तथा श्रीविष्णुमें सभी वस्तुओं-(जड-चेतन)का अन्तर्भाव है और इस वैशिष्ट्यसे युक्त होकर भी वे गगन अर्थात् आकाशके समान हैं । इसका आशय यही है कि आकाश (गगन)—जिसका एक अर्थ शून्य भी होता है—के समान ही श्रीविष्णुकी भी स्थिति है । श्रीविष्णु अखिल विश्वमें गगनवत् व्याप्त हैं । कितनी विचित्र बात है कि जो अखिल विश्वका

आधार हो, वही शून्यवत् भी हो ! परंतु नहीं, इसका भाव यही है कि जैसे गगन पाञ्चभौतिक सृष्टिका उपादान-कारण होनेके कारण अखिल विश्वमें अपनी सत्ता रखता हुआ भी चर्मचक्षुओंके अधिकारक्षेत्रसे बाहरका विषय होनेके कारण शून्यरूपमें परिगणित होता है, वैसे ही श्रीविष्णु भी व्यापक होकर भी सूक्ष्मरूपमें अखिल लोकके आधार बनकर इस विश्वके सम्पूर्ण कार्यकलापोंका पर्यवेक्षण करते हुए शून्यकी महत्ताका स्थापन किया करते हैं। गणित और सृष्टिका आधार शून्यको माना गया है। श्रीविष्णु भी सृष्टिका आधार एवं अखिल वस्तुजातके गणक और स्रष्टा होनेके कारण गगनसदृश विशेषणके अन्वर्थक भागी हैं। वेदान्तके अनुसार पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश—पाँचों तत्त्व एक दूसरेमें तिरोहित होते हुए, अन्तमें (प्रलयकालमें) केवल गगन और जल ही अवशिष्ट रहते हैं और उस जलराशिमें वट-पत्रके पुटकमें गगनसदृश (व्यापक, अनन्त महिमान्वित, शून्यवत् सूक्ष्म) श्रीविष्णु शयन किया करते हैं और उन्हींमें सारी सृष्टि। अतः 'गगनवत्' विशेषण श्रीविष्णुकी अनन्त महत्ताका द्योतक है।

इसी चरणमें श्रीविष्णुके दो और विशेषण हैं—**'मेघवर्ण'** और **'शुभाङ्गम्'**। सामान्यतः इनका भी अर्थ मेघके समान वर्णवाले और शुभ अङ्गोंवाले हैं, परंतु तात्त्विक दृष्टिसे इनका भाव यह है कि श्रीविष्णुका वर्ण मेघके समान श्यामल तो है ही, साथ ही जैसे मेघ सूर्यका प्रकाश पाकर अपने वर्णमें वैचित्र्य और मनोहारिता उत्पन्न कर लेता है, ठीक उसी प्रकार श्रीविष्णु भी समय और स्थितिके अनुसार विभिन्न रूप, वर्ण (सत्ययुगमें श्वेत, त्रेतामें रक्त आदि) धारण कर, भू-भार-हरण आदि अनेकानेक कार्य सम्पादित करते हैं और अपनी मनोहर छविके दर्शन कराकर अनेक भटके हुए जनोंको सुमार्गपर लगाते हैं। मेघके समान वर्णवाले होते हुए भी श्रीविष्णुके अङ्ग अतीव शोभन हैं, यह कथन इसलिये कुछ अटपटा-सा लगता है कि कहाँ तो काला-कलूटा मेघ और कहाँ अतीव कमनीय, अतीव मनोहर श्रीविष्णुके अङ्ग। परंतु श्री-विष्णुके वैदिक स्वरूप **'ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः'** (यजुर्वेद ३१।११) आदिपर दृष्टिपात करनेपर यह अटपटापन दूर हो जाता है; क्योंकि ब्राह्मण-क्षत्रियादि चारों श्रीविष्णुके अङ्गभूत चरण (अमृतस्य पुत्राः) शर्म—कल्याणकृत्, वर्म—कवचभूत हो रक्षणकृत्—गुप्त-धनादिरक्षण, गोपनकृत्, दास—दास्यकृत अर्थात् चतुर्वर्णके रूपमें उनके अङ्ग अपनी महत्ता, उपयोगिता और शोभनत्व प्रकट कर यह सुस्पष्ट कर देते हैं कि वर्ण कैसा भी हो, परंतु यदि अङ्ग बहुजनसुखाय, बहुजनहिताय हों तो वर्णके दोषसे अछूते रहकर वे न केवल अपनी महत्ताका द्योतन कर पानेमें समर्थ होते हैं, अपितु अपने गुणोंसे रंगोंको भी उसी प्रकार उत्कृष्ट प्रतिपादित कर देते हैं, जैसे सुयोग्य पुत्र पिताके मानको और अधिक बढ़ा देता है। इस प्रकार श्रीविष्णुके रंग और अङ्ग—दोनों ही न केवल सार्थक हैं, अपितु वैषम्य रखते हुए भी श्रीविष्णुके वैशिष्ट्य एवं अपनी-अपनी महत्ताके कारण लोकोत्तर ही हैं। इसके साथ ही श्रीविष्णुके श्यामल वर्णका एक वैज्ञानिक महत्त्व भी है—मुख्यतः रंग सात होते हैं; यदि सातों रंगोंको एक साथ मिला दिया जाय तो केवल कृष्ण वर्ण रह जाता है। आकाश स्वयं श्यामल है, परंतु सूर्य-चन्द्र-नक्षत्रके रूपमें प्रकाशका मूलोत्स भी है। श्रीविष्णुकी स्थिति भी ठीक इसी प्रकारकी है। सभी वर्णोंको स्वयंमें विलीन करनेके कारण वे श्यामल हैं और प्रकाश, ज्ञान आदिका उत्स होनेके कारण शोभन भी; अतः **'मेघवर्णं शुभाङ्गम्'** विशेषण उनकी विशेषताओंके सर्वथा अनुरूप हैं।

श्लोकके तीसरे चरणमें श्रीविष्णुके तीन विशेषण हैं—**'लक्ष्मीकान्तं'**, **'कमलनयनं'** और **'योगिभिर्ध्यानगम्यम्'**। इन तीनोंका सामान्य अर्थ लक्ष्मीके पति, कमलके समान नेत्रवाले और योगियोंको ध्यानद्वारा ही बोधगम्य होनेवाले हैं; परंतु तात्त्विक दृष्टिसे इनका भाव है कि लक्ष्मी—अर्थात् धन-सम्पदा, श्री, शोभा आदिके स्वामी होते हुए भी श्रीविष्णु कमलके समान नेत्रवाले हैं। अर्थात् यह सत्य है कि श्रीविष्णु लक्ष्मीके नित्यसहचर हैं; उन्हींके साथ वे उनकी सेवा स्वीकार करते हुए क्षीरसागर (लक्ष्मीके पीहर) अथवा वैकुण्ठमें निवास करते हैं और लक्ष्मी—सम्पद् सतत उनके चरणोंमें लोटती रहती है। परंतु यह सब होते हुए भी जैसे कमल जलमें रहकर—उससे पोषित होकर भी उससे विलग ही रहता है, ठीक उसी प्रकार कमलके समान नेत्रवाले श्रीविष्णु लक्ष्मीके पति होकर भी उससे असम्पृक्त-से ही रहते हैं और यही कारण है कि जिसपर वे अनुग्रह करते हैं, सर्वप्रथम उसकी लक्ष्मी-को ही वे समाप्त करते हैं। भाव यह है कि श्रीविष्णुका अनुग्रह बहुत कुछ अनभिमानित्व, अदम्भित्व आदि गुणोंपर निर्भर हुआ करता है। जबतक व्यक्ति लक्ष्मीका दास बना

रहता है, तबतक ये गुण उसमें नहीं आ पाते और फलस्वरूप श्रीविष्णुके अनुग्रहसे वह वञ्चित रहता है। परंतु पूर्वपुण्योंके प्रभावसे जब वह श्रीविष्णुके अनुग्रहका भाजन बनने लगता है, तब श्रीविष्णु उसकी धन-सम्पदाका विनाश कर उसके अनुग्रहमार्गकी बाधाको अपसारित कर देते हैं और फिर क्रमशः उसके मनमें लक्ष्मी (धन-सम्पद्) के प्रति ऐसी वितृष्णा भर देते हैं कि वह व्यक्ति लक्ष्मी (धनादि) के नामतकसे कतराने लगता है। 'कमलनयन' विशेषण श्रीविष्णुके जलमें रहकर भी जलसे विलग रहनेकी भावनाका भी द्योतक है, अतः 'लक्ष्मीकान्त' और 'कमलनयन' श्रीविष्णुकी अन्य विशेषताओंके ख्यापक अथच अन्वर्थक विशेषण हैं। तीसरा विशेषण—'**योगिभिर्ध्यानगम्यम्**' जहाँ सामान्यतः इस बातका परिचायक है कि उक्त अनेकानेक विशेषणोंसे समलंकृत श्रीविष्णुके वास्तविक स्वरूपका अवबोधन योगियोंको भी ध्यानमें ही हो सकता है, वहाँ यही विशेषण विशेष अर्थमें यह भी स्पष्ट कर देता है कि अपने नामके अनुरूप तथा 'विश्वाधार', 'गगनसदृश' आदि विशेषणयुक्त होनेपर जो श्रीविष्णु अणु-अणुमें व्याप्त हैं, वे वस्तुतः इतने सूक्ष्म हैं कि योगी ध्यानमें ही उनके स्वरूपका यत्किंचित् आभासमात्र पा सकते हैं। इस प्रकार सूक्ष्मरूपसे सबमें व्याप्त और महान् रूपसे सबपर आच्छादित श्रीविष्णुकी पृथुलता और सूक्ष्मता न केवल अप्रतिम और '**योगिभिर्ध्यानगम्यम्**' विशेषणको अन्वर्थक बनानेवाली है, अपितु श्रीविष्णुके महत्त्वकी भी प्रतिपादिका है।

अन्तमें '**वन्दे विष्णुं भवभयहरं सर्वलोकैकनाथम्**' चरणद्वारा भगवान् विष्णुकी वन्दना की गयी है। इस अन्तिम चरणमें भी भगवान् विष्णुके दो विशेषण—'भवभयहर' और 'सर्वलोकैकनाथ' आये हैं, जिनके द्वारा श्रीविष्णुकी सांसारिक भय दूर करनेकी अप्रतिम क्षमता तथा '**सर्वलोकैकनाथम्**'द्वारा उनके अप्रतिम वर्चस्वका ख्यापन हुआ है और उन्हें अखिल विश्वका एकमात्र स्वामी प्रतिपादितकर भव-भय-नाशनमें उनकी सामर्थ्यका दिग्दर्शन कराते हुए उस महान् अथच सूक्ष्म, लक्ष्मीपति अथच निर्लेप, विश्वाधार अथच शून्य (सूक्ष्म) रूप, चराचरात्मक जगत्के एकमात्र स्वामीके रूपमें श्रीविष्णुकी वन्दना की गयी है।

संक्षेपमें इस एकमात्र सामान्य-से श्लोकमें श्रीविष्णुके जिस मनोरम एवं विभूतिमय स्वरूपके दर्शन कराये गये हैं, वह वेद-पुराण-उपनिषदादिसम्मत होनेके कारण दिव्य अथवा अनुपम तो है ही, साथ ही भव-भय-संत्रस्त जनोंके लिये सम्बलभूत और महान् बननेके इच्छुकोंके लिये प्रेरणास्रोत भी है।

श्रीविष्णुके इस अप्रतिम रूपका अध्ययन कर किसी कविकी निम्नलिखित पङ्क्तियाँ साकार होकर नेत्रोंके सामने नाचने लगती हैं—

स्वयं व्यक्त तू हुआ कलामें, जग कहता मैं कलाकार हूँ।
मुझे ज्ञात है मृत्ति-पिण्ड सब, मैंने चालित चक्र किया है।
पर मेरे अज्ञात स्वप्नको, तूने ही आकार दिया है।
तेरी इच्छा मूर्तिरूप है, जग कहता मैं मूर्तिकार हूँ॥

रंग, तूलिका दोनों तेरे, मैंने केवल खेल किया है।
तव इंगितपर मधुर कल्पना और सत्यका मेल किया है।
तेरे मनका चित्र उतारा, जग कहता मैं चित्रकार हूँ॥

मेरी आँखोंमें तू रहता, मैं बनकर तू ही द्रष्टा है।
मेरे मन-प्राणोंका वासी मैं बनकर तू ही स्रष्टा है॥
मेरा काम समर्पित तुझको, स्वयं हुआ मैं त्वदाकार हूँ॥
स्वयं व्यक्त तू हुआ कलामें, जग कहता मैं कलाकार हूँ।

इन पङ्क्तियोंके उद्धृत करनेके बाद हम भी शास्त्रवाणीके साथ अपना स्वर मिलाते हैं—'वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम्।'

मदोन्मत्त ही विष्णुका भजन नहीं करते

अहो धैर्यमहो धैर्यमहो धैर्यमहो नृणाम्।
विष्णौ स्थिते जगन्नाथे न भजन्ति मदोद्धताः॥

(नारदपुराण, पूर्वखण्ड ३४। ५९)

अहो! मनुष्योंका धैर्य कितना अद्भुत, कितना आश्चर्यजनक है कि जगदीश्वर भगवान् विष्णुके होते हुए भी वे मदसे उन्मत्त होकर उनका भजन नहीं करते।

'यज्ञो वै विष्णुः'

(लेखक—श्रीदेवीरत्नजी अवस्थी 'करील')

आधुनिकतम वैज्ञानिक अन्वेषणोंके अनुसार प्रत्येक पदार्थकी रचना परमाणुओंके संगठनके कारण होती है। विज्ञान सिद्ध कर चुका है कि प्रत्येक परमाणुके बीचों-बीच एक सम्पन्न-विद्युद्बिन्दु स्थित है। इस सम्पन्न-विद्युद्बिन्दुको हमारे वैज्ञानिक 'धन-विद्युद्बिन्दु' कहते हैं। इस लेखमें सरलताके दृष्टिकोणसे, इसे धन-विद्युद्बिन्दु न कहकर 'सम्पन्न विद्युद्बिन्दु' कहा गया है। वैज्ञानिक यह भी सिद्ध कर चुके हैं कि प्रत्येक परमाणुकी जीवनशक्ति इसी सम्पन्न-विद्युद्बिन्दुपर ही निर्भर है। वैज्ञानिकोंकी इस सिद्धिकी जानकारी प्राप्त कर लेनेके उपरान्त मनमें स्वभावतः यह भाव जाग्रत् हो उठता है कि क्या हम परमाणुओंके हृद्देशमें विराजमान इस सम्पन्न-विद्युद्बिन्दुको अपनी इन आँखोंसे देख सकते हैं? हाँ, उसे हम देख सकते हैं; यदि हमें वह दिव्यदृष्टि प्राप्त हो जाय, जिसके बलसे अर्जुनने भगवान्‌के विराट्-स्वरूपके दर्शन किये थे।

वैज्ञानिकोंने यह भी सिद्ध कर दिया है कि अनेकानेक ऋण-विद्युत्-प्रधान विद्युत्कण इस धन-विद्युद्बिन्दुकी निरन्तर परिक्रमा किया करते हैं। इन धन-विद्युद्बिन्दुओं और ऋण-विद्युत्कणोंका धनत्व एवं ऋणत्व साधारण व्यक्तिको भी ठीक-ठीक समझमें आ जाय, इसलिये मैं उन्हें वैज्ञानिकोंद्वारा प्रयुक्त न्यूक्लियस और इलेक्ट्रन-जैसे अत्यन्त कठिन नामोंसे सम्बोधित न करके, सम्पन्न-विद्युद्बिन्दु और असम्पन्न-विद्युत्कण कह रहा हूँ।

प्रत्येक परमाणुके हृद्देशमें विराजमान इस सम्पन्न-विद्युद्बिन्दुके आकारको हम तभी अपनी आँखोंसे देखनेमें समर्थ हो सकते हैं, जब हम एक इंच लंबे एक बालको दस लाख समान आकारवाले खण्डोंमें विभाजित कर लें और फिर उन दस लाख टुकड़ोंमेंसे एकको उठाकर, फिर उसको भी दस लाख खण्डोंमें विभाजित करके उनमेंसे एक खण्डको आधुनिकतम अणुवीक्षण-यन्त्रोंकी सहायतासे देखें। आजका विज्ञान यौगिक शक्तियोंमें विश्वास नहीं करता। उसने अपने यान्त्रिक साधनोंके बलपर दिव्य दर्शन-की शक्ति प्राप्त करके प्रत्येक परमाणुके हृद्देशमें विराजमान इस सम्पन्न-विद्युद्बिन्दुके दर्शन कर लिये हैं। वैज्ञानिकोंने यह भी देख लिया है कि अनेकानेक असम्पन्न-विद्युत्कण निरन्तर इस सम्पन्न-विद्युद्बिन्दुकी इसलिये परिक्रमा किया करते हैं कि उसमें मिलकर एक हो जायँ। वैज्ञानिकोंका यह भी अनुमान है कि इन सूक्ष्मातिसूक्ष्म विद्युद्बिन्दुओंके अंदर विभिन्न विद्युत्कणोंका संग्रह भी होगा, जिसका अध्ययन अबतक हो नहीं पाया है। अपने अध्ययनके बलपर हमारे युगके वैज्ञानिक इस तथ्यतक पहुँच चुके हैं कि जिन नियमोंके अनुसार इन सूक्ष्मातिसूक्ष्म परमाणुओंकी रचना होती है, उन्हीं नियमोंके अनुसार इस परम विस्तृत ब्रह्माण्डकी भी रचना होती है। इस प्रकार हमारे युगका आधुनिकतम विज्ञान यह सिद्ध करता है—

'यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे।'

हमारा आधुनिकतम विज्ञान इन तथाकथित सम्पन्न-विद्युद्बिन्दुओंको और असम्पन्न-विद्युत्कणोंको जड मानता है। हमारे ऋषि भी प्रकृतिको जड मानते हैं और कहते हैं कि सृष्टिकी रचना एक मौलिक ऊष्मासे होती है। इसी ऊष्मासे अनेकानेक ऊष्माओंकी शृङ्खलाएँ जन्म लेती हैं। सारे भूतोंमें, सारे परमाणुओंमें मौलिक ऊष्मा अग्निस्वरूपमें दिखायी पड़ती है। यही आग्नेयस्वरूप जब प्रजननका काम करता है, तब उसे 'मनु' कहा जाता है। भगवान् व्यासके इस ऋष्यर्चनको उन्हींकी वाणीमें सुनिये—

ऊष्मा चैवोष्मणो जज्ञे सोऽग्निर्भूतेषु लक्ष्यते।
अग्निश्चापि मनुर्नाम प्राजापत्यमकारयत्॥

ध्यान रखिये कि प्रत्येक परमाणु ही भूत हैं और उन परमाणुओंमें जो ऊष्मा है, वही वे सम्पन्न-विद्युद्बिन्दु हैं, जिनसे असम्पन्न-विद्युत्कणोंका प्रकटीकरण होता है। परमाणुओंकी इसी ऊष्माको, इसी अग्निस्वरूपको विद्युदाकार होकर सृष्टिकी संरचनाके लिये 'मनु' बनना पड़ता है। विज्ञान इस संरचनाकी नियमितता बताता हुआ भी यह मानकर चलता है कि इसमें किसी चेतन शक्तिका हाथ नहीं है। भारतीय वैदिक-दर्शन यह मानता है कि भूतोंकी अर्थात् परमाणुओंकी ऊष्मासे ऊष्माओंकी शृङ्खलाएँ उत्पन्न होकर, अपनी जडताके कारण 'प्राजापत्य मनु' नामक अग्नि बनकर तबतक नियमितरूपसे कार्य नहीं कर सकतीं, जबतक

उनपर किसी चेतन सत्ताका नियन्त्रण न हो। ग्रह-नक्षत्रोंके अन्वेषणमें लगे हुए अमरीकी और रूसी वायुयान स्वचालित होकर भी जिस प्रकार मानवीय चैतन्य सत्ताके अधीन होकर ही चन्द्रमण्डलपर उतरते हैं और मङ्गल ग्रहकी उड़ानें भरते हैं, उसी प्रकार परमाणुओंके हृद्देशमें विराजमान वे सम्पन्न कहे जानेवाले सूक्ष्मातिसूक्ष्म विद्युद्बिन्दु भी किसी अनिर्वचनीय चैतन्य सत्ताके बलपर ही नियमितरूपसे सृष्टिकी संरचनामें प्रवृत्त हो सकते हैं। ध्यान रखिये कि बिना किसी चैतन्य बलके जड प्रकृति कभी नियमित होकर कार्य नहीं कर सकती।

हमारे आधुनिकतम वैज्ञानिक यह नहीं बता पाते कि प्रत्येक परमाणुके हृद्देशमें सम्पन्न-विद्युद्बिन्दु किन कारणोंसे विराजमान है और असम्पन्न कहे जानेवाले विद्युत्कण किन कारणोंसे उनसे मिलनेके लिये निरन्तर उनकी परिक्रमा किया करते हैं। वैज्ञानिक यह भी नहीं बता पाते कि इन सम्पन्न और असम्पन्न विद्युद्बिन्दुओं और विद्युत्कणोंसे बलिष्ठ परमाणु शान्त क्यों नहीं रहते, क्यों वे सृष्टिकी संरचनामें प्रवृत्त होते हैं? वैज्ञानिक कहते हैं कि बस, ऐसा होता ही रहता है।

भारतीय दर्शन इसका उत्तर देता है। वह पूछनेवालेको अर्जुन कहकर सम्बोधित करता हुआ कहता है कि 'अर्जुन! सारे भूतोंके अर्थात् सारे परमाणुओंके हृद्देशमें ईश्वर स्थित है और वही अपनी मायासे सारे भूतोंको अर्थात् सारे परमाणुओंको यन्त्रारूढ़ बनाकर परिभ्रमित करता रहता है'—

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥

(गीता १८। ६१)

भारतीय ऋषियोंकी यह सुचिन्तित मान्यता है कि एक इंचके दस लाखवें भागके भी दस लाखवें भागके आकारवाले इन विद्युद्बिन्दुओंकी निरन्तर स्थितिका और उनकी प्रगतिका नियन्त्रण उस परम चेतन, अनादि, अव्यय, निराकार और अजन्मा ईश्वरद्वारा होता है, जिसे वे 'विष्णु'के नामसे सम्बोधित करते हैं। इन्हीं विष्णुकी सत्ताके नियन्त्रणमें अनेकानेक विद्युत्कण प्रत्येक परमाणुके हृद्देशमें स्थित सम्पन्न-विद्युद्बिन्दुओंसे एकाकार होनेकी उत्कण्ठासे निरन्तर उनकी परिक्रमा किया करते हैं। परमाणुओंके संगठनके ये नियन्त्रक विष्णु सर्वव्यापक हैं। जिन सूक्ष्मातिसूक्ष्म विद्युद्बिन्दुओंको वैज्ञानिक पूर्ण सम्पन्नतासे युक्त मानते हैं, उनकी सम्पन्नताका संरक्षण भी ये ही विष्णु निरन्तर करते रहते हैं और ये ही विष्णु उन असम्पन्न-विद्युत्कणोंका भी नित्य नियन्त्रण करते हैं, जो परमाणुओंके हृद्देशमें स्थित उन सम्पन्न-विद्युद्बिन्दुओंकी परिक्रमामें निरन्तर लगे रहते हैं।

हम अपने आधुनिकतम वैज्ञानिक उपकरणोंके माध्यमसे एक इंचके दस लाखवें भागके भी दस लाखवें भागके उस सूक्ष्मातिसूक्ष्म विद्युद्बिन्दुके दर्शन भले कर लें, जो प्रत्येक परमाणुके हृद्देशमें विराजमान है; पर उस विष्णुका दर्शन किसी भौतिक उपकरणके माध्यमसे सम्भव नहीं है, जो समस्त परमाणुओंका, समस्त सम्पन्न-विद्युद्बिन्दुओंका और समस्त असम्पन्न-विद्युत्कणोंका नियन्त्रक और संरक्षक है। इसी विष्णुको वैदिक ज्ञानके तत्त्ववेत्ता ऋषियोंने अणुसे भी सूक्ष्म और महत्से भी महत् बताकर उसे सर्वव्यापक बताया है। जो सभीमें व्याप्त हो, वही 'विष्णु' है। विष्णुका अर्थ ही सर्वव्यापी होता है। यह सर्वव्यापी विष्णु आदि और अन्तसे सर्वथा रहित है; इसलिये जो भी आदि और अन्तसे युक्त है, वह उसकी महत्ताकी थाह नहीं पा सकता। ऐसे विष्णुको ऋषियोंने कहा है—

'अणोरणीयान् महतो महीयान्'

(कठोपनिषद् २। २०)

जगदाधार विष्णुका यह स्वरूप सर्वथा अचिन्त्य है। उसकी न तो कोई सीमा है और न उसकी कोई रूप-रेखा ही है। पर चिन्तनशील मनुष्य एक सीमित एवं रूप-रेखायुक्त प्राणी है, इसीलिये उसके हृदयमें परमात्माके इस अचिन्त्य स्वरूपको प्रविष्ट करानेके उद्देश्यसे मनीषियोंने उस असाधारणका भी साधारणीकरण करनेका प्रयत्न किया है। उन्होंने घोषित किया कि 'यज्ञ ही विष्णु है'—

'यज्ञो वै विष्णुः।' (शतपथ ब्राह्मण १। १। २। १३)

अब प्रश्न उठेगा कि 'यज्ञ क्या है?' उत्तर है कि "प्रत्येक परमाणुके हृद्देशमें सम्पन्न-विद्युद्बिन्दुओंकी स्थापना ही 'यज्ञ' है। इन सम्पन्न कहे जानेवाले विद्युद्बिन्दुओंके चारों ओर परिभ्रमण करनेवाले विद्युत्कणोंको अपने प्रवेगमें निरन्तर रत रखना भी 'यज्ञ' है।" यह तो हुआ सूक्ष्म

जगत्का यज्ञ। अब विराट् जगत्में आइये। इस सारी पृथिवीका आचरण, इस सारे अन्तरिक्षका आचरण, इन सारे ग्रह-नक्षत्रोंका आचरण भी स्वयं 'यज्ञ' है। हम अपने समाजमें जिन यज्ञोंको देखते हैं, वे यज्ञ तो विष्णुके इस परम प्राकृत और निरन्तर चलते रहनेवाले यज्ञका प्रतीक-मात्र हैं। वेद इस निरन्तर चलनेवाले प्राकृतिक यज्ञकी घोषणा करता हुआ कहता है कि यह यज्ञ ही भुवनका नाभिस्थल है। 'नाभि'का अर्थ है—केन्द्र। वेद कहता है—

'अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः।'

विष्णु व्यापक होनेके कारण एक और अद्वितीय होकर भी 'अनेक' कहलाता है। विष्णुके इस एकत्वमें अनेकत्वकी घोषणा भारतकी दार्शनिक विचारधाराका सुचिन्तित परिणाम है। दार्शनिक चिन्तनका यह मार्ग बड़ा ही उदार और विस्तृत है। संसारके सारे मत-मतान्तर इस परम उदार और विस्तृत राजमार्गमें बिना परस्पर टकराये गतिशील रह सकते हैं। अनेकत्वमें एकत्व और एकत्वमें अनेकत्वकी व्याख्या करता हुआ ऋग्वेदका ब्रह्मज्ञान पूर्ण सरलताके साथ घोषित करता है कि एक ही सत्यको सद्विप्र कहे जानेवाले महाज्ञानी लोग बहुत प्रकारसे कहा करते हैं—

'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति।'

(१।१६४।४६)

एकत्वमें अनेकत्व धारण करनेवाला वह जगदाधार परमात्मा, जिसके यज्ञस्वरूपी विष्णुत्वकी चर्चा ही इस लेखका विषय है, यद्यपि नाम, रूप, लिङ्ग और वचनसे परे है, फिर भी सर्वव्यापी होनेके कारण वह सारे नामोंमें तथा सारे रूपोंमें समाया हुआ है। वह पुँल्लिङ्गत्वसे परे होकर भी सारे पुँल्लिङ्गत्वमें विराजमान है। वह स्त्रीलिङ्गत्वसे परे होकर भी सम्पूर्ण स्त्रीलिङ्गत्वमें छाया हुआ है। वह तीनों वचनोंसे परे होकर भी एकवचन, द्विवचन और बहुवचनकी सभी संज्ञाओं और क्रियाओंमें रम रहा है और जिस प्राकृत यज्ञकी ऊपर चर्चा की जा चुकी है, उसी निरन्तर चलनेवाले यज्ञसे अपने यज्ञका यजन करता रहता है। इस प्रकार यह विष्णु स्वयं यज्ञस्वरूप है और स्वयं ही यज्ञकर्ता भी है। इसीलिये ऋग्वेद कहता है—

'यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः।'

(१।१६४।५०)

आधुनिक विज्ञानकी धारणा है कि सूक्ष्मातिसूक्ष्म विद्युद्बिन्दुओंके अंदर भी कोई शक्ति है, जिसे अबतक देखा नहीं जा सका। वैदिक विज्ञान इसकी घोषणा अत्यन्त प्राचीन युगमें कर चुका है और बता चुका है कि सभीके मध्यवर्ती क्षेत्रमें वामन विराजमान है, जिनकी उपासना सारी देवसृष्टि करती रहती है। इसका स्पष्ट अर्थ यह हुआ कि प्रत्येक परमाणुके हृद्देशमें स्थित सम्पन्न-विद्युद्बिन्दु और असम्पन्न-विद्युत्कणोंके केन्द्रमें तथा विश्वके सारे विराट्-स्वरूपके मध्यवर्ती क्षेत्रमें वामन विराजमान है। आधुनिकतम वैज्ञानिक अन्वेषणोंद्वारा अवलोकित सारे सम्पन्न-विद्युद्बिन्दु और विद्युत्कण विष्णुके देवत्वके बलसे स्वयं जड होकर भी देव बनते हैं और उनके वामनरूपकी उपासनामें लगे रहते हैं—

'मध्ये वामनमासीनं सर्वे देवा उपासते।'

प्रत्येक परमाणुमें, प्रत्येक सम्पन्न-विद्युद्बिन्दुमें, प्रत्येक असम्पन्न-विद्युत्कणमें तथा इस विराट् विश्वकी समग्र रचनामें व्याप्त विष्णुको ही वैदिक विज्ञान 'वामन' कहता है। भविष्यमें परमाणुओंके हृद्देशके विद्युद्बिन्दुओंके भी हृद्देशमें विराजमान विद्युज्जालके निरीक्षणमें हमारे वैज्ञानिक सफलता प्राप्त कर सकते हैं; पर सबके नियन्ता वामनका दर्शन किसी भी भौतिक यन्त्र और उपकरणके द्वारा नहीं हो सकता। वामन देश और कालसे परे, स्वयंसिद्ध और असमीक्ष्य सामर्थ्यका अचिन्त्य और रूपरेखा-विहीन संचालक है; इसलिये उस सीमारहितको सीमायुक्त मनुष्यके सीमित और रूपरेखायुक्त यन्त्रों और उपकरणोंसे देखा नहीं जा सकता। वामनका दर्शन केवल योगानुभूतिके द्वारा ही सम्भव है। गूँगा जिस प्रकार मिश्रीके स्वादका बखान नहीं कर सकता, उसी प्रकार योगीजन उस वामन विष्णुका दर्शन करके भी उसका वर्णन नहीं कर पाते। श्रुति घोषित कर चुकी है कि जो उसे जाननेकी घोषणा नहीं करता, वही उसे जानता है और जो उसको जाननेकी घोषणा करता है, वह उसे नहीं जानता—

यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः।
अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानताम्॥

(केनोपनिषद् २।३)

किंतु मनुष्यके मनने ऐसी कठिनता सुनकर भी उस जगदाधार विष्णुसे परिचित होनेकी छटपटाहट नहीं छोड़ी। उसने उस आकारहीन और अदर्शनीय विष्णुको, उस

घट-घट-व्यापीको वामनरूपमें स्थापित करके उसे समझने और समझानेकी चेष्टा की है। परमाणुओंके सूक्ष्मातिसूक्ष्म विद्युद्विन्दुओंके हृद्देशके और विद्युत्कणोंके भी हृद्देशके इस दृश्य जगत्के सर्वथा परे बताये जानेवाले उस विष्णुको ही वेद (शतपथब्राह्मण) ने 'वामन' कहा है—

'वामनो ह विष्णुरास'

'अणोरणीयान्' होकर भी वह विष्णु 'महतो महीयान्' है। विष्णुकी इस स्वरूपहीनताको लोकगम्य बनानेके उद्देश्यसे ही पुराणोंने उसे वामनका स्वरूप देकर घर-घरमें उतारनेकी चेष्टा की है। उन्होंने एक अत्यन्त सरस और भावपूर्ण कथाकी अवतारणा करके विष्णुके इस वामन रूपको समाजकी बुद्धिमें प्रतिष्ठित कर दिया है। भारतीय महिलाएँ इसी प्रतिष्ठासे प्रतिष्ठित होकर अब भी गाती हैं—

'बलि कौं छलन चले तिरलोकी'

जिसे लोकने 'तिरलोकी' कहा, उसे ही वेद 'त्रिविक्रम' कहता चला आ रहा है। निखिल ब्रह्माण्डके भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः और सत्यम् नामक सातों लोकोंका माध्यम धारण करनेवाली इस पृथिवीपर विष्णु अपना विक्रम प्रदर्शित कर रहा है। वेद चाहता है कि इस पृथ्वीपर सारे देव प्राणिमात्रको सुरक्षित रखें। ये सारे देव क्या हैं ? विष्णुके विक्रमसे अपना पराक्रम प्राप्त करनेवाले ऊपर बताये गये सम्पन्न-विद्युद्विन्दु और असम्पन्न-विद्युत्कण तथा आगेके वैज्ञानिक अन्वेषणोंद्वारा प्रकट होनेवाली अन्य सभी शक्तियाँ ही सारे देव हैं। ये सारे देव जिस सत्तासे, जिस शक्तिसे नित्य संवर्धित होते रहते हैं, वह सत्ता विष्णुकी ही सत्ता है; वह शक्ति विष्णुकी ही शक्ति है। इसीलिये ऋग्वेदका विज्ञान कहता है—

अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे।
पृथिव्याः सप्तधामभिः॥ (१। २२। १६)

ऋग्वेद विष्णुके इस विक्रमकी व्याख्या करता हुआ कहता है कि इस विराट् ब्रह्माण्डको विष्णुने अपने तीन चरणोंसे नापा है। विराट् ब्रह्माण्डका आदि और अन्त किसीने नहीं देखा। केवल मध्यका भाग ही ऐसा है, जिसकी जानकारीका प्रयत्न प्रारम्भसे होता चला आ रहा है। वैदिक ऋषियोंने जिस प्रकार उसकी जानकारी प्राप्त करनेका प्रयत्न किया था, उसी प्रकारका प्रयत्न आज हमारे विज्ञानवेत्ता भी कर रहे हैं। सृष्टिका आदि, मध्य और अन्त ही वामनरूपी विष्णुके वे तीन चरण हैं। गीतामें सृष्टिके आदि और अन्तको 'अव्यक्त' बताया गया है और कहा गया है कि केवल उसकी मध्य अवस्था ही व्यक्त है। सृष्टिकी यह मध्यकी अवस्था ही विष्णुका दूसरा चरण है। ध्यान रखिये कि सृष्टिके आदि और अन्तकी अवस्थाकी अव्यक्तताके कारण उसपर छपे हुए विष्णुके प्रथम चरणके चिह्न और तृतीय चरणके चिह्न भी अव्यक्त हैं। केवल सृष्टिकी मध्यकी अवस्थामें छपे हुए विष्णुके द्वितीय चरणका चिह्न ही उक्त मध्यावस्थाके व्यक्त होनेके कारण व्यक्त हो रहा है—विष्णुके इसी व्यक्त चरणको जानने-पहचाननेका प्रयत्न वैज्ञानिक ऋषियोंद्वारा निरन्तर होता था, होता है और होता रहेगा—

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत।
अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना॥
(गीता २। २८)

वामनरूपी विष्णुभगवान्के जो पहले और तीसरे डग अव्यक्त हैं, वे तो सदैव अव्यक्त रहेंगे; पर जो दूसरा चरण सृष्टिके व्यक्त भागमें छपा हुआ है, वह उसी प्रकारका है, जिस प्रकार धूलिमें छपा हुआ कोई भी चरणचिह्न अस्पष्ट होता है। धूलिमें छपे हुए विष्णुके उस चरणचिह्नका अध्ययन वह मनुष्य कैसे पूरा कर सकता है, जो इस प्रकार धूलिमें अङ्कित अपने ही चरणचिह्न पहचान सकनेमें असमर्थ है। विज्ञानवेत्ता ऋषियोंकी आवश्यकता संसारमें इसीलिये तो है कि वे वामनके इस धूलिमें अङ्कित द्वितीय चरणका रहस्य उस मनुष्य-समाजको बतायें, जो उसके ज्ञानका वास्तविक अधिकारी है—

इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्।
समूढमस्य पाᳪसुरे स्वाहा॥ (यजु० ५। १५)

वेद पूर्ण विश्वासके साथ बताता है कि सातों धामोंके माध्यमको धारण करनेवाली पृथिवीको जो विष्णु अपने तीन डगोंसे नापकर पराक्रम दिखाता है, वही सबकी रक्षा भी करता है। वेद कहता है कि यह विष्णु प्रत्येक प्रकारसे दुर्दम्य है। सृष्टिको तीन डगोंसे नाप डालनेवाले उस विष्णुकी व्यापकताको कोई रोक नहीं सकता। वह सारे धर्मोंको एक साथ धारण कर रहा है। प्रश्न उठता है कि 'वे कौन-से धर्म हैं, जिन्हें हमारा विष्णु धारण किये हुए है ?' उत्तर है कि 'वह विष्णु परमाणुओंके सूक्ष्मातिसूक्ष्म विद्युद्विन्दुओंमें व्याप्त होकर यदि एक ओर उनके धर्मोंको

धारण कर रहा है, तो दूसरी ओर वही विष्णु विराट् होकर सारे भूगोल और खगोलके धर्मोंको भी धारण करता है—

त्रीणि पदा विचक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः।
अतो धर्माणि धारयन् ॥ (ऋग्वेद १। २२। १८)

ऐसे त्रिविक्रमी विष्णुका विलक्षण परिचय देता हुआ वेद वैदिक विज्ञानके द्रष्टा ऋषियोंसे, आजके वैज्ञानिकोंसे और भविष्यके ज्ञानोपासक मनीषियोंसे कहता है कि 'विष्णुके कर्मोंको देखो! विष्णुके इन्हीं कर्मोंसे तो सृष्टिके सारे व्रतोंकी, सृष्टिके सारे संकल्पोंकी और सृष्टिके सारे आचारोंकी प्रतिष्ठा होती है। वह विष्णु इन्द्रका योग्य सखा है। जगदाधार ईश्वर एक ओर तो इस सारी सृष्टिकी गतिको केन्द्रित करता है और दूसरी ओर उस केन्द्रित गतिको विकेन्द्रित करके सर्वत्र प्रसारित करता है।' गतिको केन्द्रित करनेके कारण वेद ईश्वरको 'इन्द्र'के नामसे सम्बोधित करता है और गतिको विकेन्द्रित करके उसे सर्वव्यापी बनानेके कारण वह उसी ईश्वरको 'विष्णु' कहता है। ईश्वरकी वह गति-शक्ति केन्द्रित होकर भी विकेन्द्रित है और विकेन्द्रित होकर भी केन्द्रित है। ईश्वररूपी इन्द्र और ईश्वररूपी विष्णु इसीलिये परस्परके योग्य सखा कहे गये हैं—

विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे।
इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ (ऋक्० १। २२। १९)

फिर प्रश्न उठता है कि 'विष्णुका प्रथम और तृतीय चरण तो अव्यक्त हैं, केवल मध्यका द्वितीय चरण ही धूलिमें छपे हुए चरणचिह्नकी भाँति रहस्यपूर्ण होकर अस्पष्ट-सा दिखायी पड़ रहा है, इसका हम पूर्ण ज्ञान कैसे प्राप्त करें?' वेद कहता है कि 'विष्णुके इस महान् चरणचिह्नको दर्शन और विज्ञानके नेत्रोंसे सूरि बनकर, दिव्यद्रष्टा बनकर, मनीषी लोग सदैव देखते हैं।' द्युलोकके चक्षुके समान ज्ञानचक्षु प्राप्त करके इसे सदैव देखा करो—

तद् विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः।
दिवीव चक्षुराततम् ॥ (ऋक्० १। २२। २०)

इसके आगे वेद बड़ी ही महत्त्वपूर्ण सूचना देता हुआ घोषित करता है कि विष्णुके इस परम पदको—महान् चरणको वे ही पूर्णतया प्रकाशित होता हुआ देखते हैं, जो ज्ञानी होनेके कारण 'विप्रासः' कहे जाते हैं, जो कर्मवीर होनेके कारण 'विपन्यवः' कहलाते हैं और जो जागरूक होनेके कारण 'जागृवांसः' कहलाते हैं। ऐसे ज्ञानी, ऐसे कर्मवीर और ऐसे जागरूक द्रष्टा ही विष्णुके इस धूलिमें छिपे हुए अस्पष्ट चरणचिह्नको, परमाणुओंके सूक्ष्मातिसूक्ष्म विद्युद्बिन्दुओंमें और इस विराट् ब्रह्माण्डके प्रत्येक घटमें, ईंधनकी भाँति पूर्णतया जगमगाता हुआ देखते हैं और उसे ही 'अणोरणीयान्' तथा 'महतो महीयान्' घोषित करते हैं—

तद् विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते।
विष्णोर्यत् परमं पदम् ॥ (ऋक्० १। २२। २१)

ऐसे 'अणोरणीयान्' और 'महतो महीयान्' विष्णुको घर-घरमें बोधगम्य बनानेका जो स्तुत्य प्रयास पुराणोंके माध्यमसे भारतीय मेधाशक्तिने किया है, वह बड़ा ही मनोरञ्जक है। विष्णुपुराण कहता है कि भगवान् विष्णुके हृदयकी कौस्तुभमणि निर्गुण और निर्लेप जीवात्माओंका प्रतीक है। शेषनागके फनोंकी छायासे छपा हुआ श्रीवत्सका चिह्न उस प्रकृतिका प्रतीक है, जिसका वे नियन्त्रण करते हैं। उनकी गदा संसारके बुद्धितत्त्वका प्रतीक है। गदा जिस प्रकार स्थूल वस्तुको तोड़ती है, उसी प्रकार बुद्धि भी अज्ञानकी स्थूलताको तोड़ा करती है। भगवान् विष्णुका शङ्ख और उनका शार्ङ्गधनुष, उनके उन सात्त्विक और राजस अहंके प्रतीक हैं, जिनसे इस सृष्टिमें, इन्द्रियोंमें और पञ्चमहाभूतोंमें शक्तियोंकी उत्पत्ति होती है। विष्णुभगवान्का सुदर्शनचक्र प्राणिमात्रके मनका प्रतीक है। जिस प्रकार मनकी गति अनिर्वचनीय है, उसी प्रकार सुदर्शनचक्रकी गति भी अनिर्वचनीय है। पञ्चमहाभूतोंका प्रतीक है उनकी वैजयन्तीमाला। उनके तूणीरके बाण प्राणिमात्रके ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियोंके प्रतीक हैं। उनका 'नन्दक' नामवाला खड्ग प्रदीप्त होते हुए ज्ञानका प्रतीक है। उनका यह खड्ग जिस कोषके भीतर रहता है, वह कोष अविद्याका प्रतीक है। 'अविद्या'का अर्थ निरक्षरता या मूर्खता नहीं समझा जाना चाहिये। ध्यान रखिये कि अविद्याके कारण ही मनुष्यने संसारमें सप्त आश्चर्योंकी रचना की है। एलोराके महान् कैलास-मन्दिरकी तथा आगरेके सुन्दर ताजमहलकी रचना विष्णुकी इस अविद्याका ही तो परिणाम है। विष्णुके खड्ग और उस खड्गको अपनेमें प्रविष्ट रखनेवाला कोष, विद्या और अविद्याका प्रतीक होकर यह बताते हैं कि विष्णुभगवान् जिस प्रकार अविद्याके स्वामी हैं, उसी प्रकार वे विद्याके भी भर्ता हैं। खेद है कि इस प्रकारकी महत्त्वपूर्ण व्याख्याओंके अध्ययनका सर्वथा तिरस्कार हो रहा है।

अर्थपञ्चक

(विशिष्टाद्वैतवेदान्तपरक)

(लेखक—श्रीजयनारायणजी मल्लिक, एम्० ए०, डिप० एड्०, साहित्याचार्य, साहित्यालंकार)

श्रीवैष्णवों (श्रीरामानुज-सम्प्रदायानुयायी महानुभावों) के लिये 'अर्थपञ्चक'का ज्ञान परमावश्यक है। बिना 'अर्थ-पञ्चक' जाने वास्तविक तत्त्वज्ञान नहीं होता। अर्थपञ्चकमें पाँच विषय वर्णन किये गये हैं—

१—स्वस्वरूप (जीवात्माका स्वरूप), २—परस्वरूप (परमात्माका स्वरूप), ३—पुरुषार्थस्वरूप (जीवोंके लिये क्या पुरुषार्थ है), ४—उपायस्वरूप (जीवात्माके परमात्मासे मिलनेका क्या उपाय है) एवं ५—विरोधीस्वरूप (जीवात्माके परमात्मासे मिलनेमें अर्थात् मोक्ष-मार्गमें क्या-क्या रुकावटें हैं)।

इन पाँचों विषयोंका नाम 'अर्थपञ्चक' है। इनमेंसे प्रत्येकके पाँच भेद हैं।

तत्त्वज्ञानके लिये इन पाँचोंका ज्ञान आवश्यक है। जबतक जीव अपने स्वरूपको नहीं पहचानेगा, तबतक वह माया-मोहमें लिपटा रहेगा। जब उसे यह ज्ञान हो जायगा कि यह भौतिक शरीर क्षणिक है और आत्मा अमर है, तब वह भौतिक शरीरके भोगोंमें भी लिप्त नहीं होगा। बिना परमात्माका स्वरूप जाने परमात्माका कैंकर्य नहीं हो सकता।

'स्वस्वरूप'का अर्थ जीवात्माका स्वरूप है। वह पाँच प्रकारका है—

१—नित्य (जो सदैव वैकुण्ठमें रहते हैं), २—मुक्त (जो पहले संसारी मायामें लिपटे थे, पर अब मायासे छुटकारा पा गये हैं), ३—बद्ध (जो अभी भी संसारी मायामें लिपटे हैं), ४—केवल (जो केवल ज्ञानयोगके द्वारा परमात्मामें मिल जाना चाहते हैं) एवं ५—मुमुक्षु (जो परमात्माके कैंकर्यमें लीन होकर मोक्षकी अभिलाषा करते हैं)।

परमात्माका स्वरूप पाँच प्रकारका है—

१—पर-रूप (मायामण्डलसे पृथक् वैकुण्ठमें श्रीलक्ष्मी-देवीके साथ निवास करनेवाले श्रीमन्नारायण भगवान्), २—व्यूह-रूप (क्षीरशायी श्रीवासुदेव भगवान् तथा संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध), ३—विभव (श्रीराम-कृष्ण इत्यादि अवतार), ४—अन्तर्यामी (सर्वत्र सभी वस्तुओंमें सर्व-शक्तिमान्‌रूपसे रहनेवाले परमात्मा) एवं ५—अर्चावतार (भगवान्‌की श्रीमूर्तियाँ)।

जो वस्तु पुरुषोंको उपार्जन करनी चाहिये, उसीका नाम 'पुरुषार्थ' है। पुरुषार्थ पाँच प्रकारका है—

१—धर्म (लोकोपकारी शुभ कार्य), २—अर्थ (कर्तव्यके लिये द्रव्यका सदुपयोग), ३—काम (संसारी तथा स्वर्गीय सुख-भोग), ४—आत्मानुभव (केवल अपनी आत्माके शुद्ध, दिव्य रूपका चिन्तन करना) एवं ५—भगवदनुभव (मुक्त होकर वैकुण्ठमें सदैव भगवत्कैंकर्यका अनुभव करना)।

भगवान्‌से मिलनेका उपाय भी पाँच प्रकारका है—

१—कर्म, २—ज्ञान, ३—भक्ति, ४—प्रपत्ति (आत्म-समर्पण) एवं ५—आचार्याभिमान।

विरोधी भी पाँच प्रकारका है—

१—स्वरूपविरोधी, २—परत्वविरोधी, ३—पुरुषार्थविरोधी, ४—उपायविरोधी एवं ५—प्राप्तिविरोधी।

जो लोग सदैव संसारके सम्बन्धसे, संसारी रूपसे और संसारी सम्पर्कसे रहित हैं, जो भगवान्‌के ही इच्छानुसार जीवनके भोगोंको भोगते हैं, जो श्रीवैकुण्ठनाथके विविध कैंकर्योंमें प्रवीण मन्त्रीगण हैं, जो भगवान्‌की आज्ञासे सृष्टिकी स्थिति और संहार—दोनों करनेमें समर्थ हैं, जो पर-व्यूह इत्यादि भगवान्‌के सभी रूपोंका सभी अवस्थाओंमें अनुकरण कर कैंकर्य करनेमें पटु हैं, ऐसे जो विष्वक्सेन आदि भगवान्‌के पार्षद देवगण हैं (अर्थात् जो सब प्रकारसे माया-बन्धनसे मुक्त हैं, जो सदैव वैकुण्ठमें रहकर वैकुण्ठनाथके कैंकर्यमें लीन रहते हैं), उन्हें 'नित्य जीव' कहते हैं।

भगवान्‌की कृपासे जिनके प्राकृतिक सम्बन्धसे होनेवाले दुःख और पाप पूर्णरूपसे छूट गये हैं (परमात्माकी दयासे जिनके संसारी दुःख और पाप सर्वथा नष्ट हो गये हैं), जो भगवान्‌के

स्वरूप, सौन्दर्य, गुण और वैभवोंका अनुभव करते हुए वैकुण्ठ-महाधाममें पूर्णतया संतुष्ट तथा आनन्दित हैं, उन्हीं मुनियोंका नाम 'मुक्त जीव' है।

नित्य जीव तो कभी माया-बन्धनमें पड़े ही नहीं, पर मुक्तजीव माया-बन्धनमें पड़कर भक्तियोग तथा प्रपत्तियोगके द्वारा माया-बन्धनसे मुक्त हो गये हैं। मुक्त अवस्थामें स्थूल तथा सूक्ष्म शरीर पूरा नष्ट हो जाता है और आत्माका शुद्ध रूप प्रकट हो जाता है।

बद्ध जीव माया-मोहमें लिपटे हुए अज्ञानी जीव हैं। वे समझते हैं कि पाँच तत्त्वोंका (मिट्टी, जल, अग्नि, वायु और आकाशका) बना हुआ शरीर, जो दुःख और सुखके अनुभवोंका साधन है, जो आत्माका वियोग होनेपर (मरनेपर) देखने और छूनेके भी योग्य नहीं रहता, जो अज्ञान, मूढ़ता और विरुद्ध ज्ञान देनेवाला है—वह शरीर ही आत्मा है और इसी कारण वे सोचते हैं कि शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आदि विषयोंके द्वारा सुख पहुँचाकर अपनी देहका पालन-पोषण करना ही 'पुरुषार्थ' है। इसीलिये वे केवल शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आदि विषयोंकी प्राप्तिके लिये (अर्थात् अनुकूल शब्द सुननेके लिये, कोमल वस्तुओंको छूनेके लिये, सुन्दर वस्तुएँ देखनेके लिये, स्वादिष्ट पदार्थ चखनेके लिये और सुगन्धित चीजें सूँघनेके लिये) यत्नशील बने रहते हैं तथा वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) और आश्रम (ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यासी) के धर्मोंको छोड़कर नीच पुरुषोंकी सेवा करते हैं और प्राणियोंकी हिंसा करते हुए पर-नारी तथा दूसरेका धन हड़पकर संसारमें अपनी उन्नति चाहते हैं। ऐसे जो भगवान्के विमुख जीव हैं, उन्हें 'बद्ध' कहते हैं।

बद्ध जीव समझते हैं कि शरीर ही सब कुछ है और मृत्यु ही जीवनका अन्त है। वे शरीरसे पृथक् आत्माको नहीं मानते, अतः स्वर्ग, नरक और मोक्षको भी नहीं मानते। वे समझते हैं कि जबतक जीवित रहें, खूब सुख-भोग कर लें। वे पापसे नहीं डरते; क्योंकि नरक और स्वर्गमें उन्हें विश्वास ही नहीं होता।

कैवल्य चाहनेवाले संसाररूपी जंगलकी आगसे व्याकुल होकर संसारी दुःखोंका नाश करनेके लिये शास्त्रमें बताये हुए ज्ञानके द्वारा प्रकृति (जड जगत्) और आत्मा (चैतन्य) का तथा विवेक प्राप्तकर यही सोचते हैं कि प्रकृति (संसार) दुःखकी जड़ है और इसमें केवल वे ही पदार्थ भरे हैं, जो घृणित और त्यागनेयोग्य हैं; तथा आत्मा प्रकृतिसे अलग है, अपने आपसे ही प्रकाशित और सुखी है, नित्य (जिसका आदि और अन्त न हो) और अलौकिक (जिसका जड जगत्से कुछ भी सम्पर्क न हो) है। इस प्रकार सोचकर वे अपने पहलेके भोगे हुए दुःखोंकी अधिकताके कारण ज्ञान और आनन्दसे युक्त परमात्माके चिन्तनमें असमर्थ होकर तथा परमात्मारूपी अमृतके समुद्रको छोड़कर आत्मारूपी थोड़े ही रसमें लीन हो जाते हैं और इस आत्माकी प्राप्तिके साधन—ज्ञानयोगमें निष्ठा लगाये हुए यही सोचते हैं कि योग-मार्गमें जो आत्माका अनुभव है, वही एकमात्र पुरुषार्थ है। इस प्रकार केवल आत्मज्ञानमें लगे हुए वे मृत्युके बाद संसारके सम्बन्धसे तथा भगवान्की प्राप्तिसे रहित होकर केवल आत्माके ही रूपमें विचरते रहते हैं। ऐसे जो जीव हैं, उन्हें 'केवल जीव' कहते हैं।

जो जीव कर्मयोग और ज्ञानयोगकी सहायतासे भक्ति (परमात्माका कैंकर्य) और प्रपत्ति (परमात्माके लिये आत्म-समर्पण) के द्वारा माया-बन्धनसे छुटकारा पाकर परमात्माके दिव्यलोकमें, परमात्माके आनन्दमय अनुभवमें लगे रहते हैं, उन्हें 'मुक्त' कहते हैं; पर जो जीव कर्मयोग, भक्ति और प्रपत्तिको छोड़कर केवल ज्ञानयोगके द्वारा परमात्माका चिन्तन नहीं करते, पर केवल अपनी आत्माका ही चिन्तन करते रहते हैं (धर्म और अधर्मसे अलग रहकर अपने आपमें ही लीन रहते हैं), वे मरनेके बाद माया-बन्धनसे तो अवश्य छुटकारा पा जाते हैं, पर परमात्माके लोकमें नहीं जाते, केवल निर्विकार आत्माके रूपमें विचरण करते रहते हैं, उन्हें 'केवल जीव' कहते हैं।

जो जीव मोक्षकी इच्छा रखते हैं, वे 'मुमुक्षु' हैं। वे दो प्रकारके हैं—उपासक और प्रपन्न।

'उपासक' वे हैं, जो भक्ति, प्रेम और उपासनाके द्वारा परमात्माको प्राप्त होते हैं। 'प्रपन्न' वे हैं, जो शरणागति और आत्मसमर्पणके द्वारा परमात्माको प्राप्त होते हैं। वेद-शास्त्रोंमें कहे हुए उपायोंसे कर्म और ज्ञानके द्वारा समस्त कल्याणगुण-युक्त परमात्माके रूप और गुणका सदैव चिन्तन और स्मरण करना, परमात्माकी सेवा करना और जिस प्रकार तेलकी धारा लगातार गिरती रहती है, कहीं टूटने नहीं पाती,

उसी प्रकार निरन्तर परमात्माका ध्यान करना 'भक्ति' कहलाता है। 'प्रपत्ति'का अर्थ है परमात्माकी शरणमें निष्काम और निर्लिप्त होकर जा गिरना, संसारकी सारी आशा और भरोसा छोड़कर परमात्माके चरणोंमें अपना शरीर, मन, आत्मा, सभी कुछ सौंप देना। प्रपत्ति भक्तिसे अधिक सुलभ और शीघ्र फल देनेवाली है। प्रपत्तिके द्वारा परमात्मा बहुत शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं; क्योंकि जब जीव अपना सब कुछ परमात्माको सौंप देता है और हृदयसे कहता है कि 'नाथ! मैं तेरी ही शरणमें हूँ, मैंने सबका आसरा छोड़ दिया है, मैं केवल तेरा ही हूँ, मुझे कोई दूसरा देखनेवाला नहीं, मैं अकिंचन हूँ (अर्थात् मेरा कुछ भी नहीं है और मैं अनन्य हूँ, संसारसे छुटकारा पानेके लिये मैं केवल तुझको अपना उपाय समझता हूँ। मैं किसी दूसरेकी शरणमें नहीं जा सकता), तब प्रपन्नकी उस आर्त वाणीको सुनकर परमात्माका हृदय दयार्द्र हो जाता है। भक्त समझते हैं कि 'ममैवासौ' अर्थात् वह (परमात्मा) मेरे ही हैं, इसलिये उनकी सेवाका पूर्ण भार मेरे ही ऊपर है। प्रपन्न समझते हैं कि 'तस्यैवाहम्' अर्थात् मैं उन्हींका हूँ, अतः वे ही मेरे स्वामी तथा सर्वस्व हैं।

भगवान्‌के पाँच भेद हैं—पर, व्यूह, विभव, अन्तर्यामी तथा अर्चावतार। इनमें अर्चावतारकी उपासना तो सबसे सुलभ है, पर मोक्षकी प्राप्तिके लिये पररूप तथा अन्तर्यामी-रूपकी उपासना भी आवश्यक है। परब्रह्म मायामण्डलसे पृथक् हैं। अतः उनकी सेवा इन्द्रियोंसे नहीं हो सकती, केवल मनसे हो सकती है। पर वासुदेवकी सेवा केवल स्मरण, चिन्तन, शरणागति, आत्मसमर्पण तथा अष्टाक्षर और द्वादशाक्षरमन्त्रका अनुसंधान है। अन्तर्यामी भगवान् सर्वत्र सभी प्राणियोंमें वर्तमान हैं। अतः सभी प्राणियोंकी सेवा उनकी सेवा है।

'पर' वासुदेवमयमण्डलसे पृथक् वैकुण्ठधाममें वर्तमान आदिज्योतिःस्वरूप परब्रह्म परमात्मा हैं।

परमात्माका वैकुण्ठधाम वही है, जिसके विषयमें लिखा है—

तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः।
दिवीव चक्षुराततम्॥ (ऋग्वेद १। २२। २०)

'न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः।'
(गीता १५। ६)

'पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि॥'
(यजुर्वेद ३१। ३)

उस परमधाममें दुःख, शोक, व्याधि, पीड़ा, भूख, प्यास, काम, क्रोध, मोह, लोभ—किसी प्रकारका संताप नहीं है। वहाँ केवल दिव्य आनन्द और भगवत्कैंकर्य है। मायाका वहाँ कुछ भी अधिकार नहीं, अतः वहाँ इच्छा और पुनर्जन्म भी नहीं। वहीं वैकुण्ठपति श्रीमन्नारायणभगवान् भूदेवी, नीलादेवी और अनन्त तथा अलौकिक सौन्दर्य एवं शीलकी राशि जगन्माता श्रीदेवीके साथ विराजमान हैं। ये परमात्मा दिव्य सुन्दर तथा अनन्तकल्याणगुणोंसे युक्त, आदिज्योतिःस्वरूप हैं। महाप्रलयमें भी वैकुण्ठका नाश नहीं होता, अतः वैकुण्ठका वैभव और शोभा नित्य तथा सनातन हैं। वैकुण्ठमें पहुँच जानेपर जीव मुक्त हो जाता है (माया-बन्धनसे छूट जाता है)। इन्हीं वैकुण्ठनाथका नाम पर-वासुदेव, परब्रह्म अथवा श्रीमन्नारायण भगवान् है। भगवान्‌के जितने स्वरूप हैं, सबमें श्रेष्ठ यही रूप है। इनके धाममें अनन्त, विष्वक्सेन, गरुड आदि नित्यमुक्त जीव सदैव भगवत्कैंकर्यमें लीन रहते हैं। सृष्टिकी चिन्ता वैकुण्ठपति भगवान्‌को नहीं रहती। वैकुण्ठवासी मुक्त जीव दिव्य-सुन्दर शरीर धारणकर दिव्य आनन्दमें मग्न रहते हैं तथा उन्हें दिव्य स्मृति, दिव्य ज्ञान और दिव्य नेत्र प्राप्त हो जाते हैं। वह लोक स्वयम्प्रकाश है। यहाँ श्रीदेवीके रूपकी झलकसे कोटि सूर्यके समान प्रकाश है और कोटि चन्द्रमाके समान शीतलता है। इसी परमधामकी प्राप्तिका नाम 'मोक्ष' है।

भगवान्‌के दूसरे रूपका नाम 'व्यूह रूप' है। व्यूह रूपमें संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध हैं। इनका कार्य सृष्टि करना, पालन करना और संहार करना है।

व्यूह चार हैं, पर कहीं-कहींपर तीन भी लिखे मिलते हैं। इनमें प्रधान छः गुणोंसे युक्त शेषनागपर शयन करनेवाले क्षीर-शायी वासुदेवभगवान् हैं, जो संसारके स्वामी हैं और दुष्टोंका नाश करने तथा न्याय एवं धर्मकी रक्षा करनेके लिये कभी-कभी पृथ्वीपर अवतार लेते हैं। जिस प्रकार वैकुण्ठपति त्रिपाद्विभूति-के स्वामी हैं, उसी प्रकार वासुदेवभगवान् मायाविभूतिके स्वामी हैं। इनके अतिरिक्त तीन और मूर्तियाँ हैं—संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध। इनका कार्य सृष्टिका प्रबन्ध तथा संचालन करना है। इन्हींके अंशसे ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश उत्पन्न होते हैं।

भगवान्‌का विभवरूप श्रीराम-श्रीकृष्ण आदि अवतार हैं। यों तो भगवान्‌के करोड़ों अवतार हैं, पर उनमें चौबीस प्रधान हैं और चौबीसमें भी दस मुख्य हैं—मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, श्रीरामचन्द्र, श्रीकृष्णचन्द्र, बुद्ध तथा कल्कि। इनमें भी श्रीराम और श्रीकृष्ण पूर्णावतार तथा शेष अंशावतार हैं। अंशावतार केवल किसी विशेष कार्यके लिये पृथ्वीपर प्रकट होते हैं और कार्य सम्पन्न होनेपर फिर अन्तर्धान हो जाते हैं। पर श्रीराम और श्रीकृष्ण अपनी पूर्ण विभूतियोंके साथ पृथ्वीपर अवतीर्ण हुए और केवल दुष्टोंका नाश करके ही अन्तर्धान नहीं हो गये, वरं बहुत दिनोंतक मर्यादापुरुषोत्तमकी तरह हमारे दुःख-सुखोंके बीच रहकर हमें एक आदर्श कर्तव्यका ज्ञान सिखला गये। जब-जब ब्रह्मा, महादेव, इन्द्र आदि देवता अन्याय-अत्याचारसे डरकर शेषशायी भगवान्‌की शरणमें जाते हैं, तब-तब शेषशायी भगवान् पृथ्वीपर अवतार लेकर संसारको कृतार्थ करते हैं।

अन्तर्यामी भगवान् दो प्रकारके हैं। दासों (प्राणिमात्र) के अन्तस्तलमें भगवान् वर्तमान हैं। भगवान्‌का कथन है कि 'मेरे दास ही मेरी आत्मा हैं।' सृष्टिके अन्तःकरणमें परमात्माकी झलक है। संसारमें जहाँ-जहाँ **'सत्यं शिवं सुन्दरम्'** का प्रकाश है—जहाँ-कहीं आनन्द एवं कल्याणकी ज्योति है, वहाँ अन्तर्यामी भगवान्‌की ही झलक है। प्राणिमात्रके हृदयमें सम्पूर्ण प्रवृत्ति और निवृत्तिको सर्वदा देखते हुए जो भगवान् हैं, उन्हींका नाम 'अन्तर्यामी' है।

भगवान् अन्तर्यामीरूप, सूक्ष्म, व्यापक, सर्वशक्तिमान्, सर्वत्र रहनेवाले तथा अव्यक्त हैं। उन्हें कोई देख नहीं सकता, पर वे सब कुछ देख रहे हैं। एकान्त-से-एकान्त स्थलमें जो कुछ भी पुण्य-पाप किया जाता है, उसे भी अन्तर्यामी भगवान् देख लेते हैं। इतना ही नहीं, हमारे मनके अंदर जो अच्छे तथा बुरे संकल्प उठते हैं, वे भी अन्तर्यामी भगवान्‌से छिपे नहीं रहते। जो अन्तर्यामी भगवान्‌की सत्तापर विश्वास करेगा, वह छिपकर भी कभी पाप नहीं कर सकता, बुरे विचारोंको भी मनमें नहीं ला सकता तथा 'अन्तर्यामी भगवान् सभी प्राणियोंमें हैं'—यह जानकर किसीका अनिष्ट भी नहीं कर सकता। अन्तर्यामी भगवान्‌की उपासना प्राणिमात्रका कल्याण करना, उन्हें सुखी बनाना तथा अच्छे मार्गपर लाना है। एक बात और है—अन्तर्यामी भगवान् प्रवृत्ति और निवृत्तिको देखते हैं। अतः मनमें भोग-कामना, स्वार्थ-बुद्धि तथा बुरी भावना रखकर यदि कोई अच्छा कार्य भी किया जाय तो भगवान् प्रसन्न नहीं होते। संसारकी दृष्टिमें तो हम अच्छे कार्य करनेका यश लूटते हैं, पर भगवान् तो हमारे हृदयकी छिपी प्रवृत्तिको देख रहे हैं। इसी प्रकार पवित्र मनसे, कर्तव्य-बुद्धिसे तथा कल्याण करनेकी भावनासे यदि कोई अपराध भी हो जाय तो उसे भगवान् क्षमा कर देते हैं। जो निश्छल, निष्कपट हृदयसे अपने आचरणोंको पवित्र रखकर प्राणिमात्र-पर दया तथा प्रेम रखते हुए एवं प्राणिमात्रका कल्याण करते हुए सतत श्रीलक्ष्मीजीसहित परमात्माके दिव्य रूप तथा गुणोंके चिन्तनमें रत रहता है, वही परमात्माका श्रेष्ठ भक्त है।

अपने दासोंके अनुकूल नाम और रूप धारण कर, सर्वसमर्थ होनेपर भी असमर्थकी तरह, सबके रक्षक होते हुए भी दूसरोंके भरोसे रहते हुए-से सबके लिये सुलभ जो भगवान्‌की मूर्तियाँ हैं, उन्हींका नाम 'अर्चावतार' है। अर्चावतार भगवान् स्वयं व्यक्त, दैव अथवा मानुष (मनुष्यके द्वारा स्थापित) के रूपमें सब लोगोंकी पहुँचके अन्तर्गत हैं। उनका कैंकर्य सभीके लिये सुलभ है।

अभीतक हमलोग यही समझते आये हैं कि घर बुहारना, लीपना, फूल-तुलसी तोड़ना, पूजा करना, रसोई बनाना, भोग लगाना, धूप-आरती देना—बस, ये ही भगवान्‌के कैंकर्य-कार्य हैं। जहाँ हमलोग ये कार्य कर चुके कि बस, हमारे कैंकर्यकी इतिश्री हो चुकी; परंतु इतनी ही बात नहीं है। यह कैंकर्य भी आवश्यक है, पर यह तो केवल अर्चावतार-रूपका कैंकर्य है। मोक्षके भागी तो हम तभी हो सकते हैं, जब हम भगवान्‌के सभी रूपोंका कैंकर्य करें। पर-वासुदेवका कैंकर्य और अन्तर्यामी भगवान्‌का कैंकर्य तो और भी आवश्यक है। पर वासुदेव हमारी इन्द्रियोंसे परे और मायासे भी परे हैं। अतः उनका कैंकर्य इन्द्रियोंसे नहीं हो सकता, केवल मनसे ही हो सकता है। वैकुण्ठपति भगवान्‌का स्मरण, ध्यान, सदैव चिन्तन, मन्त्रार्थका अनुसंधान और परमात्माकी सेवामें लीन रहना ही पर-रूप भगवान्‌का कैंकर्य है। शेषशायी भगवान्‌की स्तुति, वन्दना, कीर्तन इत्यादि व्यूहरूपके कैंकर्य हैं। कथा-पुराण सुनना या कहना तथा नाम-यश इत्यादिकी चर्चा करना विभवरूप भगवान्‌के कैंकर्य हैं। भगवान्‌का अन्तर्यामीरूप सर्वत्र है, सभी प्राणियोंमें है। अतः अन्तर्यामी भगवान्‌का कैंकर्य निम्नलिखित है—

१—छिपकर भी (एकान्त स्थलमें भी) कोई पाप, अन्याय तथा बुरा काम कभी नहीं करना; क्योंकि अन्तर्यामी भगवान् वहाँ भी हैं ।

२—मनमें कोई भी विकार तथा बुरी वासना कभी नहीं रखना । जो कुछ करना, निष्काम और निर्लिप्त होकर भगवत्सेवाकी बुद्धिसे कर्तव्य समझकर करना, भोग-बुद्धि और स्वार्थ-भावनासे नहीं करना; क्योंकि हमारे अन्तःकरणमें भी अन्तर्यामी भगवान् हैं और हमारी प्रवृत्तियोंको वे देखा करते हैं ।

३—अपनी शास्त्रविहित भौतिक तथा आध्यात्मिक उन्नतिकी ओरसे विरक्त नहीं होना । अपने जीवनको सब तरहसे सुखी, समुन्नत तथा धार्मिक बनाना; क्षणिक सुख-भोग या धन या प्रमोदके लिये अपने शरीरका अथवा धनका या शक्तिका दुरुपयोग नहीं करना । आमोद-प्रमोद वे ही उचित हैं, जिनसे आनन्दके साथ-साथ सात्त्विक शिक्षा भी मिले, भगवान्की ओर रुचि बढ़े, हमारा और हमारे समाजका यथार्थ कल्याण हो, कोई बुराई न हो; क्योंकि हममें भी अन्तर्यामी भगवान् हैं ।

४—माता-पिता, स्त्री-पुत्र, मित्र-परिवार, जाति तथा देश, गरीब तथा निस्सहाय—सभीके प्रति प्रेम रखना, सभीकी सेवा करना और सभीके साथ उचित व्यवहार करना; क्योंकि इन सबके अंदर भी अन्तर्यामी भगवान् हैं ।

५—प्राणिमात्रपर दया तथा प्रेम रखना । दूसरेका कल्याण करना, किसीकी भी बुराई नहीं करना । अपने स्वार्थके लिये अथवा भोग-वासनाके लिये किसीके भी जीवनको दुःखी नहीं बनाना, किसीके भी हृदयपर चोट नहीं पहुँचाना । वचनसे या कर्मसे किसीका भी अनिष्ट नहीं करना । मनसे भी किसीका अनिष्ट नहीं सोचना । दूसरेके जीवनको सुखी, समुन्नत तथा पवित्र बनाना; क्योंकि प्राणिमात्रमें अन्तर्यामी भगवान् हैं ।

वासुदेवकी सेवाका अर्थ है—

तन से कर्म करहु बिधि नाना । मन राखहु जहँ कृपानिधाना ॥
मन से सकल बासना त्यागी । केवल राम चरन लय लागी ॥

अन्तर्यामी भगवान्की सेवाका अर्थ है—अपने अन्तःकरणको तथा अपने आचरणोंको पवित्र रखना एवं सभी जीवोंपर प्रेम रखना तथा निस्स्वार्थभावसे सबकी भलाई करना ।

भगवान्से मिलनेके कई मार्ग हैं—कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग तथा प्रपत्तियोग । वेदके पूर्व-भाग (संहिता और ब्राह्मण) में कर्मका प्रतिपादन और वेदके उत्तर-भाग (उपनिषद् और आरण्यक) में ज्ञानका विश्लेषण किया गया है । भक्ति या उपासनाकी झलक सर्वत्र मिलती है—विशेषकर पञ्चरात्र, गीता और सूत्र-ग्रन्थोंमें । दिव्य-प्रबन्धोंमें प्रपत्ति या शरणागतिका वर्णन है । मीमांसाने कर्मको अपनाया, सांख्य और शांकर-वेदान्तने ज्ञानको । योगशास्त्रमें कर्म और ज्ञान दोनोंका समन्वय है, पर शांकर वेदान्त और योगशास्त्रका एक ही लक्ष्य है—कैवल्य-पदको प्राप्त करना । सकाम कर्म हमें पितृयान या धूममार्गके द्वारा चन्द्रलोक या स्वर्गतक ले जा सकता है, पर पुनर्जन्मको नहीं रोक सकता । कर्मयोग (निष्काम और निर्लिप्त होकर भगवत्प्रीतिके लिये केवल कर्तव्य तथा कैंकर्य-बुद्धिसे कर्म करना और कर्म करनेके बाद उसे भगवान्को अर्पित कर देना) हमें मोक्षकी ओर अग्रसर करता है । ज्ञानयोग हमें आत्मा और परमात्माको पहचाननेमें तथा भक्तियोगमें सहायक होता है । केवल ज्ञानका पथ कठिन है और वह कैवल्यकी ओर चला जाता है । श्रीरामानुज-वेदान्तमें कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग तथा प्रपत्तियोग—सबका समन्वय है । मोक्षका सबसे बड़ा बाधक अज्ञान, अविद्या या कर्म-संस्कार है । जबतक कर्म-संस्कारसे बने हुए सूक्ष्मशरीरका नाश नहीं होता, तबतक जीव मुक्त नहीं हो सकता । निष्काम कर्मयोगसे क्रियमाण कर्म अन्तःकरणमें विकार और आसक्ति उत्पन्न ही नहीं करता । ज्ञानयोगसे पहलेका संचित कर्म दग्ध हो जाता है, भक्तियोग हमें परमात्माके समीप ले जाता है और प्रपत्तियोग हमें परमात्माके ऊपर निर्भर कर देता है । श्रीरामानुजने सम्पूर्ण वेदको प्रामाणिक मानकर पूर्व-मीमांसा और वेदान्त—दोनोंको एक शास्त्र माना है ।*

---

* यह सुन्दर लेख श्रीरामानुज-सम्प्रदायानुसार लिखित है । परमात्मा, आत्मा तथा जीवके स्वरूपके सम्बन्धमें सिद्धान्तभेदसे मतभेद हो सकता है; पर इसमें जिन साधनोंका वर्णन है, वे तो प्रायः सर्वमान्य ही हैं ।

—सम्पादक

भगवान्‌का विभवरूप श्रीराम-श्रीकृष्ण आदि अवतार हैं। यों तो भगवान्‌के करोड़ों अवतार हैं, पर उनमें चौबीस प्रधान हैं और चौबीसमें भी दस मुख्य हैं—मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, श्रीरामचन्द्र, श्रीकृष्णचन्द्र, बुद्ध तथा कल्कि। इनमें भी श्रीराम और श्रीकृष्ण पूर्णावतार तथा शेष अंशावतार हैं। अंशावतार केवल किसी विशेष कार्यके लिये पृथ्वीपर प्रकट होते हैं और कार्य सम्पन्न होनेपर फिर अन्तर्धान हो जाते हैं। पर श्रीराम और श्रीकृष्ण अपनी पूर्ण विभूतियोंके साथ पृथ्वीपर अवतीर्ण हुए और केवल दुष्टोंका नाश करके ही अन्तर्धान नहीं हो गये, वरं बहुत दिनोंतक मर्यादापुरुषोत्तमकी तरह हमारे दुःख-सुखोंके बीच रहकर हमें एक आदर्श कर्तव्यका ज्ञान सिखला गये। जब-जब ब्रह्मा, महादेव, इन्द्र आदि देवता अन्याय-अत्याचारसे डरकर शेषशायी भगवान्‌की शरणमें जाते हैं, तब-तब शेषशायी भगवान् पृथ्वीपर अवतार लेकर संसारको कृतार्थ करते हैं।

अन्तर्यामी भगवान् दो प्रकारके हैं। दासों (प्राणिमात्र) के अन्तस्तलमें भगवान् वर्तमान हैं। भगवान्‌का कथन है कि 'मेरे दास ही मेरी आत्मा हैं।' सृष्टिके अन्तःकरणमें परमात्माकी झलक है। संसारमें जहाँ-जहाँ '**सत्यं शिवं सुन्दरम्**' का प्रकाश है—जहाँ-कहीं आनन्द एवं कल्याणकी ज्योति है, वहाँ अन्तर्यामी भगवान्‌की ही झलक है। प्राणिमात्रके हृदयमें सम्पूर्ण प्रवृत्ति और निवृत्तिको सर्वदा देखते हुए जो भगवान् हैं, उन्हींका नाम 'अन्तर्यामी' है।

भगवान् अन्तर्यामीरूप, सूक्ष्म, व्यापक, सर्वशक्तिमान्, सर्वत्र रहनेवाले तथा अव्यक्त हैं। उन्हें कोई देख नहीं सकता, पर वे सब कुछ देख रहे हैं। एकान्त-से-एकान्त स्थलमें जो कुछ भी पुण्य-पाप किया जाता है, उसे भी अन्तर्यामी भगवान् देख लेते हैं। इतना ही नहीं, हमारे मनके अंदर जो अच्छे तथा बुरे संकल्प उठते हैं, वे भी अन्तर्यामी भगवान्‌से छिपे नहीं रहते। जो अन्तर्यामी भगवान्‌की सत्तापर विश्वास करेगा, वह छिपकर भी कभी पाप नहीं कर सकता, बुरे विचारोंको भी मनमें नहीं ला सकता तथा 'अन्तर्यामी भगवान् सभी प्राणियोंमें हैं'—यह जानकर किसीका अनिष्ट भी नहीं कर सकता। अन्तर्यामी भगवान्‌की उपासना प्राणिमात्रका कल्याण करना, उन्हें सुखी बनाना तथा अच्छे मार्गपर लाना है। एक बात और है—अन्तर्यामी भगवान् प्रवृत्ति और निवृत्तिको देखते हैं। अतः मनमें भोग-कामना, स्वार्थ-बुद्धि तथा बुरी वासना रखकर यदि कोई अच्छा कार्य भी किया जाय तो भगवान् प्रसन्न नहीं होते। संसारकी दृष्टिमें तो हम अच्छे कार्य करनेका यश लूटते हैं, पर भगवान् तो हमारे हृदयकी छिपी प्रवृत्तिको देख रहे हैं। इसी प्रकार पवित्र मनसे, कर्तव्य-बुद्धिसे तथा कल्याण करनेकी भावनासे यदि कोई अपराध भी हो जाय तो उसे भगवान् क्षमा कर देते हैं। जो निश्छल, निष्कपट हृदयसे अपने आचरणोंको पवित्र रखकर प्राणिमात्र-पर दया तथा प्रेम रखते हुए एवं प्राणिमात्रका कल्याण करते हुए सतत श्रीलक्ष्मीजीसहित परमात्माके दिव्य रूप तथा गुणोंके चिन्तनमें रत रहता है, वही परमात्माका श्रेष्ठ भक्त है।

अपने दासोंके अनुकूल नाम और रूप धारण कर, सर्वसमर्थ होनेपर भी असमर्थकी तरह, सबके रक्षक होते हुए भी दूसरोंके भरोसे रहते हुए-से सबके लिये सुलभ जो भगवान्‌की मूर्तियाँ हैं, उन्हींका नाम 'अर्चावतार' है। अर्चावतार भगवान् स्वयं व्यक्त, दैव अथवा मानुष (मनुष्यके द्वारा स्थापित) के रूपमें सब लोगोंकी पहुँचके अन्तर्गत हैं। उनका कैंकर्य सभीके लिये सुलभ है।

अभीतक हमलोग यही समझते आये हैं कि घर बुहारना, लीपना, फूल-तुलसी तोड़ना, पूजा करना, रसोई बनाना, भोग लगाना, धूप-आरती देना—बस, ये ही भगवान्‌के कैंकर्य-कार्य हैं। जहाँ हमलोग ये कार्य कर चुके कि बस, हमारे कैंकर्यकी इतिश्री हो चुकी; परंतु इतनी ही बात नहीं है। यह कैंकर्य भी आवश्यक है, पर यह तो केवल अर्चावतार-रूपका कैंकर्य है। मोक्षके भागी तो हम तभी हो सकते हैं, जब हम भगवान्‌के सभी रूपोंका कैंकर्य करें। पर-वासुदेवका कैंकर्य और अन्तर्यामी भगवान्‌का कैंकर्य तो और भी आवश्यक है। पर वासुदेव हमारी इन्द्रियोंसे परे और मायासे भी परे हैं। अतः उनका कैंकर्य इन्द्रियोंसे नहीं हो सकता, केवल मनसे ही हो सकता है। वैकुण्ठपति भगवान्‌का स्मरण, ध्यान, सदैव चिन्तन, मन्त्रार्थका अनुसंधान और परमात्माकी सेवामें लीन रहना ही पर-रूप भगवान्‌का कैंकर्य है। शेषशायी भगवान्‌की स्तुति, वन्दना, कीर्तन इत्यादि व्यूहरूपके कैंकर्य हैं। कथा-पुराण सुनना या कहना तथा नाम-यश इत्यादिकी चर्चा करना विभवरूप भगवान्‌के कैंकर्य हैं। भगवान्‌का अन्तर्यामीरूप सर्वत्र है, सभी प्राणियोंमें है। अतः अन्तर्यामी भगवान्‌का कैंकर्य निम्नलिखित है—

१—छिपकर भी (एकान्त स्थलमें भी) कोई पाप, अन्याय तथा बुरा काम कभी नहीं करना; क्योंकि अन्तर्यामी भगवान् वहाँ भी हैं ।

२—मनमें कोई भी विकार तथा बुरी वासना कभी नहीं रखना । जो कुछ करना, निष्काम और निर्लिप्त होकर भगवत्सेवाकी बुद्धिसे कर्तव्य समझकर करना, भोग-बुद्धि और स्वार्थ-भावनासे नहीं करना; क्योंकि हमारे अन्तःकरणमें भी अन्तर्यामी भगवान् हैं और हमारी प्रवृत्तियोंको वे देखा करते हैं ।

३—अपनी शास्त्रविहित भौतिक तथा आध्यात्मिक उन्नतिकी ओरसे विरक्त नहीं होना । अपने जीवनको सब तरहसे सुखी, समुन्नत तथा धार्मिक बनाना; क्षणिक सुख-भोग या धन या प्रमोदके लिये अपने शरीरका अथवा धनका या शक्तिका दुरुपयोग नहीं करना । आमोद-प्रमोद वे ही उचित हैं, जिनसे आनन्दके साथ-साथ सात्त्विक शिक्षा भी मिले, भगवान्‌की ओर रुचि बढ़े, हमारा और हमारे समाजका यथार्थ कल्याण हो, कोई बुराई न हो; क्योंकि हममें भी अन्तर्यामी भगवान् हैं ।

४—माता-पिता, स्त्री-पुत्र, मित्र-परिवार, जाति तथा देश, गरीब तथा निस्सहाय—सभीके प्रति प्रेम रखना, सभी-की सेवा करना और सभीके साथ उचित व्यवहार करना; क्योंकि इन सबके अंदर भी अन्तर्यामी भगवान् हैं ।

५—प्राणिमात्रपर दया तथा प्रेम रखना । दूसरेका कल्याण करना, किसीकी भी बुराई नहीं करना । अपने स्वार्थके लिये अथवा भोग-वासनाके लिये किसीके भी जीवनको दुःखी नहीं बनाना, किसीके भी हृदयपर चोट नहीं पहुँचाना । वचनसे या कर्मसे किसीका भी अनिष्ट नहीं करना । मनसे भी किसीका अनिष्ट नहीं सोचना । दूसरेके जीवनको सुखी, समुन्नत तथा पवित्र बनाना; क्योंकि प्राणि-मात्रमें अन्तर्यामी भगवान् हैं ।

वासुदेवकी सेवाका अर्थ है—

तन से कर्म करहु बिधि नाना । मन राखहु जहँ कृपानिधाना ॥
मन से सकल बासना त्यागी । केवल राम चरन लय लागी ॥

अन्तर्यामी भगवान्‌की सेवाका अर्थ है—अपने अन्तः-करणको तथा अपने आचरणोंको पवित्र रखना एवं सभी जीवोंपर प्रेम रखना तथा निस्स्वार्थभावसे सबकी भलाई करना ।

भगवान्‌से मिलनेके कई मार्ग हैं—कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग तथा प्रपत्तियोग । वेदके पूर्व-भाग (संहिता और ब्राह्मण) में कर्मका प्रतिपादन और वेदके उत्तर-भाग (उपनिषद् और आरण्यक) में ज्ञानका विश्लेषण किया गया है । भक्ति या उपासनाकी झलक सर्वत्र मिलती है—विशेषकर पञ्चरात्र, गीता और सूत्र-ग्रन्थोंमें । दिव्य-प्रबन्धोंमें प्रपत्ति या शरणागतिका वर्णन है । मीमांसाने कर्मको अपनाया, सांख्य और शांकर-वेदान्तने ज्ञानको । योगशास्त्रमें कर्म और ज्ञान दोनोंका समन्वय है, पर शांकर वेदान्त और योगशास्त्रका एक ही लक्ष्य है—कैवल्य-पदको प्राप्त करना । सकाम कर्म हमें पितृयान या धूममार्गके द्वारा चन्द्रलोक या स्वर्गतक ले जा सकता है, पर पुनर्जन्मको नहीं रोक सकता । कर्मयोग (निष्काम और निर्लिप्त होकर भगवत्प्रीतिके लिये केवल कर्तव्य तथा कैंकर्य-बुद्धिसे कर्म करना और कर्म करनेके बाद उसे भगवान्‌को अर्पित कर देना) हमें मोक्षकी ओर अग्रसर करता है । ज्ञानयोग हमें आत्मा और परमात्मा-को पहचाननेमें तथा भक्तियोगमें सहायक होता है । केवल ज्ञानका पथ कठिन है और वह कैवल्यकी ओर चला जाता है । श्रीरामानुज-वेदान्तमें कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग तथा प्रपत्तियोग—सबका समन्वय है । मोक्षका सबसे बड़ा बाधक अज्ञान, अविद्या या कर्म-संस्कार है । जबतक कर्म-संस्कारसे बने हुए सूक्ष्मशरीरका नाश नहीं होता, तबतक जीव मुक्त नहीं हो सकता । निष्काम कर्मयोगसे क्रियमाण कर्म अन्तःकरणमें विकार और आसक्ति उत्पन्न ही नहीं करता । ज्ञानयोगसे पहलेका संचित कर्म दग्ध हो जाता है, भक्तियोग हमें परमात्माके समीप ले जाता है और प्रपत्तियोग हमें परमात्माके ऊपर निर्भर कर देता है । श्रीरामानुजने सम्पूर्ण वेदको प्रामाणिक मानकर पूर्व-मीमांसा और वेदान्त—दोनोंको एक शास्त्र माना है ।*

---

* यह सुन्दर लेख श्रीरामानुज-सम्प्रदायानुसार लिखित है । परमात्मा, आत्मा तथा जीवके स्वरूपके सम्बन्धमें सिद्धान्तभेदसे मतभेद हो सकता है; पर इसमें जिन साधनोंका वर्णन है, वे तो प्रायः सर्वमान्य ही हैं ।

—सम्पादक

शुद्ध सत्तत्त्व (सत्त्वगुणरूप और परब्रह्म गुणातीत) विष्णु

(लेखक—पं० श्रीभगवत्प्रसादजी द्विवेदी, व्याकरण-न्याय-पुराणेतिहासाचार्य)

ॐ मङ्गलं भगवान् विष्णुर्मङ्गलं गरुडध्वजः ।
मङ्गलं पुण्डरीकाक्षो मङ्गलायतनं हरिः ॥

श्रीविष्णुभगवान् परम विशुद्ध, सत्तत्त्व, सत्त्वगुणसम्पन्न, त्रिकालैकसत्तात्मक, परम अविनाशी, सत्स्वरूप, परम सत्य, अनादि, सदा एक-समान रहनेवाले, सर्वस्वरूप हैं । वेदों तथा पुराणादिकोंमें इन्हींको 'सत्' कहा जाता है—

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् ।
एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥
(ऋग्वेद १ । १६४ । ४६)

'एक ही सत्तात्मक शुद्ध सत्तत्त्वको वेदविद् विप्र—ब्रह्मज्ञानीगण इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, यम, मातरिश्वा (वायु), दिव्य, सुपर्ण, गरुत्मान् आदि अनेक नामोंसे पुकारते हैं ।'

एक ही सत्तत्त्वमय परमात्मा विष्णुके ये अनेक नाम हैं । श्रीविष्णु ही अनेक देव तथा देवीरूप होकर अनेक होते हुए भी एकसत्तात्मक—सत्-स्वरूप हैं । 'सत्'का अर्थ है—सर्वदा सर्वकालमें एक-समान स्थित रहनेवाला । इसी परम मौलिक सत्ताको अध्यात्मवादी परम सत्य 'ब्रह्म' कहते हैं और इसीको प्राप्त करनेके लिये ब्रह्मविद्याका आश्रय लिया जाता है । ब्रह्मज्ञानी लोग प्रार्थना करते हैं—'असतो मा सद्गमय । (बृहदारण्यक० १ । ३ । २८)—हे परमात्मन् ! इस असत्—अज्ञानरूप नश्वर संसारसे परे अपने परम सत्य नित्यस्वरूप सत्की मुझे प्राप्ति कराइये, जिससे मैं भी सत्-चिद्-आनन्दस्वरूप हो जाऊँ ।' कठोपनिषद्में भी आया है—

विज्ञानसारथिर्यस्तु मनःप्रग्रहवान्नरः ।
सोऽध्वनः पारमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥
(१ । ३ । ९)

इसपर श्रीशंकराचार्यजीने भाष्य किया है—

बुद्धिसारथिः समाहितचित्तः विद्वान् संसारगतेः पारम्, तद् विष्णोः व्यापनशीलस्य ब्रह्मणः परमात्मनो वासुदेवाख्यस्य परमं प्रकृष्टं पदं स्थानं सत्तत्त्वमित्येतद्यदसौ आप्नोति विद्वान् ।

''एकाग्रचित्त विद्वान्—विज्ञानी पुरुष परम कठिन संसार-गतिको पार कर लेता है—संसारके बन्धनरूप जन्म मरणसे मुक्त होकर सर्वव्यापी परमात्मा श्रीविष्णुभगवान्के या 'वासुदेव' नामक ब्रह्मके परमश्रेष्ठ पद 'मोक्ष' नामके सत्तत्त्वको प्राप्त होता है ।''

इसी परम अविनाशी सत्तत्त्वको 'सत्य' या 'परब्रह्म' या 'परम अक्षर विष्णु' कहा जाता है । 'सत्' शब्दसे ही भावार्थमें क्रमशः 'यत्' और 'त्व' प्रत्यय होनेसे ('सतः भावः सत्यम्' तथा 'सतः भावः सत्त्वम्') 'सत्य' और 'सत्त्व' सिद्ध हो जाते हैं । अतः सत्, सत्य, सत्त्व, परब्रह्म, विष्णु—ये सब पर्यायवाची शब्द हैं । ये एक ही तत्त्वके बोधक होनेसे अभिन्न हैं । 'पर्यायवाचिशब्दानां लाघवगौरवचर्चा नास्ति—एकार्थ-बोधक शब्दोंकी लघुता या गुरुता नहीं होती ।' इससे यह निश्चित सिद्धान्त निष्पन्न होता है कि परम सत्य अनादि परब्रह्म श्रीविष्णु ही 'सत्' हैं, सर्वदा एकरस रहनेवाले हैं । ये ही सत्तत्त्वमय विष्णु तुरीयावस्थासम्पन्न गुणातीत 'परम अक्षरब्रह्म' कहे जाते हैं । इसी सत्यको मानसकार तुलसीदासजीने निम्नाङ्कित शब्दोंमें कहा है—

राम करौं केहि भाँति प्रसंसा । मुनि महेस मन मानस हंसा ॥
करहिं जोग जोगी जेहि लागी । कोहु मोहु ममता मदु त्यागी ॥
ब्यापकु ब्रह्मु अलखु अबिनासी । चिदानंदु निरगुन गुन रासी ॥
मन समेत जेहि जान न बानी । तरकि न सकहिं सकल अनुमानी ॥
महिमा निगमु नेति निति कहई । जो तिहुँ काल एकरस रहई ॥
(रामचरितमानस, बा० ३४० । २–४)

'हे राम ! आप मुनियों तथा शिवके मनरूपी मानसरोवरके हंस हैं, जिसके लिये क्रोध मोह-ममता मदादिको त्यागकर योगी योग करते हैं । आप अलक्ष्य, अविनाशी, व्यापक ब्रह्म हैं, चिदानन्द,गुणरहित तथा सगुण भी हैं; आपको मन वाणी-बुद्धि आदिसे नहीं जाना जा सकता, केवल आपकी सत्स्वरूपताका अनुमान किया जाता है । जिसकी महिमा निगम आगमादि नहीं जान पाते और जो तीनों कालमें एक समान अविनाशी सत्स्वरूप रहता है, उसकी प्रशंसा मैं किस प्रकार करूँ ?' इसी शुद्ध सत्त्वमय सत्तत्त्व विष्णुका ध्यानरूप मङ्गलाचरण [illegible]जीने मानसके प्रारम्भमें किया है—

'धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि ॥' (भागवत १ । १ । १)—जो परमसत्य विष्णु अपने परमप्रकाशक तेजसे माया और उसके कार्यसे सर्वथा मुक्त हैं, उनका मैं ध्यान करता हूँ ।'

'विष्णु'का अर्थ है—जो सर्वव्यापक हो । यह जुहोत्यादि-गणस्थ 'विष्लृ व्याप्तौ' धातुसे निष्पन्न होता है । इसका विग्रह है—सर्वम् वेवेष्टि व्याप्नोतीति विष्णुः । 'विषेः किच्च' इस पाणिनीय उणादि सूत्रसे 'विष्' धातुसे 'णुक्' होनेपर 'विष्णु' सिद्ध होता है । विष्णुकी व्याख्या वैदिक विद्वानोंने अपनी-अपनी विचारधाराके अनुसार की है ।

१-कौषीतकि-(विश् अर्थात् प्रवेश करना) जो सबमें प्रविष्ट हो, उसे 'विष्णु' मानते हैं ।

२-सायणाचार्य-व्याप्त्यर्थक 'विष्'से विष्णु सर्वव्यापी हैं—यह मानते हैं ।

३-ओल्डेन्बर्ग-विस्तृत उद्यम करनेके अर्थमें (वि+स्नु से सिद्ध) मानते हैं ।

४-ब्लूमफील्ड-सर्वोच्च परमपदपर आरोहण करनेवाले होनेके अर्थमें (वि+स्नु) विष्णुको मानते हैं ।

५-मैकडानेल-'विश्' अर्थात् उद्योगी होना, व्यवसायी होने अर्थमें (विश्+नु) विष्णुको मानते हैं ।

६-स्वामी दयानन्दने व्याप्त्यर्थक धातु 'विष्'से निष्पन्न 'विष्णु'का अर्थ सर्वव्यापी माना है । इस प्रकार सब विद्वानों-का मत वस्तुतः एक-सा ही सिद्ध होता है; क्योंकि 'व्याप्ति' गतिका ही रूप है तथा प्रवेश करना, आरोहण करना, उद्योगी होना आदि भी गतिके ही रूप हैं । अतः 'विष्णु'का सर्वव्यापक अर्थ भी समीचीन सिद्ध होता है ।

वेदादिमें 'विष्णु'का अर्थ एक अदृष्ट सत्ता अथवा सत्तत्त्व समझना चाहिये । वेद-भाष्यकारोंने 'विष्णु'का अर्थ परमात्मा, व्यापनशील परब्रह्म किया है । वे श्रीविष्णु शुद्ध सत्तत्त्व, सत्त्वगुणरूप, गुणातीत परब्रह्म हैं । इनकी अपार महिमाका वर्णन प्राकृतिक जीवोंके मन-बुद्धि-वाणी इत्यादिके द्वारा असम्भव है । वेद भी इस विषयमें 'नेति-नेति' कहकर विरमित हो जाते हैं—

विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्रवोचं
यः पार्थिवानि विममे रजाᳬसि ।
यो अस्कभायदुत्तरᳬ सधस्थं
विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायो विष्णवे त्वा ॥
(यजुर्वेद ५ । १८)

विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्रवोचं
यः पार्थिवानि विममे रजांसि ।
यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थं
विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः ॥
(ऋग्वेद १ । १५४ । १ एवं अथर्ववेद ७ । २६ । १)

'सर्वव्यापक विष्णुके अपार पराक्रमका वर्णन करनेमें कौन समर्थ हो सकता है ? श्रीविष्णुने अपनी योगमाया-शक्ति प्रकृतिद्वारा इस प्राकृतिक एकपाद्-विभूतिमें असंख्य ब्रह्माण्डोंका निर्माण किया है तथा त्रिपाद्विभूति जो परम अक्षर, कालातीत, सदा नित्य, अप्राकृत, सर्वश्रेष्ठ है, उसमें (उत्तरं सधस्थम्) सर्वोपरि मोक्षधाम या वैकुण्ठ या विष्णुपद या परमपदको निवेशित किया है । श्रीविष्णु (उरुगायः) अपार कीर्तिवाले हैं ।'

इस प्रकार तीनों वेदोंके अर्थ एक-समान ही मिलते हैं । सृष्टिरचनाके पूर्व भी ये ही शुद्ध सत्तत्त्वमय विष्णु गुणातीत रूपसे थे । इन्हीं परम सत्तात्मक अविनाशी सत्तत्त्वको 'परब्रह्म' कहा जाता है । सृष्टि-संहारोपरान्त यही अवशिष्ट रहेगा तथा इस वर्तमान सृष्टिके समयमें भी यही सर्वरूपमें स्थित है । यथा—

अहमेवासमेवाग्रे नान्यद् यत् सदसत्परम् ।
पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम् ॥
(श्रीमद्भा० २ । ९ । ३२)

श्रीविष्णुने अपने नाभि-कमलसे जायमान हिरण्यगर्भ ब्रह्माको अपना ज्ञान बताया है कि 'जब यह दृश्यमान नश्वर प्राकृतिक सृष्ट्यादि नहीं थी, मैं ही शुद्ध सत्तत्त्वमय परब्रह्म सृष्टिके पूर्व था । यह जो दृश्यमान वर्तमान जगत् है, यह भी मैं ही हूँ और महाप्रलयके पश्चात् जो शेष रहेगा, वह भी मैं ही हूँ । अतः मैं त्रिकालातीत परम अविनाशी हूँ ।'

प्रवर्तते यत्र रजस्तमस्तयोः
सत्त्वं च मिश्रं न च कालविक्रमः ।
न यत्र माया किमुतापरे हरे-
रनुव्रता यत्र सुरासुरार्चिताः ॥
(श्रीमद्भा० २ । ९ । १०)

त्रिपाद्विभूतिमय भगवद्धाममें जो हैं, वे न तमोगुणी हैं, न रजोगुणी हैं और न तमोगुणसे मिश्रित सत्त्वगुणी हैं। वहाँपर शुद्ध सत्तत्त्वमय, परमानन्द, शान्तिमय, सत्-चित्-आनन्द ही आनन्द है। जहाँपर श्रीभगवान्के अनन्य प्रेमी भक्तगण आनन्दमग्न हो विहार करते हैं, वहाँ त्रिगुणमयी माया भी नहीं है तथा कालका विक्रम वहाँ नहीं है, तब अन्य काम-क्रोधादि बाधाएँ वहाँ कैसे हो सकती हैं? इसी भावको ऋग्वेदमें भी कहा गया है—

एतावानस्य महिमाऽतो ज्यायांश्च पूरुषः।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि॥
(१०।९०।३)

भूत, वर्तमान, भविष्यत् रूपमें जितना भी जगत् है, वह इस पुरुष विष्णुकी महिमाका द्योतक है। किंतु वह पुरुष तो इससे भी बहुत बड़ा है, अपार महिमावाला है। जिस प्राकृतिक ब्रह्माण्डका कुछ भी ओर-छोर नहीं मालूम हो सकता, ऐसे असंख्य ब्रह्माण्ड उस परमपुरुषके चतुर्थांशमें परमाणुवत् दिखायी पड़ते हैं। यह तो एकपाद्विभूतिकी लीला है। इनका त्रिपाद्विभूति तो अनन्त, अपार, मन-बुद्धि-वाणीका अविषय तुरीयावस्थामय है। वह अमृतमय, अविनाशी, परम शुद्ध सत्तत्त्वमय गुणातीत 'सत्' है।

सर्वव्यापक श्रीविष्णुने इस चराचर समस्त विश्वको विभक्त करके एकपाद्विभूतिमें धारण कर रखा है तथा त्रिपाद्विभूतिमें अपने पद या धामको निर्धारित किया है। इन श्रीविष्णुका नित्यधाम त्रिपाद्विभूति अविनाशी, अमृत, सच्चिदानन्दस्वरूप है और यह चराचर एकपाद्विभूति लीलामयी सृष्टि है, जो एक-सी नहीं रहती। लीला तो मनोविनोद है। मनोरञ्जन कुछ ही समय किया जाता है। अतः यह भगवल्लीला भी नित्य है, किंतु एक-समान सदा नहीं रहती। इसका रूपान्तर हुआ करता है, अतः यह 'अनित्य' या 'असत्' भी कही जा सकती है।

'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः।'

''इस संसारका उपादान-कारण ब्रह्म सत्य है और जगत् मिथ्या है, परिवर्तनशील है, ब्रह्मकी लीलामात्र है।' सर्वव्यापक परब्रह्म विष्णुके संकल्पमात्रसे यह विश्व होता है—'एकोऽहं बहु स्याम्—एक ही मैं अनेक हो जाऊँ।' यही निर्गुण, गुणातीत ब्रह्म सत्स्वरूप विष्णुका अनेक रूपमें होना 'संसार' है। जैसे सुवर्णके अनेक आभूषण विविध रूपके हो जाते हैं; पृथिवीसे पार्थिव वस्तुएँ—ईंट, घट इत्यादि अनेक बनाये जाते हैं; आकाशके अनेक भाग घटाकाश, मठाकाश, हृदयाकाश आदि अनेक आकाश हो जाते हैं, किंतु वास्तवमें रूपके क्षय होनेपर पुनः सभी पृथिवी, सुवर्ण, आकाश ही हो जाते हैं, वैसे ही एक ही सत्स्वरूप विष्णु अपने परम शान्त विशुद्ध सत्तत्त्व तुरीयावस्थामय गुणातीत रूपसे सृष्टि-रचनाके पूर्व थे, सृजनके समय अपनी योगमायाको त्रिधा धारणकर सृजन-हेतु रजोगुणात्मक ब्रह्माके रूपमें सृजन करते हैं, पालनहेतु सत्त्वगुणात्मक विष्णुरूप होकर पालन करते हैं और संहारहेतु तमोगुणात्मक रुद्ररूप होकर संहार करते हैं। एक ही श्रीविष्णु सर्वव्यापक, परब्रह्म, परमात्मा, पुरुषोत्तम, पुराण पुरुष, नारायण, कृष्ण, वासुदेव, जानकीवल्लभ, श्रीरामादि पतितपावन, सर्वस्वरूप, सर्वमय हैं। ये ही अनन्तकोटिब्रह्माण्डनायक होते हुए अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोंमें अनन्तकोटि ब्रह्मा-विष्णु-शिव होकर, सर्वमयरूपसे सृजन-पालन-संहार करते हैं तथा सर्वरूप हो जाते हैं। श्रीविष्णु ही देव-सिद्ध-यक्ष-असुर-नाग-गन्धर्व-किंनर-पिशाच-राक्षस-मनुष्य पशु-पक्षी-वृक्षादि, चींटी-सर्प आदि चतुर्विध (अण्डज-पिण्डज-स्वेदज-उद्भिज) जीव तथा भूमि-सलिल-अग्नि-आकाश-पवन-शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध-मन-बुद्धि-आत्मा-काल-गुण इत्यादि सबके पारमार्थिक रूप हैं। ये विद्या-अविद्या, सत्य-असत्य, विष-अमृत, सत्-असत्—सब कुछ हैं तथा वेदोक्त प्रवृत्ति-निवृत्तिपरक कर्म भी हैं। विष्णु सभी कर्मोंके भोक्ता तथा उनकी सामग्री और फल भी हैं। ये अनन्त, अपरिमेय, सर्वगामी, सर्वगत, सर्वरूपमें स्थित हैं। सब जगत् इन्हींसे आविर्भूत होकर इन्हींमें स्थित है। ये ही अक्षय, सत्य, नित्य, आत्माधार परमात्मा हैं। जगत्के आदि-मध्य-अवसानमें स्थित परम पुरुष हैं। वस्तुतः मूल रहस्य यह है कि श्रीविष्णुभगवान् धर्मविग्रह सत्त्वराशि हैं। सत्त्वमें सर्वतोभावसे धर्मकी प्रधानता है। इन्हीं शुद्ध सत्त्वस्वरूप श्रीविष्णुको वेदान्ती ब्रह्मरूपमें, सांख्यवादी पुरुषरूपमें, नैयायिक कर्तारूपमें, मीमांसक कर्मस्वरूपमें, योगदार्शनिक योगी परम तत्त्वरूपमें मानते हैं—

तदाहुरक्षरं ब्रह्म सर्वकारणकारणम्।
विष्णोर्धाम परं साक्षात् पुरुषस्य महात्मनः॥
(श्रीमद्भा० ३।११।४१)

अक्षर, अविनाशी, सर्वकारणोंके भी कारण महापुरुष विष्णुभगवान्‌का साक्षात् परमधाम 'वैकुण्ठ' है । यही सब सत्-स्वरूपकी महिमा है । यही सत् सर्वदा अविच्छिन्न रूपसे स्थित रहता है । गीतामें इसका वर्णन इस प्रकार है—

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः ।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः ॥
(गीता २ । १६)

'इस असत्-नश्वर-मायिक संसारकी नित्यता नहीं है और सत्—सत्य-स्वरूप ब्रह्मका विनाश नहीं है, ऐसा तत्त्वदर्शी ज्ञानीजनोंका सिद्धान्त है ।' जिस सत्तत्त्वमय विष्णुसे यह संसार व्याप्त है और जिनकी सत्ता कभी नष्ट नहीं होती, उसे अविनाशी समझना चाहिये । अतः श्रीविष्णुभगवान् परम शुद्ध सत्तत्त्वमय सगुण तथा निर्गुण परब्रह्म हैं । इनसे एक परमाणु भी खाली नहीं है । इनकी योगमायाका पार कोई नहीं पाता । ये ही विविध अवतार धारण करके विश्वपालन करते हैं । ज्ञानीगण ज्ञानयज्ञसे, वैदिक विप्र वैदिक यज्ञोंसे, भक्तगण भक्तियोग-यज्ञसे तथा और भी अनेकमतावलम्बी सर्वतोभावरूपी यज्ञसे इन्हींका यजन करते हैं—

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥
(यजुर्वेद ३१ । १६)

ज्ञानी तथा भक्त उपासकगण पूर्वोक्त ज्ञान-भक्ति-उपासना-यज्ञादिकोंसे इन्हीं विष्णुका पूजन करके विष्णुधाममें आनन्दित होते हैं । अपने इसी अविनाशी स्वरूपको भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें कहा है—

'मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते ॥'
(८ । १६)

'हे अर्जुन ! मुझ अविनाशीको प्राप्त होकर पुनर्जन्म नहीं होता ।' वैकुण्ठधामके मुक्तात्माओंकी गति बड़ी विलक्षण है ।

'देहेन्द्रियासुहीनानां वैकुण्ठपुरवासिनाम् ।'
(श्रीमद्भा० ७ । १ । ३४)

वैकुण्ठधाममें मुक्तात्माओंके देह-इन्द्रिय-प्राण मायिक या प्राकृतिक या नश्वर नहीं होते । उनके देह-इन्द्रिय-प्राण अनश्वर एवं अप्राकृतिक होते हैं । शुद्धसत्त्वमय सच्चिदानन्द भगवान् श्रीविष्णुका यही स्वरूप है । अपने परम चैतन्यमय ज्ञानानन्दसे ये सबको चैतन्य करनेवाले हैं । ऐसे सर्वव्यापी गुणातीत श्रीविष्णुको कोटिशः नमस्कार हैं ।

विष्णुस्वरूप पीपल-वृक्ष

(लेखक—श्रीवल्लभदासजी बिन्नानी 'ब्रजेश', साहित्यरत्न, साहित्यालङ्कार)

पुराणोंमें अश्वत्थका बड़ा माहात्म्य मिलता है । स्कन्दपुराणमें आया है—

मूले विष्णुः स्थितो नित्यं स्कन्धे केशव एव च ।
नारायणस्तु शाखासु पत्रेषु भगवान् हरिः ॥
फलेऽच्युतो न संदेहः सर्वदेवैः समन्वितः ।
स एव विष्णुर्द्रुम एव मूर्तो महात्मभिः सेवितपुण्यमूलः ।
यस्याश्रयः पापसहस्रहन्ता भवेन्नृणां कामदुघो गुणाढ्यः ॥
(स्कन्द०, नागर० २४७ । ४१, ४२, ४४)

'पीपलकी जड़में विष्णु, तनेमें केशव, शाखाओंमें नारायण, पत्तोंमें भगवान् हरि और इसके फलमें सभी देवताओंसे युक्त अच्युत सदा निवास करते हैं—इसमें कुछ भी संदेह नहीं है । यह वृक्ष मूर्तिमान् श्रीविष्णुस्वरूप है, महात्मा पुरुष इस वृक्षके पुण्यमय मूलका सेवन करते हैं । इसका गुणोंसे युक्त और कामपूरक आश्रय मनुष्योंके हजारों पापोंका नाश करनेवाला है ।'

गीताके 'विभूतियोग' नामक दशम अध्यायके २६ वें श्लोकमें—

'अश्वत्थः सर्ववृक्षाणाम्'

—कहकर यह बताया गया है कि पीपलका वृक्ष समस्त वनस्पतियोंका राजा है, पूजनीय है । भगवान्‌ने उसे अपना स्वरूप बताया है । इसीसे शास्त्रोंमें पीपल काटनेका निषेध है । भगवान् विष्णुकी कृपा चाहनेवालोंको पीपल-वृक्षका पूजन एवं सिञ्चन करना चाहिये ।

सर्वव्यापक भगवान् श्रीविष्णु

(लेखक—साहित्यमहोपाध्याय प्रो० श्रीजनार्दनजी मिश्र 'पङ्कज', एम्० ए०, शास्त्री, काव्यतीर्थ,
व्याकरण-साहित्य-सांख्य योग-दर्शन वेदान्ताचार्य)

यजुर्वेदके पुरुषसूक्तमें १ से १६ ऋचाओंमें जिस परमात्मतत्त्वका निरूपण किया गया है, वही विष्णु-तत्त्व है। 'विष्णु' शब्दके अनेक अर्थोंमें प्रधान अर्थ तो व्यापक ही है। वह विष्णु—सर्वान्तर्यामी परमात्मा इस समस्त ब्रह्माण्डकी भूमिको सभी ओरसे व्याप्त करके स्थित है और इससे दस अंगुल ऊपर भी है। भाव यह है कि ब्रह्माण्डमें व्यापक होते हुए भी वह इससे परे भी है। वही उपक्रम है और वही पर्यवसान है। आद्यन्त कोई अपर तत्त्व नहीं है। उस परमात्माके नेत्रादि ज्ञानेन्द्रियाँ तथा चरणादि कर्मेन्द्रियाँ हजारों हैं—असंख्य हैं। वह सहस्रशीर्षा है, सहस्राक्ष है और सहस्रपात् भी है।

'पुरुष एवेदꣳ सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्।'

(यजुर्वेद ३१। २)

यह जो कुछ इस समय वर्तमान है, सब परमात्माका ही स्वरूप है। भूत और भविष्यत् जगत् भी परमात्मा ही है। इतना ही नहीं, यह अमृतत्वका भी स्वामी है तथा ये जो अन्नसे उत्पन्न होनेवाले जीव हैं, **'यदन्नेनातिरोहति'**—उन सभीका शासक अर्थात् सूर्य, चन्द्र, गगन, पवन आदिको नियमित रखनेवाला उनका नियामक भी है। भूत, भविष्यत् और वर्तमानकालसे सम्बन्ध रखनेवाला जितना भी जगत् है, यह सब इसी पुरुषकी महिमा है, इसीका विभूति-विस्तार है। उसका पारमार्थिक स्वरूप इतना ही नहीं है, वह पुरुष इस ब्रह्माण्ड—विराट् स्वरूपसे भी बहुत बड़ा है। यह सम्पूर्ण दृश्य-प्रपञ्च—ये तीनों लोक तो उसके एक पादमें हैं अर्थात् उसकी एक चौथाईमें समाप्त हो जाते हैं। अभी इसके तीन पाद और शेष हैं—यह त्रिपाद-स्वरूप अमृत है—अविनाशी है और परम प्रकाशमय अर्थात् अपने स्वरूपमें ही स्थित है।

वह त्रिपाद-पुरुष ऊपर उठा हुआ है अर्थात् वह विष्णु अज्ञानके कार्यभूत इस संसारसे सर्वथा पृथक् तथा इसके गुण-दोषोंसे अछूता रहकर उच्चस्थितिमें विराजमान है।

उसका एक अंशमात्र मायाके सम्पर्कमें आकर इस जगत्के रूपमें प्रकट हुआ है। फिर वह मायावश जड-चेतनमयी नाना प्रकारकी सृष्टिके रूपमें स्वयं फैलकर सब ओरसे व्याप्त हो गया है।

उस विष्णुके सर्वव्यापकत्वके कारण ही उसका एक नाम 'अनन्त' है। तीन कारणोंसे—(१) सर्वव्यापित्वात्, (२) नित्यत्वात्, (३) सर्वात्मत्वात् अर्थात् देशतः, कालतः, वस्तुतः अपरिच्छिन्नत्वात् वह अनन्त है। सर्वत्र व्यापक होनेके कारण, त्रिकालाबाधित सत्य अर्थात् नित्यतत्त्व होनेके कारण तथा सर्वात्मत्व—देश-काल-वस्तुद्वारा अपरिच्छिन्न होनेके कारण वह अनन्त है। कहनेका भाव यह कि ऐसा कोई देश (स्थल-विशेष) नहीं, जहाँ विष्णु न हो; ऐसा कोई काल नहीं, जब वह न हो और ऐसी कोई वस्तु भी नहीं, जिसमें वह न हो।

श्रीरामचरितमानसद्वारा प्रतिपादित उस विष्णुकी व्यापकता भी अवलोकनीय है। सुर-मुनि-गन्धर्व शिव-विरञ्चिके साथ विचारमग्न हैं। विषय है—उसे कैसे पाया जाय और पुकार भी करें तो कहाँ? गोस्वामी तुलसीदासके शब्दोंमें—

बैठे सुर सब करहिं बिचारा। कहँ पाइअ प्रभु करिअ पुकारा॥
पुर बैकुंठ जान कह कोई। कोउ कह पयनिधि बस प्रभु सोई॥

× × ×

तेहिं समाज गिरिजा मैं रहेउँ। अवसर पाइ बचन एक कहेउँ॥
हरि ब्यापक सर्बत्र समाना। प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना॥
देस काल दिसि बिदिसिहु माहीं। कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं॥

(मानस १। १८४। १—३)

मानसकी ऊपरकी चौपाइयोंके अनुसार वह विष्णु सर्वत्र व्यापक है तथा देश-काल-वस्तुसे अपरिच्छिन्न होनेके कारण ही वह अनन्त है।

व्याप्ति (वि + आप्ति) का शाब्दिक अर्थ है—विशेष-रूपसे आप्ति अथवा सम्बन्ध। यहाँ सम्बन्धकी विशिष्टताका भाव है दो वस्तुओंका नियत साहचर्य अर्थात् सर्वदा एक साथ रहना। न्यायदर्शनकी मान्यता है—

'यत्र यत्र धूमस्तत्र तत्राग्निरिति साहचर्यनियमो व्याप्तिः।'

'साहचर्य'का अर्थ है—एक साथ रहना, जैसे मछली और पानीका एक साथ रहना पाया जाता है। यहाँ मत्स्य और जलमें साहचर्य सम्बन्ध है, किंतु यह सम्बन्ध नियमित नहीं है। कभी-कभी तो मछलियाँ जलसे अलग शुष्क स्थलमें भी पायी जाती हैं और जल भी मछलीके बिना पाया जाता है। कहनेका भाव यह है कि ये दोनों (मीन और जल) सहचर एक-दूसरेसे अलग भी रह सकते हैं। इसीका नाम है 'व्यभिचार'। जीवात्मा और परमात्मामें भी व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध है अर्थात् नियमित साहचर्य है। जैसे—

'बरनत बरन प्रीति बिलगाती। ब्रह्म जीव इव सहज सँघाती॥'

(मानस १। १९। २)

उपनिषद्‌की—

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया
समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्य-
नश्नन्नन्यो अभिचाकशीति॥
समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नो-
ऽनीशया शोचति मुह्यमानः।
जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीश-
मस्य महिमानमिति वीतशोकः॥

(श्वेताश्वतरोपनिषद् ४। ६-७)

'पुरुष और पुरुषविशेष (जीवात्मा और परमात्मा) दो पक्षी साथ रहनेवाले और मित्र हैं। वे दोनों एक ही त्रिगुणात्मक प्रकृतिरूप वृक्षका आलिङ्गन किये हुए हैं। उन दोनोंमेंसे एक जीवरूपी पक्षी (जन्म, आयु और भोगरूपी सुख-दुःखात्मक) स्वादवाले फलको खाता है और दूसरा ईश्वररूपी पक्षी फल न खाता हुआ केवल साक्षी है—तटस्थ होकर देखता रहता है। उसी प्रकृतिरूप वृक्षपर जीवरूपी पक्षी आसक्त होकर असमर्थतासे धोखा खाता हुआ शोक करता है; किंतु जब योगयुक्त होकर अपने दूसरे साथी ईश और उसकी महिमाको देखता है, तब शोकसे पार हो जाता है।' इस प्रकृतिरूपी वृक्षकी जड अव्यक्त 'मूल प्रकृति' है और दिखलायी देनेवाला वृक्षका आधार तना व्यक्त 'महत्तत्त्व' है। तनेमें अङ्कुर 'अहंकार' है, शाखाएँ 'तन्मात्राएँ' हैं, पतली शाखाएँ सूक्ष्मभूत और उनसे भी पतली शाखाएँ पत्तोंसहित सोलह विकृतियाँ हैं। फल जन्म, आयु और भोग हैं। उसका स्वाद सुख और दुःख है। जीवरूपी पक्षीका असमर्थ होनेके कारण धोखा खाना क्रमशः अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश नामक 'क्लेश' है। उनसे सकाम कर्म, सकाम कर्मसे कर्माशय, कर्माशयसे जन्म, आयु और भोगके लिये स्थूल-शरीररूपी अनन्त अस्थिर पत्तोंमें घूमना है। योगयुक्त होकर पक्षीका ईशरूपी पक्षी और उसकी महिमाको देखना 'ईश्वर-प्रणिधान है।'

साहचर्यका विपरीत रूप व्यभिचार है। पूर्वोक्त उदाहरणमें जल और मछलीके साहचर्यमें नियम-भङ्ग भी पाया जाता है, अर्थात् एककी स्थिति दूसरेके अभावमें पायी जाती है। अतएव इन दोनोंका सम्बन्ध व्यभिचारयुक्त अथवा व्यभिचरित कहा जायगा।

'व्याप्ति'का अर्थ है—अव्यभिचरित सम्बन्ध। जिस साहचर्य-नियममें व्यभिचार (अपवाद) नहीं है, वही 'व्याप्ति' कहलाती है। धूम और अग्निमें नियत-साहचर्य देखनेमें आता है—धूम कभी अग्निसे पृथक् नहीं रहता। वह सर्वदा अग्निके साथ ही पाया जाता है। इस नियमका कभी व्यभिचार (अपवाद) देखनेमें नहीं आता। अग्निसे अतिरिक्त स्थानमें धूम कभी नहीं पाया जाता। इसी अव्यभिचरित सम्बन्धको 'व्याप्ति' कहते हैं।

व्यापक विष्णुकी सर्वत्र व्याप्तिका उदाहरण प्रह्लादके प्रसङ्गमें मिलता है, जब कि प्रह्लादकी टेक रखनेके लिये विष्णु खंभेसे निकल पड़ते हैं—

सत्यं विधातुं निजभृत्यभाषितं
व्याप्तिं च भूतेष्वखिलेषु चात्मनः।
अदृश्यतात्यद्भुतरूपमुद्वहन्
स्तम्भे सभायां न मृगं न मानुषम्॥

(श्रीमद्भागवत ७। ८। १८)

अर्थात् अपने सेवक प्रह्लादके वचनको अक्षरशः चरितार्थ करने और अपनी सर्वत्र व्यापकताको प्रमाणित करनेके लिये वे भरी सभामें, उस खंभेमें, जिसमें प्रह्लाद बँधा था, अद्भुत रूप धारण किये हुए, नरसिंहके रूपमें प्रकट हो गये।

अब इस विषयको प्रकारान्तरसे समझिये। धूम अग्निके बिना नहीं रह सकता; इसीलिये धूमका अग्निके साथ जो सम्बन्ध है, उसे न्यायदर्शनकी भाषामें 'अविनाभाव' कहते हैं। अविनाभावका अर्थ है—अ (नहीं), बिना (विरह या

पार्थक्यमें), भाव (स्थिति या होना) । अर्थात् यदि एक वस्तु ऐसी है, जो दूसरी वस्तुके बिना कभी रह न सके तो वहाँ 'अविनाभाव'-सम्बन्ध जानना चाहिये। धूम कभी अग्निके बिना रह नहीं सकता । जहाँ अग्नि नहीं है, वहाँ धुआँ भी नहीं रहेगा। धूमका अग्निसे पृथक् अपना कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। उसका अस्तित्व अग्निपर ही निर्भर करता है। अब प्रश्न उठता है कि किसमें किसकी व्याप्ति है। धूमकी व्याप्ति अग्निमें है या अग्निकी व्याप्ति धूममें। गोस्वामीजीके 'हरि व्यापक सर्वत्र समाना। (मानस १। १८४। २३) से कौन-सा अभिप्रेत अर्थ निकलता है? यह बात प्रत्यक्ष देखनेमें आती है कि धूम कभी अग्निके बिना नहीं पाया जाता, किंतु आग तो धुएँके बिना भी पायी जाती है। जैसे—जलते हुए लौह-पिण्डमें निर्धूम अग्नि देखनेमें आती है। अग्नि धूमसे परिच्छिन्न या सीमित नहीं है, परंतु धूम तो अग्निसे परिच्छिन्न एवं सीमित है। सम्पूर्ण धूमराशि अग्निके अन्तर्गत है, किंतु अग्नि धूमके अन्तर्गत नहीं।

गोस्वामी तुलसीदासजीकी विचारधारा यहाँ न्याय-शास्त्रानुमोदित है। जीव और जगत्में ईश्वरकी व्याप्ति है। अतः ऊपरकी चौपाईमें 'सर्वत्र' कहा गया है। जिसकी व्याप्ति रहती है, वह 'व्यापक' कहलाता है। हरि (विष्णु) व्यापक है। जिसमें व्याप्ति रहती है, वह 'व्याप्य' कहलाता है। ऊपरके उदाहरणमें अग्नि व्यापक और धूम व्याप्य है। इसी प्रकार भगवान् विष्णु व्यापक तथा जीव और जगत् उसका व्याप्य हैं।

आचार्य श्रीरामानुजके 'तत्त्वत्रय'—चित् अर्थात् जीव, अचित् अर्थात् विषय, शरीर, इन्द्रियाँ तथा पाँचों स्थूल-भूतोंसे बना हुआ भौतिक जगत् और ब्रह्म—ये तीनों यद्यपि भिन्न हैं, तथापि चित् (जीव) और अचित् (जड जगत्)—ये दोनों एक ही ब्रह्मके शरीर हैं। जीवात्मा ब्रह्मका शरीर है और वह उसका अन्तर्यामी आत्मा है। इसलिये चित्-अचित्-विशिष्ट ब्रह्म एक ही है। इस प्रकार विशिष्टरूपसे ब्रह्मको अद्वैत माननेके कारण यह सिद्धान्त 'विशिष्टाद्वैत' कहलाता है।

वह विष्णु या ब्रह्म निरवयव है, निश्चल है, शान्त, निर्दोष और निर्लेप है। श्रुति कहती है—'अनेजदेकं मनसो जवीयः'—अर्थात् वह अडोल, एक और मनसे बढ़कर वेगवाला (सर्वत्र व्यापक होनेके कारण) है। पुरुष निष्क्रिय होता हुआ भी अपने चित्तका द्रष्टा है। व्यष्टि चित्तके सम्बन्धसे चेतन तत्त्वका नाम 'जीव' है, जो संख्यामें अनन्त और अल्पज्ञ हैं और समष्टि चित्तके सम्बन्धसे चेतन-तत्त्वका नाम ईश्वर, अपर ब्रह्म, सगुण ब्रह्म और शबल ब्रह्म है, जो एक और सर्वज्ञ है। अपने शुद्ध स्वरूपसे चेतन तत्त्वका नाम परमात्मा, निर्गुण ब्रह्म, शुद्ध ब्रह्म और परब्रह्म है। सांख्यदर्शनमें 'पुरुष' शब्दका प्रयोग जीव, ईश्वर और परमात्मा—तीनों अर्थोंमें होता है।

नैयायिक-सिद्धान्तानुसार अग्नि धूमका व्यापक है; क्योंकि वह व्याप्ति-क्रियाका कर्ता है। धूम अग्निका व्याप्य है; क्योंकि वह व्याप्ति-क्रियाका कर्म है। व्याप्य (जीव एवं जगत्) कभी भी व्यापक (विष्णु) के बाहर नहीं रह सकता; किंतु व्यापक-व्याप्य (जीव और जगत्) के बाहर भी (नित्यत्वात्—असङ्गत्वाच्च) रह सकता है। बाह्य पदार्थ उसके अंदर स्थित परमात्माके जाननेका उपलक्षणमात्र होता है।

बृहदारण्यक (३। ७। ३) में लिखा है—

'यः पृथिव्यां तिष्ठन् पृथिव्या अन्तरो यं पृथिवी न वेद यस्य पृथिवी शरीरं यः पृथिवीमन्तरो यमयत्येष त आत्मा-न्तर्याम्यमृतः।' अर्थात् जो पृथिवीमें रहता हुआ पृथिवीसे अलग है, जिसको पृथिवी नहीं जानती; जिसका पृथिवी शरीर है, जो पृथिवीके अंदर रहकर उसे नियममें रखता है, वह तेरी आत्मा अन्तर्यामी अमृत है।

अब देखिये, व्याप्य और व्यापक—इन दोनोंमें कौन किसका सूचक है, अर्थात् धूमसे अग्निका बोध हो सकता है या अग्निसे धूमका? धूमके सर्वदेशमें अग्नि व्यापक है अर्थात् ऐसा कोई धूम नहीं, जिसमें अग्नि व्यापक नहीं है। किंतु ऐसी भी आग हो सकती है, जिसमें धूम नहीं है—जैसे जलता हुआ लोहा। अतएव धूम सर्वत्र ही अग्निका सूचक है। उससे सर्वत्र अग्निका अनुमान कर लिया जा सकता है, किंतु अग्निसे सब जगह धूमका अनुमान नहीं कर सकते। धूम अग्निका पक्का चिह्न है, किंतु अग्नि धूमका नहीं। न्यायकी भाषामें चिह्नको 'लिङ्ग' कहते हैं और चिह्न (लिङ्ग) से जिस वस्तुका संकेत—निर्देश होता है, उसको लिङ्गी कहते हैं। इस प्रकार धूम लिङ्ग और अग्नि लिङ्गी है। लिङ्गके द्वारा लिङ्गीका अनुमान होता है। इसलिये लिङ्गीको साध्य और लिङ्गको साधन (अनुमानका

[पृष्ठ १७-१८]

हेतु) कहते हैं । अतएव जहाँ व्याप्ति-सम्बन्ध है, वहाँ व्यापकको साध्य और व्याप्यको साधन जानना चाहिये । व्याप्य (लिङ्ग) से व्यापक (लिङ्गी) का बोध हो सकता है, किंतु व्यापक (लिङ्गी) से व्याप्य (लिङ्ग) का नहीं । अर्थात् "अनौपाधिकः सम्बन्धो व्याप्तिः—जिस सम्बन्धमें उपाधि न हो, उसे 'व्याप्ति' जानना चाहिये ।"

वह विष्णु समष्टि-अन्तःकरणरूप और विभु होनेके कारण सर्वव्यापक है । अनन्त—देश-काल-वस्तुसे परिच्छिन्न होनेके कारण सर्वत्र समान भी है । सर्वव्यापकताके कारण सर्वज्ञ है ।

'प्रेम ते प्रगट होहिं मैं जाना' के द्वारा गुसाँईजी बतलाते हैं कि वह निर्गुण ही सगुण अर्थात् निराकारसे साकार हो जाता है ।

ब्रह्मसूत्रके—'**अभिव्यक्तेरित्याश्मरथ्यः**' (१ । २ । २९) —अर्थात् वेदान्ताचार्य आश्मरथ्य उस निर्गुण ब्रह्मका सगुण होना स्वीकार करते हैं । महात्मा सुन्दरदासके शब्दोंमें—

एक कहूँ तो अनेक सो दीखत, एक अनेक जहाँ कछु नाहीं ॥

तत्त्ववेत्ताका मार्ग भेद-अभेदसे अलग है । यह जो कुछ स्थावर और जंगम जगत् है, वह ईश्वरसे आच्छादनीय है । अर्थात् सबमें ईश्वरको व्यापक समझना चाहिये । सांख्यद्वारा उस विष्णुकी उपासना अहंकारादेश अर्थात् उत्तम पुरुषद्वारा आत्मादेश अर्थात् आत्माद्वारा की जाती है । वेदान्तमें ब्रह्मका वर्णन कहीं-कहीं अन्यादेशसे है—जैसे, '**तत्त्वमसि**' कहीं-कहीं अहंकारादेशसे है—जैसे '**अहं ब्रह्मास्मि**' ।

परमोपास्य भगवान् विष्णु

(लेखक—कविरत्न पं० श्रीदेवीप्रसादजी शास्त्री 'पाराशर')

श्रुति-सार-सर्वस्व परमाराध्य भक्त-वाञ्छा-कल्पतरु जगन्नियन्ता भगवान् विष्णुकी महत्ता विश्वविदित है । पुराणेतिहास, श्रुति-स्मृति-धर्मशास्त्र-काव्य-नाटकादि सभी सहर्ष विष्णु-महिमामें एकमत हैं । विष्णुभगवान्से उपेक्षित धार्मिक जीवन स्थिर नहीं रह सकता । कर्मकाण्डमें संकल्प विष्णु-नामोच्चारणपूर्वक होता है तथा पूज्य परमहंस महापुरुषोंकी वाणी भी नारायण-नामसे सुशोभित देखी जाती है । पुराणोपपुराण तथा साम्प्रदायिक ग्रन्थोंके आधार-स्तम्भ वैदिक साहित्यमें विष्णुका महत्त्व सर्वाधिक प्राप्त होता है—।

वेदे रामायणे पुण्ये भारते भरतर्षभ ।
आदौ चान्ते च मध्ये च हरिः सर्वत्र गीयते ॥
(श्रीहरिवंश० ३ । १३२ । ४५)

ग्रन्थरत्न श्रीमद्भागवतमें विष्णु-महिमाका साङ्गोपाङ्ग वर्णन पाया जाता है । केवल इसी ग्रन्थका अध्ययन कर मानव परम कल्याण-मार्गको सुगमतासे प्राप्त कर सकता है । श्रीमद्भागवतमें निर्गुण-निराकार एवं सगुण-साकार स्वरूपका विशद विवेचन पाया जाता है । भक्तार्तिहर भगवान् स्वेच्छासे लीला-स्वरूप धारणकर अपने जनोंकी तथा वैदिक धर्मकी रक्षा करते हैं । यह विष्णुभगवान्की अहैतुकी कृपा एवं महानताका ज्वलन्त उदाहरण है ।

'**स च भगवान् ज्ञानैश्वर्यशक्तिबलवीर्यतेजोभिः सदा सम्पन्नः, त्रिगुणात्मिकां वैष्णवीं स्वां मायां मूलप्रकृतिं वशीकृत्य अजः अव्ययो भूतानां ईश्वरो नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावः अपि सन् स्वमायया देहवान् इव जात इव च लोकानुग्रहं कुर्वन् इव लक्ष्यते ।**'
(गीताशांकरभाष्य०, उपोद्घात)

'ज्ञान, ऐश्वर्य, शक्ति, बल, वीर्य और तेज आदिसे सदा सम्पन्न वे भगवान् यद्यपि अज, अविनाशी, सम्पूर्ण भूतोंके ईश्वर और नित्य शुद्ध-बुद्ध-मुक्त-स्वभाव हैं, तो भी अपनी त्रिगुणात्मिका मूल प्रकृति वैष्णवी मायाको वशमें करके अपनी लीलासे शरीरधारीकी तरह उत्पन्न हुए-से और लोगोंपर अनुग्रह करते हुए-से दीखते हैं ।'

ब्रह्म-रुद्रादिसेव्य भक्तभयहारी भगवान्की चरणवन्दना सर्वाभीष्टप्रदायिनी है । उपनिषदों, पुराणों एवं लोकमें भी यह प्रत्यक्ष देखा जाता है । भगवान्के चरण-कमल दुःखनाशक, अभीष्टदायक, परम पवित्रताप्रद, भक्त-व्यथाहारी, शरणागत-रक्षक एवं भवार्णवसे उद्धारक हैं—

ध्येयं सदा परिभवघ्नमभीष्टदोहं
तीर्थास्पदं शिवविरिञ्चिनुतं शरण्यम् ।

भृत्यार्तिहं प्रणतपाल भवाब्धिपोतं
वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम् ॥
(श्रीमद्भागवत ११ । ५ । ३३)

यहाँपर 'महापुरुष' शब्द परात्पर ब्रह्मरूपमें विष्णुका ही वाचक है। 'विष्लृ व्याप्तौ' धातुसे 'णु' प्रत्यय लगानेसे 'विष्णु' शब्द निष्पन्न होता है। अतः सर्वव्यापक विष्णु ही हैं। 'पुरुष' शब्द भी इसी अर्थका बोधक है—

'इमे वै लोकाः पूरयमेव पुरुषो योऽयं पवते।
सोऽस्यां पुरि शेते तस्मात् पुरुषः ॥
(शतपथब्राह्मण १३ । ६ । २ । १)

समस्त लोकोंमें प्रविष्ट होकर पालन-पोषण करनेवाला ही 'पुरुष' है। श्रुति भी 'पुरुषान्न परं किंचित्' (कठ० ३ । ११) कहकर इन्हीं परमात्माका सर्वोपरित्व सूचित करती है। गीतामें 'उत्तम पुरुष' परमात्मा विष्णुका ही वाचक है। इसका निर्णय महाकवि कालिदासने रघुवंश महाकाव्यमें 'हरिर्यथैकः पुरुषोत्तमः स्मृतः' (३ । ४९) कहकर दिया है। वेद-वाणीमें उपासक निश्चय करके कहता है कि 'मैं उस महापुरुषको जानता हूँ, जो अविद्यासे परे है, सूर्यकी भाँति स्वयं प्रकाशस्वरूप हैं। इस पुरुषको जानकर ही मृत्युका उल्लङ्घन किया जा सकता है। मुक्तिका दूसरा मार्ग नहीं है।'

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥
(यजुर्वेद ३१ । १८)

उपर्युक्त मन्त्र विष्णुसाक्षात्कारको छोड़कर अन्य सभी साधनोंको मोक्ष-प्राप्तिमें दुर्बल बताता है; अतः सभी उपास्योंमें विष्णु ही फलप्रद हैं—

'सर्वदेवनमस्कारः केशवं प्रति गच्छति।'
(प्रपञ्चगीता)

यह चराचर जगत् भूत, वर्तमान और भविष्य कालमें विष्णु ही है। यह अमर होकर भी उपचयापचयके द्वारा विश्वरूप हो जाता है।

पुरुष एवेदꣳ सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥
(यजुर्वेद ३१ । २)

—उपर्युक्त वेद मन्त्रके अनुसारमें विष्णुपुराणका कथन भी यथार्थ ही है—

विष्णोः सकाशादुद्भूतं जगत्तत्रैव च स्थितम्।
स्थितिसंयमकर्तासौ जगतोऽस्य जगच्च सः ॥
(विष्णुपुराण १ । १ । ३१)

'यह जगत् विष्णुसे उत्पन्न होकर उन्हींमें स्थित है। वे ही इसकी स्थिति और लयके कर्ता हैं तथा यह जगत् वे ही हैं।'

यजुर्वेदमें गुरु शिष्यको उपदेश करता है—'तू बुद्धिको शुद्धकर विष्णुका आराधनकर व्यापक परमात्मामें एकीभावसे स्थित हो जा।'

यह तत्त्व बड़ा दुर्विज्ञेय है। ब्रह्मा-रुद्र-इन्द्रादि देव, सनत्कुमार-नारदादि सिद्ध पुरुष भी विष्णुतत्त्वको जाननेमें अपनी असमर्थता प्रकट करते हैं। वास्तविक विष्णु-तत्त्वको न समझकर देवता अवतारका ही पूजन करते हैं—

भवतो यत्परं तत्त्वं तन्न जानाति कश्चन।
अवतारेषु यद्रूपं तदर्चन्ति दिवौकसः ॥
(विष्णुपुराण १ । ४ । १७)

पौराणिक साहित्यमें पर्याप्तरूपसे विष्णुभक्ति उपलब्ध है। सर्वदेवादिके एवं पितरोंके पूजक विष्णु-पूजक ही हैं—

ये यजन्ति मखैः पुण्यैर्देवतादीन् पितॄनपि।
आत्मानमात्मना नित्यं विष्णुमेव यजन्ति ते ॥
(श्रीहरिवंश०)

परमात्मा विष्णुके दशावतार अति प्रसिद्ध हैं। सर्वहित ही अवतारका प्रयोजन है। इन सभी स्वरूपोंकी विश्वमें उपासना प्रचलित है; परंतु राम-कृष्ण-भक्तिकी धाराएँ समस्त संसारमें व्यापक पायी जाती हैं। रामावतारका वर्णन अनेक ग्रन्थोंमें उपलब्ध है तथा श्रीरामजी ब्रह्मादि सर्वदेवोंके वन्द्य हैं। महर्षि वाल्मीकि रामका महत्त्व प्रकट करते हुए कहते हैं—'आपके नामकी महिमा कौन, किस प्रकार कह सकता है, जिसके प्रभावसे मैंने ब्रह्मर्षि पद पाया है'—

राम त्वन्नाममहिमा वर्ण्यते केन वा कथम्।
यत्प्रभावादहं राम ब्रह्मर्षित्वमवाप्तवान् ॥
(अध्यात्मरा०, अयो० ६ । ६४)

श्रीविष्णुसे अभिन्न भगवान् राम जब वन जाते समय कौसल्यासे आज्ञा लेने पहुँचे, तब माता हृदयमें अन्तर्यामी, चिद्घनस्वरूप, तेजोमय, निरतिशयस्वरूप, सदानन्दमय, परात्पर विष्णुका ही ध्यान कर रही थीं—

अन्तःस्थमेकं घनचित्प्रकाशं
निरस्तसर्वातिशयस्वरूपम् ।
विष्णुं सदानन्दमयं हृदब्जे
सा भावयन्ती न ददर्श रामम् ॥
(अध्यात्मरा०, अयो० ३ । ८०)

महाविष्णुने कृष्णावतारमें भी ब्रह्मादि देवोंको आश्चर्यचकित कर अपने प्रभुत्वका दर्शन कराया है । सम्भ्रान्त ब्रह्माजीने गौओंका अपहरण किया । फिर बोध होनेपर वे ही कहते हैं—

अहो भाग्यमहो भाग्यं नन्दगोपव्रजौकसाम् ।
यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्म सनातनम् ॥
(श्रीमद्भागवत १० । १४ । ३२)

'नन्दादि व्रजवासियोंका धन्य भाग्य है, जो परमानन्दस्वरूप सनातन परिपूर्ण ब्रह्मकी मैत्रीसे कृतकृत्य हैं।' गोवर्धनधारणसे पराजित इन्द्र भी प्रार्थनामें संलग्न हैं—

पिता गुरुस्त्वं जगतामधीशो
दुरत्ययः काल उपात्तदण्डः ।
हिताय स्वेच्छातनुभिः समीहसे
मानं विधुन्वञ्जगदीशमानिनाम् ॥
(श्रीमद्भागवत १० । २७ । ६)

'आप जगत्के पिता, गुरु, ईश्वर, नाशसे रहित, दण्डको ग्रहण करनेवाले कालरूप हैं । जीवोंके हितके लिये और अपनेको ईश्वर माननेवालोंका मान-मर्दन करते हुए-से अपनी इच्छासे रूप धारण करके लीला करते हैं ।'

भगवान् रुद्र भी बाणासुरकी रक्षाके लिये विनयपूर्वक कहते हैं—

त्वं हि ब्रह्म परं ज्योतिर्गूढं ब्रह्मणि वाङ्मये ।
यं पश्यन्त्यमलात्मान आकाशमिव केवलम् ॥
(श्रीमद्भागवत १० । ६३ । ३४)

आप विशुद्ध अन्तःकरणसे युक्त पुरुषोंके द्वारा देखे जानेवाले, प्रकाशपुञ्ज परब्रह्म हैं ।

भगवान् विष्णुकी महिमा लिखना असम्भव है । अन्तमें महाकवि दण्डीके शब्दोंमें भगवान्के परमैश्वर्यमय चरणका ध्यान करता हूँ—

ब्रह्माण्डच्छत्रदण्डः शतधृतिभवनाम्भोरुहो नालदण्डः
क्षोणीनौकूपदण्डः क्षरदमरसरित्पट्टिकाकेतुदण्डः ।
ज्योतिश्चक्राक्षदण्डस्त्रिभुवनविजयस्तम्भदण्डोऽङ्घ्रिदण्डः
श्रेयस्त्रैविक्रमस्ते वितरतु विबुधद्वेषिणां कालदण्डः ॥
(दशकुमारचरित, मङ्गलाचरण)

'त्रिविक्रमरूपमें तीनों लोकोंको नापनेके लिये उद्यत श्रीविष्णुका चरण-दण्ड ब्रह्माण्डरूपी छत्रको धारण करनेके लिये डाँड़ीके समान है, ब्रह्माजीके आधारभूत कमलके लिये डंठलके तुल्य है, (डगमगाती हुई) पृथिवीरूपिणी नौकाको बाँध रखनेके लिये खंभेके सदृश है, बहती हुई स्वर्गङ्गारूपिणी पताकाके लिये आधारभूत दण्डके तुल्य है, आकाशमें स्थित ज्योतिश्चक्रकी पहियेके धुरेके समान है और देवशत्रुओं (दानवों) के लिये यमदण्डके तुल्य है । वह आप सबका कल्याण करे ।'

विष्णुभक्तकी लालसा

नाहं वन्दे तव चरणयोर्द्वन्द्वमद्वन्द्वहेतोः कुम्भीपाकं गुरुमपि हरे नारकं नापनेतुम् ।
रम्या रामा मृदुतनुलता नन्दने नापि रन्तुं भावे भावे हृदयभवने भावयेयं भवन्तम् ॥
नास्था धर्मे न वसुनिचये नैव कामोपभोगे यद्भव्यं भवतु भगवन् पूर्वकर्मानुरूपम् ।
एतत्प्रार्थ्यं मम बहु मतं जन्मजन्मान्तरेऽपि त्वत्पादाम्भोरुहयुगगता निश्चला भक्तिरस्तु ॥

हे हरे ! मैं आपके चरणयुगलमें इसलिये नमस्कार नहीं करता कि मेरे द्वन्द्वों (शीतोष्णादि) का नाश हो, कुम्भीपाकादि बड़े-बड़े नरकोंसे मैं बचा रहूँ और नन्दनवनमें कोमलाङ्गी परमसुन्दरी अप्सराओंके साथ रमण करूँ, अपितु इसलिये कि मैं सदा हृदय-मन्दिरमें आपकी ही भावना करता रहूँ । हे भगवन् ! मैं धर्म, धन-संग्रह और कामभोगकी आशा नहीं रखता, पूर्वकर्मानुसार जो कुछ होना हो सो हो जाय; पर मेरी यही बार-बार प्रार्थना है कि जन्म-जन्मान्तरोंमें भी आपके चरणारविन्द-युगलमें मेरी निश्चल भक्ति बनी रहे । (मुकुन्दमाला, ६-७)

श्रीमहाविष्णुका स्वरूप

(लेखक—श्रीरामलाल)

परमात्माका स्वरूप उनकी परम कृपासे ही सहज गम्य और चिन्त्य है । परमात्माकी पहली अथवा आदि अभिव्यक्ति विराट् पुरुष है । श्रीमद्भागवतपुराणमें संकेत है—

'आद्योऽवतारः पुरुषः परस्य ।' (२ । ६ । ४१)

यह विराट् पुरुष ही लोक-लोकान्तर और समस्त विश्वमें व्याप्त परमेश्वर 'महाविष्णु' हैं । परमात्मा विष्णुकी गति बड़ी सूक्ष्म है । वह उन्हींकी इच्छाके अनुरूप होती है । देवताओंके लिये भी उनका तत्त्व समझ पाना कठिन है । ये सर्वलोकमय हैं; तीनों लोक इन्हींके स्वरूप हैं । ये ही सर्व-देवमय हैं, स्वर्गके समस्त देवता इन्हींमें आविष्ट हैं । प्रत्येक वस्तुके तत्त्व, पार—अन्त, इयत्ता अथवा चरम सीमाका चिन्तन करनेवाले लोग इनका पार नहीं पाते; पर ये सम्पूर्ण जगत्का अन्त अच्छी तरह जानते हैं—

कामं तस्य गतिः सूक्ष्मा देवैरपि दुरासदा ।
एष लोकमयो देवो लोकाश्चैतन्मयास्त्रयः ।
एष देवमयश्चैव देवाश्चैतन्मया दिवि ॥
तस्य पारं न पश्यन्ति बहवः पारचिन्तकाः ।
एष पारं परं चैव लोकानां वेद माधवः ॥

(श्रीहरिवंश १ । ४९ । ८—१०)

समस्त जगत् परमेश्वर विष्णुसे उत्पन्न है, उन्हींमें स्थित है, वे ही इसकी स्थिति और लयके कर्ता हैं तथा वे ही यह जगत् भी हैं—

विष्णोः सकाशादुद्भूतं जगत्तत्रैव च स्थितम् ।
स्थितिसंयमकर्तासौ जगतोऽस्य जगच्च सः ॥

(श्रीविष्णुपुराण १ । १ । ३१)

परमात्मा महाविष्णु अपनी ही महिमासे सब लोकों, देवताओं, आत्माओं तथा समस्त भूतोंको व्याप्त करके स्थित हैं; उन्हींमें यह विश्व लीन होता है, उन्हींमें यह सर्वथा ओत-प्रोत और सम्बद्ध है, इससे निरन्तर सम्बन्ध रखकर ही वे व्याप्त और व्यापक होते हैं । जिनसे बढ़कर दूसरा कोई उत्पन्न ही नहीं हुआ, जो सर्वव्यापी होनेके कारण सम्पूर्ण विश्वमें समानरूपसे आविष्ट हैं, व्याप्त हैं, जो प्रजाके पालक हैं और प्रजाके द्वारा जिनकी उपासना होती रहती है, वे भगवान् षोडशकलाविशिष्ट होकर त्रिविध ज्योतिमें व्याप्त रहनेसे 'महाविष्णु' कहलाते हैं । नृसिंहपूर्वतापिन्युपनिषद्में महाविष्णुके स्वरूपके सम्बन्धमें प्रश्नोत्तर है—

'अथ कस्मादुच्यते महाविष्णुमिति यस्मात्स्वमहिम्ना सर्वाँल्लोकान्सर्वान्देवान्सर्वानात्मनः सर्वाणि भूतानि व्याप्नोति व्यापयति''' व्याप्यते व्यापयते यस्मान्न जातः परो अन्योऽस्ति य आविवेश भुवनानि विश्वा प्रजापतिः प्रजया संविदानः, त्रीणि ज्योतींषि सचते सषोडशी तस्मादुच्यते महाविष्णुमिति ।'

(नृसिंहपूर्वतापिन्युपनिषद्, दूसरा भाग)

महाविष्णु ही परम ब्रह्म हैं । वे सत्-असत् दोनोंसे विलक्षण परमधाम—परमपदरूप हैं । सम्पूर्ण चराचर जगत् उनसे अभिन्न उत्पन्न है । वे ही परसे भी परे हैं, उनके सिवा दूसरा कोई परात्पर तत्त्व है ही नहीं—

'परादपि परश्चासौ तस्मान्नास्ति परात्परम् ॥'

(महाभारत, अनुशासन० १२४ । दाक्षिणात्यपाठ)

महाविष्णु सर्वात्मा हैं, वे भक्तानुग्रहविग्रह हैं । 'विष' धातु व्याप्तिवाचक है और 'णु'का अर्थ 'सर्वत्र' है । सर्वव्यापक होनेके नाते ही वे 'महाविष्णु' नामसे उक्त हैं—

विषिश्च व्याप्तिवचनो णुश्च सर्वत्रवाचकः ।
सर्वव्यापी च सर्वात्मा तेन विष्णुः प्रकीर्तितः ॥

(ब्रह्मवैवर्त०, ब्रह्मखण्ड १७ । १६)

श्रीविष्णुसे ही विश्व प्रकट है और वे स्वयं विश्वरूप हैं, इसलिये वे परमेश्वर 'विष्णु' हैं—

'यतो यश्च स्वयं विश्वं स विष्णुः परमेश्वरः ॥'

(श्रीविष्णुपुराण १ । १७ । २२)

महाविष्णुके स्वरूपके चिन्तनसे इस बातका पता चलता है कि उनका 'अरूप' नामक परम रूप है, जो उनके रूप—विश्वरूपसे विलक्षण है । यह सम्पूर्ण चराचर जगत् परब्रह्मस्वरूप महाविष्णुका उन्हींकी शक्तिसे सम्पन्न 'विश्व' नामक रूप है । भगवान् विष्णुका 'अरूप' नामक परम रूप शुद्ध ब्रह्मज्ञान है, जिसमें सम्पूर्ण भेद शान्त हो जाते हैं, जो केवल सत्तामात्र है, वाणीका अविषय है, स्वसंवेद्य है —

प्रत्यस्तमितभेदं यत्सत्तामात्रमगोचरम्।
वचसामात्मसंवेद्यं तज्ज्ञानं ब्रह्मसंज्ञितम्॥
तच्च विष्णोः परं रूपमरूपाख्यमनुत्तमम्।
विश्वस्वरूपवैरूप्यलक्षणं परमात्मनः॥
(श्रीविष्णुपुराण ६। ७। ५३-५४)

यह अमृतरूप योगियोंका ध्येय है और विद्वानोंके द्वारा इसे 'सत्' कहा जाता है। जिसमें सम्पूर्ण शक्तियाँ प्रतिष्ठित हैं, वही भगवान्‌का विश्वरूपसे विलक्षण दूसरा रूप है। इन रूपोंमें अप्रमेय भगवान्‌की जो व्यापक एवं अव्याहत चेष्टा होती है, वह संसारके उपकारके लिये होती है, वह कर्मजन्य नहीं है।

'जगतामुपकाराय न सा कर्मनिमित्तजा।'
(श्रीविष्णुपुराण ६। ७। ७२)

इस सच्चिदानन्दस्वरूपका ग्रहण उनके अनुरूप सच्चिदानन्द—अप्राकृत इन्द्रियोंद्वारा ही हो सकता है; पर संत-महात्माओंका अनुभव है कि भगवान्‌की कृपासे प्राकृतिक चक्षु आदि इन्द्रियोंसे भी उनके स्वरूपका ग्रहण सम्भव है। सनातन गोस्वामीकी उक्ति है—

रूपं सत्यं खलु भगवतः सच्चिदानन्दसान्द्रं
योग्यैर्ग्राह्यं भवति करणैः सच्चिदानन्दरूपम्।
मांसाक्षिभ्यां तदपि घटते तस्य कारुण्यशक्त्या
सद्यो लब्ध्या तदुचितगतेर्दर्शनं स्वेहया वा॥
(बृहद्भागवतामृत २। ३। १७५)

परमेश्वर महाविष्णु—अप्रमेय विष्णुके स्वरूप और रूपके सम्बन्धमें श्रीवराहपुराणके ३१वें अध्यायमें अमित-महत्त्वपूर्ण विवरण उपलब्ध होता है। अपने द्वारा उत्पन्न सृष्टिके विषयमें आदिविष्णु—महाविष्णुको चिन्ता हुई। उन्होंने विचार किया—'मैं अमूर्त हूँ, बिना स्वरूपका हूँ, बिना स्वरूपके कर्म नहीं कर सकता, इसलिये मैं अपने स्वरूपका निर्माण करूँ।' वे जब इस तरह विचार कर रहे थे, सृष्टि उत्पन्न होनेके पहले ही उनका स्वरूप प्रत्यक्ष हो गया, उनके समक्ष स्वरूप आया, उन आदिनारायणने अपने देहमेंसे इस स्वरूपमें तीनों लोकोंको प्रवेश करते देखा। अपने स्वरूपको वरदान देते हुए उन्होंने कहा, 'तुम सर्वज्ञ हो, सबके कर्त्ता हो, समस्त लोक तुमको नमस्कार करते हैं। तुम तीनों लोकोंका पालन करते हो। तुम सनातन सर्वव्यापी विष्णुरूप हो जाओ। तुम सर्वज्ञता प्राप्त करो।' यों कहकर वे निद्राधीन हो गये। उनके निद्राधीन होनेपर उन महाविष्णुके विष्णुरूपकी नाभिसे एक कमल उत्पन्न हुआ, अरण्य और समुद्रसहित सात द्वीपवाली पृथ्वी हुई, उनके रूपका विस्तार अतलसे पातालतक हो गया। उनकी नाभिसे उत्पन्न कमलकर्णिकामेंसे मेरु और ब्रह्मा उत्पन्न हुए। आदिनारायण—महाविष्णुने मूर्तस्वरूप नारायण-विष्णुसे कहा, "अविद्या अथवा अज्ञानके ऊपर विजय पानेके लिये मेरे स्वरूपको तुम पाञ्चजन्य शङ्खके रूपमें धारण करो। अज्ञानके नाशके लिये 'नन्दक' नामक खड्ग धारण करो। हे अच्युत! कालचक्रमय इस भयंकर सुदर्शनचक्रको धारण करो। हे केशव! अधर्मके विनाशके लिये कौमोदकी गदा धारण करो। प्राणियोंकी मातास्वरूपिणी वैजयन्ती माला गलेमें धारण करो। चन्द्र और सूर्यके प्रतीकरूपमें कौस्तुभमणि और श्रीवत्स धारण करो। मारुतगतिवाला गरुड तुम्हारा वाहन है; त्रिलोकीमें गमन करनेवाली लक्ष्मी सदा तुम्हारे आश्रयमें रहेगी, द्वादशी तिथि तुम्हारी प्रिय तिथि होगी।" यह है महाविष्णुके विष्णुरूपका चित्रण।

श्रीनारदपुराणके पूर्वभागके ३३वें अध्यायमें भगवान् महाविष्णुके ध्यानका अत्यन्त मार्मिक वर्णन मिलता है। अव्यक्त-ध्यानका रूप है—सम्पूर्ण विश्व उन्हींका स्वरूप है। वे सर्वत्र व्यापक होनेसे 'विष्णु' कहलाते हैं। समस्त लोकोंके एकमात्र कारण वे ही हैं। उनके नेत्र विकसित कमलदलके समान शोभित हैं, मनोहर कुण्डल उनके कानोंकी शोभा बढ़ाते हैं। उनकी भुजाएँ विशाल हैं। अङ्ग-अङ्गसे उदारता सूचित होती है। सब प्रकारके आभूषण उनके सुन्दर विग्रहकी शोभा बढ़ाते हैं। उन्होंने पीताम्बर धारण किया है। वे दिव्य शक्तिसे सम्पन्न हैं। उन्होंने स्वर्णमय यज्ञोपवीत धारण किया है। कौस्तुभमणिसे उनकी शोभा बढ़ गयी है। उनके गलेमें तुलसीकी माला है, वक्षःस्थलमें श्रीवत्सका चिह्न सुशोभित है। देवता-असुर सभी उनके चरणोंमें नतमस्तक हैं। बारह अंगुल विस्तृत तथा आठ दलोंसे विभूषित अपने हृदय-कमलके आसनपर सर्वव्यापी परात्पर विष्णुके अव्यक्त स्वरूपका ध्यान करना चाहिये। महाविष्णुका दूसरा ध्यान है कि वे प्रणवमें स्थित हैं, अनुपम हैं। परब्रह्म परमात्मा वाच्य हैं और 'प्रणव' उनका वाचक है। भगवान् महाविष्णुके व्यक्त-अव्यक्त ध्यानसे मोक्ष मिलता है, वे प्रसन्न होते हैं तथा सम्पूर्ण मनोरथ सिद्ध हो जाते हैं। भगवान् महा-विष्णुके जो-जो स्वरूप हैं, उनमेंसे किसीका भी ध्यान करनेसे वे संतुष्ट होकर निश्चितरूपसे मोक्ष प्रदान करते हैं—

ध्यानात्पापानि नश्यन्ति ध्यानान्मोक्षं च विन्दति ।
ध्यानात् प्रसीदति हरिर्ध्यानात् सर्वार्थसाधनम् ॥
यद्यद्रूपं महाविष्णोस्तत्तद्ध्यायेत् समाहितम् ।
तेन ध्यानेन तुष्टात्मा हरिर्मोक्षं ददाति वै ॥

(नारदपुराण, पूर्व० ३३ । १३९-१४०)

महाविष्णु ही त्रिपाद्विभूति तथा लीलाके अधीश्वर हैं। त्रिपाद्विभूतिका वर्णन पद्मपुराणके उत्तरखण्डके २२७वें तथा २२८वें अध्यायोंमें उपलब्ध होता है तथा 'त्रिपाद्विभूति-महानारायणोपनिषद्'में बड़े विस्तारसे इसके स्वरूप तथा तत्त्व-पर प्रकाश डाला गया है । नित्य तरुण किशोरविग्रह महाविष्णु लक्ष्मीके साथ परमपद वैकुण्ठधाममें विराजते हैं । यह 'परमव्योम' कहलाता है । इसका तेज अनेक कोटि सूर्य तथा अग्निके समान है । यह अपने ही प्रकाशसे प्रकाशित है । यह अक्षर, शाश्वत तथा नित्य व्याप्त है । मोक्ष, परमपद, अमृत, विष्णुमन्दिर, परमधाम, वैकुण्ठ एवं शाश्वतपद इसके पर्याय हैं—

मोक्षं परं पदं दिव्यममृतं विष्णुमन्दिरम् ।
अक्षरं परमं धाम वैकुण्ठं शाश्वतं पदम् ॥
नित्यं च परमं व्योम सर्वोत्कृष्टं सनातनम् ।
पर्यायवाचकान्यस्य परधाम्नोऽच्युतस्य च ॥

(पद्मपुराण, उत्तर० २२७ । ८०-८१)

महाविष्णु परमव्योममें अपने ऐश्वर्यका उपभोग करते हैं तथा यह सम्पूर्ण जगत् उनकी लीलाके लिये है । लीलाका उपसंहार करनेके बाद वे परमव्योममें नित्य स्थित हो जाते हैं । यह परमव्योम त्रिपाद्विभूतिसे व्याप्त है । भगवद्विभूतिके तीन अंशोंमें उसकी स्थिति है तथा इस लोकमें जो कुछ भी है, वह उनकी पादविभूतिके अन्तर्गत है । परमात्मा महाविष्णुकी त्रिपाद्विभूति नित्य और पादविभूति अनित्य है । परमधाममें भगवान् विष्णुका शुभ विग्रह नित्य है और भगवान्को श्रीदेवी और भूदेवीका नित्य सम्भोग प्राप्त है । त्रिपाद्विभूतिमें असंख्य लोक स्थित हैं । भगवान्के चरणारविन्दरसके भक्त ही उसमें निवास करते हैं । महाविष्णुके इस परमधाममें मध्यमें अयोध्या-नगरी है । यह प्राचीरों और ऊँचे दरवाजोंसे घिरी है । चण्ड आदि द्वारपाल और कुमुद आदि दिक्पाल इसकी रक्षामें तत्पर रहते हैं । पूर्वद्वारपर चण्ड और प्रचण्ड, दक्षिणद्वारपर भद्र और सुभद्र, पश्चिमद्वारपर जय और विजय तथा उत्तरद्वारपर धाता और विधाता नामके द्वारपाल हैं । कुमुद, कुमुदाक्ष, पुण्डरीक, वामन, शङ्कुकर्ण, सर्वनेत्र, सुमुख और सुप्रतिष्ठित उसके दिग्पाल हैं । पुरीके मध्यमें महाविष्णुका अन्तःपुर है । उसके बीचमें एक दिव्य मण्डप है । मण्डपके मध्यभागमें रमणीय सिंहासन है । यह दिव्य योगपीठ है । इसके मध्यमें अष्टदल कमल है । इसकी 'सावित्री' नामक कर्णिकामें इन्दीवरदलश्याम तथा करोड़ों सूर्योंके समान कान्तिवाले परमपुरुष महाविष्णु लक्ष्मीके साथ विराजते हैं—

ईश्वर्या सह देवेशस्तत्रासीनः परः पुमान् ।
इन्दीवरदलश्यामः कोटिसूर्यप्रकाशवान् ॥

(पद्मपुराण, उत्तर० २२८ । २७)

उनके दोनों पार्श्वमें भूदेवी और लीलादेवी बैठी रहती हैं । आठों दिशाओंके अष्टदल कमलके एक एक दलपर विमला, उत्कर्षिणी, ज्ञाना, क्रिया, योगा, प्रह्वी, सत्या तथा ईशाना शक्तियाँ शोभित हैं । ये भगवान्की पटरानियाँ हैं । वे चँवर लेकर दिव्य सेवाके द्वारा महा-विष्णुका आनन्द बढ़ाती हैं । इस त्रिपाद्विभूतिमें जहाँ भगवान् महालक्ष्मीके साथ आनन्दका अनुभव करते हैं, वहाँ संसारकी आश्रयभूता महामाया स्तुति कर प्रकृतिके साथ जगत् सृष्टिका निवेदन करती हैं ।

त्रिपाद्विभूतिके अन्तर्गत वर्णित यह परमधाम—परमव्योम साक्षात् भगवान् महाविष्णुका ही भगवत्स्वरूप है अथवा उनका भगवत्स्वरूप ही परमव्योम है—

तदेव भगवद्वाच्यं स्वरूपं परमात्मनः ।
वाचको भगवच्छब्दस्तस्याद्यस्याक्षयात्मनः ॥

(विष्णुपुराण ६ । ५ । ६९)

महाविष्णुके शाश्वतधामका विस्तारसे चित्रण 'त्रिपाद्-विभूतिमहानारायणोपनिषद्'के आठ अध्यायोंमें उपलब्ध होता है । इस उपनिषद्के आरम्भमें वर्णन है कि परमतत्त्वके रहस्यको जाननेकी इच्छासे श्रीब्रह्माजीने देवताओंके वर्ष-अनुक्रमसे सहस्र वर्षतक तपस्या की । सहस्र देववर्ष बीतनेपर ब्रह्माजीकी अत्यन्त उग्र एवं तीव्र तपस्यासे प्रसन्न होकर भगवान् महाविष्णु प्रकट हुए—

अथ परमतत्त्वरहस्यं जिज्ञासुः परमेष्ठी देवमानेन सहस्रसंवत्सरं तपश्चचार । सहस्रवर्षेऽतीतेऽप्युग्रतीव्रतपसा

प्रसन्नं भगवन्तं महाविष्णुं ब्रह्मा परिपृच्छति भगवन् परमतत्त्वरहस्यं मे ब्रूहीति ।

(त्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषद्, प्रथम अ०)

गुरु-शिष्य-संवादके रूपमें महाविष्णुके स्वरूप, धाम तथा लीला और प्राप्ति अथवा सायुज्यका 'त्रिपाद्विभूति-महानारायणोपनिषद्'में वर्णन उपलब्ध होता है और साथ-ही-साथ उनसे सम्बन्धित अनेकानेक वैकुण्ठोंका चित्रण भी मिलता है । अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड महाविष्णुके करतलगत निरूपित किये गये हैं । उपर्युक्त उपनिषद्के पाँचवें अध्यायमें उल्लेख है कि 'जीवात्मा नारायणसे अभिन्न है । वह जब शरीरका परित्याग करना चाहता है, तब नारायणके पार्षद उसके पास आते हैं । वह कई लोकोंको पारकर शिशुमार-चक्रका भेदन कर तथा वहाँ सर्वाधार सनातन महाविष्णुकी आराधना कर अनेक वैकुण्ठ आदिसे होकर परमानन्द प्राप्त करता है । इस तरह पादविभूति-वैकुण्ठ, विष्वक्सेन-वैकुण्ठ, ब्रह्मविद्या-वैकुण्ठ, तुलसी-वैकुण्ठ, बोधानन्दमय-वैकुण्ठ तथा सुदर्शन-वैकुण्ठको पारकर वह कैवल्यपद प्राप्त करता है ।

ब्रह्मासे महाविष्णुने कहा कि 'मेरा उपासक सबसे उत्कृष्ट हो जाता है । मेरी उपासनासे सब मङ्गल होते हैं, मेरा उपासक सर्वविजयी, सर्ववन्द्य होता है, उसके लिये कुछ भी असाध्य नहीं है ।'' 'मेरा उपासक निरतिशय अद्वैत परमानन्दस्वरूप परब्रह्म हो जाता है'—

महाविष्णुः प्रोवाच मदुपासकः सर्वोत्कृष्टः स भवति । मदुपासनया सर्वमङ्गलानि भवन्ति । मदुपासनया सर्वं जयति । मदुपासकः सर्ववन्द्यो भवति । मदीयोपासकस्यासाध्यं न किंचिदस्ति ।'''''मदुपासकस्तस्मान्निरतिशयाद्वैतपरमानन्दलक्षणं परब्रह्म भवति ।

(त्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषद् ८ । १८)

निस्संदेह भगवान् महाविष्णुकी उपासना सर्वसिद्धिदात्री और परम मङ्गलमयी है । उसका फल सच्चिदानन्दकी परिपूर्णतम अभिव्यक्ति है ।

देवाभिवन्द्य भगवान् विष्णु

(लेखक—श्रीशिवनारायणजी गुप्त)

प्राचीन संस्कृतिका उद्भव वेदोंसे हुआ है । वेदकी चार शृङ्खलाएँ हैं—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद । देवभाषामें वर्णित इनका महत्त्व प्राचीन कालसे ही है । साधारणतया वेद-वाक्योंको 'मन्त्र' और उनके द्रष्टाओंको 'ऋषि' कहा जाता है । गीत, गद्य एवं पद्यकी शैलीमें वर्णित वेद-मन्त्रोंके द्रष्टा अनेक हैं; परंतु विष्णूपासनाकी दृष्टिसे मुख्यतया तीन ही उल्लेखनीय हैं—वसिष्ठ, मेधातिथि और दीर्घतमा ।

भगवान् विष्णु ही पालक हैं । उनकी वन्दना देवताओंने भूरि-भूरि की है । हम तो प्राणीमात्र हैं । वे ही व्यक्ति-गुणोंके मूल हैं । वे संसारके सर्वप्रकाशक हैं, आदिपुरुष हैं । वरुणतनय भगवान् वसिष्ठने भी यही कहा है—'हे विष्णो ! हे देवाधिदेव ! हे लोकेश्वर ! आपकी महिमाका पार न तो अबतक उत्पन्न हुए किसी भी व्यक्तिने पाया है और न वह पा सकेगा जो जन्म ले रहा है'—

'न ते विष्णो जायमानो न जातो देवमहिम्नः परमन्तमाप ।'

(ऋग्वेद ७ । ९९ । २)

'आदिपुरुष सर्वव्यापक परमोत्तम भगवान् विष्णु ही पृथ्वीके रक्षक और धुरंधर हैं' **गां पृथ्वीं पाति रक्षतीति गोपाः ॥**'—ऐसी कण्वनन्दन ब्रह्मर्षि मेधातिथिकी उक्ति है ।

'विष्णुर्गोपा अदाभ्यः । अतो धर्माणि धारयन् ॥'

(ऋग्वेद १ । २२ । १८)

मन्त्रद्रष्टा दीर्घतमाने कहा है—

यः पार्थिवानि विममे रजांसि ।
यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थम् ॥

(ऋग्वेद १ । १५४ । १)

'श्रीविष्णुने इन पार्थिव लोकोंका निर्माण किया है और गगनमण्डलको भी स्वकक्षमें स्थापित किया है ।'

प्रभु विष्णुके अपने चरणोंसे सारे ब्रह्माण्डको छिपा लेने एवं परिक्रमा करनेकी बात भी वेदोंमें कही गयी है। वे सर्वरक्षक हैं। उन महामहिम प्रभुकी महिमा अपार है। वे भक्तोंके प्यारे हैं, सारी यातनाएँ भक्तोंके हितार्थ वरण करते हैं, दयानिधि हैं। उनका हृदय करुणा-विगलित है।

प्रभु विष्णु परम विशुद्ध, परात्पर, सच्चिदानन्दघन, परब्रह्म परमात्मा हैं। इन्हींको वेद-पुराण-षड्दर्शनादि तथा ज्ञानी, भक्त, योगी आदि एक स्वरसे अखण्ड, अनादि, अनन्त, सदैकरस, सर्वव्यापी, निर्गुण, निराकार, स्वयम्प्रकाश, सर्वस्वरूप परमात्मा कहते हैं। वे समस्त सदसद्-वस्तुओंसे विलक्षण, परमज्योतिःस्वरूप, सर्वप्रकाश, सबमें रमण करनेवाले हैं। उनसे कहीं एक परमाणु भी खाली नहीं है। वे सबमें एक समान रम रहे हैं। जो कुछ दृश्य-अदृश्य, सदसत् विश्व तथा असंख्य ब्रह्माण्ड हैं, वे सब श्रीविष्णुके ही स्वरूप हैं—

'सर्वं खल्विदं ब्रह्म नेह नानास्ति किंचन।'

सम्पूर्ण विश्व जिनमें रम रहा है, जिनकी आकृति शान्त है, जो शेषनागकी शय्यापर शयन किये हुए हैं, जिनकी नाभिमें कमल है, जो देवेश्वर और सम्पूर्ण जगत्के आधार हैं, जो आकाशवत् सर्वत्र व्याप्त हैं, चर-अचर, जड-चेतन, अवनि-अम्बरमें भी जिनकी महिमा प्रसरित है, ऐसे विष्णुरूप भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें स्वयं ही कहा है—

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया॥

(४। ६)

'मैं अजन्मा और अविनाशीस्वरूप होते हुए भी तथा समस्त प्राणियोंका ईश्वर होते हुए भी अपनी प्रकृतिको अधीन करके अपनी योगमायासे प्रकट होता हूँ।'

श्रुति-सार-सर्वस्व वे आदिनारायण अपनी योगमायासे जगत्की उत्पत्ति, स्थिति एवं प्रलयके लिये ब्रह्मा-विष्णु-महेश—इन तीन रूपोंमें व्यक्त होते हैं। पर, वैकुण्ठमें वे ही चिन्मय अष्टदल-पद्मपर नित्य आसीन हैं। श्वेतद्वीपमें वे ही 'शशिवर्ण चतुर्भुज' रूपमें विराजमान हैं। क्षीरोदधिमें वे ही 'अनन्तशायी' हैं और रमा-वैकुण्ठमें भगवती लक्ष्मीके साथ उन्हींका नित्यलीलाविलास चलता है।

निखिलसद्गुणगणैकधाम, सर्वरूप, सर्वमय, लीला-विहारी, लक्ष्मीकान्त तो दयाके निधि ही हैं। उनके सारे क्रिया-कलाप दीनों और भक्तोंके हितके लिये हुआ करते हैं। जैसे अरणिकी लकड़ियोंके मन्थनसे अग्नि प्रज्वलित हो जाती है, उसी प्रकार सच्चे हृदयकी प्रेम-पुकारको सुनकर भगवान् चले आते हैं। गजकी आर्त पुकार सुनकर आना तो सर्वविदित ही है। कहा गया है—

कृते यद् ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात्॥

(श्रीमद्भागवत १२। ३। ५२)

'सत्ययुगमें प्रभु विष्णुका ध्यान करनेसे, त्रेतामें यज्ञ-द्वारा यजन करनेसे और द्वापरमें पूजा-परिचर्यासे जिस परमगतिकी प्राप्ति होती है, वही कलिकालमें केवल नाम-संकीर्तनसे मिल जाती है।'

'जो साधक-भक्त ईश्वरकी गूढ़ गतिको जानना चाहते हैं, वे भी केवल हरिकीर्तन और नामस्मरणके प्रभावसे ईश्वरको समझ लेते हैं, इसके प्रभावसे अनेकानेक सिद्धियाँ प्राप्त कर लेते हैं। संसारके दुःखी प्राणी, जो अनेकानेक चिन्ताओंसे व्यग्र हैं, वे भी नामके जपमात्रसे दुःखोंसे छुटकारा पा जाते हैं'—

जाना चहहिं गूढ़ गति जेऊ। नाम जीहँ जपि जानहिं तेऊ।

× × ×

जपहिं नामु जन आरत भारी। मिटहिं कुसंकट होहिं सुखारी॥

(रामचरितमानस १। २२। १½, २½)

नाम-जप ईश्वर-साक्षात्कारके लिये सर्वोपरि साधन है। नामोच्चारसे इष्टदेव परमेश्वरके साक्षात् दर्शन होते हैं—

'स्वाध्यायादिष्टदेवतासम्प्रयोगः।'

(पातञ्जलयोगदर्शन २। ४४)

श्रीविष्णुभगवान्

(लेखक—सर्व-तन्त्र-स्वतन्त्र विद्यामार्तण्ड प्रो० पं० श्रीमाधवाचार्यजी महाराज)

मन्त्रब्राह्मणवेद-वेदान्त-वेदाङ्ग-स्मृति-दर्शन-पुराणादिक ही हिंदू सभ्यताकी जड हैं। श्रीविष्णुभगवान्का महत्त्व इनमें कूट-कूटकर भरा है। मेरा तो यह दृढ़ विश्वास है कि मन्त्रभागकी व्याख्या ब्राह्मण-ग्रन्थ एवं ब्राह्मण-ग्रन्थोंकी व्याख्या वेदाङ्ग एवं इतिहास-पुराण हैं। आज इतिहास-पुराणोंके प्रचारकी अपेक्षा वेद एवं ब्राह्मण-ग्रन्थोंका प्रचार कम है, इस कारण यहाँ हम वेदोंके संदर्भमें श्रीविष्णुभगवान्के विषयमें कुछ कहनेका प्रयत्न करते हैं।

प्रयत्न भी शान्तिमें ही अच्छे होते हैं। शान्तिदाताओंका संकेत अथर्ववेद १९। ९। ६ में किया गया है, मैं उन्हें यहाँ याद करता हूँ—

शं नो मित्रः शं वरुणः शं विष्णुः शं प्रजापतिः।
शं न इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो भवत्वर्यमा॥

'मित्र, वरुण, विष्णुभगवान्, प्रजापति, इन्द्र, बृहस्पति और अर्यमा हम सबको—सभी प्रकारसे, सभी ओरसे सुखी करें।' तैत्तिरीयोपनिषद्के प्रारम्भमें भी इसी प्रकारका मङ्गलाचरण आया है। वेद मङ्गलाचरणमें भी विष्णुभगवान्को छोड़कर नहीं चला है और मङ्गलदाताओंमें उन्हें स्मरण करता है। वास्तवमें भगवान् मङ्गलोंके भी मङ्गल हैं। मैं भी उनके इस पवित्र गुणगानमें मङ्गलकी चाहमें उन्हींको याद करता हूँ।

'विष्णु'का अर्थ—अन्तःप्रविष्ट और व्यापक होता है। यह नियमकी बात है कि जो सर्वव्यापक होता है, वही सर्वत्र प्रविष्ट भी होता है। आकाश व्यापक है, इसी कारण वह घट और मठ दोनोंके भीतर भी विद्यमान है और बाहर भी। किंतु विष्णुभगवान् तो आकाशसे भी बड़े एवं व्यापक हैं। तभी तो शुक्ल यजुर्वेद ५। १९ में कहा गया है—

'दिवो वा विष्ण उत वा पृथिव्या महो वा विष्ण उरोरन्तरिक्षात्।'

'विष्णुभगवान् भूमि और इस विस्तृत अन्तरिक्षसे ही नहीं, द्युलोक (स्वर्ग) से भी बड़े हैं।' इस कारण अन्तरिक्ष आदि लोक भी उनके भीतर आ जाते हैं—वे अन्तरिक्ष आदिमें भी व्याप्त रहते हैं। तभी तो पुराण कहते हैं कि 'जल, थल, पर्वतकी चोटी तथा अग्निकी ज्वालामालाओंसे व्याप्त स्थानमें—सर्वत्र विष्णुभगवान् हैं।' अथर्ववेदके ७। २६-२७वें सूक्तमें कहा गया है—'मैं विष्णुभगवान्की क्या प्रशंसा कर सकता हूँ; क्योंकि सारा संसार उन्हींका बनाया हुआ है।' **'तत् सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्'**—विष्णु-भगवान् जगत्का निर्माण करके फिर जगत्के भीतर भी प्रवेश कर गये।'

'पुरुषसूक्त' तीन वेदोंमें पाया जाता है। इसमें विष्णु-भगवान्से ही सृष्टिका वर्णन किया गया है। इसके अन्तर्गत **'श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यौ'**—इत्यादि प्रतीकवाले मन्त्रसे विष्णु-भगवान्का ही संकेत होता है; क्योंकि श्री और लक्ष्मी विष्णुभगवान्की ही पत्नियाँ हैं।

उपनिषद् अध्यात्मविद्याकी पिटारी हैं। इनमें बड़े अच्छे ढंगसे अध्यात्मविद्याका वर्णन किया गया है। वेदकी प्रत्येक शाखाके भिन्न-भिन्न उपनिषद् हैं। इन्हींमें सीतोपनिषद् भी है। इसमें श्रीदेवी, भूदेवी और नीलादेवीको विष्णु-भगवान्की पत्नियाँ बताया गया है तथा भगवती सीताको इन तीनों देवियोंका मिश्ररूप कहा गया है।

विष्णुलोक—यह आदित्यमण्डलके भीतर है। इसके विषयमें भी शुक्ल यजुर्वेदके छठे अध्यायके तीसरे मन्त्रमें कहा गया है—

या ते धामान्युश्मसि गमध्यै यत्र गावो भूरिशृङ्गा अयासः।
अत्राह तदुरुगायस्य विष्णोः परमं पदमव भाति भूरि॥

'हे भगवन्! हम तेरे उन लोकोंको जाना चाहते हैं, जिन स्थानोंमें तेरी अखण्ड किरणें सदा प्रकाशित रहती हैं। जो धाम सदा प्रकाशित रहता है, उसे सर्वत्र सभी नामोंसे गाये जानेवाले विष्णुभगवान्का परम पद कहते हैं।' हम देखते हैं, वही परमपद आदित्य-मण्डलके रूपमें प्रकाशित हो रहा है।

इसके विषयमें इसी वेदका मन्त्र कहता है—

तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवाꣳसः समिन्धते।
विष्णोर्यत्परमं पदम् ॥

(यजुर्वेद ३४ । ४४)

'इसी आदित्यमण्डलान्तर्गत विष्णुलोककी विष्णु-भगवान्‌के निष्काम, सब ओरसे संयमी, त्यागी उपासक उसे प्राप्त करनेकी इच्छासे सावधानीसे उपासना करते हैं। यही आदित्यमण्डल अथवा इसी आदित्यमण्डलके भीतर भगवान् विष्णुका परमपद है।'

त्रिपाद्विभूति, परमपद, परमव्योम, परमाकाश, अमृत, ब्रह्मलोक, नाक, आनन्दलोक, अयोध्या और वैकुण्ठादिक सब विष्णुभगवान्‌के लोकके ही नाम हैं। ये सभी नाम प्रायः उपनिषदोंमें आ गये हैं।

वैकुण्ठनगर—बारह परकोटों, अनेक गोपुरों एवं अनेकों दीवारोंसे आवृत है। इस नगरमें एक 'आनन्द' नामक स्थान है। इसमें एक ऐसा मण्डप है, जिसमें हजारों रत्नस्तम्भ लगे हुए हैं। यही सभास्थान है। इसीमें भगवान् अनन्त सहस्रमणिमय फणोंसे विराजमान हैं। उनपर एक दिव्य सिंहासन रखा हुआ है। उसपर एक बड़ा भव्य अष्टदल कमल है। उसपर भगवान् सर्वशेषी विराजते हैं।

जैसा कि 'भागवत'में भगवान् विष्णुके स्वरूपका वर्णन मिलता है, प्रायः वैसा ही 'कौषीतकिब्राह्मणोपनिषद्'में मिलता है। वैकुण्ठका विस्तृत वर्णन 'त्रिपाद्विभूतिमहा-नारायणोपनिषद्'में भी आया है। इस लोकके यात्रियोंकी यात्राके बीचमें विरजा नदी आती है। इसे पार करके ही वैकुण्ठमें पहुँचा जाता है। हाँ, सभी वैष्णव विरजा पार करके ही अपने अभीष्ट लोकको जाते हैं। सभीको अर्चिरादिक मार्ग ही ग्रहण करना पड़ता है। सगुणोपासकोंका यही मार्ग है।

भगवान् विष्णु भी भक्तोंकी भावनाके अनुसार सब कुछ हैं; सबके लिये वे विरजाके तटवर्ती अप्राकृतिक सात्त्विक लोकमें विराजते हैं; वहींसे सर्वत्र आते-जाते हैं। भक्तकी भावनाके अनुसार उनका साक्षात्कार भी होता है।

अवतार—श्रीविष्णुभगवान् अवतार भी लेते हैं। केनोपनिषद् ३ । २ का 'यक्ष-प्रकरण' इस बातका प्रमाण है। जब देवोंको अपनी विजयपर गर्व हुआ, तब परब्रह्म परमात्मा प्रकट हुए। यह भगवान्‌का अवतार ही है। यहाँ कहा गया है—'**तद्धैषां विजज्ञौ तेभ्यो ह प्रादुर्बभूव तन्न व्यजानत किमिदं यक्षमिति।**' देवोंके अभिमानको वे जान गये और झट प्रकट हो गये; पर देव न जान सके कि यह कौन है। जब वे सब अपनी-अपनी शक्ति आजमाकर थक गये, तब फिर ब्रह्मविद्याने उन्हें समझाया कि ये पूज्य परब्रह्म परमात्माके ही अवतार हैं। तब देवोंको पता चला कि वे सर्वपूज्य ब्रह्म हैं, और कोई नहीं।

'यज्ञो वै विष्णुः।'—यह 'निरुक्त'का कथन भी सत्य है। 'यज्ञ' भी विष्णुका ही एक नाम है; किंतु पृथ्वी एवं आकाशकी रचना यज्ञका काम नहीं। यह तो विष्णुभगवान्‌का ही कार्य है। अथर्ववेद, सप्तम काण्डके २५-२६वें सूक्त पूरे-के-पूरे विष्णुभगवान्‌के स्तुतिपरक हैं। उनमें सृष्टिकर्ता भी विष्णुभगवान्‌को ही बताया गया है।

त्रिविक्रमावतार—वेद कहते हैं—

'यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा।'

(शुक्ल यजुर्वेद ५ । २०)

'इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्।'

(शु० य० ५ । १५)

विष्णुभगवान्‌ने वामन-अवतार लेकर तीन डगमें सारे लोकों और बलिको नाप लिया। यहाँ दो डगोंमें सारे लोक नापकर जब वे बलिसे बोले—'बता, तीसरा पैर मैं कहाँ रखूँ !' तब बलिने कह दिया—'**पदं तृतीयं कुरु शीर्ष्णि मे निजम्॥**' (भागवत ८ । २२ । २)—तीसरा चरण आप मेरे सिरपर रखकर इसे पवित्र कर दें।' फिर क्या था, झट आपने दृढप्रतिज्ञ सत्यवादी सुकृती बलिके सिरपर तीसरा डग रखकर उसे भी पवित्र कर दिया।

नृसिंह—यह अवतार भी भगवान्‌ने भक्त प्रह्लादको बचानेके लिये धारण किया था। वेद कहता है—

'प्र तद्विष्णुः स्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः।'

(शु० य० ५ । २०)

भगवान् विष्णुने नृसिंह होकर जिस शक्तिका परिचय दिया, वह भी परम स्तुतिके योग्य है। नृसिंहपूर्व तापिनी और उत्तरतापिनी उपनिषद् तथा नृसिंहपुराण भी

भगवान् नृसिंहका वर्णन करते हैं। भागवतादिक ग्रन्थोंमें भी नृसिंहावतारकी कथा आती है।

वराहावतार—यह अवतार लेकर भगवान्‌ने भूमिका उद्धार किया। तभी तो वेदमन्त्र कहता है—

'वराहेण पृथिवी संविदाना सूकराय विजिहीते मृगाय ॥'

(अथर्व० १२ । १ । ४८)

भगवान् वाराहके प्रयत्नसे पृथ्वी मुक्त हो गयी।

भगवान् कृष्ण और बलराम—ये दोनों एक ही तत्त्वके अवतार हैं, गीतगोविन्दकार और भगवान् रामानुजाचार्य दोनों यह मानते हैं। वे अनन्त, जो वैकुण्ठमें सहस्रफणधारी शेषके रूपमें शय्यादिकोंका कार्य करते हैं, बलरामसे भिन्न हैं। वे और ब्रह्मा दोनों सबसे पहले उत्पन्न हुए थे। बलराम कृष्ण—ये दोनों अवतार एक हैं।

विविध कामनाओंके दाता—ये भी विष्णुभगवान् हैं। यह बात भी सर्वप्रथम वेद ही हमें बताता है। महर्षि अथर्वा भूमिके लिये प्रार्थना करते हुए कहते हैं—

यामश्विनावमिमातां विष्णुर्यस्यां विचक्रमे।
इन्द्रो यां चक्र आत्मनेऽनमित्रां शचीपतिः।
सा नो भूमिर्विसृजतां माता पुत्राय मे पयः ॥

(अथर्ववेद १२ । १ । १०)

'जिस भूमिको अश्विनीकुमारोंने सम्मानित किया, विष्णुभगवान्‌ने अपने चरणोंसे नापा, पवित्र किया, शचीपति इन्द्रने जिसमें अपना कोई रिपु नहीं रहने दिया, वह भूमि मुझे इस प्रकार सुख दे, जैसे माँ बच्चेको स्वयं दूध देती है।'

बुद्धिकी याचना—यह भी वैदिक विष्णुभक्त विष्णुभगवान्‌से ही इन शब्दोंमें करते हैं—'**मेधां मे विष्णुर्व्यनक्तु**।—भगवान् विष्णु मेरी मेधाको प्रकाशमें लायें।' दम्पतिके परिपन्थियोंका नाश भी विष्णुभगवान् करते हैं। तभी तो वेदमें कहा गया है—'**प्रति तिष्ठ विराडसि विष्णुरिवेह सरस्वति**। (अथर्व० १४ । २ । १५)—'हे सरस्वति! आप भगवान् विष्णुके समान इन दम्पतिके परिपन्थियोंका मुकाबला कर, इन्हें परास्त करके हटा दें।'

धनदाता—यह भी विष्णुभक्तोंके लिये विष्णुभगवान् होते हैं। अथर्ववेद ७ । १८ । ४ में कहा गया है—

'त्वष्टा विष्णुः प्रजया संरराणो यजमानाय द्रविणं दधातु ॥'

'धनके उद्योगोंको बढ़ानेवाले विष्णुभगवान् यजमानकी प्रजाको प्रसन्न रखते हुए यजमानको प्रभूत धन दें।'

कृत्यादूषण—इसमें भी विष्णुभगवान् इतना कार्य करते हैं कि कृत्या अपने भेजनेवालेको ही साफ कर देती है। अथर्ववेद ८ । ५ । १० में आया है—

अस्मै मणिं वर्म बध्नन्तु देवा इन्द्रो विष्णुः सविता रुद्रो अग्निः। प्रजापतिः परमेष्ठी विराड् वैश्वानर ऋषयश्च सर्वे ॥

''कृत्याग्रहीत इस व्यक्तिको 'प्रतिसर' नामक मणिके रूपमें इन्द्र, विष्णु, सविता, रुद्र, अग्नि, प्रजापति, परमेष्ठी, विराट्, वैश्वानर और सभी ऋषिगण रक्षायन्त्र बाँधें। इसकी कृत्या अभी वापस हुई जाती है।''

इसी प्रकार आत्मरक्षण, शत्रुनिवारण, गर्भाधान तथा सभी कामनाओंके लिये वेदमन्त्रोंद्वारा विष्णुभगवान्‌से प्रार्थना की जाती है।

जिस प्रकार विष्णुभगवान्‌से सृष्टि आदिका वर्णन है, उसी प्रकार अन्य देवों (ब्रह्मा, शिव)से भी सृष्टिका वर्णन है। यह वस्तु व्यासजीकी दृष्टिमें थी, तभी तो उन्होंने सबको एक करनेके लिये ब्रह्मसूत्रमें '**जन्माद्यस्य यतः**।'—यह सूत्र रचा, जिसका अर्थ यह है—''जिससे सृष्टिकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयका वर्णन हो, वही 'ब्रह्म' है।'' इतना ही क्यों, जितने नाम हैं, वे सभी मुख्यवृत्तिसे भगवान्‌का संकेत करते हैं, पीछे किसी औरके कहनेवाले होते हैं। वैदिक नामोंकी तो बात ही क्या है, जब हम पुराणोंके सत्त्वरूप विष्णु, रजोरूप ब्रह्मा और तमोरूप शिवपर दृष्टि डालते हैं, तब उस समय हम सृष्टिकर्तासे 'महाविष्णु'का निर्देश मानते हैं। सब देवोंकी स्त्रियाँ उन देवोंकी शक्तियाँ ही हैं। अतः महालक्ष्मी महाविष्णुरूप ब्रह्मकी चित्-शक्ति हैं। सनातनधर्मकी तात्त्विक एकतामें हमारा मार्गदर्शक 'ब्रह्मसूत्र' ही है।

कालातीत श्रीमहाविष्णु

(लेखक—श्रीजगदीशप्रसादजी चतुर्वेदी, एम्० ए० (दर्शन))

'बृहच्छरीरो विमिमान ऋक्वभिर्युवाकुमारः प्रत्येत्याहवम् ।'
(ऋ० १ । १५५ । ६)

ऋग्वेदमें कालातीत महाविष्णुको 'बृहत् शरीर' और वामन विष्णुको 'युवाकुमार' कहा गया है। पुराणानुसार वामनविष्णुने त्रिलोकात्मक विश्वको तीन चरणोंमें नापा है। देश और कालके त्रेधा विभाग वामनके पदत्रय हैं। श्रीवामन विष्णुके **'ममाग्निशरणार्थाय देहि राजन् पदत्रयम्'**[1] कहनेपर बलिने साश्चर्य कहा कि 'मैं आपको सहस्र डग भूमि दे सकता हूँ।' किंतु संकल्प-जल बलिके हाथमें आते ही वामन विष्णु विराट् महाविष्णुरूपमें प्रकट हो गये। ऐसे हैं कालातीत महाविष्णु, जो त्रेधा विभाजित दिक्-काल-सापेक्ष विश्वको अपनी कालातीत महिमासे पादत्रयमें समाविष्ट कर लेते हैं। उनकी यह महिमा **'अणोरणीयान् महतो महीयान्'** है। इस महिमावाले कालातीत अनन्त पुरुषको भारतीय मनीषियोंने **'नमोऽस्त्वनन्ताय सहस्रमूर्तये'** कहकर अपनी श्रद्धाञ्जलि समर्पित की है।

कालातीत श्रीमहाविष्णुकी चर्चा सनातन है। श्वेताश्वतरोपनिषद् (१ । १) में कुछ ब्रह्मविषयक जिज्ञासु परस्पर चर्चा करते हैं—'हे वेदज्ञ महर्षियो! सृष्टिका कारण क्या ब्रह्म है? ब्रह्म कौन है? हमारा मूल क्या है? हमारे जीवनाधार कौन हैं? हमारी स्थिति किसमें है? तथा हम किस अधिष्ठाताकी व्यवस्थामें जीवित हैं?' प्रमाणाभावमें उन्होंने कालातीत परब्रह्म पुरुषोत्तमका दिव्य साक्षात्कार किया। वे इस प्रकार जान गये कि वह पुरुष **'कालात्मयुक्तान्यधितिष्ठत्येकः'**[2]—अकेला ही कालसे लेकर आत्मातक सम्पूर्ण कारणोंपर शासन करता है।' किंतु उस पुरुषोत्तमको जानता कौन है? महर्षि उत्तर देते हैं—**'वेदाहमेतं पुरुषं'**[3]—इस पुरुषको मैं जानता हूँ'—

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥

(श्वेता० ३ । १४, मुद्गलोपनिषद्वर्णित पुरुषसूक्त १६ तथा तैत्तिरीय आरण्यकान्तर्गतका १७वाँ मन्त्र)

अर्थात् 'उस परम पुरुषके हजारों सिर, हजारों आँखें और हजारों पैर हैं। वह समस्त विश्वको सब ओरसे घेरकर दशाङ्गुल प्रमाणके हृदयदेशमें स्थित है।' महर्षियोंने उसे ध्यानयोगस्थ होकर देखा है, किंतु उसे ही भक्त ध्रुवने गोविन्दके शङ्खके 'क्षण-स्पर्श' द्वारा अच्युत पुरुषरूपमें देखा है—

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
सर्वव्यापी भुवः स्पर्शादत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥[4]

संदर्भ—भावानुसार[5] यहाँ मर्यादित काल, संकर्षणकाल और कालातीत तत्त्वकी कालक्रमातिक्रमसे 'अच्युत' प्रतिष्ठा हुई है। कालक्रमातिक्रमद्वारा महाकालका 'स्पर्शक्षण' 'कालातीत अच्युत' हो जाता है। इससे 'अक्रम' (कालातीत) श्रीमहाविष्णुकी प्रतिष्ठा है—यही ध्रुव-सत्य है। डा० गोपीनाथजीके 'काल-विवेचन'[6] के अनुसार—''क्षण जब स्थायी रूपमें प्रतिष्ठित होता है, तब वहाँ काल नहीं रहता।''' 'क्रमहीन काल'का ही नाम 'क्षण' है। क्षण नित्य और स्वयम्प्रकाश है।'' ध्रुवको भी गोविन्दके शङ्खका 'क्षणस्पर्श' स्वयम्प्रकाशित करता है। उसी दिव्य प्रकाशित स्वरूपद्वारा ध्रुव 'सहस्रशीर्ष-पुरुष' का निर्वचन करते हैं।

ऋग्वेदके 'पुरुषसूक्त' में सहस्रशीर्षा पुरुषके स्वरूपका निरूपण है। 'सहस्र' शब्द श्रीविष्णुपुराण तथा वेदोंकी परिभाषामें 'अनन्त' का वाचक है। वेदोंका सहस्रशीर्षा पुरुष इस ब्रह्माण्डको सब ओरसे व्याप्तकर श्रीमहाविष्णुरूपमें दशगुण महाप्रमाणसे स्थित है। इससे स्पष्ट है कि पूर्ण पुरुष इस ब्रह्माण्डको व्याप्त करते हुए भी बहुत बड़ा है। वह दृश्यमान ब्रह्माण्डसे बाहर भी शेष रहता है। श्रीमहाविष्णुका जो अंश सृष्टिमें व्याप्त है, वही **'वेवेष्टि व्याप्नोति इति विष्णुः'** परिभाषाके अनुसार 'विष्णु'संज्ञक है। विष्णुका एक नाम

---

१. वामन० ३३ । ४९
२. श्वेता० १ । ३
३. श्वेता० ३ । ८
४. श्रीविष्णुपुराण १ । १२ । ५६
५. श्रीविष्णुपुराण १ । १२ । ५१-५२
६. 'कल्याण'का 'परलोक और पुनर्जन्माङ्क' पृष्ठ २१५—२१६
७. योऽनन्तः पठ्यते सिद्धैर्देवो देवर्षिपूजितः ।
स सहस्रशिरा व्यक्तस्वस्तिकामलभूषणः ॥
(श्रीविष्णु० २ । ५ । १४)

'शेषदेव'[८] भी है—इससे ज्ञात होता है कि उनका समस्त अंश सृष्टि-निर्माणमें परिच्छिन्न नहीं होता और वह सृष्टिसे बचा हुआ 'शेष' अंश प्रयुक्तांशसे कहीं अधिक दशगुण महाप्रमाण है। इस 'शेषदेव' में ही अमरत्वकी स्थापना हुई है। 'शेषाङ्गस्थापितामर'[९] है और महाविष्णुके 'कालसंवर'[१०] सार्थक नामसे कालातीत[११] है। पुरुषसूक्तमें इसी भावको इस प्रकार प्रकट किया है—

> एतावानस्य महिमाऽतो ज्यायांश्च पूरुषः।
> पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि॥

यह इतनी बड़ी तो उसकी महिमा है। पुरुष इससे कहीं बड़ा है। सारे भूत इसका एक पाद हैं। अमृतस्वरूप इसके तीन पाद अपने प्रकाशमें हैं। कालातीत 'अनिर्देश्यवपु'[१२] हैं, किंतु महाकाल-सापेक्षक निदर्शन करनेपर उस पुरुषका दिक्-काल-सापेक्ष मृत्यु-मर्यादित भाग $\frac{१}{४}$ है। शेष $\frac{३}{४}$ भाग कालातीत अमृत-अंश द्युलोकमें है। परोक्षरूपसे यह चतुर्व्यूहात्मक भगवत्स्वरूपोंका निर्वचन है। प्रथम स्वरूप वासुदेव अनन्त सबको व्याप्त करके भी सबसे परे 'कालातीत' हैं। द्वितीय संकर्षणस्वरूपसे 'महाकाल' व्यक्त होता है। तृतीय प्रद्युम्न-स्वरूप कालातीत होनेसे महिमाका है। इसकी कालातीत नित्यलोकोंमें प्रतिष्ठा है। चतुर्थ दुर्निवारस्वरूप अनिरुद्धका है। यही सृष्टिका कारण है। ये चतुर्व्यूह संख्यात्मक होनेसे कालातीत महिमाके बोधक हैं। अतः अनिरुद्धका स्वरूप दुर्निवार और दुरतिक्रम कालका है। प्रधान और पुरुषका संयुक्त-वियुक्तात्मक रूपान्तर ही 'काल' है[१३]। इस कालका अतिक्रमण देवादि नहीं कर पाते। कालके बिना ब्रह्मा, प्रजापति एवं अन्य समस्त प्राणी भी सृष्टि-रचना नहीं कर सकते।[१४] अतः यह अनिरुद्ध-रूप काल ही सृष्टिका आदिकारण है। ये अकेले सृष्टि-स्थिति-संहारके दृष्टिकोणसे कालावधिवाले ब्रह्मा, विष्णु और शिव-संज्ञाओंको धारण कर लेते हैं।[१५] इस प्रकार कालातीत श्रीमहाविष्णुके महिमावाचक 'ब्रह्मकोटिजगत्स्रष्टा'[१६], 'शम्भुकोटिमहेश्वर'[१७] और 'कोटिब्रह्माण्डविग्रह'[१८] आदि अनन्त नाम सार्थक हैं।

श्रीमहाविष्णुके अनन्त लोम-विवर-कोटरोंमें परमाणुवत् अनन्त ब्रह्माण्ड स्थित हैं—'ब्रह्माण्डाः परमाणवः।'[१९]

> महाविष्णोर्लोमकूपोद्भवे तोये सुनिर्मले॥
> ब्रह्माण्डोऽस्ति यथा नौका भवतोये च कृत्रिमा।
> (ब्रह्मवैवर्त०, श्रीकृष्णजन्म० ४७। १०७-१०८)

'भगवान् श्रीमहाविष्णुके रोमकूपसे निकलनेवाले 'सुनिर्मल जलमें ब्रह्माण्डकी स्थिति उसी तरह है, जैसी सांसारिक नदी-नद आदिके जलमें कृत्रिम नौकाकी हुआ करती है, ब्रिटिश भौतिक-विज्ञानवेत्ता सर जेम्स जीन्सके अनुसार—'सापेक्षताके सिद्धान्तद्वारा हमारे समक्ष प्रस्तुत नया ब्रह्माण्ड साधारण और सुपरिचित वस्तुओंकी दृष्टिसे एक साबुनका बुलबुला है।' स्पष्ट है—श्रीमहाविष्णुके एक रोमकूपमें स्थित अनन्त ब्रह्माण्डोंमेंसे आधुनिक विज्ञानप्रतिपादित 'एक साबुनका बुलबुला' संज्ञा धारण करनेवाला केवल एक सीमित ब्रह्माण्ड है। इस सीमित ब्रह्माण्डका वर्णन माउंट विल्सन-वेधशालाके अन्तरिक्षविज्ञानवेत्ता एडविन हब्लने इस प्रकार किया है—'इस ब्रह्माण्डका अर्द्धव्यास ३५० अरब प्रकाशवर्ष (अथवा २,१०,००,००,००,००,००,००,००,००,००,००० मील) है। सूर्यकी एक किरण यदि प्रति सेकंड १,८६,००० मीलकी गतिसे ब्रह्माण्डकी परिक्रमा करे तो फिर उसे अपने उसी स्थानपर पहुँचनेमें २० अरब सांसारिक वर्षसे कुछ अधिक ही समय लग जायगा।' किंतु यह ब्रह्माण्ड श्रीआइन्स्टीनके अनुसार प्रतिक्षण क्षीयमाण है—'ब्रह्माण्डीय परिवर्तन केवल एक दिशामें होता प्रतीत होता है। प्रकृतिके दृश्य अथवा अदृश्य, सभी तत्त्व—चाहे वे परमाणुमें हों या बाह्य आकाशमें—यह व्यक्त करते हैं कि ब्रह्माण्डका सारतत्त्व और शक्ति अथाह शून्यमें बाष्पकी भाँति अव्यवस्थित ढंगसे विकीर्ण की जा रही है। सूर्यका ताप घट रहा है। तारे अंगारोंकी भाँति बुझ रहे हैं। पदार्थ प्रकाश-किरण बनता जा रहा है और शक्ति शून्य दिक्में खोती जा रही है।'[२०] आइन्स्टीनका 'शून्य' दुर्निवार और

---

८. ९. १०. ११. और १२. (पद्मपुराण, उत्तरखण्डान्तर्गत श्रीविष्णुसहस्रनामस्तोत्रमें क्रमशः २४८, २४३, १९३, १३२, १५२)।

१३. श्रीविष्णुपुराण १। २। २४

१४. वही, १। २२। ३६

१५. वही, १। ३। ६-७

१६. १७. और १८. क्रमशः पद्मपुराण, उत्तरखण्ड, श्रीविष्णुसहस्रनामस्तोत्रमें १५५, १५५, १५६

१९. अध्यात्मरामायण १। ३। २५

२०. डा० आइन्स्टीन और ब्रह्माण्ड, पृ० १०९

दुरतिक्रम कालका—श्रीविष्णु-अनिरुद्धका स्वरूप है । वैज्ञानिकोंका निराशाजनक 'शून्य' भारतीय दार्शनिकोंके 'महाकाल' की अपेक्षा रखता है ।'[२१]

वैज्ञानिकोंके अनुसार ब्रह्माण्डका समस्त पदार्थ प्रकाश-किरण बनता जा रहा है । भारतीय विज्ञान (वेद)की मैत्रायणी शाखाके अनुसार भी **'अग्निर्वै मृत्युः—अग्नि मृत्यु है ।'** वैज्ञानिकोंके अनुसार यह ब्रह्माण्ड ताप-मृत्युकी ओर या उनकी पारिभाषिक भाषामें उष्णताके अधिकतम क्षयमान (Maximum Entropy) की ओर बढ़ रहा है । कुछ अरब वर्षोंके बाद उनके ब्रह्माण्डकी सभी वर्तमान कार्य-प्रणालियाँ रुक जायँगी—अर्थात् प्रलय हो जायगा । फिर न प्रकाशका अस्तित्व रहेगा, न जीवनका और न उष्णताका; केवल नित्य और अखण्डनीय स्थिरता रह जायगी । स्वयं काल भी समाप्त हो जायगा; क्योंकि वैज्ञानिकोंका उष्णताका क्षयमान (विशकलन) ही उनका 'प्रलय-काल' है, यह ध्यान देनेयोग्य है । इस प्रलय-कालको किसी 'क्षण-काल' की अपेक्षा है । कालातीत भगवान् श्रीमहाविष्णु 'कालकोटिदुरासद' हैं—करोड़ों कालोंके लिये दुर्धर्ष हैं । वैज्ञानिक प्रलय और श्रीविष्णुपुराण (६ । ३ । २) के द्वारा प्रतिपादित प्रलयमें महान् अन्तर हैं—'कल्पान्तमें ब्राह्म-प्रलय होता है, वह नैमित्तिक है । मोक्ष-प्रलय है आत्यन्तिक और प्राकृत-प्रलय दो परार्द्धके अन्तमें होता है ।' बेचारे वैज्ञानिक निराशा-मृत्युके बन्धनसे छूटनेके लिये एकमात्र कालातीत श्रीमहाविष्णुकी शरणमें जायँ; क्योंकि यहीं उनकी 'संशयात्मा'को समाधानका आश्वासन है । पूर्व-विवरणानुसार 'काल'का विशकलन महाकालद्वारा हो जाता है । 'महाकाल' श्रीमहाविष्णुकी स्वाभाविक कालातीत अमृत-महिमा है । यहाँ 'स्वभाव'का अर्थ भी भगवान् शंकराचार्यके अनुसार 'काल'-को ले लें तो भी कालातीत अमृत-महिमाका खण्डन सम्भाव्य न होगा । अब वैज्ञानिकोंद्वारा प्रतिपादित शेष 'नित्य अखण्डनीय स्थिरता'पर विचार करना अपेक्षित होगा । श्रीमधुसूदन झाके अनुसार गति-स्वभाव 'पदार्थ-मृत्यु' है और स्थिति-स्वभाव 'पदार्थ-अमृत' है । अतः अमृत-वाचक नामसे भी श्रीविष्णुकी प्रतिष्ठा होती है । श्रीमहाविष्णु **'सर्वाक्षोभ्यो मृत्यु-मृत्युः कालमृत्युनिवर्तकः'** हैं । इसलिये वैष्णवोंको कालजन्य निराशाका कोई भय नहीं है—वे अभयपदकी उपासना करते हैं ।

संख्यात्मक, प्रतीकात्मक गणित और उसकी ज्यामितिसे विराट् कालातीत श्रीमहाविष्णुको बाँधना अथवा उसके लिये प्रयास करना निष्फल है । हमारे सम्पूर्ण विचार कान्टके अनुसार देशकालसापेक्ष हैं । गणितज्ञोंकी गणना-शैली प्रतीकात्मक है—इसी प्रकार अनन्त विष्णुके शङ्ख-चक्रादि भी उनकी कालातीतता प्रकट करनेके प्रतीक हैं । स्थूलसे सूक्ष्मका बोध करना आधुनिक मनोविज्ञानाधारित शिक्षा-सूत्र है, किंतु यह भारतीय विद्वानोंको सनातनकालसे ज्ञात है । यही कारण है कि हम विराट् विष्णुका ध्यान स्थूल चतुर्भुज-मूर्तिमें करते हैं । गणितज्ञोंद्वारा इससे अधिक वैज्ञानिक अभिव्यक्तिका माध्यम प्राप्त होना सम्भाव्य नहीं है ।

नारायणस्मरणविहीन मनुष्य ही नीच है

केचिद् वदन्ति धनहीनजनो जघन्यः
केचिद् वदन्ति गुणहीनजनो जघन्यः ।
व्यासो वदत्यखिलवेदविशेषविज्ञो
नारायणस्मरणहीनजनो जघन्यः ॥

(श्रीधरस्य व्रजविहारात्)

कोई तो धनहीन मनुष्यको नीच कहते हैं और कोई गुणहीनको नीच बतलाते हैं, किंतु सम्पूर्ण वेदोंके विशेष ज्ञाता श्रीवेदव्यासजी तो हरिस्मरणहीन पुरुषको ही नीच कहते हैं ।

२१. लेखकका 'कल्याण'के 'परलोक और पुनर्जन्माङ्क' में पृ० २२५ पर प्रकाशित 'कालातीत भगवान् महाकाल' लेख ।

श्रीविष्णुभगवान्

(लेखक—डॉ० श्रीशिवशंकरजी अवस्थी)

श्रीभूमी यस्य देव्यौ सकलमुनिवराः किंकरा रक्ष्यमण्डं
सृष्ट्याद्याः शिल्पलीलाः कमलजविबुधाः पुत्रपौत्रादयोऽपि।
वैकुण्ठं नाम धाम स्तुतिरुपनिषदः शासनं शास्त्रमार्गः
सोऽयं वैकुण्ठनाथः श्रियमतिशयिनीं वैष्णवीं नो ददातु ॥

शरीरं वैकुण्ठं हृदयनलिनं वाससदनं
मनोवृत्तिस्ताक्ष्यों मतिरियमथो सागरसुता।
विहारस्तेऽवस्थात्रितयमसवः पार्षदगणो
न पश्यत्यज्ञा त्वामिह बहिरहो याति जनता ॥'

वेदान्तर्गत 'पुरुषसूक्त'के पुरुषतत्त्वको भगवान् विष्णुके रूपमें देखा जाता है। 'ऋग्विधान'में शौनकने लिखा है—

'पुरुषस्य हरेः सूक्तं सर्वपापप्रणाशनम्।'

'पुरुषसूक्त' नामक भगवान् श्रीहरिकी स्तुति समस्त पापोंका समूल नाश करनेवाली है।

पद्मपुराणमें कहा गया है—

भगवानिति शब्दोऽयं तथा पुरुष इत्यपि।
निरुपाधी च वर्तेते वासुदेवे सनातने ॥

हरिवंश, स्कन्द, विष्णु एवं नरसिंहादि पुराणोंमें भी इसी प्रकारके वचन मिलते हैं। यथा—

गोवर्धनाद्रिधरणान्नाथ नन्दसुतोऽपि सन्।
पुरुषस्यांशभूतं त्वां वयं निरणयिष्महि ॥
(हरिवंशपुराण)

यथा पुरुषशब्दोऽयं वासुदेवेऽवतिष्ठते।
तथा शंकरशब्दोऽयं महादेवे व्यवस्थितः ॥
(स्कन्दपुराण)

'देवतिर्यङ्मनुष्येषु पुंनामा भगवान् हरिः।'
(विष्णुपुराण)

'स एष वासुदेवोऽयं पुरुषः प्रोच्यते बुधैः।'
(नरसिंहपुराण)

महाकवि कालिदासने भी लिखा है—

नाभिप्ररूढाम्बुरुहासनेन
संस्तूयमानः प्रथमेन धात्रा।
अमुं युगान्तोचितयोगनिद्रः
संहृत्य लोकान् पुरुषोऽधिशेते।
(रघुवंश १३। ६)

'समस्त लोकोंको समेटकर, कल्पान्तमें अवसरोचित योग-निद्राको धारण करके, नाभि-कमलके आसनपर विराजमान प्रथम ब्रह्माके द्वारा स्तूयमान परम पुरुष भगवान् विष्णु इसी समुद्रमें शयन करते हैं।'

'पुरुष' शब्दका प्रयोग शिव[3] और ब्रह्मा[2]के लिये भी हुआ है। जिनकी बुद्धि निर्मल—अभिनिवेशशून्य है, वे विज्ञजन 'उपासकानां सिद्ध्यर्थं ब्रह्मणो रूपकल्पना' तथा 'एका मूर्तिस्त्रयो देवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः' की दृष्टिसे दुराग्रहमें नहीं पड़ते।

पुरुषसूक्तमें पुरुषके तीन रूपोंकी चर्चा स्पष्टरूपसे मिलती है—१–त्रिपात् पुरुष, २–एकपात् पुरुष, ३–अधि-पुरुष। त्रिपात् पुरुष लोकोत्तीर्ण परमपुरुष है। इसे दो प्रकारसे समझा जाता है—एक तो यह कि वह निर्गुण-निर्विशेष परब्रह्म है। अथवा वह नित्यलीलाविभूतिका आश्रय है, जहाँ अतर्क्य, अव्यपदेश्य गोलोकादिसम्बन्धी चिरन्तन

---

१. श्री और भूमि जिनकी देवियाँ हैं, समस्त मुनिवर किंकर, ब्रह्माण्ड रक्षणीय, सृष्ट्यादि शिल्पलीलाएँ तथा ब्रह्मादिदेव पुत्र-पौत्रादि हैं, जिनके धामका नाम 'वैकुण्ठ' है, उपनिषद् स्तुति एवं शास्त्रमार्ग ही आज्ञा है, वे वैकुण्ठनाथ हमलोगोंको उत्कृष्ट वैष्णवी सम्पत्ति प्रदान करें।

यह मानव-शरीर वैकुण्ठ है, हृदय-पुण्डरीक वासगृह, मनोरथ गरुड और यह बुद्धि ही सागरसुता लक्ष्मी है; जाग्रत् आदि तीनों अवस्थाएँ आपका विहार है, प्राण ही पार्षदगण हैं; किंतु यह अज्ञ जनता आपको यहाँ नहीं देखती और बाहर ही भटकती रहती है।

२. मुख्य ब्रह्मा। मनु, मरीचि आदि १० ब्रह्मा प्रसिद्ध हैं अथवा प्रथम ब्रह्मा विरिञ्चि, द्वितीय पद्मभू, तृतीय स्वयम्भू आदि— (द्र० स्क० पु०, प्रभा० ख०, अ० १५)

३. तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि। ४. स वै शरीरी प्रथमः स वै पुरुष उच्यते।

लीला चलती रहती है। ऋग्वेद मण्डल १, सू० १५४, मन्त्र ५में लिखा है—

तदस्य प्रियमभि पाथो अश्यां
नरो यत्र देवयवो मदन्ति।
उरुक्रमस्य स हि बन्धुरित्था
विष्णोः पदे परमे मध्व उत्सः॥

'इस महाविष्णुके प्रसिद्ध एवं सर्वप्रिय अविनाशी लोकको हम प्राप्त करें, जहाँ विष्णुसायुज्य प्राप्त करनेवाले लोग तृप्तिका अनुभव करते हैं; महात्माओंके द्वारा प्राप्य अथवा अपने एक पादसे अनन्त जगदण्डोंको आक्रान्त करनेवाले व्यापक महाविष्णुके परमपदमें परानन्दका स्रोत विद्यमान है। क्षुधा, तृष्णा, जरा, मरण एवं पुनरावृत्तिसे रहित इस मधुर रससे वह हमें बाँध देता है।'

एकपात् पुरुष 'एकपाद नारायण' या 'महाविष्णु'के रूपमें ख्यात है। यह महाविराट् पुरुष है। इसके रोम-रोममें अनन्त, अगणित ब्रह्माण्ड परमाणुके सदृश गतिशील रहते हैं। इसीको लक्ष्य करके एक ब्रह्माण्डके अधिष्ठाता ब्रह्माने कहा था—

क्वाहं तमोमहदहंखचराग्निवार्भू-
संवेष्टिताण्डघटसप्तवितस्तिकायः।
क्वेदृग्विधाविगणिताण्डपराणुचर्या-
वाताध्वरोमविवरस्य च ते महित्वम्॥
(श्रीमद्भा० १०। १४। ११)

'कहाँ यह मेरा प्रकृति, महत्, अहंकार, आकाश, वायु, अग्नि, जल और भूसे घिरा ब्रह्माण्डरूप शरीर अथवा अपने प्रमाणसे सात बित्ते (साढे तीन हाथ)का यह ब्रह्मारूप शरीर और कहाँ इस प्रकारके अगणित ब्रह्माण्डरूपी परमाणुओंसे व्याप्त वाताध्वसदृश रोम-विवरोंवाले आपकी महिमा।'

देवीभागवत (९। ३। ३—५½) में भी कहा है—

पित्रा मात्रा परित्यक्तो जलमध्ये निराश्रयः।
ब्रह्माण्डासंख्यनाथो यो ददर्शोर्ध्वमनाथवत्॥
स्थूलात्स्थूलतमः सोऽपि नाम्ना देवो महाविराट्।
परमाणुर्यथा सूक्ष्मात् परः स्थूलात्तथाप्यसौ॥
तेजसां षोडशांशोऽयं कृष्णस्य परमात्मनः।
आधारोऽसंख्यविश्वानां महाविष्णुः सुरेश्वरः॥
प्रत्येकं रोमकूपेषु विश्वानि निखिलानि च।

"माता-पिता उसे त्याग चुके थे। वह निराश्रय होकर अंदर समय व्यतीत कर रहा था। जो असंख्य ब्रह्माण्डका स्वामी है, उसीने अनाथकी भाँति, आश्रय पानेकी इच्छासे ऊपरकी ओर दृष्टि दौड़ायी। उसकी आकृति स्थूलसे भी स्थूल थी। अतएव उसका नाम 'महाविराट्' पड़ा। जैसे परमाणु अत्यन्त सूक्ष्मतम होता है, वैसे ही वह अत्यन्त स्थूलतम था। वह बालक तेजमें परमात्मा श्रीकृष्णके सोलहवें अंशकी बराबरी कर रहा था। वह महान् विराट् बालक सम्पूर्ण विश्वका आधार है। वही 'महाविष्णु' कहलाता है। इसके प्रत्येक रोमकूपमें विश्व ब्रह्माण्ड हैं।"

इस महाविराट् पुरुष या महाविष्णुसे विराट् अर्थात् प्रकृति—'विराट् प्रकृतिर्बहिरिति समाननामानीति योगरत्ने रङ्गरामानुजः'—एवं उसका अधिष्ठाता पुरुष (अधिपुरुष) उत्पन्न होता है। इसकी भी संज्ञा 'विराट्पुरुष' या वैराजपुरुष है। यही 'सप्तवितस्तिकाय' या 'दशाङ्गुलपुरुष' है। इसका अपर नाम 'लोकपुरुष' भी है। इसके अन्य रूप भी ख्यात हैं—१. कालपुरुष, २. अग्निपुरुष, ३. प्रणवपुरुष और ४. यज्ञपुरुष।

यह अधिपुरुष गुणाभिमानी पुरुष है। रजोगुणके प्राधान्यसे इसे 'ब्रह्मा', सत्त्वगुणके प्राधान्यसे 'विष्णु' एवं तमोगुणकी अधिकतासे 'शिव'के नामसे कहा जाता है। जिस प्रकार एक अकेला गुण कभी नहीं रह सकता, उसी प्रकार ब्रह्मा, विष्णु और शिवके एकाकीपनकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। इसीलिये 'एका मूर्तिस्त्रयो देवाः' कहा जाता है। ऐसी स्थितिमें किसीको बड़ा या छोटा कहना अपराध ही है। एक ही भगवान् महाविष्णु सृष्टि, स्थिति और संहारके लिये ब्रह्मा, विष्णु और शिवका रूप धारण करते हैं—

---

५. ब्रह्माण्डरूपी पुरमें वर्तमान रहनेके कारण विष्णुभगवान्‌की 'पुरुष' संज्ञा है—'विश्वसखनि चिदात्मनीश्वरे पूरणात्पुरुषतामुपेयुषि'। प्राणियोंके शरीर भी पुर हैं—'प्राणिचक्रमखिलं च यस्य पूः।'—(चिद्गगनचन्द्रिका) कल्पान्तमें न ब्रह्माण्ड रहता है और न प्राणि-शरीर, तब भी उसे 'परमपुरुष' कहते हैं। उस दशामें भी ब्रह्म अपनी-अपनी शक्ति (स्वधा—आनीदवातं स्वधया तदेकम्) से समालिङ्गित रहता है। यही शक्ति पुर है—

मनो मतिर्महान् ब्रह्मा पूर्बुद्धिः ख्यातिरीश्वरः।
प्रज्ञा संविच्चितिश्चैव स्मृतिश्च परिपाठ्यते॥

सृष्टिस्थित्यन्तकरणीं ब्रह्मविष्णुशिवात्मिकाम् ।
स संज्ञां याति भगवानेक एव जनार्दनः ॥
(विष्णुपुराण १ । २ । ६६)

इस प्रकार भगवान् विष्णुके तीन रूप स्पष्ट हुए। एक त्रिपाद्विभूति नारायण, दूसरे एकपाद नारायण या महाविष्णु और तीसरे त्रिमूर्त्यन्तर्गत विष्णु। शेषशायी विष्णु ही त्रिमूर्त्यन्तर्गत विष्णु हैं—'समुद्रे शयानश्च विष्णुस्त्रिमूर्त्यन्तर्गत इति विष्णूत्पत्त्यध्यायवचनजातेनाप्यवगतम्—' (अप्पय्यदीक्षितकी आनन्दलहरी, श्लोक ४२ की चन्द्रिका व्याख्या)

'शेष' नामक तत्त्वको महाविष्णु समझना चाहिये, जिनके रोम-विवरोंमें पृथ्वी आदि दसगुने सात आवरणोंसे घिरे हुए कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड अणुके समान घूमते रहते हैं। इसीलिये उनकी एक संज्ञा 'अनन्त' भी है—

क्षित्यादिभिरेष किलावृतः
सप्तभिर्दशगुणोत्तरैराण्डकोशः ।
यत्र पतत्यणुकल्पः
सहाण्डकोटिकोटिभिस्तदनन्तः ॥
(श्रीमद्भा० ६ । १६ । ३७)

"यह ब्रह्माण्डकोष, जो पृथ्वी आदि एक-से-एक दसगुने सात आवरणोंसे घिरा हुआ है, अपने ही समान दूसरे करोड़ों ब्रह्माण्डोंके सहित आपमें एक परमाणुके समान घूमता रहता है और फिर भी उसे आपकी सीमाका पता नहीं है। इसलिये आप 'अनन्त' हैं।"

यह 'अनन्त' नामक तत्त्व भी जिसके एक अंशमें विराजमान रहता है, वही क्षीरसागर या त्रिपाद्विभूति-तत्त्व है—'एतावानस्य महिमाऽतो ज्यायांश्च पूरुषः।'

द्वादश आदित्योंमें एक आदित्यका नाम भी 'विष्णु' है—'त्रीणि पदा विचक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः', 'इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्', 'विष्णुरुरुगायो विचक्रमे महीं दिवं पृथिवीमन्तरिक्षम्', आदि वैदिक मन्त्रोंके आधारपर कुछ लोग सूर्यको ही विष्णु मानते हैं। आचार्य शाकपूणिका मत है कि सूर्य अपनी रश्मियोंसे पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्युलोकको व्याप्त करते हैं, अथवा अग्निरूपसे पृथ्वीको, विद्युत्‌रूपसे अन्तरिक्षको और आदित्यरूपसे द्युलोकको आक्रान्त करना उनका त्रेधा विचक्रमण है। प्रातः उदयगिरिमें, मध्याह्नमें अन्तरिक्षमें एवं सायंकाल अस्ताचलमें सूर्यनारायण अपने पैर रखते हैं—यह आचार्य और्णनाभका मत है। सूर्य ही वामन हैं, जो अपनी किरणोंसे तीनों लोकोंको नापते हैं।

वस्तुतः 'तत्त्वं नारायणः परः', 'महस्ते विष्णो सुमतिं भजामहे', 'बृहत्ते विष्णो मयि शर्म भद्रम्,' 'नमो विष्णवे बृहते करोमि' इत्यादि वैदिक मन्त्रोंमें परत्व, महत्त्व, बृहत्त्व आदि विशेषणोंसे महाविष्णुकी स्वीकृति स्पष्ट है।

भगवान् विष्णुका एक नाम 'वैकुण्ठ' है। उनके धामको भी 'वैकुण्ठ' कहते हैं। नामकी अधोलिखित व्युत्पत्तियाँ मिलती हैं—

१. विकुण्ठायाः अपत्यं पुमान् वैकुण्ठः।

२. कुण्ठति अनया कुण्ठा माया, विविधा कुण्ठा माया अस्येति वैकुण्ठः।

"जिससे जगत् मोहित होता है, वह माया ही 'कुण्ठा' है, विविध मायाओंके स्वामी 'वैकुण्ठ' हैं।"

३. विविधा कुण्ठा गतेः प्रतिहतिः तस्याः कर्ता इति वैकुण्ठः। जगदारम्भे विशिष्टानि भूतानि परस्परं संश्लेषयन् तेषां गतिं प्रत्यबध्नात् इति वा वैकुण्ठः।

"गतिके अवरोधको 'कुण्ठा' कहते हैं। भगवान् सृष्टिके आरम्भमें विविध भूतोंका मेल कराकर उनका गत्यवरोध कर देते हैं, अतः वे 'वैकुण्ठ' हैं।"

४. कुण्ठं जडं च विश्वौघं विशिष्टं च करोति या।
विकुण्ठां प्रकृतिं वेदाश्चत्वारश्च वदन्ति ताम् ॥
गुणाश्रयेण भगवान् तस्यां जातः स्वसृष्टये।
परिपूर्णतमं तेन वैकुण्ठं च विदुर्बुधाः ॥

"जड विश्व-प्रपञ्चको जो विशिष्ट बनाती है, उस प्रकृतिको वेद 'विकुण्ठा' कहते हैं। गुणोंका आश्रय लेकर भगवान् सृष्टि-रचनाके लिये इस विकुण्ठामें उत्पन्न होते हैं, अतः विद्वज्जन उन्हें 'वैकुण्ठ' कहते हैं।"

कुण्ठा अर्थात् जडता, आलस्य, अज्ञान या मायाका जहाँ सर्वथा अभाव है, उस धामको 'वैकुण्ठ' कहनेमें कोई असंगति नहीं। अथवा भगवान् वैकुण्ठके स्वरूपभूत धामको भी 'वैकुण्ठ' कहते हैं।

भगवान् अपने हाथोंमें अविद्या-विजयरूप शङ्ख, अज्ञान-च्छेदनार्थ खड्ग, घोर कालचक्ररूप चक्र, अधर्मराज्यके

विनाशार्थ गदा और यज्ञाङ्गभूत मुसल धारण करते हैं। उनके कण्ठमें मायारूपी भूतमाला, उरोदेशमें चन्द्र-सूर्यरूपी श्रीवत्स और कौस्तुभ सुशोभित रहते हैं। मारुत उनकी गति है, वही गरुड़ है; त्रैलोक्यगामिनी लक्ष्मीदेवी उनकी प्रिया हैं—

अविद्याविजयं चेमं शङ्खरूपेण धारय।
अज्ञानच्छेदनार्थाय खड्गस्तेऽस्तु सदा करे॥
कालचक्रमिदं घोरं चक्रवद्धारयाच्युत।
अधर्मराजघातार्थं गदां धारय केशव॥
भूपत्वमेतत्परमं यज्ञाङ्गं मुसलं तथा।
मालेयं भूतमाला ते कण्ठे तिष्ठतु सर्वदा॥
श्रीवत्सकौस्तुभौ चेमौ चन्द्रादित्यौ विधारय।
मारुतस्ते गतिर्वीर गरुत्मान् स च कीर्तितः॥
त्रैलोक्यगामिनी देवी लक्ष्मीस्तेऽस्तु सदा प्रिया॥

(वराहपुराण ३१। १५—१८)

जिनकी शक्तिसे भगवान् विष्णु शक्तिमान् हैं, जो उनकी आधार, आसन, निवासस्थान या पुर हैं, जिससे विष्णुकी संज्ञा 'पुरुष' बनती है, उन जगदधीश्वरी महालक्ष्मीके चरणोंकी किरणें हमारे अज्ञानान्धकारको दूर करें।

प्रवालानां दीक्षागुरुरपि च लाक्षारुणरुचां
नियन्त्री बन्धूकद्युतिनिकरबन्धूकृतिपटुः।
नृणामन्तर्ध्वान्तं निबिडमपहर्तुं तव किल
प्रभातश्रीरेषा चरणरुचिवेषा विजयते॥

(लक्ष्मीलहरी, ७)

'मूँगोंको रक्तिमा धारण करनेकी शिक्षा देनेवाली, महावरकी ललाईको मात करनेवाली, दुपहरियाके फूलकी चमकके साथ मेल-जोल करनेवाली तथा मनुष्योंके अन्तःकरणके घने अन्धकारका अपहरण करनेके लिये उषःकालकी शोभाके समान विराजमान आप (महालक्ष्मी) की चरण-कान्ति सर्वातिशायिनी है।'

सर्वोपरि श्रीविष्णु

(लेखक—श्रीरामकृष्णप्रसादजी ऐडवोकेट)

जैसे परमात्माके गुण असंख्य हैं, वैसे ही उनके नाम भी असंख्य हैं। उनका एक-एक नाम उनके एक-एक गुणका वाचक है और ये सारे-के-सारे नाम उन्हीं एक परमात्माके द्योतक हैं। जिस व्यक्तिने परमात्माके जिस गुणको देखा और अनुभव किया, उसीकी उसने प्रशंसा की। इसका यह अभिप्राय नहीं कि उनके एक गुणकी प्रशंसासे उन्हें कोई दूसरा देवता मानने लगे। वह तो केवल एक ही परमात्मा, एक ही ईश्वर है, अनेक नहीं—यह सभी धर्मशास्त्र मानते हैं।

जैसे परमात्माने इस जगत्की सृष्टि की है और नित्य अब भी सृष्टि कर ही रहे हैं, इसलिये उनका एक नाम 'ब्रह्मा' है। 'योऽखिलं जगन्निर्माणेन बृंहति वर्धयति स ब्रह्मा।' (जो सम्पूर्ण जगत्की निर्माणके द्वारा वृद्धि करे, उसका नाम 'ब्रह्मा' है।), ठीक उसी प्रकार परमात्मा सारे जगत्में व्याप्त हैं, इसलिये उनके व्यापकतारूपी गुणके कारण उनको 'विष्णु' कहा जाता है—'वेवेष्टि व्याप्नोति चराचरं जगत् स विष्णुः—अर्थात् इस चराचर जगत्में व्यापक होनेके नाते परमात्माको 'विष्णु' कहा जाता है।' वे ही परमात्मा इस जगत्का कल्याण भी करते हैं, इसलिये उनका एक नाम 'शिव' भी है। 'रुद्र'का अर्थ है—रुलानेवाला। जैसे परमात्मा अपने संहार-कार्यसे लोगोंको समय-समयपर रुलाते भी हैं, इसलिये उनका एक नाम 'रुद्र' भी है, उसी प्रकार परमात्माके अनन्त गुण होनेसे उनके नाम भी अनन्त हैं। सारांश यह है कि ये सभी नाम, चाहे वे किसी देश-विशेष या भाषामें क्यों न हों, उसी एक परमात्माके सूचक हैं, जो एक हैं, अनेक नहीं।

ये थोड़ी-सी बातें परमात्माके नाम और गुणके विषयमें कही गयीं; किंतु ठीक ये ही बातें परमात्माकी पूजाके सम्बन्धमें भी हैं। बहुत-से लोग शास्त्रविहित विधियोंसे अलग-अलग पूजा भी करते हैं। कोई अपनेको शिवका उपासक बताता है तो कोई विष्णुका; कोई देवीकी प्रतिमाकी पूजा करता है तो कोई भूत-प्रेतकी; इसी प्रकार लोग अलग-अलग अपना-अपना पूजा-विधान बतलाते हैं और समय-समयपर एक-दूसरेकी निन्दा भी करते हैं; परंतु यदि यथार्थमें इसपर विचार किया जाय तो ऐसे लोगोंके कार्य केवल उनके भ्रम हैं।

अन्यान्य देवताओंकी पूजाकी चर्चा करते हुए गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने कहा है कि उन-उन देवताओंकी पूजाके माध्यमद्वारा वह व्यक्ति मेरी ही, अर्थात् परमात्माकी ही पूजा करता है—

येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम्॥
(९ । २३)

'हे अर्जुन! यद्यपि सकाम पुरुष दूसरे-दूसरे देवताओंकी पूजा करते हैं, लेकिन वे भी यथार्थमें मेरी ही पूजा करते हैं। किंतु उनकी यह पूजा अज्ञानपूर्वक होती है।' उन्होंने और भी कहा है—

अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च।
न तु मामभिजानन्ति तत्त्वेनातश्च्यवन्ति ते॥
(९ । २४)

'क्योंकि सम्पूर्ण यज्ञोंका स्वामी तथा भोक्ता मैं ही हूँ। लोग मुझ अधियज्ञस्वरूप परमात्माको तत्त्वसे नहीं जानते, इसलिये अपनी पूजा और यज्ञके पूर्णफलको प्राप्त नहीं होते।' सारांश यह है कि पूजाकी ये सारी विधियाँ चाहे किसी भी देवता-विशेषके माध्यमसे क्यों न की जायँ, वे एक प्रकारसे उसी परमात्माको ही अर्पित होती हैं—यह स्वयं भगवान्‌ने अपने श्रीमुखसे कहा है।

अब एक प्रश्न यहाँ उपस्थित होता है कि 'जब इतने अलग-अलग नाम और इतनी अलग-अलग पूजाएँ भी एक ही परमात्मासे सम्बन्ध रखती हैं, तब क्या उनमें परस्पर कोई विरोधाभास उत्पन्न होता है?' इसका उत्तर यह है कि वास्तवमें उनमें कोई विरोधाभास नहीं है। वे परमात्मा इतने विशाल हैं कि उनको पूर्णरूपसे जानना और समझना किसीके लिये भी सम्भव नहीं । सभी शास्त्रकारोंने परमात्माके नाम और गुणोंकी प्रशंसामें 'नेति-नेति' कह दिया है। उन्हीं परमात्माने जब अपना विराट् रूप अर्जुनको दिखलाया, तब उसकी विशालताको देखकर अर्जुन-जैसा पराक्रमी वीर भी भयभीत हो गया। परमात्माकी विशालता हमारे छोटे-से मस्तिष्कमें समा नहीं सकती। परमात्माके अद्भुत शरीरमें यह सारा जगत् ओत-प्रोत है। हमारे मस्तिष्कमें यह बुद्धि नहीं, आँखोंमें यह शक्ति नहीं कि हम परमात्माके इस दिव्य रूपको समझ और देख सकें। परमात्माकी इस विशालताको ही सर्वसुलभ बनानेके लिये हमारे ऋषियोंने उसका अलग-अलग विभाग करके गुणानुसार उसके अलग-अलग धाम बतला दिये हैं। लेकिन यथार्थमें परमात्माका इस प्रकार विभाजन सम्भव नहीं है और न उन वर्णित धामोंकी कोई सीमा ही है तथा न किसी सीमाद्वारा कोई धाम एक-दूसरेसे अलग किया गया है।

गीतामें कहा गया है—

अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम्।
भूतभर्तृ च तज्ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च॥
(१३ । १६)

'वे परमात्मा विभागरहित एक रूपसे आकाशके सदृश परिपूर्ण होते हुए भी सम्पूर्ण चराचर प्राणियोंमें पृथक्-पृथक् प्रतीत होते हैं। वे ही एकमात्र जाननेयोग्य परमात्मा विष्णु-रूपसे सभी प्राणियोंको धारण और पोषण करनेवाले हैं, रुद्ररूपसे संहार करनेवाले हैं और ब्रह्मारूपसे सबको उत्पन्न करनेवाले हैं।' अपनी विभूतियोंका वर्णन करते हुए भगवान् कहते हैं—

आदित्यानामहं विष्णुर्ज्योतिषां रविरंशुमान्।
मरीचिर्मरुतामस्मि नक्षत्राणामहं शशी॥
(गीता १० । २१)

''आदित्योंमें मैं विष्णु हूँ, ज्योतियोंमें मैं सूर्य हूँ, वायुओंमें मैं 'मरीचि' नामका वायु हूँ और नक्षत्रोंमें मैं चन्द्रमा हूँ।''

इस प्रकार सारे आकाशमें जो ये सूर्यलोक, चन्द्रलोक, नक्षत्रलोक और वायुलोक स्थित हैं, वे सब उसी एक परमात्माके अंश हैं, जो देखनेमें अलग-अलग प्रतीत होते हुए भी एक ही सूत्रमें पिरोये हुए हैं और एक ही परमात्मतत्त्वकी विशालता और व्यापकता बतलाते हैं, जो इस सारे ब्रह्माण्डमें फैला हुआ है।

यदि ब्रह्मा, विष्णु और शिव—ये गुणवाचक नाम एक ही परमात्माके हैं तो क्यों इन्हें अलग-अलग माना जाता है? उनको अलग-अलग जानना और मानना परिस्थितियोंके साथ भूल करना है। हमारे ऋषियोंने सत्त्व, रज और तम—ये तीन गुण बतलाये हैं, जो समयपर किसी व्यक्ति-विशेषमें घटते-बढ़ते रहते हैं। ठीक यही दशा परमात्माके इन तीन नामोंके सम्बन्धमें भी है। रजकी विशेषतासे उत्पादनकी महत्ता होती है, तमकी विशेषतासे संहार-कार्यकी

महत्ता होती है और सत्त्वकी विशेषतासे संसारका भरण-पोषण और रक्षण होता है, जिसको ऋषियोंने अपने निर्णयद्वारा सिद्ध भी किया है।

प्राचीन कथानक है—एक समय सरस्वती नदीके तटपर बहुत-से ऋषि-महर्षि और तपस्वी लोग एकत्रित थे। उन लोगोंके बीच यही प्रसङ्ग था कि ब्रह्मा, विष्णु और शिव—इन तीनोंमें श्रेष्ठ कौन है। इसका परीक्षण करने और निर्णय लेनेका भार भृगुजीपर छोड़ा गया। भृगुजी तीनों देवोंसे क्रमशः मिले और अपने-अपने व्यवहारमें ब्रह्माजीने रुष्टताका, शिवजीने क्रुद्धताका और विष्णुजीने क्षमाशीलताका परिचय दिया। भृगुजीने परीक्षणके उपरान्त निर्णय किया कि अशिष्ट व्यवहार करनेपर भी जो क्षमाशीलता दिखलाये, उसे ही महान् मानना चाहिये। अतः भगवान् विष्णु महान् हैं। ब्रह्माजी, शिवजी तथा विष्णुजीके व्यवहारमें भिन्नताका कारण क्या था? भृगुजीने इसका इस तरह विवेचन किया कि ब्रह्माजी क्षुब्ध होकर उत्पादनका कार्य करते हैं, इसलिये ब्रह्माजीमें रजोगुणकी प्रधानता है। रजोगुणकी प्रधानताके कारण ही ब्रह्माजी रुष्ट हुए। शिवजी क्रुद्ध होकर संहारका कार्य करते हैं, इसलिये वहाँ तमोगुणकी प्रधानता है। तमोगुणकी प्रधानताके कारण शिवजीमें क्रोधके लक्षण प्रकट हो गये। भगवान् विष्णु संसारका पालन करते हैं, तभी तो क्रोधके स्थानपर उन्होंने क्षमाका परिचय दिया, इसलिये इनमें विशेष सत्त्वगुणकी प्रधानता है। इस प्रकार भृगुजीने ब्रह्मा, शिव और विष्णु—इन तीनों महान् विभूतियोंका अलग-अलग परिचय पाकर ऋषि-महर्षियोंको सूचित किया कि अपने-अपने गुणोंके कारण विष्णुभगवान् ही सर्वश्रेष्ठ हैं।

सत्त्वं सुखे संजयति रजः कर्मणि भारत।
ज्ञानमावृत्य तु तमः प्रमादे संजयत्युत॥

(गीता १४।९)

'हे अर्जुन! सत्त्वगुण सुखमें लगाता है, रजोगुण कर्ममें लगाता है और तमोगुण ज्ञानको ढक करके प्रमादमें लगाता है।'

इन तीनों गुणोंमें जब, जैसे संयोग होता है, वैसे ही उसका प्रभाव देखनेमें आता है। अतएव इन्हीं गुणोंके संयोगसे समय-समयपर जो परमात्माके अलग-अलग कार्य देखनेमें आते हैं, उनके द्वारा इनको अलग-अलग परमात्माके रूपमें मानना या उनका परस्पर बिलगाव करना यथोचित और युक्तिसंगत नहीं है। इस प्रकार सत्त्वगुणकी अधिकताके कारण भगवान् विष्णु ही सर्वोपरि हैं।

विष्णुभक्तोंके मुक्ति करतलगत रहती है

संसारसागरं तर्तुं य इच्छेन्मुनिपुङ्गव। स भजेद्धरिभक्तानां भक्तान् वै पापहारिणः॥
दृष्टः स्मृतः पूजितो वा ध्यातः प्रणमितोऽपि वा। समुद्धरति गोविन्दो दुस्तरात् भवसागरात्॥
स्वपन् भुञ्जन् व्रजंस्तिष्ठन्नुत्तिष्ठंश्च वदंस्तथा। चिन्तयेद् यो हरेर्नाम तस्मै नित्यं नमो नमः॥
अहो भाग्यमहो भाग्यं विष्णुभक्तिरतात्मनाम्। येषां मुक्तिः करस्थैव योगिनामपि दुर्लभा॥

(नारदपुराण, पूर्व० ३९।५–८)

जो संसार-सागरके पार जाना चाहता हो, वह भगवद्भक्तोंके भक्तोंकी सेवा करे; क्योंकि वे सब पापोंको हर लेनेवाले हैं। दर्शन, स्मरण, पूजन, ध्यान अथवा प्रणाममात्र कर लेनेपर भगवान् गोविन्द दुस्तर भवसागरसे उद्धार कर देते हैं। जो सोते, खाते, चलते, ठहरते, उठते और बोलते हुए भी भगवान् विष्णुके नामका चिन्तन करता है, उसे प्रतिदिन बारंबार नमस्कार है। जिनका मन भगवान् विष्णुकी भक्तिमें अनुरक्त है, उनका अहोभाग्य है, अहोभाग्य है; क्योंकि योगियोंके लिये भी दुर्लभ मुक्ति उन भक्तोंके हाथमें ही रहती है।

'सर्वदेवनमस्कारः केशवं प्रति गच्छति'

(लेखक—श्रीरेवानन्दजी गौड)

शुक्लाम्बरधरं विष्णुं शशिवर्णं चतुर्भुजम्।
प्रसन्नवदनं ध्यायेत् सर्वविघ्नोपशान्तये ॥

'जीवनमें त्रिविध तापशान्त्यर्थ श्वेतवस्त्रधारी, शान्ताकार, चार भुजावाले, प्रसन्नमुख भगवान् विष्णुका ध्यान करना चाहिये।' भारतमें विष्णुकी उपासना अनेकरूपा है, उनके आख्यान भी अनन्त हैं—

'हरि अनंत हरि कथा अनंता।'

(मानस १ । १३९ । २½)

भगवान्‌का विराट् रूप यह समस्त ब्रह्माण्ड है। श्रुतिमें आया है—

'पुरुष एवेदᳬ सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्।'

(यजुर्वेद ३१ । २)

यह सब कुछ दृश्यमान भूत-भविष्यत् जगत् विष्णुमय है। पृथिवी विष्णुकी चरणस्थानीया है, आकाश नाभि, वायु प्राणरूप है, सूर्य-चन्द्रमा नेत्र, दिशाएँ कान, द्युलोक सिर, अग्नि मुख, समुद्र वस्त्र है। यह समस्त विश्व उनके भीतर है। जलचर, थलचर, नभचर—सभी जीव उन्हींके रूप हैं। मैं व्यापक भगवान् विष्णुको नमस्कार करता हूँ—

भूः पादौ यस्य नाभिर्वियदसुरनिलश्चन्द्रसूर्यौ च नेत्रे
कर्णावाशाः शिरो द्यौर्मुखमपि दहनो यस्य वास्तेयमब्धिः।
अन्तःस्थं यस्य विश्वं सुरनरखगगो भोगिगन्धर्वदैत्यं
चित्रं रंरम्यते तं त्रिभुवनवपुषं विष्णुमीशं नमामि ॥

'सर्वदेवमयो हरिः'—सूर्य, चन्द्र, अग्नि, वरुण, इन्द्र, कुबेर, ब्रह्मा, शिव—ये सब देव भगवान्‌के ही रूप हैं। परंतु सूक्ष्म विचार करनेसे तथा स्वाध्यायशील पुरुषोंके उपदेशोंसे ज्ञात होता है, एक शक्ति है, एक ईश्वर है; केवल आवरण-भेदसे भिन्नता है, तत्त्वतः कोई भेद नहीं। भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनसे कहते हैं—

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥

(गीता ४ । ११)

'हे पार्थ! जो जिस भावनासे, जिस रूपमें मुझे भजते हैं, मैं उनको उसी रूपसे प्राप्त होता हूँ। इसी रहस्यको जानकर मनुष्य सब प्रकारसे मेरे मार्गको अपनाते हैं।' इस संसारमें मनुष्य मानसिक सुख-शान्तिके लिये भिन्न-भिन्न देवी-देवताओंको पूजते हैं और उन्हें उसी रूपमें सिद्धि भी प्राप्त होती है—

काङ्क्षन्तः कर्मणां सिद्धिं यजन्त इह देवताः।
क्षिप्रं हि मानुषे लोके सिद्धिर्भवति कर्मजा ॥

(गीता ४ । १२)

भगवान् कहते हैं—मैं समस्त जगत्‌की उत्पत्ति तथा प्रलय हूँ। मुझसे अतिरिक्त संसारमें कुछ है ही नहीं; समस्त जगत्, सुर-नर-गन्धर्व—सभी सूत्रमें मणियोंके सदृश मद्रूप ही हैं—

अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा ॥
मत्तः परतरं नान्यत् किंचिदस्ति धनंजय।

(गीता ७ । ६-७)

सभी देवी-देवताओंकी पूजा, अर्चन, नमस्कार विष्णुकी पूजा और नमस्कार हैं। भगवान् उसी रूपमें उसकी श्रद्धा और निष्ठाके अनुरूप उसे प्राप्त होते हैं।'

भगवान्‌के सर्वदेवमय विराट् रूपको देखकर अर्जुन विस्मयमें पड़ गये। श्रद्धावनत होकर स्तुति करते हैं—

पश्यामि देवांस्तव देव देहे
सर्वांस्तथा भूतविशेषसंघान्।
ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थ-
मृषींश्च सर्वानुरगांश्च दिव्यान् ॥

(गीता ११ । १५)

'हे देवाधिदेव! मैं आपके शरीरमें सम्पूर्ण देवोंको और अनेक भूतविशेषोंको, कमलके आसनपर बैठे हुए ब्रह्माको, शिवको तथा अन्य सभी ऋषियोंको और दिव्य नागोंको देखता हूँ।' सभी देवता आपमें हैं और आप सभी देवोंमें हैं। एकादश रुद्र, द्वादश आदित्य, आठ वसु, साध्यगण, मरुद्गण, पितर, यक्ष, गन्धर्व सभी देव आपके रूप हैं। प्रभो! आपसे भिन्न कुछ नहीं; जिधर देखता हूँ, उधर आप-ही-आप हैं। जैसी भावना (धारणा) है, वैसा ही रूप सामने है—

जिन्ह कें रही भावना जैसी। प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी ॥

× × × ×

अमित रूप प्रगटे तेहि काला। जथा जोग मिले सबहि कृपाला ॥

(मानस १ । २४० । २; ७ । ५-२½)

जैसे नाटकीय रङ्ग-मञ्चपर एक ही पात्र आवरण-भेदसे अनेक रूपमें अपना अभिनय प्रस्तुत करता है, वस्तुतः उसमें कोई अन्तर नहीं, वैसे ही भगवान् विष्णुके चौबीस अवतारोंकी लीला है—

मत्स्याश्वकच्छपनृसिंहवराहहंस-
राजन्यविप्रविबुधेषु कृतावतारः।
त्वं पासि नस्त्रिभुवनेश यथाधुनेश
भारं भुवो हर यदूत्तम वन्दनं ते॥
(श्रीमद्भागवत १०।२।४०)

'भगवान्के मत्स्य, हयग्रीव, कच्छप, नृसिंह, वराह, हंस, श्रीराम, परशुराम तथा वामन आदि अनेक अवतार हैं। उन रूपोंमें, हे त्रिभुवनरक्षक भगवन्! आपका वन्दन है; आप कृपया भू-भारका हरण करें।' अतः सभी देवोंका अर्चन-पूजन विष्णुका ही अर्चन-पूजन है। जिस प्रकार आकाशसे गिरा हुआ जल चाहे जहाँ हो, जिस नदी, सरोवर, जल-थलमें हो, अन्ततः बहता-बहता जायगा समुद्रमें ही, समुद्रके अतिरिक्त उसकी अन्य गति नहीं है, वैसे ही सब देवोंको किया गया नमस्कार विष्णुको ही प्राप्त होता है, इसमें कोई संदेह नहीं है; क्योंकि सम्पूर्ण विश्व ही उनका मूर्तरूप है, वे सर्वव्यापी होनेके कारण महामूर्ति हैं, ज्ञानघन होनेके कारण तेजोमय-विग्रह हैं, निराकार-रूपमें वे अमूर्त एवं अव्यक्त हैं, अनेक रूपोंमें व्यक्त होनेके कारण वे अनेकमूर्ति अथवा शतमूर्ति हैं और शतमूर्ति होनेके कारण ही शतानन भी हैं।

आकाशात् पतितं तोयं यथा गच्छति सागरम्।
सर्वदेवनमस्कारः केशवं प्रति गच्छति॥
(प्रपन्नगीता)

× × ×

विश्वमूर्तिर्महामूर्तिर्दीप्तमूर्तिरमूर्तिमान्।
अनेकमूर्तिरव्यक्तः शतमूर्तिः शताननः॥
(विष्णुसहस्रनाम ९०)

अतः निगमागमका सिद्धान्त है—'तत्त्वमसि'। भगवान् विष्णु ही शैवोंके शिव हैं, वेदान्तियोंके ब्रह्म हैं, बौद्धोंके बुद्ध हैं, जैनियोंके अर्हत् हैं, मीमांसकोंके कर्म हैं और नैयायिकोंके कर्ता हैं। सभी सम्प्रदाय अनेक रूपोंमें उन्हींके उपासक हैं, उनसे भिन्न कुछ नहीं है—

यं शैवाः समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनो
बौद्धा बुद्ध इति प्रमाणपटवः कर्तेति नैयायिकाः।
अर्हन्नित्यथ जैनशासनरताः कर्मेति मीमांसकाः
सोऽयं वो विदधातु वाञ्छितफलं त्रैलोक्यनाथो हरिः॥
(हनुमन्नाटक १।३)

भगवान् विष्णु और समाधि

(लेखक—उदासीन स्वामी श्रीकृपाल्वानन्दजी)

तत्त्वज्ञानके ग्रन्थोंका अध्ययन करनेवाले साकार ईश्वरकी भावना नहीं कर सकते और भक्तलोग ऐसी भावना करते हैं तो उसे वे सह नहीं सकते। उसमें उनका दोष नहीं है; क्योंकि वहाँ तर्ककी गति नहीं है। वहाँ तो केवल योगका ही अवलम्बन लेना पड़ता है। बौद्ध ईश्वरको नहीं मानते, परंतु देव-देवियोंको मानते हैं और उनके साक्षात्कारके लिये उपासना भी करते हैं। बौद्ध-तन्त्रोंमें उसके लिये असंख्य उपायोंका वर्णन भी है।

अब इस प्रथम पक्षके साथ श्रीआद्यशंकराचार्यजीके द्वितीय पक्षको भी हम देख लें। वे अद्वैतमतके अद्वितीय प्रवर्तक थे, फिर भी उन्होंने देव-देवियोंके असंख्य स्तोत्रोंकी रचनाएँ की हैं। इतना ही नहीं, उन्होंने अपनी परम्परामें पञ्चदेवोंकी और कहीं-कहीं छः देवोंकी उपासनाकी प्रथा भी डाली है। 'श्रीकृष्णाष्टक'में उन्होंने कहा है—'जिनके ध्यान बिना मनुष्य पशुयोनिको प्राप्त होता है, जिनके ज्ञान बिना लोगोंको जन्म-मृत्युका भय होता है और जिनके स्मरण बिना सैकड़ों कीट-योनियाँ प्राप्त होती हैं, ऐसे शरणागतवत्सल, सम्पूर्ण भुवनोंके स्वामी श्रीकृष्णचन्द्र मेरी आँखोंके विषय हों।' यहाँ स्मरण रखनेयोग्य बात यह है कि श्रीआचार्यश्रेष्ठने श्रीकृष्णचन्द्रके साक्षात्कारके लिये उत्कण्ठा अभिव्यक्त की है।

अब हम इस सम्बन्धमें अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तृतीय पक्ष-पर भी दृष्टिपात करेंगे तो समुचित ही होगा। उत्तरमीमांसा-दर्शन अथवा वेदान्त-दर्शनके सूत्रकार भगवान् व्यासजी हैं। उन्होंने मोक्षार्थियोंके लिये 'वेदान्त दर्शन'को सूत्रोंमें ग्रथित किया है, किंतु अठारह पुराणोंकी रचनाएँ विस्तारपूर्वक की हैं। उनमें उन्होंने सेश्वर सांख्यका ही प्रतिपादन किया है, फिर भी उसका निरीश्वर सांख्यमें अन्तर्भाव करके दोनोंको एक-दूसरेका अङ्ग दिखलाया है। इससे सुस्पष्ट हो जाता है कि ब्रह्मवादके अन्तर्गत ईश्वरवाद समाया हुआ है। उन दोनों वादोंमें संवाद है, विवाद नहीं। योगकी मध्य भूमिका सबीज समाधिके साथ ईश्वरवादसे और योगकी अन्तिम

भूमिका निर्बीज समाधिके साथ ब्रह्मवादसे सम्बद्ध है । वे दोनों वाद योगगम्य हैं, तर्कगम्य नहीं । जैसे ब्रह्मवादके प्रचारका श्रेय श्रीशंकराचार्यको है, वैसे ही ईश्वरवादके प्रचारका श्रेय महामनीषी भगवान् व्यासजीको है। यदि ईश्वरवाद उत्तरमीमांसा-दर्शन अथवा वेदान्त-दर्शनका विरोधी ही होता तो वे अठारह पुराणोंकी रचनामें काल-व्यय नहीं करते । समस्त पुराण वेदके अनुगामी होनेके कारण प्रामाणिक हैं। वे ईश्वरके अवतारोंका अमर इतिहास हैं, फलतः उनको 'नित्यलीलाग्रन्थ' भी कह सकते हैं। उन नित्यलीलाग्रन्थोंकी विशिष्टता यह है कि उनमें शक्तिसहित सगुण ईश्वरके समस्त अवतारोंकी अगणित क्रीडाओंका समावेश हो गया है । यद्यपि लीलाएँ तो वे ही होती हैं, तथापि भावुक भक्त अपने-अपने विभिन्न दृष्टिकोणके कारण उनमें अपने-अपने इष्टकी लीलाके दर्शन करते हैं। प्रायः धर्म, अर्थ और कामके प्रति आकृष्ट होनेवाले सामान्य जन-समुदायके लिये पुराणोंका प्रणयन किया गया है, तथापि उनकी उत्कृष्टता यह है कि उनमें 'मोक्ष' नामक चौथे पुरुषार्थको भी समुचित स्थान और न्याय प्रदान किया गया है । वेद, उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र, श्रीमद्भगवद्गीता आदि उच्चकोटिके ग्रन्थोंमें जिन तथ्योंका वर्णन संक्षेपरूपमें किया गया है, उन्हीं तथ्योंका वर्णन पुराणोंमें सिद्धान्तों एवं उत्तम उदाहरणोंके साथ विस्तारपूर्वक हुआ है । इसीलिये वे भेदबुद्धिके साधकोंको भी अपनी ओर आकृष्ट कर सके हैं । समस्त पुराण सेश्वर सांख्यका प्रतिपादन करनेवाले हैं, अतएव वे भाव-प्रधान एवं रस—माधुर्यके महानिधान हैं ।

सत्त्व, रजस् और तमस्—ये त्रिगुणात्मिका प्रकृतिके तीन गुण हैं । इनमें सत्त्वगुणके अधिष्ठाता श्रीविष्णु, रजोगुणके अधिष्ठाता श्रीब्रह्माजी और तमोगुणके अधिष्ठाता श्रीमहेश हैं। ये तीन ही क्रमशः सृष्टिके संरक्षण, सर्जन एवं संहारका कार्य करते हैं। जैसे एक ही प्रकृतिके तीन गुण हैं, वैसे एक ही श्रीपुरुषोत्तमके तीन ऐश्वर्य हैं। वे ही क्रमशः श्रीविष्णु, श्रीब्रह्मा और श्रीमहेशका स्वरूप धारण करके कार्य करते हैं । समस्त देवोंमें इन्हीं तीन देवोंकी प्रधानता मानी गयी है । इनका सामर्थ्य श्रीपुरुषोत्तमकी अपेक्षा सीमित है; क्योंकि ये केवल एक ही गुणके अधिष्ठाता हैं और श्रीपुरुषोत्तम तो तीनों गुणोंके अधिष्ठाता हैं। विष्णुपुराणमें श्रीविष्णुको और शिवपुराणमें श्रीशिवको 'श्रीपुरुषोत्तम' माना गया है। वे ही परात्पर ब्रह्म हैं । देवीभागवतमें माँ शक्तिको परात्पर ब्रह्म माना गया है ।

श्रीमद्भागवत (१ । २ । ११) में 'भगवान्' शब्दकी परिभाषा इस प्रकार दी गयी है—"तत्त्वदर्शी ज्ञानीजन ज्ञाता और ज्ञेयके भेदसे रहित अखण्ड अद्वितीय सच्चिदानन्दस्वरूप ज्ञानको ही 'तत्त्व' कहते हैं, उसीको कोई 'परमात्मा', कोई 'ब्रह्म' और कोई 'भगवान्'के नामसे पुकारते हैं।" ब्रह्मसूत्र (१ । २) में कहा गया है—"जिससे इस विश्वकी सृष्टि, स्थिति और प्रलय होते हैं, वही 'परमात्मा' है।" तैत्तिरीय श्रुति (३ । १) भी यही कहती है । योगसूत्र (१ । २४) में कहा गया है—"क्लेश (अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश), कर्म (पाप-पुण्य), विपाक (पाप-पुण्यके फल अर्थात् जाति, आयु और भोगरूप सुख-दुःख) और आशय (सुख-दुःखके योगसे जन्य नाना प्रकारकी वासना)—इनसे असम्बद्ध जो जीवरूप अन्य पुरुषोंसे भिन्न उत्तम पुरुष है, वही 'ईश्वर' है।"

'क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः।'

भक्तराज अर्जुनने श्रीभगवान्से विनम्र विनती की थी—'हे योगेश्वर प्रभो ! मेरे लिये अपने अविनाशी स्वरूपका दर्शन यदि आप शक्य मानते हैं तो मुझे उसका दर्शन कराइये।' (गीता ११ । ४)

श्रीभगवान् उनकी प्रार्थनाका उत्तर यों देते हैं—'तू मुझे इस चर्मचक्षुद्वारा देख नहीं सकता, अतः मैं तुझे दिव्यचक्षु प्रदान करता हूँ। उससे तू मेरा ईश्वरीय योग-सामर्थ्य देख।' (गीता ११ । ८) शास्त्रज्ञानसे उद्भूत होनेवाली सूक्ष्म दृष्टिको 'दिव्यचक्षु' कहना समीचीन नहीं है; क्योंकि शास्त्रज्ञान तो अधिकांश पण्डितोंमें होता है, परंतु उनकी दृष्टिमें 'समता' नहीं, बल्कि 'विषमता' ही होती है । दिव्य-चक्षु तो प्रभुके परमानुग्रहसे योगीको ही प्राप्त होती है । वह जिस योगीको सम्प्राप्त होती है, वही भगवान्के विश्व-रूप एवं उनकी अवतार-लीलाओंका दर्शन कर सकता है।

सबीज समाधिकी एक भूमिकामें साधकको अपने आराध्यदेवसहित अन्य देव-देवियों तथा ऋषि-मुनियोंके दर्शन होते हैं। योगदर्शन (२ । ४४) में कहा गया है—

'स्वाध्यायसे इष्ट देवताका साक्षात् होता है ।' सम्प्रज्ञात योगकी इस भूमिकामें ही भक्त अर्जुनने 'विश्वरूपदर्शन' किया था। सम्प्रज्ञात योगमें भक्त और भगवान्‌का द्वैत तथा असम्प्रज्ञात योगमें जीव और शिवका ऐक्य होता है। 'विष्णुपुराण' (६ । ७ । ४७-५४)में केशिध्वज खाण्डिक्यसे कहते हैं—"राजन् ! चित्तका आश्रय ब्रह्म है, जो स्वभावतः साकार और निराकार तथा सगुण और निर्गुणरूपसे दो प्रकारका है । नरेश ! जबतक सांसारिक पदार्थोंका भिन्नरूपसे ज्ञान और कर्म सम्पूर्णतया क्षीण नहीं हो जाते, तबतक भिन्नदृष्टि रखनेवाले मनुष्यको परब्रह्म और जगत्‌की भिन्नता प्रतीत होती है; किंतु जिस ज्ञानमें सम्पूर्ण भेद शान्त हो जाते हैं, जो सत्तामात्र और वाणीका अविषय है तथा स्वयं ही अनुभव करनेयोग्य है, वही 'ब्रह्मज्ञान' कहलाता है। वही परमात्मा विष्णुका 'अरूप' नामक परमरूप है, जो उसके 'विश्वरूप'से विलक्षण है । राजन् ! साधकजन आरम्भमें उस रूपका चिन्तन नहीं कर सकते, इसलिये उन्हें श्रीहरिके विश्वमय स्थूलरूपका ही चिन्तन करना चाहिये । यह सम्पूर्ण चराचर जगत् परब्रह्मस्वरूप भगवान् विष्णुका उनकी शक्तिसे सम्पन्न 'विश्व' नामक रूप है।"

एक अन्य स्थानपर 'विष्णुपुराण' (६ । ७ । ७३-७८)में कहा गया है—'साधकको आत्मशुद्धिके लिये भगवान् विश्वरूपके उस सर्वपापविनाशक रूपका चिन्तन करना चाहिये । जिस प्रकार वायुसहित अग्नि ऊँची ज्वालाओंसे युक्त होकर शुष्क तृणसमूहको जला डालता है, उसी प्रकार चित्तमें स्थित हुए भगवान् विष्णु योगियोंके समस्त पाप भस्म कर देते हैं । इसलिये सम्पूर्ण शक्तियोंके आधार भगवान् विष्णुमें चित्तको स्थिर करे, यही 'शुद्ध धारणा' है । (सबीज समाधिको 'सालम्ब समाधि' भी कहते हैं । इसमें धारणा और ध्यानके कारण केवल एकाग्रता बनी रहती है, फलतः मनका अस्तित्व भी बना रहता है । निर्बीज समाधिको 'निरालम्ब समाधि' भी कहते हैं । इसमें न धारणा होती है, न ध्यान । फलतः योगीका निर्वासनिक बना हुआ मन शनैः-शनैः अपने कारणमें विलीन हो जाता है ।) तीनों भावनाओंसे अतीत भगवान् विष्णु ही योगिजनोंकी मुक्तिके लिये चल-अचलरूप चित्तके उत्तम आश्रय हैं । भगवान्‌का यह सगुण-साकार रूप चित्तको अन्य अवलम्बनोंसे निस्स्पृह कर देता है। अर्थात् उसे पुनः दूसरे आश्रयकी आवश्यकता ही नहीं रहती।

सदा भगवान् नारायणका ही ध्यान करना चाहिये

नमामि नारायणपादपङ्कजं करोमि नारायणपूजनं सदा ।
वदामि नारायणनाम निर्मलं स्मरामि नारायणतत्त्वमव्ययम् ॥
नारायणेति मन्त्रोऽस्ति वागस्ति वशवर्तिनी ।
तथापि नरके घोरे पतन्तीत्येतदद्भुतम् ॥
आलोड्य सर्वशास्त्राणि विचार्य च पुनः पुनः ।
इदमेकं सुनिष्पन्नं ध्येयो नारायणः सदा ॥
आकाशात्पतितं तोयं यथा गच्छति सागरम् ।
सर्वदेवनमस्कारः केशवं प्रति गच्छति ॥

(पाण्डवगीता)

मैं नारायणके चरणारविन्दोंको नमस्कार करता हूँ, नारायणकी ही नित्य पूजा करता हूँ, नारायणके निर्मल नामका उच्चारण करता हूँ और नारायणके अव्यय तत्त्वका स्मरण करता हूँ । नारायणरूप मन्त्रके रहते हुए और वाणीके स्वाधीन रहते हुए भी लोग नरकमें गिरते हैं—यह बड़ा आश्चर्य है । सभी शास्त्रोंका मन्थन करके, तदनुसार बारंबार विचार करके, यही सार निकाला गया है कि सदैव नारायणका ही ध्यान करना चाहिये । जैसे आकाशसे गिरा हुआ जल अन्तमें समुद्रमें ही जा मिलता है, उसी प्रकार सभी देवोंके प्रति किया गया नमस्कार भगवान् केशवके ही पास जा पहुँचता है ।

देवाधिदेव श्रीविष्णुभगवान्‌का व्यावहारिक तथा पारमार्थिक स्वरूप

(लेखक—श्रीश्रीराममाधव चिंगले, एम्० ए०)

सर्वसाधारणरूपसे हिंदू-धर्मके तथा विशेषरूपसे वैष्णव सम्प्रदायके परमाराध्य प्रभु श्रीविष्णुभगवान्‌की महिमा इस पुण्यभूमि भारतवर्षमें वैदिक कालसे चली आ रही है। वेद इस बातके साक्षी हैं कि आपने तीन डगोंमें तीनों लोकोंको नाप लिया था। इसलिये आप 'त्रिविक्रम', 'उरुक्रम' (लंबी डगोंवाले) तथा 'उरुगाय' (बहुस्तुत) आदि नामोंसे प्रसिद्ध हैं। 'ऐतरेय ब्राह्मण'में समस्त देवगणोंमें आपको सर्वश्रेष्ठ बताया गया है—'अग्निर्वै देवानामवमो विष्णुः परमः।' आपका 'परमपद' वेदोपनिषदोंमें वर्णित है। 'कठोपनिषद्'में हम आपके परमपद या परमधामका वर्णन इन शब्दोंमें पाते हैं—'तद् विष्णोः परमं पदम्।' (कठोपनिषद् १।३।९) त्रिमूर्ति (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) में आपकी प्रधानता सुविदित है। इसका एक कारण तो स्पष्ट है। सृष्टिकी उत्पत्ति तथा संहार करना इतना कठिन नहीं, जितना कि उसका रक्षण तथा भरण-पोषण करना। सत्त्वगुण-प्रधान होनेके कारण यह काम आपका ही है। इसके लिये आपको मानव-तनु धारण करके समय-समयपर अवतार भी ग्रहण करना पड़ता है। महर्षि भृगुके द्वारा ली गयी त्रिदेवोंकी परीक्षासे भी आपकी श्रेष्ठता सिद्ध हो चुकी है। इसका चिह्न आज भी आप श्रीवत्स-रूपसे धारण किये हुए हैं। वह मानो आपकी श्रेष्ठताका जीता-जागता प्रमाणपत्र है। श्रीदेवी लक्ष्मीजीने भी आपको वरण करते समय अनेकानेक दुर्धर कसौटियाँ लगायी थीं, जिनपर आप पूरी तरहसे खरे उतरे।

अनन्त कल्याण-गुणोंके निधान, महामङ्गलमय श्रीविष्णु-भगवान्‌के दिव्य श्रीविग्रहकी नयनाभिराम, भुवनमनोहर झाँकी सुप्रसिद्ध है, जिसे देखते हुए सगुणोपासक भक्तजनोंके नेत्र कभी नहीं अघाते। यथा—

सशङ्खचक्रं सकिरीटकुण्डलं सपीतवस्त्रं सरसीरुहेक्षणम्।
सहारवक्षःस्थलकौस्तुभश्रियं नमामि विष्णुं शिरसा चतुर्भुजम्॥

'उन चतुर्भुज भगवान् विष्णुको मैं सिरसे प्रणाम करता हूँ, जो शङ्ख-चक्र धारण किये हैं, किरीट और कुण्डलोंसे विभूषित हैं, पीताम्बर पहने हैं, सुन्दर कमल-से जिनके नेत्र हैं और जिनके वक्षःस्थलपे वनमालासहित कौस्तुभमणिकी अनूठी शोभा है।'

आपकी इस प्रकारकी सगुण मूर्तियाँ तथा चित्र मन्दिरों और भावुक भक्तोंके घरोंमें बहुतायतसे देखनेको मिलते हैं।

आप शरणागतवत्सल और करुणाके सागर होनेके कारण भक्तोंके और आर्त्तजनोंके एकमेव शरण्य और आशास्थान हैं। आपकी स्तुति, सम्पूजन एवं नामस्मरणादिसे समस्त पातक भस्म हो जाते हैं। स्कन्दपुराण कहता है—

स्तुत्वा विष्णुं वासुदेवं विपापो जायते नरः।
विष्णोः सम्पूजनान्नित्यं सर्वपापं प्रणश्यति॥

'सर्वव्यापक श्रीविष्णुभगवान्‌का स्तवन करनेसे मनुष्य निष्पाप हो जाता है और नित्यप्रति उनका पूजन करनेसे समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं।'

मनुष्यका मलिन अन्तःकरण ही समस्त अनर्थोंका मूल है। साबुन तथा पानीसे शरीर शुद्ध हो जायगा, किंतु अन्तःकरणकी शुद्धि नहीं होती—'न वारिणा शुध्यति चान्तरात्मा।' श्रीविष्णुभगवान्‌के चिन्तनमें उसे शुद्ध करनेकी सामर्थ्य है—'मानसं स्नानं विष्णुचिन्तनम्।' पद्मपुराणके अनुसार 'जो कमलनयन श्रीभगवान्‌का स्मरण करता है, वह बाहर और भीतर—उभयत्र पवित्र हो जाता है—यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः॥' 'आप पवित्रोंमें भी पवित्र और मङ्गलोंमें भी मङ्गल हैं—पवित्राणां पवित्रं यो मङ्गलानां च मङ्गलम्।' तीर्थादिकोंमें भी पवित्र करनेकी शक्ति आपके ही कारण है। आप अपने भक्तोंपर कृपावान् होकर अपने स्वरूपके यथार्थ ज्ञानसे भवबन्धके हेतुभूत सविलास अज्ञान-की निवृत्ति कर देते हैं। अतएव आपसे बढ़कर पवित्र तथा मङ्गलमय और कौन हो सकता है। जिसके हृदयमें मङ्गलायतन भगवान् श्रीहरि विराजते हैं, उसके हिस्सेमें कभी कोई अमङ्गल नहीं आ सकता। स्कन्दपुराण कहता है—

सर्वदा सर्वकार्येषु नास्ति तेषाममङ्गलम्।
येषां हृदिस्थो भगवान् मङ्गलायतनं हरिः॥

'जिनके हृदयमें समस्त मङ्गलोंके स्थान भगवान् श्रीहरि विराजते हैं, उन्हें कभी किसी कार्यमें कोई अमङ्गल प्राप्त नहीं होता।'

सगुण-उपासकमें प्रचलित आपके अमित-महिमा-सम्पन्न उपर्युक्त सगुण-रूपके अतिरिक्त आपका तात्त्विक स्वरूप भी द्रष्टव्य है। वह निम्न श्लोकोंमें उत्तमताके साथ विशद किया गया है—

नारायणः परो ज्योतिरात्मा नारायणः परः।
नारायणः परं ब्रह्म तत्त्वं नारायणः परम्॥
(नारायणोपनिषद् ९।८)

'नारायण परमज्योति हैं, नारायण परमात्मा हैं, नारायण परम ब्रह्म हैं, नारायण परमतत्त्व हैं।'

नारायणः परोऽचिन्त्यः परेषामपि स प्रभुः।
ब्रह्मस्वरूपी भगवाननादिः सर्वसम्भवः॥
(विष्णुपुराण १।४।४)

'भगवान् नारायण पर हैं, अचिन्त्य हैं, ब्रह्मा-शिव आदि ईश्वरोंके भी ईश्वर हैं, ब्रह्मस्वरूप हैं, अनादि हैं और सबके उत्पत्तिस्थान हैं।'

तत्त्वतः एक होते हुए भी सृष्टिके संदर्भमें आप संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और लय करनेवाले ब्रह्मा, विष्णु और शिव-नामक तीन संज्ञाओंको प्राप्त होते हैं—

सृष्टिस्थित्यन्तकरणीं ब्रह्मविष्णुशिवात्मिकाम्।
स संज्ञां याति भगवानेक एव जनार्दनः॥
(विष्णुपुराण १।२।६६)

प्रह्लादजी आपके इस त्रिमूर्तिस्वरूपको नमस्कार करते हैं—

ब्रह्मत्वे सृजते विश्वं स्थितौ पालयते पुनः।
रुद्ररूपाय कल्पान्ते नमस्तुभ्यं त्रिमूर्तये॥
(विष्णुपुराण १।१९।६६)

अपनी त्रिगुणात्मिका मायाद्वारा आप सृष्टि-रचनाकालमें तीन क्या, अनन्त रूप धारण करते हैं; फिर भी तत्त्वतः आप एक ही रहते हैं। व्यवहारमें भी हम देखते हैं कि एक ही मुख्य राजसत्ता कार्य और अधिकारभेदसे प्रधानमन्त्रीसे लगाकर सिपाहीतक अनेकानेक रूपोंमें विभक्त होती है। किंतु तत्त्वतः वह एक ही है। प्रस्तुत संदर्भमें भारतीय देवतावादकी एक विशेषता ध्यानमें रखनी चाहिये। वह यह है कि विभिन्न देवताओंके उपासनागत स्वरूप पृथक् होते हुए भी सबका तात्त्विक स्वरूप एक ही है। इसी आशयसे अत्यन्त प्राचीन कालसे हमारा ऋग्वेद (१।१६४।४६) कहता चला आ रहा है—'**एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति।**' यही धर्म तथा अध्यात्मके क्षेत्रमें अध्यात्ममूलक भारतीय संस्कृतिकी सहिष्णुताका परम रहस्य है। यही उसके द्वारा विश्वको दिया हुआ सर्वधर्मसमन्वयका महामन्त्र है।

प्रकृतका अनुसरण करते हुए हम श्रीविष्णुभगवान्‌के तात्त्विक स्वरूपका थोड़ा और विचार कर लें। कार्य-कारणके अभेदके सिद्धान्तानुसार चराचर सृष्टिमें जो कुछ उपलब्ध होता है, तत्त्वतः वह सब श्रीभगवान् ही हैं। भेद तो बहिर्दर्शी अज्ञानियोंकी दृष्टिमें होता है। ज्ञानी पुरुष तो सर्वत्र आपके ही दर्शन करते हैं। परमभागवत श्रीप्रह्लादजीने श्रीमद्भागवतमें इस रहस्यको बहुत ही उत्तमताके साथ विशद किया है—

एकस्त्वमेव जगदेतदमुष्य यत् त्व-
माद्यन्तयोः पृथगवस्यसि मध्यतश्च।
सृष्ट्वा गुणव्यतिकरं निजमाययेदं
नानेव तैरवसितस्तदनुप्रविष्टः॥
त्वं वा इदं सदसदीश भवांस्ततोऽन्यो
माया यदात्मपरबुद्धिरियं ह्यपार्था।
यद् यस्य जन्म निधनं स्थितिरीक्षणं च
तद् वै तदेव वसुकालवदष्टितर्वोः॥
(७।९।३०-३१)

'भगवन्! यह सम्पूर्ण जगत् एकमात्र आप ही हैं; क्योंकि इसके आदिमें आप ही कारणरूपसे थे, अन्तमें आप ही अवधिके रूपमें रहेंगे और मध्यमें इसकी प्रतीतिके रूपमें भी केवल आप ही हैं। आप अपनी मायासे गुणोंके परिणामस्वरूप इस जगत्‌की सृष्टि करके इसमें पहलेसे विद्यमान रहनेपर भी प्रवेशकी लीला करते हैं और उन गुणोंसे युक्त होकर अनेक प्रतीत हो रहे हैं। भगवन्! यह जो कुछ कार्य-कारणके रूपमें प्रतीत हो रहा है, वह सब आप ही हैं और इससे भिन्न भी आप ही हैं। अपने परायेका भेद-भाव तो अर्थहीन शब्दोंकी माया है; क्योंकि जिससे जिसका जन्म, स्थिति, लय और प्रकाश होता है, वह उसका स्वरूप ही होता है—यथा बीज और वृक्ष कारण और कार्यकी दृष्टिसे भिन्न-भिन्न हैं तो भी गन्ध-तन्मात्राकी दृष्टिसे दोनों एक ही हैं।'

यही आशय 'नारायणोपनिषद्'में व्यक्त किया गया है—

यच्च किंचिज्जगत्सर्वं दृश्यते श्रूयतेऽपि वा ।
अन्तर्बहिश्च तत्सर्वं व्याप्य नारायणः स्थितः ॥
(१३ । १-२)

'जो कुछ भी संसार दिखायी या सुनायी देता है, उस सबको श्रीनारायण बाहर-भीतरसे व्याप्त करके स्थित हैं ।'

इसी आशयका 'गुरु-गीता'का निम्नलिखित सुन्दर श्लोक है—

हरिरेव जगज्जगदेव हरिर्हरितो जगतो नहि भिन्नतनुः ।
इति यस्य मतिः परमार्थगतिः स नरो भवसागरमुत्तरति ॥

'हरि ही जगत् हैं, जगत् ही हरि है । श्रीहरि और जगत्‌में किंचिन्मात्र भी भेद नहीं है । जिसकी ऐसी मति है, उसीकी परमार्थमें गति है । वह पुरुष संसार-सागरको तर जाता है ।'

श्रीमद्भगवद्गीतामें श्रीभगवान् स्वयं कहते हैं—

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते ।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ॥
(७ । १९)

''जो बहुत जन्मोंके अन्तके जन्ममें तत्त्वज्ञानको प्राप्त हुआ ज्ञानी 'सब कुछ वासुदेव ही है अर्थात् श्रीवासुदेवको छोड़कर अन्य कुछ है ही नहीं'—इस रूपमें मुझे भजता है, वह महात्मा अति दुर्लभ है ।''

प्रस्तुत संदर्भमें 'विष्णु' शब्दकी बहुविध तथा अनेकार्थकी द्योतक व्युत्पत्ति और तत्सिद्ध अनेकार्थ भी द्रष्टव्य हैं— 'विच्छ गतौ' (तुदादि), 'विच्छ दीप्तौ' (चुरादि), 'विषु सेचने' (भ्वादि), 'विष्लृ व्याप्तौ' (जुहोत्यादि), 'विश प्रवेशने' (तुदादि), 'ष्णु प्रस्रवणे' (अदादि)—इन सभी धातुओंसे 'विष्णु' शब्दकी सिद्धि होती है । अतः गति, दीप्ति, सेचन, व्याप्ति, प्रवेश तथा प्रस्रवण—ये सभी अर्थ 'विष्णु' शब्दमें निहित हैं । महाभारत, शान्तिपर्वके अन्तर्गत मोक्षधर्मपर्व (३४१ । ४२-४३)में श्रीभगवान्‌ने अपने प्रिय भक्त अर्जुनको उपदेश करते हुए इन विविधार्थोंको निम्न श्लोकोंमें उत्तमताके साथ व्यक्त किया है—

गतिश्च सर्वभूतानां प्रजनश्चापि भारत ।
व्याप्ता मे रोदसी पार्थ कान्तिश्चाभ्यधिका मम ॥
अधिभूतानि चान्तेषु तदिच्छंश्चास्मि भारत ।
क्रमणाच्चाप्यहं पार्थ विष्णुरित्यभिसंज्ञितः ॥

''हे भारत ! मैं सम्पूर्ण प्राणियोंकी गति (लय) और उत्पत्तिका स्थान हूँ । पार्थ ! मैंने आकाश और पृथ्वीको व्याप्त कर रक्खा है । मेरी कान्ति सबसे बढ़कर है । हे भरतनन्दन ! समस्त प्राणी अन्तकालमें जिस ब्रह्मको पानेकी इच्छा करते हैं, वह भी मैं ही हूँ । हे कुन्तीकुमार ! मैं सबका अतिक्रमण करके स्थित हूँ । इन सभी कारणोंसे मेरा नाम 'विष्णु' हुआ है ।''

इससे पता चल सकता है कि 'विष्णु' शब्द कितने गहरे अर्थका द्योतक है । किंतु ये तो उपलक्षणमात्र हैं । ऐसे और भी अनेक अर्थ उक्त नामोंमेंसे निकाले जा सकते हैं । श्रीभगवान्‌के अनन्त होनेके कारण उनके वाचक शब्दोंके भी अनन्त अर्थ हो सकते हैं । संदर्भ-भेदसे अनेक आचार्योंने इसमेंसे अनेक अर्थ निकाले हैं । आद्य श्रीशंकराचार्य अपने विष्णुसहस्रनाम-भाष्यमें कहते हैं—

'विष्णुं व्यापनशीलम्, वेवेष्टि व्याप्नोतीति विष्णुः । विषेर्व्याप्त्यर्थाभिधायिनो नुक्प्रत्ययान्तस्य रूपं विष्णुरिति । देशकालवस्तुपरिच्छेदशून्य इत्यर्थः ।

'वेवेष्टि' अर्थात् जो व्यापक हो, उसका नाम 'विष्णु' है । व्याप्ति-अर्थ-वाचक 'विष्लृ' धातुका नुक्प्रत्ययान्तरूप 'विष्णु' है । तात्पर्य यह कि विष्णु देश-काल-वस्तुरूप त्रिविध परिच्छेदसे रहित हैं ।

तत्त्वतः विचार करनेसे हम देखते हैं कि 'जगज्जन्मादि-कर्तृत्व' परममङ्गलमय श्रीभगवान्‌का तटस्थ-लक्षण है और 'सच्चिदानन्द' आपका स्वरूप-लक्षण है । तटस्थ-लक्षणमें कादाचित्कत्व रहता है, अर्थात् वह कभी होता है, कभी नहीं— यथा मनुष्यके तिलक-वस्त्रादि; किंतु स्वरूप-लक्षण तो स्वरूपसे भिन्न न होनेके कारण निरन्तर ज्यों-का-त्यों बना रहता है । सृष्टिके सारे पदार्थोंमें पाये जानेवाले नाम-रूप मायाके द्योतक हैं और सत्, चित्, आनन्द—ये परमात्माके द्योतक हैं । इन्हींके अन्योन्याध्यासरूप ताने-बानेसे सारी सृष्टिकी रचना होती है । तत्त्वदर्शी पुरुष भगवत्कृपापात्र होनेके कारण हंसकी तरह इनका नीर-क्षीर-विवेक कर लेते हैं, अज्ञानी पुरुष माया-जालमें उलझे रहते हैं ।

अब हम उपासककी दृष्टिसे एक महत्त्वपूर्ण प्रश्नपर विचार कर लें कि उसका स्वयंका स्वरूप क्या है और श्रीभगवान्‌के साथ उसका किस प्रकारका सम्बन्ध है । इसका उत्तर भी शास्त्रकारोंने असंदिग्ध शब्दोंमें दिया है । जब सम्पूर्ण सृष्टि ही विष्णुमय है—

'सर्वं विष्णुमयं जगत्' (विष्णुपञ्जरस्तोत्र)

—तब, भला, जीव उनसे पृथक् कैसे रह सकता है। ध्यान रहे, 'सर्व'-शब्द व्यापक और सर्वसंग्राहक होनेसे उसके बाहर कुछ भी नहीं रह सकता। भगवत्कृपासे प्राप्त यथार्थ ज्ञानके द्वारा अज्ञानकी निवृत्ति हो जानेपर जीवको परमात्मासे अभिन्न अपने सच्चिदानन्दस्वरूपका साक्षात्कार हो जाता है। किंतु इस परमपदपर पहुँचनेसे पूर्व उसे अनेक विकासभूमियोंको पार करना पड़ता है। सर्वप्रथम चित्त-शुद्धि-सम्पादन करनेके लिये उसे शास्त्रसम्मत विशुद्ध कर्म करने पड़ते हैं। फिर चित्तको एकाग्र करनेके लिये भगवदुपासना करनी पड़ती है। सगुण-साक्षात्कार ही भगवदुपासनाकी अवधि है। ऐसा पुरुष ब्रह्मात्मैक्यबोधका उत्तम अधिकारी कहा गया है। वह साधन-चतुष्टय-सम्पन्न होता है। भगवत्कृपासे उसे भगवत्प्राप्त सद्गुरुकी प्राप्ति होती है और वह उनके अनन्य शरण हो जाता है। फिर परमकारुणिक श्रीसद्गुरुनाथ उसे जीव-ब्रह्मैक्य-बोधक महावाक्योपदेश प्रदान करके उसके स्वरूपगत मूलाज्ञानकी निवृत्ति करके उसे स्वानन्द-साम्राज्यपर अधिष्ठित कर देते हैं। इस प्रकारके जीवब्रह्मैक्यबोधक अनेक श्लोक और उपासकोंके अनुभव विष्णुपुराणादिमें पाये जाते हैं। श्रीपराशरजी श्रीमैत्रेयजीको उपदेश करते हुए कहते हैं—

अहं हरिः सर्वमिदं जनार्दनो
नान्यत्ततः कारणकार्यजातम्।
ईदृङ्मनो यस्य न तस्य भूयो
भवोद्भवा द्वन्द्वगदा भवन्ति॥
(विष्णुपुराण १। २२। ८७)

'मैं तथा यह सम्पूर्ण जगत् जनार्दन श्रीहरि ही हैं, उनसे भिन्न और कुछ भी कार्य-कारणादि नहीं है—जिसके चित्तमें ऐसी भावना है, उसे फिर देहजन्य राग-द्वेषादि द्वन्द्वरूप रोगकी प्राप्ति नहीं होती।'

श्रीयमराजने स्पष्ट शब्दोंमें अपने दूतोंको निम्न आदेश दे रखा है—

सकलमिदमहं च वासुदेवः
परमपुमान् परमेश्वरः स एकः।
इति मतिरचला भवत्यनन्ते
हृदयगते व्रज तान् विहाय दूरात्॥
(विष्णुपुराण ३। ७। ३२)

'यह सम्पूर्ण जगत् और मैं एकमात्र परम पुरुष परमेश्वर वासुदेव ही हैं—जिनकी ऐसी मति हृदयस्थ परमेश्वर श्रीअनन्तमें अविचल हो गयी हो, उन्हें तुम दूरहीसे छोड़कर निकल जाना।'

वेद-वेदान्तका मुख्य प्रयोजन अज्ञानी बद्धजीवको उसके वास्तविक सच्चिदानन्द ब्रह्मस्वरूपका दिव्य बोध प्रदान करा देना है—'सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति'। इसी दृष्टिसे 'अद्वैत सिद्धि' के रचयिता परम श्रीकृष्णभक्त श्रीमधुसूदन सरस्वतीने मङ्गलाचरणका प्रथम श्लोक सच्चिदानन्द व्यापक विष्णुस्वरूप विशुद्ध जीवको लक्ष्य करके ही लिखा है। यह श्लोक सूत्ररूपसे जीवब्रह्मैक्यबोधका सम्पूर्ण रहस्य प्रकट करता है—

मायाकल्पितमातृतामुखमृषाद्वैतप्रपञ्चाश्रयः
सत्यज्ञानसुखात्मकः श्रुतिशिखोत्थाखण्डधीगोचरः।
मिथ्याबन्धविधूननेन परमानन्दैकतानात्मकं
मोक्षं प्राप्त इव स्वयं विजयते विष्णुर्विकल्पोज्झितः॥

इसका सुगम अर्थ इस प्रकार है—तत्त्वतः परात्पर पर-ब्रह्मस्वरूप विष्णुसंज्ञक व्यापक जीव स्वरूपतः स्वयम्प्रकाश है। वह मायासे कल्पित (प्रयुक्त) अन्तःकरणावच्छिन्न चैतन्यरूप प्रमातृ-वृत्तिधर्म जिसमें प्रधान है, ऐसे अनात्म—मिथ्या प्रपञ्चका कल्पित तादात्म्यसम्बन्धसे अधिष्ठान है। वह सच्चिदानन्दस्वरूप है अर्थात् त्रिकालाबाध्य सत्यस्वरूप है, जडविलक्षण प्रकाशरूप अर्थात् ज्ञानस्वरूप है, दुःखासम्भिन्न निरतिशय प्रेमास्पदरूप आनन्दरूप है। वह जीव-ब्रह्मैक्य-बोधक महावाक्य (जो कर्मकाण्ड एवं उपासनाकाण्डरूप श्रुतियोंका उपकार्य है) से जन्य संसर्गानवगाहिनी अखण्डाकार-वृत्तिका विषय है। वह निरतिशयापरिच्छिन्न सुखमात्र-स्वरूप मोक्षको प्राप्त हुएके समान है। वह अविद्या एवं तत्कार्यसे शून्य और अनादि एवं साधारण दृश्यसे शून्य है। अतएव वह परमोत्कर्षेण स्वानन्द-साम्राज्यपर विराजमान है।

अब एक अन्तिम महत्त्वका प्रश्न यह है कि अद्वैतानु-भूतिके अनन्तर ब्रह्मज्ञानी पुरुषका अपने आराध्य प्रभु देवाधिदेव श्रीविष्णुभगवान्‌के साथ किस प्रकारका सम्बन्ध रहता है। क्या वह ज्ञानोत्तर दशामें सर्वथैव भक्तिशून्य हो जाता है या फिर भी उसका अन्तःकरण भक्तियुक्त रहता है? यदि रहता है तो अद्वैतमें द्वैत किस प्रकार सम्भव है; क्योंकि दोनोंका तो विरोध है? इसका उत्तर स्वयं शास्त्रकारोंने तथा अध्यात्मक्षेत्रके अनेक अनुभवी पुरुषोंने असंदिग्धरूपसे देखा है। शास्त्रकारोंने तो स्पष्ट ही कहा है कि शास्त्रचिन्तन, सद्गुरुसेवा और भगवद्भक्ति—ये तीनों बातें जिस रूपमें ज्ञानसे

पूर्व आवश्यक हैं, उसी रूपमें ज्ञानोत्तर दशामें भी—ज्ञानसे पूर्व ज्ञानका अधिकार सम्पादन करके ज्ञानप्राप्तिके लिये और ज्ञानके अनन्तर कृतघ्नता-निवृत्तिके लिये इनका विशेष प्रयोजन है। इस विषयमें निम्न श्लोक प्रमाण है—

यावज्जीवं त्रयो वन्द्या वेदान्तो गुरुरीश्वरः।
आदौ ज्ञानाप्तये पश्चात् कृतघ्नत्वनिवृत्तये॥

अब हम इस विषयमें कुछ अधिकारी पुरुषोंके उदाहरण भी देख लें। भला, भगवत्पूज्यपाद श्रीशंकराचार्यसे बढ़कर अद्वैती और कौन होगा। किंतु उन्होंने ज्ञानोत्तर दशामें ऐसे अनेकानेक हृदयस्पर्शी भावोत्कट भक्तिस्तोत्रोंकी रचना की है, जिनके एक-एक शब्दसे भक्तिस्रोत उमड़ पड़ता है। आपके 'षट्पदी स्तोत्र'का यह (तीसरा) श्लोक प्रसिद्ध ही है—

सत्यपि भेदापगमे नाथ तवाहं न मामकीनस्त्वम्।
सामुद्रो हि तरंगः क्वचन समुद्रो न तारंगः॥

'हे नाथ! (मुझमें और आपमें) भेद निकल जानेपर भी मैं ही आपका हूँ, आप मेरे नहीं हैं; क्योंकि तरंग ही समुद्रकी होती है, तरंगका समुद्र कहीं नहीं होता।'

महाराष्ट्र-संत श्रीज्ञानेश्वर तथा उनके पश्चाद्भावी अन्यान्य महाराष्ट्र-संत ज्ञानोत्तरभक्तिके उत्साही समर्थक थे। इसी प्रकार श्रीरामकृष्ण परमहंस उत्कट अद्वैतानुभूति प्राप्त करके भी समाधिसे उत्थित होनेपर भक्तिभावयुक्त अन्तःकरणसे भजनादिरूप सगुणोपासनामें निमग्न हो जाते थे; क्योंकि ज्ञानोत्तर दशामें भी ज्ञानरक्षाके लिये भगवद्भक्ति आवश्यक है।

उपर्युक्त निरूपणका तात्पर्य यही है कि श्रीभगवान्में सगुण-निर्गुणका कोई विरोध नहीं। दोनों उन्हींके मङ्गलमय रूप हैं। एकका स्वरूप सृष्टिकालीन, व्यावहारिक है तो दूसरेका तात्त्विक या पारमार्थिक। इसी प्रकार उपासककी दृष्टिसे भी भक्ति तथा ज्ञानमें कोई विरोध नहीं। सच्चा भक्त ही सच्चा ज्ञानी हो सकता है और सच्चा ज्ञानी ही सच्चा भक्त हो सकता है।

लक्ष्मी-पार्वती-संवाद

(ले०—श्रीजयदेवीजी)

शिष्ट पुरुषोंके सब कार्य लोकहितके लिये हुआ करते हैं। लक्ष्मी और पार्वती दोनों जगदीश्वरी हैं, अतएव इनका व्यापार लोकहितार्थ हो—इसमें तो कहना ही क्या! एक दिन दोनोंमें इस प्रकार बातचीत हुई—

पार्वतीने कहा—हे विष्णुप्रिये! आज आप मुझे अपना और अपने भर्ताका स्वरूप सुनाइये; क्योंकि आपका और आपके स्वामीका स्वरूप जाने बिना भक्त आपकी भक्ति नहीं कर सकते। आपका स्वरूप ज्ञात होनेपर ही तो लोगोंके मनमें आपके प्रति भक्ति उत्पन्न हो सकती है और आपकी भक्तिसे ही जीवोंका कल्याण होना सम्भव है।

पार्वतीके ऐसे हितकारी वचन सुनकर विष्णुभगवान्की अर्धाङ्गिनी जगज्जननी लक्ष्मीजीने अपने और अपने स्वामीके स्वरूपका यों वर्णन करना प्रारम्भ किया। उन्होंने कहा—"हे महेश्वरी! विष्णुभगवान् एक, अद्वितीय, सच्चिदानन्द, परम ब्रह्म हैं। वे सभी उपाधियोंसे मुक्त हैं, सत्तामात्र हैं, मन-वाणीके अविषय हैं, निष्कल, निरञ्जन, निर्विकार, निर्मल और शान्त हैं, सर्वव्यापी, सबके आत्मा, स्वप्रकाश और सब दोषोंसे रहित हैं। मैं उनकी पराशक्ति हूँ, वेदवेत्ता मुझे 'मूलप्रकृति' कहते हैं। विष्णुभगवान्के सांनिध्यमात्रसे मैं इस जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और संहार करती हूँ। अनेकावतार भी मैं ही धारण करती हूँ। मुझ शक्तिके ही प्रभावसे महाविष्णु बन्ध-मोक्षमयी परम अद्भुत लीलाएँ करते हैं। यह दृश्यमान जगत् उनका पहला अवतार है। इस मुख्य अवतारमेंसे ही विष्णुभगवान्के अनेकों अवतार हुआ करते हैं। मेरे प्रभावसे ही शुद्धस्वरूप होनेपर भी वे 'ईश्वर' की उपाधि धारण करते हैं और स्वयं जीव भी बन जाते हैं। बन्धन-मोक्ष, सुख-दुःख, हानि-लाभ सब मैं ही दिखलाती हूँ।

"पृथ्वी बनकर मैं ही चराचर जीवोंको एवं नदी, पर्वत और समुद्रोंको धारण करती हूँ। मैं ही जल होकर वर्षा करके अन्नादिकी उत्पत्ति करती हूँ और उसके द्वारा जीवोंका पालन करती हूँ। अग्नि और सूर्यके रूपमें मैं ही समस्त ब्रह्माण्डमें उजाला करती हूँ और फलादिको पकाती हूँ। वायुके रूपमें मैं ही सबका जीवन हूँ और आकाश बनकर मैं ही सबको

अवकाश देती हूँ। मैं ही मुण्डमाला धारण करनेवाली, शव-के ऊपर आरूढ़ होकर हाथमें खड्ग धारण करनेवाली कालिका हूँ। गोकुलको आनन्द देनेवाले गोपाल, नन्द-बालक, रासके अधिष्ठाता, गोविन्द, श्यामसुन्दरदेव मैं ही हूँ। मैं ही पञ्चानन, त्रिलोचन, व्योमकेश, उमाकान्त, भूतनाथ, वृषध्वज हूँ। मैं ही लक्ष्मीकान्त, जनार्दन, शङ्ख-चक्र-गदाधारी मनोरम विष्णु हूँ। मैं ही कुण्डलिनी माता, शब्द-ब्रह्मस्वरूपिणी योगेश्वरी, महादेवी, निर्वाणपद देनेवाली हूँ। मैं ही सबको अभीष्ट फल देनेवाली, सर्वविद्यामयी, मूल अविद्यासे मुक्त करनेवाली ब्रह्मविद्या हूँ। मैं ही सबकी रक्षा करनेवाली महेश्वरी, सबकी गति और सबकी परम सुहृद् हूँ। ब्राह्मणोंको शम-दम आदि गुण मैं ही देती हूँ। मेरे प्रभावसे ही क्षत्रिय शूरवीर, धीर और उदार होते हैं। वैश्योंका धन और ऐश्वर्य मैं ही हूँ। मैं ही शूद्रोंका शोक मिटाती हूँ। ब्रह्मचारियोंको इस लोकमें विद्या और परलोकमें उच्च स्थितिकी प्राप्ति मैं ही कराती हूँ। गृहस्थोंसे दान-धर्म, आतिथ्य-सत्कार आदि कराकर इस लोकमें उनकी कीर्ति बढ़ाती हूँ और परलोकमें उन्हें दिव्य भोग प्रदान करती हूँ। वानप्रस्थोंको उनके तपके फलस्वरूप जनलोक आदिकी प्राप्ति मैं ही कराती हूँ। संन्यासियोंको ब्रह्मलोकमें मैं ही ले जाती हूँ। योगियोंको अठारह सिद्धियाँ मैं ही देती हूँ। भक्तोंको भगवान्के नित्य-विहारस्थल श्वेतद्वीपमें मैं ही ले जाती हूँ और ज्ञानियोंको मैं ही तीनों तापोंसे मुक्तकर परमानन्दकी प्राप्ति कराती हूँ।

"देश, काल और वस्तु मैं ही हूँ। सत्त्व, रज और तम, ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय, प्रमाता, प्रमाण और प्रमेय, ध्याता, ध्यान और ध्येय मैं ही हूँ। समष्टि-व्यष्टि मैं ही हूँ। स्थूल, सूक्ष्म और कारण, तीनों देह मैं ही हूँ। तीनों देहोंके अभिमानी—विश्व, तैजस और प्राज्ञ तथा तीनों देहोंकी जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति—तीनों अवस्थाएँ भी मैं ही हूँ। मैं ही देखती हूँ, दीखती हूँ और दिखाती हूँ। चारों वेद, छहों शास्त्र, अठारहों पुराण और अठारहों उपपुराण—सब मेरे ही रचे हुए हैं। इच्छाशक्ति, क्रियाशक्ति और मोहक-शक्ति मैं ही हूँ। सारांश यह है कि दृश्य और द्रष्टारूप अथवा क्षेत्र और क्षेत्रज्ञरूप यह सारा जगत् मेरा ही पसारा है। पुरुष, प्रकृति, महत्तत्त्व, अहंकार, पञ्चमहाभूत, पञ्चप्राण, पञ्चज्ञानेन्द्रिय, पञ्चकर्मेन्द्रिय और पञ्चविषय—ये सब मेरे ही रूप हैं।

"विष्णुभगवान्की मुझ वैष्णवी मायासे मोहित पुरुष इस मेरी क्रियाका आरोप विष्णुभगवान्में करते हैं, अर्थात् मेरे रचे हुए जगत्को विष्णुका रचा हुआ मानते हैं। पारमार्थिकरूपसे विष्णुभगवान् तो न चलते हैं न ठहरते हैं, न शोक करते हैं न इच्छा करते हैं, न त्यागते हैं और न कोई अन्य क्रिया करते हैं, बल्कि आनन्दस्वरूप, अविचल और परिणामहीन रहते हैं। वे केवल मुझ मायाशक्तिके गुणोंसे व्याप्त होनेके कारण ही क्रिया करते हुए-से प्रतीत होते हैं।

"हम दोनोंके स्वरूपको जो भाग्यवान् अधिकारी गुरु और शास्त्रके उपदेशद्वारा जान लेता है, वह न हर्ष करता है न शोक करता है, न भय करता है न जन्म लेता है और न मरता है, वरं अजर, अमर, निर्भय, निश्शोक और मोहरहित हो जाता है।"

भगवान् विष्णुके ध्यानसे मुक्ति

भोगैश्वर्यमदोन्मत्तस्तत्त्वज्ञानपराङ्मुखः। संसारसुमहापङ्के जीर्णा गौरिव मज्जति ॥
यस्त्वात्मानं निबध्नाति कर्मभिः कोशकारवत्। तस्य मुक्तिं न पश्यामि जन्मकोटिशतैरपि ॥
तस्मान्नारद सर्वेशं देवानां देवमव्ययम्। आराधयेत् सदा सम्यग् ध्यायेद्विष्णुं समाहितः ॥
यस्तं विश्वमनाद्यन्तमाद्यं स्वात्मनि संस्थितम्। सर्वज्ञममलं विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते ॥

(श्रीनरसिंहपुराण १६। १४–१७)

जो मनुष्य भोग और ऐश्वर्यके मदसे उन्मत्त और तत्त्वज्ञानसे विमुख है, वह संसाररूपी महान् पङ्कमें उसी तरह डूब जाता है, जैसे कीचड़में फँसी हुई बूढ़ी गाय। जो रेशमके कीड़ेकी भाँति अपनेको कर्मोंके बन्धनसे बाँध लेता है, उसके लिये अरबों जन्मोंमें भी मैं मुक्तिकी सम्भावना नहीं देखता। इसलिये नारद! सदा समाहितचित्त होकर सर्वेश्वर अविनाशी देवदेव भगवान् विष्णुका भलीभाँति आराधन और ध्यान करना चाहिये। जो सदा उन विश्वस्वरूप, आदि-अन्तसे रहित, सबके आदिकारण, स्वरूपनिष्ठ, अमल एवं सर्वज्ञ भगवान् विष्णुका ध्यान करता है, वह मुक्त हो जाता है।

श्रीविष्णुभगवान्‌की रूप-माधुरी

(लेखक—श्रीधर्मदत्तजी वैद्य)

भगवान् विष्णुका वैभव अपार है। उसका पार आजतक कोई नहीं पा सका है—

'न ते विष्णो जायमानो न जातो
देव महिम्नः परमन्तमाप।'
(ऋग्वेद ७। ९९। २)

उनके (अ) अवाङ्मनसगोचर-स्वरूप, (आ) मुनिजनमनोमोहन-रूप, (इ) वात्सल्यादि अनन्त गुण, (ई) भक्तहितकारी लीलाकलापक और (उ) मोक्षाभिलाषियोंके अभीष्ट वैकुण्ठ-धामकी चर्चा अपनी-अपनी शक्तिके अनुसार करके अनेकानेक देवर्षि, ब्रह्मर्षि, महर्षि, राजर्षि, आचार्य, संत, भक्त और कवियोंने अपना जीवन सफल किया है।

निर्गुण-सगुण

जिन शास्त्रोंसे हमें यह विदित होता है कि इस विश्वके विविध व्यापार (अर्थात् सृष्टि-स्थिति-प्रलय)की ललित लीलामें किसी परम पुरुषका हाथ है, उन्हीं शास्त्रोंसे हमें यह भी ज्ञात होता है कि वह परम पुरुष प्रकृतिके सत्त्व, रज और तम—इन तीन गुणोंसे रहित होनेके कारण 'निर्गुण' है और ज्ञान एवं आनन्द आदि अपने अप्राकृत गुणोंके सहित होनेके कारण 'सगुण' भी है।*

निराकार-साकार

वे सगुण परम-पुरुष ही विष्णु हैं। वे प्राकृत आकारसे रहित होनेके कारण 'निराकार' कहे जाते हैं, किंतु अपने चिदानन्दमय आकारके सहित होनेके कारण 'साकार' कहलाते हैं। इस शास्त्रीय सिद्धान्तकी ओर संकेत करते हुए प्रातःस्मरणीय गोस्वामी तुलसीदासजीने अपने 'रामचरितमानस', अयोध्याकाण्डमें महर्षि वाल्मीकिजीद्वारा स्वयं भगवान् श्रीरामके प्रति कहलवाया है—'चिदानंदमय देह तुम्हारी।' (१२६। २½) अर्थात् हे राम! आपका यह अवतार-विग्रह चिदानन्दमय है—जड नहीं, अपितु चेतन है और तापत्रयसे रहित, विशुद्ध आनन्दमय है।

इतनी बात कहकर वाल्मीकिजीने फिर कहा कि 'प्रभो! इस रहस्यको सब नहीं जानते। केवल वे अविकारी व्यक्ति ही जानते हैं, जिनके हृदयमें कोई सांसारिक विकार नहीं है—बिगत बिकार जान अधिकारी। शास्त्रोंका निष्कर्ष यह है कि श्रीविष्णुभगवान् और उनके श्रीराम एवं श्रीकृष्ण आदि स्वरूपावतारोंके आकार चिदानन्दमय होते हैं। इसीलिये उन्हें 'सच्चिदानन्दघन' कहा जाता है; क्योंकि संस्कृतमें 'घन' शब्दका अर्थ होता है ठोस।

रूपकी माधुरी

आनन्दमय भगवान् विष्णुकी रूप-माधुरीका वर्णन यद्यपि संस्कृतके एवं अन्य भाषाओंके भी अनेक ग्रन्थोंमें उपलब्ध होता है, तथापि पुराणमुकुटमणि श्रीमद्भागवतका-सा वर्णन अन्यत्र दुर्लभ है। भागवतके प्रत्येक स्कन्धमें हमें स्थान-स्थानपर विष्णुभगवान्‌के चतुर्भुजरूपकी झाँकी मिलती है। उदाहरणके लिये राजकुमार ध्रुवके प्रति देवर्षि नारदके द्वारा निरूपित श्रीविष्णुभगवान्‌का यह रूप मनन-योग्य है—

प्रसादाभिमुखं शश्वत्प्रसन्नवदनेक्षणम्।
सुनासं सुभ्रुवं चारुकपोलं सुरसुन्दरम्॥
तरुणं रमणीयाङ्गमरुणोष्ठेक्षणाधरम्।
प्रणताश्रयणं नृम्णं शरण्यं करुणार्णवम्॥
श्रीवत्साङ्कं घनश्यामं पुरुषं वनमालिनम्।
शङ्खचक्रगदापद्मैरभिव्यक्तचतुर्भुजम्॥

---

* (अ) परस्य ब्रह्मणः प्राकृतहेयगुणान् प्राकृतहेयदेहसम्बन्धं तन्मूलकर्मवश्यतासम्बन्धं च प्रतिषिध्य कल्याणगुणान् कल्याणरूपं च वदन्ति। (श्रीभाष्य १। १। २१)

(आ) सत्त्वादयो न सन्तीशे यत्र च प्राकृता गुणाः।
स शुद्धः सर्वशुद्धेभ्यः पुमानाद्यः प्रसीदतु॥
(विष्णुपुराण १। ९। ४४)

(इ) स्त्रीपुम्मलाभियोगात्मा देहो विष्णोर्न जायते।
किंतु निर्दोषचैतन्यसुखां नित्यां स्वकां तनुम्।
प्रकाशयति सैवेयं जनिर्विष्णोर्न चापरा॥
(ब्रह्माण्डपुराण)

किरीटिनं कुण्डलिनं केयूरवलयान्वितम् ।
कौस्तुभाभरणग्रीवं पीतकौशेयवाससम् ॥
काञ्चीकलापपर्यस्तं लसत्काञ्चननूपुरम् ।
दर्शनीयतमं शान्तं मनोनयनवर्धनम् ॥
पद्भ्यां नखमणिश्रेण्या विलसद्भ्यां समर्चताम् ।
हृत्पद्मकर्णिकाधिष्ण्यमाक्रम्यात्मन्यवस्थितम् ॥
स्मयमानमभिध्यायेत् सानुरागावलोकनम् ।
(४ । ८ । ४५–५१)

अर्थात् विष्णुभगवान्‌के मुखारविन्दपर प्रसन्नता झलक रही है। उनके वदन और नयनोंसे आनन्द छलक रहा है। उनकी नासिका मनोरम है; भ्रू-युगल कमनीय हैं; कपोल-युगल रुचिर हैं। वे तो कामदेव आदि देवताओंसे भी अधिक सुन्दर हैं। वयमें वे तरुण हैं, नित्यकिशोर जो ठहरे। उनके सभी अङ्ग-प्रत्यङ्ग रमणीय हैं। होठ उनके गुलाबी हैं और अपाङ्गों (नेत्रोंके कोनों)में किंचित् अरुण आभा इङ्गित हो रही है। प्रपन्न जनताके परम आश्रय हैं। वे 'स्वम्' अर्थात् स्वजनोंके परमोत्तम धन हैं, चिन्तामणिके समान समस्त अभिलाषाओंके पूरक हैं। शरणागतोंके रक्षक हैं, करुणा-वरुणालय हैं। उनके वक्षःस्थलके दक्षिण भागमें श्रीवत्स अर्थात् भृगु-पदका चिह्न शोभा दे रहा है। वे घनश्याम हैं। वे समस्त प्रपञ्चमें अपनी अतर्क्य शक्तिके प्रभावसे व्याप्त हैं। गलेमें वे आजानुलम्बिनी वनमाला धारण किये हुए हैं, जिसमें समस्त ऋतुओंके सुन्दर सुगन्धित पुष्प गुँथे हुए हैं और मध्यमें कदम्ब-कुसुम भी लगा हुआ है। उनके चार भुजाएँ हैं और वे अपने चारों कर-कमलोंमें क्रमशः पाञ्चजन्य नामका शङ्ख, सुदर्शन नामका चक्र, कौमोदकी नामकी गदा और एक लीला-पद्म धारण किये हुए हैं। उनके मस्तकके ऊपर किरीट-मुकुटके रत्नोंकी किरणावली छिटक रही है। कानोंमें उनके मकराकृति कुण्डल चमक रहे हैं। बाहुओंमें केयूर और मणिबन्धों (कलाइयों)में रत्नखचित कङ्कण विराज रहे हैं। ग्रीवा पद्मराग-मणिमय कौस्तुभ-नामक रत्नकी भी शोभाको बढ़ा रही है। कोमल मञ्जुल पीताम्बर धारण किये हुए हैं; उत्तरीय भी पीताम्बरका ही है। कटितटपर कलित काञ्ची-की छटा अतिशय कमनीय है। चरण-कमलोंमें सुवर्णमय मणिजटित नूपुर मुखरित हो रहे हैं। कहाँतक कहें, त्रिलोकीमें जितने भी दर्शनीय व्यक्ति हैं, उन सबसे अधिक आकर्षक हैं वे। इतने आकर्षक होनेपर भी उनमें बड़ी शान्ति है। अतएव उन्हें एक बार देख लेनेपर दर्शकके मन और नयनोंमें पुनः पुनः उनका दर्शन करते रहनेकी प्यास-सी बनी रहती है। जो उनका आराधन करते हैं, वे (विष्णुभगवान्) उनके हृदय-कमलकी कर्णिकापर अपनी नखमणियोंसे सुशोभित चरण-कमलोंकी स्थापना करके स्वयं भी उनके अन्तःकरणमें निवास करने लगते हैं। वे जब कृपा करके भक्तकी ओर निहारते हैं, तब उनके अधरपर स्मित और नयनोंमें अनुराग भरा रहता है।

परमहंसोंका मोहक माधुर्य

जिस रूपके लिये यह कहा गया है—

नील सरोरुह नील मनि नील नीरधर स्याम ।
लाजहिं तन सोभा निरखि कोटि कोटि सत काम ॥
(रामचरितमानस १ । १४६)

उसकी छविका दर्शन कर परमहंस महामुनिजन भी मुग्ध हो जाते हैं। एक बार ब्रह्माजीके मानसपुत्र—सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार—लोक-लोकान्तरोंमें आकाशमार्गद्वारा विचरण करते हुए भगवद्धाम वैकुण्ठमें गये। वहाँ उन्होंने लक्ष्मीकान्त भगवान्‌के दर्शन किये। भगवान्‌के वदनारविन्दपर कुन्दके समान शुभ्र, शुचिस्मित विराजमान था। वदनारविन्दका दर्शन बार-बार कर चुकनेपर सनकादिकने विष्णुभगवान्‌के अरुण-मणिवत् भासमान नखावलीसे विद्योतित दोनों चरणारविन्दोंको अपने मनोमन्दिर-में बिठा लिया। ऐसी आकर्षक है भगवन्माधुरी, जो वीतराग सिद्ध पुरुषोंको भी मोहित कर लेती है।

श्रीरामकी रूप-माधुरीका सर्वप्रथम दर्शन करनेपर महाराज जनक वास्तवमें विदेह (मुग्ध) हो गये थे—

'मूरति मधुर मनोहर देखी। भयउ बिदेहु बिदेहु बिसेषी ॥'
(मानस १ । २१४ । ४)

इसी प्रकार वन-वीथियोंमें पदार्पण करते हुए श्रीरामचन्द्रजीका दर्शन करके आस-पासकी जनता उनके सम्बन्धमें कहती है—

'आनँद उमंग मन, जौबन उमंग तन,
रूप की उमंग उमगत अंग अंग है ।'
(कवितावली २ । १५)

—ऐसा है चमत्कार भगवान्‌की रूपछटाका।

निरतिशय माधुर्यका प्रयोजन

यहाँ एक प्रश्न होता है—विष्णुभगवान्‌ने इतना सुन्दर रूप क्यों धारण किया है? इसका समाधान सुगम है कि संसारके ताप-शापसे खिन्न जीवोंको अपनी ओर आकर्षित करनेके लिये। लिङ्ग-पुराणमें एक वचन है—

आत्मप्रयोजनाभावे परानुग्रह एव हि।
प्रयोजनं समस्तानां क्रियाणां परमेष्ठिनः॥

अर्थात् परमात्माकी क्रियाशीलतामें उनका कोई स्वार्थ नहीं है। भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये ही उनकी सब क्रियाएँ होती हैं।

विष्णुपुराण (६ । ७ । ७२) में भी इसी प्रकारका वचन है—

जगतामुपकाराय न सा कर्मनिमित्तजा।
चेष्टा तस्याप्रमेयस्य व्यापिन्यव्याहतात्मिका॥

अर्थात् उन अप्रमेय भगवान् विष्णुकी क्रिया विश्वमें सर्वत्र होती रहती है; वह अव्याहत है, उसे कोई रोक नहीं सकता। वह क्रिया किसी कर्मके वश नहीं हो रही है, उसका उद्देश्य है—जगत्‌के प्राणियोंका उपकार।

स्वामी ब्रह्मानन्दजीने अपने 'ईश्वर-दर्शन' नामक दार्शनिक ग्रन्थके द्वितीय चरणका सोलहवाँ सूत्र लिखा है—

'उपासकानुग्रहार्थं च'

—इसपर भाष्य करते हुए स्वयं ग्रन्थकारने लिखा है—

'कथं न्वेते (भक्ताः) शङ्खचक्रादिहस्तं ''शुचिस्मितं ''''''महामायात्मिकया कमलयाधिष्ठितवामभागं'''मदीयं स्वरूपं सहसा ध्यानपथमानीय भवबन्धनादाशु विमुच्येरन्निस्यव्यक्तोऽपि परमेश्वरो वैष्णवीं व्यक्तिमुरीकृत्य विराजते।'

अर्थात् परमात्मा यद्यपि अव्यक्त (अगोचर) हैं, तथापि उन्होंने इसलिये विष्णुरूप धारण किया है कि उनके शङ्ख-चक्रादिधारी, स्मित-सुन्दर, लक्ष्मी-रक्षित-वामभाग, कमनीय रूपका ध्यान करके उनके भक्त शीघ्र ही भव-बन्धनसे मुक्त हो जायँ।

मन्दिरोंमें माधुरीकी धारणा

मन्दिरोंमें विष्णुभगवान्‌की अथवा उनके अवतारोंकी मूर्त्तियोंकी स्थापना और प्रतिष्ठाका मुख्य उद्देश्य यही है कि उन मूर्त्तियोंके माध्यमसे भगवान्‌की रूप-माधुरी दर्शकोंके मनमें बस जाय। इष्टदेवका दर्शन करके उनका ध्यान अवश्य करना चाहिये। पूर्व-दृष्ट मूर्त्तिके सौन्दर्य और माधुर्यका स्मरण भी अभ्यास करनेसे ध्यानका समकक्ष बन सकता है। ऐसे स्मरण, धारणा और ध्यानमें मन लग जानेपर आनन्दकी अनुभूति होती है। चिन्मय भगवान्‌के ध्यानसे होनेवाला आनन्द लौकिक न होकर अलौकिक होता है। उस आनन्दके अनुभवके अनन्तर मन भगवन्मय बन जाता है। तब वह प्रपञ्चमें अनायास नहीं लौटना चाहता—

एवं भगवतो रूपं सुभद्रं ध्यायतो मनः।
निर्वृत्या परया तूर्णं सम्पन्नं न निवर्तते॥

(श्रीमद्भागवत ४ । ८ । ५२)

माधुरीका साक्षात्कार

प्राचीन युगोंमें भगवत्साक्षात्कारके लिये इसी प्रकार ध्यान-की विधिका उपदेश शास्त्रोंमें पढ़नेको मिलता है। पुराणोंमें इसका प्रचुर विवरण किया गया है। इस युगमें भी अनेक संत-महात्मा हुए हैं, जिन्होंने भगवन्माधुरीमें अपना मन निमग्न कर ध्याननिष्ठ होकर भगवान्‌का साक्षात्कार किया है। सबसे अन्तिम उदाहरण हमें गोरखपुरके श्रीराधामाधव-सेवा-संस्थानद्वारा प्रकाशित 'भाईजी: पावन स्मरण' नामके ग्रन्थमें पढ़नेको मिला है, जिसके ४८९ से ४९८ तकके पृष्ठोंपर नित्यलीलालीन श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारद्वारा श्रीविष्णुभगवान्‌के साक्षात्कारका विशद वर्णन दिया हुआ है। इस साक्षात्कारका विवरण पढ़कर भावुक भक्त-पाठक आनन्दसे रोमाञ्चित हो जाते हैं।

अभिलाषा

भगवान्‌के रूपकी माधुरीकी झलक मिलनेपर भक्तके हृदयमें वैकुण्ठवासी नारायण-स्वामीके शब्द मुखर हो उठते हैं—

'मैं तुम्हें देखा करूँ, औ तुम मुझे देखा करो।'

लक्ष्मीकान्त श्रीविष्णुभगवान्‌से हमारी यह प्रार्थना है कि वे हमलोगोंके भी हृदयोंमें ऐसी अभिलाषाका उदय कर दें।

भगवान् विष्णुका रूप-वैभव

(लेखक—श्रीनलिनीरञ्जन सेन)

जिसको जो वस्तु प्रिय होती है, वह उसके विषयमें बहुत कुछ कह सकता है । भोजनानन्दी व्यक्ति भोजनके विषयमें कुछ देरतक विस्तारसे बातें कर सकता है । कामुक अपनी लम्पटताके विषयमें चिन्तन तथा अपनी प्रेयसीके मुखकी प्रशंसा देरतक कर सकता है । प्रिय संतानके मुख या गुणोंकी प्रशंसा मोह-मुग्ध जननी कुछ समयतक कर सकती है, किंतु भगवान् विष्णुका रूप-वर्णन या उनके गुणोंका उल्लेख श्रीमद्भागवत द्वादश स्कन्धोंमें भी समाप्त न कर सका । मैंने एक बार एक बहुभाषाविद् विद्वान्से पूछा था—'एक शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधारी सुन्दर चतुर्भुज पुरुष हैं । उनके रूपका वर्णन अंग्रेजी भाषामें कितने प्रकारसे करेंगे ?' वे बोले—'एक-सी ही शब्दावलीका व्यवहार न करने दिया जाय तो दो प्रकारसे वर्णन कर सकता हूँ ।' मेरे अनुरोध करनेपर बोले—'सम्भवतः तीन प्रकारसे वर्णन कर सकता हूँ ।' तब मैंने कहा कि 'संस्कृत भाषामें श्रीमद्भागवतमें भगवान् विष्णुके तथा उनके अवतारोंके शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधारी रूपका वर्णन एक सौ स्थानोंमें किया गया है । प्रत्येक स्थानमें वर्णनकी विलक्षण भाषा है । भगवान् विष्णुके गुणोंका वर्णन 'श्रीमद्भागवत' और 'विष्णुपुराण' आदि बृहद् ग्रन्थोंमें है, तथापि जान पड़ता है कि वर्णन अधूरा ही रह गया है ।

रूप-वर्णनके दो-चार उदाहरण नीचे दिये जाते हैं, इनसे उसका कुछ आभास मिल सकेगा—

तमद्भुतं बालकमम्बुजेक्षणं चतुर्भुजं शङ्खगदार्युदायुधम् ।
श्रीवत्सलक्ष्मं गलशोभिकौस्तुभं पीताम्बरं सान्द्रपयोदसौभगम्॥
महार्हवैदूर्यकिरीटकुण्डलत्विषा परिष्वक्तसहस्रकुन्तलम् ।
उद्दामकाञ्च्यङ्गदकङ्कणादिभिर्विरोचमानं वसुदेव ऐक्षत ॥

(श्रीमद्भागवत १० । ३ । ९-१०)

यह श्रीकृष्णके जन्म-समयका वर्णन है । इसके अनुसार 'वसुदेवजीने उस कमलनयन अद्भुत चतुर्भुज, शङ्ख-चक्र-गदा-धारी बालकको देखा, जो श्रीवत्सके चिह्नसे युक्त था, जिसके गलेमें कौस्तुभमणि शोभित हो रही थी, जिसका नील जलदके समान सुन्दर विग्रह था, जो पीताम्बर धारण किये था, बहुमूल्य-वैदूर्य-मणि-मण्डित कुण्डलोंके तेजसे जिसके सहस्र कुन्तल परिष्वक्त हो रहे थे तथा उद्दीप्त काञ्ची, अङ्गद, कङ्कण आदि आभूषणोंसे जो विशेष सुशोभित हो रहा था ।'

ब्राह्मणके मृतपुत्रका उद्धार करनेके लिये श्रीकृष्ण जब अर्जुनको लेकर गये, उस समय श्रीमन्नारायणको जिस रूपमें उन्होंने देखा, उसका वर्णन करते हुए शुकदेवजी कहते हैं—

ददर्श तद्भोगसुखासनं विभुं महानुभावं पुरुषोत्तमोत्तमम् ।
सान्द्राम्बुदाभं सुपिशङ्गवाससं प्रसन्नवक्त्रं रुचिरायतेक्षणम्॥
महामणिव्रातकिरीटकुण्डलप्रभापरिक्षिप्तसहस्रकुन्तलम् ।
प्रलम्बचार्वष्टभुजं सकौस्तुभं श्रीवत्सलक्ष्मं वनमालया वृतम्॥

(श्रीमद्भागवत १० । ८९ । ५५-५६)

'उन्होंने सजल जलदकी-सी नील-कान्ति, सुन्दर पीत-वसन, प्रसन्न-वदन, मनोमोहक विशाल नेत्र, विशिष्ट मणियोंसे जटित किरीट-कुण्डलोंकी प्रभासे सुशोभित सहस्र कुन्तल, सुदीर्घ सुन्दर आठ भुजाएँ, शुभ्र कौस्तुभमणि तथा श्रीवत्सकी शोभासे युक्त, वनमाला-विभूषित, महा-प्रभावशाली, विभुस्वरूप पुरुषोत्तमोत्तम श्रीमन्नारायणको शेषनागकी शय्यापर सुखपूर्वक आसीन देखा ।'

पुनः वामनभगवान्‌के जन्मके समय—

इत्थं विरिञ्चस्तुतकर्मवीर्यः प्रादुर्बभूवामृतभूरदित्याम्
चतुर्भुजः शङ्खगदाब्जचक्रः पिशङ्गवासा नलिनायतेक्षणः ॥
श्यामावदातो झषराजकुण्डलत्विषोल्लसच्छ्रीवदनाम्बुजः पुमान्।
श्रीवत्सवक्षा बलयाङ्गदोल्लसत्किरीटकाञ्चीगुणचारुनूपुरः ॥
मधुव्रतव्रातविघुष्टया स्वया विराजितः श्रीवनमालया हरिः ।
प्रजापतेर्वेश्मतमः स्वरोचिषा विनाशयन् कण्ठनिविष्टकौस्तुभः ॥

(श्रीमद्भागवत ८ । १८ । १-३)

अर्थात् इस प्रकार ब्रह्माजीके द्वारा भगवान् विष्णुके पराक्रम और शक्तिका स्तवन हो जानेके बाद अदितिके गर्भसे श्रीवामनभगवान्‌का प्रादुर्भाव हुआ । वे चारों भुजाओंमें शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म धारण किये, पीतवस्त्रधारी और कमलके समान दीर्घ नेत्र, श्यामवर्ण, मकर-कुण्डलके तेजसे विलसित मुख-कमल, श्रीवत्ससे अङ्कित वक्षःस्थलपर

वलय और अङ्गदसे युक्त भुजाएँ तथा किरीटसे युक्त मस्तक, मधुर ध्वनि करती हुई किङ्किणीसे युक्त कटि, नूपुरोंसे युक्त चरण तथा मधुर गुंजार करते हुए भ्रमरसमूहसे आक्रान्त वनमालाकी शोभासे सुशोभित कण्ठमें कौस्तुभमणि धारण किये श्रीहरि अपने अङ्गके तेजसे ब्रह्मलोकके अन्धकारको दूर करते हुए विराजमान थे।

पुनः दक्षप्रजापतिके यज्ञके पश्चात्—

श्यामो हिरण्यरशनोऽर्ककिरीटजुष्टो
नीलालकभ्रमरमण्डितकुण्डलास्यः।
कम्ब्वब्जचक्रशरचापगदासिचर्म-
व्यग्रैर्हिरण्मयभुजैरिव कर्णिकारः॥
वक्षस्यधिश्रितवधूर्वनमाल्युदार-
हासावलोककलया रमयंश्च विश्वम्।
पार्श्वभ्रमद्व्यजनचामरराजहंसः
श्वेतातपत्रशशिनोपरि रज्यमानः॥
(श्रीमद्भागवत ४। ७। २०-२१)

अर्थात् श्रीविष्णुभगवान् श्यामवर्ण हैं, सोनेकी करधनी धारण किये हैं, सूर्यके समान सुदीप्त किरीटसे युक्त हैं, नीले अलकरूपी भ्रमरोंसे मण्डित कुण्डलोंसे उनका मुख-कमल सुशोभित है; शङ्ख, पद्म, चक्र, शर, चाप, गदा, कृपाण तथा ढालसे सुशोभित स्वर्णिम भुजाओंके द्वारा कर्णिकार-वृक्षके समान विराजमान हैं; उनके वक्षःस्थलपर श्रीदेवी तथा वनमाला अधिश्रित हैं, अपनी मधुर मुस्कानसे युक्त अवलोकनकी छटासे विश्वको मुग्ध कर रहे हैं तथा पार्श्वमें संचालित व्यजन-चामररूपी राजहंस तथा शशिके समान श्वेत आतपत्रसे सुशोभित हैं।

आप देखेंगे कि प्रत्येक बार भाषा कितनी सुन्दर तथा कितनी नवीन हो गयी है। यह अद्भुत साफल्य संस्कृत-भाषाकी समृद्धिका परिचायक है। परंतु श्रीमन्नारायणका रूप भी क्या ही अद्भुत है, इसका आभास भी इन सब वर्णनोंसे प्राप्त होता है तथा इसके द्वारा शुकदेवजी तथा वेदव्यासके भगवत्प्रेमका परिचय भी प्राप्त होता है।

भगवान् विष्णु विराट्स्वरूप हैं। उनका रूप अनन्त है, उनके गुण अनन्त हैं, दया भी अनन्त है, क्षमा अनन्त है, क्रोध अनन्त है और शान्ति भी अनन्त है—सब कुछ अनन्त है। वे अनन्त कृपाके वश होकर मानव-रूप धारण करके मनुष्यसे कहते हैं—'कोई भयकी बात नहीं, मैं तुम्हारे पास हूँ, तुम्हारी रक्षा करने आया हूँ।' यह विराट् किस प्रकार लघुरूपमें आता है, इसकी धारणा दुष्कर है; किंतु अतिशय कृपापात्र कभी-कभी इसकी धारणा कर पाते हैं। वे कैसे विराट् हैं, इसका एक बार वर्णन करनेकी चेष्टा की जाती है।

ऋग्वेदने निर्णय किया है और सायणने अपने भाष्यमें लिखा है—

योजनानां सहस्रे द्वे द्वे शते द्वे च योजने।
एकेन निमिषार्द्धेन क्रममाण नमोऽस्तु ते॥

अर्थात् आलोक अर्द्ध निमेषमें २२०२ योजन जाता है। हिसाब लगानेपर इसका परिमाण प्रति सेकंड १८७००० मील होता है। विज्ञानने भी वेद-निर्णीत आलोककी इस गतिका समर्थन किया है। पृथ्वीसे सूर्य ९ करोड़ मील दूर है। सूर्यसे पृथ्वीतक आलोकके आनेमें ९-१० मिनट समय लगता है। इस प्रकारके भी नक्षत्र हैं, जहाँ इस आलोकको पहुँचनेमें ४००-५०० करोड़ वर्ष लग जाते हैं।

इसपर विचार करनेसे सिर चकरा जाता है। इतना बड़ा विशाल ब्रह्माण्ड है। वह ब्रह्माण्ड विष्णुके उदरमें अवस्थित है। श्रीकृष्णके जन्मके बाद देवकी कहती हैं—

विश्वं यदेतत् स्वतनौ निशान्ते
यथावकाशं पुरुषः परो भवान्।
बिभर्ति सोऽयं मम गर्भगोऽभू-
दहो नृलोकस्य विडम्बनं हि तत्॥
(श्रीमद्भागवत १०। ३। ३१)

'प्रलयके समय आप इस सम्पूर्ण विश्वको अपने शरीरमें वैसे ही स्वाभाविक रूपसे धारण करते हैं, जैसे कोई मनुष्य अपने शरीरमें रहनेवाले छिद्ररूप आकाशको। वही परमपुरुष परमात्मा आप मेरे गर्भवासी हुए, यह आपकी अद्भुत मनुष्य-लीला नहीं तो और क्या है।'

वे विराट्-स्वरूप हैं, फिर भी उन्होंने देवकीके गर्भमें वास किया, यह लीला मनुष्यकी समझसे परे है। इसीलिये कहता हूँ—'हे विराट्! हे अणु-परमाणुरूप! हे घोर! हे सौम्य! हम यह कभी न भूलें कि तुम जैसे निर्गुण हो, वैसे ही सगुण भी हो। तुम्हारे इस सगुणत्वसे लाभ उठाकर हम तुम्हारे श्रीचरणोंमें शरण लेते हैं—

'शरणं देहि गोविन्द चरणं ते दयानिधे ।'

संसार आज तुमको भूल गया है, किंतु तुम उसे नहीं भूले हो । इसी कारण परमश्रद्धेय 'कल्याण' पत्रिकाका यह आह्वान है । इससे जान पड़ता है कि हमारेद्वारा विस्मृत होनेपर भी तुम हमको नहीं भूलोगे । तुम अच्युत हो । अपने श्रीचरणोंसे हमको च्युत नहीं होने दोगे और च्युत हो जानेपर भी हम याद रक्खेंगे—

नमो नमस्तुभ्यमसह्यवेग-
शक्तित्रयायाखिलधीगुणाय ।
प्रपन्नपालाय दुरन्तशक्तये
कदिन्द्रियाणामनवाप्यवर्त्मने ॥

(श्रीमद्भागवत ८ । ३ । २८)

अर्थात् हे असह्यवेगवाले शक्तित्रयसे युक्त, सम्पूर्ण ज्ञानेन्द्रियोंके विषयरूप, शरणागतका पालन करनेवाले, दुर्दमनीय शक्तिवाले, बहिर्मुख लोगोंके लिये अप्राप्य प्रभो ! तुमको नमस्कार हो ! नमस्कार हो ! हम तुमको भूलना चाहते थे, इसी कारण तुम्हारा वज्रदण्ड हमारे सिरपर आघात कर रहा है ।

चतुर्भुज रूपके प्रति एक भक्तकी भावना

(लेखक—श्री १०८ स्वामी श्रीनारायणदासजी प्रेमदासजी उदासी)

एक बार किसी जिज्ञासुने हमारे गुरु महाराज (ब्रह्मलीन ब्रह्मनिष्ठ श्री १०८ स्वामी प्रेमदासजी उदासीन) से प्रश्न किया कि 'भगवान् विष्णुकी चार भुजाएँ ही क्यों हैं ?' इसका उत्तर उन्होंने बड़ी ही सरल भाषामें इस प्रकार दिया—

'सृष्टिमें चारका अङ्क ही एक ऐसा अङ्क है, जिससे सृष्टिका निर्माण हुआ और उसका क्रम बना । चतुर्भुजधारी भगवान् विष्णुके अंदर ज्यों ही सृष्टि-रचनाका संकल्प हुआ, त्यों ही उनके नाभि-कमलसे चतुर्मुख श्रीब्रह्माजीका जन्म हुआ । उनके हाथोंमें चार वेद (साम, ऋक्, यजुः एवं अथर्व) थे और चारों मुख चारों ओर (उत्तर, दक्षिण, पूर्व एवं पश्चिमकी ओर) थे ।

इसके बाद श्रीब्रह्माने भगवान् विष्णुके आज्ञानुसार प्राणियोंको चार आकरों अर्थात् चार वर्गों (अण्डज, जरायुज, स्वेदज एवं उद्भिज्ज) में विभाजित किया और उन प्राणियोंके जीवनकी व्यवस्था भी चार अवस्थाओं (जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति एवं तुरीय) में की । तत्पश्चात् श्रीचतुराननने मानवीय सृष्टिकी रचना अपने चार मानस-पुत्रों सनकादि (सनक, सनन्दन, सनत्कुमार एवं सनातन) से प्रारम्भ की; लेकिन वे चारों भगवान्‌के चारों धाम (श्रीबदरिकाश्रम, श्रीरामेश्वर, श्रीद्वारका एवं श्रीजगन्नाथपुरी) की ओर भगवान् विष्णुकी भक्ति करनेके लिये चल दिये ।

जब सनकादिकोंसे सृष्टि-रचनाका कार्य पूर्ण नहीं हुआ, तब ब्रह्माने चार वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र) उत्पन्न किये; जिनमें चार आश्रमों (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं संन्यास) का गठन हुआ ।

इस प्रकार सृष्टिका क्रम चलता रहा और चलते-चलते भगवान् विष्णुके भक्त भी चार श्रेणियोंमें विभक्त हुए—

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन ।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ॥

(गीता ७ । १६)

'हे भरतवंशियोंमें श्रेष्ठ अर्जुन ! उत्तम कर्म करनेवाले अर्थार्थी, आर्त, जिज्ञासु और ज्ञानी—ऐसे चार प्रकारके भक्तजन मुझको भजते हैं ।'

इन चार प्रकारके भक्तोंको प्रसन्न करनेके लिये भगवान् विष्णुको चतुर्भुजरूप धारण कर चारों हाथोंमें चार वस्तुएँ (शङ्ख, चक्र, गदा एवं पद्म) धारण कर भक्तोंको चार पदार्थ (धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष) देने पड़े ।

भगवान् श्रीविष्णुके ऊपरी दाहिने हाथमें चक्र है, जिससे वे आर्त भक्तोंकी रक्षा करते हैं और नीचे दाहिने हाथमें गदा है, जिससे जिज्ञासु भक्तोंको अपने स्वरूपका ज्ञान प्रदान करते हैं । भगवान्‌के ऊपर बायें हाथमें शङ्ख है, जिससे वे ज्ञानी भक्तोंको मोक्षगति देते हैं एवं नीचे बायें हाथमें पद्म अर्थात् कमलका फूल है, जिससे अर्थार्थी भक्तोंको धन-पदार्थ इत्यादि प्रदान करते हैं । वस्तुतः भगवान् विष्णुको भक्तोंकी प्रसन्नताके लिये ही चतुर्भुजरूप होना पड़ा ।

गुण-रूप-निधान श्रीविष्णुभगवान्

श्रीभगवान् विष्णु अनन्तगुणावलीसे विभूषित हैं। उनके वे गुण दिव्य हैं, स्वाभाविक हैं। जिस प्रकार लवणमें लवणता स्वाभाविक है, अथवा जिस प्रकार सितामें माधुर्य स्वाभाविक है, उसी प्रकार भगवान्के निरतिशय गुण भी स्वाभाविक हैं, स्वरूपभूत हैं, आगन्तुक नहीं—

'गुणैः स्वरूपभूतैस्तु गुण्यसौ हरिरीश्वरः।'

(ब्रह्मतर्क)

वे दिव्य गुण समस्त हेय गुणोंसे विरुद्ध हैं। हेय गुणोंका तात्पर्य प्राकृत गुणोंसे है। सत्त्व, रज और तम प्राकृत गुण हैं—

'सत्त्वं रजस्तम इति प्रकृतेर्नात्मनो गुणाः।'

(श्रीमद्भागवत ६।१२।१५)

ये तीनों ही गुण भगवान्में नहीं हैं—

सत्त्वादयो न सन्तीशे यत्र च प्राकृता गुणाः।
स शुद्धः सर्वशुद्धेभ्यः पुमानाद्यः प्रसीदतु॥

(विष्णुपुराण १।९।४४)

अतएव भगवान् 'निर्गुण' कहलाते हैं—

'ह्लादतापकरी मिश्रा त्वयि नो गुणवर्जिते।'

(विष्णुपुराण १।१२।६८)

प्रकृति-गुणरहित होनेसे भगवान् 'निर्गुण' हैं और आत्म-गुणसहित होनेसे वे 'सगुण' हैं। भगवान्के अप्राकृत, दिव्य कल्याणगुणोंसे विमुग्ध होकर ऐसे-ऐसे महामुनि भी, जो चिज्जडग्रन्थिको खोलकर आत्माराम बन गये हैं, उरुक्रम भगवान्की अहैतुकी सेवा किया करते हैं—

आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे।
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थम्भूतगुणो हरिः॥

(श्रीमद्भागवत १।७।१०)

भगवान्के गुणोंको शेष और शारदा भी पूर्णरूपसे नहीं कह सकते—

'विष्णोर्नु वीर्यगणनां कतमोऽर्हतीह'

(श्रीमद्भागवत २।७।४०)

'भगवान् विष्णुके पराक्रमोंकी गणना कौन कर सकता है।'

गुणात्मनस्तेऽपि गुणान् विमातुं
हितावतीर्णस्य क ईशिरेऽस्य।
कालेन यैर्वा विमिताः सुकल्पै-
र्भूपांसवः खे मिहिका द्युभासः॥

(श्रीमद्भागवत १०।१४।७)

'परंतु भगवन्! जिन समर्थ पुरुषोंने अनेक जन्मोंतक परिश्रम करके पृथ्वीका एक-एक रजःकण, आकाशके हिमकण (ओसकी बूँदें) तथा उसमें चमकनेवाले नक्षत्र एवं तारोंतकको गिन डाला है—उनमें भी भला, ऐसा कौन हो सकता है, जो आपके सगुण स्वरूपके अनन्त गुणोंको गिन सके। प्रभो! आप केवल संसारके कल्याणके लिये ही अवतीर्ण हुए हैं।'

वे सत्य, ज्ञान, आनन्द, सत्यकामता, सत्यसंकल्पता आदि गुण अनन्त हैं—

सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म। (तैत्तिरीयोपनिषद् २।१)
विज्ञानमानन्दं ब्रह्म। (बृहदारण्यक ३।९।२८)
यः सर्वज्ञः सर्ववित्। (मुण्डकोपनिषद् १।१।९)
आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्। (तैत्तिरीयोपनिषद् २।४)
सत्यकामः सत्यसंकल्पः। (छान्दोग्य० ८।१।५)
ह्लादिनी संधिनी संवित्। (विष्णुपुराण १।१२।६८)

भगवान्के सौशील्य, वात्सल्य, माधुर्य आदि अनन्त गुणोंमेंसे भक्तगण छः गुणोंको मुख्य मानते हैं—

नमस्ते वासुदेवाय शान्तानन्तचिदात्मने।
अजिताय नमस्तुभ्यं षाड्गुण्यनिधये नमः॥

और—

शान्ताय सुविशुद्धाय तेजसे परमात्मने।
नमः सर्वगुणातीतषाड्गुण्यायातिवेधसे॥

(ब्रह्मतन्त्र)

पञ्चरात्रके अनुसार ये छः गुण हैं—१. ज्ञान, २. बल, ३. ऐश्वर्य, ४. वीर्य, ५. शक्ति और ६. ओज—

'अभिज्ञानबलैश्वर्यवीर्यशक्त्योजसां युगैः।'

(ब्रह्मतन्त्र)

विष्णुपुराणका वचन है कि ज्ञानादि गुणषट्कको 'भग' कहते हैं—

ज्ञानशक्तिबलैश्वर्यवीर्यतेजांस्यशेषतः ।
भगवच्छब्दवाच्यानि विना हेयैर्गुणादिभिः ॥
(६ । ५ । ७९)

स्थानान्तरमें १. ऐश्वर्य, २. धर्म, ३. कीर्ति, ४. कान्ति, ५. ज्ञान और ६. वैराग्यको 'भग' कहा गया है—

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः ।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा ॥
(विष्णुपुराण ६ । ५ । ७४)

ये छः गुण जिनमें पूर्ण होते हैं, वे ही वास्तवमें 'भगवान्' हैं। ऋषि-महर्षि आदिके लिये 'भगवान्' शब्दका प्रयोग औपचारिक है—

तत्र पूज्यपदार्थोक्तिपरिभाषासमन्वितः ।
शब्दोऽयं नोपचारेण त्वन्यत्र ह्युपचारतः ॥
(विष्णुपुराण ६ । ५ । ७७)

'पूज्य पदार्थोंको सूचित करनेके लक्षणसे युक्त इस 'भगवान्' शब्दका परमात्मामें मुख्य प्रयोग है तथा औरोंके लिये गौण।'

समस्त वस्तुओंका युगपत् साक्षात्कार 'ज्ञान' कहलाता है। श्रीभगवान् वर्तमान तो क्या, समग्र अतीत और अनागतको भी जानते हैं—

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन ।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप ॥
(गीता ४ । ५)

श्रीकृष्ण महाराज बोले, 'हे अर्जुन ! मेरे और तेरे बहुत-से जन्म हो चुके हैं, परंतु हे परंतप ! उन सबको तू नहीं जानता, मैं जानता हूँ।'

लीला करते हुए भगवान् जीवोंको अज्ञानिवत् प्रतीत होते हैं; किंतु किसी भी लीलामें उनका ज्ञान लुप्त नहीं होता। सीताजीके रावणद्वारा हरण किये जानेपर भगवान् श्रीराम रो रहे थे और उन्हें इधर-उधर ढूँढ़ रहे थे। पार्वतीजीको यह दृश्य देखकर श्रीरामकी विज्ञानघनतामें संदेह हुआ। तब शिवजीकी अनुमति लेकर श्रीरामकी परीक्षा लेनेके लिये वे सीताजीका रूप धारणकर उनके सम्मुख उपस्थित हुईं। श्रीराम तत्क्षण पार्वतीजीको प्रणामकर बोले—'कहिये, माताजी ! आज बिना शिवजीके यहाँ वनमें कैसे विचरण कर रही हैं ?'

धारण करनेवाले गुणको 'बल' कहते हैं। विविध चेतनाचेतन स्थावर-जंगम विश्व-ब्रह्माण्ड-निचय भगवान्‌के बलके लवलेशसे ही विधृत है—

'एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि सूर्याचन्द्रमसौ विधृतौ तिष्ठतः । एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि द्यावापृथिव्यौ विधृते तिष्ठतः ॥' (बृहदारण्यक० ३ । ८ । ९)

'हे गार्गि ! इस अक्षरके ही प्रशासनमें सूर्य और चन्द्रमा विशेष रूपसे धारण किये हुए स्थित रहते हैं। हे गार्गि ! इस अक्षरके ही प्रशासनमें द्युलोक और पृथिवी विशेष रूपसे धारण किये हुए स्थित रहते हैं।'

नियमन-सामर्थ्य 'ऐश्वर्य' है। पृथिव्यादि आत्मान्त वस्तुजातका नियमन भगवान्‌के ऐश्वर्यसे ही हो रहा है—

'यः पृथिव्यां तिष्ठन् पृथिव्या अन्तरो यं पृथिवी न वेद यस्य पृथिवी शरीरं यः पृथिवीमन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतः ।' (बृहदारण्यकोपनिषद् ३ । ७ । ३)

'जो पृथ्वीपर रहता हुआ पृथ्वीके भीतर (भी) है, जिसे पृथ्वी नहीं जानती, जिसका पृथ्वी शरीर है और जो भीतर रहकर पृथ्वीका नियमन करता है, वह तुम्हारा आत्मा अन्तर्यामी अमृत है।'

'आत्मनि तिष्ठन्नात्मनोऽन्तरो यमात्मा न वेद यस्यात्मा शरीरं य आत्मानमन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतः ।'
(श्रीभाष्य २ । ३ । ४०)

'जो आत्मामें रहता हुआ आत्माके भीतर भी है, जिसे आत्मा नहीं जानता, जिसका आत्मा शरीर है और जो भीतर रहकर आत्माका नियमन करता है, वह तुम्हारा आत्मा अन्तर्यामी अमृत है।'

किसी प्रकारका विकार न होना 'वीर्य' है। इसी गुणके कारण भगवान् 'अच्युत' कहलाते हैं। दुग्धकी दधिभावापत्ति 'विकार' है। यही परिणाम है, जो प्रकृतिके साम्राज्यमें सर्वत्र अधिगत है। प्रकृतिसे परे होनेके कारण भगवान् निर्विकार हैं। अनेक रूप धारण करना विकार नहीं कहलाता—जैसे सुवर्णका कुण्डल बनना अथवा कटक बनना सुवर्णका विकार न होकर केवल उसका संस्थान-भेद है; क्योंकि कुण्डलावस्थामें अथवा कटकावस्थामें भी सुवर्णत्व अव्याहत रहता है। इसी प्रकार भगवान् धनुर्बाणधर

श्रीरामरूपमें हों अथवा मुरलीमनोहर श्रीकृष्णरूपमें, उनका प्रकृतिपरत्व अक्षुण्ण रहता है ।

अघटितको घटित करनेवाला अथवा असम्भवको भी सम्भव करनेवाला गुण 'शक्ति' है । पर्वतको राई और राईको पर्वत बना देना इत्यादि शक्तिके विलास हैं ।

योगियोंको भी चमत्कृत करनेवाला भगवान्‌का विचित्र कार्य-कला-कौशल उनकी अवाङ्मनसगोचर शक्तिका ही व्यापार है—

'परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते
स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च ॥'
(श्वेताश्वतरोपनिषद् ६ । ८)

पराभिभवसामर्थ्य 'ओज' कहलाता है । इसीको 'तेज' कहते हैं । इसी गुणसे भगवान् दुरासद, दुराधर्ष और दुरतिक्रम रिपुचक्रका अनायास दमन कर लेते हैं । दुर्योधनादि अनेक प्रतिपक्षी महारथी कौरवसभामें संधिसंदेश-हारी श्रीकृष्णको वशमें करना चाहते थे; परंतु उनके अलौकिक ओजसे सब-के-सब स्तब्ध और किंकर्तव्यविमूढ रह गये ।

श्रीभगवान्‌के दिव्य गुणोंकी ऐसी ही महिमा है ।

श्रीभगवान्‌के गुणग्रामको हृदयंगम करनेके लिये यदि हम उन गुणोंका वर्गीकरण कर लें तो अच्छा हो । पहला वर्ग सापेक्ष गुणोंका मान लिया जाय और दूसरा निरपेक्ष गुणोंका ।

जब हम परमात्माको 'जगत्कर्त्ता' कहते हैं, तब परमात्मा-का कर्तृत्व-गुण जगत्सापेक्ष है । अर्थात् जगत् है, तभी तो हम परमात्माको 'जगत्कर्त्ता' कहते हैं । इसी प्रकार जब हम प्रभुको 'पतितपावन' कहते हैं, तब प्रभुका 'पावन' नामक गुण पतित-सापेक्ष है । अर्थात् कुछ जीव पतित हैं, प्रभु उनको पवित्र करते हैं, तभी हम प्रभुको 'पतितपावन' कहते हैं । ऐसे गुण अनेकानेक हैं । ये सब सापेक्ष हैं । इनमेंसे कुछ गुण जड (जगत्)-सापेक्ष हैं—जैसे जगत्कर्त्ता, जगद्धर्त्ता; और कुछ चेतन (जीव)-सापेक्ष हैं—जैसे कृपालु, न्यायकारी; एवं कुछ उभयसापेक्ष हैं—जैसे अन्तर्यामी ।

जो गुण चेतनसापेक्ष हैं, उनमेंसे कुछ तो सर्वसाधारण हैं—जैसे न्यायकारी; क्योंकि परमात्मा बृहस्पतिसे लेकर वनस्पतितक, आब्रह्मस्तम्बपर्यन्त सभी जीवोंका न्याय करते हैं; और कुछ गुण विशेष हैं—जैसे शरणागतवत्सलता, अर्थात् शरणमें आये हुए जीवोंपर वात्सल्य । परमात्माकी न्यायकारिता सर्वसाधारण है, किंतु उनकी शरण्यता विशेष-जीवनिष्ठ है । यही दोनोंका अन्तर है ।

अब रहे वे गुण, जो न तो जीवसापेक्ष हैं और न जगत्सापेक्ष । उदाहरणार्थ जब हम कहते हैं कि भगवान् 'सत्' हैं, तब उनकी सत्ता न तो जगत्सापेक्ष है और न जीवसापेक्ष । भगवान्‌के चैतन्य और आनन्द भी ऐसे ही गुण हैं । उनका अपना परमानन्द किसी वस्त्वन्तरकी अपेक्षा नहीं करता । इसी प्रकार प्रभुकी अमलता और अनन्तता भी ऐसे ही गुण हैं । इन सबको हम उनके निरपेक्ष गुण कह सकते हैं । इन गुणोंको इस प्रकार समझा जा सकता है—
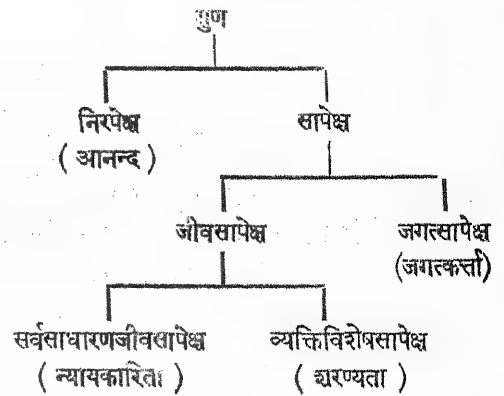
श्रीविष्णुसहस्रनाम-स्तोत्रमें भगवान् विष्णुके एक सहस्र नाम हैं । ये सभी नाम उनके गुणोंके अनुसार हैं । 'यथा नाम तथा गुणः' की सूक्ति उनमें पूर्णतया चरितार्थ होती है । गुण-सूचक होनेके कारण ये सभी नाम 'गौण' कहे गये हैं—

यानि नामानि गौणानि विख्यातानि महात्मनः ।
ऋषिभिः परिगीतानि तानि वक्ष्यामि भूतये ॥
(१३)

भगवान् अनन्त हैं, उनके चरित्र भी ऐसे ही हैं अर्थात् अनन्त हैं, अतएव उनके नाम भी अनन्त हैं । न जाने कबसे वे अपने भक्तोंके साथ विविध मनोरम लीलाएँ करते चले आ रहे हैं । न जाने कितने पतितोंका उन्होंने उद्धार किया है । इन सब बातोंको कौन जान सकता है । हम साधारण जीवोंको तो दो-चार वर्ष पहलेकी भी बहुत-सी

घटनाएँ विदित नहीं, तब अनन्त भगवान्के अनन्त गुणोंकी चर्चा हमसे कैसे हो सकती है। अतीत घटनाओंको देख सकनेवाला कोई योगी भी यदि भगवान्की अतीत लीलावली-के गुणोंसे सम्बद्ध नामावलीका पाठ करने लगे तो वह भी श्रान्त-क्लान्त होकर मौन हो जायगा, किंतु भगवान्के गुण वैसे-के-वैसे ही अनन्त रहेंगे। कविकुल-गुरु कालिदासने रघुवंशमें देवताओंसे ठीक ही कहलाया है—

महिमानं यदुत्कीर्त्य तव संह्रियते वचः ।
श्रमेण तदशक्त्या वा न गुणानामियत्तया ॥
(१०।३२)

'आपके महत्त्वकी प्रशंसा करके जो हम चुप हो रहे हैं, वह इसलिये नहीं कि हमने आपके सब गुण बखान डाले, बल्कि इसलिये कि हम अब थक गये और आगे बोलनेकी शक्ति हममें नहीं रह गयी है।'

'वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।'
(श्वेताश्वतरोपनिषद् ३।८)

'मैं इस महान् पुरुष (परमेश्वर) को जानता हूँ, जो सूर्यकी भाँति प्रकाशस्वरूप तथा अविद्यारूप अन्धकारसे अतीत है।'—इत्यादि अनेक श्रौत वचनोंमें परब्रह्म परमात्माका प्रकृतिसे परत्व बताते हुए और 'आदित्यवर्ण' आदि शब्दोंसे उसके रंग-रूपका निर्देश करते हुए कहा गया है कि उस महापुरुषका ज्ञान प्राप्त करके ही जीव अमरत्व-लाभ कर सकता है; क्योंकि इसके अतिरिक्त निस्तारका कोई अन्य उपाय नहीं है।

श्रुतिने जिस प्रकार—

'यः सर्वज्ञः सर्ववित्' (मुण्डक० १।१।९)
'सर्वस्य वशी सर्वस्येशानः' (बृहदा० ४।४।२२)
'सर्वस्याधिपतिः सर्वमिदं प्रशास्ति' (बृहदा० ५।८)

—इत्यादि वचनोंमें ईश्वरीय सर्वज्ञता, सर्वाधिपत्य आदि गुणोंका निर्देश किया है, उसी प्रकार—

'यत्ते रूपं कल्याणतमम्' (ईशावास्य० १६)
'यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णम्' (मुण्डक० ३।१।३)
'तस्य हैतस्य पुरुषस्य रूपम्' (बृहदा० २।३।६)
'तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूᳬस्वाम्।' (मुण्डक० ३।२।३)

— आदि वाक्योंमें ईश्वरीय रूपका भी निर्देश किया गया है।

आचार्य रामानुजने श्रीभगवान्के रूपका जो प्रतिपादन किया है, उसके कुछ उद्धरण दिग्दर्शनार्थ नीचे दिये जाते हैं—

(१) **यथा ज्ञानादयः परस्य ब्रह्मणः स्वरूपतया निर्देशात् स्वरूपभूतगुणास्तथा इदमपि रूपं श्रुत्या स्वरूपतया निर्देशात् स्वरूपभूतम्।** (वेदार्थसंग्रह)

अर्थात् जिस प्रकार ज्ञानानन्दादि गुण परब्रह्मके स्वरूप-भूत गुण हैं, उसी प्रकार यह रूप भी स्वरूप ही है; क्योंकि श्रुतिने इसे भी 'स्वरूप' कहकर निर्देश किया है। **'इदमपि रूपम्'**से भगवान्की कर-चरण-नयन-वदनादिमती व्यक्तिकी ओर संकेत है।

(२) **परस्य ब्रह्मणः प्राकृतहेयगुणान् प्राकृतहेयदेह-सम्बन्धं तन्मूलकर्मवश्यतासम्बन्धं च प्रतिषिध्य कल्याण-गुणान् कल्याणरूपं च वदन्ति। तदिदं स्वाभाविकमेव रूपम्'।** (श्रीभाष्य)

अर्थात् श्रुतियोंके वाक्य यही उद्घोषित करते हैं कि परब्रह्मके गुण प्रकृतिविकार नहीं हैं—हेय नहीं हैं; और न उनका वपु ही प्राकृत और हेय अथवा कर्माधीन है। इसके विपरीत परब्रह्मके गुण कल्याण-गुण हैं और उनका विग्रह कल्याण-विग्रह है। भगवान्का यह रूप स्वाभाविक है।

(३) **स्वमेव रूपं देवमनुष्यादिसजातीयसंस्थानं कुर्वन्नात्मसंकल्पेन देवादिरूपः सम्भवामि।** (रामानुजकागीताभाष्य)

अर्थात् मैं श्रीकृष्ण अपने ही रूपको देव-मनुष्य आदिके आकारका बनाता हुआ देवादिरूपमें अवतीर्ण होता हूँ।

श्रीभाष्यने जिनको कल्याणगुण और कल्याणरूप बताया है, 'वेदार्थसंग्रह'ने उन्हींको स्वरूपभूत गुण और स्वरूपभूत रूप बताया है। श्रीभाष्योक्त **'स्वाभाविकमेव रूपम्'** यह पदावली विशेष ध्यान देनेयोग्य है। भावका अर्थ है—सत्ता। सत्ता दो प्रकारकी होती है—स्वकीय और परकीय। स्वकीय सत्ता ही दूसरे शब्दोंमें 'स्वभाव' कही जाती है। श्रीभगवान्की कर-चरणवती व्यक्ति स्वाभाविक है—स्वसत्तात्मक है, आगन्तुक, परकीय, प्राकृत, त्रिगुणमयी नहीं है। यह व्यक्ति केवल सत्त्वगुणमयी है, ऐसा भी नहीं कहा जा सकता; क्योंकि रजस्तमःस्पृष्ट सत्त्वकी तो वहाँ कल्पना भी नहीं हो सकती।

साम्प्रदायिकोंमें एक सूक्ति प्रचलित है—

'किमात्मिका भगवतो व्यक्तिः ? यदात्मको भगवान् । किमात्मको भगवान् ? ज्ञानात्मको भगवान् ।'

इससे भी यही सिद्ध होता है कि भगवद्व्यक्ति भगवत्स्वरूप ही है। भगवान्‌की सत्ता शुद्ध है; उसमें अणुमात्र भी तत्त्वान्तरका सम्पर्क नहीं है। शुद्ध सत्ता ही 'शुद्ध सत्त्व' कही जाती है। 'सत्ता' और 'सत्त्व' समानार्थक शब्द हैं। भगवान्‌के विख्यात 'सच्चिदानन्द' नामका प्रथमांश 'सत्' ही है। इसी 'सत्'को शुद्ध तत्त्व, शुद्ध सत्त्व, विशुद्ध तत्त्व, विशुद्ध सत्त्व कहा जाता है। जब यह कहा जाता है कि भगवान् विशुद्ध सत्त्व हैं, तब यह समझना उचित नहीं कि भगवान् प्राकृत गुणत्रयमें प्रथम सत्त्वगुणनामक गुणसे उपहित हैं। शास्त्रने बार-बार श्रीभगवान्‌में प्राकृत हेय गुणोंका प्रतिषेध किया है—

'सत्त्वादयो न सन्तीशे यत्र च प्राकृता गुणाः ।'

(विष्णुपुराण १।९।४४)

जब ज्ञान, आनन्द आदि गुण भी भगवत्स्वरूप ही हैं, तब ज्ञानमूर्ति, आनन्दमूर्ति, ज्ञानविग्रह, आनन्दविग्रह आदि शब्दोंसे भगवान्‌का निर्देश उचित ही है। यों तो भगवान्‌में अनन्त कल्याणगुण हैं और उन्हें 'निखिलगुणमूर्तिमान्' कहा भी जाता है—

'रागद्वेषादिनिर्मुक्तसमस्तगुणमूर्तिमान् ।'

(सात्त्वतसंहिता ७।२५)

तथापि उनमें छः मुख्य हैं। इसीसे भगवान्‌को षाड्गुण्यविग्रह कहा जाता है—

'षाड्गुण्यविग्रहं देवं भास्वज्ज्वलनतेजसम् ।'

(सात्त्वतसंहिता १।२५)

कर-चरणादिमान् भगवद्रूपके भगवत्स्वरूपभूत होनेके कारण उस रूपका सत् शुद्ध सत्त्व, विशुद्ध सत्त्व, सत्य, सदात्मक, शुद्धसत्त्वात्मक, विशुद्धसत्त्वात्मक, सत्यात्मक, सत्स्वरूप, सत्यस्वरूप आदि शब्दोंसे निर्देश करना उचित है। इसी प्रकार उस रूपको ज्ञानात्मक, ज्ञानमय, विज्ञानमय, चित्, चिन्मय, चिदात्मक, संवित्, संविदात्मक, आनन्द, आनन्दात्मक, आनन्दमय आदि शब्दोंसे लक्षित करना भी शास्त्रीय ही है। ऐसे सभी शब्दोंके भावोंको सूचित करनेके लिये भक्तगण 'सच्चिदानन्दघन' शब्दका प्रयोग किया करते हैं, जिसका अर्थ है—सच्चिदानन्द-मूर्ति। 'घन' शब्दका अर्थ है—ठोस।

सद्घन, चिद्घन, आनन्दघन, सच्चिद्घन, सदानन्दघन, चिदानन्दघन शब्दोंसे भी भगवद्रूपका निर्देश होता है।

जीवका प्राकृत देह जिस प्रकार जीवात्मासे भिन्न होता है, उस प्रकार परब्रह्म परमात्माका वपु परब्रह्म परमात्मासे भिन्न नहीं होता। जब भगवद्वपु भगवत्स्वरूप ही है, तब उसमें देह और देहीके भेदकी कल्पनाके लिये अवकाश ही नहीं रह जाता—

'देहदेहिभिदा चैव नेश्वरे विद्यते क्वचित् ।'

(पद्मपुराण)

इसीलिये भगवान्‌के सभी श्रीविग्रहोंके लिये शास्त्रमें कहा गया है कि वे आपादमस्तक परमानन्दमूर्त्ति और केवल ज्ञानमय होते हैं—

'परमानन्दसंदोहा ज्ञानमात्राश्च सर्वतः ।'

(वाराहपुराण)

'प्राकृत तत्त्वोंसे रचित देहेन्द्रियोंकी सहायताके बिना ब्रह्म किस प्रकार बोद्धा, मन्ता, श्रोता, स्प्रष्टा, द्रष्टा, रसयिता, घ्राता हो सकते हैं ?' ऐसी शङ्का नहीं करनी चाहिये। परमात्माका द्रष्टृत्वादि व्यापार इन्द्रियोंपर निर्भर न होकर सर्वज्ञ और सत्यसंकल्प होनेके कारण स्वभावसे ही स्वयमेव होता है। शब्दादिके साक्षात्कारके लिये जीवको श्रोत्रादि इन्द्रियोंकी आवश्यकता है; क्योंकि अविद्याके कारण उसका स्वाभाविक ज्ञान बद्धावस्थामें तिरोहित रहता है। किंतु परब्रह्मका शब्दादि-साक्षात्कार स्वयमेव होता है।

प्राक्तन वासनाओंसे वासितान्तःकरण जीवोंके लिये निरिन्द्रिय भगवान्‌के रूपादि-साक्षात्कारकी बात दुर्गम है, किंतु शास्त्रीय भावनासे चित्तको भावित करनेपर यह विषय सुगम हो जाता है।

प्राकृत सृष्टिके विकासमें राजसाहंकार-सहकृत सात्त्विकाहंकारसे मन आदि एकादश इन्द्रियाँ उत्पन्न हुआ करती हैं। इस सिद्धान्तके निश्चित हो जानेपर कि इन्द्रियोंका विकास अहंकारसे होता है, उस भगवत्तत्त्वमें इन्द्रियोंकी कल्पना ही कैसे हो सकती है, जिसमें कि अहंकारजनक महत्तत्त्वकी

जननी प्रकृति ही नहीं है ? जब मूल ही नहीं, तब पत्र-पुष्प कैसे । मूल-प्रकृतिसे होता है महत्तत्त्व, महत्तत्त्वसे होता है अहंकार और अहंकारसे होती हैं इन्द्रियाँ । जब भगवद्विग्रह अप्राकृत है, उसमें प्रकृतिका सम्बन्ध ही नहीं है, तब प्रकृत्युत्थ इन्द्रियाँ उसमें कहाँसे आ जायँगी ? भगवद्विग्रह चिदानन्दका आकारमात्र है । उस विग्रहमें प्राकृत कल्पनाओं-का आरोप अनुचित है । जब भगवान्‌में सात्त्विकाहंकारोत्थ एकादश इन्द्रियोंकी ही सिद्धि नहीं हो सकती, तब तामसाहं-कारोत्थ स्थूल शरीरकी तो चर्चा ही क्या ।

श्रीनारायणभगवान्‌के दोनों नयन गम्भीर जलमें सरस नालपर लगे हुए और सूर्यकी किरणोंसे विकसित कमलके दलके समान कमनीय हैं—

(१) तस्य यथा कप्यासं पुण्डरीकमेवमक्षिणी ।

(छान्दोग्य० १ । ६ । ७)

(२) यज्ञात्वा पुण्डरीकाक्षं स्वैरर्चेश्वरः सदा ॥

(महाभारत, अनुशासनपर्व)

(३) नमस्ते पुण्डरीकाक्ष शङ्खचक्रगदाधर ।

(विष्णुपुराण १ । ४ । १२)

(४) जितं ते पुण्डरीकाक्ष वासुदेवामितद्युते ।

(सात्वतसंहिता ७ । २५)

श्रीभगवान्‌का वर्ण 'श्याम' है । 'श्याम'का तात्पर्य नीलसे है । 'नील' और 'श्याम'को संस्कृत वाङ्मयमें पर्याय माना गया है—

'कृष्णे नीलासितश्यामकालश्यामलमेचकाः ।'

(अमरकोष १ । ५ । १४)

नीलके स्थानपर श्यामका प्रयोग किया जाता है, यथा—

इन्दीवरदलश्याममिन्दिरानन्दकन्दलम् ।
वन्दारुजनमन्दारं वन्देऽहं यदुनन्दनम् ॥

एवं श्यामके स्थानपर नीलका, यथा—

'स्वकर्णविभ्राजितकुण्डलोल्लसत्-
कपोलनीलालकमण्डिताननाम् ॥'

(श्रीमद्भागवत ८ । १२ । २०)

भगवद्वपुकी नीलिमा शास्त्रमें स्थान-स्थानपर उपवर्णित है । दिग्दर्शनार्थ—

अतसीपुष्पसंकाशं पीतवाससमच्युतम् ।
ये नमस्यन्ति गोविन्दं न तेषां विद्यते भयम् ॥

(महाभारत, शान्तिपर्व ४७ । ९०)

अर्थात् अतसी—अलसीके कुसुमके समान वर्णवाले, कनकाम्बरधारी, अच्युत गोविन्दको जो प्रणाम करते हैं, वे निर्भय हो जाते हैं ।

अवतार-विग्रहमें भी भगवान्‌का यही वर्ण रहता है—

फुल्लेन्दीवरपत्राभं चतुर्बाहुमुदीक्ष्य तम् ।
श्रीवत्सवक्षसं जातं तुष्टावानकदुन्दुभिः ॥

(विष्णुपुराण ५ । ३ । ८)

अर्थात् विकसित नील-कमलके दलके समान वर्णवाले, चतुर्भुज, श्रीवत्साङ्कित वक्षःस्थलवाले भगवान्‌को पुत्ररूपमें अवतीर्ण देखकर वसुदेवजी स्तुति करने लगे ।

इस भगवन्नीलिमाकी उपमा शरद्गगन, केकि-कण्ठ, इन्द्रनील मणि आदिसे दी जाती है ।

श्रीविग्रहसे चतुर्दिक् स्वर्णरश्मियाँ विकीर्ण हुआ करती हैं—

'आप्रणखात् सर्व एव सुवर्णः ।' (छान्दोग्य० १ । ६ । ६)

इसी हेतुसे भगवान् 'स्वर्णाभ' कहे जाते हैं—

'यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णम् ।'

(मुण्डकोपनिषद् ३ । १ । ३)

श्रीजानकी माताने हनुमान्‌जीसे श्रीरघुनाथजीकी कुशल पूछते हुए उनके सुवर्णके समान वर्णवाले मुखका स्मरण किया था—

'कच्चिन्न तद्धेमसमानवर्णं
तस्याननं पद्मसमानगन्धि ।'

(वा० रा० ५ । ३६ । २८)

इससे पूर्व हनुमान्‌जीने श्रीरामका परिचय देते हुए उनकी स्वर्णाभताका उल्लेख किया है—

'स सुवर्णच्छविः श्रीमान् रामः श्यामो महायशाः ।'

(वा० रा० ५ । ३५ । २१)

इनमें तथा एतादृश अन्य शास्त्रोक्त वचनोंमें प्रयुक्त—'सर्व एव सुवर्णः', 'रुक्मवर्णम्', 'आदित्यवर्णम्', 'यथा माहारजनं वासः ।'—आदि वचनावलीका ही भाव भगवान्‌की सुवर्णच्छविताके विषयमें प्रदर्शित हुआ है ।

वर्णतः नील होनेपर भी श्रीभगवान् निज अङ्गसे विनिस्सृत आभाके कारण ही 'हेमाभ' हैं।

कभी-कभी वह हेमाभ आभा इतनी प्रकाशमान होती है कि विग्रह-नीलिमा मृदु विदित होने लगती है, जैसे सूर्यके उज्ज्वल प्रकाशसे गगनकी नीलिमा। उस समय भगवद्विग्रह 'सान्द्रपयोदसौभग', 'सान्द्राम्बुदाभ' और 'नीलजीमूतसंकाश' प्रतीत होता है।

हिरण्यवर्णा श्रीलक्ष्मीजीके सांनिध्यमें तो भगवान्का इन्द्र-नीलके समान नीलवर्ण मरकतके समान हरित प्रतीत होने लगता है—

नमो मरकतश्यामवपुषेऽधिगतश्रिये।
केशवाय नमस्तुभ्यं नमस्ते पीतवाससे॥
(श्रीमद्भागवत ८। १६। ३५)

पीत एवं नील वर्णोंके मिश्रणसे हरित वर्ण होता है, यह वैज्ञानिक सिद्धान्त है।

यद्यपि लीलानिमित्त ऊरीकृत व्यूहादि रूपोंमें श्रीभगवान्के सित, पीत, रक्त आदि विविध वर्ण भी हैं—

'यथा पाण्ड्वाविकम् यथेन्द्रगोपो यथाग्न्यर्चिर्यथा पुण्डरीकम् यथा सकृद्विद्युत्तम्।'
(बृहदारण्यक० २। ३। ६)

'उस पुरुषका रूप ऐसा है, जैसा सफेद ऊनी वस्त्र, जैसा इन्द्रगोप (वर्षा ऋतुमें उत्पन्न होनेवाला एक लाल रंगका कीड़ा), जैसी अग्निकी ज्वाला, जैसा श्वेत कमल और जैसी बिजलीकी चमक होती है।'

तथापि उनका प्रधान वर्ण नील ही है।

श्रीभगवान्के श्रीविग्रहके अन्य माधुर्यका वर्णन शास्त्रमें स्थान-स्थानपर किया गया है। दिग्दर्शनार्थ कुछ पद्य यहाँ दिये जाते हैं—

नारायण नमस्तेऽस्तु पुण्डरीकायतेक्षण।
सुभ्रूललाटसुनससुस्मिताधरविद्रुम॥
पीनवृत्तायतभुज श्रीवत्सकृतभूषण।
तनुमध्य महावक्षः पद्मनाभ नमोऽस्तु ते॥
विलासविक्रमाक्रान्तत्रैलोक्यचरणाम्बुज।
नमस्ते पीतवसनस्फुरन्मकरकुण्डल॥
स्फुरत्किरीटकेयूरहारकौस्तुभभूषण।
(महातन्त्र)

'नारायण! आपको प्रणाम है। आपके नेत्र कमलके समान विशाल हैं, आपकी भौंहें तथा ललाटदेश सुन्दर हैं, सुघड़ नासिका है तथा मूँगेके समान लाल-लाल होठोंपर मधुर मुस्कान खेल रही है। आपकी सुपुष्ट, गोल-गोल और लंबी भुजाएँ हैं, आपने वक्षःस्थलपर श्रीवत्सचिह्नको अलंकाररूपमें धारण कर रखा है, आपका कटिदेश क्षीण है, छाती चौड़ी है, आपकी नाभिरूप सरोवरमें कमल लहरा रहा है, आपको नमस्कार है। आपने त्रिविक्रमरूपमें अपने चरणारविन्दोंकी विलासपूर्ण स्वाभाविक गतिसे तीनों लोकोंको नाप लिया था। आप पीताम्बर धारण किये हैं, आपके कानोंमें मकराकृत कुण्डल झलमला रहे हैं; आपके मस्तकपर किरीट, भुजाओंमें बाजूबंद, गलेमें हार और वक्षःस्थलपर कौस्तुभमणि जगमगा रहे हैं। आपको नमस्कार है।'

श्रीभगवान्की रूप-माधुरीका इस प्रकारका वर्णन वास्तविक है, कल्पनामात्र नहीं—

'न ह्यरूपाया देवताया रूपमुपदिश्यते यथा भूतवादि हि शास्त्रम्।'
(वेदार्थसंग्रह)

अर्थात् परदेवता नारायण साकार हैं, तभी तो शास्त्र उन्हें 'साकार' बताता है; ऐसी बात नहीं कि लोक-प्रतारणार्थ व्यर्थ ही 'निराकार'को साकार बताया जा रहा है; क्योंकि बात जैसी है, शास्त्र वैसी ही कहता है। शास्त्र जीवको सन्मार्गकी ओर ही अग्रसर करता है; क्योंकि वह जीवको इतना प्यार करता है, जितना सहस्रों माता-पिता भी नहीं कर सकते—

'मातापितृसहस्रेभ्योऽपि वत्सलतरं शास्त्रम्।'
(गीताभाष्यमें रामानुज)

तभी तो उसने जीवके कल्याणके लिये श्रीभगवान्के मधुरातिमधुर रूपका मधुर-मधुर पदावलीमें प्रतिपादन किया है।

आचार्य रामानुज श्रीमन्नारायणके उस दिव्यरूपकी स्तुति करते हुए कहते हैं—

'अनवधिकातिशयसौन्दर्याहृताशेषमनोदृष्टिवृत्ति······! लावण्यामृतपूरिताशेषचराचरभूतजात! अत्यद्भुताचिन्त्यनित्य-यौवन! पुष्पहाससुकुमार! पुण्यगन्धवासितानन्तदि-गन्तराल! त्रैलोक्याक्रमणप्रवृत्तगम्भीरभाव! करुणानुरागमधुर-लोचनावलोकिताश्रितवर्ग!'

'नाथ ! अपने असीम एवं उत्कृष्ट सौन्दर्यसे आप सबके मन और नेत्रोंकी वृत्ति (व्यापार) को छीन लेते हैं, अपनी लावण्यसुधासे आप सम्पूर्ण चराचर भूतोंको परितृप्त कर देते हैं, आपके चिरस्थायी यौवनकी छटा बड़ी ही विलक्षण और अचिन्त्य है, आप पुष्पोंकी हँसीसे भी अधिक सुकुमार हैं, आप अपनी पवित्र अङ्गगन्धसे सम्पूर्ण दिशाओंके मण्डलको सुगन्धित कर देते हैं, आपका गम्भीर मनोभाव त्रिलोकीको व्याप्त करने लगता है और आप अपने आश्रितजनोंको करुणा एवं स्नेहसे भरे कटाक्षोंसे निहारते रहते हैं।'

श्रीभगवान्‌का दिव्यरूप अतिशय मधुर है। उसका सभी कुछ—अङ्ग-प्रत्यङ्ग—आनन्दमय होनेके कारण माधुरी-मय है। आचार्य श्रीवल्लभके शब्दोंमें केवल यही कहा जा सकता है कि—

अधरं मधुरं वदनं मधुरं
नयनं मधुरं हसितं मधुरम्।
हृदयं मधुरं गमनं मधुरं
मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्॥ १॥
वचनं मधुरं चरितं मधुरं
वसनं मधुरं वलितं मधुरम्।
चलितं मधुरं भ्रमितं मधुरं
मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्॥ २॥

(मधुराष्टक)

'मथुरामण्डल (व्रज) के एकच्छत्र हृदय-सम्राट् श्रीकृष्ण-के होठ मधुर हैं, मुखारविन्द मधुर है, नेत्र मधुर हैं, हँसी मधुर है, हृदय मधुर है, गति मधुर है—उनका सब कुछ मधुर है। उनकी बोली मधुर है, उनकी लीला (मात्र) मधुर है, उनका पीतपट मधुर है, उनकी मरोड़ मधुर है, उनकी चाल मधुर है, उनका चक्कर खाना मधुर है—उनकी चेष्टामात्र मधुर है।'

और कविवर लीलाशुकके शब्दोंमें—

मधुरं मधुरं वपुरस्य विभोर्मधुरं मधुरं वदनं मधुरम्।
मधुगन्धि मृदुस्मितमेतदहो मधुरं मधुरं मधुरं मधुरम्॥

(श्रीकृष्णकर्णामृत १ । ९१)

'इन परमात्मा श्रीकृष्णका श्रीविग्रह मधुर है, इनका वह मुखारविन्द भी मधुर है, जिसमेंसे मीठी-मीठी गन्ध निकलती रहती है तथा जिसपर मधुर मुस्कान खेलती रहती है। इनका सब कुछ मधुर-ही-मधुर है।'

मनुष्य-शरीरसे देव-शरीरमें वैलक्षण्य

हिंदू-शास्त्रके अनुसार मानव-शरीर और देव-शरीर—दोनों पाञ्चभौतिक होते हैं। पृथ्वी-तत्त्वकी प्रधानताके कारण मानव-शरीर 'पार्थिव' कहा जाता है; किंतु देव-शरीर तेजस्तत्त्वकी प्रधानताके कारण 'तैजस' कहा जाता है।

देव-शरीर और मानव-शरीर—दोनों ही कर्मानुसार मिलते हैं; किंतु मानव-शरीर श्रीमद्भागवतके—

कर्मणा दैवनेत्रेण जन्तुर्देहोपपत्तये।
स्त्रियाः प्रविष्ट उदरं पुंसो रेतःकणाश्रयः॥

(३ । ३१ । १)

—इस वचनके अनुसार रजोवीर्यनिर्मित होता है और देव-शरीर महाभारतके—

तैजसानि शरीराणि भवन्त्यत्रोपपद्यताम्।
कर्मजान्येव मौद्गल्य न मातृपितृजान्युत॥

(वनपर्व २६१ । १३)

—इस वचनके अनुसार रजोवीर्यनिर्मित नहीं होता।

पार्थिव मानव-शरीरमें खान-पानके परिणामरूप स्वेद, मूत्र और पुरीष होते हैं; किंतु तैजस देव-शरीरमें ये नहीं होते। देवताओंके तैजस-शरीरधारी होनेके कारण उन्हें भूख-प्यास नहीं लगती—

'न क्षुत्पिपासे न ग्लानिर्न शीतोष्णभयं तथा।'

अमृत-नामक तैजस द्रव्यके पानद्वारा उनके शरीर अपनी आयुपर्यन्त अजर और अमर बने रहते हैं। स्वर्गलोकके अन्यान्य भोज्य पदार्थ भी अमृतके समान तैजस ही हैं।

मनुष्योंके पलक लगते हैं, देवताओंके नहीं। मनुष्य भूमिको स्पर्श करके खड़े होते हैं, देवता इस प्रकार खड़े नहीं होते। मनुष्यकी छाया पड़ती है, देवताकी नहीं। मनुष्यके शरीर और वस्त्रोंपर धूल लग जाती है, देवताके शरीर और वस्त्र नीरज ही रहते हैं। मनुष्यके शरीरकी माला मुरझाती रहती है, देवताके शरीरसे सम्पृक्त माला खिली रहती है। महाभारत-में लिखा है कि दमयन्ती मनुष्य और देवताओंके वैलक्षण्यसे परिचित थी। जब उसने नल और इन्द्रादिमें वैधर्म्य देखा, तब उसने नलके स्वरूपका निश्चय हो जानेपर, उसीके गलेमें जयमाला डाल दी—

सापश्यद् विबुधान् सर्वानस्वेदान् स्तब्धलोचनान् ।
हृषितस्रग्रजोहीनान् स्थितानस्पृशतः क्षितिम् ॥
छायाद्वितीयो म्लानस्रग्रजःस्वेदसमन्वितः ।
भूमिष्ठो नैषधश्चैव निमेषेण च सूचितः ॥

(महाभारत, वनपर्व ५७ । २४-२५)

इसी प्रकार व्रीहिद्रौणिकपर्वमें देव-शरीर-विषयक उल्लेख है—

न संस्वेदो न दौर्गन्ध्यं पुरीषं मूत्रमेव च ।
तेषां न च रजो वस्त्रं बाधते तत्र वै मुने ॥

(वन०, २६१ । १४)

'उनके शरीरसे न पसीना निकलता है न दुर्गन्ध; न मल-मूत्र और न उनके वस्त्रपर धूल ही लगती है ।'

मनुष्य योग-सिद्धि प्राप्त करके अनेक शरीर धारण कर सकता है, जैसा कि वचन है—

आत्मनो वै शरीराणि बहूनि भरतर्षभ ।
योगी कुर्याद् बलं प्राप्य तैश्च सर्वैर्महीं चरेत् ॥
प्राप्नुयाद् विषयान् कैश्चित् कैश्चिदुग्रं तपश्चरेत् ।
संक्षिपेच्च पुनस्तानि सूर्यो रश्मिगणानिव ॥

(महा० शान्ति० ३०० । २५-२६)

किंतु देवतामें अनेक शरीर धारण करनेकी योग्यता स्वयमेव होती है । आचार्य शंकरने वेदान्तके—

'विरोधः कर्मणीति चेन्नानेकप्रतिपत्तेर्दर्शनात् ।'

(१ । ३ । २७)

—इस सूत्रपर भाष्य करते हुए लिखा है—

'स्मृतिरपि प्राप्ताणिमाद्यैश्वर्याणां योगिनामपि युगपदनेकशरीरयोगं दर्शयति; किमु वक्तव्यमाजानसिद्धानां देवानाम् ।'

मनुष्योंमें पितासे पुत्र उत्पन्न होता है, पुत्रसे पिताकी उत्पत्ति नहीं हुआ करती; किंतु देवता एक-दूसरेसे उत्पन्न हो जाते हैं । इसलिये यास्कने निरुक्तमें देवताओंके विषयमें कहा है—

'इतरेतरजन्मानो भवन्तीतरेतरप्रकृतयः ।'

साधनसम्पन्न मनुष्य मायाका आश्रय लेकर अपने रूपका परिवर्तन कर सकता है । मारीचका मृगरूप धारण करना रामायणमें सुप्रसिद्ध है । इसी प्रकार देवता भी मायासे अपने रूपका परिवर्तन कर सकते हैं । दमयन्तीके स्वयंवरमें इन्द्रादि चार दिक्पालोंका नल-रूप-धारण महाभारतमें प्रसिद्ध है । देवताओंके इसी रूप परिवर्तनको लक्ष्यमें रखकर श्रुति कह रही है—

'इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते ।'

(बृहदारण्यक० २ । ५ । १९)

मनुष्यमें जिस प्रकार चेतन आत्माका अचेतन शरीरसे संयोग शास्त्रसम्मत है, उसी प्रकार देवतामें भी आत्म-शरीर-संयोग है । देवतामें भी मनुष्यके समान देह-देहि भाव होता है ।

जिस प्रकार मनुष्य अपनी आयुके अन्तमें एक शरीरका त्याग कर दूसरा शरीर ग्रहण करता है, उसी प्रकार देवता भी अपनी आयुके अन्तमें एक शरीरका त्याग कर दूसरा शरीर ग्रहण करते हैं । देव-शरीरमें भी मनुष्य-शरीरके समान हानोपादान होते हैं । गीताके—

'ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं
क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति ।'

(९ । २१)

—इस वचनसे मनुष्यका देव-शरीर-ग्रहण और देवताका मनुष्य-शरीर-ग्रहण सिद्ध है ।

देव-शरीरका आकार देखनेमें मनुष्य-शरीरके सदृश होता है । यास्कने 'अथाकारचिन्तनं देवानाम्' कहकर चार विभिन्न मतोंका प्रदर्शन करते समय देवताओंकी पुरुष-विधताका सर्वप्रथम उल्लेख किया है—'पुरुषविधाः स्युरित्येकम् ।'

देव-शरीरसे ईश्वर-शरीरमें वैलक्षण्य

ईश्वरका शरीर देव-शरीरके समान तेजोमय, भौतिक और प्राकृत नहीं होता । वह तो षाड्गुण्यमय, दिव्य और अप्राकृत होता है । अतएव वह ईश्वरका स्वरूप शुद्धसत्त्वमय, शुद्धतत्त्वमय और सच्चिदानन्दमय कहलाता है ।

देव-शरीरके समान ईश्वरका शरीर जड नहीं होता । वह चेतन, स्वयम्प्रकाश और ज्ञानात्मक होता है ।

देवताओंको जिस प्रकार रूपादि-साक्षात्कारके लिये चक्षुरादि इन्द्रियोंकी साहाय्यकी अपेक्षा है, उस प्रकार ईश्वरको नहीं होती । उसका रूपादि-साक्षात्कार स्वयमेव होता है ।

देवतामें जिस प्रकार देह और देहीका भेद होता है, उस प्रकार ईश्वरमें नहीं होता। ईश्वरमें जो देह है, वही देही है और जो देही है, वही देह है—

'देहदेहिभिदा चात्र नेश्वरे विद्यते क्वचित्।'

देव-शरीरका जिस प्रकार हानोपादान होता है, उस प्रकार ईश्वर-शरीरका नहीं। वह नित्य और हानोपादान-हीन है—

सर्वे नित्याः शाश्वताश्च देहास्तस्य परात्मनः।
हानोपादानरहिता नैव प्रकृतिजाः क्वचित्॥

ईश्वरके लिये शरीर-शब्दका प्रयोग औपचारिक है। 'शरीर'का अर्थ है—शीर्ण होनेवाला। ईश्वरका शरीर न कहकर विद्वान्लोग ईश्वरकी व्यक्ति अथवा विग्रह आदि कहा करते हैं। व्यक्ति-शब्दका प्रयोग प्राचीन है। महाभारतका वचन है—

'एषोऽहं व्यक्तिमास्थाय तिष्ठामि दिवि शाश्वतः।'

भक्तोंकी—

'किमात्मिका भगवतो व्यक्तिः? यदात्मको भगवान्। किमात्मको भगवान्? ज्ञानात्मकः शक्त्यात्मकः।

—इस रहस्याम्नाय-सूक्तिमें भी व्यक्ति पदका प्रयोग प्राचीन ही है। वैष्णवतन्त्रके—

'जितं ते पुण्डरीकाक्ष पूर्णषाड्गुण्यविग्रहः।'

—आदि वाक्योंमें विग्रह-शब्दका प्रयोग सुप्रसिद्ध है। देवशरीरके समान भगवद्-व्यक्ति कर्मज नहीं होती—

'जगतामुपकाराय न सा कर्मनिमित्तजा।'
(विष्णुपुराण ६।७।७२)

—प्रत्युत स्वेच्छामयी होती है। श्रुतिने भगवद्विग्रहको—

'मनोमयः' (छान्दोग्योपनिषद् ३।१४।२)

—कहा है। अर्थात् वह विग्रह भगवान्की अपनी भावनाके अनुसार ही है। श्रीमद्भागवतमें ब्रह्माजीका वचन है—

'अस्यापि देव वपुषो मदनुग्रहस्य
स्वेच्छामयस्य न तु भूतमयस्य कोऽपि।'
(१०।१४।२)

इसका भी यही अभिप्राय है कि श्रीभगवद्वपु पाञ्चभौतिक नहीं है, प्रत्युत स्वेच्छामय है। श्रुतिने ईश्वरको—

'अकायमव्रणमस्नाविरम्।' (ईशा० ८)

—कहकर उसकी प्राकृत-देहहीनता बतायी है और—

'यत्ते रूपं कल्याणतमं तत्ते पश्यामि।'
(बृहदारण्यक० ५।१५।१)

—कहकर उसके दिव्यरूपका प्रतिपादन किया है। श्रुतिने जहाँ ईश्वरके लिये शरीर-शब्दका प्रयोग किया है, वहाँ साथमें 'प्राण' शब्द जोड़ दिया है। इस प्रकार ईश्वरको—

'प्राणशरीरः' (छान्दोग्योपनिषद्)

—कहा गया है, जिसका आशय है कि ईश्वर-विग्रह उपचारसे ही 'शरीर' कहा जा सकता है, साक्षात् नहीं; क्योंकि वह तो स्वयं प्राण-जीवन-चैतन्यमय है। ईश्वरविग्रहकी सत्ताके लिये बाह्य वायुकी अपेक्षा नहीं है। वह स्वयं प्राणरूप है।

भौतिक शरीरके समान ईश्वर-विग्रहमें न वृद्धि है और न ह्रास।

ईश्वरका आकार भी पुरुषविध ही है—

'आत्मैवेदमग्र आसीत्पुरुषविधः।'
(बृहदारण्यक० १।४।१)

किंतु वह आकार घनीभूत ब्रह्म ही है। वह पार्थिव शरीरोंसे ही क्या, प्राकृतिक तैजस शरीरोंसे भी अत्यन्त विलक्षण है। वह सत्य, शिव और सुन्दर है। वह निरतिशय सौन्दर्यका आकर है, दिव्य माधुर्यका आधार है, परम लावण्यका आगार है और अनवधिक वात्सल्यका पारावार है।

श्रीभगवान् सर्वशक्तिमान् हैं। वे सब कुछ कर सकते हैं। वे प्राकृत शरीर धारण कर सकते हैं, किंतु किया नहीं करते। जिस प्रकार गङ्गाजलमें स्नान करके पूजाके आसनपर संध्योपासनके लिये विराजमान कोई ब्रह्मर्षि काक-विष्ठासे ऊर्ध्वपुण्ड्र लगा सकनेकी शक्ति और योग्यता होनेपर भी वैसा न करके गोपीचन्दनसे ही ऊर्ध्वपुण्ड्र लगाया करते हैं, उसी प्रकार श्रीभगवान् प्रकृतिकी विकृतिरूप पञ्चभूतोंका शरीर धारण करनेकी शक्ति होनेपर भी पाञ्चभौतिक शरीर धारण नहीं किया करते—

प्रकृतेर्विकृते रूपं भूतसंघातनामकम्।
शरीरं सत्यसंकल्पपुरुषस्येच्छयापि न॥

सम्बन्धोऽपुरुषार्थस्त्वाजीवानां तु स्वकर्मणा ।
सुखदुःखादिभोगार्थं बलाद्देहोऽपि युज्यते ॥
देहः स तु स्वाभिमतः स्वानुरूपः सदोज्ज्वलः ।
अप्राकृतो हरेस्तेन न दोषः कोऽपि युज्यते ॥
(श्रीभाष्यवार्तिक)

ईश्वरका अवतार-विग्रह भी दिव्य और अप्राकृत ही होता है, किंतु दर्शकोंको उसकी मानवता (भौतिकता) ही प्रतीत होती है । श्रीभगवान्‌की अघटनघटनापटीयसी योगमायाके वैभव और चमत्कारको कौन जान सकता है । स्वयं लोक-पितामह ब्रह्मदेवको श्रीकृष्णभगवान्‌की बाल-लीलाएँ देखकर उनकी ईश्वरतामें संदेह हो गया था । श्रीभगवान्‌ने अपने श्रीमुखसे यही कहा है—

'नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः ।'
(गीता ७ । २५)

श्रीभगवान्‌का विग्रह भौतिक नहीं है । भौतिक शरीरके विकार (जन्म, सत्ता, विपरिणाम, वृद्धि, अपक्षय, विनाश) उसमें नहीं हैं ।

'न तस्य प्राकृता मूर्तिर्मेदोमज्जास्थिसम्भवा ।'

इसलिये श्रुतिने परमात्माको **'अकायम्'** कहा है । भक्तोंको श्रीभगवान्‌के जिस विग्रहका दर्शन होता है, वह दिव्य है, भगवत्स्वरूप है, चैतन्यमय है । वह अच्छेद्य, अदाह्य, अक्लेद्य और अशोष्य है । वह आपादमस्तक ज्ञानमय है । भौतिक विकारमय शरीरसे रहित होनेके कारण ईश्वरविग्रह **'शुद्धम्'** कहा गया है । परमात्मा कर्म-फलभोगके लिये शरीर धारण नहीं करते, इसीलिये उन्हें **'अपापविद्धम्'** कहा जाता है । प्राकृत आकाररहित होनेके कारण ईश्वर 'निराकार' है; किंतु दिव्य आकारसहित होनेके कारण 'साकार' है । वह आकार घनीभूत चैतन्य है । अप्राकृत रूपको श्रुतिने 'कल्याणतम' बताया है ।

चैतन्यमयी सत्ता और प्राकृतिक सत्त्व गुणदृष्टिसे अंशतः समान होते हुए भी परस्पर अत्यन्त विलक्षण हैं । इसी प्रकार दिव्य आकार और प्राकृतिक आकार आकार-दृष्टिसे अंशतः समान होते हुए भी परस्पर अत्यन्त विलक्षण हैं ।

श्रीभगवान्‌का सौन्दर्यसारसर्वस्व, अवाङ्मानसगोचर, वह दिव्यरूप श्रुति-शास्त्रोंका एकमात्र लक्ष्य है । परमहंस महामुनिजन उसी श्रीविग्रहके चरणोंके चिन्तनमें लीन रहा करते हैं । वह श्रीविग्रह अत्यन्त निर्मल है । यदि वहाँ भी दोष-धातु-मलका संनिवेश होता तो संत गोस्वामी तुलसीदासजी एक बार रामा-विरक्त होकर दुबारा रामानुरक्त क्यों होते ?

जिस प्रकार पाषाण-प्रतिमाका उपादान पाषाण है, उस प्रतिमाके चरणवदनादि अवयव पाषाणमय हैं, उसी प्रकार ईश्वरके चिद्घन-विग्रहका उपादान चैतन्य है, उसके कर-चरणादि अवयव चैतन्यमय हैं । ईश्वर शरीरत्रयरहित होते हुए ही साकार है । उसका आकार उसका स्वरूप ही है । ईश्वरके स्वाभिमत-नित्य-दिव्य-आकारवान् होनेमें श्रुति, स्मृति, इतिहास और पुराण प्रमाण हैं । ईश्वर-विग्रह ज्ञान-शक्त्यादि विविध गुणोंका विलासमात्र है ।

सौन्दर्यघन श्रीभगवान्‌में किसी भी प्रकारके मलादिकी असुन्दर भावना मलिन-वासना-विदूषित अन्तःकरणकी वृत्तियोंका परिवर्त्तनमात्र है । उन परम सुन्दरमें असौन्दर्य-की कल्पना उतनी ही भ्रान्त है, जितनी उसी सकल-मङ्गल-भवनमें किसी भी प्रकारके अमङ्गलकी भावना अथवा लावण्यघन सैन्धव-खण्डमें काटवका उत्प्रेक्षण, अथवा माधुर्यघन सितोपलमें तिक्तताका चिन्तन ।

शारद गगनकी-सी नीलिमा, श्रीलक्ष्मीजीका उरोदेशमें निवास, नाभिसे कमलोदय और उस कमलसे बालक चतुराननका जन्म इत्यादि श्रीभगवान्‌के श्रीविग्रहका अचिन्त्य वैलक्षण्य है ।

जिस प्रकार लोकमें जायापतीसे 'अपरस्परसम्भूत' सृष्टि होती है, उसी प्रकार श्रीमन्नारायणसे ब्रह्मदेवका जन्म नहीं होता । उनके तो नाभि-सरोरुहसे ही सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मदेवका आविर्भाव शास्त्रसिद्ध है ।

इस विश्व-विलासके उदय, विभव और विलयके एकमात्र कारणको मनीषियोंने अनेक नाम दिये हैं—

'एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति ।'
(ऋक्० १ । १६४ । ४६)

जिन्होंने उसे 'विष्णु' नाम दिया है और जो उसे सगुण साकार-रूपमें भजते हैं, उन वैष्णव भक्तोंने अपने आराध्य-देवके नाम, रूप, लीला और धामके सम्बन्धमें अनेक

विवरण दिये हैं। उन्हींके दृष्टिकोणसे भगवान्के वयके सम्बन्धमें कुछ पंक्तियाँ नीचे दी जा रही हैं।

ऋग्वेदमें श्रीविष्णुभगवान्को अत्यन्त पुरातन होनेपर भी अत्यन्त नूतन बताया गया है—

'यः पूर्व्याय वेधसे नवीयसे सुमज्जानये विष्णवे ददाशति।'
(१।१५६।२)

अनादि होनेके कारण वे प्रत्नतम हैं, किंतु दर्शनमें वे नित्यनवीन-से हैं। प्राचीन होनेके कारण उन्हें अत्यन्त वृद्ध होना चाहिये, किंतु हैं वे अर्वाचीन-से। यह उनका 'ऐश्वर्य' है।

ऋग्वेदमें ही अन्यत्र उनको सुकुमार-युवा बताया गया है—

'बृहच्छरीरो विमिमान ऋक्वभिर्युवा कुमारः प्रत्येत्याहवम्॥'
(१।१५५।६)

सुकुमार युवकका सुगम अर्थ है—नवयुवक। नवयौवनका दूसरा नाम है—कैशोर। श्रीभगवान् सदा कैशोर वयमें रहते हैं, यह बात श्रीमद्भागवतके 'सन्तं वयसि कैशोरे भृत्यानुग्रहकातरम्॥' (३।२८।१७) इस वचनसे स्पष्ट है। शास्त्रमें जहाँ-जहाँ श्रीभगवान्के यौवन, नवयौवन किंवा तारुण्यका उल्लेख मिले, वहाँ-वहाँ उपर्युक्त निर्देशके अनुसार कैशोरका ही तात्पर्य समझना चाहिये। इस दृष्टिसे, उदाहरणके लिये—

'तरुणं रमणीयाङ्गमरुणोष्ठेक्षणाधरम्।'
(भागवत ४।८।४६)

—इस श्लोकमें 'तरुण'का अर्थ किशोर लेना चाहिये। यौवनसे भी अधिक माधुर्य है कैशोरमें, अतः वही वय श्रीभगवान्को अभीष्ट है। यौवनमें पूर्णताकी सिद्धि अवश्य है, किंतु उसमें नवनवोन्मेषशालिता नहीं है। वह तो कैशोरमें ही सुलभ है। अतएव कैशोर ही यौवनसे सुन्दरतर है और कैशोर ही सब अवस्थाओंमें सुन्दरतम है। इसी हेतुसे श्रीमद्भागवतमें अन्यत्र श्रीभगवान्को 'अपीच्यवयस्क' बताया गया है—

प्रेक्षणीयं नृलोकस्य सानुरागस्मितेक्षणम्।
अपीच्यवयसं मत्तमृगेन्द्रोदारविक्रमम्॥
(१०।५१।२६)

भगवान्के पार्षदोंका वय भी 'नूतन' बताया गया है—

'सर्वे च नूत्नवयसः सर्वे चारुचतुर्भुजाः।'
(भागवत ६।१।३५)

भगवान्के पार्षद प्रायः आकार-प्रकारमें भगवान्के समान होते हैं। भगवान्का वय नूतन है, तभी उनके पार्षदोंका वय 'नूतन' बताया गया है। नूतन वयका अर्थ 'कैशोर' ही युक्तिसंगत प्रतीत होता है।

पंद्रह वर्षके आस-पासका वय 'कैशोर' कहलाता है। इसी कैशोरसे श्रीभगवान् सदा सम्पन्न रहते हैं। यह कैशोर वय उनके नित्यधामके नित्यसुन्दर रूपका है। अवतार-समयमें वे इच्छानुसार अपनी मायासे बढ़ते हुए दीख पड़ते हैं, परंतु किशोर वयसे आगे नहीं बढ़ते। मन्दिरोंमें सर्वत्र विष्णु-मूर्तिको नवीन वय, नूतन वय, अपीच्यवय, नवयौवन अथवा कैशोरमें ही प्रदर्शित करनेका सनातन सम्प्रदाय है।

भगवान्के श्रीविग्रहमें 'श्री'का निवास है। भगवान्की शक्तिका ही नाम 'श्री' है। 'श्रयते हरिम् इति श्रीः।' श्री नित्य ही भगवदाश्रया हैं—

'श्रियं देवीं मदाश्रयाम्।'
(श्रीमद्भागवत ८।४।२०)

'श्री'का ही दूसरा नाम 'लक्ष्मी' है, जैसा कि ऋग्वेदीय श्रीसूक्तके प्रथम मन्त्रोक्त—

'चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीम्'

—इस वचनसे और निम्नाङ्कित भागवतवचनोंकी एकवाक्यतासे विदित है—

श्रिया विलोकिता देवाः सप्रजापतयः प्रजाः।
शीलादिगुणसम्पन्ना लेभिरे निर्वृतिं पराम्॥
निःसत्त्वा लोलुपा राजन् निरुद्योगा गतत्रपाः।
यदा चोपेक्षिता लक्ष्म्या बभूवुर्दैत्यदानवाः॥
(८।८।२८-२९)

'देवता, प्रजापति और प्रजा—सभी लक्ष्मीजीकी कृपा-दृष्टिसे शील आदि उत्तम गुणोंसे सम्पन्न होकर बहुत सुखी हो गये। परीक्षित्! इधर जब लक्ष्मीजीने दैत्यों और दानवोंकी उपेक्षा कर दी, तब वे सब निर्बल, उद्योगरहित, निर्लज्ज और लोभी हो गये।

भगवान् नारायण अनन्त शक्तियोंके आवास हैं और

लक्ष्मीजी उन समस्त शक्तियोंकी समुदाय-मूर्ति—समष्टि हैं। वे नारायणकी अनपायिनी शक्ति हैं, अतएव नारायण-विग्रहके साथ लक्ष्मी-विग्रहका ध्यान कर्त्तव्य है। यदि दो शक्तियोंके साथ नारायणका ध्यान अभीष्ट हो तो श्री और लक्ष्मीके साथ करना चाहिये। उस दशामें चिच्छक्ति 'श्री' हैं और आनन्दशक्ति 'लक्ष्मी' हैं—

'श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यौ।'

(यजुर्वेद ३१। २२)

यदि तीन शक्तियोंके साथ नारायणका ध्यान अभीष्ट हो तो श्री, भू और लीलाके साथ करना चाहिये। 'भू' सच्छक्ति हैं—'भू सत्तायाम्।' और 'लीला' शब्द आनन्दका सूचक है। इस प्रकार सत्, चित् और आनन्द नामकी तीन शक्तियोंके साथ नारायणका ध्यान सम्पन्न होता है—

चतुर्भुजमुदाराङ्गं श्यामं पद्मनिभेक्षणम्।
श्रीभूमिलीलासहितं चिन्तयेच्च सदा हृदि॥

(भारद्वाजसंहिता ३। ४८)

यदि चार शक्तियोंके साथ नारायणका ध्यान करना हो तो लक्ष्मी, कीर्त्ति, जया और मायाके साथ करना चाहिये—

'लक्ष्मीः कीर्त्तिर्जया माया देव्यस्तस्याखिलाः सदा।'

(जयाख्यसंहिता ६। ७७)

अथवा भागवतके—

'पुष्ट्या श्रिया कीर्त्त्यजयाखिलर्द्धिभि-
र्निषेव्यमाणं परमेष्ठिनां पतिम्।'

(१०। ८९। ५७)

—इस श्लोकके अनुसार पुष्टि, श्री, कीर्त्ति और अजाके साथ करना चाहिये।

यदि सात शक्तियोंके साथ नारायणका ध्यान करना हो तो गीताके—

'कीर्त्तिः श्रीर्वाक् च नारीणां स्मृतिर्मेधा धृतिः क्षमा॥'

(१०। ३४)

—इस वचनके अनुसार कीर्त्ति, श्री, वाणी, स्मृति, मेधा, धृति और क्षमाके साथ करना चाहिये।

यदि आठ शक्तियोंके साथ नारायणका ध्यान करना हो तो श्रीरुक्मिणी, सत्यभामा, जाम्बवती, सत्या, भद्रा, नाग्नजिती, कालिन्दी और मित्रविन्दाके साथ श्रीकृष्ण विग्रहका ध्यान करना चाहिये।

यदि बारह शक्तियोंके साथ नारायणका ध्यान करना हो तो भागवतके—

श्रिया पुष्ट्या गिरा कान्त्या कीर्त्या तुष्ट्येलयोर्जया।
विद्ययाविद्यया शक्त्या मायया च निषेवितम्॥

(१०। ३९। ५५)

—इस वचनके अनुसार श्री, पुष्टि, वाणी, कान्ति, कीर्त्ति, तुष्टि, इला, ऊर्जा, विद्या, अविद्या, शक्ति और मायाके साथ करना चाहिये।

यदि और भी अधिक शक्तियोंके साथ नारायणका ध्यान करना हो तो १६१०८ दिव्य मूर्त्तियोंकी भावना करनी चाहिये, जो उपासनाकाण्डकी ऋचाओंकी अधिष्ठात्री चिन्मयविग्रहा देवियाँ हैं। भगवच्छक्तियाँ भगवद्विग्रहमें ही लीन रहती हैं। उपासना-समयमें ऐसी भावना कर्त्तव्य है कि वे शक्तियाँ श्रीविग्रहसे प्रकट हो रही हैं—

ततो भगवतो विष्णोर्भासा भास्वरविग्रहात्॥
लक्ष्म्यादीर्निस्सृता ध्यायेत् स्फुलिङ्गनिचया यथा।

(जयाख्यसंहिता १३। १०५-६)

ये सब लक्ष्मीजीकी विलासमूर्तियाँ हैं। लक्ष्मीजी ही इन सबमें प्रधान हैं।

लक्ष्मीजी सुवर्णवर्णा, परमकान्तिमती और अतिशय सुन्दरी हैं। वे स्मितवदना, कमलानना और कमल-दलनयना हैं। श्रीनारायणका-सा पीताम्बर उनको प्रिय है—

'समुद्रः पीतकौशेयवाससी समुपाहरत्।'

(श्रीमद्भागवत ८। ८। १५)

वे चतुर्भुजा हैं। प्रथम कर-युगलमें कमल-युगल लिये हुए हैं। द्वितीय दक्षिण पाणिसे अभय और वाम पाणिसे वर दे रही हैं। किरीट, कुण्डल, केयूर, कटक, ग्रैवेय, हेमहार, कमलमाला, काञ्ची, नूपुर आदि विभूषणोंसे विभूषिता हैं। कमलासनपर विराजमान हैं और स्यन्दन उनका प्रिय यान है। वे दयामयी, उदार, यशस्विनी, देवजुष्टा, सर्वलोकेश्वरी, दुराधर्षा और त्रिभुवन-वैभवकारिणी हैं। माधवी, माधवप्रिया, हरिवल्लभा, विष्णुपत्नी, विष्णुप्रियसखी, रमा, इन्दिरा आदि श्रीलक्ष्मी देवीके नामान्तर हैं। धन धान्य, गाय-घोड़े,

पुत्र-कलत्र, बन्धु-बान्धव, दास-दासी, आरोग्य और शतायुष्यप्रभृति सकल कामनाओंको पूर्ण करनेवाली हैं, एवं अपने वात्सल्यमय पतितपावन अवलोकनसे चरणाश्रितोंको नारायणके पदपद्मोंकी आराधनामें अग्रसर करनेवाली हैं। श्रीसम्प्रदायकी वे आद्य-प्रवर्त्तिका हैं।

शक्ति और शक्तिमान्‌का अभेद है, अतएव श्री और विष्णु एक ही हैं। विष्णुसे श्री भिन्न नहीं हैं। वे भगवान्‌से कभी वियुक्त नहीं हैं—

'अनपायिनी भगवतः श्रीः साक्षादात्मनो हरेः।

(श्रीमद्भागवत १२ । ११ । २०)

विष्णु सर्वव्यापक हैं और उनकी शक्ति जगन्माता श्री भी सर्वव्यापिका हैं—

नित्यैवैषा जगन्माता विष्णोः श्रीरनपायिनी।
यथा सर्वगतो विष्णुस्तथैवेयं द्विजोत्तम॥

(विष्णुपुराण १ । ८ । १७)

'त्वयैतद् विष्णुना चाम्ब जगद् व्याप्तं चराचरम्॥'

(अग्निपुराण २३७ । १०)

अवतार-रूपमें भी श्री भगवान्‌की सहायिका होती हैं। रामरूपमें वे ही सीता हैं और कृष्णरूपमें वे ही रुक्मिणी हैं। जब भगवान् देवताओंमें अवतीर्ण होते हैं, तब श्री भी देवीरूप धारण कर लेती हैं और जब भगवान् मनुष्यलोकमें मानवाकृति धारण करते हैं, तब श्री भी मानवाकृतिमती बन जाती हैं—

एवं यदा जगत्स्वामी देवदेवो जनार्दनः।
अवतारं करोत्येषा तदा श्रीस्तत्सहायिनी॥

× × ×

राघवत्वेऽभवत् सीता रुक्मिणी कृष्णजन्मनि।

(विष्णुपुराण १ । ९ । १४२, १४४)

'सीता लक्ष्मीर्भवान् विष्णुः।'

(वा० रामायण ६ । ११७ । २७)

'श्री' और 'श्रीमान्' अभिन्न और एकतत्त्व होनेपर भी भक्तानुग्रहविग्रह-रूपमें भिन्नवत् प्रतीत होते हैं। लक्ष्मीनारायण, सीताराम, राधाकृष्ण आदि रूप परतत्त्वके ही लीलानिमित्तक दो-दो रूप हैं, किंतु युगलरूपमें अनन्यता है—

'अनन्या हि मया सीता भास्करेण यथा प्रभा॥'

(वा० रामायण ६ । ११८ । १९)

प्रभा एवं प्रभाधन सूर्य जिस प्रकार अनन्य और अभिन्न हैं, उसी प्रकार लक्ष्मी और नारायण अनन्य और अभिन्न हैं। जिस प्रकार तरंगराशि समुद्रसे अनन्य और अभिन्न हैं, उसी प्रकार लक्ष्मीजी नारायणसे अनन्य और अभिन्न हैं—

सूर्यस्य रश्मयो यद्वदूर्मयश्चाम्बुधेरिव।
सर्वैश्वर्यप्रभावेण कमला श्रीपतेस्तथा॥

(जयाख्यसंहिता ६ । ७८)

ज्योत्स्नाका निवास जिस प्रकार राकेशमें है, उसी प्रकार श्रीका निवास योगियोंके ध्यानास्पद भगवद्वपुमें ही है—

का त्वन्या त्वामृते देवि सर्वयज्ञमयं वपुः।
अध्यास्ते देवदेवस्य योगिचिन्त्यं गदाभृतः॥

(अग्निपुराण २३७ । ६)

'हे देवि! देवदेव गदाधरके सर्वयज्ञमय, योगियोंद्वारा चिन्तनीय विग्रहमें आपके सिवा और किसका निवास सम्भव है?'

भगवान्‌के दिव्य वपुमें भी वक्षःस्थल ही श्रीकी आवासभूमि है—

'तस्याः श्रियस्त्रिजगतो जनको जनन्या
वक्षो निवासमकरोत् परमं विभूतेः।'

(श्रीमद्भागवत ८ । ८ । २५)

'श्यामे पृथावुरसि शोभितया श्रिया'

(श्रीमद्भागवत ३ । १५ । ३९)

जब श्री और विष्णु विभिन्न रूपोंमें व्यक्त होते हैं, तब 'श्री' वात्सल्य-मूर्ति अम्बा हैं और 'विष्णु' जगत्-पिता हैं—

'त्वमम्बा सर्वभूतानां देवदेवो हरिः पिता।'

(अग्निपुराण २३७ । १०)

श्री नहीं हैं भिन्न तुमसे नाथ! तुम ही हो रमा।
इस रूपमें जगके पिता, उस रूपमें हो विश्व-मा॥
तुम बसो मेरे हृदयमें, देव! यह वर दान दो।
मेरे विनत सिरपर प्रभो! हे नाथ! अपना हाथ दो॥

(कृ० १० भा०)

'हरि सौ ठाकुर और न जन कौ'

(लेखक—श्रीब्रह्मेशजी भटनागर, एम्० ए०)

पाञ्चाली रुकी। वृक्षके नीचे शिलाखण्डपर बैठ गयी। ग्रीष्मकालीन मध्याह्नकी ऊष्मा तीव्रतर हो रही थी। उष्ण पवनके झोंकोंसे शरीर झुलस रहा था। वह थकी-सी ललाट-पर स्थित स्वेद-बिन्दुओंको अञ्चलसे पोंछ रही थी। अर्जुनने मुड़कर प्रश्नसूचक दृष्टिसे देखा।

'मैं श्लथ हो गयी हूँ, देव! कुछ विश्राम कर लूँ, फिर चलूँगी।' थके हुए स्वरमें उसने अनुनय की। 'यहाँ जलाशय न होगा? कण्ठ अवरुद्ध हो रहा है।'

'देखता हूँ।' कहकर अर्जुन शाल्मली-वृक्षपर चढ़ गये। उत्तर दिशामें एक कुटिया दिखायी दी। 'पाञ्चाली!' वृक्षसे उतरते हुए अर्जुनने कहा—'समीप ही कुटी है। वहाँ अवश्य जल मिलेगा।'

वह शिथिल पगोंसे चली।

अर्जुनने कुटीका द्वार थपथपाया। वृद्धाने द्वार खोलकर स्नेहभरे स्वागतके स्वरमें कहा—'आओ, बेटी! कुटीमें आओ! लगता है, तुमलोग वनमें मार्गसे भटक गये हो। शीतल जल पान करो।' दोनों भीतर चटाईपर बैठ गये। वृद्धाने फल रखते हुए ममतासे कहा—'अकिंचनाकी कुटियामें रखे हुए फलोंको आतिथ्यरूपमें ग्रहण करो, बेटी! मैं जल लाती हूँ।' वह डोल लेकर चली गयी। वृद्धाकी अभ्यर्थना-पर मुग्ध हो दोनों फल खाने लगे। जीर्णा कुटियाकी प्रत्येक वस्तुपर दृष्टिपात करते समय, दीवारपर टँगी तलवार देखकर द्रौपदीने विस्मयसे कहा—'वृद्धाकी कुटियामें तलवार!'

'तुम्हें आश्चर्य हो रहा है, पाञ्चाली! सम्भव है, वन्य-पशुओंके लिये हो।'

'निर्बल करोंसे कैसे चलाती होगी!' उसके स्वरमें सहानुभूति थी।

'दधीचिकी अस्थियाँ हैं।' अर्जुन मुस्कुराये। 'उसकी बलिष्ठ भुजाओंसे तुम्हें हाथ छुड़ाना कठिन होगा।'

वृद्धाने शीतल जल पिलाया। 'कैसे धन्यवाद दूँ, बूढ़ी माँ! अमृततुल्य जल पिलाकर तुमने मुझे जीवनदान दिया है।' द्रौपदीने करके कंगन उतारकर वृद्धाके समक्ष रखते हुए कहा—

'यह तुच्छ भेंट स्वीकार करोगी, बूढ़ी माँ!'

'नहीं बेटी! नहीं। पल-पलपर मृत्युकी बाट जोहनेवाले शरीरमें ये कैसे फबेंगे?'

'परिवारमें······?' बीचमें ही वृद्धा बोली। 'एक पुत्र है। वह पाण्डवोंकी ओरसे युद्धमें गया है। प्रतिदिन उसकी प्रतीक्षा करती हूँ।'

'एकाकी रहते हुए भय नहीं लगता?'

'नहीं बेटी! प्रभु सर्वत्र हैं तो भय किसका? भूले भटके यात्रियोंको जल पिलाकर और मार्ग दिखाकर आत्मिक सुखका अनुभव करती हूँ।'

'फिर यह तलवार किसलिये है, माँ!'

'यह रहस्य है, बेटी! तुम्हें बता दूँ? द्रौपदी और अर्जुनके रक्तसे अपनी पिपासा शान्त करनेके लिये तलवार रखती हूँ।'

दोनों चौंके। विस्मय छिपाते हुए द्रौपदीने पूछा, 'उन्होंने क्या अपराध किया है, बूढ़ी माँ!'

'पूछो, क्या नहीं किया? जबतक कुलटा द्रौपदीका शीश न उतार लूँगी, मुझे शान्ति नहीं मिलेगी।' उसका शरीर क्रोधसे काँपने लगा। द्रौपदी सिहर गयी। वृद्धा बोली—''यज्ञमें कृष्णकी अँगुलीसे रक्त बहनेपर उसने साड़ी फाड़कर पट्टी क्या बाँधी, उसे घमंड हो गया—'मैं कृष्णसे अधिक प्रेम करती हूँ।' जानती हो, बेटी! उस कृतघ्नाने प्रेमका कैसा प्रतीकार लिया?'' उसने भर्राये स्वरमें कहा। 'दुःशासन उसकी साड़ी खींचकर उसे नग्न करना चाहता था तो उस पापिनीने आर्तस्वरसे मेरे कन्हैयाको द्वारकासे आनेके लिये विवश कर दिया। उसने विचार नहीं किया कि जनकी करुण पुकार सुन, गरुड छोड़, नंगे पाँव भागनेवाला इतनी दूर द्वारकासे कैसे आयेगा?' वृद्धाके नयन भीग गये।

''कितनी कठिनाई हुई होगी मेरे गोपालको! उन कोमल पाँवोंमें छाले पड़ गये होंगे। फिर मेरे श्यामसुन्दरको उस रजस्वलाकी, उस अपवित्राकी लाज ढँकनेके लिये वस्त्र बनना पड़ा। उस स्वार्थिनीसे कहूँगी—'भले ही तेरी लज्जा

चली जाती, पर मेरे कमल-कोमल गोपालको कष्ट तो न उठाना पड़ता' ।'' बूढ़ा हाँफने लगी ।

'अर्जुनने क्या अपकार किया, माँ !' अर्जुनने जिज्ञासासे पूछा ।

'अर्जुन !' बूढ़ाने क्रोधसे दाँत पीसे । 'वह महास्वार्थी है । सुप्तावस्थामें कृष्णके रोम-रोमसे अपनी नामध्वनि सुनकर उसे प्रभुका अनन्य प्रेमपात्र होनेका अभिमान हो गया । फलस्वरूप उसने उस प्रेमघनसे युद्धमें रथ हँकवाया । नारकीने यह नहीं सोचा कि यशोदा मैयाने जिस सुकुमार नीलमणिको कैसे मनुहारभरे लाड़-प्यारसे पाला था, क्या वह सारथि बननेयोग्य है ?' वह रो पड़ी । अश्रु पोंछकर बोली—'मेरा गोपाल तो अपने जनके लिये प्रेमके वशीभूत हो सब कुछ बननेको प्रस्तुत हो जाता है । कितना करुणा वरुणालय है मेरा गोविन्द ! युद्धकी समस्त बिभीषिकाएँ स्वयं सहकर, रक्तरञ्जित होकर भी उसने अर्जुनका बाल बाँका न होने दिया । तुम्हीं बताओ, बेटा ! यदि वह युद्धमें पराजित हो जाता तो क्या अनिष्ट हो जाता ? उसका यदि अवसान भी हो जाता तो क्या संसारमें कोई अभाव आ जाता ? सत्य कहती हूँ, बेटा ! उस नराधमका वध करके ही मैं व्यथा-मुक्त हो सकूँगी ।' उसका कण्ठ अवरुद्ध हो गया ।

अर्जुन और द्रौपदीके मस्तक ग्लानिसे नत हो गये । उन्हें भान हुआ कि प्रभुने उन दोनोंके प्रति अपनी अहैतुकी भक्त-वत्सलताका पूर्ण निर्वाह किया, किंतु वे ही स्वार्थपरतासे प्रभु-पद-पद्मोंमें अपने प्रेमका पालन न कर सके । बूढ़ाकी दिव्य वात्सल्य-धारामें उनका प्रेमाभिमान विलीन हो गया । 'धन्य हो, माँ ! धन्य है तुम्हारी निष्ठा ! प्रभुके प्रति तुम्हारी अटल वत्सलता अतुलनीय है, सराहनीय है ।' बूढ़ाके चरणोंमें प्रणाम कर दोनों खिन्न हृदयसे शिविरमें लौट आये ।

× × ×

पितामह भीष्म शिविरमें उद्विग्न हो बैठे थे । उनके मुखपर सदा खेलनेवाली मुस्कान न थी । मानसमें विचित्र-सा मन्थन हो रहा था । प्रातःकी घटनाका जितना विश्लेषण करते, उतना ही उनका हृदय ग्लानिसे कराह उठता । वे बुदबुदाये—'दुर्योधनने मेरी मानसिक शान्ति छीन ली । प्रतिदिन मुझपर पाण्डवोंके दस सहस्र सैनिकोंका संहार करनेपर भी वह पाण्डवोंके प्रति पक्षपातका आरोप लगाता है ! जब उसके व्यङ्ग्य-बाणोंने मर्यादाकी सीमा पारकर मेरे हृदयको मर्माहत कर दिया, तब दुःखके आवेशमें एक पाण्डवके वधकी प्रतिज्ञा मेरे मुखसे निकल गयी । कितना प्रसन्न हुआ था वह दुरात्मा, जैसे उसे अपार निधि मिल गयी हो !

'भयावह परिणामकी कल्पनासे मेरी आत्मा काँप गयी । धर्मप्राण पाण्डवका वध ! सत्यनिष्ठ पाण्डुसुतका नाश और पितामह होकर पौत्रका संहार मैं करूँगा ? क्या कहेगा इतिहास ? क्या भावी पीढ़ी मेरे नामसे घृणा न करेगी ?' उनका हृदय व्यथासे भर गया । उन्होंने ठंडी साँस ली । 'सत्य है, पापीके अन्नसे सद्बुद्धि कहाँ रहती है ।' तभी अतीत-स्मृतिने मानस-पटलपर करवट बदली ।

''दुःशासन द्रौपदीकी साड़ी खींच रहा था और वह असहाय अबला साड़ीका छोर दाँतोंसे दबाये, उपस्थित दिग्गज महारथियोंसे, उद्भट विद्वानोंसे, धर्मधुरीण आचार्योंसे, कूटनीतिज्ञ राजपुरुषोंसे रक्षाकी याचना कर रही थी । सब मौन थे, जैसे उन्हें काठ मार गया हो । किसीमें अत्याचारके निराकरणकी सामर्थ्य न थी । मुझे भी न जाने क्या हो गया था । पाञ्चालीने पूर्ण आस्थासे मेरे नामकी दुहाई देकर कहा—'पितामह ! आपके होते हुए आपकी कुलवधूकी लाज ·····।' मैं भी उस करुण पुकारकी उपेक्षा कर ग्रीवानत किये बैठा रहा । जघन्य अनाचारके प्रति मैंने नेत्र मूँद लिये । धिक्कार है मेरे बल-पौरुषको, मेरे पराक्रमको, जो अबलाकी रक्षा न कर सका । धिक्कार है मेरी वाणीको, जो एक शब्द न बोल सकी ! मेरी आत्मा इस भीरुताके लिये मुझे क्षमा न करेगी' ।'' उन्होंने उच्छ्वास लिया ।

'सब ओरसे निराश हो द्रौपदीने निराधारके आधार, अशरणके शरण, दीन-हीन-वत्सल प्रभुको रो-रोकर पुकारा । फिर विलम्ब कहाँ । वस्त्ररूपमें मेरे श्याम प्रकट हो गये और अबलाकी लाज रह गयी ।' छलछला उठे भीष्मपितामहके नेत्र प्रभुकी अगाध भक्तवत्सलतापर । विगत घटना साकार हो गयी ।

''प्रभुके शस्त्र ग्रहण न करनेकी प्रतिज्ञाको भङ्ग करनेके लिये मैंने भीष्म-प्रतिज्ञा की—'आजु जौं हरिहि न सस्त्र गहाऔं। तौ लाजौं गंगा जननी कौं, संतनु-सुत न कहाऔं ॥' अर्जुनके सारथि बने मनमोहन युद्धस्थलमें आये । उनकी बाँकी झाँकीने मुझे बेसुध कर दिया । युद्धसे विरत हो रूपसुधाका

पान करने लगा। सहसा आभास हुआ—प्रभु कह रहे हैं—'प्रतिज्ञा पूरी करो न।' मनमें आराध्यको प्रणाम कर अर्जुनके शरीरको भयंकर बाणवर्षासे रक्तरञ्जित कर दिया। मर्माहत हो वह चिल्लाया—'त्राहि माम् केशव! पाहि माम्! पितामह मुझे जीवित न छोड़ेंगे।'

''जनकी आर्त पुकार सुनकर भी जनार्दन मौन कैसे रहते? प्रतिज्ञा भूल गये। रथसे तुरंत कूदकर रथका चक्र घुमाते हुए त्वरित गतिसे मेरी ओर दौड़े। 'वा पट पीतकी फहरान' पर मैं निछावर हो गया। धनुष फेंककर समक्ष आते हुए प्रभुके चरणोंपर गिर पड़ा। 'जनकी आन न जाने पावे'की प्रतिज्ञा करनेवाले महाप्रभु! दास शरणागत है।' मेरे नेत्रोंसे अश्रुओंकी झड़ी लग रही थी। प्रभुने उठाकर हृदयसे लगा लिया। ताप शान्त हो गया। प्रभुकी अकारण करुणापर मैं निहाल हो गया।

''उस दिन आपने मेरी प्रतिज्ञा पूर्ण कर मुझे गौरव दिया था, आज मेरी यह प्रतिज्ञा भङ्ग करके मुझे गर्हित अपराधसे बचा लो, मेरे नाथ! भले ही मैं अपयशका भाजन बनूँ, कौरवोंके क्रोध और घृणाका पात्र हो जाऊँ, किंतु देवी कुन्तीको पुत्रकी मृत्युपर तड़पते न देख सकूँगा। पाञ्चालीवधूका हृदयद्रावक विलाप न सुन सकूँगा। नहीं, मेरे मधुसूदन! मुझसे ऐसा अनिष्ट न कराना।'' वे रो पड़े। उन्हें लगा, प्रभु अपने करसे उन्हें आश्वस्त कर रहे हैं। वे प्रसन्नमुद्रासे कह उठे—'जय हो, मेरे प्रभु! तुम्हारी जय हो। आपका वरद हस्त जब पाण्डवोंका रक्षक है, तब संसारमें कोई उनका अहित न कर सकेगा। निश्चय ही उनकी जय होगी।'

भीष्मके संतप्त हृदयको परम शान्ति मिली। वे एकाग्रचित्तसे अपने परम आराध्यका ध्यान करने लगे।

× × ×

भीष्मपितामहकी प्रतिज्ञासे पाण्डव-शिबिरमें निराशा, शोक एवं उदासीका वातावरण फैल गया। द्रौपदीपर तो मानो वज्रपात हो गया। कलका भविष्य सोचकर उसका हृदय विदीर्ण हुआ जा रहा था। अश्रु नहीं थम रहे थे। —क्या मैं विधवा हो जाऊँगी? पाँच पतियोंकी पत्नी होनेका मेरा गौरव छिन जायगा? मेरी महासतियोंमें गणना फिर न होगी?' रह-रहकर ये प्रश्न उठते, किंतु समाधान न पाकर उसकी आत्माको झकझोर जाते। हताश हो दीन-दुःख-भञ्जनको पुकारने लगी—''मेरे केशव! तुम्हीं पतिव्रताकी लाज हो। तुम्हीं मेरे मानरक्षक हो। तुम्हीं अनाथके नाथ, असहायके सहाय, प्रणतके प्रणतपाल, आर्तके आर्तिहरण और निर्बलके बल हो। मैं स्वार्थिनी हूँ। मैंने तुम्हें सदा कष्ट दिये हैं; किंतु मैं तुमसे ही अपनी विपद् नहीं कहूँगी तो और कौन सुनेगा, दीनबन्धु! तुम्हींने मेरी गुत्थियाँ सुलझायी हैं।

''मुझे स्मरण है, वनमें रहते हुए एक दिन भोजन करनेके उपरान्त मैंने बटलोई धोकर जैसे ही रखी, महर्षि दुर्वासा अपने साठ सहस्र शिष्योंसहित पधारे। अभ्यागतोंका सत्कार कैसे होगा, यही सोच मैं व्यथित हो गयी। भोजन न मिलनेपर वे अवश्य शाप देंगे। महर्षि सरिता-स्नानके लिये चले गये। मैं विह्वल होकर, मेरे नटवर! तुम्हें पुकारने लगी। इस महान् संकटसे उबारनेवाला तुम्हारे सिवा मेरा था ही कौन?

''तुम्हें रो-रोकर टेरा कि तुम आ गये। जनकी नैया उबारने तुम आ गये। मैं निहाल हो गयी। तुमने आकर दूसरी समस्या खड़ी कर दी। बोले—'कृष्णा! मुझे बड़ी भूख लग रही है। शीघ्र भोजन ला।' मैंने कहा—'क्यों परीक्षा ले रहे हो?' 'नहीं, सत्य कह रहा हूँ, पाञ्चाली—मैं बहुत भूखा हूँ।' मैंने स्थिति स्पष्ट की, किंतु तुम न माने। बार-बार बटलोई लानेका आग्रह करने लगे। फिर स्वयं बटलोई लेकर न जाने कहाँसे पालकका पत्ता निकालकर तुमने खा लिया। महर्षिको बुलानेके लिये सहदेवको भेजा। विदित हुआ, महर्षि शिष्योंसहित अकस्मात् अजीर्ण होनेसे तिरोहित हो गये और तुमने पाण्डव-कुलको बचा लिया, मेरे रक्षक!

''पितामहकी प्रतिज्ञा अकाट्य है। संसारकी कोई शक्ति उसे चरितार्थ करनेसे उन्हें विरत नहीं कर सकती। वह अवश्य पूरी होगी। प्रातः एक पाण्डवका संहार होगा। तुम्हारी कृष्णा तुम्हारे होते हुए विधवा हो जायगी और तुम देखते रहोगे? 'ऐसी भवितव्यता थी'—कहकर मौन हो जाओगे? मेरा हरा-भरा संसार उजड़ जायगा! बोलो, अन्तर्यामी! बोलो, क्या तुम्हारी यही इच्छा है?'' द्रौपदी विवशतासे रो पड़ी!

''तुम तो अघट-घटना-पटीयान् हो। '**कर्तुमकर्तुमन्यथा-कर्तुम्**' समर्थ हो। फिर यह कौन-सी लीला खेल रहे हो लीलाधारी! किस अपराधका दण्ड दे रहे हो, मेरे नाथ! तुम्हारी आज्ञा '**सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज**'का

पालनकर मैं तुम्हारे शरणापन्न हुई हूँ। शरणागताकी जीवन-नैया मँझधारमें न डुबाओ, मेरे केवट!' रोती हुई द्रौपदी छिन्न लता-सी शय्यापर गिर पड़ी और आर्तस्वरसे 'कृष्ण-कृष्ण' पुकारने लगी।

रात्रिका तृतीय प्रहर व्यतीत हो चुका था। सहसा द्वार-पर शब्द सुनायी दिया—'कृष्णा!' द्रौपदी चौंकी। 'प्रभु आ गये! मेरी नैयाके कर्णधार आ गये!' हर्षातिरेकमें वह बेसुध-सी भागी। द्वार खोलकर प्रभु-चरणोंमें लोट गयी। अश्रुओंसे पद-अर्चना करने लगी। प्रभुने उसे उठाया। द्रौपदी कृष्णका कर पकड़ उन्हें शिबिरमें ले गयी। 'मैं जानती थी, भैया!' सुबकते हुए उसने कहा। 'तुम अवश्य आओगे। अपनी बहनको निरालम्ब न छोड़ोगे। मैं अब चिन्तामुक्त हो गयी, मेरे गोविन्द!' झरझरा पड़े उसके नेत्र। 'रोती है, पगली!' प्रभुने उत्तरीयसे उसके बहते अश्रु पोंछे। 'मेरे साथ चलनेके लिये शीघ्र प्रस्तुत हो जाओ।' वह प्रसन्न हो गयी और कुछ ही क्षणोंमें सज्जित हो प्रभुके साथ हो ली। कौरव-सैन्य-शिबिरके समीप आते ही श्यामसुन्दरने द्रौपदीके पैरोंकी जूतियाँ, जो पञ्चाल देशकी बनी हुई थीं, अपने हाथसे उठा लीं और उन्हें अपने पीताम्बरमें लपेटकर छिपा लिया, जिससे प्रतिपक्षके सैनिक या गुप्तचर द्रौपदीका अनुसंधान प्राप्त न कर सकें। प्रभु त्वरित गतिसे पितामह भीष्मके शिबिरकी ओर चल दिये। द्रौपदी संकोचसे गड़ी जा रही थी, जूतियोंको उठानेकी बात सोचकर, किंतु प्रभु अपने जनकी विविध सेवा करके प्रसन्न थे।

पितामहके शिबिरके चारों ओर सैनिक-नियन्त्रण था। द्रौपदीको शिबिरके पार्श्वमें लाकर सावधानीसे प्रवेश करनेके लिये कहा। द्वारपर खड़े सैनिकने द्रौपदीको दुर्योधनकी पत्नी समझकर, जो प्रायः इसी समय पितामहको प्रणाम करने आती थी, सैनिक अभिवादन किया। वह शिबिरमें चली गयी। पितामह ध्यानावस्थित थे। वह मौन गतिसे आगे बढ़ी। उसने पितामहके चरणोंमें मस्तक रख दिया।

पितामह भावलोकसे धरापर आये। चरणोंमें नत नारीके मस्तकपर वरदहस्त रखते हुए बोले—'अखण्ड सौभाग्यवती रहो, बेटी!' द्रौपदीके नेत्रोंसे अश्रु ढुलककर चरणोंपर गिर पड़े। उसने मस्तक उठाकर भर्राये स्वरमें पूछा—'बाबा! यह वरदान सत्य है अथवा वह प्रतिज्ञा?'

'कौन? द्रौपदी?' पितामह चिल्लाये। 'तू यहाँ?'

'हाँ बाबा! बोलिये, उत्तर दीजिये। किसे सत्य मानूँ?'

पितामह ध्यानमग्न हो गये। कुछ क्षण पश्चात् उन्होंने नेत्र खोले। 'अभय रहो, बेटी!' स्वरमें वात्सल्य था। 'जिसके रक्षक त्रिलोकीनाथ हैं, उसका कोई अनिष्ट नहीं कर सकता।' मुदित हो द्रौपदीने पुनः पितामहके चरणोंमें प्रणाम किया।

'पाञ्चाली-वधू!' पितामह विह्वल हो गये। उनका शरीर पुलकित हो रहा था। 'तुझे यहाँ लानेवाला, वह छलिया कहाँ है, बेटी! मुझे उसके दर्शन करा दे।'

द्रौपदी पितामहको ले उस स्थलपर गयी, जहाँ पीताम्बर ओढ़े त्रिभङ्गी मुद्रामें द्रौपदीकी जूतियाँ छिपाये मनमोहन नटवर खड़े मन्द-मन्द मुस्कुरा रहे थे। भूल गये पितामह अपना अस्तित्व। भागे भूले-से, बेसुध-से, ठगे-से, सर्वस्व लुटे-से अपने परम-धनके पादपद्मोंमें लोटनेको, किंतु लीला-विहारी केशवने उन्हें हृदयसे लगा लिया। पीड़ा मिट गयी। मनस्ताप शान्त हो गया। पितामहके नेत्रोंसे अश्रु झर-झर बहने लगे। 'मेरे आराध्य! मेरे नाथ! मेरे स्वामी! नियतिकी डोरसे नचानेवाले जगत्के सूत्रधार! मैं तो कठपुतली हूँ। जैसे नचाओगे, नाचूँगा।' प्रभु मुस्कुराकर बोले—'पितामह!' किंतु भीष्मके नेत्रोंमें प्रभुकी भक्तवत्सलता छलक रही थी। 'हरि!' कण्ठ अवरुद्ध हो रहा था। 'बड़े कौतुकी हो, लीलामय! मेरी गुत्थी सुलझ गयी। समस्या हल हो गयी, मेरे माधव!' वे आनन्दातिरेकसे झूम-झूमकर जय-जयकार करने लगे—'भक्तवत्सल भगवान्की जय। दीन-दुःख-भञ्जन करुणानिधानकी जय!' कृतज्ञतासे द्रौपदी मन-ही-मन विह्वल स्वरसे गा रही थी—

हरि सौ ठाकुर और न जन कौ।
जेहि-जेहि बिधि सेवक सुख पावैं, तेहि बिधि राखत तिन कौ॥
संकट परें तुरत उठि धावत, परम सुभट निज पन कौ।
राखत हैं जन की परतिग्या, हाथ पसारत कन कौ॥

उधर देवता भक्त और भगवान्पर पुष्पवृष्टि करके अपना हर्षोल्लास जना रहे थे।

भगवान् विष्णुकी गुण-गरिमा

(लेखक—महामहोपाध्याय आचार्य श्रीहरिशंकर वेणीराम शास्त्री)

वेद अनादि एवं अपौरुषेय हैं। उपनिषद् और पुराणेतिहास वेदार्थका प्रवचन करते हैं। उपनिषद् जैसे ज्ञान-वैराग्य एवं प्रतीक-उपासना अथवा अप्रतीक उपासना-द्वारा पूर्णब्रह्मकी ओर ले जाते हैं, वैसे ही वे सकाम-निष्काम कर्मका भी संकेत करते हैं। इस प्रकार वे वेदमन्त्रोंके रहस्यका उद्‌घाटन करते हैं। इतिहास-पुराण वेदमन्त्रोंके अर्थ-प्रपञ्चनद्वारा सर्वसाधारणको ईश्वर-प्राप्ति-निमित्तक कर्म, ज्ञान-वैराग्य और उपासनाकी ओर प्रवृत्त करते हैं। वेद बीज हैं और उपनिषदादि वृक्ष-लतारूप हैं। बीजसे लता-वृक्षादिकी उत्पत्ति होती है। वृक्षादि अपने कारणरूप बीजसे जिस प्रकार अभिन्न हैं, वैसे ही उपनिषदादि अपने कारणरूप वेदोंसे अभिन्न हैं। उनमें अर्थवादकी कल्पना करना भूल है; कारण, इतिहास-पुराणादि किसी एक मन्वन्तर, कल्प अथवा युगविशेषकी ही घटनाओंद्वारा वेदार्थका प्रपञ्चन नहीं करते; बल्कि वे अनेकों कल्पों, मन्वन्तरों और उनसे भी अज्ञात कालकी घटनाओं तथा प्रलय-महाप्रलयकी घटनाओं और वस्तुओंका वर्णन करते हैं। अतः मानना पड़ेगा कि जिस प्रकार वेद अनादि हैं, उसी प्रकार पुराणादि भी अनादि हैं।

'इतिहासः पुराणं च पञ्चमो वेद इष्यते।'

'इतिहास-पुराणको इसी कारण पाँचवाँ वेद माना गया है।'

'इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्।'

'इतिहास-पुराणकी कथाओंसे वेद-ज्ञानकी वृद्धि (पुष्टि) करनी चाहिये।'

परात्पर पूर्णब्रह्म साकाररूप धारण करके लोक-कल्याण करते हैं, इस कारण अखण्डसे सखण्ड, निरवयवसे सावयव, निर्विकारसे सविकार होनेके कारण उनपर अपूर्णत्व और एकदेशीयताका आरोप करना भी भारी भूल है। वे तो 'पुरुरूप ईयते'—इस वेदोक्तिको चरितार्थ करते हैं। वे 'ॐ विश्वं विष्णुः' हैं।

यो देवेभ्य आतपति यो देवानां पुरोहितः।
पूर्वो यो देवेभ्यो जातो नमो रुचाय ब्राह्मये॥
(यजु० ३१। १८)

'जो देवोंके लिये सर्वतःप्रकाश देता है, जो पूर्वकालसे ही देवताओंका कल्याणकारक है और जिसने देवताओंकी उत्पत्तिसे पहले ही अपनेको व्यक्त किया, ब्रह्मसे प्रादुर्भूत हुए उस प्रकाशवान्‌को नमस्कार है।'

—ऐसे अनेकों प्रमाणोंसे उन परमेश्वरका साकार होना सिद्ध है। वे असंख्य रूपोंसे असंख्य चरित्र करते हैं। वे—

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥
(बृहदारण्यक० ५। १। १)

—हैं। सावयव-निरवयव, साकार-निराकार, सखण्ड-अखण्ड—सब कुछ वे ही पूर्णब्रह्म हैं और पूर्णब्रह्मकी पूर्णताको लिये हुए ही वे व्यक्तरूप होते हैं तथा पूर्ण ही बने रहते हैं। राम-कृष्ण पूर्ण परात्पर ब्रह्मकी ही अभिव्यक्तियाँ हैं, वे पूर्ण ब्रह्म हैं। लोककल्याणार्थ उनकी अभिव्यक्ति हुई थी। इतिहास और पुराण इसके प्रमाण हैं।

परात्पर ब्रह्म लोकस्थितिके लिये सत्त्वका अवलम्बन कर विष्णुरूपसे व्यक्त हुए थे। देवरूपमें वे इन्द्रके अनुज 'उपेन्द्र' बने और उन्होंने असुर-संहारादि देवराजके कार्य सिद्ध किये। देवरूप होकर भी वे अपने पूर्णत्वसे अभिन्न रहे। अतएव विष्णूपासनाद्वारा साकाररूपतासे निराकाररूपताको प्राप्तकर उपासक ब्रह्मरूप हो जाता है, श्रीमद्भागवतादि ग्रन्थोंमें यह बात स्पष्ट कर दी गयी है।

लक्ष्मणजी रावणकी शक्तिसे मूर्च्छित हो गये थे। भगवान् रामके यह कहनेपर कि 'तुम पूर्णब्रह्मकी अनन्तकलारूप शेष हो, उठ बैठो!' लक्ष्मणजी पीड़ारहित हो उठ बैठे थे। मानवरूपमें भी वे अपने वास्तविक रूप अनन्तसे अभिन्न थे। (वाल्मीकि-रामायण)

परात्पर पूर्णब्रह्म श्रीहरिने गजेन्द्रका उद्धार किया था। पूर्वजन्मकी आराधनाके प्रभावसे गज-योनिमें भी उसे भगवदनुस्मृति बनी हुई थी, इसके कारण उसने जो स्तुति की थी, वह परात्पर परमपरायण परमेश्वर महाप्रलयातीत पूर्णब्रह्म विष्णुकी ही थी।

अतएव—

एवं गजेन्द्रमुपवर्णितनिर्विशेषं
ब्रह्मादयो विविधलिङ्गभिदाभिमानाः ।
नैते यदोपससृपुर्निखिलात्मकत्वात्
तत्राखिलामरमयो हरिराविरासीत् ॥
(श्रीमद्भागवत ८ । ३ । ३०)

'इस प्रकार अभेदरूपसे गजेन्द्रने जो स्तुति की थी, वह भेदभावयुक्त विशेषणोंसे विशिष्ट ब्रह्मा-शिव आदिपर लागू नहीं होती थी । अतः जब ब्रह्मादि देव उसकी रक्षाके लिये नहीं गये, तब सर्वदेवमय भगवान् हरि ही उसके रक्षार्थ प्रकट हो गये ।'

वेदमन्त्र भगवान्के चरित्रोंकी सूचना देते हैं—

विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे ।
इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ (यजुर्वेद ६ । ४)

'भगवान् विष्णुके उन कर्मों (चरित्रों)को सावधानीसे देखो और समझो, जिनके द्वारा वे लोकरक्षाके नियमोंको आबद्ध रखते हैं । वे इन्द्रके सहयोगी मित्र हैं ।'

वेदमन्त्रोंसे प्राप्त हुए संकेतोंका स्पष्टीकरण इतिहास-पुराणोंसे होता है ।

असुरेन्द्र बलिने त्रैलोक्यका साम्राज्य प्राप्त कर लिया था । इन्द्रका वैध अधिकार छिन चुका था । विष्णुभगवान्ने उस समय वामनरूप धारणकर बलिसे तीन पग पृथ्वीका दान लिया था । किंतु उनके ढाई पगोंमें ही त्रैलोक्य नप गया था—

इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् ।
समूढमस्य पाꣳसुरे स्वाहा ॥ (यजु० ५ । १५)

—इस मन्त्रसे जहाँ अन्य अर्थ निकलता है, वहाँ वामनावतारका चरित्र भी ध्वनित होता है ।

मन्त्रार्थ इस प्रकार है—

'विष्णुने इस त्रैलोक्यको व्याप्त किया । अतः तीन विभागोंसे उन्होंने चरण रखा । यह त्रैलोक्य उस समय दूषित वातावरणमें पड़ चुका था ।'

विष्णुके द्वारा दिये गये इन्द्र-पदका अवैध रूपसे अपहरण हो जानेपर दैवी संकट दूर करनेके लिये विष्णु-भगवान्का यह कर्तव्य था कि वे धर्मध्वंसी असुर-जातिसे इन्द्र-पद छुड़ाकर लोकधर्मकी व्यवस्थाका रक्षाधिकार पानेवाले इन्द्रका पक्ष करते एवं देवकार्योंमें सहायक होते । यह इन्द्रसखाका भाव अखिलभुवनव्यापक सर्वेश्वर भगवान् विष्णुमें देवरूपसे है । परात्पर ब्रह्मरूपमें योगीजन समाधि-योगसे इन्हें प्राप्तकर सदैव इनके तेजका दर्शन किया करते हैं—

तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः ।
दिवीव चक्षुराततम् ॥ (यजु० ६ । ५)

'विष्णुके उस परम पदका (तेजोमय परब्रह्मरूपका, जो गायत्री-मन्त्रार्थसे बोधित किया गया है) विद्वान् सदा दर्शन करते हैं । वे समाधिस्थ होकर योगदृष्टिसे सदा उसे प्राप्त करते रहते हैं । विष्णुका वह तेजोमय स्वरूप इस प्रकार विस्तारयुक्त दृष्टिगोचर होता है, जैसे सर्वसाधारणको आकाशमें विस्तारवान् किरणमण्डल (मध्याह्नका सूर्य) ।'

चारों वेदोंमें विष्णुका वर्णन आता है । विस्तारभयसे शुक्ल यजुर्वेदके तीन मन्त्रोंसे ही भगवान् विष्णुके दिव्य जन्म-कर्मों और उनके परात्पर स्वरूपका दिग्दर्शन मात्र कराया जा सका है ।

विष्णुभक्ति ही श्रेष्ठताका कारण है

श्वपचोऽपि महीपाल विष्णुभक्तो द्विजाधिकः ॥
विष्णुभक्तिविहीनस्तु द्विजोऽपि श्वपचाधिकः ।
दुर्लभा भूप राजानो विष्णुभक्ता महीतले ॥
(नारदपुराण, उत्तर० १० । ३७-३८)

चण्डाल भी यदि भगवान् विष्णुका भक्त है तो वह द्विजसे भी बढ़कर है और द्विज भी यदि विष्णुभक्तिसे रहित है तो वह चण्डालसे भी अधिक नीच है । भूपाल ! इस पृथ्वीपर विष्णुभक्त राजा दुर्लभ हैं ।

भगवान् विष्णुके अचिन्त्य दिव्य गुण

(लेखक—स्वामी श्रीपराङ्कुशाचार्यजी महाराज)

क्षीरसमुद्रशायी भगवान् विष्णुसे ही सभी अवतार होते हैं—

'एतन्नानावताराणां निधानं बीजमव्ययम् ।'

(भागवत १ । ३ । ५)

उनमें अनन्त कल्याण-गुण भरे हैं, जिनके वर्णनमें वेद भी 'नेति-नेति' कहकर असमर्थ हो जाते हैं । जो निस्सीम हैं, उन्हें 'अथ-इति' में बाँधना अशक्य है; फिर भी यथाशक्ति सभीने उनके विषयमें कुछ-न-कुछ कहा ही है । इसी संदर्भमें भगवान्‌के कुछ दिव्य अचिन्त्य गुणोंका दिग्दर्शनमात्र यहाँ कराया जा रहा है—

वशी वदान्यो गुणवानृजुश्शुचि-
मृदुर्दयालुर्मधुरः स्थिरः समः ।
कृती कृतज्ञस्त्वमसि स्वभावत-
स्समस्तकल्याणगुणामृतोदधिः ॥

(आलवन्दारस्तोत्र, १८)

१. वशी—भगवान्‌में वशवर्तिता गुण है—**'सर्वस्य वशी', 'सर्वस्येशानः', 'जगद्वशे वर्ततेदं कृष्णस्य सचराचरम्'**—के अनुसार सर्वेश्वर, जगदीश्वर होते हुए भी भगवान् अपने भक्तोंके वशवर्ती बने रहते हैं, इसीसे वे सभीके लिये सुलभ हैं । श्रीरामावतारमें विश्वामित्र आदि ऋषियोंकी सेवा करना, श्रीकृष्णावतारमें पाण्डवोंका दूत बनना, अर्जुनका रथ हाँकना आदि आपके चरित्र प्रसिद्ध हैं । इसी गुणके कारण सर्वतन्त्रस्वतन्त्र, सर्वेश्वर होते हुए भी भगवान् भक्तपराधीन बन गये—

'ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम् ॥'

(गीता ९ । २९)

'परंतु जो भक्त मुझको प्रेमसे भजते हैं, वे मुझमें हैं और मैं भी उनमें प्रत्यक्ष प्रकट हूँ ।'

इस भगवद्वचनसे ही भगवान्‌में वशित्व, सौशील्य, सौलभ्य आदि समस्त कल्याणगुण प्रतीत होते हैं । भगवान्‌के चरित्रोंमें आश्रित-पराधीनता सर्वत्र व्यक्त होती है ।

तुलसीदलमात्रेण जलस्य चुलुकेन वा ।
विक्रीणीते स्वमात्मानं भक्तेभ्यो भक्तवत्सलः ॥

'मात्र तुलसीदलसे अथवा चुल्लूभर जलसे ही प्रसन्न होकर भक्तवत्सल प्रभु भक्तोंके हाथ अपनेको बेच देते हैं ।'

२. वदान्यः—"**प्रियवाग्दानशीलश्च वदान्यः परिकीर्तितः ।**'—प्रिय वचन बोलते हुए दान देनेवाला एवं परमोदार स्वभाववाला व्यक्ति 'वदान्य' कहलाता है ।" ये सम्पूर्ण गुण भगवान् विष्णुमें ही हैं—

'स सर्वानर्थिनो दृष्ट्वा समेत्य प्रतिनन्द्य च ।'

वाल्मीकि-रामायणमें वर्णन आता है कि भगवान् श्रीराम वन पधारते समय सभी याचकोंकी ओर सादर निहारकर तथा सभीसे मिलकर उन्हें धन्यवाद देते हुए आगे बढ़े । उनकी इस चेष्टामें 'वदान्य' गुणका प्रकाश है । **'उदाराः सर्व एवैते'**—इस गीता-(७ । १८) वाक्यमें भगवान्‌ने अपनेसे ऐश्वर्य आदि माँगनेवालोंको भी 'उदार' कहा है । अर्थात् अपनेसे कुछ माँग लेनेवालोंका भी भगवान् बड़ा आभार मानते हैं । **'य आत्मदा बलदा'** (ऋग्वेद १० । १२१ । २) (जो भक्तोंको अपना स्वरूप तथा बल भी दे डालते हैं ।), **'एको बहूनां यो विदधाति कामान्'** (श्वेताश्वतर० ६ । १३) (जो अकेले ही बहुतोंके मनोरथ पूर्ण करते हैं); **'सकलफलप्रदो हि विष्णुः'** (भगवान् विष्णु सभी अभीष्ट फलोंको देनेवाले हैं), **'सर्वलाभाय केशवः'** (भगवान् केशवसे सब कुछ प्राप्त किया जा सकता है) ।

यथा कल्पद्रुमात्सर्वं प्राप्यते मनसेप्सितम् ।
तथा सम्प्राप्यते विष्णोरपि स्याद् दुर्लभं द्विज ॥

'जिस प्रकार कल्पवृक्षसे सभी अभीष्ट वस्तुएँ प्राप्त होती हैं, उसी प्रकार भगवान् विष्णुसे भी दुर्लभ वस्तुएँ प्राप्त की जा सकती हैं' इत्यादि प्रमाणोंके अनुसार भगवान् चारों पुरुषार्थोंके अतिरिक्त अपने निज परिजन, पार्षद, भूषण, आयुध, कल्याणगुण-गण, दिव्य मङ्गलविग्रह और दिव्यात्मस्वरूपको भी भक्तोंको दे डालनेमें किंचिन्मात्र भी नहीं हिचकते ।

३. गुणवान्—भगवान्‌के सभी गुणोंकी अपेक्षा 'सौशील्य' गुणकी महत्ता शास्त्रोंमें विशेषरूपसे वर्णित है तथा भक्तोंको अनुभवगम्य भी है । यहाँ 'गुणवान्' शब्दसे सौशील्य गुण ही समझना चाहिये । उनकी सभी विशेषताओंमें यह एक प्रधान विशेषता है कि वे सर्वेश्वर होकर भी **'मन्दैः सह नीरन्ध्रसंश्लेषस्वभाववान्'** हैं । अर्थात् भक्तोंसे मिलनेकी

आशासे वे समस्त दोषाकर अतिहेय संसारमें अवतार लेकर भील, मल्लाह, शबरी, सुग्रीव, विभीषण और गोप-गोपियोंतकसे आदरपूर्वक मिलते हैं। भगवान्‌के इस गुणसे हम सबमें भी आशाका संचार होना चाहिये कि वे हम नीचोंको भी अपनायेंगे।

४. ऋजुः—'आश्रितेषु मनोवाक्कायवृत्तीनामेकरूपतया कौटिल्यरहितः।' मन, वचन, काय—तीनों करणोंसे समरूप निष्कपट रहना 'ऋजुत्व' कहलाता है। भगवान् अपने इस गुणके कारण सभीके विश्वसनीय बन गये हैं। वे जो कुछ कहते हैं, उसे अवश्य पूरा करते हैं। जंगलमें राक्षसोंके उपद्रवसे प्रभावित होकर श्रीरामने राक्षसोंके विनाशकी प्रतिज्ञा कर ली, तब सीताने ऐसा क्रूर कर्म करनेसे उन्हें रोका। परंतु वे अपने संकल्पसे विरत नहीं हुए। उन्होंने जानकीजीसे कहा—

अप्यहं जीवितं जह्यां त्वां वा सीते सलक्ष्मणाम् ॥
न तु प्रतिज्ञां संश्रुत्य ब्राह्मणेभ्यो विशेषतः।
(वा० रा० ३।१०।१८-१९)

'सीते! मैं अपने प्राण छोड़ सकता हूँ, तुम्हारा और लक्ष्मणका भी परित्याग कर सकता हूँ, किंतु अपनी प्रतिज्ञाको, विशेषतः ब्राह्मणोंके लिये की गयी प्रतिज्ञाको मैं कदापि नहीं तोड़ सकता।'

५. शुचिः—'अपहतपाप्मत्वादिगुणकः भावशुद्धिर्वा।' ईश्वर-तत्त्वमें पापका लेश भी नहीं है, अतः वह शुचि (पवित्र) है। अथवा आश्रितोंके रक्षणमें प्रत्युपकारादिसे निरपेक्षता तथा द्रव्यकी अपेक्षा न रखकर केवल भक्तिमात्रसे प्रसन्न होनेके कारण भगवान् अत्यन्त भाव-शुद्ध अर्थात् पवित्र हैं।

'पावनत्वं वा शुचित्वम्'—दूसरोंको पवित्र करनेके कारण भी भगवान् 'शुचि' हैं। 'शुचिर्भवति संस्मृत्य स्नातो भवति दर्शनात्'—भगवान्‌की स्मृतिसे मनुष्य पवित्र हो जाता है और दर्शनसे शुद्ध।' 'यः स्मरेत्पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः।—कमल-नयन भगवान्‌को स्मरण करनेसे मनुष्य बाहर-भीतरसे शुद्ध हो जाता है।'

६. मृदुः—भगवान् मृदुस्वभावके हैं। मृदुता उनका आत्मगुण है। 'सापराधैरपि सहसाऽऽश्रयितुं शक्यः।' महान् अपराधी भी भगवान्‌की शरणमें निर्भीक होकर जा सकता है।

विदितः सर्वधर्मज्ञः शरणागतवत्सलः।
तेन मैत्री भवतु ते यदि जीवितुमिच्छसि॥
(वा० रा० ५।२१।२०)

सीताने रावणसे कहा था कि 'भगवान् समस्त धर्मोंके ज्ञाता और शरणागतवत्सल हैं; यदि तुम जीना चाहते हो तो उनकी शरणमें जाओ। वे तुम्हारा अपराध क्षमा कर देंगे।' श्रीरामजीने भी रावणसे यही कहलाया था—

अराक्षसमिमं लोकं कर्तास्मि निशितैः शरैः।
न चेच्छरणमभ्येषि तामादाय तु मैथिलीम्॥
(वा० रा० ६।४१।६७)

'अपने पैने बाणोंसे मैं पृथ्वीको राक्षसहीन कर दूँगा, यदि तुम जानकीको लेकर मेरी शरणमें नहीं आये।' मृदु-हृदय होनेके कारण ही रावण-जैसे महान् अपराधीको भी वे क्षमा-दान दे सकते थे। आश्रितोंके विश्लेषको न सह सकना भी मृदुता है—'कदा ह्यहं समेष्यामि भरतेन महात्मना।' (वा० रा० ३।१६।४०) (हाय! मैं प्यारे भरतसे कब मिलूँगा?), 'अहमप्यनुयास्यामि तथैवैनं यमक्षयम्' (वा० रा० ६।४९।१७) (मैं लक्ष्मणके साथ ही यमलोकको चला जाऊँगा।), 'न मे स्नानं बहुमतं त्वं विना कैकयीसुतम्।' (वा० रा० ६।१२१।६) (उन कैकेयी-नन्दनके बिना मुझे स्नानादि कुछ भी अच्छा नहीं लगता।)—इत्यादि अनेक स्थलोंपर भगवान्‌का आश्रित-विश्लेष-असहत्व गुण वर्णित है। अवश्य दण्डनीय अपराधीको दण्ड देनेके लिये प्रवृत्त होनेपर भी भगवान् उग्र नहीं दीख पड़ते—यह मृदुताका ही प्रकाशन है।

श्रीरामने लक्ष्मणको सुग्रीवके पास भेजते समय कहा था—

'सामोपहितया वाचा रूक्षाणि परिवर्जयन्।'
(वा० रा० ४।३१।८)

'सुग्रीवसे क्रूर वचन मत कहना, बल्कि मीठी बातोंसे ही अपना अभिप्राय जनाना।' यह उनका मृदुतामय उपदेश था।

७. दयालुः—"स्वप्रयोजनान्तरमनपेक्ष्य परदुःखनिराकरणेच्छावान्।—अन्य किसी निजी प्रयोजन बिना दूसरोंके दुःखको अपना ही दुःख मानकर दूर करनेकी इच्छाका नाम 'दया' है।" जिसमें यह गुण हो, वही दयालु है। अपने दुःखसे दुःखी होना दोष है, किंतु दूसरेके दुःखसे दुःखी होना गुण है।

'व्यसनेषु मनुष्याणां भृशं भवति दुःखितः ॥'

(वा० रा० २ । २ । ४०)

'प्रजाओंके दुःखसे भगवान् दुःखी होते थे ।'

'संजातबाष्पः परवीरहन्ता रामो मुहूर्तं विमना बभूव ।'

(वा० रा० ४ । २४ । २४)

'वालीके वधसे संतप्त सुग्रीवके प्रलापको सुनकर शत्रुहन्ता श्रीरामने भी दुःखी होकर कुछ देरतक खूब आँसू बहाये ।'

'हापितः क्वासि हे सुभ्रु बह्वेवं विललाप सः ।'

अपहृता सीताकी दयनीय दशाको सोच-सोचकर श्रीरामका विलाप सर्वविदित ही है ।

८. मधुरः—मनोहरः । स्वयं भगवान्, उनके दिव्य मङ्गल-विग्रह, दिव्य चरित्र, वार्तालाप आदि सभी बड़े मधुर होते हैं । उपनिषद् कहती है—'रसो वै सः ।' (तैत्तिरीय० २ । ७) (प्रभु रसरूप हैं ।)

'मधुरादपि मधुरतरा मधुरानाथस्य माधवस्य कथा ।'

'मथुरानाथकी कथा मधुरसे भी अत्यन्त मधुर है ।'

'कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च ॥'

(गीता १० । ९)

भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं कहते हैं—'मेरे चरित्रका वर्णन करते हुए मेरे भक्त नित्य संतुष्ट और आनन्दमग्न रहते हैं ।'

'प्रियवादी च भूतानां सत्यवादी च राघवः ।'

'श्रीराम सभीसे प्रिय और सत्य वचन बोलते थे ।'

'सोमवत् प्रियदर्शनः (वा० रा० १ । १ । १८)—उनका रूप सबको चन्द्रमाके समान प्यारा लगता था ।'

'रूपौदार्यगुणैः पुंसां दृष्टिचित्तापहारिणम् ।'

'अपने सौन्दर्य एवं उदारता आदि गुणोंसे वे लोगोंके नेत्रों और मनको बरबस हर लेते थे ।'

—इत्यादि अनेकानेक माधुर्यताबोधक वचन रामायण आदिमें उपलब्ध होते हैं । महाभारत-युद्धमें चक्र उठाकर भीष्मपितामहको मारनेके लिये उद्यत श्रीकृष्णकी रूप-छटाका दर्शन कर भीष्म इतने प्रसन्न हो गये कि वे तुरंत आपकी स्तुति करने लगे । अर्थात् मारनेके समय भी भगवान् माधुर्य-गुणसे ओत-प्रोत रहते थे । खर दूषण-जैसे क्रूरहृदय राक्षस भी, जिनमें दयाका लेश भी न था, श्रीरामको युद्धके लिये उद्यत देखकर कहते हैं—'बध लायक नहिं पुरुष अनूपा ।'

९. स्थिरः—'आश्रितापराधैस्तत्प्रदर्शकैरप्यक्षोभ्यः— आश्रित अपराधियोंके दोषोंका उद्‌घाटन करनेपर भी भगवान् क्षुब्ध नहीं होते; बल्कि **'मोक्षयिष्यामि मा शुचः'**—इस प्रतिज्ञा-वचनपर सुदृढ़ रहकर उनकी रक्षा ही करते हैं । यही उनकी स्थिरता है । सुग्रीव आदिके न चाहनेपर भी विभीषण-परित्राण-संकल्पको श्रीरामचन्द्रने नहीं बदला । राज्याभिषेकके अवसरपर—

'प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथा न मम्ले वनवासदुःखतः ।'

(मानस २ । श्लो० २)

राउ सुनाइ दीन्ह बनबासू । सुनि मन भयउ न हरषु हराँसू ॥

(वही २ । १४८ । ३½)

भगवान्‌में 'स्थिर' गुण रहनेके कारण ही विषम परिस्थितिमें भी वे स्वस्थ रहा करते थे ।

१०. समः—'जातिगुणवृत्तादिवैषम्यवतामपि शरण्यत्वे विशेषरहितः'—जाति-गुण-वृत्तादिके कारण उच्च-नीच व्यक्तियोंके प्रति भी उनके शरणागत होनेपर भगवान् पक्षपातरहित समान व्यवहार (रक्षा) करते हैं । यही उनमें 'समता' गुण है ।

'सर्वस्य शरणं सुहृत् ।' (भगवान् सबके रक्षक और अकारण हितू हैं ।) भगवान् समस्त प्राणियोंके प्रति समान ही व्यवहार करते हैं । भक्तिमात्रसे प्रसन्न होनेवाले भगवान् सभी भक्तोंके द्वारा समानरूपसे आश्रयणीय हैं और भक्तोंकी रक्षामें वे सतत तत्पर भी रहते हैं ।

'विभीषणो वा सुग्रीव यदि वा रावणः स्वयम् ।'

(वा० रा० ६ । १८ । ३४)

—इन शब्दोंसे नीच रावणको भी त्राण देकर उसे गले लगानेका विचार भगवान् करते थे ।

'शबर्या पूजितः सम्यक्'—(वा० रा० १ । १ । ५८) शबरीकी पूजा एवं सत्कारको उन्होंने विशेष महत्त्व दिया है । अन्यान्य ऋषियोंद्वारा की गयी सेवाके प्रति उनका वैसा वचन नहीं उपलब्ध होता ।

११. कृती—स्वार्थसाधककर्तव्यविशेषरहितः ।

न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन ।

नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि ॥

(गीता ३ । २२)

भगवान् अवाप्तसमस्तकाम हैं । किसी वस्तुकी उन्हें कमी नहीं है, जिसे वे किसी कर्मद्वारा प्राप्त कर सकें । फिर भी **'वर्त एव च कर्मणि'**—आश्रित-रक्षणके लिये सदैव कार्यरत रहते हैं । यही उनमें 'कृतित्व' गुण है ।

अभिषिच्य च लङ्कायां राक्षसेन्द्रं विभीषणम्।
कृतकृत्यस्तदा रामो विज्वरः प्रमुमोद ह॥
(वा० रा० १ । १ । ८५)

विभीषणको लङ्काकी राजगद्दीपर अभिषिक्त कर श्रीराम कृतकृत्य हो गये थे। अथवा 'कृतम् उपकारः अस्ति अस्य इति कृती निःस्वार्थं उपकारवान्।'—भगवान् निःस्वार्थ उपकारी हैं। 'योगक्षेमं वहाम्यहम्'—आश्रितोंको अलब्ध वस्तुका लाभ कराना तथा लब्धका परिरक्षण करना भगवान्का स्वभाव है।

'ददामि बुद्धियोगं तम्।'
(गीता १० । १०)

'उन्हें मैं बुद्धियोगका दान करता हूँ।'

'तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागराद् भवामि' (गीता १२ । ७) (अपने भक्तोंको मैं मृत्युमय संसार सागरसे पार कर देता हूँ।)

'अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि।'
(गीता १८ । ६६)

—'मैं तुम्हें सारे पापोंसे मुक्त कर दूँगा।' इत्यादि वचन आश्रित भक्तोंके उपकारविषयक ही हैं। द्वेषियोंके प्रति भी भगवान्की ऐसी ही उपकारमयी बुद्धि रहती है। शिशुपाल-पूतना-मारीच-रावणादि इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं।

१२. कृतज्ञः—'परैरुपकृतं जानाति इति कृतज्ञः।'

''दूसरोंके किये हुए उपकारको याद रखनेवाला 'कृतज्ञ' है।'' यह गुण भगवान्में विशेषरूपसे है। वे उपकार-लेशको भी बहुत बड़ा मानते हैं।

'न स्मरत्यपकाराणां शतमप्यात्मवत्तया'—थोड़े-से भी उपकारके कारण वे अपने भक्तोंके सैकड़ों दोषोंपर भी ध्यान नहीं देते। इसके विपरीत—

'कदाचिदुपकारेण कृतेनैकेन तुष्यति।'
(वा० रा० २ । १ । ११)

'किसी प्रकारसे भी किये गये एक भी उपकारसे प्रसन्न हो जाते हैं।'

गोविन्देति यदाक्रन्दत् कृष्णा मां दूरवासिनम्।
ऋणं प्रवृद्धमथ मे हृदयान्नापसर्पति॥

द्वारकाकी कथा है—श्रीकृष्णकी अँगुलीमें चोट लग गयी थी। रक्त बह चला। द्रौपदी खड़ी थी। वह झट अपना आँचल फाड़कर उनकी अँगुलीमें कपड़ा लपेट देती है। रक्तका बहना बंद हो गया। तब श्रीकृष्णने प्रसन्न होकर द्रौपदीसे वर माँगनेको कहा। द्रौपदीने उत्तर दिया—'मुझे कुछ नहीं चाहिये।' श्रीकृष्णने कुछ-न-कुछ माँगनेके लिये बारंबार प्रेरणा की। तब द्रौपदीने यही माँगा कि 'जब मैं आपको याद करूँ, तब आप वहाँ अवश्य उपस्थित हो जायँ।' उत्तरमें श्रीकृष्णने 'एवमस्तु' कह दिया। कौरवोंकी सभामें द्रौपदीको जब दुःशासनने नंगा करना चाहा, तब अनन्यशरणा द्रौपदीने शरणागतिपूर्वक भगवान्का यों स्मरण किया—

शङ्खचक्रगदापाणे द्वारकानिलयाच्युत।
गोविन्द पुण्डरीकाक्ष रक्ष मां शरणागताम्॥

पुकार सुनते ही श्रीकृष्ण वहाँ क्षणभरमें आ पहुँचे और अपरिमित वस्त्र बढ़ाकर उन्होंने उसकी लाज बचायी। तत्पश्चात् अपनी कृतज्ञता व्यक्त करते हुए उससे कहने लगे कि ''हे कृष्णे! संकटकालमें तुमने मुझे 'द्वारकावासी कृष्ण' कहकर क्यों पुकारा? मुझे वहाँसे आनेमें जो विलम्ब हुआ और तुम कष्टमें पड़ी रह गयी—यह दुःख ऋणके सदृश मेरे हृदयमें बढ़ता जा रहा है।'' यही उनकी कृतज्ञता है। एक अंगुल कपड़ेके बदले अपरिमित कपड़ा देकर भी वे संतुष्ट नहीं हो सके। अर्थात् उन्होंने द्रौपदीके उपकारके सामने अपने उपकारको तुच्छ समझा।

श्रीरामने हनुमान्से कहा था कि 'तुम्हारा उपकार मुझमें पच जाय'—

'मदङ्गे जीर्णतां यातु यत्त्वयोपकृतं कपे।'
(वा० रा० ७ । ४० । २४)

भगवान् अपने भक्तोंको कभी संकटग्रस्त नहीं होने देना चाहते, जिससे कि उनका प्रत्युपकार करनेका अवसर आये। इस प्रकार अपने भक्तोंके प्रति कृतज्ञताको वे आजीवन निभाना चाहते हैं। ऐसे कल्याणगुणगण-निलय भगवान्को मनस्वियोंने 'कल्याणगुणमहोदधि' कहकर विश्रान्ति ली है।

जगत्‌के पालक और उद्धारक भगवान् विष्णु

[लेखक—श्रीबजरंगबलीजी ब्रह्मचारी, एम्० ए० (द्वय)]

सृष्टि, स्थिति और लयके अधिष्ठातृदेव ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र ही तैंतीस कोटि देवताओंका प्रतिनिधित्व करते हैं; किंतु मारकसे उद्धारक और निर्मातासे आश्रयदाताकी गरिमा-महिमा अधिक होती है । इसीलिये तैंतीस कोटि देवताओंमें तीन और उन तीनमेंसे भगवान् विष्णुकी वरीयता और श्रेष्ठता स्वीकार की गयी है ।

भगवान् विष्णुके नाम और रूपके विश्लेषणसे यह स्पष्ट हो जाता है कि वैसे तो उनमें सृष्टि, स्थिति और प्रलय—तीनोंकी ही शक्तियाँ विद्यमान हैं, तथापि पालनकी प्रधानता होनेके कारण ही वे सर्वोपरि समझे जाते हैं । भगवान् विष्णु अपनी चारों भुजाओंमें क्रमशः शङ्ख, चक्र, गदा और कमल धारण किये रहते हैं, जिसका कुछ विशेष अभिप्राय है । 'कमल' सृष्टिका द्योतक है; क्योंकि स्थलके पहले जल और फलसे पहले फूल होनेसे, प्रथमजन्मा जलका फूल कमल ही सृष्टिकर्ता ब्रह्माका उद्भवस्थान माना गया है । गदा संहार अथवा प्रलयका चिह्न है, चक्र कालचक्र (समय) का सूचक है और शङ्ख 'शब्दगुणमाकाशम्' के न्यायसे देश (Space) का सूचक है । स्थितिकी क्रियाके लिये देश और कालका आधार अत्यन्त आवश्यक है । इस प्रकार भगवान् विष्णुके चतुर्भुज रूपमें शङ्ख, चक्रको ऊपर उठाकर भक्तोंने यह बता दिया है कि अन्य शक्तियोंसे पालन-शक्ति प्रधान है और इसी प्रधानताके कारण भगवान् विष्णु सभी देवताओंमें प्रधान माने गये हैं । यह तो हुई रूपकी बात । इसी प्रकार 'विष्णुसहस्रनाम'में भगवान् विष्णुके प्रत्येक नामकी व्याख्या गुणोंके अनुसार की गयी है । उदाहरणके लिये विष्णुके कुछ नामोंकी व्युत्पत्ति यहाँ की जा रही है ।

'विष्णु' शब्दका भाव इस प्रकार है—

यस्माद्विष्टमिदं सर्वं तस्य शक्त्या महात्मनः ।
तस्मात् स प्रोच्यते विष्णुर्विशेर्धातोः प्रवेशनात् ॥

(विष्णुपुराण ३ । १ । ४५)

यह सम्पूर्ण विश्व उस महान् देवकी शक्तिसे व्याप्त है, इसीसे ही वह 'विष्णु' कहलाता है; क्योंकि 'विश्' धातुका अर्थ सबमें प्रविष्ट, ओत-प्रोत अथवा व्याप्त होना है ।

इसी प्रकार 'जनार्दन' शब्दमें भी गम्भीर अर्थ समाहित है—

'जनान् लोकान् अर्दति गच्छति प्राप्नोति रक्षणार्थं पालकत्वादिति जनार्दनः ।' (अमरटीकायां भरतः)

अर्थात् जो पालन-पोषण करनेवाला होनेके कारण लोकोंकी रक्षाके लिये दौड़ता है, वह 'जनार्दन' कहलाता है ।

भगवान् विष्णुका एक नाम 'माधव' भी है (मा=लक्ष्मी+धव=पति) अर्थात् मायाया लक्ष्म्या धवः 'माधवः'—लक्ष्मीके पति ।

ऊपर मैंने पालक विष्णुके कुछ नामोंकी संक्षिप्त व्याख्या की है, अब नीचे उद्धारक विष्णुके नामोंकी चर्चा करेंगे ।

भगवान् विष्णुका एक नाम 'हरि' भी है । 'हरि'का भाव इस प्रकार है—'क्लेशं हरतीति हरिः' (क्लेशहारीको 'हरि' कहते हैं) । इसीलिये जब-जब दैत्यों और दानवोंके अनाचारसे समाज दुःखित, क्षुभित, पीड़ित हुआ है, तब-तब ऋषियों, मुनियों और देवताओंने मिलकर 'हरि'-का स्मरण करनेका ही सुझाव दिया है । जगत्-स्रष्टा विधाता भी जब जगत्‌की रक्षा करनेमें सक्षम न हो सके, तब उन्होंने भी 'हरि'-चरणोंके स्मरणका ही सुझाव दिया । यथा—

'धरनि धरहि मन धीर कह बिरंचि हरिपद सुमिरु ।'

(मानस १ । १८४)

अर्थात् कष्टोंका हरण भगवान् 'हरि' ही कर सकते हैं, दूसरा कोई नहीं ।

इतिहासके पन्ने साक्षी हैं कि समाज और संसारके दुःखों और क्लेशोंका हरण करनेके लिये भगवान् हरिको समय-समयपर अनेकों रूप धारण करने पड़े हैं और उन्हींकी गौरव-गाथाका गान विभिन्न प्रकारसे अनेकों ग्रन्थोंमें किया गया है । सांसारिक दुःखको हरनेके कारण ही 'हरिचरित' सबको सुन्दर और सुखदायी लगता है—

'सुनु गिरिजा हरिचरित सुहाए । बिपुल बिसद निगमागम गाए ॥'

(मानस १ । १२० । ३)

भगवान् 'हरि' कभी नरहरि, कभी राम और कभी कृष्णके रूपमें, कभी कच्छप, कभी मत्स्य तथा कभी वराहके

रूपमें अवतरित होकर सज्जनों, सत्पुरुषों, साधुपुरुषोंके कष्टोंका हरण करते हैं—

'तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा॥'
(मानस १ । १२० । ४)

वैसे तो भगवान् विष्णुका प्रत्येक अवतार महान् है, किंतु उनके पालक और उद्धारक स्वरूपका स्पष्ट और विस्तृत दर्शन हमें उनके रामावतार और कृष्णावतारोंमें होता है। श्रीरामका जगत्पालक और श्रीकृष्णका लोकोद्धारक स्वरूप प्रसिद्ध है। भगवान् रामका प्रजापालन विश्वमें बेजोड़ है; इसीलिये आस्तिकोंकी कौन कहे, नास्तिक भी रामराज्य-स्थापनाकी दुहाई देते हैं। इसी प्रकार जिस समय कंसादिकोंके अत्याचारसे पीड़ित जनमानस 'त्राहि माम्, त्राहि माम्' की पुकार कर रहा था, उस समय भगवान् विष्णुने श्रीकृष्णके रूपमें अवतरित होकर समस्त दुष्टों और दानवोंका संहार करके समाज और संसारका उद्धार किया।

भगवान् कृष्ण जैसा उद्धारक आजतक कहीं नहीं हुआ। उन्होंने कुरुक्षेत्रके रणप्राङ्गणमें गीता गान करके मानवमात्रको कर्तव्यका ज्ञान कराकर उसकी परवशता और पराधीनताकी बेड़ियाँ सदा-सर्वदाके लिये काट दीं।

सद्ज्ञान और सत्शिक्षासे बढ़कर जीवनका उद्धार करनेवाली और कोई दूसरी वस्तु नहीं हो सकती। इसीलिये संकीर्णता और स्वार्थपरताकी खाई तोड़कर तथा यथार्थताकी ओर मुख मोड़कर भगवान् श्रीकृष्णने उस समयकी कराहती मानवताको वह दिव्य शिक्षा दी, जो किसी देश-विशेष, वर्ग-विशेष, धर्म-विशेष अथवा युग-विशेषतक ही सीमित न रहकर, युग-युगकी मानवताका उद्धार करनेमें सक्षम और समर्थ हो सकी है।

भगवान् विष्णुके अनन्त और अचिन्त्य गुण

(लेखक—श्रीमती बनारसी देवी)

नील सरोरुह स्याम तरुन अरुन बारिज नयन।
करउ सो मम उर धाम सदा छीर सागर सयन॥
(मानस, बालकाण्ड सोरठा ३)

भुशुण्डिजीने कहा है—

ग्यान गिरा गोतीत अज माया मन गुन पार।
सोइ सच्चिदानंद घन कर नर चरित उदार॥
(मानस ७ । २५)

जो ज्ञान, वाणी और इन्द्रियोंसे परे हैं, जो जन्म-मृत्युसे रहित हैं तथा जो माया, मन और तीनों गुणोंसे परे हैं, वे ही सच्चिदानन्दघन भगवान् श्रेष्ठ नरलीला करते हैं। ये श्रीराम ही भगवान् विष्णु भी हैं। इसीसे मानसमें स्थान-स्थानपर इन्हें 'रमारमण', 'रमापति', 'इन्दिरारमण' और 'रमानिवास' आदि कहा गया है। ये ही (भगवान् विष्णु) निर्गुण-निर्विशेष ब्रह्म भी हैं। अतएव इनके लिये 'अव्यक्त', 'अचिन्त्य', 'अनुभवगम्य', 'निर्गुण ब्रह्म' आदि शब्द प्रयुक्त हुए हैं। भगवान् विष्णु केवल निर्गुण-निर्विशेष ही नहीं हैं, अपितु स्वरूपभूत दिव्यगुणोंके महान् समुद्र भी हैं। भगवान् एक रूप धारण किये हुए भी सीमाहीन हैं। ज्ञान, बल, ऐश्वर्य, अचिन्त्य शक्ति, ओज, तेज आदिसे सदा सम्पन्न भी हैं। निरतिशय उज्ज्वलता, सुन्दरता, सुकुमारता, निस्सीम दया, सहृदयता, सानुरागता, सुशीलतासे नित्य-युक्त हैं।

ब्रह्मासे लेकर साधारण कीटपर्यन्त स्थावर-जंगम जगत्की उत्पत्ति कर आप अपार कारुण्य, वात्सल्य, औदार्य आदि गुणोंसे युक्त होकर उसकी रक्षा-दीक्षा-समीक्षा आदिमें तत्पर रहते हैं। स्वोत्पादित जगत्का ऐहिक तथा पारलौकिक हित-सम्पादन करनेके लिये जलचर-स्थलचर-खेचरका रूप धारण करते हैं अर्थात् तत्तत् रूपमें अवतार ग्रहण करते हैं। भगवान् ही जीवके सच्चे हितैषी, सुहृद्, प्रियतम और आत्मा हैं।

आनन्द मेरे प्रभुका स्वरूप है, आनन्द मेरे प्रभुकी ही देन है। आनन्द-प्राप्तिसे सब संतुष्ट होते हैं। तुष्टि, पुष्टि, पुष्टि भगवान् विष्णु ही करते हैं; अतः शाश्वत शान्ति देनेवाले भी आप ही हैं। आपकी सभी लीलाएँ और समस्त गुण सदा निज जनोंका हित करनेके लिये ही होते हैं। वैसे तो शास्त्रोंमें इसके बड़े-बड़े प्रमाण हैं, पर एक बड़ा प्रसिद्ध प्रमाण सत्यनारायणजीके व्रत तथा कथाका है। दीन-दुःख-हरण भगवान् कैसे अपने जनोंके सङ्ग ही-सङ्ग सदैव रहते हैं, वे सब समय अपने भक्तोंके समक्ष प्रकट

होकर या अन्तर्हित होकर कैसे खेल खेलते हैं और कथाका पाठ करने या सुननेवाले सब लोगोंकी चिन्ता एवं शोकादिको नष्ट करके कैसे इहलोकमें सुख-सम्पत्तिकी तथा परलोकमें भगवल्लोककी प्राप्ति करा देते हैं—इसका सुन्दर प्रमाण है यह सत्यनारायण-कथा। साधन छोटा-सा, पर फल कितना महान् है!

क्षमाके तो आप साकार स्वरूप हैं। कितना ही भारी अपराधी क्यों न हो, उसके साथ भी आप अनुपम स्नेह एवं सद्भावसे पूर्ण बर्ताव करते हैं। भृगुजीके द्वारा वक्षःस्थलपर पद-प्रहार किये जानेपर भी उनके अनौचित्यका ध्यान न करके उनके चरणको दबाने लगे—यह सोचकर कि 'मेरी कठोर पसलियोंके आघातसे इन्हें कहीं चोट न आ गयी हो।' कैसी अद्भुत क्षमा है!

पाप तो आपका नाम अनजानमें भी लेनेसे नष्ट हो जाते हैं। श्रीगोस्वामी तुलसीदासजी लिखते हैं—

मैं हरि पतित-पावन सुने।

× × ×

ब्याध गनिका गज अजामिल साखि निगमनि भने।
और अधम अनेक तारे जात कापै गने॥

(विनयपत्रिका १६० । १-२)

भक्तवत्सल भगवान्‌के सामने जहाँ भक्तकी बात आयी, वहाँ उन्हें न न्याय दीखता है न अन्याय, इन्हें तो केवल भक्त दीखता है।

अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज।
साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रियः॥

(श्रीमद्भागवत ९ । ४ । ६३)

'दुर्वासाजी! मैं परतन्त्र—गुलामकी भाँति अपने भक्तोंके अधीन हूँ। साधु भक्तोंने मेरे हृदयपर अधिकार कर लिया है; क्योंकि भक्त मुझे प्रिय हैं और मैं उनका प्रिय हूँ।'

भगवान्‌का स्वभाव है अपने सुहृदों, अपने स्वजनोंको सम्मान देते रहना। महाभारतके अन्तर्गत विष्णुसहस्रनामके वक्ता भीष्मपितामहके सामने आपने स्वीकार किया कि 'मैं आपको यशस्वी बनाना चाहता हूँ।'

'मानदः स्वसुहृदां वनमाली।' (भागवत १० । ३५ । २४)

ये वनमाली ही विष्णुभगवान् हैं। सूरदासजीकी वाणीमें गोपी कह रही है—

यह धन धर्म ही तें पायौ।
नीकें राख जसोदा मैया, नारायन घर आयौ॥

श्रीराम-कृष्णरूपमें भी भक्त भगवान् विष्णुका ही भजन-आराधन करते हैं, सबके आराध्यदेव भगवान् विष्णु ही हैं। सब अपनेको 'वैष्णव' कहते हैं। वैष्णवका अर्थ ही 'विष्णु-भक्त' है।

ब्रह्मा-इन्द्र-शारदा ही नहीं, भगवान् शशाङ्कशेखर भी जिनके पदोंमें मस्तक झुकाते हैं, वे ही भगवान् अपने प्रेमी भक्तोंके आगे हाथ जोड़ द्वारपालकी तरह खड़े देखे जाते हैं—

लोकपाल, जम, काल, पवन, रबि, ससि सब अग्याकारी।
'तुलसिदास प्रभु उग्रसेन के द्वार बेंत कर धारी॥'

प्रभु कहीं भक्तोंके संकेतसे नाचते हैं, कहीं गाते हैं, कहीं बजाते हैं—

सेस, महेस, गनेस, दिनेस, सुरेसहु जाहि निरंतर ध्यावैं।
ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भर छाछ पै नाच नचावैं॥

× × ×

करतल ताल बजाय ग्वाल-जुबतिन्ह सोइ नाच नचायौ।

(विनय-पत्रिका)

कहीं गायोंको बुलाते हैं—

रसिक रसीली बोलनी, गिरि चढ़ि गैयाँ बुलाय हो।
गाँग बुलाई धूमरी, ऊँचे टेर सुनाय हो॥

भक्तवत्सल प्रभु कहीं भक्तकी सेवा करते पाये जाते हैं—

'प्रेम बिबस नृप-सेवा कीन्ही, आप बने हरि नाई।'

कहीं जूठन उठाते देखे जाते हैं—

'राजसु जग्य युधिष्ठिर कीन्हौं, तामें जूठ उठाई।'

कहीं अपने भक्तका रथ हाँकते हैं—

'प्रेम बिबस पारथ रथ हाँक्यौ भूलि गए ठकुराई।'

भगवान् विष्णु परिपूर्णतम हैं; किंतु वे सर्वगुणसम्पन्न होते हुए भी 'मैं कितना महान् हूँ', यह तो सर्वथा भूल ही जाते हैं।

ऐसे महिमामय ठाकुरकी है यह झाँकी, जो सर्वातीत होकर भी स्नेहाबद्ध है।

श्रीविष्णु-नामकी महिमा

(लेखक—श्रीतारिणीशजी झा, व्याकरण-वेदान्ताचार्य)

सत्रहवीं शताब्दीमें आविर्भूत, दक्षिण भारतके सुप्रसिद्ध यतिवर श्रीबोधेन्द्र स्वामीने अपने 'नामामृतरसोदय' नामक ग्रन्थमें लिखा है—

> विष्णोर्नामैव पुंसां शमलमपनुदत् पुण्यमुत्पाद्य चित्ते
> ब्रह्मादिस्थानभोगाद् विरतिमथ गुरोः श्रीपदद्वन्द्वभक्तिम् ।
> तत्त्वज्ञानं च विष्णोरिह मृतिजननभ्रान्तिबीजं च दग्ध्वा
> ब्रह्मानन्दैकसिन्धौ महति च पुरुषं स्थापयित्वा निवृत्तम् ॥

अर्थात् श्रीविष्णुका नाम ही मनुष्योंके पापोंको दूर करता हुआ उनके चित्तमें पुण्यका उदय करता है; तत्पश्चात् उनके मनमें ब्रह्मलोक आदिके भोगोंसे भी वैराग्य उत्पन्न कर देता है; फिर श्रीगुरुके चरणारविन्दोंके प्रति भक्ति बढ़ाता हुआ भगवान् विष्णुके तत्त्वका ज्ञान कराता है; तदनन्तर इस लोकमें जन्म और मृत्युरूप चंक्रमणके बीजको दग्ध करके (नाम-साधक) पुरुषको महान् ब्रह्मानन्द-सागरमें निमग्न करके स्वयं निवृत्त हो जाता है ।

स्वामीजीका उक्त कथन शास्त्रानुमोदित होनेसे अक्षरशः सत्य है । शास्त्रोंमें कहा गया है—

> हास्याद् भयात्तथा क्रोधाद् द्वेषात्कामादथापि वा ॥
> स्नेहाद् वा सकृदुच्चार्य विष्णोर्नामाघहारि च ।
> पापिष्ठा अपि गच्छन्ति विष्णोर्धाम निरामयम् ॥
>
> (स्कन्दपुराण, वै०, वै० मा० २१ । ३६-३७)

अर्थात् परिहास, भय, क्रोध, द्वेष, कामना अथवा स्नेहसे भी एक बार भगवान् विष्णुके पापनाशक नामका उच्चारण करके बड़े-बड़े पापी भी रोग-शोक-रहित विष्णु-लोकमें चले जाते हैं ।

यही बात श्रीमद्भागवत (६ । २ । १४) में भी कही गयी है—

> सांकेत्यं पारिहास्यं वा स्तोभं हेलनमेव वा ।
> वैकुण्ठनामग्रहणमशेषाघहरं विदुः ॥

अर्थात् जैसे-तैसे संकेतके रूपमें, परिहासमें, गाते समय, सहारेके लिये या अवहेलनापूर्वक भी लिया गया विष्णुका नाम अशेष पापोंका ध्वंसक है ।

इतना ही नहीं, नारदपुराणमें तो यहाँतक कहा गया है कि 'श्रीविष्णुके नाममें जितने पापोंका विनाश करनेकी शक्ति संनिहित है, उतने पाप पापी मनुष्य नहीं कर सकता'—

> नाम्नोऽस्ति यावती शक्तिः पापनिर्हरणे हरेः ।
> तावत्कर्तुं न शक्नोति पातकं पातकी नरः ॥

अब यदि हम विष्णु-नामकी इस अद्भुत महिमाके कारणोंपर दृष्टिपात करते हैं तो सबसे बड़ा कारण यही प्रतीत होता है कि विष्णु सर्वव्यापक हैं; क्योंकि 'विष्णु' शब्दकी सिद्धि ही 'विष्लृ व्याप्तौ' धातुसे होती है (वेवेष्टि इति विष्णुः, विष्+नुक् औणादिक प्रत्यय) । जो सर्वत्र व्याप्त है, उसका उच्चारण कहीं भी, किसी भी रूपमें किया जायगा तो उसे वह सुनेगा ही । जब वह परमात्मा हमारी बात सुन लेगा, तब उस सर्वशक्तिमान् प्रभुको हमारे अशेष पापोंके नाश करनेमें कितनी देर लगेगी । कोई कह सकता है कि 'लोकमें जैसे जब हम प्रेमसे किसीको पुकारते हैं, तब वह हमारी बातको तुरंत सुन लेता है और जब हम उसे अवहेलना-पूर्वक पुकारते हैं, तब वह हमारी सुनी हुई बातको भी अनसुनी कर देता है, उसी तरह जब हम श्रद्धा-भक्तिसे विष्णु-नामका उच्चारण करेंगे, तभी वे हमारी बात सुनेंगे और जब अवहेलनाके साथ उच्चारण करेंगे, तब वे भला क्यों सुनने जायँगे ?' परंतु यह लौकिक दृष्टान्त परमात्मा विष्णुपर लागू नहीं होता; क्योंकि उनके सम्बन्धमें श्रीमद्भागवतमें कहा गया है—

> कामं क्रोधं भयं स्नेहमैक्यं सौहृदमेव च ।
> नित्यं हरौ विदधतो यान्ति तन्मयतां हि ते ॥
>
> (१० । २९ । १५)

अर्थात् काम, क्रोध, भय, स्नेह, एकता तथा मित्रता —इनमेंसे किसी भी भावसे हरि (विष्णु) का नित्य भजन करनेवाले मनुष्य विष्णुके स्वरूपको प्राप्त कर लेते हैं ।

तो बताइये, ऐसे करुणावरुणालय प्रभु हमारी पुकारको अनसुनी कर देंगे, यह असम्भव है । विष्णुकी सर्वव्यापकताका ज्ञान न होनेके कारण ही जीव भवाटवीमें भटकता रहता है, इस

गरुडासीन अष्टभुज श्रीविष्णु

[पृष्ठ ६६
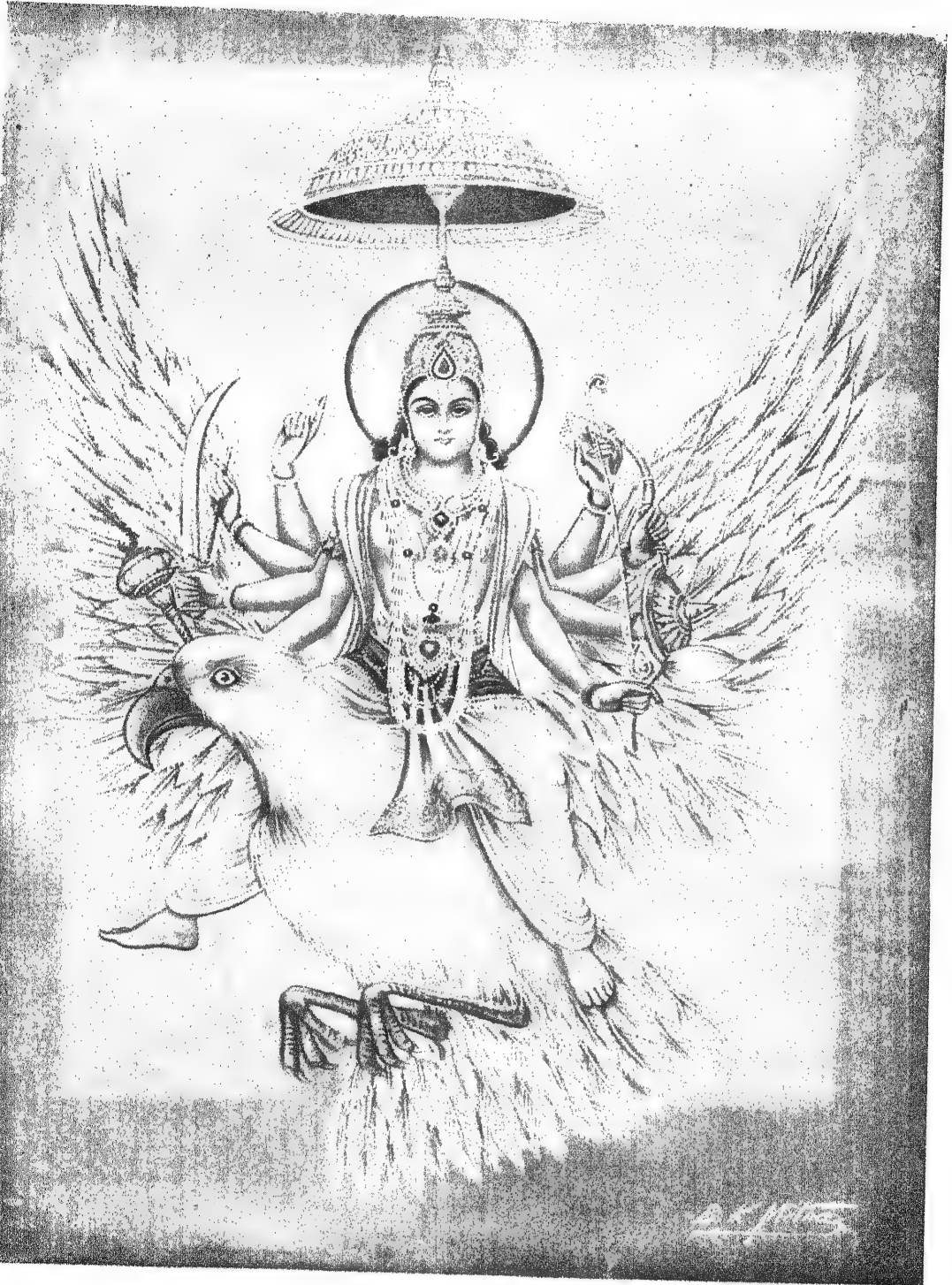
और प्रभुने स्वयं भी संकेत किया है। जब द्रौपदीकी साड़ी खींची जा रही थी, तब उसने रक्षाके लिये भगवान्‌को—

हे कृष्ण द्वारकावासिन् क्वासि यादवनन्दन।
इमामवस्थामापन्नामनाथां किं न रक्षसि॥

'हे द्वारकावासी प्रभो! हे यदुनन्दन कृष्ण! तुम कहाँ हो! इस असहाय स्थितिको पहुँची हुई मुझ अनाथाकी रक्षा क्यों नहीं करते?'—कहकर पुकारा! इसपर भगवान् आये और उन्होंने द्रौपदीकी लाज भी बचा ली। किंतु वे कुछ देरसे आये। इस सम्बन्धमें पीछे किसी दिन द्रौपदीने जब उनसे यह प्रश्न किया कि 'आपने उस दिन आनेमें विलम्ब क्यों किया' तब भगवान्‌ने उत्तर दिया कि 'मैं तो सब जगह रहता हूँ, अतएव तुम्हारे निकट ही था; किंतु तुमने 'द्वारकावासिन्' कहकर मुझे पुकारा, इसलिये पहले मुझे द्वारका जाना पड़ा। फिर वहाँसे आया। अतएव जाने-आनेमें कुछ विलम्ब हो गया।'

इस प्रकार शास्त्रों एवं पुराणोंमें विष्णु नामकी अनन्त महिमा गायी गयी है। और युगोंमें भले ही सुख-शान्ति एवं भगवत्प्राप्तिके अनेक उपाय रहे हों, किंतु कलियुगमें तो एकमात्र विष्णुनाम ही आधार है—

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥
(बृहन्नारदीयपुराण १।४१।१५)

'कलियुगमें हरिनाम ही सर्वोपरि है, इसके सिवा दूसरा कोई उपाय है ही नहीं।'

'अच्युत-अनन्त-गोविन्द' नामोंकी महत्ता

(लेखक—श्रीयुत सी० एच० भास्कर रामकृष्ण आचार्युलु बी० ए०, बी० एड०)

भगवन्नाम महत्त्वके बारेमें कुछ लिखनेका प्रयत्न करना तो मार्तण्डको दीपकके सहारे दिखानेका प्रयत्न करना ही होगा। हमारे श्रुति-स्मृति-इतिहास-पुराण-दर्शन आदि सभी शास्त्र तो नाममहिमाका गान करते ही हैं। भगवान्‌के नाम तो उनके अनन्त गुणगणोंके समान अनन्त हैं। उनमेंसे बहुत प्रसिद्ध नामोंके संग्रह ही अनेक हो गये हैं। उनमें भी भगवान् शंकर तथा धन्वन्तरिके द्वारा उक्त 'अच्युत', 'अनन्त' तथा 'गोविन्द' नामोंकी महत्ताका वर्णन करते समय कहा गया है कि ये नाम मृत्युको भी दूर करनेमें सक्षम हैं तथा इनके जपसे समस्त रोग-शोक आदि दूर हो जाते हैं—

अच्युतानन्तगोविन्द इति नामत्रयं हरेः।
यो जपेत् प्रयतो भक्त्या प्रणवाद्यं नमोऽन्तकम्॥
तस्य मृत्युभयं नास्ति विषरोगाग्निजं महत्।
... ...
कालमृत्युभयं चापि तस्य नास्ति किमन्यतः॥
(पद्मपुराण, उत्तर० २६० । १९—२१)

अच्युतानन्तगोविन्दनामोच्चारणभेषजात्।
नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम्॥
(धन्वन्तरि)

उक्त नामोंके मन्त्रवत् अनुष्ठानकी विधि नारदपुराणमें वर्णित है। अब उक्त तीन नामोंकी विशेषताओंका संक्षिप्त परिचय लिखा जाता है।

अच्युत—उक्त नामत्रयमेंसे 'अच्युत' नाममें भगवान्‌का स्वस्थितिसे विचलित न होना अर्थ दृष्टिगोचर होता है। 'अच्युत' नाम गीतामें तीन बार आया है—

'रथं स्थापय मेऽच्युत।' (१। २१),
'एकोऽथवाप्यच्युत' (११। ४२) एवं
'नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।'
(१८। ७३)

इनमेंसे दूसरे तथा तीसरे वाक्योंके संदर्भोंका परिशीलन करें तो दोनोंमें अर्जुनका भगवान्‌की स्थितिके ज्ञानसे पैदा हुआ पश्चात्ताप तथा भगवत्कृपाके फलस्वरूप ज्ञान-प्राप्तिके समय पैदा होनेवाली भक्ति—प्रपत्तिकी झलक दृष्टिगोचर होती है।

'अच्युत' नाममें भगवत्कृपाकर्षिणी शक्ति दिखायी देती है। श्रीशंकराचार्यजीद्वारा विरचित दोनों 'अच्युताष्टकों'में अपार शक्ति भरी पड़ी है। उनमें 'श्रीमदच्युताष्टक' 'अच्युताच्युत हरे परमात्मन्' से प्रारम्भ होता है और इस स्तोत्रके पाठसे लोगोंको अद्भुत सफलता प्राप्त हुई है। इसके

पाठसे दुस्साध्य भूत-बाधा, असामान्य चिन्ता एवं दुःख भी दूर होते देखे गये हैं ।

अनन्त—'अनन्त' नाममें भगवान्की सर्वव्यापकता दृष्टिगोचर होती है ।

गोविन्द—'गोविन्द' नाम भी बहुत प्रसिद्ध नाम है । इसका महत्त्व पद्मपुराणमें वर्णित है । केवल 'गोविन्द'-नामके जपसे समस्त पाप-तापों एवं आधि-व्याधियोंका निवारण होता है तथा परमपदकी प्राप्ति होती है (पद्मपुराण, उत्तरखण्ड) । 'भुञ्जन् कीर्तय गोविन्दम्'से भोजनके समय गोविन्द-स्मरणकी सूचना है । इससे पता लगता है कि गोविन्द-स्मरणमें आहारको पचा देनेकी शक्ति विशेष है । जठरकी पाचनी शक्तिकी सुस्थितिसे आरोग्यकी प्राप्ति स्वतः ही होती है ।

'गोविन्द'में आर्तरक्षणकी विशेष क्षमता है । द्रौपदीने भगवान्को अपनी लाजकी रक्षाके लिये 'गोविन्द द्वारका-वासिन्' कहकर पुकारा था । कुरुक्षेत्रमें विषण्ण हृदय अर्जुनने भी भगवान्को इसी नामसे एक ही बार सम्बोधन किया—'किं नो राज्येन गोविन्द' (१ । ३१) । भगवान् शंकराचार्यजी भी मूढ़ोंको चेतन करते हुए गोविन्दका भजन करनेको कहते हैं—

'भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते ।'

इस तरह देखें तो उक्त तीनों नाम अलग-अलग महत्त्व रखते हैं तथा तीनोंका सम्मिलित महत्त्व विशेष बढ़ जाता है । उक्त नामोंके आदिमें प्रणव और अन्तमें 'नमः' का संयोग करके अथवा धन्वन्तरिद्वारा कथित श्लोकका भी मन्त्रवत् अनुष्ठान करके लौकिक-पारलौकिक लाभ उठाना चाहिये ।

शक्ति और शक्तिमान्की एकता और भिन्नता

(लेखक—पं० श्रीजगदीशजी शुक्ल, साहित्यालंकार, काव्यतीर्थ)

शक्ति और शक्तिमान् एक ही ब्रह्मके दो रूप हैं, एक ही चित्रके दो पहलू । श्रुति कहती है—

'स एवात्मानं द्वेधापातयत् ततः पतिश्च पत्नी चाभवताम् ।'
(बृहदारण्यक०)

'उसी एक ब्रह्मने पति और पत्नी—दो रूपोंमें अपने-आपको अवतरित किया ।'

जैसे काष्ठगत आग जबतक प्रकट नहीं हो जाती, तबतक कामकी नहीं हो पाती—उस निर्गुण-निराकार अग्निसे हमारा कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं हो सकता, उसी प्रकार निर्गुण-निराकार, सच्चिदानन्द, अविनाशी, अविकारी और व्यापक ब्रह्म हृदयस्थ रहकर भी जीवोंके दुःख और दैन्यका निवारण नहीं कर पाता । यही बात गोस्वामी तुलसीदासजी भी कहते हैं—

ब्यापकु एकु ब्रह्म अबिनासी । सत चेतन घन आनँद रासी ॥
अस प्रभु हृदयँ अछत अबिकारी । सकल जीव जग दीन दुखारी ॥
(मानस १ । २२ । ३-३½)

गङ्गाका अगाध प्रवाह बहता जा रहा है, किंतु उससे संसारका प्रत्यक्ष कल्याण नहीं हो पाता । वही प्रवाह जब सीमामें आ जाता है, तब हमारे और आपके कामके उपयुक्त हो जाता है । नहरें निकालकर हम उससे खेत पटाते हैं और घड़े, लोटे या चुल्लूमें भरकर अपनी प्यास बुझाते हैं । इसी प्रकार वह असीम ब्रह्म जब सगुण-साकार बनकर सीमामें आ जाता है, तब उसके दर्शन-स्पर्श, सम्भाषण और लीलाओंसे, उसके प्रभाव और स्वभावसे हमारे कार्य सिद्ध होने लगते हैं । निराकार ब्रह्मके उपासक भावुक मुसल्मान भी उस ब्रह्मके सगुण-साकार रूपके लिये तड़प उठते हैं । उर्दूके महाकवि इकबालकी एक भक्तिभरी तड़प देखिये—

कभी ऐ हकीकते मुंतज़र नज़र आ लिबासे मेजाज़में,
कि हज़ारों सिजदे तड़प रहे हैं, मेरी जबीने नयाज़में ।

उस निर्गुण-निराकार ब्रह्मको सगुण-साकार मानकर उस अपरूप रूपवाले ब्रह्मके कुटिल कटाक्षोंसे जख्मी, बर्बाद और बिसिल होनेके लिये उर्दूके सुप्रसिद्ध शायर 'बेदम' भी बेदम हो रहे हैं । आपकी अभिलाषा और लालसा देखने ही योग्य है—

जख्मोंसे कलेजेको भर दे,
पामाल सुकूने दिल कर दे,
ओ नाज़भरी चितवन वाले !
आ, और मुझे बिसिल कर दे ।

'बेदम' साहेबकी आन्तरिक कामना और हार्दिक प्रार्थनाको कोई भुक्तभोगी भक्त ही समझ सकता है—

अंदाज़ वो ही समझे मेरे दिलकी आह का,
ज़ख्मी जो हो चुका हो किसी की निगाह का।

जिस भाग्यवान् भक्तका हृदय प्रेमकी रसीली चोट खाता है, वही बड़भागी दर्देदिलका सच्चा और पक्का रस पाता है—

लगी इश्क की चोट हो जिसके दिल पर,
वही दर्दे दिलका मज़ा जानता है।

प्रेमभरी चितवनके इशारे तो निराले होते ही हैं, प्रेमकी दृष्टि भी अनूठी होती है और प्रेमदृष्टिका दृश्य भी अलबेला और लोकातीत होता है—

मुहब्बतकी निगाहोंके इशारे और होते हैं,
वो नज़रें और होती हैं, नज़ारे और होते हैं।

प्रियतम श्रीकृष्णकी प्रेमभरी तिरछी चितवनका लोकोत्तर रसपान करनेके लिये प्रेमरँगीली गोपियाँ विह्वल रहती थीं। उन महाभागा गोपियोंकी मधुर कामनाकी एक बानगी लीजिये। वे कहती हैं—

अक्षण्वतां फलमिदं न परं विदामः
सख्यः पशूननुविवेशयतोर्वयस्यैः।
वक्त्रं व्रजेशसुतयोरनुवेणु जुष्टं
यैर्वा निपीतमनुरक्तकटाक्षमोक्षम्॥
(श्रीमद्भागवत १०।२१।७)

'हे सखियो! हमने तो आँखवालोंकी आँखोंकी और जीवनकी सफलता इतनी ही मानी है—इससे अधिक हम कुछ नहीं जानतीं कि जब श्यामसुन्दर और बलदेव ग्वाल-बालोंके साथ गौओंके पीछे-पीछे आ रहे हों, उनके अधरोंपर मुरली शोभा पा रही हो और वे प्रेममयी तिरछी चितवनसे हमारी ओर देख रहे हों, उस समय हम उनके मुख-सौन्दर्यकी सुधा पीती रहें।'

कुछ लोग निराकार ब्रह्मके साकार होनेमें संदेह करते हैं। किंतु यदि निराकार ब्रह्मसे साकार संसार व्यक्त हो सकता है तो वह स्वयं ब्रह्म साकार होकर क्यों नहीं व्यक्त हो सकता? इसलिये 'इकबाल' और 'बेदम'का ब्रह्मविषयक व्यक्तीकरण भक्ति-संगत ही नहीं, युक्ति-संगत भी है।

ब्रह्म अनन्त रूपोंमें अपने-आपको अभिव्यक्त कर सकता है। इसलिये भक्तकी भावनाके अनुसार भगवान्का कोई भी रूप मान्य हो सकता है।

निर्गुण-निराकार ब्रह्म है तो एक ही, किंतु जब वह भक्तोंके लिये लीला-शरीर धारण करता है, तब लीला-माधुर्यके लिये शक्ति और शक्तिमान्के रूपमें दो हो जाता है। मनु और शतरूपाकी तपस्या निर्गुण-निराकार परम प्रभुको लीला-विग्रहमें प्रत्यक्ष देखनेके लिये थी। मनुजीकी अनूठी अभिलाषा देखिये—

उर अभिलाष निरंतर होई। देखिअ नयन परम प्रभु सोई॥
अगुन अखंड अनंत अनादी। जेहि चिंतहिं परमारथबादी॥
नेति नेति जेहि बेद निरूपा। निजानंद निरुपाधि अनूपा॥
संभु बिरंचि बिष्नु भगवाना। उपजहिं जासु अंस तें नाना॥
ऐसेउ प्रभु सेवक बस अहई। भगत हेतु लीलातनु गहई॥
जौं यह बचन सत्य श्रुति भाषा। तौ हमार पूजिहि अभिलाषा॥
(मानस १।१४३।२—४)

मनुजीकी तपस्यासे विश्ववास भगवान्का आसन डोल उठा। उस समय आकाशवाणी हुई और मनुजीकी प्रार्थनापर घट-घटव्यापी ब्रह्म श्रीराम-रूपमें प्रकट हो गया। परम प्रभुकी साँवली सलोनी शोभापर कोटि-कोटि कंदर्पोंका दर्प कपूर हो रहा था—

नील सरोरुह नील मनि नील नीरधर स्याम।
लाजहिं तन सोभा निरखि कोटि कोटि सत काम॥
(मानस १।१४६)

किंतु वह ब्रह्म केवल शक्तिमान् श्रीरामरूपमें ही साकार नहीं हुआ, उसके वामभागमें आदि-शक्ति श्रीसीताजी भी विराजमान थीं—

बाम भाग सोभति अनुकूला। आदिसक्ति छबिनिधि जगमूला॥
जासु अंस उपजहिं गुनखानी। अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी॥
भृकुटि बिलास जासु जग होई। राम बाम दिसि सीता सोई॥
(मानस १।१४७।१—२)

मनुजीकी तपस्या केवल परम प्रभुके लिये ही थी। उसमें शक्तिमान् और शक्तिकी अलग-अलग चर्चा भी नहीं थी। किंतु वे परम प्रभु प्रकट होते हैं शक्तिमान् और शक्तिके भिन्न-भिन्न रूपोंमें। इससे प्रमाणित हो जाता है कि ब्रह्मकी अखण्डतामें शक्तिमान् और शक्ति दोनोंका ही समावेश है। सर्वशक्तिमान् ब्रह्म और आदिशक्ति एक ही हैं,

दो नहीं। मनु और शतरूपाको वर देते हुए भी प्रभुने अपने अवतारका वरदान तो दिया ही, आदिशक्तिके अवतारका भी वरदान बिना माँगे ही दे दिया—

'आदिसक्ति जेहिं जग उपजाया। सोउ अवतरिहि मोरि यह माया ॥'

(मानस १ । १५१ । २)

शक्तिरूपा पार्वती और शक्तिमान् शंकरकी तात्त्विक एकताका वर्णन करते हुए संस्कृतके महाकवि कालिदासने दोनोंकी वन्दना की है—

वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ ॥

(रघुवंश १ । १)

'वाणी और अर्थकी सिद्धिके लिये मैं वाणी और अर्थके समान मिले हुए संसारके माता-पिता पार्वती और शंकरकी वन्दना करता हूँ।' वाणी और अर्थ पृथक्-पृथक् होनेपर भी जैसे एक ही हैं, वैसे ही पार्वती और शिव भी एक ही हैं।

श्रीसीताजी और श्रीरामजीकी पद-वन्दना करते समय परमाचार्य गोस्वामी तुलसीदासजीने आदिशक्ति श्रीसीताजी और सर्वशक्तिमान् श्रीरामजीकी तात्त्विक एकताका सहज ही समर्थन किया है। आपकी उक्ति है—

गिरा अरथ जल बीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न।
बंदउँ सीता राम पद जिन्हहि परम प्रिय खिन्न ॥

(मानस १ । १८)

शक्तिमान् और शक्तिकी एकताका वर्णन करते हुए परमर्षि पराशरजीने कहा है—

नित्यैवैषा जगन्माता विष्णोः श्रीरनपायिनी।
यथा सर्वगतो विष्णुस्तथैवेयं द्विजोत्तम ॥
अर्थो विष्णुरियं वाणी नीतिरेषा नयो हरिः।
बोधो विष्णुरियं बुद्धिर्धर्मोऽसौ सत्क्रिया त्वियम् ॥

(विष्णुपुराण १ । ८ । १७-१८)

'हे ब्राह्मणपुंगव मैत्रेय! सदा दर्शनीया जगज्जननी लक्ष्मीजी नित्या ही हैं। भगवान् विष्णुकी तरह भगवती लक्ष्मी भी सर्वव्यापक हैं। विष्णु अर्थ हैं और लक्ष्मी वाणी हैं। विष्णु न्याय हैं और लक्ष्मी नीति हैं। विष्णु बोध हैं और लक्ष्मी बुद्धि हैं। विष्णु धर्म हैं और लक्ष्मी सत्क्रिया हैं।'

तात्पर्य यह है कि शक्ति और शक्तिमान्से परे अखिल विश्वमें अन्य कुछ है ही नहीं—

देवतिर्यङ्मनुष्यादौ पुंनामा भगवान् हरिः।
स्त्रीनाम्नी श्रीश्च विज्ञेया नानयोर्विद्यते परम् ॥

(विष्णुपुराण १ । ८ । ३५)

'देव, तिर्यक् तथा मानवादिमें जो जीव पुरुषवाचक हैं, उन्हें भगवान् विष्णु और जो स्त्रीवाचक हैं, उन्हें भगवती लक्ष्मी जानना चाहिये। इन दोनोंसे परे अन्य कोई नहीं है।'

इन्द्रने भी लक्ष्मीजीकी प्रार्थना करते हुए उपर्युक्त सिद्धान्तका ही समर्थन किया है—

त्वं माता सर्वलोकानां देवदेवो हरिः पिता।
त्वयैतद् विष्णुना चाम्ब जगद्व्याप्तं चराचरम् ॥

(विष्णुपुराण १ । ९ । १२६)

'हे अम्ब! तुम सभी लोकोंकी माता हो तथा देवदेव भगवान् विष्णु पिता हैं। तुमसे और भगवान् विष्णुसे यह स्थावर जंगम संसार व्याप्त है।'

वेदोंमें जहाँ-जहाँ केवल ब्रह्मका वर्णन है, वहाँ-वहाँ श्रीतत्त्वको भी ब्रह्मतत्त्वमें ही अन्तर्भूत माना जाता है। पूज्यपाद भट्टारक स्वामीका कथन है—

'तदन्तर्भावात्त्वां न पृथगभिधत्ते श्रुतिरपि।'

(श्रीगुणरत्नकोशः २८)

सर्वशक्तिमान् परम प्रभु जब-जब लीलावतार धारण करते हैं, तब-तब महाशक्ति भी उनका अनुसरण करके लीला-शरीर धारण करती हैं और उनकी लीलामें सहयोग प्रदान करती हैं—

राघवत्वेऽभवत् सीता रुक्मिणी कृष्णजन्मनि।
अन्येषु चावतारेषु विष्णोरेषानपायिनी ॥
देवत्वे देवदेहेयं मनुष्यत्वे च मानुषी।
विष्णोर्देहानुरूपां वै करोत्येषाऽऽत्मनस्तनुम् ॥

(विष्णुपुराण १ । ९ । १४४-१४५)

'सर्वशक्तिमान्ने जब रामरूपमें अवतार लिया, तब आदिशक्ति सीताके रूपमें अवतरित हुईं। वे ही कृष्णावतारमें रुक्मिणी हुईं। इसी तरह अन्यान्य अवतारोंमें भी वे शक्तिमान् प्रभुसे पृथक् नहीं हुईं। सर्वशक्तिमान्के देव बननेपर महाशक्ति देवी बनती हैं और मानवावतार ग्रहण करनेपर मानवी बनती हैं। भगवान् विष्णुके अनुरूप ही ये भी लीला-शरीर धारण करती हैं।'

लीला-माधुर्यके लिये जब शक्ति और शक्तिमान्‌का पार्थक्य होता है, तब जगत्पिता होनेके कारण शक्तिमान्‌में पितृ-सुलभ कुछ कठोरता भी कभी-कभी दृष्टिगोचर हो जाती है; किंतु आदिशक्ति सभी शक्तियोंकी ही जननी नहीं, सभी प्राणियोंकी भी जननी होती हैं; इसलिये इन जगज्जननीमें तो मातृ-सुलभ वात्सल्य-करुणा-क्षमादि गुण ही प्रधान रूपसे रहते हैं।

प्रभु करुणाके समुद्र हैं अवश्य; किंतु उन करुणासिन्धुमें भी अपराधी जीवके अक्षम्य अपराधको देखकर कभी-कभी क्रोधका तूफान आ जाता है, तब वह कृपाका प्रशान्त महासागर भी क्षुब्ध होकर गरज उठता है। ऐसी परिस्थितिमें करुणामयी जगज्जननी परमेश्वरी परम पिता परमेश्वरकी कारुण्य-वृत्तिको उभाड़कर उसे उद्दीप्त करती हैं और अपराधी जीवको क्षमा-दान दिलवाकर उसे दण्ड-मुक्त कराती हैं। जगन्माताका यह कार्य ही 'पुरुषकार' कहलाता है। जगदीश्वरी सीताजीने जगदीश्वर श्रीरामजीके कारुण्य-भावको उद्दीप्तकर जयन्तको प्राण-दण्डसे मुक्ति दिलायी थी।

भगवान् श्रीरामकी शक्ति-परीक्षाके लिये आये हुए काक-रूपधारी इन्द्र-पुत्र जयन्तने बार-बार प्रहार करके माता सीताको क्षत-विक्षत कर डाला, तब उनके वक्षःस्थलसे टपके हुए उष्ण रक्तकी बूँदोंके स्पर्शसे भगवान् श्रीरामकी नींद टूट गयी। सीताजीकी छातीकी चोटको देखकर प्रभु क्रुद्ध सर्पके समान फुफकारते हुए बोले—

केन ते नागनासोरु विक्षतं वै स्तनान्तरम्।
कः क्रीडति सरोषेण पञ्चवक्त्रेण भोगिना॥
(वाल्मीकि० ५। ३८। २५)

'हे करिकरोरु! तुम्हारे स्तनोंके बीचमें घाव किसने किया? बताओ, कुपित पँचमुँहे सर्पके साथ कौन खेल कर रहा है?'

प्रभुने अपराधीका पता पूछा। किंतु प्राणिमात्रको पुत्र माननेवाली पुत्रवत्सलाने प्रत्यक्ष बैठे हुए भी अपने अक्षम्य अपराधीको बेढंगा बेटा मानकर बचाना चाहा और उसे नहीं बतलाया। 'सामने ही डटे हुए और रक्तरञ्जित तीखे नखोंको दिखाते हुए कौएको प्रभुने स्वयं ही अनायास देख लिया'—

वीक्षमाणस्ततस्तं वै वायसं समवैक्षत।
नखैः सरुधिरैस्तीक्ष्णैर्मामेवाभिमुखं स्थितम्॥
(वाल्मीकि० ५। ३८। २६)

फिर तो क्रुद्ध हुए प्रभुने उसके पीछे ब्रह्मास्त्र ही छोड़ दिया। ब्रह्मास्त्रके भयसे भागता हुआ कौआ ब्रह्माण्डके प्रत्येक लोकमें घूम आया, किंतु कहीं भी किसीने उसे शरण नहीं दी। अन्तमें विवश होकर वह उन्हीं प्रभुकी शरणमें गया—

'त्रींल्लोकान् सम्परिक्रम्य तमेव शरणं गतः॥'
(वाल्मीकि० ५। ३८। ३२)

जयन्त प्रभुके पादारविन्दोंमें आकर उलटा ही गिरा। उस कुपुत्रको भी शरणागत हुआ देख जगज्जननीका वात्सल्य उमड़ पड़ा, करुणाकी गङ्गा बह चली और क्षमाका विशाल दरवाजा आप-ही-आप खुल गया। फिर तो—

प्राणसंशयमापन्नं दृष्ट्वा सीताथ वायसम्।
त्राहि त्राहीति भर्तारमुवाच दयया विभुम्॥
पुरतः पतितं देवी धरण्यां वायसं तदा।
तच्छिरः पादयोस्तस्य योजयामास जानकी॥
तमुत्थाप्य करेणाथ कृपापीयूषसागरः।
ररक्ष रामो गुणवान् वायसं दययार्दितः॥
(पद्मपुराण, उत्तर० २६९। २०६-८)

"पृथ्वीपर सामने पड़े हुए और प्राणसंकटसे भयभीत उस कौएको श्रीजानकीजीने उठाया और उसके मस्तकको प्रभुके पादारविन्दोंपर रखकर अपने ही हाथोंसे साष्टाङ्ग-प्रणामकी विधि पूरी कर दी। फिर कृपार्द्र होकर प्रभुसे कहने लगीं कि 'इसकी रक्षा कीजिये।' फिर तो कृपा-सुधाके अगाध सिन्धु परम गुणवान् प्रभुने उसे अपने ही हाथोंसे उठा लिया और अपनी कृपा-दृष्टिसे निहारकर उसकी रक्षा की।"

ऊपरके उदाहरणमें शक्तिमान् श्रीरामजीमें पितृ-सुलभ क्रोध तथा आदिशक्ति श्रीसीताजीमें मातृ-सुलभ वात्सल्य, करुणा और क्षमा सुस्पष्ट हैं। शक्ति और शक्तिमान्‌के इस लीला-पार्थक्यसे लीला-माधुर्यके अपार पारावारमें अलौकिक रस-संचारका अभिनव चमत्कार आ गया है। वत्सलता, करुणा और क्षमाकी अनुपम विशेषताओंके कारण जगज्जननी आदिशक्तिने जगत्पिताको भी पराजयका परमानन्द प्रदान किया है। यही है शक्ति और शक्तिमान्‌की बाहरी भिन्नताका अनोखा और चोखा लीला-सौन्दर्य। यही है लीला-रसका आला और निराला दिव्य माधुर्य!

पूज्यपाद भट्टारक स्वामीकी अपनी मङ्गलकामना है कि 'जगन्माता श्रीसीताजीकी अहैतुकी क्षमा हम महापापियोंको सुखी बनाये।' जनक-नन्दिनीकी प्रार्थना करते हुए आप कहते हैं—

मातर्मैथिलि राक्षसीस्त्वयि तदैवार्द्रापराधास्त्वया
रक्षन्त्या पवनात्मजाल्लघुतरा रामस्य गोष्ठी कृता।
काकं तं च विभीषणं शरणमित्युक्तिक्षमौ रक्षतः
सा नः सान्द्रमहागसः सुखयतु क्षान्तिस्तवाकस्मिकी॥
(श्रीगुणरत्नकोश ५०)

"हे मिथिलेशनन्दिनि ! तत्कालीन अपराधिनी राक्षसियोंको महावीर हनुमान्‌से बचानेवाली आपने 'मैं आपकी शरण हूँ' कहनेवाले प्रपन्न जयन्त तथा विभीषणकी रक्षिका राघवेन्द्रकी गुण-चर्चा या गुण-समूहको अत्यन्त लघु सिद्ध कर दिया। आपकी यह अहैतुकी क्षमा हम अत्यन्त पातकियोंको सुखी बनाये।"

रावण-वधके उपरान्त भगवान् राघवेन्द्रने वायुनन्दनको समाचार देकर जनक-नन्दिनीके पास भेजा। रावण-वधका सुखद संवाद पाकर मैथिलीके आनन्दकी सीमा नहीं रही। आनन्द-विभोर होकर मिथिलेश-नन्दिनीने पवनकुमारको वर माँगनेकी आज्ञा दी। वायुनन्दन हनुमान्‌ने प्रार्थना की—

घोररूपसमाचाराः क्रूराः क्रूरतरेक्षणाः॥
× × ×
इच्छामि विविधैर्घातैर्हन्तुमेताः सुदारुणाः॥
राक्षस्यो दारुणकथा वरमेतत् प्रयच्छ मे।
मुष्टिभिः पार्ष्णिघातैश्च विशालैश्चैव बाहुभिः॥
जङ्घाजानुप्रहारैश्च दन्तानां चैव पीडनैः।
कर्तनैः कर्णनासानां केशानां लुञ्चनैस्तथा॥
× × ×
एवं प्रहारैर्बहुभिः सम्प्रहार्य यशस्विनि॥
घातये तीव्ररूपाभिर्याभिस्त्वं तर्जिता पुरा।
(वाल्मीकि० ६। ११३। ३१, ३३, ३४, ३५, ३६, ३७)

'हे शोभने ! ये भयावने रूप और आचरणोंवाली तथा क्रूर आँखोंवाली क्रूर राक्षसियाँ आपसे कठोर बातें कहा करती थीं। इन सभी निर्दय राक्षसियोंको मुक्कों, थप्पड़ों, लातों और तरह-तरहके प्रहारोंसे मैं मारना चाहता हूँ। इनपर घुटनोंसे प्रहार करना और इनके दाँत, नाक-कान काटना, बालोंको नोचना तथा नाना प्रकारके प्रहारोंसे इनको पीटकर, हे यशस्विनि ! इन सभी भयानक रूपवाली राक्षसियोंको, जिन्होंने पहले तुम्हें डाँटा है, मैं मारना चाहता हूँ।'

हनुमान्‌जीकी प्रार्थना सुनकर जगज्जननी उन्हें समझाने लगीं—

राजसंश्रयवश्यानां कुर्वतीनां पराज्ञया॥
विधेयानां च दासीनां कः कुप्येद्वानरोत्तम।
× × ×
आज्ञप्ता राक्षसेनेह राक्षस्यस्तर्जयन्ति माम्।
हते तस्मिन्न कुर्वन्ति तर्जनं मारुतात्मज॥
× × ×
न परः पापमादत्ते परेषां पापकर्मणाम्।
समयो रक्षितव्यस्तु सन्तश्चारित्रभूषणाः॥
पापानां वा शुभानां वा वधार्हाणामथापि वा।
कार्यं कारुण्यमार्येण न कश्चिन्नापराध्यति॥
लोकहिंसाविहाराणां क्रूराणां पापकर्मणाम्।
कुर्वतामपि पापानि नैव कार्यमशोभनम्॥
(वाल्मीकि० ६। ११३। ३८, ४२, ४४–४६)

'हे वानरोत्तम ! ये दासियाँ हैं और राजाश्रित रहनेके कारण पराधीन थीं। दूसरेकी आज्ञासे ही ये सब कुछ करती थीं। इनपर क्रोध कौन करे ? इन राक्षसियोंने रावणके आदेशसे ही मुझे धमकाया था। पवनकुमार ! आज जब रावण मारा गया है, तब ये मुझे नहीं डाँटतीं-डपटतीं। श्रेष्ठ पुरुष दूसरेकी बुराई करनेवाले पापियोंके पापकर्मको नहीं अपनाते—बदलेमें उनके साथ स्वयं भी पापपूर्ण बर्ताव नहीं करना चाहते। प्रत्येक प्राणीको अपने आचारकी रक्षा करनी चाहिये। आचारकी रक्षा ही सज्जनोचित शोभा है। हे वानरोत्तम ! चाहे कोई पापात्मा, धर्मात्मा या वध-योग्य ही क्यों न हो, किंतु सज्जनको उसपर करुणा ही करनी चाहिये; क्योंकि ऐसा कोई नहीं है, जिससे अपराध नहीं बन जाता हो। लोक-हिंसा जिनका खेल है, उन पापाचरणमें लगे हुए क्रूर पापियोंकी भी बुराई नहीं करनी चाहिये।'

जगन्माता महाशक्तिके उपर्युक्त उद्गार विचार-जगत्‌के बेजोड़ रत्न हैं, जो स्वर्णके अक्षरोंमें अङ्कित होनेयोग्य हैं। माता मैथिलीकी यही अमृतवाणी राष्ट्रपिता महात्मा गांधीके अहिंसामूलक सिद्धान्तकी जननी है। जिन क्रूर राक्षसियोंने निरपराध श्रीसीताजीको सतानेमें कोई कसर

नहीं की, उन्हीं महापराधिनी राक्षसियोंको बिना माँगे ही क्षमा दान देनेवाली, वात्सल्य-सुधाकी निर्झरिणी, अहैतुकी करुणाकी मन्दाकिनी, निर्हैतुकी क्षमाकी आश्रयस्थली जनक नन्दिनी ही जगजननी होनेकी एकमात्र अधिकारिणी हैं। कोई भी हृदयवान् अपने हृदयपर हाथ रखकर बतला दे कि अहैतुकी क्षमाका ऐसा अनूठा उदाहरण चिराग लेकर ढूँढ़नेपर भी मिल सकता है कहीं इस आकाशके नीचे ? यही है जगजननी महाशक्तिकी क्षमा-वीणाका लोकोत्तर झंकार । यही है शक्तिमान्से शक्तिके लीला-पार्थक्यका स्वर्गोत्तर चमत्कार । इसी प्रकार प्रत्येक अवतारमें शक्ति और शक्तिमान्की लीला दृष्टिगोचर होती है।

श्रीतत्त्व

(लेखक—श्रीमज्जगद्गुरु श्रीरामानुज-सम्प्रदायाचार्य आचार्यपीठाधिपति श्रीराघवाचार्य स्वामीजी महाराज)

यद्यपि विशेष स्थानोंपर 'श्री' शब्द सरस्वती, बुद्धि, त्रिवर्गसम्पत्ति, विभूति, शोभा आदि अर्थोंमें प्रयुक्त होता है, तथापि प्रधानतया वह लक्ष्मी देवीका वाचक है। लक्ष्मीके सहस्र, अष्टोत्तरशत ही नहीं, अपितु द्वादश नामोंमें भी एक नाम 'श्री' है। 'महानारायणोपनिषद्'ने तो यह लक्ष्मीका प्रथम नाम बताया है। वेदसे लेकर पूर्वाचार्योंके ग्रन्थोंतक यह नाम समानभावसे अनुस्यूत है। भगवती श्रुति **'श्रियं देवीमुपह्वये'** (श्रीसूक्त ९) कहकर लक्ष्मीके आभिमुख्यकी प्रार्थना करती है। आचार्य श्रीयामुन **'श्रीरित्येव च नाम ते भगवति'** अर्थात् हे भगवति! आपका नाम 'श्री' है—कहकर वरदवल्लभा लक्ष्मीको सम्बोधित करते हैं।

इस लक्ष्मीवाचक सुप्रसिद्ध 'श्री'-शब्दके छः प्रकारके निर्वचन भगवच्छास्त्रोंमें मिलते हैं। वे हैं—**शृणोति, श्रावयति, शृणाति, श्रीणाति, श्रीयते** और **श्रयते** । **शृणोति** और **श्रावयति**से श्रीशब्दवाच्याकी यह विशेषता प्रकट होती है कि वे आश्रितजनोंके आर्तनादको श्रवण करती हैं और श्रवण करनेके उपरान्त भगवान्को श्रवण कराती हैं। शेष चार निर्वचनोंके सम्बन्धमें अहिर्बुध्न्यसंहितामें कहा गया है—

> **शृणाति निखिलान् दोषान् श्रीणाति च गुणैर्जगत् ।**
> **श्रीयते चाखिलैर्नित्यं श्रयते च परं पदम् ॥**

अर्थात् **'शृणाति'**से निष्पन्न होकर 'श्री'शब्दका अर्थ होता है कि लक्ष्मी आश्रितजनोंके सारे दोषोंका निवारण करती हैं। **'श्रीणाति'** से प्रकट होता है कि वे अपने गुणोंसे जगत्को और विशेषकर अपने आश्रितजनोंको पूर्ण कर देती हैं। **'श्रीयते'** से स्पष्ट है कि समस्त चिदचिदात्मक जगत्के द्वारा सदा उनका आश्रय ग्रहण किया जाता है। **'श्रयते'**से सिद्ध होता है कि अपने आश्रितजनोंके संरक्षणके लिये वे भगवान्की सहधर्मचारिणी बनती हैं।

उपर्युक्त निर्वचनोंमें श्रीकी चैतन्यताका निर्देश मिलता है; किंतु स्वरूपपर विचार करते समय कई पक्ष ऐसे भी उपस्थित होते हैं, जिनमें उनको 'अचेतन' माना गया है। एक पक्ष यह है कि सहस्रनाममें लक्ष्मीका उल्लेख मूल-प्रकृति, प्रकृति, प्रधाना, अव्यक्ता आदि नामोंसे किया गया है। अतः स्पष्टतया वे प्रकृति ही हैं। गीताके द्वादश अध्यायमें वर्णित अव्यक्तोपासनाको किन्हीं टीकाकारोंने श्रीसे सम्बद्ध कर दिया है। सामवेदकी अग्निवेश्य शाखाके **'उपास्व तां श्रियमव्यक्तसंज्ञाम्'**—इस मन्त्रने श्रीकी उपासनाका विधान करनेके साथ ही श्रीकी अव्यक्तसंज्ञा बतायी है। इन कारणोंसे श्रीके प्रकृति होनेकी पुष्टि होती है।

दूसरे पक्षमें कई धारणाओंको एकत्रित किया जा सकता है। शास्त्रोंमें स्थान-स्थानपर श्रीतत्त्वका वर्णन भगवान्की सत्ता, अहंता, प्रभा, इच्छा, विद्या, भोक्तृता, शक्ति, धर्म, गुण आदि रूपोंमें मिलता है। श्रीतत्त्वके सम्बन्धमें इनमेंसे प्रत्येकको अलग स्वतन्त्र धारणा कहा जा सकता है, किंतु इन सारे भावोंके भगवान्से सम्बद्ध होनेके कारण इनमें मौलिक एकता दिखायी देती है। कहना न होगा कि सत्ता, अहंता आदि सभी भाव अचेतन हैं। अतः इन धारणाओंके स्वीकार करनेपर 'श्री' अचेतन ही ठहरती हैं।

तीसरे पक्षमें वे सारी धारणाएँ आ जाती हैं, जिनके अनुसार श्री किसी-न-किसी रूपमें माया हैं। निर्विशेष चिन्मात्र ब्रह्मके स्वरूपको तिरोहित करनेवाली मिथ्या माया ही 'श्री' है। अथवा भगवत्स्वरूपको तिरोहित करनेवाली सत्य माया 'श्री' है। अथवा जगत्को मोहित करनेवाली महामाया 'श्री' है। अथवा योगनिद्रा बनकर भगवान्को अपने अधीन रखनेवाली माया श्री है। इन सभी विकल्पोंमें मायाका स्वरूप अचेतन सिद्ध होता है।

धर्म-ग्रन्थोंमें जहाँ-कहीं लक्ष्मीकी स्तुति, आराधना अथवा उपासना वर्णित है, वहाँ श्रीको चेतन स्वरूपमें ही सम्बोधित किया गया है। श्रीको अचेतन मान लेनेपर ये वर्णन संगत नहीं हो सकते। अतः श्रीको चेतन माना जाता है। श्रीको चेतन माननेवालोंके भी इस प्रकार कई पक्ष हैं—(१) श्रीतत्त्व ही परम तत्त्व है; श्रीतत्त्वके अतिरिक्त भगवत्तत्त्वकी सत्ता नहीं है। (२) भगवत्तत्त्व ही श्रीतत्त्व है; श्रीका रूप नित्य है। उस नित्य रूपको धारणकर भगवान् ही 'श्री' कहलाते हैं। (३) जिस प्रकार भगवान्‌ने दैत्योंको मोहित करनेके लिये मोहिनीका रूप धारण किया था, उसी प्रकार उन्होंने भोगार्थ श्रीका रूप ग्रहण किया है। (४) भगवान्‌ने अपने रूपसे पृथक् अहंता एवं पारस्परिक भोक्तृताको व्यक्त करनेके लिये श्रीका रूप ग्रहण किया है। (५) परब्रह्मका कार्योपयुक्त स्वरूपैकदेश, स्वभाव, परिणति अथवा भिन्न अहंताका आश्रय लेना 'श्री' कहलाता है। (६) परब्रह्मका अर्धभाग भगवत्तत्त्व है और अर्धभाग श्रीतत्त्व। ये सारे पक्ष भगवत्तत्त्व और श्रीतत्त्वके स्वरूपगतभेद तथा एकत्वपर आधारित हैं। इन मान्यताओंकी संगति धर्म-ग्रन्थोंके उन वचनोंसे नहीं लगती, जिनमें स्पष्टतया श्रीको भगवान्‌से पृथक् नित्य भिन्न चेतन बताया गया है। ब्रह्म स्वरूपतः अवयव-रहित है। वेदान्तने ब्रह्मके स्वरूप-परिणाम आदिको अमान्य ठहराया है। इसके अतिरिक्त परिणाम आदिके भेदको श्रीका स्वरूप स्वीकार करनेपर उनकी नित्यता बाधित होती है।

भगवत्तत्त्वसे भिन्न श्री कोई चेतन तत्त्व है, इस मान्यताके साथ यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्या श्री जीवकोटिमें है? एक पक्ष इसका स्वीकारात्मक उत्तर देता है। इसका समर्थन करती है यह श्रुति—

'नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनाना-
मेको बहूनां यो विदधाति कामान्।'
(कठ० २।५।१३)

इससे प्रकट होता है कि 'एक नित्यचेतन अनेकों नित्यचेतनोंकी कामना पूर्ण करता है।' एक नित्यचेतन हैं—भगवान् और अनेकों नित्यचेतन हैं—जीव। चेतनोंकी सीमा यहींतक है। श्रीतत्त्व भगवत्तत्त्वसे भिन्न है, अतः उसकी गणना जीवकोटिमें होगी। इस प्रकार श्रीका जीवकोटिमें अन्तर्भाव किया जाना तर्कशास्त्रकी दृष्टिमें दोषपूर्ण नहीं सिद्ध होता। 'लक्ष्म्या जीवान्तर्भावपक्षे तु न दोषः' ऐसी एक मान्य व्यक्तिकी उक्ति होगी। जीवका लक्षण है—

'अल्पपरिमाणत्वे सति ज्ञातृत्वम्।'

आशय यह है कि 'अल्पपरिमाणवाला होनेपर भी उसमें ज्ञातृत्व रहता है।' जीव ज्ञाता तो है, किंतु परिमाणमें अणु है। जीवकोटिमें आ जानेपर लक्ष्मीकी भी यही स्थिति होगी। जीव सर्वव्यापक, सर्वज्ञ एवं सर्वशक्तिमान् नहीं। अतः प्रकृत पक्षके अनुसार लक्ष्मीकी सर्वव्याप्ति, सर्वज्ञता तथा सर्वशक्तिमत्ता सम्भव नहीं हो सकती। यदि कहींपर इसके समर्थक वचन मिलते हैं तो उनकी संगति ईश्वरकी अघटित-घटनासामर्थ्यपर अवलम्बित है। ईश्वर विभुस्वरूप हैं। उनके अणुत्वकी मान्यताके सदृश ही लक्ष्मीके विभुत्वकी मान्यता उनकी (ईश्वरकी) अघटितघटनासामर्थ्यके बलपर स्वीकृत हो सकती है। किंतु लक्ष्मीके विभुत्वका प्रश्न निम्नलिखित वचनोंके कारण विशेष विचारणीय हो जाता है—

१. यथा सर्वगतो विष्णुस्तथैवेयं द्विजोत्तम॥
(विष्णुपु० १।८।१७)

२. त्वयैतद्विष्णुना चाम्ब जगद्व्याप्तं चराचरम्॥
(विष्णुपु० १।९।१२६)

३. ....विश्वं व्याप्य व्यवस्थिता। (ब्रह्मपुराण)

४. जगच्चराचरमिदं विश्वं व्याप्य व्यवस्थिता।
(सनत्कुमारसंहिता)

५. आक्रम्य सर्वां तु यथा त्रिलोकीं तिष्ठत्ययं देववरोऽसिताक्षि।
तथा स्थिता त्वं वरदे ....॥
(विष्णुस्मृति ९९।६)

६. यथा मया जगद्व्याप्तं स्वरूपेण स्वभावतः।
तथा व्याप्तमिदं सर्वं ....॥
(विष्वक्सेनसं०)

७. नारायणः स विश्वात्मा भावाभावमिदं जगत्।
निष्कलेन स्वरूपेण यथा व्याप्य नियच्छति॥
सर्वभावात्मिका लक्ष्मीः ....।
..................भूत्वा सर्वमिदं जगत्॥
निष्कलेन स्वरूपेण सापि तद्वन्नियच्छति॥
(अहिर्बुध्न्यसं० ३।४१-४४)

अर्थात् १—जिस प्रकार विष्णु सर्वव्यापक हैं, उसी प्रकार लक्ष्मी भी सर्वव्यापिका हैं। २—हे माता! विष्णु और

आपके द्वारा समस्त चराचर जगत् व्याप्त है। ३–लक्ष्मी विश्वमें व्याप्त होकर स्थित हैं। ४–लक्ष्मी सारे चराचरात्मक जगत्में व्याप्त होकर स्थित हैं। ५–हे देवि! जिस प्रकार देवदेव विष्णु सारी त्रिलोकीमें व्याप्त होकर स्थित हैं, उसी प्रकार आप भी स्थित हैं। ६–जिस प्रकार मैं (विष्णु) स्वरूप और स्वभावसे सारे जगत्में व्याप्त हूँ, उसी प्रकार लक्ष्मी भी सारे जगत्में व्याप्त हैं। ७–विश्वात्मा नारायण भावाभावमय जगत्में निष्कलस्वरूपसे व्याप्त होकर जिस प्रकार स्थित हैं, उसी प्रकार सर्वभावात्मिका लक्ष्मी सारे जगत्में निष्कल-स्वरूपसे व्याप्त हैं।

इन वचनोंके द्वारा विष्णुके विभुत्वके सदृश ही लक्ष्मीका विभुत्व प्रमाणित होता है। लक्ष्मीके विभुत्वकी उपपत्तिके विषयमें मतभेद होनेपर भी यह सभी स्वीकार करते हैं कि भगवान् विष्णु और भगवती लक्ष्मीमें परस्पर दाम्पत्य-सम्बन्ध है। अपौरुषेय वेदके **'श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यौ'** [शु० यजु० ३१। २२] अर्थात् भूदेवी और लक्ष्मीदेवी आपकी पत्नियाँ हैं—इन शब्दोंसे यही भाव प्रकट होता है और इसकी पूर्ण अभिव्यक्ति अष्टोत्तरशतनामोंमें हरिवल्लभा, पद्मनाभप्रिया, विष्णुवक्षःस्थलस्थिता, विष्णुपत्नी, नारायण-समाश्रिता तथा सहस्रनामोंमें वासुदेवमहिषी, देवोरःस्थिता, माधवप्रिया, प्रियपार्श्वगा, देवाङ्कस्थिता, देवजुष्टा, नारायणी, वैष्णवी, माधवी आदि लक्ष्मीके नामों तथा विष्णुसहस्रनाममें श्रीवास, श्रीश, श्रीनिवास, श्रीविभावन, श्रीधर आदि विष्णुके नामोंसे होती है। इस दाम्पत्यको हृदयंगम कर लेनेपर लक्ष्मीके विभुत्वके सम्बन्धमें की जानेवाली उपपत्तियाँ स्पष्ट हो जाती हैं। उपपत्तियाँ इस प्रकार हैं—

१–हरिवल्लभा श्री जीवकोटिमें हैं। जीव होनेपर भी उनके विभुत्वमें बाधा नहीं पड़ती। श्रुतिकी कदापि यह घोषणा नहीं है कि सभी जीव अणु हैं। ऐसी घोषणा केवल बद्ध जीवोंके सम्बन्धमें है। मुक्त जीवकी व्याप्ति उसके धर्मभूत ज्ञानके द्वारा होती है; अतः उसके अणुत्वमें बाधा नहीं पड़ती। नित्यजीवोंको जीवके नाते अणुत्व प्राप्त है। इसके विरुद्ध कोई प्रमाण नहीं मिलता। अतः यह भी माना जा सकता है। लक्ष्मीके विषयमें जो अणुत्वकी मान्यता है, उसके विपरीत विभुत्वको स्थापित करनेवाले प्रमाण मिलते हैं। उनको जीव मानते हुए इन प्रमाणोंके आधारपर उनके विभुत्वको स्वीकार कर लेनेमें किसी प्रकारकी आपत्ति नहीं है। जीव होनेसे केवल इतना सिद्ध होता है कि वह स्वतन्त्र न होकर परतन्त्र है। अणुत्व अनिवार्य है, ऐसा इसका भाव नहीं निकाला जा सकता।

२–जीवके लक्षणोंमें अणुत्वसे तात्पर्य यह है कि वह परिच्छिन्न है। भगवत्पराधीना लक्ष्मीमें यह अणुत्व उनको स्वरूप एवं गुणसे परिच्छिन्न सिद्ध कर सार्थक होता है। इसी प्रकार उनके विभुत्वका आशय भी उनका सर्वेश्वरसे आनुरूप्यमात्र प्रदर्शित करना है।

३–लक्ष्मी चेतन होनेके कारण अचेतन प्रकृतिसे भिन्न हैं, विभु होनेके कारण वे जीवसे भिन्न हैं एवं ईश्वरके पराधीन होनेके कारण वे ईश्वरसे भिन्न हैं। उनके विभुत्वसे केवल उनकी विष्णुके स्वरूपसे अनुरूपता व्यक्त होती है।

४–उनके विभुत्वके कारण लक्ष्मीको जीवसे भिन्न मान लेनेपर उनका अन्तर्भाव ईश्वरकोटिमें करना पड़ेगा। सर्वशेषी भगवान् ही सही, किंतु सारा जगत् तो लक्ष्मीका शेषभूत हो सकता है। जगत्कारणत्व आदि विशेषण ईश्वरतक ही सीमित रहें, विभुत्व लक्ष्मीका भगवान्के साथ आनुरूप्य तो सिद्ध कर ही देगा।

इन चार प्रकारकी उपपत्तियोंके अतिरिक्त एक पाँचवें प्रकारकी उपपत्ति भी है। इसका उल्लेख करनेसे पूर्व अबतक उल्लिखित उपपत्तियोंका सारांश निश्चय कर लेना चाहिये, जो श्रीवेदान्तदेशिकके शब्दोंमें इस प्रकार है—

> प्रागुक्तेन सहैतेषु पक्षेष्वथ चतुर्ष्वपि।
> स्वतन्त्रपतिनित्येच्छासिद्धं सर्वमिदं श्रियः॥
> अपि चैव न तस्येशे कश्चनेत्यादिदर्शनात्।
> अतश्चतुर्भिरप्येतैः पत्यावैश्वर्यविश्रमः॥
>
> (श्रीचतुःश्लोकीभाष्य ४)

आशय यह है कि 'उपर्युक्त चारों ही प्रकारसे की गयी उपपत्तियोंमें स्वतन्त्रपति विष्णुकी नित्य इच्छाके आधारपर विष्णुपत्नी लक्ष्मीका विभुत्व आदि सब कुछ सिद्ध हो जाता है। श्रुतिके इस कथनसे कि 'ईश्वर विष्णुका अन्य कोई ईश नहीं है', प्रकट है कि श्रीपतिमें ही सारा ऐश्वर्य प्रतिष्ठित है।'

पाँचवें प्रकारकी उपपत्ति और कुछ नहीं, पूर्णतया लक्ष्मीके विभुत्व-प्रतिपादक वचनोंकी स्वीकृति है। श्रीतत्त्व अणु नहीं है, विभु है; अतः जीवकोटिमें श्रीका अन्तर्भाव

नहीं हो सकता। इस उपपत्तिको पिछली चारों उपपत्तियोंके साथ रखकर श्रीवेदान्तदेशिकने यह निश्चय किया है कि 'इन पाँचों प्रकारकी उपपत्तियोंमें चाहे किसीको प्रमाण क्यों न माना जाय, सिद्ध यही होगा कि जगत्पर लक्ष्मी-समेत नारायणका साम्राज्य सुप्रतिष्ठित है।'

पञ्चस्वेतेषु पक्षेषु कश्चिदेकः प्रमाणवान्।
सलक्ष्मीकस्य साम्राज्यं सर्वथा सुप्रतिष्ठितम्॥

जिस पक्षने पाँचवें प्रकारकी उपर्युक्त उपपत्ति उपस्थित की, उसके अनुसार श्रीतत्त्वके स्वरूपका विवेचन यहींपर समाप्त नहीं हो जाता। भगवत्तत्त्वके समान श्रीतत्त्व भी विभु है। यह तो श्रीतत्त्वकी एक विशेषता है। आचार्य श्रीरामानुजने श्रीदेवीकी स्तुति करते हुए कहा है—

भगवन्नारायणाभिमतानुरूपस्वरूपरूपगुणविभवैश्वर्य-शीलाद्यनवधिकातिशयासंख्येयकल्याणगुणगणाम्.........।
(शरणागतिगद्य १)

इन शब्दोंसे प्रकट होता है कि लक्ष्मीजीका स्वरूप, रूप, गुण, विभव और ऐश्वर्य, शील आदि असीम, निरतिशय एवं कल्याणगुण भगवान् नारायणके अभिमत और अनुरूप हैं। अनुरूप कहनेसे सिद्ध होता है कि भगवान्का लक्ष्मीसे पूर्णतया सादृश्य है। अतः लक्ष्मीजीके स्वरूपको समझनेके लिये भगवान्के स्वरूपको समझ लेना आवश्यक है। आचार्य श्रीरामानुजके ही शब्दोंमें यह है—

'स्वेतरसमस्तवस्तुविलक्षणानन्तज्ञानानन्दैकस्वरूपः।'
(गीताभाष्य १।१)

अर्थात् भगवान् अपने अतिरिक्त सभी पदार्थोंकी अपेक्षा विलक्षण हैं। वे अनन्त हैं—अतः देश, काल तथा वस्तु—इन तीनोंसे परिच्छिन्न नहीं हैं। वे ज्ञानानन्दमय हैं। भगवत्तत्त्वके इस स्वरूपके सदृश ही श्रीतत्त्वका स्वरूप होना चाहिये। इसमें संदेह नहीं कि श्री अपने अतिरिक्त सभीकी अपेक्षा विलक्षण हैं। वे अनन्त हैं। अतः वे देश, काल और वस्तु—इन तीनोंसे परिच्छिन्न नहीं हैं, जैसा कि कहा है—

नित्या कालापरिच्छेदात् पूर्णाऽऽकारावियोगतः।
व्यापिनी देशविभ्रंशाद्रिक्ता पूर्णा च सर्वदा॥
(अहिर्बुध्न्यसंहिता ३।८)

आशय यह है कि 'कालपरिच्छेदसे रहित होनेके कारण लक्ष्मी नित्य हैं। वस्तु-परिच्छिन्न न होकर वे पूर्ण हैं। देश-परिच्छिन्न न होकर वे सर्वत्र व्याप्त हैं और सर्वदा पूर्ण हैं।' लक्ष्मीजीके अपने कथनानुसार वे ज्ञानमयी हैं 'अहं संविन्मयी पूर्णा' (लक्ष्मीतन्त्र ३।८)। सहस्रनाममें उनको 'आनन्दरूपा' कहा गया है। इस प्रकार भगवान्के अनुरूप ही श्रीका स्वरूप प्रकट होता है।

अब लक्ष्मीजीके रूप और गुणोंकी भी चर्चा करना समुचित होगा। भगवान् नारायणका रूप अतिरमणीय, अचिन्त्य, अद्भुत, निरवद्य, अप्राकृत और नित्य है। वैसा ही लक्ष्मीजीका रूप है। भगवान् पुरुषोत्तम हैं। 'लक्ष्मीर्नारीणामुत्तमा वधूः' अर्थात् लक्ष्मी नारियोंमें उत्तमा हैं। अवतार-दशामें भगवान्के साथ लक्ष्मीजी भी उनके अनुरूप ही रूप धारण किया करती हैं, जैसा कि कहा है—

पुर्वं यदा जगत्स्वामी देवदेवो जनार्दनः।
अवतारं करोत्येषा तदा श्रीस्तत्सहायिनी॥
पुनश्च पद्मादुत्पन्ना आदित्योऽभूद्यदा हरिः।
यदा तु भार्गवो रामस्तदाभूद्धरणी त्वियम्॥
राघवत्वेऽभवत् सीता रुक्मिणी कृष्णजन्मनि।
अन्येषु चावतारेषु विष्णोरेषानपायिनी॥
देवत्वे देवदेहेयं मनुष्यत्वे च मानुषी।
विष्णोर्देहानुरूपां वै करोत्येषाऽऽत्मनस्तनुम्॥
(वि० पु० १।९।१४२-१४५)

अर्थात् 'जब जगदीश्वर देवदेव विष्णुभगवान् अवतार ग्रहण करते हैं, तब लक्ष्मी भी उनकी सहायिनी बनकर अवतार ग्रहण करती हैं। जब भगवान् आदित्यके रूपमें अवतीर्ण हुए, तब लक्ष्मी पद्माके रूपमें प्रकट हुईं। जब भगवान् परशुरामके रूपमें प्रकट हुए, तब ये धरणी हुईं। भगवान्के रामावतारमें ये सीता और कृष्णावतारमें रुक्मिणी हुईं। इसी प्रकार अन्य सभी अवतारोंमें लक्ष्मी भगवान्के साथ रहती हैं। देवताका रूप ग्रहण करते समय ये देवी, मनुष्यका रूप ग्रहण करते समय ये मानवी—इस प्रकार विष्णुके रूपके सदृश ही लक्ष्मी रूप धारण करती हैं।

रूपमें यों सादृश्य रहनेपर रूपगत गुणोंमें अनुरूपताका होना भी स्वाभाविक है। भगवान्के रूपमें परिपूर्ण औज्ज्वल्य, सौगन्ध्य, सौकुमार्य, लावण्य, यौवन आदि गुण हैं। इसी प्रकार ये गुण लक्ष्मीजीके रूपमें भी हैं।

रूप-गुणोंके समान स्वरूपगत गुणोंमें भी लक्ष्मी और नारायणमें परस्पर पूर्ण सादृश्य है। भगवान् कल्याणगुणाकर

हैं; लक्ष्मी भी नित्य निर्दोष निस्सीम कल्याणगुणोंसे संयुक्त हैं—'नित्यनिर्दोषनिस्सीमकल्याणगुणशालिनी' (लक्ष्मीतन्त्र)। भगवत्-शास्त्रकी सूक्ति है—

'सर्वैश्वर्यगुणोपेता नित्यं तद्धर्मधर्मिणी।'

इससे प्रमाणित होता है कि 'लक्ष्मीमें सारे ऐश्वर्य-नियामक गुण एवं उपायत्व, उपेयत्व, कारणत्व, अबाध्यत्व आदि वेदान्तप्रतिपादित धर्म सदा रहते हैं।' ऐश्वर्य-नियामक गुणोंके कारण ही नारायण 'भगवान्' कहलाते हैं। ये गुण हैं—ज्ञान, बल, ऐश्वर्य, वीर्य, शक्ति और तेज। ये सारे गुण पूर्णतया लक्ष्मीजीमें भी हैं, अतएव वे 'भगवती' कहलाती हैं—'पूर्णषाड्गुण्यरूपत्वात् साहं भगवती स्मृता।' (लक्ष्मीतन्त्र ४। ४८)। इन गुणोंके कारण लक्ष्मीजी विष्णुभगवान्के सदृश ही क्रमशः सारी विभूतिका साक्षात्कार करतीं, उसको धारण करतीं, उसका नियमन करतीं, उपादान, नियामक एवं धारक बनकर भी वे विकाररहित रहतीं और सहकारीकी अपेक्षा नहीं करतीं। इन गुणोंके अतिरिक्त विशेषकर आश्रितजनोंके संरक्षणमें प्रयुक्त होनेवाले सौशील्य, वात्सल्य, मार्दव, आर्जव, सौहार्द, साम्य, कारुण्य, माधुर्य, गाम्भीर्य, औदार्य, चातुर्य, स्थैर्य, धैर्य, शौर्य, पराक्रम, सत्यकामत्व, सत्यसंकल्पत्व, कृतित्व, कृतज्ञता आदि गुण भी उनमें पूर्णरूपसे मौजूद हैं। ध्यान रहे कि इन गुणों-की पूर्णताका भगवान्की गुणगरिमाके साथ किसी प्रकारका विरोध नहीं आता; कारण कि लक्ष्मी हैं तो उनकी वल्लभा ही। 'जिनकी वल्लभा जानकी हैं, उनका तेज अप्रमेय है—'अप्रमेयं हि तत्तेजो यस्य सा जनकात्मजा।' (वा० रा० ३। ३७। १८)—यह उक्ति ऐसे विरोधको उत्पन्न ही नहीं होने देती।

रूप और गुणोंके बाद लक्ष्मीके विभवका वर्णन करना प्रसङ्गप्राप्त है। लक्ष्मी और नारायणके विभवमें सादृश्य ही नहीं, प्रत्युत ऐक्य भी है। भगवान्की शय्या और आसन अनन्त शेष हैं, वाहन गरुड हैं, यवनिका जगन्मोहिनी माया और दास ब्रह्मा आदि देवतागण हैं। श्रीको सम्बोधित करते हुए आचार्य श्रीयामुनने कहा है—

कान्तस्ते पुरुषोत्तमः फणिपतिः शय्यासनं वाहनं
वेदात्मा विहगेश्वरो यवनिका माया जगन्मोहिनी।
ब्रह्मेशादिसुरव्रजस्सदयितस्त्वद्दासदासीगणः
.... ॥

(श्रीचतुःश्लोकी १)

इससे प्रकट होता है कि लक्ष्मीजीके पति हैं पुरुषोत्तम, शय्या और आसन हैं शेष, वाहन हैं वेदात्मा गरुड, यवनिका है जगन्मोहिनी माया तथा दास-दासी हैं ब्रह्मा आदि देवता और उनकी देवियाँ। कहना न होगा कि इस सूक्तिमें शेष और गरुड नित्यविभूतिके निदर्शन हैं और देवी-देवता लीलाविभूतिके। भगवान् उभयविभूतिपति हैं, उसी प्रकार लक्ष्मीजी उभयविभूतिस्वामिनी हैं।

भगवान् समस्त विभूतिमें अर्थात् सारे चेतनाचेतन-तत्त्वोंमें व्याप्त रहकर उनके आधार, नियन्ता, शेषी, अतएव शरीरी हैं। चिदचिद्रूप जगत्की सृष्टि, स्थिति और प्रलय उनके अधीन हैं। अतः वे 'जगत्के ईश्वर' कहलाते हैं। भगवत्तत्त्वकी इन विशेषताओंके अनुरूप ही श्रीतत्त्वमें ये विशेषताएँ मिलती हैं, जैसा कि निम्नलिखित उद्धरणोंसे सिद्ध होता है—

१—........'जगद्धात्री'........त्वं विष्णुवल्लभे।
(विष्णुपु० १। ९। १३२)

२—........................'नियन्त्री च तथेश्वरी।
(विष्वक्सेनसंहिता)

३—........................'श्रीर्ज्ञेया विश्वरूपिणी।
(सनत्कुमारसंहिता)

४—एषैव सृजते काले सैषा पाति जगत्त्रयम्।
जगत् संहरते चान्ते तत्तत्कारणसंस्थिता॥
(लक्ष्मीतन्त्र)

५—ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम्।
(श्रीसूक्त ९)

अर्थात् १—हे विष्णुवल्लभे! आप जगद्धात्री (जगत्को धारण करनेवाली) हैं। २—लक्ष्मीजी विश्वकी नियन्त्री और ईश्वरी हैं। ३—श्रीको विश्वरूपिणी समझना चाहिये। ४—ये लक्ष्मी ही.....समयपर त्रिलोकीको उत्पन्न करतीं, पालन करतीं और अन्तमें संहार करती हैं। ५—सर्वभूतेश्वरी लक्ष्मीको मैं आह्वान करता हूँ।

श्रीरङ्गनाथमुनिने अपने श्रीसूक्तभाष्यमें श्रीतत्त्वकी इन सारी विशेषताओंपर विस्तारपूर्वक विचार किया है। आरम्भमें विष्णुपुराणके प्रथम अंशके आठवें अध्यायके सम्बन्धमें आपने कहा है—

'अनेनाध्यायेन सर्वेषां तत्त्वानां भगवानिव लक्ष्मीरपि व्यापनभरणनियमनात्मशरीरभावादिना सर्वेषामियं स्वामिनी तानि सर्वाण्यस्याः शेषः।

अर्थात् इस अध्यायके द्वारा यह सिद्ध होता है कि भगवान्‌के सदृश ही ये लक्ष्मीजी भी सारे तत्त्वोंकी व्याप्ति, भरण-पोषण, नियमन, आत्मशरीरभाव आदिके द्वारा सबकी स्वामिनी हैं और सारे तत्त्व उनके शेषभूत हैं।

इसके अनन्तर आपने विष्णुपुराणके प्रथम अंशके नवें अध्याय, ब्रह्मपुराण, लिङ्गपुराणके क्षुपस्तोत्र, विष्णुस्मृति, स्वायम्भुवसंहिता, अहिर्बुध्न्यसंहिता, लक्ष्मीतन्त्र आदिसे प्रमाणोंको उद्धृतकर इसीका समर्थन किया है।

सारांश यह निकलता है कि जिस प्रकार विष्णु समस्त चेतनाचेतन-तत्त्वोंके नियन्ता हैं, उसी प्रकार लक्ष्मीजी भी समस्त चेतनाचेतन तत्त्वोंकी नियन्त्री हैं। जिस प्रकार विष्णुभगवान्‌का स्वरूप, स्थिति एवं प्रवृत्ति अन्य किसीके अधीन नहीं, उसी प्रकार भगवती लक्ष्मीका स्वरूप, स्थिति एवं प्रवृत्ति भी अनन्याधीन हैं। तथापि यह ध्यान रखना चाहिये कि जिस प्रकार लक्ष्मीजीका सर्वनियन्तृत्व भगवान्‌को नियाम्य या ईशितव्यकी कोटिमें नहीं पहुँचाता, उसी प्रकार लक्ष्मीजी भी भगवान्‌की नियाम्या अथवा ईशितव्या नहीं होतीं। लक्ष्मीजीका नियन्तृत्व किसी भी अंशमें भगवान्‌के अधीन नहीं है। मानना पड़ेगा कि भगवान्‌के ईश्वरत्वके सदृश ही लक्ष्मीकी ईश्वरता भी पूर्ण है। इसमें स्पष्ट प्रमाण है भगवती लक्ष्मीके विषयमें यह उक्ति—**'ईश्वरीं सर्वभूतानाम्'** (श्रीसूक्त ९)—भगवती सर्वभूतेश्वरी हैं। उनकी इस ईश्वरताको किसी प्रकार संकुचित अथवा सीमित नहीं किया जा सकता। सिद्ध होता है कि सर्वभूतेश्वर भगवान् और सर्वभूतेश्वरी लक्ष्मी दोनों अनन्याधीन, स्वतन्त्र ईश्वर-ईश्वरी हैं।

'न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते।' (श्वेताश्वतर० ६। ८)

अर्थात् भगवत्तत्त्वके समान अथवा अधिक कोई नहीं दिखायी देता, **'एकः शास्ता न द्वितीयोऽस्ति शास्ता'** (महा० आश्व० २७। १) अर्थात् एक ही शासक है, उसका कोई दूसरा शासक नहीं है, **'न तस्येशे कश्चन'** अर्थात् उसका कोई ईश्वर नहीं है—इत्यादि वचनोंके साथ उपर्युक्त निर्णयका विरोध समझकर एक पक्ष ईश्वरकी एकताको अक्षुण्ण रखनेके सदुद्देश्यसे लक्ष्मीजीकी विशेषताओंको सीमित मान लेता है। भगवान्‌के विषयमें प्रसिद्ध **'ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति'** (गीता १८। ६१) के 'सर्व' पदमें लक्ष्मीजीका अन्तर्भाव कर लेनेपर यह मान्यता सिद्ध हो जाती है। इस पक्षके अनुसार नारायणके 'नार' पदमें श्रीके समाविष्ट होनेसे तथा पत्नी होनेके नाते शेषभूत होनेसे लक्ष्मीका नियाम्यकोटिमें रहना उचित है। तात्पर्य यह निकलता है कि भगवान् जिस प्रकार अन्य चेतनाचेतन तत्त्वोंके ईश्वर हैं, उसी प्रकार लक्ष्मीजीके भी ईश्वर हैं।

अन्य लोगोंको उक्त पक्ष मान्य नहीं है। उनका कहना है कि ईश्वरके सदृश अन्यका निषेध करनेवाले वचन ईश्वरके सिद्ध किये जानेके अनन्तर ही उपस्थित किये जा सकते हैं। इसके पूर्व इनकी प्रवृत्ति नहीं हो सकती। अतएव ऐसे वचन ईश्वरको सिद्ध करनेवाले वचनोंके बाधक नहीं हो सकते। **'ईश्वरीं सर्वभूतानाम्'** (श्रीसूक्त ९)—यह श्रुति श्रीकी ईश्वरता सिद्ध करती है। इस श्रुतिने जो कुछ बताया है, उसके सिद्ध हो जानेके पूर्व अथवा उसके साथ-साथ ईश्वरके सदृश अन्यका निषेध करनेवाले वचन उपस्थित नहीं होते। अतः श्रीतत्त्वकी ईश्वरता सिद्ध हो जाती है। श्रीतत्त्वकी ईश्वरताके सिद्ध हो जानेके अनन्तर जब उपर्युक्त तथा अन्य ऐसे वचन विचारार्थ सामने आते हैं तब उनका यही तात्पर्य निकलता है कि श्रीविशिष्ट भगवान्‌के अतिरिक्त अन्य कोई ईश्वर नहीं है। यह तात्पर्य लक्ष्मीकी ईश्वरताके अविरुद्ध है।

भगवान्‌के विषयमें **'ईश्वरः सर्वभूतानाम्'** कहे जानेपर 'सर्व' पदमें लक्ष्मीका अन्तर्भाव करना समुचित नहीं माना जा सकता। कारण कि जब स्पष्टतया भगवती श्रुतिने ही **'ईश्वरीं सर्वभूतानाम्'** कहकर लक्ष्मीको सर्वभूतेश्वरी बता दिया, तब फिर उनको ईशितव्यकी सीमामें लाना उक्त श्रुतिके सर्वथा विरुद्ध होगा। यह कहकर भी कि ''ब्रह्मा आदि देवता भी 'ईश्वर' कहलाते हैं; जिस प्रकार उनका समावेश 'सर्व' पदमें हो जाता है, उसी प्रकार लक्ष्मीजीका भी समावेश कर लिया जाय'' लक्ष्मीजीको सर्वभूतेश्वरीके पदसे हटाया नहीं जा सकता। कारण यह है कि ब्रह्मा आदि देवताओंकी ईश्वरताको सीमित करनेवाले तथा उनको कर्माधीन बतानेवाले प्रमाण मिलते हैं; किंतु लक्ष्मीके सम्बन्धमें ऐसा कोई प्रमाण नहीं प्राप्त होता। अतः लक्ष्मीकी ईश्वरता इस प्रकार संकुचित नहीं की जा सकती। 'सर्व' पदका अर्थ ईश्वर और ईश्वरी दोनोंके साथ एक-सा ही होना चाहिये। ऐसा अर्थ करनेपर भगवान्‌की ईश्वरताके सदृश भगवतीकी ईश्वरता सिद्ध होती है।

नारायणके 'नार' पदमें अन्तर्भूत होनेसे भी लक्ष्मी नियाम्या नहीं होतीं। लक्ष्मीका 'नार' पदमें ग्रहण उनके नर-सम्बन्धिनी होनेके कारण हुआ है। भगवान्‌का एक नाम 'नर' भी है। लक्ष्मी पत्नीके रूपमें भगवान्‌से सम्बद्ध हैं। 'नार' पदमें लक्ष्मीके ग्रहणसे इतनी ही बात प्रकट होती है। पत्नी होनेके कारण ही लक्ष्मीको नियाम्या नहीं माना जा सकता। लक्ष्मीको सर्वभूतेश्वरी बतानेवाली श्रुति उनके विष्णुपत्नी होनेसे बाधित नहीं होती। पत्नी होना बहिरङ्ग धर्म है और ईश्वरी होना अन्तरङ्ग। बहिरङ्गभूत धर्म अन्तरङ्गभूत धर्मको किसी भी अवस्थामें संकुचित नहीं कर सकता। अतः मानना पड़ेगा कि भगवान्‌के सदृश लक्ष्मी अनन्याधीन स्वतन्त्र ईश्वरी हैं। लक्ष्मी-नारायणका दाम्पत्यभाव पारस्परिक नित्य इच्छापर प्रतिष्ठित है। इस स्थिरभावके कारण न उनकी इच्छामें परस्पर विघात होता है और न उनकी किसी कार्यमें पृथक्-पृथक् प्रवृत्ति होती है। अतएव वे प्रसङ्ग, जिनमें भगवान् तथा लक्ष्मीका अलग-अलग स्वतन्त्र ऐश्वर्य वर्णित है, तथा वे प्रसङ्ग, जिनमें ईश्वरकी एकता वर्णित है, परस्पर संगत हो जाते हैं—

'सर्वागमानामैककण्ठ्यमन्योन्येच्छाविघातादिनिवृत्तौ तात्पर्योदुपपन्नम्।' (श्रीसूक्तभाष्य ९)

कहना न होगा कि पृथक्-पृथक् जगत्‌की सृष्टि आदिकी शङ्काका निराकरण भगवती श्रुतिने ही **'अस्येशाना जगतो विष्णुपत्नी** (तै० सं० ४। ४। १२) अर्थात् इस जगत्‌की ईश्वरी विष्णुपत्नी हैं' कहकर कर दिया है। जिस प्रकार यज्ञकार्यमें पति-पत्नीका पारस्परिक सहयोग रहता है, उसी प्रकार यज्ञ-सदृश सृष्टि-पालन आदि कार्य दिव्य-दम्पति लक्ष्मी-नारायण करते हैं। अतएव जहाँपर भगवत्तत्त्वको जगत्कारण बताया है, वहाँ श्रीरहित भगवान् अभिप्रेत नहीं हैं और न जहाँपर केवल श्रीतत्त्वको जगत्कारण बताया गया है, वहाँ केवल श्री अभिप्रेत हैं। श्रियःपतित्व भगवान्‌की ऐसी विशेषता है, जो सदा बनी रहती है। इसलिये भगवान्‌का जगत्कारण आदिके रूपमें निर्देश करनेपर श्रीविशिष्ट भगवान्‌का ही बोध होता है।

लक्ष्मी जगदीश्वरी हैं। जगत्‌की स्थिति उनके अधीन है। अतः स्वर्ग आदि सांसारिक फलोंको प्रदान करनेकी शक्ति उनमें माननी ही चाहिये। जगत्‌का लय भी उनके अधीन है। मोक्षका लयमें अन्तर्भाव किये जानेके कारण मोक्ष प्रदान करनेकी शक्ति उनमें माननी ही चाहिये। ऐसी मान्यताओंके सम्बन्धमें साधनकी दृष्टिसे पृथक् विचार कर लेना अनुचित न होगा। इसमें संदेह नहीं कि भगवान् भोग-मोक्ष प्रदान करते हैं। मोक्षप्रदत्व तो जगत्कारणत्वके सदृश ही भगवान्‌का असाधारण चिह्न है। जो लक्ष्मीको जगत्कारण नहीं मानते, वे उनके मोक्षप्रदत्वको भी स्वीकार नहीं करते। जो भगवान्‌के सदृश लक्ष्मीको ईश्वरी मानते हैं, उनके अनुसार लक्ष्मीको भी भोग-मोक्ष प्रदान करनेकी सामर्थ्य है। 'त्रिवर्गदा' कहलानेके साथ-ही-साथ लक्ष्मी परनिर्वाणदायिनी, मोक्षलक्ष्मी, विमुक्ति-दायिनी एवं संसारतारिणी कहलाती हैं। निम्नलिखित उद्धरण इसे प्रमाणित करते हैं—

१—.................................परमैश्वर्यभूतिदम्॥
समस्तपापार्तिहरं सकलेष्टप्रदं सदा।
देव्यास्संस्मृतिमात्रेण दारिद्र्यं याति भस्मताम्॥
तथाष्टगुणमैश्वर्य ....॥
ऐहिकामुष्मिकां सिद्धिं लभते श्रीप्रसादतः।
दारिद्र्यं नश्यते तस्य सर्वपापात् प्रमुच्यते॥
(ब्रह्मपुराण)

२—सर्वकामप्रदां रम्यां संसारार्णवतारिणीम्।
क्षिप्रप्रसादिनीं लक्ष्मीं शरण्यामनुचिन्तयेत्॥
(स्वायम्भुवसंहिता)

अर्थात् १—लक्ष्मीका नाम-स्मरण परमैश्वर्य एवं कल्याण प्रदान करता है, समस्त पाप और दुःखोंको नष्ट करता है तथा सम्पूर्ण इच्छित फल प्रदान करता है। लक्ष्मीके स्मरणमात्रसे दरिद्रता भस्म हो जाती है और अष्टविध ऐश्वर्य प्राप्त होता है।...ऐहिक और आमुष्मिक सिद्धि लक्ष्मीके प्रसादसे प्राप्त होती है, दरिद्रता नष्ट हो जाती है तथा साधक सारे पापोंसे मुक्त हो जाता है। २—सारी कामनाओंकी पूर्ति करनेवाली, संसार-सागरसे पार करनेवाली, शीघ्र प्रसन्न होनेवाली लक्ष्मीका शरण्यरूपसे चिन्तन करे।

इन उद्धरणोंसे असंदिग्धरूपमें यह प्रमाणित होता है कि सर्वेश्वरी लक्ष्मी भोग-मोक्ष-प्रदायिनी हैं।

श्रीवेदान्तदेशिकने भगवान्‌के मोक्षप्रदातृत्वका लक्ष्मीके मोक्षप्रदातृत्वके साथ सामञ्जस्य स्थापित करते हुए कहा है कि श्रीमान् नारायण अर्थात् श्रीसमेत नारायण जगत्पति, जगदात्मा, मुक्तिप्रदाता एवं मुक्तभोग्य हैं—

'श्रीमान् नारायणो नः पतिरखिलतनुर्मुक्तिदो मुक्तभोग्यः'
(अधिकरण-सारावली ३७४)

लक्ष्मीतन्त्रकी यह सूक्ति इसीका समर्थन करती है—

लक्ष्म्या सह हृषीकेशो देव्या कारुण्यरूपया।
रक्षकः सर्वसिद्धान्ते वेदान्तेऽपि च गीयते॥
(२८। २४)

अर्थात् शास्त्रोंका निश्चित सिद्धान्त यह है कि कारुण्य-रूपिणी लक्ष्मीके सहित नारायण रक्षक हैं। वेदान्तमें भी लक्ष्मीसमेत नारायणका ही प्रतिपादन किया गया है।

इससे पता लगता है कि मोक्ष-प्राप्ति अथवा भगवत्प्राप्ति-विधायक सभी ब्रह्मविद्याओंमें श्रीविशिष्ट भगवत्तत्त्वका ही उपासनात्मक ज्ञान विहित है। उदाहरणार्थ श्रुतिके द्वारा प्रणवकी इस प्रकार व्याख्या की गयी है—

अकारेणोच्यते विष्णुः सर्वलोकेश्वरो हरिः।
उद्धृता विष्णुना लक्ष्मीरुकारेणोच्यते तथा॥

आशय यह है कि 'अकारवाच्य हैं विष्णु, जो सर्वलोकेश्वर भगवान् हैं, उकारवाच्या हैं विष्णुपत्नी लक्ष्मी और मकारवाच्य जीव इन दोनोंका दास अर्थात् शेषभूत है।'

किसी ब्रह्मविद्यामें श्रीका उल्लेख न होनेसे यह अनुमान कर लेना कि उस ब्रह्मविद्यामें श्रीरहित भगवत्तत्त्व उपास्य है, उचित न होगा। वहाँपर यह समझना चाहिये कि ब्रह्मविद्याने श्रीतत्त्वका अन्तर्भाव भगवत्तत्त्वमें कर लिया है। श्रीपराशर भट्टने बताया है कि श्रुतिने स्थान-स्थानपर श्रीका भगवत्तत्त्वमें अन्तर्भाव कर लेनेके कारण ही उन स्थानोंपर पृथक् उल्लेख नहीं किया—'तदन्तर्भावात्त्वां न पृथगभिधत्ते श्रुतिरपि।' (श्रीगुणरत्नकोश २८)। भगवान्का दिव्य मङ्गलविग्रह सदा श्रीविशिष्ट रहता है। भगवती लक्ष्मी चाहे भगवान्के पार्श्वमें न भी हों, किंतु वक्षःस्थलमें अवश्य रहती हैं। भक्तिशास्त्रमें श्रीविशिष्ट भगवान्का ध्यान वर्णित है। शरणागतिशास्त्रमें लक्ष्मीकी पुरुषकारताका प्रतिपादन कर श्रीमन्नारायणको उपाय एवं उपेयके रूपमें वरण किया गया है।

शरणागतिमार्गमें श्रीकी पुरुषकारता सर्वसम्मत है। ऋषियोंने लक्ष्मीकी पुरुषकारताका निर्देश किया है—'लक्ष्मीः पुरुषकारत्वे निर्दिष्टा परमर्षिभिः' (नारदपञ्चरात्र)। किंतु उपाय एवं उपेयके रूपमें नारायणके साथ लक्ष्मीको वरण करनेमें सभी सहमत नहीं हैं। जो लक्ष्मीको मोक्षप्रदा नहीं मानते, उन्हें लक्ष्मीका उपायत्व एवं उपेयत्व स्वीकृत नहीं है। पुरुषकारका अर्थ है कि कोई व्यक्ति अन्य व्यक्तिसे किसी वस्तुको देनेके लिये कहे। साधारणतया देखा जाता है कि वही व्यक्ति दूसरेसे कहा करता है, जिसे स्वयं उस वस्तुको प्रदान करनेकी सामर्थ्य नहीं होती। लक्ष्मी भगवान्से अपने शरणागतको शरण देने तथा उसको परमपुरुषार्थ—मोक्ष प्रदान करनेके लिये प्रार्थना करती हैं। लक्ष्मीके इस पुरुषकारको ग्रहणकर शरणागत भगवान्की शरणागति करता है और इसी पुरुषकारके फलस्वरूप भगवान् साधकको अपनी शरण देकर मोक्ष प्रदान करते हैं। अन्य लोगोंका कहना है—

बद्धाद्यातिविलक्षणा परतरा मुक्ताच्च नित्यादपि
स्वातन्त्र्यादिभिरात्मधर्मबहुलैर्या विष्णुतुल्या स्मृता।
योपेयेति मुमुक्षुभिस्सुविहिता मुक्तैरमुत्राप्यतः
सोपायो भवितुं मुमुक्षुविषये कस्संशयः शास्त्रतः॥

भाव यह है कि 'जो लक्ष्मी बद्धजीवोंकी अपेक्षा अत्यन्त विलक्षण हैं, मुक्त एवं नित्य आत्माओंसे भी परे हैं तथा स्वातन्त्र्य आदि अपने स्वरूपगत धर्मोंके कारण विष्णुके सदृश हैं, 'वैकुण्ठे तु परे लोके श्रिया सार्धं जगत्पतिः। आस्ते' (वैकुण्ठलोकमें भगवान् लक्ष्मीके साथ हैं), 'नारायणं सलक्ष्मीकं प्राप्तुम्' (लक्ष्मीसमेत नारायणको प्राप्त करनेके लिये) आदि वचनोंमें लक्ष्मीसमेत नारायणको ही प्राप्य उपेय बताया गया है। वे ही लक्ष्मीसमेत नारायण मुमुक्षुके लिये उपाय हैं, शास्त्रानुसार इसमें कोई संशय नहीं है।'

जो चेतन प्राणी अनादिकालसे कर्मबन्धनमें पड़कर इतना अनाचारी और अपराधी है कि वह चिरकालतक भगवान्की शरणागति करनेका अधिकारी नहीं बन पाता, वह लक्ष्मीके पुरुषकारके द्वारा शरणागतिके साधनमें सफलता प्राप्त कर लेता है। भगवान् नारायण जगत्पिता हैं, लक्ष्मी जगन्माता हैं। लक्ष्मी करुणामयी हैं। उनकी करुणा शरणागतिकी भी अपेक्षा नहीं करती। उनकी स्वाभाविक दया एवं वत्सलताका पात्र बनते ही चेतन प्राणीका उद्धार हो जाता है। वे उस प्राणीके आर्तनादको श्रवण करती हैं। रामायणसे तो यहाँतक ज्ञात होता है कि सतानेवाली राक्षसियोंतककी रक्षा जानकीजीने की। अतः जैसे ही चेतन प्राणी पुरुषकार ग्रहण करनेके लिये लक्ष्मीकी शरणागति करता है, वैसे ही लक्ष्मी उस शरणागतको अपनी शरण देकर भगवान्से प्रार्थना करती हैं कि उस प्राणीपर निग्रह न किया जाय। भगवान् दयालु हैं, किंतु साथ ही न्यायकारी दण्डधर भी हैं। चेतनके धर्माचरण और पापाचरण दोनोंपर उनका सदा ध्यान रहता

है। उनकी न्यायकारिता उनको बाध्य करती है कि दोनों प्रकारके आचरणोंका फल प्राणीको मिले। लक्ष्मी अपनी वत्सलताके कारण चेतन प्राणीके अपराधोंको स्मरण नहीं करतीं और भगवान्‌से यह अनुरोध करती हैं कि वे अपने निग्रहको समाप्तकर उस शरणागतपर पूर्ण अनुग्रह करें। लक्ष्मीके इस पुरुषकारसे भगवान्‌की अनुग्रहमयी दृष्टि शरणागतपर हो जाती है। साधक तब लक्ष्मी-नारायणकी शरणागति करता है। लक्ष्मी-नारायण प्रसन्न होकर साधकको शरण देकर उसका अभीष्ट सिद्ध करते हुए प्रसन्नतापूर्वक परमपुरुषार्थ—मोक्ष प्रदान करते हैं। भगवान्‌के साथ उपायके रूपमें ग्रहण किये जानेपर लक्ष्मी भगवान्‌के शरणागत-संरक्षणोचित गुणोंका संवर्धन करती हैं और उपेयके रूपमें ग्रहण किये जानेपर वे मोक्षलक्ष्मी एवं दिव्य भोगोंकी अभिवृद्धि करते हुए शरणागत मुक्तात्माके परिपूर्ण ब्रह्मानन्दानुभवको सम्पन्न करती हैं। स्मरण रहे कि श्रीतत्त्वके भगवत्तत्त्वमें अन्तर्भूत होनेके कारण उपायद्वित्व अथवा उपेयद्वित्वका प्रसङ्ग नहीं आता।

इन शब्दोंमें श्रीतत्त्वके स्वरूप, रूप, गुण आदिका विवेचन तथा तत्सम्बन्धी विभिन्न मान्यताओंका दिग्दर्शन पाठकोंके समक्ष प्रस्तुत है। अनुरोध है कि श्रीतत्त्वको इस प्रकार समझते हुए अपनी सम्प्रदायागत मान्यताको दृढ़ रक्खें और अभ्युदय एवं श्रेयको प्राप्त करनेके लिये अधिकारानुसार श्रीतत्त्वका चिन्तन करें।

वेदोंमें महालक्ष्मीका स्वरूप

(लेखक—डा० श्रीओम्‌प्रकाशजी पाण्डेय, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, साहित्यरत्न)

यह असंदिग्ध है कि ऋग्वेद-कालमें महालक्ष्मीका अस्तित्व था। ऋग्वेदमें श्री या महालक्ष्मीका बोध पद्म-मालिनी, लक्ष्मी, अश्विनी, घृतश्री, दर्शनश्री, श्रिये, श्रियः, सुश्रियं आदि नामोंसे कराया गया है।

'श्री' शब्द 'श्रिञ् सेवायाम्' धातुसे 'क्विब्वचि-प्रच्छ्यायतस्तुकटप्रुजुश्रीणां दीर्घोऽसम्प्रसारणं च' वार्तिकसे अथवा 'क्विब्वचिप्रच्छिश्रिस्तुद्रुप्रुज्वां दीर्घोऽसम्प्रसारणं च' (उणादिसूत्र २ । ५४) के अनुसार 'क्विप्' प्रत्यय लगकर तथा दीर्घत्वकी प्राप्ति होकर निष्पन्न होता है।

प्रो० ओल्डेनवर्ग, डॉ० राय गोविन्दचन्द्र, प्रो० जे० गोण्डा 'Aspects of Vishnuism' ('आस्पेक्ट्स ऑव् विष्णुइज्म') में और जॉन डाउसनने कहा है कि 'श्री'का अर्थ समृद्धिमात्र है, कालान्तरमें इसका मानवीकरण हो गया'—

"The word occurs in the Rigveda with the sense of good fortune, and in the Atharvaveda the idea has become personified in females both of a lucky and unlucky character."

(A Classical Dictionary of Hindu Mythology)

किंतु यह विचार भ्रान्त है। वैदिक परम्पराके अनुसार भाव और भावाभिमानी देवता—दोनों ही होते हैं। इसका सुन्दर उदाहरण है 'सोम' शब्द। इसका अर्थ सोमरस, सोमलता और सोम (तदभिमानी) देवता भी है। अतः यह निर्विवाद है कि 'श्री' शब्द सौन्दर्य और समृद्धिका सूचक होनेपर भी देवीविशेषका परिचय करानेमें सक्षम है।

संहिताओंके अनन्तर 'श्री' अधिक स्पष्टरूपमें सुमूर्त होकर 'शतपथब्राह्मण'में आती हैं। शतपथकी कथाके अनुसार प्रजापतिकी साधनाके मूलरूपमें 'श्री' उनके अन्तस्‌से निकलकर दिव्य सौन्दर्यमयी, ओजोमयी देवीके रूपमें उपस्थित होती हैं—

'प्रजापतिर्वै प्रजाः सृजमानोऽतप्यत। तस्माच्छ्रान्तात्तेपानाच्छ्रीरुदक्रामत्, सा दीप्यमाना भ्राजमाना लेलायन्त्यतिष्ठत्।' (११ । ४ । ३ । १)

शतपथमें कहीं प्राणोंको 'श्री' बताया गया है और कहीं स्वरको। एक स्थानपर रात्रि ही 'श्री' हैं—ऐसा कथन है; क्योंकि सभी प्राणी रात्रिमें ही सुखपूर्वक रहते हैं। वास्तवमें, ये सब 'श्री' शब्दके लाक्षणिक प्रयोग हैं। 'शतपथ'में भी एक स्थानपर श्री और राष्ट्रमें ऐकात्म्य

स्थापित किया गया है। समृद्धि-सम्पन्न होनेपर ही राष्ट्र राष्ट्र प्रतीत होता है। ताण्ड्य महाब्राह्मणमें 'श्री'के इसी प्रकारसे निर्वचनार्थक भाव मिलते हैं। निरुक्तमें 'लक्ष्मी' शब्दका निर्वचन इस प्रकार किया गया है—

'लक्ष्मीर्लाभाद्वा लक्षणाद्वा।'

शतपथमें एक स्थानपर उल्लेख है कि 'उस (श्री) से ही अग्निने भक्षणीय अन्न लिया; सोमने राज्य, वरुणने साम्राज्य, मित्रने क्षत्र, इन्द्रने बल, बृहस्पतिने ब्रह्मवर्चस, सविताने राष्ट्र, पूषाने ऐश्वर्य, सरस्वतीने पुष्टि और त्वष्टाने रूप प्राप्त किये'—

'तस्याऽअग्निरन्नाद्यमादत्त। सोमो राज्यं वरुणः साम्राज्यं मित्रः क्षत्रमिन्द्रो बलं बृहस्पतिर्ब्रह्मवर्चसᳪ सविता राष्ट्रं पूषा भगᳪ सरस्वती पुष्टिं त्वष्टा रूपाणि।'
(शत० ब्रा० ११।४।३।३)

संक्षेपमें कहा जा सकता है कि अत्यन्त प्राचीन कालसे श्रीके देवीरूपमें दर्शन होते हैं। श्रीका मानवीकरण बादकी उपज नहीं है। श्रीदेवीके ही आधारपर परवर्ती-कालमें यह शब्द समृद्धि-सौन्दर्य और वैभवका प्रतीक बना।

ऋग्वेदके श्रीसूक्तमें श्री और लक्ष्मीमें कोई अन्तर नहीं दिखायी देता। लक्ष्मीतन्त्र (५०।८-९) में कहा गया है कि 'ईश्वर शक्तिमान् है, सकलाधार है, मैं श्री-नाम्नी उसीकी परमा शक्ति हूँ, सर्वव्यापक परमात्मतत्त्व-की सम्पूर्ण कामनाओंका दोहन करनेवाली हूँ; शुद्ध और अशुद्ध मार्गका वर्गीकरण करनेवाली हूँ। मैं द्वी-केशवकी अनुव्रता हूँ'—इत्यादि। यह कथन शक्रके प्रति स्वयं लक्ष्मीका है। इसी संदर्भमें आगे श्रीसूक्तके देवताका निरूपण करते हुए कहा गया है कि 'सबके आधाररूपमें स्थित, विष्णुपत्नी, सर्वसामर्थ्यसम्पन्ना मैं ही इसकी देवता हूँ'—

'देवता सकलाधारा विष्णुपत्न्यहमीश्वरी।'

विनियोग-विवेचनके समय यह बात और भी अधिक स्पष्ट हो जाती है—

विनियोगोऽस्य सूक्तस्य लक्ष्मीनारायणार्चने।
अङ्कस्थां भावयेल्लक्ष्मीं विष्णोर्मा परमेश्वरीम्॥

'इस सूक्तका उपयोग श्रीलक्ष्मी-नारायणके पूजनमें किया जाता है। पूजनके समय भावनासे परमेश्वरी मा—लक्ष्मीको भगवान् विष्णुके अङ्कमें स्थित देखना चाहिये।'

अतः यह निश्चित है कि श्रीसूक्तोक्त श्री लक्ष्मी ही हैं। वाजसनेयी श्रुतियोंमें भी (यथा—**'श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यौ'**...) यह तथ्य सुप्रतिष्ठित है।

'लक्ष्मी' शब्दकी निष्पत्ति **'लक्ष दर्शनाङ्कनयोः'** (१०।५)धातुसे उणादिसूत्र **'लक्षेर्मुट् च'** (३।१६०) के अनुसार 'ई' प्रत्यय, 'मुट्'का आगम तथा णि-लोप प्राप्त होकर होती है।

'श्रीसूक्त'में लक्ष्मीके स्वरूपका वर्णन वस्तुतः निम्नलिखित चौवालीस नामोंके माध्यमसे किया गया है—

हिरण्यवर्णा, हरिणी, सुवर्णरजतस्रजा, चन्द्रा, हिरण्मयी, लक्ष्मी, अनपगामिनी, अश्वपूर्वा, रथमध्या, हस्तिनाद-प्रमोदिनी, श्री, देवी, मा, का, सोस्मिता, हिरण्य-प्राकारा, आर्द्रा, ज्वलन्ती, तृप्ता, तर्पयन्ती, पद्मेस्थिता, पद्मवर्णा, चन्द्रा, प्रभासा, देवजुष्टा, उदारा, पद्मिनी, ई, आदित्यवर्णा, तपसोऽधिजाता, गन्धद्वारा, दुराधर्षा, नित्यपुष्टा, करीषिणी, सर्वभूतानां ईश्वरी, माता, पुष्करिणी, पुष्टि, पिङ्गला, पद्ममालिनी, यशःकरिणी, सुवर्णा, हेममालिनी, सूर्या।

'लक्ष्मीतन्त्र'में इन नामोंका बड़ा ही प्रौढ़ विवेचन (निर्वचन) किया गया है। वस्तुतः इसके मूलमें लक्ष्मी-पूजाकी एक सुदीर्घ परम्परा विद्यमान रही है। इन निरुक्तियोंका इसलिये भी बहुत महत्त्व है कि इनकी कर्त्री स्वयं श्री हैं।

'लक्ष्मी' नामकी निरुक्ति करते हुए कहा गया है कि शुभाशुभको लक्षित करानेके कारण यह नाम पड़ा। लय, निवास और निर्माणमें प्रकृतिको प्रेरित करने और ज्ञानस्वरूपा, लक्षणीया होनेके कारण भी उनकी यह संज्ञा रूढ़ हुई। सज्जनोंके दुरितोंको दूर करना भी इसमें कारण है। 'लक्ष्मी' नाम कपिलमुनिका दिया हुआ है—

इत्येतान् मयि दृष्ट्वार्थान् परमर्षिरुदारधीः।
लक्ष्मीर्लक्ष्येयमित्येव कपिलो मुनिरुक्तवान्॥

'श्री' के विषयमें कहा गया है कि यह लक्ष्मीका

सर्वाधिक प्राचीन नाम है। वे सज्जनोंकी करुणवाणीको सुनती हैं, उनके दुर्गुणों और पापोंको नष्ट करती हैं, गुणोंसे विश्वको व्याप्त करती हैं, सबके लिये शाश्वत शरण हैं, विष्णुकी देह हैं। देवता लक्ष्मीकी इच्छा श्रद्धापूर्वक करते हैं। वे मूलाधारमें कुण्डलिनीरूपमें स्थित हैं, नाभिजा हैं अर्थात् परा-पश्यन्तीरूपा हैं। बुद्धिको प्रेरित करनेवाली मध्यमा वाक् हैं तथा वर्णोंकी सृष्टिरूपा वैखरीवाणी भी वे ही हैं। वे चारों स्थानोंपर एक साथ रहकर परा-पश्यन्ती आदिका भेदन करनेवाली हैं। जया आदि शक्तियोंके द्वारा सेव्य हैं, शक्तिकी प्रकाशयित्री हैं। शंतमा अर्थात् परम मङ्गलस्वरूपा हैं, रतिरूपा हैं—सबके द्वारा ईप्सित, प्रार्थित हैं—उक्त समस्त विशेषताएँ 'श्री' नामसे ही विदित होती हैं।

इसी प्रकार अन्य सभी नामोंका निर्वचन किया गया है। 'पद्ममालिनी' नामका रहस्य यों है—शरीरमें वे सुषुम्णारूपमें स्थित हैं, आधाराख्य बत्तीस पद्मोंकी मालासे व्याप्त होनेके कारण वे 'पद्ममालिनी' हैं।

लक्ष्मीके अपत्य—कर्दम और चिक्लीत ऋषि श्रीसूक्तमें लक्ष्मीके पुत्रके रूपमें उल्लिखित हैं। कर्दम ऋषिके निवास करनेपर श्रीका निवास भी स्वाभाविक है। ऋषि चिक्लीत स्निग्ध पदार्थोंके स्रष्टा हैं।

विराट् पुरुष और श्रीका सम्बन्ध—पुरुषसूक्तमें जिस विराट् पुरुषका प्रतिपादन है, श्रीसूक्तमें संस्तुत श्रीका उससे घनिष्ठ सम्बन्ध है। 'लक्ष्मीतन्त्र'में कहा गया है कि 'पुरुष'का अभिप्राय हरिसे है—

> **पुरुषस्य हरेः सूक्तं मम सूक्तं तथैव च।**
> **अन्योन्यशक्तिसम्पृक्तमन्योन्यपरिष्कृतम्॥**
> (३६। ७३)

श्री और जातवेदा—श्रीसूक्तमें श्रीके आह्वान करनेकी प्रार्थना जातवेदसे की गयी है, जो विस्मयकारक है। 'जातवेदा' नाम है अग्निका। इसका प्रमुख कारण है अग्निका अग्रणी होना। 'जातवेदा' के जो निर्वचन यास्कने दिये हैं, उनमें जातवित्त, जातधन (यत्तज्जातः पशूनविन्दत इति जातवेदसो जातवेदस्त्वम्) भी हैं। इसीलिये उपर्युक्त प्रार्थना सकारण है, स्वाभाविक है, अर्थात् श्री और जातवेदाके मध्य घनिष्ठ सम्बन्ध है। 'विष्णुधर्मोत्तर' (२। १२८; २। ६) के एक वचनके अनुसार प्रस्तुत श्रीसूक्तका सम्बन्ध ऋग्वेदसे है। यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेदके श्रीसूक्त दूसरे हैं। यजुर्वेदका श्रीसूक्त **'रथे अक्षेषु वृषभस्य वाजे'** (तै० ब्रा० २। ७७)-से प्रारम्भ होता है, सामवेदका **'श्रायन्त इव सूर्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत। वसूनि जातो जनिमान्योजसा प्रति भागं न दीधिमः॥'** (सामवेदसंहिता २६७, १३१९)-से और अथर्ववेदका **'श्रियं धातर्मयि धेहि'**से प्रारम्भ होता है।

लक्ष्मी और विष्णुका एकत्व—यहाँ यह कह देना समीचीन होगा कि श्रीसूक्तमें लक्ष्मी और विष्णुके एकत्वके सम्बन्धमें अधिक स्पष्ट संकेत नहीं मिलते, जैसे कि बादमें पौराणिक युगमें मिलते हैं और लक्ष्मीतन्त्रमें जिसकी साक्षी सँजोयी गयी है। यहाँ एकत्वके साथ ही किंचित् भिन्नता किंवा पृथक्ता भी परिलक्षित होती है। इसका संकेत डॉ० श्रेदरने भी किया है—

"There it will first be necessary to remark that in spite of frequent assurances as to the real identity of Lakshmi and Vishnu, the two are actually regarded as distinct."

(—Introduction to **पञ्चरात्र and अहिर्बुध्न्य-संहिता**)

समासतः वेदोंमें लक्ष्मीका आह्वान समग्र अभूति, असमृद्धि, पाप-ताप, दुःख-दारिद्र्य दूर करनेके लिये किया गया है—

> 'अभूतिमसमृद्धिं च सर्वां निर्णुद मे गृहात्॥'
> (श्रीसूक्त ८)

ऐश्वर्यदायिनी श्रीविष्णुप्रिया भगवती लक्ष्मी

(लेखक—श्रीवल्लभदासजी बिन्नानी 'ब्रजेश', साहित्यरत्न, साहित्यालंकार)

ऐश्वर्यकी प्रतीकरूपा देवी मानकर ऋग्वेदान्तर्गत श्रीसूक्तमें भगवती लक्ष्मीका वर्णन किया गया है। समृद्धि, सम्पत्ति, आयु, आरोग्य, पुत्र-पौत्रादि परिवार, धन-धान्यकी विपुलता आदिकी प्राप्तिके लिये लक्ष्मीजीकी उपासना की जाती है। इसी कारण श्रीसूक्तमें प्रार्थना की गयी है—

'यस्यां हिरण्यं विन्देयं गामश्वं पुरुषानहम् ॥'

(श्रीसूक्त २)

'सुवर्ण, गाय, अश्व एवं नौकर-चाकर आदि परिवारसे युक्त लक्ष्मी मुझे प्राप्त हों।' धन-धान्यादि भौतिक सम्पत्ति (धनलक्ष्मी) ही नहीं, बल्कि सैन्य-सम्पत्ति (सैन्यलक्ष्मी)-का भी लक्ष्मीमें ही समावेश किया जाता है—

अश्वपूर्वां रथमध्यां हस्तिनादप्रमोदिनीम् ।
श्रियं देवीमुपह्वये श्रीर्मा देवी जुषताम् ॥

(श्रीसूक्त ३)

'अश्व-रथ-हाथियों आदिसे सुसज्जित सैन्यका रूप धारण करनेवाली लक्ष्मी मुझे प्राप्त हों एवं उनका चिरंतन निवास मेरे घरमें हो।'

ऐश्वर्य प्रदान करनेवाली लक्ष्मीदेवीका उत्कर्ष अथर्ववेदकालीन है। इस ग्रन्थमें अनेक भावनात्मक देवताओंका निर्देश प्राप्त है, जिनकी उपासनासे प्रेम, विद्या, बुद्धि, वाक्चातुर्य आदि इच्छित सिद्धियोंका लाभ होता है। अथर्ववेदमें निर्दिष्ट ऐसे देवताओंमें काम (प्रेमदेवता), सरस्वती (विद्या), मेधा (बुद्धि), वाक् (वाणी) आदि प्रमुख हैं, जिनमें ऐश्वर्य प्रदान करनेवाली 'लक्ष्मी' देवीका प्रधानतासे निर्देश किया गया है।

श्रीसूक्तमें जहाँ लक्ष्मीका स्वरूपवर्णन है, वहाँ इनके लिये हिरण्यवर्णा, पद्मस्थिता, पद्मवर्णा, पद्ममालिनी, पुष्करिणी आदि स्वरूप-वर्णनात्मक विशेषण प्रयुक्त किये गये हैं। वाल्मीकि-रामायणमें दिये गये इनके स्वरूप-वर्णनमें इन्हें शुभ्रवस्त्रधारिणी, तरुणी, मुकुटधारिणी, कुञ्चितकेशा, चतुर्हस्ता, सुवर्णकान्ति, मणि-मुक्तादिभूषिता कहा गया है। पुराणमें वर्णित लक्ष्मीजी कमलासना, कमलहस्ता एवं कमलाभा हैं। ऐरावतके द्वारा सुवर्णपात्रमें लाये हुए तीर्थजलसे ये स्नान करती हैं एवं सदैव विष्णुके वक्षःस्थलपर रहती हैं (विष्णुपुराण १। ९। १००—१०५)।

देवासुरोंके द्वारा किये गये समुद्रमन्थनसे चन्द्रके पश्चात् लक्ष्मीजीका प्राकट्य हुआ। इन अयोनिजा देवीको ब्रह्माने श्रीविष्णुको प्रदान किया एवं भगवान् विष्णुने इन्हें अर्धाङ्गिनीके रूपमें स्वीकार किया।

ब्रह्माके पुत्र भृगु ऋषिकी कन्याके रूपमें लक्ष्मी पृथ्वी-लोकमें पुनः अवतीर्ण हुईं। इस समय दक्षकन्या ख्याति इनकी माता थीं (विष्णु० १। ८। १६)। इनका विवाह भगवान् नारायणसे हुआ।

भगवान् विष्णुने पृथ्वीपर दस अवतार लिये और उनके साथ लक्ष्मीजीने भी दस अवतार लेकर श्रीविष्णुका साथ दिया। लक्ष्मीके इन दस अवतारोंमें निम्नलिखित अवतार प्रमुख हैं—१—कमलोद्भवा लक्ष्मी (वामनावतार), २—भूमि (परशुरामावतार), ३—सीता (रामावतार), ४—रुक्मिणी (कृष्णावतार) (विष्णु० १। ९। १४३-१४४)।

ब्रह्मवैवर्तपुराणमें लक्ष्मीजीके अवतार और ही प्रकारसे दिये गये हैं। वहाँ निर्दिष्ट लक्ष्मीजीके अवतार एवं उनके प्रकट होनेके स्थान निम्न प्रकार हैं—१—महालक्ष्मी (वैकुण्ठ), २—स्वर्गलक्ष्मी (स्वर्ग), ३—राधा (गोलोक), ४—राजलक्ष्मी (पाताल-भूलोक), ५—गृहलक्ष्मी (गृह), ६—सुरभि (गोलोक), ७—दक्षिणा (यज्ञ), ८—शोभा (चन्द्रमण्डल) (ब्रह्मवै० २। ३५)।

महाभारतमें लक्ष्मीके 'विष्णु-पत्नी लक्ष्मी' एवं 'राजलक्ष्मी'—ये दो भेद बताये गये हैं। इनमें लक्ष्मी हमेशा विष्णुके साथ विराजती हैं एवं राजलक्ष्मी राजा एवं पराक्रमी लोगोंके साथ रहती हैं, ऐसा निर्देश प्राप्त है। लक्ष्मीका निवास कहाँ रहता है, इसका कथात्मक दिग्दर्शन करानेवाली अनेकानेक कथाएँ महाभारत एवं पुराणोंमें प्राप्त हैं, जिनमें निम्नलिखित कथाएँ प्रमुख हैं—

(१) लक्ष्मी-प्रह्लाद-संवाद—असुरराज प्रह्लादने एक ब्राह्मणको अपना शील प्रदान कर दिया। इसके कारण

क्रमानुसार उनका तेज, धर्म, सत्य, व्रत एवं अन्तमें उनकी लक्ष्मी भी उन्हें छोड़कर चली गयी। तत्पश्चात् लक्ष्मीजीने प्रह्लादको साक्षात् दर्शन देकर उपदेश दिया कि 'तेज, धर्म, सत्य, व्रत, बल एवं शील आदि मानवी गुणोंमें मेरा निवास रहता है। इन गुणोंमें शील अथवा चारित्र्य मुझे सबसे अधिक प्रिय है। इसी कारण सच्छील व्यक्तिके यहाँ रहना मैं सबसे अधिक पसंद करती हूँ।' (महा०, शा० १२४। ४२-६२) 'शीलं परं भूषणम्'—इस उक्तिका भी यही अर्थ है।

(२) लक्ष्मी-इन्द्र-संवाद—असुरराज प्रह्लादके समान उनके पौत्र बलिको भी लक्ष्मीजीने त्याग दिया था। बलिका त्याग करनेकी कारण-परम्पराको देवराज इन्द्रसे बताते हुए लक्ष्मीजीने कहा कि 'पृथ्वीके सारे निवासस्थानोंमेंसे भूमि (वित्त), जल (तीर्थादि), अग्नि (यज्ञादि) एवं विद्या (ज्ञान)—ये चार स्थान मुझे अत्यधिक प्रिय हैं। सत्य, दान, व्रत, तपस्या, पराक्रम एवं धर्म जहाँ वास करते हैं, वहाँ मेरा भी निवास रहता है। देव और ब्राह्मणोंके प्रति नम्रताके साथ व्यवहार करनेवाला मनुष्य मुझे अत्यधिक प्रिय है।'

लक्ष्मीजीने आगे कहा कि 'चोरी, दुर्वासना, अपवित्रता एवं अशान्तिसे मैं अत्यधिक घृणा करती हूँ। इनके आधिक्यके कारण क्रमशः भूमि, जल, अग्नि एवं विद्याका मैं त्याग कर देती हूँ। बलि दैत्यने उच्छिष्टभक्षण किया एवं देवता और ब्राह्मणोंका विरोध किया, इसी कारण आज मैं उसका त्याग कर रही हूँ, भले ही वह मेरा अत्यन्त प्रिय व्यक्ति रहा है।' (महा०, शान्ति० २२५)।

(३) लक्ष्मी-रुक्मिणी-संवाद—लक्ष्मीके निवासस्थानसे सम्बन्धित एक प्रश्न युधिष्ठिरजीने भीष्मजीसे पूछा था। उसका उत्तर देते समय भीष्मजीने लक्ष्मी एवं रुक्मिणीके मध्य हुए एक संवादका उल्लेख किया। (महा०, अनु० ११)।

लक्ष्मीजीने रुक्मिणीजीसे कहा था कि 'सृष्टिके सारे लोगोंमें जो प्रगल्भ—भाषण-कुशल, दक्ष, आलस्यरहित, आस्तिक, अक्रोधी, कृतज्ञ, जितेन्द्रिय, वृद्धसेवक, सत्यनिष्ठ, शान्त एवं सदाचारी हैं, वे मुझे सबसे अधिक प्रिय हैं। उनके यहाँ रहना मैं विशेष पसंद करती हूँ। निर्लज्ज, कलहप्रिय, निन्दाप्रिय, मलिन, अशान्त एवं असावधान लोगोंका मैं अतीव तिरस्कार करती हूँ और ऐसे लोगोंका मैं त्याग कर देती हूँ।'

श्रीहरिके बिना मेरा कोई भी नहीं है

गजेऽपि विष्णुर्भुजगेऽपि विष्णुर्जलेऽपि विष्णुर्ज्वलनेऽपि विष्णुः।
त्वयि स्थितो दैत्य मयि स्थितश्च विष्णुं विना दैत्यगणोऽपि नास्ति॥
स्तौमि विष्णुमहं येन त्रैलोक्यं सचराचरम्। कृतं संवर्धितं शान्तं स मे विष्णुः प्रसीदतु॥
ब्रह्मा विष्णुर्हरो विष्णुरिन्द्रो वायुर्यमोऽनलः। प्रकृत्यादीनि तत्त्वानि पुरुषं पञ्चविंशकम्॥
पितुर्देहे गुरोर्देहे मम देहेऽपि संस्थितः। एवं जानन् कथं स्तौमि म्रियमाणं नराधमम्॥
भोजने शयने याने ज्वरे निष्ठीवने रणे। हरिरित्यक्षरं नास्ति मरणेऽसौ नराधमः॥
माता नास्ति पिता नास्ति नास्ति मे स्वजनो जनः। हरिं विना न कोऽप्यस्ति यद्युक्तं तद्विधीयताम्॥

(स्कन्दपुराण, प्रभासखण्ड)

प्रह्लादजी कहते हैं—"हाथीमें भी विष्णु, सर्पमें भी विष्णु, जलमें भी विष्णु और अग्निमें भी भगवान् विष्णु ही हैं। दैत्यपते! आपमें भी विष्णु और मुझमें भी विष्णु हैं। विष्णुके बिना दैत्यगणकी भी कोई सत्ता नहीं है। मैं उन्हीं भगवान् विष्णुकी स्तुति करता हूँ, जिन्होंने अनेकों बार चराचर भूत-समुदायके सहित तीनों लोकोंकी रचना की है, संवर्धन किया है और अपने अंदर लीन भी किया है। वे भगवान् विष्णु मुझपर प्रसन्न हों। ब्रह्मा भी विष्णुरूप ही हैं, भगवान् शंकर भी उन्हींके रूप हैं; इन्द्र, वायु, यम और अग्नि, प्रकृति आदि चौबीसों तत्त्व तथा पुरुष-नामक पचीसवाँ तत्त्व भी भगवान् विष्णु ही हैं। पिताकी देहमें, गुरुजीकी देहमें और मेरी अपनी देहमें भी वे ही विराजमान हैं। यों जानता हुआ मैं मरणशील अधम मनुष्यकी स्तुति क्यों करूँ? जिसके द्वारा भोजन करते, शयन करते, सवारीमें, ज्वर, निष्ठीवन, रण और मरणमें 'हरि'—इन दो अक्षरोंका उच्चारण नहीं होता, वह मनुष्योंमें अधम है। मेरे लिये न तो माँ है, न पिता हैं और न मेरे सगे-सम्बन्धी ही हैं। श्रीहरिको छोड़कर मेरा कोई भी नहीं है। अतः जो उचित हो, वही करना चाहिये।"

भगवती लक्ष्मीजीके विभिन्न नाम

[श्रीसूक्तके आधारपर]

(ले०—श्रीमती दयावतीजी भारद्वाज, प्रभाकर, साहित्यरत्न)

भगवान् विष्णुकी षोडशोपचार-पूजामें पुरुषसूक्तकी सोलह ऋचाओंका पाठ होता है[१]। ऋग्वेदीय पुरुषसूक्तमें १६ ही ऋचाएँ हैं। यजुर्वेदीय पुरुषसूक्तमें ६ ऋचाएँ अधिक हैं। जिस प्रकार श्रीविष्णूपासनामें पुरुषसूक्तका प्राधान्य है, उसी प्रकार श्रीलक्ष्मीदेवीकी उपासनामें श्रीसूक्तकी मान्यता है। यह ऋग्वेदके पञ्चम मण्डलके अवसानका परिशिष्ट है। इसकी सोलहवीं ऋचामें कहा गया है कि साधकको पवित्र और सावधान होकर पंद्रह ऋचाओंसे हवन करना चाहिये और इन्हीं ऋचाओंका जप भी करना चाहिये। श्रीसूक्तमें सब मिलाकर उन्तीस मन्त्र हैं।[२] इन मन्त्रोंमें भगवती लक्ष्मीके स्वरूप-रूप-गुणोंका प्रतिपादन करनेवाले सत्तर नाम मिलते हैं, जिनका उल्लेख अकारादि क्रमसे नीचे किया जा रहा है—

१. अच्युतवल्लभा–अच्युत अर्थात् विष्णुभगवान् जिनके प्रिय हैं।

२. अनपगामिनी–(विष्णुभगवान्‌को) छोड़कर न जानेवाली। श्रीमद्भागवत (१२। ११। २०)में इसका समानार्थक शब्द है—अनपायिनी (**अनपायिनी भगवती श्रीः साक्षादात्मनो हरेः**)।

३. अश्वपूर्वा–जिनके सम्मुख हय-पङ्क्ति चलती है।

४. अश्वदा–(भक्तोंकी कामनाके अनुसार उन्हें) घोड़े देनेवाली।

५. आदित्यवर्णा–जिनका रंग सूर्यके समान भास्वर है।

६. आर्द्रा–गजेन्द्रोंके द्वारा लाये हुए जलसे अभिषिक्त होनेके कारण सुस्नाता—

ततोऽभिषिषिचुर्देवीं श्रियं पद्मकरां सतीम्।
दिग्गिभाः पूर्णकलशैः सूक्तवाक्यैर्द्विजेरितैः॥
(भागवत ८। ८। १४)

१. (अ) दद्यात् पुरुषसूक्तेन यः पुष्पाण्यप एव वा।
अर्चितं स्याज्जगत्सर्वं तेनेदं सचराचरम्॥
(योगियाज्ञवल्क्य)

(आ) आद्ययाऽऽवाहयेद्देवमृचा तु पुरुषोत्तमम्। इत्यादि॥ (तदेव)

२. ऋग्वेद-संहिता, औंध, वि० सं० १९९६ का संस्करण, पृष्ठ ७७२—७७४

अथवा भक्तोंके लिये दयार्द्रहृदया।

७. ई–अ (विष्णु भगवान्) की पत्नी। (अ+ङीप्)

८. उदारा–(भक्तोंको धर्म, अर्थ, काम, मोक्षके) वर देनेवाली।

९. करीषिणी–गजराजपर सवारी करनेवाली। **(करिन्+ईष गतौ भ्वादिः+इन् +ई)**

१०. का–आनन्दमयी। **(कं सुखं विद्यते यस्याम्)**

११. क्षमा–(भक्तोंके अपराधोंको) क्षमा करनेवाली।

१२. गन्धद्वारा–जिनके मन्दिरके द्वारपर चन्दनके बने अनेकानेक कपाट हैं।

१३. गोदा–(भक्तोंकी अभिलाषाके अनुसार उन्हें) गो-धन देनेवाली।

१४. चन्द्रा–(स्वजनोंको, भक्तोंको) आनन्दित करनेवाली।

१५. ज्वलन्ती–दीप्तिमय (ज्वल दीप्तौ)।

१६. तर्पयन्ती–(भक्तोंको) अभिलषित वर देकर तृप्त करनेवाली।

१७. तृप्ता–(सत्यसंकल्प होनेके कारण नित्य प्रसन्न)। **(तृप प्रीणने, प्रीणनं तृप्तिस्तर्पणं च)**

१८. त्रिभुवनभूतिकरी–अपनी दयादृष्टिसे तीनों लोकोंको वैभवसम्पन्न करनेवाली—

तस्याः श्रियस्त्रिजगतो जनको जनन्या
वक्षोनिवासमकरोत् परमं विभूतेः।
श्रीः स्वाः प्रजाः सकरुणेन निरीक्षणेन
यत्र स्थितैधयत साधिपतींस्त्रिलोकान्॥
(भागवत ८। ८। २५)

'जगत्पिता भगवान्‌ने जगज्जननी, समस्त सम्पत्तियोंकी अधिष्ठातृ-देवता श्रीलक्ष्मीजीको अपने वक्षःस्थलपर ही सर्वदा निवास करनेका स्थान दिया। लक्ष्मीजीने वहाँ विराजमान होकर अपनी करुणाभरी चितवनसे तीनों लोक, लोकपति और अपनी प्यारी प्रजाकी अभिवृद्धि की।'

१९. दुराधर्षा—जिनके क्षोभको कोई सह नहीं सकता। (दुर्+आ+धृष प्रसहने चुरादिः+खल्+टाप्)

२०. देवजुष्टा—समस्त इन्द्रादि देवगणके द्वारा सेवित। (जुषी प्रीतिसेवनयोः)

२१. देवी—जगद्-व्यापार (सृष्टि, स्थिति, प्रलय) की क्रीडा किंवा लीलामें संलग्न।

२२. धनदा—(स्वजनकामनानुकूल) धन देनेवाली।

२३. धवलतरांशुकगन्धमाल्यशोभा—स्वच्छ पीताम्बर आदि विविध वस्त्रों एवं यक्षकर्दम आदि लेपों तथा मल्लिका-यूथिकादिसे गुम्फित नाना प्रकारकी मालाओंसे सुशोभित।

२४. नित्यपुष्टा—सदैव (स्वजनोंद्वारा मनोमन्दिरमें) संस्थापित। (पुष धारणे, चुरादिः)

२५. पद्मदलायताक्षी—कमल-दलके समान विस्तृत नेत्रोंवाली।

२६. पद्मपत्रा—पद्म जिनका आसन वा वाहन है। (वाहनं धोरणं युग्यं यानं पत्रमिति स्मृतमिति हलायुधः)

२७. पद्मप्रिया—जिनको कमल अच्छे लगते हैं।

२८. पद्ममालिनी—जो कमलोंकी बनी मालाओंको अपने गलेमें धारण करती हैं।

२९. पद्मसम्भवा—पद्मके समान जलमेंसे (क्षीर-सागरसे) जिनका प्रादुर्भाव हुआ था। अथवा पद्म जिनका सम्भव=वैभव=विभूति है। अथवा पद्मसे प्रकट होनेवाली।

३०. पद्मवर्णा—पद्मके समान कमनीय वर्णवाली।

३१. पद्मानना—पद्मके समान रुचिर मुखवाली।

३२. पद्माक्षी—पद्मपत्रके समान मनोरम नेत्रोंवाली।

३३. पद्मिनी—जिनका श्रीविग्रह सभी सौन्दर्यलक्षणोंसे युक्त है और जिनके श्रीविग्रहसे पद्मकी-सी गन्धका प्रसार होता रहता है—

> भवति कमलनेत्रा नासिका क्षुद्ररन्ध्रा
> अविरलकुचयुग्मा दीर्घकेशी कृशाङ्गी।
> मृदुवचनसुशीला नृत्यगीतानुरक्ता
> सकलतनुसुवेशा पद्मिनी पद्मगन्धा॥

'जिसके कमल-जैसे नेत्र हों, नथुने छोटे-छोटे हों, दोनों कुच परस्पर सटे हुए हों, बाल लंबे हों, शरीर छरहरा हो, जो मृदु वचन बोलती हो और सुशीला हो, नाच-गानमें अनुराग रखती हो, सम्पूर्ण अवयवोंका जिसका पहनावा सुन्दर हो और जिसके शरीरसे पद्मोंकी-सी गन्ध आती हो, उसे पद्मिनी जानना चाहिये।'

३४. पद्मेस्थिता—कमलोंके आसनपर विराजमान। 'अरुणकमलसंस्था' (सौभाग्यलक्ष्म्युपनिषद् १)

३५. पद्मोरु—जो अपनी जङ्घाओंको योगशास्त्रोक्त पद्मासनके रूपमें रखती हैं।

३६. पिङ्गला—दीपशिखाके समान प्रोज्ज्वल वर्णवाली। ('पिङ्गो दीपशिखाभः स्यात्।' तद्वद्वर्णविशिष्टा)

३७. पुष्करिणी—कमलोंको (कर-युगलमें) धारण करनेवाली। ('करकमलधृतेष्टाभीतियुग्माम्बुजा च'—सौभाग्यलक्ष्म्युपनिषद् १)

३८. पुष्टि—पोषणस्वरूपा, भक्तोंका पोषण करनेवाली।

३९. प्रभासा—उत्तम कान्तिसे सम्पन्न।

४०. भगवती—ऐश्वर्यादि छः दिव्यगुणोंसे युक्त।

४१. भूमि—परमसत्ता, उत्कृष्ट तत्त्व (भू सत्तायाम्) अथवा (स्वजनोंसे स्तवाञ्जलियाँ) प्राप्त करनेवाली (भू प्राप्तौ चुरादिः)।

४२. मनोज्ञा—स्वजनोंके मनको अर्थात् उनकी अभिलाषाको जाननेवाली। अथवा दिव्य-सौन्दर्यवती।

४३. महाधना—प्रचुर धनसे सम्पन्न, नवनिधिमती।

४४. महालक्ष्मी—पूजनीया एवं निरतिशय-दर्शन-सम्पन्ना। (मह पूजायाम्, लक्ष दर्शनाङ्कनयोः)

४५. माता—जगज्जननी। ('सकलभुवनमाता संततं श्रीः श्रियै नः' (सौभाग्यलक्ष्म्युपनिषद् १)

४६. माधवप्रिया—भगवान् विष्णुकी प्रिया।

४७. माधवी—मधुविद्याके द्वारा ज्ञेया।

(मधुविद्यया अवबुध्यते इति माधवी। शैषिकोऽण्, ङीप्)

अथवा मधुनामक यदुपुत्रके वंशमें श्रीकृष्णरूपसे अवतीर्ण भगवान् विष्णुकी पत्नी।

४८. यशसा ज्वलन्ती—अपनी शुभ्र कीर्तिसे विश्वमें विख्यात।

४९. यष्टि—जिनकी पूजा की जाती है।

(इज्यते इति यष्टिः । यज् बाहुलकात् क्तिन् क्तिच् वा)

५०. रथमध्या—अपने दिव्य स्यन्दनके मध्यमें विराजमान। रथमध्यस्थाके स्थानपर रथमध्या ।

५१. लक्ष्मीः—(स्वजनोंके उद्धारका उपाय) सोचनेवाली। (लक्षयते आलोचयति इति लक्ष्मीः। लक्ष आलोचने चुरादिः)

५२. विश्वप्रिया—विश्व अर्थात् विष्णुभगवान्‌की प्यारी पत्नी।

'विश्वं विष्णुर्वषट्कारः' (सहस्रनामस्तोत्र)

५३. विष्णुपत्नी—विष्णुभगवान्‌के द्वारा ली गयी जगद्रक्षणरूप यज्ञकी दीक्षामें सदा सहायिका ।

('पत्युर्नो यज्ञसंयोगे'—पाणिनि ४ । १ । ३३)

५४. विष्णुप्रियसखी—भगवान् विष्णुकी प्यारी सहचरी। अवतार-वेलामें भी लक्ष्मीजी अपने कान्तके साथ लीलाविभूतिमें पधारती हैं—

राघवत्वेऽभवत् सीता रुक्मिणी कृष्णजन्मनि ।
अन्येषु चावतारेषु विष्णोरेषानपायिनी ॥
(विष्णुपुराण १ । ९ । १४४)

५५. विष्णुमनोऽनुकूला—भगवान् विष्णुके मनके अनुकूल रहनेवाली।

५६. श्रीः—भगवान् विष्णुके उरोदेशका आश्रय लेकर विराजमान । भगवान्‌के वामवक्षपर स्वर्णिम रेखाके रूपमें भासमान ।

५७. सरसिजनिलया—कमल-वनमें निवास करनेवाली। '''पद्मवनालयां भगवतीं श्रियं देवीं'''शरणमहं प्रपद्ये । (शरणागतिगद्यम्)

५८. सरोजहस्ता—दोनों हाथोंमें कमल लिये हुए ।

५९. सर्वभूतेश्वरी—सब प्राणियोंकी शासिका।

('ईशानां जगतोऽस्य वेङ्कटपतेर्विष्णोः परां प्रेयसीम् ।' श्रीवेङ्कटेशस्तोत्रम्)

६०. सुवर्णरजतस्रजा—सोने और चाँदीके (रत्नजटित) हार धारण करनेवाली।

६१. सुवर्णा—जिनका रंग सुन्दर है ।

६२. सूर्या—नवोढा; जो किशोरवयस्क विष्णुभगवान्‌के वामभागमें सदैव किशोरवयस्का नवोढाके वेषमें विराजमान हैं।

६३. सोत्स्मिता—(स+उत्+स्मिता) जिनकी मन्द मुसकान परम उत्तम है। अथवा जिनका स्मित स्वजनका उत्कर्ष-विधायक है ।

६४. हरिणी—(पाप-शापोंको) दूर करनेवाली । अथवा मनोहर-मूर्तिमती अथवा भक्तोंके पास भगवान्‌को भेजनेवाली । (हरिं नयति भक्तान् इति हरिणी; हरि+णीञ् प्रापणे+क्विप्)

६५. हरिवल्लभा—हरि अर्थात् विष्णुभगवान्‌की प्रिया पत्नी ।

६६. हस्तिनादप्रमोदिनी—(स्वजन-सदनोंमें) गजराजोंके नादको सुनकर आनन्दित होनेवाली।

६७. हिरण्मयी—सुवर्णमयी । नूपुरोंसे प्रारम्भ करके किरीटतक स्वर्णमय रत्नजटित आभूषणोंसे विभूषित ।

६८. हिरण्यप्राकारा—जिनके प्रासादका प्राकार (परकोटा) सुवर्णका बना हुआ है ।

६९. हिरण्यवर्णा—जिनका रंग तप्त काञ्चनके समान कमनीय और दर्शनीय है।

७०. हेममालिनी—सुवर्णनिर्मित मालाओंको पहननेवाली। भगवती जगदम्बा लक्ष्मीजी वैजयन्ती धारण किये रहती हैं, जो स्वर्णमयी है, आजानुलम्बिनी है और जिसमें अनेकानेक पञ्च-रत्न (मरकत, माणिक्य, मुक्ता, इन्द्रनील और हीरे) जड़े हुए हैं।

इन उपर्युक्त सत्तर नामोंको हम नीचे पाँच भागोंमें विभाजित कर रहे हैं—

१. स्वरूप-सूचक—

का (आनन्दमयी)
मनोज्ञा (सर्वज्ञा)
माता (जगत्‌की सृष्टि करके उसका पालन करनेवाली)

२. श्रीविग्रह-परक—

आदित्यवर्णा, आर्द्रा, चन्द्रा, ज्वलन्ती, धवलतरांशुकगन्धमाल्यशोभा, पद्मदलायताक्षी, पद्मपत्रा, पद्ममालिनी, पद्मसम्भवा, पद्मवर्णा, पद्मानना, पद्माक्षी, पद्मिनी, पद्मेस्थिता, पद्मोरु, पिङ्गला, पुष्करिणी, प्रभासा, सरसिजनिलया, सरोजहस्ता, सुवर्णरजतस्रजा, सुवर्णा, सोत्स्मिता, हिरण्मयी, हिरण्यवर्णा, हेममालिनी ।

३. पति-प्रेम-प्रदर्शक—

अच्युतवल्लभा, अनपगामिनी, ई, माधवप्रिया, माधवी, विश्वप्रिया, विष्णुपत्नी, विष्णुप्रियसखी, विष्णुमनोऽनुकूला, सूर्या, हरिवल्लभा, श्री ।

४. वैभव-प्रतिपादक—

अश्वपूर्वा, करीषिणी, गन्धद्वारा, तृप्ता, दुराधर्षा, देवजुष्टा, देवी, नित्यपुष्टा, पद्मप्रिया, भगवती, भूमि, महाधना, महालक्ष्मी, यशसा ज्वलन्ती, यष्टि, रथमध्या, सर्वभूतेश्वरी, हस्तिनादप्रमोदिनी, हिरण्यप्राकारा ।

५. भक्ताभिलाषपूरक—

अश्वदा, उदारा, क्षमा, गोदा, तर्पयन्ती, त्रिभुवनभूतिकरी, धनदा, पुष्टि, लक्ष्मी, हरिणी ।

श्रीविष्णुके आभूषण, आयुध, पार्षद, वाहन आदि

भगवान् विष्णु सबमें व्यापक हैं, इसलिये वे समस्त रूपोंमें स्वरूपतः अभिन्न हैं । उनके अङ्ग, आभूषण, आयुध, पार्षद, वाहन और धाम—सब-के-सब सम्पूर्ण रूपसे उन्हींके स्वरूप हैं । चक्रपाणि भगवान् विष्णुकी शक्ति और पराक्रम अनन्त हैं, उनकी कोई थाह नहीं पा सकता। वे समस्त जगत्के निर्माता होनेपर भी उससे परे हैं । उनके स्वरूप और लीला-रहस्यको वही जान सकता है, जो नित्य-निरन्तर निष्कपटभावसे उनके चरण-कमलोंकी दिव्य गन्धका सेवन करता है । उनकी चरण-कृपासे ही उनके स्वरूप, रूप और समस्त चरित्रका रहस्य समझमें आता है—

स वेद धातुः पदवीं परस्य
दुरन्तवीर्यस्य रथाङ्गपाणेः ।
योऽमायया संततयानुवृत्त्या
भजेत तत्पादसरोजगन्धम् ॥
(श्रीमद्भागवत १ । ३ । ३८)

विष्णुके साकार रूपका बड़ा ही रमणीय चित्रण हमारे पुराणोंमें मिलता है। भगवान् विष्णुका वर्ण वर्षाके लिये उन्मुख सजल मेघके सदृश है । वे चतुर्भुज हैं । वे सूर्यके समान तेजस्वी और देवताओंके स्वामी हैं । उनके दाहिने हाथोंमेंसे एकमें सुवर्ण और रत्नोंसे भूषित शङ्ख शोभित है तो दूसरेमें सुगन्धपूर्ण पद्म विलसित है । बायें हाथोंमेंसे एकमें चक्र प्रतिष्ठित है, जिसकी तेजोमयी आकृति सूर्यमण्डलके समान है । बड़े-बड़े असुरोंका विनाश करनेवाली कौमोदकी गदा दूसरे बायें हाथमें शोभित है—

वर्षमाणस्य मेघस्य यद्वर्णं तस्य तद्भवेत् ।
सूर्यतेजःप्रतीकाशं ·················· ॥
दक्षिणे शोभते शङ्खो हेमरत्नविभूषितः ।
सूर्यबिम्बसमाकारं चक्रं पद्मप्रतिष्ठितम् ॥
कौमोदकी गदा तस्य महासुरविनाशिनी ।
वामे च शोभते वत्स करे तस्य महात्मनः ॥
महापद्मं तु गन्धाढ्यं तस्य दक्षिणहस्तगम् ।
(पद्म०, भूमि० ८६ । ८०—८३)

भगवान् विष्णुकी ग्रीवा शङ्खके समान है, मुख गोल है तथा नेत्र बड़े ही मनोहर हैं, दाँत रत्नोंके समान चमकीले हैं, बाल घुँघराले हैं, बिम्बफलके समान लाल ओठ हैं, मस्तकपर मनोरम किरीट है । कौस्तुभमणिसे उनकी कान्ति विशेषरूपसे बढ़ गयी है, सूर्यके समान तेजोमय कुण्डल हैं, पुण्यमय श्रीवत्सचिह्न देदीप्यमान है । उनके श्याम विग्रहपर बाजूबंद, कंगन और मोतियोंके हार नक्षत्रोंके समान प्रभासित हैं । स्वर्णिम पीताम्बरसे उनकी सुषमा द्विगुणित हो गयी है । रत्नजटित मुँदरियोंसे शोभित अङ्गुलियोंसे भगवान् विष्णुका सौन्दर्य निखर उठा है । समस्त आयुधोंसे सम्पन्न और दिव्य आभूषणोंसे विभूषित श्रीहरि गरुडकी पीठपर विराजमान हैं—

सर्वायुधैः सुसम्पूर्णो दिव्यैराभरणैर्हरिः ।
वैनतेयसमारूढो लोककर्ता जगत्पतिः ॥
एवं तं ध्यायते नित्यमनन्यमनसा नरः ।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ॥
(पद्म०, भूमि० ८६ । ९१-९२)

भगवान् विष्णुके उपर्युक्त रूप-सौन्दर्य और भाव-माधुर्य तथा लीला-ऐश्वर्यका रसास्वादन प्रत्यक्ष रूपसे अधिकारी भक्तको सहज-सुलभ होता है । नारदजीको भगवान् नारायणकी मनोरम झाँकीका दर्शन महाभारतके शान्तिपर्वमें चित्रित है । नारदजी एक बार हिमालयके एक स्थानमें भ्रमण कर रहे थे कि कमलोंसे विभूषित एक सरोवर दीख पड़ा । उसमें स्नान कर तथा इन्द्रियोंको संयमितकर भगवत्स्वरूपका

रहस्य जाननेके लिये उन्होंने उनकी स्तुति की तथा सौ वर्षतक उनका अनवरत चिन्तन किया। अब श्रीहरि उनके सामने प्रकट हुए। नारदजीने देखा कि भगवान्‌के चरणारविन्द समस्त देवताओंके सुवर्णमय मुकुटोंके कुङ्कुमसे रञ्जित हैं। गरुडपर सवारी करनेसे उनके दोनों घुटनोंपर रगड़ पड़नेके कारण चिह्न बन गये हैं, जो बड़े ही सुन्दर लगते हैं। श्याम अङ्गपर पीताम्बर शोभित है, कटिप्रदेशमें किङ्किणीकी लड़ें बँधी हैं। वक्षःस्थल माता श्रीके प्रतीकरूप सुनहरी रेखासे विभूषित है। गलेमें कौस्तुभमणि प्रकाशित है। मुखारविन्दपर मन्द मुसकान है, झुके हुए धनुषकी भाँति तिरछी भौंहसे मुखमण्डल अलंकृत है। अनेक रत्न, मणि और हीरोंसे जटित मकराकार कुण्डल जगमगा रहे हैं। भगवान्‌की अङ्ग-कान्ति इन्द्रनीलमणिके समान श्याम है। बाँहोंमें केयूर तथा मस्तकपर मुकुटकी उज्ज्वल आभा है। श्रीनारदने भगवान्‌की वन्दना की, प्रणाम किया।

'नारदो जयशब्देन ववन्दे शिरसा हरिम्।'

(महा०, शान्ति०, अ० २०७ दाक्षिणात्यपाठ)

(क) आभूषण-परिधान

भागवत सृष्टिका प्रत्येक पदार्थ सुन्दर और सरस अथवा मधुर होता है। भगवान् सुन्दरतम और मधुरतम हैं, उनकी सुन्दरता किसी विशेष आभूषण या परिधानसे बढ़ जाती हो—यह बात नहीं है, वास्तवमें होता तो यह है कि उन पदार्थोंका सौन्दर्य विशिष्ट हो उठता है, जिनका उपयोग भगवान्‌के समलंकरणके लिये होता है। भगवान् अनन्त हैं, उनका रूप-सौन्दर्य अनन्त है, इसी तरह उनके शृङ्गार-उपकरण और प्रसाधन भी अनन्त हैं। भगवान् विष्णुके चरण-नूपुरसे मुकुटपर्यन्त समस्त आभूषण असाधारण महत्त्वसे सम्पन्न हैं तथा उन्हींके अभिन्न अङ्ग अथवा रूप हैं, सब-के-सब अभेद हैं। अङ्गविशेषमें अलग-अलग रूपमें अभिव्यक्त होकर भी स्वरूपतः एक हैं।

भगवत्स्वरूपभूत जिस तेजसे सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि तथा वाक् आदि तेज भी 'प्रकाश' प्राप्त करते हैं, उस (चिन्मय आलोक) को परमेश्वरकी उपासना करनेवाले कौस्तुभमणि कहते हैं—

येन सूर्याग्निवाक्चन्द्रतेजसा स्वस्वरूपिणा ॥
वर्तते कौस्तुभाख्यमणिं वदन्तीशमानिनः ।

(गोपालोत्तरतापनीयोपनिषद् २३-२४)

श्रीविष्णुपुराणमें उल्लेख है कि इस जगत्‌के निर्लेप तथा निर्गुण और निर्मल आत्माको—शुद्ध क्षेत्रज्ञ स्वरूपको श्रीहरि कौस्तुभमणिरूपसे धारण करते हैं—

आत्मानमस्य जगतो निर्लेपमगुणामलम् ।
बिभर्ति कौस्तुभमणिस्वरूपं भगवान् हरिः ॥

(१।२२।६८)

श्रीमद्भागवतमें भी वर्णन है कि कौस्तुभमणि भगवान्‌के गलेमें जीव-चैतन्यरूप आत्मज्योतिकी प्रतीक है—

'कौस्तुभव्यपदेशेन स्वात्मज्योतिर्बिभर्त्यजः ।'

(१२।११।१०)

श्रीकौस्तुभमणिका मन्त्र—'छं तं पं कौस्तुभाय नमः' अग्निपुराणके २५ वें अध्यायमें वर्णित है। देवता और दैत्योंके संयुक्त श्रमसे अमृतमन्थनकालमें समुद्रसे इस पद्मरागमणिकी उत्पत्ति हुई और श्रीहरिने तत्काल ही अपने वक्षःस्थलको इससे अलंकृत करनेकी इच्छा की। यह उनके वक्षका अलंकार है—

कौस्तुभाख्यमभूद् रत्नं पद्मरागो महोदधेः ।
तस्मिन् हरिः स्पृहां चक्रे वक्षोऽलंकरणे मणौ ॥

(श्रीमद्भागवत ८।८।५)

श्रीकौस्तुभमणिकी दिव्य ज्योति ही भगवान्‌के रूपमें व्यवस्थित विष्णुके वक्षमें परम माङ्गलिक श्रीवत्स-चिह्न है।—

'तत्प्रभा व्यापिनी साक्षात् श्रीवत्समुरसा विभुः ॥'

(श्रीमद्भागवत १२।११।१०)

'गोपालोत्तरतापनीयोपनिषद्' (२२-२३) में ब्रह्माके प्रति श्रीनारायणकी उक्ति है कि 'लक्ष्मीका निवासभूत जो श्रीवत्स है, वह मेरा स्वरूप ही है। वह लाञ्छन अर्थात् चन्द्राकृति रोमपङ्क्तिसे सुशोभित है। ब्रह्मवादी उसे श्रीवत्स-लाञ्छन कहते हैं।'

श्रीवत्सस्य स्वरूपं तु वर्तते लाञ्छनैः सह ॥
श्रीवत्सलक्षणं तस्मात् कथ्यते ब्रह्मवादिभिः ।

श्रीविष्णुके वक्षःस्थलपर अङ्गुष्ठ-प्रमाण श्वेत बालोंका दक्षिणावर्त भँवरका-सा यह चिह्न श्रीवत्सरूपमें स्वीकार किया जाता है। महाभारतके शान्तिपर्वमें वर्णन मिलता है कि जिस समय नर-नारायण धर्मपर आरूढ होकर गन्धमादन पर्वतपर तप कर रहे थे, उसी समय प्रजापति दक्षके यज्ञका आरम्भ

हुआ। दक्षने यज्ञमें रुद्रके लिये भाग नहीं दिया। रुद्रने यज्ञका विध्वंस कर डाला। उन्होंने क्रोधपूर्वक अपने प्रज्वलित त्रिशूलका प्रयोग किया। वह त्रिशूल यज्ञको भस्मकर बदरिकाश्रममें नर-नारायणके निकट जा पहुँचा और नारायणकी छातीमें बड़े वेगसे आ लगा। उससे निकलते हुए तेजकी लपटसे नारायणके केश मूँजके समान रंगवाले हो गये। नारायणको इसीलिये 'मुञ्जकेश' कहा जाता है। उन्होंने हुंकारसे त्रिशूलको हटा दिया और वह शंकरके हाथमें चला गया। इसपर रुद्रदेव उन ऋषियोंपर टूट पड़े। तब विश्वात्मा नारायणने अपने हाथसे उन आक्रमणकारी रुद्रदेवका गला पकड़ लिया, जिससे वह नीला हो गया। इसी कारण भगवान् रुद्र 'नीलकण्ठ' नामसे प्रसिद्ध हुए। उन देवदेवोंको युद्धमें संलग्न देखकर ब्रह्माजीने दोनोंको समझाया। फलतः रुद्रने क्रोधाग्निका त्याग कर दिया। नारायण भी प्रसन्न होकर रुद्रदेवसे गले मिले। श्रीहरिने कहा—

> अद्यप्रभृति श्रीवत्सः शूलाङ्को मे भवत्वयम्।
> मम पाण्यङ्कितश्चापि श्रीकण्ठस्त्वं भविष्यसि॥
>
> (महाभारत, शान्तिपर्व ३४२ । १३४)

"आजसे आपके शूलका यह चिह्न मेरे वक्षःस्थलमें श्रीवत्सके नामसे प्रसिद्ध होगा और आपके कण्ठमें मेरे हाथके चिह्न अङ्कित होनेके कारण आप 'श्रीकण्ठ' कहलायेंगे।" अग्निपुराणके पचीसवें अध्यायमें श्रीवत्सका मन्त्र—'ॐ वं वं लं श्रीवत्साय नमः' वर्णित है।

श्रीविष्णु अपनी सत्त्व-रज आदि गुणोंवाली मायाको वनमालाके रूपमें अपने कण्ठमें धारण करते हैं—

> 'स्वमायां वनमालाख्यां नानागुणमयीं दधत्।'
>
> (श्रीमद्भागवत १२ । ११ । ११)

गोपालोत्तरतापनीयोपनिषद् (२७-२८)में नारायणके वचन हैं कि "मेरा कण्ठ 'निर्गुण तत्त्व' कहा गया है। वह अजन्मा मायाद्वारा मालित अथवा आवृत होता है, सनकादि उसको मेरी माला कहते हैं"—

> कण्ठं तु निर्गुणं प्रोक्तं माल्यते आद्ययाजया॥
> माला निगद्यते ब्रह्मंस्तत्र पुत्रैस्तु मानसैः।

अग्निपुराणके २५वें अध्यायमें वनमालाका मन्त्र—'ॐ वं वनमालायै नमः' वर्णित है। श्रीविष्णुकी वैजयन्ती माला मुक्ता, माणिक्य, मरकत, इन्द्रनील और हीरक—पञ्चमणिमयी है। यह पञ्चतन्मात्राओं और पञ्चभूतोंके संघातके रूपमें स्वीकृत है। 'विष्णुरहस्य' ग्रन्थमें उल्लेख है कि पृथ्वीसे इन्द्रनीलमणि, जलसे मुक्ता, तेज (अग्नि) से कौस्तुभमणि-माणिक्य, वायुसे वैदूर्यमणि और आकाशसे पुष्पराग (पुखराज) का ग्रहण करना चाहिये।'

श्रीविष्णु अ, उ, म्—इन तीन मात्रावाले प्रणवको यज्ञोपवीतके रूपमें धारण करते हैं—

> 'ब्रह्मसूत्रं त्रिवृत् स्वरम्।'
>
> (श्रीमद्भागवत १२ । ११ । ११)

श्रीनारायणकी स्वीकृति है कि मेरी चार भुजाएँ धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूपी चार केयूरोंसे विभूषित हैं—

> 'धर्मार्थकामकेयूरैर्दिव्यैर्दिव्यमयेरितैः।'
>
> (गोपालोत्तरतापनीयोपनिषद् २७)

सत्त्व, रज, तम और अहंकारके प्रतीकरूपमें ही श्रीहरिकी चार भुजाएँ वर्णित हैं। धर्मज्ञानादियुक्त सत्त्वगुण ही उनके शेषरूप पर्यङ्कपर बिछे हुए कमलके रूपमें स्वीकृत है—

> 'धर्मज्ञानादिभिर्युक्तं सत्त्वं पद्ममिहोच्यते॥'
>
> (श्रीमद्भागवत १२ । ११ । १३)

वेदको ही उनका 'पीताम्बर' कहा जाता है। उनके नवनीलनीरदकान्तिमय शरीरपर पीताम्बर बड़ा ही मनोरम दीख पड़ता है—

> 'वासश्छन्दोमयं पीतम्।'
>
> (श्रीमद्भागवत १२ । ११ । ११)

भक्तोंको भगवान्का पीताम्बर बहुत प्रिय होता है। भक्तराज भीष्मपितामहने अन्त-समयमें पीताम्बर-लसित चतुर्भुज श्रीकृष्णविग्रहके सौन्दर्य-रसास्वादनके द्वारा अपनी आँखें तृप्त कीं—

> तदोपसंहृत्य गिरः सहस्रणीर्विमुक्तसङ्गं मन आदिपूरुषे।
> कृष्णे लसत्पीतपटे चतुर्भुजे पुरःस्थितेऽमीलितदृग्व्यधारयत्॥
>
> (श्रीमद्भागवत १ । ९ । ३०)

भगवान् विष्णुके हाथमें शोभित पद्म सम्पूर्ण विश्वका प्रतीक है—

'पद्मं विश्वं करे स्थितम्।'

(गोपालोत्तरतापनीयोपनिषद् २६)

समग्र ऐश्वर्य, धर्म, यश, लक्ष्मी, ज्ञान और वैराग्य— इन छः पदार्थोंका नाम ही 'लीलाकमल' है, जिसे भगवान् अपने हाथमें धारण करते हैं—

'भगवान् भगशब्दार्थं लीलाकमलमुद्वहन्।'

(श्रीमद्भागवत १२ । ११ । १८)

पद्म या पद्मनाभका मन्त्र—'ॐ पं पद्मनाभाय नमः' अग्निपुराणके २५ वें अध्यायमें वर्णित है।

क्षर—सम्पूर्ण विनाशी शरीर और उत्तम जीव—ये दोनों भगवान् विष्णुके कानोंके झलमलाते कुण्डल हैं—

'क्षरोत्तरं प्रस्फुरन्तं कुण्डलं युगलं स्मृतम्।'

(गोपालोत्तरतापनीयोपनिषद् २९)

श्रीमद्भागवतमें वर्णन मिलता है कि देवाधिदेव भगवान् सांख्य और योगरूप मकराकृत कुण्डल धारण करते हैं—

'बिभर्ति सांख्यं योगं च देवो मकरकुण्डले।'

(१२ । ११ । १२)

भगवान् विष्णु सब लोकोंको अभय करनेवाले ब्रह्मलोकको मुकुटके रूपमें धारण करते हैं।

'मौलिं पदं पारमेष्ठ्यं सर्वलोकाभयंकरम्॥'

(श्रीमद्भागवत १२ । ११ । १२)

भगवान्‌का कूटस्थ सत्स्वरूप ही किरीट कहा जाता है। स्वयं भगवान्‌की उक्ति है—

'कूटस्थं सत्त्वरूपं च किरीटं प्रवदन्ति माम्॥'

(गोपालोत्तरतापनीयोपनिषद् २८)

भगवान्‌के आभूषण तथा परिधान—वेश-भूषा असंख्य और अमूल्य हैं। केवल इतना ही कहकर संतोष करना पड़ता है कि नारायणका श्रीविग्रह अपनी शोभासे विचित्र एवं दिव्य वस्त्राभूषणोंको सुशोभित करता है। इतना होनेपर भी वह पीताम्बर आदि वेश-भूषासे समलंकृत कहा जाता है—

'विचित्रदिव्याभरणांशुकानां कृतश्रियापाश्रितवेषदेहम्॥'

(श्रीमद्भागवत ३ । ८ । २५)

भगवान् विष्णुके समस्त आभूषण, वेश-भूषा आदि परम वन्दनीय हैं। उनके सौन्दर्यका अङ्कन विशिष्ट पुण्याचरणके फलस्वरूप किसी-किसी प्राणीके नेत्रमें उतरता है तो उतर जाता है।

(ख) आयुध

परम पुण्यमय महाशक्तिसम्पन्न भागवत आयुधोंका वर्णन भाषाके परेकी बात है; भयंकरातिभयंकर अमोघ वरदानोंसे निश्चिन्त दैत्यों, राक्षसों, असुरों और आततायियोंका अन्त करनेवाले वैष्णव आयुधोंको प्रणाम कर लिया जाय, इतना ही पर्याप्त है। भगवान्‌के आयुध अनन्त और असंख्य हैं। उनमेंसे केवल कुछका ही विवरण प्रस्तुत कर संतोष किया जा सकता है। शङ्ख, चक्र, गदा, धनुष, बाण, परशु, पाश, खड्ग आदि भगवान् विष्णुके प्रधान आयुध हैं।

भगवान् विष्णुका शङ्ख 'पाञ्चजन्य' कहलाता है। पाञ्चजन्य शङ्ख जलतत्त्वरूप कहा गया है—

'अपां तत्त्वं दरवरम्।'

(श्रीमद्भागवत १२ । ११ । १४)

गोपालोत्तरतापनीयोपनिषद् (२५)में इसे पञ्चभूतात्मक तथा भगवान्‌के रजोगुणमय हाथमें स्थित बताया गया है। सत्त्व, रज, तम और अहंकार भगवान्‌की चार भुजाओंके रूपमें परिगणित हैं—

'पञ्चभूतात्मकं शङ्खं करे रजसि संस्थितम्।'

इस शङ्खका मन्त्र 'चं शं मं क्षं पाञ्चजन्याय नमः' अग्निपुराणके पचीसवें अध्यायमें वर्णित है। यह आयुध पुँल्लिङ्ग है। इसे 'पुरुष आयुध' कहा जाता है। यह श्वेतवर्ण और सुन्दर नेत्रसे विभूषित होता है—

'शङ्खोऽपि पुरुषो दिव्यः शुक्लाङ्गः शुभलोचनः।'

(विष्णुधर्मोत्तरपुराण)

भगवान् विष्णु आयुधके रूपमें सुदर्शन चक्र धारण करते हैं। हमारे पुराणोंमें भगवान्‌के इस आयुधकी महत्तापर विशेष प्रकाश डाला गया है। इसे तेजस्तत्त्वरूप बताया गया है—

'तेजस्तत्त्वं सुदर्शनम्।'

(श्रीमद्भागवत १२ । ११ । १४)

उपनिषद्की उक्ति है कि अत्यन्त चञ्चल समष्टि मन ही मेरे हाथमें चक्र कहलाता है।

'बालस्वरूपमित्यन्तं मनश्चक्रं निगद्यते।'

(गोपालोत्तरतापनीयोपनिषद् २५)

सुदर्शनचक्रका मन्त्र, 'जं खं वं सुदर्शनाय नमः' अग्निपुराणके पचीसवें अध्यायमें वर्णित है। अग्निपुराणके ही ३०६वें अध्यायमें सुदर्शनचक्रके न्यास, ध्यान आदिका वर्णन उपलब्ध होता है। 'सहस्रार हुं फट्' सुदर्शनचक्रका मूलमन्त्र है। चक्रस्वरूप भगवान् सुदर्शनका वहाँ इस प्रकार ध्यान किया गया है कि 'भगवान् चक्राकार कमलके आसनपर विराजमान हैं। उनकी आभा अग्निसे भी तेजस्विनी है। उनके मुखमें दाढ़ें हैं। वे चतुर्भुज होकर भी अष्टभुज हैं। अपने हाथमें शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, मुसल, अङ्कुश, पाश एवं धनुष धारण करते हैं। उनके केश पिङ्गलवर्ण और नेत्र लाल हैं।' चक्र श्रीविष्णुका स्वरूप है और उनसे अभिन्न है। सुदर्शनचक्रकी श्रीमद्भागवतमें इस प्रकार स्तुति की गयी है— 'सुदर्शन! आपका आकार चक्रकी तरह है। आपके किनारेका भाग प्रलयकालीन अग्निके समान अत्यन्त तीव्र है। आप भगवान्की प्रेरणासे सब ओर घूमते रहते हैं। जिस तरह आग वायुकी सहायतासे सूखे घास-फूसको जला डालती है, उसी तरह आप हमारी शत्रुसेनाको शीघ्र जला दीजिये, जला दीजिये'—

चक्रं युगान्तानलतिग्मनेमि भ्रमत् समन्ताद् भगवत्प्रयुक्तम्।
दन्दग्धि दन्दग्ध्यरिसैन्यमाशु कक्षं यथा वातसखो हुताशः॥

(६।८।२३)

'शिल्परत्न'में सुदर्शनका बड़ा सुन्दर ध्यान चित्रित किया गया है—

चक्रं शङ्खं च चापं परशुमसिमिषुं शूलपाशाङ्कुशाग्नीन्
बिभ्राणं वज्रखेटं हलमुसलगदाकुन्तमत्युग्रदंष्ट्रम्।
ज्वालाकेशं त्रिनेत्रं कनकमयलसद्गात्रमत्युग्ररूपं
वन्दे षट्कोणसंस्थं सकलरिपुजनप्राणसंहारचक्रम्॥

'मैं षट्कोण कमलके आसनपर विराजमान भगवान् सुदर्शनकी वन्दना करता हूँ, जो चक्ररूपमें समस्त रिपुओंके प्राणोंका संहार करनेवाले हैं, जो अपने मनुष्याकृति श्रीविग्रहके हाथोंमें क्रमशः चक्र, शङ्ख, धनुष, फरसा, असि, बाण, त्रिशूल, पाश, अङ्कुश, अग्नि, खड्ग, खेट, हल, मुसल, गदा और भाला धारण किये रहते हैं तथा जिनकी दाढ़ें अत्यन्त डरावनी हैं, जिनके केश ज्वालामय हैं, तीन नेत्र हैं, स्वर्णमय चमचमाता विग्रह है और अत्यन्त भयावना रूप है।'

महाभागवत अम्बरीषने सुदर्शनचक्रका बड़ा सारगर्भित और अत्यन्त भावपूर्ण मौलिक स्तवन किया है। वे कहते हैं—'प्रभो सुदर्शन! आप अग्निस्वरूप हैं। आप ही परम समर्थ सूर्य हैं। समस्त नक्षत्रमण्डलके अधिपति चन्द्रमा भी आपके स्वरूप हैं। जल, पृथ्वी, आकाश, वायु, पञ्चतन्मात्राओं एवं सम्पूर्ण इन्द्रियोंके रूपमें भी आप ही हैं। हे भगवान्के प्रिय हजारों दाँतोंवाले चक्रदेव! मैं आपको नमस्कार करता हूँ। ....आप ही धर्म हैं, मधुर एवं सत्यवाणी हैं, समस्त यज्ञोंके भोक्ता और स्वयं यज्ञ भी हैं। आप समस्त लोकोंके रक्षक और सर्वस्वरूप भी हैं। आप परम पुरुष परमात्माके सर्वश्रेष्ठ तेज हैं'—

त्वमग्निर्भगवान् सूर्यस्त्वं सोमो ज्योतिषां पतिः।
त्वमापस्त्वं क्षितिर्व्योम वायुर्मात्रेन्द्रियाणि च॥
सुदर्शन नमस्तुभ्यं सहस्राराच्युतप्रिय।
.... ॥
त्वं धर्मस्त्वमृतं सत्यं त्वं यज्ञोऽखिलयज्ञभुक्।
त्वं लोकपालः सर्वात्मा त्वं तेजः पौरुषं परम्॥

(श्रीमद्भागवत ९।५।३—५)

वामनपुराणमें कथा है कि सुदर्शनचक्रकी प्राप्ति भगवान् विष्णुको शिवजीसे हुई थी। श्रीदामानामक एक विख्यात असुर था। उसने भगवान् विष्णुसे श्रीवत्सको हरनेकी इच्छा की। उस असुरके वधके लिये विष्णु शंकरके पास गये। जगन्नाथ श्रीहरि हिमालयके रमणीय स्थलपर भगवान् शंकरकी आराधना करने लगे। शिवने प्रसन्न होकर विष्णुको सुदर्शनचक्र और परम पद प्रदान किया। कालचक्रके समान सुदर्शनचक्र प्रदानकर शंकरने कहा—

वरायुधं हि देवेश सर्वायुधनिबर्हणम्।
सुदर्शनं द्वादशारं नवनाभि द्विजवज्जवे॥
आरासंस्थास्त्वमी तत्र देवा मासाश्च राशयः।
शिष्टानां रक्षणार्थाय संस्थिता ऋतवश्च षट्॥

× × × ×

अमोघ एषोऽमरराजपूजितो धृतो मया मन्त्रगतस्तपोबलात्॥

(वामनपुराण ८२।२५-२६, ३०)

"यह श्रेष्ठ आयुध सभी आयुधोंका विनाशक है। इसका नाम 'सुदर्शन' है। इसके बारह अरे और नौ नाभियाँ हैं। यह वेगमें गरुडके समान है। इन अरोंमें शिष्ट पुरुषोंकी रक्षाके लिये देवता, मेष आदि बारह राशियाँ तथा छहों ऋतुएँ रहती हैं। चन्द्र, सूर्य, वरुण, इन्द्र, अग्नि, विश्वेदेव, प्रजापति, वायु, अश्विनीकुमार, धन्वन्तरि, तपस्य और उग्रतप—ये बारह देव रहते हैं। इसमें चैत्रसे फाल्गुन तक बारहों मास रहते हैं। आप इस आयुधसे देवशत्रुओंका संहार कीजिये।' 'यह अमोघ है, देवराज (इन्द्र) इसकी पूजा करते हैं। मैंने यह मन्त्रमय आयुध तपोबलसे धारण कर रखा है।"

सुदर्शनचक्रके स्वरूप और महिमाका परमोत्कृष्ट वर्णन महाकवि सेनापतिने प्रस्तुत किया है—

को है उपमान ? भासमान हू तैं भासमान,
परम निधान सेनापति के सहाइ कौ।
तेज कौ अधार, अति तीछन सहस-धार,
एकै सरदार हथियार समुदाइ कौ॥
अमर अवन, दल दानव दवन मन,
पवन गवन पुजवन जन चाइ कौ।
कामना कौ बरसन, सदा सुभ दरसन,
राजत सुदरसन चक्र हरि राइ कौ॥
(कवित्तरत्नाकर ५। १३)

कहा जाता है कि जगन्नाथपुरीमें स्टेशनके समीप समुद्रके किनारे चक्रतीर्थ है; यहाँपर एक कुण्ड है, जिसमें भगवान्‌का सुदर्शनचक्र पड़ा हुआ है।

गदा-आयुधकी उत्पत्ति और कार्य आदिपर पुराणोंमें अमित प्रकाश डाला गया है। भगवान्‌की उक्ति है कि आदिविद्याको ही गदा समझना चाहिये, जो मेरे हाथमें सदा स्थित रहती है—

'आद्या विद्या गदा वेद्या सर्वदा मे करे स्थिता॥'
(गोपालोत्तरतापनीयोपनिषद् २६)

भगवान् विष्णु मन, इन्द्रिय और शरीर-सम्बन्धी शक्तियोंसे युक्त प्राणतत्त्वरूप कौमोदकी गदा धारण करते हैं—

'ओजस्सहोबलयुतं मुख्यतत्त्वं गदां दधत्।'
(श्रीमद्भागवत १२। ११। १४)

विष्णुपुराणके प्रथम अंशके बाईसवें अध्यायमें उल्लेख है कि 'बुद्धि श्रीमाधवकी गदारूपसे स्थित है।' श्रीमद्भागवतमें गदाकी इस प्रकार स्तुति की गयी है—'कौमोदकी गदा! आपसे छूटनेवाली चिनगारियोंका स्पर्श वज्रके समान असह्य है। आप भगवान् अजितकी प्रिया हैं। मैं उनका सेवक हूँ। आप कूष्माण्ड, विनायक, यक्ष, राक्षस तथा भूतादि ग्रहोंको अभी कुचल डालिये। मेरे शत्रुओंको चूर-चूर कर दीजिये'—

गदेऽशनिस्पर्शनविस्फुलिङ्गे निष्पिण्ढि निष्पिण्ढ्यजितप्रियासि।
कूष्माण्डवैनायकयक्षरक्षोभूतग्रहांश्चूर्णय चूर्णयारीन्॥
(६। ८। २४)

गदाका मन्त्र 'खं ठं फं षं गदायै नमः।' अग्निपुराणके पचीसवें अध्यायमें वर्णित है। वायुपुराणके १०९वें अध्यायमें गदाकी उत्पत्तिके विषयमें उल्लेख है कि प्राचीनकालमें वज्रसे भी परम कठोर 'गद' नामक असुर था। ब्रह्माकी प्रार्थनापर उसने अपनी हड्डियाँ उन्हें दे दीं। ब्रह्माके कहनेपर विश्वकर्माने उन हड्डियोंकी एक अद्भुत गदा बनायी और उसे स्वर्गलोकमें स्थापित किया। स्वायम्भुव मन्वन्तरमें घोर तपस्या कर देवताओं और ब्रह्मासे 'हेति' नामक असुरने अस्त्र-शस्त्र, मनुष्य, सुदर्शनचक्र आदिसे अवध्य होनेका वरदान प्राप्त किया तथा देवताओंको पराजितकर इन्द्रपद छीन लिया। उसके वधके लिये देवताओंने गदा विष्णुको समर्पित कर दी। हरिने सबसे पहले उस गदाको धारणकर हेति असुरका विनाश किया—

'दधार तां गदामादौ देवैस्तको गदाधरः।'
(वायुपुराण १०९। १२)

भगवान् 'आदि गदाधर' कहलाते हैं। गदा स्त्री आयुध है। गदाके श्रीविग्रहका वर्णन विष्णुधर्मोत्तरपुराणमें मिलता है—

'गदा पीतप्रभा कन्या सुपीनजघनस्थला।'

इनके श्रीअङ्गोंसे पीले रंगकी आभा निकलती है, ये कन्या (कुमारिका)-रूपमें सदा रहती हैं। इनका नितम्ब-भाग स्थूल और कटिदेश क्षीण—पतला है। ये अनेक आभूषणोंसे विभूषित रहती हैं। इनके हाथमें चामर रहता है और विष्णुके दाहिने हाथका उनके सिरपर संस्पर्श रहता है।

भगवान्‌के खड्गका नाम नन्दक है। खड्ग आकाशके समान निर्मल एवं आकाशरूप है—

'नभोनिभं नभस्तत्त्वमसिम् ।'

(श्रीमद्भागवत १२ । ११ । १५)

विष्णुपुराणके प्रथम अंशके बाईसवें अध्यायमें उल्लेख है कि 'भगवान् जो निर्मल खड्ग धारण करते हैं, वह अविद्यामय कोशसे आच्छादित विद्यामय ज्ञान है ।' श्रीमद्भागवतमें खड्गकी स्तुति की गयी है—'भगवान्‌की प्रिय तलवार ! आपकी धार बहुत तीक्ष्ण है । आप भगवान्‌की प्रेरणासे मेरे शत्रुओंको छिन्न-भिन्न कर दीजिये—

'त्वं तिग्मधारासिवरारिसैन्यमीशप्रयुक्तो मम छिन्धि छिन्धि ।'

(६ । ८ । २६)

खड्ग पुरुष आयुध है । इसका वर्ण श्याम है तथा मुखाकृति क्रोधाभिभूत है । विष्णुधर्मोत्तरमें इसका वर्णन उपलब्ध होता है—

'खड्गश्च पुरुषः श्यामशरीरः क्रुद्धलोचनः ।'

भगवान्‌की ढाल तमोमय—अज्ञानरूप है । श्रीमद्भागवतमें वर्णन है—

'चर्म तमोमयम्' (१२ । ११ । १५)

ढालकी इस प्रकार स्तुति की गयी है—

'चक्षूंषि चर्मञ्छतचन्द्र छादय द्विषामघोनां हर पापचक्षुषाम् ॥'

(श्रीमद्भा० ६ । ८ । २६)

'भगवान्‌की प्रिय ढाल ! आपमें सैकड़ों चन्द्राकार मण्डल हैं । आप पापमयी दृष्टिवाले पापी शत्रुओंकी आँखें बंद कर दीजिये । उन्हें सदाके लिये अंधा बना दीजिये ।'

भगवान्‌का शार्ङ्गधनुष कालरूप कहा गया है—

'कालरूपं धनुः शार्ङ्गम्'

(श्रीमद्भागवत १२ । ११ । १५)

भगवान्‌ने स्वीकार किया है कि आदिमाया ही शार्ङ्ग नामक धनुष है—

'आद्या माया भवेच्छार्ङ्गम्'

(गोपालोत्तरतापनीयोपनिषद् २६)

धनुष स्त्री आयुध है । इसके सिरपर चढ़ाया हुआ धनुष रहता है तथा इसका वर्ण लाल होता है । विष्णुधर्मोत्तर-पुराणमें धनुषकी मूर्तिका विवरण उपलब्ध होता है—

'धनुः स्त्री पद्मरक्ताभा मूर्ध्नि पूरितचापभृत् ।'

शार्ङ्गधनुषकी उत्पत्तिका आख्यान महाभारतके अनुशासन-पर्वके १४१ वें अध्यायमें दाक्षिणात्य पाठके अनेक श्लोकोंमें वर्णित है । भगवान् शिवने पार्वतीसे कहा कि "युगान्तरमें कण्व मुनिने विकट तपस्या की । उनके मस्तकपर कालक्रमसे बाँबी जम गयी । ब्रह्माने प्रसन्न होकर वर दिया तथा तपस्याके स्थलपर ही उन्होंने एक बाँस देखा । उस बाँसके द्वारा जगत्‌का उपकार करनेके उद्देश्यसे कुछ सोचकर ब्रह्माने उस (वेणु) को हाथमें ले लिया और उसे धनुषके उपयोगमें लगाया । उन्होंने मेरे और भगवान् विष्णुके लिये तत्काल दो धनुष बनाकर दिये । मेरे धनुषका नाम 'पिनाक' हुआ और श्रीहरिके धनुषका नाम 'शार्ङ्ग' । उस वेणुके अवशेषसे एक तीसरा धनुष बनाया गया, जिसका नाम 'गाण्डीव' हुआ ।"

पिनाकं नाम मे चापं शार्ङ्गं नाम हरेर्धनुः ।
तृतीयमवशेषेण गाण्डीवमभवद्धनुः ॥

(महाभारत, अनुशासन०, अध्याय १४१)

'शार्ङ्गधनुष' की गणना दिव्य धनुषोंमें की गयी है । गाण्डीव धनुष वरुणका है, विजय धनुष देवराज इन्द्र धारण करते हैं और शार्ङ्ग भगवान् विष्णुके हाथमें शोभित होता है—

त्रीण्येवैतानि दिव्यानि धनूंषि त्रिदिवचारिणाम् ।
वारुणं गाण्डिवं तत्र माहेन्द्रं विजयं धनुः ।
शार्ङ्गं तु वैष्णवं प्राहुर्दिव्यं तेजोमयं धनुः ॥

(महाभारत, उद्योग० १५८ । ५)

उपर्युक्त तीनों धनुष 'दिव्य' कहे गये हैं 'शार्ङ्ग' वैष्णव धनुषके रूपमें प्रसिद्ध है ।

इन्द्रियोंको ही भगवान्‌के बाणोंके रूपमें कहा गया है ।—

'इन्द्रियाणि शरानाहुः ।'

(श्रीमद्भा० १२ । ११ । १६)

बाणको दिव्य पुरुषके रूपमें प्रतिमाङ्कित किया जाता है, इसका अङ्ग रक्त—लाल वर्णका है तथा नेत्र दिव्य हैं । दिव्य नेत्रका आशय है—आँखोंसे प्रसन्नताकी वृष्टि होना । बाणका वाहन वायु है तथा पंख ही ध्वजा है । इनके सिरपर बाण रहता है । माघमासके शतभिषा नक्षत्रमें इनका जन्म बताया जाता है । 'स' इनका बीजाक्षर है ।

मुसल, पाश, अङ्कुश आदि अन्य वैष्णव आयुध हैं। पद्मको यद्यपि भगवान्‌के हाथका शृङ्गारपरक आभरण कहा जाता है, तथापि आयुधके रूपमें भी इसकी मान्यता है।

भगवान्‌की अष्ट भुजाओंमें आठ आयुधोंका वर्णन श्रीमद्भागवतमें मिलता है। विन्ध्याचलके निकटवर्ती अघमर्षण तीर्थमें दक्ष प्रजापतिके सामने भगवान् विष्णु प्रकट हुए—

कृतपादः सुपर्णांसे प्रलम्बाष्टमहाभुजः।
चक्रशङ्खासिचर्मेषुधनुःपाशगदाधरः ॥
(श्रीमद्भा० ६। ४। ३६)

भगवान् गरुडके कंधेपर चरण रखे हुए थे। उनकी विशाल एवं हृष्ट-पुष्ट आठ भुजाएँ थीं। उनमें चक्र, शङ्ख, तलवार, ढाल, बाण, धनुष, पाश और गदा थे।' भगवान्‌के आयुध असंख्य हैं।

(ग) द्वारपाल तथा पार्षद

अष्टकुल नाग विष्णुके द्वारपालके रूपमें परिगणित हैं, ये महासर्प एलापत्र, अनन्त, महापद्म, शङ्कु, अंशुकम्बल, तक्षक, कर्कोटक और वासुकि हैं। ये द्वारपाल विष्णुके आज्ञा-पालनमें तत्पर रहते हैं। ये अपने हृदयमें सदा भगवान्‌का ध्यान करते रहते हैं। भगवान्‌के धाममें इनकी कृपाके बिना प्रवेश नहीं हो पाता। भगवान्‌की कीर्तिका वर्णन करना इनका स्वभाव है। शेष अथवा अनन्त भगवान् आदिपुरुष नारायणके पर्यङ्करूपमें क्षीरसागरमें विराजमान रहते हैं। ये अपने सहस्र मुखोंसे शेष भगवान्‌का अनवरत गुणानुवाद करते रहते हैं। ये जीवको भगवान्‌की शरणमें ले जाते हैं। ये भगवान्‌के नित्य परिकरके रूपमें स्वीकृत हैं। समस्त देवगणोंसे वन्दित शेष-नामधारी भगवान् अनन्त अशेष भूमण्डलको मुकुटके समान धारण करते हैं। ब्रह्माकी आज्ञासे शेष पृथ्वीको अपने अनन्त फणोंपर रखकर विराजमान हैं—

अधोभूमौ वसत्येवं नागोऽनन्तः प्रतापवान्।
धारयन् वसुधामेकः शासनाद् ब्रह्मणो विभुः ॥
(महाभारत, आदि० ३६। २४)

भगवान् विष्णुके पार्षद असंख्य हैं, उनमेंसे सोलह पार्षद प्रमुख हैं। इनके नाम क्रमशः विष्वक्सेन, सुषेण, जय, विजय, बल, प्रबल, नन्द, सुनन्द, भद्र, सुभद्र, चण्ड, प्रचण्ड, कुमुद, कुमुदाक्ष, शील और सुशील हैं। बल, प्रबल, नन्द, सुनन्द, भद्र, सुभद्र, कुमुद और कुमुदाक्षकी गणना वैष्णव द्वारपालके रूपमें की जाती है। आठ गुण अणिमा महिमा आदिके विग्रह रूपमें नन्द-सुनन्दादि आठ द्वारपालोंका उल्लेख मिलता है—

'नन्दादयोऽष्टौ द्वाःस्थाश्च तेऽणिमाद्या हरेर्गुणाः।
(श्रीमद्भा० १२। ११। २०)

भगवान्‌के प्रधान पार्षद 'विष्वक्सेन' हैं। वे पञ्चरात्रादि आगमके रूप स्वीकार किये गये हैं—

'विष्वक्सेनस्तन्मूर्तिर्विदितः पार्षदाधिपः ॥
(श्रीमद्भा० १२। ११। २०)

विष्वक्सेन विष्णुके निर्माल्यधारी कहे जाते हैं। वे चतुर्भुज हैं। उनके हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म रहते हैं। उनका वर्ण रक्तपिङ्गल है। उनके बड़ी दाढ़ी-मूँछ है, मस्तकपर जटा है। वे श्वेत पद्मपर विराजमान रहते हैं। चन्द्रबिन्दु-युक्त स्वरान्त पवर्गीय तृतीय अक्षर 'ब' बीजमन्त्रसे उनकी पूजा होती है। अग्निपुराणके पचीसवें अध्यायमें उनका मन्त्र—'बौं विष्वक्सेनाय नमः' वर्णित है। पार्षदोंमें विष्वक्सेनके बाद सुषेणका नाम लिया जाता है। वैकुण्ठधाममें भगवान् विष्णुके मणिमय प्रासादके पश्चिम द्वारपर जय-विजय द्वारकी रक्षामें तत्पर रहते हैं। एक समय जय-विजयने सनकादिको भगवान्‌के अन्तःपुरमें जाकर दर्शन करनेसे रोका था, इसपर उन्होंने उन्हें शाप दे दिया। श्रीविष्णुकी आज्ञासे दोनोंने शापका आदर किया। उसके परिणामस्वरूप जयको क्रमशः हिरण्याक्ष, रावण और शिशुपाल तथा विजयको हिरण्यकशिपु, कुम्भकर्ण और दन्तवक्त्रके रूपमें जन्म लेना पड़ा। श्रीविष्णुद्वारा तीनों जन्मोंमें निहत होनेपर ऋषिके शापसे इनकी मुक्ति हुई। एक बार भगवान् विष्णुके योगनिद्रामें स्थित हो जानेपर लक्ष्मीजीको भी जय-विजयने भीतर जानेसे रोक दिया था, जिसके कारण ये शापग्रस्त हुए थे। श्रीविष्णुकी उक्ति है उनके प्रति—

एतत्पुरैव निर्दिष्टं रमया क्रुद्धया यदा।
पुरापवारिता द्वारि विशन्ती मय्युपारते ॥
(श्रीमद्भा० ३। १६। ३०)

भगवान् विष्णुके पार्षद नन्द-सुनन्द श्रीध्रुवको वैकुण्ठमें ले जानेके लिये बदरिकाश्रममें पधारे थे। बदरिकाश्रममें तप करते समय ध्रुवने आकाशसे एक सुन्दर विमान उतरते

देखा। उसमें दो पार्षद गदाओंका सहारा लिये खड़े थे। उनके चार भुजाएँ थीं, सुन्दर श्याम शरीर था, किशोर अवस्था थी, अरुण कमलके समान नेत्र थे। वे सुन्दर वस्त्र, हार, किरीट, भुजबन्ध और मनोहर कुण्डल धारण किये हुए थे—

तत्रानु देवप्रवरौ चतुर्भुजौ श्यामौ किशोरावरुणाम्बुजेक्षणौ।
स्थिताववष्टभ्य गदां सुवाससौ किरीटहाराङ्गदचारुकुण्डलौ॥
(श्रीमद्भा० ४। १२। २०)

भगवान्‌के उपर्युक्त दोनों पार्षद सुनन्द और नन्दने उनके पास आकर कहा—

'सुनन्दनन्दावुपसृत्य सस्मितं प्रत्यूचतुः पुष्करनाभसम्मतौ॥'
(श्रीमद्भा० ४। १२। २२)

'हम निखिल जगन्नियन्ता शार्ङ्गपाणि भगवान् विष्णुके सेवक हैं और आपको भगवान्‌के धाममें ले जानेके लिये यहाँ आये हुए हैं'—

तस्याखिलजगद्धातुरावां देवस्य शार्ङ्गिणः।
पार्षदाविह सम्प्राप्तौ नेतुं त्वां भगवत्पदम्॥
(श्रीमद्भा० ४। १२। २४)

इस तरह सुनन्द-नन्दने श्रीध्रुवको भगवान्‌के धाममें जानेमें सहायता की। श्रीवैकुण्ठधाममें भगवान् विष्णुके प्रासादके पूर्वके दरवाजेपर चण्ड और प्रचण्ड, दक्षिणद्वारपर भद्र और सुभद्र तथा उत्तरके दरवाजेपर धाता और विधाता नामके द्वारपाल रहते हैं। कुमुद और कुमुदाक्षकी गणना वैकुण्ठके मध्यमें स्थित अयोध्यानगरीके दिक्पालोंमें भी की जाती है। बल, प्रबल, सुशील और शीलकी गणना प्रमुख पार्षदोंमें ही है। भगवान्‌के पार्षद भगवद्धाममें ही निवास करते हैं। उन पार्षदोंका उज्ज्वल आभासे युक्त श्यामशरीर पीले वस्त्रोंसे शोभित रहता है और शतदल कमलके समान कोमल नेत्र हैं। उनके प्रत्येक अङ्गसे राशि-राशि सौन्दर्य बिखरता रहता है। वे कोमलताकी मूर्ति हैं। सभी पार्षदोंके चार-चार भुजाएँ हैं। यद्यपि वे स्वयं तेजस्वी हैं, तथापि मणिजटित सुवर्णके प्रभामय आभूषण धारण किये रहते हैं। उनकी छवि मूँगे, वैदूर्यमणि और कमलके उज्ज्वल तन्तुके समान है। उनके कानोंमें कुण्डल, मस्तकपर मुकुट और कण्ठमें मालाएँ शोभित रहती हैं—

न यत्र माया किमुतापरे हरे-
रनुव्रता यत्र सुरासुरार्चिताः॥
श्यामावदाताः शतपत्रलोचनाः
पिशङ्गवस्त्राः सुरुचः सुपेशसः।
सर्वे चतुर्बाहव उन्मिषन्मणि-
प्रवेकनिष्काभरणाः सुवर्चसः।
प्रवालवैदूर्यमृणालवर्चसः
परिस्फुरत्कुण्डलमौलिमालिनः॥
(श्रीमद्भा० २। ९। १०-११)

भगवान्‌के सभी द्वारपाल और प्रमुख पार्षद आदि धन्य हैं, जिन्हें नित्य भगवत्सांनिध्य सहज-सुलभ रहता है। भगवान् सर्वशक्तिमान् हैं, अजेय हैं, पर उनके नित्यपार्षद उनकी रक्षा और सेवामें सदा तत्पर रहते हैं। श्रीमद्भागवतमें वर्णन है कि जब वैष्णव पार्षदोंने देखा कि बलिके अनुचर दैत्योंने वामनको मारनेके लिये अस्त्र उठा लिये, तब उन्होंने भी हँसकर अपने अस्त्र उठा लिये, असुरोंको रोक दिया। नन्द-सुनन्द, जय-विजय, बल-प्रबल, कुमुद-कुमुदाक्ष, विष्वक्सेन, गरुड, जयन्त, श्रुतदेव, पुष्पदन्त, सात्वत आदि भगवत्पार्षद दस-दस हजार हाथियोंका बल रखते हैं। वे असुरसेनाका संहार करने लगे—

इत्यायुधानि जगृहुर्बलेरनुचरासुराः॥
ते सर्वे वामनं हन्तुं शूलपट्टिशपाणयः।
अनिच्छतो बले राजन् प्राद्रवञ्जातमन्यवः॥
तानभिद्रवतो दृष्ट्वा दितिजानीकपान् नृप।
प्रहस्यानुचरा विष्णोः प्रत्यषेधन्नुदायुधाः॥
नन्दः सुनन्दोऽथ जयो विजयः प्रबलो बलः।
कुमुदः कुमुदाक्षश्च विष्वक्सेनः पतत्त्रिराट्॥
जयन्तः श्रुतदेवश्च पुष्पदन्तोऽथ सात्वतः।
सर्वे नागायुतप्राणाश्चमूं ते जघ्नुरासुरीम्॥
(श्रीमद्भा० ८। २१। १३-१७)

उपर्युक्त वैष्णव पार्षदोंकी चरण-धूलि परम वन्दनीय है। वे प्रभुकी कृपाके असाधारण पात्र हैं।

(घ) वाहन तथा पर्यङ्क और सिंहासन

भगवान् विष्णुके प्रमुख वाहनके रूपमें सुपर्ण—गरुडकी गणना की जाती है। गरुड नित्यमुक्त और अखण्डज्ञान-सम्पन्न माने जाते हैं। उनको 'सर्ववेदमयविग्रह' कहा जाता है। श्रीमद्भागवतमें उल्लेख है कि बृहत् और रथन्तर नामक सामवेदके दो विभाग ही गरुडके पंख हैं और उड़ते समय इन पंखोंसे सामगानकी ध्वनि निकलती है—

'आकर्णयन् पत्ररथेन्द्रपक्षै-
रुच्चारितं स्तोममुदीर्णसाम ।'
(३ । २१ । ३४)

यद्यपि गरुड भगवान्‌के नित्य परिकर हैं, तथापि कश्यप और विनतासे जन्म होनेके नाते उनको 'वैनतेय' कहा जाता है। भगवान्‌ने अपनी विभूतियोंका उल्लेख करते हुए श्रीमद्भगवद्गीतामें अपने-आपको 'वैनतेय' कहा है।

'वैनतेयश्च पक्षिणाम् ।'
(१० । ३०)

तीनों वेदोंका नाम ही 'गरुड' है। वेद परमात्माका वहन करते हैं, इसलिये उन्हें 'वाहन' कहा जाता है। वे गरुडके पर्याय स्वीकार किये गये हैं—

'त्रिवृद् वेदः सुपर्णाख्यो यज्ञं वहति पूरुषम् ॥'
(श्रीमद्भा० १२ । ११ । १९)

अग्निपुराणके पचीसवें अध्यायमें गरुडका मन्त्र 'कं टं पं शं वैनतेयाय नमः' वर्णित है। महाभारतके आदिपर्वके अनेक अध्यायोंमें गरुडका विस्तृत आख्यान वर्णित है। अमृत लेकर गरुड आकाशमें उड़ते जा रहे थे कि भगवान् विष्णुका उन्हें साक्षात्कार हो गया। भगवान्‌ने उनको वर देनेकी इच्छा प्रकट की। गरुडने वर माँगा कि मैं आपकी ध्वजामें स्थित रहूँ तथा अमृत पीये बिना ही अजर-अमर हो जाऊँ—

'अजरश्चामरश्च स्याममृतेन विनाप्यहम् ॥'
(महा०, आदि० ३३ । १४)

भगवान् विष्णुसे वर माँगकर गरुडने कहा कि मैं आपको भी वर देना चाहता हूँ। इसपर भगवान्‌ने उनसे अपना वाहन होनेका वर माँगा। गरुड भगवान्‌के वाहन हो गये।

ध्वजं च चक्रे भगवानुपरि स्थास्यसीति तम्।
एवमस्त्विति तं देवमुक्त्वा नारायणं खगः ॥
(महा०, आदि० ३३ । १७)

भगवान्‌ने गरुडको अपना ध्वज बना लिया—उनको ध्वजपर स्थान दिया और कहा—'इस प्रकार तुम मेरे ऊपर रहोगे।' भगवान् विष्णुको श्रीमद्भागवत ३ । २१ । २२ में 'सुपर्णपक्षोपरि रोचमानः' (गरुडके कंधेपर विराजमान) तथा श्रीमद्भा० ८ । १० । ५४ में 'सुपर्णांसकृताङ्घ्रिपल्लवः' (गरुडके कंधेपर चरण रखे हुए) कहा गया है।

गरुडको 'सुपर्ण' कहा जाता है। गरुड अमृत लेकर बड़े वेगसे उड़ते जा रहे थे कि इन्द्रने रोषपूर्वक वज्रसे उनपर आघात किया। गरुडने विनम्रतासे मधुर वाणीमें यह कहकर कि 'जिनकी हड्डियोंसे यह वज्र बना है, उन महर्षि (दधीचि)-का मैं सम्मान करूँगा; आपका और आपके वज्रका भी आदर करूँगा। इसलिये अपना एक पंख, जिसका आप कहीं अन्त न पा सकेंगे, त्याग देता हूँ।' पंख त्याग दिया। उसको देखकर लोगोंने कहा कि "जिसका यह सुन्दर पंख—पर्ण है, वह पक्षी 'सुपर्ण' नामसे विख्यात हो।"

हृष्टानि सर्वभूतानि नाम चक्रुर्गरुत्मतः ॥
सुरूपं पत्रमालक्ष्य सुपर्णोऽयं भवत्विति ।
(महाभारत, आदि० ३३ । २३-२४)

क्रियाशक्तियुक्त मन ही भगवान्‌का रथ है। तन्मात्र रथके बाहरी भाग हैं। वर-अभय आदि मुद्राओंसे अभयदान, वरदान आदिरूपमें क्रियाशीलता—गति प्रकट होती है।

·········आकूतीरस्य स्यन्दनम् ।
तन्मात्राण्यस्याभिव्यक्तिं मुद्रयार्थक्रियात्मताम् ॥
(श्रीमद्भा० १२ । ११ । १६)

मूलप्रकृति ही भगवान्‌की शेषशय्या है, जिसपर वे विराजमान रहते हैं—

'अव्याकृतमनन्ताख्यमासनं यदधिष्ठितः ।'
(श्रीमद्भा० १२ । ११ । १३)

विष्णुधर्मोत्तरपुराणमें वर्णन मिलता है कि मेरुपर्वतके पूर्वभागमें लवणसमुद्रके मध्यमें सलिलान्तःसंस्थित विष्णुलोक अपने ही प्रकाशसे विभासित है। उसमें भगवान् वर्षा ऋतुके चार मासोंमें लक्ष्मीद्वारा सेवित होकर शेषपर्यङ्कपर शयन करते हैं—

तत्र स्वपिति घर्मान्ते देवदेवो जनार्दनः ।
लक्ष्मीसहायः सततं शेषपर्यङ्कमाश्रितः ॥
(१ । ६ । ३०)

पद्मपुराणके उत्तरखण्डके २२८वें अध्यायमें भगवान् विष्णुके सिंहासनका सुन्दर वर्णन मिलता है। वैकुण्ठधामके अन्तर्गत अयोध्यापुरीमें भगवान्‌के अन्तःपुरमें स्थित दिव्य मण्डप है। यह रत्ननिर्मित है। मण्डपके मध्यभागमें रमणीय सिंहासन है; यह सर्ववेदस्वरूप है, शुभ है। वेदमय धर्मादि देवता सिंहासनको घेरे रहते हैं। धर्म-ज्ञान-ऐश्वर्य-वैराग्य, ऋक्-यजुः-साम-शक्ति, आधार-शक्ति, चिच्छक्ति, सदाशिवा-शक्ति तथा धर्मादिकी शक्ति—सब उपस्थित रहते हैं। सिंहासनके मध्यभागमें अग्नि, सूर्य और चन्द्रमा

रहते हैं। कूर्म, नागराज—अनन्त, गरुड, छन्द, सम्पूर्ण वेदमन्त्र उसमें पीठरूप धारण कर स्थित रहते हैं। यह दिव्य योगपीठ है। इसके मध्यमें अष्टदल कमल है, जो अरुणोदय-कालीन सूर्यके समान है। इसके बीचमें 'सावित्री' नामक कर्णिका है, जिसपर देवताओंके स्वामी परमपुरुष विष्णु लक्ष्मीके साथ विराजमान रहते हैं—

ईश्वर्या सह देवेशस्तत्रासीनः परः पुमान्।
इन्दीवरदलश्यामः कोटिसूर्यप्रकाशवान्॥

(पद्मपुराण, उत्तर० २२८। २७)

भगवान् विष्णु अनन्त हैं। उनके वाहन आदि असंख्य हैं। समस्त जीवशक्ति—चेतन-समूह ही उनका वाहन है।

—रामलाल

नित्यविभूति और लीलाविभूति

नित्यविभूति

श्रीभगवान्‌के परिकर, परिच्छद और परिवारका उल्लेख शास्त्रोंमें मिलता है। 'परिकर'से तात्पर्य है, उस दिव्य आसन अथवा सिंहासनका, जिसपर श्रीभगवान् विराजमान हैं। उपनिषद्‌में इसे 'अमितौजा' नामक पर्यङ्क कहा गया है। 'परिकर'का अर्थ पर्यङ्क अथच परिवार है—

परिकरः पर्यङ्कपरिवारयोः।' (अमरकोश ३। १६५)

श्रीमद्भागवतमें लिखा है कि परतत्त्व भगवान् नारायण अपने जगद्वन्द्य सिंहासनपर विराजते हैं—

'अध्यर्हणीयासनमास्थितं परम्' (२। ९। १६)

अनन्त शेषजी भी भगवान्‌की विश्राम-शय्या हैं—

'मृणालगौरायतशेषभोगपर्यङ्क एकं पुरुषं शयानम्।'

(श्रीमद्भागवत ३। ८। २३)

अतः शेष भी उनके 'परिकर' हैं।

ये शेषशायी भगवान् क्षीरसागरमें निवास करते हैं—
'सुभूः स्वयम्भूः प्रथमोऽन्तर्महत्यर्णवे।(शु० यजुर्वेद २३। ६३)

इन्हीं मधुरमूर्ति देवाधिदेवके नाभिह्रदसे विश्वविलासका आद्य कमल विकसित हुआ था—

'अजस्य नाभावध्येकमर्पितं यस्मिन् विश्वानि भुवनानि तस्थुः॥'

(ऋग्वेद १०। ८२। ६ तथा शु० यजुर्वेद १७। ३०)

श्रुतिके इस मन्त्रको स्मृति इस प्रकार कहती है—

तद् यस्य नाभ्यां सम्भूतं यस्मिन् विश्वं प्रतिष्ठितम्।
पुष्करं पुष्कराक्षस्य तस्मै पद्मात्मने नमः॥

(महाभारत, शान्तिपर्व ४७। ५९)

'जिसपर यह विश्व टिका हुआ है, वह ब्रह्माण्ड-कमल जिन पुण्डरीकाक्ष भगवान्‌की नाभिसे प्रकट हुआ है, उन कमलरूपधारी परमेश्वरको प्रणाम है।'

इसी कमलपर परब्रह्म नारायणने सर्वप्रथम ब्रह्माजीको उत्पन्न किया था—

(अ) ब्रह्म ह ब्रह्माणं पुष्करे ससर्ज।

(गोपथब्राह्मण, पूर्वभाग, प्रथम प्रपाठक, मन्त्र १६)

(आ) यन्नाभिजातादरविन्दकोशाद्
ब्रह्माऽऽविरासीद् यत एष लोकः॥

(श्रीमद्भागवत १०। ४०। १)

'जिनके नाभिसे उत्पन्न हुए कमल-कोशसे ब्रह्माजी प्रकट हुए, जिनसे इस जगत्‌की उत्पत्ति हुई।'

वसनालंकारको 'परिच्छद' कहते हैं। श्रीभगवान्‌को पीताम्बर प्रिय है। किरीट, कुण्डल, केयूर, कङ्कण, कौस्तुभ, काञ्ची, हार, वनमाला, वैजयन्ती, नूपुर आदि अलंकार भी उनके 'परिच्छद' हैं।

किरीट, कुण्डल, हार और कौस्तुभका निर्देश इस प्रकार है—

विद्युत्क्षिपन्मकरकुण्डलमण्डनार्ह-
गण्डस्थलोन्नसमुखं मणिमत्किरीटम्।
दोर्दण्डखण्डविवरे हरता परार्घ्य-
हारेण कन्धरगतेन च कौस्तुभेन॥

(श्रीमद्भागवत ३। १५। ४१)

'भगवान् विष्णुके अमोल कपोल बिजलीकी प्रभाको भी लजानेवाले मकराकृत कुण्डलोंकी शोभा बढ़ा रहे थे। उभरी हुई सुघड़ नासिका थी, बड़ा ही सुन्दर मुख था, सिरपर मणिमय मुकुट विराजमान था तथा चारों भुजाओंके बीच महामूल्यवान् मनोहर हारकी और गलेमें कौस्तुभमणिकी अपूर्व शोभा थी।'

काञ्ची, कङ्कण, पीताम्बर और वनमालाका निर्देश—

पीतांशुके पृथुनितम्बिनि विस्फुरन्त्या
काञ्च्यालिभिर्विरुतया वनमालया च ।
वल्गुप्रकोष्ठवलयं विनतासुतांसे
विन्यस्तहस्तमितरेण धुनानमब्जम् ॥
(श्रीमद्भागवत ३ । १५ । ४०)

'भगवान्‌के पीताम्बरमण्डित विशाल नितम्बोंपर झिलमिलाती हुई करधनी और गलेमें भ्रमरोंसे मुखरित वनमाला विराज रही थी तथा वे कलाइयोंमें सुन्दर कंगन पहने, अपना एक हाथ गरुड़जीके कंधेपर रख दूसरेसे कमलका पुष्प घुमा रहे थे ।'

सब ऋतुओंके कुसुमोंसे सुसज्जित, मध्यमें स्थूल कदम्ब-पुष्पसे विलसित, चरणपर्यन्त लटकनेवाली मालाको 'वनमाला' कहते हैं—

आपादलम्बिनी माला सर्वर्तुकुसुमोज्ज्वला ।
मध्ये स्थूलकदम्बाढ्या वनमालेति कीर्तिता ॥

नूपुर और अङ्गुलीयकका निर्देश—

'विभूषितं मेखलयाङ्गुलीयकैर्महाधनैर्नूपुरकङ्कणादिभिः ।'
(श्रीमद्भागवत २ । २ । ११)

केयूरका निर्देश—

'स्फुरत्किरीटकेयूरहारकौस्तुभभूषण ।'
('जितं ते' स्तोत्र ४ । ९)

मुक्ता, माणिक्य, मरकत, हीरक और इन्द्रनीलमणि—इन पाँचों रत्नोंसे बनी हुई आजानुलम्बिनी माला 'वैजयन्ती' कहलाती है ।

किरीटादिकी पुरुषाकृतिमत्ताका निर्देश 'सात्वतसंहिता' आदि पञ्चरात्र ग्रन्थोंमें किया गया है । वे श्रीविग्रहपर अलंकाररूपमें एवं श्रीविग्रहसे पृथक् होकर परिवाररूपमें रहते हैं ।

'परिवार'का अर्थ है—आस-पास रहनेवाले किरीटादिके अतिरिक्त पाञ्चजन्य, सुदर्शन, कौमोदकी, कमल, शार्ङ्ग, नन्दक आदि श्रीभगवान्‌के 'परिवार' हैं । शङ्खादिका निर्देश श्रुति इस प्रकार कर रही है—

यत्र तद् विष्णुर्महीयते नराणामधिपतिम् ।
यत्र शङ्खचक्रगदाधरस्मरणं मुक्तिश्च तत्र मामस्मृतं कृधि ॥
(ऋक्परिशिष्ट ७ । ५ । २८ । ६)

ये सभी आयुध मूर्तिमान् होकर भगवान्‌की परिचर्यामें निरत रहते हैं—

.........चक्रादिभिर्मूर्तिधरैर्निजायुधैः ।
.........निषेव्यमाणं परमेष्ठिनां पतिम् ॥
(श्रीमद्भागवत १० । ८९ । ५७)

ये दिव्य आयुध ज्ञानमय हैं, सच्चिदानन्दरूप हैं, जैसा कि निम्नाङ्कित वचनोंसे सूचित है—

(अ) कृताञ्जलिं ब्रह्ममयेन कम्बुना
पस्पर्श बालं कृपया कपोले ॥
(श्रीमद्भागवत ४ । ९ । ४)

(आ) शङ्खाय विद्यामयविग्रहाय ते
सुमङ्गलं मङ्गलमस्तु ते विभो ।
(विष्णुचित्तकृत सुमङ्गलस्तोत्र)

गरुडजी श्रीभगवान्‌के प्रिय वाहन हैं—

'विष्णोः क्रमोऽसि ।' (शु० यजुर्वेद १२ । ५)

और श्रुति इनका निर्देश इस प्रकार कर रही है—

सुपर्णोऽसि गरुत्माँस्त्रिवृत्ते शिरो गायत्रं चक्षुर्बृहद्रथन्तरे पक्षौ । स्तोम आत्मा छन्दाᳪस्यङ्गानि यजूᳪषि नाम । साम ते तनूर्वामदेव्यं यज्ञायज्ञियं पुच्छं धिष्ण्याः शफाः ।
(शु० यजुर्वेद १२ । ४)

"हे अग्नि ! आप गरुडरूप हैं । आपके सुन्दर पंख हैं, आप अपने गणके साथ रहते हैं । 'त्रिवृत्' नामका स्तोम (स्तोत्र) आपका मस्तक है, 'गायत्री' नामका साम आपका नेत्र है, 'बृहत्' और 'रथन्तर' नामके साम-भेद आपके दोनों पंख हैं, पचीसवाँ स्तोम आपका अन्तःकरण है, गायत्री आदि २१ छन्द आपके अवयव हैं, यजुर्वेदके मन्त्र आपके नाम हैं, 'वामदेव्य' नामका साम आपका शरीर है, 'यज्ञायज्ञिय' नामका साम आपकी पूँछ है, वेदियोंमें स्थापित अग्नियाँ आपके पंजे हैं । अतः आप स्वर्गमें चले जायँ ।'

इन वचनोंमें गरुडजीके गात्रकी वेदमयता प्रतिपादित है । तैत्तिरीय आरण्यकमें इनकी आराधनाके लिये इनकी गायत्री इस प्रकार दी गयी है—

'तत्पुरुषाय विद्महे सुवर्णपक्षाय धीमहि तन्नो गरुडः प्रचोदयात् ॥'

(१०।१)

विनताके यहाँ इनका अवतार हुआ था, अतएव ये 'वैनतेय' कहलाते हैं। इनको सोमरस समर्पित करते हुए कहा जाता है—

'वैनतेय सोमं पिब।' (ऋग्वेदीय श्रीसूक्त २२)

इनका दूसरा नाम 'तार्क्ष्य' भी है। इस नामसे इनकी स्तुतिका श्रुतिमें इस प्रकार निर्देश है—

......................मनसा च तार्क्ष्यम्।
प्रयतपाणिः शरणं प्रपद्ये स्वस्ति सम्बाधेष्वभयं नो अस्तु॥

(ऋक परिशिष्ट ४।३।७।२)

गजेन्द्रके उद्धारके लिये श्रीभगवान् गरुड़जीपर ही बैठकर गये थे—

छन्दोमयेन गरुडेन समुह्यमान-
श्चक्रायुधोऽभ्यगमदाशु यतो गजेन्द्रः।

(श्रीमद्भागवत ८।३।३१)

श्रीभगवान्का दूसरा वाहन 'रथ' है, जिसके अश्वप्रवर हैं—शैव्य, सुग्रीव, मेघपुष्प और बलाहक—

'तत्राश्वाः शैव्यसुग्रीवमेघपुष्पबलाहकाः।'

(श्रीमद्भागवत १०।८९।४९)

—और सारथि हैं दारुक।

इनके भी भगवदिच्छासे अवतार होते हैं। श्रीकृष्ण-बलरामके लिये दो रथ दिव्यधामसे मथुरामें आये थे—

एवं ध्यायति गोविन्द आकाशात् सूर्यवर्चसौ।
रथावुपस्थितौ सद्यः ससूतौ सपरिच्छदौ॥

(श्रीमद्भागवत १०।५०।११)

इन्हींमेंसे एक दिव्य रथपर विराजमान होकर श्रीकृष्ण-भगवान् अर्जुनको साथ लेकर श्रीभूमापुरुषके लोकमें गये थे—

इति सम्भाष्य भगवानर्जुनेन सहेश्वरः।
दिव्यं स्वरथमास्थाय प्रतीचीं दिशमाविशत्॥

(श्रीमद्भागवत १०।८९।४७)

पुनः यह रथ द्वारकासे दिव्यधामको ही चला गया था—

इति ब्रुवति सूते वै रथो गरुडलाञ्छनः।
खमुत्पपात राजेन्द्र साश्वध्वज उदीक्षतः॥
तमन्वगच्छन् दिव्यानि विष्णुप्रहरणानि च।

(श्रीमद्भागवत ११।३०।४४-४५)

'परीक्षित्! अभी दारुक इस प्रकार कह ही रहा था कि उसके सामने ही भगवान्का गरुडध्वज रथ पताका और घोड़ोंके साथ आकाशमें उड़ गया। उसके पीछे-पीछे भगवान्के दिव्य आयुध भी चले गये।'

परिवारमें 'पार्षद' भी हैं। इनकी संख्या सोलह है, जैसा कि श्रीमद्भागवतके—

प्रतीच्यां दिश्यभूदाविः शङ्खचक्रगदाधरः॥
आत्मतुल्यैः षोडशभिर्विना श्रीवत्सकौस्तुभौ।
पर्युपासितमुन्निद्रशरदम्बुरुहेक्षणम्॥

(६।९।२८-२९)

'तब स्वयं शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधारी भगवान् उनके सामने पश्चिमकी ओर (अन्तर्देशमें) प्रकट हुए। भगवान्के नेत्र शरत्कालीन कमलके समान खिले हुए थे। उनके साथ सोलह पार्षद उनकी सेवामें लगे हुए थे। वे देखनेमें सब प्रकारसे भगवान्के समान ही थे। केवल उनके वक्षःस्थलपर श्रीवत्सका चिह्न और गलेमें कौस्तुभमणि नहीं थी।'

—इस वचनसे विदित होता है। इन पार्षदोंका आकार भगवत्तुल्य है। अन्तर केवल श्रीवत्स और कौस्तुभका है। ये दोनों चिह्न श्रीभगवान्के ही होते हैं, पार्षदोंके नहीं। इनके नाम ये हैं—

विष्वक्सेन, जय, विजय, बल, प्रबल, नन्द, सुनन्द, भद्र, सुभद्र, चण्ड, प्रचण्ड, कुमुद, कुमुदाक्ष, शील, सुशील और सुषेण।

ये सब नित्यमुक्त हैं। इनका पारिभाषिक नाम 'सूरि' है। श्रुतिमें इनका निर्देश इस प्रकार है—

तद् विष्णोः परमं पदम् सदा पश्यन्ति सूरयः।
दिवीव चक्षुराततम्॥ (अथर्ववेद ७।२६।७)

इनके अतिरिक्त सभी मुक्तात्माएँ जगत्के माता-पिता श्रीलक्ष्मीनारायण भगवान्के परिवार हैं।

नित्यविभूतिके नामान्तर

नित्यविभूति, परमव्योम, त्रिपाद्विभूति, महाविभूति, सनातन आकाश, दिव्य स्थान, परम-स्थान, पर-स्थान, परा-गति, अनामय पद, शाश्वत पद, ब्रह्मलोक, ब्रह्मपुर, वैकुण्ठ—ये सब परमपदके पर्याय हैं।

अनाद्यन्त

परमपद अनादि है; क्योंकि वह कभी बनता नहीं।

नित्य होनेके कारण उसके उदय और अस्त नहीं होते। वह नित्योदित है। छान्दोग्य उपनिषद्ने स्पष्ट ही उसे अकृत (अ=नहीं+कृत=रचित) बताया है—

'धूत्वा शरीरमकृतं कृतात्मा ब्रह्मलोकमभिसम्भवामि।'
(८। १३। १)

'शरीरको त्यागकर कृतकृत्य हो अकृत (नित्य) ब्रह्मलोकको प्राप्त होता हूँ।'

अप्राकृत

परमपद त्रिगुणात्मिका जड प्रकृतिका बना हुआ नहीं है। वह तो चेतन है, स्वयम्प्रकाश है। वह शुद्धसत्ता वा शुद्धसत्त्व है। वह सत्त्व रजोगुण और तमोगुणका सहवर्ती सत्त्वगुण नहीं है, प्रत्युत इससे विलक्षण है। प्राकृत सत्त्व जड सत्ता है और अप्राकृत सत्त्व अजड सत्ता है। जड पदार्थ परतःप्रकाश होता है और अजड स्वयम्प्रकाश। परमपद अथवा नित्यविभूति स्वयम्प्रकाश सत्ता है—

'स्वसत्ताभासकं सत्त्वं गुणसत्त्वाद् विलक्षणम्।'

अतएव उसकी ज्ञानादि षड्गुणविलासमयता स्वयंसिद्ध है। 'ब्रह्मतन्त्र'में इस रहस्यको इन शब्दोंमें प्रकट किया गया है—

लोकं वैकुण्ठनामानं दिव्यं षाड्गुण्यसंयुतम्।
अवैष्णवानामप्राप्यं गुणत्रयविवर्जितम्॥

ऋग्वेदके 'क्षयन्तमस्य रजसः पराके' (७। १००। ५) —में 'रजस्' शब्दका अर्थ त्रिगुणमयी प्रकृति है; क्योंकि सत्त्व और तमस्के बिना केवल रजोगुण नहीं रह सकता। तीन गुणोंवाली इस प्रकृतिके मण्डलसे परे दिव्यधाम है और वहीं श्रीभगवान् निवास करते हैं।

श्रीभगवान् वासभूमि होनेके कारण दिव्यधामका यद्यपि व्यतिरेक विभक्तिसे शास्त्रमें निर्देश है, यथा—

'तद् विष्णोः परमं पदम्।' (ऋक्० १। २२। २०)

—तथापि वह भगवान्के ही स्वरूपमें अन्तर्निहित है। नित्यविभूति भगवान्की अपनी ही महिमा है, जैसा कि छान्दोग्यका वचन है—

'स भगवः कस्मिन् प्रतिष्ठितः स्वे महिम्नि।'

इसी प्रकार 'ब्रह्मतन्त्र'में कहा गया है—

'स्वे महिम्नि स्थितं देवं निर्विकारं निरञ्जनम्।'

श्रीमद्भागवतमें भगवल्लोकको 'ब्रह्म' ही बताया है—

इति संचिन्त्य भगवान् महाकारुणिको हरिः।
दर्शयामास लोकं स्वं गोपानां तमसः परम्॥
सत्यं ज्ञानमनन्तं यद् ब्रह्म ज्योतिस्सनातनम्।
यद्धि पश्यन्ति मुनयो गुणापाये समाहिताः॥
(१०। २८। १४-१५)

'परमदयालु भगवान् श्रीकृष्णने इस प्रकार सोचकर उन गोपोंको मायान्धकारसे अतीत अपना परमधाम दिखलाया। भगवान्ने पहले उनको उस ब्रह्मका साक्षात्कार करवाया जिसका स्वरूप सत्य, ज्ञान, अनन्त, सनातन और ज्योतिः-स्वरूप है तथा समाधिनिष्ठ गुणातीत पुरुष ही जिसे देख पाते हैं।'

श्रुति और स्मृतिका साक्ष्य

नित्यविभूतिकी सत्तामें श्रुति और स्मृतिके वचन प्रमाण हैं। नीचे कुछ वचन दिग्दर्शनार्थ दिये जाते हैं—

परमपद—

(अ) तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः।
(शु० यजुर्वेद ६। ५)

अर्थात् भक्तजन श्रीविष्णुभगवान्के उस परमपदका सदा दर्शन करते हैं।

(आ) विष्णोः पदे परमे मध्व उत्सः॥ (ऋग्वेद १। १५४। ५)

अर्थात् श्रीविष्णुभगवान्के परमपदमें माधुरीका निर्झर है।

(इ) परमं पदमवभाति भूरि॥ (ऋग्वेद १। १५४। ६)

अर्थात् वह परमपद अत्यन्त प्रकाशमान है।

(ई) कार्याणां कारणं पूर्वं वचसां वाच्यमुत्तमम्।
योगिनां परमां सिद्धिं परमं ते पदं विदुः॥
(ब्रह्मतन्त्र)

अर्थात् परमपद समस्त कार्योंके भी पूर्व विद्यमान कारण है, सब वाणियोंका सर्वोत्तम वाच्य है और योगियोंकी परमा सिद्धि है।

(उ) स तु तत्पदमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम्॥
(कठोपनिषद् १। ३। ९)

अर्थात् विज्ञान-सारथि साधक श्रीविष्णुके उस परमपद-को प्राप्त करता है।

परमव्योम—

(अ) स्थिताय परमे व्योम्नि भूयो भूयो नमो नमः ।

(ब्रह्मतन्त्र)

अर्थात् मैं परमव्योममें विराजमान श्रीभगवान्‌को बार-बार प्रणाम करता हूँ ।

(आ) यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन् ।
सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चिता ॥

(तैत्तिरीय उपनिषद् २ । १ । १)

अर्थात् जो परमव्योमनिवासी परमात्माको जान लेता है, वह उनके साथ उन्हींके-से कल्याणगुणोंका उपभोग करता है ।

त्रिपाद्—

'त्रिपादस्यामृतं दिवि ।' (सामवेद, मन्त्र ६१९)

अर्थात् श्रीभगवान्‌की एकपाद्विभूति यहाँ है और त्रिपाद्-विभूति उस प्रकाशमान लोकमें है ।

महाविभूति—

'महाविभूतिसंस्थाय नमस्ते पुरुषोत्तम ॥'

(ब्रह्मतन्त्र)

अर्थात् हे पुरुषोत्तम ! महाविभूतिमें निवास करनेवाले आपको मैं प्रणाम करता हूँ ।

सनातन आकाश—

'तच्चाकाशं सनातनम् ।' (वा० रामायण)

अर्थात् वह पद सनातन आकाश है ।

दिव्य स्थान—

'दिव्यं स्थानमजरं चाप्रमेयं दुर्विज्ञेयं चागमैर्गम्यमाद्यम् ।'

(महाभारत)

अर्थात् वह दिव्य स्थान आद्य, अजर और अप्रमेय है, अन्य उपायोंसे दुर्विज्ञेय है, किंतु आगम अर्थात् पञ्चरात्र-संहिताओंद्वारा ज्ञेय है ।

परम स्थान—

एकान्तिनः सदा ब्रह्मध्यायिनो योगिनश्च ये ।
तेषां तु परमं स्थानं यत्तत् पश्यन्ति सूरयः ॥

(विष्णुपुराण १ । ६ । ३९)

अर्थात् ब्रह्मचिन्तक, योगाभ्यासी और एकान्तभावसे भगवदुपासक उसी परमस्थानको प्राप्त होते हैं, जिसका दर्शन नित्यमुक्त सूरि निरन्तर करते रहते हैं ।

(अ) ब्रह्मणः सदनादूर्ध्वं परं स्थानं प्रचक्षते ।
देवापि यत्र पश्यन्ति सर्वतेजोमयं शुभम् ॥
अत्यर्कानलदीप्तं तत् स्थानं विष्णोर्महात्मनः ।
स्थानमेतन्महाभाग ध्रुवमक्षयमव्ययम् ॥

(महाभारत, वनपर्व)

अर्थात् ब्रह्माजीके सत्यलोकसे भी ऊपर परमस्थान है, जिसका दर्शन करनेमें देवगण भी असमर्थ हैं । वह पवित्र, सूर्य और अग्निसे भी अधिक प्रकाशमान, निश्चल, अक्षय और अव्यय स्थान परमात्मा श्रीविष्णुका धाम है ।

(आ) 'योगी परं स्थानमुपैति चाद्यम् ॥'

(गीता ८ । २८)

अर्थात् योगी पुरुष आद्य परमस्थानको प्राप्त करते हैं ।

परमा गति—

'स याति परमां गतिम् ॥' (गीता ८ । १३)

परा गति—

'ततो याति परां गतिम् ॥' (गीता ६ । ४५)

अर्थात् योगी अन्तमें परा गतिको प्राप्त करता है ।

अनामय पद—

'पदं गच्छन्त्यनामयम् ॥' (गीता २ । ५१)

अर्थात् मुक्तात्माएँ अनामय पदको जाती हैं ।

शाश्वत पद—

'मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम् ॥'

(गीता १८ । ५६)

अर्थात् भगवत्कृपासे भक्त जीव शाश्वत, अव्यय पद पाता है ।

ब्रह्मलोक—

'तेषामसौ विरजो ब्रह्मलोकः ।'

(प्रश्नोपनिषद् १ । १६)

अर्थात् तपस्वी, ब्रह्मचर्यव्रती, सत्यनिष्ठ, निश्छल, निष्प्रपञ्च जीव ब्रह्मलोकके अधिकारी हैं । इस ब्रह्मलोकके तरुवर-सरोवरादि-विलसित पुरी, सभा और वेश्मके वर्णनमें निम्नाङ्कित वचन मननीय हैं—

(अ) तदश्वत्थः सोमसवनः । (छान्दोग्य० ८ । ५ । ३)

(आ) इल्यो वृक्षः । (कौषीतकि)

(इ) ऐरम्मदीय९ सरः । (छान्दोग्य० ८ । ५ । ३)

(ई) तदपराजिता पूर्ब्रह्मणः। (छान्दोग्य० ८ । ५ । ३)

(उ) प्रजापतेः सभाम्। (छान्दोग्य० ८ । १४ । १)

(ऊ) वेश्म प्रपद्ये। (छान्दोग्य० ८ । १४ । १)

ब्रह्मपुर—

'दिव्ये ब्रह्मपुरे ह्येषः।' (मुण्डक० २ । २ । ७)

अर्थात् यह परमात्मा दिव्य ब्रह्मपुरमें है।

वैकुण्ठ—

(अ) त एकदा भगवतो वैकुण्ठस्यामलात्मनः।
ययुर्वैकुण्ठनिलयं सर्वलोकनमस्कृतम्॥
यत्र चाद्यः पुमानास्ते भगवाञ्छब्दगोचरः॥
(श्रीमद्भागवत ३ । १५ । १३, १५)

अर्थात् ब्रह्माजीके मानसपुत्र सनकादि एक दिन निखिलहेय-प्रत्यनीक श्रीभगवान् वैकुण्ठ (विष्णु) के सर्वलोक-नमस्कृत वैकुण्ठधामको गये, जहाँ श्रुतिप्रतिपाद्य आद्यपुरुष श्रीविष्णु विराजमान रहते हैं।

(आ) ततो निराशो दुर्वासाः पदं भगवतो ययौ।
वैकुण्ठाख्यं यदध्यास्ते श्रीनिवासः श्रिया सह॥
(श्रीमद्भागवत ९ । ४ । ६०)

अर्थात् (महाराज अम्बरीषके रक्षणमें दत्तचित्त सुदर्शन-चक्रके त्राससे भयभीत दुर्वासाको जब कहीं आश्वासन न मिला) तब दुर्वासा निराश होकर श्रीभगवान्‌के वैकुण्ठ-नामक परमपदमें पहुँचे, जहाँ विष्णुभगवान् लक्ष्मीजीके साथ निवास करते हैं।

(इ) ततो वैकुण्ठमगमद् भास्वरं तमसः परम्॥
यत्र नारायणः साक्षान्न्यासिनां परमा गतिः।
शान्तानां न्यस्तदण्डानां यतो नावर्तते गतः॥
(श्रीमद्भागवत १० । ८८ । २५-२६)

अर्थात् (अपने ही वरदानसे बढ़े हुए वृकासुरसे संत्रस्त होकर देवाधिदेव शिवजी आत्मरक्षाके विषयमें निराश होकर) वैकुण्ठधाममें गये, जो बड़ा प्रकाशमान है, प्रकृति-से परे है, जहाँ शान्तचित्त, न्यस्तदण्ड संन्यासियोंकी परमगति श्रीमन्नारायण निवास करते हैं और जहाँसे कर्मवश पुनरावृत्ति नहीं हुआ करती।

लीलाविभूतिके लिये श्रीविष्णुभगवान्‌के व्यूह

परब्रह्म परमात्मा प्रकृतिसे परे हैं, मानव-मनोभूमिसे अतीत हैं। किंतु इससे यह नहीं समझना चाहिये कि ये प्रकृतिसे परे-ही-परे हैं, प्रकृतिमें नहीं। परमात्मा प्रकृतिसे परे भी हैं और प्रकृतिमें भी हैं। त्रिपाद्-रूपसे वे प्रकृतिसे परे हैं और एकपाद्-रूपसे प्रकृतिमें हैं। इस प्रकार परमात्माकी दो विभूतियाँ हैं। एक तो त्रिपाद्विभूति और दूसरी एकपाद्विभूति। त्रिपाद्विभूतिको 'नित्यविभूति' कहते हैं और एकपाद्विभूतिको 'लीलाविभूति'। इस एकपाद्विभूतिमें श्रीभगवान् जगत्‌के उदय, विभव और लयकी लीला किया करते हैं। आत्माराम, आप्तकाम परमात्माका प्रकृतिके साथ यह विहार चिरंतन है, अनादि-अनन्त है। इस विहार-स्थलीके देश-कालका ज्ञान मानव-मनीषामें नहीं समाता। अर्थात् मनुष्य यह नहीं जान सकता कि भगवान् जिस प्रकृति-नटीके साथ अपना महारास कर रहे हैं, उसका परिमाण केवल इतना है; क्योंकि प्रकृतिके असंख्य ब्रह्माण्ड-भाण्डोंको अहर्निश बनाने-बिगाड़नेके अनवरत कार्यको समग्ररूपमें जाननेकी शक्ति किसी व्यक्तिके मस्तिष्कमें नहीं है। इसी प्रकार कोई यह भी नहीं जान सकता कि प्रकृतिके साथ भगवान्‌का यह विहार कब प्रारम्भ हुआ और कबतक चलेगा। मनुष्य केवल यह कहकर शान्त हो जाता है कि यह विहार अनादिकालसे चला आ रहा है और अनन्त कालतक चलता रहेगा।

इस जगत्‌की तीन अवस्थाएँ हैं—सृष्टि, स्थिति और प्रलय। जड प्रकृतिमें परमात्माके ईक्षणसे—संकल्पसे—कभी तो विकासोन्मुख परिणाम हुआ करता है, जिसे 'सृष्टि' कहते हैं और कभी विनाशोन्मुख, जिसे 'प्रलय' कहते हैं। सृष्टि और प्रलयके मध्यकी दशाका नाम 'स्थिति' है। जब परमात्मा जगत्‌की रचना करते हैं, तब वे 'प्रद्युम्न', जब पालन करते हैं, तब 'अनिरुद्ध' और जब संहार करते हैं, तब 'संकर्षण' कहलाते हैं। इन रूपोंका नाम 'व्यूह' है।

संकर्षण

श्रीपरतत्त्व भगवान्‌के यद्यपि अनन्त कल्याणगुण हैं, तथापि उनमेंसे छः मुख्य हैं। उन्हीं छः गुणोंमेंसे जब वे ज्ञान और बलका प्रकाशन करते हैं, तब उनका नाम 'संकर्षण' होता है। संकर्षणमें अन्य चार गुणोंका अर्थात् वीर्य, ऐश्वर्य, शक्ति और तेजका निगूहन होता है, अभाव नहीं। इनका वर्ण पद्मरागके समान है। ये नीलाम्बरधारी हैं। चार कर-कमलोंमें क्रमशः हल, मूसल, गदा

और अभयमुद्रा धारण करते हैं। ताल इनकी ध्वजाका लक्षण है। ये जीवके अधिष्ठाता बनते हुए ज्ञान-गुणसे शास्त्रका प्रवर्त्तन करते हैं और बल-नामक गुणसे जगत्का संहार।

प्रद्युम्न

जब वे ही भगवान् वीर्य और ऐश्वर्यका प्रकाश करते हैं, तब उनका नाम 'प्रद्युम्न' होता है। इनमें ज्ञान, बल, शक्ति और तेजका केवल निगूहन होता है, अभाव नहीं। इनका वर्ण रविकिरणके समान है। ये रक्ताम्बरधारी हैं। चार कर-कमलोंमें धनुष, बाण, शङ्ख और अभयमुद्रा धारण करते हैं। मकर इनकी ध्वजाका चिह्न है। मनस्तत्त्वके अधिष्ठाता होते हुए ये वीर्य-नामक गुणसे धर्मका प्रवर्त्तन करते हैं और ऐश्वर्य-नामक गुणसे जगत्की सृष्टि।

अनिरुद्ध

जब परब्रह्म परमात्मा शक्ति और तेजका प्रकाशन करते हैं, तब उनका नाम 'अनिरुद्ध' होता है। इनमें ज्ञान, बल, वीर्य और ऐश्वर्यका निगूहन होता है, अभाव नहीं। इनका वर्ण नील है। ये शुक्लाम्बरधारी हैं। चार कर-कमलोंमें खड्ग, खेट, शङ्ख और अभयमुद्रा धारण करते हैं। मृग इनकी ध्वजाका चिह्न है। अहंकारके अधिष्ठाता होते हुए ये तेज-नामक गुणसे आत्मतत्त्वका प्रवर्तन करते हैं और शक्ति-नामक गुणसे जगत्का भरण-पोषण।

व्यूहान्तर

इस प्रकार त्रिव्यूहका वर्णन हुआ। कभी-कभी षाड्गुण्यमूर्ति परतत्त्व श्रीभगवान् भी व्यूहोंमें सम्मिलित होते हैं। उस समय वे 'व्यूह-वासुदेव' कहलाते हैं। ये शशिगौर और पीताम्बरधारी हैं एवं चार कर-कमलोंमें शङ्ख, चक्र, गदा और अभयमुद्रा धारण करते हैं। गरुड इनकी ध्वजाका चिह्न है। इस प्रकार भगवान्के चार व्यूह होते हैं। इन व्यूहोंके और भी रूपान्तर हैं। केशव, नारायण और माधव—ये तीन वासुदेवके विलास हैं। केशव स्वर्णाभ हैं और चार चक्र धारण करते हैं। नारायण श्यामवर्ण हैं और चार शङ्ख धारण करते हैं। माधव इन्द्रनीलके समान वर्णवाले हैं और चार गदाएँ धारण करते हैं।

गोविन्द, विष्णु और मधुसूदन—ये तीन संकर्षणके विलास हैं। गोविन्द चन्द्रगौर हैं और चार शार्ङ्ग-धनुष धारण करते हैं। विष्णु पद्म-किञ्जल्कवर्ण हैं और चार हल धारण करते हैं। मधुसूदन अब्जवर्ण हैं और चार मूसल धारण करते हैं।

त्रिविक्रम, वामन और श्रीधर—ये तीन प्रद्युम्नके विलास हैं। त्रिविक्रम अग्निवर्ण हैं और चार शङ्ख धारण करते हैं। वामन बालसूर्याभ हैं और चार वज्र धारण करते हैं। श्रीधर पुण्डरीकवर्ण हैं और चार पट्टिश धारण करते हैं।

हृषीकेश, पद्मनाभ और दामोदर—ये तीन अनिरुद्धके विलास हैं। हृषीकेश तडिदाभ हैं और चार मुद्गर धारण करते हैं। पद्मनाभ सूर्याभ हैं और शङ्ख, चक्र, गदा, धनुष और खड्ग धारण करते हैं। दामोदर इन्द्रगोपवर्ण हैं और चार पाश धारण करते हैं।

उपर्युक्त विवेचनका सारांश यह है कि एकपाद्विभूति-में लीलानिमित्त धारण किये हुए परमात्माके अनेक रूप 'व्यूह' कहलाते हैं।

लीलाविभूतिका स्वरूप

लीलाविभूति क्या है? नीलगगनमें चतुर्दिक् परिस्तृत तारावलीका नियमपूर्वक निरन्तर उदय, विभव और विलय भगवान्की 'लीलाविभूति' है। इन ताराओंमें अनन्त सूर्य हैं, जिनकी परिक्रमा उनके ग्रहोपग्रह किया करते हैं। यह पृथ्वी भी अपने सूर्यकी परिक्रमामें नित्य निरत है। अपने ऊपर उत्तुङ्ग तरंगोंवाले समुद्रोंको और गगनचुम्बी शिखरों-वाले पर्वतोंको लेकर बड़े वेगसे सूर्यके चारों ओर घूमती हुई भी यह पृथ्वी अचला-सी प्रतीत हो रही है। ऐसी-ऐसी न जाने कितनी पृथिवियाँ इस नीलगगनमें विराजमान हैं। न जाने कितने ब्रह्माण्ड यहाँ बनते-बिगड़ते रहते हैं। मानवद्वारा वे असंख्येय हैं। एक-एक ब्रह्माण्डमें फिर अनेकानेक लोक। कितनी रहस्यमयी है यह भगवल्लीला। परमात्माकी अध्यक्षतामें त्रिगुणमयी प्रकृति विकसित होने लगती है, तब क्रमशः उस अव्यक्तसे महत्तत्त्व उत्पन्न होता है, उससे सात्त्विक, राजस और तामस तीन प्रकारका अहंकार होता है। सात्त्विक अहंकारका दूसरा नाम 'वैकारिक' है, इससे ग्यारह इन्द्रियाँ होती हैं। राजसाहंकारका दूसरा नाम है—तैजस, यह सात्त्विकाहंकारका भी सहयोगी

होता है और तामसाहंकारका भी। तामसाहंकारका दूसरा नाम है—भूतादि; इसीसे तन्मात्राएँ और पञ्चमहाभूत इस क्रमसे उत्पन्न होते हैं—

तामसाहंकारसे शब्दतन्मात्रा, शब्दतन्मात्रासे आकाश, आकाशसे स्पर्शतन्मात्रा, स्पर्शतन्मात्रासे वायु, वायुसे रूपतन्मात्रा, रूपतन्मात्रासे तेज (अग्नि), तेजसे रसतन्मात्रा, रसतन्मात्रासे अप् (जल), अप्से गन्धतन्मात्रा और गन्धतन्मात्रासे पृथ्वी।

पञ्चीकृत महाभूतोंसे गिरि-नदी-निर्झरादि-शोभाशालिनी धराका निर्माण हुआ है और चौरासी लाख प्रकारके शरीर भी पाञ्चभौतिक हैं, जिनमें सुख-दुःख-मोहकी अवस्थाएँ अदलती-बदलती रहा करती हैं।

वसन्त-वायुका विलास, कुसुमवती लताओंसे समालिङ्गित तरु-राजियाँ, खगकुलके कलरवसे सुरम्य उद्यान, दैवमातृक शस्यश्यामल क्षेत्र, सुस्वादुतोया सरिताएँ, उनके सैकत-तटपर स्नान-ध्यान, कलापूर्ण मन्दिरोंमें देवाराधन, शान्तिमय साम्राज्य, विशाल नगरियाँ, वैभवपूर्ण प्रासाद, आमोदमय हर्म्य, चित्ताकर्षक विनोद-सामग्रियाँ, विलासके मनोरम उपादान, आशामय जीवन, स्वस्थ शरीर, वसनाभरणविभूषित वामलोचनाओंका प्रणयपूर्ण परिणय, सुखी और सच्चरित्र संततिका स्नेह—यह सब इस प्रकृतिमें सत्त्वगुणके प्राचुर्यका विलास है।

ग्रीष्मका प्रखर समीरण, वर्षाकी झंझा, हेमन्तका शीत, कण्टकाक्रान्त वृक्ष, श्येनोलूकादिकी घोर ध्वनि, सिंह-व्याघ्रादिके गर्जन, दैवमातृक क्षेत्रोंमें श्रमबहुल शस्योत्पत्ति, क्षारोष्णजलमय कूप, नदी-पुलिनोंपर पानगोष्ठियाँ, क्रान्तिमय साम्राज्य, अव्यवस्थित नगरियाँ, व्यापारपूर्ण हट्ट, विद्रोहमय प्रासाद, कामुकतामय हर्म्य, ईर्ष्यापरिगृहीत सामग्रियाँ, क्रोधमय और लोभमय उपादान, मात्सर्यमय जीवन, अस्वस्थ शरीर, वार-वनिताओंका राग-रङ्ग, चरित्रहीन संततिका विस्तार—ये सब प्रकृतिमें रजोगुणके प्राचुर्यके परिचायक हैं।

शिशिरका तुषार, निष्पुष्प लताएँ, फलविहीन वृक्ष, उजड़े हुए उद्यान, अतिवृष्टि और अनावृष्टिसे व्याकुल खेतियाँ, सूखी हुई नदियाँ, राजहीन प्रदेश, वैभवशून्य प्रासाद, दस्यु-समाक्रान्त भवन, मोहमय उपादान, मदपूर्ण जीवन, रोग-जर्जर शरीर, स्त्रियोंपर अत्याचार, संततिका अवैध निग्रहोंद्वारा अभाव—ये सब प्रकृतिमें तमोगुणके आधिक्यके सूचक हैं।

इस प्रकार तीनों गुणोंके वैषम्यसे इस विभूतिमें नाना प्रकारके परिवर्तन हुआ करते हैं। काल भी इस वैषम्यसे अछूता नहीं रहता। बाल्य यदि सत्त्वमय है तो यौवन रजोमय और वार्धक्य तमोमय है। प्रातःकाल यदि सत्त्वमय है तो मध्याह्न रजोमय और सायंकाल तमोमय है। धर्म-वेला यदि सत्त्वमयी है तो अर्थवेला रजोमयी और कामवेला तमोमयी है। ज्ञानमय जागरितावस्था यदि सत्त्वमयी है तो ज्ञानसंस्कारमय स्वप्नावस्था रजोमयी है और ज्ञानशून्य सुषुप्तावस्था तमोमयी है। सत्ययुग यदि सत्त्वमय है तो त्रेतायुग सत्त्व-रजोमय है, द्वापर रजस्तमोमय और कलियुग तमोमय है। श्रीभगवान्की इस लीला-विभूतिमें केवल एक गुण कभी नहीं रहता। किसी गुणका नामतः निर्देश होता है तो अन्य दोनों गुणोंका भी तारतम्यसे उसमें अस्तित्व अवश्य रहता है। यह नियम भूमण्डलके लिये ही लागू हो, ऐसा नहीं है, अपितु ब्रह्माण्डभरके लिये है। श्रीभगवान्के श्रीमुखका वचन है—

न तदस्ति पृथिव्यां वा दिवि देवेषु वा पुनः।
सत्त्वं प्रकृतिजैर्मुक्तं यदेभिः स्यात् त्रिभिर्गुणैः॥
(गीता १८। ४०)

अर्थात् पृथ्वीमें और स्वर्गके देवताओंमें भी तो कोई ऐसा द्रव्य (अथवा प्रकृतिसंश्लिष्ट जीव) नहीं है, जो प्रकृतिके इन तीनों गुणोंसे अर्थात् सत्त्व, रजस् और तमस्से विरहित हो।

त्रिगुणका ऐसा विलास ही भगवान्की लीलाविभूति है और इसकी सृष्टि, स्थिति और प्रलयके भेदसे भगवान्के तीन व्यूह क्रमशः 'प्रद्युम्न', 'अनिरुद्ध' और 'संकर्षण' कहलाते हैं।

लीलाविभूतिमें केवल प्रकृतिके ही साथ श्रीभगवान्का विलास नहीं होता, जीव भी उसमें सम्मिलित हैं। परमात्माके लीला-संकल्पसे सर्गके प्रारम्भमें चेतन और अचेतन पुनः कार्यशील हो जाते हैं। जडमें परिणाम होने लगता है और चेतनमें ज्ञानका संकोच-विकास। सात्त्विक अन्तःकरणमें ज्ञानका विकास होता है और तामस अन्तःकरणमें उसका संकोच। ज्ञानके इस संकोच-विकासके अगणित स्तर हैं। बृहस्पति ज्ञान-विकासकी एक उत्कृष्ट भूमिकापर हैं और

वनस्पति ज्ञानसंकोचकी एक निकृष्ट भूमिकापर । इन भूमिकाओंकी लहरियोंमें जीव न जाने कबसे निमज्जनोन्मज्जन कर रहा है, पुनर्जन्म, सुख-दुःख, स्वर्ग-नरककी अनन्त तरंगोंमें बह रहा है; और आत्म-साक्षात्कार अथवा भगवत्-साक्षात्कार न होनेतक यह प्रवाह इसी प्रकार चलता रहेगा। श्रीभगवान्‌की लीलाविभूति अनादिकालसे चली आ रही है और सनातन होनेसे अनन्त कालतक चलती रहेगी।

लीलाविभूतिमें अवतार

सत्त्वगुणसम्पन्न जीव साधनामें उन्नति करते-करते जब इस दशापर पहुँच जाते हैं कि श्रीभगवद्दर्शनके बिना उन्हें चैन नहीं पड़ता, तब श्रीभगवान् अपने दिव्यधामसे अवतीर्ण होकर उन्हें कृतार्थ करते हैं। जीवोंपर अनुग्रह प्रदर्शित करना ही श्रीभगवान्‌के अवतारका हेतु है। बालक ध्रुवके समाराधनसे प्रसन्न होकर श्रीभगवान् उसपर अनुग्रह प्रदर्शित करनेके लिये मधुवनमें अवतीर्ण हुए थे। इस अनुग्रह-प्रदर्शनको गीतामें 'साधुपरित्राण' कहा गया है।

संतोंपर अनुग्रह प्रदर्शित करते समय श्रीभगवान् कभी-कभी संतोंके विरोधी और विपक्षियोंका निग्रह भी करते हैं, जैसे कि गजेन्द्रके उद्धारके साथ ही ग्राहका निग्रह भी किया। गीतामें इस निग्रहको 'दुष्कृतकारियोंका विनाश' कहा गया है।

लीलाविभूतिके गुणमय विलासमें जब धर्मका अपकर्ष तथा अधर्मका उत्कर्ष हो जाता है, तब भी श्रीभगवान् यहाँ सामञ्जस्य स्थापित करनेके लिये आया करते हैं। इस प्रकारके अवतारके उदाहरण हैं श्रीराम, जिन्होंने अपने आदर्श सच्चरित्रोंके द्वारा वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रिय और अन्ताराष्ट्रिय मर्यादाओंकी स्थापना करके मानवको उन्नत जीवन व्यतीत करनेकी प्रेरणा दी।

इस प्रकार अवतारके तीन हेतु हैं—पहला अनुग्रह अथवा साधुपरित्राण, दूसरा निग्रह अथवा दुष्कृतकारियोंका विनाश और तीसरा धर्मसंस्थापन। जिस प्रकार कोई सम्राट् अपने साम्राज्यमें सज्जनोंको पुरस्कारद्वारा प्रोत्साहित करके और दुर्जनोंको तिरस्कारद्वारा निरुत्साह करके प्रजामें अभ्युदयशील सामञ्जस्य स्थापित करता है, उसी प्रकार श्रीभगवान् भी यथासमय अवतीर्ण होकर यथायोग्य निग्रहानुग्रह प्रदर्शित करते हुए अपनी सृष्टिमें धर्मकी स्थापना किया करते हैं। समस्त धर्मोंका पर्यवसान श्रीभगवत्साक्षात्कारमें ही है। भगवत्साक्षात्कार तभी हो सकता है, जब भगवान्‌में निष्ठा हो। निष्ठा तभी होती है, जब अनुराग हो। अनुराग उसीमें होता है, जिसकी ओर आकर्षण होगा। अतएव जीवजातको अपनी ओर आकृष्ट करनेके लिये ही श्रीभगवान् अवताररूपमें ऐसी-ऐसी मनोमोहिनी क्रीड़ाएँ करते हैं कि जिन्हें सुनकर श्रोताओंका मन उनमें बलात् आसक्त हो जाता है—

'भजते तादृशीः क्रीडा याः श्रुत्वा तत्परो भवेत् ॥'

(श्रीमद्भागवत १० । ३३ । ३७)

बालक, युवक और वृद्ध, पण्डित और मूर्ख, राजा और प्रजा, स्त्री और पुरुष, विषयी और विरागी—सभीका भगवल्लीला-श्रवणसे उधर आकर्षण होता है, जो परिणाममें प्रपञ्चातीत परमात्मातक पहुँचा देता है। ज्ञान-विज्ञानविनाशन 'काम'को गीतामें आचार्य रामानुजके अनुसार बुद्धिसे भी बलवत्तर बताया है—

'यो बुद्धेः परतस्तु सः ॥' (३ । ४२)

उसी महापाप, महावैरी, दुष्पूर कामको भक्तजन अनायास जीत सकें, इसलिये भगवान् अपने अवतार-चरित्रोंद्वारा 'मदन-दमन' लीलाएँ करते हैं। उदाहरणके लिये कोटि-कंदर्पदर्पहा श्रीकृष्णकी योगमायाद्वारा प्रसाधित रासलीलाका दर्शन करके उस समय अनेक देवादि भी भगवन्निष्ठ होकर कृतकृत्य हो गये और अब भी उस परम उज्ज्वल लीलाका श्रद्धापूर्वक अध्ययन करनेवालोंके मदनरूपी हृदयरोगका स्वयमेव शमन हो जाता है—

'हृद्रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेण धीरः ॥'

(श्रीमद्भागवत १० । ३३ । ४०)

नित्यविभूतिसे लीलाविभूतिमें श्रीराम, श्रीकृष्ण आदि रूपोंमें श्रीभगवान्‌का अवतार आगम-ग्रन्थोंमें 'विभव' कहलाता है। श्रीमत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, राम (जामदग्न्य), राम (दाशरथि), कृष्ण, बुद्ध और कल्कि—ये दस अवतार प्रसिद्ध हैं।

श्रीवराह, सनकादि, नारद, नर-नारायण, कपिल, दत्तात्रेय, यज्ञ, ऋषभ, पृथु, मत्स्य, कूर्म, धन्वन्तरि, मोहिनी, नृसिंह, वामन, परशुराम, वेदव्यास, राम, बलराम, कृष्ण, बुद्ध, कल्कि—ये बाईस 'अवतार' कहलाते हैं। हंस और

हयग्रीवकी संख्या मिलानेसे चौबीस होते हैं। आगम-ग्रन्थोंमें अन्यान्य अवतारोंके भी नाम उपलब्ध होते हैं।

अवतारके कतिपय भेद

विभवके दो भेद हैं—'स्वरूपावतार' और 'आवेशावतार'। जब श्रीभगवान् स्वरूपमें अर्थात् स्वयं ही अवतीर्ण होते हैं, तब उनका वह रूप 'स्वरूपावतार' कहलाता है, जैसे दाशरथि श्रीराम; किंतु जब किसी जीवविशेषमें परमात्माकी शक्तिका आवेश होता है, तब उसे 'आवेशावतार' कहते हैं, जैसे जामदग्न्य राम। स्वरूपावतार ही मुख्य अवतार है, आवेशावतार गौण है।

जिस रूपमें परब्रह्म परमात्मा अपने समग्र ऐश्वर्य-माधुर्यको लिये हुए ही अवतीर्ण होते हैं, उसे 'पूर्णावतार' कहते हैं; किंतु जिस रूपमें आवश्यकतानुसार वे अपने प्रभावका आंशिक प्राकट्य ही दिखलाते हैं, उसको 'अंशावतार' कहते हैं। अंशके तुरीय भागको 'कला' कहते हैं—

'अंशस्तुरीयो भागः स्यात् कला तु षोडशी मता।'

(सात्वततन्त्र ३। ९)

अतएव अंशावतारका अवान्तर भेद होनेसे कलावतारको उसीके अन्तर्भूत समझना चाहिये।

श्रीलक्ष्मीजीका अवतार

जिस प्रकार परतत्त्व भगवान् विष्णु समय-समयपर अवतार लिया करते हैं, उसी प्रकार भगवती श्रीलक्ष्मीजी भी अवतार लिया करती हैं। यों तो श्री और विष्णु एकतत्त्व हैं, तथापि भक्तानुग्रहके लिये वे दो रूपोंमें प्रकाशित होते हैं। श्रीजीका अवतार शास्त्रसिद्ध है। पुराणका वचन है—

एवं यदा जगत्स्वामी देवदेवो जनार्दनः।
अवतारं करोत्येषा तदा श्रीस्तत्सहायिनी॥

(विष्णुपुराण १। ९। १४२)

उदाहरणके लिये श्रीमन्नारायण जब रघुकुलमें रामरूपसे अवतीर्ण हुए थे, तब लक्ष्मीजी जनकपुरीमें सीतारूपसे अवतीर्ण हुई थीं; एवं जब श्रीमन्नारायण यदुकुलमें पधारे थे, तब लक्ष्मीजी विदर्भमें रुक्मिणीरूपसे आयी थीं।

राघवत्वेऽभवत् सीता रुक्मिणी कृष्णजन्मनि।
अन्येषु चावतारेषु विष्णोरेषानपायिनी॥

(विष्णुपुराण १। ९। १४४)

नित्य परिकरका अवतार

कभी-कभी श्रीभगवान्‌के अस्त्र-शस्त्र, वाहन, पर्यङ्क, धाम आदिका भी अवतार होता है। लक्ष्मणजी शेषजीके अवतार हैं। भरतजी सुदर्शनके अवतार हैं और शत्रुघ्नजी पाञ्चजन्यके अवतार हैं, जैसा कि शास्त्रका वचन है—

शेषो बभूवेश्वरतल्पभूतो
सौमित्रिरित्यद्भुतभोगधारी।
बभूवतुश्चक्रदरौ च दिव्यौ
कैकेयिसूनुर्लवणान्तकश्च॥

(अध्यात्मरा०, उत्तर० ९। ५७)

जरासंध-सेनाद्वारा आक्रान्त मथुराकी रक्षाके उद्देश्यसे श्रीकृष्णभगवान् अधर्मध्वंसका विचार कर ही रहे थे कि उनके दिव्य रथ आकाशसे अवतीर्ण हुए। वे सूर्यके समान प्रकाशमान थे, समस्त उपयोगी सामग्रीसे सम्पन्न थे। शस्त्रास्त्र भी वहाँ सुसज्जित थे। श्रीमद्भागवतका वचन है—

एवं ध्यायति गोविन्द आकाशात् सूर्यवर्चसौ।
रथावुपस्थितौ सद्यः ससूतौ सपरिच्छदौ॥
आयुधानि च दिव्यानि पुराणानि यदृच्छया।

(१०। ५०। ११-१२)

एक बार रैवत नामके पाँचवें मन्वन्तरमें श्रीभगवान् महर्षि शुभ्रके यहाँ अवतीर्ण हुए थे। उस समय दिव्यधामका भी अवतार हुआ था—

'वैकुण्ठः कल्पितो येन लोको लोकनमस्कृतः।'

(श्रीमद्भागवत ८। ५। ५)

इस प्रसङ्गमें यह शङ्का करना अशास्त्रीय है कि भगवद्धाम पहले नहीं था, पाँचवें मन्वन्तरमें उसकी सर्वप्रथम रचना की गयी। अतएव श्रीभगवान्‌की अप्रतिहत कल्पनासे नित्य प्रपञ्चातीत धामका प्रपञ्चमें अवतार ही उक्त भागवत-वचनका तात्पर्य है। नित्य श्रीमद्भगवद्धाम तो पाँचवें मनु ही नहीं, पहले मनुके भी स्रष्टा लोकपितामहके आद्यकल्पसे भी पूर्व विराजमान था। ब्रह्माजीने तपश्चरणद्वारा उसीका दर्शन किया था। वही 'परमपद' है। वहीं श्रीभगवान् अपने नित्यभक्तोंसे उपासित होते हुए विराजमान रहते हैं। उस धाममें रजोगुण और तमोगुण नहीं हैं और इन दोनोंसे युक्त सत्त्वगुणतक नहीं है। वहाँ त्रिगुणजननी माया ही नहीं है, तब अन्यान्य मायाप्रसूत कार्योंकी तो बात ही क्या है। ऐसे दिव्यधामके

लिये यह कहना कि 'वह सादि है' नितान्त भ्रम है। प्रपञ्चमें अवतीर्ण होकर वह धाम अनादित्वगुणसे वियुक्त नहीं हो सकता। नित्यधामके लिये श्रीमद्भागवतकी यह घोषणा है—

तस्मै स्वलोकं भगवान् सभाजितः संदर्शयामास परं न यत्परम्॥
न यत्र माया किमुतापरे हरेरनुव्रता यत्र सुरासुरार्चिताः।
(२।९।९-१०)

श्रीभगवान्के आयुध, वाहन, धाम—सभी दिव्य हैं, चेतन हैं, आनन्दमय हैं। नित्यविभूतिमें श्रीभगवान्के आयुध पुरुषविग्रहमें श्रीभगवत्सेवोपासनामें निरत रहते हैं, अवतार-वेलामें भी दुष्टदमनाद्यतिरिक्त अवसरोंपर वे पुरुषविग्रहमें भगवदाराधनामें लीन रहते हैं—

शरा नानाविधाश्चापि धनुरायतमुत्तमम्।
तथायुधाश्च ते सर्वे ययुः पुरुषविग्रहाः॥
(वा० रा०, उत्तर० १०९।७)

इस प्रकार सर्वसमर्थ श्रीभगवान् सर्वसुलभ होनेके लिये कभी अकेले, कभी सपरिकर प्रपञ्चमें अवतीर्ण होते हैं और धर्मसंस्थापन करते हैं, असज्जनोंका निग्रह करते हैं और सज्जनोंपर अनुग्रह प्रदर्शित करते हैं। उस अवतारकी रूप-माधुरी, गुण-माधुरी और लीला-माधुरीका श्रवण, स्मरण, कथा, कीर्त्तन और ध्यान परमङ्गलप्रसविता है।

—कृ० द० भा०

शिव-विष्णुकी एकता

(लेखक—पूज्य स्वामी श्रीईश्वरानन्दजी महाराज)

वैसे तो हमारे वैदिक दर्शन-साहित्यका सिद्धान्त है कि अन्तिम आधार या अधिष्ठान-तत्त्व एक ही है और उसी एक-से अनेक होते हैं, फिर अन्तमें वही एक तत्त्व अवशिष्ट रहता है। इसी विषयका ऋग्वेदका एक मन्त्र है—'**एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः**।(१।१६४।४६) —एक ही वस्तु (ईश्वर) का विद्वान्गण यम-अग्नि-वायुरूपमें वर्णन करते हैं।' वही एक परमेश्वर मायाशबलित होकर रजः-सत्त्व-तमोगुणरूप उपाधिसे विश्व-सृष्टि-स्थिति-प्रलयके लिये ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वररूपमें दीखने लगा, जैसे काँचके विभिन्न रंगोंसे एक ही प्रकाश लाल-पीले-हरे रूपमें भासता है। जब ब्रह्मा-विष्णु-शिव—तीनों एक ही देव हैं, तब शिव और विष्णुकी अभिन्नताका तो कहना ही क्या। वैयाकरण कहते हैं—

उभयोरेका प्रकृतिः प्रत्ययभेदाद्विभिन्नवद्भाति।
कलयति कश्चिन्मूढो हरिहरभेदं विना शास्त्रम्॥
(वैयाकरणसिद्धान्तकारिका)

"हरि—विष्णु, हर—शिव, एक ही '**हृ**' धातुसे बने हुए दो शब्द हैं। '**इ**' प्रत्ययसे हरि, '**अ**' प्रत्ययसे 'हर' शब्द बना। प्रकृति '**हृ**' एक है, प्रत्ययभेद होनेसे भी अर्थका भेद नहीं है।" **सर्वाणि पापानि दुःखानि वा हरतीति हरिः अथवा हरः**—इस व्युत्पत्तिके अनुसार भजनेवाले भक्तोंके सब पाप या दुःखोंको हरण करनेसे हरि हुए, इसीलिये हर भी हुए। विष्णुका अर्थ—"**वेवेष्टि (व्याप्नोति) सर्वं विश्वं इति विष्णुः**—जो पटमें तन्तुकी तरह समस्त विश्वमें व्याप्त है, वही विष्णु है।" 'शिव'का अर्थ है—"**शेते सर्वं जगत् यस्मिन् इति शिवः**', अर्थात् जिसमें समस्त जगत् शयन कर रहा है, सो रहा है, उसको 'शिव' कहते हैं।" तात्पर्य यह हुआ कि समस्त विश्वका आश्रय, अधिष्ठान—जैसे आभूषणका आश्रय सुवर्ण होता है—वही शिव है। जैसे आभूषणका आधार सुवर्ण आभूषणोंमें व्याप्त होता है, उसी प्रकार शिव इस विश्वमें व्याप्त हैं। अन्तमें दोनोंका अर्थ एक हुआ। श्रीधरस्वामी लिखते हैं—

माधवोमाधवावीशौ सर्वसिद्धिविधायिनौ।
वन्दे परस्परात्मानौ परस्परनतिप्रियौ॥
(भागवतभावदीपिका—प्रस्तावना)

'एक दूसरेको प्रणाम करनेवालेके प्रेमी, परस्पर एकात्म-रूप, सब प्रकारकी सिद्धियोंको देनेवाले, लक्ष्मीपति और उमापतिको मैं नमस्कार करता हूँ।'

शिवे च परमेशाने विष्णौ च परमात्मनि।
समबुद्ध्या प्रवर्तन्ते ते वै भागवतोत्तमाः॥

'जो परमेश्वर शिव तथा परमात्मा विष्णुमें समबुद्धिसे व्यवहार करते हैं, वे ही सबसे उत्तम कोटिके वैष्णव हैं।'

'जैमिनीयाश्वमेध' के १९ वें अध्यायमें एक प्रसङ्ग आता है। जिस समय अर्जुन और सुधन्वाका द्वन्द्वयुद्ध चल रहा था, अन्तमें अर्जुन हाथमें एक बाण लेकर भगवान् कृष्णके सामने सुधन्वासे कहते हैं—

अनेन बाणेन न पातयामि
शिरस्त्वदीयं सकिरीटमद्य ।
विभेदनाद्विष्णुगिरीशयोर्यत्
पापं समग्रं मम चास्तु वीर ॥६४॥

'हे वीर ! इस बाणसे किरीटसहित तुम्हारा सिर अभी न गिरा दूँ तो विष्णु और शिवमें भेद-बुद्धि करनेसे जो पाप होता है, वह सब मुझे प्राप्त हो।' इससे यह सिद्ध होता है कि जिस प्रकार शिव-विष्णुमें अभेददृष्टि विहित है, उसी प्रकार भेद-दृष्टिका निषेध भी है। निषिद्ध कर्म होना अकर्तव्य है और पाप है। आजसे पाँच हजार वर्ष पूर्व इस प्रकारकी शपथ ग्रहण की जाती थी।

हमारी संस्कृति-परम्परा भी भेदसे अभेदकी दिशामें ही संकेत करती है—जैसे हरि-हर-क्षेत्र (वर्तमान सोनपुर)। गंगोत्रीपर हर-जटासे उतरकर हरद्वार-प्रयाग-काशी होती हुई और 'हर हर महादेव'की कलरवध्वनि करती हुई एक ओरसे गङ्गाजी आयी हैं तो दूसरी ओरसे नेपालदेशके शालग्रामक्षेत्रसे शालग्रामशिलाको पखारती हुई और हरि-हरिके मधुर गीत गाती हुई कृष्णा-गण्डकी नारायणी रूपमें आयी हैं और यहाँ दोनोंका संगम हुआ है; हरि और हरके एक-रूप हो जानेसे 'हरि-हरक्षेत्र' नाम पड़ा।

शिव और विष्णुमें एकता मान लेनेपर एक शङ्का उठ सकती है कि "विष्णु या शिवकी अनन्य भक्ति कैसे सिद्ध होगी; क्योंकि 'अनन्य'का अर्थ ही 'एक' है। दो हुआ तो 'अनन्य' नहीं रहा।" ठीक है, अनन्यका अर्थ एक है, दो नहीं। इसीलिये शिव और विष्णुकी एकता शास्त्र और युक्तिप्रमाणसे सिद्ध की जा रही है। अनन्य भक्तिका अर्थ अन्य देवताको अपने इष्टसे भिन्न देखते हुए केवल इष्टमें ही निष्ठा रखना मात्र नहीं है; किंतु विश्वमें जितने देवी और देवता हैं, सबमें अपने इष्टदेवसे अभिन्नताकी भावनापूर्वक इष्टमें निष्ठा रखना 'अनन्य भक्ति' है। अतएव विष्णु-भक्त शिवको विष्णुका ही प्रतिरूप मानकर अनन्यभावसे नमस्कार करे। इसी प्रकार शिव-भक्त विष्णुको करे। तुलसीदासजी वृन्दावन जाकर भगवान् कृष्णको रामका ही प्रतिरूप मानकर नमस्कार करते थे। उनका सिद्धान्त है—"सीय राममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥" (मानस १।७।१)। इनकी दृष्टिमें समस्त विश्व ही सीताराममय है, सीतारामसे अतिरिक्त कुछ नहीं। इष्टसे भिन्न कुछ न दीखे—यही सच्ची 'अनन्य भक्ति' है। भगवान्ने गीता ९। २३ में कहा है—'दूसरे देवताकी पूजा करनेवाले भी मेरी ही पूजा करते हैं, किंतु अविधिपूर्वक।' परमेश्वरको व्यापक न मानकर एकदेशीय पूजा करनेको ही 'अविधिपूर्वक' पूजा कहा गया है। वस्तुतः अपने इष्टदेवको निखिल विश्वमें तथा सब देवोंमें व्यापक न मानकर एक विग्रहमें ही सीमित और परिच्छिन्न मान लिया जाय तो इष्टमें ईश्वरत्वकी हानि होगी; क्योंकि ईश्वर व्यापक है। व्यापक होनेसे वह समानरूपसे पूर्ण है, अविनाशी है। जो व्यापक न हो, एक ही विग्रहमें सीमित हो, वह वस्तु घटादि किंवा हमारे शरीरतुल्य होनेसे परिच्छिन्न होती है, इसीलिये विनाशी भी होती है। ऐसी वस्तु ईश्वर नहीं हो सकती। अतएव स्वामी विद्यारण्य कहते हैं—

यथा यथोपासते तं फलमीयुस्तथा तथा ।
फलोत्कर्षापकर्षौ तु पूज्यपूजानुसारतः ॥

(पञ्चदशी)

'जैसी उपासना होती है, फल भी वैसा ही होता है। फलकी श्रेष्ठता और कनिष्ठता तो पूज्य (देवता) तथा उसकी पूजा (प्रकार) के अनुसार होती है।' अतः पूर्णोपासनासे पूर्णताकी और अपूर्णोपासनासे अपूर्णताकी ही प्राप्ति होगी।

हरि-नाम ही आधार है

है हरि नाम कौ आधार।
और इहिं कलिकाल नाहीं रह्यौ बिधि-ब्यौहार॥
नारदादि-सुकादि मुनि मिलि कियौ बहुत बिचार।
सकल स्रुति-दधि मथत पायौ इतोई घृत-सार॥
दसौं दिसि तैं कर्म रोक्यौ, मीन कौं ज्यौं जार।
'सूर' हरि कौ सुजस गावत, जाहि मिटि भव-भार॥

जो शिव, वही विष्णु

(लेखक—श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ आचार्य स्वामी श्रीराधाव्रजेशशरणदेवजी)

व्याकरणकी दृष्टिसे सर्वत्र ही 'विष्णु'का अर्थ 'व्यापक' माना जाता है और 'शिव'का अर्थ कल्याण, मङ्गल या सुख है। उपनिषदोंमें व्यापक ब्रह्मको 'भूमा' कहकर संकेतित किया गया है। वहाँ स्पष्ट कहा गया है—'**यो वै भूमा तत् सुखम् नाल्पे सुखमस्ति।**' 'भूमा अर्थात् विस्तार (व्यापक) में ही सुख है, अल्पमें नहीं।' इस दृष्टिसे स्पष्ट हुआ कि भूमा, सुख, व्यापक या मङ्गल शब्द परम्परया एकके ही अनेकार्थ हैं। इसलिये संस्कृत-साहित्यमें भी सर्वत्र '**मङ्गलं भगवान् विष्णुः**' का प्रयोग हुआ है। इस रहस्यद्वारा श्रीशिव और विष्णुकी एकता भी निर्विवादरूपसे सिद्ध है, जिसका विशेष स्पष्टीकरण श्रीमद्भागवतके चतुर्थ स्कन्धमें है।

मनोनीत प्रजापति, कर्मदक्ष ब्रह्मपुत्र दक्षके यज्ञमें श्रीशिवजी गये थे, किंतु वहाँ विष्णुका अभाव था। इसका परिणाम क्या हुआ? 'विष्णु'का अर्थ है व्यापक। दृष्टिमें व्यापकताका अभाव होनेसे मङ्गलमय शिवजीके उपस्थित होनेपर भी परस्पर शापा-शापीकी स्थिति उत्पन्न हो गयी। यदि दक्षमें दृष्टिकी व्यापकता होती तो वे शिवजीका अनादर नहीं करते; किंतु दक्षकी थोड़ी-सी अदक्षताने परिस्थितिको विषम बना दिया। अहंकारी दक्षने निरहंकार हरके दरवाजे अर्थात् हरद्वार (कनखल) पर ही यज्ञ करना प्रारम्भ कर दिया। दक्षके यज्ञ करनेका तात्पर्य ही था शिवका अनादर करना; किंतु इस बातको वे विस्मृत कर चुके थे कि '**यज्ञो वै विष्णुः**' अर्थात् यज्ञ साक्षात् भगवान् विष्णुके रूप हैं। शिवका अनादर करनेपर शिवाभिन्न विष्णुका अनादर भी स्वतः ही हो जाता है; फिर जहाँ शिव नहीं, वहाँ विष्णु ही कहाँ? इसी बातको सोचकर भगवान् विष्णु भी दक्षके यज्ञमें नहीं गये थे। विष्णुरूप शिवको निमन्त्रण न देना और विष्णुको मन्त्रोंद्वारा आवाहन करना, ये दोनों बातें कितनी विपरीत थीं। फिर इस अहंकार और अनादरका परिणाम भी प्रत्यक्ष ही देखा गया—सती-दाह, यज्ञविध्वंस तथा ब्राह्मणोंके अपमानरूपमें। 'मैं-मैं' करनेवाले दक्षको बकरेका मुख प्राप्त करना पड़ा, भृगुजीकी दाढ़ी सफा, पूषादेवकी बत्तीसी खत्म! यह सब क्यों हुआ? विष्णुरूप शिवके अनादरका परिणाम।

बादकी बात और भी मननीय है। जब शिवजी ब्रह्मादिकोंसे प्रसन्न होकर आते हैं, तभी श्रीविष्णु भी आते हैं। वहाँ भरी सभामें भगवान् विष्णुने दक्षको सम्बोधित करते हुए कहा था—'दक्ष! तुमने बड़ा अपराध किया है, जो मेरे साक्षात् स्वरूपभूत श्रीशिवका अपमान किया। मेरे और शिवमें किंचिन्मात्र भी भेद नहीं है। हमारी और शिवकी बात तो जाने दो, ब्रह्मा भी हमसे पृथक् नहीं हैं।'

त्रयाणामेकभावानां यो न पश्यति वै भिदाम्।
सर्वभूतात्मनां ब्रह्मन् स शान्तिमधिगच्छति॥

(श्रीमद्भागवत ४। ७। ५४)

'हे ब्रह्मन्! प्राणिमात्रके आत्मरूप तथा एकभाववाले हम तीनोंके बीच जो भेद नहीं देखता है, वह शान्तिको प्राप्त करता है।'

इस प्रसङ्गमें भगवान्‌ने केवल अपने, शिव और ब्रह्माके बीच ही नहीं, वरन् प्राणिमात्रको अभेदरूपसे देखनेकी आज्ञा प्रदान की है। यहींपर '**सर्वं खल्विदं ब्रह्म**' '**सर्वं विष्णुमयं जगत्**', 'जित देखौं तित स्याममयी है', इत्यादि वाक्योंका समन्वय होता है। समन्वय-दृष्टिसम्पन्न श्रीमद्भागवत अनुपम ग्रन्थ-रत्न है, जहाँ श्रीशिव और विष्णुकी एकताका स्पष्ट प्रतिपादन है।

विष्णु-विमुख मुर्देके समान है

कौल कामबस कृपिन बिमूढ़ा। अति दरिद्र अजसी अति बूढ़ा॥
सदा रोगबस संतत क्रोधी। बिष्नु बिमुख श्रुति संत बिरोधी॥
तनु पोषक निंदक अघ खानी। जीवत सव सम चौदह प्रानी॥

(रामचरितमानस ६। ३०। १-२)

वाममार्गी, कामी, कंजूस, अत्यन्त मूढ़, अति दरिद्र, बदनाम, बहुत बूढ़ा, नित्यका रोगी, निरन्तर क्रोधयुक्त रहनेवाला, भगवान् विष्णुसे विमुख, वेद और संतोंका विरोधी, अपने ही शरीरका पोषण करनेवाला, परायी निन्दा करनेवाला और पापकी खान (महान् पापी)—ये चौदह प्राणी जीते ही मुर्देके समान हैं।

सगुण-निर्गुण एवं अवतार-तत्त्व

(नित्यलीलालीन परमश्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

भगवान् या ब्रह्मका वस्तुतः क्या स्वरूप है, वे सगुण हैं या निर्गुण—इसको तो भगवान् या ब्रह्म ही जानते हैं। कोई भी मनुष्य यह नहीं कह सकता कि भगवान् ऐसे ही हैं। तथापि भगवान्‌को जो जैसा मानते हैं, जिन्होंने जिस प्रणालीसे या जिस स्वरूपकी सेवा करके उनकी उपलब्धि की है, वे उनको जैसा बतलाते हैं, वह भी ठीक ही है; क्योंकि वह स्वरूप भी भगवान्‌में और भगवान्‌का ही है। वे निर्गुण भी हैं सगुण भी हैं, निराकार भी हैं, साकार भी हैं, निर्गुण-सगुण और निराकार-साकार दोनों साथ हैं, निर्गुण-सगुण और निराकार-साकार दोनोंसे परे भी हैं, वे अनिर्वचनीय हैं—अचिन्त्य हैं। इसीसे उपनिषदोंमें तथा शास्त्रोंमें उनके सभी तरहके वर्णन मिलते हैं। उपनिषदोंके कुछ अवतरण देखिये—

निर्गुण—

'स होवाचैतद्वै तदक्षरं गार्गि ब्राह्मणा अभिवदन्त्यस्थूलमनण्वह्रस्वमदीर्घमलोहितमस्नेहमच्छायमतमोऽवाय्वनाकाशमसङ्गमरसमगन्धमचक्षुष्कमश्रोत्रमवागमनोऽतेजस्कमप्राणममुखममात्रमनन्तरमबाह्यम्।' (बृहदारण्यक० ३। ८। ८)

'याज्ञवल्क्यजीने कहा—हे गार्गि! इस अक्षरको ब्रह्मवादीजन स्थूलसे भिन्न, अणुसे भिन्न, ह्रस्वसे भिन्न, दीर्घसे भिन्न, लाल रंग (किसी रंगविशेष) से भिन्न, चिकनेपनसे भिन्न, छायासे भिन्न, अन्धकारसे भिन्न, वायुसे भिन्न, आकाशसे भिन्न, असङ्ग, रससे भिन्न, गन्धसे भिन्न, नेत्रसे भिन्न, श्रोत्रसे भिन्न, वाणीसे भिन्न, मनसे भिन्न, तेजसे भिन्न, प्राणसे भिन्न, मुखसे भिन्न, मात्रासे भिन्न, अन्तरसे भिन्न और बाहरसे भिन्न कहते हैं।'

'अदृष्टमव्यवहार्यमग्राह्यमलक्षणमचिन्त्यमव्यपदेश्यमेकात्मप्रत्ययसारं प्रपञ्चोपशमं शान्तं शिवमद्वैतम्।' (माण्डूक्य० ७)

'वह अदृष्ट, अव्यवहार्य, अग्राह्य, अलक्षण, अचिन्त्य, अनिर्वचनीय, एकात्मप्रत्ययसार, प्रपञ्चसे रहित, शान्त, शिव और अद्वैत है।'

'अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथारसं नित्यमगन्धवच्च यत्।' (कठ० १। ३। १५)

'जो शब्दरहित है, स्पर्शरहित है, रूपरहित है, अव्यय है, रसरहित है, नित्य है और गन्धरहित है।'

'स एष नेति नेत्यात्माऽगृह्यः' (बृहदारण्यक० ४। २। ४)

"वह यह आत्मा 'यह भी नहीं, यह भी नहीं' इस प्रकार अग्राह्य है।"

सगुण—

'एष सर्वेश्वर एष सर्वज्ञ एषोऽन्तर्याम्येष योनिः सर्वस्य प्रभवाप्ययौ हि भूतानाम्।' (माण्डूक्य० ६)

'वह सबका ईश्वर है, वह सर्वज्ञ है, वह अन्तर्यामी है, वह सबका कारण है, उसीसे सब भूतोंकी उत्पत्ति होती है।'

'सर्वकर्मा सर्वकामः सर्वगन्धः सर्वरसः सर्वमिदमभ्यात्तः।' (छान्दोग्य० ३। १४। ४)

'वह सम्पूर्ण कर्म करनेवाला है, सम्पूर्ण कामनावाला है, सम्पूर्ण गन्धवाला है, सम्पूर्ण रसवाला है, इससे सबमें व्याप्त है।'

'एष हि द्रष्टा स्प्रष्टा श्रोता घ्राता रसयिता मन्ता बोद्धा कर्ता विज्ञानात्मा पुरुषः।' (प्रश्नोपनिषद् ४। ९)

'वही देखनेवाला, स्पर्श करनेवाला, सुननेवाला, सूँघनेवाला, चखनेवाला, मनन करनेवाला, जाननेवाला, करनेवाला विज्ञानात्मा पुरुष है।'

निर्गुण-सगुण—

एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च॥ (श्वेताश्वतर० ६। ११)

'एक देव सब भूतोंमें छिपा है, सबमें व्यापक है, सभी भूतोंका अन्तरात्मा है, कर्मोंका अध्यक्ष—फलदाता है, सभी भूतोंका वासस्थान है, साक्षी है, चेतन है, केवल है और निर्गुण है।'

निराकार—

'यत्तदद्रेश्यमग्राह्यमगोत्रमवर्णमचक्षुःश्रोत्रं तदपाणिपादम्।' (मुण्डक० १। १। ६)

'वह जो अदृश्य है, अग्राह्य है, अगोत्र है, अवर्ण है, चक्षु और श्रोत्रसे रहित है और हाथ तथा पैरसे भी रहित है।'

साकार—

सत्पुण्डरीकनयनं मेघाभं वैद्युताम्बरम् ।
द्विभुजं ज्ञानमुद्राढ्यं वनमालिनमीश्वरम् ॥
गोपगोपीगवावीतं सुरद्रुमतलाश्रितम् ।
दिव्यालंकरणोपेतं रत्नपङ्कजमध्यगम् ॥
कालिन्दीजलकल्लोलसङ्गिमारुतसेवितम् ।
चिन्तयन् चेतसा कृष्णं मुक्तो भवति संसृतेः ॥

× × × ×

एको वशी सर्वगः कृष्ण ईड्य
एकोऽपि सन् बहुधा यो विभाति ।
तं पीठं येऽनुभजन्ति धीरा-
स्तेषां सिद्धिः शाश्वती नेतरेषाम् ॥

(गोपालपूर्वतापिनी उपनिषद् १।१०–१२;२।८)

'सुन्दर कमल-से नेत्रवाले, मेघद्युति, विद्युत्-सदृश-पीत वस्त्रधारी, द्विभुज, ज्ञानमुद्रायुक्त, वनमाली, ईश्वर, गोप-गोपी और गौओंसे घिरे हुए, कल्पवृक्षके नीचे स्थित, दिव्य अलंकारोंसे विभूषित, रत्नकमलके बीचमें विराजित, कालिन्दीके जलकी लहरोंसे सम्पृक्त, (शीतल) पवनसे सुसेवित श्रीकृष्णका जो चिन्तन करता है, वह संसारसे मुक्त हो जाता है ।'

एकमात्र सबको वशमें रखनेवाले सर्वव्यापी भगवान् श्रीकृष्ण सर्वथा स्तवन करनेयोग्य हैं । वे एक होते हुए भी अनेक रूपोंमें प्रकाशित हो रहे हैं । जो धीर भक्तजन पूर्वोक्त पीठपर विराजमान उन भगवान्‌का प्रतिदिन पूजन करते हैं, उन्हींको शाश्वत सुख प्राप्त होता है, दूसरोंको नहीं ।

और भी अनेकों श्रुतियाँ भगवान्‌का विविध प्रकारसे वर्णन करती हैं । इससे यह सिद्ध होता है कि भगवान् सगुण भी हैं और निर्गुण भी । उनके लिये कुछ भी असम्भव नहीं है । दो प्रकारके परस्परविरोधी गुण, भाव और स्वरूप जिनमें एक ही साथ एक ही समय रह सकते हों, वे ही तो 'भगवान्' हैं । श्रुति उन्हें निर्गुण भी बतलाती है और सगुण भी । अतएव हमें दोनों ही बातें माननी चाहिये । भगवान्‌के सम्बन्धमें यह आपत्ति कभी नहीं ठहरती कि वे सगुण-निर्गुण दोनों एक साथ कैसे हो सकते हैं ।

कुछ लोग एक और आपत्ति करते हैं । वे कहते हैं कि ''ब्रह्म तो निष्कल (कला या अंशरहित) हैं । और हम उन्हें यदि सगुण तथा निर्गुण दोनों मानते हैं तो उनका कुछ अंश सगुण होगा और कुछ निर्गुण । और यदि ऐसी बात है, तब तो वे निष्कल—निरंश नहीं ठहरते । और यदि निरंश नहीं हैं, तब वे ब्रह्म कैसे ? श्रुतिमें स्पष्ट ही ब्रह्मको 'निरंश' बतलाया गया है—

'निष्कलं निष्क्रियꣳ शान्तं निरवद्यं निरञ्जनम् ।'

(श्वेताश्वतर० ६ । १९)

'ब्रह्म कला (अंश) रहित, क्रियारहित, शान्त, निर्दोष और मायारहित है ।' इसका उत्तर यह है कि ब्रह्मका कुछ अंश निर्गुण और कुछ सगुण है, ऐसी बात नहीं है । ब्रह्ममें अंशकी कल्पना नहीं हो सकती । वह स्वरूपतः ही युगपत् निर्गुण भी है और सगुण भी । परस्परविरोधी गुणोंका उनमें नित्य निवास है । परंतु यदि यह मानें कि 'निर्गुण ब्रह्मके जितने अंशमें मायाके कारण सगुणता आती है, उतना अंश सगुण है, शेष निर्गुण है', तो यह ठीक नहीं; क्योंकि यों माननेपर तो ब्रह्म स्वरूपतः निर्गुण ही सिद्ध होता है । सगुण तो मायाके कारण भासता है, वस्तुतः है नहीं । केवल निर्गुणवादी महानुभावोंका यही तो कथन है कि 'मायाकी उपाधिसे ब्रह्ममें सगुणताकी प्रतीति होती है । स्वरूपतः ब्रह्म निर्गुण ही है और वही उसका यथार्थ स्वरूप है । ऐसा निर्गुण ब्रह्म कभी सगुण हो नहीं सकता ।' पर श्रुतियोंके उपर्युक्त वचनोंसे तथा महात्माओंके अनुभवसे यह सिद्ध है कि ब्रह्म या भगवान् सगुण-निर्गुण दोनों हैं । ऐसी अवस्थामें ब्रह्मके स्वरूपतः निरंश होनेपर भी उनमें अंशकी कल्पना करनी पड़ती है । अंश-कल्पनामें आपत्ति यही है कि उसमें न्यूनाधिक होना सम्भव है । परंतु ब्रह्ममें अंश-कल्पना इस प्रकार नहीं होती । जैसे ब्रह्म अनन्त और असीम है, वैसे ही उसका अंश भी अनन्त और असीम है । श्रुतिने इसी सिद्धान्तका समर्थन करते हुए स्पष्ट कहा है—

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

(बृहदारण्यक० ५ । १ । १)

'वह पूर्ण है, यह पूर्ण है, पूर्णसे पूर्ण निकलता है और पूर्णका पूर्ण लेकर पूर्ण ही बच रहता है ।' गणितके अनुसार भी यह सिद्ध है कि अनन्तमेंसे अनन्त निकालनेपर अनन्त ही बचता है ।

हमारे इस दृश्य-जगत्‌में ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जिसके बारेमें यह कहा जा सके कि उसमें एक ही साथ दो परस्पर-

विरोधी गुण रहते हैं और जो अनेक रूपोंमें विभक्त होनेपर भी एक और परिपूर्ण रहती है।

जो लोग कहते हैं कि मायाकी उपाधिसे ब्रह्ममें सगुण-भावकी प्रतीति होती है—उनके इस कथनपर विचार करनेसे भी पता लगता है कि वस्तुतः इसमें भी सगुण स्वरूप ब्रह्मका ही सिद्ध होता है। माया ब्रह्मकी शक्ति है। शक्ति और शक्तिमान् अग्नि और उसकी दाहिका शक्तिके समान अभिन्न हैं। इसलिये, ब्रह्म सगुण है या ब्रह्म अपनी शक्तिकी सहायतासे सगुणरूपमें रहता है, इसमें वस्तुतः कोई अन्तर नहीं है; क्योंकि किसी भी कर्मकी सम्पन्नता शक्तिसे ही होती है। पर वह कार्य है तो शक्तिमान्‌का ही। अतएव ब्रह्म मायाके सहयोगसे सगुण होता है, इससे यही सिद्ध होता है कि सगुण भी उसका स्वरूप ही है।

शास्त्रोंमें एक ही साथ भगवान्‌के सगुण-निर्गुण होनेकी व्याख्या और तरहसे भी की गयी है, जो वस्तुतः बहुत समीचीन और युक्तियुक्त प्रतीत होती है। भगवान् प्रकृतिके गुणोंसे सर्वथा अतीत हैं, इसलिये वे निर्गुण हैं और उनमें उनके स्वरूपभूत अचिन्त्यानन्त दिव्यगुण नित्य निवास करते हैं, इसलिये वे सगुण भी हैं। यों वे 'नित्य-निर्गुण' रहते हुए ही 'नित्य-सगुण' हैं और 'नित्य-सगुण' होते हुए ही 'नित्य-निर्गुण' हैं। भगवान् श्रीकृष्णने स्वयं भगवान् श्रीशंकरजीसे कहा है—

> यदद्य मे त्वया दृष्टमिदं रूपमलौकिकम्।
> घनीभूतामलप्रेम सच्चिदानन्दविग्रहम्॥
> नीरूपं निर्गुणं व्यापि क्रियाहीनं परात्परम्।
> वदन्त्युपनिषत्संघा इदमेव ममानघ॥
> प्रकृत्युत्थगुणाभावादनन्तत्वात्तथेश्वरम्।
> असिद्धत्वान्मद्गुणानां निर्गुणं मां वदन्ति हि॥
> अदृश्यत्वान्ममैतस्य रूपस्य चर्मचक्षुषा।
> अरूपं मां वदन्त्येते वेदाः सर्वे महेश्वर॥
> व्यापकत्वाच्चिदंशेन ब्रह्मेति च विदुर्बुधाः।
> अकर्तृत्वात्प्रपञ्चस्य निष्क्रियं मां वदन्ति हि॥
> मायागुणैर्यतो मेंऽशाः कुर्वन्ति सर्जनादिकम्।
> न करोमि स्वयं किंचित् सृष्ट्यादिकमहं शिव॥
>
> (पद्मपु०, पा० ८२।६६—७१)

"हे शंकरजी! मेरे जिस अलौकिक (हानोपादानरहित, देह-देहि-भेदहीन स्वरूपभूत दिव्य भगवद्देह) रूपको आज आपने देखा है, वह विशुद्ध प्रेमकी घनमूर्ति है और सच्चिदानन्दस्वरूप है। उपनिषत्समुदाय मेरे इसी रूपको 'निराकार', 'निर्गुण', 'सर्वव्यापी', 'निष्क्रिय' और 'परात्पर ब्रह्म' कहते हैं। मुझमें प्रकृतिजन्य गुणोंका (सत्त्व-रज-तमका) अभाव होनेसे और मेरे अंदर गुणोंकी सत्ताको असिद्ध मानकर वे मुझको 'निर्गुण' कहते हैं और 'अनन्त' होनेसे मुझको 'ईश्वर' कहते हैं। मेरा यह रूप चर्मचक्षुओंसे देखा नहीं जाता, इसलिये हे महेश्वर! ये समस्त वेद मुझको रूप-रहित—'निराकार' कहते हैं। अपने चैतन्यांशसे सर्वव्यापक होनेके कारण पण्डितगण मुझे 'ब्रह्म' कहते हैं और इस विश्वप्रपञ्चका कर्ता न होनेसे वे मुझको 'निष्क्रिय' कहते हैं; क्योंकि हे शिवजी! मैं स्वयं सृष्टि आदि कुछ भी कार्य नहीं करता। ब्रह्मा, विष्णु और रुद्ररूप मेरे अंश ही मायाके द्वारा सृष्टि आदि कार्य करते हैं।"

इससे स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि भगवान्‌का स्वरूप 'नित्य निर्गुण' और 'नित्य सगुण' किस प्रकार है। इसी बातको बतलानेके लिये तत्त्व-निर्णय करते हुए भागवतकारने बतलाया कि 'तत्त्व'का ही एक नाम 'ब्रह्म' है। तत्त्वविद् लोग इस तत्त्वको 'अद्वयज्ञान' कहते हैं और तीन श्रेणीके साधक इस 'अद्वयज्ञान' को ही ब्रह्म, परमात्मा और भगवान्—इन तीन भावोंके द्वारा उपलब्ध करते हैं—

> वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम्।
> ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते॥
>
> (श्रीमद्भा० १।२।११)

तत्त्व एक ही है, उसकी अनुभूति तीन प्रकारसे होती है। वैष्णव महानुभाव इसकी व्याख्या करते हुए कहते हैं कि औपनिषद सम्प्रदाय उसे 'ब्रह्म' कहते हैं, हिरण्यगर्भ-सम्प्रदायके योगीगण 'परमात्मा' और वैष्णव उसे 'भगवान्' कहते हैं। जगत्तत्त्व ब्रह्मज्ञान है, आत्मतत्त्व परमात्मज्ञान या योग है एवं ईश्वरतत्त्व भगवत्-स्वरूप या भक्ति है। लीला-भेदसे ही भगवान् या ब्रह्मके ये तीन स्वरूप हैं। भगवान् सर्वथा-सर्वदा एक ही तत्त्व हैं और वे सगुण-निर्गुण, साकार-निराकार—सब कुछ हैं तथा सब कुछसे परे हैं। यह भी केवल समझनेके लिये संकेतमात्र है। वस्तुतः भगवान्‌का स्वरूप भगवान् ही जानते हैं, और किसी भी तर्क या पुरुषार्थसे उसे जाना नहीं जा सकता। उनके कृपापूर्वक

जनानेपर ही किसी भाग्यवान् साधकके द्वारा उनका स्वरूप किसी अंशमें जाना जा सकता है—

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूँ स्वाम्॥
(कठ० १ । २ । २३)

'यह आत्मा न प्रवचनसे प्राप्त होता है, न बुद्धिसे और न बहुत सुननेसे ही। यह स्वयं जिसपर कृपा करता है, उसीके सामने अपने आनन्दात्मक स्वरूपका प्रकाश करता है।'

'सो जानइ जेहि देहु जनाई।
(मानस २ । १२६ । १½)

अब अवतार-सिद्धान्तपर कुछ विचार कर लिया जाय—प्रश्न होता है—'अवतार'का क्या अर्थ है? मैंने सुना है कि जो महात्मा पुरुष दैवीसम्पत्तिको प्राप्तकर उच्च स्थितिपर पहुँच जाते हैं, वे ही आगे चलकर भगवान्‌के अवतार माने जाते हैं, क्या यह ठीक है?

उत्तर—नहीं, उच्च स्थितिपर पहुँचना तो 'आरोहण' कहाता है, वह तो ऊपर चढ़ना है। 'अवतार'का अर्थ तो है उच्च स्थानसे नीचेकी ओर उतरना—अवतरण। जो लोग चढ़नेको उतरना कहते हैं, वे तो अवतारका अर्थ ही नहीं समझते।

प्र०—अच्छा, इस उच्च और नीचका क्या अर्थ है? जब यह कहा जाता है कि सभी लोक उस एकमात्र जगत्प्रसविनी प्रकृतिमाताकी गोदके बच्चे हैं, तब उनमें ऊर्ध्व और अधः यानी उच्च और नीचलोकका मानना क्या अर्थ रखता है?

उ०—अवश्य ही सभी लोक प्रकृतिमाताकी गोदके बच्चे हैं, परंतु उसमें जबतक विषमता नहीं होती, जबतक परमात्माके संकल्पसे चेतनका संयोग प्राप्तकर वह गर्भधारिणी नहीं होती, तबतक एक भी बच्चा नहीं हो सकता। प्रकृतिके परम साम्यभावमें ऊँच-नीचका कोई भी विभाग नहीं है; परंतु जैसे माताके बहुत-से बच्चोंमें छोटे-बड़े, बुद्धिमान्-मूर्ख, धनी-निर्धन होते हैं, इसी प्रकार प्रकृतिकी गोदमें खेलनेवाले इन लोकोंमें भी ऊँच-नीचका विभाग स्वाभाविक है। अवश्य ही यह जगत् परमार्थदृष्टिसे वैसा नहीं है, जैसा हम इसे देखते हैं—'न रूपमस्येह तथोपलभ्यते।' पर सृष्टि होती ही है विषमतामें। विषमतामें उच्च-नीच है ही। अतएव कारणजगत्‌के अन्तर्गत जो सत्त्वप्रधान लोक हैं, साधारणतया उन्हीं लोकोंसे नीचेकी ओर अवतरण होता है।

प्र०—क्या इस मर्त्यलोकमें ही अवतार होता है, और किसीमें नहीं होता?

उ०—होता क्यों नहीं? स्वर्गादि लोकोंमें भी अवतार होता है, परंतु इतनी बात याद रखनी चाहिये कि वह होगा अपने लोककी अपेक्षा निम्नस्तरके लोकमें ही। तभी उसका 'अवतार' नाम सार्थक है।

प्र०—अवतार भगवान्‌का होता है या अन्य किसी देवताका भी होता है?

उ०—कारणजगत्‌के सत्त्वमय लोकोंमें निवास करनेवाली किसी भी शक्तिका अवतार हो सकता है। महापुरुषगण भी, जो कारणजगत्‌में पहुँचे हुए हैं, भगवदिच्छासे समय-समयपर अवतरण करते हैं।

प्र०—यह तो सब मायिक लोकोंसे होनेवाले अवतार हुए; क्योंकि कारणजगत् भी तो मायामें ही है। क्या कोई नित्य मायातीत भगवद्धाम भी है और क्या वहाँसे भी अवतार होते हैं?

उ०—भगवान्‌के दिव्यधाम भी हैं, जिनमें मायिक सूर्य-चन्द्रमाका प्रकाश नहीं है। वहाँ सब कुछ भगवत्स्वरूप है, भगवत्प्रकाशसे ही वे प्रकाशित हैं, वहाँसे भी भगवान् और भगवत्स्वरूप कारक पुरुषोंके अवतार होते हैं।

प्र०—भगवान् तो नित्य शुद्ध-बुद्ध-मुक्तस्वभाव हैं, वे विज्ञानानन्दघन नित्य निर्विकार, निराकार हैं, उनमें धाम और देहकी कल्पना क्योंकर हो सकती है?

उ०—ऐसी बात नहीं है। नित्य शुद्ध-बुद्ध-मुक्तस्वभाव, विज्ञानानन्दघन, नित्य निर्विकार, निराकार ब्रह्म भी भगवान्‌का स्वरूप ही है। उसमें धाम या देहकी कोई कल्पना नहीं हो सकती। उस आलोचनातीत अव्यक्त निरञ्जन निर्विकारका अवतार नहीं होता। अवतार होता है उस आनन्दमय विज्ञानानन्दघन निर्विकार समग्र भगवान्‌का, जिसका एक स्वरूप निराकार ब्रह्म है। इसीसे गीतामें स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने अपनेको ब्रह्मकी प्रतिष्ठा बतलाया है—**'ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहम्'** (१४ । २७)। ये सर्वमय और सर्वातीत

समग्ररूप भगवान् सगुण-साकार भी हैं और सगुण-निराकार भी हैं तथा दोनोंसे अतीत भी।

प्र०—जो अवतार होता है, उसे तो जन्म लेना पड़ता है, उसका देहपात भी होता है; उसे सुख-दुःख भी होते हैं, कर्म भी करने ही पड़ते हैं तथा उनका फल भी भोगना ही पड़ता है। भगवान्‌में यदि ये सारी बातें होती हैं तो हम अविद्याग्रस्त जीवोंमें और उन सच्चिदानन्दघन भगवान्‌में अन्तर ही क्या रह गया?

उ०—यदि ऐसी ही बात होती तो जीवोंमें और भगवान्‌में कोई अन्तर नहीं रहता। आत्मदृष्टि या भगवद्दृष्टिसे कोई अन्तर है भी नहीं; परंतु वह विषय दूसरा है, इसलिये यहाँ उसकी आलोचना नहीं की जाती। बात यह है कि हमारे जन्ममें हमारे पूर्वकृत कर्म कारण हैं, अदृष्टकी प्रेरणासे जगन्नियन्ताके नियमानुसार हमें बाध्य होकर निश्चित योनिमें जन्म धारण करना पड़ता है। हम अदृष्टके अनुसार कर्मफलरूप सुख-दुःख भोगते हैं, आसक्ति और अहंकारसे युक्त हुए नवीन कर्म करते हैं, पाञ्चभौतिक देह छोड़कर—मरकर सूक्ष्म शरीरके साथ अन्य गतिमें चले जाते हैं; परंतु भगवान्‌के अवतारमें ऐसी बात एक भी नहीं है। उनके अदृष्ट नहीं होता, वे किसी अदृष्टकी प्रेरणासे बाध्य होकर जन्म नहीं लेते। कर्तृत्वाभिमान न होनेसे वे कोई नया कर्म नहीं करते। हमलोगोंकी तरह उनके जन्म और मृत्यु भी नहीं होते। जीवोंके कल्याणार्थ वे संसारमें उसी भाँति अवतीर्ण होते हैं, जैसे कोई चक्रवर्ती सम्राट् अपने सम्राट्-पदपर प्रतिष्ठित रहता हुआ ही छोटे बच्चोंके साथ खेलने और खेल-ही-खेलमें उनके दुःखोंको मिटाकर उन्हें सुख पहुँचाने तथा सन्मार्ग बतलानेके लिये उन बच्चोंके साथ जमीनपर आकर बैठ जाता है और उन्हींकी भाषामें उनसे बातचीत, हास्य-विनोद, खेल-कूद करता है। बच्चोंकी भाँति सब कुछ करते हुए भी वह जैसे अपने महान् सम्राट्-पदपर कायम रहता है, उसी प्रकार भगवान् भी अपनी महिमामें पूर्णतया प्रतिष्ठित रहते हुए ही हमलोगोंमें अवतीर्ण होते हैं। स्वयं उनका कथन है—

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया॥
(गीता ४। ६)

"अज, अविनाशी और समस्त प्राणियोंका ईश्वर रहता हुआ ही मैं अपनी प्रकृतिको अधीन करके, 'अपनी माया' (योगमाया—ह्लादिनीशक्ति) के साथ प्रकट होता हूँ।" इससे यह सिद्ध होता है कि भगवान् जन्म-मृत्युरहित हैं, कर्मरहित हैं और वे अपनी महिमामें सुप्रतिष्ठित रहते हुए ही प्रकट होते हैं। इसीसे उन्होंने अपने जन्म-कर्मको 'दिव्य' कहा है—'**जन्म कर्म च मे दिव्यम्**'। वास्तवमें भगवान्‌में जन्म-कर्म हैं ही नहीं, यह तो उनकी लीला है। और बात भी ठीक ही है; जब मुक्त पुरुष भी जन्म-कर्म-रहित होते हैं, तब भगवान्‌के जन्म-कर्म-रहित होनेमें क्या आश्चर्य है? परंतु प्राकृत लोगोंको उनके जन्म-कर्म प्रतीत होते हैं, इसलिये उन्हें 'दिव्य' कहते हैं। उनका प्राकट्य और तिरोधान होता है तथा कर्मके रूपमें उनकी अनिर्वचनीय दिव्य लीलाएँ होती हैं। भगवान्‌के इस दिव्य जन्म-कर्मको जो तत्त्वतः जान लेता है, उसके लिये भगवान् स्वयं कहते हैं—

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन॥
(गीता ४। ९)

'हे अर्जुन! मेरा जन्म-कर्म दिव्य है—इस बातको जो पुरुष तत्त्वतः जान लेता है, वह शरीर छोड़नेके बाद फिर जन्म-ग्रहण नहीं करता, वह मुझको प्राप्त हो जाता है।'

भगवान्‌में न आसक्ति है न फलकामना, न अहंकार है न इनके आवासस्थान प्राकृत मन-बुद्धि ही है। वे सर्वात्मरूपमें सच्चिदानन्दमय भगवान् हैं।

उनका जन्म भी साधारण जीवोंकी भाँति नहीं होता। भगवान् श्रीकृष्ण कंसके कारागारमें परम भक्त देवकी और वसुदेवके सामने चतुर्भुज विष्णुके रूपमें सहसा प्रकट हुए। उनके कमलके समान सुन्दर नेत्र थे। वे अपने चार हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये हुए थे। उनके वक्षःस्थलमें श्रीवत्सका चिह्न तथा कण्ठमें शोभायमान कौस्तुभमणि थी। वे पीताम्बर पहने हुए थे, नवनील नीरदके समान उनका मनोहर श्याम वर्ण था। उनके मस्तकपर वैदूर्यमणियोंसे जड़ा हुआ किरीट और कानोंमें मकराकृत कुण्डल शोभा पा रहे थे। अङ्गोंपर सुन्दर करधनी, बाजूबंद और कङ्कणादि-की शोभा अपूर्व थी।* ऐसे अद्भुत विष्णुरूप बालकको

* तमद्भुतं बालकमम्बुजेक्षणं चतुर्भुजं शङ्खगदार्युदायुधम्।
श्रीवत्सलक्ष्मं गलशोभिकौस्तुभं पीताम्बरं सान्द्रपयोदसौभगम्॥

देखकर वसुदेव-देवकी चकित हो गये और वसुदेवजीने स्तुति करना शुरू कर दिया। उन्होंने पहले ही कहा—

विदितोऽसि भवान् साक्षात् पुरुषः प्रकृतेः परः।
केवलानुभवानन्दस्वरूपः सर्वबुद्धिदृक्॥

(श्रीमद्भागवत १०।३।१३)

'हे परमात्मन्! मैंने आपको जान लिया, आप प्रकृतिसे परे साक्षात् परम पुरुष हैं, केवल अनुभवानन्दस्वरूप हैं और सम्पूर्ण प्राणियोंकी बुद्धिके साक्षी हैं।'

इसके बाद देवकीके स्तुति करनेपर वे लोकनयनाभिराम द्विभुज बालरूपमें बदल गये। इसी प्रकार श्रीरामावतारमें भी श्रीकौसल्याजीके यहाँ भी उन सनातन परमात्मा जगन्नाथ-का आविर्भाव हुआ।

'आविरासीज्जगन्नाथः परमात्मा सनातनः।'

(अध्यात्मरा० १।३।१५)

उन्होंने देखा 'भगवान् नील कमलके समान श्यामवर्ण हैं, पीताम्बर पहने हुए हैं। चार भुजाओंमें शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म धारण किये हैं, नेत्रोंके भीतरका भाग सुन्दर अरुण कमलके समान शोभायमान है, कानोंमें कान्तिमान् कुण्डल शोभित हैं, हजारों सूर्योंके समान प्रकाश है, मस्तकपर प्रकाशमान मुकुट और घुँघराले बाल हैं, गलेमें वैजयन्ती माला है। मुखकमलपर हृदयस्थ अनुग्रहरूप चन्द्रमाकी सूचक मुसकानरूपी चाँदनी छिटक रही है, करुणा-रसपूर्ण नेत्र कमल-दलके समान विशाल हैं एवं श्रीवत्स, हार, केयूर और नूपुर आदि आभूषणोंसे वे विभूषित हैं।'*

फिर कौसल्याजीके स्तुति करनेपर आप बालकरूप बन गये। इसी प्रकार श्रीकृष्ण और श्रीरामके अन्तर्धानकी कथाएँ भी हैं। भगवान् श्रीकृष्णके सम्बन्धमें आता है—

लोकाभिरामां स्वतनुं धारणाध्यानमङ्गलम्।
योगधारणयाऽऽग्नेय्यादग्ध्वा धामाविशत् स्वकम्॥

(श्रीमद्भागवत ११।३१।६)

'भगवान् श्रीकृष्ण योगधारणाजनित अग्निके द्वारा धारणा-ध्यानमें मङ्गलकारक लोकाभिराम मनोहर स्वतनु (दिव्य भगवद्देह) को दग्ध किये बिना ही उसी भगवद्देहसे अपने परमधामको पधार गये।' भगवान् श्रीरामके सम्बन्धमें भी ऐसी कथा आती है कि 'वे विष्णुरूप होकर स्वधामको पधार गये।'

हमलोगोंकी भाँति उनका देहपात नहीं हुआ, न हो सकता है। जब एक योगी भी चाहे जहाँ, चाहे जब, चाहे जिस रूपमें प्रकट और अन्तर्धान हो सकता है, तब भगवान्के स्वरूपभूत अप्राकृत भगवद्देहके प्रकट और अन्तर्धान होनेमें क्या आश्चर्य है? परंतु वास्तवमें उनका यह प्राकट्य और अन्तर्धान देहधारण और देहत्याग नहीं है। लीलाभूमिमें प्रकट होना 'जन्म' और अन्तर्हित होना ही 'देहत्याग' कहलाता है। भगवान्को सुख-दुःख भी नहीं होते और न उन्हें हमलोगोंकी भाँति कर्म करना और उसका फल ही भोगना पड़ता है। स्वमहिमामें स्थित भगवान् लोककल्याणार्थ लीला करते हैं; जैसे बालकोंके साथ उनके कल्याणार्थ खेलनेवाला वृद्ध पितामह-सम्राट् उनके खेलमें हारता-जीतता और बच्चोंकी दृष्टिमें अपने ही सदृश शोक-विषादको प्राप्त होता हुआ-सा दीखता है, उसी प्रकार हम अज्ञोंकी दृष्टिमें भगवान्में सुख-दुःख भासते हैं। हम अज्ञानियोंकी दृष्टिमें ही वे कर्म करते और कर्मोंका फल भोगते हैं तथा अज्ञानियोंकी दृष्टिमें ही वे जन्म और मृत्युको प्राप्त प्रतीत होते हैं। वस्तुतः वे सदा ही अज, अविनाशी, निष्क्रिय, स्वमहिमामें स्थित और आनन्दमय हैं तथा लीलावश अपनी इच्छासे ही अवतीर्ण होते हैं। कोई भी बाहरी कारण उन्हें अवतीर्ण होनेके लिये बाध्य नहीं कर सकता।

प्र०—फिर भगवान्के अवतारमें प्रयोजन क्या है? वे किस उद्देश्यसे अवतार लेते हैं?

उ०—भगवान्ने स्वयं ही इसका उत्तर दिया है—

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥

(गीता ४।८)

महार्हवैदूर्यकिरीटकुण्डलत्विषा परिष्वक्तसहस्रकुन्तलम्।
उद्दामकाञ्च्यङ्गदकङ्कणादिभिर्विरोचमानं वसुदेव ऐक्षत॥

(श्रीमद्भागवत १०।३।९-१०)

* नीलोत्पलदलश्यामः पीतवासाश्चतुर्भुजः।
जलजारुणनेत्रान्तः स्फुरत्कुण्डलमण्डितः॥
सहस्रार्कप्रतीकाशः किरीटी कुञ्चितालकः।
शङ्खचक्रगदापद्मवनमालाविराजितः॥
अनुग्रहाख्यहृत्स्थेन्दुसूचकस्मितचन्द्रिकः।
करुणारससम्पूर्णविशालोत्पललोचनः।
श्रीवत्सहारकेयूरनूपुरादिविभूषणः॥

(अ० रा० १।३।१६—१८)

'साधुओंके परित्राण, दुष्कृतकारियोंके विनाश और धर्मकी स्थापनाके लिये मैं युग-युगमें प्रकट होता हूँ ।'

प्र०—साधुओंका परित्राण, पापियोंका विनाश और धर्मकी स्थापना तो भगवान् अपने साधारण-से संकल्पसे ही कर सकते हैं; अधिक करें तो अपनी संनिधिमें रहनेवाले किसी मुक्त कारक पुरुषको भी भेज सकते हैं। भला, जिन भगवान्‌के भ्रूसंकेतमात्रसे अखिल ब्रह्माण्डोंका सृजन और प्रलय हो सकता है, वे स्वयं इस मामूली कार्यके लिये अवतीर्ण क्यों होंगे ?

उ०—भगवान्‌की कौन-सी लीला क्यों होती है, इस बातको हमलोग नहीं समझ सकते। भगवान्‌को जानना-पहचानना और उन ही लीलाका रहस्य समझना केवल उनकी कृपासे ही सम्भव है, कोई भी निश्चितरूपसे नहीं कह सकता कि यह बात यों ही है; तथापि इस श्लोकका रहस्यार्थ महात्मालोग इस प्रकार करते हैं कि "यहाँ 'साधु' शब्दसे 'गोपाङ्गना'-जैसे साधु समझने चाहिये, जिनका परित्राण साक्षात् भगवान्‌के दर्शन बिना हो ही नहीं सकता था तथा दुष्कृतकारी भी भगवान्‌के परम अन्तरङ्ग भक्त 'जय-विजय'-जैसे समझने चाहिये, जिनका दुष्कृत भगवान्‌की लीलाविशेषके विकासके लिये ही था। अन्य दुष्कृतकारियोंको तो उनका दुष्कर्म ही नष्ट कर देगा। धर्म-संस्थापनसे यहाँ 'भक्ति-प्रेमयोगरूप धर्म'की स्थापना समझनी चाहिये, जो ऐसे कोटि-कोटि-काम-कमनीय मधुर-मनोहर भजनीय भगवान्‌के बिना हो नहीं सकती।" यही अर्थ युक्तियुक्त भी प्रतीत होता है। हाँ, अवान्तर प्रयोजन सन्मार्गस्थ साधुओंकी रक्षा, भाग्यवान् दुष्कृतकारियोंका शरीर-विनाशरूपसे उद्धार और पवित्र सनातन धर्मकी स्थापना भी है ही। कुन्तीदेवी स्तुति करती हुई भगवान्‌के अवतारका हेतु बतलाती हैं—

तथा परमहंसानां मुनीनाममलात्मनाम् ।
भक्तियोगविधानार्थं कथं पश्येम हि स्त्रियः ॥
(श्रीमद्भागवत १ । ८ । २०)

'जिनके अन्तःकरण सर्वथा मलरहित—पवित्र हैं, उन परमहंस मुनियोंकी भक्तियोगमें प्रवृत्ति करानेके लिये अवतार धारण करनेवाले आपको हम अबलाएँ कैसे देख (जान) सकती हैं ?'

इससे ज्ञात होता है कि परमहंस मुनियोंको प्रेमदान करनेके लिये भगवान् स्वयं अवतीर्ण होते हैं। आगे चलकर कुन्तीदेवी श्रीकृष्णावतारके प्रयोजनमें मतभेद दिखलाती हुई कहती हैं—

केचिदाहुरजं जातं पुण्यश्लोकस्य कीर्तये ।
यदोः प्रियस्यान्ववाये मलयस्येव चन्दनम् ॥
अपरे वसुदेवस्य देवक्यां याचितोऽभ्यगात् ।
अजस्त्वमस्य क्षेमाय वधाय च सुरद्विषाम् ॥
भारावतारणायान्ये भुवो नाव इवोदधौ ।
सीदन्त्या भूरिभारेण जातो ह्यात्मभुवार्थितः ॥
भवेऽस्मिन् क्लिश्यमानानामविद्याकामकर्मभिः ।
श्रवणस्मरणार्हाणि करिष्यन्निति केचन ॥
शृण्वन्ति गायन्ति गृणन्त्यभीक्ष्णशः
स्मरन्ति नन्दन्ति तवेहितं जनाः ।
त एव पश्यन्त्यचिरेण तावकं
भवप्रवाहोपरमं पदाम्बुजम् ॥
(श्रीमद्भागवत १ । ८ । ३२—३६)

'कोई कहते हैं कि आपने पुण्यश्लोक राजा युधिष्ठिरका यश बढ़ानेके लिये ही यदुवंशमें अवतार लिया है। अथवा चन्दन जिस प्रकार मलयाचलमें पैदा होकर उसकी कीर्ति बढ़ाता है, उसी प्रकार आपने अपने प्रिय महाराज यदुका यश बढ़ानेके लिये यदुवंशमें अवतार लिया है। किसीका कथन है कि श्रीवसुदेव-देवकीने अपने पूर्वजन्ममें आपसे पुत्ररूपसे प्रकट होनेकी प्रार्थना की थी, उनकी प्रार्थनासे आप जगत्‌के कल्याण और देवद्रोही दानवोंका वध करनेके लिये ही उनके पुत्ररूपसे अवतीर्ण हुए हैं। कोई कहते हैं कि समुद्रमें डूबती हुई नौकाके समान पृथ्वी भारी भारसे दबी जा रही थी, उसके भारको उतारनेके लिये आपने ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे अवतार धारण किया है। (अब कुन्तीजी अपना मत प्रकट करती हैं कि) इस संसारमें अज्ञान, कामना और कामनायुक्त कर्मोंके कुचक्रमें पड़े हुए जो जीव विभिन्न प्रकारके क्लेश भोग रहे हैं, उन संतप्त जीवोंको क्लेशसे मुक्त करनेके लिये, उनके सुनने और मनन करने-योग्य सुन्दर दिव्य लीलाओंको करनेके लिये आपने अवतार लिया है। जो लोग आपकी प्रेमभरी दिव्य लीलाओंको सुनते हैं, गाते हैं, उनका कीर्तन करते हैं तथा बार-बार उनका स्मरण करके आनन्दित होते हैं, वे शीघ्र ही जन्म-मरणरूपी संसार-प्रवाहको शान्त करनेवाले आपके मङ्गलमय चरण-कमलोंके दर्शन पा जाते हैं।'

उपर्युक्त सभी प्रयोजन उचित और सत्य हैं, परंतु कुन्तीजीका बतलाया हुआ अन्तिम प्रयोजन बहुत ही हृदयग्राही है। भगवच्चरित्र ही वस्तुतः भवसागरसे तरनेके लिये दृढ़ नौका है। कलियुगी जीवोंका तो यही आधार है। इसीसे गोसाईं तुलसीदासजीने कहा है—

कलिजुग सम जुग आन नहिं जौं नर कर बिस्वास।
गाइ राम गुन गन बिमल भव तर बिनहिं प्रयास॥
(मानस ७।१०३ क)

अमलात्मा मुनियोंको भक्तियोग प्रदान करनेवाला प्रयोजन भी बहुत ही युक्तियुक्त है। इसीसे तो पवित्र भागवतधर्मकी स्थापना होती है। इन्हीं हेतुओंसे सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र इच्छाशून्य भगवान् अवतीर्ण होनेकी इच्छा करते हैं।

प्र०—जय-विजयादि-सरीखे दुष्कृतकारियोंकी और प्रेमधर्म-स्थापनकी बात तो समझमें आ गयी, परंतु गोपाङ्गनाओंके परित्राणकी बात कुछ समझमें नहीं आयी। उनको क्या दुःख था, जिससे भगवान्‌के साक्षात् अवतीर्ण हुए बिना वे उससे नहीं छूट सकती थीं?

उ०—सौन्दर्य-माधुर्य-सुधा-सागर नटनागर भगवान्‌के दिव्यातिदिव्य मङ्गल स्वरूपके दर्शनकी तीव्र लालसा ही उनका महान् दुःख था। वे इसी घोर विरह-तापसे संतप्त थीं। उनका यह ताप बिना श्रीभगवान्‌के साक्षात् मिलनके मिट ही नहीं सकता था। उनका इस दुःखसे परित्राण करनेके लिये ही भगवान् स्वयं प्रकट हुए।

परंतु यहाँ यह नहीं समझना चाहिये कि प्रयोजनका यही एकमात्र स्वरूप है। विभिन्न युगोंमें प्रयोजनोंके विभिन्न स्वरूप होते हैं, परंतु उनमें वे तीन ही बातें होती हैं—साधुपरित्राण, दुष्टविनाश और धर्मसंस्थापन।

प्र०—अच्छी बात है, यह बतलाइये कि भगवान्‌के अवतारोंमें क्या छोटे-बड़े भी होते हैं? अंशावतार, कलावतार, आवेशावतार और पूर्णावतार आदि अनेकों नाम मिलते हैं; इनका क्या रहस्य है?

उ०—भगवान्‌का पूर्णावतार भी होता है और अंश-कलावतारादि भी होते हैं। यद्यपि भगवत्तत्त्व एक ही है और किसी भी समय उनकी शक्तिमें कोई न्यूनाधिकता नहीं होती; क्योंकि उनकी शक्ति भी साक्षात् भगवत्स्वरूप ही है, अतएव वह सदा ही समरस है तथापि उनके प्राकट्यके अनेक भेद

माने गये हैं। जहाँ जिस प्रयोजनसे उनका अवतार होता है, वहाँ उसीके अनुसार उनकी शक्तिका प्रकाश होता है। जैसे सम्पूर्ण वेदका कण्ठस्थ पाठ करनेवाला वेदज्ञ पुरुष जहाँ जिस मन्त्रके उच्चारणकी और जितने वेदार्थप्रकाशकी आवश्यकता होती है, उतना ही करता है, उसी प्रकार नित्य पूर्ण असीम शक्तिसे सम्पन्न भगवान् भी लीला-प्रयोजनके अनुसार ही शक्तिका प्रकाश करते हैं। अग्निके जरा-से कणमें भी जैसे सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको दाह करनेकी शक्ति है; क्योंकि वह साक्षात् अग्नि ही है, उसी प्रकार भगवान्‌का किसी भी प्रयोजनसे अवतीर्ण लोकदृष्टिमें अत्यन्त छोटा-सा स्वरूप भी पूर्णशक्ति-सम्पन्न ही है। भगवान्‌की पूर्णतामें कभी विकार नहीं होता। श्रुतिका यह सिद्धान्त सदा सत्य है—

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥
(बृहदारण्यक० ५।१।१)

'विशाल अग्निमेंसे चाहे जितनी अग्नि चाहे जितने स्थानोंमें प्रकट हो जाय, सबमें सब जगह समान ही दाहिका-शक्ति होती है। इसी प्रकार भगवान्‌के चाहे एक ही समय कितने ही विभिन्न अवतार हो जायँ, सबमें शक्ति समान रहती है, यद्यपि अग्निका उदाहरण भगवत्-शक्तिकी पूर्णताके लिये लागू नहीं होता। अग्नि मायाका कार्य है, ससीम है, देशकालावच्छिन्न और सान्त है; भगवान्‌की शक्ति भगवत्स्वरूप है, असीम है, देश-कालातीत है, सर्वमय है और नित्य है। तथापि शाखाचन्द्रन्यायकी भाँति केवल समझनेके लिये यह बात कही जाती है।

उपर्युक्त विवेचनके अनुसार पूर्ण शक्ति होते हुए ही भगवान् नाना रूपोंमें प्रकाशित होते हैं। भगवान्‌के स्वयंरूप और व्यूहरूप आदि अनेकों रूप हैं। इसी प्रकार विभवावतार, कलावतार, अंशावतार, आवेशावतार, अर्चावतार आदि अनेकों अवतार हैं। इनमें स्वयंरूपके दर्शन तो मुक्त पुरुषोंको ही होते हैं। या तो नित्य नित्यधाममें रहनेवाले अनादि-कालीन मुक्त पुरुष ही उनके दर्शन करते हैं या भगवान् अनुग्रह करके जिन्हें दर्शन देते हैं, वे कर सकते हैं। स्वरूपावतार अथवा भगवान्‌के स्वयं अवतीर्ण होनेके समय वे जिनको दर्शन देनेके लिये योगमायाका परदा हटाकर दिव्यदृष्टि दे देते हैं, वे भी दर्शन कर सकते हैं। अन्य लोगोंको इस परम रूपके दर्शन नहीं हो सकते। योगमायाका

आवरण हटते ही वहाँ भगवान्‌की दिव्यताके संस्पर्शसे तमाम प्रकृति दिव्य बन जाती है। इसीसे जिस पुरुषके सामनेसे आवरण हटता है, वही दिव्यदृष्टिसम्पन्न हो जाता है। अवश्य ही आवरणमुक्तिकी क्षेत्रसीमा भगवान्‌के इच्छानुसार होती है। इसके सिवा अन्य प्रकारसे भी दिव्यदृष्टि प्राप्त की जा सकती है। दिव्यदृष्टिके भी अनेकों उच्च-नीच स्तर हैं; अर्जुन और संजय दोनोंको दिव्यदृष्टि प्राप्त थी, परंतु दोनों एक ही प्रकारकी नहीं थीं। एकमें प्रत्यक्ष दर्शन था, दूसरेमें छाया-दर्शन! परंतु यह यहाँका आलोच्य विषय नहीं है, इसलिये इसपर आलोचना नहीं की जाती।

भगवान्‌के व्यूहरूप नित्य-विभूतिके बाहर लीला-विभूतिमें हैं। वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—ये चार व्यूह हैं। असलमें तो संकर्षणादि तीन ही व्यूह हैं, वासुदेव तो व्यूहमण्डलमें आनेसे व्यूहरूप माने जाते हैं। भगवान्‌के जिस लीलास्वरूपमें ज्ञान, बल, ऐश्वर्य, वीर्य, शक्ति और तेज पूर्णरूपसे सदा ही प्रकाशित हैं, उस षडैश्वर्यसम्पन्न स्वरूपका नाम 'वासुदेव' है। संकर्षणमें प्रधानतासे ज्ञान और बल, प्रद्युम्नमें ऐश्वर्य और वीर्य और अनिरुद्धमें शक्ति और तेज रहते हैं। एक वासुदेवरूप ही इस त्रिविध रूपमें व्यूहमय बन रहा है। इसलिये तत्त्वतः संकर्षणादि प्रत्येक स्वरूप ही षडैश्वर्यसम्पन्न है, परंतु उनके लीला-प्रयोजनके लिये उनमें प्रधानतासे दो-दो गुणोंका आधिक्य भासता है। संकर्षण जीवके अधिष्ठाता हैं, प्रद्युम्न मनके और अनिरुद्ध अनन्त जगत्‌के रक्षक, पोषक और विधाता हैं।

अब अवतारोंके सम्बन्धमें कुछ जानना है। यद्यपि अवतार अनेकविध हैं और उनका प्रकृत रहस्य संसारमें कोई भी नहीं जान सकता, तथापि महात्मा पुरुषोंके सुने और पढ़े हुए वचनोंके आधारपर किंचित् वर्णन करनेकी चेष्टा की जाती है। स्वयं भगवान्‌के प्रादुर्भावको 'विभवावतार' कहते हैं। इसके दो भेद हैं—मुख्य और गौण। मुख्य-विभव 'साक्षात् अवतार' है और गौण-विभव 'आवेशावतार'। आवेशावतारके भी दो भेद हैं—शक्त्यावेश और स्वरूपावेश। शक्त्यावेशमें आवेशकालमें केवल शक्तिका विकास होता है और स्वरूपावेशमें भगवान् अपने अप्राकृत विग्रहसमेत किसी चेतन शरीरमें आविष्ट होते हैं। मुख्य या साक्षात् अवतारका विग्रह नित्य, दिव्य और अप्राकृत होता है और गौणका विग्रह केवल आवेशकालमें दिव्य होता है। मुख्य या साक्षात् अवतारका प्रयोजन ऊपर बतलाया जा चुका है। गौणका प्रकाश सृष्टिरचना या रक्षा आदि प्रयोजनोंके लिये होता है। गौणावतारोंमें भी अनेकों भेद हैं।

जो अवतार कलारूपसे होता है, उसे 'कलावतार' कहते हैं। जो भगवत्-शक्ति हमारे जगत्‌की केन्द्रस्था है, वह षोडश कलाकी समष्टि है। इस कलारूपा शक्तिमेंसे कतिपय कलाओंके विकासको लेकर जो अवतार होता है, उसे 'कलावतार' कहते हैं। एक या अनेक कलाओंके विभिन्न अवतार हो सकते हैं।

कलाकी अपेक्षा अर्थात् सोलह कलायुक्त शक्तिके सोलहवें हिस्सेसे भी जो न्यून शक्तिका आविर्भाव होता है, उसे 'अंशावतार' कहते हैं। अंशकी अपेक्षा न्यून शक्तिके अवतारको 'विभूत्यवतार' कहते हैं। यह याद रखना चाहिये कि परमब्रह्म परमेश्वर नपी-तुली सोलह कलावाले ही नहीं हैं। हमारे इस जगत्‌में सोलह कलायुक्त शक्तिके विकाससे ही काम चल जाता है। इससे हम भगवान्‌को 'षोडशकला' कहते हैं; वस्तुतः भगवान् अनन्त कलायुक्त हैं। उन नित्य निष्कलकी अनन्त अकल कलाओंका पार नहीं है। करोड़ों कलाओंकी विविधमुखी अनन्त धाराएँ निरन्तर उनकी समष्टि-कलासे बह रही हैं। सारी कलाओंका मूल कारण वह समष्टि-कलारूप भगवान्‌की निज शक्ति ही है। उस शक्तिका अवतार भी साक्षात् भगवान्‌के आविर्भावके समय भगवान्‌के साथ ही होता है, परंतु यह आवश्यक नहीं कि सब कलाओंका विकास हो ही। ऐसा होना न तो आवश्यक है और न सहज सम्भव ही है।

इसके अतिरिक्त जिस कल्प, युग या मन्वन्तरमें जैसे अवतारका प्रयोजन होता है, तदनुसार अनेकों अवतार हुआ करते हैं। वे ही 'कल्पावतार', 'युगावतार' या 'मन्वन्तरावतार' कहलाते हैं।

इसी तरह भगवान्‌का 'अर्चावतार' भी है। जिस अर्चा-मूर्त्तिमें विश्वासी श्रद्धासम्पन्न भक्त भगवान्‌का आविर्भाव चाहता है, उसी अर्चाविग्रहमें दयामय भगवान् अपने भक्तकी प्रसन्नताके लिये उसपर अनुग्रह करके आविर्भूत हो जाते हैं। इसमें देश-कालका कोई नियम नहीं है। न अधिकारीका नियम है। अधिकारी वही है, जो पूर्ण श्रद्धासम्पन्न प्रेमी हो और अर्चामूर्तिमें भगवान्‌का पूर्ण स्वरूप समझता हो। इसमें अवतारका स्वरूप वही होता है, जैसा भक्त चाहता है। यहाँ भगवान् अपने भक्तके अधीन होते हैं। वह जिस

विधिसे जिस समय उनके स्नान, भोजन, शयन, पूजन, श्रृङ्गार आदिकी व्यवस्था करता है, उसी रूपमें भगवान् उसे स्वीकार करते हैं।

प्र०—क्या साक्षात् भगवान्का ही अवतार होता है, और किसीका नहीं होता ? यदि होता है तो क्या उन सब अवतारोंमें भी शक्तिका तारतम्य नहीं रहता ?

उ०—यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि कारण-जगत्की किसी भी शक्तिका अवतार हो सकता है। वस्तुतः साक्षात् समग्र भगवान्के अवतार बहुत कम होते हैं, अन्य शक्तियोंके अवतार ही अधिक होते हैं। अंश और गौणावतारोंके भी समय-समयपर अवतार होते हैं। आयुध और आभूषणोंके भी अवतार होते हैं। नित्य भगवत्-कैंकर्यको प्राप्त महाभाग मुक्त पुरुषोंके भी भगवदिच्छासे अवतार होते हैं। कभी-कभी वे भगवत्-सेवाके लिये भी अवतार धारण करते हैं। ये ही भगवान्के भक्तों और परिकरोंके अवतार होते हैं। श्रीमच्छंकराचार्य 'नृसिंहतापनीय उपनिषद्'के भाष्यमें कहते हैं—**'मुक्ता अपि लीलया विग्रहं कृत्वा त्वां भजन्ते।'** मुक्त पुरुष भी लीलासे देह धारण करके आपका भजन किया करते हैं।

कारणजगत्में ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति, प्रेमशक्ति, दयाशक्ति, निरोधशक्ति, ऐश्वर्यशक्ति आदि जो अनन्त प्रकारकी शक्तियाँ हैं, उन सभीके प्रयोजनानुसार विविध अवतार होते हैं; इन्हीं शक्तियोंके नामानुसार उनके 'ज्ञाना-वतार', 'क्रियावतार', 'प्रेमावतार' आदि विभिन्न नाम और कार्य होते हैं। इनकी शक्तिमें बहुत तारतम्य रहता है। अतएव इन सबमें न एक-सी शक्ति होती है और न इनकी एक-सी क्रिया ही होती है। इनमें बहुतेरे अवतार शक्त्यवतार, गौणावतारोंकी श्रेणीमें भी आ जाते हैं। अवतार मनुष्यरूपमें ही नहीं, पशु-पक्षी आदि रूपोंमें भी होते हैं।

दुष्ट शक्तियोंके भी अवतार होते हैं, परंतु उनका अवतीर्ण होना जगत्के अमङ्गलके लिये होता है, अतएव जगत्के कल्याणार्थ उनके विनाशके लिये भी समय-समयपर 'शक्त्यवतार' होते हैं। अवश्य ही इन सभीमें भगवत्-शक्तिके द्वारा संचालित एक अखण्ड नियम सतत काम करता है।

भगवान्का एक 'अन्तर्यामी अवतार' भी है, जो जीवके हृदयमें रहकर उसकी प्रवृत्ति और चेष्टाओंका नियमन करता है। इस अन्तर्यामी स्वरूपके दो भेद हैं—एक, जो अपने श्रद्धामय भक्त जीवके हृदयकमलमें सुहृद्रूपसे उसके योगक्षेमके वहन करनेके लिये निवास करता है। यह भक्तकी इष्टमूर्त्तिके रूपमें ही भक्तको हृदयमें दर्शन देता है। दूसरा स्वरूप अन्तरात्मारूपसे है, जो सभी जीवोंके हृदयमें भली-बुरी सभी अवस्थाओंमें सदा निवास करता है। जीवके हृदयमें जबतक इस अन्तर्यामीका निवास है, तभीतक वह 'जीव' है।

इसके सिवा प्रत्येक युगमें अनन्त अवसरोंपर अनन्त भक्तोंके सम्मुख एकान्तमें उन्हें कृतार्थ करनेके लिये भगवान्-का जो प्राकट्य होता है, वह भी उनका अवतार ही है। उसमें भी साक्षात्-भगवान् और गौण-शक्तिका भेद भक्तकी साधनाके अनुसार रहता है।

प्र०—साक्षात्-भगवान्के अवतारका शरीर क्या भौतिक नहीं होता ? और भौतिक नहीं होता तो वह कैसा होता है ?

उ०—भगवान् चाहें तो मायिक शरीर भी धारण कर सकते हैं; क्योंकि वे सर्वभवनसमर्थ हैं और समय-समयपर लोक-कल्याणार्थ करते भी हैं। परंतु उनका साक्षात् अवतार-शरीर भगवत्स्वरूप ही होता है। वह भौतिक न होकर चिदानन्दमय होता है। स्थूल पाञ्चभौतिक शरीरकी तो बात ही दूर रही, उनका सूक्ष्म तथा कारणशरीर भी नहीं होता, वे इन त्रिविध मायिक शरीरोंसे परे हैं। मायिक शरीर तो उनका भी नहीं होता, जो कारणमण्डलको लाँघकर भगवान्के नित्य परमधाममें पहुँच जाते हैं। फिर स्वयं भगवान्की तो बात ही क्या है ? भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति करते हुए ब्रह्माजी कहते हैं—

> **अस्यापि देव वपुषो मदनुग्रहस्य**
> **स्वेच्छामयस्य न तु भूतमयस्य कोऽपि।**
> **नेशे महि त्ववसितुं मनसाऽऽन्तरेण**
> **साक्षात्तवैव किमुतात्मसुखानुभूतेः॥**
> (श्रीमद्भागवत १०।१४।२)

'हे देव! भक्तोंके इच्छानुसार प्रकट हुए तथा मुझपर अनुग्रह करनेवाले आपके इस अवतारविग्रहकी, जो पाञ्चभौतिक नहीं, अपितु अचिन्त्य शुद्ध सत्त्वमय है, महिमाको मनसे भी जाननेके लिये मैं ब्रह्मा समर्थ नहीं हूँ अथवा कोई भी समर्थ नहीं है; तब आपके साक्षात् स्वरूपकी महिमाको तो एकाग्र किये हुए मनसे भी कौन जान सकता है ?'

भगवान् श्रीरामको महर्षि वाल्मीकिजी कहते हैं—

'चिदानंद मय देह तुम्हारी। बिगत बिकार जान अधिकारी॥'

(मानस २ । १२६ । २½)

इसीसे आत्माराम मुनिगण भी भगवान्‌के दिव्य स्वरूपका दर्शन पाते ही मुग्ध हो जाते हैं। जनक-से राजर्षि, व्यास-से महर्षि और भीष्म-से ज्ञानवृद्ध भगवान्‌को देखते ही पलकें मारना भूलकर एकटक उनकी ओर देखते ही रह जाते हैं। तभी उनके भक्तोंकी चरण-रजको मस्तकपर चढ़ानेके लिये ब्रह्मा-सरीखे देवता और उद्धव-सरीखे ज्ञानी लालायित होते हैं। वस्तुतः भगवान्‌का देह 'दिव्य देह' भी नहीं है, वह भगवत्स्वरूपसे सर्वथा अभिन्न है। वह देहातीत साक्षात् भगवत्स्वरूप ही है। वह दिव्यातिदिव्य आनन्दका आनन्दमय आनन्दनिर्झर है; क्योंकि वह आह्लादिनी शक्तिके निमित्तसे ही नित्य प्रकट रहता है। वह सर्वत्र मधुर-ही-मधुर है। उसका सब कुछ मधुर-ही-मधुर है, वह मधुरिमामय है। इसीसे उसको **'आनन्दमात्रकरपादमुखोदरादि'** या **'आनन्दैकरसमूर्तयः'** कहते हैं। जिनके पादारविन्द-मकरन्दसे निकली हुई तुलसीमिश्रित सुगन्ध जन्मसे ही ब्रह्मविद्-शिरोमणि सनकादिकोंके मनमें क्षोभ उत्पन्न कर देती है, उन भगवान्‌के स्वरूपभूत भगवद्देहकी महिमा कौन गा सकता है ?

प्र०—अच्छा, अब भगवान्‌के सौन्दर्यका कुछ वर्णन कीजिये।

उ०—विश्वब्रह्माण्डमें ऐसा कौन है, जो भगवान्‌के दिव्य भगवद्देहके सौन्दर्यके करोड़वें भागका भी वर्णन कर सके। वह अनिर्वचनीय तत्त्व है। जिस-किसी परम सौभाग्यशाली महानुभावने भगवान्‌के उस योगमायासे अनावृत सौन्दर्य-माधुर्य-सागर महान् सुन्दर स्वरूपके दर्शन किये हैं, वही उनके सौन्दर्यका किंचित् रहस्य जानता है। परंतु वह जो कुछ जानता है, उसके वर्णनकी सामर्थ्य उसमें कदापि नहीं है।

भगवान्‌के सौन्दर्यकी तो बात ही क्या है, विशुद्ध लिङ्गशरीरके सौन्दर्यका भी वर्णन नहीं हो सकता। वह भी बहुत ही ज्योतिर्मय, मनमोहन, नयनाभिराम, माधुर्यमय और लावण्ययुक्त होता है, उसकी भी कोई तुलना नहीं होती। सारी देवभूमिकाएँ उस विशुद्ध लिङ्गकी ही विभिन्न अवस्थाएँ हैं। फिर जब वही लिङ्ग 'कारणरूप' में जा पहुँचता है, तब तो उसका सौन्दर्य सर्वथा वर्णनातीत हो जाता है। कामदेवके मनोहर स्वरूपकी उपमा इस कारणशरीरसे ही दी जाती है, परंतु यह कारणदेह भी जड—भौतिक ही होता है; क्योंकि कारण, सूक्ष्म और स्थूल जगत् सब मायामें ही है। इनकी स्थितिका कारण जीवोंका अनादि कर्मप्रवाह है। अस्तु, जब परमोत्कृष्ट भौतिक देहकी ऐसी महिमा है, तब भगवद्देहका सौन्दर्य कौन कह सकता है ? भक्त कवि इतना कहकर चुप हो जाते हैं—

'अंग अंग पर वारिअहिं कोटि कोटि सत काम॥'

न उसकी कोई उपमा है, न उसका कोई नमूना। जो देखता है, वही उसे जानता है, परंतु कह कोई भी नहीं सकता !

प्र०—जब भगवान्‌का ऐसा मधुर आनन्दमय स्वरूप है, तब तो अवतारकालमें उसको देखकर सभी लोगोंको मोहित होना चाहिये; उनके स्वरूपका दर्शन करनेवाले सभी लोगों-को उनकी पहचान भी होनी चाहिये। परंतु श्रीराम-श्रीकृष्णादि साक्षात् भगवत्स्वरूपोंके जीवन-वृत्तको पढ़नेसे पता लगता है कि ऐसी बात हुई नहीं; बहुत-से लोगोंने तो उन्हें पहचाना ही नहीं।

उ०—भगवान्‌के दिव्यातिदिव्य भगवद्देहके दर्शनके लिये दिव्यदृष्टि चाहिये। प्राकृत जगत् तो उनके उस रूपके तेजको भी सहन नहीं कर सकता। इसीसे अवतारकालमें भगवान् अपने स्वरूपको योगमायासे समावृत रखते हैं—

'नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः।'

(गीता ७ । २५)

और इसीसे सब लोग उन्हें नहीं पहचान सकते। वे कृपा करके जिनको अपना परिचय प्रदान करना चाहते हैं, उन्हींके लिये योगमायाका आवरण हटाते हैं। इस आवरणके हटानेमें भी अधिकारी-भेदसे बड़ा भारी तारतम्य रहता है। इसका हटाना पूर्णरूपसे तो वहीं होता है, जहाँ भगवान्‌की केवल अन्तरङ्गा ही नहीं, स्वरूपा शक्तियोंका आकर्षण रहता है। वहीं भगवदिच्छासे वह योगमाया अपने आवरणरूपको त्यागकर—भगवान्‌को आवरणमुक्त कर, स्वरूपभूता आनन्दशक्तिके रूपमें बदलकर भगवान्‌के रमणका आधार बन जाती है; क्योंकि वस्तुतः वह आह्लादिनी शक्तिसे अभिन्न ही है। इसीसे श्रीशुकदेव मुनिने कहा है—

भगवानपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्लमल्लिकाः।
वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः॥

(श्रीमद्भागवत १० । २९ । १)

याद रखना चाहिये—भगवान्‌की यह योगमाया वह माया नहीं है, जो सृष्टिकर्ता ईश्वरके साथ रहती है; न वह अविद्या है, जो समस्त जगत्‌को मोहित किये हुए है। वे तो निम्नस्तरकी शक्तियाँ हैं, यह योगमाया तो भगवान्‌की साक्षात् स्वरूपा शक्ति ही है। इसी शक्तिको साथ लेकर भगवान् अवतीर्ण होते हैं—**'सम्भवामि आत्ममायया।'**

इस योगमायासे समावृत होनेके कारण ही लोगोंको भगवान्‌का देह मायिक या भौतिक-सा प्रतीत होता है। और ऐसा होना ठीक ही है; क्योंकि उनकी मायामयी दृष्टि अमायिकका प्रत्यक्ष कर ही नहीं सकती। हमारी इन्द्रियाँ तो अतीन्द्रिय मायिक पदार्थको भी ग्रहण नहीं कर सकतीं, फिर मन-वचन-बुद्धिसे और इनकी मूल प्रकृतिसे परेके परमात्म-स्वरूपको तो कैसे ग्रहण कर सकती हैं। अतएव भगवान्‌का स्वरूप न्यूनाधिकरूपमें उन्हींके सामने प्रकट होता है, जिनको न्यूनाधिकरूपमें दिव्यदृष्टि मिल जाती है। भगवान्‌की बात तो दूर रही, मोहदृष्टिसे तो हम भौतिक-देहधारी महात्मा पुरुषको भी नहीं पहचान सकते; उसके लिये भी अन्तर्दृष्टि तो चाहिये ही। परंतु यह दिव्यदृष्टि कोई ज्ञानदृष्टि या अन्तर्दृष्टि नहीं है, यह भगवद्दत्त एक भगवदीय शक्ति है। ज्ञानदृष्टिसम्पन्न पुरुष उन्हें ब्रह्म देखते थे, शत्रु-भाववाले उन्हें साक्षात् कालरूपमें देखते थे; वसुदेव-देवकी, नन्द-यशोदा या दशरथ-कौसल्या उन्हें पुत्ररूपमें देखते थे। यह सब भगवान्‌की इच्छापर ही निर्भर था। इतना होनेपर भी भगवान्‌के स्वरूपको जो कोई भी देखता था, वह कुछ क्षणोंके लिये तो मुग्ध हो ही जाता था। हाँ, उनकी बात दूसरी है, जिनको जान-बूझकर ही भगवान्‌ने अपना भयंकर रूप ही दिखलाया, मोहनरूप दिखलाया ही नहीं। अन्तर्दृष्टिसम्पन्न ऋषि-मुनि-महात्मा और प्रेममना आत्मीय स्वजनोंकी तो बात ही निराली है, सेनासहित खर-दूषण—जो शत्रुरूपमें भगवान्‌से युद्ध करनेको आये थे, उनके दिव्य स्वरूपको देखकर क्षणभरके लिये मुग्ध हो गये और अपने मन्त्रीसे कहने लगे—

नाग असुर सुर नर मुनि जेते। देखे जिते हते हम केते॥
हम भरि जन्म सुनहु सब भाई। देखी नहिं असि सुंदरताई॥
जद्यपि भगिनी कीन्हि कुरूपा। बध लायक नहिं पुरुष अनूपा॥

(मानस ३ । १८ । २—२½)

यह उन राक्षसोंकी दशा है, जो बहनके नाक-कान कट जानेपर मारनेके लिये आते हैं और जिनके सामनेसे योगमाया-का पर्दा नहीं हटा है।

प्र०—भगवान् श्रीरामचन्द्र और भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र—इन दोनोंमें किनका रूप अधिक सुन्दर था?

उ०—दोनों एक-दूसरेसे बढ़कर सुन्दर हैं। इनके सौन्दर्यमें न्यूनाधिकताकी कल्पना करना ही अपराध है। हाँ, वर्णमें कुछ भेद अवश्य है। भगवान् श्रीरामचन्द्रके श्रीअङ्गका वर्ण नील-हरिताभ है और भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका नील-कृष्णाभ। दोनोंमें ही सीमाके परेका सौन्दर्य है। एक सज्जनका कथन है—

कोमल, सरस, सु-ज्योतिमय, अलख अचिन्त्य अनूप।
नीलकमल-घन-मनि-सदृश, चिदानन्दमय रूप॥

उनका श्रीअङ्ग नील कमलके समान कोमल है, नील श्याम मेघके समान सरस है और नीलमणिके समान सुचिक्कण तथा ज्योतिर्मय है। वह है इन नेत्रोंसे अलक्ष्य, इस चित्तसे अचिन्त्य, किसी भी लोककी किसी भी वस्तुकी उपमासे अतीत और चिन्मय तथा आनन्दमय।

उसमें प्रधानतया पाँच विशेषताएँ हैं—

(१) वह पाञ्चभौतिक नहीं है, बनने-बिगड़नेवाला नहीं है, भगवत्स्वरूप, नित्य है।

(२) जिसको देखते-देखते कभी अरुचि तो होती ही नहीं, कभी तृप्ति भी नहीं होती। जितना देखा जाय, उतना ही देखनेकी लालसा बढ़ती है, चाहे युगोंतक देखा जाय।

(३) जिसको देखकर मनमें किसी प्रकारका विकार तो उत्पन्न होता ही नहीं, वरं जिसे देखते ही चित्त सर्वथा पवित्र हो जाता है, वह दिव्य प्रकाशसे भर जाता है; जिसकी स्मृति होते ही, धारणा या भावना होते ही चित्तमें विकार-शून्यता आ जाती है।

(४) जिसकी तुलनामें त्रिलोक और त्रिकालकी अन्य कोई भी वस्तु कभी नहीं आ सकती।

(५) जिसकी स्मृति सब कुछको भुला देनेवाली होती

है, जिसके सामने आते ही भोग-मोक्ष—सबसे सहज विराग हो जाता है, जिसके देखते ही बरबस प्रेमानन्दका प्राकट्य हो जाता है, जिसके सामने आते ही समस्त वस्तुओंकी सत्ता उसकी सत्तामें समा जाती है ?

जब अन्य वस्तु ही न हो, तब किसी भी वस्तुमें आकर्षण तो रहता ही कहाँसे ?

जिनका मन किसी भी सांसारिक सौन्दर्यकी ओर आकर्षित होता है, उनको भगवान्‌के सौन्दर्यकी कल्पना ही नहीं है—यों मानना चाहिये ।

अवतार-सिद्धान्त

(लेखक—डॉ० श्रीप्रभाकरजी त्रिवेदी, एम्० ए०, डी० लिट्०)

कुछ लोग ईश्वरका अस्तित्व केवल विश्वासका विषय समझते हैं और कुछ लोग संसारकी विचित्र नियमबद्धता तथा कर्मके सिद्धान्त आदिके आधारपर उसके अस्तित्वका अनुमान करते हैं; किंतु हिंदू-जातिकी विशेषता यह रही है कि उसने परमात्माको केवल विश्वास अथवा तर्कका विषय न मानकर उन्हें अनुभवगम्य माना है और इतना ही नहीं, उन जगन्नियन्ता, जगदाधारका साक्षात्कार कर लेना ही मनुष्य-जीवनका चरम लक्ष्य भी स्वीकार किया है । उस साक्षात्कारका साधन माना है ध्यान एवं भक्तिको । भारतीय दार्शनिकोंने ईश्वरके प्रमुखतया तीन कार्य निर्धारित किये हैं—१—संसारकी सृष्टि, २—उसका पालन तथा ३—यथासमय उसका संहार । न्यायपूर्वक जीवोंको उनके शुभाशुभ कर्मोंका सुख-दुःखादिके रूपमें फल प्रदान करना, अर्थात् नैतिक नियमोंके अनुसार संसारका संचालन करते रहना पालन-कर्मका ही एक अङ्ग है ।

एक ही परमात्माकी उनके विभिन्न कार्योंके अनुसार विभिन्न नामों एवं रूपोंमें भावना की गयी है । सृष्टिकर्ताके रूपमें उन्हें 'ब्रह्मा', पालनकर्ताके रूपमें 'विष्णु' तथा संहार-कर्ताके रूपमें 'शंकर' कहा गया है । तीनोंकी तीन प्रकारके रूपों एवं नामोंसे भावना करते हुए भी महर्षियोंने उन्हें तत्त्वतः एक ही स्वीकार किया है । यदि वे ऐसा न करते तो तीन ईश्वर स्वीकार करनेमें अनेक प्रकारकी तार्किक विसंगतियाँ उत्पन्न हो जातीं ।

पालनका कार्य बड़ा कठिन तथा बहुमुखी होता है । जैसे अपने अबोध बालकके पालन करनेमें तत्पर माता कभी उसके मल-मूत्रादिका प्रक्षालन करनेके कारण मलापसारी (मेहतर)का, उसके कपड़ोंकी सफाई करनेसे धोबीका, उसे कुछ सिखाते समय गुरुका, दूसरे जीवोंसे उसकी रक्षा करते हुए अङ्गरक्षकका तथा अपने ही दो बालकोंके झगड़े निपटाते समय न्यायाधीशका कार्य सम्पादन करती है, उसी प्रकार विष्णुरूपसे संसारका पालन एवं संचालन करते हुए जगन्नियन्ता जगदाधार परमात्माको समय-समयपर अनेक रूप धारण करने पड़ते हैं । उपनिषदोंकी भाषामें 'अवाङ्मनस-गोचर' वह तत्त्व जब किसी विशेष परिस्थितिके कारण देवताओं, महर्षियों अथवा मनुष्योंके दृष्टिगोचर होनेके हेतु किसी विशेष रूपमें प्रकट होता है, तब उसे परमात्माका 'अवतार' कहते हैं । अवतारकी बात उपनिषदोंमें भी आयी है । सत्यकाम जाबालको ब्रह्मद्वारा चार रूपोंमें ब्रह्मविद्याका उपदेश (छान्दोग्य उपनिषद्) तथा देवताओंका अहंकार नष्ट करनेके लिये यक्षके रूपमें ब्रह्मका आविर्भाव (प्रश्नोपनिषद्) आदि इसके प्रमुख उदाहरण हैं ।

प्रातःस्मरणीय स्वनामधन्य श्रीरामकृष्ण परमहंसका कथन है कि 'जिस प्रकार समुद्रका तरल जल शैत्यके प्रभावसे ठोस हिमका रूप धारण कर लेता है, उसी प्रकार निर्गुण ब्रह्म भक्तिके प्रभावसे भक्तोंके लिये प्रत्यक्ष रूप धारण करता है ।' श्रीमद्भगवद्गीता (४ । ७-८) में अवतारके प्रमुख प्रयोजनोंका बड़ी स्पष्टताके साथ वर्णन किया गया है । भगवान्‌का कथन है—'हे अर्जुन ! जब-जब धर्मका ह्रास एवं अधर्मका अभ्युत्थान होता है, तब-तब मैं अपने आपकी सृष्टि करता हूँ—सज्जनोंकी रक्षा, दुराचारियोंके विनाश तथा धर्मकी स्थापनाके लिये युग-युगमें अवतार लेता हूँ ।'

अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि 'यदि भगवान् धर्मकी स्थापना चाहते हैं तो समय-समयपर (युग-युगमें) अधर्मका अभ्युत्थान क्यों हो जाता है, जिससे उन्हें अवतार लेनेकी आवश्यकता पड़ती है ।' इसका उत्तर ब्रिटिश दार्शनिक बोसांके के शब्दोंमें यह है—'मनुष्यके कष्ट मनुष्यकी महत्ताके

कारण उत्पन्न होते हैं ।' (Human miseries arise out of human greatness.) मनुष्य कर्म करनेमें स्वतन्त्र है । इस स्वतन्त्रताका सदुपयोग भी सम्भव है तथा दुरुपयोग भी । जब वह अपनी स्वतन्त्रताका सदुपयोग करते हुए धर्मके मार्गपर चलता है, तब अपना भावी जीवन सुखमय बनाता है; किंतु जब वह उसी स्वतन्त्रताका दुरुपयोग करते हुए अधर्मके पथपर विचरण करने लगता है, तब अपनेको संकटमें फँसा लेता है और अपना भावी जीवन दुःखमय बना लेता है । गीताके अनुसार मनुष्यको कर्म करनेकी स्वतन्त्रता तो है, किंतु उसका फल प्राप्त करनेमें वह परतन्त्र है । फल-प्रदानका काम परमात्माका है । वह जीवोंके कर्मोंका फल नैतिक नियमोंके अनुसार ही देता है । कर्म करनेकी स्वतन्त्रता होनेके कारण समाजके अधिकांश व्यक्ति संयोगवश कभी-कभी धर्मके मार्गपर तो कभी-कभी अधर्मके मार्गपर चलने लगते हैं । इस प्रकार समय-समयपर कभी धर्मका तो कभी अधर्मका अभ्युदय हो उठता है । जब धर्मकी अपेक्षा अधर्मका पल्ला बहुत भारी हो उठता है, तब धर्मकी पुनः स्थापनाके लिये भगवान्‌को अवतार लेनेकी आवश्यकता प्रतीत होती है ।

उपर्युक्त परिस्थितियोंमें भगवान्‌ने कब-कब अवतार लिया तथा उन अवतारोंमें उन्होंने क्या किया, इस बातका ज्ञान न तर्कसे सम्भव है न विज्ञानसे । इस विषयका ज्ञान केवल दिव्यदृष्टिसम्पन्न महर्षियोंको हुआ तथा उन्होंने मनुष्य-जातिके कल्याणार्थ उसे पुराणोंमें लिपिबद्ध कर दिया । केवल भूतकालीन अवतारोंके सम्बन्धमें ही नहीं, बल्कि भगवान्‌के मानवीय रूपोंका निरन्तर दर्शन होते रहनेपर भी सामान्य मनुष्योंको उनकी भगवत्ताका ज्ञान नहीं हो पाता । यहाँतक कि महाराज दशरथको भी 'श्रीरामचन्द्र विष्णुके अवतार हैं', इस बातका ज्ञान तब हुआ, जब वे रावण-विजयके पश्चात् स्वर्गसे भगवान् शंकरके साथ विमानद्वारा लङ्का पधारे । वहाँ देवताओंके समागमसे उन्हें ज्ञात हुआ कि 'श्रीरामचन्द्र रावण-वधके लिये अवतीर्ण हुए पुरुषोत्तम ही थे', यद्यपि यह बात विश्वामित्र, वसिष्ठ आदि ऋषियोंको प्रारम्भसे ही ज्ञात थी ।

अतः अवतारोंके सम्बन्धमें ऋषिप्रणीत शास्त्र ही एकमात्र प्रमाण हैं । उनके अनुसार यद्यपि भगवान् विष्णुने दुष्टोंके विनाशार्थ, सज्जनोंके रक्षणार्थ तथा धर्मकी स्थापनाके लिये परिस्थितिवश अनेक अवतार धारण किये, तथापि उनमें ये दस प्रसिद्ध हैं—१—मत्स्यावतार, २—कच्छपावतार, ३—वराहावतार, ४—नृसिंहावतार, ५—वामनावतार, ६—श्रीपरशुरामावतार, ७—श्रीरामावतार, ८—श्रीकृष्णावतार, ९—बुद्धावतार तथा १०—कल्कि-अवतार, जो कलियुगमें अधर्मकी पराकाष्ठा होनेपर भविष्यमें होनेवाला है ।

भगवान्‌की भक्त-परवशता

ऐसी हरि करत दास पर प्रीति ।
निज प्रभुता बिसारि जन के बस, होत सदा यह रीति ॥
जिन बाँधे सुर-असुर, नाग-नर, प्रबल करम की डोरी ।
सोइ अबिछिन्न ब्रह्म जसुमति हठि बाँध्यो सकत न छोरी ॥
जाकी मायाबस बिरंचि, सिव नाचत पार न पायो ।
करतल ताल बजाय ग्वाल-जुवतिन्ह सोइ नाच नचायो ॥
बिस्वंभर, श्रीपति, त्रिभुवनपति, बेद-बिदित यह लीख ।
बलि सों कछु न चली प्रभुता बरु ह्वै द्विज माँगी भीख ॥
जाको नाम लियें छूटत भव-जनम-मरन दुख-भार ।
अंबरीस-हित लागि कृपानिधि सोइ जनमे दस बार ॥
जोग-बिराग-ध्यान-जप-तप करि, जेहि खोजत मुनि ग्यानी ।
बानर-भालु चपल पसु पामर, नाथ तहाँ रति मानी ॥
लोकपाल, जम, काल, पवन, रबि, ससि सब आग्याकारी ।
तुलसिदास प्रभु उग्रसेन कें द्वार बेंत कर धारी ॥

अवतार—एक विवेचन

(लेखक—श्री एन० कनकराज अय्यर)

मनुष्यके ऊपर भगवान् श्रीमहाविष्णुकी परम कृपा सदैव बरसती रहती है। वे परम प्रभु सभी चराचर जीवोंके ऊपर असीम अनुग्रह और स्नेह रखते हैं। वे बुद्धिकी पहुँचसे परे हैं और किसी प्रकारके जागतिक बन्धनमें नहीं आते; परंतु अपनी इच्छासे प्रयोजन होनेपर जन्म लेते हैं। फिर भी उनका जन्म और तिरोभाव साधारण मनुष्य और अन्य प्राणियोंकी जन्म-मृत्युके समान नहीं होता। श्रीराम और श्रीकृष्णने एक कालविशेषमें मानव-समाजके कल्याणके लिये मानव-शरीर धारण किया था। उनके वराहावतारमें हमको द्विविध प्रयोजन देखनेको मिलता है। वे आदिवराह ही थे, जिन्होंने हिरण्याक्षको पराभूत करके पृथ्वीका उद्धार किया। भयानक शत्रुके साथ युद्ध करना श्रीनारायणके लिये एक आसान खेल हो सकता है; परंतु दैत्यके द्वारा विशृङ्खलित सम्पूर्ण जगत्को पुनः नियमबद्ध करना महान् अनुग्रहका काम है।

श्रीनरसिंहरूपमें भगवान्को एक विचित्र आकृति धारण करनी पड़ी, जो हिरण्यकशिपुके लिये अभिवाञ्छनीय थी। वह किसी मनुष्य या पशुके द्वारा, घरके भीतर या बाहर, दिनमें या रातमें पराभूत होना नहीं चाहता था। अतएव प्रभुको नर और पशु, अर्थात् ठीक नृसिंह-रूपमें अवतरित होना पड़ा। वे किसी मनुष्य या पशु अथवा देवसे उत्पन्न नहीं हुए थे। उन्हें अवतार लेनेके बाद तुरंत शत्रुपर आक्रमण करना था। यह जीवन और मृत्युकी एक लीला थी, जिसमें लीलाधारीको बिना पहलेसे कुछ सोचे-विचारे तत्काल रूप ग्रहण करना था। नृसिंहभगवान् सब प्रकारकी विकट परिस्थितिके लिये तैयार थे। कौसल्याके अथवा देवकीके गर्भसे जन्म लेते समय प्रभुको सोचने-विचारनेका तथा एक विशिष्ट ढंग और मनोवृत्तिसे काम करनेके लिये पर्याप्त समय था। नृसिंह भगवान्को अपने उस पुरातन भृत्यपर अविलम्ब सहसा टूट पड़ना था। यह कार्य उन्होंने अपनी तुष्टि तथा देवताओं और ऋषियोंकी पूर्ण तुष्टिके साथ किया। यदि उन्होंने एक क्षणके लिये भी विलम्ब किया होता तो उनके प्राकट्यका उद्देश्य पूरा न हो पाता। इसी कारण भक्तोंने अनुभव किया है कि नृसिंहावतार अत्यन्त ही हृदयग्राही और अर्थपूर्ण था। हिरण्यकशिपुने अपने स्वामीके साथ युद्ध किया और अभिलषित मृत्यु प्राप्त की।

जय और विजयने परम तपस्वी और भक्त सनकादिक चारों भाइयोंका अपमान किया था। द्वारपालोंके व्यवहारसे वे चारों क्षुब्ध हो उठे थे। नारायणको अपने परमोच्च धामसे उनको तुष्ट करनेके लिये अवतरित होना पड़ा। द्वारपालोंको शाप मिला था कि वे वैकुण्ठधामसे च्युत होकर मृत्युलोकमें जाकर जन्म लें। प्रभुको इस शापके विरुद्ध कुछ कहना तो था ही नहीं, इसलिये अपने द्वारपालोंको भवबन्धनसे मुक्त करनेके लिये वे आनन्दमय लोकसे इस दुःखमय लोकमें अवतरित हुए। वराह-नृसिंह अवतारका यही यथार्थ हेतु है। सृष्टिके सारे जीवोंके प्रति उन परम प्रभुका सच्चा प्रेम है। उनको अपने ही भृत्योंको तीन जन्मोंमें समुचित दण्ड देनेका क्लेशजनक अभिनय करके अपने प्रेमकी घोषणा करनी थी तथा चार पवित्र आत्माओंका अकारण अपमान करनेके दोषसे उनके अन्तःकरणको मुक्त करना था।

हयग्रीवको दो दैत्योंसे लड़ना पड़ा। वे इस प्रथम युद्धमें विजयी हुए और दिव्य तथा वैदिक ज्ञानसे उन्होंने मानवताको उपकृत किया। जब जीवनको चिरस्थायी करनेवाले अमृतको प्राप्त करनेके लिये क्षीरसागरको मथा गया था, उस समय कूर्म-अवतारको जगत्के कल्याणके लिये भारी भार वहन करना पड़ा।

वामन-अवतार प्रथम अति लघु देवरूप था। बादमें दैत्यराज बलिके द्वारा तीन पग भूमि दान करनेका संकल्प करनेके पश्चात् वह लघु याचक ब्रह्मचारी 'त्रिविक्रम' बन गया और उसने अपनी दो ही डगोंमें सम्पूर्ण त्रिलोकीको नाप लिया और बलिको सुतललोकमें भेज दिया। कहा जाता है कि सुतल-लोकमें बलिके राजमहलके द्वारपर खड़े रहकर वे अब भी पहरा देते हैं।

परशुराम एक अंशावतार थे। उन्होंने कार्तवीर्य अर्जुनके वंशका उच्छेद करनेके जोशमें अनेक राजाओंके वंशका

संहार कर डाला। श्रीरामके सम्मुख परशुरामकी सारी शक्ति जाती रही।

श्रीरामने सदा ही शुद्धहृदयके मानवके समान कार्य किया। उन्होंने अपने ईश्वरीय स्वभावको बहुत कम स्थलोंमें प्रदर्शित किया। उनके जीवनका अवसान आजीवन धर्मस्थापनाके लिये समर्पित जीवनकी भाँति ही हुआ। श्रीरामने अनुग्रहपूर्वक सारी मानवता और चराचर जीवोंके परम कल्याणके लिये सरयूमें अपने शरीरको विसर्जित कर दिया। श्रीराम अपने जीवनके अन्तमें बहुत-से तृषित जीवोंको अपने साथ स्वर्ग ले जाते हैं, परंतु हनुमान्‌को मानवताकी सेवामें अपनी लीला-कथाका प्रचार करनेके लिये जगत्‌में छोड़ जाते हैं। हनुमान्‌जी अपने प्रभुके चरणोंमें ईश्वर-तत्त्वके ज्ञानकी दीक्षा लेते हैं।

कृष्णावतार अनेक दृष्टिसे पूर्ण है। श्रीकृष्ण विभिन्न रसोंकी प्रतिमूर्ति हैं। श्रीकृष्णका व्यक्तित्व विलक्षण है। व्रजबालाओंके प्रति लोकातीत, कामातीत, वासनातीत, अहैतुक, अविरल प्रेममयता श्रीकृष्णके व्यक्तित्वकी परम अद्भुत विशेषता है, जिसका चरम प्रकाश शारदीय रासक्रीड़ाके अवसरपर होता है। रासक्रीड़ाके समय उनका एक स्वरूप है तो गीताका उपदेश करते समय उनका दूसरा ही स्वरूप है और उद्धवके प्रति उपदेश उनके एक तीसरे ही स्वरूपका कार्य है। उनका पार्थसारथित्व उनके महान् जीवनकी एक सुन्दर अभिव्यक्ति है। युद्धभूमिमें ही उन्होंने कतिपय उपदेशोंमें अपनी महती प्रकृतिको प्रदर्शित किया है। श्रीकृष्णने सारथिके रूपमें मानव-समाजको अत्यन्त विचारोद्दीपक उपदेश दिया है। इस प्रकारके उपदेश उपनिषदोंमें पाये जाते हैं। इसी कारण हम विश्वास करते हैं कि श्रीमद्भगवद्गीता सब उपनिषदोंका संक्षिप्त सार है। कृष्णावतारके कतिपय स्वरूप सचमुच ही विचारोद्दीपक हैं और हमको जीवनके वास्तविक लक्ष्यकी ओर प्रेरित करते हैं।

प्रायः श्रीनारायणके प्रत्येक अवतारका एक-एक पुराण है। श्रीराम और श्रीकृष्णकी महिमाकी घोषणा करनेवाले वाल्मीकीय रामायण और महाभारत दो इतिहास हैं। अवतारके सिद्धान्तको बहुत थोड़े शब्दोंमें श्रीकृष्णने अपनी गीतामें यों घोषित किया है कि 'जब-जब धर्मकी ग्लानि होती है और अधर्म अपना सिर उठाता है, तब-तब मैं अवतार लेता हूँ। जब कभी जिस किसी पापीके द्वारा साधुजनोंको यन्त्रणा दी जाती है, उससमय अपने उन भक्तोंकी रक्षाके लिये मैं जन्म लेता हूँ।' अवतारका उद्देश्य धर्मकी स्थापना और अधर्मका उच्छेद तथा साधु पुरुषोंकी रक्षा और पापियोंका विनाश करना है। तथागत बुद्धको भी श्रीनारायणका अवतार माना जाता है, भले उनका तत्त्वज्ञान शून्यता और निर्वाणमें पर्यवसित होता है।

अवतारसम्बन्धी अपने विचारोंका उपसंहार करते समय हम अवतारोंके विषयमें संक्षिप्त दृष्टि डालते हैं तो देखते हैं कि इनके द्वारा सारे संसारमें धार्मिक विचारके लोगोंको भ्रातृ-भावके प्रसारमें सहायता मिलती है। हम कहते हैं कि यह कलियुग है। कल्कि इस युगके अवतार हैं। कुछ विद्वान्‌लोग कहते हैं कि कल्कि-अवतार कुछ ही वर्षोंके भीतर होनेवाला है। आज जगत् पापमय विचारों, कर्मों और प्रदर्शनोंसे भरपूर है। बहुत कम लोग हैं, जो इस उत्पातके वेगको रोकनेकी चेष्टा कर सकते हैं। यदि प्रभुको प्रतीत होता हो कि यह संकटमय काल उनके अवतार लेनेका है तो हम उनसे प्रार्थना करते हैं कि वे जो कुछ करना चाहते हैं, अपनी मर्जीसे करें; क्योंकि जो अशिक्षित हैं, उनको सिखाना कहीं आसान काम है; किंतु जो ज्ञानलव-दुर्विदग्ध हैं, उनकी भगवदवतार-सम्बन्धी मान्यताओंको तथा मानव-समाजके भविष्यसे सम्बन्ध रखनेवाले विचारोंको ठीक करना दुरूह है। यह दुरूह कार्य भगवान्‌के द्वारा ही हो सकता है। भागवती शक्तिके द्वारा इस दुरूह कार्यके सम्पन्न कर दिये जानेपर वह स्थिति उत्पन्न हो सकती है, जिसमें मानव-समाजको शान्तिमय जीवन व्यतीत करने और धर्म-तत्त्वके यथार्थ लक्ष्यको प्राप्त करनेकी अनुकूलता सुलभ हो सके।

अवतार—एक विवेचन

(लेखक—श्री एन० कनकराज अय्यर)

मनुष्यके ऊपर भगवान् श्रीमहाविष्णुकी परम कृपा सदैव बरसती रहती है। वे परम प्रभु सभी चराचर जीवोंके ऊपर असीम अनुग्रह और स्नेह रखते हैं। वे बुद्धिकी पहुँचसे परे हैं और किसी प्रकारके जागतिक बन्धनमें नहीं आते; परंतु अपनी इच्छासे प्रयोजन होनेपर जन्म लेते हैं। फिर भी उनका जन्म और तिरोभाव साधारण मनुष्य और अन्य प्राणियोंकी जन्म-मृत्युके समान नहीं होता। श्रीराम और श्रीकृष्णने एक कालविशेषमें मानव-समाजके कल्याणके लिये मानव-शरीर धारण किया था। उनके वराहावतारमें हमको द्विविध प्रयोजन देखनेको मिलता है। वे आदिवराह ही थे, जिन्होंने हिरण्याक्षको पराभूत करके पृथ्वीका उद्धार किया। भयानक शत्रुके साथ युद्ध करना श्रीनारायणके लिये एक आसान खेल हो सकता है; परंतु दैत्यके द्वारा विशृङ्खलित सम्पूर्ण जगत्को पुनः नियमबद्ध करना महान् अनुग्रहका काम है।

श्रीनरसिंहरूपमें भगवान्को एक विचित्र आकृति धारण करनी पड़ी, जो हिरण्यकशिपुके लिये अभिवाञ्छनीय थी। वह किसी मनुष्य या पशुके द्वारा, घरके भीतर या बाहर, दिनमें या रातमें पराभूत होना नहीं चाहता था। अतएव प्रभुको नर और पशु, अर्थात् ठीक नृसिंह-रूपमें अवतरित होना पड़ा। वे किसी मनुष्य या पशु अथवा दैवसे उत्पन्न नहीं हुए थे। उन्हें अवतार लेनेके बाद तुरंत शत्रुपर आक्रमण करना था। यह जीवन और मृत्युकी एक लीला थी, जिसमें लीलाधारीको बिना पहलेसे कुछ सोचे-विचारे तत्काल रूप ग्रहण करना था। नृसिंहभगवान् सब प्रकारकी विकट परिस्थितिके लिये तैयार थे। कौसल्याके अथवा देवकीके गर्भसे जन्म लेते समय प्रभुको सोचने-विचारनेका तथा एक विशिष्ट ढंग और मनोवृत्तिसे काम करनेके लिये पर्याप्त समय था। नृसिंह भगवान्को अपने उस पुरातन भृत्यपर अविलम्ब सहसा टूट पड़ना था। यह कार्य उन्होंने अपनी तुष्टि तथा देवताओं और ऋषियोंकी पूर्ण तुष्टिके साथ किया। यदि उन्होंने एक क्षणके लिये भी विलम्ब किया होता तो उनके प्राकट्यका उद्देश्य पूरा न हो पाता। इसी कारण भक्तोंने अनुभव किया है कि नृसिंहावतार अत्यन्त ही हृदयग्राही और अर्थपूर्ण था। हिरण्यकशिपुने अपने स्वामीके साथ युद्ध किया और अभिलषित मृत्यु प्राप्त की।

जय और विजयने परम तपस्वी और भक्त सनकादिक चारों भाइयोंका अपमान किया था। द्वारपालोंके व्यवहारसे वे चारों क्षुब्ध हो उठे थे। नारायणको अपने परमोच्च धामसे उनको तुष्ट करनेके लिये अवतरित होना पड़ा। द्वारपालोंको शाप मिला था कि वे वैकुण्ठधामसे च्युत होकर मृत्युलोकमें जाकर जन्म लें। प्रभुको इस शापके विरुद्ध कुछ कहना तो था ही नहीं, इसलिये अपने द्वारपालोंको भवबन्धनसे मुक्त करनेके लिये वे आनन्दमय लोकसे इस दुःखमय लोकमें अवतरित हुए। वराह-नृसिंह अवतारका यही यथार्थ हेतु है। सृष्टिके सारे जीवोंके प्रति उन परम प्रभुका सच्चा प्रेम है। उनको अपने ही भृत्योंको तीन जन्मोंमें समुचित दण्ड देनेका क्लेशजनक अभिनय करके अपने प्रेमकी घोषणा करनी थी तथा चार पवित्र आत्माओंका अकारण अपमान करनेके दोषसे उनके अन्तःकरणको मुक्त करना था।

हयग्रीवको दो दैत्योंसे लड़ना पड़ा। वे इस प्रथम युद्धमें विजयी हुए और दिव्य तथा वैदिक ज्ञानसे उन्होंने मानवताको उपकृत किया। जब जीवनको चिरस्थायी करने-वाले अमृतको प्राप्त करनेके लिये क्षीरसागरको मथा गया था, उस समय कूर्म-अवतारको जगत्के कल्याणके लिये भारी भार वहन करना पड़ा।

वामन-अवतार प्रथम अति लघु देवरूप था। बादमें दैत्यराज बलिके द्वारा तीन पग भूमि दान करनेका संकल्प करनेके पश्चात् वह लघु याचक ब्रह्मचारी 'त्रिविक्रम' बन गया और उसने अपनी दो ही डगोंमें सम्पूर्ण त्रिलोकीको नाप लिया और बलिको सुतललोकमें भेज दिया। कहा जाता है कि सुतल-लोकमें बलिके राजमहलके द्वारपर खड़े रहकर वे अब भी पहरा देते हैं।

परशुराम एक अंशावतार थे। उन्होंने कार्तवीर्य अर्जुनके वंशका उच्छेद करनेके जोशमें अनेक राजाओंके वंशका

संहार कर डाला। श्रीरामके सम्मुख परशुरामकी सारी शक्ति जाती रही।

श्रीरामने सदा ही शुद्धहृदयके मानवके समान कार्य किया। उन्होंने अपने ईश्वरीय स्वभावको बहुत कम स्थलोंमें प्रदर्शित किया। उनके जीवनका अवसान आजीवन धर्मस्थापनाके लिये समर्पित जीवनकी भाँति ही हुआ। श्रीरामने अनुग्रहपूर्वक सारी मानवता और चराचर जीवोंके परम कल्याणके लिये सरयूमें अपने शरीरको विसर्जित कर दिया। श्रीराम अपने जीवनके अन्तमें बहुत-से तृषित जीवोंको अपने साथ स्वर्ग ले जाते हैं, परंतु हनुमान्‌को मानवताकी सेवामें अपनी लीला-कथाका प्रसार करनेके लिये जगत्‌में छोड़ जाते हैं। हनुमान्‌जी अपने प्रभुके चरणोंमें ईश्वर-तत्त्वके ज्ञानकी दीक्षा लेते हैं।

कृष्णावतार अनेक दृष्टिसे पूर्ण है। श्रीकृष्ण विभिन्न रसोंकी प्रतिमूर्ति हैं। श्रीकृष्णका व्यक्तित्व विलक्षण है। व्रजबालाओंके प्रति लोकातीत, कामातीत, वासनातीत, अहैतुक, अविरल प्रेममयता श्रीकृष्णके व्यक्तित्वकी परम अद्भुत विशेषता है, जिसका चरम प्रकाश शारदीय रासक्रीड़ाके अवसरपर होता है। रासक्रीड़ाके समय उनका एक स्वरूप है तो गीताका उपदेश करते समय उनका दूसरा ही स्वरूप है और उद्धवके प्रति उपदेश उनके एक तीसरे ही स्वरूपका कार्य है। उनका पार्थसारथित्व उनके महान् जीवनकी एक सुन्दर अभिव्यक्ति है। युद्धभूमिमें ही उन्होंने कतिपय उपदेशोंमें अपनी महती प्रकृतिको प्रदर्शित किया है। श्रीकृष्णने सारथिके रूपमें मानव-समाजको अत्यन्त विचारोद्दीपक उपदेश दिया है। इस प्रकारके उपदेश उपनिषदोंमें पाये जाते हैं। इसी कारण हम विश्वास करते हैं कि श्रीमद्भगवद्गीता सब उपनिषदोंका संक्षिप्त सार है। कृष्णावतारके कतिपय स्वरूप सचमुच ही विचारोद्दीपक हैं और हमको जीवनके वास्तविक लक्ष्यकी ओर प्रेरित करते हैं।

प्रायः श्रीनारायणके प्रत्येक अवतारका एक-एक पुराण है। श्रीराम और श्रीकृष्णकी महिमाकी घोषणा करनेवाले वाल्मीकीय रामायण और महाभारत दो इतिहास हैं। अवतारके सिद्धान्तको बहुत थोड़े शब्दोंमें श्रीकृष्णने अपनी गीतामें यों घोषित किया है कि 'जब-जब धर्मकी ग्लानि होती है और अधर्म अपना सिर उठाता है, तब-तब मैं अवतार लेता हूँ। जब कभी जिस किसी पापीके द्वारा साधुजनोंको यन्त्रणा दी जाती है, उससमय अपने उन भक्तोंकी रक्षाके लिये मैं जन्म लेता हूँ।' अवतारका उद्देश्य धर्मकी स्थापना और अधर्मका उच्छेद तथा साधु पुरुषोंकी रक्षा और पापियोंका विनाश करना है। तथागत बुद्धको भी श्रीनारायणका अवतार माना जाता है, भले उनका तत्त्वज्ञान शून्यता और निर्वाणमें पर्यवसित होता है।

अवतारसम्बन्धी अपने विचारोंका उपसंहार करते समय हम अवतारोंके विषयमें संक्षिप्त दृष्टि डालते हैं तो देखते हैं कि इनके द्वारा सारे संसारमें धार्मिक विचारके लोगोंको भ्रातृ-भावके प्रसारमें सहायता मिलती है। हम कहते हैं कि यह कलियुग है। कल्कि इस युगके अवतार हैं। कुछ विद्वान्‌लोग कहते हैं कि कल्कि-अवतार कुछ ही वर्षोंके भीतर होनेवाला है। आज जगत् पापमय विचारों, कर्मों और प्रदर्शनोंसे भरपूर है। बहुत कम लोग हैं, जो इस उत्पातके वेगको रोकनेकी चेष्टा कर सकते हैं। यदि प्रभुको प्रतीत होता हो कि यह संकटमय काल उनके अवतार लेनेका है तो हम उनसे प्रार्थना करते हैं कि वे जो कुछ करना चाहते हैं, अपनी मर्जीसे करें; क्योंकि जो अशिक्षित हैं, उनको सिखाना कहीं आसान काम है; किंतु जो ज्ञानलव-दुर्विदग्ध हैं, उनकी भगवदवतार-सम्बन्धी मान्यताओंको तथा मानव-समाजके भविष्यसे सम्बन्ध रखनेवाले विचारोंको ठीक करना दुरूह है। यह दुरूह कार्य भगवान्‌के द्वारा ही हो सकता है। भागवती शक्तिके द्वारा इस दुरूह कार्यके सम्पन्न कर दिये जानेपर वह स्थिति उत्पन्न हो सकती है, जिसमें मानव-समाजको शान्तिमय जीवन व्यतीत करने और धर्म-तत्त्वके यथार्थ लक्ष्यको प्राप्त करनेकी अनुकूलता सुलभ हो सके।

भगवान् श्रीविष्णुके चौबीस अवतार

[भगवान् अनन्त हैं। वे सर्वशक्तिमान् करुणामय परमात्मा अपना कोई प्रयोजन न रहनेपर भी साधु-परित्राण, धर्म-संरक्षण एवं जीवोंपर अनुग्रह करनेके लिये शरीर-धारण कर लिया करते हैं। उनके अवतरण और उनके अवतार-चरित्र भी अनन्त हैं। श्रीमद्भागवतमें सूतजीने कहा है—

अवतारा ह्यसंख्येया हरेः सत्त्वनिधेर्द्विजाः। यथाविदासिनः कुल्याः सरसः स्युः सहस्रशः॥

(१ । ३ । २६)

'जिस प्रकार किसी एक अक्षय जलाशयसे असंख्य छोटे-छोटे जल-प्रवाह निकलकर चारों ओर धावित होते हैं, उसी प्रकार सत्त्वनिधि परमेश्वरसे विविध अवतारोंकी उत्पत्ति होती है।' पुरुषावतार, गुणावतार, कल्पावतार, युगावतार, पूर्णावतार, अंशावतार, कलावतार, आवेशावतार आदि उनके अवान्तर भेद हैं। कल्प-भेदसे प्रभु-चरित्रोंमें भी भिन्नता आती है। श्रीमद्भागवतादि पुराण-ग्रन्थोंमें सर्वसमर्थ, कल्याण-विग्रह प्रभुके मुख्यतया चौबीस अवतारोंका सविशेष वर्णन है; पर उनमें भी क्रम-भेद है। यहाँ हम दयाधामके उन अद्भुत एवं मङ्गलकर चौबीस अवतारोंका चरित्र स्थानाभाव-के कारण अत्यन्त संक्षेपमें दे रहे हैं। तथापि इस संक्षिप्त कथाके भी मनोयोगपूर्वक पठन-पाठनसे हमारे पाठक लाभान्वित होंगे, हमारा ऐसा विश्वास है। —सम्पादक]

[१]

श्रीसनकादि

(लेखक—पं० श्रीशिवनाथजी दुबे)

सृष्टिके प्रारम्भमें लोकपितामह ब्रह्माने विविध लोकोंको रचनेकी इच्छासे तपस्या की। स्रष्टाके उस अखण्ड तपसे प्रसन्न होकर विश्वाधार प्रभुने 'तप' अर्थवाले 'सन' नामसे युक्त होकर सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार—इन चार निवृत्तिपरायण ऊर्ध्वरेता मुनियोंके रूपमें अवतार ग्रहण किया। ये प्राकट्य-कालसे ही मोक्षमार्ग-परायण, ध्यानमें तल्लीन रहनेवाले, नित्यसिद्ध एवं नित्य विरक्त थे। इन नित्य ब्रह्मचारियोंसे ब्रह्माजीके सृष्टि-विस्तारकी आशा पूरी नहीं हो सकी।

देवताओंके पूर्वज और लोकस्रष्टाके आद्य मानसपुत्र सनकादिकेमनमें कहीं किंचित् आसक्ति नहीं थी। वे प्रायः आकाश-मार्गसे विचरण किया करते थे। एक बार वे श्रीभगवान्के श्रेष्ठ वैकुण्ठधाममें पहुँचे। वहाँ सभी शुद्ध-सत्त्वमय चतुर्भुज रूपमें रहते हैं। सनकादि भगवद्दर्शनकी लालसासे वैकुण्ठकी दुर्लभ दिव्य दर्शनीय वस्तुओंकी उपेक्षा करते हुए छठी ड्योढ़ीके आगे बढ़ ही रहे थे कि भगवान्के पार्षद जय और विजयने उन पञ्चवर्षीय-से दीखनेवाले दिगम्बर तेजस्वी कुमारोंकी हँसी उड़ाते हुए उन्हें आगे बढ़नेसे रोक दिया। भगवद्दर्शनमें व्यवधान उत्पन्न होनेके कारण सनकादिने उन्हें दैत्यकुलमें जन्म लेनेका शाप दे दिया।

अपने प्राणप्रिय एवं अभिन्न सनकादि कुमारोंके अनादरका संवाद मिलते ही वैकुण्ठनाथ श्रीहरि तत्काल वहाँ पहुँच गये। भगवान्की अद्भुत, अलौकिक एवं दिव्य सौन्दर्यराशिके दर्शन कर सर्वथा विरक्त सनकादि कुमार चकित हो गये। वे अपलक नेत्रोंसे प्रभुकी ओर देखने लगे। उनके हृदयमें आनन्द-सिन्धु उच्छलित हो रहा था। उन्होंने वनमालाधारी लक्ष्मीपति भगवान् श्रीविष्णुकी स्तुति करते हुए कहा—

प्रादुश्चकर्थ यदिदं पुरुहूत रूपं
तेनेश निर्वृतिमवापुरलं दृशो नः।
तस्मा इदं भगवते नम इद्विधेम
योऽनात्मनां दुरुदयो भगवान् प्रतीतः॥

(श्रीमद्भा० ३ । १५ । ५०)

'विपुलकीर्ति प्रभो! आपने हमारे सामने जो यह मनोहर रूप प्रकट किया है, उससे हमारे नेत्रोंको बड़ा ही सुख मिला है; विषयासक्त अजितेन्द्रिय पुरुषोंके लिये इसका दृष्टिगोचर होना अत्यन्त कठिन है। आप साक्षात् भगवान् हैं और इस प्रकार स्पष्टतया हमारे नेत्रोंके सामने प्रकट हुए हैं। हम आपको प्रणाम करते हैं।'

'ब्राह्मणोंकी पवित्र चरण-रजको मैं अपने मुकुटपर धारण करता हूँ।' श्रीभगवान्ने अत्यन्त मधुर वाणीमें कहा। 'जय विजयने मेरा अभिप्राय न समझकर आपलोगोंका

अपमान किया है। इस कारण आपने इन्हें दण्ड देकर सर्वथा उचित ही किया है।'

लोकोद्धारार्थ लोक-पर्यटन करनेवाले, सरलता एवं करुणाकी मूर्ति सनकादि कुमारोंने श्रीभगवान्‌की सारगर्भित मधुर वाणीको सुनकर उनसे अत्यन्त विनीत स्वरमें कहा—

यं वानयोर्दममधीश भवान् विधत्ते
वृत्तिं नु वा तदनुमन्महि निर्व्यलीकम्।
अस्मासु वा य उचितो ध्रियतां स दण्डो
येऽनागसौ वयमयुङ्क्ष्महि किल्बिषेण॥
(श्रीमद्भा० ३। १६। २५)

'सर्वेश्वर! इन द्वारपालोंको आप जैसा उचित समझें, वैसा दण्ड दें, अथवा पुरस्काररूपमें इनकी वृत्ति बढ़ा दें—हम निष्कपटभावसे सब प्रकार आपसे सहमत हैं। अथवा हमने आपके इन निरपराध अनुचरोंको शाप दिया है, इसके लिये हमें ही उचित दण्ड दें। हमें वह भी सहर्ष स्वीकार है।'

'यह मेरी प्रेरणासे ही हुआ है।' श्रीभगवान्‌ने उन्हें संतुष्ट किया। इसके अनन्तर सनकादिने सर्वाङ्गसुन्दर भगवान् विष्णु और उनके धामका दर्शन किया और प्रभुकी परिक्रमा कर उनका गुणगान करते हुए वे चारों कुमार लौट गये। जय-विजय इनके शापसे तीन जन्मोंतक क्रमशः हिरण्यकशिपु-हिरण्याक्ष, रावण-कुम्भकर्ण और शिशुपाल-दन्तवक्त्र हुए।

उस समय जब भगवान् सूर्यकी भाँति परमतेजस्वी सनकादि आकाश-मार्गसे भगवान्‌के अंशावतार महाराज पृथुके समीप पहुँचे, तब उन्होंने अपना अहोभाग्य समझते हुए उनकी सविधि पूजा की। उनका पवित्र चरणोदक माथेपर छिड़का और उन्हें सुवर्णके सिंहासनपर बैठाकर बद्धाञ्जलि हो विनयपूर्वक निवेदन किया—

अहो आचरितं किं मे मङ्गलं मङ्गलायनाः।
यस्य वो दर्शनं ह्यासीद्दुर्दर्शानां च योगिभिः॥
नैव लक्ष्यते लोको लोकान् पर्यटतोऽपि यान्।
यथा सर्वदृशं सर्व आत्मानं येऽस्य हेतवः॥
(श्रीमद्भा० ४। २२। ७, ९)

'मङ्गलमूर्ति मुनीश्वरो! आपके दर्शन तो योगियोंको भी दुर्लभ हैं; मुझसे ऐसा क्या पुण्य बना है, जिसके फलस्वरूप मुझे स्वतः आपका दर्शन प्राप्त हुआ।' 'इस दृश्य-प्रपञ्चके कारण महत्तत्त्वादि यद्यपि सर्वगत हैं, तो भी वे सर्वसाक्षी आत्माको नहीं देख सकते; इसी प्रकार यद्यपि आप समस्त लोकोंमें विचरते रहते हैं, तो भी अनधिकारी लोग आपको नहीं देख पाते।'

फिर अपने सौभाग्यकी सराहना करते हुए उन्होंने अत्यन्त आदरपूर्वक कहा—

तदहं कृतविश्रम्भः सुहृदो वस्तपस्विनाम्।
सम्पृच्छे भव एतस्मिन् क्षेमः केनाञ्जसा भवेत्॥
(श्रीमद्भा० ४। २२। १५)

'आप संसारानलसे संतप्त जीवोंके परम सुहृद् हैं; इसलिये आपमें विश्वास करके मैं यह पूछना चाहता हूँ कि इस संसारमें मनुष्यका किस प्रकार सुगमतासे कल्याण हो सकता है।'

भगवान् सनकादिने आदिराज पृथुका ऐसा प्रश्न सुनकर उनकी बुद्धिकी प्रशंसा की और उन्हें विस्तारपूर्वक कल्याणका उपदेश देते हुए कहा—

अर्थेन्द्रियार्थाभिध्यानं सर्वार्थापह्नवो नृणाम्।
भ्रंशितो ज्ञानविज्ञानाद्येनाविशति मुख्यताम्॥
न कुर्यात्कर्हिचित्सङ्गं तमस्तीव्रं तितीरिषुः।
धर्मार्थकाममोक्षाणां यदत्यन्तविघातकम्॥
कृच्छ्रो महानिह भवार्णवमप्लवेशां
षड्वर्गनक्रमसुखेन तितीरषन्ति।
तत्त्वं हरेर्भगवतो भजनीयमङ्घ्रिं
कृत्वोडुपं व्यसनमुत्तर दुस्तरार्णम्॥
(श्रीमद्भा० ४। २२। ३३-३४, ४०)

'धन और इन्द्रियोंके विषयोंका चिन्तन करना मनुष्यके सभी पुरुषार्थोंका नाश करनेवाला है; क्योंकि इनकी चिन्तासे वह ज्ञान और विज्ञानसे भ्रष्ट होकर वृक्षादि स्थावर योनियोंमें जन्म पाता है। इसलिये जिसे अज्ञानान्धकारसे पार होनेकी इच्छा हो, उस पुरुषको विषयोंमें आसक्ति कभी नहीं करनी चाहिये; क्योंकि यह धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी प्राप्तिमें बड़ी बाधक है।

'जो लोग मन और इन्द्रियरूप मगरोंसे संकुल इस संसार-सागरको योगादि दुष्कर साधनोंसे पार करना चाहते हैं, उनका उस पार पहुँचना कठिन ही है; क्योंकि उन्हें कर्णधाररूप श्रीहरिका आश्रय नहीं है। अतः तुम तो भगवान्‌के आराधनीय चरण-कमलोंको नौका बनाकर अनायास ही इस दुस्तर दुःख-समुद्रको पार कर लो।'

भगवान् सनकादिके इस अमृतमय उपदेशसे आप्यायित होकर आदिराज पृथुने उनकी स्तुति करते हुए पुनः उनकी श्रद्धा-भक्तिपूर्वक सविधि पूजा की।

ऋषिगण प्रलयके कारण पहले कल्पका आत्मज्ञान भूल गये थे। श्रीभगवान्‌ने अपने इस अवतारमें उन्हें यथोचित उपदेश दिया, जिससे उन लोगोंने शीघ्र ही अपने हृदयमें उस तत्त्वका साक्षात्कार कर लिया।

सनकादि अपने योगबलसे अथवा '**हरिः शरणम्**' मन्त्रके जप-प्रभावसे सदा पाँच वर्षके ही कुमार बने रहते हैं। ये प्रमुख योगवेत्ता, सांख्यज्ञान-विशारद, धर्मशास्त्रोंके आचार्य तथा मोक्षधर्मके प्रवर्तक हैं। श्रीनारदजीको इन्होंने श्रीमद्भागवतका उपदेश किया था।

भगवान् सनत्कुमारने ऋषियोंके तत्त्वज्ञान-सम्बन्धी प्रश्नके उत्तरमें सुविस्तृत उपदेश देते हुए बताया था—

नास्ति विद्यासमं चक्षुर्नास्ति सत्यसमं तपः।
नास्ति रागसमं दुःखं नास्ति त्यागसमं सुखम्॥
निवृत्तिः कर्मणः पापात् सततं पुण्यशीलता।
सद्वृत्तिः समुदाचारः श्रेय एतदनुत्तमम्॥

(महा०, शान्ति० ३२९। ६-७)

'विद्याके समान कोई नेत्र नहीं है। सत्यके समान कोई तप नहीं है। रागके समान कोई दुःख नहीं है और त्यागके समान कोई सुख नहीं है। पापकर्मोंसे दूर रहना, सदा पुण्यकर्मोंका अनुष्ठान करना, श्रेष्ठ पुरुषोंके-से बर्ताव और सदाचारका पालन करना—यही सर्वोत्तम श्रेय (कल्याण) का साधन है।'

प्राणिमात्रके सच्चे शुभाकाङ्क्षी कुमारचतुष्टयके पावन पद-पद्मोंमें अनन्त प्रणाम!

[२]

भगवान् वराह

स्रुक्तुण्ड सामस्वरधीरनाद प्राग्वंशकायाखिलसत्रसंधे।
पूर्तेष्टधर्मश्रवणोऽसि देव सनातनात्मन् भगवन् प्रसीद॥

(विष्णुपुराण १। ४। ३४)

'प्रभो! स्रुक् आपका तुण्ड (थूथनी) है, सामस्वर धीर-गम्भीर शब्द है, प्राग्वंश (यजमानगृह) शरीर है तथा सम्पूर्ण सत्र (सोमयाग) शरीरकी संधियाँ हैं। देव! इष्ट (यज्ञ-यागादि) और पूर्त (कुआँ, बावली, तालाब आदि खुदवाना, बगीचा लगाना आदि लोकोपकारी कार्य) रूप धर्म आपके कान हैं। नित्यस्वरूप भगवन्! प्रसन्न होइये।'

× × ×

सम्पूर्ण शुद्ध-सत्त्वमय लोकोंके शिरोभागमें भगवान् विष्णुका वैकुण्ठधाम स्थित है। वहाँ वेदान्तप्रतिपाद्य धर्ममूर्ति, श्रीआदिनारायण अपने भक्तोंको सुखी करनेके लिये शुद्धसत्त्वमय स्वरूप धारणकर निरन्तर विराजमान रहते हैं। विष्णुप्रिया श्रीलक्ष्मीजी वहाँ चञ्चलता त्यागकर निवास करती हैं। उस दिव्य और अद्भुत वैकुण्ठधाममें सभी लोग विष्णुरूप होकर रहते हैं और वहाँ सम्पूर्ण कामनाओंको त्यागकर अपने धर्मद्वारा उन क्षीराब्धिशायीकी आराधना करनेवाले परम भागवत ही प्रवेश पाते हैं।

एक बारकी बात है। आसक्ति त्यागकर समस्त लोकोंमें आकाशमार्गसे विचरण करनेवाले चतुर्मुख ब्रह्माके मानसपुत्र सनकादि उक्त अलौकिक वैकुण्ठधाममें जा पहुँचे। उनके मनमें भगवद्दर्शनकी लालसा थी, इस कारण वे अन्य दर्शनीय सामग्रियोंकी उपेक्षा करते आगे बढ़ते हुए छः ड्योढ़ियाँ पार कर गये। जब वे सातवीं ड्योढ़ीपर पहुँचे, तब उन्हें हाथमें गदा लिये दो समान आयुवाले देवश्रेष्ठ दिखलायी दिये। वे बाजूबंद, कुण्डल और किरीट आदि अनेक बहुमूल्य आभूषणोंसे अलंकृत थे। उनकी चार श्यामल भुजाओंके बीच वनमाला सुशोभित थी, जिसपर भ्रमर गुंजार कर रहे थे।

समदर्शी सनकादि सातवीं ड्योढ़ीमें प्रवेश कर ही रहे थे कि श्रीभगवान्‌के उन दोनों द्वारपालोंने उन्हें दिगम्बर-वृत्तिमें देखकर उनकी हँसी उड़ायी और बेंत अड़ाकर उन्हें आगे बढ़नेसे रोक दिया।

'तुम भगवान् वैकुण्ठनाथके पार्षद हो, किंतु तुम्हारी बुद्धि अत्यन्त मन्द है।' सनकादिने क्रुद्ध होकर उन्हें शाप देते हुए कहा—'तुम तो देव-रूपधारी हो; फिर भी तुम्हें ऐसा क्या दिखायी देता है, जिससे तुमने भगवान्‌के साथ कुछ भेदभावके कारण होनेवाले भयकी कल्पना कर ली? तुम अपनी भेदबुद्धिके दोषसे इस वैकुण्ठलोकसे निकलकर उन पापपूरित योनियोंमें जाओ, जहाँ काम, क्रोध एवं लोभ—प्राणियोंके ये तीन शत्रु निवास करते हैं।'

'भगवन्! हमने निश्चय ही अपराध किया है' सनकादिके दुर्निवार शापसे व्याकुल होकर दोनों पार्षद उनके चरणोंमें
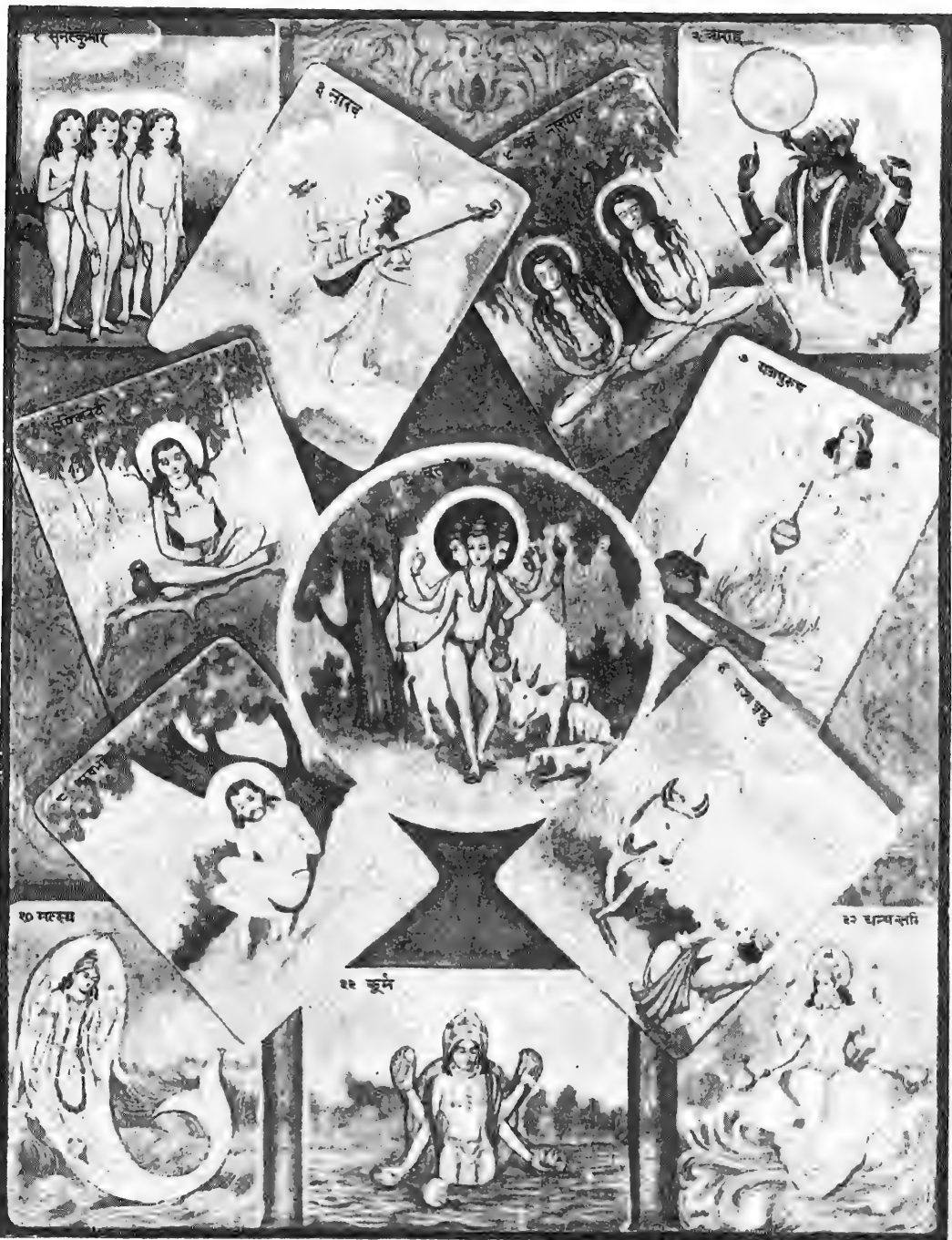
भगवान् विष्णुके चौबीस अवतार (१) [पृष्ठ २५८—२९५]

लौटकर अत्यन्त दीनभावसे प्रार्थना करने लगे—'आपके दण्डसे हमारे पापका प्रक्षालन हो जायगा; किंतु आप इतनी कृपा करें कि अधमाधम योनियोंमें जानेपर भी हमारी भगवत्स्मृति बनी रहे।'

इधर श्रीभगवान् पद्मनाभको जब विदित हुआ कि हमारे पार्षदोंने सनकादिका अनादर किया है, तब वे तुरंत लक्ष्मीजीके साथ वहाँ पहुँच गये। समाधिके विषय भुवनमोहन चतुर्भुज विष्णुकी अचिन्त्य, अनन्त सौन्दर्यराशिके दर्शन कर सनकादिकी विचित्र दशा हो गयी। वे अपनेको सँभाल न सके और करुणासिन्धु भगवान् कमलनयनके चरणारविन्द-मकरन्दसे मिली तुलसीमञ्जरीकी अलौकिक गन्धसे उनके मनमें भी खलबली उत्पन्न हो गयी।

ते वा अमुष्य वदनासितपद्मकोश-
मुद्वीक्ष्य सुन्दरतराधरकुन्दहासम्।
लब्धाशिषः पुनरवेक्ष्य तदीयमङ्घ्रि-
द्वन्द्वं नखारुणमणिश्रयणं निदध्युः॥
(श्रीमद्भागवत ३। १५। ४४)

'भगवान्‌का मुख नील कमलके समान था, अति सुन्दर अधर और कुन्दकलीके समान मनोहर हाससे उसकी शोभा और भी बढ़ गयी थी। उसकी झाँकी करके वे कृतकृत्य हो गये और फिर पद्मरागके समान लाल-लाल नखोंसे सुशोभित उनके चरण-कमल देखकर वे उन्हींका ध्यान करने लगे।'

फिर प्रभुके प्रत्यक्ष दर्शनका परम सौभाग्य प्राप्तकर वे निखिलसृष्टिनायककी स्तुति और उनके मङ्गलमय चरण-कमलोंमें प्रणाम करने लगे।

'मुनियो!' वैकुण्ठनिवास श्रीहरिने उनकी प्रशंसा करते हुए कहा—'ये जय-विजय मेरे पार्षद हैं। इन्होंने आपका अपराध किया है। आपने इन्हें दण्ड देकर उचित ही किया है। ब्राह्मण मेरे परम आराध्य हैं। मेरे अनुचरोंके द्वारा आपलोगोंका जो अनादर हुआ है, उसे मैं अपने द्वारा ही किया मानता हूँ। मैं आपलोगोंसे प्रसन्नताकी भिक्षा माँगता हूँ।'

'त्रैलोक्यनाथ!' सनकादिने प्रभुकी अर्थपूर्ण और सारयुक्त गम्भीर वाणी सुनकर उनका गुणगान करते हुए कहा—'आप सत्त्वगुणकी खान और सम्पूर्ण जीवोंके कल्याणके लिये सदा उत्सुक रहते हैं। इन द्वारपालोंको आप दण्ड अथवा पुरस्कार दें, हम विशुद्ध हृदयसे आपसे सहमत हैं या हमने क्रोधवश इन्हें शाप दे दिया, इसके लिये हमें ही दण्डित करें, हमें सहर्ष स्वीकार है।'

'मुनियो!' दयामय प्रभुने सनकादिसे अत्यन्त स्नेहपूर्वक कहा—'आप सत्य समझिये, आपका यह शाप मेरी ही प्रेरणासे हुआ है। ये दैत्ययोनिमें जन्म तो लेंगे, किंतु क्रोधावेशसे बढ़ी एकाग्रताके कारण शीघ्र ही मेरे पास लौट आयेंगे।'

सनकादि ऋषियोंने प्रभुकी अमृतमयी वाणीसे आप्यायित होकर उनकी परिक्रमा की और उनके त्रैलोक्यवन्दित चरणोंमें प्रणाम कर उनकी महिमाका गान करते हुए वे लौट गये।

'तुमलोग निर्भय होकर जाओ!' प्रभुने ऋषियोंके प्रस्थानके अनन्तर अपने अनुचरोंसे कहा—'तुम्हारा कल्याण होगा। मैं सर्वसमर्थ होकर भी ब्रह्मतेजकी रक्षा चाहता हूँ, यही मुझे अभीष्ट है। एक बार मेरे योगनिद्रामें स्थिर होनेपर तुम दोनोंने द्वारमें प्रवेश करती हुई लक्ष्मीजीको रोका था। उस समय उन्होंने क्रुद्ध होकर पहले ही तुम्हें शाप दे दिया था। अब दैत्ययोनिमें मेरे प्रति अत्यधिक क्रोधके कारण तुम्हारी जो एकाग्रता होगी, उससे तुम विप्र-तिरस्कारजनित पापसे मुक्त होकर कुछ ही समयमें मेरे पास लौट आओगे।'

श्रीभगवान्‌के पधारते ही सुरश्रेष्ठ जय-विजय ब्रह्मशापके कारण भगवान्‌के उस श्रेष्ठ धाममें ही श्रीहीन हो गये और उनका सारा गर्व चूर्ण हो गया।

× × ×

लीलामय प्रभुकी लीला अत्यन्त विचित्र होती है। उसका हेतु तथा रहस्य देवता और ऋषि-महर्षियोंकी भी समझमें नहीं आता, मनुष्य तो क्या समझे? किंतु प्रभुकी लीला जब हो, जैसी हो, होती है परम मङ्गलमयी; उसकी परिणति शुभ और कल्याणमें ही होती है।

प्रभुकी इसी अद्भुत लीलाके फलस्वरूप तपस्वी मरीचिनन्दन कश्यपमुनि जब खीरकी आहुतियोंद्वारा अग्निजिह्व भगवान्‌की उपासना कर सूर्यास्त देख अग्निशालामें ध्यानमग्न बैठे थे कि उनकी पत्नी दक्षपुत्री दितिदेवी उनके समीप पहुँचकर सर्वश्रेष्ठ संतान प्राप्त करनेकी कामना व्यक्त करने लगीं।

महर्षि कश्यपने उनकी इच्छापूर्तिका आश्वासन देते हुए असमयकी ओर संकेत किया, पर दिति अपनी कामनापूर्तिके लिये हठ करती ही जा रही थीं। महर्षि कश्यप जब सब प्रकारसे समझाकर थक गये, किंतु उनकी पत्नीका दुराग्रह नहीं टला, तब विवश होकर इसे श्रीभगवान्की लीला समझकर उन्होंने मन-ही-मन सर्वान्तर्यामी प्रभुके चरणोंमें प्रणाम किया और एकान्तमें जाकर दितिकी कामना-पूर्ति की और फिर स्नानोपरान्त यज्ञशालामें बैठकर तीन बार आचमन किया और सायंकालीन संध्या-वन्दन करने लगे।

संध्या-वन्दनादि कर्मसे निवृत्त होकर महर्षि कश्यपने देखा कि उनकी सहधर्मिणी दिति भयवश थर-थर काँप रही हैं और अपने गर्भके लौकिक तथा पारलौकिक उत्थानके लिये प्रार्थना कर रही हैं।

'तुमने चतुर्विध अपराध किया है।' महर्षि कश्यपने दिति-देवीसे कहा—'एक तो कामासक्त होनेके कारण तुम्हारा चित्त मलिन था, दूसरे, वह असमय था, तीसरे, तुमने मेरी आज्ञाका उल्लङ्घन किया और चौथे, तुमने रुद्र आदि देवताओंका तिरस्कार किया है; इस कारण तुम्हारे गर्भसे दो अत्यन्त अधम और क्रूरकर्मा पुत्र उत्पन्न होंगे। उनके कुकर्मों एवं अत्याचारोंसे महात्मा पुरुष क्षुब्ध एवं धरित्री व्याकुल हो जायगी। वे इतने पराक्रमी और तेजस्वी होंगे कि ब्रह्मतेजसे भी वे प्रभावित नहीं होंगे। उनका वध करनेके लिये स्वयं नारायण दो पृथक्-पृथक् अवतार ग्रहण करेंगे। तुम्हारे दोनों पुत्रोंकी मृत्यु प्रभुके ही हाथों होगी।'

'भगवान् चक्रपाणिके हाथों मेरे पुत्रोंका अन्त हो, यह मैं भी चाहती हूँ।' कुछ संतोषके साथ दिति बोली—'ब्राह्मणों-के शापसे उनकी रक्षा हो जाय; क्योंकि ब्रह्मशापसे दग्ध प्राणीपर तो नारकीय जीव भी दया नहीं करते। मेरे पुत्रोंके कारण लक्ष्मीवल्लभ श्रीविष्णु अवतार ग्रहण करेंगे, यह अत्यन्त प्रसन्नताकी बात है, यद्यपि वे प्रभु-भक्त नहीं होंगे—इस बातका मुझे दुःख है।'

दितिदेवीका सर्वेश्वर प्रभुके प्रति सम्मानका भाव देखकर महामुनि कश्यप संतुष्ट हो गये। उन्होंने कहा—'देवि! तुम्हें अपने कर्मके प्रति पश्चात्ताप हो रहा है, शीघ्र ही तुम्हारा विवेक जाग्रत् हो गया और भगवान् विष्णु, भूतभावन शिव तथा मेरे प्रति भी तुम्हारे मनमें आदरका भाव दीख रहा है, इस कारण तुम्हारे एक पुत्रके चार पुत्रोंमें एक श्रीभगवान्का अनन्य भक्त होगा। वह श्रीभगवान्का अत्यन्त प्रीतिभाजन होगा और भक्तजन उसका सदा गुणगान करते रहेंगे। तुम्हारे उस पौत्रको कमलनयन हरिका प्रत्यक्ष दर्शन होगा।'

'मेरा पौत्र श्रीनारायण प्रभुका भक्त होगा तथा मेरे पुत्रोंके जीवनका अन्त श्रीहरिके द्वारा होगा'—यह जानकर दितिका मन उल्लाससे भर गया। किंतु अपने पुत्रोंके द्वारा सुर-समुदायके कष्टकी कल्पना कर उन्होंने अपने पति (कश्यपजी) के तेजको सौ वर्षतक उदरमें ही रक्खा। उस गर्भस्थ तेजसे लोकोंमें सूर्यादिका तेज क्षीण होने लगा। इन्द्रादि लोकपाल सभी तेजोहत हो गये।

'भूमन्!' इन्द्रादि देवगण तथा लोकपालादिने ब्रह्माके समीप जाकर उनकी स्तुतिके अनन्तर निवेदन किया—'इस समय सर्वत्र अन्धकार बढ़ता जा रहा है। दिन-रातका विभाग स्पष्ट न रहनेसे लोकोंके सारे कर्म लुप्त होते जा रहे हैं। सब दुःखी और व्याकुल हैं। आप उनका दुःख-निवारण कीजिये। दितिका गर्भ चतुर्दिक् अन्धकार फैलाता हुआ बढ़ता जा रहा है।'

'इस समय दक्षसुता दितिके उदरमें महर्षि कश्यपका उग्र तेज है' विधाताने अपने मानसपुत्र सनकादिके द्वारा वैकुण्ठ-धाममें श्रीनारायणके पार्षद जय-विजयको दिये हुए शापका वृत्तान्त सुनाते हुए कहा—'और उसमें श्रीनारायणके उन दोनों पार्षदोंने प्रवेश किया है। उन दोनों दैत्योंके तेजके सम्मुख ही तुम सबका तेज मलिन पड़ गया है। इस समय लीलाधर श्रीहरिकी यही इच्छा प्रतीत होती है। वे सृष्टि-स्थिति-संहारकारी श्रीहरि ही हम सबका कल्याण करेंगे। इस सम्बन्धमें हमलोगोंके सोच-विचार करनेका कोई अर्थ नहीं।'

शङ्का-निवारण हो जानेके कारण देवगण श्रीभगवान्का स्मरण करते हुए स्वर्गके लिये प्रस्थित हुए।

'मेरे पुत्र उपद्रवी होंगे और उनसे सत्पुरुषोंको कष्ट होगा'—यह आशङ्का दितिके मनमें बनी रहती थी। इस कारण सौ वर्ष पूरा हो जानेके उपरान्त उन्होंने दो यमज (जुड़वाँ) पुत्र उत्पन्न किये।

उन दैत्योंके धरतीपर पैर रखते ही पृथ्वी, आकाश और स्वर्गमें अनेकों उपद्रव होने लगे। अन्तरिक्ष तिमिराच्छन्न हो गया और बिजली चमकने लगी। पृथ्वी और पर्वत काँपने लगे। भयानक आँधी चलने लगी।

सर्वत्र अमङ्गलसूचक शब्द तथा प्रलयकारी दृश्य दृष्टिगोचर होने लगे। सनकादिके अतिरिक्त सभी जीव भयभीत हो गये। उन्होंने समझा कि अब संसारका प्रलय होनेवाला ही है।

वे दोनों दैत्य जन्म लेते ही पर्वताकार एवं परम पराक्रमी हो गये। प्रजापति कश्यपजीने उनमेंसे जो उनके वीर्यसे दितिके गर्भमें पहले स्थापित हुआ था, उसका नाम 'हिरण्यकशिपु' तथा जो दितिके गर्भसे पृथ्वीपर पहले आया, उसका नाम 'हिरण्याक्ष' रखा।

हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष—दोनों भाइयोंमें बड़ी प्रीति थी। दोनों एक-दूसरेको प्राणाधिक प्यार करते थे। दोनों ही महाबलशाली, अमित पराक्रमी एवं उद्धत थे। वे अपने सम्मुख किसीको कुछ नहीं समझते थे। हिरण्याक्षने अपनी विशाल गदा कंधेपर रखी और स्वर्ग जा पहुँचा। इन्द्रादि देवताओंके लिये उसका सामना करना सम्भव नहीं था। सब भयभीत होकर छिप गये। निराश हिरण्याक्ष अपने प्रतिपक्षीको ढूँढ़ने लगा, किंतु उसके सम्मुख कोई टिक नहीं पाता था।

अथ भूम्युपरि स्थित्वा मर्त्या यक्ष्यन्ति देवताः।
तेन तेषां बलं वीर्यं तेजश्चापि भविष्यति॥
इति मत्वा हिरण्याक्षः कृते सर्गे तु ब्रह्मणा।
भूमेर्या धारणाशक्तिस्तां नीत्वा स महासुरः॥
विवेश तोयमध्ये तु रसातलतलं नृप।
विना शक्त्या च जगती प्रविवेश रसातलम्॥

(नरसिंहपुराण ३९। ७—९)

एक बार उसने सोचा—'मर्त्यलोकमें रहनेवाले पुरुष पृथ्वीपर रहकर देवताओंका यजन करेंगे, इससे उनका बल, वीर्य और तेज बढ़ जायगा—यह सोचकर महान् असुर हिरण्याक्ष ब्रह्माजीद्वारा सृष्टि-रचना की जानेपर उसे धारण करनेकी भूमिमें जो धारणा-शक्ति थी, उसे ले जाकर जलके भीतर-ही-भीतर रसातलमें चला गया। आधारशक्तिसे रहित होकर यह पृथ्वी भी रसातलमें चली गयी।'

मदोन्मत्त हिरण्याक्षने देखा कि उसके तेजके सम्मुख सभी देवता छिप गये हैं, तब वह महाबलवान् दैत्य जलक्रीड़ाके लिये गम्भीर समुद्रमें घुस गया। उसे देखते ही वरुणके सैनिक जलचर भयवश दूर भागे। वहाँ भी किसीको न पाकर वह समुद्रकी उत्ताल तरंगोंपर ही अपनी गदा पटकने लगा। इस प्रकार प्रतिपक्षीको ढूँढ़ते हुए वह वरुणकी राजधानी विभावरीपुरीमें जा पहुँचा।

'मुझे युद्धकी भिक्षा दीजिये।' बड़ी ही अशिष्टतासे उसने वरुणदेवको प्रणाम करते हुए व्यंग्यसहित कहा। 'आपने कितने ही पराक्रमियोंके वीर्यमदको चूर्ण किया है। एक बार आपने सम्पूर्ण दैत्योंको पराजितकर राजसूय यज्ञ भी किया था। कृपया मेरी युद्धकी क्षुधाका निवारण कीजिये।'

'भाई! अब तो मेरी युद्धकी इच्छा नहीं है।' पराक्रमी और उन्मत्त शत्रुके व्यंग्यपर वरुणदेव क्रुद्ध तो हुए, पर प्रबल दैत्यको देखकर धैर्यपूर्वक उन्होंने कहा—'मेरी दृष्टिमें श्रीहरिके अतिरिक्त अन्य कोई योद्धा नहीं दीखता, जो तुम्हारे-जैसे वीरपुंगवको संतुष्ट कर सके। तुम उन्हींके पास जाओ। उनसे भिड़नेपर तुम्हारा अहंकार शान्त हो जायगा। वे तुम-जैसे दैत्योंके संहारके लिये अनेक अवतार ग्रहण किया करते हैं।'

× × ×

सत्यसंकल्प ब्रह्माजी सृष्टि-विस्तारके लिये मन-ही-मन श्रीहरिका स्मरण कर रहे थे कि अकस्मात् उनके शरीरके दो भाग हो गये। एक भागसे 'नर' हुआ और दूसरे भागसे 'नारी'। विधाता अत्यन्त प्रसन्न हुए।

''मेरे मनके अनुरूप होनेके कारण तुम्हारा नाम 'मनु' होगा।'' नरकी ओर देखकर उन्होंने कहा—''मुझ स्वयम्भूके पुत्र होनेसे तुम्हारा 'स्वायम्भुव' नाम भी प्रख्यात होगा। तुम्हारी बगलमें अपने शत-शत रूपोंसे मनको आकृष्ट करनेवाली सुन्दरी खड़ी है। इसका नाम 'शतरूपा' प्रसिद्ध होगा। तुम पति और यह तुम्हारी पत्नी होगी। मेरे आधे अङ्गसे बननेके कारण यह तुम्हारी अर्धाङ्गिनी होगी। तुम्हारे मध्य धर्म स्थित है। इसे साक्षी देकर तुम इसे सहधर्मिणी बना लो। यह तुम्हारी धर्मपत्नी होगी। तुम्हारे वंशज 'मनुष्य' कहे जायँगे।''

'भगवन्! एकमात्र आप ही सम्पूर्ण प्राणियोंके जीवनदाता हैं।' अत्यन्त विनयपूर्वक स्वायम्भुव मनुने अपने पिता विधातासे हाथ जोड़कर कहा। 'आप ही सबको जीविका प्रदान करनेवाले पिता हैं। हम ऐसा कौन सा

उत्तम कर्म करें, जिससे आप संतुष्ट हों और लोकमें हमारे यशका विस्तार हो।'

'मैं तुमसे अत्यधिक संतुष्ट हूँ।' सृष्टि-विस्तारके कार्यमें अपने पूर्वपुत्रोंसे निराश विधाताने प्रसन्न होकर मनुसे कहा। 'तुम अपनी इस भार्यासे अपने ही समान गुणवती संतति उत्पन्न कर धर्मपूर्वक पृथ्वीका पालन करते हुए यज्ञोंके द्वारा श्रीभगवान्‌की उपासना करो।'

'मैं आपकी आज्ञाका पालन अवश्य करूँगा;' मनुने श्रीब्रह्मासे निवेदन किया। 'किंतु आप मेरे तथा मेरी भावी प्रजाके रहनेयोग्य स्थान बताइये। पृथ्वी तो प्रलय-जलमें डूबी हुई है। उसके उद्धारका यत्न कीजिये।'

'अथाह जलमें डूबी पृथ्वीको कैसे निकालूँ?' चतुर्मुख ब्रह्मा विचार करने लगे। 'क्या करूँ?' फिर उन्होंने सोचा—'जिन श्रीहरिके संकल्पमात्रसे मेरा जन्म हुआ है, वे ही सर्वसमर्थ प्रभु यह कार्य करें।'

सर्वान्तर्यामी, सर्वलोकमहेश्वर प्रभुकी स्मृति होते ही अकस्मात् पद्मयोनिके नासाछिद्रसे अँगूठेके बराबर एक श्वेत वराह-शिशु निकला। विधाता उसकी ओर आश्चर्य चकित हो देख ही रहे थे कि वह तत्काल विशाल हाथीके बराबर हो गया।

'निश्चय ही यज्ञमूर्ति भगवान् हमलोगोंको मोहित कर रहे हैं।' स्वायम्भुव मनुके साथ ब्रह्माजी विचार करते हुए इस निष्कर्षपर पहुँचे। 'यह कल्याणमय प्रभुका ही वेदयज्ञमय वराह-वपु है।'

इतनेमें ही भगवान्‌का वराह-वपु पर्वताकार हो गया। उन यज्ञमूर्ति वराह भगवान्‌का घोर गर्जन चतुर्दिक् व्याप्त हो गया। वे घुर-घुराते और गरजते हुए मत्त गजेन्द्रकी-सी लीला करने लगे। उस समय मुनिगण प्रभुकी प्रसन्नताके लिये स्तुति कर रहे थे। वराह भगवान्‌का बड़ा ही अद्भुत एवं दिव्य स्वरूप था—

उत्क्षिप्तवालः खचरः कठोरः सटा विधुन्वन् खररोमशत्वक्।
खुराहताभ्रः सितदंष्ट्र ईक्षाज्योतिर्बभासे भगवान्महीध्रः॥
घ्राणेन पृथ्व्याः पदवीं विजिघ्रन् क्रोडापदेशः स्वयमध्वराङ्गः।
करालदंष्ट्रोऽप्यकरालदृग्भ्यामुद्वीक्ष्य विप्रान् गृणतोऽविशत् कम्॥
(श्रीमद्भागवत ३। १३। २७-२८)

'पहले वे सूकररूप भगवान् पूँछ उठाकर बड़े वेगसे आकाशमें उछले और अपनी गर्दनके बालोंको फटकारकर खुरोंके आघातसे बादलोंको छितराने लगे। उनका शरीर बड़ा कठोर था, त्वचापर कड़े-कड़े बाल थे, दाढ़ें सफेद थीं और नेत्रोंसे तेज निकल रहा था; उस समय उनकी बड़ी शोभा हो रही थी। भगवान् स्वयं यज्ञपुरुष हैं, तथापि सूकररूप धारण करनेके कारण अपनी नाकसे सूँघ-सूँघकर पृथ्वीका पता लगा रहे थे। उनकी दाढ़ें बड़ी कठोर थीं। इस प्रकार यद्यपि वे बड़े क्रूर जान पड़ते थे, तथापि अपनी स्तुति करनेवाले मरीचि आदि मुनियोंकी ओर बड़ी सौम्य दृष्टिसे निहारते हुए उन्होंने जलमें प्रवेश किया।'

वज्रमय पर्वतके तुल्य अत्यन्त कठोर और विशाल वराह भगवान्‌के कूदते ही महासागरमें ऊँची-ऊँची लहरें उठने लगीं। समुद्र जैसे व्याकुल होकर आकाशकी ओर जाने लगा। भगवान् वराह बड़े वेगसे जलको चीरते हुए रसातलमें पहुँचे। वहाँ उन्होंने सम्पूर्ण प्राणियोंकी आश्रयभूता पृथ्वीको देखा। प्रभुको सम्मुख उपस्थित देखकर पृथ्वीने प्रसन्न होकर उनकी अनेक प्रकारसे स्तुति की—

नमस्ते पुण्डरीकाक्ष शङ्खचक्रगदाधर।
मामुद्धरास्मादद्य त्वं त्वत्तोऽहं पूर्वमुत्थिता॥
भवतो यत्परं तत्त्वं तन्न जानाति कश्चन।
अवतारेषु यद्रूपं तदर्चन्ति दिवौकसः॥
यत्किञ्चिन्मनसो ग्राह्यं यद्ग्राह्यं चक्षुरादिभिः।
बुद्ध्या च यत्परिच्छेद्यं तद्रूपमखिलं तव॥
मूर्तामूर्तमदृश्यं च दृश्यं च पुरुषोत्तम।
यच्चोक्तं यच्च नैवोक्तं मयात्र परमेश्वर।
तत्सर्वं त्वं नमस्तुभ्यं भूयो भूयो नमो नमः॥
(विष्णुपुराण १। ४। १२, १७, १९, २४)

पृथ्वी बोली—'शङ्ख, चक्र, गदा एवं पद्म धारण करनेवाले कमलनयन प्रभो! आपको नमस्कार है। आज आप इस पातालसे मेरा उद्धार कीजिये। पूर्वकालमें आपसे ही मैं उत्पन्न हुई थी।''' प्रभो! आपका जो परतत्त्व है, उसे तो कोई भी नहीं जानता; अतः आपका जो रूप अवतारोंमें प्रकट होता है, उसीकी देवगण पूजा करते हैं।''' मनसे जो कुछ ग्रहण (संकल्प) किया जाता है, चक्षु आदि इन्द्रियोंसे जो कुछ (विषयरूपसे) ग्रहण करनेयोग्य है, बुद्धिद्वारा जो कुछ आकलनीय है, वह सब आपका ही रूप है।''' है

पुरुषोत्तम ! हे परमेश्वर ! मूर्त-अमूर्त, दृश्य-अदृश्य तथा जो कुछ इस प्रसङ्गमें मैंने कहा है और जो नहीं कहा, वह सब आप ही हैं । अतः आपको नमस्कार है, बारंबार नमस्कार है ।'

धरित्रीकी स्तुति सुनकर भगवान् वराहने घर्घर-शब्दसे गर्जना की और—

ततः समुत्क्षिप्य धरां स्वदंष्ट्रया महावराहः स्फुटपद्मलोचनः ।
रसातलादुत्पलपत्रसंनिभः समुत्थितो नील इवाचलो महान् ॥

(विष्णुपुराण १ । ४ । २६)

'फिर विकसित कमलके समान नेत्रोंवाले उन महावराहने अपनी दाढ़ोंसे पृथ्वीको उठा लिया और वे कमल-दलके समान श्याम तथा नीलाचलके सदृश विशालकाय भगवान् रसातलसे बाहर निकले ।'

उधर वरुणदेवके द्वारा अपने प्रतिपक्षीका पता पाकर हिरण्याक्ष अत्यन्त प्रसन्न हुआ । 'आप मुझे श्रीहरिका पता बता दें ।' हिरण्याक्ष देवर्षि नारदके पास पहुँच गया । उसे युद्धकी अत्यन्त त्वरा थी ।

'श्रीहरिने तो अभी-अभी श्वेतवराहके रूपमें समुद्रमें प्रवेश किया है ।' देवर्षिके मनमें दया थी । उन्होंने सोचा—'यह भगवान्‌के हाथों मरकर दूसरा जन्म ले । तीन ही जन्मके अनन्तर तो यह अपने स्वरूपको प्राप्त होगा ।' बोले—'यदि शीघ्रता करो तो तुम उन्हें पा जाओगे ।'

हिरण्याक्ष दौड़ा रसातलकी ओर । वहाँ उसकी दृष्टि अपनी विशाल दाढ़ोंकी नोकपर पृथ्वीको ऊपरकी ओर ले जाते हुए वराहभगवान्‌पर पड़ी ।

'अरे सूकररूपधारी सुराधम !' चिल्लाते और भगवान्‌की ओर तेजीसे दौड़ते हुए हिरण्याक्षने कहा । 'मेरी शक्तिके सम्मुख तुम्हारी योगमायाका प्रभाव नहीं चल सकता । मेरे देखते तू पृथ्वीको लेकर नहीं भाग सकता । निर्लज्ज कहींका ।'

श्रीभगवान् दुर्जय दैत्यके वाग्बाणोंकी चिन्ता न कर पृथ्वीको ऊपर लिये चले जा रहे थे । वे भयभीत पृथ्वीको उचित स्थानपर स्थापित करना चाहते थे । इस कारण हिरण्याक्षके दुर्वचनोंका कोई उत्तर नहीं दे रहे थे । कुपित होकर दैत्यने कहा—'सत्य है, तेरे जैसे व्यक्ति सभी अकरणीय कृत्य कर डालते हैं ।'

प्रभुने पृथ्वीको जलके ऊपर लाकर व्यवहारयोग्य स्थलपर स्थापितकर उसमें अपनी आधारशक्तिका सञ्चार किया । उस समय हिरण्याक्षके सामने ही भगवान्‌पर देवगण पुष्प-वृष्टि और ब्रह्मा उनकी स्तुति करने लगे ।

'मैं तो तेरे सामने कुछ नहीं ।' तब प्रभुने कज्जलगिरिके तुल्य हिरण्याक्षसे कहा । वह अपने हाथमें विशाल गदा लिये अनर्गल प्रलाप करता हुआ दौड़ा आ रहा था । प्रभु बोले—'अब तू अपने मनकी कर ले ।'

फिर तो वीरवर हिरण्याक्ष एवं भगवान् वराहमें भयानक संग्राम हुआ । दोनोंके वज्रतुल्य शरीर गदाकी चोटसे रक्तमें सन गये । हिरण्याक्ष और मायासे वराहरूप धारण करनेवाले भगवान् यज्ञमूर्तिका युद्ध देखने मुनियोंसहित ब्रह्माजी वहाँ आ पहुँचे । उन्होंने प्रभुसे प्रार्थना की, 'प्रभो ! शीघ्र इसका वध कर डालिये ।'

विधाताके भोलेपनपर श्रीभगवान्‌ने मुस्कराकर उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली । अब अत्यन्त शूर हिरण्याक्षसे प्रभुका भयानक संग्राम हुआ । अपने किसी अस्त्र-शस्त्र तथा छल-छद्मका आदिवराहपर कोई प्रभाव पड़ता न देख हिरण्याक्ष श्रीहत होने लगा । अन्तमें श्रीभगवान्‌ने हिरण्याक्षकी कनपटीपर एक तमाचा मारा ।

श्रीभगवान्‌ने यद्यपि तमाचा उपेक्षासे मारा था, किंतु उसकी चोटसे हिरण्याक्षके नेत्र बाहर निकल आये । वह घूमकर कटे वृक्षकी तरह धराशायी हो गया । उसके प्राण-पखेरू उड़ गये ।

'ऐसी दुर्लभ मृत्यु किसे प्राप्त होती है !' ब्रह्मादि देवताओंने हिरण्याक्षके भाग्यकी सराहना करते हुए कहा । 'मिथ्या उपाधिसे मुक्ति प्राप्त करनेके लिये योगीन्द्र-मुनीन्द्र जिस महामहिम परमेश्वरका ध्यान करते हैं, उन्हींके चरण-प्रहारसे उनका मुख देखते हुए इस दैत्यराजने अपना प्राण-त्याग किया ! धन्य है यह ।'

इसके साथ ही सुर-समुदाय महावराह प्रभुकी स्तुति करने लगा । और—

विहाय रूपं वाराहं तीर्थे कोकेति विश्रुते ।
वैष्णवानां हितार्थाय क्षेत्रं तद्गुह्यमुत्तमम् ॥

(नरसिंहपुराण ३९ । १८)

'फिर प्रभुने वैष्णवोंके हितके लिये कोकामुख तीर्थमें

वराहरूपका त्याग किया। वह वराह-क्षेत्र उत्तम एवं शुभ तीर्थ है।'

पृथ्वीकी उसी पुनः प्रतिष्ठा-कालमें यह श्वेतवाराह कल्पकी सृष्टि प्रारम्भ हुई है।

× × ×

उत्तरकुरुवर्षमें भगवान् यज्ञपुरुष वराहमूर्ति धारण करके विराजमान हैं। साक्षात् पृथ्वीदेवी वहाँके निवासियों-सहित उनकी अत्यन्त श्रद्धा-भक्तिसे उपासना करती और इस परमोत्कृष्ट मन्त्रका जप करती हुई उनका स्तवन करती हैं—

'ॐ नमो भगवते मन्त्रतत्त्वलिङ्गाय यज्ञक्रतवे महाध्वरावयवाय महापुरुषाय नमः कर्मशुक्लाय त्रियुगाय नमस्ते।'

(श्रीमद्भागवत ५।१८।३५)

'जिनका तत्त्व मन्त्रोंसे जाना जाता है, जो यज्ञ और क्रतुरूप हैं तथा बड़े-बड़े यज्ञ जिनके अङ्ग हैं, उन ओंकारस्वरूप शुक्लकर्ममय त्रियुगमूर्ति पुरुषोत्तम भगवान् वराहको बार-बार नमस्कार है।' —शि० दु०

[२]

देवर्षि नारद

मङ्गलमूर्ति नारदजी श्रीभगवान्‌के मनके अवतार हैं। कृपामय प्रभु जो कुछ करना चाहते हैं, सर्वज्ञ और सर्वदर्शी वीणापाणि नारदजीके द्वारा वैसी ही चेष्टा होती है।

श्रीमद्भागवतमें कहा गया है—

तृतीयमृषिसर्गं च देवर्षित्वमुपेत्य सः।
तन्त्रं सात्वतमाचष्ट नैष्कर्म्यं कर्मणां यतः॥

(१।३।८)

''ऋषियोंकी सृष्टिमें उन्होंने देवर्षि नारदके रूपमें तीसरा अवतार ग्रहण किया और सात्वत-तन्त्रका (जिसे 'नारद-पञ्चरात्र' कहते हैं) उपदेश किया; उसमें कर्मोंके द्वारा किस प्रकार कर्मबन्धनसे मुक्ति मिलती है, इसका वर्णन है।''

परम तपस्वी और ब्राह्मतेजसे सम्पन्न नारदजी अत्यन्त सुन्दर हैं। उनका वर्ण गौर है। उनके मस्तकपर शिखा सुशोभित है। अत्यन्त कान्तिमान् नारदजी देवराज इन्द्रके दिये हुए दो उज्ज्वल, महीन, दिव्य, शुभ और बहुमूल्य वस्त्र धारण करते हैं। वेद और उपनिषदोंके ज्ञाता, देवताओंद्वारा पूजित, पूर्वकल्पोंकी बातोंके जानकार, महाबुद्धिमान् और असंख्य सद्गुणोंसे सम्पन्न महातेजस्वी नारदजी भगवान् पद्मयोनिसे प्राप्त वीणाकी मनोहर झंकृतिके साथ दयामय भगवान्‌के मधुर, मनोहर एवं मङ्गलमय नाम और गुणोंका गान करते हुए लोक-लोकान्तरोंमें विचरण किया करते हैं। मुक्तिकी इच्छा रखनेवाले साधु पुरुषोंके हितके लिये नारदजी सतत प्रयत्नशील रहते हैं। वे सचल कल्पवृक्ष हैं।

वे स्वयं अपने मुखारविन्दसे कहते हैं—

प्रगायतः स्ववीर्याणि तीर्थपादः प्रियश्रवाः।
आहूत इव मे शीघ्रं दर्शनं याति चेतसि॥

(श्रीमद्भागवत १।६।३४)

'जब मैं उनकी लीलाओंका गान करने लगता हूँ, तब वे प्रभु, जिनके चरण-कमल समस्त तीर्थोंके उद्गमस्थान हैं और जिनका यशोगान मुझे बहुत ही प्रिय लगता है, बुलाये हुएकी भाँति तुरंत मेरे हृदयमें आकर दर्शन दे देते हैं।'

कृपाकी मूर्ति नारदजी वेदान्त, योग, ज्योतिष, आयुर्वेद एवं संगीत आदि अनेक शास्त्रोंके आचार्य हैं और भक्तिके तो वे मुख्याचार्य हैं। उनका पञ्चरात्र भागवत-मार्गका प्रधान ग्रन्थरत्न है। प्राणिमात्रकी कल्याण-कामना करनेवाले नारदजी श्रीहरिके मार्गपर अग्रसर होनेकी इच्छा रखनेवाले प्राणियोंको सहयोग देते रहते हैं। मुमुक्षुओंका मार्ग-दर्शन उनका प्रमुख कर्तव्य है। उन्होंने त्रैलोक्यमें कितने प्राणियोंको किस प्रकार परम प्रभुके पावन पद-पद्मोंमें पहुँचा दिया, इसकी गणना सम्भव नहीं।

बालक प्रह्लादकी दृढ़ भक्तिसे भगवान् नृसिंह अवतरित हुए। प्रह्लादके इस भगवद्विश्वास एवं प्रगाढ़ निष्ठामें भगवान् नारद ही मुख्य हेतु थे। उन्होंने गर्भस्थ प्रह्लादको लक्ष्य करके उनकी माता दैत्येश्वरी कयाधूको भक्ति और ज्ञानका उपदेश दिया। प्रह्लादजीका वही ज्ञान उनके जीवन और जन्मको सफल करनेमें हेतु बना। इसी प्रकार पिताके तिरस्कारसे क्षुब्ध ध्रुवकुमारके वन-गमनके समय नारदजीने उन्हें भगवान् वासुदेवका मन्त्र दिया तथा उन्हें उपासनाकी पद्धति भी विस्तारपूर्वक बतायी। जब दक्ष प्रजापतिने पञ्चजनकी पुत्री असिक्नीसे 'हर्यश्व'नामक दस सहस्र पुत्र उत्पन्न कर उन्हें सृष्टि-विस्तारका आदेश दिया

और एतदर्थ वे पश्चिम दिशामें सिन्धु नदी और समुद्रके संगमपर स्थित पवित्र नारायण-सरपर तपश्चरण करने पहुँचे, तब नारदजीने अपने अमृतमय उपदेशसे उन सबको विरक्त बना दिया। दक्ष प्रजापति बड़े दुःखी हुए। उन्होंने फिर 'शबलाश्व' नामक एक सहस्र पुत्र उत्पन्न किये। नारदजीने कृपापूर्वक उन्हें भी श्रीभगवच्चरणारविन्दोंकी ओर उन्मुख कर दिया। फिर तो अत्यन्त क्रुद्ध होकर प्रजापति दक्षने अजातशत्रु नारदजीको शाप दे दिया—'तुम लोक-लोकान्तरोंमें भटकते रहोगे और तुम्हें कहीं भी दो घंटेसे अधिक ठहरनेके लिये ठौर नहीं मिलेगी।' साधुशिरोमणि नारदजीने इसे प्रभुकी मङ्गलमयी इच्छा समझकर दक्षका शाप स्वीकार कर लिया।

जब वेदोंका विभाग तथा पञ्चम वेद महाभारतकी रचना कर लेनेपर भी श्रीव्यासजी अपनेको अपूर्णकाम अनुभव करते हुए खिन्न हो रहे थे, तब दयापरवश श्रीनारदजी उनके समीप पहुँच गये और व्यासजीके पूछनेपर उन्होंने बताया—'व्यासजी! आपने भगवान्‌के निर्मल यशका गान प्रायः नहीं किया। मेरी ऐसी मान्यता है कि वह शास्त्र या ज्ञान सर्वथा अपूर्ण है, जिससे जगदाधार स्वामी संतुष्ट न हों। वह वाणी आदरके योग्य नहीं, जिसमें श्रीहरिकी परमपावनी कीर्ति वर्णित न हो। वह तो कौओंके लिये उच्छिष्ट फेंकनेके स्थानके समान अपवित्र है। उसके द्वारा तो मूर्ख कामुक व्यक्तियोंका ही मनोरञ्जन हो सकता है। मानस-सरके कमल-वनमें विहार करनेवाले राजहंसोंके समान ब्रह्मधाममें विहार करनेवाले भगवच्चरणारविन्दाश्रित परमहंस भक्तोंका मन उसमें कैसे रम सकता है? विद्वान् पुरुषोंने निर्णय किया है कि मनुष्यकी तपस्या, वेदाध्ययन, यज्ञानुष्ठान एवं समस्त धर्म-कर्मोंकी सफलता इसीमें है कि पुण्यकीर्ति श्रीप्रभुकी कल्याण-मयी लीलाओंका गान किया जाय। अतएव—

त्वमप्यदभ्रश्रुत विश्रुतं विभोः समाप्यते येन विदां बुभुत्सितम्।
आख्याहि दुःखैर्मुहुरर्दितात्मनां संक्लेशनिर्वाणमुशन्ति नान्यथा॥
(श्रीमद्भागवत १।५।४०)

'व्यासजी! आपका ज्ञान पूर्ण है; आप भगवान्‌की ही कीर्तिका—उनकी प्रेममयी लीलाका वर्णन कीजिये। उसीसे बड़े-बड़े ज्ञानियोंकी भी जिज्ञासा पूर्ण होती है। जो लोग दुःखोंके द्वारा बार-बार रौंदे जा रहे हैं, उनके दुःखकी शान्ति इसीसे हो सकती है। इसके सिवा उसका और कोई उपाय नहीं है।'

जब दुर्योधनके छल और कुटिल नीतिसे सहृदय पाण्डवोंने अरण्यके लिये प्रस्थान किया, उस समय भरतवंशियोंके विनाशसूचक अनेक प्रकारके भयानक अपशकुन होने लगे। चिन्तित होकर इस सम्बन्धमें धृतराष्ट्र और विदुर परस्पर बातचीत कर ही रहे थे कि उसी समय महर्षियोंसे घिरे भगवान् नारद कौरवोंके सामने आकर खड़े हो गये और सुस्पष्ट शब्दोंमें उन्होंने भविष्यवाणी करते हुए कहा—

इतश्चतुर्दशे वर्षे विनङ्क्ष्यन्तीह कौरवाः।
दुर्योधनापराधेन भीमार्जुनबलेन च॥
(महा०, सभा० ८०। ३४)

'आजसे चौदहवें वर्षमें दुर्योधनके अपराधसे भीम और अर्जुनके पराक्रमद्वारा कौरवकुलका नाश हो जायगा।'

इतना कहकर महान् ब्रह्मतेजधारी नारदजी आकाशमें जाकर सहसा अन्तर्धान हो गये।

सर्वोच्च ज्ञानके परमपावन विग्रह श्रीशुकदेवजीको उपदेश देते हुए महामुनि नारदजीने कहा था—

सर्वे क्षयान्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः।
संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं हि जीवितम्॥
अध्यात्मरतिरासीनो निरपेक्षो निरामिषः।
आत्मनैव सहायेन यश्चरेत् स सुखी भवेत्॥
(महा०, शान्ति० ३३०। २०, ३०)

'संग्रहका अन्त है विनाश। ऊँचे चढ़नेका अन्त है नीचे गिरना। संयोगका अन्त है वियोग और जीवनका अन्त है मरण।

जो अध्यात्मविद्यामें अनुरक्त, कामनाशून्य तथा भोगासक्तिसे दूर है, जो अकेला ही विचरण करता है, वही सुखी होता है।'

जब अविनाशी नारायण और नर बदरिकाश्रममें घोर तप करते हुए अत्यन्त दुर्बल हो गये थे और उन परम तेजस्वी प्रभुका दर्शन अत्यन्त दुर्लभ था, उस समय नारदजी महामेरु पर्वतसे गन्धमादन पर्वतपर उतर गये और जब भगवान् नर और नारायणके समीप पहुँचे, तब उन्होंने शास्त्रीय विधिसे नारदजीकी पूजा की। नारदजीने उनसे अनेक भागवत्सम्बन्धी प्रश्नोंका तृप्तिकर उत्तर प्राप्त किया और फिर उनकी अनुमतिसे श्वेतद्वीपमें पहुँचकर श्रीभगवान्‌के विश्वरूपका दर्शन-लाभ कर पुनः गन्धमादन पर्वतपर श्रीनर-

नारायणके समीप चले आये। नारदजीने भगवान् नर-नारायणको सारा वृत्तान्त सुनाया और उनके समीप दस सहस्र दिव्य वर्षोंतक रहकर वे भजन एवं मन्त्रानुष्ठान करते रहे।

स्कन्दपुराणमें इन्द्रकृत श्रीनारदजीकी एक अत्यन्त सुन्दर स्तुति है। उसके सम्बन्धमें एक बार भगवान् श्रीकृष्णने नारदजीके गुणोंकी प्रशंसा करते हुए राजा उग्रसेनसे कहा था कि 'मैं देवराज इन्द्रद्वारा किये गये स्तोत्रसे दिव्यदृष्टिसम्पन्न श्रीनारदजीकी सदा स्तुति किया करता हूँ।'*

सर्वसुहृद् श्रीनारदजी ही एकमात्र ऐसे हैं, जिनका सभी देवता और दैत्यगण समानरूपसे सम्मान एवं विश्वास करते हैं, उन्हें अपना शुभैषी समझते हैं और निश्चय ही वे दयामय सबके यथार्थ हित-साधनके लिये सचिन्त और प्रयत्नशील रहते हैं। अब भी करुणामय प्रभुके सच्चे प्रेमी भक्तोंको उनके दर्शन हो जाते हैं। —शि० दु०

[४]

भगवान् नर-नारायण

दृश्यते ज्ञानयोगेन आवां च प्रसृतौ ततः।
एवं ज्ञात्वा तमात्मानं पूजयावः सनातनम्॥

ये तु तद्भाविता लोके एकान्तित्वं समास्थिताः।
एतदभ्यधिकं तेषां यत् ते तं प्रविशन्त्युत॥

(महा०, शान्तिपर्व ३३४। ४२, ४४)

'ज्ञानयोगद्वारा उस (परमात्मा) का साक्षात्कार होता है। हम दोनोंका आविर्भाव उसीसे हुआ है—यह जानकर हम दोनों उस सनातन परमात्माकी पूजा करते हैं।……

जो सदा उसका स्मरण करते तथा अनन्यभावसे उसकी शरण लेते हैं, उन्हें सबसे बड़ा लाभ यह होता है कि वे उसके स्वरूपमें प्रवेश कर जाते हैं।'

—नर-नारायण

स्वयं भगवान् वासुदेवने सृष्टिके आरम्भमें धर्मकी सहधर्मिणी मूर्तिसे दो रूपोंमें अवतार धारण किया। वे अपने मस्तकपर जटामण्डल धारण किये हुए थे। उनके हाथोंमें हंस, चरणोंमें चक्र एवं वक्षःस्थलमें श्रीवत्सके चिह्न सुशोभित थे। उनकी बड़ी-बड़ी भुजाएँ, मेघके समान गम्भीर स्वर, सुन्दर मुख, चौड़ा ललाट, बाँकी भौंहें, सुन्दर ठोढ़ी और मनोहर नासिका थी। उनका सम्पूर्ण वेष तपस्वियोंका था। वे अत्यन्त तेजस्वी, रूप-रंग और स्वभावमें एक-से थे। उन वरदाता तपस्वियोंके नाम थे—'नर और नारायण'।

अवतार ग्रहण करते ही अविनाशी नर-नारायण बदरिकाश्रममें चले गये। वहाँ वे गन्धमादन पर्वतपर एक विशाल वट-वृक्षके नीचे तपस्या करने लगे। भगवान् श्रीहरिके अंशावतार उन नर-नारायण नामक दोनों ऋषियोंने वहाँ रहकर एक सहस्र वर्षतक कठोर तपस्या की। उनके प्रचण्ड तपसे देवराज इन्द्र सशङ्क हो तुरंत गन्धमादन पर्वतपर पहुँचे। वहाँ उन्होंने परम पवित्र आश्रममें तपोभूमि भारतके आराध्य परम तेजस्वी भगवान् नर-नारायणको तप-निरत देखा।

'धर्मनन्दन! तुम दोनों अवश्य ही अत्यन्त भाग्यवान् हो।' सूर्यकी भाँति प्रकाश विकीर्ण करते हुए तपोधन नर-नारायणके समीप पहुँचकर शचीपतिने कहा। 'तुम दोनोंकी तपश्चर्यासे संतुष्ट होकर मैं तुम्हें वर देनेके लिये ही यहाँ आया हूँ। तुम अपना अभीष्ट बताओ। मैं उसे अवश्य पूर्ण करूँगा।'

इस प्रकार देवाधिप इन्द्रके सम्मुख खड़े होकर बार-बार आग्रह करनेपर भी नर-नारायणने कोई उत्तर नहीं दिया। उनका चित्त सर्वथा शान्त एवं अविचलित रहा।

तब इन्द्रने उन्हें भयभीत करनेके लिये मायाका प्रयोग किया। भयानक झंझावात, प्रलयंकर वृष्टि एवं अग्नि-वर्षा प्रारम्भ हो गयी। भेड़िये और सिंह गरजने लगे; किंतु नर-नारायण सर्वथा शान्त थे। उनका चित्त किसी प्रकार भी विचलित नहीं हुआ। अनेक प्रकारकी मायाका प्रयोग किये जानेपर भी जब तपस्वियोंके सिरमौर नर-नारायण तपसे विरत नहीं हुए, तब इन्द्र निराश होकर लौट गये।

उन्होंने रम्भा, तिलोत्तमा, पुष्पगन्धा, सुकेशी और काञ्चनमालिनी आदि अप्सराओं और वसन्तके साथ कामदेवको प्रभु नर-नारायणको वशीभूत करनेके लिये भेजा। उक्त श्रेष्ठ पर्वत गन्धमादनपर वसन्तके पहुँचते ही आम,

* उक्त स्तोत्र यहाँ स्थानाभावसे नहीं दिया जा सका। वह स्कन्दपुराणके माहेश्वर (कुमारिका) खण्डके ५४ वें अध्यायमें श्लोक संख्या २७ से ४९ तकमें वर्णित है।

बकुल, तिलक, पलाश, साखू, ताड़, तमाल और महुआ आदि सभी वृक्ष पुष्पोंसे सुशोभित हो गये। कोयलें कूकने लगीं। सुगन्धित पवन मन्द गतिसे बहने लगा। इसके साथ ही रतिसहित पुष्पधन्वा भी वहाँ जा पहुँचे। रम्भा और तिलोत्तमा आदि संगीत-कलामें प्रवीण अप्सराओंने स्वर और तालमें गायन प्रारम्भ किया।

मधुर संगीत, कोयलोंका कलरव और भ्रमरोंकी गुंजारसे नर-नारायणकी समाधि टूट गयी। उन्होंने इसे इन्द्रकी कुटिलता समझकर उन लोगोंसे कहा—'कामदेव, मलय पवन और देवाङ्गनाओ! तुमलोग आनन्दपूर्वक ठहरो। तुम सभी स्वर्गसे यहाँ आये हो, इसलिये हमारे अतिथि हो। हम तुम्हारा अद्भुत प्रकारसे आतिथ्य-सत्कार करनेके लिये तैयार हैं।'

भगवान्‌के शान्त वचन सुनकर काँपते हुए कामदेवके मनमें निर्भयता आयी। उन्होंने हाथ जोड़कर कहा—'प्रभो! आप मायासे परे, निर्विकार हैं। बड़े-बड़े आत्माराम और धीर पुरुष सदा आपके चरण-कमलोंमें प्रणाम करते रहते हैं। प्रभो! क्रोध आत्मनाशक है, पर बड़े-बड़े तपस्वी उसके वश हो अपनी कठिन तपस्या खो बैठते हैं। किंतु आपके चरणोंका आश्रय लेनेवाला सदा निरापद जीवन व्यतीत करता है।'

कामदेव और वसन्त आदिकी इस प्रकारकी स्तुति सुनकर सर्वसमर्थ भगवान्‌ने वस्त्रालंकारोंसे अलंकृत, अद्भुत रूप-लावण्यसे सम्पन्न सहस्रों स्त्रियाँ प्रकट करके दिखलायीं, जो प्रभुकी सेवा कर रही थीं। जब इन्द्रके अनुचरोंने समुद्रतनया लक्ष्मीके समान अनुपम रूप-लावण्यकी राशि सहस्रों देवियोंको अत्यन्त श्रद्धापूर्वक प्रभुकी सेवा-पूजा करते देखा तो लज्जासे उनका सिर झुक गया। वे श्रीहत होकर उनके शरीरसे निकलनेवाली दिव्य सुगन्धसे मोहित हो गये।

'तुमलोग इनमेंसे किसी एक स्त्रीको, जो तुम्हारे अनुरूप हो, ग्रहण कर लो।' भक्तप्राण नारायणने मुस्कराते हुए कहा। 'वह तुम्हारे स्वर्गकी शोभा बढ़ायेगी।'

'जैसी आज्ञा!' कहकर उन सबने प्रभुके चरणोंमें प्रणाम किया और उनके द्वारा प्रकट की हुई स्त्रियोंमें सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी उर्वशीको लेकर वे स्वर्गलोक चले गये।

स्वर्गमें उन्होंने देवराज इन्द्रको प्रणाम कर देवदेवेश नर-नारायणकी महिमाका गान किया तो सुराधिप चकित, विस्मित और भयभीत हो गये।

पुराणपुरुष नर-नारायण स्वयं सर्वसमर्थ होकर भी सृष्टिमें तपश्चर्याका आदर्श स्थापित करनेके लिये निरन्तर कठोर तप करते रहते हैं। काम, क्रोध और मोहादि शत्रु तपके महान् विघ्न हैं। अहंकार और क्रोधके दोषसे तपका क्षय होता है—यह नर-नारायण प्रभुने अपने जीवनसे सिखाया है।

बात तबकी है, जब अपने पिता हिरण्यकशिपुके शरीरान्तके बाद भक्तवर प्रह्लाद भगवान् नृसिंहके आदेशसे पातालमें रहने लगे। वहीं उनकी राजधानी थी। वे अत्यन्त धर्मपूर्वक शासन करते थे। दानवराज प्रह्लाद देवता और ब्राह्मणोंके सच्चे भक्त थे। तपस्या करना, धर्मका प्रचार करना और तीर्थाटन करना—यही उस समयके ब्राह्मणोंका कार्य था। सभी वर्णोंके लोग स्वधर्मका पालन तत्परतापूर्वक करते थे।

एक बारकी बात है, तपस्वी भृगुनन्दन च्यवनजी पवित्र नर्मदाके तटपर व्याहृतीश्वर तीर्थमें स्नान करने चले। मार्गमें रेवा नदी मिली। महर्षि च्यवन उसके तटपर उतरने लगे कि एक भयानक विषधरने उन्हें पकड़ लिया। विषधरके प्रयाससे ही वे पातालमें पहुँच गये। विवश होकर ऋषि मन-ही-मन कमल-लोचन श्रीहरिका ध्यान करने लगे। ध्यान करते ही उनका सर्प-विष दूर हो गया और तपस्वी समझकर सर्पने भी भयवश उन्हें छोड़ दिया और शापभयसे नाग-कन्याएँ ऋषिकी पूजा करने लगीं।

इसके अनन्तर महर्षि च्यवन दानवों और नागोंकी पुरीमें जाकर वहाँका दृश्य देखने लगे।

'भगवन्! आप यहाँ कैसे पधारे?' दानवराज प्रह्लादकी उनपर दृष्टि पड़ी तो उन्होंने ऋषिकी विधिवत् पूजा की और फिर पूछा—'सुरेश्वर इन्द्र हमलोगोंसे शत्रुता रखते हैं। कहीं उन्होंने तो मेरा भेद लेनेके लिये आपको नहीं भेजा है? कृपापूर्वक सत्य बताइये।'

'राजन्! मैं भृगुका धर्मात्मा पुत्र च्यवन हूँ।' महर्षिने उत्तर दिया। 'मैं इन्द्रका दौत्य-कर्म क्यों करने लगा! आप श्रीविष्णुके भक्त हैं, मुझे भी वैसा ही

समझिये ।' और फिर उन्होंने अपने पातालपुरीमें प्रविष्ट होनेकी सारी घटना उन्हें बता दी ।

ऋषिके उत्तरसे संतुष्ट होकर प्रह्लादजीने उनसे पृथ्वीके पवित्र तीर्थोंके सम्बन्धमें पूछा । महर्षि च्यवनके मुँहसे पृथ्वीके तीर्थोंका वर्णन सुनकर दानवेन्द्र प्रह्लादने नैमिषारण्य जानेका निश्चय कर लिया ।

सहस्रों महाबली दैत्योंका समूह दानवराज प्रह्लादके साथ नैमिषारण्य पहुँचा । वहाँ सबने स्नान किया । भक्तराज प्रह्लाद नैमिषारण्य-तीर्थके कार्यक्रम पूरे कर रहे थे कि उन्हें कुछ ही दूरीपर एक विशाल वट-वृक्ष दिखायी दिया । वहाँ उन्होंने विभिन्न प्रकारके सुतीक्ष्ण शर देखे ।

'इस परम पवित्र तीर्थमें धनुर्बाणधारी व्यक्तिका क्या काम ?' दानवेश्वर प्रह्लाद मनमें विचार कर ही रहे थे कि उन्हें सम्मुख कृष्ण मृगचर्म धारण किये नर-नारायणके दर्शन हुए । उनकी अत्यन्त सुन्दर विशाल जटाएँ थीं । उनके सामने शार्ङ्ग और आजगव नामक दो चमकते हुए प्रसिद्ध धनुष तथा बाणपूरित तरकस रखे थे ।

'तुमलोगोंने यह क्या पाखण्ड रच रखा है ?' ध्यान-मग्न धर्मनन्दन नर-नारायणको देखकर क्रोधसे नेत्र लाल किये भक्त प्रह्लादने कहा । 'उत्कट तप और धनुर्बाण-धारण, ऐसा आश्चर्य तो कहीं नहीं देखा । इस प्रकारके आडम्बरसे धर्मकी क्षति होती है । तुम्हें तो धर्माचरण ही उचित है ।'

'दानवेन्द्र ! तुम हमारी तपस्याकी व्यर्थ चिन्ता मत करो ।' नारायण बोले । 'युद्ध और तप—दोनोंमें हमारी गति है । ब्राह्मणोंकी व्यर्थ चर्चा उचित नहीं । तुम अपना मार्ग पकड़ो ।'

'तपस्वियो ! तुम्हें व्यर्थ अहंकार उचित नहीं ।' दैत्येन्द्र प्रह्लादने कहा । 'मैं दैत्योंका राजा हूँ । धर्म-रक्षा मेरा कर्त्तव्य है । मेरे रहते इस पावन क्षेत्रमें तुम्हारा यह आचरण उचित नहीं । यदि तुम्हारे पास ऐसी कोई शक्ति है तो रणभूमिमें उसका प्रदर्शन करो ।'

'तुम्हारी इस इच्छाकी पूर्ति हो जायगी ।' भगवान् नरने तुरंत उत्तर दिया । 'युद्धमें तुम मेरे सामने आ जाओ ।'

'यद्यपि इन्द्रियजयी नर-नारायण कठोर तपस्वी हैं' अत्यन्त क्रुद्ध होकर अप्रतिम बलशाली वीर प्रह्लादने प्रतिज्ञा की—'तथापि मैं इन तपस्वियोंको अवश्य पराजित करूँगा ।'

प्रह्लादने धनुष उठा लिया और नरसे भयानक संग्राम होने लगा । पीछे नारायणने भी युद्धमें भाग लिया । दोनों पक्ष एक-दूसरेपर भयानक अस्त्रोंका प्रहार करते रहे । उनका यह युद्ध इन्द्रसहित कितने ही देवता आकाशमें विमानपर बैठे चकित हो देख रहे थे । विश्ववन्द्य नर-नारायण तथा दानवकुलभूषण प्रह्लादका युद्ध देवताओंके एक हजार वर्षतक चलता रहा, पर कोई पक्ष विचलित नहीं हुआ ।

अन्ततः लक्ष्मीसहित शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म धारण किये, नवजलधरश्याम श्रीविष्णु प्रह्लादके आश्रमपर पधारे । श्रीभगवान्‌के चरणोंमें श्रद्धा-भक्तिपूर्ण प्रणाम और उनकी स्तुति कर भक्त प्रह्लादने भगवान् रमापतिसे कहा—'भक्तवाञ्छा-कल्पतरु प्रभो ! तपस्वियोंसे दीर्घकालतक युद्ध करते रहनेपर भी मेरी विजय न होनेका हेतु समझमें नहीं आता । मैं अत्यन्त चकित हूँ ।'

'इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं है ।' भगवान् विष्णुने उत्तर दिया । 'विख्यात जितात्मा तपस्वी नर और नारायण मेरे अंशावतार हैं । तुम इन्हें किसी प्रकार भी पराजित नहीं कर सकते । अतएव मुझमें भक्ति रखते हुए पाताल चले जाओ । इन परमादर्श महातपस्वियोंका विरोध उचित नहीं ।'

प्रभुका आदेश पाकर दैत्येन्द्र प्रह्लाद असुर-सूरोंके साथ अपनी राजधानीके लिये प्रस्थित हुए और नर-नारायण अपनी तपश्चर्यामें लग गये ।

× × ×

बात उस समयकी है, जब नर-नारायणने धर्ममय रथपर आरूढ़ होकर गन्धमादन पर्वतपर दीर्घकालीन महान् तप किया था । उसी समय प्रजापति दक्षने भी यज्ञ प्रारम्भ किया । उक्त यज्ञमें रुद्रको भाग न देनेके कारण दधीचिके कहनेसे रुद्रने अत्यन्त क्रुद्ध होकर दक्षका यज्ञ विध्वंस करनेके लिये अपना प्रज्वलित त्रिशूल फेंका । वह तीक्ष्ण त्रिशूल दक्ष-यज्ञका विनाश करते हुए अत्यन्त वेगसे बदरिकाश्रममें जाकर नारायणके वक्षमें लगा । उस प्रज्वलित त्रिशूलकी लपटसे नारायणकी जटा मूँजके रंगकी हो गयी । इससे उनका नाम 'मुञ्जकेश' हुआ ।

देवेश नारायणके हुंकारसे प्रतिहत होकर वह त्रिशूल भगवान् शिवके हाथमें वापस चला गया। इसपर रुद्र अत्यन्त क्रुद्ध हुए और तप करते हुए नर-नारायणपर टूट पड़े।

तपस्विश्रेष्ठ नारायणने रुद्रके आकस्मिक आक्रमणसे क्षुब्ध हुए बिना ही रुद्रका कण्ठ पकड़ लिया। इससे उनका कण्ठ नीला पड़ गया और रुद्र 'नीलकण्ठ' नामसे प्रख्यात हुए।

फिर नरने एक अभिमन्त्रित सींक रुद्रपर छोड़ी। वह सींक एक विशाल तीक्ष्ण शूलके रूपमें परिणत हो गयी, पर उसे रुद्रने खण्डित कर दिया। इस कारण उनका नाम 'खण्डपरशु' हुआ।

श्रीनारायण और रुद्रके भयानक युद्धसे त्रैलोक्य काँपने लगा। भयानक अपशकुन प्रकट होनेपर पद्मयोनि विधाता वहाँ पहुँचे और रुद्रकी स्तुति करते हुए उन्होंने कहा—

नरो नारायणश्चैव जातौ धर्मकुलोद्वहौ।
तपसा महता युक्तौ देवश्रेष्ठौ महाव्रतौ॥
अहं प्रसादजस्तस्य कुतश्चित् कारणान्तरे।
त्वं चैव क्रोधजस्तात पूर्वसर्गे सनातनः॥
मया च सार्धं वरद विबुधैश्च महर्षिभिः।
प्रसादयाशु लोकानां शान्तिर्भवतु मा चिरम्॥

(महा०, शान्ति० ३४२। १२७—१२९)

'धर्मकुलमें उत्पन्न हुए ये दोनों महाव्रती देवश्रेष्ठ नर और नारायण महान् तपस्यासे युक्त हैं। किसी निमित्तसे उन्हीं नारायणके कृपाप्रसादसे मेरा जन्म हुआ है। तात! आप भी पूर्व सर्गमें उन्हीं भगवान्के क्रोधसे उत्पन्न हुए सनातन पुरुष हैं। वरद! आप देवताओं और महर्षियों तथा मेरे साथ शीघ्र इन भगवान्को प्रसन्न कीजिये, जिससे सम्पूर्ण जगत्में शीघ्र ही शान्ति स्थापित हो।'

ब्रह्माकी वाणी सुनकर रुद्र सर्वसमर्थ नारायणको प्रसन्न कर उनकी शरणमें गये। वरदायक नारायणने प्रसन्न होकर रुद्रका प्रेमालिङ्गन करते हुए कहा—'प्रभो! मेरी भक्ति करनेवाला आपका भक्त है और आपको संतुष्ट करनेवाला मुझे तुष्ट करता है। मुझमें और आपमें कोई अन्तर नहीं। हम दोनों एक ही हैं।'*

* यस्त्वां वेत्ति स मां वेत्ति यस्त्वामनु स मामनु।
नावयोरन्तरं किंचिन्मा ते भूद् बुद्धिरन्यथा॥
(महा०, शान्तिपर्व ३४२। १३३)

फिर आदिदेव नारायणने कहा—"मेरे वक्षमें आपके शूलका यह चिह्न आजसे 'श्रीवत्स'के नामसे प्रसिद्ध होगा और आपके कण्ठमें मेरे हाथका चिह्न अङ्कित होनेके कारण आप 'श्रीकण्ठ' कहे जायँगे।"

इस प्रकार भगवान् नारायणने रुद्रदेवको संतुष्ट कर उन्हें विदा किया और स्वयं तपश्चरणमें लग गये।

परम तपस्वी देवाधिदेव नर-नारायणने देवताओंकी सहायताके लिये भी रणाङ्गणमें अपने अद्भुत युद्धकौशल तथा अनुपम शूरताका परिचय दिया था। उनके युद्धमें प्रवेश करते ही दैत्यकुलमें हाहाकार मच गया था।

समुद्र-मन्थनके पश्चात् जब अमृत असुरोंके हाथसे निकल गया, तब वे अत्यन्त कुपित हुए और संगठित होकर देवताओंसे संग्राम करने लगे। क्षीरसागरके तटपर भयानक युद्ध छिड़ा। देवता और दैत्योंमें प्रचण्ड युद्ध हो ही रहा था कि उनकी सहायताके लिये भगवान् विष्णुके दोनों रूप नर और नारायण भी समर-क्षेत्रमें आ गये। भगवान् नरके हाथमें दिव्य धनुष और सुतीक्ष्ण शर देखकर नारायणने सुदर्शनचक्रका स्मरण किया। देवताओंके साथ नर-नारायणके प्रबल आक्रमणसे दैत्यकुल छटपटाकर मृत्यु-मुखमें जाने लगा। दैत्य अत्यन्त कुपित होकर देवताओंपर आकाशसे पर्वतों एवं विशाल शिलाखण्डोंकी वृष्टि करने लगे। उक्त पर्वतों एवं शिलाओंके वर्षणसे वनोंसहित धरती काँपने लगी और देवता व्याकुल एवं निराश होने लगे।

तब भगवान् नरने सुवर्ण-भूषित अग्रभागवाले पंखयुक्त तीक्ष्ण शरोंसे पर्वतों एवं शिलाखण्डोंको चूर-चूर कर दिया। सम्पूर्ण आकाश तेजस्वी नरके बाणोंसे आच्छादित हो गया और प्रज्वलित विशाल अग्निपिण्डकी भाँति सुदर्शनचक्रसे भस्म होते हुए दैत्य अपने प्राण लेकर खारे समुद्रमें प्रवेश कर गये।

इस विजयसे देवता बड़े प्रसन्न हुए। देवताओंसहित सुरेन्द्रने अमृतकी निधि रक्षाकी दृष्टिसे भगवान् नरके हाथोंमें दे दी।

× × ×

क्रोधादि वृत्तियोंसे रहित होकर भगवान् नर-नारायण सदा तपमें ही लगे रहते हैं। तपस्याकी अद्भुत शक्तिका आदर्श वे भूमण्डलके मनुष्योंके सम्मुख रखते हैं। किंतु कभी-कभी शिक्षा देनेके लिये भी उन्हें युद्ध करना पड़ता है।

बहुत पहलेकी बात है। दण्डोद्भव-नामक एक प्रख्यात सम्राट् थे। सम्पूर्ण पृथ्वी-मण्डलपर उनका राज्य था। वे प्रबल पराक्रमी नरेश थे, किंतु अपने राज्य एवं शक्तिका उन्हें अत्यन्त अहंकार और मद हो गया था।

'ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रमें क्या कोई ऐसा शूर-वीर है' सम्राट् दण्डोद्भव अत्यन्त गर्वोन्मत्त होकर ब्राह्मणोंसे प्रश्न करते—'जो युद्धमें मेरी समता कर सके ?'

'राजन् ! दो ऐसे श्रेष्ठ पुरुष हैं, जिन्होंने अनेक प्रख्यात योद्धाओंको पराजित किया है।' ब्राह्मणोंके बार-बार ऐसा उत्तर देनेपर भी धन वैभवके मदसे मत्त नरेशके प्रतिदिन प्रश्न करनेपर कुपित होकर ब्राह्मणोंने उत्तर दिया। 'आप उनकी तुलनामें नगण्य सिद्ध होंगे।'

'वे दोनों वीर कौन हैं ?' क्रोध छिपाते हुए दण्डोद्भवने पूछा। 'वे कहाँ रहते हैं और क्या करते हैं।'

ब्राह्मणोंने उत्तरमें कहा—

नरो नारायणश्चैव तापसाविति नः श्रुतम्।
आयातौ मानुषे लोके ताभ्यां युध्यस्व पार्थिव॥
श्रूयेते तौ महात्मानौ नरनारायणावुभौ।
तपो घोरमनिर्देश्यं तप्येते गन्धमादने॥
(महा०, उद्योग० ९६। १४-१५)

'भूपाल ! हमने सुना है कि वे नर-नारायण नामके तपस्वी हैं और इस समय मनुष्यलोकमें आये हैं। तुम उन्हीं दोनोंके साथ युद्ध करो। सुना है, वे दोनों महात्मा नर और नारायण गन्धमादन पर्वतपर ऐसी घोर तपस्या कर रहे हैं, जिसका वाणीद्वारा वर्णन नहीं हो सकता।'

गर्वोन्मत्त नरेश दुर्गम गिरिको लाँघते हुए, शस्त्रसज्ज हो, गन्धमादन पर्वतपर उन दोनों महान् तपस्वियोंके समीप ससैन्य पहुँचे। अत्यन्त कठोर तपके कारण उन दोनों महात्माओंका शरीर अत्यन्त कृश हो गया था। उनके समीप जाकर नरेशने उनके चरणोंमें प्रणाम किया।

भगवान् नर-नारायणने राजाका स्वागत करते हुए उन्हें आसन, जल एवं फल प्रदानकर भोजनके लिये आमन्त्रित करते हुए अत्यन्त विनयपूर्वक मधुर वाणीमें कहा—'हम आपकी क्या सेवा करें ?'

'मैंने अपने बाहुबलसे पृथ्वीके समस्त नरेशोंको पराजित कर दिया है।' राजा दण्डोद्भवने अपना परिचय देते हुए यात्राका उद्देश्य स्पष्ट किया। 'मैंने अपने शत्रुओंका विनाश कर डाला है। अब आपसे युद्धकी इच्छा लेकर इतनी दूर दुर्गम गिरिपर आया हूँ। आप अतिथि-सत्कारके रूपमें मेरा यह मनोरथ पूर्ण कीजिये।'

'राजन् ! यह तपोभूमि है और हम क्रोध-लोभसे रहित हो यहाँ तप करते हैं।' नर-नारायणने अतिथि नरेशको उत्तर दिया। 'इस विशाल वसुंधरापर कितने ही शूर-वीर क्षत्रिय होंगे। आप उन्हींके पास जाकर अपनी युद्धकी पिपासा शान्त कर लें। हमें शान्तिपूर्वक तपश्चरणमें लगे रहने दें।'

'मुझे आपसे ही युद्ध अभीष्ट है।' नर-नारायणके बार-बार समझाने और क्षमा-याचना करते रहनेपर भी सम्राट् दण्डोद्भवने उन्हें युद्धके लिये प्रेरित करते हुए कहा। 'आप व्यर्थका बहाना न कर मुझे युद्धका दान दें।'

'युद्ध-लोलुप नरेश ! तू नहीं मानता तो अस्त्र-शस्त्रसहित अपनी सम्पूर्ण सेनाओंको ले आ।' महात्मा नरने हाथमें एक मुट्ठी सींक लेकर कहा। 'अहंकारसे मत्त होकर तू सबको ललकारता फिरता है, अतएव मैं तेरी युद्ध-कामनाकी पूर्ति किये देता हूँ।'

'आप एक मुट्ठी सींकसे ही युद्ध करना चाहते हैं ?' दण्डोद्भवने कहा। 'तथापि मुझे आपसे युद्ध करना ही है। इसीलिये मैं इतनी दूरसे आया हूँ। मैं आपके साथ युद्ध अवश्य करूँगा।'

और सम्राट् दण्डोद्भव उन महातपस्वियोंको पराजित करनेके उद्देश्यसे उनपर अपने तीक्ष्ण शरोंकी वर्षा करने लगे। वे बाण निश्चय ही शत्रु-संहार करनेमें समर्थ थे; किंतु प्रभु नरने उन्हें सींकोंसे ही नष्ट कर दिया तथा राजाके ऊपर अचूक ऐषीकास्त्रका प्रयोग किया। इस प्रकार भगवान् नरने सींकोंसे ही सम्राट् दण्डोद्भवके नेत्र, नासिका और कान तथा सम्पूर्ण अङ्गोंको बींध डाला। दण्डोद्भवने देखा—अन्तरिक्ष सींकोंसे आच्छादित होकर उज्ज्वल हो गया है, तब अत्यन्त लज्जाके साथ प्रभुके चरणोंमें गिरकर नरेशने कहा—'भगवन् ! क्षमा करें। मैं आपके शरण हूँ। मेरा कल्याण कीजिये।'

क्षत्रिय-धर्म और राजनीतिके अनुसार विनीत-बुद्धि, लोभ-शून्य, अहंकाररहित, जितेन्द्रिय, क्षमाशील, कोमल-स्वभाव तथा सौम्य होकर प्रजा-पालनका उपदेश देते हुए भगवान् नरने दण्डोद्भवसे कहा—

अनुज्ञातः स्वस्ति गच्छ मैवं भूयः समाचरेः ।
कुशलं ब्राह्मणान् पृच्छेरावयोर्वचनाद् भृशम् ॥
(महा०, उद्योग० ९६ । ३८)

'मैंने तुम्हें आज्ञा दे दी; तुम्हारा कल्याण हो । जाओ, फिर ऐसा बर्ताव न करना । विशेषतः हम दोनोंके कहनेसे तुम ब्राह्मणोंसे उनका कुशल-समाचार पूछते रहना ।'

सम्राट् दण्डोद्भवने श्रद्धा-भक्तिपूर्वक श्रीनर-नारायणके चरणोंमें प्रणाम किया और अपनी राजधानीमें लौटकर अहंकार-शून्य चित्तसे धर्मपूर्वक शासन करने लगे ।

× × ×

एक बार आदिदेव नर-नारायणके दर्शनार्थ देवर्षि नारद गन्धमादन पर्वतपर पहुँचे । देवता और पितरोंका पूजन करनेके अनन्तर जब भगवान् नर-नारायणने देवर्षि नारदको देखा तो शास्त्रोक्त विधिसे उनकी पूजा की ।

शास्त्रधर्मके विस्तार और इस आश्चर्यपूर्ण व्यवहारसे अत्यन्त प्रसन्न होकर नारदजीने भगवान् नर-नारायणके चरणोंमें प्रणाम किया ।

'प्रभो ! सम्पूर्ण वेद, शास्त्र और पुराण आपकी ही महिमाका गान करते हैं ।' नारायण-भक्त श्रीनारदजीने श्रद्धा-पूर्वक निवेदन किया । 'आप अजन्मा, सनातन और निखिल प्राणि-जगत्के माता-पिता हैं । आप ही जगद्गुरु हैं । सम्पूर्ण देवता तथा मनुष्य आपकी ही उपासना करते हैं । फिर आप किसकी पूजा करते हैं, समझमें नहीं आता । बतलानेकी कृपा कीजिये ।'

'ब्रह्मन् ! यह अत्यन्त गोपनीय विषय है ।' श्रीभगवान् बोले । 'यह सनातन रहस्य किसीसे कहनेयोग्य नहीं, किंतु तुम्हारे-जैसे अत्यन्त प्रेमी भक्तसे छिपाना भी उचित नहीं । अतएव मैं तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो ।' श्रीभगवान्ने आगे कहा—

तां योनिमावयोर्विद्धि योऽसौ सदसदात्मकः ।
आवाभ्यां पूज्यतेऽसौ हि दैवे पित्र्ये च कल्प्यते ॥
नास्ति तस्मात् परोऽन्यो हि पिता देवोऽथ वा द्विज ।
आत्मा हि नः स विज्ञेयस्ततस्तं पूजयावहे ॥
दैवं पित्र्यं च सततं तस्य विज्ञाय तत्त्वतः ।
आत्मप्राप्तानि च ततः प्राप्नुवन्ति द्विजोत्तमाः ॥
(महा०, शान्ति० ३३४ । ३२-३३, ३८)

'वह सदसत्स्वरूप परमात्मा ही हम दोनोंकी उत्पत्तिका कारण है—इस बातको जान लो । हम दोनों उसीकी पूजा करते तथा उसीको देवता और पितर मानते हैं । ब्रह्मन् ! उससे बढ़कर दूसरा कोई देवता या पितर नहीं है । वही हमलोगोंकी आत्मा है, यह जानना चाहिये; अतः हम उसीकी पूजा करते हैं ।............श्रेष्ठ द्विज उसीके उद्देश्यसे किये जानेवाले देवता तथा पितृ-सम्बन्धी कार्योंको ठीक-ठीक जानकर अपनी अभीष्ट वस्तुओंको प्राप्त कर लेते हैं ।'

'आपने कृपापूर्वक गोपनीय विषय भी मुझपर प्रकट कर दिया, इसके लिये मैं आपका चिरकृतज्ञ रहूँगा ।' नारदजीने कहा । 'मुझे आपकी कृपाका ही सहारा है । अब मैं श्वेत-द्वीपस्थित आपके आदिविग्रहका दर्शन करना चाहता हूँ । आप आज्ञा प्रदान करें ।'

भगवान् नारायणने श्रीनारदजीकी पूजा की और फिर उन्हें वहाँ जानेकी आज्ञा दे दी ।

कुछ दिनोंके अनन्तर ब्रह्मपुत्र नारदजी जब अत्यन्त अद्भुत श्वेतद्वीपका तथा प्रभुका दुर्लभ दर्शन कर लौटे, तब पुनः गन्धमादन पर्वतपर भगवान् नर-नारायणके समीप पहुँचे । वे भगवान् नर-नारायणके परम तेजस्वी अद्भुत रूपका दर्शन कर कृतार्थताका अनुभव करते हुए सोचने लगे—'अरे, मैंने श्वेतद्वीपमें भगवान्की सभाके भीतर जिन सर्वभूतवन्दित सदस्योंका दर्शन किया था, ये दोनों श्रेष्ठ ऋषि भी तो वैसे ही हैं ।'

भगवान् नर-नारायणने नारदजीका स्वागत कर उनका कुशल-समाचार पूछा । नारदजीने अत्यन्त श्रद्धा और भक्तिसे भगवान् नर-नारायणकी परिक्रमा की और उनके सम्मुख एक कुशासनपर बैठे । भगवान् नर-नारायण भी पाद्यार्घ्यादिसे नारदजीका पूजन कर उनके सामने अपने-अपने आसनोंपर बैठ गये ।

'देवर्षे !' नर-नारायणने अत्यन्त मधुर वाणीमें नारदजीसे पूछा—'तुमने श्वेतद्वीपमें जाकर हम दोनोंके कारणरूप परब्रह्म परमेश्वरका दर्शन कर लिया ?'

'भगवन् ! अत्यन्त दया कर विश्वरूपधारी, अविनाशी परम पुरुषने मुझे अपना परम दुर्लभ दर्शन दिया । निखिल ब्रह्माण्ड उन अचिन्त्य, अनन्त, अपरिसीम, महामहिम

परमात्मामें ही स्थित है ।' श्रीनारदजीने कहा । श्रीभगवान्‌ने मुझे सम्पूर्ण धर्म, क्षेत्रज्ञ एवं भावी अवतारोंके सम्बन्धमें भी बताया था । और प्रभो !

> अद्यापि चैनं पश्यामि युवां पश्यन् सनातनौ ॥
> यैर्लक्षणैरुपेतः स हरिरव्यक्तरूपधृक् ।
> तैर्लक्षणैरुपेतौ हि व्यक्तरूपधरौ युवाम् ॥
> (महा०, शान्ति० ३४३ । ४८-४९)

'मैं इस समय भी आप दोनों सनातन पुरुषोंको देखकर यहीं श्वेतद्वीपनिवासी भगवान्‌की झाँकी कर रहा हूँ । वहाँ मैंने अव्यक्तरूपधारी श्रीहरिको जिन लक्षणोंसे सम्पन्न देखा था, आप दोनों व्यक्तरूपधारी पुरुष भी उन्हीं लक्षणोंसे सुशोभित हैं ।'

इसके अनन्तर नारदजीने कहा—'इतना ही नहीं, उन परमात्माके समीप मैंने आप दोनों महापुरुषोंको भी देखा था और उन परम प्रभुके आदेशसे ही मैं यहाँ पुनः आपके समीप आया हूँ । त्रैलोक्यमें उन महाप्रभुके सदृश आपके सिवा अन्य कोई नहीं दीखता ।'

'तुमपर श्रीभगवान्‌का बड़ा अनुग्रह है, जो उन्होंने तुम्हें अपना दर्शन दे दिया' नर-नारायण बोले । 'परमात्माके उक्त स्थलमें हम दोनोंके अतिरिक्त तुम्हारे पिता कमलयोनि ब्रह्माके भी प्रवेशका अधिकार नहीं है । उन प्रभुको भक्तके समान और कोई प्रिय नहीं । अपने मनको एकाग्र कर लेनेवाले शौच-संतोष आदि नियमोंसे सम्पन्न, जितेन्द्रिय भक्त ही अनन्यभावसे उनके चरण-कमलोंकी शरण ग्रहणकर उन वासुदेवमें प्रवेश करते हैं । हम दोनों धर्मके यहाँ अवतार ग्रहणकर इस बदरिकाश्रममें कठोर तपश्चर्यामें लगे हैं ।

> ये तु तस्यैव देवस्य प्रादुर्भावाः सुरप्रियाः ।
> भविष्यन्ति त्रिलोकस्थास्तेषां स्वस्तीत्यथो द्विज ॥
> (महा०, शान्ति० ३४४ । २१)

'ब्रह्मन् ! उन्हीं भगवान् परमदेव परमात्माके तीनों लोकोंमें जो देवप्रिय अवतार होनेवाले हैं, उनका सदा ही परम मङ्गल हो—यही हमारी इस तपस्याका उद्देश्य है ।'

भगवान् नर-नारायणने आगे कहा—'ब्रह्मन् ! तुमने श्वेतद्वीपमें भगवान्‌के दर्शन और उनसे वार्तालाप किया, यह सब हमें विदित है ।'

नर और नारायणकी यह बात सुनकर नारदजी उनके चरणोंमें गिर पड़े और फिर वहीं उनके चरणोंमें रहकर भगवान् वासुदेवकी एवं नर-नारायणकी आराधनामें लग गये । उन्होंने नारायण-सम्बन्धी अनेक मन्त्रोंका जप करते हुए भगवान् नर-नारायणके पवित्रतम आश्रममें एक हजार दिव्य वर्षोंतक निवास किया ।

× × ×

द्वापरमें भू-भार-हरण करनेके लिये अवतरित होनेवाले कमलनयन श्रीकृष्ण और उनके प्राणप्रिय सखा पाण्डुनन्दन अर्जुनके रूपमें भगवान् नर-नारायणने ही अवतार ग्रहण किया था । द्वारकामें ब्राह्मणके मृतपुत्रोंको लानेके लिये जब मधुसूदन कुन्तीपुत्र अर्जुनके साथ शेषशायी अनन्त भगवान्‌के पास पहुँचे, तब ब्राह्मणके मृतपुत्रोंको लौटाते हुए उन्होंने स्वयं उन दोनोंसे कहा था—

> द्विजात्मजा मे युवयोर्दिदृक्षुणा मयोपनीता भुवि धर्मगुप्तये ।
> कलावतीर्णाववनेर्भरासुरान् हत्वेह भूयस्त्वरयेतमन्ति मे ॥
> पूर्णकामावपि युवां नरनारायणावृषी ।
> धर्ममाचरतां स्थित्यै ऋषभौ लोकसंग्रहम् ॥
> (श्रीमद्भागवत १० । ८९ । ५९-६०)

'श्रीकृष्ण और अर्जुन ! मैंने तुम दोनोंको देखनेके लिये ही ब्राह्मणके बालक अपने पास मँगा लिये थे । तुम दोनोंने धर्मकी रक्षाके लिये मेरी कलाओंके साथ पृथ्वीपर अवतार ग्रहण किया है; पृथ्वीके भाररूप दैत्योंका संहार करके शीघ्र-से-शीघ्र तुमलोग फिर मेरे पास लौट आओ । तुम दोनों ऋषिवर नर और नारायण हो । यद्यपि तुम पूर्णकाम और सर्वश्रेष्ठ हो, फिर भी जगत्‌की स्थिति और लोक-संग्रहके लिये धर्मका आचरण करो ।'

× × ×

कौरवोंकी सभामें जब दुश्शासन द्रौपदीका वस्त्र खींचने जा रहा था, उस समय लाज बचानेके लिये द्रौपदीने श्रीकृष्णके साथ भगवान् नरको भी पुकारा था—

> 'कृष्णं च विष्णुं च हरिं नरं च त्राणाय विक्रोशति याज्ञसेनी ।'
> (महा०, सभा० ६८ । ४१)

'यज्ञसे उत्पन्न हुई कृष्णा अपनी रक्षाके लिये श्रीकृष्ण, विष्णु, हरि और नर आदि भगवन्नामोंको जोर-जोरसे पुकार रही थी ।'

अन्तकालमें जिनके प्राणोंका निष्क्रमण ग्रीवासे होता है, वे भाग्यवान् ऋषियोंमें परमोत्तम नरकी संनिधि-लाभ करते हैं—

'प्रीयता तु मुनिश्रेष्ठं नरमात्रोत्यनुत्तमम् ।'

(महा०, शान्ति० ३१७ । ५)

भगवान् नर-नारायणका अवतार कल्पपर्यन्त तपश्चर्याके लिये हुआ है। वे प्रभु आज भी बदरिकाश्रममें तप कर रहे हैं। अधिकारी पुरुष उनके दर्शन भी प्राप्त कर सकते हैं।

—शि० दु०

[५]

भगवान् कपिलमुनि

मान्यत्र मद्भगवतः प्रधानपुरुषेश्वरात् ।
आत्मनः सर्वभूतानां भयं तीव्रं निवर्तते ॥

(श्रीमद्भागवत ३ । २५ । ४१)

'मैं साक्षात् भगवान् हूँ; प्रकृति और पुरुषका भी प्रभु हूँ तथा समस्त प्राणियोंका आत्मा हूँ; मेरे सिवा और किसीका आश्रय लेनेसे मृत्युरूप महाभयसे छुटकारा नहीं मिल सकता।'—भगवान् कपिल

सृष्टिके प्रारम्भिक पाद्मकल्पके स्वायम्भुव मन्वन्तरकी बात है। लोकपितामह चतुराननको सृष्टि-संवर्द्धनकी ही चिन्ता थी। उन्होंने स्वायम्भुव मनुको शतरूपासे विवाह करनेकी प्रेरणा की। तदनन्तर स्रष्टाने अपने मानसपुत्र महर्षि कर्दमको भी प्रजा-वृद्धिका आदेश दिया। महर्षि कर्दमने पिताकी आज्ञा स्वीकार की और बिन्दुसर तीर्थपर जाकर तप करने लगे। वे अपनी चित्त-वृत्तियोंको एकाग्र कर धारणा-ध्यानसे ऊपर समाधिमें स्थित होकर त्रैलोक्यवन्दित शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधारी श्रीहरिके भुवनमोहन सौन्दर्यका दर्शन कर आप्यायित हो रहे थे। उन्हें बाह्यजगत्का किंचित् भी ज्ञान नहीं था। इस प्रकार दस सहस्र वर्ष व्यतीत होनेपर अचानक महर्षिके हृदयसे उनकी प्राणप्रिय ध्यानमूर्ति अदृश्य हो गयी। व्याकुलतासे उनके नेत्र खुले तो वे धन्यातिधन्य, परम कृतार्थ हो गये। महर्षि कर्दमके सम्मुख उनकी ध्यान-की वही मूर्ति, उनके वे ही परम ध्येय नीलोत्पलदलश्याम, पीताम्बरधारी श्रीहरि उनके सम्मुख प्रत्यक्ष खड़े मन्द-मन्द मुस्करा रहे थे। महर्षि प्रभुके चरण-कमलोंमें दण्डकी भाँति लोट गये और फिर हाथ जोड़कर प्रेमपूर्ण हृदयसे अत्यन्त मधुर वाणीमें स्तुति करते हुए कहने लगे—

तथा स चाहं परिवोढुकामः समानशीलां गृहमेधधेनुम् ।
उपेयिवान्मूलमशेषमूलं दुराशयः कामदुघाङ्घ्रिपस्य ॥
तं त्वानुभूत्योपरतक्रियार्थं स्वमायया वर्तितलोकतन्त्रम् ।
नमाम्यभीक्ष्णं नमनीयपादसरोजमल्पीयसि कामवर्षम् ॥

(श्रीमद्भागवत ३ । २१ । १५,२१)

'प्रभो! आप कल्पवृक्ष हैं। आपके चरण समस्त मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले हैं। मेरा हृदय काम-कलुषित है। मैं भी अपने अनुरूप स्वभाववाली और गृहस्थ-धर्मके पालनमें सहायक शीलवती कन्यासे विवाह करनेके लिये आपके चरण-कमलोंकी शरणमें आया हूँ।''''''नाथ! आप स्वरूपसे निष्क्रिय होनेपर भी मायाके द्वारा सारे संसारका व्यवहार चलानेवाले हैं तथा थोड़ी-सी उपासना करनेवालेपर भी समस्त अभिलषित वस्तुओंकी वर्षा करते रहते हैं। आपके चरण-कमल वन्दनीय हैं, मैं आपको बार-बार नमस्कार करता हूँ।'

'मुने! जिसके लिये तुम दीर्घकालसे मेरी आराधना कर रहे हो, वह अवश्य पूरी होगी।' भक्त-प्राणधन श्रीहरिने मुस्कराते हुए कर्दमजीसे कहा। 'सप्तद्वीपा वसुंधराके यशस्वी सम्राट् स्वायम्भुव मनु ब्रह्मावर्तमें रहकर पृथ्वीका शासन करते हैं। वे परसों ही अपनी रूप-यौवन-गुण-शील-सम्पन्ना देवहूति-नामक कन्याको लेकर अपनी साध्वी पत्नी शतरूपाके साथ यहाँ आयेंगे। वह राजकन्या सर्वथा तुम्हारेयोग्य है। महाराज स्वायम्भुव मनु उसे तुम्हें सविधि अर्पण कर देंगे। उस महिमामयी आदर्श देवीकी कोखसे नौ कन्याएँ उत्पन्न होंगी। वे कन्याएँ मरीच्यादि ऋषियोंसे विवाहित होकर स्रष्टाके अभीष्ट सृष्टि-संवर्द्धनमें सहायक होंगी।' इसके अनन्तर सर्वान्तर्यामी, सर्वसमर्थ, करुणा-वरुणालय प्रभुने कहा—

त्वं च सम्यगनुष्ठाय निदेशं म उशत्तमः ।
मयि तीर्थीकृताशेषक्रियार्थो मां प्रपत्स्यसे ॥
सहाहं स्वांशकलया त्वद्वीर्येण महामुने ।
तव क्षेत्रे देवहूत्यां प्रणेष्ये तत्त्वसंहिताम् ॥

(श्रीमद्भागवत ३ । २१ । ३०,३२)

'तुम मेरी आज्ञाका अच्छी तरह पालन करनेसे शुद्ध-चित्त हो फिर अपने सब कर्मोंका फल मुझे अर्पण कर मुझको ही प्राप्त होओगे।''''''महामुने! मैं भी अपने अंश-कलारूपसे तुम्हारे वीर्यद्वारा तुम्हारी पत्नी देवहूतिके गर्भसे अवतीर्ण होकर सांख्यशास्त्रकी रचना करूँगा।'

इतना कहकर श्रीहरि गरुडारूढ़ हो स्वधाम पधारे और महर्षि कर्दम वहीं बिन्दुसरपर महाराज स्वायम्भुव मनुके आगमनकी प्रतीक्षा करने लगे। उस समय पुष्प एवं फलोंके भारसे लदे पवित्र वृक्ष-लताओंसे घिरे बिन्दुसरकी अद्भुत शोभा हो रही थी। वहाँ अनेक प्रकारके सुन्दर पक्षी निर्द्वन्द्व होकर प्रसन्नतापूर्वक कलरव कर रहे थे।

आदिराज महाराज मनु अपनी भाग्यशालिनी पुत्री देवहूतिके साथ उक्त परम पावन तीर्थमें पहुँचे तो उन्होंने अग्निहोत्रसे निवृत्त हुए महामुनि कर्दमको देखा। वे तपकी सजीव मूर्ति, जटा-जूटमण्डित, तप्तकाञ्चनकाय ऋषिको देखकर आनन्दविह्वल हो गये और उन्होंने उनके चरणोंमें प्रणाम किया। महर्षिने आशीर्वाद देकर उनसे आश्रममें आनेका हेतु जानना चाहा।

'मुने! यह प्रियव्रत और उत्तानपाद-नामक दो बन्धुओंकी बहन मेरी प्राणप्रिया पुत्री देवहूति है।' महाराज स्वायम्भुव मनुने निवेदन किया। 'इसने देवर्षि नारदके मुखसे आपके रूप, आयु, विद्या, शील एवं तप आदिका वर्णन सुनकर आपको पतिरूपमें प्राप्त करनेका निश्चय कर लिया है। मैं अत्यन्त आदर एवं श्रद्धाके साथ इसे आपके कर-कमलोंमें समर्पित करने आया हूँ।'

'मैं परम प्रतापी महाराज स्वायम्भुव मनुकी परम लावण्यमयी, सर्वसद्गुणसम्पन्ना पवित्र कन्याका पाणिग्रहण अवश्य करूँगा।' महर्षिने स्पष्ट शब्दोंमें उत्तर दिया। 'और जबतक इसके संतान नहीं हो जायगी, तबतक मैं गृहस्थ-धर्मका पालन भी करूँगा; किंतु संतान होनेके बाद मैं परम पिता परमात्माको प्रसन्न करनेके लिये तपश्चरणार्थ वनमें चला जाऊँगा। इसे आप समझ लें।'

महर्षि कर्दम मौन हो गये, पर अपनी पुत्री देवहूतिकी प्रसन्नताका अनुभव कर महाराज स्वायम्भुव मनु और शतरूपाने उसका वहीं महर्षिके साथ सविधि विवाह कर दिया और वस्त्राभूषण तथा पात्र आदि अत्यधिक मात्रामें दिये।

पुत्रीसे बिछुड़ते समय मनु और शतरूपाके नेत्र बरसने लगे, किंतु महर्षि कर्दमके आश्वासनसे धैर्य धारणकर वे रथपर बैठे और पुण्यतोया सरस्वती नदीके दोनों तटोंपर ऋषि-मुनियोंके आश्रमोंकी शोभा देखते हुए अपनी राजधानी बर्हिष्मतीपुरीके लिये प्रस्थित हुए।

भगवान्‌की प्रेरणासे ही महर्षि कर्दमके मनमें कामनाका अङ्कुर उगा था, अन्यथा वे परम तपस्वी सर्वथा निःस्पृह थे। मनोऽनुकूल पत्नीके लिये उन्होंने दीर्घकालतक तप किया, पर विवाहमें भी उनकी किंचित् भोगबुद्धि नहीं थी। इधर विवाह हुआ और उधर महर्षि तपश्चरणमें लग गये; पर राजकुलकी सुख-सुविधामें पली परमसाध्वी सुकुमारी देवहूतिने अपना तन, मन और प्राण—सभी पतिकी सेवामें लगा दिये। वे अपने पतिदेवकी छोटी-से-छोटी सुविधाओंका भी ध्यान रखती थीं। समिधाएँ, कुश, पुष्प, फल तथा जल वनमें दूरतक जाकर ढूँढ़-ढूँढ़कर ले आतीं। आश्रमको झाड़-बुहार एवं गोमयसे लीपकर स्वच्छ और पवित्र रखतीं। इस प्रकार पतिकी सेवामें उनका सुकोमल सुन्दर शरीर सूखकर काला पड़ गया। उनके काले सुचिक्कण नागिन-तुल्य लंबे केश जटाओंमें बदल गये। वे भी वल्कलधारिणी तपस्विनी हो गयीं।

'राजकुमारी!' एक दिन अत्यन्त प्रसन्न होकर महर्षिने अपनी सहधर्मिणी देवहूतिसे कहा। 'तुमने मेरी सेवाके लिये अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया है। अब मैं तुम्हें इसका प्रतिदान देना चाहता हूँ।'

महर्षिके योग-प्रभावसे अत्यन्त अद्भुत दिव्य विमान प्रकट हुआ। उसमें सभी उपकरण स्वर्ण एवं बहुमूल्य रत्नोंके थे। उपवन, सरोवर, शयन-कक्ष, विश्राम-कक्ष, भोजनालय आदि सभी अलौकिक थे। सहस्रों अलौकिक दास-दासियाँ भी थीं। दासियोंने उन्हें दिव्य गन्धयुक्त अङ्गराग लगाकर दिव्यौषधियोंके जलोंसे स्नान कराया। दुर्लभ वस्त्रा-भरण धारणकर भगवती देवहूति अपने परम तपोधन पति कर्दमजीके साथ विमानपर आरूढ़ हुईं।

विमानमें सभी लोकोत्तर ऐश्वर्य विद्यमान थे। उस अद्भुत विमानपर निवास कर दुर्लभ सुखोंका उपभोग करते हुए महर्षिने मेरु पर्वतकी घाटियोंमें विहार किया, जो लोक-पालोंकी विहारभूमि है। इस तेजोमय विमानपर महर्षि अपनी सती धर्मपत्नी देवहूतिके साथ वैश्रम्भक, सुरसन, नन्दन, पुष्पभद्र और चैत्ररथ आदि अनेकों देवोपवनों, मानस-सरोवर तथा सभी लोकोंमें विचरते हुए विहार करते रहे। इस प्रकार अपनी प्राणप्रिया देवहूतिको समस्त वसुंधराका परिभ्रमण कराकर महर्षि कर्दम अपने आश्रमपर लौट आये। देवहूतिके नौ कन्याएँ उत्पन्न हुईं। वे कन्याएँ

अनिन्द्य सुन्दरी थीं और उनके प्रत्येक अङ्गसे लाल कमलकी सुगन्ध निकल रही थी।

'अब मैं अपने कथनानुसार त्यागपूर्ण जीवन एवं तपश्चर्याके लिये वनमें जाऊँगा।' महर्षि कश्यपने अपनी परम सुशीला धर्मपत्नी देवहूतिसे स्पष्ट कह दिया। 'तुम्हारे पिताजीके सम्मुख ही यह निश्चय हो गया था।'

देवी देवहूति अधीर हो गयीं। उनकी बुद्धि काम नहीं कर रही थी। उनके कमल-सरीखे नेत्रोंमें आँसू भर आये, किंतु अपने मनोभावोंको दबाकर उन्होंने अत्यन्त प्रेमसे मुस्कराते हुए मधुर वाणीमें कहा—'भगवन्! आपकी प्रतिज्ञा अक्षरशः पूरी हुई, तब भी मैं आपकी शरणमें हूँ। आप मुझे निर्भय और निश्चिन्त करें। मैं दुर्बल स्त्री हूँ। इन नौ कुमारियोंको सत्पात्रोंके हाथों समर्पित करना है और आपके वन-गमनके पश्चात् मेरे जीवन-मृत्युका दुःख-निवारण करनेवाला भी कोई होना चाहिये।' इसके अनन्तर उन्होंने अत्यन्त विनयपूर्वक अपने सर्वसमर्थ विरक्त पतिसे निवेदन किया—

नेह यत्कर्म धर्माय न विरागाय कल्पते।
न तीर्थपदसेवायै जीवन्नपि मृतो हि सः॥
साहं भगवतो नूनं वञ्चिता मायया दृढम्।
यत्त्वां विमुक्तिदं प्राप्य न मुमुक्षेय बन्धनात्॥

(श्रीमद्भागवत ३। २३। ५६-५७)

'संसारमें जिस पुरुषके कर्मोंसे न तो धर्मका सम्पादन होता है और न भगवान्की सेवा ही सम्पन्न होती है, वह पुरुष जीते-जी मुर्देके समान है। अवश्य ही मैं भगवान्की मायासे बहुत ठगी गयी, जो आप-जैसे मुक्तिदाता पतिदेवको पाकर भी मैंने संसार-बन्धनसे छूटनेकी इच्छा नहीं की।'

'निर्दोष प्रिये!' देवी देवहूतिकी वैराग्यमयी वाणी सुनकर दयालु महर्षि कर्दम प्रसन्न हो गये और उसी समय उन्हें जगत्पति श्रीविष्णुके वचनकी स्मृति हो आयी। उन्होंने अपनी पत्नीसे कहा—'तुम सर्वथा निश्चिन्त हो जाओ। मेरा साथ व्यर्थ नहीं जायगा। तुम्हारे अनेक प्रकारके व्रत सफल होकर रहेंगे। तुम संयम, नियम और तप करती हुई श्रीभगवान्का श्रद्धापूर्वक भजन करो। दान और प्रत्येक धर्मका पालन करो। साक्षात् श्रीहरि तुम्हारे गर्भसे अवतीर्ण होकर मेरा, तुम्हारा और जगत्का अशेष मङ्गल करेंगे।'

अपने परम तपस्वी पतिके वचनपर सुदृढ़ विश्वासके कारण महिमामयी माता देवहूतिकी प्रसन्नताकी सीमा नहीं थी। वे प्राणपणसे अखिलभुवनपति श्रीपुरुषोत्तमका स्मरण-चिन्तन, भजन-कीर्तन, पूजन एवं उपासना करने लगीं। उनका मन, बुद्धि, वाणी और प्रत्येक इन्द्रिय परब्रह्म परमात्माको ही परम प्रसन्न करनेमें लग गयी।

अन्ततः परम पुनीत क्षण उपस्थित हुआ। जलाशयों एवं सरिताओंके जल निर्मल हो गये। शीतल-मन्द-सुगन्ध समीर बहने लगा। दिशाएँ प्रसन्न हो गयीं। पृथ्वी और आकाशमें सर्वत्र अलौकिक आनन्द छा गया। आकाशसे सुरगण दिव्य सुमनोंकी वृष्टि करने लगे। परम सौभाग्यशालिनी माता देवहूतिकी कोखसे देवाधिदेव नारायण अवतरित हुए।

कुछ दिनों बाद महर्षि कर्दमने लोकस्रष्टा ब्रह्माके आदेशानुसार अपनी पवित्र कन्याओंमेंसे कला नामकी कन्या महर्षि मरीचिको, अनसूया अत्रिको, श्रद्धा अङ्गिराको, हविर्भू पुलस्त्यको, गति पुलहको, क्रिया क्रतुको, ख्याति भृगुको, अरुन्धती वसिष्ठको और शान्ति अथर्वाऋषिको सविधि समर्पित कर दी। कन्याएँ प्रसन्नतापूर्वक अपने-अपने पतियोंके साथ चली गयीं।

कुछ समय बाद महर्षि कर्दम अपने पुत्रके रूपमें अवतरित ज्ञानावतार कपिलजीके समीप पहुँचे। उस समय भगवान् कपिल एकान्तमें ध्यानमग्न बैठे हुए थे। महर्षिने उनके चरणोंमें आदरपूर्वक प्रणाम किया तो वे संकोचमें पड़ गये। इसपर महर्षिने उनकी स्तुति करते हुए कहा—

त्वां सूरिभिस्तत्त्वबुभुत्सयाद्धा सदाभिवादार्हणपादपीठम्।
ऐश्वर्यवैराग्ययशोऽवबोधवीर्यश्रिया पूर्त्तमहं प्रपद्ये॥

(श्रीमद्भागवत ३। २४। ३२)

'आपका पाद-पीठ तत्त्वज्ञानकी इच्छासे युक्त विद्वानोंद्वारा सर्वदा वन्दनीय है तथा आप ऐश्वर्य, वैराग्य, यश, ज्ञान, वीर्य और श्री—इन छहों ऐश्वर्योंसे पूर्ण हैं। मैं आपकी शरण हूँ।'

फिर उन्होंने कहा—'प्रभो! आपके अनुग्रहसे मेरी सारी कर्मराशि समाप्त हो गयी। मैं देवर्षि-पितृ-ऋणसे मुक्त हो गया। अब मेरा करणीय कुछ शेष नहीं रहा। अब तो मैं सर्वस्व त्यागकर संन्यास ग्रहण करना चाहता हूँ और चाहता हूँ कि आपका चिन्तन करता हुआ शान्तिपूर्वक जीवनके

शेष आस पूरे कर दूँ। आपने कृपापूर्वक मेरे यहाँ पुत्ररूपमें अवतार ग्रहण किया, यह आपकी दयालुताका प्रत्यक्ष प्रमाण है। अब आप मुझे आज्ञा प्रदान करें।'

अत्यन्त विरक्त एवं परम कृतार्थ महर्षि कर्दमको सदुपदेश देते हुए भगवान् कपिलने उनसे कहा—

गच्छ कामं मयाऽऽपृष्टो मयि संन्यस्तकर्मणा ।
जित्वा सुदुर्जयं मृत्युममृतत्वाय मां भज ॥
मामात्मानं स्वयंज्योतिः सर्वभूतगुहाशयम् ।
आत्मन्येवात्मना वीक्ष्य विशोकोऽभयमृच्छसि ॥
(श्रीमद्भागवत ३ । २४ । ३८-३९)

'मुने! मैं आज्ञा देता हूँ, तुम इच्छानुसार जाओ और अपने सम्पूर्ण कर्म मुझे अर्पण करते हुए दुर्जय मृत्युको जीतकर मोक्षपद प्राप्त करनेके लिये मेरा भजन करो। मैं स्वयम्प्रकाश और सम्पूर्ण जीवोंके अन्तःकरणोंमें रहनेवाला परमात्मा ही हूँ। अतः जब तुम विशुद्ध बुद्धिके द्वारा अपने अन्तःकरणमें मेरा साक्षात्कार कर लोगे, तब सब प्रकारके शोकोंसे छूटकर निर्भय पद (मोक्ष) प्राप्त कर लोगे।'

इसके अनन्तर श्रीभगवान्ने कहा—'मैं अपनी परम-पुण्यमयी सरला जननीको भी तत्त्वज्ञानका उपदेश करूँगा, जिससे उसे आत्मज्ञान प्राप्त हो जायगा और वह सहज ही इस भवाटवीके पार अनन्त अपरिसीम आनन्दसिन्धुमें सदाके लिये निमज्जित हो जायगी।'

महर्षि कर्दमने भगवान् कपिलकी परिक्रमा की और बार-बार उनके चरणोंमें प्रणाम कर निस्सङ्गभावसे विचरण करनेके लिये चले गये। समदर्शिता एवं सर्वात्मभावके कारण उनकी बुद्धि अन्तर्मुखी और शान्त हो गयी। सर्वान्तर्यामी जगत्पति भगवान् वासुदेवमें चित्त स्थिर हो जानेके कारण वे सम्पूर्ण बन्धनोंसे मुक्त हो गये और करुणामय श्रीभगवान्की भक्तिके प्रभावसे उन्होंने उनका दुर्लभ परम पद प्राप्तकर अपना जीवन और जन्म सफल कर लिया।

परमभाग्यवती माता देवहूतिने देखा कि उनके तपःपूत पति परमात्माके परमपदकी प्राप्तिके लिये वनमें चले गये, पुत्रियाँ अपने तपस्वी पतियोंके आश्रयमें सुखपूर्वक रहने लगीं और रहा एक पुत्र, जो साक्षात् परमपुरुषका ज्ञानावतार था। महर्षि कर्दमकी धर्मपत्नी एवं भगवान् कपिलकी जननी होनेके कारण वे अध्यात्मकी सजीव मूर्ति थीं ही, अब उनके मनमें अत्यधिक वैराग्य भर गया। अब उन्हें वृक्ष-लता, सर-सरिता, वन-उपवन, पशु-पक्षी—सबमें असारता और नश्वरताके ही दर्शन होते थे। देवदुर्लभ विमानके लोकोत्तर सुख एवं सहस्रों दास-दासियोंकी सेवा—सबको उन्होंने क्षणभरमें ही त्याग दिया।

एक दिन परमविरक्ता माता देवहूतिने देखा, उनके पुत्रके रूपमें प्रकट भगवान् कपिल बिन्दुसरके समीप लता-मण्डपमें ध्यानावस्थित आसीन हैं। माता देवहूतिने उनके चरणोंमें श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया।

'माता! आप यह क्या कर रही हैं!' अत्यन्त संकोचमें पड़कर भगवान् कपिलने कहा। 'मैं आपका पुत्र हूँ। आप मुझे आज्ञा-प्रदान करें।'

'प्रभो! यह सर्वथा सत्य है कि आपने इस पृथ्वीपर मुझे ही जननी-पदपर प्रतिष्ठित होनेका गौरवपूर्ण सौभाग्य प्रदान किया है।' माता देवहूतिने उत्तर दिया। 'पर लोक-पितामहने मुझे आपके प्राकट्य-कालमें ही बता दिया था कि आप निखिल-लोकपति साक्षात् परब्रह्म परमेश्वर हैं, यह सर्वथा निर्भ्रान्त सत्य है। मैं विषयकी लालसाओंसे घबरा गयी हूँ। इनकी कहीं सीमा नहीं। अब आप कृपापूर्वक मेरे अज्ञान-तिमिरको अपनी ज्ञानरश्मियोंसे नष्ट कर दें। मेरा देह-गेहादिके प्रति महामोह आप दूर कर दें। मैं आपके चरणोंमें श्रद्धायुक्त प्रणाम करती हूँ। आपके शरण हूँ। आप मुझे भी ज्ञान प्रदानकर मेरा परम कल्याण कर दीजिये। मुझपर दया कीजिये।'

भगवान् कपिल अपनी माता देवहूतिकी परम पवित्र वाणी सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने मन-ही-मन अपनी माताकी प्रशंसा की और धीरे-धीरे कहने लगे—'माता! अध्यात्मयोगके द्वारा ही मनुष्य अपना सुनिश्चित परम कल्याण-साधन कर सकता है। वहाँ 'स्व' और 'पर', 'राग' और 'द्वेष' तथा 'सुख' और 'दुःख'—सब समाप्त हो जाते हैं। जिस समय प्राणी अहंता और ममतासे उत्पन्न होनेवाले काम-क्रोधादिसे मुक्त और पवित्र होता है, वह सुख-दुःखादि द्वन्द्वोंसे मुक्त होकर समताकी स्थितिमें पहुँच जाता है, उस समय प्राणी ज्ञान-वैराग्य एवं भक्ति-परिपूरित हृदयसे आत्माको प्रकृतिसे परे, एकमात्र, भेदरहित, स्वयम्प्रकाश, सूक्ष्म, अखण्ड और उदासीन देखता है और प्रकृतिको असमर्थ समझने लगता है। बुद्धिमान् मुनि सङ्ग

या आसक्तिको ही बन्धनका हेतु बतलाते हैं; पर वही सङ्ग और आसक्ति मुक्तपुरुषोंमें होनेसे मुक्तिका हेतु बन जाती है। भगवत्प्राप्तिके लिये श्रीभगवान्‌की भक्तिके अतिरिक्त अन्य कोई सरल एवं सुगम साधन नहीं है।' *

इस प्रकार भगवान् कपिलने धीरे-धीरे अत्यन्त विस्तारसे अपनी माता देवहूतिको महदादि तत्त्वोंकी उत्पत्तिका क्रम समझाकर प्रकृति और पुरुषका विवेक प्राप्त होनेपर मोक्षकी प्राप्ति होती है, यह बताया। फिर उन्होंने पुरुषोंकी देह-गेहमें आसक्तिका कुपरिणाम एवं अष्टाङ्गयोगकी विधि बतलाते हुए भक्तिका मर्म बतलाया। उन्होंने अपनी माता देवहूतिसे स्पष्ट शब्दोंमें कहा—

ज्ञानवैराग्ययुक्तेन भक्तियोगेन योगिनः।
क्षेमाय पादमूलं मे प्रविशन्त्यकुतोभयम्॥
एतावानेव लोकेऽस्मिन् पुंसां निःश्रेयसोदयः।
तीव्रेण भक्तियोगेन मनो मय्यर्पितं स्थिरम्॥
(श्रीमद्भागवत ३। २५। ४३-४४)

'योगिजन ज्ञान-वैराग्ययुक्त भक्तियोगके द्वारा शान्ति प्राप्त करनेके लिये मेरे निर्भय चरण-कमलोंका आश्रय लेते हैं। संसारमें मनुष्यके लिये सबसे बड़ी कल्याण-प्राप्ति यही है कि उसका चित्त तीव्र भक्तियोगके द्वारा मुझमें लगकर स्थिर हो जाय।'

सत्ययुगके प्रथम ऋषि-अवतार भगवान् कपिलने अपनी माता देवहूतिको भक्ति, ज्ञान और योगका विस्तृत उपदेश दिया। उन्होंने अपनी माताको पूर्ण आत्मज्ञानसम्पन्ना बना दिया और जब उन्हें निश्चय हो गया कि उनकी माताने परमार्थके तत्त्व और रहस्यको भलीभाँति समझ लिया है, तब विवेक-वैराग्यके सजीव विग्रह भगवान् कपिलने त्यागका आदर्श स्थापित करनेका निश्चय कर अपनी परमविरक्ता ब्रह्मवादिनी माताके चरणोंमें प्रणाम किया।

माता देवहूतिने भी गुरुभावसे उनकी पूजा और परिक्रमा की और बार-बार उनके चरणोंमें प्रणाम किया।

माया-मोह-रहित भगवान् कपिलने अपनी वन्दनीया माता देवहूतिको वहीं सरस्वतीके पावन तटपर सिद्धाश्रममें छोड़ दिया और स्वयं वहाँसे पूर्व और उत्तर दिशाकी मध्य दिशा ईशानकोणकी ओर चल दिये। ज्ञान-सम्पन्न होनेपर भी माता देवहूति पुत्रके विछोहसे अधीर हो गयीं। उनके नेत्रोंसे स्नेहाश्रु बहने लगे। उनकी आन्तरिक स्थितिकी अनुभूति तो सदाके लिये इकलौते पुत्रसे बिछुड़ती हुई माता ही कर सकती है।

भगवान् कपिलके चले जानेपर उनकी माता देवहूतिने उनके द्वारा उपदिष्ट ज्ञानमें अपने चित्तको एकाग्र कर लिया। उन्होंने अल्पकालमें ही सिद्धि प्राप्त कर ली। अब उन्हें अपने शरीरका भी भान नहीं रहा। कुछ दिन तो उनके शरीरकी दूसरोंके द्वारा रक्षा हुई, पीछे आत्मस्वरूप नित्य-मुक्त परब्रह्म परमात्माको प्राप्त परम विरक्ता माता देवहूतिका शरीर कब द्रवित होकर परम पुण्यमयी स्वच्छ-सलिलपूरिता सरिताके रूपमें परिणत होकर प्रवाहित होने लगा, वे नहीं जान सकीं। माता देवहूतिने जिस स्थलपर सिद्धि प्राप्त की, वह 'सिद्धपुर' (मातृगया) के नामसे प्रख्यात है।

अत्यन्त प्राचीनकालमें 'स्यूमरश्मि' नामक ऋषिने भगवान् कपिलसे अत्यन्त श्रद्धापूर्वक शिष्यकी भाँति अनेक प्रश्न किये थे। भगवान् कपिलने उनके तर्कोंका खण्डन करते हुए उनसे कहा था—

आनृशंस्यं क्षमा शान्तिरहिंसा सत्यमार्जवम्।
अद्रोहोऽनभिमानश्च ह्रीस्तितिक्षा शमस्तथा॥
पन्थानो ब्रह्मणस्त्वेते एतैः प्राप्नोति यत्परम्।
तद् विद्वाननुबुद्ध्येत मनसा कर्मनिश्चयम्॥
(महा०, शान्ति० २७० । ३९-४०)

'समस्त प्राणियोंपर दया, क्षमा, शान्ति, अहिंसा, सत्य, सरलता, अद्रोह, निरभिमानता, लज्जा, तितिक्षा और शम—ये परब्रह्म परमात्माकी प्राप्तिके मार्ग हैं। इनके द्वारा पुरुष परब्रह्मको प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार विद्वान् पुरुषको मनके द्वारा कर्मके वास्तविक परिणामका निश्चय समझना चाहिये।'

धरणीको धारण करनेवालोंमें धर्मादिके साथ भगवान् कपिलका भी नाम आता है—

धर्मः कामश्च कालश्च वसुर्वासुकिरेव च।
अनन्तः कपिलश्चैव सप्तैते धरणीधराः॥
(महा०, अनु० । ५० । ९)

'धर्म, काम और काल, वसु और वासुकि, अनन्त और कपिल—ये सात पृथ्वीको धारण करनेवाले हैं।'

* भगवान् कपिलका यह सदुपदेश श्रीमद्भागवतके तीसरे स्कन्धमें विस्तारपूर्वक दिया गया है।

शरशय्यापर पड़े हुए भीष्मपितामहके शरीर-त्यागके समय वेदज्ञ व्यासादि ऋषियोंके साथ भगवान् कपिल भी वहाँ उपस्थित थे।

भगवान् कपिल अपनी मातासे विदा होकर परम पुण्यतोया जाह्नवीके तटपर पहुँचे। फिर उनके तटका सौन्दर्य देखते हुए वे धीरे-धीरे वहाँ पहुँचे, जहाँ भगवती भागीरथी महासागरमें मिलती हैं। उसे 'गङ्गासागर' भी कहते हैं। भगवान् कपिलके वहाँ पहुँचनेपर समुद्रने सशरीर समीप आकर उनके चरणोंमें प्रणाम कर उनकी सविधि पूजा की। आकाशसे देवता तथा सिद्धादि परम प्रभुका स्तवन करते हुए उनके ऊपर दिव्य पुष्पोंकी वर्षा करने लगे।

भगवान् कपिलकी वहाँ निवास करनेकी इच्छा जाननेपर समुद्रकी प्रसन्नताकी सीमा न रही। उसने इसे अपना परम सौभाग्य समझा। भगवान् वहीं समुद्रके भीतर रहकर तपश्चरण करते हैं। वर्षमें एक दिन मकरकी संक्रान्तिके दिन समुद्रने वहाँसे हट जानेका वचन दिया था, जिससे उस दिन वहाँ जाकर दर्शन करनेवाले अक्षय पुण्य प्राप्त कर सकें।

राजा सगरके साठ सहस्र पुत्र अश्वान्वेषणके लिये धरतीको खोदते हुए तपोमूर्ति भगवान् कपिलके आश्रमपर पहुँचे और उनकी धर्षणा करनेपर उनके नेत्रकी ज्वालासे भस्म हो गये।

भगवान् कपिल सांख्य-दर्शनके प्रवर्तक हैं। आप भागवत धर्मके मुख्य बारह आचार्योंमेंसे एक हैं। आपका एक नाम 'चक्रधनु' भी है। विष्णु-वाहन गरुड़ने महर्षि गालवको बताया था—

अत्र चक्रधनुर्नाम सूर्याज्जातो महानृषिः॥
विदुर्यं कपिलं देवं येनार्ताः सगरात्मजाः।
(महा०, उद्योग० १०९। १७-१७½)

"सूर्यके समान तेजस्वी महर्षि कर्दमसे उत्पन्न हुए 'चक्रधनु' नामक महर्षि इसी दिशामें रहते थे, जिन्हें सब लोग कपिलदेवके नामसे जानते हैं। उन्होंने ही सगरके पुत्रोंको भस्म कर दिया था।"

प्रतिवर्ष मकर-संक्रान्तिके दिन गङ्गासागर-संगमपर सहस्रों स्त्री-पुरुष भगवान् कपिलके पुनीत आश्रमके दर्शनार्थ जाते हैं।

—शि० दु०

[६]

भगवान् श्रीदत्तात्रेय

(लेखक—म० म० श्रीपाण्डुरङ्ग शास्त्री गोस्वामी)

जो अज्ञान-तिमिरको दूरकर हृदयमें ज्ञानका प्रकाश फैलाते हैं, उन्हें 'गुरु' कहते हैं। 'गिरति अज्ञानम्' अथवा 'गृणाति ज्ञानम्, स गुरुः'—ऐसी 'गुरु' शब्दकी व्युत्पत्ति है। जीवोंका अज्ञान मिटानेके लिये अथवा जीवोंके हृदयमें ज्ञानका प्रकाश फैलानेके लिये ही प्रायः भगवान्के अवतार होते हैं। वैसे तो अवतारके कई प्रयोजन होते हैं, किंतु जीवोंका अज्ञानान्धकार-निवारण अवतारका परम प्रयोजन होता है। जबतक सृष्टिमें जीव हैं, तबतक इस कार्यको अविरतरूपमें चलाना अपरिहार्य है—यही सोचकर भगवान् श्रीविष्णुने सद्गुरु श्रीदत्तात्रेयजीके रूपमें अवतार ग्रहण किया।

जैसे जलपूरित महासरोवरसे असंख्य स्रोत उमड़ पड़ते हैं, उसी प्रकार परोपकारके लिये भगवान्के अवतार होते ही रहते हैं। उन अनन्त अवतारोंमें चौबीस अवतारोंका निर्देश श्रीमद्भागवतकारने किया है। उन चौबीस अवतारोंमें सिद्धराज भगवान् श्रीदत्तात्रेयजीका अवतार छठा माना जाता है। इस अवतारकी परिसमाप्ति नहीं है; इसलिये इन्हें 'अविनाश' भी कहते हैं। ये समस्त सिद्धोंके राजा होनेके कारण 'सिद्धराज' कहलाते हैं। योगविद्यामें असाधारण अधिकार रखनेके कारण इन्हें 'योगिराज' भी कहते हैं। अपने असाधारण योग-चातुर्यसे इन्होंने देवताओंका संरक्षण किया है, इसलिये ये 'देवदेवेश्वर' भी कहे जाते हैं।

'मुझे प्राणियोंका दुःख-निवारण करनेवाला पुत्र प्राप्त हो'—इस अभिप्रायसे अत्रिमुनिकी भावपूर्ण घोर तपस्या देखकर अत्यन्त प्रसन्न होकर भगवान् श्रीविष्णुने कहा—'मैंने निजको ही तुम्हें दान कर दिया है'—इस कारण इनकी 'दत्त' संज्ञा हुई 'दत्तो मयाहमिति यद्भगवान् स दत्तः' (श्रीमद्भागवत २। ७। ४)। अत्रिमुनिके पुत्र होनेके कारण इन्हें 'आत्रेय' भी कहते हैं। 'दत्त' और 'आत्रेय'—इन दोनों नामोंके संयोगसे इनका 'दत्तात्रेय' एक ही नाम रूढ हो गया। ये निस्पृह होकर सदा ही ज्ञानका दान देते रहते हैं, अतएव 'गुरुदेव' या 'सद्गुरु'—ये दो विशेषण इनके नामके पूर्व व्यवहृत होते हैं।

इनकी माता थीं परम सती श्रीअनसूया देवी। वे अत्यन्त सुन्दरी भी थीं, किंतु उनमें गर्वका लेश भी नहीं था। एक दिन श्रीनारदजीके मुखसे श्रीसरस्वती, श्रीउमा और श्रीरमाने महासती अनसूयाजीकी महिमा सुन ली। 'वे हमसे बड़ी कैसे हैं?' इस विचारसे उनके मनमें कुछ ईर्ष्या हुई। तीनों देवियोंने अपने-अपने पतियोंको अनसूयाजीके सतीत्व-परीक्षणके लिये महर्षि अत्रिके आश्रममें भेजा। ब्रह्मा, विष्णु और महेश वहाँ पहुँचे; किंतु सतीशिरोमणि अनसूयाके सतीत्वके प्रभावसे तीनों नवजात शिशु बन गये। माता अनसूयाने वात्सल्यभावसे उन्हें अपना स्तन्य-पान कराया। कुछ दिनों बाद सरस्वती, उमा और रमा माता अनसूयाके समीप आकर उनके चरणोंमें गिरीं और उन्होंने उनसे क्षमा-याचना की। दयामयी माता अनसूयाने तीनों बालकोंको पूर्ववत् ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर बना दिया।

'आप चिन्ता न करें, हम आपके पुत्ररूपमें आपके पास ही रहेंगे।' जाते समय त्रिदेवोंने अत्रि और अनसूयाका अभिप्राय समझकर कहा। फिर ब्रह्मदेव सोमके रूपमें, भगवान् श्रीविष्णु दत्तके रूपमें और भगवान् शंकर दुर्वासाके रूपमें भगवती अनसूयाके पुत्र बनकर अवतरित हुए। ऐसी और भी कई कथाएँ विभिन्न पुराणोंमें वर्णित हैं। इन कथाओंमें भेद होते हुए भी विरोध नहीं है। सूक्ष्म विचार करनेपर सभी कथाओंका ठीकसे समन्वय हो सकता है।

भगवान् श्रीविष्णुने दत्तात्रेयजीके रूपमें अवतरित होकर जगत्का बड़ा ही उपकार किया है। कृतयुगमें उन्होंने श्रीकार्तिक स्वामी, श्रीगणेश भगवान् और भक्त प्रह्लादको उपदेश देकर उन्हें उपकृत किया था। त्रेतामें राजा अलर्क प्रभृतिको योगविद्या एवं अध्यात्मविद्याका उपदेश देकर उन्हें कृतार्थ किया। राजा पुरूरवा और राजा आयु भी दत्तात्रेयजीकी कृपाके ऋणी थे। द्वापरमें भगवान् श्रीपरशुराम तथा हैहयाधिपति राजा कार्तवीर्य आदिको भगवान् दत्तात्रेयका अनुग्रह प्राप्त हुआ था और उन्हींकी कृपासे वे तेजस्वी एवं यशस्वी हुए। कलियुगमें भी भगवान् शंकराचार्य, गोरक्षनाथ महाप्रभु, सिद्ध नागार्जुन—ये सब दत्तात्रेयजीके अनुग्रहसे ही धन्य हो गये हैं। श्रीसंत ज्ञानेश्वर महाराज, श्रीजनार्दन स्वामी, श्रीसंत एकनाथ, श्रीसंत दासोपंत, श्रीसंत तुकाराम महाराज—इन भक्तोंने दत्तात्रेयजीका प्रत्यक्ष दर्शन प्राप्त किया था। भगवान् श्रीदत्तात्रेय भक्तका करुण-क्रन्दन सुनकर तुरंत उसके समीप पहुँच जाते हैं। इसी कारण इन्हें 'स्मर्तृगामी' (स्मरण करते ही आनेवाले) कहा गया है।

गिरनार श्रीदत्तात्रेयजीका सिद्धपीठ है। उनका उन्मत्तोंकी तरह विचित्र वेष और उनके आगे-पीछे कुत्ते—उन्हें पहचान लेना सरल नहीं। वे सिद्धोंके परमाचार्य हैं और उन्हें उच्चकोटिके अधिकारी पुरुष ही पहचान सकते हैं। किंतु उनके आराधक तो अपना जीवन धन्य कर ही लेते हैं। भगवान् दत्तात्रेयने उपदेश करते हुए कहा है—

> लब्ध्वा सुदुर्लभमिदं बहुसम्भवान्ते
> मानुष्यमर्थदमनित्यमपीह धीरः।
> तूर्णं यतेत न पतेदनुमृत्यु याव-
> न्निःश्रेयसाय विषयः खलु सर्वतः स्यात्॥
> (श्रीमद्भागवत ११। ९। २९)

'यद्यपि यह मनुष्य-शरीर है तो अनित्य ही—मृत्यु सदा इसके पीछे लगी रहती है, तथापि इससे परम पुरुषार्थकी प्राप्ति हो सकती है; इसलिये अनेक जन्मोंके बाद यह अत्यन्त दुर्लभ मनुष्य-शरीर पाकर बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि शीघ्र-से-शीघ्र, मृत्युके पहले ही मोक्ष-प्राप्तिका यत्न कर ले। इस जीवनका मुख्य उद्देश्य मोक्ष ही है। विषय-भोग तो सभी योनियोंमें प्राप्त हो सकते हैं, इसलिये उनके संग्रहमें यह अमूल्य जीवन नहीं खोना चाहिये।'

[७]

भगवान् यज्ञ

बात है स्वायम्भुव मन्वन्तरकी। स्वायम्भुव मनुकी निष्पापा पत्नी शतरूपाके गर्भसे महाभागा आकूतिका जन्म हुआ। वे रुचि प्रजापतिकी पत्नी हुईं। इन्हीं आकूतिकी कुक्षिसे धरणीपर धर्मका प्रचार करनेके लिये आदिपुरुष श्रीभगवान् अवतरित हुए। उनकी 'यज्ञ' नामसे ख्याति हुई। इन्हीं परमप्रभुने यज्ञका प्रवर्तन किया और इन्हींके नामसे यह प्रचलित हुआ। उनसे देवताओंकी शक्ति बढ़ी और देवताओंकी शक्तिसे सारी सृष्टि शक्तिशालिनी हुई।

परम धर्मात्मा स्वायम्भुव मनुकी धीरे-धीरे सांसारिक विषय-भोगोंसे अरुचि हो गयी। संसारसे विरक्त हो जानेके कारण उन्होंने राज्य त्याग दिया और अपनी महिमामयी

पत्नी शतरूपाके साथ तपस्या करनेके लिये वनमें चले गये। वे पवित्र सुनन्दा नदीके तटपर एक पैरपर खड़े होकर नीचे दिये हुए मन्त्रमय उपनिषत् स्वरूप श्रुतिका निरन्तर जप करने लगे। वे तपस्या करते हुए प्रतिदिन श्रीभगवान्‌की स्तुति करते थे—

येन चेतयते विश्वं विश्वं चेतयते न यम्।
यो जागर्ति शयानेऽस्मिन्नायं तं वेद वेद सः॥
यं न पश्यति पश्यन्तं चक्षुर्यस्य न रिष्यति।
तं भूतनिलयं देवं सुपर्णमुपधावत॥
(श्रीमद्भागवत ८। १। ९, ११)

'जिनकी चेतनाके स्पर्शमात्रसे यह विश्व चेतन हो जाता है, किंतु यह विश्व जिन्हें चेतनाका दान नहीं कर सकता; जो इसके सो जानेपर प्रलयमें भी जागते रहते हैं, जिनको यह विश्व नहीं जान सकता, परंतु जो इसे जानते हैं—वे ही परमात्मा हैं।'''भगवान् सबके साक्षी हैं। उन्हें बुद्धि-वृत्तियाँ या नेत्र आदि इन्द्रियाँ नहीं देख सकतीं, परंतु उनकी ज्ञान-शक्ति अखण्ड है। समस्त प्राणियोंके हृदयमें रहनेवाले उन्हीं स्वयम्प्रकाश असङ्ग परमात्माकी शरण ग्रहण करो।'*

इस प्रकार स्तुति एवं जप करते हुए उन्होंने सौ वर्षतक अत्यन्त कठोर तपश्चरण किया। एकाग्र चित्तसे इस मन्त्रमय उपनिषद्-स्वरूप श्रुतिका पाठ करते-करते उन्हें अपने शरीरकी भी सुधि नहीं रही। उसी समय वहाँ अत्यन्त क्षुधार्त असुरों एवं राक्षसोंका समुदाय एकत्र हो गया। वे ध्यानमग्न परम तपस्वी मनु और शतरूपाको खानेके लिये दौड़े।

सर्वान्तर्यामी आकूतिनन्दन भगवान् यज्ञ अपने याम-नामक पुत्रोंके साथ तुरंत वहाँ पहुँच गये। राक्षसोंसे भयानक संग्राम हुआ। अन्ततः राक्षस पराजित हुए। कालके गालमें जानेसे बचे असुर और राक्षस अपने प्राण बचाकर भागे।

भगवान् यज्ञके पौरुष एवं प्रभावको देखकर देवताओंकी प्रसन्नताकी सीमा न रही। उन्होंने भगवान्‌से देवेन्द्र-पद स्वीकार करनेकी प्रार्थना की। देव-समुदायकी तुष्टिके लिये भगवान् इन्द्रासनपर विराजित हुए। इस प्रकार श्रीभगवान्‌ने इन्द्र-पद-पालनका आदर्श उपस्थित किया।

भगवान् यज्ञके उनकी धर्मपत्नी दक्षिणासे अत्यन्त तेजस्वी बारह पुत्र उत्पन्न हुए थे। वे ही स्वायम्भुव मन्वन्तरमें 'याम' नामक बारह देवता कहलाये। —शि० दु०

[८]

भगवान् ऋषभदेव

नित्यानुभूतनिजलाभनिवृत्ततृष्णः
श्रेयस्यतद्रचनया चिरसुप्तबुद्धेः।
लोकस्य यः करुणयाभयमात्मलोक-
माख्यान्नमो भगवते ऋषभाय तस्मै॥
(श्रीमद्भागवत ५। ६। १९)

'निरन्तर विषय-भोगोंकी अभिलाषा करनेके कारण अपने वास्तविक श्रेयसे चिरकालतक बेसुध हुए लोगोंको जिन्होंने करुणावश निर्भय आत्मलोकका उपदेश दिया और जो स्वयं निरन्तर अनुभव होनेवाले आत्मस्वरूपकी प्राप्तिसे सब प्रकारकी तृष्णाओंसे मुक्त थे, उन भगवान् ऋषभदेवको नमस्कार है।'

× × ×

आग्नीध्रनन्दन महाराज नाभिके कोई संतान नहीं थी। इस कारण उन्होंने अपनी धर्मपत्नी मेरुदेवीके साथ पुत्रकी कामनासे यज्ञ प्रारम्भ किया। तपःपूत ऋत्विजोंने श्रुतिके मन्त्रोंसे यज्ञ-पुरुषका स्तवन किया और ब्राह्मणसर्वस्व, शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधारी चतुर्भुज नारायण प्रकट हुए। उनके श्रीअङ्गोंकी अद्भुत शोभा थी। अनन्त अपरिसीम सौन्दर्य-सुधा-सिन्धु, मङ्गलमय प्रभुका दर्शन कर राजा, रानी और ऋत्विजोंकी प्रसन्नताकी सीमा नहीं थी। सबने अत्यन्त श्रद्धा और भक्तिसे प्रभु-पदपद्मोंमें सादर दण्डवत्प्रणाम कर अर्घ्यादिके द्वारा उनकी पूजा एवं वन्दना की।

'प्रभो! राजर्षि नाभि और उनकी पत्नी मेरुदेवी आपके ही समान पुत्र चाहते हैं।' ऋत्विजोंने प्रभु-गुण-गान करनेके उपरान्त कामना स्पष्ट कर दी।

'ऋषियो! आपलोगोंने बड़ा दुर्लभ वर माँगा है।' श्रीभगवान्‌ने मन्द-मन्द मुस्कराते हुए कहा। 'मैं अद्वितीय हूँ। अतएव आपलोगोंके वचनकी रक्षाके लिये मैं स्वयं महाराज नाभिके यहाँ अवतरित होऊँगा; क्योंकि मेरे समान तो मैं ही हूँ, अन्य कोई नहीं।'

* पूरी श्रुति श्रीमद्भागवतके ८वें स्कन्धके प्रथम अध्यायमें श्लोक-संख्या ९ से १६ तक देखनी चाहिये।

यों कहकर भगवान् अन्तर्धान हो गये और कुछ दिनोंके बाद महाराज नाभिकी परम सौभाग्यशालिनी पत्नी मेरुदेवीकी कुक्षिसे परमतत्त्व प्रकट हुआ।

नाभिनन्दनके अङ्ग विष्णुके वज्र-अङ्कुश आदि चिह्नोंसे युक्त थे। पुत्रके अत्यन्त सुन्दर सुगठित शरीर, कीर्ति, तेज, बल, ऐश्वर्य, यश, पराक्रम और शूरवीरता आदि गुणोंको देखकर महाराज नाभिने उसका नाम 'ऋषभ' (श्रेष्ठ) रक्खा।

महाराज नाभि परमप्रभु ऋषभदेवका पुत्रवत् पालन करने लगे। पुत्रको अतिशय प्यारसे पुकारने और अङ्कमें लेकर लाड़ लड़ानेसे वे अत्यधिक आनन्दका अनुभव करने लगे; किंतु कुछ ही दिनोंके अनन्तर जब ऋषभदेव वयस्क हो गये और महाराज नाभिने देखा कि सम्पूर्ण राष्ट्रके नागरिक तथा मन्त्री आदि सभी लोग ऋषभदेवको अतिशय आदर और प्रीतिकी दृष्टिसे देखते हैं, तब उन्होंने ऋषभदेवको राजपदपर अभिषिक्त कर दिया और स्वयं अपनी सती पत्नी मेरुदेवीके साथ तप करने वनमें चले गये। वे उत्तर दिशामें हिमालयके अनेक शिखरोंको पार करते हुए गन्धमादन पर्वतपर भगवान् नर-नारायणके वासस्थान बदरिकाश्रममें पहुँचे। वहाँ वे परमप्रभुके नर-नारायण-रूपकी उपासना एवं उनका चिन्तन करते हुए समयानुसार उन्हींमें विलीन हो गये।

शासनका दायित्व अपने कंधेपर आ जानेके कारण ऋषभदेवने मानवोचित कर्त्तव्यका पालन करना प्रारम्भ किया। उन्होंने गुरुकुलमें कुछ काल रहकर वेद-वेदाङ्गोंका अध्ययन किया और फिर अन्तिम गुरुदक्षिणा देकर व्रतान्तस्नान किया। इसके उपरान्त वे राज-कार्य देखने लगे। ऋषभदेव राज्यका सारा कार्य बड़ी ही सावधानी एवं तत्परतापूर्वक देखते थे। उनकी राज्य-व्यवस्था और शासनप्रणाली सर्वथा अनुकरणीय और अभिनन्दनीय थी।

'भगवतर्षभेण परिरक्ष्यमाण एतस्मिन् वर्षे न कश्चन पुरुषो वाञ्छत्यविद्यमानमिवात्मनोऽन्यस्मात्कथंचन किमपि कर्हिचिदवेक्षते भर्तर्यनुसवनं विजृम्भितस्नेहातिशयमन्तरेण।'
(श्रीमद्भागवत ५।४।१८)

'भगवान् ऋषभदेवके शासनकालमें इस देशका कोई भी पुरुष अपने लिये किसीसे भी अपने प्रभुके प्रति दिन-दिन बढ़नेवाले अनुरागके सिवा और किसी वस्तुकी कभी इच्छा नहीं करता था। यही नहीं, आकाश-कुसुमादि अविद्यमान वस्तुकी भाँति कोई किसीकी वस्तुकी ओर दृष्टिपात भी नहीं करता था।'

सम्पूर्ण प्रजा ऋषभदेवको अत्यधिक प्यार करती एवं श्रीभगवान्की तरह उनका आदर और सम्मान करती थी। यह देखकर शचीपतिके मनमें बड़ी ईर्ष्या हुई। उन्होंने सोचा—'मैं त्रैलोक्यपति हूँ, वर्षाके द्वारा सबका भरण-पोषण करता और सबको जीवन-दान देता हूँ, फिर भी प्रजा मेरे प्रति इतनी श्रद्धा नहीं रखती। इसके विपरीत धरतीका एक नरेश इतना लोकप्रिय क्यों है? उसे प्रजा परमेश्वरकी भाँति क्यों पूजती है? मैं इस नरपतिका प्रभाव देखता हूँ।' तब सुरेन्द्रने ईर्ष्यावश एक वर्षतक वर्षा बंद कर दी।

भगवान् ऋषभदेवने अमरपतिकी ईर्ष्या-द्वेषकी वृत्ति एवं अहंकारको समझकर योगबलसे सजल घनोंकी सृष्टि की। आकाश काले मेघोंसे आच्छादित हो गया और पृथ्वीपर जल-ही-जल हो गया। समस्त भूमि शस्यश्यामला बन गयी।

सुरपतिका मद उतर गया। उन्होंने भगवान् ऋषभदेवके प्रभावको समझ लिया। फिर तो उन्होंने ऋषभदेवकी स्तुति की और अपनी पुत्री जयन्तीका विवाह उनके साथ कर दिया। ऋषभदेवने लोक-मर्यादाकी रक्षाके लिये गृहस्थाश्रम-धर्मका पालन किया और उनसे सौ पुत्र उत्पन्न हुए। उनमें सबसे बड़े, सर्वाधिक गुणवान् एवं महायोगी भरतजी थे। वे इतने प्रतापी नरेश हुए कि उन्हींके नामपर इस अजनाभखण्डका नाम 'भारतवर्ष' प्रख्यात हुआ।

राजकुमार भरतसे छोटे कुशावर्त, इलावर्त, ब्रह्मावर्त, मलय, केतु, भद्रसेन, इन्द्रस्पृक्, विदर्भ और कीकट—ये नौ राजकुमार भारतवर्षमें पृथक्-पृथक् देशोंके प्रजापालक नरेश हुए। ये सभी नरेश तपस्वी, धर्माचरणसम्पन्न एवं भगवद्भक्त थे। इनके देश इन्हीं राजाओंके नामसे विख्यात हुए।

इन दस राजकुमारोंसे छोटे कवि, हरि, अन्तरिक्ष, प्रबुद्ध, पिप्पलायन, आविर्होत्र, द्रुमिल, चमस और करभाजन—ये नौ राजकुमार बालब्रह्मचारी, भागवतधर्मका प्रचार करनेवाले एवं बड़े भगवद्भक्त थे। ये योगी एवं संन्यासी हो गये

वेन नामक पुत्र हुआ। वेन अपने मातामह (नाना)के स्वभावपर गया। वह अत्यन्त उग्र, अधार्मिक, परपीड़क और राग-द्वेषके वशीभूत हो प्रजापर अत्याचार करने लगा। उसकी दुष्टतासे प्रजा अत्यन्त कष्ट पाने लगी। महर्षियोंद्वारा राजपदपर अभिषिक्त होते ही उसने घोषणा कर दी—

न यष्टव्यं न दातव्यं न होतव्यं कथंचन।
भोक्ता यज्ञस्य कस्त्वन्यो ह्यहं यज्ञपतिः प्रभुः॥

विष्णुपुराण १। १३। १४)

'भगवान् यज्ञपुरुष मैं ही हूँ, मुझसे अतिरिक्त यज्ञका भोक्ता और स्वामी हो ही कौन सकता है। इसलिये कभी कोई यज्ञ, दान और हवन आदि न करे।'

'महाराज! आप ऐसी आज्ञा दीजिये, जिससे धर्मका क्षय न हो।' प्रजापति वेनकी घोषणासे चकित होकर महर्षियोंने उसे समझाते हुए कहा। 'आपका मङ्गल हो। देखिये, हम बड़े-बड़े यज्ञोंद्वारा जो सर्वयज्ञेश्वर देवाधिदेव श्रीहरिकी पूजा करेंगे, उसके फलका षष्ठांश आपको भी प्राप्त होगा। इस प्रकार यज्ञोंद्वारा यज्ञपुरुष भगवान् विष्णु प्रसन्न होकर हमलोगोंके साथ आपकी भी आकाङ्क्षाओंकी पूर्ति करेंगे।'

'मुझसे भी बढ़कर मेरा पूज्य कौन है?' मदोन्मत्त वेनने महर्षियोंकी उपेक्षा करते हुए कहा "जिसे तुम यज्ञेश्वर मानते हो, वह 'हरि' कहलानेवाला कौन है? कृपा करने और दण्ड देनेमें समर्थ सभी देवता राजाके शरीरमें निवास करते हैं, अतएव राजा सर्वदेवमय है। इसलिये ब्राह्मणो! मेरी आज्ञाका पालन हो। कोई भी दान, यज्ञ और हवन न करे। मेरी आज्ञाका पालन ही तुमलोगोंका धर्म है।"

'इस पापात्माको मार डालो।' सर्वेश्वर हरिकी निन्दा सुनकर क्रुद्ध महर्षियोंने मन्त्रपूत कुशोंद्वारा उसे मार डाला।

माता सुनीथाने कुछ दिनोंतक अपने पुत्र वेनका मृत शरीर सुरक्षित रखा और उधर राजाके बिना चोर-डाकुओं और लुटेरोंके कारण सर्वत्र अराजकता व्याप्त हो गयी। यह स्थिति देखकर ऋषि मन्त्रोच्चारणपूर्वक वेनकी दाहिनी जङ्घाका मन्थन करने लगे। उससे जले ठूँठके समान काला, अत्यन्त नाटा और छोटे मुखवाला एक पुरुष उत्पन्न हुआ। उसने अत्यन्त आतुरतासे ब्राह्मणोंसे पूछा—'मैं क्या करूँ?'

'निषीद (बैठ)!' ब्राह्मणोंने उत्तर दिया। अतः वह 'निषाद' कहलाया। उक्त निषादरूप द्वारसे वेनका सम्पूर्ण पाप निकल गया।

इसके अनन्तर ब्राह्मणोंने पुत्रहीन राजा वेनकी भुजाओंका मन्थन किया, तब उनसे एक स्त्री-पुरुषका जोड़ा प्रकट हुआ।

'यह पुरुष भगवान् विष्णुकी विश्वपालनी कलासे प्रकट हुआ है,' ऋषियोंने कहा।, और यह स्त्री उन परम पुरुषकी शक्ति लक्ष्मीजीका अवतार है।'

"अपनी सुकीर्तिका प्रथन—विस्तार करनेके कारण यह यशस्वी पुरुष 'पृथु' नामक सम्राट् होगा।" ऋषियोंने और बताया। "और इस सर्वशुभलक्षणसम्पन्ना परम सुन्दरीका नाम 'अर्चि' होगा। यह सम्राट् पृथुकी धर्मपत्नी होगी।" पृथुके दाहिने हाथमें चक्र और चरणोंमें कमलका चिह्न देखकर ऋषियोंने और बताया—'पृथुके वेषमें स्वयं श्रीहरिका अंश अवतरित हुआ है और प्रभुकी नित्य सहचारी लक्ष्मीजीने ही अर्चिके रूपमें धरतीपर पदार्पण किया है।'

'महात्माओ! धर्म और अर्थका दर्शन करानेवाली अत्यन्त सूक्ष्म बुद्धि मुझे स्वतः प्राप्त हो गयी है।' इन्द्रके समान तेजस्वी नरश्रेष्ठ पृथुने कवच धारण कर रखा था। उनकी कमरमें तलवार बँधी थी। वे धनुष-बाण लिये हुए थे। उन्हें वेद-वेदान्तोंका पूर्ण ज्ञान था। वे धनुर्वेदके भी विद्वान् थे। उन्होंने हाथ जोड़कर ऋषियोंसे कहा—'मुझे इस बुद्धिके द्वारा आपलोगोंकी कौन-सी सेवा करनी है? आपलोग आज्ञा-प्रदान करें। मैं उसे अवश्य पूरी करूँगा।'

तब वहाँ देवताओं और महर्षियोंने उनसे कहा—

नियतो यत्र धर्मो वै तमशङ्कः समाचर॥
प्रियाप्रिये परित्यज्य समः सर्वेषु जन्तुषु।
कामं क्रोधं च लोभं च मानं चोत्सृज्य दूरतः॥
यश्च धर्मात् प्रविचलेल्लोके कश्चन मानवः।
निग्राह्यस्ते स्वबाहुभ्यां शश्वद्धर्ममवेक्षता॥
प्रतिज्ञां चाधिरोहस्व मनसा कर्मणा गिरा।
पालयिष्याम्यहं भौमं ब्रह्म इत्येव चासकृत्॥
यश्चात्र धर्मो नित्योक्तो दण्डनीतिव्यपाश्रयः।
तमशङ्कः करिष्यामि स्ववशो न कदाचन॥

अदण्ड्या मे द्विजाश्चेति प्रतिजानीहि हे विभो ।
लोकं च संकरात्कृत्स्नं त्रातास्मीति परंतप ॥
(महा०, शान्तिपर्व ५९ । १०३—१०८)

''वेननन्दन ! जिस कार्यमें निश्चितरूपसे धर्मकी सिद्धि होती हो, उसे निर्भय होकर करो । प्रिय और अप्रियका विचार छोड़कर, काम, क्रोध, लोभ और मानको दूर हटाकर समस्त प्राणियोंके प्रति समभाव रक्खो । लोकमें जो कोई भी मनुष्य धर्मसे विचलित हो, उसे सनातन धर्मपर दृष्टि रखते हुए अपने बाहुबलसे परास्त करके दण्ड दो । साथ ही यह भी प्रतिज्ञा करो कि 'मैं मन, वाणी और क्रियाद्वारा भूतलवर्ती ब्रह्म (वेद) का निरन्तर पालन करूँगा । वेदमें दण्डनीतिसे सम्बन्ध रखनेवाला जो नित्य धर्म बताया गया है, उसका मैं निश्शङ्क होकर पालन करूँगा । कभी स्वच्छन्द नहीं होऊँगा ।' परंतप प्रभो ! साथ ही यह भी प्रतिज्ञा करो कि 'ब्राह्मण मेरे लिये अदण्डनीय होंगे तथा मैं सम्पूर्ण जगत्को वर्णसंकरता और धर्मसंकरतासे बचाऊँगा' ।''

'पूज्य महात्माओ !' मृत्युके दौहित्र आदिसम्राट् महाराज पृथुने अत्यन्त विनम्र वाणीमें ऋषियोंके आज्ञा-पालनका दृढ़ संकल्प व्यक्त करते हुए कहा—'महाभाग ब्राह्मण मेरे लिये सदा वन्दनीय होंगे ।'

महाराज पृथुके दृढ़ आश्वासनसे ऋषिगण अत्यन्त संतुष्ट हुए । उन्होंने महाराज पृथुका अभिषेक करनेका निर्णय किया । उस समय नदी, समुद्र, पर्वत, सर्प, गौ, पक्षी, मृग, स्वर्ग, पृथ्वी तथा अन्य सभी प्राणियों और देवताओंने भी उन्हें बहुमूल्य उपहार दिये । फिर सुन्दर वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत महाराज पृथुका विधिवत् राज्याभिषेक हुआ । उस समय महारानी अर्चिके साथ उनकी अद्भुत शोभा हो रही थी ।

इसके अनन्तर भविष्यद्रष्टा ऋषियोंकी प्रेरणासे वन्दीजनोंने महाराज पृथुके भावी पराक्रमोंका वर्णन कर उनकी स्तुति की । महाराज पृथुने वन्दीजनोंकी प्रशंसा करते हुए उन्हें अभीष्ट वस्तुएँ देकर संतुष्ट किया; साथ ही उन्होंने ब्राह्मणादि चारों वर्णों, सेवकों, मन्त्रियों, पुरोहितों, पुरवासियों, देशवासियों तथा विभिन्न व्यवसायियों आदिका भी यथोचित सत्कार किया ।

'महाराज ! हमारे प्राणोंकी रक्षा करें ।' भूखसे जर्जर, अत्यन्त कृशकाय प्रजाजनोंने आकर अपने सम्राट्से प्रार्थना की। 'हम पेटकी भीषण ज्वालासे जल रहे हैं । आप हमारे अन्नदाता प्रभु बनाये गये हैं, हम आपके शरण हैं । आप अन्नकी शीघ्र व्यवस्था कर हमारे प्राणोंको बचा लें ।'

वेनके पापाचरणसे पृथ्वीका अन्न नष्ट हो गया था। सर्वत्र दुर्भिक्ष फैला हुआ था । प्राणप्रिय प्रजाके आर्त्तनादसे व्याकुल हो आदिसम्राट् महाराज सोचने लगे ।

'पृथ्वीने ही अन्न एवं ओषधियोंको अपने भीतर छिपा लिया है ।' यह विचार मनमें आते ही महाराज पृथु अपना 'आजगव' नामक दिव्य धनुष और दिव्य बाण लेकर अत्यन्त क्रोधपूर्वक पृथ्वीके पीछे दौड़े । उन्हें शस्त्र उठाये देखकर पृथ्वी काँप उठी और भयभीत मृगीकी भाँति गौका रूप धारणकर प्राण लेकर भागी । दिशा-विदिशा, धरती-आकाश और स्वर्गतक पृथ्वी भागती गयी; किंतु सर्वत्र उसे धनुषकी प्रत्यञ्चापर अपना तीक्ष्ण शर चढ़ाये, लाल आँखें किये अत्यन्त क्रुद्ध सम्राट् पृथु दीखे । विवश होकर अपनी प्राण-रक्षाके लिये काँपती हुई पृथ्वीने परम पराक्रमी महाराज पृथुसे कहा—'महाराज ! मुझे मारनेपर आपको स्त्री-वधका पाप लगेगा ।'

'जहाँ एक दुष्टके वधसे बहुतोंकी विपत्ति टल जाती हो,' कुपित पृथुने पृथ्वीको उत्तर दिया, 'सब सुखी होते हों, उसे मार डालना ही पुण्यप्रद है ।'

'नृपोत्तम !' पृथ्वी बोली—'मुझे मार देनेपर आपकी प्रजाका आधार ही नष्ट हो जायगा ।' 'वसुधे ! अपनी आज्ञाका उल्लङ्घन करनेके कारण मैं तो तुझे मार ही डालूँगा ।' प्रतापी महाराज पृथुने उत्तर दिया । 'फिर मैं अपने योगबलसे प्रजाको धारण करूँगा ।'

'लोकरक्षक प्रभो !' धरणीने महाराज पृथुके चरणोंमें प्रणाम कर उनकी स्तुति की । फिर उसने कहा—'पापात्माओंके द्वारा दुरुपयोग किये जाते देखकर मैंने बीजोंको अपनेमें रोक लिया । अधिक समय होनेसे वे मेरे उदरमें पच गये हैं । आपकी इच्छा हो तो मैं उन्हें दुग्धके रूपमें दे सकती हूँ । आप प्रजाहितके लिये ऐसा बछड़ा प्रस्तुत करें, जिससे वात्सल्यवश मैं उन्हें दुग्धरूपसे निकाल सकूँ ।'

'धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ महाराज !' पृथ्वीने आगे कहा—'एक बात और है । आप मुझे समतल करनेका भी कष्ट करें,

जिससे वर्षा ऋतु व्यतीत होनेपर मेरे ऊपर इन्द्रका बरसाया जल सर्वत्र बना रहे। मेरी आर्द्रता सुरक्षित रहे, शुष्क न हो जाय। यह आपके लिये भी शुभकर होगा।'

पृथ्वीके उपयोगी वचन सुनकर महाराज पृथुने स्वायम्भुव मनुको बछड़ा बना उसका दोहन करके उससे ओषधि-बीज-अन्नादिका उत्पादन किया। पृथ्वीके द्वारा सब कुछ प्रदान करनेपर महाराज पृथु बड़े प्रसन्न हुए और अत्यधिक स्नेहवश उन्होंने सर्वकामदुघा पृथ्वीको अपनी कन्याके रूपमें स्वीकार कर लिया। महाराज पृथुने पृथ्वीको समतल भी कर दिया—

मन्वन्तरेषु सर्वेषु विषमा जायते मही।
उज्जहार ततो वैन्यः शिलाजालान् समन्ततः॥
धनुष्कोट्या महाराज तेन शैला विवर्धिताः।
(महा०, शान्ति० ५९। ११५-११६)

'सभी मन्वन्तरोंमें यह पृथ्वी ऊँची-नीची हो जाती है; अतः वेनकुमार पृथुने धनुषकी कोटिद्वारा चारों ओरसे शिलासमूहोंको उखाड़ डाला और उन्हें एक स्थानपर संचित कर दिया; इसीलिये पर्वतोंकी लंबाई, चौड़ाई और ऊँचाई बढ़ गयी।'

न हि पूर्वविसर्गे वै विषमे पृथिवीतले।
प्रविभागः पुराणां वा ग्रामाणां वा पुराभवत्॥
न सस्यानि न गोरक्ष्यं न कृषिर्न वणिक्पथः।
वैन्यात्प्रभृति मैत्रेय सर्वस्यैतस्य सम्भवः॥
(विष्णुपुराण १। १३। ८३-८४)

'इससे पूर्व पृथ्वीके समतल न होनेसे पुर और ग्राम आदिका कोई विभाग नहीं था। हे मैत्रेय! उस समय अन्न, गोरक्षा, कृषि और व्यापारका भी कोई क्रम न था। यह सब तो वेनपुत्र पृथुके समयसे ही प्रारम्भ हुआ है।'

महाराज पृथुके राज्यमें सर्वत्र सुख-शान्ति थी। प्रजा सर्वथा निश्चिन्त रहकर अपने-अपने धर्मका पालन करती थी। वहाँ रोग-शोक नामकी कोई वस्तु नहीं थी—

न जरा न च दुर्भिक्षं नाधयो व्याधयस्तथा॥
सरीसृपेभ्यः स्तेनेभ्यो न चान्योन्यात् कदाचन।
भयमुत्पद्यते तत्र तस्य राज्ञोऽभिरक्षणात्॥
(महा०, शान्ति० ५९। १२१-१२२)

'महाराज पृथुके राज्यमें किसीको बुढ़ापा, दुर्भिक्ष तथा आधि-व्याधिका कष्ट नहीं था। राजाकी ओरसे रक्षाकी समुचित व्यवस्था होनेके कारण वहाँ किसीको सर्पों, चोरों तथा आपसके लोगोंसे भय नहीं प्राप्त होता था।'

इतना ही नहीं, विष्णुके अंशावतार श्रीपृथुके शासनमें इच्छित वस्तुएँ स्वयं प्राप्त हो जाती थीं—

अकृष्टपच्या पृथिवी सिद्ध्यन्त्यन्नानि चिन्तया।
सर्वकामदुघा गावः पुटके पुटके मधु॥
(विष्णुपुराण १। १३। ५०

'पृथ्वी बिना जोते-बोये धान्य पकानेवाली थी। केवल चिन्तामात्रसे ही अन्न सिद्ध हो जाता था, गौएँ कामधेनुरूप थीं और पत्ते-पत्तेमें मधु रहता था।'

महाराज पृथुके चरणोंमें सारा जगत् देवताके समान मस्तक झुकाता था। वे सागरकी ओर जाते तो उसका जल स्थिर हो जाता। पर्वत उन्हें मार्ग दे देते थे। उनके रथकी पताका सदा फहराती रही।

सम्राट् पृथु अत्यन्त धर्मात्मा तथा परम भगवद्भक्त थे। उन्हें विषयभोगोंकी तनिक भी इच्छा नहीं थी। सांसारिक कामनाएँ स्पर्शतक नहीं कर सकी थीं। वे सदा श्रीभगवान्‌को ही प्रसन्न रखना चाहते थे। उन्होंने प्रभुको संतुष्ट करनेके लिये मनुके ब्रह्मावर्त्त क्षेत्रमें, जहाँ पुण्यतोया सरस्वती पूर्वमुखी होकर बहती है, सौ अश्वमेध-यज्ञोंकी दीक्षा ली। श्रीहरिकी कृपासे उस यज्ञानुष्ठानसे उनका बड़ा उत्कर्ष हुआ; किंतु यह बात देवराज इन्द्रको प्रिय नहीं लगी। सौ श्रौतयाग करनेके फलस्वरूप ही जीवको इन्द्रपद प्राप्त होता है। सुतरां ऐसी स्थितिमें दूसरा कोई 'शतक्रतु' हो जाय, यह उन्हें कैसे सहन होता। जब महाराज पृथु अन्तिम यज्ञद्वारा यज्ञपति श्रीभगवान्‌की आराधना कर रहे थे, इन्द्रने यज्ञका अश्व चुरा लिया। पाखण्डसे अनेक प्रकारके वेष बनाकर वे अश्वकी चोरी करते और महर्षि अत्रिकी आज्ञासे पृथुके महारथी पुत्र विजिताश्व उनसे अश्व छीन लाते।

जब इन्द्रकी दुष्टताका पता महाराज पृथुको चला, तब वे अत्यन्त कुपित हुए। उनके नेत्र लाल हो गये। उन्होंने इन्द्रको दण्ड देनेके लिये धनुष उठाया और उसपर अपना तीक्ष्ण बाण रखा।

'राजन् ! यज्ञदीक्षा लेनेपर शास्त्रविहित यज्ञपशुके अतिरिक्त अन्य किसीका वध उचित नहीं है।' ऋत्विजोंने असह्यपराक्रम महाराज पृथुको रोकते हुए कहा। 'इस यज्ञमें उपद्रव करनेवाला आपका शत्रु इन्द्र आपकी सुकीर्तिसे ही निस्तेज हो रहा है। हम अमोघ आवाहन-मन्त्रोंके द्वारा उसे अग्निमें हवनकर भस्म कर देते हैं। आप यज्ञमें दीक्षित पुरुषकी मर्यादाका निर्वाह करें।'

यजमान महाराज पृथुसे परामर्श करके याजकोंने क्रोध-पूर्वक इन्द्रका आवाहन किया। वे स्रुवासे आहुति देना ही चाहते थे कि चतुर्मुखने उपस्थित होकर उन्हें रोक दिया। विधाताने आदिसम्राट् महाराज पृथुसे कहा—'राजन् ! यज्ञसंज्ञक इन्द्र तो श्रीभगवान्‌की ही मूर्ति है। यज्ञके द्वारा आप जिन देवताओंको संतुष्ट कर रहे हैं, वे इन्द्रके ही अङ्ग हैं और उसे आप यज्ञद्वारा भस्म कर देना चाहते हैं ! आप तो श्रीहरिके अनन्य भक्त हैं। आपको तो मोक्ष प्राप्त करना है। अतएव आपको इन्द्रपर क्रोध नहीं करना चाहिये। आप यज्ञ बंद कर दीजिये।'

श्रीब्रह्माजीके इस प्रकार समझानेपर महाराज पृथुने यज्ञकी वहीं पूर्णाहुति कर दी। उनकी सहिष्णुता, विनय एवं निष्काम भक्तिसे भगवान् विष्णु बड़े प्रसन्न हुए। भक्तवत्सल प्रभु इन्द्रके साथ वहाँ उपस्थित हो गये। इन्द्र अपने कर्मोंसे लज्जित होकर महाराज पृथुके चरणोंमें गिरना ही चाहते थे कि महाराजने उन्हें अत्यन्त प्रीतिपूर्वक हृदयसे लगा लिया और उनके मनकी मलिनता दूर कर दी।

महाराज पृथुने त्रैलोक्यसुन्दर, भुवनमोहन भगवान् विष्णुकी ओर देखा तो उनके आनन्दकी सीमा नहीं रही। नेत्रोंमें जल भर आनेके कारण वे प्रभुका दर्शन नहीं कर पा रहे थे। श्रीभगवान्‌ने उन्हें ज्ञान, वैराग्य तथा राजनीतिके गूढ़ रहस्योंको बताते हुए कहा—

> वरं च मत् कंचन मानवेन्द्र
> वृणीष्व तेऽहं गुणशीलयन्त्रितः।
> नाहं मखैर्वै सुलभस्तपोभि-
> र्योगेन वा यत्समचित्तवर्ती॥
>
> (श्रीमद्भागवत ४। २०। १६)

'राजन् ! तुम्हारे गुणों और स्वभावने मुझको वशमें कर लिया है; अतः तुम्हें जो इच्छा हो, वही वर मुझसे माँग लो। उन क्षमा आदि गुणोंसे रहित यज्ञ, तप अथवा योगके द्वारा मुझको पाना सरल नहीं है; मैं तो उन्हींके हृदयमें रहता हूँ, जिनके चित्तमें समता रहती है।'

प्रभुके चरण-कमल वसुंधराको स्पर्श कर रहे थे। उनका एक कर-कमल गरुडजीके कंधेपर था। महाराज पृथुने अश्रु पोंछकर प्रभुके मुखारविन्दकी ओर देखते हुए अत्यन्त विनयके साथ कहा—

> **वरान् विभो त्वद्वरदेश्वराद्बुधः कथं वृणीते गुणविक्रियात्मनाम्।**
> **ये नारकाणामपि सन्ति देहिनां तानीश कैवल्यपते वृणे न च॥**
> **न कामये नाथ तदप्यहं क्वचिन्न यत्र युष्मच्चरणाम्बुजासवः।**
> **महत्तमान्तर्हृदयान्मुखच्युतो विधत्स्व कर्णायुतमेष मे वरः॥**
>
> (श्रीमद्भागवत ४। २०। २३-२४)

'मोक्षपति प्रभो ! आप वर देनेवाले ब्रह्मादि देवताओंको भी वर देनेमें समर्थ हैं। कोई भी बुद्धिमान् पुरुष आपसे देहाभिमानियोंके भोगनेयोग्य विषयोंको कैसे माँग सकता है ? वे तो नारकी जीवोंको भी मिलते हैं। अतः मैं इन तुच्छ विषयोंको आपसे नहीं माँगता। मुझे तो उस मोक्ष-पदकी भी इच्छा नहीं है, जिसमें महापुरुषोंके हृदयसे उनके मुखद्वारा निकला हुआ आपके चरण-कमलोंका मकरन्द नहीं है—जहाँ आपकी कीर्ति-कथा सुननेका सुख नहीं मिलता। इसलिये मेरी तो यही प्रार्थना है कि आप मुझे दस हजार कान दे दीजिये, जिनसे मैं आपके लीला-गुणोंको सुनता ही रहूँ।'

'तुम्हारी अनुरक्ति मुझमें बनी रहे !'—इस प्रकार वरदान देकर महाराज पृथुद्वारा पूजित श्रीभगवान् अपने धामको पधारे।

× × ×

आदिराज महाराज पृथुने गङ्गा-यमुनाके मध्यवर्ती क्षेत्र प्रयागराजको अपनी निवासभूमि बना लिया था। वे सर्वथा अनासक्त भावसे तत्परतापूर्वक प्रजाका पालन करते थे। वे अनेक प्रकारके महोत्सव किया करते थे। एक बार एक महासत्रमें देवता, ब्रह्मर्षि और राजर्षि भी उपस्थित थे। उन सबका यथायोग्य स्वागत-सत्कार करनेके उपरान्त परम भागवत महाराज पृथुने सबके सम्मुख अपनी प्रजाको उपदेश देते हुए कहा—'प्रिय प्रजाजन ! अपने इस राजाके पारमार्थिक हितके लिये आपलोग परस्पर दोषदृष्टि छोड़कर हृदयसे सर्वेश्वर प्रभुको स्मरण करते हुए अपने-अपने कर्तव्यका

पालन करते रहिये। आपका स्वार्थ भी इसीमें है और इस प्रकार मुझपर भी आपका परम अनुग्रह होगा। इस पृथ्वी-तलपर मेरे जो प्रजाजन सर्वगुरु श्रीहरिकी निष्ठापूर्वक अपने-अपने धर्मोंके द्वारा निरन्तर पूजा करते हैं, उनकी मुझपर बड़ी कृपा है।' भगवान्‌की महिमाका निरूपण करनेके साथ ही उन्होंने क्लेशोंकी निवृत्ति तथा मोक्ष-प्राप्तिका साधन भी भगवद्भजनको ही बताया। उन्होंने सबको धर्मका उपदेश किया और अन्तमें अपनी अभिलाषा व्यक्त की कि 'ब्राह्मण-कुल, गोवंश और भक्तोंके सहित भगवान् मुझपर सदा प्रसन्न रहें।'

सभी महाराज पृथुकी प्रशंसा करने लगे। उसी समय वहाँ लोगोंने आकाशसे सूर्यके समान तेजस्वी चार सिद्धोंको उतरते देखा। परम पराक्रमी महाराज पृथुने सनकादि-कुमारोंको पहचानकर इन्हें श्रेष्ठ स्वर्णासनपर बैठाया और श्रद्धा-भक्तिपूर्ण हृदयसे उनकी विधिवत् पूजा की। फिर उनके चरणोदकको अपने मस्तकपर चढ़ाया और हाथ जोड़कर अत्यन्त विनयपूर्वक उन्होंने सनकादिसे कहा—'प्रभो! आपने मेरे यहाँ पधारनेकी कृपा कर मेरा बड़ा ही उपकार किया है। मैं आपके प्रति आभार किन शब्दोंमें व्यक्त करूँ? अब आप दयापूर्वक यह बतानेका कष्ट करें कि इस धरतीपर प्राणीका किस प्रकार सुगमतासे कल्याण हो सकता है।'

महाराज पृथुपर अत्यन्त प्रसन्न होकर सनकादि कुमारोंने उन्हें धन और इन्द्रियोंके विषयोंके चिन्तनका त्याग कर भगवान्‌की भक्ति करनेका सदुपदेश दिया।

'आपलोगोंके उपकारका बदला, भला, मैं कैसे दे सकता हूँ।' सनकादिके अमृतमय उपदेशोंसे उपकृत महाराज पृथुने उनकी स्तुति तथा पूजा की और वे आत्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ सनकादि महाराजके शील-गुणकी सराहना करते हुए सबके सामने ही आकाशमार्गसे प्रस्थित हुए।

इस प्रकार प्रजाके जीवन-निर्वाहकी पूरी व्यवस्था तथा साधुजनोचित धर्मका पालन करते हुए महाराज पृथुकी आयु ढलने लगी।

'अब मुझे अन्तिम पुरुषार्थ—मोक्षके लिये प्रयत्न करना चाहिये।' यों विचारकर उन्होंने अपनी पुत्रीरूपा पृथ्वीका भार अपने पुत्र*को सौंप दिया और अपनी सहधर्मिणी अर्चिके साथ वे तपस्याके लिये वनमें चले गये।

वहाँ महाराज पृथुने अत्यन्त कठोर तपस्या करते हुए सनकादिके उपदेशके अनुसार श्रीभगवान्‌में चित्त स्थिर कर लिया। इस प्रकार अपने परमाराध्य श्रीहरिमें मन लगाकर एक दिन आसनपर बैठे-बैठे ही उन्होंने योगधारणाके द्वारा अपना भौतिक कलेवर त्याग दिया।

अपने पुण्यमय पतिके तपःकालमें उनकी सुकुमारी महारानी अर्चिने अत्यन्त दुर्बल होते हुए भी उनकी प्रत्येक रीतिसे सेवा की। वे निर्जन वनमें समिधा एकत्र करतीं, कुश, पुष्प और फल एकत्र करतीं और पवित्र जल लाकर पतिके भजनमें सतत योगदान करती रहीं। जब उन्होंने पतिके निष्प्राण शरीरको देखा, तब वे करुण विलाप करने लगीं।

कुछ देरके बाद परमपराक्रमी आदिराज महाराज पृथुकी महारानी अर्चिने धैर्य धारणकर लकड़ियाँ एकत्र कीं और समीपस्थ पर्वतपर चिता तैयार की। फिर पतिके निर्जीव शरीरको स्नान कराकर उसे चितापर रख दिया। इसके अनन्तर उन्होंने स्वयं स्नान कर अपने पतिको जलाञ्जलि दी। फिर अन्तरिक्षमें उपस्थित देवताओंकी वन्दना कर उन्होंने चिताकी तीन बार परिक्रमा की और स्वयं भी प्रज्वलित अग्निमें प्रविष्ट हो गयीं।

महारानी अर्चिको अपने वीर पति पृथुका अनुगमन करते देख सहस्रों वरदायिनी देवियोंने उनकी स्तुति की। वहाँ देववाद्य बजने लगे और आकाशसे सुमन-वृष्टि होने लगी। देवाङ्गनाओंने परम सती महारानी अर्चिकी प्रशंसा करते हुए कहा—

> सैषा नूनं व्रजत्यूर्ध्वमनु वैन्यं पतिं सती।
> पश्यतास्मानतीत्यार्चिर्दुर्विभाव्येन कर्मणा॥
> तेषां दुरापं किं त्वन्यन्मर्त्यानां भगवत्पदम्।
> भुवि लोलायुषो ये वै नैष्कर्म्यं साधयन्त्युत॥
>
> (श्रीमद्भागवत ४। २३। २६-२७)

'अवश्य ही अपने अचिन्त्य कर्मके प्रभावसे यह सती हमें भी लाँघकर अपने पतिके साथ उच्चतर लोकोंको जा रही है। इस लोकमें कुछ ही दिनोंका जीवन होनेपर भी जो लोग भगवान्‌के परमपदकी प्राप्ति करानेवाला आत्मज्ञान प्राप्त कर लेते हैं, उनके लिये संसारमें और कौन पदार्थ दुर्लभ है।'

× × ×

* अर्चिके गर्भसे पाँच योग्य पुत्र उत्पन्न हुए थे। उनके नाम थे—विजिताश्व, धूम्रकेश, हर्यक्ष, द्रविण और वृक।

पृथ्वीपर महाराज पृथु जैसे आदि राजा थे, महारानी अर्चि भी उसी प्रकार पतिके साथ सहमरण करनेवाली प्रथम सती थीं। —शि० दु०

[१०]

भगवान् मत्स्य

(लेखक—पं० श्रीरामाधारजी शुक्ल, शास्त्री)

प्रलयपयसि धातुः सुप्तशक्तेर्मुखेभ्यः
श्रुतिगणमपनीतं प्रत्युपादत्त हत्वा।
दितिजमकथयद् यो ब्रह्म सत्यव्रतानां
तमहमखिलहेतुं जिह्ममीनं नतोऽस्मि॥

(श्रीमद्भागवत ८। २४। ६१)

'प्रलयकालीन समुद्रमें जब ब्रह्माजी सो गये थे, उनकी सृष्टि-शक्ति लुप्त हो चुकी थी, उस समय उनके मुखोंसे निकली हुई श्रुतियोंको चुराकर हयग्रीव दैत्य पातालमें ले गया था। भगवान्ने उसे मारकर वे श्रुतियाँ ब्रह्माजीको लौटा दीं एवं राजर्षि सत्यव्रत तथा सप्तर्षियोंको ब्रह्मतत्त्वका उपदेश किया। उन समस्त जगत्के परम कारण लीला-मत्स्य भगवान्को मैं नमस्कार करता हूँ।'

× × ×

कृतयुगके आदिमें सत्यव्रत-नामसे विख्यात एक राजर्षि थे। ये ही वर्तमान महाकल्पमें श्राद्धदेव-नामसे प्रसिद्ध विवस्वान्के पुत्र हुए, जिन्हें भगवान्ने वैवस्वत मनु बना दिया था। राजा सत्यव्रत बड़े क्षमाशील, समस्त श्रेष्ठ गुणोंसे सम्पन्न और सुख-दुःखको समान समझनेवाले एक वीर पुरुष थे। ये पुत्रको राज्यभार सौंपकर स्वयं तपस्याके लिये वनमें चले गये और मलय-पर्वतके एक शिखरपर उत्तम योगका आश्रय लेकर घोर तपमें संलग्न हो गये। दस हजार वर्ष बीतनेके पश्चात् कमलासन ब्रह्मा राजाके समक्ष प्रकट हुए और बोले—'वरं वृणीष्व—वर माँगो।' तब राजाने पितामहके चरणोंमें प्रणाम करके कहा—'देव! मैं आपसे केवल एक ही उत्तम वर प्राप्त करना चाहता हूँ। वह यह है कि प्रलयकाल उपस्थित होनेपर मैं चराचर समस्त भूत-समुदायकी रक्षा करनेमें समर्थ हो सकूँ।' यह सुनकर विश्वात्मा ब्रह्मा 'एवमस्तु—यही हो' यों कहकर वहीं अन्तर्हित हो गये और देवताओंने राजापर महान् पुष्पवृष्टि की।

एक दिनकी घटना है कि राजर्षि सत्यव्रत नदीमें स्नान करके तर्पण कर रहे थे। इतनेमें ही जलके साथ एक छोटी-सी मछली उनकी अञ्जलिमें आ गयी। राजाने जलके साथ ही उसे फिरसे नदीमें डाल दिया। तब उस मछलीने बड़ी करुणाके साथ राजासे कहा—'राजन्! आप बड़े दयालु हैं। आप जानते ही हैं कि बड़े-बड़े जलजन्तु अपनी जातिवाले छोटे-छोटे जलजन्तुओंको खा जाते हैं; तब फिर आप मुझे इस नदीके जलमें क्यों छोड़ रहे हैं।' राजा सत्यव्रतने उस मछलीकी अत्यन्त दीनतापूर्ण वाणी सुनकर उसे अपने कमण्डलुमें रख लिया और आश्रमपर ले आये। एक ही रातमें वह मछली इतनी बढ़ गयी कि उसके रहनेके लिये कमण्डलुमें स्थान ही नहीं रह गया। तब वह राजासे बोली—'राजन्! अब तो इस कमण्डलुमें मेरा किसी प्रकार भी निर्वाह नहीं हो सकता, अतः मेरे सुखपूर्वक रहनेके लिये कोई बड़ा-सा स्थान नियत कीजिये।' तब राजर्षि सत्यव्रतने उस मछलीको कमण्डलुसे निकालकर एक बहुत बड़े पानीके मटकेमें रख दिया, परंतु दो ही घड़ीमें वह वहाँ भी बढ़कर तीन हाथकी हो गयी। फिर उसने राजासे कहा—'राजन्! यह मटका भी मेरे लिये पर्याप्त नहीं है, अतः मुझे सुखपूर्वक रहनेके लिये कोई दूसरा बड़ा-सा स्थान दीजिये।' राजा सत्यव्रतने वहाँसे उस मछलीको उठाकर एक बड़े सरोवरमें डाल दिया, परंतु थोड़ी ही देरमें उसने उस सरोवरके जलको भी घेर लिया और कहा—'राजन्! यह भी मेरे सुखपूर्वक रहनेके लिये पर्याप्त नहीं है।' इस प्रकार राजा उसे अन्यान्य अगाध जलराशिवाले सरोवरोंमें छोड़ते गये और वह उन्हें अपनी शरीर-वृद्धिसे परिव्याप्त करती गयी। तब राजाने उसे समुद्रमें डाल दिया। समुद्रमें छोड़े जाते समय उस लीला-मत्स्यने कहा—'वीरवर नरेश! समुद्रमें बहुत-से विशालकाय मगर-मच्छ रहते हैं, वे मुझे निगल जायँगे, अतः आप मुझे समुद्रमें मत डालिये।'

मत्स्यभगवान्की वह मधुर वाणी सुनकर राजा सत्यव्रतकी बुद्धि मोहाच्छन्न हो गयी। तब उन्होंने पूछा—'हमें मत्स्यरूपसे मोहित करनेवाले आप कौन हैं? आपने एक ही दिनमें सौ योजन विस्तारवाले सरोवरको आच्छादित कर लिया। ऐसा पराक्रमशाली जलजन्तु तो हमने आजतक न देखा था और न सुना ही था। निश्चय

ही आप साक्षात् सर्वशक्तिमान् सर्वव्यापी अविनाशी श्रीहरि हैं। जीवोंपर अनुग्रह करनेके लिये ही आपने जलचरका रूप धारण किया है। पुरुषश्रेष्ठ! आप जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयके कर्ता हैं; आपको नमस्कार है। विभो! हम शरणागत भक्तोंके आप ही आत्मा और आश्रय हैं। यद्यपि आपके सभी लीलावतार प्राणियोंके अभ्युदयके लिये ही होते हैं, तथापि मैं यह जानना चाहता हूँ कि आपने यह मत्स्यरूप किस उद्देश्यसे धारण किया है?'

राजाके यों पूछनेपर मत्स्यभगवान् बोले—"शत्रुसूदन! आजसे सातवें दिन भूर्लोक आदि तीनों लोक प्रलय-पयोधिमें निमग्न हो जायँगे। उस समय प्रलयकालकी जलराशिमें त्रिलोकीके डूब जानेपर मेरी प्रेरणासे एक विशाल नौका तुम्हारे पास आयेगी। तब तुम समस्त ओषधियों, छोटे-बड़े सभी प्रकारके बीजों और प्राणियोंके सूक्ष्मशरीरोंको लेकर सप्तर्षियोंके साथ उस बड़ी नावपर चढ़ जाना और निश्चिन्त होकर उस एकार्णवके जलमें विचरण करना। उस समय प्रकाश नहीं रहेगा, केवल ऋषियोंके दिव्य तेजका ही सहारा रहेगा। जब झंझावातके प्रचण्ड वेगसे नाव डगमगाने लगेगी, उस समय मैं इसी रूपमें तुम्हारे निकट उपस्थित होऊँगा। तब तुम वासुकि नागके द्वारा उस नावको मेरे सींगमें बाँध देना। इस प्रकार जबतक ब्राह्मी निशा रहेगी, तबतक मैं तुम्हारे तथा ऋषियोंके द्वारा अधिष्ठित उस नावको प्रलय-सागरमें खींचता हुआ विचरण करूँगा। उस समय तुम्हारे प्रश्न करनेपर मैं उनका उत्तर दूँगा, जिनसे मेरी महिमा, जो 'परब्रह्म' नामसे विख्यात है, तुम्हारे हृदयमें प्रस्फुटित हो जायगी।' राजासे यों कहकर मत्स्यभगवान् वहीं अन्तर्हित हो गये।

राजर्षि सत्यव्रत भगवान्के बताये हुए उस कालकी प्रतीक्षा करने लगे। वे कुशोंको, जिनका अग्रभाग पूर्वकी ओर था, बिछाकर उसपर ईशानकोणकी ओर मुख करके बैठ गये और मत्स्यरूपधारी श्रीहरिके चरणोंका चिन्तन करने लगे। इतनेमें ही राजाने देखा कि समुद्र अपनी मर्यादा-भङ्ग करके चारों ओरसे पृथ्वीको डुबाता हुआ बढ़ रहा है और भयंकर मेघ वर्षा कर रहे हैं। तब उन्होंने भगवान्के आदेशका ध्यान किया और देखा कि नाव आ गयी। फिर तो राजा ओषधि, बीज और सप्तर्षियोंको साथ लेकर उस नावपर सवार हो गये। तब सप्तर्षियोंने प्रसन्न होकर कहा—'राजन्! केशवका ध्यान कीजिये। वे ही हमलोगोंकी इस संकटसे रक्षा करके कल्याण करेंगे।' तदनन्तर राजाके ध्यान करते ही श्रीहरि मत्स्यरूप धारण करके उस प्रलयाब्धिमें प्रकट हो गये। उनका शरीर स्वर्ण-सा देदीप्यमान तथा चार लाख कोसके विस्तारवाला था। उनके एक सींग भी था। राजाने पूर्वकथनानुसार उस नावको वासुकि नागद्वारा मत्स्यभगवान्के सींगमें बाँध दिया और स्वयं प्रसन्न होकर उन मधुसूदनकी स्तुति करने लगे।

राजा सत्यव्रतके स्तवन कर चुकनेपर मत्स्यरूपधारी पुरुषोत्तम भगवान्ने प्रलय-पयोधिमें विहार करते हुए उन्हें तत्त्वज्ञानका उपदेश किया, जो 'मत्स्यपुराण' नामसे प्रसिद्ध है। तत्पश्चात् प्रलयान्तमें भगवान्ने हयग्रीव असुरको मारकर उससे वेद छीन लिये और ब्रह्माजीको दे दिये। भगवान्की कृपासे राजा सत्यव्रत ज्ञान-विज्ञानसे सम्पन्न होकर इस कल्पमें वैवस्वत मनु हुए।

[११]

भगवान् कूर्म

पृष्ठे भ्राम्यदमन्दमन्दरगिरिग्रावाग्रकण्डूयना-
न्निद्रालोः कमठाकृतेर्भगवतः श्वासानिलाः पान्तु वः।
यत्संस्कारकलानुवर्तनवशाद् वेलानिभेनाम्भसां
यातायातमतन्द्रितं जलनिधेर्नाद्यापि विश्राम्यति॥
(श्रीमद्भागवत १२। १३। २)

'जिस समय भगवान्ने कच्छपरूप धारण किया था और उनकी पीठपर बड़ा भारी मन्दराचल मथानीकी तरह घूम रहा था, उस समय मन्दराचलकी चट्टानोंकी नोकसे पीठके खुजलाये जानेके कारण भगवान्को तनिक सुख मिला। उन्हें नींद-सी आने लगी और उनके श्वासकी गति थोड़ी बढ़ गयी। उस समय उस श्वास-वायुसे जो समुद्रके जलको धक्का लगा था, उसका संस्कार आज भी उसमें शेष है। आज भी समुद्र उसी श्वास-वायुके थपेड़ोंके फलस्वरूप ज्वार-भाटोंके रूपमें दिन-रात चढ़ता-उतरता रहता है, उसे अबतक विश्राम न मिला। भगवान्की वही परमप्रभावशाली श्वास-वायु आपलोगोंकी रक्षा करे।'

'सुन्दरी ! अपने हाथमें सुशोभित संतानक-पुष्पोंकी अत्यन्त सुगन्धित दिव्य माला मुझे दे दो !' एक बार भगवान् शंकरके अंशावतार महर्षि दुर्वासाने सानन्द पृथ्वीतलपर विचरण करते हुए एक विद्याधरीके हाथमें अत्यन्त सुवासित मालाको देखकर उससे कहा।

'मेरा परम सौभाग्य है।' विद्याधरीने महर्षिके चरणोंमें श्रद्धापूर्वक प्रणाम कर उनके कर-कमलोंमें माला देते हुए अत्यन्त विनम्रतापूर्वक मधुर वाणीमें कहा। 'मैं तो कृतार्थ हो गयी।'

महर्षिने माला लेकर अपने गलेमें डाल ली और आगे बढ़ गये। उधरसे त्रैलोक्याधिपति देवराज इन्द्र ऐरावतपर चढ़कर देवताओंके साथ आ रहे थे। महर्षि दुर्वासाने प्रसन्न होकर अपने गलेकी भ्रमरोंसे गुञ्जायमान अत्यन्त सुन्दर और सुगन्धित माला निकालकर शचीपति इन्द्रके ऊपर फेंक दी। सुरेश्वरने वह माला ऐरावतके मस्तकके ऊपर डाल दी। ऐरावतने उस भ्रमरोंकी गुंजारसे युक्त सुवासित मालाको सूँडसे सूँघा और फिर उसे पृथ्वीपर फेंक दिया। यह दृश्य देखकर महर्षि दुर्वासाके नेत्र लाल हो गये। उन्होंने अत्यन्त कुपित होकर सहस्राक्षको शाप दे दिया—

मया दत्तामिमां मालां यस्मान्न बहु मन्यसे।
त्रैलोक्यश्रीरतो मूढ विनाशमुपयास्यति॥
मद्दत्ता भवता यस्मात् क्षिप्ता माला महीतले।
तस्मात् प्रणष्टलक्ष्मीकं त्रैलोक्यं ते भविष्यति॥

(विष्णुपुराण १ । ९ । १४, १६)

'रे मूढ़! तूने मेरी दी हुई मालाका कुछ भी आदर नहीं किया, इसलिये तेरा त्रिलोकीका वैभव नष्ट हो जायगा।' 'तूने मेरी दी हुई मालाको पृथ्वीपर फेंका है, इसलिये तेरा यह त्रिभुवन भी शीघ्र ही श्रीहीन हो जायगा।'

भयाक्रान्त शचीपति ऐरावतसे उतरकर महर्षिके चरणोंपर गिर पड़े और हाथ जोड़कर अनेक प्रकारकी स्तुतियोंसे उन्हें प्रसन्न करनेका प्रयत्न करने लगे। तब भी महर्षि दुर्वासाने कहा—

नाहं क्षमिष्ये बहुना किमुक्तेन शतक्रतो।
विडम्बनामिमां भूयः करोष्यनुनयात्मिकाम्॥

(विष्णुपुराण १ । ९ । २४)

'शतक्रतो ! तू बारंबार अनुनय-विनयका ढोंग क्यों करता है ? तेरे इस कहने-सुननेसे क्या होगा ? मैं तुम्हें क्षमा नहीं कर सकता।'

महर्षि दुर्वासा वहाँसे चले गये और इन्द्र भी उदास होकर अमरावती पहुँचे। उसी क्षणसे अमरेन्द्रसहित त्रैलोक्यके वृक्ष तथा तृण-लतादि क्षीण होनेसे श्रीहत एवं विनष्ट होने लगे। त्रिलोकीके श्रीहीन एवं सत्त्वशून्य हो जानेसे प्रबल-पराक्रमी दैत्योंने अपने तीक्ष्ण अस्त्रोंसे देवताओंपर आक्रमण कर दिया। देवगण पराजित होकर भागे। स्वर्ग दानवोंका क्रीडाक्षेत्र बन गया।

असहाय, निरुपाय एवं दुर्बल देवताओंकी दुर्दशा देखकर इन्द्र, वरुण आदि देवता समस्त देवताओंके साथ सुमेरुके शिखरपर लोकपितामहके पास पहुँचे। संकटग्रस्त देवताओंके त्राणके लिये चतुरानन सबके साथ भगवान् अजितके धाम वैकुण्ठमें पहुँचे। वहाँ कुछ भी न दीखनेपर उन्होंने वेद-वाणीके द्वारा श्रीभगवान्‌की स्तुति करते हुए प्रार्थना की—

स त्वं नो दर्शयात्मानमस्मत्करणगोचरम्।
प्रपन्नानां दिदृक्षूणां सस्मितं ते मुखाम्बुजम्॥

(श्रीमद्भागवत ८ । ५ । ४५)

'प्रभो ! हम आपके शरणागत हैं और चाहते हैं कि मन्द-मन्द मुस्कानसे युक्त आपका मुख-कमल अपने इन्हीं नेत्रोंसे देखें। आप कृपा करके हमें उसका दर्शन कराइये।'

देवताओंके स्तवनसे संतुष्ट होकर अमित-तेजस्वी, मङ्गल-धाम एवं नयनानन्ददाता भगवान् विष्णु मन्द-मन्द मुस्काते हुए उन्हींके बीच प्रकट हो गये। देवताओंने पुनः दयामय, सर्वसमर्थ प्रभुकी स्तुति करते हुए अपना अभीष्ट निवेदन किया—

त्वामार्ताः शरणं विष्णो प्रयाता दैत्यनिर्जिताः।
वयं प्रसीद सर्वात्मंस्तेजसाप्याययस्व नः॥

(विष्णुपुराण १ । ९ । ७२)

'विष्णो ! दैत्योंद्वारा परास्त हुए हम लोग आतुर होकर आपकी शरणमें आये हैं; सर्वस्वरूप ! आप हमपर प्रसन्न होइये और अपने तेजसे हमें सशक्त कीजिये।'

'पुनः सशक्त होनेके लिये तुम्हें जरा-मृत्यु-निवारिणी सुधा अपेक्षित है।' जगत्पति भगवान् विष्णुने मेघगम्भीर स्वरमें देवताओंसे कहा। 'अमृत समुद्र-मन्थनसे प्राप्त होगा। यह काम अकेले तुम देवताओंसे नहीं हो सकता। इसके

लिये तुमलोग सामनीतिका अवलम्बन कर असुरोंसे संधि कर लो। अमृत-पानके प्रश्नपर वे भी सहमत हो जायँगे। फिर समुद्रमें सारी ओषधियाँ लाकर डाल दो। इसके उपरान्त मन्दरगिरिको मथानी एवं नागराज वासुकिकी नेती बनाकर मेरी सहायतासे समुद्र-मन्थन करो। तुम्हें निश्चय ही सुफल प्राप्त होगा; पर आलस्य और प्रमाद त्यागकर शीघ्र ही अमृत-प्राप्तिके लिये प्रयत्न करो।'

लीलाधारी प्रभु वहीं अन्तर्धान हो गये। इन्द्रादि देवता दैत्यराज बलिके समीप पहुँचे। बुद्धिमान् इन्द्रने उन्हें अपने बन्धुत्वका स्मरण कराया और भगवान्‌के आदेशानुसार बलिसे अमृत-प्राप्तिके लिये समुद्र-मन्थनकी बात कही। 'अमृतमें देवता और दैत्योंका समान भाग होगा'—इस लाभकी दृष्टिसे दैत्येश्वर बलिने सुरेन्द्रका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। वहाँ उपस्थित अन्य सेनापति शम्बर-अरिष्टनेमि और त्रिपुरनिवासी दैत्योंने भी इसका समर्थन किया।

फिर तो धराधामकी सारी ओषधियाँ, तृण और लताएँ क्षीरसागरमें डाल दी गयीं। देवताओं और दैत्योंने अपना मतभेद त्यागकर मन्दरगिरिको उखाड़ा और उसे क्षीराब्धि-तटकी ओर ले चले; किंतु महान् मन्दराचल उनसे अधिक दूर नहीं जा सका। विवशतः उन लोगोंने उसे बीचमें ही पटक दिया। उस सोनेके मन्दरगिरिके गिरनेसे कितने ही देव और दैत्य हताहत हो गये।

देवों और दैत्योंका उत्साह भङ्ग होते ही भगवान् गरुडध्वज वहाँ प्रकट हो गये। उनकी अमृतमयी कृपादृष्टिसे मृत देवता पुनः जीवित हो गये और उनकी शक्ति भी पूर्ववत् हो गयी। दयाधाम सर्वसमर्थ श्रीभगवान्‌ने एक हाथसे धीरेसे मन्दराचलको उठाकर गरुडकी पीठपर रखा और देवता तथा दैत्योंसहित जाकर उसे क्षीरोदधि-तटपर रख दिया।

देवता और दैत्योंने महान् मन्दरगिरिको समुद्रमें डालकर नागराज वासुकिकी नेती बनायी। सर्वप्रथम अजितभगवान् नागराज वासुकिके मुखकी ओर गये। उन्हें देखकर अन्य देवता भी वासुकिके मुखकी ओर चले गये।

'पूँछ सर्पका अशुभ अङ्ग है।' दैत्योंने विरोध करते हुए कहा। 'हम इसे नहीं पकड़ेंगे।' और दैत्यगण दूर खड़े हो गये।

देवताओंने कोई आपत्ति नहीं की। वे पूँछकी ओर आ गये और दैत्यगण सगर्व मुखकी ओर जाकर सोत्साह समुद्र-मन्थन करने लगे। किंतु मन्दरगिरिके नीचे कोई आधार नहीं था। इस कारण वह नीचे समुद्रमें डूबने लगा। यह देखकर अचिन्त्यशक्ति-सम्पन्न श्रीभगवान् विशाल एवं विचित्र कच्छपका रूप धारणकर समुद्रमें मन्दरगिरिके नीचे पहुँच गये। कच्छपावतार भगवान्‌की एक लाख योजन विस्तृत पीठपर मन्दरगिरि ऊपर उठ गया। देवता और दैत्य समुद्र-मन्थन करने लगे। भगवान् आदिकच्छपकी सुविस्तृत पीठपर मन्दरगिरि अत्यन्त तीव्रतासे घूम रहा था और श्रीभगवान्‌को ऐसा प्रतीत होता था, जैसे कोई उनकी पीठ खुजला रहा है।

समुद्र-मन्थनका कार्य सम्पन्न हो जाय, एतदर्थ श्रीभगवान् शक्ति-संवर्द्धनके लिये असुरोंमें असुररूपसे, देवताओंमें देव-रूपसे और वासुकि नागमें निद्रारूपसे प्रविष्ट हो गये। इतना ही नहीं, वे मन्दरगिरिको ऊपरसे दूसरे महान् पर्वतकी भाँति अपने हाथोंसे दबाकर स्थित हो गये। श्रीभगवान्‌की इस लीलाको देखकर ब्रह्मा, त्रिनेत्र और इन्द्रादि देवगण स्तुति करते हुए उनके ऊपर दिव्य पुष्पोंकी वृष्टि करने लगे।

इस प्रकार कच्छपावतार श्रीभगवान्‌की पीठपर उन्हींकी शक्तिसे समुद्र-मन्थन हुआ। —शि० दु०

[१२]

भगवान् धन्वन्तरि

(लेखक—श्रीगुरुचरणजी वर्णवाल, आयुर्वेदाचार्य)

देवान् कृशानसुरसंघनिपीडिताङ्गान्
दृष्ट्वा दयालुरमृतं वितरीतुकामः।
पाथोधिमन्थनविधौ प्रकटोऽभवद्यो
धन्वन्तरिः स भगवानवतात् सदा नः॥

'असुरोंके द्वारा पीड़ित होनेसे जो दुर्बल हो रहे थे, उन देवताओंको अमृत पिलानेकी इच्छासे ही भगवान् धन्वन्तरि समुद्र-मन्थनसे प्रकट हुए थे। वे हमारी सदा रक्षा करें।'

× × ×

सागर-मन्थनका महत्त्व बतलाकर देवताओंने असुरोंको अपना मित्र बना लिया। इसके पश्चात् देव और दानवोंने मिलकर अनेक ओषधियोंको क्षीरसागरमें डाला। मन्दराचलको मथानी और वासुकिनागको रस्सी बनाकर ज्यों ही उन्होंने समुद्र-मन्थन प्रारम्भ किया, त्यों ही निराधार मन्दराचल

समुद्रमें धँसने लगा। तब स्वयं सर्वेश्वर भगवान्ने कूर्मरूपसे मन्दरगिरिको अपनी पीठपर धारण किया। इतना ही नहीं श्रीभगवान्ने देवता, दानवों एवं वासुकिनागमें प्रविष्ट होकर और स्वयं मन्दराचलको ऊपरसे दबाकर समुद्र-मन्थन कराया। हलाहल, कामधेनु ऐरावत, उच्चैःश्रवा अश्व, अप्सराएँ, कौस्तुभमणि, वारुणी, शङ्ख, कल्पवृक्ष, चन्द्रमा, लक्ष्मीजी और कदलीवृक्ष उससे प्रकट हो चुके थे। अमृत-प्राप्तिके लिये पुनः समुद्र-मन्थन होने लगा और अन्तमें हाथमें अमृत-कलश लिये भगवान् धन्वन्तरि प्रकट हुए। धन्वन्तरि साक्षात् विष्णुके अंशसे प्रकट हुए थे, इस कारण उनका स्वरूप भी मेघश्याम श्रीहरिके समान श्यामल एवं दिव्य था। चतुर्भुज धन्वन्तरि शौर्य एवं तेजसे युक्त थे।

अमृत-वितरण हो जानेपर देवराज इन्द्रने इनसे देव-वैद्यका पद स्वीकार करनेकी प्रार्थना की। इन्होंने इन्द्रके इच्छानुसार अमरावतीमें निवास करना स्वीकार कर लिया। कुछ समय बाद पृथ्वीपर अनेक व्याधियाँ फैलीं। मनुष्य विभिन्न प्रकारके रोगोंसे कष्ट पाने लगे। तब इन्द्रकी प्रार्थनासे भगवान् धन्वन्तरिने काशिराज दिवोदासके रूपमें पृथ्वीपर अवतार धारण किया। इन्हें आदिदेव, अमरवर, अमृतयोनि एवं अब्ज आदि नामोंसे सम्बोधित किया गया है।

लोक-कल्याणार्थ एवं जरा आदि व्याधियोंको नष्ट करनेके लिये स्वयं भगवान् श्रीविष्णु धन्वन्तरिके रूपमें कार्तिक कृष्ण त्रयोदशीको प्रकट हुए थे, अतः आयुर्वेद-प्रेमी भगवान् धन्वन्तरिके भक्तगण एवं आयुर्वेदके विद्वान् इसी दिन प्रतिवर्ष आरोग्य-देवताके रूपमें इनकी जयन्ती मनाते हैं।

[१३]

श्रीमोहिनी

जरा-मृत्यु-निवारिणी सुधाकी प्राप्तिके लिये देवता और दैत्योंने मिलकर क्षीरसागरका मन्थन किया। अनेक अलौकिक वस्तुओंके अनन्तर जब श्वेतवस्त्रधारी भगवान् धन्वन्तरि अमृत-कलश लिये प्रकट हुए, तब सुधा-पानके लिये आतुर असुर उनके हाथसे अमृत-घट छीनकर भाग खड़े हुए। प्रत्येक असुर अद्भुत शक्ति एवं अमरता प्रदान करनेवाला अमृत सर्वप्रथम पी लेना चाहता था। किसीको धैर्य नहीं था। किसीका विश्वास नहीं था।

'पूरा अमृत कहीं एक ही पी गया तो?' सभी सशङ्क थे। सभी चिन्तित थे। अमृत-घट प्राप्त करनेके लिये सब परस्पर छीना-झपटी और तू-तू, मैं-मैं करने लगे।

'इस छीना-झपटीमें कहीं अमृत-कलश उलट गया और अमृत गिर गया तब?'—यह प्रश्न सबके सम्मुख था; किंतु स्वार्थके सम्मुख वस्तुस्थितिका विचार कौन करता? दैत्योंसे न्याय और धर्मकी आशा व्यर्थ थी। दुर्बल देवता दूर उदास और निराश खड़े थे। कोई समाधान नहीं था।

सहसा कोलाहल शान्त हुआ। देवता और दानवोंकी दृष्टि एक स्थानपर टिक गयी। अनुपम रूप-लावण्य-सम्पन्न लोकोत्तर रमणी सामने खड़ी थी। नखसे शिखतक—उसके अङ्ग-अङ्गपर कोटि-कोटि रतियोंका अनूप रूप न्योछावर था, सर्वथा फीका था। उन मोहिनीरूपधारी श्रीभगवान्को देखकर सब-के-सब मोहित, सब-के-सब मुग्ध हो गये।

'सुन्दरि! तुम उचित निर्णय कर दो।' असुरोंने अद्भुत छटा बिखेरती त्रैलोक्यमोहिनीसे कहा। 'हम सभी कश्यपके पुत्र हैं और अमृत-प्राप्तिके लिये हमने समानरूपसे श्रम किया है। तुम इसे हम दैत्य और देवताओंमें निष्पक्ष-भावसे वितरित कर दो, जिससे हमारा यह विवाद समाप्त हो जाय।'

'आपलोग परम पुनीत महर्षि कश्यपकी संतान हैं।' मोहिनीने मन्दस्मितसे जैसे सुधा-वृष्टि कर दी। 'और मेरी जाति और कुल-शीलसे आप सर्वथा अपरिचित हैं। फिर आपलोग मेरा विश्वास कर यह दायित्व मुझे क्यों सौंप रहे हैं?'

'हमें आपपर विश्वास है।' मोहिनीरूपधारी जगत्पति श्रीभगवान्के अलौकिक सौन्दर्यसे मोहित असुरोंने अमृत-घट उनके हाथमें दे दिया।

'मेरी वितरण-पद्धतिमें यदि आपलोगोंको तनिक भी आपत्ति न हो तो मैं यह कार्य कर सकती हूँ।' अत्यन्त मोहग्रस्त करनेवाली मोहिनीने आश्वासन चाहा। 'अन्यथा यह काम आपलोग स्वयं कर लें।'

'हमें कोई आपत्ति नहीं।' मोहिनीकी मधुर वाणी सुनकर दैत्योंने कहा। 'आप निष्पक्षभावसे सुधा-वितरण करनेमें स्वतन्त्र हैं।'

देवता और दैत्य—दोनोंने एक दिन उपवास कर

स्नान किया। नूतन वस्त्र धारणकर अग्निमें आहुतियाँ दीं। ब्राह्मणोंसे स्वस्तिपाठ कराया और पूर्वाग्र कुशोंके आसनोंपर पृथक्-पृथक् पङ्क्तिमें सब बैठ गये।

अमित सौन्दर्यराशि मोहिनीने अपने सुकोमल कर-कमलोंमें अमृत-कलश उठाया। स्वर्णमय नूपुर झंकृत हो उठे। देवता और असुरोंकी दृष्टि भुवनमोहिनी मोहिनीकी ओर थी। मोहिनीने मुस्कुराते हुए दैत्योंकी ओर दृष्टिपात किया। वे आनन्दोन्मत्त हो गये।

मोहिनीरूपधारी विश्वात्मा प्रभुने दैत्योंकी ओर देखते और मुस्कुराते हुए दूरकी पङ्क्तिमें बैठे अमरोंको अमृत-पान कराना प्रारम्भ किया। अपने वचन एवं त्रैलोक्य-दुर्लभ मोहिनीकी रूपराशिसे मर्माहत असुरगण चुपचाप अपनी पारीकी प्रतीक्षा कर रहे थे। उन्हें लावण्यमयी मोहिनीकी प्रेम-प्राप्तिकी आशा थी, विश्वास था।

धैर्य-धारण न कर सकनेके कारण छाया-पुत्र राहु देवताओंके वेषमें सूर्य-चन्द्रके समीप बैठ गया। अमृत उसके कण्ठके नीचे उतर भी न पाया था कि दोनों देवताओंने इङ्गित कर दिया और दूसरे ही क्षण क्षीराब्धिशायी प्रभुके तीक्ष्णतम चक्रसे उसका मस्तक कटकर पृथ्वीपर जा गिरा।

चौंककर दानवोंने देखा तो मोहिनी शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधारी सजल मेघश्याम श्रीविष्णु बन गयी। असुरोंका मोह-भङ्ग हुआ। उन्होंने कुपित होकर शस्त्र उठाया और भयानक देवासुर-संग्राम छिड़ गया।

सम्पूर्ण सृष्टि भगवान् मायापतिकी माया है। कामके वशीभूत सभी प्रभुके उस मायारूपपर लुब्ध हैं, आकृष्ट हैं। आसुरभावसे अमरता-प्रदान करनेवाला अमृत प्राप्त होना सम्भव नहीं। वह तो करुणामय प्रभुकी चरण-शरणसे ही सम्भव है—

असदविषयमङ्घ्रिं भावगम्यं प्रपन्ना-
नमृतममरवर्यानाशयत् सिन्धुमथ्यम्।
कपटयुवतिवेषो मोहयन् यः सुरारीं-
स्तमहमुपसृतानां कामपूरं नतोऽस्मि॥
(श्रीमद्भागवत ८। १२। ४७)

'दुष्ट पुरुषोंको भगवान्‌के चरण-कमलोंकी प्राप्ति कभी हो नहीं सकती। वे तो भक्तिभावसे युक्त पुरुषको ही प्राप्त होते हैं। इसीसे उन्होंने स्त्रीका मायामय रूप धारण करके दैत्योंको मोहित किया और अपने चरण-कमलोंके शरणागत देवताओंको समुद्र-मन्थनसे निकले हुए अमृतका पान कराया। उन्हींकी बात नहीं—चाहे जो भी उनके चरणोंकी शरण ग्रहण करे, वे उसकी समस्त कामनाएँ पूर्ण कर देते हैं। मैं उन प्रभुके चरण-कमलोंमें नमस्कार करता हूँ।'

—शि० दु०

[१४]

भगवान् नृसिंह

कृतयुगकी बात है, एक बार ब्रह्माके मानस-पुत्र सनकादि, जिनकी अवस्था सदा पञ्चवर्षीय बालककी-सी ही रहती है, वैकुण्ठलोकमें जा पहुँचे। वे भगवान् विष्णुके पास जाना चाहते थे; परंतु जय-विजय नामक द्वारपालोंने उन्हें बालक समझकर भीतर जानेसे रोक दिया। तब तो ऋषियोंको क्रोध आ गया और उन्होंने शाप देते हुए कहा—'तुमलोगोंकी बुद्धि तमोगुणसे अभिभूत है, अतः तुम दोनों असुर हो जाओ। तीन जन्मोंके बाद पुनः तुम्हें इस स्थानकी प्राप्ति होगी।' ऋषि-शापवश वे ही दोनों दितिके गर्भसे हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्षके रूपमें उत्पन्न हुए। हिरण्याक्षको तो भगवान् विष्णुने वराहावतार धारण करके मार डाला। भाईके वधसे संतप्त हो हिरण्यकशिपु दैत्यों और दानवोंको अत्याचार करनेके लिये आज्ञा देकर स्वयं महेन्द्राचलपर चला गया। उसके हृदयमें वैरकी आग धधक रही थी, अतः वह विष्णुसे बदला लेनेके विचारसे घोर तपस्यामें संलग्न हो गया।

इधर हिरण्यकशिपुको तपस्या-निरत देखकर इन्द्रने दैत्योंपर चढ़ाई कर दी। दैत्यगण अनाथ होनेके कारण भागकर रसातलमें चले गये। इन्द्रने राजमहलमें प्रवेश करके राजरानी कयाधूको बंदी बना लिया। उस समय वह गर्भवती थी, इसलिये उसे वे अमरावतीकी ओर ले जा रहे थे। मार्गमें उनकी देवर्षि नारदसे भेंट हो गयी। नारदजीने कहा—'इन्द्र! इसे कहाँ ले जा रहे हो?' इन्द्रने कहा—'देवर्षे! इसके गर्भमें हिरण्यकशिपुका अंश है, उसे मारकर इसे छोड़ दूँगा।' यह सुनकर नारदजीने कहा—'देवराज! इसके गर्भमें बहुत बड़ा भगवद्भक्त है, जिसे मारना तुम्हारी शक्तिके बाहर है; अतः इसे छोड़ दो।' नारदजीके कथनका गौरव मानते हुए इन्द्र कयाधूको छोड़कर अमरावती चले गये। नारदजी कयाधूको अपने आश्रमपर ले आये और

उससे बोले—'बेटी ! तुम यहाँ तबतक सुखपूर्वक निवास करो, जबतक तुम्हारा पति तपस्यासे लौटकर नहीं आ जाता ।' समय-समयपर नारदजी गर्भस्थ बालकको लक्ष्य करके कयाधूको तत्त्वज्ञानका उपदेश देते रहते थे । यही बालक जन्म लेनेपर परम भागवत प्रह्लाद हुआ ।

जब हिरण्यकशिपुकी तपस्यासे त्रिलोकी संतप्त हो उठी और देवताओंमें खलबली मच गयी, तब वे सब संगठित होकर ब्रह्माकी शरणमें गये और उनसे हिरण्यकशिपुको तपसे विरत करनेकी प्रार्थना की । ब्रह्मा हंसपर आरूढ़ होकर वहाँ आये, जहाँ हिरण्यकशिपु तपस्या कर रहा था । उसके शरीरको चींटियाँ चाट गयी थीं, केवल अस्थिगत प्राण अवशेष थे और एक बाँबीका आकार दीख पड़ता था । ब्रह्माने अपने कमण्डलुका जल उस बाँबीपर छिड़क दिया । उसमेंसे हिरण्यकशिपु अपने असली रूपमें निकल आया । तब ब्रह्माने कहा—'बेटा ! ऐसी तपस्या तो आजतक न किसीने की है और न आगे कोई करेगा ही । अब तुम अपना अभीष्ट वर माँग लो ।' यह सुनकर हिरण्यकशिपु बोला—'प्रभो ! यदि आप मुझे अभीष्ट वर देना चाहते हैं तो ऐसा कर दीजिये कि आपके बनाये हुए किसी प्राणीसे—चाहे वह मनुष्य हो या पशु, प्राणी हो या अप्राणी, देवता हो या दैत्य अथवा नागादि—किसीसे भी मेरी मृत्यु न हो । भीतर-बाहर, दिनमें-रात्रिमें, आपके बनाये प्राणियोंके अतिरिक्त और भी किसी जीवसे, अस्त्र-शस्त्रसे, पृथ्वी या आकाशमें—कहीं भी मेरी मृत्यु न हो । युद्धमें कोई मेरा सामना न कर सके । मैं समस्त प्राणियोंका एकच्छत्र सम्राट् हो जाऊँ । देवताओंमें आप-जैसी महिमा मेरी भी हो और तपस्वियों एवं योगियोंके समान अक्षय ऐश्वर्य मुझे भी दीजिये ।'

ब्रह्मा उसकी तपस्यासे प्रसन्न तो थे ही, अतः उसे मुँहमाँगा वरदान देकर वहीं अन्तर्धान हो गये । हिरण्यकशिपु अपनी राजधानीमें चला आया । कयाधू भी नारदजीके आश्रमसे राजमहलमें आ गयी । उसके गर्भसे भागवत-रत्न प्रह्लाद उत्पन्न हुए । हिरण्यकशिपुके चार पुत्र थे । प्रह्लाद उनमें सबसे छोटे थे, अतः उनपर हिरण्यकशिपुका विशेष स्नेह था । उसने अपने गुरुपुत्र षण्ड और अमर्कको बुलवाया और शिक्षा देनेके लिये प्रह्लादको उनके हवाले कर दिया । प्रह्लाद गुरु-गृहमें शिक्षा पाने लगे । कुशाग्रबुद्धि होनेके कारण वे गुरु-प्रदत्त शिक्षा शीघ्र ही ग्रहण कर लेते थे । साथ ही उनकी भगवद्भक्ति भी बढ़ती गयी । वे असुर-बालकोंको भी भगवद्भक्तिकी शिक्षा देते थे । एक दिन हिरण्यकशिपुने बड़े प्रेमसे प्रह्लादको गोदमें बैठाकर पुचकारते हुए कहा—'बेटा ! अपनी पढ़ी हुई अच्छी-से-अच्छी बात सुनाओ ।' तब प्रह्लादने भगवद्भक्तिकी ही प्रशंसा की । यह सुनते ही हिरण्यकशिपु क्रोधसे आगबबूला हो गया और उसने प्रह्लादको अपनी गोदसे उठाकर भूमिपर पटक दिया तथा असुरोंको उन्हें मार डालनेकी आज्ञा दे दी । फिर तो प्रह्लादका काम तमाम कर देनेके लिये असुरोंने उनपर विभिन्न अस्त्रोंका प्रयोग किया, परंतु वे सभी निष्फल हो गये । तत्पश्चात् उन्हें हाथियोंसे कुचलवाया, विषधर सर्पोंसे डँसवाया, पुरोहितोंसे कृत्या राक्षसी उत्पन्न करायी, पहाड़की चोटीसे नीचे डलवा दिया, शम्बरासुरसे अनेकों प्रकारकी मायाका प्रयोग करवाया, अँधेरी कोठरियोंमें बंद करा दिया, विष पिलाया, भोजन बंद कर दिया, बर्फीली जगह, दहकती हुई आग और समुद्रमें डलवाया, आँधीमें छोड़ दिया तथा पर्वतके नीचे दबवा दिया; परंतु किसी भी उपायसे प्रह्लादका बाल भी बाँका न हुआ ।

एक दिन गुरु-पुत्रोंके शिकायत करनेपर हिरण्यकशिपुने प्रह्लादको अपने निकट बुलाया और उन्हें तरह-तरहसे डराने-धमकाने लगा । फिर उसने कहा—'रे दुष्ट ! जिसके बलपर तू ऐसी बहकी-बहकी बातें बोल रहा है, तेरा वह ईश्वर कहाँ है ? वह यदि सर्वत्र है तो इस खंभेमें क्यों नहीं दिखायी देता ?' तब प्रह्लादने कहा—'मुझे तो वे प्रभु खंभेमें भी दीख रहे हैं ।' यह सुनकर जब हिरण्यकशिपु क्रोधके मारे अपनेको सँभाल न सका, तब हाथमें खड्ग लेकर सिंहासनसे कूद पड़ा और बड़े जोरसे उस खंभेमें एक घूँसा मारा । उसी समय उस खंभेसे बड़ा भयंकर शब्द हुआ । ऐसा जान पड़ता था, मानो ब्रह्माण्ड फट गया हो । उस शब्दको सुनकर हिरण्यकशिपु घबराया हुआ-सा इधर-उधर देखने लगा कि यह शब्द करनेवाला कौन है; परंतु उसे सभाके भीतर कुछ भी दिखायी न पड़ा । इतनेमें ही वहाँ बड़ी अलौकिक घटना घटी ।

सत्यं विधातुं निजभृत्यभाषितं
व्याप्तिं च भूतेष्वखिलेषु चात्मनः ।
अदृश्यतात्यद्भुतरूपमुद्वहन्
स्तम्भे सभायां न मृगं न मानुषम् ॥

(श्रीमद्भागवत ७ । ८ । १८)

'इसी समय अपने भृत्य प्रह्लादकी वाणी सत्य करने तथा समस्त भूतोंमें अपनी व्यापकता दिखानेके लिये सभाके भीतर उसी खंभेमेंसे अत्यन्त अद्भुत रूप धारण करके भगवान् प्रकट हुए। वह रूप न तो समूचा सिंहका ही था और न मनुष्यका ही।'

जिस समय हिरण्यकशिपु शब्द करनेवालेकी खोज कर रहा था, उसी समय उसने खंभेके भीतरसे निकलते हुए उस अद्भुत प्राणीको देखा। वह सोचने लगा—'अहो! यह न तो मनुष्य है न पशु, फिर यह नृसिंहके रूपमें कौन-सा अलौकिक जीव है?' जिस समय हिरण्यकशिपु इस उधेड़-बुनमें लगा हुआ था, उसी समय उसके ठीक सामने ही भगवान् नृसिंह खड़े हो गये। उनका रूप बड़ा भयावना था—

प्रतप्तचामीकरचण्डलोचनं स्फुरत्सटाकेसरजृम्भिताननम् ॥
करालदंष्ट्रं करवालचञ्चलक्षुरान्तजिह्वं भ्रुकुटीमुखोल्बणम् ।
स्तब्धोर्ध्वकर्णं गिरिकन्दराद्भुतव्यात्तास्यनासं हनुभेदभीषणम् ॥
दिविस्पृशत्कायमदीर्घपीवरग्रीवोरुवक्षःस्थलमल्पमध्यमम् ।
चन्द्रांशुगौरैश्छुरितं तनूरुहैर्विष्वग्भुजानीकशतं नखायुधम् ॥
(श्रीमद्भागवत ७ । ८ । २०—२२)

'उनकी तपाये हुए सोनेके समान पीली-पीली भयावनी आँखें थीं; चमचमाते हुए गरदनके तथा मुँहके बालोंसे उनका चेहरा भरा-भरा दीख रहा था; उनकी दाढ़ें बड़ी विकराल थीं; तलवारके समान लपलपाती हुई तथा छुरेकी धारके सदृश तीखी उनकी जीभ थी; टेढ़ी भौंहोंके कारण उनका मुख और भी भीषण था; उनके कान निश्चल एवं ऊपरकी ओर उठे हुए थे; उनकी फूली हुई नासिका और खुला हुआ मुख पर्वतकी गुफाके सदृश अद्भुत जान पड़ता था; फटे हुए जबड़ोंके कारण उसकी भीषणता बहुत बढ़ गयी थी। उनका विशाल शरीर स्वर्गका स्पर्श कर रहा था; गरदन कुछ नाटी और मोटी थी; छाती चौड़ी और कमर पतली थी; चन्द्रमाकी किरणोंके समान सफेद रोएँ सारे शरीरपर चमक रहे थे; चारों ओर सैकड़ों भुजाएँ फैली हुई थीं, जिनके बड़े-बड़े नख आयुधका काम दे रहे थे।' भयके मारे भगवान् नृसिंहके निकट जानेका साहस किसीको नहीं होता था। भगवान्‌ने चक्र आदि आयुधोंद्वारा सारे दैत्य-दानवोंको खदेड़ दिया।

तत्पश्चात् हिरण्यकशिपु सिंहनाद करता हुआ हाथमें गदा लेकर नृसिंहभगवान्‌पर टूट पड़ा। तब भगवान् भी कुछ देरतक उसके साथ युद्धलीला करते रहे। अन्तमें उन्होंने बड़ा भीषण अट्टहास किया, जिससे हिरण्यकशिपुकी आँखें बंद हो गयीं। तब भगवान्‌ने झपटकर उसे उसी प्रकार दबोच लिया, जैसे साँप चूहेको पकड़ लेता है। फिर उसे सभाके दरवाजेपर ले जाकर अपनी जाँघोंपर गिरा लिया और खेल-ही-खेलमें अपने नखोंसे उसके कलेजेको फाड़ डाला। उस समय उनकी क्रोधसे भरी आँखोंकी ओर देखा नहीं जा सकता था। वे अपनी लपलपाती हुई जीभसे दोनों जबड़ोंको चाट रहे थे। उनके मुख और गरदनके बालोंपर खूनके छींटे झलक रहे थे। उन्होंने अपने तीखे नखोंसे हिरण्यकशिपुके कलेजेको फाड़कर उसे पृथ्वीपर पटक दिया। फिर सहायतार्थ आये हुए सभी दैत्योंको उन्होंने खदेड़-खदेड़कर मार डाला। उस समय भगवान् नृसिंहके गरदनके बालोंके झटकेसे बादल तितर-बितर हो जा रहे थे। उनके नेत्रोंकी ज्वालासे सूर्य आदि ग्रहोंका तेज फीका पड़ गया। उनके श्वासके धक्केसे समुद्र क्षुब्ध हो उठे। उनके सिंहनादसे भयभीत होकर दिग्गज चिग्घाड़ने लगे। उनकी गरदनके बालोंसे टकराकर देवताओंके विमान अस्त-व्यस्त हो गये। स्वर्ग डगमगा गया, पैरोंकी धमकसे भूकम्प आ गया, वेगसे पर्वत उड़ने लगे, तेजकी चकाचौंधसे दिशाओंका दीखना बंद हो गया। उनका क्रोध बढ़ता जा रहा था। वे हिरण्यकशिपुकी राजसभामें ऊँचे सिंहासनपर विराजमान हो गये। उनकी क्रोधपूर्ण भयंकर मुखाकृतिको देखकर किसीका भी साहस नहीं हुआ, जो निकट जाकर उन्हें प्रसन्न करनेकी चेष्टा करे।

उधर स्वर्गमें देवाङ्गनाओंको जब यह समाचार मिला कि भगवान्‌के हाथों हिरण्यकशिपुकी जीवन-लीला समाप्त हो गयी, तब वे आनन्दसे खिल उठीं और भगवान्‌पर बारंबार पुष्पोंकी वर्षा करने लगीं। इसी समय ब्रह्मा, इन्द्र, शंकर आदि देवगण, ऋषि, पितर, सिद्ध, विद्याधर, महानाग, मनु, प्रजापति, गन्धर्व, अप्सराएँ, चारण, यक्ष, किम्पुरुष, वेताल, किंनर और भगवान्‌के सभी पार्षद उनके पास आये और थोड़ी दूरपर स्थित होकर सभीने अञ्जलि बाँधकर अलग-अलग नृसिंहभगवान्‌की स्तुति की। इस प्रकार स्तवन करनेपर भी जब भगवान्‌का क्रोध शान्त नहीं हुआ, तब देवताओंने लक्ष्मीजीको उनके निकट भेजा; परंतु भगवान्‌के उस उग्र रूपको देखकर वे भी भयभीत हो गयीं और उनके पासतक न जा

सकीं। तब ब्रह्माने प्रह्लादसे कहा—'बेटा! तुम्हारे पितापर ही तो भगवान् कुपित हुए थे। अब तुम्हीं जाकर उन्हें शान्त करो।' प्रह्लाद 'जो आज्ञा' कहकर भगवान्के निकट जा, हाथ जोड़ पृथ्वीपर साष्टाङ्ग लोट गये। अपने चरणोंमें एक नन्हेंसे बालकको पड़ा हुआ देखकर भगवान् दयार्द्र हो गये। उन्होंने प्रह्लादको उठाकर उनके सिरपर अपना कर-कमल रख दिया। फिर तो प्रह्लादके बचे-खुचे सभी अशुभ संस्कार नष्ट हो गये। तत्काल उन्हें परमतत्त्वका साक्षात्कार हो गया। उन्होंने भावपूर्ण हृदय तथा निर्निमेष नयनोंसे भगवान्को निहारते हुए प्रेम-गद्गद वाणीसे स्तुति की।

प्रह्लादद्वारा की गयी स्तुतिसे नृसिंहभगवान् संतुष्ट हो गये और उनका क्रोध जाता रहा। तब वे प्रेमसे भरकर प्रसन्नतापूर्वक बोले—

प्रह्लाद भद्र भद्रं ते प्रीतोऽहं तेऽसुरोत्तम।
वरं वृणीष्वाभिमतं कामपूरोऽस्म्यहं नृणाम्॥
मामप्रीणत आयुष्मन् दर्शनं दुर्लभं हि मे।
दृष्ट्वा मां न पुनर्जन्तुरात्मानं तप्तुमर्हति॥
प्रीणन्ति ह्यथ मां धीराः सर्वभावेन साधवः।
श्रेयस्कामा महाभागाः सर्वासामाशिषां पतिम्॥

(श्रीमद्भागवत ७। ९। ५२-५४)

'भद्र प्रह्लाद! तुम्हारा कल्याण हो। असुरोत्तम! मैं तुमपर अत्यन्त प्रसन्न हूँ। तुम्हारी जो अभिलाषा हो, माँग लो; मैं मनुष्योंकी कामना पूर्ण करनेवाला हूँ। आयुष्मन्! जो मुझे प्रसन्न नहीं कर लेता, उसके लिये मेरा दर्शन दुर्लभ है। परंतु जब मेरे दर्शन हो जाते हैं, तब प्राणीके हृदयमें किसी प्रकारकी जलन नहीं रह जाती। मैं समस्त मनोरथोंको पूर्ण करनेवाला हूँ, इसीलिये सभी कल्याणकामी परम भाग्यवान् साधुजन जितेन्द्रिय होकर अपनी समस्त वृत्तियोंसे मुझे प्रसन्न करनेका प्रयत्न करते हैं।'

तब प्रह्लादने कहा—'मेरे वरदानिशिरोमणि स्वामी! यदि आप मुझे मुँहमाँगा वरदान देना चाहते हैं तो ऐसी कृपा कर दीजिये कि मेरे हृदयमें कभी किसी कामनाका बीज अङ्कुरित ही न हो।'

यह सुनकर नृसिंहभगवान्ने कहा—'वत्स प्रह्लाद! तुम्हारे जैसे एकान्तप्रेमी भक्तको यद्यपि किसी वस्तुकी अभिलाषा नहीं रहती, तथापि तुम केवल एक मन्वन्तरतक मेरी प्रसन्नताके लिये इस लोकमें दैत्याधिपतियोंके समस्त भोग स्वीकार कर लो। यज्ञभोक्ता ईश्वरके रूपमें मैं ही समस्त प्राणियोंके हृदयमें विराजमान हूँ, अतः तुम मुझे अपने हृदयमें देखते रहना और मेरी लीला-कथाएँ सुनते रहना। समस्त कर्मोंके द्वारा मेरी ही आराधना करके अपने प्रारब्ध-कर्मका क्षय कर देना। भोगके द्वारा पुण्यकर्मोंके फल और निष्काम पुण्यकर्मोंके द्वारा पापका नाश करते हुए समयपर शरीरका त्याग करके समस्त बन्धनोंसे मुक्त होकर तुम मेरे पास आ जाओगे। देवलोकमें भी लोग तुम्हारी विशुद्ध कीर्तिका गान करेंगे। इतना ही नहीं, जो भी हमारा और तुम्हारा स्मरण करेगा, वह समस्त कर्म-बन्धनोंसे मुक्त हो जायगा।'

तदनन्तर प्रह्लादने कहा—'दीनबन्धो! मेरी एक प्रार्थना यह है कि मेरे पिताने आपको भ्रातृहन्ता समझकर आपसे और आपका भक्त जानकर मुझसे जो द्रोह किया है, उस दुस्तर दोषसे वे आपकी कृपासे मुक्त हो जायँ।'

तब नृसिंहभगवान्ने हिरण्यकशिपुकी पवित्रताको प्रमाणित करते हुए प्रह्लादको उसकी अन्त्येष्टि क्रिया करनेकी आज्ञा दी और स्वयं ब्रह्माद्वारा की गयी स्तुतिको सुनकर उन्हें वैसा वर देनेसे मना करते हुए वे वहीं अन्तर्धान हो गये।

—रा० शु०

[१५]

भगवान् वामन

पूर्वकालकी बात है। देवताओं और दैत्योंमें युद्ध हुआ। देवता पराजित हुए। दैत्योंने स्वर्गपर अधिकार कर लिया।

इस प्रकार दैत्येश्वर बलिका आधिपत्य देखकर देवराज इन्द्र अपनी माता अदितिके सुन्दर आश्रमपर, जो सुमेरुगिरिके शिखरपर विराजमान था, पहुँचे। वहाँ दानवोंसे पराजित हुए उन सभी देवताओंने माता अदितिके निकट जाकर उनके चरणोंमें प्रणाम किया और अपनी सारी कष्ट-कहानी कह सुनायी। फिर माता अदितिके आदेशानुसार इन्द्रादि देवगण परम तपस्वी मरीचिनन्दन कश्यपके समीप जा, उनके चरणोंमें प्रणाम करके हाथ जोड़कर बोले—'पिताजी! बलशाली दैत्यराज बलि युद्धमें हमारे लिये अजेय हो गया है; इसलिये कोई ऐसा उपाय कीजिये, जो हम देवताओंके लिये श्रेयस्कर और पुष्टिवर्धक हो।'

पुत्रोंकी बात सुनकर महर्षि कश्यपने देवताओंको साथ लिया और वे ब्रह्माकी परमोत्कृष्ट विशाल सभामें पहुँचे।

ब्रह्माकी उस सर्वकामप्रदायिनी सभामें प्रवेश करके धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ कश्यप तथा उनके पुत्र देवराज इन्द्र और उन सभी देवताओंने पद्मासनपर विराजमान ब्रह्माका दर्शन किया और ब्रह्मर्षियोंके साथ उनके चरणोंमें सिर झुकाकर प्रणाम किया। ब्रह्माके चरणोंका स्पर्श करते ही वे सभी पापोंसे मुक्त हो गये। तब कश्यपके साथ उन सभी देवताओं-को आया हुआ देखकर देवेश्वर ब्रह्माने उन्हें उत्तर दिशामें स्थित क्षीरसागरके उत्तर तटपर जाकर कठिन तप करनेकी आज्ञा दी।

पितामहकी आज्ञा स्वीकार करके देवताओंने उन्हें सिर झुकाकर प्रणाम किया और फिर वे श्वेतद्वीपमें पहुँचनेके उद्देश्यसे उत्तर दिशाकी ओर चल पड़े। थोड़ी ही देरमें वे सरित्पति क्षीराब्धिके तटपर पहुँच गये। वहाँसे वे सातों समुद्रों, काननोंसहित पर्वतों तथा अनेकों पुण्यसलिला नदियोंको लाँघते हुए पृथ्वीके अन्तमें जा पहुँचे। वहाँ चारों ओर अन्धकार-ही-अन्धकार व्याप्त था। वहाँ महर्षि कश्यप एक निष्कण्टक स्थानपर पहुँचकर ब्रह्मचर्य एवं मौनपूर्वक वीरासनसे बैठ गये और उन्होंने सहस्र-वार्षिक दिव्य व्रतकी दीक्षा ले ली; क्योंकि उन्हें सहस्रनेत्रधारी योगाधिपति भगवान् नारायणको प्रसन्न करना था। इसी प्रकार सभी देवता क्रमशः तपस्यामें निरत हो गये। तदनन्तर महर्षि कश्यपने नारायणको रिझानेके लिये वेदोक्त 'परमस्तव' नामक स्तोत्रद्वारा उनकी स्तुति की।

इस प्रकार मरीचिपुत्र द्विजवर कश्यपद्वारा किये गये स्तवनको सुनकर भगवान् नारायणका मन प्रसन्न हो गया और उन्होंने गम्भीर वाणीमें कहा—'देवगण! आपका मङ्गल हो। आप कोई अभीष्ट वर माँग लें। मैं आपलोगोंको वर देना चाहता हूँ।'

कश्यपजीने कहा—'सुरश्रेष्ठ! यदि आप हमपर प्रसन्न हैं तो मैं सभी लोगोंके एकमतसे यह याचना कर रहा हूँ कि आप स्वयं अदितिके गर्भसे इन्द्रके छोटे भाईके रूपमें उत्पन्न हों।' उधर वरार्थिनी देवमाता अदितिने भी वरदायक भगवान्‌से पुत्रके लिये ही प्रार्थना की। साथ ही सभी देवताओंने भी एक साथ निवेदन किया कि 'महेश्वर! आप हम सारे देवताओंके इसी प्रकार त्राता, भर्ता, दाता और आश्रय बनें।'

भगवान् विष्णुने उन देवताओंसे कहा—"देवगण! आप-लोगोंके जितने भी शत्रु होंगे, वे सभी मिलकर मेरे सामने क्षणमात्र भी नहीं ठहर सकते। मैं यज्ञभागके अग्रभोजी सारे असुरोंका संहार करके सभी देवताओंको 'हव्याशी' तथा पितृगणोंको 'कव्याशी' बनाऊँगा। सुरश्रेष्ठगण! आपलोग जिस मार्गसे आये हैं, उसी मार्गसे लौट जायँ।"

प्रभावशाली भगवान् विष्णुके यों कहनेपर उन सभी देवताओंने कश्यप और अदितिको आगे कर भगवान् विष्णुकी पूजा की और फिर उन्हें प्रणाम करके वे कश्यपाश्रमकी ओर चल पड़े। वहाँ पहुँचकर उन्होंने अदितिको समझा-बुझाकर घोर तपस्याके लिये राजी कर लिया। उस समय महर्षियोंको दैत्योंद्वारा तिरस्कृत होते देखकर अदितिके मनमें महान् निर्वेद उत्पन्न हुआ। वे सोचने लगीं कि 'मेरा पुत्र उत्पन्न करना ही व्यर्थ हो गया।' इसलिये वे इन्द्रियोंको वशमें करके शरणागतवत्सल भगवान् विष्णुकी आराधनामें तत्पर हो गयीं। उस समय वायु ही उनका आहार था। वे उन सर्वव्यापी भगवान्‌की स्तुति करने लगीं।

अदितिके द्वारा किये गये स्तवनसे प्रसन्न होकर भगवान् विष्णु सभी प्राणियोंसे अलक्षित रहते हुए अदितिके सम्मुख प्रकट हो गये और बोले—

'महाभागा अदिति! तुम्हारे हृदयमें जिस वर-प्राप्तिकी अभिलाषा है, वह मुझे ज्ञात है। धर्मज्ञे! तुम जिन-जिन वरोंको प्राप्त करनेकी इच्छा रखती हो, वे सभी मेरी कृपासे निस्संदेह तुम्हें मिल जायँगे। मेरा दर्शन कभी निष्फल नहीं होता।'

अदितिने कहा—"भक्तवत्सल प्रभो! यदि आप मेरी भक्तिसे प्रसन्न हैं तो मुझे यह वरदान दीजिये कि 'मेरा पुत्र इन्द्र त्रिलोकीका अधिपति हो जाय और असुरोंने जो उसका राज्य तथा यज्ञभाग छीन लिया है, वह सब आपकी कृपासे मेरे पुत्रको प्राप्त हो जाय।' केशव! मेरे पुत्रका राज्य चला गया, इसका मुझे लेशमात्र भी दुःख नहीं है; परंतु यज्ञभागका छिन जाना मेरे हृदयमें शूल-सा चुभ रहा है।"

यह सुनकर भगवान् विष्णु वरदान देते हुए बोले—

कृतः प्रसादो हि मया तव देवि यथेप्सितम्।
स्वांशेन चैव ते गर्भे सम्भविष्यामि कश्यपात्॥

तव गर्भसमुद्भूतस्ततस्ते ये सुरारयः ।
तानहं निहनिष्यामि निर्वृता भव नन्दिनि ॥
(वामनपुराण २८ । १०-११)

'देवि ! तुम्हारी कामनाके अनुसार ही मैं कार्य करूँगा । मैं महर्षि कश्यपके द्वारा अपने अंशसे तुम्हारे गर्भमें प्रवेश करूँगा । इस प्रकार तुम्हारे गर्भसे उत्पन्न होनेके पश्चात् जो कोई भी देवताओंके शत्रु होंगे, उन सबका मैं संहार करूँगा । नन्दिनि ! तुम शान्ति धारण करो ।'

अदितिसे यों कहकर भगवान् अन्तर्हित हो गये । उस समय अदितिको यह जानकर कि स्वयं भगवान् मेरे गर्भसे जन्म लेंगे, महान् हर्ष हुआ । वह बड़े प्रेमसे अपने पतिदेव कश्यपकी सेवामें जुट गयीं । कश्यपजी भी तत्त्वदर्शी थे । उन्होंने समाधियोगके द्वारा यह जान लिया कि भगवान्का अंश उनके अंदर प्रविष्ट हो गया है । तब जैसे वायु लकड़ीमें अग्निका आधान करती है, उसी प्रकार कश्यपजीने समाहित चित्तसे अपनी तपस्याद्वारा चिरसंचित वीर्यका अदितिमें आधान किया । इस प्रकार भगवान् विष्णु अदितिके गर्भमें प्रविष्ट होकर क्रमशः बढ़ने लगे ।

जब ब्रह्माजीको यह बात ज्ञात हुई कि अदितिके गर्भमें स्वयं अविनाशी भगवान् आये हैं, तब उन्होंने भगवान्के रहस्यमय नामोंसे उनकी स्तुति की ।

समय बीतते देर नहीं लगती । अन्ततोगत्वा दसवें मासमें भगवान्का प्राकट्य-काल उपस्थित हुआ । उस समय चन्द्रमा श्रवणनक्षत्रपर थे । भाद्रपदमासके शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथि थी । अभिजित् मुहूर्त्त चल रहा था । सभी नक्षत्र और तारे मङ्गलकी सूचना दे रहे थे । ऐसी शुभ वेलामें भगवान् अदितिके सामने प्रकट हुए । उस समय उनका अलौकिक रूप था—

चतुर्भुजः शङ्खगदाब्जचक्रः पिशङ्गवासा नलिनायतेक्षणः ॥
श्यामावदातो झषराजकुण्डलत्विषोल्लसच्छ्रीवदनाम्बुजः पुमान् ।
श्रीवत्सवक्षा बलयाङ्गदोल्लसत्किरीटकाञ्चीगुणचारुनूपुरः ॥
मधुव्रतव्रातविघुष्टया स्वया विराजितः श्रीवनमालया हरिः ।
प्रजापतेर्वेश्मतमः स्वरोचिषा विनाशयन् कण्ठनिविष्टकौस्तुभः ॥
(श्रीमद्भागवत ८ । १८ । १-३)

'भगवान्के चार भुजाएँ थीं, जिनमें शङ्ख, गदा, कमल और चक्र सुशोभित थे । शरीरपर पीताम्बर दमक रहा था । कमल-पुष्पके समान विशाल एवं सुन्दर नेत्र थे । उज्ज्वल श्यामवर्णका शरीर था । मकराकृति कुण्डलोंकी कान्तिसे मुख-कमलकी शोभा विशेषरूपसे उल्लसित हो रही थी । वक्षःस्थलमें श्रीवत्सका चिह्न, हाथोंमें कंगन, भुजाओंमें बाजूबंद, मस्तकपर किरीट, कमरमें करधनीकी लड़ियाँ और पैरोंमें सुन्दर नूपुर शोभा दे रहे थे । गलेमें उनकी अपनी वनमाला विराजमान थी, जिसके चारों ओर झुंड-के-झुंड भौंरे गुंजार कर रहे थे । कण्ठ कौस्तुभमणिसे विभूषित था । वे अपनी प्रभासे प्रजापति कश्यपके घरके अन्धकारका विनाश कर रहे थे ।'

भगवान्के जन्म लेनेके समय दिशाएँ निर्मल हो गयीं । नदी और सरोवरोंका जल स्वच्छ हो गया । प्रजाके हृदयमें आनन्दकी बाढ़ आ गयी । सब ऋतुएँ एक साथ अपना-अपना गुण प्रकट करने लगीं । स्वर्गलोक, अन्तरिक्ष, पृथ्वी, देवता, गौ, द्विज और पर्वत—इन सबके हृदयमें हर्षका संचार हो गया । सुखदायिनी शीतल-मन्द-सुगन्ध वायु चलने लगी । आकाश निर्मल हो गया । सभी प्राणियोंकी बुद्धि धर्ममें प्रवृत्त हो गयी । आकाशमें शङ्ख, ढोल, मृदङ्ग, डफ और नगारे बजने लगे । दुन्दुभियोंकी तुमुल ध्वनि होने लगी । अप्सराएँ प्रसन्न होकर नाचने लगीं । श्रेष्ठ गन्धर्व गाने लगे । मुनि, देवता, मनु, पितर और अग्नि स्तुति करने लगे । सिद्ध, विद्याधर, किम्पुरुष, किंनर, चारण, यक्ष, राक्षस, पक्षी, मुख्य-मुख्य नागगण और देवताओंके अनुचर नाचने-गाने और भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे तथा उन लोगोंने पुष्प-वृष्टि करके उस आश्रमको ढक दिया । लोकस्रष्टा ब्रह्मा भी भावाविष्ट होकर स्तुति करने लगे ।

श्रद्धा-भक्तिपूर्ण स्तुति किये जानेपर भगवान्ने चतुर्भुज रूपका परित्याग करके अपनेको वामनाकृतिमें परिवर्तित कर लिया । यह देखकर माता अदितिको महान् हर्ष हुआ । तब कश्यपजीने जातकर्म आदि संस्कार किये । तदनन्तर भगवान् वामनद्वारा अपने उपनयनकी इच्छा व्यक्त किये जानेपर ब्रह्मर्षियोंने उनका उपनयन-संस्कार सम्पन्न किया । उस समय वामन बटुको महर्षि पुलहने यज्ञोपवीत, पुलस्त्यने दो श्वेत वस्त्र, अगस्त्यने मृगचर्म, भरद्वाजने मेखला, ब्रह्मपुत्र मरीचिने पलाशदण्ड, वसिष्ठने अक्षसूत्र, अङ्गिराने कुशका बना हुआ वस्त्र, सूर्यने छत्र, भृगुने एक जोड़ी खड़ाऊँ और बृहस्पतिने कमण्डलु प्रदान किया । यों उपनीत

होनेके पश्चात् वामनने अङ्गोंसहित वेदों और शास्त्रोंका अध्ययन करके एक ही मासमें उनमें निपुणता प्राप्त कर ली। तब उन्होंने महर्षि भरद्वाजसे कहा—

ब्रह्मन् व्रजामि देशाग्र्यं कुरुक्षेत्रं महोदयम्।
तत्र दैत्यपतेः पुण्यो हयमेधः प्रवर्तते॥
(वामनपुराण ८९। ५२)

'ब्रह्मन्! मैं महोदय (कान्यकुब्ज) मण्डलके अन्तर्गत परम पवित्र कुरुक्षेत्रमें जाना चाहता हूँ, वहाँ दैत्यराज बलिका पवित्र अश्वमेध यज्ञ हो रहा है, उसके लिये मुझे आज्ञा दीजिये।'

यह सुनकर महर्षिने कहा—'प्रभो! मैं इस विषयमें आपको आज्ञा नहीं दे सकता। अपनी इच्छासे आप जायँ या रहें, परंतु हमलोग अब शीघ्र ही यहाँसे बलिके यज्ञमें जायँगे।' तब भगवान् वामन ब्रह्मचारीके वेषमें छत्र-दण्ड-कमण्डलु आदिसे सुसज्जित होकर दैत्यराज बलिके यज्ञमें पहुँचनेके लिये कुरुक्षेत्रकी ओर चले। उस समय देवगुरु बृहस्पति उनके आगे-आगे मार्ग दिखाते चलते थे। उनके पैर रखनेसे पृथ्वीमें गड्ढे हो जाते थे। समुद्र विक्षुब्ध हो उठे। पृथ्वी काँपने लगी। इस प्रकार वे ब्रह्मर्षियोंके साथ आगे बढ़ रहे थे।

उधर दैत्यगुरु शुक्राचार्यने अमिततेजस्वी राजा बलिको विधिपूर्वक अश्वमेध यज्ञके लिये दीक्षित कर रखा था। दैत्यराज बलि श्वेत वस्त्र धारण किये हुए थे और श्वेत पुष्पोंकी माला तथा श्वेत चन्दनसे विभूषित थे। उनकी पीठपर मोरपंखसे चिह्नित मृगचर्म बँधा हुआ था। वे हयग्रीव, क्षुर, मय और बाणासुर आदि सदस्योंसे घिरे हुए बैठे थे। उनकी पत्नी ऋषिकन्या विन्ध्यावली भी, जो सहस्रों नारियोंमें प्रधान थी, यज्ञकर्ममें दीक्षित थी। शुक्राचार्यने शुभलक्षणसम्पन्न श्वेत वर्णवाले यज्ञिय अश्वको पृथ्वीपर विचरनेके लिये छोड़ दिया था और तारकाक्ष उसकी रक्षामें नियुक्त था। इस प्रकार सुचारुरूपसे यज्ञ चल रहा था। इतनेमें ही पृथ्वी काँपने लगी। समुद्रोंमें ज्वार-भाटा उठने लगा। दिशाएँ क्षुभित हो गयीं। असुरोंने यज्ञभाग ग्रहण करना छोड़ दिया। यह देखकर बलिने शुक्राचार्यजीसे पूछा—'गुरुदेव! सहसा ये जो उत्पात उठ खड़े हुए हैं, इसका क्या कारण है?'

तब वेदज्ञश्रेष्ठ महाबुद्धिमान् शुक्राचार्यजी दीर्घकालतक ध्यान करनेके बाद कहने लगे—'दानवश्रेष्ठ! जगद्योनि सनातन परमात्मा श्रीविष्णु वामनरूपसे कश्यपके घरमें अवतीर्ण हुए हैं। निश्चय ही वे तुम्हारे यज्ञमें आ रहे हैं। उन्हींके पाद-प्रक्षेपसे यह पृथ्वी चलायमान हो गयी है, पर्वत काँप रहे हैं और सागर क्षुब्ध हो उठे हैं। पृथ्वी उन जगदीश्वरको वहन करनेमें समर्थ नहीं है। उन्होंने ही देव, असुर, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और पन्नगोंसहित समूची पृथ्वीको धारण कर रखा है तथा वे ही जल, अग्नि, पवन, आकाश और समस्त देवताओं, मनुष्यों एवं असुरोंको भी धारण करते हैं। जगद्धाता विष्णुकी यह माया दुरत्यय है। उन्हींके संनिधानसे देवता यज्ञभागभोजी हो गये हैं, इसी कारण तीनों अग्नियाँ आसुर भागको ग्रहण नहीं कर रही हैं।'

शुक्राचार्यकी बात सुनकर हर्षातिरेकके कारण बलिके शरीरमें रोमाञ्च हो आया। तब उन्होंने कहा—'ब्रह्मन्! मैं धन्य हूँ। मैंने पूर्वजन्ममें कोई महान् पुण्यकर्म किया है, जिसके फलस्वरूप स्वयं यज्ञपति भगवान् मेरे यज्ञमें पधार रहे हैं। भला, मुझसे बढ़कर भाग्यशाली दूसरा और कौन होगा; क्योंकि योगीलोग सदा योगयुक्त होकर जिन अविनाशी परमात्माका दर्शन करनेकी अभिलाषा करते हैं (परंतु देख नहीं पाते), वे ही भगवान् मेरे यज्ञमें पधारेंगे! इसलिये गुरुदेव! अब मेरे लिये जो कर्तव्य हो, उसका आदेश देनेकी कृपा कीजिये।'

तब शुक्रने कहा—''दैत्यराज! वेदोंके प्रमाणसे देवता ही यज्ञभागके अधिकारी हैं, किंतु तुमने दानवोंको यज्ञभागका भोक्ता बना दिया है। ये भगवान् देवताओंका कार्य सम्पन्न करना चाहते हैं, अतः जब वे देवोंकी उन्नतिके लिये उद्यत होकर तुमसे कोई याचना करें तो तुम्हें यही कहना चाहिये कि 'देव! मैं यह देनेमें समर्थ नहीं हूँ'।''

यह सुनकर बलिने उत्तर दिया—''ब्रह्मन्! जब मैं किसी याचकको निराश नहीं करता, तब भला, संसारके पाप-समूहको नष्ट करनेवाले देवेश्वर विष्णुद्वारा कुछ माँगे जानेपर मैं 'नास्ति नहीं है' कैसे कह सकता हूँ? जो भगवान् श्रीहरि विभिन्न प्रकारके व्रतोपवासोंद्वारा प्राप्त किये जाते हैं, वे ही गोविन्द मुझसे याचना करें—इससे बढ़कर मेरा और कौन-सा सौभाग्य होगा? अहो! शौचादि-गुणसम्पन्न पुरुषोंद्वारा जिनकी प्रसन्नताके लिये अनेक

यज्ञानुष्ठान किये जाते हैं, वे ही भगवान् मुझसे याचना करेंगे! पूर्वजन्ममें मैंने कोई श्रेष्ठ पुण्यकर्म और उत्तम तपस्या की है जो मेरे दिये हुए दानको स्वयं श्रीहरि ग्रहण करेंगे। गुरो! परमेश्वरके पधारनेपर 'नास्ति—नहीं है' यह मैं कैसे कह सकता हूँ। मैं प्राणोंका विसर्जन भले ही कर दूँगा, परंतु 'नास्ति' किसी प्रकार नहीं कह सकता। यदि इस यज्ञमें भगवान् यज्ञेश मुझसे याचना करते हैं तो निश्चय ही मेरा मनोरथ पूर्ण हो गया। यदि वे गोविन्द मुझसे माँगेंगे तो मैं बिना आगा-पीछा सोचे अपना मस्तक भी उन्हें समर्पित कर दूँगा। इससे अधिक और क्या कहूँ? महाभाग! मेरे राज्यमें कोई दुःखी, दरिद्र, आतुर, वस्त्ररहित, उद्विग्न अथवा विषादयुक्त नहीं है। सभी लोग हृष्ट-पुष्ट, संतुष्ट, सुगन्धित वस्तुओंसे युक्त और सम्पूर्ण गुणोंसे सम्पन्न हैं। यह मुझे विशिष्ट दानरूपी बीजके फलरूपमें प्राप्त हुआ है। मुनिशार्दूल! इसका ज्ञान मुझे आपके मुखसे ही प्राप्त हुआ है। गुरो! यह श्रेष्ठ दान-बीज यदि महान् पात्र जनार्दनके हाथमें पड़ जाय तो बताइये, मुझे क्या नहीं मिल गया? मेरा वह दान सर्वोत्तम होगा। और कहा जाता है कि दान उपभोगसे सौगुना अधिक सुखदायी होता है। निश्चय ही यज्ञसे पूजित हुए श्रीहरि मुझपर प्रसन्न हैं, इसीलिये निस्संदेह वे दर्शन देकर मेरा कल्याण करनेके लिये आ रहे हैं। अथवा यदि वे क्रुद्ध होकर देवभागमें रुकावट डालनेवाले मुझको मारनेके लिये ही आ रहे हैं, तो भी उन अच्युतके हाथसे मारा जाना मेरे लिये श्लाघ्यतम होगा। किंतु भला, वे हृषीकेश मेरा वध क्यों करेंगे? मुनिश्रेष्ठ! यह जानकर जगदीश्वर गोविन्दके आनेपर आपको दानमें विघ्नकारक नहीं बनना चाहिये।"

यह सुनकर महर्षि शुक्राचार्य कुपित हो उठे और बलिको शाप देते हुए बोले—

> दृढं पण्डितमान्यज्ञः स्तब्धोऽस्यस्मदुपेक्षया ।
> मच्छासनातिगो यस्त्वमचिराद् भ्रश्यसे श्रियः ॥
>
> (श्रीमद्भागवत ८ । २० । १५)

'मूर्ख! है तो तू अज्ञानी! परंतु अपनेको महान् पण्डित समझता है। तुझे गर्व हो गया है, इसी कारण तू मेरी आज्ञाका उल्लङ्घन कर रहा है। मेरी उपेक्षा करनेके कारण तू शीघ्र ही अपनी राजलक्ष्मीसे भ्रष्ट हो जायगा।'

महर्षि शुक्राचार्य यों कह ही रहे थे, तबतक भगवान् वामन देवगुरु बृहस्पतिको आगे करके सुरगणोंके साथ उस यज्ञशालामें आ पहुँचे। तब बलिने अपने पुरोहित शुक्राचार्यजीसे फिर कहा—'ब्रह्मन्! जो सभी प्राणियोंके हृदयके साक्षी, सर्वदेवमय और अचिन्त्य हैं, वे ही भगवान् जनार्दन मायासे वामनरूप धारण करके मुझसे इच्छानुसार याचना करनेके लिये मेरे घर पधारे हैं।' इस प्रकार वामन भगवान्‌को यज्ञशालामें प्रविष्ट हुआ देखकर उनके प्रभावसे सभी असुरगण विक्षुब्ध हो उठे और उनके तेजसे उन सबकी कान्ति फीकी पड़ गयी तथा उस महायज्ञमें पधारे हुए वसिष्ठ, विश्वामित्र, गर्ग और अन्यान्य महर्षि भयसे थर्रा उठे; परंतु बलिने अपना जन्म सफल माना। उस समय संक्षुब्ध होनेके कारण कोई किसीसे कुछ बोल न सका। सभीने उन देवदेवेश्वरकी पूजा की। तब असुरराज बलि तथा मुनीश्वरोंको विनम्र हुआ देखकर देवदेवेश्वर वामनरूपधारी साक्षात् विष्णु उस यज्ञ, अग्नि, यजमान, ऋत्विज, यज्ञकर्माधिकारी सदस्य और द्रव्य-सम्पत्ति आदिकी प्रशंसा करने लगे। यह सुनकर सभी ब्राह्मणोंने उन्हें साधुवाद दिया। तत्पश्चात् जिनके शरीरमें हर्षके मारे रोमाञ्च हो रहा था, वे राजा बलि अर्घ्य लेकर गोविन्दकी पूजा करने लगे। उस समय महारानी विन्ध्यावली झारी लेकर जल गिरा रही थीं और बलि वामनभगवान्‌के पद पखार रहे थे। यह देखकर चतुर्दिक् बलिके भाग्यकी सराहना हो रही थी। दैत्यराज बलिने उस चरणोदकको अपने सिरपर धारण करके भगवान्‌से कहा—'विप्रवर! सुनिये, सुवर्ण और रत्नोंके ढेर, गज, महिष, स्त्रियाँ, वस्त्र, अलंकार, गौएँ, अन्य बहुत-सी धातुएँ और सारी पृथ्वी—मेरी इन सम्पत्तियोंमें जो भी आपको प्रिय लगे अथवा जो अभीप्सित हो, उसे कहिये, मैं सब देनेके लिये तैयार हूँ।'

दैत्याधिप बलिके ये प्रेमभरे वचन सुनकर वामनरूपधारी भगवान् विष्णु मुसकराते हुए गम्भीर वाणीमें बोले—

> ममाग्निशरणार्थाय देहि राजन् पदत्रयम् ।
> सुवर्णग्रामरत्नादि तदर्थिभ्यः प्रदीयताम् ॥
>
> (वामनपुराण ३१ । ४०)

'राजन्! सुवर्ण, ग्राम, रत्न आदि पदार्थ उनकी याचना करनेवालोंको दीजिये। मुझे तो अग्निहोत्रके लिये केवल तीन पग भूमि प्रदान कीजिये।'

तब बलिने कहा—'मानवश्रेष्ठ! तीन पग भूमिसे तुम्हारा क्या प्रयोजन सिद्ध होगा? अरे! सैकड़ों हजारों पग क्यों नहीं माँग लेते?'

यह सुनकर भगवान् वामन बोले—

एतैः पदैर्दैत्यपते कृतकृत्योऽस्मि मार्गणे।
अन्येषामर्थिनां वित्तमिच्छया दास्यते भवान्॥

(वामनपुराण ३१ । ५१)

'दैत्यपते! मैं तो इन तीन पगोंकी याचनासे ही कृत-कृत्य हूँ। आप अन्य याचकोंको उनके इच्छानुसार धन दीजियेगा।'

वामनके वचन सुनकर बलि अपनी पत्नी विन्ध्यावली तथा पुत्र बाणासुरकी ओर दृष्टिपात करके कहने लगा—'देखो न, यह केवल शरीरसे ही वामन नहीं है, इसे वस्तुएँ भी छोटी ही प्रिय हैं, जो मुझ-जैसे व्यक्तिसे तीन पग मात्र भूमि माँग रहा है। ठीक है, जिसका भाग्य विपरीत हो जाता है, उस मन्दबुद्धि पुरुषको विधाता अधिक धन नहीं देते। इसी कारण यह मुझ-जैसे दातासे भी तीन पग भूमि माँग रहा है।' पत्नी और पुत्रसे यों कहकर सुरारि बलिने पुनः भगवान् वामनसे कहा—'विष्णो! हाथी, घोड़े, पृथ्वी, दासियाँ और सुवर्ण आदि जो पदार्थ और जितनी मात्रामें अभीप्सित हो, मुझसे माँग लें। विष्णो! आप याचक हैं और मैं जगत्पति दाता हूँ—ऐसी दशामें तीन पग भूमि दान करनेमें मुझे लज्जा कैसे नहीं होगी। इसलिये वामन! जरा स्वस्थचित्त होकर याचना करें। मैं रसातल, भूलोक अथवा स्वर्गलोक—इनमेंसे कौन-सा लोक आपको प्रदान करूँ?'

तब वामनभगवान्‌ने कहा—

गजाश्वभूहिरण्यादि तदर्थिभ्यः प्रदीयताम्।
एतावदेव सम्प्रार्थी देहि राजन् पदत्रयम्॥

(वामनपुराण ९२ । १५)

'राजन्! हाथी, घोड़े, भूमि, सुवर्ण आदि उन-उन वस्तुओंके याचकोंको दीजिये; मैं तो केवल तीन पग भूमि ही माँग रहा हूँ। मुझे उतना ही दीजिये।'

महात्मा वामनके यों कहनेपर बलिने गडुएसे जल लेकर उन्हें तीन पग भूमि दान करनेका संकल्प किया। उसी समय एक अद्भुत घटना घटी। भगवान्‌के हाथमें संकल्पका जल पड़ते ही वे वामनसे अवामन हो गये और उसी क्षण उन्होंने अपना सर्वदेवमय रूप प्रकट कर दिया। अब वे अखिल ज्योति तथा परमोत्कृष्ट तपकी मूर्ति थे।

भगवान् विष्णुके उस सर्वदेवमय रूपको देखकर महाबली दैत्य उसी प्रकार उनके निकट नहीं जा सके, जैसे फतिंगे अग्निके। इसी बीच महादैत्य चिक्षुरने भगवान्‌के पादाङ्गुष्ठको दाँतोंसे पकड़ लिया। तब श्रीहरिने अङ्गुष्ठसे ही उसकी ग्रीवापर प्रहार किया और पैरों तथा हाथोंके तलवोंसे ही सारे असुरोंको मार डाला। तत्पश्चात् उन्होंने एक पगसे चराचरसहित पृथ्वी अपने अधिकारमें कर ली। पुनः दूसरा पग ऊपर बढ़ानेपर उस महारूपके दाहिने चन्द्रमा और बायें सूर्य आ गये। इस प्रकार आधे पगसे उन्होंने स्वर्ग, महः, जन और तपोलोकको तथा आधेसे समूचे आकाशको आच्छादित कर लिया। तीसरे पगको आगे बढ़ानेपर वह ब्रह्माण्डोदरका भेदन करके निरालोक प्रदेशमें जा पहुँचा। इसी समय भगवान्‌के पैरके आगे बढ़नेसे अण्डकटाहके फूट जानेसे विष्णुपदसे जलकी बूँदें झरने लगीं। इसीलिये तापस लोग इसे 'विष्णुपदी' कहकर इसकी स्तुति करते हैं। इस प्रकार तीसरे पगके पूर्ण न होनेपर सर्वव्यापी भगवान् विष्णु बलिके निकट आकर क्रोधावेशमें होंठको कुछ कँपाते हुए यों बोले—

ऋणे भवसि दैत्येन्द्र बन्धनं घोरदर्शनम्।
त्वं पूरय पदं तन्मे नो चेद् बन्धं प्रतीच्छ मे॥

(वामनपुराण ९२ । ३४)

'दैत्येन्द्र! अब तो तुम ऋणी हो गये, जिसके परिणामस्वरूप घोर बन्धनकी प्राप्ति होती है। इसलिये या तो तुम मेरा तीसरा पग पूरा करो अन्यथा मेरे बन्धनमें आ जाओ।'

भगवान्‌के इस वचनको सुनकर बलि-पुत्र बाणासुर हँसने लगा और उन देवेश्वरसे हेतुयुक्त वचन बोला—'जगत्पते! आप तो स्वयं भुवनेश्वरोंके विधाता हैं, फिर भी थोड़ी-सी पृथ्वीकी याचना करके मेरे पितासे इतनी विस्तृत भूमि क्यों माँग रहे हैं? विभो! आपने जितनी पृथ्वीकी सृष्टि की थी, उतनी-की-उतनी मेरे पिताने आपको दे डाली। अब वाक्चातुर्यसे आप उन्हें क्यों बाँध रहे हैं? इन दैत्यराजने पहले जिस शक्तिसे आपके सामने प्रतिज्ञा की थी, उसी शक्तिसे ये अब भी पूजा करनेमें समर्थ हैं। इसलिये प्रभो! इनपर कृपा कीजिये; बन्धनकी आज्ञा मत दीजिये। श्रुतियोंमें आपके ही कहे हुए ऐसे वचन मिलते हैं कि उत्तम पात्र, पवित्र देश और पुण्यकालमें दिया हुआ दान विशेष सुखदायक होता है। वह पूरा-का-पूरा आप चक्रपाणिमें वर्तमान है। जैसे—भूमिका दान है, सभी मनोरथोंको पूर्ण

करनेवाले अजितात्मा देवदेवेश्वर आप पात्र हैं, ज्येष्ठा और मूल नक्षत्रोंके योगमें चन्द्रमा वर्तमान हैं—ऐसा पुण्यकाल है और कुरुक्षेत्र-जैसा प्रसिद्ध पुण्यदेश है । देव ! आप तो स्वयं श्रुतियोंके आदिकर्ता और व्यवस्थापक हैं; ऐसी दशामें भला, मुझ-जैसा मन्दबुद्धि व्यक्ति आपको उचित-अनुचितकी शिक्षा कैसे दे सकता है । लोकनाथ ! जब आपने वामनरूपसे तीन पग भूमिकी याचना की है, तब फिर लोकवन्दित विश्वमयरूपसे उसे क्यों ग्रहण कर रहे हैं ? आप कृपया उसी रूपसे दान भी ग्रहण कीजिये । विष्णो ! ऐसी स्थितिमें आप मेरे पिताको क्यों बाँध रहे हैं ? फिर भी विभो ! जैसी आपकी इच्छा हो, वैसे कीजिये ।'

बलिपुत्र बाणके तर्कोंको सुनकर भगवान् वामनने उनका उत्तर दिया—"बलिनन्दन ! तुमने जो अभी-अभी बातें कही हैं, उनका सारयुक्त उत्तर देता हूँ; सुनो । मैंने पहले तुम्हारे पितासे कहा था—'राजन् ! मुझे मेरे प्रमाणसे तीन पग भूमि प्रदान कीजिये ।' अतः मैंने उसीका पालन किया है । क्या तुम्हारे पिता असुरराज बलि मेरे प्रमाणको नहीं जानते थे, जो इन्होंने निश्शङ्क होकर मेरे शरीरके मापके अनुसार तीन पग भूमि दान कर दी ? अरे, यदि मैं चाहूँ तो एक ही डगसे भूः, भुवः आदि सभी लोकोंको नाप लूँ । मैंने तो बलिके हितके लिये ही इन्हें दो पगसे नापा है । इसलिये तुम्हारे पिताने जो मेरे हाथमें संकल्पका जल दिया है, उसके प्रभावसे मैंने उसे एक कल्पकी आयु प्रदान की है ।" बलिकुमार बाणसे यों कहकर भगवान् त्रिविक्रमने बलिसे मधुर वाणीमें कहा—

इन्द्रसेन महाराज याहि भो भद्रमस्तु ते ।
सुतलं स्वर्गिभिः प्रार्थ्यं ज्ञातिभिः परिवारितः ॥
न त्वामभिभविष्यन्ति लोकेशाः किमुतापरे ।
त्वच्छासनातिगान् दैत्यांश्चक्रं मे सूदयिष्यति ॥
रक्षिष्ये सर्वतोऽहं त्वां सानुगं सपरिच्छदम् ।
सदा संनिहितं वीर तत्र मां द्रक्ष्यते भवान् ॥

(श्रीमद्भागवत ८ । २२ । ३३–३५)

'महाराज इन्द्रसेन ! तुम्हारा कल्याण हो । अब तुम अपने भाई-बन्धुओंके साथ उस सुतललोकमें जाओ, जिसे स्वर्गवासी भी चाहते रहते हैं । बड़े-बड़े लोकपाल भी अब तुम्हें पराजित नहीं कर सकते, दूसरोंकी तो बात ही क्या है । तुम्हारी आज्ञाका उल्लङ्घन करनेवाले दैत्योंको मेरा चक्र छिन्न-भिन्न कर डालेगा । मैं तुम्हारी, तुम्हारे अनुचरोंकी और भोग-सामग्रीकी भी सब प्रकारसे रक्षा करूँगा । वीरवर ! तुम मुझे वहाँ सदा अपने पास ही देखोगे ।'

मधुसूदनने इस प्रकार दैत्यराज बलिसे कहकर पत्नी-पुत्रसहित उसे बिदा कर दिया और स्वयं पृथ्वीको लेकर ब्रह्मा और देवगणोंके साथ तुरंत ही इन्द्रके पास पहुँचे । वहाँ वे इन्द्रको स्वर्गका अधिपति और देवगणोंको यज्ञभागभोजी बनाकर सबके देखते हुए अन्तर्हित हो गये । (रा० शु०)

[१६]

भगवान् हयग्रीव

पृथ्वीके एकार्णवमें विलीन हो जानेपर विद्याशक्तिसे सम्पन्न भगवान् विष्णु योगनिद्राका आश्रय लेकर शेषनागपर शयन कर रहे थे । प्रभुकी नाभिसे सहस्रदल पद्म प्रकट हुआ । उक्त सहस्रदल कमलपर सम्पूर्ण लोकोंके पितामह, लोकस्रष्टा, सिन्दूरारुण भगवान् हिरण्यगर्भ व्यक्त हुए । परम तेजस्वी ब्रह्माने दृष्टिपात किया तो चतुर्दिक् जल-ही-जल था । जिस पद्मपत्रपर लोकस्रष्टा बैठे थे, उसपर क्षीरोदधिशायी श्रीनारायण-की प्रेरणासे पहलेसे ही रजोगुण और तमोगुणकी प्रतीक जलकी दो बूँदें पड़ी थीं ।

उनमेंसे एक बूँदपर आद्यन्तहीन श्रीभगवान्‌की दृष्टि पड़ी तो वह तमोमय मधु-नामक दैत्यके रूपमें परिणत हो गयी । वह दैत्य मधुके रंगका अत्यन्त सुन्दर था । जलकी दूसरी बूँद भगवान्‌के इच्छानुसार दूसरे अत्यन्त शक्तिशाली एवं पराक्रमी दैत्यके रूपमें व्यक्त हुई । उसका नाम 'कैटभ' पड़ा । दोनों ही दैत्य अत्यन्त वीर एवं बलवान् थे ।

कमल-नालके सहारे वे दैत्यद्वय वहाँ पहुँच गये, जहाँ अत्यन्त तेजस्वी ब्रह्मा बैठे हुए थे । लोक-पितामह सृष्टि-रचनामें प्रवृत्त थे और उनके समीप ही अत्यन्त सुन्दर स्वरूप धारण किये हुए चारों वेद थे । उन महाबली, महाकाय, श्रेष्ठ दैत्योंकी दृष्टि वेदोंपर पड़ते ही उन्होंने वेदोंका हरण कर लिया । श्रुतियोंको लेकर वे पूर्वोत्तर महासागरमें प्रविष्ट होकर रसातलमें पहुँच गये ।

'वेद ही मेरे नेत्र, वेद ही मेरी अद्भुत शक्ति, वेद ही मेरे परम आश्रय एवं वेद ही मेरे उपास्य देव हैं ।' श्रुतियोंको अपने समीप न देखकर विधाता अत्यन्त दुःखी होकर मन-ही-मन विलाप करने लगे । 'वेदोंके नष्ट हो जानेसे आज मुझपर भयानक विपत्ति आ पड़ी है । इस समय कौन मेरा दुःख दूर करेगा ? वेदोंका उद्धार कौन करेगा ?' फिर उन्होंने

सर्वान्तर्यामी और सर्वसमर्थ श्रीनारायणसे प्रार्थना की। ब्रह्माजीने कहा—

प्रथितः पुण्डरीकाक्ष प्रधानगुणकल्पितः।
त्वमीश्वरः स्वभावश्च स्वयम्भूः पुरुषोत्तमः॥
त्वया विनिर्मितोऽहं वै वेदचक्षुर्वयोऽतिगः।
ते मे वेदा हृताश्चक्षुरन्धो जातोऽस्मि जागृहि॥
ददस्व चक्षूंषि मम प्रियोऽहं ते प्रियोऽसि मे।
(महा०, शान्ति० ३४७। ४४—४५½)

'कमल-नयन! आपका पुत्र मैं शुद्ध सत्त्वमय शरीरसे उत्पन्न हुआ हूँ। आप ईश्वर, स्वभाव, स्वयम्भू एवं पुरुषोत्तम हैं। आपने मुझे वेदरूपी नेत्रोंसे युक्त बनाया है। आपकी ही कृपासे मैं कालातीत हूँ—मुझपर कालका वश नहीं चलता। मेरे नेत्ररूप वे वेद दानवोंद्वारा हर लिये गये हैं; अतः मैं अंधा-सा हो गया हूँ। प्रभो! निद्रा त्यागकर जागिये। मुझे मेरे नेत्र वापस दीजिये; क्योंकि मैं आपका प्रिय भक्त हूँ और आप मेरे प्रियतम स्वामी हैं।'

हिरण्यगर्भकी यह श्रद्धा-भक्तिपूर्ण करुण स्तुति सुनकर देवदेवेश श्रीनारायण तत्क्षण अपनी निद्रा त्यागकर जग गये। श्रुतियोंका उद्धार करनेके लिये वे सर्वात्मा परम प्रभु अत्यन्त सुन्दर एवं कान्तिमान् हयग्रीवके रूपमें प्रकट हुए। प्रभुकी गर्दन और मुखाकृति घोड़ेकी-सी थी। उनका वह परमपवित्र मुखारविन्द वेदोंका आश्रय था। तारक-खचित स्वर्ग उनका मस्तक था और अंशुमालीकी रश्मियोंके तुल्य उनके बाल चमक रहे थे। आकाश-पाताल उनके कान, पृथ्वी ललाट, गङ्गा और सरस्वती उनके नितम्ब तथा दो सागर उनके भ्रू थे। सूर्य और चन्द्र उनके नेत्र, संध्या नासिका, ओंकार संस्कार (आभूषण) और विद्युत् जिह्वा थी। पितर उनके दशन, ब्रह्मलोक उनके ओष्ठ तथा कालरात्रि उनकी ग्रीवा थी।

इस प्रकार अत्यन्त अद्भुत, अत्यन्त तेजस्वी, अत्यन्त शक्तिशाली, अत्यन्त पराक्रमी एवं अत्यन्त बुद्धि-वैभव-सम्पन्न, आदि-अन्तसे रहित भगवान्ने श्रीहयग्रीवका रूप धारणकर महासमुद्रमें प्रवेश किया और वे रसातलमें जा पहुँचे।

वहाँ भगवान् श्रीहयग्रीवने सामगानका सस्वर गान शुरू किया। भगवान्की लोकोपकारिणी मधुर ध्वनि रसातलमें सर्वत्र फैल गयी। मधु और कैटभ दोनों दैत्योंने भी सामगानका वह चित्ताकर्षक स्वर सुना तो उन्होंने वेदोंको कालपाशमें बाँधकर रसातलमें फेंक दिया और उक्त मङ्गलकारिणी मधुर ध्वनिकी ओर दौड़ पड़े।

भगवान् हयग्रीवने अच्छा अवसर देखा। उन्होंने तुरंत वेदोंको रसातलसे निकालकर ब्रह्माको दे दिया और पुनः महासागरके पूर्वोत्तर भागमें वेदोंके आश्रय अपने हयग्रीवरूपकी स्थापना कर पुनः पूर्वरूप धारण कर लिया। भगवान् हयग्रीव वहीं रहने लगे।

मधु और कैटभने देखा, जहाँसे मधुर ध्वनि आ रही थी, वहाँ तो कुछ भी नहीं है। अतएव वे पुनः बड़े वेगसे रसातलमें पहुँचे। वहाँ वेदोंको न पाकर वे अत्यन्त आश्चर्य-चकित एवं क्रुद्ध हुए। शत्रुको ढूँढ़नेके लिये वे दोनों दैत्य तत्काल अत्यन्त शीघ्रतासे रसातलके ऊपर पहुँचे तो वहाँ उन्होंने देखा कि महासागरकी विशाल लहरोंपर चन्द्रमाके तुल्य गौर वर्णके सुन्दरतम भगवान् श्रीनारायण शेषनागकी शय्यापर अनिरुद्ध-विग्रहमें शयन कर रहे हैं।

'निश्चय ही इसीने रसातलसे वेदोंको चुराया है।' दैत्योंने अट्टहास करते हुए कहा। 'पर यह है कौन? किसका पुत्र है? यहाँ कैसे आया? और यहाँ सर्पशय्यापर क्यों शयन कर रहा है?'

मधु-कैटभने अत्यन्त कुपित होकर भगवान् श्रीनारायणको जगाया। त्रैलोक्यसुन्दर विष्णुने नेत्र खोलकर चारों ओर देखा तो उन्होंने समझ लिया कि ये दैत्य युद्ध करनेके लिये कटिबद्ध हैं।

भगवान् उठे और उनका मधु और कैटभ दोनों महान् दैत्योंसे भयानक संग्राम छिड़ गया। श्रीविष्णुका उन अत्यन्त पराक्रमी दैत्योंसे पाँच सहस्र वर्षोंतक केवल बाहुयुद्ध चलता रहा। वे अपनी महान् शक्तिके मदसे उन्मत्त तथा श्रीभगवान्की महामायासे मोहमें पड़े हुए थे। उनकी बुद्धि भ्रमित हो गयी।

तब हँसते हुए श्रीहरिने कहा—'अबतक मैं कितने ही दैत्योंसे युद्ध कर चुका हूँ, किंतु तुम्हारी तरह शूर-वीर मुझे कोई नहीं मिले। मैं तुमलोगोंके युद्ध-कौशलसे अत्यन्त प्रसन्न हूँ। तुमलोग कोई इच्छित वर माँग लो।'

श्रीभगवान्की वाणी सुनकर अहंकारके साथ दैत्योंने कहा—'विष्णो! हम तुमसे याचना क्या करें? तुम हमें क्या दोगे?' वे भगवान् विष्णुसे कहने लगे—'हम तुम्हारी

वीरतासे अत्यन्त संतुष्ट हैं। तुम हमलोगोंसे कोई वर माँग लो।' श्रीभगवान्‌ने कहा—

भवेतामद्य मे तुष्टौ मम वध्यावुभावपि ॥
किमन्येन वरेणात्र एतावद्धि वृतं मया।
(मार्कण्डेयपुराण ८१ । ७४)

'यदि तुम दोनों मुझपर प्रसन्न हो तो अब मेरे हाथसे मारे जाओ। बस, इतना-सा ही मैंने वर माँगा है। इस समय दूसरे किसी वरसे क्या लेना है?'

'हम तो ठगे गये।' भगवान् विष्णुकी वाणी सुन चकित होकर दैत्योंने देखा, सर्वत्र जल-ही-जल है। तब उन्होंने श्रीभगवान्‌से कहा—'जनार्दन! तुम देवताओंके स्वामी हो। तुम मिथ्याभाषण नहीं करते। पहले तुमने ही हमें वर देनेके लिये कहा था। इसलिये तुम भी हमारा अभिलषित वर दे दो।' अत्यन्त उदास होकर दैत्योंने श्रीभगवान्‌से निवेदन किया—

'आवां जहि न यत्रोर्वी सलिलेन परिप्लुता ॥'
(मार्कण्डेय० ८१ । ७६)

'जहाँ पृथ्वी जलमें डूबी हुई न हो—जहाँ सूखा स्थान हो, वहीं हमारा वध करो।'

'महाभाग! जलशून्य स्थानपर ही मैं तुम्हें मार रहा हूँ।' श्रीभगवान् विष्णुने सुदर्शन चक्रको स्मरण किया और अपनी विशाल जाँघोंको जलपर फैलाकर मधु-कैटभको जलपर ही स्थल दिखला दिया और हँसते हुए उन्होंने दैत्योंसे कहा—'इस स्थानपर जल नहीं है, तुमलोग अपना मस्तक रख दो। आजसे मैं भी सत्यवादी रहूँगा और तुम भी।'

कुछ देरतक मधु और कैटभ दोनों महादैत्य भगवान्‌की वाणीकी सत्यतापर विचार करते रहे। फिर उन्होंने भगवान्‌की दोनों सटी हुई विशाल एवं विचित्र जाँघोंपर चकित होकर अपना मस्तक रख दिया और श्रीभगवान्‌ने तत्काल अपने तीक्ष्ण चक्रसे उन्हें काट डाला। दैत्योंका प्राणान्त हो गया और उनके चार हजार कोसवाले विशाल शरीरके रक्तसे सागरका सारा जल लाल हो गया।

इस प्रकार वेदोंसे सम्मानित और श्रीभगवान् नारायणसे सुरक्षित होकर लोकस्रष्टा ब्रह्मा सृष्टि-कार्यमें जुट गये।

दूसरे कल्पमें

प्रख्यात दितिपुत्र हयग्रीव सुन्दर, बलवान् एवं परम-पराक्रमी था। उसकी भुजाएँ विशाल थीं। वह पुण्यतोया सरस्वती नदीके पावन तटपर उपवास करता हुआ करुणामयी जगदीश्वरीके मायाबीजके एकाक्षर मन्त्रका जप करने लगा। उसने इन्द्रियोंको वशमें करके सम्पूर्ण भोगोंको त्याग दिया था। वह महान् दैत्य एक हजार वर्षतक श्रीजगदम्बाकी तामसी शक्तिकी आराधना करता हुआ उग्र तप करता रहा।

'सुव्रत! वर माँगो।' करुणामयी सिंहवाहिनीने प्रत्यक्ष दर्शन देकर हयग्रीवसे कहा। 'तुम्हारी जो इच्छा हो, माँग लो। मैं उसे देनेके लिये तैयार हूँ।'

'सृष्टि-स्थिति-संहारकारिणी कल्याणमयी देवी!' प्रेमसे पुलकित नेत्रोंमें अश्रु भरे हयग्रीवने भगवती जगदम्बाकी स्तुति की—'आपके चरणोंमें प्रणाम है। पृथ्वीपर, आकाशमें और जहाँ-कहीं जो कुछ है, वह सब आपसे ही उत्पन्न हुआ है। आप दयामयी हैं। आपकी महिमाका पार पाना सम्भव नहीं।'

'तुम इच्छित वर माँग लो!' त्रैलोक्येश्वरी भगवतीने हयग्रीवसे पुनः कहा। 'तुमने अद्भुत तप किया है। मैं तुम्हारी भक्तिसे प्रसन्न हूँ। तुम अभिलषित वर माँग लो।'

'माता! मुझे मृत्युका मुख न देखना पड़े।' हयग्रीवने कृपामयी आराध्यासे निवेदन किया। 'मेरी कामना है कि मैं अमर योगी बन जाऊँ।'

'दैत्यपते! जन्मके अनन्तर मृत्यु सुनिश्चित है।' देवीने कहा। 'ऐसी सिद्ध मर्यादा जगत्‌में कैसे व्यर्थ की जा सकती है। मृत्युके सम्बन्धमें इस नियमको स्पष्ट समझकर इच्छित वर माँग लो।'

'अच्छा, मैं हयग्रीवके द्वारा ही मारा जाऊँ।' हयग्रीवने अपनी समझसे बुद्धिमानी की। वह स्वयं अपनेको क्यों मारेगा? उसने दयामयी माँसे निवेदन किया—'कोई दूसरा मुझे न मार सके।' 'तथास्तु' देवीने कहा। 'हयग्रीवके अतिरिक्त तुम्हें और कोई नहीं मार सकेगा। अब तुम घर लौटकर सानन्द राज्य करो।'

जगदम्बा वहीं अन्तर्धान हो गयीं और दैत्यराज हयग्रीव भी आनन्दमग्न अपने घर लौट गया। फिर तो उसने अनेक उपद्रव करने प्रारम्भ किये। ऋषियों-मुनियोंको वह

पीड़ित करने लगा। अनेक प्रकारसे वह वेदोंको सता रहा था। अपनी बुद्धिसे अमरताके लिये आश्वस्त अत्यन्त शूर-वीर हयग्रीव अपनी असुरता अक्षरशः चरितार्थ कर रहा था। सत्पुरुष एवं देवता उससे त्रस्त एवं व्याकुल थे, पर उसे पराजित करना या उसे मार डालना किसीके वशकी बात नहीं थी। हयग्रीव सर्वथा निश्चिन्त, निस्संकोच धर्मध्वंस कर रहा था। पृथ्वी व्याकुल हो गयी।

अन्ततः भगवान् श्रीहरि वेदों, भक्तों एवं धर्मके त्राण तथा अधर्मका नाश करनेके लिये हयग्रीवके रूपमें प्रकट हुए। श्रीहरिका वह हयग्रीव रूप अत्यन्त तेजस्वी एवं मनोहर था। उनकी शक्ति और सामर्थ्यका पार नहीं था। वे असीम बलशाली एवं परम पराक्रमी थे। उनके अङ्ग-अङ्गसे तेज छिटक रहा था।

अत्यन्त अभिमानी एवं देवताओंके शत्रु दैत्य हयग्रीवका परमप्रभु श्रीहयग्रीवसे युद्ध छिड़ गया। बड़ा ही भयानक संग्राम था वह। दीर्घकालतक युद्ध करता हुआ वह असुर हयग्रीव परम मङ्गलमय भगवान् श्रीहयग्रीवके द्वारा मार डाला गया।

ब्रह्मादि देव-समुदाय प्रभु श्रीहरिकी जय-जयकार करने लगा। —शि० दु०

[१७]

भगवान् हरि*

(१)

भक्तिं मुहुः प्रवहतां त्वयि मे प्रसङ्गो
भूयादनन्त महताममलाशयानाम्।
येनाञ्जसोल्बणमुरुव्यसनं भवाब्धिं
नेष्ये भवद्गुणकथामृतपानमत्तः॥
(श्रीमद्भागवत ४। ९। ११)

'अनन्त परमात्मन्! मुझे तो आप उन विशुद्ध-हृदय महात्मा भक्तोंका सङ्ग दीजिये, जिनका आपमें अविच्छिन्न भक्तिभाव है; उनके सङ्गमें मैं आपके गुणों और लीलाओंकी कथा-सुधाको पी-पीकर उन्मत्त हो जाऊँगा और सहज ही इस अनेक प्रकारके दुःखोंसे पूर्ण भयंकर संसार-सागरके उस पार पहुँच जाऊँगा।'—ध्रुव

× × ×

स्वायम्भुव मनुके अत्यन्त प्रतापी पुत्र उत्तानपाद-की दो पत्नियाँ थीं। उनमेंसे छोटी सुरुचिपर महाराजकी अत्यधिक प्रीति थी। उसके पुत्रका नाम उत्तम था। बड़ी रानी सुनीतिके पुत्रका नाम था ध्रुव।

एक दिनकी बात है। उत्तम अपने पिताकी गोदमें बैठा हुआ था। उसी समय ध्रुवने भी पिताकी गोदमें बैठना चाहा; किंतु पिताकी ओरसे उसे प्यार और दुलार नहीं मिला और वहीं बैठी हुई पतिप्रेम-गर्विता सुरुचिने ध्रुवका तिरस्कार करते हुए द्वेषपूर्ण स्वरमें कहा—'बेटा ध्रुव! तू भी यद्यपि राजाका पुत्र है, फिर भी इतनेसे ही राजसिंहासनपर बैठनेका अधिकार तुझे नहीं है। पिताकी गोद और राजसिंहासनपर बैठनेके लिये तुम्हें मेरे उदरसे जन्म लेना चाहिये था। यदि तू अपनी यह इच्छा पूरी करना चाहता है तो परमपुरुष श्रीनारायणको प्रसन्नकर उनके अनुग्रहसे मेरी कोखसे जन्म ले। इसका अधिकारी तो मेरा पुत्र उत्तम ही है।'

पिताके दुलारसे वञ्चित ध्रुव सुरुचिकी कटूक्ति सुनकर तिलमिला उठे। क्रोध और दुःखसे उनके अधर काँपने लगे। उनके नेत्रोंमें आँसू भर आये। रोते हुए वे अपनी माताके समीप पहुँचे।

सुरुचिके द्वारा किये गये अपमानसे व्यथित अपने प्राणप्रिय पुत्र ध्रुवको सुबुकियाँ भरते देखकर माता सुनीतिका हृदय दुःखसे भर गया। उनके नेत्रोंसे आँसू बहने लगे। वे ध्रुवको अपनी गोदमें बैठाकर उसके सिरपर हाथ फेरते हुए समझाने लगीं—'बेटा! तू व्याकुल मत हो। रोना छोड़ दे। इस पृथ्वीपर जन्म लेनेपर पूर्वकृत शुभाशुभ कर्मोंके फल ही सुख-दुःखके रूपमें प्राप्त होते हैं। पूर्वके पुण्य कर्मोंके ही कारण सुरुचिमें राजाकी सुरुचि (प्रीति) है और पुण्यरहित होनेके कारण ही मैं केवल भार्या (भरण करनेयोग्य) हूँ। इसी प्रकार उत्तम भी अपने पूर्वके शुभ कर्मोंके कारण पिताका प्यार-दुलार पा रहा है और तू मन्दभाग्य होनेके कारण ही उससे वञ्चित है।'

* कुछ विद्वानोंका मत है कि गजेन्द्रोद्धारक भगवान् ही श्रीहरिके नामसे विख्यात थे और उन्हींकी गणना चौबीस अवतारोंमें श्रीहरिके नामसे वे करते हैं। हमने दोनों ही मतोंको आदर देते हुए दोनोंका ही चरित्र यहाँ एक ही संख्याके अन्तर्गत दे दिया है।

कुछ क्षण रुककर अश्रु पोंछते हुए माता सुनीतिने कहा—'बेटा ! तू सुशील, पुण्यात्मा और प्राणिमात्रका शुभचिन्तक बन । इससे समस्त सम्पत्तियाँ सुलभ होती हैं। एक बात सुरुचिने सौतेली माँ होकर भी अत्यन्त उत्तम कही है। वह यह कि ईर्ष्या-द्वेष छोड़कर तू श्रीअधोक्षज भगवान्‌की आराधना आरम्भ कर दे। तुम्हारे प्रपितामह ब्रह्मा उन्हीं परमपुरुषकी आराधनासे ब्रह्मा हुए और तुम्हारे पितामह स्वायम्भुव मनु उन्हीं अशरण-शरण प्रभुकी बड़ी-बड़ी दक्षिणाओंवाले यज्ञोंके द्वारा अनन्य भावसे आराधना कर अत्यन्त दुर्लभ लौकिक-अलौकिक सुख प्राप्त कर सके थे। तू भी उन्हीं कमलदल-लोचन श्रीहरिकी चरण-शरण ग्रहण कर। उनके अतिरिक्त महान् दुःखोंसे त्राण देनेवाला अन्य कोई नहीं है।'

'माँ ! मुझे आज्ञा दे।' ध्रुवने अपनी माताके चरणोंपर मस्तक रखकर प्रार्थना की। 'निश्चय ही मैं अब परमपुरुष परमात्मासे अप्राप्य वस्तु प्राप्त करूँगा। तू प्रसन्नमनसे मुझे आशिष् दे।

'मेरे तन, मन और प्राणकी सारी आशिष् तेरे लिये है, बेटा !' नेत्रोंसे बहते आँसू पोंछती हुई माता सुनीतिने अधीर होकर कहा। 'पर बेटा ! अभी तू निरा बालक है। तेरी आयु गृह-त्यागके उपयुक्त नहीं। तू घरमें ही रहकर दान-धर्म आदि पुण्यकर्म और क्षीराब्धिशायी विष्णुकी प्रीतिपूर्वक उपासना कर। समयपर प्रभु-प्राप्तिके लिये गृह-त्याग भी कर लेना। अभी तो कहीं जानेकी बात सोचना उचित नहीं।'

'माँ ! तू बिल्कुल ठीक कहती है।' ध्रुव बोले। 'किंतु मेरा हृदय छटपटा रहा है। प्रभुके समीप जानेमें अब एक क्षणका विलम्ब भी मुझे सह्य नहीं। मुझे राजसिंहासन नहीं चाहिये। मैं अलभ्य-लाभके लिये करुणामय स्वामीके चरणोंमें अवश्य जाऊँगा। तू मुझे दया कर आज्ञा दे दे।'

'सर्वान्तर्यामी, सर्वसमर्थ, करुणा-वरुणालय तुम्हारा कल्याण करें, बेटा !' माता सुनीति बोलीं—

विष्णोराराधने नाहं वारये त्वां सुपुत्रक ।
जिह्वा मे शतधा यातु यदि त्वां वारयामि भोः ॥

'बेटा ! मैं तुम्हें भगवान् श्रीविष्णुकी आराधनासे नहीं रोकती। यदि मैं ऐसी चेष्टा करूँ तो मेरी जीभ सैकड़ों टुकड़े होकर गिर पड़े; क्योंकि श्रीभगवान्‌की आराधनासे सम्पूर्ण असम्भव सम्भव हो जाता है।'

माता सुनीतिने ध्रुवकी दृढ़ निष्ठा देखकर नील-कमलोंकी माला पहनाकर उसे अपनी गोदमें ले लिया और उसके सिरपर हाथ फेरकर अनुमति देते हुए कहा—'बेटा ! जा ! कण-कणमें व्याप्त श्रीहरि तुम्हारा सर्वविध मङ्गल करें। तू उनकी कृपा प्राप्त कर।'

माता सुनीतिके आँसू झर रहे थे और दृढ़निश्चयी ध्रुव अपने पिताके नगरसे निकल पड़े।

प्रभु-पद-पद्मोंकी ओर अग्रसर होनेवाले भक्तोंको देवर्षि नारदजीका सहयोग और उनकी सहायता तत्काल सुलभ होती है। थोड़ा-सा भी मान-भङ्ग न सह सकनेवाले नन्हे-से क्षत्रिय-बालकको परमपुरुष परमेश्वरकी आराधनाका निश्चय कर वन-गमन करते देख देवर्षि तत्काल वहाँ पहुँच गये। उन्होंने ध्रुवके मस्तकपर अपना पापनाशक, मङ्गलमय वरद कमल-हस्त फेरते हुए स्नेहसिक्त स्वरमें कहा—'बेटा ! तेरी आयु बहुत छोटी है और परब्रह्म परमात्माकी प्राप्ति अत्यन्त दुष्कर है। योगीन्द्र-मुनीन्द्र तथा देवताओंको भी उनका दर्शन बड़ी कठिनतासे प्राप्त होता है। अतएव तू अपनी जन्मदायिनी जननीकी आज्ञा मानकर घर लौट जा। वहाँ योगाभ्यास एवं शुभ कर्मोंके द्वारा संतोषपूर्वक जीवन व्यतीत कर। बड़ा होनेपर प्रभुप्राप्तिके लिये तप करना।'

'ब्रह्मन् ! आपका उपदेश बड़ा सुन्दर है।' अत्यन्त विनयपूर्वक ध्रुवने देवर्षिसे निवेदन किया। 'मैं क्षत्रिय-कुलोत्पन्न बालक हूँ। माता सुरुचिकी कटूक्ति मेरे हृदयमें टूटी हुई बर्छीकी अनीकी भाँति करक रही है। मैं छटपटा रहा हूँ। मैं त्रैलोक्य-दुर्लभ पदकी प्राप्तिके लिये कटिबद्ध हूँ। मेरे पूर्वजोंने जो नहीं पाया है, वह श्रेष्ठ पद मुझे अभीष्ट है। आप कमलयोनि ब्रह्माके पवित्र पुत्र हैं और जगत्‌के अशेष मङ्गलके लिये वीणा बजाते, हरिगुण गाते त्रैलोक्यमें विचरण किया करते हैं। आप मुझपर भी दया करें और उन सुर-नर-मुनिवन्दित परब्रह्म परमात्माकी प्राप्तिका मार्ग बतायें। आपके श्रीचरण-कमलोंमें मेरी यही प्रार्थना है।'

'बेटा ! तुम्हारी माता सुनीतिने जो तुम्हें मार्ग बताया है, वही भगवान् वासुदेवकी प्राप्तिका एकमात्र

उपाय है ।' ध्रुवकी बातोंसे अत्यन्त प्रसन्न होकर देवर्षि नारदने अत्यन्त प्यारसे ध्रुवको बताया—

तत्तात गच्छ भद्रं ते यमुनायास्तटं शुचि ।
पुण्यं मधुवनं यत्र सांनिध्यं नित्यदा हरेः ॥
(श्रीमद्भागवत ४ । ८ । ४२)

'बेटा ! तेरा कल्याण होगा, अब तू श्रीयमुनाजीके तटवर्ती परम पवित्र मधुवनमें जा, वहाँ श्रीहरिका नित्य निवास है ।'

'वहाँ कालिन्दीके निर्मल जलमें त्रिकाल स्नान कर, नित्यकर्मोंसे निवृत्त हो, आसन बिछाकर बैठना और प्राणायामके द्वारा इन्द्रियोंके दोषोंको दूर कर मनसे परम पुरुष परमात्माका इस प्रकार ध्यान करना—

'वे दयाके समुद्र नवजलधर-वपु मन्द-मन्द मुस्करा रहे हैं । उनके श्रीअङ्गोंसे आनन्द और प्रेम-सुधाकी वर्षा हो रही है । उन भुवनमोहन प्रभुकी नासिका, भौंहें, कपोल, अधर-पल्लव, दन्तपङ्क्तियाँ—सभी परम सुन्दर और दिव्य हैं । उनके वक्षपर श्रीवत्सका चिह्न है । उनके कम्बुकण्ठमें अत्यन्त सुगन्धित वनमाला पड़ी हुई है और उससे दिव्यातिदिव्य मधुर सुगन्ध निकल रही है । उस सुगन्धसे हमारे तन-मन-प्राण आनन्द-सिन्धुमें सराबोर होते जा रहे हैं । उनके चार भुजाएँ हैं, जिनमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म सुशोभित हैं । श्रीअङ्गोंपर किरीट, कुण्डल, केयूर और कङ्कणादि आभूषण सुशोभित हैं । परम दिव्य, श्यामल घन-तुल्य मङ्गलमय श्रीविग्रहपर पीताम्बर अत्यन्त शोभा पा रहा है । कटिप्रदेशमें सुवर्णकी करधनी सुशोभित है, जिससे अद्भुत प्रकाश छिटक रहा है । देव-ऋषि-वन्दित कमल-सरीखे चरणोंमें अद्भुत सुवर्णमय पैंजनी शोभा दे रही है । मानस-पूजा करनेवाले भक्तोंके हृदयरूपी कमलकी कर्णिकापर वे भक्तवत्सल प्रभु अपने नखमणिमण्डित मनोहर पादारविन्दोंको स्थापितकर विराजते हैं । वे प्रभु हमारी ओर अत्यन्त कृपापूर्ण दृष्टिसे निहार रहे हैं, मन्द-मन्द हँस रहे हैं । इस प्रकार श्रीभगवान्का ध्यान करते रहनेसे मन उनकी सौन्दर्य-सुधामें डूब जाता है ।'

देवर्षि नारदने अत्यन्त कृपापूर्वक ध्रुवको आगे बताया—'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय—यह भगवान् वासुदेवका परम पवित्र एवं परम गुह्य मन्त्र है । इसका ध्यानके साथ जप करता रहे । जल, पुष्प, पुष्पमाला, मूल और फलादि सभी सामग्रियाँ और तुलसी आदि प्रभु-पूजाके जिन-जिन उपचारोंका विधान किया गया है, उन्हें मन्त्रमूर्ति वासुदेवको इस द्वादशाक्षर मन्त्रसे ही अर्पित करे ।'

देवर्षि नारदके इस उपदेशको ध्यानपूर्वक श्रवणकर सुनीतिकुमार ध्रुवने उनकी परिक्रमा कर उनके चरणोंमें प्रणाम किया । इसके अनन्तर श्रीनारदजीके आदेशानुसार वे परम पवित्र मधुवनके लिये चल पड़े ।

विष्णुपुराणमें आया है कि उत्तानपादनन्दन ध्रुव अपनी माता सुनीतिसे विदा हो नगरके बाहर उपवनमें पहुँचे । वहाँ उन्होंने पहलेसे ही सात कृष्णमृग-चर्मके आसनोंपर बैठे सप्तर्षियोंको देखकर उनके चरणोंमें अत्यन्त श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया । ध्रुवने अपनी व्यथा सुनाते हुए उनसे उसके निवारणका उपाय पूछा ।

'तुमने क्या सोचा है और हम तुम्हारी क्या सहायता करें ?' सप्तर्षियोंने नन्हे ध्रुवमें क्षात्रतेज देखकर कहा । 'तुम निस्संकोच अपने मनकी बात हमसे कह दो ।'

'मुझे राज्य और धन आदि किसी वस्तुकी इच्छा नहीं है' ध्रुवने उनसे अपना अभीष्ट व्यक्त किया । 'मैं तो केवल एक उसी स्थानको चाहता हूँ, जिसे अबतक कभी किसीने पहले न भोगा हो । आप कृपाकर यही बता दें कि क्या करनेसे वह अग्रगण्य स्थान मुझे प्राप्त हो सकता है ?' महर्षि मरीचि, अत्रि और अङ्गिराके बाद महर्षि पुलस्त्यने कहा—

परं ब्रह्म परं धाम योऽसौ ब्रह्म तथा परम् ।
तमाराध्य हरिं याति मुक्तिमप्यतिदुर्लभाम् ॥
(विष्णुपुराण १ । ११ । ४६)

'जो परब्रह्म, परमधाम और जो सबसे बड़े और श्रेष्ठ हैं, उन हरिकी आराधना करनेसे मनुष्य अति दुर्लभ मोक्ष-पदको भी प्राप्त कर लेता है ।'

महर्षि पुलह और क्रतुने भी जनार्दनको प्रसन्न करनेके लिये उनकी आराधनाका उपदेश दिया । अन्तमें वसिष्ठजीने कहा—

प्राप्नोष्याराधिते विष्णौ मनसा यद्यदिच्छसि ।
त्रैलोक्यान्तर्गतं स्थानं किमु वत्सोत्तमोत्तमम् ॥
(विष्णुपुराण १ । ११ । ४९)

'हे वत्स ! विष्णुभगवान्‌की आराधना करनेपर तू अपने मनसे जो कुछ चाहेगा, वही प्राप्त कर लेगा, फिर त्रिलोकीके उत्तमोत्तम स्थानकी तो बात ही क्या है ।'

ऋषियोंके इस सदुपदेशसे प्रसन्न होकर ध्रुवने उनसे जपादिके सम्बन्धमें पूछा तो ऋषियोंने बताया—"राजकुमार ! विष्णुभगवान्‌की आराधनामें तत्पर पुरुषको सम्पूर्ण बाह्य विषयोंसे चित्तको हटाकर उसे जगदीश्वरमें स्थिर कर देना चाहिये। इस प्रकार एकाग्रचित्त होकर तन्मय भावसे 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'—इस द्वादशाक्षर मन्त्रका जप करना चाहिये। तुम्हारे पितामह स्वायम्भुव मनुने भी इसी मन्त्रका जप करके अपना अभीष्ट प्राप्त किया था। तू भी इस मन्त्रका जप करता हुआ श्रीगोविन्दको प्रसन्न कर, उनकी कृपा प्राप्त कर ले।"

इस प्रकार ऋषियोंके उपदेश सुनकर ध्रुवने उनके चरणोंमें प्रणाम किया और उनका आशीर्वाद ले कालिन्दी-कूलस्थित पवित्रतम मधुवनकी यात्रा आरम्भ की ।

सुनीतिकुमार ध्रुव मधुवन पहुँचे । उन्होंने श्रीयमुनाजीको प्रणाम कर स्नान किया और रात्रिमें उपवास कर प्रातःकाल पुनः स्नान कर ऋषियोंके उपदेशानुसार श्रीनारायणकी आराधना आरम्भ कर दी । उन्होंने उपासना-कालमें एक मासतक प्रति तीसरे दिन शरीर-निर्वाहके लिये कैथ और बेरका फल लिया, दूसरे मासमें छः-छः दिनके बाद वे सूखे घास और पत्ते खाकर भक्तवत्सल प्रभुकी उपासना करते रहे । तीसरे मासमें वे नवें दिन केवल जल पीकर भजनमें लगे रहे । चौथे महीने बारह दिनोंके अन्तरसे केवल वायु पीकर परमात्माके ध्यान और भजनमें लगे रहे । पाँचवें मासमें उत्तानपादनन्दन ध्रुव श्वास रोककर एक पैरपर खड़े हो हृदयस्थित भगवान् वासुदेवका चिन्तन करने लगे । उनकी चित्तवृत्ति सर्वथा शान्त एवं स्थिर होकर कमल-नयन प्रभुमें ही लीन हो गयी थी । ध्रुवके द्वारा सम्पूर्ण तत्त्वोंके आधार परब्रह्मकी धारणा की जानेपर त्रैलोक्य काँप उठा । ध्रुवके एक पैरपर खड़े होनेसे उनके अँगूठेसे दबकर आधी धरती एक ओर झुक गयी। उनके इन्द्रिय एवं प्राणोंको रोककर अनन्य बुद्धिसे परब्रह्म परमात्माका ध्यान करने एवं उनकी समष्टि प्राणसे अभिन्नता हो जानेके कारण जीवमात्रका श्वास-प्रश्वास रुक गया । फलतः लोक और लोकपाल—सभी व्याकुल हो गये ।

फिर तो देवाधिप इन्द्रके साथ कूष्माण्ड-नामक उपदेवताओंने अनेक भयानक रूपोंसे ध्रुवका ध्यान भङ्ग करना प्रारम्भ किया । भयानक राक्षसियाँ आयीं और चीत्कार करने लगीं, पर ध्रुवने उनकी ओर देखातक नहीं । फिर मायाकी सुनीति प्रकट हुई और विलाप करते हुए उसने कहा—'बेटा ! तू इस भयानक वनमें क्या कर रहा है ? तेरा कष्ट मुझसे देखा नहीं जा रहा है । सौतकी कटूक्तिके कारण मुझ अनाथाको छोड़ देना तुझे उचित नहीं है । क्या मैंने इसी दिनके लिये तुम्हें पाला था ?' फिर सुनीति बड़े जोरसे चिल्लायी—'अरे बेटा ! भाग-भाग ! देख, इस निर्जन वनमें कितने क्रूर राक्षस भयानक अस्त्र लिये दौड़े चले आ रहे हैं ।' यह कह वह चली गयी । फिर कितने ही राक्षस और राक्षसियाँ प्रकट हुए । वे अत्यन्त भयानक थे तथा उनके मुखसे आगकी ज्वालाएँ निकल रही थीं । 'मारो-काटो'—इस प्रकार वे चिल्ला रहे थे । फिर उस छोटे-से बालकको भयाक्रान्त करनेके लिये ऊँट, सिंह, मकर और शृगाल आदिके मुखवाले राक्षस चीत्कार करने लगे, हृदयको कँपा देनेवाले उपद्रव करने लगे; पर श्रीहरिसे एकाकार हुआ ध्रुवका मन तनिक भी विचलित नहीं हुआ । वे नव-नीरद-वपु श्रीविष्णुके ध्यानमें ही तन्मय रहे ।

ध्रुवपर मायाका कोई प्रभाव पड़ता न देख और श्वास-प्रश्वासकी गति अवरुद्ध हो जानेके कारण भयभीत होकर देवता शरणागतवत्सल श्रीहरिके पास पहुँचे और उन्होंने अत्यन्त करुण स्वरमें कहा—'प्रभो ! ध्रुवकी तपस्यासे व्याकुल होकर हम आपके शरण आये हैं । हमें पता नहीं, वह इन्द्र, सूर्य, कुबेर, वरुण, चन्द्रमा या किसके पदकी कामना करता है । आप हमपर प्रसन्न हों, ध्रुवको तपसे निवृत्तकर हमें शान्ति-प्रदान कीजिये ।'

'देवताओ ! मेरे प्रिय भक्त ध्रुवको इन्द्र, सूर्य, वरुण अथवा कुबेर आदि किसीके भी पदकी अभिलाषा नहीं है ।' श्रीभगवान्‌ने देवताओंको आश्वस्त करते हुए कहा । 'उसकी इच्छा मैं पूर्ण करूँगा । आपलोग निश्चिन्त होकर जायँ, मैं जाकर उसे तपसे निवृत्त करता हूँ ।'

मायातीत देवाधिदेव प्रभुके वचन सुनकर इन्द्रादि देवताओंने प्रभुके चरण-कमलोंमें प्रणाम किया तथा वे अपने-अपने स्थानको चले गये । इधर परमपुरुष श्रीभगवान् ध्रुवके तपसे प्रसन्न होकर उनके सम्मुख चतुर्भुजरूपमें प्रकट हो गये ।

'सुनीतिकुमार ! मैं तुम्हारी तपस्यासे अत्यन्त प्रसन्न होकर तुम्हें वर देने आया हूँ ।' मन्द-मन्द मुस्कराते हुए

नवघनश्याम चतुर्भुजरूपधारी भगवान्‌ने ध्रुवसे कहा । 'तू इच्छित वर माँग ।'

साथ ही, ध्रुव जिस देदीप्यमान मूर्तिका अपने हृदय-कमलमें ध्यान कर रहे थे, वह सहसा लुप्त हो गयी । तब तो घबराकर ध्रुवने अपनी आँखें खोल दीं और उन्होंने अपने सम्मुख किरीट, कुण्डल तथा शङ्ख, चक्र, गदा, शार्ङ्ग धनुष और खड्ग धारण किये परमप्रभुको देखा तो वे उनके चरणोंमें लोट गये । प्रणामके अनन्तर ध्रुव हाथ जोड़कर खड़े हो गये । उनका रोम-रोम प्रेमसे पुलकित हो रहा था । नेत्रोंमें प्रेमाश्रु भर गये थे । उनका कण्ठ गद्गद था । वे त्रैलोक्य-पावन, परम दिव्य, अलौकिक और परम दुर्लभ कल्याणमयी श्रीभगवान्‌की परम सौन्दर्यमयी कृपामय मूर्तिको अपलक नेत्रोंसे निहारते हुए उनकी स्तुति करना चाहते थे; पर प्रभु-स्तवन किस प्रकार करें, वे जानते नहीं थे ।

सर्वान्तर्यामी प्रभुने करस्थ श्रुतिरूप शङ्खसे बालकके कपोलका स्पर्श कर दिया । ध्रुवके मनमें हंसवाहिनी सरस्वती प्रकट हो गयीं । उन्हें वेदमयी दिव्यवाणी प्राप्त हो गयी और वे अत्यन्त श्रद्धा-भक्तिसे अपने परमाराध्य परमप्रभुका स्तवन करने लगे—

'सर्वातीत, सर्वात्मन्, सर्वशक्तिसम्पन्न, करुणामय, जगदाधार स्वामी ! मैं आपके कल्याणमय, मङ्गलमय, सुर-मुनि-वन्दित चरण-कमलोंमें प्रणाम करता हूँ ।' ध्रुवने प्रभुकी स्तुति की । 'प्रभो ! आप एक हैं, किंतु अपनी रची हुई सम्पूर्ण सृष्टिके कण-कणमें व्याप्त हैं । दयामय स्वामी ! इन्द्रियोंसे भोगा जानेवाला विषय-सुख तो नरकमें भी प्राप्त हो सकता है; ऐसी स्थितिमें जो लोग विषय-सुखके लिये लालायित रहते हैं, उसीके लिये रात-दिन प्रयत्नशील रहते हैं और जन्म-जरा-मरण-व्याधिसे मुक्त होनेके लिये आपके चरणोंका आश्रय नहीं लेते, वे घोर मायाविद्ध अत्यन्त अभागे हैं । प्रभो ! आपके आनन्दमय, कल्याणमय, अनन्त-सौन्दर्य-सम्पन्न नवनीरद-वपुके ध्यान, आपके मधुर नामोंके जप तथा आपके और आपके भक्तोंके पावन चरित्र सुननेमें जो सुख प्राप्त होता है, वह सुख निजानन्द ब्रह्ममें भी नहीं, जगत्‌में तो कहाँसे प्राप्त होगा । पद्मनाभ प्रभो ! जिनका मन आपके चरण-कमलोंका भ्रमर बन चुका है, जिनकी जिह्वाको आपके नामामृत-पानका चस्का लग गया है, उन आपके प्रेमी भक्तोंका सङ्ग-लाभ होनेपर, सगे-सम्बन्धी, स्त्री-पुत्र, बन्धु-बान्धव, घर-द्वार और मित्रादि सभी छूट जाते हैं । उन्हें आपके स्वरूपका ध्यान, आपके नामका जप और आपकी लीला-कथाका श्रवण-मनन-चिन्तन तथा आपके अनुरागी भक्तोंके सङ्गके अतिरिक्त और कहीं कुछ अच्छा नहीं लगता । उन्हें अपने शरीरकी भी सुधि नहीं रह जाती । दयामय ! आप नित्यमुक्त, शुद्ध-सत्त्वमय, सर्वज्ञ, परमात्मस्वरूप, निर्विकार, आदिपुरुष, षडैश्वर्य-सम्पन्न तथा तीनों गुणोंके अधिपति हैं । आप सम्पूर्ण जगत्‌के कारण, अखण्ड, अनादि, अनन्त, आनन्द-मय, निर्विकार ब्रह्मरूप हैं । मैं आपके शरण हूँ । परमानन्द-मूर्ति प्रभो ! भजनका सच्चा फल आपके चरण-कमलोंकी प्राप्ति है और वे देव-दुर्लभ, त्रैलोक्यपूज्य परम पावन चरण-कमल मुझे प्राप्त हो चुके हैं । अब मैं उन्हें नहीं छोड़ूँगा । प्रभो ! ये मङ्गलमय, त्रैलोक्यपावन चरण-कमल सदा-सर्वदा मेरे हृदयधनके रूपमें बने रहें । मुझसे कभी इनका बिछोह न हो । मैं पहले यहाँ माता सुरुचिकी कटूक्तिसे आहत होकर दुर्लभ-पद-प्राप्तिकी कामना लेकर आया था; किंतु अब मुझे कोई इच्छा नहीं है । अब तो मैं केवल इन चरण-कमलोंका भ्रमर बनकर रहना चाहता हूँ । मुझे क्षणभरके लिये आपकी विस्मृति न हो—मैं यही चाहता हूँ, दयामय ! अचिन्त्यशक्तिसम्पन्न परमात्मन् ! आप सदा-सर्वदा मेरे बने रहें—बस, मेरी यही कामना है । आप इसकी पूर्ति कर दें, नाथ !'

'बालक ! मेरा दर्शन होनेसे तेरी तपस्या सफल हो गयी ।' श्रीभगवान्‌ने ध्रुवसे अत्यन्त स्नेहपूर्वक कहा । 'किंतु मेरा दर्शन अव्यर्थ होता है । तुम्हारी लौकिक कामनाओंकी पूर्ति भी अवश्य होगी । पूर्वजन्ममें तू मुझमें निरन्तर एकाग्र-चित्त रखनेवाला मातृ-पितृ-भक्त, धर्माचरण-सम्पन्न ब्राह्मण था । कुछ ही दिनोंमें एक अत्यन्त सुन्दर राजपुत्रसे तेरी मैत्री हो गयी । उसके वैभवको देखकर तुम्हारे मनमें भी राजपुत्र होनेकी कामना उदित हुई, उसीके फलस्वरूप तूने दुर्लभ स्वायम्भुव मनुके वंशमें उत्तानपादके पुत्रके रूपमें जन्म लिया । अब अपनी आराधनाके फलस्वरूप मैं तुझे त्रैलोक्य-दुर्लभ, सर्वोत्कृष्ट ध्रुव (निश्चल)-पद दे रहा हूँ, जो सूर्य, चन्द्र, मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनि आदि ग्रहों, सभी नक्षत्रों, सप्तर्षियों और सम्पूर्ण विमानचारी देवगणोंसे ऊपर है । साथ ही तुझे एक कल्पतककी स्थिति दे रहा हूँ ।'

'तेरी माता सुनीति भी प्रज्वलित तारेके रूपमें तेरे समीप ही एक विमानपर उतने ही दिनोंतक रहेगी । प्रातः-सायं तेरा गुणगान करनेवाले भी पुण्यके भागी होंगे ।'

श्रीभगवान्‌ने ध्रुवसे आगे कहा—'तपश्चरणके लिये अपने पिताके वनमें जानेके अनन्तर तू राज्यका अधिकारी होगा और अनेकों बड़ी-बड़ी दक्षिणाओंवाले यज्ञ करते हुए छत्तीस हजार वर्षतक पृथ्वीका शासन करेगा और फिर अन्तमें तू सम्पूर्ण लोकोंद्वारा वन्दनीय अत्यन्त दुर्लभ और परम सुखद मेरे धाममें पहुँच जायगा, जहाँ जाकर फिर इस जगत्‌में कोई लौटकर नहीं आता।'

सुनीतिनन्दन ध्रुवको इस प्रकार वर देकर ध्रुवसे पूजित श्रीभगवान् वासुदेव अपने धाम पधारे; किंतु प्रभुके विछोहसे उदास होकर ध्रुव अपने नगरके लिये लौट पड़े।

उधर देवर्षि नारद ध्रुवके वन-गमनके अनन्तर राजा उत्तानपादके समीप पहुँचकर बोले—'राजन्! तुम कुछ उदास दीख रहे हो। तुम्हारी चिन्ताका क्या कारण है?'

'मैं बड़ा ही स्त्रैण और निष्ठुर हूँ।' बिलखते हुए नरेशने देवर्षिसे कहा। 'मेरी दुष्टताके कारण मेरा पाँच वर्षका अबोध बच्चा गृह त्यागकर वनमें चला गया। पता नहीं, वह कैसे है। उसे हिंस्र जन्तुओंने खा डाला या उसका क्या हुआ? वह बालक प्रेमवश मेरी गोदमें आना चाहता था; किंतु मैंने उसे प्यार नहीं दिया। मेरी पत्नीने उसे बड़ी कटूक्तियाँ कहीं। यह मेरे ही पापका परिणाम है, पर अब मेरा हृदय अधीर और अशान्त है। मेरे दुःखकी सीमा नहीं। मैं क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? कुछ समझमें नहीं आता।'

'ध्रुवके रक्षक सर्वसमर्थ श्रीहरि हैं, तुम उसकी चिन्ता मत करो।' श्रीनारदजीने उत्तानपादको आश्वस्त किया। 'वह बालक देव-दुर्लभ पद प्राप्तकर सकुशल लौट आयेगा। अत्यन्त यशस्वी होगा ध्रुव!'

श्रीनारदजी चले गये, पर राजा उत्तानपाद निरन्तर पुत्रकी चिन्तामें ही घुलने लगे। राज-कार्यमें उनका मन नहीं लग पा रहा था।

× × × ×

'दुर्लभ मणि सम्मुख रहनेपर भी मैं काँच ले बैठा।' ध्रुवका मन अत्यन्त दुःखी और उदास था। 'भगवान्‌की सेवाके स्थानपर मैंने दुर्लभ पद ले लिया।' मैं बड़ा ही मूढ़ और अभागा हूँ।' इस प्रकार सोचते और अपने आराध्यका स्मरण करते हुए वे अपनी राजधानीके समीप पहुँचे।

'कुमारध्रुव नगरके समीपतक आ गये हैं'—संदेश मिलनेपर भी राजा उत्तानपादको सहसा विश्वास नहीं हुआ। पर देवर्षि नारदके वचनोंका स्मरण कर वे अत्यन्त हर्षित हो गये। उन्होंने इस सुखद संवाद लानेवालेको बहुमूल्य हार उतारकर दे दिया। नगर-द्वार-चौराहे—सब सज उठे। माङ्गलिक वाद्य बजने लगे। प्रजाकी प्रसन्नताकी सीमा नहीं थी। राजा उत्तानपाद, ध्रुवकी माँ सुनीति तथा सुरुचि पुत्रका मुँह देखनेके लिये अधीर हो रहे थे। राजा ब्राह्मणों, वंशके वृद्ध मन्त्री और बन्धुजनोंको साथ ले, स्वर्णजटित रथपर आरूढ़ होकर नगरके बाहर पहुँचे। उनके आगे-आगे शङ्ख-दुन्दुभि आदि वाद्य बज रहे थे। सुनीति और सुरुचि उत्तमके साथ पालकियोंपर बैठकर वहाँ पहुँचीं।

उपवनके समीप पहुँचते ही महाराज उत्तानपादने ध्रुवको देखा और तुरंत रथसे उतर पड़े। उन्होंने अपने बच्चे ध्रुवको छातीसे लगा लिया। उनके नेत्र बरस पड़े तथा साँस जोरसे चलने लगी। राजा बार-बार अपने बिछुड़े पुत्रके सिरपर हाथ फेर रहे थे। उनके आँसू थमते ही न थे। ध्रुवने पिताके चरणोंपर सिर रख दिया।

'चिरंजीवी रहो।' ध्रुवने माता सुरुचिके चरणोंपर सिर रखा तो स्नेहवश उन्होंने आशीर्वाद दिया। जिसपर भगवान् कृपा करते हैं, उनपर सबकी कृपा स्वतः उतर पड़ती है।

ध्रुव अपने भाई उत्तमसे गले मिले और जब अपनी माता सुनीतिके चरणोंपर उन्होंने सिर रखा, तब उनकी विचित्र दशा हो गयी। बिछुड़े हुए बछड़ेको पाकर जिस प्रकार गायकी प्रसन्नताकी सीमा नहीं रहती, उसी प्रकार माता सुनीतिकी प्रसन्नताकी सीमा नहीं रही। उन्होंने अपने प्यारे बच्चेको वक्षसे लगाया तो सब कुछ भूल गयीं। उन्हें अपने तन और प्राणकी भी सुधि नहीं रही। उनके नेत्रोंसे आँसू और स्तनोंसे दुग्ध-धारा बहने लगी।

'आपने निश्चय ही विश्ववन्द्य हरिकी उपासना की है', पुरवासियोंने महारानीकी प्रशंसा करते हुए कहा। 'जो आपका खोया हुआ लाल लौटकर आ गया। श्रीहरिकी आराधना करनेवाले तो दुर्जय मृत्युपर भी विजय प्राप्त कर लेते हैं।'

ध्रुवके दर्शनसे लोगोंके नेत्र तृप्त नहीं हो रहे थे। उनके प्रति सभी अपना स्नेह व्यक्त कर रहे थे। उसी समय महाराज उत्तानपाद ध्रुवके साथ उत्तमको भी हाथीपर बैठाकर

राजधानीमें प्रवेश करनेके लिये चल पड़े । मार्ग खूब सजाया गया था और ध्रुवपर प्रजा-परिजन पुष्प, पुष्पमाला एवं माङ्गलिक द्रव्योंकी वर्षा कर रहे थे । इस प्रकार ध्रुव राजभवनमें पहुँचे ।

देवर्षि नारदके कथनानुसार महाराज उत्तानपाद ध्रुवका भक्तिपरायण, अत्यन्त तेजस्वी जीवन देखकर मन-ही-मन आश्चर्यचकित हो रहे थे । ध्रुवकी तरुणाई एवं उनपर प्रजाकी प्रीति तथा अपनी वृद्धावस्था देखकर महाराज उत्तानपाद उन्हें राज्यपर अभिषिक्त कर स्वयं तपश्चर्याके लिये वनमें चले गये ।

पृथ्वीके सम्राट् ध्रुवका शासन कैसा रहा होगा, यह सहज ही सोचा जा सकता है । परम भगवद्भक्त नरेशके राज्यमें प्रायः बड़े-बड़े यज्ञ हुआ करते थे । सर्वत्र सुख-शान्तिका अखण्ड साम्राज्य था । सत्य, क्षमा, दया, उपकार, त्याग, तप प्रभृति सर्वत्र दीखते थे । सर्वत्र श्रीभगवान्‌का पूजन, भजन और कीर्तन होता था । मिथ्याचार एवं दुराचारकी प्रजाके मनमें कल्पना भी नहीं थी ।

परम वैष्णव नरेश ध्रुवके छत्तीस सहस्र वर्षोंके दीर्घ-कालव्यापी शासनमें युद्धका कहीं अवसर नहीं आया, किंतु एक बार उनका भाई उत्तम आखेटके व्यसनके कारण वनमें गया । वहाँ एक बलवान् यक्षने उसे मार डाला । ममतामयी माँ सुरुचि कुछ लोगोंके साथ उसे ढूँढ़ने गयी, पर वहाँ आग लग जानेके कारण वह जलकर भस्म हो गयी ।

इस संवादसे आहत और कुपित होकर ध्रुव एक रथपर सवार होकर यक्षोंके देशमें जा पहुँचे । वहाँ यक्षोंने पृथ्वीके सम्राट्‌का अभिनन्दन करना तो दूर रहा, शस्त्रास्त्रसहित वे ध्रुवपर टूट पड़े । यद्यपि वे ध्रुवकी बाण-वर्षासे व्याकुल हो गये, फिर भी उनकी संख्या अत्यधिक थी । यक्षोंने कुपित होकर एक ही साथ ध्रुवपर इतने परिघ, खड्ग, प्रास, त्रिशूल, फरसे, शक्ति, ऋष्टि, भुशुण्डी तथा चित्र-विचित्र पंखवाले बाणोंकी वर्षा की कि वे शस्त्रोंसे ढक गये । यह दृश्य देखकर आकाशस्थित सिद्धगण व्याकुल हो गये । यक्षगण अपनी विजयका अनुमान कर हर्षोन्मादसे गर्जन करने लगे ।

किंतु कुछ ही देर बाद ध्रुवजी उस शस्त्रसमूहसे इस प्रकार बाहर निकल आये, जैसे कुहरेको भेदकर अंशुमाली प्रकट होते हैं । फिर ध्रुवने यक्षोंपर इतने तीक्ष्ण शरोंकी वर्षा की कि यक्षोंके अङ्ग-प्रत्यङ्ग कटकर सर्वत्र बिखर गये । बचे-खुचे यक्ष प्राण लेकर भागे । रणभूमि यक्षोंसे रहित हो गयी । परंतु कुछ ही देर बाद यक्षोंने भयानक माया रची आकाशमें काले बादल घिर आये । बिजली चमकने लगी । उनसे रक्त, कफ, पीब एवं विष्ठा-मूत्रादिकी वर्षा होने लगी । ध्रुवकी ओर अनेक हिंसक व्याघ्रादि जन्तु गर्जन करते दौड़कर आते हुए दीखे । उन असुरोंकी कँपानेवाली मायाको देखकर ऋषियोंने वहाँ आकर महाराज ध्रुवको शुभाशीर्वाद प्रदान किया—

> औत्तानपादे भगवांस्तव शार्ङ्गधन्वा
> देवः क्षिणोत्ववनतार्तिहरो विपक्षान् ।
> यन्नामधेयमभिधाय निशम्य चाद्धा
> लोकोऽञ्जसा तरति दुस्तरमङ्ग मृत्युम् ॥
> (श्रीमद्भागवत ४ । १० । ३०)

'उत्तानपादनन्दन ध्रुव ! शरणागत-भय-भञ्जन शार्ङ्गपाणि भगवान् नारायण तुम्हारे शत्रुओंका संहार करें । भगवान्‌का तो नाम ही ऐसा है, जिसके सुनने और कीर्तन करनेमात्रसे मनुष्य दुस्तर मृत्युके मुखसे अनायास ही बच जाता है ।'

ऋषियोंके वचन सुन ध्रुवजीने आचमन कर श्रीनारायण-द्वारा निर्मित नारायणास्त्रको अपने धनुषपर चढ़ाकर छोड़ दिया । फिर तो यक्षोंकी सारी माया क्षणार्द्धमें ही नष्ट हो गयी और वे कट-कटकर गिरने लगे । यक्षोंने कुपित होकर पुनः अपने शस्त्र सँभाले, पर ध्रुवके शरोंसे वे गाजर-मूलीकी भाँति कटने लगे ।

असंख्य यक्षोंको तड़प-तड़पकर मृत्युके मुखमें जाते देखकर ध्रुवके पितामह स्वायम्भुव मनुका हृदय द्रवित हो गया । उन्होंने तुरंत वहाँ आकर ध्रुवसे कहा—'बेटा ! बस करो । क्रोध नरकका द्वार है । तुम्हारी अपने भाईके प्रति प्रीति थी, यह ठीक है; पर एक यक्षके कारण इतने निर्दोष यक्षोंका संहार हमारे कुलकी रीति नहीं; यह उचित नहीं है ।' स्वायम्भुव मनुने अपने पौत्र ध्रुवको सीख दी—

> नायं मार्गो हि साधूनां हृषीकेशानुवर्तिनाम् ।
> यदात्मानं पराग्गृह्य पशुवद्भूतवैशसम् ॥
> तितिक्षया करुणया मैत्र्या चाखिलजन्तुषु ।
> समत्वेन च सर्वात्मा भगवान् सम्प्रसीदति ॥
> (श्रीमद्भागवत ४ । ११ । १०, १३)

'इस जड शरीरको ही आत्मा मानकर इसके लिये पशुओंकी भाँति प्राणियोंकी हिंसा करना—यह भगवत्सेवा-परायण साधुजनोंका मार्ग नहीं है।......सर्वात्मा श्रीहरि तो अपनेसे बड़े पुरुषोंके प्रति सहनशीलता, छोटोंके प्रति दया, बराबरवालोंके साथ मित्रता और समस्त जीवोंके साथ समताका बर्ताव करनेसे ही प्रसन्न होते हैं।'

'बेटा! तुम्हारे भाईको मारनेवाले ये यक्ष नहीं हैं; क्योंकि प्राणीके जन्म-मृत्युका कारण तो परमात्मा है। तुम क्रोधको शान्त करो; क्योंकि यह कल्याणमार्गका शत्रु है—

येनोपसृष्टात्पुरुषाल्लोक उद्विजते भृशम्।
न बुधस्तद्वशं गच्छेदिच्छन्नभयमात्मनः॥

(श्रीमद्भागवत ४। १२। ३२)

'क्रोधके वशीभूत हुए पुरुषसे सभी लोगोंको बड़ा भय होता है, इसलिये जो बुद्धिमान् पुरुष ऐसा चाहता है कि मुझसे किसी भी प्राणीको भय न हो और मुझे भी किसीसे भय न हो, उसे क्रोधके वशमें कभी नहीं होना चाहिये।'

'बेटा! यक्षोंके इतने संहारसे तुमसे कुबेरका अपराध बन गया है। तुम उन्हें यथाशीघ्र संतुष्ट कर लो। भगवान् तुम्हारा मङ्गल करें।'

ध्रुवने बड़ी श्रद्धासे अपने पितामहके चरणोंमें प्रणाम किया। इसके अनन्तर वे महर्षियोंसहित अपने लोकको चले गये।

अपना क्रोध त्यागकर ध्रुव भगवान् कुबेरके समीप गये और उनके सम्मुख हाथ जोड़कर खड़े हो गये।

'अपने पितामहके सदुपदेशसे तुमने वैरभावका त्याग कर दिया, इससे मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई', कुबेरने कहा। 'सच तो यह है कि न तो यक्षोंने तुम्हारे भाईको मारा है और न तुमने यक्षोंको। सम्पूर्ण जीवोंके जन्म और मृत्युके हेतु तो भगवान् काल हैं। भगवान् तुम्हारा कल्याण करें। तुम मुझसे कोई वर माँग लो।'

'श्रीहरिकी अखण्ड स्मृति बनी रहे!' ध्रुवने विनयपूर्वक वर माँगा। 'जिससे मनुष्य सहज ही दुस्त्यज संसारसागरसे तर जाता है।'

श्रीकुबेरने ध्रुवको अखण्ड भगवत्स्मृतिका वर दिया और वहीं अन्तर्धान हो गये। ध्रुवजी अपनी राजधानीको लौट आये।

ध्रुवजी अत्यन्त शीलवान्, ब्राह्मणभक्त, दीनवत्सल एवं मर्यादाके रक्षक थे। वे सदा यज्ञादि पावन कर्म एवं भगवच्चिन्तनमें लगे रहते थे। उन्होंने देखा, राजकार्य करते छत्तीस हजार वर्ष बीत गये और ये संसारकी सारी वस्तुएँ कालके गालमें पड़ी हुई हैं, अतएव अब तो उन्हें अपने आराध्यके भजनमें ही दिन व्यतीत करने चाहिये।

बस, उन्होंने अपने पुत्र उत्कलका राजतिलक किया और बदरिकाश्रमको चले गये। वहाँ स्नानादिसे निवृत्त होकर वे आसनपर बैठे और प्राणायामद्वारा वायुको वशमें कर लिया। फिर वे श्रीहरिके ध्यानमें तन्मय हो गये। ध्रुवजी प्रेमोन्मत्त होकर भगवान् वासुदेवका ध्यान कर रहे थे। उनका रोम-रोम पुलकित होता और नेत्रोंसे अश्रु झरते जाते। कुछ समय बाद उनका देहाभिमान सर्वथा गल गया। मैं कौन हूँ और कहाँ हूँ, इसकी स्मृति भी उन्हें नहीं रही।

अचानक उन्होंने देखा, जैसे चन्द्रमा उनके सम्मुख उतर रहा हो। समीप आनेपर उन्होंने देखा, एक सुन्दर विमान था। उससे चतुर्दिक् प्रकाश छिटक रहा था। उससे दो अत्यन्त श्याम वर्ण, किशोर, चतुर्भुज पार्षद उतरे। वे सुन्दर वस्त्र एवं दिव्य आभूषणोंसे अलंकृत थे।

उन्हें श्रीविष्णुके पार्षद जानकर ध्रुवजी उठकर खड़े हो गये। उन्होंने श्रीभगवान्‌का नाम लेते हुए उन्हें प्रणाम किया और हाथ जोड़े, सिर नीचा किये, श्रीभगवान्‌के नामका जप एवं उनके चरणोंका ध्यान करने लगे।

भगवान्‌के पार्षद सुनन्द और नन्दने मुस्कराते हुए ध्रुवके समीप आकर कहा—'भक्तवर ध्रुव! आपका मङ्गल हो। आपने पाँच वर्षकी आयुमें ही तप करके भगवान् वासुदेवका दर्शन प्राप्त कर लिया था। हम उन्हीं परम प्रभुके आदेशसे आपको उस लोकमें ले चलनेके लिये आये हैं, जहाँ सप्तर्षि भी नहीं पहुँच सके। केवल नीचेसे देखते रहते हैं। सम्पूर्ण नक्षत्रमण्डल उसकी परिक्रमा करते हैं। यह श्रेष्ठ विमान पुण्यश्लोक-शिखामणि प्रभुने आपके लिये भेजा है। आप इसपर बैठ जायँ।'

ध्रुवने स्नान और संध्या-वन्दनादि कर्म किया। बदरिकाश्रमके मुनियोंको प्रणाम कर उनका आशीर्वाद प्राप्त किया। इसके अनन्तर उक्त श्रेष्ठ विमानकी पूजा एवं उसकी परिक्रमा कर प्रभुके पार्षदोंका पूजन किया।

'मर्त्यधामके प्रत्येक प्राणीको मैं स्पर्श करता हूँ।' मूर्तिमान् कालको सम्मुख देखकर ध्रुवने कहा। 'तुम्हें मेरा स्पर्श प्राप्त हो।' और उसके मस्तकपर पैर रखा और विमानपर आरूढ़ होने लगे।

'क्या मैं अपनी जन्मदायिनी जननीको छोड़कर एकाकी वैकुण्ठधाम जाऊँगा ?' विमानपर चढ़ते ही ध्रुव विचार करने लगे।

'वह देखिये!' सुनन्द और नन्दने ध्रुवके मनकी बात जानकर उनका समाधान करनेके लिये कहा। 'आपकी परम पूजनीया माता दूसरे विमानपर आगे-आगे जा रही हैं।'

ध्रुवने देखा, दूसरा विमान विद्युत्कान्तिकी भाँति प्रकाश बिखेरता शून्यमें चला जा रहा है।

ध्रुव सर्वथा निश्चिन्त होकर श्रीहरिका स्मरण करते हुए विमानमें बैठ गये और वह परमधाम-अविचल धामके लिये उड़ चला।

आकाशमें मङ्गल-वाद्य बज उठे।

× × ×

यद् भ्राजमानं स्वरुचैव सर्वतो
लोकास्त्रयो ह्यनु विभ्राजन्त एते।
यन्नाव्रजञ्जन्तुषु येऽननुग्रहा
व्रजन्ति भद्राणि चरन्ति येऽनिशम्॥
शान्ताः समदृशः शुद्धाः सर्वभूतानुरञ्जनाः।
यान्त्यञ्जसाच्युतपदमच्युतप्रियबान्धवाः॥

(श्रीमद्भागवत ४। १२। ३६-३७)

'यह दिव्यधाम (विष्णुधाम) सब ओर अपने ही प्रकाशसे प्रकाशित है, इसीके प्रकाशसे तीनों लोक प्रकाशित हैं। इसमें जीवोंपर निर्दयता करनेवाले पुरुष नहीं जा सकते। यहाँ तो उन्हींकी पहुँच होती है, जो दिन-रात प्राणियोंके कल्याणके लिये शुभ कर्म ही करते रहते हैं।'............ जो शान्त, समदर्शी, शुद्ध और सब प्राणियोंको प्रसन्न रखनेवाले हैं तथा भगवद्भक्तोंको ही अपना एकमात्र सच्चा सुहृद् मानते हैं—ऐसे लोग ही सुगमतासे इस भगवद्धामको प्राप्त कर लेते हैं।'

—शि० दु०

(२)

गजेन्द्रोद्धारक भगवान् श्रीहरि

नायं वेद स्वमात्मानं यच्छक्त्याहंधिया हतम्।
तं दुरत्ययमाहात्म्यं भगवन्तमितोऽस्म्यहम्॥

(श्रीमद्भागवत ८। ३। २९)

'अहंबुद्धि आपकी मायारूपासे आत्माका स्वरूप ढक गया है, इसीसे यह जीव अपने उस स्वरूपको नहीं जान पाता। आपकी महिमा अपार है। उन सर्वशक्तिमान् एवं माधुर्यनिधि आप भगवान्के मैं शरण हूँ।'—गजेन्द्र

× × ×

अत्यन्त प्राचीन कालकी बात है। द्रविड देशमें एक पाण्ड्य-वंशी राजा राज्य करते थे। उनका नाम था—इन्द्रद्युम्न। वे भगवान्की आराधनामें ही अपना अधिक समय व्यतीत करते थे। यद्यपि उनके राज्यमें सर्वत्र सुख-शान्ति थी, प्रजा प्रत्येक रीतिसे संतुष्ट थी, तथापि राजा इन्द्रद्युम्न अपना समय राजकार्यमें कम ही दे पाते थे। 'श्रीभगवान् ही मेरे राज्यकी व्यवस्था करते हैं। उनका राज्य, चिन्ता वे करें।' वे तो, बस, अपने इष्ट परम प्रभुकी उपासनामें ही दत्तचित्त रहते।

राजा इन्द्रद्युम्नके मनमें आराध्य-आराधनाकी लालसा उत्तरोत्तर बढ़ती ही गयी, इस कारण वे राज्यका त्याग कर मलयपर्वतपर रहने लगे। उनका वेष तपस्वियोंका था। सिरके बाल बढ़कर जटाके रूपमें हो गये। राजा इन्द्रद्युम्नने मौन-व्रत धारण कर लिया था और वे स्नानादिसे निवृत्त होकर निरन्तर परब्रह्म परमात्माकी आराधनामें तल्लीन रहते। उनके मन और प्राण भी श्रीहरिके चरण-कमलोंके मधुकर बने रहते। इसके अतिरिक्त उन्हें जगत्की कोई वस्तु न सुहाती और न उन्हें राज्य, कोष, प्रजा, पत्नी आदि किसी प्राणी-पदार्थकी स्मृति ही होती।

एक बारकी बात है, राजा इन्द्रद्युम्न प्रतिदिनकी भाँति अपने नियमानुसार स्नानादिसे निवृत्त होकर सर्वसमर्थ प्रभुकी उपासनामें तल्लीन थे। उन्हें बाह्य जगत्का तनिक भी ध्यान न था। संयोगवश उसी समय महर्षि अगस्त्य अपने शिष्य-समुदायके साथ वहाँ पहुँचे।

न पाद्य, न अर्घ्य, न स्वागत! मौनव्रती राजा इन्द्रद्युम्न तो परम प्रभुके ध्यानमें निमग्न थे।

महर्षि अगस्त्य कुपित हो गये। इन्द्रद्युम्नको उन्होंने शाप दे दिया—

तस्मा इमं शापमदादसाधु-
रयं दुरात्माकृतबुद्धिरद्य।
विप्रावमन्ता विशतां तमोऽन्धं
यथा गजः स्तब्धमतिः स एव॥

(श्रीमद्भागवत ८। ४। १०)

'इस राजाने गुरुजनोंसे शिक्षा नहीं ग्रहण की है, अभिमानवश परोपकारसे निवृत्त होकर मनमानी कर रहा है। ब्राह्मणोंका अपमान करनेवाला यह हाथीके समान जडबुद्धि है, इसलिये इसे वही घोर अज्ञानमयी हाथीकी योनि प्राप्त हो।'

क्रुद्ध महर्षि अगस्त्य भगवद्भक्त इन्द्रद्युम्नको शाप देकर चले गये। नरेशने इसे श्रीभगवान्का मङ्गलमय विधान समझकर प्रभुके चरणोंमें सिर रख दिया।

× × ×

क्षीराब्धिमें दस सहस्र योजन लंबा-चौड़ा और ऊँचा एक त्रिकूट नामक-पर्वत था। वह पर्वत अत्यन्त सुन्दर एवं श्रेष्ठ था। उक्त पर्वतराज त्रिकूटकी तराईमें ऋतुमान्-नामक भगवान् वरुणका एक क्रीडा-कानन था। उसके चारों ओर दिव्य वृक्ष सुशोभित थे। वे वृक्ष सदा पुष्पों और फलोंसे लदे रहते थे।

उक्त काननमें एक अत्यन्त सुन्दर एवं विशाल सरोवर था। उसमें खिले कमलोंकी अद्भुत शोभा थी। उनपर भ्रमर गुंजार करते रहते थे। उसके तटपर चारों ओर अत्यन्त सुगन्धित पुष्पोंवाले वृक्ष शोभा दे रहे थे। वे वृक्ष प्रत्येक ऋतुमें हरे-भरे और पुष्पित रहते थे। देवाङ्गनाएँ वहाँ क्रीड़ा करने आया करती थीं।

उक्त भगवान् वरुणके क्रीडा-कानन ऋतुमान्के समीप पर्वतश्रेष्ठ त्रिकूटके गहन वनमें हथिनियोंके साथ अत्यन्त शक्तिशाली और अमित-पराक्रमी एक गजेन्द्र रहता था। वह श्रेष्ठ गजोंमें अग्रगण्य और यूथपति था। यूथपति गजेन्द्र अपनी हथिनियों, कलभों और दूसरे हाथियोंके साथ वनमें विचरण किया करता था। अत्यन्त बलशाली गजेन्द्रकी महान् शक्तिसे हिंसक जंगली पशु सदा ही सशङ्क रहते। उसके गण्डसे चूनेवाली मदधाराकी गन्धसे व्याघ्र, गैंडे, नाग और चमरी गाय आदि जंगली पशु दूर भाग जाते।

एक बारकी बात है। गर्मीके दिन थे। मध्याह्नकाल और प्रचण्ड धूप थी। गजेन्द्र अपने साथियोंसहित तृषाधिक्य-से व्याकुल हो गया। कमलके गन्धसे सुगन्धित वायुको सूँघकर वह उक्त अत्यन्त सुन्दर और चित्ताकर्षक विशाल सरोवरके तटपर जा पहुँचा।

गजेन्द्रने उक्त सरोवरके अत्यन्त निर्मल, शीतल और मीठे जलमें प्रवेश किया। पहले तो उसने जल पीकर अपनी तृषा बुझायी और फिर उक्त जलमें स्नानकर अपना श्रम दूर किया। फिर उसने जल-क्रीड़ा आरम्भ की। वह अपनी सूँड़में जल भरकर उसकी फुहारोंसे हथिनियोंको स्नान कराने लगा तथा कलभोंके मुँहमें सूँड़ डालकर उन्हें जल पिलाने लगा। दूसरी हथिनियाँ और गज अपनी सूँड़ोंकी फुहारसे गजेन्द्रको स्नान करा रहे तथा उसका सत्कार कर रहे थे।

अचानक गजेन्द्रने सूँड़ उठाकर चीत्कार की। पता नहीं, किधरसे एक मगरने आकर उसका पैर पकड़ लिया। गजेन्द्रने अपना पैर छुड़ानेके लिये पूरी शक्ति लगायी, पर उसका वश नहीं चला, पैर नहीं छूटा। अपने स्वामी गजेन्द्रको ग्राहग्रस्त देखकर हथिनियाँ, कलभ और अन्य गज अत्यन्त व्याकुल हो गये। वे सूँड़ उठाकर चिग्घाड़ने और गजेन्द्रको बचानेके लिये सरोवरके भीतर-बाहर दौड़ने लगे। उन्होंने पूरी चेष्टा की, पर वे सफल नहीं हुए।

महर्षि अगस्त्यके शापसे शप्त महाराज इन्द्रद्युम्न ही गजेन्द्र हो गये थे और गन्धर्वश्रेष्ठ हूहू महर्षि देवलके शापसे ग्राह हो गये थे। वे भी अत्यन्त पराक्रमी थे।

संघर्ष चल रहा था। गजेन्द्र बाहर खींचता और ग्राह गजेन्द्रको भीतर। सरोवरका निर्मल जल गँदला हो गया। कमल-दल क्षत-विक्षत हो गये। जल-जन्तु व्याकुल हो उठे। गजेन्द्र और ग्राहका संघर्ष एक सहस्र वर्षतक चलता रहा। दोनों जीवित रहे। यह दृश्य देखकर देवगण चकित हो गये।

अन्ततः गजेन्द्रका शरीर शिथिल हो गया। उसके शरीरमें शक्ति और मनमें उत्साह नहीं रहा; परंतु जलचर होनेके कारण ग्राहकी शक्तिमें कोई कमी नहीं आयी। उसकी शक्ति बढ़ गयी और वह नवीन उत्साहसे और अधिक शक्ति लगाकर गजेन्द्रको खींचने लगा।

सर्वथा असमर्थ गजेन्द्रके प्राण संकटमें पड़ गये। उसकी शक्ति और पराक्रमका अहंकार चूर्ण हो गया। वह पूर्णतया निराश हो गया, किंतु पूर्वजन्मकी निरन्तर भगवदाराधनाके फलस्वरूप उसे भगवत्स्मृति हो आयी। उसने मन-ही-मन निश्चय किया—'मैं कराल कालके भयसे चराचर प्राणियोंके शरण्य सर्वसमर्थ प्रभुकी शरण ग्रहण करता हूँ।'

गजेन्द्र इस निश्चयके साथ मनको एकाग्रकर पूर्वजन्ममें सीखे श्रेष्ठ स्तोत्रके द्वारा परम प्रभुकी स्तुति करने लगा—

'जो जगत्के मूल कारण हैं और सबके हृदयमें पुरुष-रूपमें विराजमान हैं एवं समस्त जगत्के एकमात्र स्वामी हैं, जिनके कारण इस संसारमें चेतना जाग्रत् होती है—उन भगवान्के चरणोंमें मैं प्रणाम करता हूँ। प्रेमपूर्वक उसी प्रभुका ध्यान करता हूँ। प्रलयकालमें सब कुछ नष्ट हो जाने-पर भी जो महामहिम परमात्मा बने रहते हैं, वे प्रभु मेरी रक्षा करें। नटकी भाँति अनेक वेष धारण करनेवाले प्रभुका वास्तविक स्वरूप एवं रहस्य देवता भी नहीं जानते, फिर अन्य कोई उसका कैसे वर्णन करे। वे प्रभु मेरी रक्षा करें। जिन कल्याणमय प्रभुके दर्शनके लिये संत-महात्मागण सर्वस्व त्यागकर वनमें जितेन्द्रिय हो अखण्ड तपश्चरण करते हैं, वे परमात्मा मेरी रक्षा करें। मैं सर्वशक्तिमान्, सर्वैश्वर्यमय, सर्वसमर्थ प्रभुके चरणोंमें नमस्कार करता हूँ। मैं जीवित रहना नहीं चाहता। इस अज्ञानमय योनिमें रहकर करूँगा ही क्या? मैं तो आत्मप्रकाशको आच्छादित करनेवाले अज्ञानके आवरणसे मुक्त होना चाहता हूँ, जो कालक्रमसे अपने-आप नहीं छूट सकता, किंतु केवल भगवत्कृपा और तत्त्वज्ञानद्वारा ही नष्ट होता है। अतएव मैं उन श्रीहरिके चरणोंमें प्रणाम करता हूँ, जिनकी कृपासे जीवन और मृत्युके कठोर पाशसे जीव सहज ही छूट जाता है। हे प्रभो! आपकी मायाके वश होकर जीव अपने स्वरूपको नहीं जान पाता। आपकी महिमाका पार नहीं। आप अनादि, अनन्त, सर्वशक्तिमान्, सर्वान्तर्यामी एवं सौन्दर्य-माधुर्य-निधि हैं। मैं आपके शरण हूँ। आप मेरी रक्षा करें।'

गजेन्द्रकी स्तुति सुनकर सर्वात्मा सर्वदेवरूप श्रीहरि प्रकट हो गये। गजेन्द्रको पीड़ित देखकर श्रीहरि वेदमय गरुडपर आरूढ़ होकर अत्यन्त शीघ्रतासे उक्त सरोवरके तटपर गजेन्द्रके पास पहुँच गये।

जब जीवनसे निराश और पीड़ासे छटपटाते गजेन्द्रने हाथमें चक्र लिये गरुडारूढ़ श्रीहरिको तीव्रतासे अपनी ओर आते देखा तो उसने कमलका एक सुन्दर पुष्प अपनी सूँड़में लेकर ऊपर उठाया और बड़े कष्टसे उसने कहा—'नारायण! जगद्गुरो! भगवन्! आपको नमस्कार है।'

गजेन्द्रको अत्यन्त पीड़ित देखकर सर्वशक्तिमान् श्रीहरि गरुडकी पीठसे कूद पड़े और गजेन्द्रके साथ ही ग्राहको भी सरोवरसे बाहर खींच लाये। इसके उपरान्त श्रीहरिने तुरंत अपने तीक्ष्ण चक्रसे ग्राहका मुँह फाड़कर गजेन्द्रको मुक्त कर दिया।

ब्रह्मादि देवगण श्रीहरिकी प्रशंसा करते हुए उनके ऊपर स्वर्गीय सुमनोंकी वृष्टि करने लगे। दुन्दुभियाँ बज उठीं। गन्धर्व नृत्य और गान करने लगे। सिद्ध, ऋषि-महर्षि परब्रह्म श्रीहरिका गुणानुवाद गाने लगे।

ग्राह दिव्यशरीरधारी हो गया। उसने श्रीभगवान्के चरणोंमें सिर रखकर प्रणाम किया और फिर वह भगवान्के गुणोंकी प्रशंसा करने लगा। भगवान् श्रीहरिके मङ्गलमय वरद हस्तके स्पर्शसे पापमुक्त होकर शाप हूहू गन्धर्वने प्रभुकी परिक्रमा की और उनके त्रैलोक्यवन्दित चरण-कमलोंमें प्रणामकर वह अपने लोकको चला गया।

भगवान् श्रीहरिने गजेन्द्रका उद्धार कर उसे अपना पार्षद बना लिया। गन्धर्व, सिद्ध और देवगण उनकी इस लीलाका गान करने लगे। गजेन्द्रकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर सर्वात्मा एवं सर्वभूतस्वरूप श्रीहरिने सब लोगोंके सामने कहा—

ये मां स्तुवन्त्यनेनाङ्ग प्रतिबुध्य निशात्यये।
तेषां प्राणात्यये चाहं ददामि विमलां मतिम्॥

(श्रीमद्भागवत ८। ४। २५)

'प्यारे गजेन्द्र! जो लोग ब्राह्ममुहूर्तमें जगकर तुम्हारी की हुई स्तुतिसे* मेरा स्तवन करेंगे, मृत्युके समय उन्हें मैं निर्मल बुद्धिका दान करूँगा।'

श्रीहरिने पार्षद रूप गजेन्द्रको साथ लिया और गरुडारूढ़ हो अपने दिव्यधामके लिये प्रस्थित हो गये।

—शि० दु०

[१८]

भगवान् परशुराम

महर्षि जमदग्निकी पतिपरायणा पत्नी (महाराज रेणुकी पुत्री) रेणुकाके गर्भसे पाँच पुत्र उत्पन्न हुए—वसुमान्, वसुषेण, वसु, विश्वावसु और पाँचवें सबसे छोटे परशुराम। इनमेंसे परशुराम निखिलसृष्टिनायक श्रीविष्णुके आवेशावतार हैं। प्रकट होते ही ये पार्वतीवल्लभ भगवान् शंकरकी आराधना करनेके लिये कैलासपर्वतपर चले गये।

* श्रीमद्भागवतके आठवें स्कन्धका तृतीय अध्याय 'गजेन्द्र-स्तुति' है।

देवाधिदेव महादेवने संतुष्ट होकर इन्हें वर माँगनेके लिये कहा। परशुरामजी बोले—'प्रभो! आप कृपापूर्वक मुझे कभी कुण्ठित न होनेवाला अमोघ अस्त्र प्रदान कीजिये।'

भगवान् शंकरने इन्हें अनेक अस्त्र-शस्त्रोंसहित दिव्य परशु प्रदान किया। वह दिव्य परशु भगवान् शंकरके उसी महातेजसे निर्मित हुआ था, जिससे श्रीविष्णुका सुदर्शन चक्र और देवराज इन्द्रका वज्र बना था। अत्यन्त तीक्ष्ण धारवाला अमोघ परशु धारण करनेके कारण भगवान् 'राम'-का परशुसहित नाम 'परशुराम' पड़ा।

परशुरामजी बाल्यकालसे ही अत्यन्त वीर, पराक्रमी, अस्त्र-शस्त्र-विद्याके प्रेमी, त्यागी, तपस्वी एवं सुन्दर थे। धनुर्वेदकी विधिवत् शिक्षा इन्होंने अपने पितासे ही प्राप्त की। ये 'रुरु' नामक मृगका चर्म धारण करते। कंधेपर धनुर्बाण एवं हाथमें दिव्य परशु लेकर चलते समय ये वीर-रसके सजीव विग्रह प्रतीत होते थे। पिताके चरणोंमें इनकी अनन्य भक्ति थी।

एक बारकी बात है, संध्याका समय था। माता रेणुका अपने आश्रमसे जल लेने यमुना-तटपर गयीं। संयोगवश उसी समय गन्धर्वराज चित्ररथ अप्सराओं-सहित वहाँ आकर जलमें क्रीड़ा करने लगा। माता रेणुकाका भाव दूषित हो गया और यह बात महर्षि जमदग्नि-को विदित हो गयी। माता रेणुका जल लेकर लौटीं तो क्रुद्ध होकर उन्होंने अपने पुत्रोंसे कहा—'इस पापिनीका वध कर दो।' किंतु वहाँ उपस्थित चारों पुत्र मातृस्नेहवश चुपचाप खड़े रहे।

'बेटा! तुम अपनी दुष्टा माता और इन चारों भाइयों-का सिर उतार लो।' परशुरामजी वनसे लौटे ही थे कि उन्हें क्रुद्ध पिताने आज्ञा दी। अपने पिताके तपोबलसे परिचित परशुरामजीने तुरंत परशु उठाया और मातासहित अपने चारों भाइयोंका मस्तक काटकर पृथक् कर दिया।

'धर्मज्ञ राम! मैं तुमपर प्रसन्न हूँ।' क्रोध शान्त होनेपर महर्षि जमदग्निने परशुरामजीसे कहा। 'तुम इच्छित वर माँग लो।'

'पिताजी! मेरी माता जीवित हो जायँ और उन्हें मेरे द्वारा मारे जानेकी स्मृति न रहे।' परशुरामजीने हाथ जोड़कर पितासे निवेदन किया—'और वह मानस-पाप उन्हें स्पर्श न करे। मेरे चारों भाई जीवित हो जायँ। युद्धमें मेरा कोई सामना न कर सके और मैं दीर्घायु प्राप्त करूँ।'

'यही होगा।' मुस्कराकर जमदग्निजीने कहा—'इन सबके सिर इनके धड़ोंसे सटा दो।'

परशुरामजीने पिताकी आज्ञाका पालन किया और उनकी माता तथा अग्रज अनायास ही उठ बैठे। उन्होंने समझा, हमें गाढ़ निद्रा आ गयी थी।

एक बार हैहयवंशीय महाराज कृतवीर्यके परम पराक्रमी पुत्र माहिष्मतीपुरी (आधुनिक माहेश्वर)-के नरेश वीरवर सहस्रार्जुन महर्षि जमदग्निके आश्रममें उपस्थित हुए। महर्षिने कामधेनुके द्वारा ससैन्य उनका अद्भुत स्वागत किया। शूरशिरोमणि सहस्रार्जुनने महर्षिसे कामधेनु दे देनेके लिये कहा, पर महर्षि जमदग्निने कहा—'राजन्! यह कामधेनु तो मेरे समस्त धर्म-कर्मोंकी जननी है। यज्ञिय सामग्री, देवता, ऋषि, पितर और अतिथियोंका सत्कार ही नहीं, इसी गौके द्वारा मेरे सारे इहलौकिक तथा पारलौकिक कर्म सम्पन्न होते हैं। मैं इसे देनेका विचार भी कैसे कर सकता हूँ।'

शक्तिसम्पन्न नरेश सहस्रार्जुनने बलपूर्वक गाय छीन ली और सेनासहित अपनी माहिष्मतीपुरीके लिये चलते बने। सवत्सा कामधेनु पीछे ऋषिकी ओर देख-देखकर रँभाती जा रही थी। दुष्ट क्षत्रिय उसे दण्ड-प्रहार कर हाँकते ले जा रहे थे।

परम वीतराग, क्षमामूर्ति ब्राह्मण-ऋषिके नेत्रोंमें आँसू भर आये, पर वे कुछ बोल न सके। चुपचाप श्रीभगवान्के ध्यानमें बैठ गये।

'मैं अपने पिताका मलिन और उदास मुँह नहीं देख सकता, माँ!' समिधा लिये वनसे लौटकर मूर्तिमान् तप और तेज परशुरामने अपनी माताके मुखसे गो-हरणका संवाद सुना तो क्रोधसे काँप उठे। उन्होंने अपनी मातासे कहा—'माता! मैं उस कृतघ्न और दुष्ट नरेशको यथोचित दण्ड दे, कामधेनुको लेकर लौटनेपर ही पूज्य पिताके चरणोंमें प्रणाम निवेदन करूँगा।'

माता रेणुका कुछ बोल भी नहीं सकी कि उग्रताकी प्रचण्ड मूर्ति जामदग्न्य अत्यन्त शीघ्रतासे अपना धनुष, अक्षय तूणीर और प्रचण्ड परशु ले सहस्रार्जुनके पीछे

दौड़े। तपस्यासे दीप्त, गौर वर्ण, बिखरी काली जटाएँ, कटिमें रुरु मृगका चर्म, स्कन्धपर धनुष, पृष्ठदेशपर अक्षय तूणीर, दाहिने हाथमें विद्युत्-तुल्य चमचमाता दिव्य अमोघ परशु, हृदयमें क्रोधकी ज्वाला लिये और लाल-लाल नेत्रोंसे अङ्गार बरसाते वायुवेगसे दौड़ते परशुराम—जैसे महाकालकी प्रचण्ड मूर्ति सहस्रार्जुनको निगल जानेके लिये दौड़ रही हो।

उद्धत कार्तवीर्य अपनी माहिष्मतीपुरीमें प्रविष्ट भी नहीं हो पाया था कि पितृभक्त, परम तेजस्वी ऋषिकुमार परशुरामकी गर्जना सुनकर सहम गया। अपने पीछे प्रज्वलित अग्नितुल्य परशुरामको युद्धके लिये प्रस्तुत देखकर उसने अत्यन्त उपेक्षा-भावसे अपने सैनिकोंसे कहा—'ब्राह्मण कामधेनु लेने आया है। इसे मार डालो।'

पर उसके आश्चर्यकी सीमा न रही, जब उसके लक्षाधिक सशस्त्र वीर सैनिक कुछ ही क्षणोंमें परशुरामके प्रचण्ड परशुकी भेंट हो गये। कार्तवीर्यने एक साथ पाँच सौ धनुषोंसे पाँच सौ तीक्ष्ण शरोंकी वर्षा परशुरामपर की, पर उनके एक ही धनुषके एक साथ छूटे हुए सहस्र शरोंकी वर्षासे कार्तवीर्यके शर बीचमें ही नष्ट हो गये और उसके अङ्ग-प्रत्यङ्गसे रक्तकी धाराएँ निकलने लगीं। परम धीर सहस्रार्जुन घबरा गया। धनुर्बाणसे सफलताकी आशा न देख वह परशुरामको पर्वतके नीचे दबाकर मार डालनेके लिये पर्वत उखाड़ना ही चाहता था कि मूषकपर बिडालकी भाँति सहस्रार्जुनपर परशुराम चढ़ बैठे। उन्होंने उसकी सहस्र भुजाओंको काटकर पृथ्वीपर फेंक दिया और फिर उसका सिर धड़से अलग करके वे क्रोधके प्रज्वलित विग्रहकी भाँति चतुर्दिक् शत्रुओंकी प्रतीक्षा करने लगे। सहस्रार्जुनके दस हजार पुत्र युद्धभूमिसे भाग गये थे।

परशुरामजीने एक ओर अत्यन्त भीत और चकित कामधेनुको देखा तो जैसे महापाषाण द्रवित हो गया हो; परशुरामजीके नेत्रोंसे जलकी दो बूँदें लुढ़क पड़ीं। उन्होंने गायके गलेमें अपनी लंबी बाँहें डाल दीं तथा उसे सहलाकर प्यारपूर्वक ले चले।

'सार्वभौम नृपतिका वध ब्रह्महत्याके तुल्य पातक है।' सवत्सा कामधेनुसहित रामके श्रद्धापूर्वक प्रणाम करनेपर क्षमामय महर्षि जमदग्निने अशान्त चित्तसे अपने पुत्रसे कहा। 'ब्राह्मणका सर्वोपरि धर्म क्षमा है। तुम्हारे लिये प्रायश्चित्त आवश्यक है।'

'पिताजी! प्रेमपूर्वक स्वागत करनेवाले तपस्वी ब्राह्मणकी गाय बलपूर्वक छीन लेनेवाले नराधम और परम पातकीका वध पाप नहीं।' परशुरामजीने सिर झुकाकर शान्तिपूर्वक उत्तर दिया। 'पर आपके आदेशानुसार मैं प्रायश्चित्त अवश्य करूँगा। आपकी प्रत्येक आज्ञा मुझे शिरोधार्य है।'

अपने पिता महर्षि जमदग्निके आदेशानुसार निस्स्पृह तपस्वी परशुरामजी अपने हृदयमें भुवनमोहन परम प्रभुकी मङ्गलमयी छविका ध्यान एवं मुखसे उनके सुमधुर नामोंका धीरे-धीरे कीर्तन करते हुए तीर्थयात्राके लिये निकल पड़े। परशुरामजी एक वर्षमें पिताके बताये सम्पूर्ण तीर्थोंका सविधि पर्यटनकर अपने आश्रममें लौटे, तब उन्होंने माता-पिताके चरणोंमें अत्यन्त भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और उन्होंने भी अपने निष्पाप तपस्वी पुत्रको अत्यन्त प्रसन्न होकर शुभाशीर्वाद प्रदान किया।'

वीर सहस्रार्जुनके कायर पुत्र परशुरामजीके सम्मुख तो नहीं ठहर सके, प्राणभयसे भाग गये; किंतु वे अपने पिताके वधका बदला लेनेके लिये सदा सचिन्त रहते थे। एक बार जब उन्हें विदित हुआ कि अपने चारों भाइयोंसहित राम वनमें दूर चले गये हैं, तब वे नर-राक्षस जमदग्निके आश्रमपर पहुँचे और चोरीसे ध्यानरत महर्षिका मस्तक उतार, उसे अपने साथ ले, आश्रमको नष्ट करते हुए भाग गये।

'हा राम! हा राम!!'—माताका करुण-क्रन्दन सुनकर परशुराम भागते हुए आश्रमपर आये। उन्होंने सहस्रार्जुनके नीच पुत्रोंके द्वारा अपने परमपूज्य पिताकी हत्या देखी तो वे अपना अक्षय तूणीरसहित धनुष और तीक्ष्ण परशु लेकर दौड़े। माहिष्मतीपुरीमें पहुँचते ही वे सहस्रार्जुनके सहस्रों पुत्रोंको अपने अमोघ परशुसे काटने लगे। साक्षात् कालकी भाँति वे दुष्ट क्षत्रियोंको काट रहे थे। माहिष्मतीपुरी जैसे रक्तमें डूब गयी। सहस्रार्जुनके पाँच पुत्र जयध्वज, शूरसेन, वृषभ, मधु और ऊर्जित किसी प्रकार छुक-छिपकर प्राण बचाकर भाग जानेमें समर्थ हुए, पर अत्युग्र परशुरामजी क्रूरकर्मी क्षत्रियोंका वध करते ही रहे। वे नगर-नगर और गाँव-गाँवमें जाकर पृथ्वीके भारभूत कुकर्मी और पातकी क्षत्रियोंका संहार करने लगे। उन्होंने पृथ्वीको क्षत्रिय-शून्य समझकर अपने पिताके सिरको धड़से जोड़कर उनका विधिवत् दाह-संस्कार किया। महर्षि जमदग्निको स्मृतिरूप संकल्पमय शरीर तथा सप्तर्षियोंमें सातवाँ स्थान मिला।

भगवान् परशुरामने पृथ्वीको इक्कीस बार क्षत्रियोंसे हीन कर दिया। वे क्षत्रियोंको ढूँढ़-ढूँढ़कर एकत्र करते और कुरुक्षेत्रमें ले जाकर उनका वध कर डालते। इस प्रकार परशुरामजीने क्षत्रियोंके रक्तसे पाँच सरोवर भर दिये। वह स्थान 'समन्तपञ्चक' नामसे प्रसिद्ध है।

उन सरोवरोंके रक्तरूपी जलसे भगवान् परशुरामने अपने पितरोंका तर्पण किया। परशुरामजीके ऋचीक आदि पितृगण प्रसन्न होकर उनके समीप आये और उन्हें इच्छित वर माँगनेके लिये कहा। अपने पितरोंके चरणोंमें प्रणाम कर तपस्वी परशुरामजीने उनसे प्रार्थना की—

यदि मे पितरः प्रीता यद्यनुग्राह्यता मयि।
यच्च रोषाभिभूतेन क्षत्रमुत्सादितं मया॥
अतश्च पापान्मुच्येऽहमेष मे प्रार्थितो वरः।
ह्रदाश्च तीर्थभूता मे भवेयुर्भुवि विश्रुताः॥
(महा०, आदि० २। ८-९)

'यदि आप सब हमारे पितर मुझपर प्रसन्न हैं और मुझे अपना अनुग्रह-पात्र समझते हैं तो मैंने जो क्रोधवश क्षत्रियवंशका विध्वंस किया है, इस कुकर्मके पापसे मैं मुक्त हो जाऊँ और ये मेरे बनाये हुए सरोवर पृथ्वीमें प्रसिद्ध तीर्थ हो जायँ। यही वर मैं आपलोगोंसे चाहता हूँ।'

'यही होगा।' पितरोंने परशुरामजीको वर देते हुए कहा। 'पर अब शेष क्षत्रिय-वंशका संहार मत करना। उन्हें क्षमा कर देना।'

अपने पूज्य पितरोंके आदेशसे जमदग्निनन्दन शान्त हो गये। उस समय सम्पूर्ण वसुंधरा परशुरामजीके अधीन थी। उनका विरोध करनेका साहस किसीमें नहीं था; किंतु उन्हें राज्य-सुख एवं वैभवकी कोई कामना नहीं थी। फलतः उन्होंने सारी पृथ्वी कश्यपजीको दान कर दी।

जब श्रीभगवान्‌के आवेशावतार परशुरामजीने सम्पूर्ण पृथ्वीको तृणतुल्य समझकर दान कर दिया, तब महर्षि कश्यपने उनसे कहा—'तुम मेरी पृथ्वी छोड़ दो और अपने लिये समुद्रसे स्थान माँग लो।'

परशुरामजी तुरंत वहाँसे महेन्द्रपर्वतपर चले गये। उस समय महर्षि भरद्वाजके यशस्वी पुत्र द्रोण धनुर्वेद, दिव्यास्त्रों एवं नीतिशास्त्रके ज्ञानके लिये भगवान् परशुरामके पास महेन्द्रपर्वतपर पहुँचे।

'मैं आङ्गिरस-कुलोत्पन्न महर्षि भरद्वाजका अयोनिज पुत्र द्रोण हूँ।' अपना परिचय देते हुए द्रोणने परशुरामजीके चरणोंमें प्रणाम किया और कहा—'मैं धनकी इच्छासे आपके पास आया हूँ, आप मुझपर दया करें।'

परमविरक्त परशुरामजीने द्रोणसे कहा—

शरीरमात्रमेवाद्य मया समवशेषितम्।
अस्त्राणि वा शरीरं वा ब्रह्मन्नेकतमं वृणु॥
(महा०, आदि० १६५। १०)

'ब्रह्मन्! अब तो केवल मैंने अपने शरीरको ही बचा रखा है (शरीरके सिवा सब कुछ दान कर दिया)। अतः अब तुम मेरे अस्त्रों अथवा यह शरीर—दोनोंमेंसे किसी एकको माँग लो।'

'प्रभो! आप मुझे सम्पूर्ण अस्त्र, उनके प्रयोग तथा उपसंहारकी विधि प्रदान करें।' द्रोणने निवेदन किया।

तब रेणुकानन्दनने अपने सब अस्त्र द्रोणको दे दिये। आचार्य द्रोण भृगुनन्दन परशुरामजीसे दुर्लभ ब्रह्मास्त्रका भी ज्ञान प्राप्तकर धरतीपर अत्यधिक शक्तिशाली हो गये।

राजा युधिष्ठिरके राज्याभिषेकके समय महातपस्वी व्यास, देवल, असित तथा अन्य महर्षियोंके साथ जामदग्न्यने भी उनका अभिषेक किया था।

भीष्मपितामहने भी इनसे अस्त्र-विद्या सीखी थी। उन्होंने अपने मुखारविन्दसे कहा था—"एक बार मुझसे मेरे गुरु परम तेजस्वी परशुरामजीका युद्ध हुआ। परशुरामजीके पास रथ नहीं था। तब मैंने कहा—'ब्रह्मन्! मैं रथपर बैठा हूँ और आप धरतीपर खड़े हैं। इस कारण मैं आपसे युद्ध नहीं करूँगा। मुझसे युद्ध करनेके लिये आप कवच पहनकर रथारूढ़ हो जायँ।'"

"तब युद्ध-भूमिमें मुस्कराते हुए परशुरामजीने मुझसे कहा—

रथो मे मेदिनी भीष्म वाहा वेदाः सदश्ववत्॥
सूतश्च मातरिश्वा वै कवचं वेदमातरः।
सुसंवीतो रणे ताभिर्योत्स्येऽहं कुरुनन्दन॥
(महा०, उद्योग० १७९। ३-४)

'कुरुनन्दन भीष्म! मेरे लिये तो पृथ्वी ही रथ है, चारों वेद ही उत्तम अश्वोंके समान मेरे वाहन हैं, वायुदेव ही सारथि हैं और वेदमाताएँ (गायत्री, सावित्री और

सरस्वती) ही कवच हैं । इन सबसे आवृत एवं सुरक्षित होकर मैं रणक्षेत्रमें युद्ध करूँगा ।'

''इतना कहकर पराक्रमी परशुरामजीने मुझे अपने तीक्ष्ण शरोंसे घेर लिया । उस समय मैंने देखा—'परशुरामजी एक नगरतुल्य विस्तृत, अद्भुत एवं दिव्य विमानमें बैठे हैं। उसमें दिव्य अश्व जुते थे । वह स्वर्णनिर्मित रथ प्रत्येक रीतिसे सजा हुआ था । उसमें सम्पूर्ण श्रेष्ठ आयुध रखे हुए थे । परशुरामजीने सूर्य-चन्द्र-खचित कवच धारण कर रखा था और उनके प्रिय सखा वेदवेत्ता अकृतव्रण उनके सारथिका कार्य कर रहे थे ।

''परम पराक्रमी, परम तेजस्वी, परम तपस्वी, परम पितृभक्त भगवान् परशुरामजीके साथ मेरा भयानक संग्राम हुआ। सुहृदोंके समझानेसे युद्ध बंद हुआ तो मैंने परमर्षि परशुरामजीके समीप जाकर उनके चरणोंमें प्रणाम किया। परशुरामजीने मुस्कराकर मुझसे कहा—

त्वत्समो नास्ति लोकेऽस्मिन् क्षत्रियः पृथिवीचरः ।
गम्यतां भीष्म युद्धेऽस्मिंस्तोषितोऽहं भृशं त्वया ॥

(महा०, उद्योग० १८५ । ३६)

'भीष्म ! इस जगत्में भूतलपर विचरनेवाला कोई भी क्षत्रिय तुम्हारे समान नहीं है । जाओ, इस युद्धमें तुमने मुझे बहुत संतुष्ट किया है ।'

श्रीपरशुरामजी कल्पान्त-स्थायी हैं । किसी-किसी भाग्यशाली पुण्यात्माको उनके दर्शन भी हो जाते हैं ।

—शि० दु०

[१९]

भगवान् व्यास

लोकोत्तर-शक्ति-सम्पन्न भगवान् व्यास भगवान् नारायणके कलावतार थे । वे महाज्ञानी महर्षि पराशरके पुत्ररूपमें प्रकट हुए थे । उनका जन्म कैवर्तराजकी पोष्यपुत्री महाभागा सत्यवतीके गर्भसे यमुनाजीके द्वीपमें हुआ था। इस कारण उन्हें 'पाराशर्य' और 'द्वैपायन' भी कहते हैं। उनका वर्ण घननील था, अतएव वे 'कृष्णद्वैपायन' नामसे प्रख्यात हैं। बदरीवनमें रहनेके कारण वे 'बादरायण' भी कहे जाते हैं। उन्हें अङ्गों और इतिहासोंसहित सम्पूर्ण वेद और परमात्मतत्त्वका ज्ञान स्वतः प्राप्त हो गया, जिसे दूसरे व्रतोपवासनिरत यज्ञ, तप और वेदाध्ययनसे भी प्राप्त नहीं कर पाते ।

'आवश्यकता पड़नेपर तुम जब भी मुझे स्मरण करोगी', धरतीपर पदार्पण करते ही अचिन्त्य-शक्तिशाली व्यासने अपनी जननीसे कहा—'मैं अवश्य तुम्हारा दर्शन करूँगा ।' और वे माताकी आज्ञासे तपश्चरणमें लग गये ।

प्रारम्भमें वेद एक ही था । ऋषिवर अङ्गिराने उसमेंसे सरल तथा भौतिक उपयोगके छन्दोंको पीछेसे संगृहीत किया । वह संग्रह 'अथर्वाङ्गिरस' या 'अथर्ववेद'के नामसे प्रसिद्ध हुआ । परम पुण्यमय सत्यवतीनन्दनने मनुष्योंकी आयु और शक्तिको अत्यन्त क्षीण होते देखकर वेदोंका व्यास (विभाग) किया । इसीलिये वे 'वेदव्यास' नामसे प्रसिद्ध हुए ।

फिर वेदार्थ-दर्शनकी शक्तिके साथ अनादि पुराणको लुप्त होते देखकर भगवान् कृष्णद्वैपायनने पुराणोंका प्रणयन किया । उन पुराणोंमें निष्ठाके अनुरूप आराध्यकी प्रतिष्ठा कर उन्होंने वेदार्थ चारों वर्णोंके लिये सहज-सुलभ कर दिया । अष्टादश पुराणोंके अतिरिक्त बहुत-से उपपुराण तथा अन्य ग्रन्थ भी भगवान् व्यासद्वारा ही निर्मित हैं ।

अत्यन्त विस्तृत पुराणोंमें कल्पभेदसे चरित्र-भेद पाये जाते हैं । समस्त चरित्र इस कल्पके अनुरूप हों तथा समस्त धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष-सम्बन्धी सिद्धान्त भी उनमें एकत्र हो जायँ—इस निश्चयसे वेदव्यासजीने महान् ग्रन्थ महाभारतकी रचना की । महाभारतको 'पञ्चम वेद' और 'कार्ष्णवेद' भी कहते हैं । श्रुतिका सारांश भगवान् व्यासने महाभारतमें एकत्र कर दिया । इस महान् ग्रन्थ-रत्नको भगवान् व्यास बोलते जाते थे और उसे साक्षात् गणेशजी लिखते गये ।

जब व्यासजीने महाभारत लिखनेके लिये गणेशजीसे प्रार्थना की तो गणेशजीने कहा—'लिखते समय यदि मेरी लेखनी क्षणभर भी न रुके तो मैं यह कार्य कर सकता हूँ ।'

'मुझे स्वीकार है;' जीवमात्रके परम हितैषी व्यासजीने कहा—'किंतु आप भी बिना समझे एक अक्षर भी न लिखें ।'

कहा जाता है कि भगवान् व्यासने आठ हजार आठ सौ ऐसे श्लोकोंकी रचना की है, जिनका ठीक-ठीक अर्थ वे और व्यासनन्दन श्रीशुकदेवजी ही समझते हैं । जब गणेशजी ऐसे श्लोकोंका अर्थ समझनेके लिये कुछ देर रुकते, तबतक व्यासजी और कितने ही श्लोकोंकी रचना कर डालते थे । इस प्रकार यह पञ्चम वेद लिपिबद्ध हुआ ।

भगवान् द्वैपायनने ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेदका अध्ययन क्रमशः अपने शिष्यों पैल, जैमिनि, वैशम्पायन और सुमन्तुको और महाभारतका अध्ययन रोमहर्षण सूतको कराया ।

सर्वश्रेष्ठ वरदायक, महान् पुण्यमय, यशस्वी वेदव्यासजी राजा जनमेजयके सर्पयज्ञकी दीक्षा लेनेका संवाद पाकर वेद-वेदाङ्गोंके पारंगत विद्वान् शिष्योंके साथ उनके यज्ञ-मण्डपमें पहुँचे । यह देखकर राजा जनमेजय बड़े हर्षित हुए । उन्होंने अत्यन्त श्रद्धापूर्वक पराशरनन्दन व्यासको सुवर्णका पीठ देकर आसनकी व्यवस्था की । फिर उन्होंने पाद्य, आचमनीय और अर्घ्यादिके द्वारा उनकी सविधि पूजा की ।

फिर राजा जनमेजयके अनुरोधसे महर्षि व्यासने अपने शिष्य वैशम्पायनको वहाँ महाभारत सुनानेकी आज्ञा दी । अतएव विप्रवर वैशम्पायनने वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ, त्रिकालदर्शी, परमपवित्र गुरुदेव व्यासजीके चरणोंमें प्रणाम किया और उन्होंने राजा जनमेजय, सभासद्गण तथा अन्य उपस्थित नरेशोंके सम्मुख विस्तारपूर्वक व्यास-विरचित कौरव-पाण्डवोंका सुविस्तृत इतिहास 'महाभारत' सुनाया ।

धृतराष्ट्रके पुत्रोंद्वारा अधर्मपूर्वक पाण्डवोंके राज्यसे बहिष्कृत कर दिये जानेपर सर्वज्ञ व्यासजी वनमें उनके पास पहुँचे । वहाँ उन्होंने कुन्तीसहित पाण्डवोंको धैर्य बँधाया और उनकी एकचक्रा नगरीके समीप एक ब्राह्मणके घरमें रहनेकी व्यवस्था कर दी । फिर उनसे अपनी एक मासतक वहीं प्रतीक्षा करनेका आदेश देकर वे लौट गये ।

सत्यव्रतपरायण व्यासजी एक मासके बाद पुनः पाण्डवोंके समीप पहुँचे । उनसे उनका कुशल-संवाद पूछकर धर्मसम्बन्धी और अर्थविषयक चर्चा की । फिर उन्होंने महाराज पृषतकी पौत्री सती-साध्वी कृष्णाके पूर्वजन्मका वृत्तान्त सुनाकर पाण्डवों-को उसके स्वयंवरमें पाञ्चालनगर जानेकी प्रेरणा दी । व्यासजीने पाण्डवोंसे कहा कि 'सती द्रौपदी तुम्हीं लोगोंकी पत्नी नियत की गयी है ।'

पाण्डव पाञ्चालनगर पहुँचे और स्वयंवरमें अर्जुनने लक्ष्य-वेध कर सती द्रौपदीकी जयमाला प्राप्त की; किंतु जब माता कुन्तीके आदेशानुसार युधिष्ठिर आदि पाँचों भाइयोंने एक साथ द्रौपदीके साथ विवाह करना चाहा, तब महाराज द्रुपदने इसे सर्वथा अनुचित और अधर्म समझकर आपत्ति की । उसी समय निग्रहानुग्रहसमर्थ व्यासजी वहाँ पहुँच गये । वहाँ उन्होंने महाराज द्रुपदको पाण्डवों एवं द्रौपदीके इस जीवनके पूर्वका विवरण ही नहीं दिया, उन्हें दिव्य दृष्टि देकर उनके परम तेजस्वी-स्वरूपका दर्शन भी करा दिया । फिर तो महाराज द्रुपदने अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक द्रौपदीका विवाह युधिष्ठिर आदि पाँचों भाइयोंके साथ कर दिया ।

फिर जब महाराज युधिष्ठिरने भगवान् श्रीकृष्णके सत्परामर्शसे राजसूययज्ञकी दीक्षा ली, तब परब्रह्म और अपरब्रह्म-के ज्ञाता कृष्णद्वैपायन व्यासजी परम वेदज्ञ ऋत्विजोंके साथ वहाँ पहुँचे । उक्त यज्ञमें स्वयं उन्होंने ब्रह्माका काम सँभाला और यज्ञ सम्पन्न होनेपर देवर्षि नारद, देवल और असित मुनिको आगे करके महाराज युधिष्ठिरका अभिषेक किया ।

अपने पौत्र युधिष्ठिरसे बिदा होते समय व्यासजीने अन्य बातोंके अतिरिक्त उनसे कहा—'राजन् ! आजसे तेरह वर्ष बाद दुर्योधनके पातक तथा भीम और अर्जुनके पराक्रमसे क्षत्रिय-कुलका महासंहार होगा और उसके निमित्त तुम बनोगे । किंतु इसके लिये तुम्हें चिन्ता नहीं करनी चाहिये; क्योंकि काल सबके लिये अजेय है ।'

इतनी बात कहकर ज्ञानमूर्ति व्यासजीने अपने वेदज्ञ शिष्योंसहित कैलासपर्वतके लिये प्रस्थान किया ।

शुद्धात्मा व्यासजी विपत्तिग्रस्त सरल एवं निश्छल पाण्डवोंकी समय-समयपर पूरी सहायता करते रहे । जब दुरात्मा दुर्योधनने छलपूर्वक पाण्डवोंका सर्वस्वापहरणकर उन्हें बारह वर्षोंके लिये वनमें भेज दिया, तब उसे प्रसन्नता हुई । किंतु उसे इतनेसे ही संतोष नहीं हुआ, उसने कर्ण, दुश्शासन और शकुनिके परामर्शसे अरण्यवासी पाण्डवोंको मार डालनेका निश्चय कर लिया तथा शस्त्रसज्ज हो वे रथपर बैठे ही थे कि दिव्यदृष्टिसम्पन्न व्यासजी तत्काल वहाँ पहुँच गये और दुर्योधनको समझाकर उसे इस भयानक अपकर्मसे विरत किया । इसके अनन्तर वे तुरंत महाराज धृतराष्ट्रके पास पहुँचे और उनसे कहा—"वत्स ! जैसे पाण्डु मेरे पुत्र हैं, वैसे ही तुम भी हो, उसी प्रकार ज्ञानसम्पन्न विदुरजी भी हैं । मैं स्नेहवश ही तुम्हारे और सम्पूर्ण कौरवोंके हितकी बात कहता हूँ । तुम्हारा दुष्ट पुत्र दुर्योधन क्रूर ही नहीं, अत्यन्त मूढ़ भी है । तनिक सोचो, छलपूर्वक राज्यलक्ष्मीसे वञ्चित पाण्डवोंके मनमें तेरह वर्षोंतक अरण्यवासकी यातना सहते-सहते तुम्हारे पुत्रोंके प्रति कितना भयानक विष भर जायगा ! वे तुम्हारे दुष्ट पुत्रोंको कैसे जीवित रहने देंगे !

इतनेपर भी दुर्योधन उनका नृशंसतापूर्वक वध कर डालना चाहता है। यदि दुर्योधनकी इस कुप्रवृत्तिकी उपेक्षा हुई, उसे नहीं रोका गया, तो तुम्हारे सहित तुम्हारे निर्मल वंशको कलङ्कित ही नहीं होना पड़ेगा, उसका सर्वनाश भी हो जायगा। उचित तो यह है कि तुम्हारा पुत्र दुर्योधन एकाकी ही पाण्डवोंके साथ वनमें जाय। उनके संसर्गसे उसकी बुद्धि शुद्ध होकर उसके वैर-भावका शमन हो सकता है।

अथवा जायमानस्य यच्छीलमनुजायते।
श्रूयते तन्महाराज नामृतस्यापसर्पति॥
(महा०, वन० ८। ११)

'किंतु महाराज! जन्मके समय किसी प्राणीका जो स्वभाव होता है, वह मृत्युपर्यन्त बना रहता है, यह बात मैंने सुननेमें आयी है।'

''राजन्! महर्षि मैत्रेय वनमें पाण्डवोंसे मिलकर आ रहे हैं। वे निश्चय ही सत्सम्मति प्रदान करेंगे। उनकी आज्ञा मान लेनेमें ही कौरव-कुलका हित है।'' इतनी बात कहकर व्यासजी चले गये।

दुर्योधनने महर्षि मैत्रेयकी उपेक्षा की, इस कारण उन्होंने उसे अत्यन्त अनिष्टकर शाप दे दिया।

अरण्य-वासके समय एक बार जब युधिष्ठिर अत्यन्त चिन्तित थे, तब त्रिकालदर्शी व्यासजी उनके पास पहुँचे और उन्होंने युधिष्ठिरको समझाया—'भरतश्रेष्ठ! अब तुम्हारे कल्याणका सर्वश्रेष्ठ अवसर उपस्थित हो चला है। तुम चिन्ता मत करो। तुम्हारे शत्रु शीघ्र ही पराजित हो जायँगे।'

इस प्रकार धर्मराज युधिष्ठिरको आश्वस्त करते हुए सर्व-समर्थ व्यासजीने अर्जुनके लिये युधिष्ठिरको मूर्तिमती सिद्धि-तुल्य 'प्रतिस्मृति' नामक विद्या प्रदान कर दी, जिसके द्वारा उन्हें देवताओंके दर्शनकी क्षमता प्राप्त हो गयी। इतना ही नहीं, व्यासजीने पाण्डवोंके हितके लिये और भी अनेक शुभ सम्मतियाँ प्रदान कीं।

भगवान् व्यासने संजयको भी दिव्यदृष्टि प्रदान कर दी, जिससे उन्होंने महाभारत-युद्ध ही नहीं देखा, अपितु भगवान् श्रीकृष्णके मुखारविन्दसे निस्सृत श्रीमद्भगवद्गीताका भी श्रवण कर लिया, जिसे महाभाग पार्थके अतिरिक्त अन्य कोई नहीं सुन पाया था। इतना ही नहीं, उक्त दिव्य दृष्टिके प्रभावसे संजयने श्रीभगवान्‌के विश्वरूपका भी अत्यन्त दुर्लभ दर्शन प्राप्त कर लिया।

पराशरनन्दन व्यास कृपाकी मूर्ति ही थे। एक बार उन्होंने मार्गमें आते हुए रथके कर्कश स्वरको सुनकर प्राण-भयसे भागते एक क्षुद्र कीटको देखा। कीटसे उन्होंने वार्तालाप किया तथा अपने तपोबलसे उसे अनेक योनियोंसे निकालकर शीघ्र ही मनुष्य-योनि प्राप्त करा दी। फिर क्रमशः क्षत्रिय-कुल एवं ब्राह्मण-कुलमें उत्पन्न होकर उस भूतपूर्व कीटने दयामय व्यासजीके अनुग्रहसे अत्यन्त दुर्लभ सनातन ब्रह्मपद प्राप्त कर लिया।

महर्षि व्यासकी शक्ति अलौकिक थी। एक बार जब वे वनमें धृतराष्ट्र और गान्धारीसे मिलने गये, तब सपरिवार युधिष्ठिर भी वहीं उपस्थित थे। धृतराष्ट्र और गान्धारी पुत्रशोकसे दुःखी थे। धृतराष्ट्रने अपने कुटुम्बियों और स्वजनोंको देखनेकी इच्छा व्यक्त की। रात्रिमें महर्षि व्यासके आदेशा-नुसार धृतराष्ट्र आदि गङ्गा-तटपर पहुँचे। व्यासजीने गङ्गाजलमें प्रवेश किया और दिवंगत योद्धाओंको पुकारा। फिर तो जलमें युद्ध-कालका-सा कोलाहल सुनायी देने लगा। साथ ही पाण्डव और कौरव—दोनों पक्षोंके योद्धा और राजकुमार भीष्म और द्रोणके पीछे निकल आये। सबकी वेष-भूषा, शस्त्रसज्जा, वाहन और ध्वजाएँ पूर्ववत् थीं। सभी ईर्ष्या-द्वेषशून्य दिव्य-देहधारी दीख रहे थे। वे रात्रिमें अपने स्नेही सम्बन्धियोंसे मिले और सूर्योदयके पूर्व भगवती भागीरथीमें प्रवेशकर अपने-अपने लोकोंके लिये चले गये।

'जो स्त्रियाँ पतिलोक जाना चाहें, इस समय गङ्गाजीमें डुबकी लगा लें।' व्यासजीके वचन सुन जिन वीरगतिप्राप्त योद्धाओंकी पत्नियोंने गङ्गाजीमें प्रवेश किया, वे दिव्य वस्त्रा-भूषणोंसे सुसज्जित होकर विमानमें बैठीं और सबके देखते अभीष्ट लोकके लिये प्रयाण कर गयीं।

नागयज्ञकी समाप्तिपर जब यह कथा परिक्षित्‌के पुत्र जनमेजयने महर्षि वैशम्पायनसे सुनी, तब उन्हें इस अद्भुत घटनापर सहसा विश्वास न हुआ और उन्होंने इसपर शङ्का की। वैशम्पायनने उसका बड़ा ही युक्तिपूर्ण आध्यात्मिक समाधान किया। (महा०, आश्रमवासिक० २४)। पर वे इसपर भी न माने और कहा कि 'भगवान् व्यास यदि मेरे पिताजीको भी उसी वयोरूपमें ला दें तो मैं विश्वास कर सकता हूँ।' भगवान् व्यास वहीं उपस्थित थे और उन्होंने जनमेजयपर पूर्ण कृपा की। फलतः शृङ्गी, शमीक एवं मन्त्री आदिके साथ राजा परिक्षित् वहाँ उसी रूप-वयमें प्रकट हो
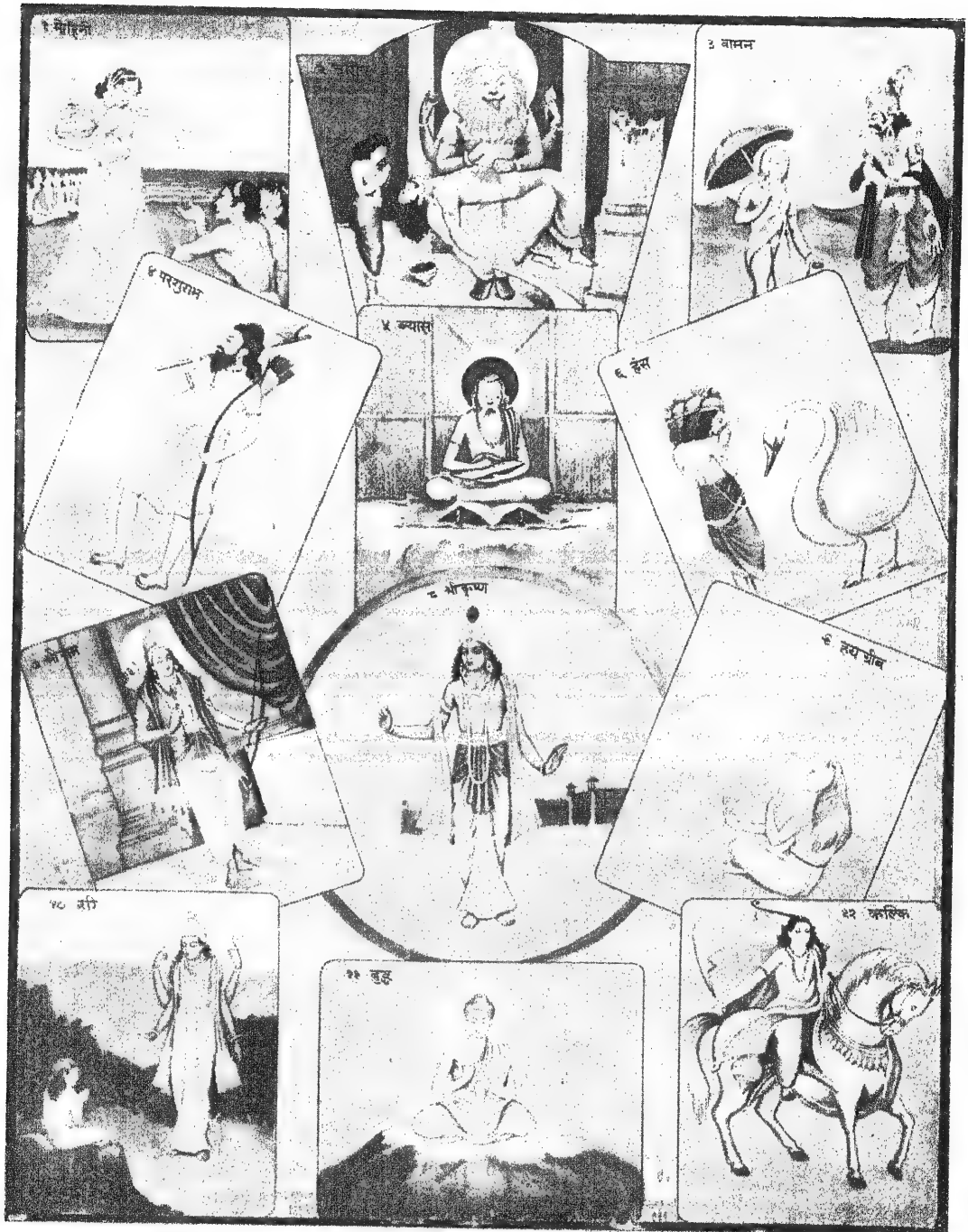
भगवान् विष्णुके चौबीस अवतार—(२)

[पृष्ठ २९५–३६५]

गये । अवभृथ (यज्ञान्त)-स्नानमें वे सब सम्मिलित भी हुए और फिर वहीं अन्तर्हित हो गये ।

महर्षि व्यास मूर्तिमान् धर्म थे । हिंदू-जाति तो उनकी चिर ऋणी रहेगी । हिंदू-संस्कृतिका वर्तमान स्वरूप उन्हींकी देन है । भगवान् व्यास कल्पके अन्ततक रहेंगे । आद्यशंकराचार्य तथा अन्य कितने ही महापुरुषोंने उनका दर्शन-लाभ किया है । अब भी श्रद्धा-भक्ति-सम्पन्न अधिकारी महात्मा उनके दर्शन प्राप्त कर सकते हैं ।

दया-धर्म-ज्ञान एवं तपकी परमोज्ज्वल मूर्ति उन महामहिम व्यासजीके चरण-कमलोंमें बार-बार प्रणाम ।

—शि० दु०

[२०]

भगवान् हंस

विषयान् ध्यायतश्चित्तं विषयेषु विषज्जते ।
मामनुस्मरतश्चित्तं मय्येव प्रविलीयते ॥

(श्रीमद्भागवत ११ । १४ । २७)

'जो पुरुष निरन्तर विषय-चिन्तन किया करता है, उसका चित्त विषयोंमें फँस जाता है और जो मेरा स्मरण करता है, उसका चित्त मुझमें तल्लीन हो जाता है ।' —भगवान् श्रीकृष्ण

एक बारकी बात है । लोकपितामह चतुर्मुख ब्रह्मा अपनी दिव्य सभामें बैठे थे कि उनके मानस पुत्र सनकादि चारों कुमार दिगम्बर-वेषमें वहाँ पहुँच गये और उन्होंने अपने पिता श्रीब्रह्माजीके चरण-कमलोंमें प्रणाम किया । फिर ब्रह्माजीके आदेशानुसार वे चारों कुमार पृथक्-पृथक् आसनोंपर बैठ गये । सभाके अन्य सदस्य तेजस्वी सनकादि कुमारोंके सम्मानमें सर्वथा मौन एवं शान्त हो गये थे ।

'परम पूज्य श्रीपिताजी ! चित्त गुणों अर्थात् विषयोंमें प्रविष्ट रहता है' कुमारोंने अत्यन्त विनयपूर्वक जिज्ञासा प्रकट की—'और गुण भी चित्तकी एक-एक वृत्तिमें समाये रहते हैं । इनका परस्पर आकर्षण है, स्थायी सम्बन्ध है । फिर मोक्ष चाहनेवाला अपना चित्त विषयोंसे कैसे हटा सकता है ? उसका चित्त गुणहीन अर्थात् निर्विषय कैसे हो सकता है ? क्योंकि यदि मनुष्य-जीवन प्राप्तकर मोक्षकी ही सिद्धि नहीं की गयी तो सम्पूर्ण जीवन ही व्यर्थ हो जायगा ।'

देवशिरोमणि, स्वयम्भू एवं प्राणियोंके जन्मदाता होनेपर भी विधाता प्रश्नमें संदेहका बीज कहाँ है, इसका पता नहीं लगा सके, प्रश्नका मूल कारण नहीं समझ सके । वे आदिपुरुष परब्रह्म परमात्माका ध्यान करने लगे ।

सबके सम्मुख सहसा अत्यन्त सुन्दर, परमोज्ज्वल एवं परम तेजस्वी महाहंसके रूपमें श्रीभगवान् प्रकट हो गये । उक्त हंसके अलौकिक तेजसे प्रभावित होकर ब्रह्मा, सनकादि तथा अन्य सभी सभासद् उठकर खड़े हो गये । सबने हंसरूपी श्रीभगवान्के चरणोंमें श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया । इसके अनन्तर पाद्य-अर्घ्यादिसे सविधि पूजा कर उन्हें पवित्र और सुन्दर आसनपर बैठाया ।

'आप कौन हैं ?' उक्त महामहिम परमतेजस्वी हंसका परिचय प्राप्त करनेके लिये कुमारोंने उनसे पूछा ।

'मैं क्या उत्तर दूँ ?' हंसने विचित्र उत्तर दिया—'इसका निर्णय तो आपलोग ही कर सकते हैं । यदि इस पाञ्चभौतिक शरीरको आप 'आप' कहते हैं तो शरीरकी दृष्टिसे पृथिवी, वायु, जल, तेज और आकाशसे निर्मित, रस, रक्त, मेदा, मज्जा, अस्थि और शुक्रवाला शरीर सबका है । अतएव देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि सभी शरीर पञ्चभूतात्मक होनेके कारण अभिन्न ही हैं और आत्माके सम्बन्धमें आपलोगोंका यह प्रश्न ही नहीं बनता । वह तो सदा सर्वत्र समानरूपसे व्याप्त है ही ।''

कुछ रुककर मुस्कराते हुए भगवान् हंसने कहा—'अब आपलोग ही सोचें और निर्णय करें कि चित्तमें गुण हैं या गुणोंमें चित्त समाया हुआ है । स्वप्नका द्रष्टा, देखनेकी क्रिया और दृश्य—सब क्या पृथक् होते हैं ?' भगवान् हंसने सनकादिसे कहा ।

मनसा वचसा दृष्ट्या गृह्यतेऽन्यैरपीन्द्रियैः ।
अहमेव न मत्तोऽन्यदिति बुध्यध्वमञ्जसा ॥
गुणेष्वाविशते चेतो गुणाश्चेतसि च प्रजाः ।
जीवस्य देह उभयं गुणाश्चेतो मदात्मनः ॥

(श्रीमद्भागवत ११ । १३ । २४-२५)

'मनसे, वाणीसे, दृष्टिसे तथा अन्य इन्द्रियोंसे भी जो कुछ ग्रहण किया जाता है, वह सब मैं ही हूँ, मुझसे भिन्न और कुछ नहीं है । यह सिद्धान्त आपलोग तत्त्वविचारके द्वारा सरलतासे समझ लीजिये ।'

'यह चित्त चिन्तन करते-करते विषयाकार हो जाता है और विषय चित्तमें प्रविष्ट हो जाते हैं, यह बात सत्य है;

तथापि विषय और चित्त—ये दोनों ही मेरे स्वरूपभूत जीवके देह हैं—उपाधि हैं। अर्थात् आत्माका चित्त और विषयके साथ कोई सम्बन्ध ही नहीं है ।'

परम प्रभु हंसके उत्तरसे सनकादि मुनियोंका संदेह निवारण हो गया। उन्होंने अत्यन्त श्रद्धा और भक्तिसे भगवान् हंसकी पूजा और स्तुति की। तदनन्तर ब्रह्माजीके सम्मुख ही महाहंसरूपधारी श्रीभगवान् अदृश्य होकर अपने पवित्र धाममें चले गये। —शि० दु०

[२१]

भगवान् श्रीराम

ॐ यो ह वै श्रीरामचन्द्रः स भगवानद्वैतपरमानन्द आत्मा।
यः सच्चिदानन्दाद्वैतैकचिदात्मा भूर्भुवः सुवस्तस्मै नमो नमः॥
(रामोत्तरतापिनी-उपनिषद्)

'ॐ जो जगत्प्रसिद्ध श्रीरामचन्द्रजी हैं, वे निश्चय ही भगवान् (षड्विध ऐश्वर्यसे सम्पन्न) हैं, अद्वितीय परमानन्द-स्वरूप परमात्मा हैं। जो सच्चिदानन्द द्वैतशून्य, एक, चित्-स्वरूप हैं, भूः भुवः स्वः—ये तीनों लोक हैं, उन श्रीरामचन्द्रजीको मेरा बारंवार नमस्कार है।'

× × ×

रघुवंशभूषण महाराज दशरथ अत्यन्त चिन्तित थे। अधिक आयु हो जानेपर भी अयोध्याके सिंहासनको सुशोभित करनेवाले, चक्रवर्ती साम्राज्यके उत्तराधिकारीका अभाव ही उनकी इस चिन्ताका कारण था। उन्होंने तीन विवाह किये, किंतु उनके पवित्रतम महान् वंशका दीप उत्पन्न नहीं हुआ। महाराजने अपनी चिन्ता अपने कुलरक्षक एवं कुलगुरु महर्षि वसिष्ठके सम्मुख व्यक्त की। उन्होंने श्रृङ्गी ऋषिको आमन्त्रित किया और निष्पाप मुनियोंके सहयोगसे पुत्रेष्टि-यज्ञ प्रारम्भ हुआ। श्रद्धापूर्ण आहुतिसे प्रसन्न होकर तप्त सुवर्णके समान दीप्तिमान् हव्यवाहन भगवान् अग्नि स्वर्णपात्रमें चरु लिये प्रकट हुए और बोले—

गृहाण पायसं दिव्यं पुत्रीयं देवनिर्मितम्।
लप्स्यसे परमात्मानं पुत्रत्वेन न संशयः॥
(अ० रा० १ । ३ । ८)

'हे राजन्! यह देवताओंकी बनायी हुई पुत्र-प्रदायिनी पायस (खीर) लो। इसके द्वारा तुम निस्संदेह साक्षात् परमात्माको पुत्ररूपसे प्राप्त करोगे।'

उक्त दिव्य पायसको ग्रहणकर महाराज दशरथकी तीनों भाग्यशालिनी रानियाँ गर्भवती हुईं।

पुलस्त्यनन्दन विश्रवाका पुत्र रावण कुबेरका छोटा भाई और वेदका पारंगत विद्वान् था; किंतु ऐश्वर्यसे मत्त होकर वह देवताओं और तपस्वियोंको पीड़ित करने लगा। धर्मद्रोही रावणके भयसे यज्ञादि बंद हो गये। उसके क्रूरतम अनुचरोंने तपोवनोंको ध्वंस ही नहीं कर दिया, वे ऋषियों-मुनियों एवं ब्राह्मणोंको ढूँढ़-ढूँढ़कर भक्षण करने लगे। दानवराज मयने अपनी सुन्दरी पुत्री मन्दोदरीका विवाह रावणके साथ कर दिया। प्रबल-पराक्रमी दशानन उद्दण्ड एवं निरङ्कुश हो गया। देवताओंको उसने पराजित कर दिया था। इन्द्र उसके सम्मुख टिक नहीं सकते थे। लोकपाल उसके आदेश-पालनके लिये विवश थे। गौएँ, ब्राह्मण एवं देवगण—सभी त्रस्त एवं भयाक्रान्त थे उससे, पर थे सर्वथा निरुपाय और असहाय।

पृथ्वीके आर्त्तनाद एवं इन्द्रादि देवताओंकी करुण प्रार्थनासे सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, सर्वदुःखविमोचक, समस्त भूतोंके नैसर्गिक सुहृद्, करुणामय प्रभु द्रवित हुए—

तस्यापि भगवानेष साक्षाद् ब्रह्ममयो हरिः।
अंशांशेन चतुर्धागात् पुत्रत्वं प्रार्थितः सुरैः॥
रामलक्ष्मणभरतशत्रुघ्ना इति संज्ञया॥
(श्रीमद्भागवत ९ । १० । २)

'देवताओंकी प्रार्थनासे साक्षात् परब्रह्म परमात्मा भगवान् श्रीहरि ही अपने अंशांशसे चार रूप धारण करके राजा दशरथके पुत्र हुए। उनके नाम थे—राम*, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न।'†

---

* भरणः पोषणाधारः शरण्यः सर्वव्यापकः।
करुणः षड्गुणैः पूर्णो रामस्तु भगवान् स्वयम्॥—(महारामायण)
'विश्वका भरण-पोषण करनेवाले, सबके लिये शरण लेनेयोग्य, सर्वव्यापक, करुणामय एवं ऐश्वर्य आदि छहों गुणोंसे पूर्ण श्रीराम स्वयं भगवान् हैं।'

† भरतजी पाञ्चजन्यके अवतार थे, लक्ष्मणजी शेषके और शत्रुघ्नजी सुदर्शनके—

कैकेय्यां भरतो जज्ञे पाञ्चजन्यांशसम्भवः।
× × ×
अनन्तांशेन सम्भूतो लक्ष्मणः परवीरहा॥
सुदर्शनांशाच्छत्रुघ्नः संजज्ञेऽमितविक्रमः।
(पद्मपुराण ६ । २४२ । ९४—९६)

संसार-सागर-निमग्न जीवोंके उद्धारके लिये चैत्रमासके शुक्लपक्षकी नवमीके दिन, शुभ पुनर्वसु-नक्षत्रमें जब सूर्य मेषराशिपर तथा अन्य चार ग्रह उच्चस्थानमें थे, तब कर्क-लग्न तथा मध्याह्नकालमें सनातन परमात्मा जगन्नाथका आविर्भाव हुआ। धर्ममूर्ति प्रभुका विग्रह अलौकिक, अप्राकृतिक, दिव्य और चिन्मय था। नील-कमल-दलके समान श्याम वर्णके करुणैकवारिधि श्रीराम भगवती कौसल्याकी गोदमें आ गये। तप्तस्वर्णकी-सी आभावाले लक्ष्मण और शत्रुघ्न महाभागा सुमित्रा एवं नवनीरद-वपु भरत माता कैकेयीके अङ्कमें अवतरित हुए। अयोध्याके ही नहीं, धरित्रीके भाग्य उदित हुए। महाराज दशरथने अत्यन्त उत्साहपूर्वक सहस्रों गाँव, रत्न, सुवर्ण एवं शुभलक्षणोंवाली गौएँ ब्राह्मणोंको दीं।

बड़े होनेपर चारों कुमारोंका उपनयन-संस्कार हुआ। वे शीघ्र ही शस्त्र और शास्त्रके पारगामी विद्वान् हो गये। एक दिन महर्षि विश्वामित्र महाराज दशरथके पास आये। बोले—'पर्वकालमें मैं यज्ञ करता हूँ तो दैत्यगण विघ्न डालते हैं। अतएव—

'अनुज समेत देहु रघुनाथा। निसिचर बध मैं होब सनाथा॥'

(मानस १।२०६।५)

वृद्धावस्थामें प्राप्त महागुणसम्पन्न, हृदयाभिराम श्रीरामको देनेकी कल्पनासे ही महाराज दशरथ सिहर उठे; किंतु सृष्टि-रचनामें समर्थ विश्वामित्रकी इच्छाका अनादर सम्भव नहीं था। नयनाभिराम श्रीराम लक्ष्मणसहित महर्षि विश्वामित्रके साथ चले। मार्गमें क्रोधोन्मत्ता ताड़काको अपनी ओर आते देखकर अधमोद्धारक श्रीरामने एक ही बाणसे उसे अपने अक्षय-सुख-शान्ति-निकेतन धाममें भेज दिया। दूसरे दिन मुनियोंने यज्ञ प्रारम्भ किया ही था कि पराक्रमी मारीचने धर्मद्रोही राक्षसों-सहित उनपर आक्रमण कर दिया। वह भू-भार-भञ्जन श्रीराम-के 'फल'-हीन बाणके आघातसे सौ योजन दूर सागर-पार जा गिरा और उसका भाई सुबाहु ससैन्य मार डाला गया। यज्ञ निर्विघ्न चलता रहा।

विदेहराज जनकका भेजा हुआ अयोनिजा सीताके स्वयंवर-का निमन्त्रण पाकर महर्षि विश्वामित्र दोनों कुमारोंसहित मिथिलाके लिये प्रस्थित हुए। मार्गमें शिलाभूता अहल्या भवाब्धिपोत श्रीरामकी चरण-रजका स्पर्श पाकर शापमुक्त हो गयी। उसने पतितपावन, प्राणाभिराम श्रीरामकी स्तुति करते हुए कहा—

योषिन्मूढाहमज्ञा ते तत्त्वं जाने कथं विभो।
तस्मात्ते शतशो राम नमस्कुर्यामनन्यधीः॥
देव मे यत्र कुत्रापि स्थिताया अपि सर्वदा।
त्वत्पादकमले सक्ता भक्तिरेव सदास्तु मे॥

(अ० रा० १।५।५७-५८)

'विभो! मैं मूढ़ और अज्ञानी स्त्री-जाति भला आपके तत्त्वको क्या जानूँ? अतः हे राम! मैं अनन्यभावसे आपको सैकड़ों बार केवल नमस्कार ही करती हूँ। देव! मैं जहाँ-कहीं भी रहूँ, वहाँ सर्वदा आपके चरण-कमलोंमें मेरी आसक्ति-पूर्ण भक्ति बनी रहे।'

कृतार्थ अहल्या पतिलोक गयी।

'भगवान् शंकरका धनुष (पिनाक) तोड़नेवालेको अयोनिजा जनकनन्दिनी वरण करेंगी।' मिथिला-नरेशकी प्रतिज्ञा थी। देश-विदेशके वीर नरेश उक्त पिनाकको हिला भी नहीं सके। अन्ततः महर्षि विश्वामित्रके आदेशसे सर्वमलापहारी, सर्वशक्ति-सम्पन्न दशरथनन्दन श्रीरामने धनुर्भङ्ग कर दिया। अपने आराध्यका धनुर्भङ्ग-संवाद पाकर अत्यन्त क्षुब्ध एवं क्रुद्ध होकर वीरवर परशुरामजी दौड़े आये; किंतु परम तेजस्वी कौसल्याकुमारके सम्मुख उनका गर्व खर्व हो गया। श्रीभगवान्‌की स्तुति करते हुए उन्होंने कहा—

अक्षय्यं मधुहन्तारं जानामि त्वां सुरेश्वरम्।
धनुषोऽस्य परामर्शात् स्वस्ति तेऽस्तु परंतप॥
न चेयं मम काकुत्स्थ व्रीडा भवितुमर्हति।
त्वया त्रैलोक्यनाथेन यदहं विमुखीकृतः॥

(वा० रा० १।७६।१७, १९)

'शत्रुओंको संताप देनेवाले वीर! आपने जो इस धनुषको चढ़ा दिया, इससे मुझे निश्चितरूपसे ज्ञात हो गया कि आप मधुदैत्यको मारनेवाले अविनाशी देवेश्वर विष्णु हैं। आपका कल्याण हो।' 'ककुत्स्थकुलभूषण! आपके सामने जो मेरी असमर्थता प्रकट हुई—यह मेरे लिये लज्जाजनक नहीं हो सकती; क्योंकि आप त्रिलोकीनाथ श्रीहरिने मुझे पराजित किया है।'

और सर्वसमर्थ प्रभुका स्तवन-वन्दन कर परशुरामजी तप करनेके लिये वनमें चले गये।

मिथिलानरेशका निमन्त्रण पाकर महाराज दशरथ मिथिला पधारे और चारों कुमारोंका विवाह हुआ। जनकजी कृतार्थ हुए। उन्होंने स्वयं विनयपूर्वक कहा—

अद्य मे सफलं जन्म राम त्वां सह सीतया ॥
एकासनस्थं पश्यामि भ्राजमानं रविं यथा ।
यत्पादपङ्कजपरागसुरागयोगि-
वृन्दैर्जितं भवभयं जितकालचक्रैः ।
यन्नामकीर्तनपरा जितदुःखशोका
देवास्तमेव शरणं सततं प्रपद्ये ॥
(अ० रा० १ । ६ । ७१-७२, ७५)

'राम ! आज मेरा जन्म सफल हो गया, जो मैं सूर्यके समान देदीप्यमान आपको सीताके साथ एक आसनपर विराजमान देख रहा हूँ ।'.....'जिनके चरण-कमल-परागके रसिक, काल-चक्रको जीतनेवाले योगिजनोंने संसार-भयको भी जीत लिया है तथा जिनके नाम-कीर्तनमें लगे रहकर देवगण दुःख और शोकको जीत लेते हैं, उन आपकी मैं निरन्तर शरण ग्रहण करता हूँ ।'

पुत्र और पुत्र-वधुओंसहित महाराज दशरथ अयोध्या लौटे । कुछ समय बाद महाराजने प्राणाराम श्रीरामको युवराज-पदपर अभिषिक्त करनेका निश्चय किया । प्रजावर्ग एवं गुरु-देवको भी यही अभीष्ट था; किंतु देवगण चिन्तित हो गये । भू-भार-भञ्जन श्रीराम राज्य करें तो भू-भार-हरणका कार्य कैसे सम्पन्न हो ? देवताओंकी प्रेरणासे माता कैकेयीको मोह हुआ । 'भरत-शत्रुघ्नकी अनुपस्थितिमें श्रीरामको युवराज-पद !' कैकेयीने इसे षड्यन्त्र समझा । महाराजको वचनबद्ध करके उसने वर माँगा—भरतको राज्य एवं श्रीरामको चतुर्दश वर्षके लिये अरण्य-वास ! महाराज मणिहीन फणीकी भाँति छटपटाने लगे । आदर्श पुत्र कौसल्याकुमारने जब माता कैकेयीके मुखसे पिताके दुःखका कारण सुना, तब निश्छल एवं सरल-हृदय श्रीरामको विश्वास नहीं हुआ । उन्होंने कहा—'अवश्य मुझसे कोई अपराध हो गया है, जिसके कारण पिताजीको इतना दुःख हो रहा है; अन्यथा इतनी छोटी-सी बातसे तो उन्हें दुःख नहीं होना चाहिये ।'

थोरिहिं बात पितहि दुख भारी । होति प्रतीति न मोहि महतारी ॥
राउ धीर गुन उदधि अगाधू । भा मोहि ते कछु बड़ अपराधू ॥
(मानस २ । ४१ । ३-३½)

पिताके आज्ञा-पालनके लिये रघुवंशशिरोमणि दशरथ-नन्दनने वल्कल-वस्त्र धारण किया । लक्ष्मण और जानकी अयोध्यामें कैसे रहते ? अयोध्यावासियोंको रोते-बिलखते छोड़कर श्रीरामने भाई सौमित्रि और पत्नी सीताके साथ वनके लिये प्रयाण किया । वे परम पुण्यतोया जाह्नवीके तटपर पहुँचे । वहाँ पुण्यात्मा केवटने त्रैलोक्यपतिके चरण-कमलोंको धोकर परम दुर्लभ चरणामृत-पान किया—

पद पखारि जलु पान करि आपु सहित परिवार ।
पितर पारु करि प्रभुहि पुनि मुदित गयउ लेइ पार ॥
(मानस २ । १०१)

भक्त-वाञ्छा-कल्पतरु श्रीरामने उसे 'भगति बिमल बरु देइ' बिदा किया और तीनों आगे बढ़े । मार्गमें जो भी उनके दर्शन कर लेता, वही धन्य हो जाता । उसीका जीवन सफल हो जाता । सौन्दर्य-माधुर्य-निधि श्रीराम, परम तेजस्वी लक्ष्मण एवं माधुर्य-मूर्ति सती सीताके लोकोत्तर दिव्य स्वरूपका दर्शन कर लोग मुग्ध हो जाते, निहाल हो जाते, उनपर न्योछावर हो जाते । वे चाहते, ये अनुपम-लावण्यमय बटोही यहीं रह जायँ; आगे न जायँ तो अच्छा रहे । मूर्तिमान् सौन्दर्य श्रीराम, लक्ष्मण एवं सीताको वनवासी वेषमें देखकर मार्गके गाँवोंके स्त्री-पुरुष परस्पर इस प्रकार बातें करते—

जलज-नयन, जलजानन, जटा है सिर,
जौवन-उमंग अंग उदित उदार हैं ।
साँवरे-गोरे के बीच भामिनी सुदामिनी-सी,
मुनिपट धारैं, उर फूलनि के हार हैं ॥
करनि सरासन-सिलीमुख, निषंग कटि,
अति ही अनूप काहू भूप के कुमार हैं ।
तुलसी बिलोकि कै तिलोक के तिलक तीनि,
रहे नर-नारि ज्यौं चितेरे चित्रसार हैं ॥
(कवितावली २ । १४)

'इनके नेत्र कमलके समान हैं तथा मुख भी कमलके ही सदृश हैं । इनके सिरपर जटाएँ हैं और प्रशस्त अङ्गोंमें यौवनकी उमंग झलक रही है । साँवरे (श्रीरामचन्द्र) और गोरे (लक्ष्मणजी) के मध्यमें बिजलीके समान आभावाली एक रमणी सुशोभित है । ये (तीनों) मुनियोंके वस्त्र धारण किये हैं और इनके उर-स्थलपर फूलोंकी मालाएँ हैं । हाथोंमें धनुष-बाण लिये और कमरमें तरकस कसे ये किसी राजाके अत्यन्त ही अनुपम कुमार हैं । तुलसीदासजी कहते हैं कि त्रिलोकीके इन तीन तिलकोंको देखकर वे नर-नारी ऐसे स्तब्ध रह गये मानो चित्रशालाके चित्र हों ।'

कितने उनके सुर-नर-मुनि-वन्दित अरुण चरण-कमलों-का ध्यान करते हुए पूछते—'ये अब कब लौटेंगे ?'

कोटि-कोटि कंदर्प-दर्प-दलन वनवेषी दुर्लभतम त्रिमूर्तिको देखकर आबाल-वृद्ध-वनिता ही नहीं, जड-चेतन समस्त प्राणी मन्त्रमुग्ध हो जाते, पवित्र हो जाते । वे अपलक दृष्टिसे इन त्रैलोक्यतारिणी त्रिमूर्तिको देखते ही रह जाते। देखिये न, उनके अनूप रूपका दर्शन कर मार्गमें पड़नेवाले गाँवकी एक स्त्री दूसरी स्त्रीसे क्या कहती है—

आली ! काहू तौ बूझौ न पथिक कहाँ धौं सिधैहैं ।
कहाँ ते आए हैं, को हैं, कहा नाम स्याम-गोरे, काज कै कुसल फिरि एहि मग ऐहैं ?
उठति बयस, मसि भींजति, सलोने सुठि, सोभा-देखवैया बिनु बित्त ही बिकैहैं ।
हिये हेरि हरि लेत लोनी ललना समेत, लोयननि लाहु देत जहाँ जहाँ जैहैं ॥
(गीतावली २ । ३७)

"अरी आली ! किसीसे पूछो तो 'ये पथिक कहाँ जायँगे ? कहाँसे आये हैं ? कौन हैं ? इन श्याम-गौर कुमारोंके नाम क्या हैं ? और अपना कार्य पूरा करके फिर कुशलपूर्वक इसी मार्गसे लौटेंगे न ?' इनकी उठती हुई अवस्था है, मुँहपर मूँछोंकी श्यामता कुछ-कुछ फूट रही है। देखनेमें बड़े ही सुहावने और लावण्ययुक्त दीखते हैं, इनकी शोभा देखनेवाले बिना मोल ही बिके जा रहे हैं। इनके साथ एक लावण्यमयी ललना है, और ये दृष्टिपातसे ही लोगोंके चित्तको चुरा लेते हैं। ये जहाँ-जहाँ जायँगे, वहाँ-वहाँके लोगोंको इसी प्रकार नेत्रोंका लाभ देंगे।"

अद्भुत-अनूप-रूपमयी, कल्याणमयी, मङ्गलमयी त्रिमूर्तिकी स्मृतिसे व्याकुलताके साथ स्त्रियाँ प्रायः कहतीं—

पुनि न फिरे दोउ बीर बटाऊ ।
स्यामल-गौर, सहज सुंदर, सखि ! बारक बहुरि बिलोकिबे काऊ ॥
(गीतावली २ । ३९)

'अरी सखि ! वे वीर बटोही इस मार्गसे लौटे नहीं ? वे श्याम-गौर कुँवर स्वभावसे ही सुन्दर थे। क्या हम उन्हें एक बार फिर देख सकेंगी ?'

इस प्रकार मार्गके लोगोंको नयनानन्द-दान करते हुए प्रभुने महामुनि भरद्वाजके आश्रममें पहुँचकर उनके चरणोंमें प्रणाम किया। भरद्वाजजीने श्रीरामका अभिनन्दन किया और उन्हें परम पुण्यमयी मन्दाकिनीके समीप अनेकानेक जलस्रोतपूरित एवं मधुर फल-मूलसे सम्पन्न चित्रकूटपर निवास करनेकी सम्मति दी। अपने आश्रमसे बिदा करते समय महर्षि भरद्वाजजीने उन्हें पिताकी भाँति मङ्गलसूचक आशीर्वाद दिया, स्वस्तिवाचन किया।

मङ्गलधाम श्रीराम लक्ष्मण एवं सीताके साथ चित्रकूटकी ओर चले। चित्रकूटके भाग्य जगे। त्रैलोक्यपावन श्रीरामके चरण-कमल वहाँ पहुँचे। 'कामद भे गिरि राम प्रसादा।' भगवान् श्रीरामने महर्षि वाल्मीकिके आश्रममें जाकर उनके चरणोंकी वन्दना की। महर्षि अत्यन्त प्रसन्न हुए, उन्होंने श्रीरामका स्वागत किया। प्रभुने एक मनोहर स्थान देखकर वहाँ कुछ काल निवास करनेके लिये लक्ष्मणको पर्णकुटी निर्मित करनेका आदेश दिया। सुमित्रानन्दनने मिट्टी और लकड़ीकी एक सुन्दर, मजबूत और उपयोगी कुटिया बना दी।

× × ×

पुत्र-वियोगमें व्याकुल होकर महाराज दशरथने शरीर-त्याग दिया। भरत-शत्रुघ्न मामाके यहाँसे अयोध्या लौटे तो हृदयाभिराम श्रीरामके वन-गमनका संवाद सुनकर विकल-विह्वल हो विलाप करने लगे। पिताकी अन्त्येष्टि करनी ही थी। फिर सकल समाज लेकर प्राणाराम श्रीरामको लौटाने चित्रकूट पहुँचे। वे धर्मके शाश्वत स्तम्भ श्रीरामको अपने साथ अयोध्या ले चलनेके लिये हठ कर रहे थे; किंतु भरत प्राणाधार श्रीरामकी प्रतिज्ञापूर्तिके दृढ़ निश्चयको समझकर उनके कुलगुरु महात्मा वसिष्ठजीने भरतको एकान्तमें ले जाकर उनके सम्मुख गुप्त रहस्य प्रकट कर दिया। वसिष्ठजीने भरतको समझाया—

रामो नारायणः साक्षाद् ब्रह्मणा याचितः पुरा ।
रावणस्य वधार्थाय जातो दशरथात्मजः ॥
योगमायापि सीतेति जाता जनकनन्दिनी ।
शेषोऽपि लक्ष्मणो जातो राममन्वेति सर्वदा ॥
रावणं हन्तुकामास्ते गमिष्यन्ति न संशयः ।
कैकेय्या वरदानादि यद् यन्निष्ठुरभाषणम् ॥
सर्वं देवकृतं नो चेदेवं सा भाषयेत् कथम् ।
तस्मात्त्यजाग्रहं तात रामस्य विनिवर्तने ॥
(अ० रा० २ । ९ । ४३-४६)

'भगवान् राम साक्षात् नारायण हैं। पूर्वकालमें ब्रह्माजीके प्रार्थना करनेपर उन्होंने रावणको मारनेके लिये

परमश्रद्धेय श्रीरामके वचन सुनकर लक्ष्मण अत्यन्त क्रुद्ध हो गये और उन्होंने म्यानसे तलवार खींचकर शूर्पणखाके नाक-कान काट लिये।

रक्तमें लथपथ बीभत्स शूर्पणखा चीत्कार करती हुई भागी और अपने भाई खरके पास जाकर पृथ्वीपर गिर पड़ी। वहाँकी धरती रक्तसे लाल हो गयी। रुदन करती हुई रक्तस्नाता शूर्पणखाने दण्डकवनमें सीता और लक्ष्मणसहित श्रीरामके आने और उनके द्वारा की गयी अपनी दुर्दशाका वृत्तान्त सुनाया।

अत्यन्त कुपित होकर खरने श्रीराम और लक्ष्मणको मार डालनेके लिये अपने अन्यतम चौदह राक्षस-वीरोंको दण्डकारण्यमें भेजा। मार्ग-दर्शनके लिये उनके आगे-आगे कर्ण-नासिकाहीना अशुभ-वेषा शूर्पणखा दौड़ती आ रही थी। उसकी लालसा श्रीराम, लक्ष्मण एवं सीताका वध कराके उनका उष्ण रक्त पान करनेकी थी; किंतु जब पुनः हाँफती हुई भयभीत, उद्विग्न एवं विषादग्रस्त शूर्पणखा अपने भाई खरके आगे गिरकर मूर्छित हो गयी, तब उसके आश्चर्यकी सीमा नहीं रही। उसने अपने अजेय चौदह सैनिकोंको रामशरकी भेंट समझकर तुरंत अपने बहुमूल्य एवं महान् रथको प्रस्तुत करनेका आदेश दिया और दूषण, त्रिशिरा तथा प्रचण्ड-पराक्रमी राक्षस सेनापतियोंसहित चतुर्दश सहस्र शस्त्रसज राक्षस-वाहिनीको लेकर तपस्वियोंके वेषमें रहकर फल-मूलपर जीवन-निर्वाह करनेवाले, सदाचारी, संयतेन्द्रिय एवं पुण्यमय, धर्ममय श्रीराम-लक्ष्मणको मारने चला। किंतु जब उसने कृष्ण-मृगचर्म धारण किये, जटाजूटमण्डित धनुर्धर श्रीराघवेन्द्रको देखा, तब वह चकित ही नहीं, स्तब्ध हो गया। विश्वविमोहन श्रीरामके अनुपम रूप-लावण्यको देखकर उसके मुखसे निकल गया—

> नाग असुर सुर नर मुनि जेते। देखे जिते हते हम केते॥
> हम भरि जन्म सुनहु सब भाई। देखी नहिं असि सुंदरताई॥
> जद्यपि भगिनी कीन्हि कुरूपा। बध लायक नहिं पुरुष अनूपा॥
>
> (मानस ३। १८। २-२½)

भू-भार-भञ्जन श्रीरामने त्रैलोक्यविजयी खर-दूषणकी विशाल वाहिनीको आते देखा तो उन्होंने अपने चरणोंकी शपथ देकर लक्ष्मणको सीतासहित वहाँसे दूर पहाड़की तलहटीमें वृक्षोंकी ओटमें भेज दिया। उन्होंने बल-पौरुष-सम्पन्न खर दूषणको उत्तेजित करते हुए उत्तर दिया—

> हम छत्री मृगया बन करहीं। तुम्ह से खल मृग खोजत फिरहीं॥
> × × × ×
> जौं न होइ बल घर फिरि जाहू। समर बिमुख मैं हतउँ न काहू॥
>
> (मानस ३। १८। ४½, ६)

भयानक युद्ध छिड़ा। सहस्रों राक्षस-योद्धाओंने एक साथ श्रीराघवेन्द्रपर अपने शस्त्रास्त्रोंसे प्रहार किया। वीरवर दशरथकुमारके अङ्गोंसे रुधिरकी धाराएँ बहने लगीं। तब उन्होंने अपने तीक्ष्णतम शरोंका प्रयोग किया और कुछ ही देरमें अपने चौदह हजार राक्षसोंसहित खर-दूषण और त्रिशिरा मारे गये।

प्राण लेकर भागे हुए अकम्पन-नामक राक्षसने राक्षस-राज रावणको खर-दूषणके वधका संवाद देते हुए श्रीरामके पराक्रमके सम्बन्धमें बताया—

> येन येन च गच्छन्ति राक्षसा भयकर्षिताः॥
> तेन तेन स्म पश्यन्ति राममेवाग्रतः स्थितम्।
> इत्थं विनाशितं तेन जनस्थानं तवानघ॥
>
> (वा० रा० ३। ३१। १९-२०)

'भयसे कातर हुए राक्षस जिस-जिस मार्गसे भागते थे, वहाँ-वहाँ वे श्रीरामको ही अपने सामने खड़ा देखते थे। अनघ! इस प्रकार अकेले श्रीरामने ही आपके जनस्थानका विनाश किया है।'

इसके उपरान्त रोती-कलपती श्रुति-नासा-हीना विकटानना शूर्पणखाने जाकर रावणको श्रीरामके विरुद्ध उत्तेजित किया। कुटिलमति रावणने सीता-हरणका निश्चय किया और मारीचके समीप जाकर उसने श्रीरामके विरुद्ध अनर्गल आरोप लगाया। उत्तर देते हुए मारीचने कहा—

> न रामः कर्कशस्तात नाविद्वान् नाजितेन्द्रियः।
> अनृतं न श्रुतं चैव नैव त्वं वक्तुमर्हसि॥
>
> (वा० रा० ३। ३७। १२)

'श्रीरामको मैं जानता हूँ। वे क्रूर नहीं हैं। न वे मूर्ख और अजितेन्द्रिय ही हैं। उनमें मिथ्याभाषणका दोष भी मैंने नहीं सुना। अतः उनके बारेमें तुम्हें ऐसी उल्टी-ऊटपटाँग बातें नहीं कहनी चाहिये।' उसने रावणको रामका परिचय देते हुए कहा—

> 'रामो विग्रहवान् धर्मः साधुः सत्यपराक्रमः।'
>
> (वा० रा० ३। ३७। १३)

'श्रीराम धर्मके मूर्तिमान् स्वरूप, साधु और सत्यपराक्रमी हैं।'

इतना ही नहीं, श्रीरामके बल और पराक्रमसे पूर्णतया परिचित मारीचने काँपते हुए स्वरमें रावणसे कहा—

रकारादीनि नामानि रामत्रस्तस्य रावण।
रत्नानि च रथाश्चैव वित्रासं जनयन्ति मे॥
रणे रामेण युध्यस्व क्षमां वा कुरु रावण।
न ते रामकथा कार्या यदि मां द्रष्टुमिच्छसि॥

(वा० रा० ३। ३९। १८, २०)

'रावण! मैं रामसे इतना भयभीत हो गया हूँ कि रत्न और रथ आदि जितने भी रकारादि नाम हैं, वे मेरे कानोंमें पड़ते ही मनमें भारी भय उत्पन्न कर देते हैं।.......रावण! तुम्हारी इच्छा हो तो रणभूमिमें श्रीरामके साथ युद्ध करो अथवा उन्हें क्षमा कर दो; किंतु यदि मुझे जीवित देखना चाहते हो तो मेरे सामने श्रीरामकी चर्चा न करो।'

मारीचके वचन सुनकर रावणके नेत्र लाल हो गये। उद्दण्ड रावणको अत्यन्त कुपित देखकर उसके हाथों मारे जानेकी अपेक्षा मारीचने त्रैलोक्यपावन श्रीरामके शरोंसे प्राण त्यागकर जीवन सफल कर लेना उत्तम समझा और कञ्चन-मृग बनना स्वीकार कर लिया। सीताकी इच्छासे श्रीराम स्वर्ण-मृगके पीछे दौड़े। यद्यपि भगवान् श्रीरामके बाणसे मारीचने प्राण-विसर्जन कर दिया, तथापि लङ्कापति रावणने सीताहरण तो कर ही लिया। पृथ्वी-पुत्री सीता क्रूर रावणकी अशोकवाटिकामें बंदी-जीवन व्यतीत करनेके लिये विवश हुईं।

भगवान् श्रीराम अनुज लक्ष्मणसहित अपनी प्राणप्रिया जानकीके वियोगमें सामान्य मनुष्यकी तरह विलाप करते हुए उन्हें ढूँढ़ रहे थे कि रक्तसे लथपथ छिन्नपक्ष जटायु उन्हें दिखायी दिये। उन्होंने बताया कि 'दशानन रोती-कलपती, छटपटाती सीताको लिये जा रहा था। उसीके साथ युद्धमें मेरी यह दशा हुई। देवी सीताको दुष्ट दशानन लङ्कामें ले गया है।'

पक्षिराज जटायु त्रैलोक्यपावन प्रभुकी गोदमें पड़े हुए उनके मुखारविन्दकी ओर अपलक नेत्रोंसे देख रहे थे। प्रभु अत्यन्त प्यारपूर्वक उनके शरीरको अपने कर-कमलोंसे सहला रहे थे। इस प्रकार पक्षिराजने अपना पार्थिव कलेवर छोड़ दिया। धन्य थे पक्षिराज जटायु!

'गीध देह तजि धरि हरि रूपा। भूषन बहु पट पीत अनूपा॥'

(मानस ३। ३१। ½)

अबिरल भगति मागि बर गीध गयउ हरिधाम।
तेहि की क्रिया जथोचित निज कर कीन्ही राम॥

(मानस ३। ३२)

फिर सीतान्वेषण करते हुए दोनों भाई आगे चले। मार्गमें कबन्ध मारा गया। फिर वे रघुकुलभूषण भ्रातृद्वय मतंग मुनिके आश्रममें भक्तिमती शबरीके पास पहुँचे। वह दीर्घकालसे इनके मार्गमें पलक-पाँवड़े बिछाये इन्हींके ध्यान और भजनमें तल्लीन थीं। शबरीके आनन्दोल्लासका क्या कहना! उसने प्रभुकी श्रद्धा-भक्तिपूर्ण हृदयसे पूजा की। वनसे एकत्र किये बेरोंका भोग लगाया। फिर उसने अत्यन्त दीनतापूर्वक कहा—'दयामय! मैं अत्यन्त नीच जातिकी मूढ़तमा स्त्री हूँ। आपकी स्तुति किस प्रकार करूँ! प्रभो! आप स्वयं ही मुझपर प्रसन्न हो जाइये।'

शबरीके अन्तर्हृदयकी विशुद्ध प्रीति और उसकी दीनता देखकर श्रीभगवान्‌ने उससे कहा—

पुंस्त्वे स्त्रीत्वे विशेषो वा जातिनामाश्रमादयः।
न कारणं मद्भजने भक्तिरेव हि कारणम्॥
यज्ञदानतपोभिर्वा वेदाध्ययनकर्मभिः।
नैव द्रष्टुमहं शक्यो मद्भक्तिविमुखैः सदा॥

(अ० रा० ३। १०। २०-२१)

'पुरुष-स्त्रीका भेद, अथवा जाति, नाम और आश्रम—ये कोई भी मेरे भजनके कारण नहीं हैं। उसका कारण तो एकमात्र मेरी भक्ति ही है। जो मेरी भक्तिसे विमुख हैं, वे यज्ञ, दान, तप अथवा वेदाध्ययन आदि किसी भी कर्मसे मुझे कभी नहीं देख सकते।'

भक्तप्राणधन श्रीरामने शबरीको नवधा भक्तिके उपदेशके साथ ही योगिवृन्द-दुर्लभ गति प्रदान कर दी और इसी कारण जब श्रीराम और लक्ष्मण उसकी कुटियासे चलने लगे, तब उसने अधीर होकर ऋषि मुनियोंके सामने ही अपने भौतिक कलेवरको त्याग दिया और दिव्य धामके लिये प्रस्थित हुई। ऋषि-मुनि कृतार्थजीवना शबरीकी जय-जयकार करने लगे।

सानुज श्रीराम पम्पासर पहुँचे। सुग्रीव-प्रेषित पवन-पुत्र हनुमान् उनका परिचय प्राप्त करने आये, पर अपने प्रभुको

पहचानकर चरणोंपर गिर पड़े। उन्होंने देव-देव श्रीरामकी सुग्रीवके साथ मैत्री स्थापित करायी। वाली मारा गया। सुग्रीव किष्किन्धाधीश बने।

राघवेन्द्रने वर्षा ऋष्यमूक पर्वतपर व्यतीत की। शरद्का आगमन होते ही सुग्रीवने वानर-भालुओंको सीताका पता लगानेके लिये भेजा। अञ्जनीनन्दन सागर-पार पहुँचे। लङ्कामें विभीषणसे परिचय हुआ। उनकी बतायी युक्तिके अनुसार पवनपुत्रने माता सीताका दर्शन किया और उन्हें प्राणाराम श्रीरामका संदेश दिया। उन्होंने अपनी पूँछमें आग लगाये जानेके कारण राक्षसोंकी लङ्का फूँक दी और पुनः समुद्रोल्लङ्घन कर प्रभुके पास पहुँचे।

महान् वानर-भालुओंकी विशाल वाहिनीके साथ प्रभु सीतोद्धारके लिये प्रस्थित हुए। मदमत्त दशाननसे पादताड़ित विभीषण श्रीप्रभुकी शरणमें आये। उनकी भक्तिसे भक्तवत्सल श्रीरामने प्रसन्न होकर वर माँगनेके लिये कहा। विभीषणने याचना की—

कर्मबन्धविनाशाय त्वज्ज्ञानं भक्तिलक्षणम्।
त्वद्ध्यानं परमार्थं च देहि मे रघुनन्दन॥
न याचे राम राजेन्द्र सुखं विषयसम्भवम्।
त्वत्पादकमले सक्ता भक्तिरेव सदास्तु मे॥

(अ० रा० ६। ३। ३६-३७)

'रघुनन्दन! कर्मबन्धनको नष्ट करनेके लिये आप मुझे अपनी भक्तिसे प्राप्त होनेवाला ज्ञान और अपने परमार्थ-स्वरूपका साक्षात् करानेवाला ध्यान दीजिये। राजराजेश्वर राम! मुझे विषयजन्य सुखकी इच्छा नहीं है; मैं तो यही चाहता हूँ कि आपके चरण-कमलोंमें सर्वदा मेरी आसक्तिरूपा भक्ति बनी रहे।'

'तथास्तु' कहकर सर्वाधार श्रीरामने प्रसन्न होकर विभीषणको अपना रहस्य इस प्रकार बताया—

मद्भक्तानां प्रशान्तानां योगिनां वीतरागिणाम्।
हृदये सीतया नित्यं वसाम्यत्र न संशयः॥
तस्मात्त्वं सर्वदा शान्तः सर्वकल्मषवर्जितः।
मां ध्यात्वा मोक्ष्यसे नित्यं घोरसंसारसागरात्॥

(अ० रा० ६। ३। ३९-४०)

'जो मेरे शान्त-स्वभाव, विरक्त और योगनिष्ठ भक्त हैं, उनके हृदयमें मैं सीताजीके सहित सदा रहता हूँ— इसमें संदेह नहीं। अतः तुम सर्वदा शान्त और पापरहित रहकर मेरा ध्यान करनेसे घोर संसार-सागरसे पार हो जाओगे।'

सर्वसमर्थ प्रभुके आदेशसे लक्ष्मणजी कलशमें जल ले आये और उन्हींके आज्ञानुसार उन्होंने विभीषणको लङ्काके राजपदपर अभिषिक्त कर दिया। वानर-भालु प्रभुकी उदारतापर जय-जयकार करने लगे।

ससैन्य लङ्का पहुँचनेके लिये नीति-निपुण श्रीरामने समुद्रसे मार्गकी याचना की, तीन दिन उसके तटपर कुशासन बिछाये बैठे रहे; किंतु समुद्रपर कोई प्रभाव पड़ते न देख प्रभुने कुपित होकर 'कोटि सिंधु सोषक' सायक धनुषपर संधान किया ही था कि जलधिका अहंकार चूर्ण हो गया। वह सुवर्ण-थालमें दिव्य रत्न लिये ब्राह्मणके वेषमें तेजस्वी श्रीरामके सम्मुख उपस्थित हुआ और—

'सभय सिंधु गहि पद प्रभु केरे। छमहु नाथ सब अवगुन मेरे॥'

(मानस ५। ५८। ½)

सुग्रीव एवं लक्ष्मणके सहित क्षमामय प्रभु श्रीरामने समुद्रके परामर्शसे नलको वानर-भालुओंकी सहायतासे सेतु-निर्माणकी आज्ञा दी। सेतुबन्धके आरम्भ होनेपर भगवान् श्रीरामने समुद्र-तटपर आशुतोष श्रीरामेश्वरकी स्थापना कर उनकी श्रद्धा तथा विधिपूर्वक पूजा की। लोक-कल्याणके लिये सर्वेश्वर श्रीरामने घोषणा की—

प्रणमेत् सेतुबन्धं यो दृष्ट्वा रामेश्वरं शिवम्।
ब्रह्महत्यादिपापेभ्यो मुच्यते मदनुग्रहात्॥

(अध्यात्म० ६। ४। २)

'जो पुरुष रामेश्वर शिवका दर्शन कर सेतुबन्धको प्रणाम करेगा, वह मेरी कृपासे ब्रह्महत्या आदि पापोंसे मुक्त हो जायगा।'

प्रभु-कृपासे सेतु निर्मित हुआ। वानर-भालुओंकी विशाल वाहिनीके साथ श्रीराम समुद्र-पार हुए। असंख्य वीर वानरोंने सुवेल-पर्वतको घेर लिया। इस परिस्थितिमें शुक-नामक राक्षसने रावणको श्रीराम-माहात्म्य सुनाकर युद्ध-विरत करना चाहा, किंतु उसे रावणसे तिरस्कृत होना पड़ा। युद्ध प्रारम्भ हुआ। असंख्य वीर सैनिकोंसे युद्ध-स्थल पट गया। ज्यों-ज्यों राक्षसके चुने वीर मरते जाते, त्यों-त्यों रावण

और अधिक उग्र होता जाता। उसकी बुद्धि उसे विपरीत दिशा देती।

मेघनादसे लक्ष्मणका युद्ध हुआ। सुमित्रानन्दनको शक्ति लगी। मूर्च्छित लक्ष्मणको देखकर आदर्श भाई श्रीरामने कहा—'यदि सचमुच लक्ष्मण स्वर्गधाम चला गया है तो इन वानरोंकी संनिधिमें मैं अपने प्राणोंका अन्त कर डालूँगा।'

यथैव मां वनं यान्तमनुयातो महाद्युतिः।
अहमप्यनुयास्यामि तथैवैनं यमक्षयम्॥
(वा० रा० ६। ४९। १७)

'जिस प्रकार वन-वनके संकटों और विपत्तियोंमें लक्ष्मणने मेरा अनुसरण किया, उसी प्रकार मैं भी लक्ष्मणके पीछे-पीछे उसका अनुसरण करता हुआ यमलोकको जाऊँगा।'

इसी प्रकार जब दूसरी बार भी सौमित्रि रावणके सांघातिक शक्ति-प्रहारसे अचेत हो गये, तब रामका भ्रातृ-हृदय इसे सहन नहीं कर सका। अधीर होकर वे कहने लगे—

देशे देशे कलत्राणि देशे देशे च बान्धवाः।
तं तु देशं न पश्यामि यत्र भ्राता सहोदरः॥
(वा० रा० ६। १०१। १५)

'प्रत्येक देशमें पत्नियाँ मिल सकती हैं, देश-देशमें जाति-भाई उपलब्ध हो सकते हैं; परंतु ऐसा कोई देश मुझे नहीं दिखायी देता, जहाँ सहोदर भाई मिल सके।'

× × ×

सामान्य एवं गम्भीर परिस्थितियोंमें भी श्रीराम धर्म एवं आदर्शको सर्वोपरि स्थान देते थे। दशाननके साथ भयानक युद्धके समय जब भी वह अस्त्र-शस्त्र-हीन हुआ या उसका रथ नष्ट हो गया, तब परम पराक्रमी श्रीरामने राक्षसराज रावणको छोड़ दिया तथा उसे पुनः नवीन धनुष-बाण, रथ और आयुधोंसे सज्जित होकर संग्राम करनेका अवसर प्रदान किया। एक बार जब लङ्कापति भगवान् श्रीरामके वज्रतुल्य महाबाणसे विद्ध हो गया, तब—

रामबाणहतो वीरश्चचाल च मुमोह च।
हस्तात्पतितचापस्तं समीक्ष्य रघूत्तमः॥
अर्धचन्द्रेण चिच्छेद तत्किरीटं रविप्रभम्।
अनुजानामि गच्छ त्वमिदानीं बाणपीडितः॥
प्रविश्य लङ्कामाश्वस्य श्वः पश्यसि बलं मम।
(अ० रा० ६। ६। २८–२९½)

"भगवान् रामका बाण लगनेसे वह वीर विचलित हो गया। उसे मूर्च्छा आ गयी और उसके हाथसे धनुष छूट गया। उसकी ऐसी दशा देखकर रघुनाथजीने एक अर्द्धचन्द्राकार बाणसे उसका सूर्य सदृश प्रकाशमान मुकुट काट डाला और कहा—'रावण! तुम मेरे बाणसे पीड़ित हो; अतः मैं तुम्हें छुट्टी देता हूँ, इस समय तुम जाओ। आज लङ्कामें जाकर निर्भय हो जाओ, फिर कल मेरा पराक्रम देखना।'

अधर्म, अनीति एवं कदाचारकी मूर्ति रावणके साथ भी भू-भार-भञ्जन धर्मात्मा श्रीराम धर्म, नीति एवं आचारसे पूर्ण ही व्यवहार कर रहे थे। उनका युद्ध भी धर्म-प्रधान ही था। निश्चय ही वे असुर भाग्यवान् थे, जो शत्रुभावसे ही श्रीरामका स्मरण-चिन्तन करते, युद्धमें उनके मुखार-विन्दका दर्शन करते और उन मङ्गलमय प्रभुके तीक्ष्ण शरोंकी भेंट चढ़ जाते।

धर्ममूर्ति श्रीरामके साथ युद्धमें रावणके बड़े-बड़े वीर पुत्र, पौत्र और बन्धु-बान्धवगण मार डाले गये। तब निराश होकर उसने अपने महाबली भाई कुम्भकर्णको जगाकर बुलवाया और उसके सम्मुख अपनी संकटापन्न स्थिति स्पष्ट की तथा उससे त्राण दिलानेकी प्रार्थना करने लगा। रावणकी बात सुनकर कुम्भकर्ण बड़े जोरसे हँसा और बोला—

पुरा मन्त्रविचारे ते गदितं यन्मया नृप।
तदद्य त्वामुपगतं फलं पापस्य कर्मणः॥
पूर्वमेव मया प्रोक्तो रामो नारायणः परः।
सीता च योगमायेति बोधितोऽपि न बुध्यसे॥
(अ० रा० ६। ७। ५७-५८)

'राजन्! आपने जब पहले सबसे सलाह ली थी, उस समय मैंने जिसकी सूचना आपको दी थी, आपके पापका वह फल आज उपस्थित हो ही गया। मैंने तो आपसे पहले ही कहा था कि राम साक्षात् परब्रह्म नारायण हैं और सीताजी योगमाया हैं; किंतु आप तो समझानेपर भी नहीं समझ रहे थे।'

इतना ही नहीं, कुम्भकर्णने अत्यन्त आदर और प्रीति-के साथ रावणको श्रीरामकी भक्ति करनेकी प्रेरणा दी। उनका

भजन कर जीवन-सफल बनानेका सदुपदेश देते हुए उसने अत्यन्त गम्भीरतापूर्वक और कहा—

अवताराः सुबहवो विष्णोर्लीलानुकारिणः।
तेषां सहस्रसदृशो रामो ज्ञानमयः शिवः॥
रामं भजन्ति निपुणा मनसा वचसानिशम्।
अनायासेन संसारं तीर्त्वा यान्ति हरेः पदम्॥

(अ० रा० ६ । ७ । ६८-६९)

'भगवान् विष्णुके अनेकों अवतार हुए हैं और उन सभीने भगवान् विष्णुकी लीलाओंके अनुसार ही लीला की थी। किंतु यह शिवस्वरूप ज्ञानमय रामावतार वैसे एक सहस्र अवतारोंके समान है। जो चतुर लोग रात-दिन मन और वचनसे भगवान् रामका भजन करते हैं, वे बिना प्रयास ही संसारको पार कर श्रीहरिके परमधामको जाते हैं।'

'मैंने तुम्हें ज्ञानोपदेशके लिये नहीं बुलाया है।' अत्यन्त कुपित होकर रावणने अपने भाई कुम्भकर्णसे कहा। 'या तो तुम मेरी बात मानकर युद्ध करो, अन्यथा जाकर सोओ। तुम्हें नींद सता रही होगी।'

रावणको रुष्ट जानकर सपक्ष महापर्वतके समान महाकाय कुम्भकर्ण श्रीरामसे युद्धके लिये चल पड़ा। उसे देखकर वानर-भालु भयभीत होकर भागने लगे। बीचमें विभीषणने उसके चरणोंमें प्रणाम किया और रावणको त्यागकर श्रीराम-पदपद्मका आश्रय स्वीकार करनेका वृत्तान्त सुनाया तो प्रसन्न होकर कुम्भकर्णने उससे कहा—"वत्स! तुमने भगवान् श्रीरामकी चरण-शरण ग्रहणकर अत्यन्त मङ्गल किया। तुम राक्षस-कुल-तिलक हो। दीर्घजीवी होओ। अब तुम जाओ। मदमत्त होनेके कारण मेरा 'स्व' और 'पर'का ज्ञान मिट चला है।"

कुम्भकर्ण वानर-भालुओंकी सेनाको रौंदते हुए इधर-उधर घूमने लगा। अपनी सेनाका विनाश होते देख वीरवर श्रीरामने अपने तीक्ष्ण शरोंसे कुम्भकर्णका सिर काट डाला। कुम्भकर्णका मस्तक लङ्काके द्वारपर और धड़ समुद्रमें जा गिरा।

ऋषि-मुनियोंसहित देवगण आकाशसे स्तुति करते हुए प्रभुपर सुमन-वृष्टि करने लगे। आकाशसे देवर्षि नारद आये। उन्होंने प्रभुके नील कलेवरका दर्शन कर गद्गद कण्ठसे उनकी स्तुति की और फिर वे श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञा प्राप्तकर ब्रह्मलोकको चले गये।

इसके बाद जब रावणका इन्द्रविजयी महाबली पुत्र मेघनाद रामानुज लक्ष्मणजीके द्वारा मारा गया, तब रावण मूर्च्छित होकर धरतीपर गिर पड़ा। उसे उसकी पत्नी मन्दोदरीने भी समझाया, पर उसपर उसके प्रबोधका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। महाभयंकर राक्षसोंसे घिरा निष्ठुर भीषणाकार रावण स्वयं शस्त्र-सज हो प्रभुसे युद्ध करने चला। भगवान् श्रीरामका रावणसे भयानक संग्राम हुआ। रावणकी सारी शूरवीरता, सारी वाहिनी तथा शस्त्रादि युद्धके सभी उपकरण व्यर्थ हुए। असत्य, अधर्म, अनीति और अनाचारपर सत्य, धर्म, नीति एवं सदाचारकी विजय हुई। भुवनपावन श्रीरामके पवित्रतम शरोंसे रावण मारा गया और उसके शरीरसे प्रज्वलित ज्योति निकलकर श्रीरामचन्द्रजीमें समा गयी। वहाँ उपस्थित देवता बोल उठे—

'...अहो भाग्यं रावणस्य महात्मनः।'

(अ० रा० ६ । ११ । ७४)

'अहो! महात्मा रावणका बड़ा भाग्य है।'

'आपलोगोंके बाहुबलसे आज मैंने रावणको मार दिया।' भगवान् श्रीरामने विभीषण, हनुमान्, अङ्गद, लक्ष्मण, वानरराज सुग्रीव, जाम्बवान् तथा अन्यान्य वीरोंकी ओर देखते हुए कहा। 'जो लोग मेरे साथ आपलोगोंकी पवित्र कीर्तिका गुणगान करेंगे, वे परम पदके अधिकारी होंगे।'

इसी समय रावणकी पत्नियाँ वहाँ आकर विलाप करने लगीं। विभीषण रावणके क्रूर कर्मोंका स्मरण कर उसके निष्प्राण शरीरको घृणाकी दृष्टिसे देख रहे थे। उस समय सर्वसुहृद् करुणायतन श्रीरामने विभीषणको रोती-कलपती स्त्रियोंको धैर्य बँधानेका आदेश देते हुए अत्यन्त शान्तिसे कहा—

मरणान्तानि वैराणि निर्वृत्तं नः प्रयोजनम्॥
क्रियतामस्य संस्कारो ममाप्येष यथा तव।

(वा० रा० ६ । १११ । १००-१०१)

'वैर मरनेतक ही रहता है। मरनेके बाद उसका अन्त हो जाता है। अब हमारा प्रयोजन भी सिद्ध हो चुका है, अतः इस समय जैसे यह तुम्हारा भाई है, वैसे ही मेरा भी है; इसलिये इसका दाह-संस्कार करो।'

साधु विभीषणने रावणकी अन्त्येष्टि की, जलाञ्जलि देनेके अनन्तर उसे पृथिवीपर सिर रखकर प्रणाम किया तथा रावण-पत्नियोंको अनेक प्रकारके मधुर वचनोंसे धैर्य बँधाया।

'मैंने तो पहले ही विभीषणको लङ्काके राजपदपर अभिषिक्त कर दिया है।' भगवान् श्रीरामने लक्ष्मणसे कहा। 'तथापि तुम महाबुद्धिमान् राक्षसराज विभीषणका मन्त्रपाठपूर्वक सविधि मङ्गलमय अभिषेक कराओ।'

विभीषण लङ्काधीश हुए। सर्वसिद्धिरूपिणी महासती सीताजीने अग्नि-परीक्षा दी। लोकस्रष्टा एवं इन्द्रादि देवगणोंने प्रभुकी स्तुति की। प्रभुके आदेशसे इन्द्रकी सुधा-वृष्टिसे मृत वानर-भालू जीवित हो गये। विभीषणने मङ्गलमूर्ति प्रभुके चरणोंमें प्रणाम कर उनसे मङ्गलस्नान करके नवीन वस्त्राभूषण धारण करनेके लिये निवेदन किया तो भरत-प्राणधन दशरथनन्दनने उत्तर दिया—

तोर कोस गृह मोर सब सत्य बचन सुनु भ्रात।
भरत दसा सुमिरत मोहि निमिष कल्प सम जात॥
तापस बेष गात कृस जपत निरंतर मोहि।
देखौं बेगि सो जतनु करु सखा निहोरउँ तोहि॥
बीतें अवधि जाउँ जौं जिअत न पावउँ बीर।

(मानस ७। ११६ क, ख, ग)

प्रभु भरतजीकी प्रीतिका स्मरणकर पुलकित हो गये। विभीषणने आकाशसे विमानके द्वारा बहुमूल्य वस्त्राभूषण, रत्न एवं मणियोंकी वर्षा कर दी। वानर-भालुओंने अपने-अपने इच्छानुसार वस्त्राभूषण धारण किये और सुन्दरतम विशाल पुष्पक विमानपर भगवान् श्रीराम, लक्ष्मण और सीताके साथ सभी वानर-भालु आरूढ़ हुए। पुष्पक अयोध्याके लिये उड़ा। पवनवेगसे उड़ते हुए पुष्पकपर आरूढ़ भगवान् श्रीराम अपनी प्राणप्रिया सीताको पृथ्वीके उन-उन स्थानोंको दिखाते जा रहे थे, जहाँ-जहाँ उन्होंने निवास किया था, लीलाएँ की थीं।

अञ्जनीनन्दन हनुमान्‌के द्वारा श्रीरामके लक्ष्मण, सीता एवं परिकरोंसहित सकुशल लौटनेका संवाद पाकर भरतजीका रोम-रोम पुलकित हो उठा। उन दूर्वादल-श्याम-कलेवर भरतके कमल-सरीखे नेत्रोंसे प्रेमके आँसू बहने लगे। माताओं एवं अयोध्यावासियोंकी प्रसन्नताकी सीमा नहीं रही। वहाँका प्रत्येक भवन उज्ज्वल मोतियों, रत्नोंकी बन्दनवारों एवं चित्र-विचित्र पताकाओंसे सज गया। अवधके राजपथकी तो बात ही क्या, वहाँकी वीथियोंमें परमानन्द जैसे मूर्त होकर नृत्य कर रहा था।

अयोध्याके प्राणाधार, माताओं एवं भ्राताओंके सर्वस्व, नीलमणि, कमल-दल-लोचन श्रीराम पधारे। अयोध्याके प्राण लौटे। कौसल्या, सुमित्रा, कैकेयी, भरत और शत्रुघ्नके आनन्दोल्लासकी सीमा नहीं थी। कुलगुरु महर्षि वसिष्ठ, मन्त्रिगण, सखा एवं समस्त पुरवासी हर्ष-विभोर थे। सबको प्रेम-विह्वल देखकर सर्वान्तर्यामी, सर्वज्ञ एवं सर्वसमर्थ प्रभु श्रीराम—

अमित रूप प्रगटे तेहि काला। जथा जोग मिले सबहि कृपाला॥
कृपादृष्टि रघुबीर बिलोकी। किए सकल नर नारि बिसोकी॥
छन महिं सबहि मिले भगवाना। उमा मरम यह काहुँ न जाना॥

(मानस ७। ५। ३-३½)

इस प्रकार दयाधाम श्रीरामने सबको प्रेमानन्द प्रदान किया।

'भाई सुग्रीव! तुम्हारी सहायतासे ही मेरे प्राण-सर्वस्व भाईने युद्धमें विजय प्राप्त की है।' समस्त वानर-भालुओंसे प्रेमपूर्वक मिलकर भरतजीने किष्किन्धाधीशके प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहा। 'अतः हम चारोंके तुम पाँचवें भाई हो।'

'मेरा सर्वसमृद्धियुक्त श्रेष्ठ महल मेरे मित्र वानरराज सुग्रीवको दो!' श्रीरामने अपने वानर-भालू साथियोंको अत्यधिक सम्मान देते हुए भरतजीको आदेश दिया। 'और सबके लिये भी अत्यन्त सुखमय निवासकी व्यवस्था करो।'

भगवान् श्रीरामके अन्यतम प्रीति-भाजन अनुचरोंकी सुव्यवस्था कर भरतजीने सुग्रीवके समीप जाकर कहा—'प्रभु श्रीरामके मङ्गलमय अभिषेकके लिये आप चारों समुद्रोंका जल शीघ्र मँगवानेकी व्यवस्था कीजिये।'

किष्किन्धापति सुग्रीव अब श्रीरामादिके पाँचवें भाई थे। उनके आज्ञानुसार जाम्बवान्, हनुमान्, अङ्गद और सुषेण पवन-वेगसे उछले और शीघ्र ही चारों समुद्रोंके जलसे भरे स्वर्णकलश लिये लौट आये।

भरतादिक भाइयों, तीनों माताओं, मन्त्रियों एवं पुरवासियोंके आग्रह-अनुरोधसे ब्राह्मणोंके सहित वयोवृद्ध, जितेन्द्रिय वसिष्ठजीने सीताजीके सहित श्रीरामचन्द्रजीको रत्नसिंहासनपर बैठाया और वसिष्ठ, वामदेव, जाबालि, गौतम तथा वाल्मीकि आदि सभी महर्षियोंने अत्यन्त हर्षके साथ कुश और

तुलसीके सहित पवित्र गन्धयुक्त जलसे श्रीरघुनाथजीका अभिषेक किया। आकाशसे देव-दुन्दुभियोंके घोषके साथ दिव्य पुष्पोंकी वृष्टि होने लगी। नवदूर्वादलश्याम, पद्मपत्राक्ष, पीताम्बर-परिवेष्टित, दिव्याभरण-विभूषित, दिव्यचन्दन-चर्चित, कोटिसूर्यसमप्रभ श्रीरामचन्द्रजीके वामभागमें सर्वकल्याणमयी कर-कमलमें रक्तकमल धारण किये, सर्वाभरणभूषिता सुवर्णवर्णा सीताजीके दर्शन कर सर्वलोकमहेश्वर, कर्पूरगौर आशुतोष शिव माता पार्वतीसहित कृतार्थताका अनुभव करने लगे। देवताओंके साथ भक्तिभावपूर्ण हृदयसे अवधनरेश श्रीरामकी स्तुति करते हुए उन्होंने कहा—

ब्रह्मादयस्ते न विदुः स्वरूपं चिदात्मतत्त्वं बहिरर्थभावाः।
ततो बुधस्त्वामिदमेव रूपं भक्त्या भजन्मुक्तिमुपैत्यदुःखः॥
अहं भवन्नाम गृणन् कृतार्थो वसामि काश्यामनिशं भवान्या।
मुमूर्षमाणस्य विमुक्तयेऽहं दिशामि मन्त्रं तव राम-नाम॥
(अ० रा० ६। १५। ६१-६२)

"जिनकी बाह्य पदार्थोंमें सत्यबुद्धि है, वे ब्रह्मादि भी आपके चित्स्वरूपको नहीं जानते (फिर औरोंका तो कहना ही क्या है); अतः बुद्धिमान् पुरुष इस श्यामसुन्दरस्वरूपसे ही आपका भक्तिपूर्वक भजन करके दुःखोंसे पार होकर मोक्ष प्राप्त कर लेता है। प्रभो! आपके नामोच्चारणसे कृतार्थ होकर मैं अहर्निश पार्वतीजीके सहित काशीमें रहता हूँ और वहाँ मरणासन्न पुरुषोंको उनके मोक्षके लिये आपके तारक मन्त्र 'राम'-नामका उपदेश करता हूँ।"

इसी प्रकार इन्द्रादि देवगण, पितृगण, यक्ष, सिद्ध, किंनर, मरुत्, वसु, मुनि, गौएँ, गुह्यक, पक्षी, प्रजापति और अप्सराओंने नयनानन्दवर्धन श्रीरामका दर्शन एवं पृथक्-पृथक् स्तवन किया। फिर वे अपने-अपने लोकको चले गये।

भगवान् श्रीरामके सिंहासनासीन होते ही पृथिवी धन-धान्यसे पूर्ण हो गयी। वृक्ष फलोंसे लद गये। ब्राह्मणोंको वस्त्राभूषण, रत्न एवं करोड़ों स्वर्णमुद्राएँ दी गयीं। सर्वत्र सुख, शान्ति एवं परमानन्द प्रसरित हो गया। भगवान् श्रीरामने गुह, राक्षसराज विभीषण, वानरपति सुग्रीव तथा सभी बंदर-भालुओंको दिव्य वसन-भूषण और मणि आदि देकर तथा अपनी दुर्लभ भक्ति एवं प्रीतिसे कृतार्थ कर बिदा किया।

एक दिनकी बात है। सिंहासनासीन श्रीराघवेन्द्रके सम्मुख उनके अनन्य सेवक भोगेच्छारहित पवनकुमार हाथ जोड़े खड़े थे। ज्ञान-प्राप्तिकी उन्हें कामना थी। उन्हें देखकर भगवान् श्रीरामने भगवती सीताको निष्पाप और ज्ञानके सुयोग्य पात्र हनुमान्‌को अपने तत्त्वका उपदेश करनेकी आज्ञा दी। त्रैलोक्यतारिणी माता जानकीने शरणागत हनुमान्‌को प्रभु-तत्त्वका विस्तृत उपदेश देते हुए कहा—

रामं विद्धि परं ब्रह्म सच्चिदानन्दमद्वयम्।
सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं सत्तामात्रमगोचरम्॥
आनन्दं निर्मलं शान्तं निर्विकारं निरञ्जनम्।
सर्वव्यापिनमात्मानं स्वप्रकाशमकल्मषम्॥
मां विद्धि मूलप्रकृतिं सर्गस्थित्यन्तकारिणीम्।
तस्य संनिधिमात्रेण सृजामीदमतन्द्रिता॥
रामो न गच्छति न तिष्ठति नानुशोच-
त्याकाङ्क्षते त्यजति नो न करोति किंचित्।
आनन्दमूर्तिरचलः परिणामहीनो
मायागुणाननुगतो हि तथा विभाति॥
(अ० रा० १। १। ३२-३४, ४३)

'वत्स हनुमान्! तुम रामको साक्षात् द्वैतशून्य सच्चिदानन्दघन परब्रह्म समझो; ये निस्संदेह समस्त उपाधियोंसे रहित, सत्तामात्र, मन तथा इन्द्रियोंके अविषय, आनन्दघन, निर्मल, शान्त, निर्विकार, निरञ्जन, सर्वव्यापक, स्वयम्प्रकाश और पापहीन परमात्मा ही हैं। और मुझे संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और अन्त करनेवाली मूल-प्रकृति जानो। मैं ही निरालस्य होकर इनकी संनिधिमात्रसे इस विश्वकी रचना किया करती हूँ।''''''ये राम तो (वास्तवमें) न चलते हैं न ठहरते हैं, न शोक करते हैं न इच्छा करते हैं, न त्यागते हैं और न कोई अन्य क्रिया ही करते हैं। ये आनन्दस्वरूप, अविचल और परिणामहीन हैं, केवल मायाके गुणोंसे व्याप्त होनेके कारण ही ये उल्टे प्रतीत होते हैं।'

राम-राज्य—प्रजापालक श्रीरामका-सा सुशासन अबतक पृथ्वीपर सुननेमें नहीं आया। सुख-शान्ति सर्वत्र व्याप्त थी, रामराज्यमें। सभी पुरुष धर्मपरायण थे। पुत्र-मरण कहीं देखनेमें नहीं आया। एक बार एक ब्राह्मण-बालककी असमयमें मृत्यु हो गयी। भगवान् श्रीरामने धर्म-मर्यादाकी रक्षा कर उसे पुनर्जीवन प्रदान किया। धर्मात्मा श्रीराम स्वयं सदाचारपरायण एवं एकपत्नीव्रती थे। उनके राज्यमें स्त्रियाँ सदाचारिणी एवं पतिपरायणा होती थीं। निर्वैर जीवन व्यतीत करते हुए सभी वेद-मार्गका अनुसरण कर अपने-अपने वर्ण-

धर्मका पालन करते थे। राम-राज्यसे त्रयताप दूर रहते थे। उस समय दीन, दुःखी और दरिद्र कहीं देखनेमें नहीं आते थे। सभी निष्कपट, दम्भशून्य, गुणज्ञ, विद्वान्, बुद्धिमान् एवं धर्मात्मा थे—

सागर निज मरजादाँ रहहीं। डारहिं रत्न तटन्हि नर लहहीं॥
सरसिज संकुल सकल तड़ागा। अति प्रसन्न दस दिसा बिभागा॥

बिधु महि पूर मयूखन्हि रबि तप जेतनेहि काज।
मागें बारिद देहिं जल रामचंद्र कें राज॥

(मानस ७। २२। ५; २३)

मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामका जीवन प्रत्येक दृष्टिसे परमोज्ज्वल आदर्शसे सम्पन्न था। वे प्रजावत्सल थे। प्रजा उन्हें अपना सर्वस्व समझती थी। एक नगण्य नागरिकके लाञ्छनपर उन्होंने परम पुण्यमयी प्राणप्रिया महासती सीताको वनमें भेज दिया। महर्षि वाल्मीकिके आश्रममें कुश और लवका जन्म हुआ। कुमार शत्रुघ्नके हाथों क्रूरकर्मा लवणासुर मारा गया। कुमार शत्रुघ्नने मधुपुरीका शासन सँभाला।

अयोध्यानरेश भगवान् श्रीराम एक पर्णशालामें रहते हुए अपनी सहधर्मिणी सीताकी स्वर्णप्रतिमा बनवाकर यज्ञ कर रहे थे। उक्त यज्ञके दर्शनार्थ प्रायः सभी ऋषि-महर्षि, राजर्षि, ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य गये थे। महर्षि वाल्मीकि भी लव-कुशके साथ वहाँ पहुँचे। महर्षिके लिये ऋषियोंके समीप रहनेकी सुव्यवस्था कर दी गयी थी।

अनुपम सुन्दर एवं तेजस्वी लव-कुशके मुखसे लय और स्वरके साथ वीणापर कई दिनोंतक वाल्मीकिरचित रामचरित्र सुनकर श्रीराम मुग्ध हो गये और उन्हें यह भी विदित हो गया कि 'ये सीताके ही सुपुत्र हैं।' श्रीरामने अपने दूतोंके द्वारा महर्षि वाल्मीकिके पास संदेश भेजा कि 'निर्दोष एवं पवित्र सीता आपकी अनुमतिसे यहाँ सबके सम्मुख अपनी निष्कलङ्कता एवं पवित्रता प्रमाणित करें।'

दूसरे दिन महर्षि वाल्मीकि गैरिकवस्त्रधारिणी कठोर तपस्यामें रत जनकनन्दिनीके साथ श्रीरामकी भरी सभामें पहुँचे। महर्षिके पीछे सीता सिर झुकाये चली आ रही थीं। उनके दोनों हाथ जुड़े थे और नेत्रोंसे आँसू झर रहे थे। वे अपने हृदय-मन्दिरमें विराजित श्रीरामका चिन्तन कर रही थीं। महर्षिने सबके बीच तपोमूर्ति सीताकी पवित्रताकी घोषणा करते हुए यहाँतक कह दिया कि 'मिथिलेशकुमारी सीतामें कोई दोष हो तो मुझे मेरी सहस्रों वर्षोंकी तपस्याका फल न मिले।'

धर्म, आदर्श, मर्यादा एवं कर्तव्यके पालनमें अत्यन्त निष्ठुर श्रीरामने महर्षिकी वाणीमें सम्पूर्णतया विश्वास करनेपर भी भगवती सीताको जन-समुदायमें शुद्धता प्रमाणित करनेकी बात कही। तब सम्पूर्ण सभासदों, ऋषियों, महर्षियों, राजाओं एवं विद्वानों तथा जन-समुदायके सम्मुख हाथ जोड़े, दृष्टि नीचे किये सतीत्वकी परमोज्ज्वल दिव्य मूर्ति सीताने कहा—

रामादन्यं यथाहं वै मनसापि न चिन्तये।
तथा मे धरणी देवी विवरं दातुमर्हति॥

(अ० रा० ७। ७। ४०)

'यदि मैं भगवान् रामके अतिरिक्त अन्य पुरुषका मनसे भी चिन्तन नहीं करती तो पृथिवी देवी मुझे अपने अंदर स्थान दें।'

उसी क्षण पृथ्वी फटी और सबके सम्मुख एक अद्भुत एवं दिव्य सिंहासनपर, जिसे महापराक्रमी नागोंने धारण कर रखा था, पृथ्वीकी अधिष्ठात्री देवी भी दिव्यरूपमें प्रकट हुईं और उन्होंने अपनी प्राणप्रिया पुत्री सीताको अत्यन्त प्यारसे गोदमें ले लिया। जानकी रसातलमें प्रविष्ट हो गयीं। उनके ऊपर दिव्यतम सुमन-वृष्टि होने लगी।

प्रजापालक मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामके नेत्र भर आये। उन्होंने रोते हुए अपने दोनों बालकोंको हृदयसे लगा लिया और अपनी पर्णशालाकी ओर ले चले। साक्षात् धर्ममूर्ति सीताके पाताल-प्रवेशसे श्रीरामका जीवन सूना प्रतीत होने लगा। यज्ञ-कार्य सम्पन्न होनेपर श्रीरामने अयोध्यामें प्रवेश किया। राज्य करते हुए भगवान् श्रीरामका जीवन सदा धर्म-पालनके ही प्रयत्नमें व्यतीत होता था।

दीर्घकाल व्यतीत होनेपर पुत्र-पौत्रोंसे घिरी माता कौसल्याने काल-धर्मके अनुसार अपना शरीर त्याग दिया। सुमित्रा और कैकेयीने भी उनका अनुसरण किया। वे तीनों महिमामयी देवियाँ परलोकमें अपने पति दशरथजीसे मिलकर प्रसन्न हो गयीं। रघुनाथजी समय-समयपर अपनी तीनों माताओंके लिये भेद-भावके बिना श्राद्धोपयोगी बहुमूल्य सामग्रियाँ तपस्वी ब्राह्मणोंको दान देते तथा पितरों और देवताओंको संतुष्ट करनेके लिये बड़े-बड़े यज्ञोंका अनुष्ठान किया करते थे।

भगवान् श्रीरामके आदेशसे भरतने अपने दोनों पुत्रों तक्ष और पुष्कलको क्रमशः तक्षशिला और पुष्कलावतीका राज्य प्रदान किया और भरतके परामर्शसे भगवान् श्रीरामने कारुपथ देशको अपने अधीन कर लक्ष्मण-पुत्र अङ्गदके लिये प्रत्येक रीतिसे सुरक्षित अङ्गदीया-नामक सुन्दर पुरीका निर्माण करा दिया और लक्ष्मणके दूसरे पुत्र चन्द्रकेतुके लिये चन्द्रकान्ता-नामक विख्यातपुरी निर्मित करा दी। इस प्रकार भगवान् श्रीरामने सर्वथा निरापद दस सहस्र वर्षतक पृथ्वीपर शासन किया।

'मैं अमिततेजस्वी अतिबलका दूत महाबल हूँ।' कुछ समयोपरान्त तपस्वी ऋषिके वेषमें कालने उपस्थित होकर लक्ष्मणसे निवेदन किया। 'मैं कार्यवशात् अयोध्यानरेश श्रीरामसे मिलना चाहता हूँ।'

श्रीरामकी अनुमति प्राप्तकर लक्ष्मण उन्हें भीतर ले गये तो महातेजस्वी रघुनाथजीने अर्घ्यादिसे उनकी पूजा की और बोले—'आप जिनके दूत हैं, उनका संदेश सुनाइये।'

'मुनिश्रेष्ठ अतिबलके कथनानुसार हमलोगोंकी बात सर्वथा गुप्त रहनी चाहिये।' मुनिने उत्तर दिया। 'यदि आप उनके वचनका आदर करें तो यदि कोई तृतीय व्यक्ति हम-लोगोंकी बात सुन ले या हमें बात करते देख भी ले तो आपके द्वारा मारा जायगा।'

'तथास्तु!' श्रीराघवेन्द्रने लक्ष्मणको बुलाकर आदेश देते हुए कहा—'तुम द्वारपालको बिदा करके स्वयं ड्योढ़ीपर खड़े होकर पहरा दो। हम दोनोंकी बात जो सुनेगा या देख भी लेगा, वह मेरे द्वारा मारा जायगा।'

'राजन्! मुझे लोकस्रष्टाने भेजा है।' आदेश स्वीकार कर लक्ष्मणके चले जानेपर मुनिने निवेदन किया। ''मैं सृष्टि-संहारक काल हूँ। विधाताने निवेदन किया है 'प्रभो! हमलोगोंपर दया कर आपने मनुष्य-कुलमें अवतार धारण किया था, वह कार्य अब पूरा हो गया। अब आप और अधिक कालतक प्रजापालन करना चाहें तो यहाँ रह सकते हैं, अन्यथा आप पुनः विष्णुरूपमें प्रतिष्ठित होकर हम समस्त देवगणोंको सुखी और सनाथ करें'।''

'ब्रह्माकी बातें सुनकर मुझे प्रसन्नता हुई।' हँसते हुए प्रभुने उत्तर दिया। 'सच तो यह है कि मेरे इच्छानुसार ही तुम्हारा यहाँ आना हुआ है। मेरा कार्य पूरा हो गया। अतः मैं शीघ्र ही यहाँसे प्रस्थान करूँगा।'

'महामुनि दुर्वासा पधारे हैं।' श्रीराघवेन्द्र और कालकी बात समाप्त ही हुई थी कि रामानुज लक्ष्मणने वहाँ पहुँचकर निवेदन किया। 'वे तत्काल आपसे मिलना चाहते हैं। मुनिको आपके साथ सम्पूर्ण अयोध्याको शाप देनेके लिये उद्यत देखकर मैं स्वयं आ गया।'

भगवान् श्रीरामने तुरंत आकर अत्रिपुत्र महर्षि दुर्वासाको प्रणाम किया और बोले—'भगवन्! मेरे लिये क्या आज्ञा है।'

'मेरे एक सहस्र वर्षके उपवासका आज समापन-दिवस है।' दुर्वासाजीने कहा। 'अतः आपके यहाँ जो भी अन्न तैयार हो, मैं अभी भोजन करना चाहता हूँ।'

श्रीरघुनाथजीने अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक महर्षिको भोजन कराया। अमृत-तुल्य स्वादिष्ट भोजनसे तृप्त होकर महर्षि दुर्वासा भगवान् श्रीरामको साधुवाद देते हुए अपने आश्रमके लिये प्रस्थित हुए।

'साधुपुरुषोंका त्याग और वध दोनों समान हैं।' महर्षिके चले जानेके उपरान्त धर्मपरायण श्रीरामने लक्ष्मणसे कहा। 'सुमित्राकुमार! धर्मकी रक्षाके लिये मैं तुम्हारा त्याग करता हूँ।'

प्राणाराध्य श्रीरामके वचन सुनते ही लक्ष्मणका मुखारविन्द मुरझा गया। उनके नेत्रोंसे अश्रु प्रवाहित होने लगे। 'प्राणाराम श्रीरामके बिना जीवन कैसा!' लक्ष्मण घर भी नहीं गये। किसीसे मिल भी नहीं सके। वे तुरंत सरयू-तटपर पहुँचे। वहाँ उन्होंने आचमन कर हाथ जोड़े और योगयुक्त होकर अदृश्य हो गये। इन्द्रादि देवगण उनपर दिव्य पुष्पोंकी वृष्टि करने लगे। देवराज इन्द्रके साथ जब विष्णुके चतुर्थांश लक्ष्मण देवलोक पहुँचे, तब देवताओंकी प्रसन्नताकी सीमा नहीं रही। वे भगवान् लक्ष्मणकी श्रद्धा-भक्तिपूर्ण हृदयसे पूजा करने लगे।

प्राणप्रिय भाई लक्ष्मणके वियोगसे उद्विग्न और अधीर होकर धीर-गम्भीर और सत्यवक्ता श्रीरामने पुरोहितों, मन्त्रियों और महाजनोंसे कहा—'आज मैं यहाँ धर्मानुरागी भाई भरतका अभिषेक कर शीघ्र ही लक्ष्मणके पथका अनुसरण करूँगा।'

'मैं सत्यकी शपथ लेकर कहता हूँ कि मुझे आपके बिना राज्य नहीं चाहिये ।' मणिहीन फणिकी भाँति व्याकुल होकर भरतजीने तुरंत कहा । 'कुश और लवका राज्याभिषेक कीजिये ।'

महर्षि वसिष्ठके आदेशसे राजा रामने अत्यन्त दुःखी, साश्रुनयन एवं अवनतमुखी प्रजासे पूछा—'मुझे क्या करना चाहिये ?'

'आप जहाँ जायँगे, हम भी आपके साथ ही चलेंगे ।' सबने एक स्वरसे कहा ।

'तथास्तु ।' कहकर भगवान् श्रीरामने दक्षिण कोसलके राज्यपर कुशको और उत्तर कोसलके राज्यपर लवको अभिषिक्तकर उन्हें अपने-अपने नगरोंके लिये बिदा किया ।

यह समाचार सुनते ही शत्रुघ्न अपने पुत्र सुबाहुको मथुरा और शत्रुघातीको विदिशाका राज्य देकर तुरंत अयोध्या पहुँचे । उन्होंने बड़े भाई श्रीरामके चरणोंमें प्रणाम किया और हाथ जोड़कर बोले—'आपके साथ चलनेका सुदृढ़ निश्चय कर मैं अपने पुत्रोंको पृथक्-पृथक् राज्यपर अभिषिक्त कर आया हूँ । आप कृपापूर्वक आज मेरे निश्चयके विपरीत आज्ञा-प्रदान न करें, अन्यथा इससे कठोर मेरे लिये कोई दण्ड न होगा । मैं नहीं चाहता कि जीवनमें अन्तिम बार आज्ञोल्लङ्घन हो जाय ।'

'अच्छा !' प्रभुने शत्रुघ्नकी प्रीति देख स्वीकृति दे दी ! प्रभुके लीला-संवरणका समय जानकर कामरूपी वानर, रीछ और राक्षसगण झुंड-के-झुंड वहाँ पहुँच गये । सुग्रीव बोले—'प्रभो ! मैं अङ्गदको राज्यपदपर प्रतिष्ठितकर आपके साथ चलनेका निश्चय लेकर आया हूँ ।' प्रभुने स्वीकृति दे दी ।

भगवान् श्रीरामने राक्षसराज विभीषण और वानरश्रेष्ठ हनुमान्‌को दीर्घकालतक पृथ्वीपर रहनेका आदेश दिया । जाम्बवान्, मैन्द और द्विविदको कलि-आगमनतक जीवन-धारणकी आज्ञा देकर दयानिधान प्रभुने अन्य वानरों और रीछोंको साथ चलनेकी स्वीकृति प्रदान कर दी ।

'मेरे अग्निहोत्रकी प्रज्वलित अग्नि ब्राह्मणोंके साथ आगे-आगे चले ।' दूसरे दिन प्रातःकाल कमल-नयन श्रीरामने महाप्रस्थानकालिक समस्त धार्मिक क्रियाओंका सविधि अनुष्ठान करनेके पूर्व आज्ञा दी । 'सुदूर पथकी यात्राके लिये मेरे अश्वमेध-यज्ञका मनोहर छत्र भी चलना चाहिये ।'

करुणामूर्ति भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने सूक्ष्म वस्त्र धारण किया । उन्होंने दोनों हाथोंमें कुश धारणकर ब्रह्मप्रतिपादक उपनिषद्‌के मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए परम पवित्र सरयूके तटकी यात्रा की । मार्गमें वेद-पाठ करनेके अतिरिक्त वे सर्वथा मौन थे । मार्गमें चलनेके अतिरिक्त उनकी अन्य कोई भी चेष्टा दृष्टिगोचर नहीं होती थी । सूर्य-दीप्ति-तुल्य तेजस्वी भगवान् श्रीरामके दक्षिण पार्श्वमें पद्महस्ता लक्ष्मी देवी, वाम पार्श्वमें मूर्त्तिमती वसुधा तथा उनके आगे-आगे उनकी संहार-शक्ति चल रही थी । उस समय विविध शर, सुविस्तृत शरासन तथा विविध अस्त्र-शस्त्र पुरुष-विग्रह धारण कर भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके साथ चल रहे थे । विप्र-विग्रह-धारी वेद-चतुष्टय, जगत्पावनी गायत्री देवी, प्रणव तथा वषट्-कारने मूर्त्तरूप धारणकर प्रभुका अनुगमन किया । अन्तःपुर-सहित सभी स्त्रियाँ, बालक, वृद्ध, पशु, पक्षी, नगरके अदृश्यचारी भूत-प्रेतादि सभी भगवान् श्रीरामके साथ हर्षोन्मत्त होकर चल रहे थे । आश्चर्यकी बात यह थी कि भगवान् श्रीरामके महाप्रस्थान-समारोहका दर्शन करने जो भी आये, वे अपने घर नहीं लौटे । वे भी अपना जीवन और जन्म सफल करनेके लिये प्रभुके साथ हो लिये । उस समय इन्द्रियोंसे अगोचर कोई सूक्ष्म प्राणी भी अयोध्यामें नहीं रह गया ।

अयोध्यासे डेढ़ योजन दूर भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने पुण्यतोया सरयूका दर्शन किया । भगवान् श्रीराम घूर्णिता-वर्त्ता उस पुण्यमयी सरयूके एक श्रेष्ठ स्थलपर पहुँचे । आकाशमें करोड़ों दिव्य विमान शोभा दे रहे थे । पवित्र एवं सुगन्धित वायु बह रहा था । देवताओं, गन्धर्वों एवं दिव्य-तेजोमय स्वर्गवासियोंसे आकाश आच्छादित हो गया । आकाशसे दिव्य पुष्पोंकी वृष्टि हो रही थी । विविध प्रकारके मनोहर देव-वाद्य बज रहे थे । निखिलसृष्टिपति भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने पुण्यमयी सरयूके पवित्र जलकी ओर अपना कमल-चरण बढ़ाया ही था कि आकाशसे लोकपितामह ब्रह्माने अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक प्रभुकी स्तुति करते हुए कहा—'हे राघव ! हे विष्णो ! आनेकी कृपा करें । हमारा बड़ा सौभाग्य है, जो आप अपने परम धामको पधार रहे हैं । देव ! देवोपम भ्रातृगणके साथ आप विष्णु-देहमें प्रविष्ट होकर देवताओंकी रक्षा कीजिये । अथवा यदि आपको और कोई शरीर प्रिय हो तो उसीमें प्रवेश कर हम सबका पालन कीजिये । आप

देवाधिपति श्रीविष्णु हैं। आपके पवित्रतम चरणोंमें मेरा बारंबार नमस्कार है।'

पद्मयोनि ब्रह्माकी प्रार्थनासे परमतेजस्वी भुवनमोहन श्रीराम देवताओंके देखते-देखते शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधारी चतुर्भुज हो गये। सुमित्रानन्दन लक्ष्मण अद्भुत फन धारणकर प्रभुकी शय्यारूप शेषनाग बन गये। कैकेयीनन्दन भरत दिव्य चक्र और लवणासुरघाती शत्रुघ्न शङ्खरूपमें परिणत हो गये। श्रीरामरूपधारी पुराणपुरुष श्रीविष्णु अपने भाइयोंके साथ श्रीराम-विग्रहसे तेजोमय दिव्यस्वरूपमें परिवर्तित हो गये।

फिर तो उन नवदूर्वादलश्याम शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधारी शेषशायी श्रीविष्णुके सम्मुख इन्द्रादि देवगण, सिद्ध, मुनि, यक्ष और ब्रह्मादि उपस्थित होकर अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक उनकी पूजा और स्तुति करने लगे।

'पितामह! यह सम्पूर्ण विशाल जन-समुदाय मेरे स्नेह-वश मेरे पीछे-पीछे आया है।' श्रीभगवान्ने विधातासे कहा। 'ये सभी यशस्वी और मेरे भक्त हैं। मेरे लिये समस्त लौकिक सुखोंका परित्याग करनेवाले ये सर्वथा मेरे अनुग्रह-पात्र हैं।'

''प्रभो! यहाँ आये हुए सभी लोग 'संतानक'-लोकोंमें जायँगे।'' ब्रह्माने जगद्गुरु श्रीभगवान्को उत्तर दिया—

यच्च तिर्यग्गतं किंचित् त्वामेवमनुचिन्तयत्।
प्राणांस्त्यक्ष्यति भक्त्या तत् संतानेषु निवत्स्यति॥
सर्वैर्ब्रह्मगुणैर्युक्ते ब्रह्मलोकादनन्तरे।

(वा० रा० ७। ११०। १९-२०)

'पशु-पक्षियोंकी योनिमें पड़े हुए जीवोंमेंसे भी जो कोई आपका ही भक्तिभावसे चिन्तन करता हुआ प्राणोंका परित्याग करेगा, वह भी संतानक-लोकोंमें ही निवास करेगा। यह संतानक-लोक ब्रह्मलोक (साकेत) के ही निकट है। वह ब्रह्माके सत्यसंकल्पत्व आदि सभी उत्तम गुणोंसे युक्त है। उसीमें ये आपके भक्तजन निवास करेंगे।'

इसके अनन्तर वानर-भालू जिस-जिस देवतासे प्रकट हुए थे, उस-उसमें प्रविष्ट हो गये। सुग्रीव सूर्यमण्डलमें प्रविष्ट हुए। उस समय मनुष्य, पशु-पक्षी, स्थावर-जंगम—जो भी जीव वहाँ आये थे, सभीने हर्षके आँसू बहाते हुए सरयूके उस गो-प्रतार घाटपर जलमें डुबकी लगाकर दिव्य एवं तेजस्वी शरीर धारण किया और सभी दिव्य विमानोंमें जा बैठे। लोक-पितामह ब्रह्माने उन सम्पूर्ण प्राणियोंको सुखद संतानक-लोकमें स्थान दिया और सुर-समुदायके साथ ब्रह्मलोकके लिये प्रस्थित हुए।

जो भुवनपावन भगवान् श्रीराम तिर्यग्योनिगत जीवोंको भी साकेतधाम ले गये थे, उन दयामूर्ति श्रीरामके पावन पाद-पद्ममें श्रद्धा-भक्तिपूर्ण बारंबार प्रणाम। —शि० दु०

[२२]

भगवान् श्रीकृष्ण

द्वापर-युग! दैत्योंकी अनीति और अत्याचारसे पीड़ित धरित्री दुःखसे अत्यन्त व्याकुल होकर गौके रूपमें रोती हुई कमलोद्भव ब्रह्माके समीप पहुँची और अत्यन्त करुण स्वरमें उसने विधातासे कहा—'चतुरानन! पूर्वकालमें देवासुर-संग्राममें जो-जो दैत्य और दानव मारे गये थे, वे सभी कंस आदिके रूपमें उत्पन्न हुए हैं। देव! उनके क्रूरकर्मोंके बोझसे मैं अत्यन्त दुःखी हूँ। मेरा यह भार दूर करनेका आप यत्न करें।'

पृथ्वीको आश्वस्त करते हुए विधाता भगवान् शंकर एवं अन्य देवताओंके साथ क्षीरसागरके तटपर पहुँचे। वहाँ लोकस्रष्टाने अपनी भक्तिके प्रभावसे शयन करते हुए प्रभुको जगाया और अत्यन्त श्रद्धा-भक्तिपूर्वक गन्ध-पुष्पादिके द्वारा उनकी पूजा की तथा फिर हाथ जोड़कर त्रैलोक्यनाथ श्रीविष्णुकी स्तुति की—

नमामि देवं नरनाथमच्युतं नारायणं लोकगुरुं सनातनम्।
अनादिमव्यक्तमचिन्त्यमव्ययं वेदान्तवेद्यं पुरुषोत्तमं हरिम्॥
आनन्दरूपं परमं परात्परं चिदात्मकं ज्ञानवतां परां गतिम्।
सर्वात्मकं सर्वगतैकरूपं ध्येयस्वरूपं प्रणमामि माधवम्॥
भक्तप्रियं कान्तमतीव निर्मलं सुराधिपं सूरिजनैरभिष्टुतम्।
चतुर्भुजं नीरजवर्णमीश्वरं रथाङ्गपाणिं प्रणतोऽस्मि केशवम्॥
गदासिशङ्खाब्जकरं श्रियः पतिं सदाशिवं शार्ङ्गधरं रविप्रभम्।
पीताम्बरं हारविराजितोदरं नमामि विष्णुं सततं किरीटिनम्॥
गण्डस्थलासक्तसुरक्तकुण्डलं सुदीपिताशेषदिशं निजत्विषा।
गन्धर्वसिद्धैरुपगीतमृग्ध्वनिं जनार्दनं भूतपतिं नमामि तम्॥
हत्वासुरान् पाति युगे युगे सुरान् स्वधर्मसंस्थान् भुवि संस्थितो हरिः।
करोति सृष्टिं जगतः क्षयं यस्तं वासुदेवं प्रणतोऽस्मि केशवम्॥

यो मत्स्यरूपेण रसातलस्थितान् वेदान् समाहृत्य मम प्रदत्तवान्।
निहत्य युद्धे मधुकैटभावुभौ तं वेदवेद्यं प्रणतोऽस्म्यहं सदा ॥
देवासुरैः क्षीरसमुद्रमध्यतो न्यस्तो गिरिर्येन धृतः पुरा महान्।
हिताय कौर्मं वपुरास्थितो यस्तं विष्णुमाद्यं प्रणतोऽस्मि भास्करम् ॥
हत्वा हिरण्याक्षमतीव दर्पितं वराहरूपी भगवान् सनातनः।
यो भूमिमेतां सकलां समुद्धरंस्तं वेदमूर्तिं प्रणमामि सूकरम् ॥
कृत्वा नृसिंहं वपुरात्मनः परं हिताय लोकस्य सनातनो हरिः।
जघान यस्तीक्ष्णनखैर्दितेः सुतं तं नारसिंहं पुरुषं नमामि ॥
यो वामनोऽसौ भगवाञ्जनार्दनो बलिं बबन्ध त्रिभिरूर्जितैः पदैः।
जगत्त्रयं क्रम्य ददौ पुरंदरे तं देवमाद्यं प्रणतोऽस्मि वामनम् ॥
यः कार्तवीर्यं निजघान रोषात् त्रिस्सप्तकृत्वः क्षितिपात्मजानपि।
तं जामदग्न्यं क्षितिभारनाशकं नतोऽस्मि विष्णुं पुरुषोत्तमं सदा।
सेतुं महान्तं जलधौ बबन्ध यः सम्प्राप्य लङ्कां सगणं दशाननम्।
जघान भूत्यै जगतां सनातनं तं रामदेवं सततं नतोऽस्मि ॥
यथा तु वाराहनृसिंहरूपैः कृतं त्वया देवहितं सुराणाम्।
तथाद्य भूमेः कुरु भारहानिं प्रसीद विष्णो भगवन्नमस्ते ॥
(नरसिंहपु० ५३ । ११-२४)

'मैं सम्पूर्ण जीवोंके स्वामी भगवान् अच्युतको, सनातन लोकगुरु भगवान् नारायणको नमस्कार करता हूँ । जो अनादि, अव्यक्त, अचिन्त्य और अविनाशी हैं, उन वेदान्तवेद्य पुरुषोत्तम श्रीहरिको मैं प्रणाम करता हूँ। जो परमानन्दस्वरूप, परात्पर, ज्ञानमय एवं ज्ञानियोंके परम आश्रय हैं तथा जो सर्वमय, सर्वव्यापक, अद्वितीय और सबके ध्येयरूप हैं, उन भगवान् लक्ष्मीपतिको मैं प्रणाम करता हूँ। जो भक्तोंके प्रेमी, अत्यन्त कमनीय और दोषोंसे रहित हैं, जो समस्त देवताओंके स्वामी हैं, विद्वान् पुरुष जिनकी स्तुति करते हैं, जिनके चार भुजाएँ हैं, नील-कमलके समान जिनकी श्यामल कान्ति है, जो हाथमें चक्र धारण किये रहते हैं, उन परमेश्वर केशवको मैं प्रणाम करता हूँ। जिनके हाथोंमें गदा, तलवार, शङ्ख और कमल सुशोभित हैं, जो लक्ष्मीजीके पति हैं, सदा ही कल्याण करनेवाले हैं, जो शार्ङ्गधनुष धारण किये रहते हैं, जिनकी सूर्यके समान कान्ति है, जो पीत वस्त्र धारण किये रहते हैं, जिनका उदरभाग हारसे विभूषित है तथा जिनके मस्तकपर मुकुट शोभा पा रहा है, उन भगवान् विष्णुको मैं सदा प्रणाम करता हूँ । जिनके कपोलोंपर सुन्दर रक्तवर्ण कुण्डल शोभा पा रहे हैं, जो अपनी कान्तिसे सम्पूर्ण दिशाओंको प्रकाशित कर रहे हैं, गन्धर्व और सिद्धगण जिनका सुयश गाते रहते हैं तथा जिनका वैदिक ऋचाओं-द्वारा यशोगान किया जाता है, उन भूतनाथ भगवान् जनार्दनको मैं प्रणाम करता हूँ। जो भगवान् प्रत्येक युगमें पृथ्वीपर अवतार ले देवद्रोही दानवोंका वध करके अपने धर्ममें स्थित देवताओंकी रक्षा करते हैं तथा जो इस जगत्की सृष्टि एवं संहार करते हैं उन सर्वान्तर्यामी भगवान् केशवको मैं प्रणाम करता हूँ।

'जिन्होंने युद्धमें मधु और कैटभ—इन दोनों दैत्योंको मारा तथा मत्स्यरूप धारण करके रसातलमें पहुँचे हुए वेदोंको लाकर मुझे दिया था, उन वेदवेद्य परमेश्वरको मैं सदा ही प्रणाम करता हूँ । पूर्वकालमें जिन्होंने देवता और असुरोंद्वारा क्षीरसमुद्रमें डाले हुए महान् मन्दराचलको सबका हित करनेके लिये कूर्मरूपसे पीठपर धारण किया था, उन प्रकाश देनेवाले आदिदेव भगवान् विष्णुको मैं प्रणाम करता हूँ । जिन सनातन भगवान्ने वराहरूप धारण करके इस सम्पूर्ण वसुंधराका जलसे उद्धार किया और उसी समय अत्यन्त अभिमानी दैत्य हिरण्याक्षको मार गिराया था, उन वेदमूर्ति सूकररूपधारी भगवान्को मैं प्रणाम करता हूँ । जिन सनातन भगवान् श्रीहरिने त्रिलोकीका हित करनेके लिये श्रेष्ठ नृसिंहरूप धारण करके अपने तीखे नखों-द्वारा दितिनन्दन हिरण्यकशिपुका वध किया था, उन परम पुरुष भगवान् नरसिंहको मैं प्रणाम करता हूँ। जिन वामन-रूपधारी भगवान् जनार्दनने बलिको बाँधा था और अपने बढ़े हुए तीन पगोंसे त्रिभुवनको नापकर उसे इन्द्रको दे दिया था, उन आदिदेव वामनको मैं प्रणाम करता हूँ। जिन्होंने कोपवश राजा कार्तवीर्यको मार डाला तथा इक्कीस बार क्षत्रियोंका संहार किया, पृथ्वीका भार दूर करनेवाले परशुरामरूपधारी उन पुरुषोत्तम भगवान् विष्णुको मैं सदा नमस्कार करता हूँ। जिन्होंने समुद्रपर बहुत बड़ा पुल बाँधा और लङ्कामें पहुँचकर त्रिलोकीके कल्याणके लिये रावणको उसके गणोंसहित मार डाला था, उन सनातन देव भगवान् श्रीरामको मैं सदा प्रणाम करता हूँ। भगवन्! विष्णो! जिस प्रकार (पूर्वकालमें) वराह-नृसिंह आदि रूपोंसे आपने देवताओंका हित किया है, उसी प्रकार आज भी प्रसन्न होकर पृथ्वीका भार दूर करें । देव ! आपको सादर नमस्कार है।'

पद्मयोनिकी उपर्युक्त स्तुतिसे प्रसन्न होकर शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये नवनीरदवपु सर्वेश्वर

श्रीविष्णु प्रकट हो गये और उन्होंने कहा—'पितामह ! देवताओ ! मैं तुम्हारी इस स्तुतिसे बहुत ही प्रसन्न हूँ । देवगण ! यह स्तोत्र इसका पाठ करनेवालोंके सारे पाप नष्ट करनेमें समर्थ है । यद्यपि मैं श्रीहरिके रूपमें भक्तिमान् पुरुषोंको भी कठिनतासे प्राप्त होता हूँ, तथापि इस स्तोत्रके प्रभावसे मैं प्रत्यक्ष प्रकट हो गया हूँ ।* आपलोग अपना मनोरथ व्यक्त करें ।'

'करुणासिन्धु ! पुरुषोत्तम !' कमलोद्भवने मन्तव्य प्रकट किया—'वसुंधरा असुरोंके अत्याचारसे अत्यन्त पीड़ित और भयाक्रान्त है । आप वसुधाका भार दूरकर इसका कष्ट निवारण करें । देवताओंके साथ आपके चरणोंमें उपस्थित होनेका मेरा यही प्रयोजन है ।'

'देवताओ !' श्रीभगवान् बोले—'और ब्रह्माजी ! आप सभी अपने-अपने स्थानके लिये लौट जायँ । मेरी गौर और कृष्ण—दो शक्तियाँ वसुदेवकी पत्नी देवकीके गर्भसे अवतरित होकर दैत्योंको निर्मूल कर धरापर धर्मकी स्थापना करेंगी' । वसुंधराका कष्ट शीघ्र ही निवारण हो जायगा ।'

श्रीभगवान्के आश्वासनसे प्रसन्न होकर देवताओंने उनके चरणोंमें प्रणाम किया और लौट गये ।

× × ×

'कंस ! जिस देवीको तुम इतने प्रेमोत्साहसे पहुँचाने जा रहे हो, उसके गर्भसे उत्पन्न आठवें पुत्रके हाथ तुम्हारी मृत्यु होगी !'—आकाशवाणी सुनकर कंस चौंका । यदुवंशमें देवमीढके श्रेष्ठ धर्मज्ञ पुत्र वसुदेवका विवाह कंसके पिता उग्रसेनके छोटे भाई देवककी देवाङ्गनातुल्य सुन्दरी पुत्री देवकीके साथ हुआ । अपनी उसी चचेरी बहन देवकीको महाबलवान् और शूरवीर कंस अत्यन्त स्नेहवश रथपर बैठाकर स्वयं रथ हाँकता हुआ विदा करने जा रहा था । आकाशवाणी सुन, मृत्यु-भयसे भीत होकर वह देवकीको मार डालनेके लिये प्रस्तुत हो गया । अत्यन्त क्रूरकर्मा कंसको पाप-कर्म करनेमें लज्जा नहीं आती थी ।

'भोजकुलके यशस्वी कुमार !' वसुदेवजीने कंसको समझाया—'विवाह-जैसे मङ्गल अवसरपर स्त्री, विशेषतया अपनी बहनकी हत्या अत्यन्त कलङ्क एवं पापकी बात है । आप विश्वास करें, इसकी कोखसे संतान उत्पन्न होते ही मैं आपको दे दूँगा ।'

कंसको वसुदेवजीके वचनकी सत्यतापर विश्वास था । उसने वसुदेवजीकी युक्तिसंगत वाणी सुनकर अपनी बहन देवकीको मारनेका विचार तो छोड़ दिया; किंतु उसने वसुदेव और देवकीको अपने सुखद भवनमें ही रोककर उनकी सारी सुविधाकी व्यवस्था कर दी । पीछे मृत्यु-भयसे उसने उन्हें हथकड़ी-बेड़ी डालकर बंदी-गृहमें भेज दिया ।

देवकीके छः पुत्रोंको उनका जन्म होते ही कंसने मार डाला । भगवत्प्रेरणावश सातवाँ गर्भ अनन्तके अंशसे प्रकट हुआ । उस गर्भके कुछ पुष्ट होनेपर भगवती योगमायाने उसे देवकीके गर्भसे खींचकर रोहिणीके उदरमें स्थापित कर दिया । गर्भका संकर्षण करने (खींचने) से उस बालकका जन्म हुआ, इसलिये वह 'संकर्षण'-नामसे प्रख्यात हुआ ।

महाभागा देवकीके आठवें गर्भमें साक्षात् श्रीहरि पधारे । देवकीके अङ्ग-प्रत्यङ्गसे अलौकिक तेज प्रकट होने लगा । उसे देखकर कंस अत्यन्त भयभीत और सावधान होकर भगवान्के जन्मकी प्रतीक्षा करने लगा । प्राणके मोह और मृत्यु-भयसे उसकी बड़ी विचित्र दशा हो गयी थी ।

आसीनः संविशंस्तिष्ठन् भुञ्जानः पर्यटन् महीम् ।
चिन्तयानो हृषीकेशमपश्यत् तन्मयं जगत् ॥
(श्रीमद्भागवत १० । २ । २४)

'वह (कंस) उठते-बैठते, खाते-पीते, सोते-जागते और चलते-फिरते—सर्वदा ही श्रीकृष्णके चिन्तनमें लगा रहता । जहाँ उसकी आँख जाती, जहाँ कुछ खड़का होता, वहाँ उसे श्रीकृष्ण दीख पड़ते । इस प्रकार उसे सारा जगत् ही श्रीकृष्णमय दीखने लगा ।'

धीरे-धीरे श्रीहरिके प्राकट्यकी अत्यन्त शुभ वेला आयी । साक्षात् कमलयोनि और देवर्षि नारद सुर-समुदायके साथ उक्त बंदीगृहमें पहुँचे और परम प्रभुका स्तवन कर विदा हुए ।

भाद्र मास । अष्टमी तिथि । रोहिणी नक्षत्र । पृथ्वी, आकाश—सर्वत्र मनोरम समय । अर्द्धरात्रि । आकाशमें सजल घन मन्द-मन्द गर्जन करते हुए हर्ष व्यक्त कर रहे थे । अत्यन्त सुखद शीतल समीर बह रहा था और धरतीका

---

* स्तुत्यानयाहं संतुष्टः पितामह दिवौकसः ॥
पठतां पापनाशाय नृणां भक्तिमतामपि ।
यतोऽस्मि प्रकटीभूतो दुर्लभोऽपि हरिः सुराः ॥
(नरसिंहपु० ५३ । २६-२७)

परम पुण्य, परम भाग्य उदय हुआ। निखिल सृष्टिके स्वामी, गौ ब्राह्मण एवं संतोंके प्रतिपालक, धर्म-प्राण जगत्पति चतुर्भुज रूपमें वसुदेव-देवकीके सम्मुख प्रकट हुए। बंदीगृह उद्भासित—धन्य, धन्यातिधन्य हुआ। वसुदेव और देवकीके सारे दुःख, उनकी सारी यातनाएँ सदाके लिये मिट गयीं। वसुदेवके पुत्र होनेसे वे सनातन भगवान् 'वासुदेव' कहलाये।

वसुदेवजीने गद्गद कण्ठसे श्रीहरिकी स्तुति की और अन्तमें कहा—

जातोऽसि देवदेवेश शङ्खचक्रगदाधरम्।
दिव्यरूपमिदं देव प्रसादेनोपसंहर॥
अद्यैव देव कंसोऽयं कुरुते मम यातनम्।
अवतीर्ण इति ज्ञात्वा त्वमस्मिन्मम मन्दिरे॥
(विष्णुपु० ५। ३। १०-११)

'देवदेवेश्वर! यद्यपि आप (साक्षात् परमेश्वर) प्रकट हुए हैं, तथापि देव! कृपापूर्वक अब अपने इस शङ्ख-चक्र-गदाधारी दिव्य रूपका उपसंहार कीजिये। देव! यह पता लगते ही कि आप मेरे इस गृहमें अवतीर्ण हुए हैं, कंस इसी समय मेरा वध कर देगा।'

महाभागा देवकीने भी विश्वात्मा प्रभुकी स्तुति की; किंतु कंससे भयभीत होनेके कारण उन्होंने भी निवेदन किया—

उपसंहर विश्वात्मन्नदो रूपमलौकिकम्।
शङ्खचक्रगदापद्मश्रिया जुष्टं चतुर्भुजम्॥
(श्रीमद्भागवत १०। ३। ३०)

'विश्वात्मन्! आपका यह रूप अलौकिक है। आप शङ्ख, चक्र, गदा और पद्मकी शोभासे युक्त अपना यह चतुर्भुज रूप छिपा लीजिये।'

'माता! स्वायम्भुव मन्वन्तरकी बात है।' श्रीभगवान्ने माता देवकीको बताया। 'तुमलोगोंने मुझमें मन लगाकर देवताओंके बारह हजार वर्षोंतक कठोर तप किया और मेरा दर्शन होनेपर मुझ-जैसे पुत्रकी कामना व्यक्त की। फलस्वरूप मैं पृश्निगर्भके नामसे तुम दोनोंका पुत्र हुआ। दूसरे जन्ममें तुम अदिति और वसुदेवजी कश्यप हुए। उस समय मैं 'उपेन्द्र' नामक तुमलोगोंका पुत्र हुआ। शरीर छोटा होनेसे मुझे 'वामन' भी कहते थे। तीसरे जन्ममें भी अब मैं तुम्हारा पुत्र हुआ हूँ। अब वात्सल्ययुक्त चिन्तनसे तुम दोनोंको मेरे परम पदकी प्राप्ति होगी।'

इतनी बात कहकर सनातन पुरुष भगवान् पद्मनाभ वहीं द्विभुज नवजात शिशु हो गये। समस्त प्रहरी भगवान्की मायासे मोहित और तमोगुणसे आच्छादित हो, सो गये। अवसर देखकर वसुदेवजी भगवान्की प्रेरणासे अपने पुत्रको लेकर बंदीगृहसे बाहर हो गये। वर्षा होते देख भगवान् शेष प्रभुपर अपने फनोंकी छाया कर उनके पीछे-पीछे चलने लगे। अगाध जलसे उफनती कालिन्दीका जल वसुदेवजीके जलमें प्रवेश करते ही घट गया। वसुदेवजी यमुना पार कर गोकुल पहुँचे। वहाँ योगमायाकी कृपासे सभी गोप निद्रामें अचेत थे। वसुदेवजीने अपने पुत्रको नन्द-पत्नी यशोदाकी गोदमें सुला दिया। कुछ ही समय पूर्व उन्हें एक कन्या उत्पन्न हुई थी; किंतु मायासे मोहित एवं तमोगुणसे आच्छादित वे गाढ़ निद्रामें सो गयी थीं। वसुदेवजी उनकी कन्याको लेकर लौट आये और बंदीगृहमें अपने पैरोंमें बेड़ियाँ डालकर पूर्ववत् बंदी हो गये।

नवजात शिशुका रुदन सुनकर प्रहरी कंसके पास पहुँचे। कंस प्रसूति-गृहकी ओर दौड़ा। उसने देवकीके रोने-कलपनेकी चिन्ता न कर कन्या उसके हाथसे छीन ली।

'मूर्ख! तुझे मारनेवाला तेरा शत्रु प्रकट हो चुका है।' कंसने उस नवजात कन्याको शिलातलपर पटकनेके लिये घुमाया ही था कि वह कंसके सिरमें लात मारकर तुरंत आकाशमें सायुधाभरण अष्टभुजा होकर खड़ी हो गयी। उसने कहा—'देवताओंके सर्वस्व वे हरि ही (कालनेमिरूपमें स्थित) तुम्हारे पूर्वजन्ममें भी काल थे, यों समझकर तू शीघ्र अपने कल्याणका प्रयत्न कर।'

यह कहकर वे तेजस्विनी भगवती अष्टभुजा सम्पूर्ण गगन-मण्डलको उद्भासित करती हुई वहीं अन्तर्धान हो गयीं। खिन्नचित्त कंसने लौटकर वसुदेव और देवकीको बन्धनमुक्त कर दिया।

दूसरे दिन कंसने अपने असुर-मन्त्रियोंसे मन्त्रणा की। असुर-मन्त्रियोंने नवजात शिशुओं, ऋषियों, गायों एवं ब्राह्मणों आदिको मार डालनेकी सलाह दी।

उधर गोकुलके भाग्यका क्या कहना! नन्दबाबाके यहाँ पुत्र जो उत्पन्न हुआ था। मैया यशोदाकी कोखमें सच्चिदानन्दघन जो आया था। सर्वत्र मङ्गल-वाद्य, उत्सव, दान, धर्म। आनन्द मूर्त्त होकर आनन्दपूर्वक नर्तन कर रहा था। जातकर्म-संस्कार हुआ। देवता और पितरोंकी सविधि पूजा हुई। गौएँ, गोप और गोपियाँ—सभी सज-धजकर

सोल्लास, सानन्द उत्सव मना रही थीं। धरापर जैसे स्वर्ग उतर आया था। भगवान् श्रीकृष्ण पधारे तो व्रज लक्ष्मीजीका क्रीड़ा-क्षेत्र हो गया।

कुछ दिनों बाद नन्दबाबा कंसका कर चुकाने मथुरा गये। संवाद मिलते ही वसुदेवजी उनसे बड़े प्रेमसे मिले। उन्होंने रोहिणी और अपने पुत्रसहित व्रजका कुशल-क्षेम पूछकर नन्दजीसे कहा—'कंसका कर चुका देनेके अनन्तर आप शीघ्र व्रजमें लौट जायँ; क्योंकि वहाँ आजकल कुछ-न-कुछ उपद्रव होते ही रहते हैं।' वसुदेवजीके परामर्शसे नन्दजी व्रजके लिये तुरंत चल पड़े।

उधर कंसप्रेरित पूतना-नामकी राक्षसी अपने स्तनोंमें भयंकर विष लगाकर व्रजमें घूम रही थी। वह जिस बच्चेके मुँहमें स्तन लगाती, वही तत्काल मृत्युके मुखमें चला जाता। वह क्रूर राक्षसी पूतना अनिन्द्य सुन्दरीके वेषमें नन्दालय पहुँची। वहाँ उसने शिशु यशोदानन्दनको गोदमें उठाकर अपना विषपूरित स्तन उनके मुँहमें दे दिया। श्रीकृष्ण उसके स्तनोंको दबाकर दूधके साथ उसका प्राण भी खींचने लगे। तब स्नायु-बन्धनोंके शिथिल हो जानेसे पूतना घोर शब्द करती हुई मरते समय महाभयंकर रूप धारण कर पृथ्वीपर गिर पड़ी। गोपियाँ पूतनाके वक्षपर खेलते श्रीकृष्णको उठाकर ले आयीं और गो-पुच्छको घुमाकर श्रीभगवान्‌के नामोंका उच्चारण करती हुई उनके अङ्ग-प्रत्यङ्गकी रक्षाके लिये प्रार्थना करने लगीं। मैया यशोदा तो अत्यन्त अधीर हो गयी थीं। मथुरासे लौटकर जब नन्दबाबाने पूतनासे श्रीकृष्णकी रक्षाका समाचार सुना तो श्रीनारायणका नाम लेते हुए उन्होंने श्रीकृष्णको अपनी गोदमें ले लिया और उनके मङ्गलके लिये श्रीहरिसे मन-ही-मन प्रार्थना करने लगे।

श्रीकृष्ण लगभग तीन मासके हुए। नन्दालयमें उनके करवट बदलनेका उत्सव मनाया जा रहा था। माता यशोदाने श्रीकृष्णको एक छकड़ेके नीचे पालनेमें सुला दिया था। जब श्रीकृष्णके नेत्र खुले, तब वे स्तन्यपानके लिये रोने लगे। रोते-ही-रोते उन्होंने अपने नन्हे-से पैरके धक्केसे विशाल छकड़ेको उलट दिया। छकड़ेपर रखी दूध, दही आदिकी मटकियाँ उलट गयीं। मैया यशोदाने यह दृश्य देखकर उसे ग्रहोंका उपद्रव समझा और ब्राह्मणोंके द्वारा शान्ति-पाठ करवाया तथा उन्हें दक्षिणादिसे संतुष्ट कर उनका आशीर्वाद प्राप्त किया।

एक दिन खेलते हुए श्रीकृष्णको तृणावर्त-नामक असुर उठाकर आकाशमें उड़ गया, किंतु श्रीकृष्णने उसका कण्ठ दबाकर उसे मार डाला। वह छटपटाता हुआ पृथ्वीपर गिर पड़ा।

अचानक एक दिन वसुदेवजीकी प्रेरणासे यदुवंशियोंके कुल-पुरोहित श्रीगर्गाचार्यजी गोकुल पहुँचे। वहाँ उन्होंने नन्दबाबाके अनुरोधपर (कंसके भयसे) एकान्त गोशालामें चुपचाप केवल स्वस्तिवाचन करके उनके दोनों बालकोंका नामकरण-संस्कार सम्पन्न कर दिया। रोहिणीजीके पुत्रका नाम रौहिणेय, राम, बल और संकर्षण तथा छोटे साँवले यशोदानन्दनका नाम 'श्रीकृष्ण' रखते हुए उन्होंने नन्दजीसे कहा—

> य एतस्मिन् महाभागाः प्रीतिं कुर्वन्ति मानवाः।
> नारयोऽभिभवन्त्येतान् विष्णुपक्षानिवासुराः॥
> तस्मान्नन्दात्मजोऽयं ते नारायणसमो गुणैः।
> श्रिया कीर्त्यानुभावेन गोपायस्व समाहितः॥
>
> (श्रीमद्भागवत १०।८।१८-१९)

'जो मनुष्य तुम्हारे इस साँवले-सलोने शिशुसे प्रेम करते हैं, वे बड़े भाग्यवान् हैं। जैसे विष्णुभगवान्‌के कर-कमलोंकी छत्रछायामें रहनेवाले देवताओंका असुर पराभव नहीं कर सकते, वैसे ही इससे प्रेम करनेवालोंका भीतरी या बाहरी—किसी भी प्रकारके शत्रु पराभव नहीं कर सकते। नन्दजी! चाहे जिस दृष्टिसे देखें—गुणमें, सम्पत्ति और सौन्दर्यमें, कीर्ति और प्रभावमें तुम्हारा यह बालक साक्षात् भगवान् नारायणके समान है। तुम बड़ी सावधानी और तत्परतासे इसकी रक्षा करो।'

कुछ ही दिनोंमें बलराम और श्रीकृष्ण घुटनोंके बल चलने लगे। उनकी बाल-लीलाएँ अत्यन्त मधुर और मनोहर थीं, जिन्हें देख-देखकर माता रोहिणी, मैया यशोदा, नन्दबाबा और व्रज-गोपिकाएँ तथा गोप अत्यन्त सुखी होते थे। उनके आनन्दकी सीमा नहीं थी। इस प्रकार देखते-ही-देखते व्रज-जीवन-धन वे दोनों अलौकिक बालक पैरोंके बल खड़े होकर चलने लगे। वे गोकुलकी गलियोंमें व्रज-गोपोंके साथ घूमते और विविध प्रकारकी मनोहर क्रीड़ाएँ करते रहते। श्रीकृष्ण ग्वाल-बालोंके साथ गोपियोंके घरोंमें प्रवेश कर अनेक युक्तियोंसे उनके दही और नवनीत लेकर स्वयं खाते, अपने साथियोंको खिलाते तथा बंदरोंमें बाँट देते। भाग्यवती गोपियाँ यह दृश्य देखकर निहाल हो जातीं, पर मैया यशोदाके सम्मुख प्रेमोपालम्भ भी देतीं। मैया सबकी मनुहार करके बालकके मङ्गलकी भीख माँगती रहती।

एक बार वयस्य बालकोंने माता यशोदासे कन्हैयाके मिट्टी खानेकी शिकायत की। कन्हैयाने सर्वथा अस्वीकार करते हुए अपना मुँह खोल दिया। वहाँ माता यशोदाने पृथ्वी, आकाश, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, सर-सरिता, समुद्र, सम्पूर्ण चराचर प्राणी और अनन्त सृष्टिका दृश्य देखा तो भयसे काँपने लगीं। किंतु कुछ ही क्षणोंमें योगमायाके प्रभावसे मैया वह अद्भुत दृश्य भूल गयीं और श्रीकृष्णका पूर्ववत् पुत्रकी भाँति लाड-दुलार करने लगीं। पूर्वजन्मके द्रोण और धरा श्रीपद्मोद्भवके अनुग्रहसे नन्द और यशोदाके रूपमें परब्रह्म परमात्माको अपनी गोदमें लेकर इस प्रकारकी देव-दुर्लभ, अलौकिक, मधुर-मनोहर लीलाओंका आनन्द प्राप्त कर रहे थे।

एक दिन मैया यशोदा जब श्रीकृष्णकी चञ्चलताको न रोक सकीं, तब उन्होंने कुपित होकर उनके कटिभागमें रस्सी बाँधकर उस रस्सीको ऊखलसे बाँध दिया और कहा—'अरे चञ्चल! अब तुझमें सामर्थ्य हो तो चला जा।' और मैया यशोदा अपने गृह-कार्यमें लग गयीं।

भगवान् श्रीकृष्ण, शापग्रस्त नलकूबर और मणिग्रीव जो दो जुड़वाँ अर्जुनके वृक्षोंके रूपमें स्थित थे, उद्धारका निश्चय कर ऊखल घसीटते हुए उधर ही चले। श्रीकृष्ण दोनों वृक्षोंके बीचमें घुस गये। वे तो दूसरी ओर निकल गये, किंतु ऊखल तिरछा होकर अटक गया। समस्त बल, पौरुष एवं पराक्रमके केन्द्र श्रीकृष्णके तनिक-सा झटका देते ही दोनों वृक्ष जड़से उखड़कर भयानक शब्दके साथ पृथ्वीपर गिर पड़े। उनमेंसे दो तेजस्वी पुरुष निकले और उन्होंने हाथ जोड़कर श्रीकृष्णकी स्तुति करते हुए अपनी कामना व्यक्त की—

> वाणी गुणानुकथने श्रवणौ कथायां
> हस्तौ च कर्मसु मनस्तव पादयोर्नः।
> स्मृत्यां शिरस्तव निवासजगत्प्रणामे
> दृष्टिः सतां दर्शनेऽस्तु भवत्तनूनाम्॥
> (श्रीमद्भागवत १० । १० । ३८)

'प्रभो! हमारी वाणी आपके मङ्गलमय गुणोंका गान करती रहे। हमारे कान आपकी रसमयी कथाके श्रवणमें लगे रहें। हमारे हाथ आपकी सेवामें और मन आपके चरण-कमलोंकी स्मृतिमें व्याप्त रहें। यह सम्पूर्ण जगत् आपका निवास-स्थान है। हमारा मस्तक सबके सामने झुका रहे। संत आपके प्रत्यक्ष शरीर हैं। हमारी आँखें उनके दर्शन करती रहें।'

'नलकूबर और मणिग्रीव!' हँसते हुए भगवान् श्रीकृष्ण बोले। 'तुम्हारा अभीष्ट तुम्हें प्राप्त हो गया है। अब तुम दोनों मुझे सरणसे करते हुए अपने घर जाओ।'

श्रीकृष्णकी वाणी सुनकर नलकूबर और मणिग्रीव ऊखलमें बँधे प्रभुके चरणोंमें बार-बार प्रणाम एवं उनकी परिक्रमा कर विदा हुए। 'दाम' (डोरी) से उदरमें बाँध दिये जानेके कारण श्रीकृष्णका नाम 'दामोदर' पड़ा।

वृक्षोंके गिरनेका भयानक शब्द सुनकर गोप, गोपियाँ, रोहिणी, यशोदा और नन्द—सभी दौड़ पड़े। वहाँ ऊखलमें बँधे श्रीकृष्णको मुस्कराते देखकर सभी विस्मित-चकित हुए। नन्दबाबाने तुरंत रस्सीकी गाँठ खोल दी। फिर प्रतिदिन होनेवाले नये-नये उपद्रवोंके कारण नन्दजीने प्रधान गोपोंको एकत्रकर मन्त्रणा की। वयोवृद्ध और ज्ञानवृद्ध गोपश्रेष्ठ उपनन्दके परामर्शसे सभी ग्वाल अपनी गायों तथा परिवारको साथ लेकर वृन्दावन जा पहुँचे। वृन्दावनमें पहुँचकर सब लोगोंने वहाँ अपने रहनेका समुचित प्रबन्ध किया।

गौओं, गोपों और गोपियोंको सुख देते हुए बलराम और श्रीकृष्ण गाय और बछड़ोंको चराने लगे। वे गोप-बालकोंके साथ गायोंको चराते हुए वनोंमें अनेक ऐसी मनोहर क्रीड़ाएँ करते, जिनसे गोप-बालकोंको अत्यधिक आनन्द प्राप्त होता।

एक दिन कालिन्दी-कूलपर गो-चारणके समय एक दैत्य बछड़ेके रूपमें आया। श्रीकृष्णने उसकी पूँछ पकड़कर उसे घुमाते हुए बड़े जोरसे कैथके वृक्षपर पटक दिया। दैत्यका तुरंत प्राणान्त हो गया। यह देखकर ग्वाल-बाल अत्यन्त प्रसन्न होकर श्रीकृष्णकी प्रशंसा करने लगे।

इसी प्रकार उन्होंने कंसके भेजे हुए बकासुरको मार डाला। एक दिन श्रीकृष्ण गायोंको चरनेके लिये छोड़कर गोप-बालकोंके साथ अनेक मनोहर खेल खेल रहे थे कि पूतना और बकासुरका छोटा भाई अघासुर कंसकी प्रेरणासे क्रोधोन्मत्त होकर विशाल अजगरके रूपमें गुफाकी तरह मुँह बाये मार्गमें लेट गया। कौतूहलवश समस्त गोप-बालक उसके उदरमें प्रवेश कर छटपटाने लगे। श्रीकृष्ण असुरका उद्देश्य समझकर स्वयं उसके मुँहमें प्रविष्ट हुए और उन्होंने अपने शरीरको इतना बढ़ाया कि अघासुरकी साँस रुक गयी। आँखें फटकर बाहर निकल आयीं और उसके प्राण ब्रह्मरन्ध्र फोड़कर निकल गये। श्रीकृष्णने अपने सभी साथियोंके प्राणोंकी रक्षा कर ली। इसके अनन्तर वे यमुना

पुलिनपर गायोंको चरनेके लिये छोड़कर शीतल छाँहमें सभी गोप-बालकोंके साथ भोजन करने बैठे। हास-परिहास एवं विनोदके साथ वंशीधर भोजन कर रहे थे और उधर गाय-बछड़े चरते हुए दूर निकल गये। सभी साथियोंको वहीं प्रतीक्षा करनेके लिये कह श्रीकृष्ण स्वयं उन्हें ढूँढ़ने चले।

नन्दनन्दन श्रीकृष्णकी मानवीय लीला देखकर कमलयोनि मोहग्रस्त हो गये। उन्होंने पहले बछड़ोंको और भगवान् श्रीकृष्णके चले जानेपर ग्वाल-बालोंको भी अन्यत्र ले जाकर रख दिया और स्वयं अन्तर्धान हो गये।

श्रीकृष्ण गाय-बछड़ोंको न पाकर यमुना-पुलिनपर पहुँचे और वहाँ गोप-बालकोंको नहीं देखा तो उन्हें इधर-उधर ढूँढ़ने लगे। अन्ततः उन्होंने उसे ब्रह्माकी करतूत समझकर, उनका अहंकार नष्ट करनेके लिये उन्हें अपनी दिव्य मायाका ऐश्वर्य दिखाना उचित समझा। भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं गोप-बालक तथा गाय-बछड़ोंके रूपमें हो गये। सभी पूर्ववत्, कहीं किंचित् अन्तर या भेद नहीं। श्रीकृष्ण गोप-बालकों एवं गाय-बछड़ोंके साथ प्रतिदिन वनमें गो-चारण करने जाते तथा सायंकाल खेलते-कूदते और गाते-बजाते घर पहुँचते।

इस प्रकार एक वर्ष पूरा होनेको आया। ब्रह्मा व्रजमें लौटे तो अपने छिपाये गाय, बछड़ों एवं ग्वालोंको यथास्थान मूर्च्छित और श्रीकृष्णके साथ ज्यों-के-त्यों नये गोप-बालक और गाय-बछड़ोंको देखकर आश्चर्यचकित हो गये। उनके देखते-ही-देखते सभी ग्वाल-बाल एवं गाय-बछड़े उन्हें शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधारी चतुर्भुज श्यामल विश्वविमोहनके रूपमें दीखने लगे। भगवान्की अद्भुत लीला देखकर ब्रह्मा उनके चरणोंमें पृथ्वीपर दण्डकी भाँति लोट गये। उन्होंने अपने आँसुओंसे श्रीकृष्णके अरुण चरणोंको नहला दिया। उन्होंने सर्वेश्वर श्रीकृष्णका स्तवन किया और उनकी परिक्रमा तथा उनके चरणोंमें प्रणाम कर अपने धाम पधारे। ग्वाल-बालों, गाय-बछड़ोंको पहले ही उन्होंने यथास्थान पहुँचा दिया था।

एक दिन बलराम और श्रीकृष्ण अपने सखा श्रीदाम, सुबल और स्तोककृष्णको प्रसन्न करनेके लिये एक सघन तालवनमें पहुँचे। वहाँ उन्होंने ताड़के कुछ फलोंको गिराया ही था कि गधेके रूपमें स्थित अत्यन्त बलवान् धेनुकासुर क्रोधपूर्वक बलरामजीपर दुलत्ती झाड़ने लगा। बलरामजीने उसके पीछेके दोनों पैरोंको पकड़ इतने जोरसे घुमाकर ताड़ वृक्षपर दे मारा कि उस असुरके प्राण पखेरू तो उड़ ही गये, वह ताड़का वृक्ष भी तड़तड़ाकर टूटकर गिर गया। एक वृक्षके गिरनेसे उसके आस-पासके अनेक ताड़-वृक्ष टूटकर भयानक शब्द करते हुए गिर पड़े। धेनुकासुरकी मृत्युका संवाद पाकर उसके भाई-बन्धु कुपित होकर बलरामजीपर टूट पड़े। बलरामजीने उन सभी गधोंके पिछले पैर पकड़कर घुमाकर ताड़-वृक्षपर दे मारा। इस प्रकार खेल-खेलमें उन्होंने वहाँके सभी असुरोंको मार डाला। गोप-बालक अत्यन्त प्रसन्न हुए।

किंतु उस दिन तो नन्द-यशोदा आदि गोप-गोपियोंमें हाहाकार मच गया, जब उन्हें विदित हुआ कि उनके प्राणाधार कमल-दल-लोचन श्रीकृष्ण अत्यन्त विषाक्त कालिय-ह्रदमें कूद पड़े हैं—सभी गोप-गोपियाँ भयविह्वल हो कुण्डपर पहुँचीं। कालियके सहस्र फन थे। अत्यन्त क्रुद्ध होकर वह सुर-मुनि-वन्दित श्रीकृष्णपर टूट पड़ा; किंतु चञ्चल श्रीकृष्णने उसके प्रत्येक फनको कुचल डाला। कालिय रक्त-वमन करता हुआ मूर्च्छित हो गया। वह गरुड़के भयसे रमणक द्वीप त्यागकर उक्त ह्रदमें बस गया था। होशमें आनेपर उसने श्रीकृष्णकी शरण ग्रहण की। भगवान् यशोदानन्दनने उसके मस्तकपर अपने चरणचिह्न स्थापित कर उसे परिवारसहित यमुना-कुण्डसे बाहर निकाल दिया। वह श्यामसुन्दरके चरणोंमें प्रणाम कर पुनः रमणकद्वीप चला गया। यमुनाका जल उस समय निर्विष ही नहीं, अमृततुल्य हो गया। नन्दादि गोपगणोंके प्राण बचे। मैया यशोदाने विलाप करते हुए श्रीकृष्णको अपने वक्षसे सटा लिया। नन्दबाबाने बहुत-सा सोना और गौएँ ब्राह्मणोंको दान दीं।

अधिक देर होने और थकानके कारण सभी व्रजवासी और गौएँ व्रजमें न जाकर वहीं कालिन्दी-कूलपर रात्रि बितानेके लिये रुक गये। गर्मीके दिन थे। अचानक सूखे वनमें आग लग गयी। समस्त व्रजवासी प्रज्वलित अग्निसे घिरकर चीत्कार करते हुए श्रीकृष्णको पुकारने लगे। अपने स्वजनोंको विकल-विह्वल देखकर देवदेव श्रीकृष्णने उस भयंकर अग्निका पान कर लिया। इस प्रकार करुणासिन्धुने व्रजवासियोंपर आयी भयानक आपदा दूर कर दी।

एक दिन गोप-बालकोंके साथ गो-चारण करते समय प्रबल प्रलम्बासुर गोप-बालकके वेषमें उनमें मिल गया। खेल-खेलमें उसने बलरामको अपनी पीठपर बैठाया

ओर दूर जाकर उसने अपना भयानक वेष प्रकट कर दिया। फिर वह बलरामको लेकर बड़ी तीव्रतासे आकाशमें उड़ा; किंतु बलरामके वज्रतुल्य एक ही मुष्टिक-प्रहारसे रक्त उगलता हुआ वह पृथ्वीपर गिरकर कालके गालमें चला गया। ग्वाल-बाल अत्यन्त चकित होकर बलरामजीकी सराहना करने लगे।

एक बार श्रीकृष्ण ग्वाल-बालोंके साथ खेल-कूदमें तन्मय थे कि उनकी गायें चरती हुई एक गहन वनमें प्रवेश कर गयीं। वे गर्मी और तृषासे व्याकुल होकर एक वनसे होकर दूसरे वनमें होती और पुकारती हुई मुञ्जाटवी (सरकंडोंके वन) में घुस गयीं। गायोंको न पाकर गोप-बालक और श्रीकृष्ण अत्यन्त चिन्तित हो, उनका नाम लेकर पुकारते उक्त वनके पास पहुँचे; किंतु वहाँ वनमें सब ओरसे दावाग्नि लग गयी। उसी समय प्रबल पवन चलने लगा। प्रज्वलित अग्निकी लपटोंको अपनी ओर बढ़ते देखकर गोप-बालकोंने श्रीकृष्णसे अत्यन्त करुण प्रार्थना की।

'तुमलोग अपने नेत्र बंद कर लो।' सबको विकल-विह्वल देखकर श्रीकृष्णने जोरसे कहा। ग्वाल-बालोंने अपने-अपने नेत्र बंद किये तो पूर्ववत् अपनेको गाय-बछड़ोंसहित भाण्डीर-वटके पास पाया। योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्णकी दावाग्नि-पान-लीलाको तो गोप-बालक नहीं समझ सके, परंतु अपनी रक्षासे उन्होंने इतना अवश्य समझा कि श्रीकृष्ण कोई देवता हैं।

संध्या निकट समझ बलराम और श्रीकृष्णसहित समस्त ग्वाल-बाल अपने-अपने गाय-बछड़ोंके साथ नाचते-कूदते व्रजकी ओर लौटे। सबके मध्य मयूर-मुकुट धारण किये उनका प्राणप्रिय कन्हैया अपनी बंसीमें अमृत-रस फूँकता जा रहा था।

कुछ ही समय बाद वर्षा ऋतु आयी। नीले आकाशमें सजल श्यामल घन दौड़ने लगे। शीतल पवन चलने लगा। वृन्दावनकी रमणीयता अत्यन्त बढ़ गयी। वन-पर्वत—सर्वत्र हरियाली छा गयी। वृक्ष पुष्पों और फलोंसे लद गये। वहाँ मयूर नृत्य तथा अन्य पक्षी आनन्दपूर्वक कलरव करने लगे। ऐसे समय व्रज-प्राण-वल्लभ नन्दनन्दन अपनी पीयूषवर्षिणी मुरलीकी मधुर तानसे चराचर प्राणियोंको मन्त्रमुग्ध करते। गौओं, गोवत्सों, गोपों, गोप-बालकों, गोपियों तथा नन्द-यशोदा रोहिणी प्रभृति सभी स्वजनोंका आनन्दवर्द्धन ही वे नहीं करते थे, किंतु उन्हें दिव्य एवं अलौकिक सुख प्रदान करते थे।

एक बार शरत्काल प्रारम्भ होनेपर नन्दादिकोंने इन्द्र-पूजाका महान् आयोजन किया; किंतु श्रीकृष्णने इन्द्र-पूजा स्थगित करा दी और उसके स्थानपर गोवर्द्धनका पूजनोत्सव मनाया गया। अपनी उपेक्षासे इन्द्र अत्यन्त कुपित हुए और वे सम्पूर्ण व्रज-मण्डलको जलमें डुबा देनेके उद्देश्यसे सात दिनोंतक अनवरतरूपसे भयानक वर्षा करते रहे। किंतु सर्वसमर्थ, सर्वेश्वर, भक्तप्राण-धन श्रीकृष्णने महान् पर्वत गोवर्द्धनको उखाड़कर अनायास ही छत्रकी भाँति धारण कर लिया। उसके नीचे समस्त व्रजवासी, गौएँ एवं गोवत्स—सभी सुखपूर्वक रहने लगे। उन्हें किंचित् भी कष्टका भान नहीं हो सका।

यह देखकर शचीपति सहस्राक्ष अत्यन्त भयभीत हुए। उन्होंने तत्काल वर्षा बंद करनेका आदेश दिया और स्वयं गिरिराजकी ओर चल पड़े। त्रैलोक्यवन्दित पद्मपत्राक्ष नन्दनन्दनने वृष्टि बंद होनेपर उस महान् पर्वतको यथा-स्थान रख दिया। नन्दादिक वयोवृद्ध गोप श्रीकृष्णकी इस लीलासे अत्यन्त चकित हो उनकी प्रशंसा तथा उनके मङ्गलके लिये श्रीहरिसे प्रार्थना करने लगे।

इसी बीच लज्जित सुरेन्द्रने वहाँ पहुँचकर श्रीकृष्णके चरणोंमें प्रणाम तथा बद्धाञ्जलि हर्षगद्गद वाणीसे उनका स्तवन किया। इसके अनन्तर देवेन्द्रने गोविन्दका आकाशगङ्गाके अमृतमय जलसे अभिषेक कर उनकी दिव्य वस्त्राभरणोंसे भक्तिपूर्वक पूजा की। तदनन्तर गोकुलके स्वामी गोविन्दकी अनुमति प्राप्त होनेपर वे स्वर्गके लिये प्रस्थित हुए।

उधर व्रजवासियोंका विनाश करनेके लिये क्रूर कंस दुष्ट दैत्योंको क्रमशः भेजता ही जा रहा था। एक दिन संध्या-समय जब श्रीकृष्ण व्रजमें प्रवेश कर रहे थे, अरिष्टासुर-नामक महाकाय दैत्य वृषभका रूप धारणकर व्रजमें उपद्रव करने लगा। उसकी क्रूरतासे गोपियाँ भयभीत हो गयीं। श्रीकृष्णने उसे चिढ़ा दिया। फिर तो वह अपने मुख्य लक्ष्य श्रीकृष्णको मारनेके लिये अपने दोनों सींग नीचे किये उनकी ओर बड़े वेगसे दौड़ा। श्रीकृष्णने उसके सींगोंको पकड़कर इस प्रकार घुमाया कि गर्दन ऐंठ जानेके कारण वह असुर पसीने-पसीने होकर छटपटाने लगा। श्रीकृष्णने उसका सींग

उखाड़ उसीसे उसे इतना पीटा कि तड़प-तड़पकर उसने प्राण त्याग दिये।

इसी प्रकार एक दिन महाबली केशी नामक दैत्य घोड़ेके वेषमें श्रीकृष्णको मार डालनेके लिये व्रजमें आया। उसके उपद्रवसे व्रजवासी चीत्कार करने लगे। दैत्यारि श्रीकृष्णने व्रजवासियोंको धैर्य बँधाते हुए उस घोड़ेके मुँहमें अपना एक हाथ डाल दिया। वह हाथ अश्वमुखमें इतना विशाल होता गया कि असुरकी साँस रुक गयी, नेत्र उलट गये तथा तड़पते हुए उसने अपना प्राण-विसर्जन कर दिया। यह दृश्य देखकर देवगण श्रीमधुसूदनकी स्तुति करते हुए उनके ऊपर स्वर्गीय पुष्पोंकी वर्षा करने लगे।

भगवान् श्रीकृष्ण पूर्ववत् गो-पालन एवं व्रजवासियोंको अलौकिक आनन्दका वितरण करनेमें लग गये। एक दिन वे गोप-बालकोंके साथ गायोंको पर्वतपर चरनेके लिये छोड़कर उनके साथ चोर, रक्षक और भेड़ बनकर खेलने लगे। इसी बीच मायावियोंके आचार्य मयासुरका प्रबल पराक्रमी एवं अत्यन्त मायावी पुत्र व्योमासुर ग्वालेका वेष धारणकर वहाँ आया। उक्त खेलमें वह चोर बनकर एक-एक ग्वाल-बालकको चुराकर पर्वतकी गुफामें डालकर उसका मुँह विशाल शिलासे बंद कर देता। केवल चार-पाँच बालकोंके शेष रहनेपर श्रीकृष्णने असुरकी चाल समझी और बलपूर्वक उसे पृथ्वीपर पटक दिया तथा निष्ठुरतासे उसका गला दबाकर उसे मार डाला। फिर गुफाद्वारसे शिला हटाकर गोप-बालकोंको उक्त कष्टकर स्थलसे वे निकाल लाये। इस प्रकार परब्रह्म परमात्मा नन्द-यशोदाके ही नहीं, व्रजके सम्पूर्ण जीवधारियोंके अनन्य सहचर, प्रेमी, सुहृद् और सुख देनेवाले थे। सभी श्रीकृष्णके प्राण थे और सबके प्राण जैसे श्रीकृष्णमें ही समाये रहते थे। श्रीकृष्णको देखे बिना वे मणिहीन फणीकी भाँति व्याकुल हो जाते और श्रीकृष्णके अमृतमय दर्शनसे ही वे जीवन-धारण करते। व्रजमें सर्वत्र श्रीकृष्णकी ही आश्चर्यजनक, किंतु अत्यन्त मधुर, अत्यन्त आदर्श एवं जीवनमें नयी चेतना, नवीन उल्लास, नया जीवन, नयी स्फूर्ति, नवीन प्राण तथा नूतन ज्योति बिखेरनेवाली लीलाओंका ही स्मरण, चिन्तन एवं गायन होता रहता था।

पर शीघ्र ही एक संध्या ऐसी आयी, जब दुरात्मा कंसके भेजे हुए महान् भागवत श्वफल्कनन्दन अक्रूर नन्दगाँवमें पहुँचे। मार्गमें कमल, यव, अङ्कुश आदि असाधारण पद-चिह्नोंको देखकर वे भावविह्वल हो रहे थे। उनके नेत्रोंसे अश्रु-बिन्दु टपक रहे थे। इस प्रकार जगत्त्राता व्रजचन्द्रके दर्शनकी तीव्र लालसा लिये वे गो-दोहन-स्थलपर पहुँचे। वहाँ पीताम्बर धारण किये मयूरमुकुटी वनमालीको देखकर अक्रूरजीने हर्षगद्गद हो उनके चरणोंमें प्रणाम किया। श्यामसुन्दरने भी अपने कर-कमलोंसे उन्हें स्पर्श कर, प्रीतिपूर्वक खींचकर उनका गाढ़ आलिङ्गन किया। इसके अनन्तर अक्रूरजीने अनन्त प्रभु नीलाम्बरधारी बलरामको देखा तो साश्रुनयन, बद्धाञ्जलि उनके सम्मुख खड़े हो गये। बलरामजीने भाग्यवान् अक्रूरजीको अत्यन्त प्रेमसे गले लगा लिया। फिर उनका एक हाथ श्रीकृष्णने पकड़ा और दूसरा हाथ बलभद्रने। दोनों भाई उन्हें घर ले गये।

घर ले जाकर यशोदानन्दनने अक्रूरजीका बड़ा स्वागत-सत्कार किया। नन्दबाबाने भी अतिशय प्रीतिसे उनका समाचार पूछा। अन्तमें अक्रूरजीने बताया—'देवर्षि नारदजीने श्रीकृष्णके यहाँ रखे जाने तथा बलभद्रके पालित होनेका सारा संवाद कंसको बता दिया। दुष्ट कंस क्रुद्ध होकर महामना वसुदेव और महाभागा देवकीको पुनः बंदीगृहमें डालकर समूचे यदुवंशियोंके विनाशपर तुल गया है और इसी षड्यन्त्रकी सिद्धिके लिये उपहार लेकर श्रीकृष्ण-बलरामसहित आपलोगोंको ले आनेके लिये मुझे यहाँ भेजा है।'

नन्दराय सहम गये। माता यशोदा घबरा गयीं। सम्पूर्ण गोपियाँ विकल-विह्वल हो गयीं, किंतु श्रीकृष्णके आश्वासनसे मथुरा-यात्राकी तैयारी होने लगी। प्रातःकाल अक्रूरजीने हाथ जोड़कर यशोदाजीको प्रणाम किया और उन्होंने मैया यशोदाको विश्वास दिलाते हुए कहा—'महाभागे! अब मैं जाऊँगा। मुझपर कृपा कीजिये। ये महाबाहु श्रीकृष्ण महाबली कंसको मारकर सम्पूर्ण जगत्के राजा होंगे, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। अतः आप निश्चिन्त होकर प्रसन्न हो जायँ।' इस प्रकार उनसे बिदा ले अक्रूरजी श्रीकृष्ण और बलरामको रथपर बैठाकर ले चले। व्रज-गोपिकाएँ रोती, कलपती और बिलखती रहीं। माता यशोदाकी व्याकुलता तो वे ही जानती थीं। नन्दराय अन्य गोपोंके साथ छकड़ोंपर उपहार लेकर प्रस्थित हुए।

अक्रूरजीका रथ यमुना-तटपर पहुँचा तो वे दोनों भाइयोंकी अनुमतिसे उन्हें रथपर बैठे छोड़कर यमुना-स्नान करने चले। स्नानोपरान्त उन्होंने यमुना-जलमें डुबकी लगाकर

गायत्री-जप करना शुरू किया तो वहाँ श्रीकृष्ण-बलभद्रको देखकर घबरा गये। उन्होंने बाहर देखा तो रथपर दोनों तेजस्वी बन्धु बैठे थे। उन्होंने पुनः डुबकी लगायी, तब तो बलभद्रजी सहस्रफनवाले शेषनाग एवं श्रीकृष्ण साक्षात् परम प्रभुके रूपमें उन्हें दीखने लगे। भगवान्‌की दिव्य झाँकीसे अक्रूरजीके नेत्रोंमें प्रेमाश्रु भर आये। भावविह्वल होकर अविनाशी प्रभुका स्तवन करते हुए उन्होंने कहा—

नमस्ते वासुदेवाय सर्वभूतक्षयाय च।
हृषीकेश नमस्तुभ्यं प्रपन्नं पाहि मां प्रभो॥

(श्रीमद्भागवत १०।४०।३०)

'प्रभो! आप ही वासुदेव, आप ही समस्त जीवोंके आश्रय (संकर्षण) हैं तथा आप ही बुद्धि और मनके अधिष्ठातृ-देवता हृषीकेश हैं। मैं आपको बार-बार नमस्कार करता हूँ। प्रभो! आप मुझ शरणागतकी रक्षा कीजिये।'

प्रसीद सर्व सर्वात्मन् क्षराक्षरमयेश्वर।
ब्रह्मविष्णुशिवाख्याभिः कल्पनाभिरुदीरितः॥

(विष्णुपुराण ५।१८।५१)

'हे सर्वस्वरूप! हे सर्वात्मन्! हे क्षराक्षरमय ईश्वर! आप प्रसन्न होइये। एक आप ही ब्रह्मा, विष्णु और शिव-नामकी कल्पनाओंद्वारा वर्णन किये जाते हैं।'

'अक्रूरजी! आप कहें आश्चर्यचकित दीख रहे हैं!' रथके समीप पहुँचनेपर मन्द-मन्द मुसकराते हुए श्रीकृष्णने कहा—'क्या बात है?'

'यह महान् आश्चर्यमय जगत् जिस सर्वात्माका स्वरूप है, उन्हींका दर्शन मुझे हो रहा है।' नेत्रोंमें अश्रुभरे हर्षगद्गद कण्ठसे अक्रूरजीने कहा। 'अब उस आश्चर्यके सम्बन्धमें अधिक कहनेसे क्या लाभ है। चलिये, हमें शीघ्र मथुरा पहुँचना है।' और उन्होंने सर्वेश्वरसहित रथको आगे बढ़ाया।

मथुरापुरीमें नगर-द्वारपर ही कृष्ण-बलभद्रको छोड़कर अक्रूरजी कंसके पास गये और वहाँ इनके आगमनका संवाद सुनाकर अपने घर चले गये।

कुछ देर बाद राम-श्याम भी मथुराकी शोभा देखते हुए राजपथसे जा रहे थे। उनकी अलौकिक सौन्दर्य-राशिको देखकर मथुरावासी चकित और निहाल हो रहे थे। मार्गमें उन्होंने वस्त्र रँगनेवाले रजकको देख उससे उत्तमोत्तम वस्त्र माँगे। कंसके उस अभिमानी रजकने वस्त्र देनेके स्थानपर उन्हें अनेक दुर्वचन कहे। तब श्रीकृष्णने क्रुद्ध होकर उसे इतने जोरका तमाचा मारा कि उसका सिर धड़से अलग होकर पृथ्वीपर लोटने लगा। फिर राम-श्यामने इच्छानुसार उसके नीले तथा पीले वस्त्रोंको लेकर धारण किया और वे मालीके घर पहुँचे।

मालीने उन्हें दिव्य पुरुष समझकर उनका बड़ा स्वागत-सत्कार किया और विविध प्रकारके सुगन्धित पुष्पोंकी मालाएँ पहनाकर अपने भाग्यकी सराहना करते हुए उनकी बड़ी स्तुति की। प्रसन्न होकर उसका जीवन सार्थक करते हुए कृष्णचन्द्रने उसे बिना माँगे उसके घर अचला लक्ष्मीका निवास देते हुए कहा—

बलहानिर्न ते सौम्य धनहानिरथापि वा।
यावद्दिनानि तावच्च न नशिष्यति संततिः॥
भुक्त्वा च विपुलान्भोगांस्त्वमन्ते मत्प्रसादतः।
ममानुस्मरणं प्राप्य दिव्यं लोकमवाप्स्यसि॥

(विष्णुपुराण ५।१९।२५-२६)

'सौम्य! तेरे बल और धनका ह्रास कभी न होगा और जबतक दिन (सूर्य) की सत्ता रहेगी, तबतक तेरी संतानका उच्छेद न होगा। तू भी यावज्जीवन विपुल भोग भोगता हुआ अन्तमें मेरी कृपासे मेरा स्मरण करनेके कारण दिव्य लोकको प्राप्त होगा।'

मालाकारके द्वारा पूजित हो राम-श्याम राजपथपर आये तो उन्होंने नवयौवनसम्पन्ना कुब्जाको अनुलेपनपात्र लिये आते देखा। श्रीकृष्ण और बलभद्रके अलौकिक सौन्दर्यसे अत्यन्त आकृष्ट हो उसने अपना परिचय देते हुए कहा—'मैं प्रख्यात अनेकवक्रा राजा कंसके अनुलेपन-कार्यमें नियुक्त हूँ। यह अनुलेपन सर्वथा आपके योग्य है।' यह कहकर उसने श्रीकृष्ण-बलभद्रके योग्य चन्दनादि दिया। उक्त सुन्दर-सुगन्धित चन्दनादिसे अनुलिप्त होकर श्रीकृष्णने कुब्जाकी ठोड़ीमें अपनी आगेकी दो अँगुलियाँ लगा उसे उचकाया तथा उसके पैर अपने पैरोंसे दबा दिये। इस प्रकार उल्लापन (सीधे करनेकी) विधि जाननेवाले नन्दनन्दनने उसे ऋजुकाय (सीधे शरीरवाली) कर दिया। फिर तो रूपवती कुब्जा उनका पीताम्बर पकड़कर अपने घर ले जानेके लिये आग्रह करने लगी। 'तुम्हारे घर भी आऊँगा।'

—यों कहकर मुस्कराते हुए भुवनमोहन अपने भाई बलभद्रके साथ यज्ञशालामें पहुँचे।

वहाँ उन्होंने बहुमूल्य अलंकारोंसे सज्जित तथा अनेक प्रकारसे पूजित इन्द्रधनुषके तुल्य धनुषको देखते ही रक्षक-सैनिकोंके रोकनेपर भी कौतूहलसे ही धनुषको उठा लिया और उसकी प्रत्यञ्चा खींचकर उसे क्षणार्द्धमें ही तोड़कर उसके दो टुकड़े कर दिये। धनुर्भङ्गकी तीव्र ध्वनिसे इतना घोर शब्द हुआ कि सम्पूर्ण मथुरापुरी गूँजकर हिल-सी गयी।

धनुषके टूट जानेसे उसके रक्षक सैनिक तथा अन्य असुरोंने राम-श्यामपर आक्रमण कर दिया। तब तो कुपित होकर उन दोनों भाइयोंने धनुषके टूटे हुए दोनों टुकड़ोंसे ही उन्हें मार डाला और फिर निश्चिन्त होकर वे यज्ञशालाके प्रधान द्वारसे बाहर निकलकर राजपथपर विचरण करने लगे।

फिर उन दोनों बन्धुओंने अपने डेरेपर लौटकर खीर आदि पदार्थोंका भोजन किया और कंसकी आगामी गति-विधियोंका पता लगाकर वहीं आरामसे सो गये।

प्रातःकाल स्नानादिसे निवृत्त होकर, नगारेकी ध्वनि सुन पीताम्बर और नीलाम्बर धारण किये हुए श्रीकृष्ण-बलराम रङ्गभूमिकी ओर चल पड़े। रङ्गभूमिके प्रवेशद्वारपर ही अत्यन्त बलवान् कुवलयापीड़ हाथी खड़ा था। केशिनिषूदन एवं रोहिणीनन्दनके समीप आते ही कंसके आदेश-पालनमें तत्पर महावतने कुवलयापीड़के द्वारा उनपर आक्रमण कर दिया। तब तो अत्यन्त क्रुद्ध हो राम-श्यामने हाथीको पटककर उसके दाँत उखाड़ लिये तथा उन्हीं दाँतोंसे हाथी और महावतको मारकर हाथीदाँत कंधेपर रखे झूमते हुए अत्यन्त सावधानीसे रङ्गशालामें पहुँचे। उस समय उनकी अद्भुत शोभा हो रही थी—

> मृतकं द्विपमुत्सृज्य दन्तपाणिः समाविशत्।
> अंसन्यस्तविषाणोऽसृङ्मदबिन्दुभिरङ्कितः ॥
> विरूढस्वेदकणिकावदनाम्बुरुहो बभौ ॥
>
> (श्रीमद्भागवत १०। ४३। १५)

'मरे हुए हाथीको छोड़कर भगवान् श्रीकृष्णने हाथमें उसके दाँत लिये-लिये ही रङ्गभूमिमें प्रवेश किया। उस समय उनकी शोभा देखने ही योग्य थी। उनके कंधेपर हाथीका दाँत रखा हुआ था, शरीर रक्त और मदकी बूँदोंसे सुशोभित था और मुख-कमलपर पसीनेकी बूँदें झलक रही थीं।'

गोप-बालकोंसहित रङ्गशालामें प्रवेश करते हुए श्रीकृष्ण-बलदेवपर सबके नेत्र टिक गये। वे दोनों अलौकिक बालक अपनी-अपनी दृष्टिसे सबको महान् दीख रहे थे।

इसी समय रङ्गभूमिमें तुरही आदि बाजे बजने लगे और कंसके सम्मुख अत्यन्त अनीतिपूर्वक चाणूर और मुष्टिक-जैसे महाकाय महाबलवान् मल्ल किशोर कृष्ण और बलरामसे लड़ने लगे; किंतु इतनेपर भी जब उन महामल्लोंकी शक्ति क्षीण होने लगी, तब घबराकर कंसने बाजे बंद करवा दिये; किंतु उसी क्षण आकाशमें अनेक तूर्य एक साथ बज उठे—

> जय गोविन्द चाणूरं जहि केशव दानवम्।
> अन्तर्द्धानगता देवास्तमूचुरतिहर्षिताः ॥
>
> (विष्णुपुराण ५। २०। ७३)

"देवगण अत्यन्त हर्षित होकर अलक्षित-भावसे कहने लगे—'हे गोविन्द! आपकी जय हो! हे केशव! आप शीघ्र ही इस चाणूर दानवको मार डालिये'।"

कंसके दुरुद्देश्यको समझकर भगवान् श्रीकृष्णने चाणूरको एवं रोहिणीनन्दनने मुष्टिकको आकाशमें घुमाकर तथा घूँसों एवं जानुके प्रहारसे मार डाला। इसी प्रकार मल्लराज शल और तोशल भी मारे गये। तब तो कंस क्रोधसे नेत्र लाल कर श्रीकृष्ण-बलभद्र, समस्त गोप-बालकों तथा नन्दादि गोपोंके विरुद्ध आदेश देने लगा। इसपर अत्यन्त कुपित होकर दैत्यारि श्रीकृष्ण हँसते हुए कंसके मञ्चपर चढ़ गये और उसके केशोंको पकड़कर उसे पृथ्वीपर पटक दिया तथा उसके ऊपर स्वयं कूद पड़े। फिर क्या था, उग्रसेनात्मज क्रूर कंसका प्राणान्त हो गया। जगदाधार श्रीकृष्णने मृतक कंसके केश पकड़कर उसे रङ्गभूमिमें चारों ओर घसीटा। शेष मल्लादि भयवश पहले ही भाग गये थे; किंतु कंसके कङ्क और न्यग्रोध आदि आठ छोटे भाइयोंने अपने भाईका बदला लेनेके लिये कृष्ण और बलरामपर आक्रमण कर दिया। पर प्रज्वलित अग्निपर पड़नेवाले पतंगोंकी भाँति वे भी क्षणभरमें ही मृत्युके ग्रास बन गये।

इसके उपरान्त तुरंत उन दोनों भाइयोंने अपने माता-पिताको बन्धनमुक्त कर उनके चरणोंपर सिर रख दिया। देवकी और वसुदेवके सुख-सौभाग्यका क्या कहना? अब उनके दुःखके दिन बीते, पर वे मन-ही-मन अपने

पुत्रको श्रीनारायणका अवतार समझ रहे थे। विश्वात्मा श्रीहरिने उन्हें पुनः योगमायासे मोहित कर दिया।

प्रत्येक रीतिसे अपने माता-पिताको सान्त्वना देकर श्रीकृष्ण अपने नाना उग्रसेनके पास गये और उनके चरणोंमें प्रणाम कर उन्हें बन्धनमुक्त किया। फिर उन्हें सान्त्वना देकर मथुराके राजसिंहासनपर उनका अभिषेक कर दिया। अक्रूर आदि श्रेष्ठ यदुवंशियोंकी राज्यमें विशेष पदोंपर नियुक्ति कर दी। देवकीनन्दनने कंसके भयसे यत्र-तत्र भागे हुए यदु, अन्धक, मधु, दाशार्ह और कुकुर आदि वंशोंमें उत्पन्न सजातीय सम्बन्धियोंको ढूँढ़-ढूँढ़कर बुलवाया और उन्हें प्रचुर धन-सम्पत्ति देकर पुनः सम्मानपूर्वक बसाया।

इसके अनन्तर भगवान् वासुदेव और बलराम नन्दबाबाके समीप पहुँचे। नन्दरायने उन्हें गले लगा लिया। श्रीकृष्णने उनकी, मैया यशोदा, गौओं, गो-वत्सों, गोपों एवं गोप-बालकोंकी—सबकी अपने प्रति सहज अद्भुत प्रीतिकी प्रशंसा की तथा पुनः व्रजमें आनेका आश्वासन देकर उन्हें वस्त्र, आभूषण तथा पात्र आदि देकर बिदा किया। पुत्रोंसे बिछुड़ते हुए वृद्ध नन्दबाबाके नेत्र बरसने लगे। श्रीकृष्ण-बलराम बार-बार उनके चरणोंमें प्रणाम करते रहे। जीवनकी सम्पूर्ण निधि गँवाये वणिक्‌की भाँति नन्दराय दुःखी हृदयसे व्रज लौटे।

इसके अनन्तर वसुदेवजीने अपने पुरोहित गर्गाचार्यको बुलाकर बालकोंका यज्ञोपवीत-संस्कार करवाया। फिर वे दोनों बन्धु अवन्तीपुरमें सांदीपनि मुनिके पास विद्यार्जन-हेतु गये। अत्यन्त संयमी दोनों ब्रह्मचारी बालकोंने गुरुकी सेवा करते हुए केवल चौंसठ दिनोंमें सम्पूर्ण वेद-वेदाङ्ग तथा चौंसठ कलाओंका ज्ञान प्राप्त कर लिया। फिर उन्होंने गुरु-दक्षिणाके रूपमें गुरुके मरे हुए पुत्रको यमपुरीसे लौटाकर पूर्ववत् शरीरयुक्त करके दे दिया। तदनन्तर वे गुरुकी आज्ञासे मथुरा लौट आये।

इधर श्रीकृष्णके द्वारा दुर्धर्ष वीर कंसके मारे जानेका समाचार पाकर उसका श्वशुर मगधराज जरासंध अत्यन्त कुपित हुआ और तेईस अक्षौहिणी सेनासे एक-एक यदुवंशियों-के विनाशका निश्चय कर उसने मथुराको घेर लिया। तब भगवान् वासुदेवने अपने पूर्वकालीन सनातन सारथिका स्मरण किया और तुरंत सारथि दारुक सुग्रीव-पुष्पक नामक महान् रथ लिये उपस्थित हो गया। उस देवदुर्जय रथपर गरुडचिह्नसे फहराती ध्वजा एवं उसमें शङ्ख-चक्र-गदादि सभी अस्त्र-शस्त्र विद्यमान थे। इसी प्रकार बलभद्रजीके पास भी उनका अभीष्ट महान् हल और सुनन्द-नामक मूसल आकाशसे आ गये। फिर भगवान् श्रीकृष्ण बलरामजीके साथ रथारूढ़ हो शत्रुसे युद्ध करने चले। उस समय वासुदेवने चतुर्भुज रूप धारण कर लिया था।

> चतुर्भुजवपुर्भूत्वा शङ्खचक्रगदासिभृत्।
> किरीटी कुण्डली स्रग्वी संग्रामाभिमुखं ययौ ॥
> (पद्मपुराण, उ० ख० २७३। १४)

'भगवान्‌ने चतुर्भुज रूप धारण करके हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा और तलवार ले ली तथा मस्तकपर किरीट धारण किया। दोनों कानोंमें कुण्डल तथा गलेमें वनमाला धारण करके वे संग्रामकी ओर प्रस्थित हुए।'

भयानक संग्राम हुआ। जरासंधकी तेईस अक्षौहिणी सेना मार डाली गयी और रोहिणीनन्दन बलराम जरासंधको पकड़कर, उसका गला दबाकर मूसलसे उसपर प्रहार करना ही चाहते थे कि दयामय श्रीकृष्णने उसे छुड़ा दिया। अत्यन्त अपमानित होकर जरासंध युद्धभूमिसे वापस लौटा।

इस प्रकार सत्रह बार तेईस-तेईस अक्षौहिणी सेनाके साथ मगधराज मथुरापर चढ़ आया, किंतु प्रत्येक बार उसकी समस्त सेना गाजर-मूलीकी भाँति काट दी गयी और प्रत्येक बार श्रीकृष्णकी सहायतासे यदुवंशी जरासंधको अत्यन्त उपेक्षापूर्वक छोड़ते गये।

जिस समय मगधराज अपनी विशाल वाहिनीसे मथुराको अठारहवीं बार घेरनेवाला था, उसी समय पृथ्वीका अद्वितीय वीर कालयवन अपनी तीन करोड़ म्लेच्छोंकी सेनाके साथ मथुरापर चढ़ बैठा। नीतिनिपुण श्रीकृष्णने तुरंत विश्वकर्माके द्वारा समुद्रमें एक विशाल एवं श्रेष्ठ नगरका निर्माण कराया। देवराज इन्द्रने भगवान्‌के लिये दिव्य सुधर्मा सभा भेज दी। तब भगवान् श्रीकृष्णने उक्त सम्पूर्ण सुविधाओंसे सम्पन्न द्वारका नगरीमें अपने समस्त स्वजन-सम्बन्धियोंको अचिन्त्य महाशक्ति योगमायाके द्वारा पहुँचा दिया और शेष प्रजाकी रक्षाके लिये बलरामजीको नियुक्तकर उनके परामर्शसे नवनीरदवपु नन्दकुमार पीताम्बर एवं गलेमें कमलोंकी माला धारण किये, अस्त्र-शस्त्ररहित, एकाकी नगरके बड़े द्वारसे बाहर निकल गये।

श्रीनारदजीके कथनानुसार श्रीवत्सचिह्नाङ्कित, कमल-नयन, चतुर्भुज, भुवनमोहन प्रभुको जाते देख कालयवन भी किसी शस्त्रके बिना युद्धका निश्चय कर उनके पीछे दौड़ा। प्रभु भागे। कालयवन दौड़ा। भागते-दौड़ते प्रभु एक गुफामें प्रविष्ट हो गये। कालयवनने पीछे-पीछे गुफामें प्रवेश कर एक व्यक्तिको सोते हुए देखा। उसने कुपित होकर कठोर पाद-प्रहार किया तो इक्ष्वाकुवंशी महाराज मांधाताके पुत्र राजा मुचुकुन्दकी निद्रा टूट गयी और उनकी कुपित दृष्टि पड़ते ही कालयवन वहीं जलकर भस्म हो गया। फिर महाराज मुचुकुन्दने श्रीभगवान्का दर्शन किया तो अत्यन्त पुलकित होकर भगवान्से प्रार्थना करते हुए उन्होंने कहा—

चिरमिह वृजिनार्तस्तप्यमानोऽनुतापै-
रवितृषषडमित्रोऽलब्धशान्तिः कथंचित्।
शरणद समुपेतस्त्वत्पदाब्जं परात्म-
न्नभयमृतमशोकं पाहि माऽऽपन्नमीश॥
(श्रीमद्भागवत १०। ५१। ५८)

'भगवन्! मैं अनादिकालसे अपने कर्मफलोंको भोगते-भोगते अत्यन्त आर्त हो रहा था, उनकी दुःखद ज्वाला रात-दिन मुझे जलाती रहती थी। मेरे छः शत्रु (पाँच इन्द्रिय और एक मन) कभी शान्त न होते थे, उनकी विषयोंकी प्यास बढ़ती ही जा रही थी। कभी किसी प्रकार एक क्षणके लिये भी मुझे शान्ति न मिली। शरणदाता! अब मैं आपके भय, मृत्यु और शोकसे रहित चरण-कमलोंकी शरणमें आया हूँ। सारे जगत्के एकमात्र स्वामी! परमात्मन्! आप मुझ शरणागतकी रक्षा कीजिये।'

इक्ष्वाकुनन्दन राजा मुचुकुन्दने भगवान्की परिक्रमा की और उनके वरद चरणोंमें प्रणाम कर गुफासे बाहर निकले तथा फिर तन, मन और प्राणसे श्रीभगवान्की आराधनाके लिये श्रीबदरिकाश्रममें चले गये। इधर भगवान् मथुरापुरीमें लौट आये।

कालयवनकी विशाल सेना अबतक मथुराको घेरे पड़ी थी। श्रीकृष्णने म्लेच्छोंकी उस विशाल वाहिनीका संहार कर उनका सारा धन छीन लिया और उसे बैलों आदिपर लदवाकर द्वारकाके लिये चल पड़े। इसी बीच पुनः मगधराज (१८वीं बार) तेईस अक्षौहिणी सेना लेकर आ गया। श्रीकृष्ण और बलराम उससे बचकर निकल गये। किंतु जरासंध उनका पीछा करता रहा। दोनों भाई प्रवर्षण पर्वतकी ओटमें जा छिपे। जरासंधने उस पर्वतके चारों ओर आग लगा दी। उसने समझा कि श्रीकृष्ण-बलभद्र इस अग्निमें जलकर भस्म हो गये, पर वे सर्वात्मा सुरक्षित निकलकर द्वारका पहुँच गये। वहाँ सभी यदुवंशी स्वर्गीय सुखोंका उपभोग करने लगे।

इक्ष्वाकुकुलोत्पन्न रैवत नामके नरपतिकी सर्वशुभलक्षणोंसे सम्पन्न रेवती नामक एक परम सुन्दरी कन्या थी। उन्होंने अत्यन्त आदरपूर्वक उसका विवाह रोहिणीनन्दन श्रीबलरामजीसे कर दिया। बलरामजीने प्रसन्नतापूर्वक वैदिक-विधिसे रेवतीका पाणिग्रहण किया।

विदर्भराज धर्मात्मा भीष्मकके रुक्मी, रुक्मरथ, रुक्मबाहु, रुक्मकेश और रुक्ममाली नामक पाँच पुत्र एवं एक अत्यन्त रूपवती कन्या थी। वह लक्ष्मीके अंशसे उत्पन्न हुई थी। उसका नाम था 'रुक्मिणी'। भीष्मकका बड़ा पुत्र रुक्मी अपनी बहन रुक्मिणीका विवाह चेदिनरेश राजा दमघोषके पुत्र शिशुपालके साथ करना चाहता था; किंतु रुक्मिणीका बाल्यकालसे ही श्रीकृष्णके प्रति अनुराग था और वे उन्हें ही पतिरूपमें प्राप्त करना चाहती थीं।

रुक्मीके परामर्शसे महाराज भीष्मक जब रुक्मिणीके विवाहकी तैयारी करने लगे, तब रुक्मिणीने भगवान् श्रीकृष्णको अपना पति बनानेके उद्देश्यसे तुरंत अपने पुरोहितके पुत्रको द्वारका भेज दिया।

ब्राह्मण देवता द्वारकामें श्रीकृष्ण और बलरामसे मिले। उन्होंने ब्राह्मणका बड़ा ही स्वागत-सत्कार किया। फिर उनके मुखसे रुक्मिणीका संदेश प्राप्तकर श्रीकृष्णने अपने सारथि दारुकका स्मरण किया। वह भगवान्के दिव्य रथमें शैब्य, सुग्रीव, मेघपुष्प और बलाहक नामक चार घोड़े जोतकर ले आया। उसमें सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्र रखे थे। उक्त रथपर ब्राह्मणके साथ श्रीकृष्ण बैठे। दारुकने रथ पवन-वेगसे हाँका। उसके पीछे बलभद्रजी भी यदुवंशियोंकी सेनाके साथ कुण्डिनपुरके लिये शीघ्रतासे चल पड़े।

कुण्डिनपुरमें विवाहकी तैयारी हो रही थी। शिशुपाल अपने विवाहमें श्रीकृष्ण एवं यदुवंशियोंके विरोधी शाल्व, जरासंध, दन्तवक्त्र, विदूरथ और पौण्ड्रक आदि सहस्रों वीर मित्रोंको ससैन्य ले आया था।

विवाहके दिन भीष्मक-पुत्री रुक्मिणी बहुमूल्य वस्त्राभरणों-को धारणकर भगवती पार्वतीकी पूजाके लिये सखियोंके साथ

नगरके बाहर निकली। संध्याका समय था। श्रीकृष्ण वहाँ पहुँच गये और पार्वती-पूजनके उपरान्त जब रुक्मिणी अपने रथकी ओर चली, तब श्रीकृष्णने उन्हें बलपूर्वक अपने रथपर बैठा लिया और वे द्वारकाकी ओर चल दिये। यह देख जरासंध आदि राजाओंने रुक्मीके साथ चतुरङ्गिणी सेना लेकर श्रीकृष्णका पीछा किया।

तब बलरामजी अपने रथसे कूद पड़े और अपने हल तथा मूसलसे शत्रुओंकी सेनाका संहार करने लगे। कुछ ही देरमें समस्त शत्रु-सैन्यका विनाश हो गया। बचे-खुचे सैनिक प्राण बचाकर भाग खड़े हुए।

उधर रुक्मी श्रीकृष्णसे युद्ध कर रहा था। श्रीकृष्णने उसे पकड़कर उसीके दुपट्टेसे रथमें बाँध दिया और हँसते हुए तीक्ष्ण छुरेसे उसके सिरको मूँड़कर उसे छोड़ दिया। अपमानित होनेके कारण उसने अपनी राजधानीमें पैर नहीं रखा; एक नगर बसाकर अलग रहने लगा।

द्वारकामें पहुँचनेपर बड़ा आनन्दोत्सव मनाया गया तथा शुभ मुहूर्तमें वैदिक रीतिसे देवकीनन्दन श्रीकृष्णने रुक्मिणीका पाणिग्रहण किया। फिर पत्नीसहित श्रीकृष्णने ब्राह्मणों, राजाओं और बड़े भाई बलरामके चरणोंमें अत्यन्त आदर-पूर्वक शीश झुकाया। सबकी शुभकामना एवं आशीर्वाद प्राप्तकर भगवान् श्रीकृष्ण एक विशाल सुखमयी अट्टालिकामें आनन्दपूर्वक रहने लगे।

श्रीनिकेतन भगवान् श्रीकृष्णसे रुक्मिणीकी कोखसे उन्हींके तुल्य सौन्दर्य, वीर्य, सौशील्य आदि सद्गुणोंसे सम्पन्न कामदेवके अंश प्रद्युम्नजीका जन्म हुआ। प्रद्युम्नजी दस दिनके भी नहीं हुए थे कि उन्हें अपना मारनेवाला शत्रु समझकर शम्बरासुरने हरण कर लिया और सुदूर लवणसमुद्रकी उत्ताल तरंगोंमें फेंक दिया। वहाँ उन्हें एक मत्स्य निगल गया। उसे पकड़कर धीवरने शम्बरासुरको भेंट किया। वह मत्स्य उसके भोजनालयमें मायावती (जो मायाकी सम्पूर्ण विद्याओंसे परिचित रति ही थी) के पास पहुँचा। मत्स्यके चीरनेपर अत्यन्त रूपवान् शिशुको देखकर वह चकित हुई ही थी कि देवर्षि नारदने वहाँ पहुँचकर उनका परिचय देते हुए विश्वासपूर्वक पालन करनेके लिये कहा। मायावतीने उनका अत्यन्त प्रीतिपूर्वक पालन किया। नवयौवनसम्पन्न होनेपर मायावतीने उन्हें सारी स्थिति बताते हुए कहा—'नाथ! आप मेरे पति हैं और आपकी माता आपके बिना बड़ा क्लेश पाती होंगी।' फिर तो अत्यन्त कुपित होकर प्रद्युम्न शम्बर-से युद्ध करने लगे। उन्होंने शम्बरकी सात मायाओंको जीतकर स्वयं आठवींका प्रयोग किया तथा ससैन्य शम्बर-को मारकर अपनी अनुपम लावण्यवती पत्नी मायावतीके साथ विमानमें बैठकर द्वारकापुरी पहुँचे। इसी समय सर्वान्तर्यामी भगवान् श्रीकृष्णके साथ नारदजीने अन्तःपुरमें जाकर रुक्मिणीजीको उनके पुत्र और पुत्रवधूका वृत्तान्त सुना दिया। तब तो आनन्दनिमग्न होकर देवकीजी, वसुदेवजी, भगवान् श्रीकृष्ण, बलरामजी, रुक्मिणीजी तथा अन्य स्त्रियोंने नव-दम्पतिको हृदयसे लगा लिया। सर्वत्र प्रसन्नताकी लहर दौड़ पड़ी। मङ्गलवाद्य बजने लगे।

× × ×

सत्राजित्के तपसे प्रसन्न होकर भगवान् सूर्यदेवने उसे प्रतिदिन आठ भार स्वर्ण देनेवाली अत्यन्त प्रकाशित स्यमन्तक मणि दे दी थी। उस मणिको द्वारकाधीश श्रीकृष्णने महाराज उग्रसेनको देनेके लिये कहा तो उसने स्पष्ट अस्वीकार कर दिया।

एक दिन सत्राजित्का भाई प्रसेन उक्त स्यमन्तक मणिको अपने गलेमें धारणकर आखेटके लिये वनमें गया। वहाँ उसे घोड़ेसहित एक सिंहने मार डाला और उस मणिको छीन लिया। वह मणिसहित गुफामें प्रवेश करने ही जा रहा था कि ऋक्षराज जाम्बवान्ने उसे मार डाला और उक्त मणि उन्होंने गुफामें ले जाकर बच्चेको खेलनेके लिये दे दी।

'स्यमन्तकमणि लेनेके लिये सम्भवतः श्रीकृष्णने ही मेरे भाईको मार डाला है।' प्रसेनके न लौटनेपर, सत्राजित्के यह कहनेपर लोगोंमें कानाफूँसी होने लगी। तब अपना कलङ्क धोनेके लिये भगवान् श्रीकृष्ण कुछ यदुवंशियोंको साथ ले वनमें गये। वहाँ उन लोगोंने प्रसेन और उसके घोड़ेको मरा हुआ देखा तथा कुछ ही दूर आगे जानेपर पर्वतपर सिंहको मरा पाया। लोगोंको समझते देर न लगी कि सिंहने प्रसेन और घोड़ेको तथा बलवान् रीछने सिंहको मार डाला है।

भगवान् कृष्णने अपने साथी यदुवंशियोंको बाहर बैठा दिया और स्वयं एकाकी हाथमें शार्ङ्ग-धनुष और गदा लिये हुए अन्धकाराच्छन्न ऋक्षराजकी गुफामें प्रवेश किया। उक्त गुफामें अनेक मणियोंसे प्रकाशित अत्यन्त स्वच्छ भवन था। वहाँ एक धायने जाम्बवान्के पुत्रको पालनेमें सुलाकर उसके ऊपरी भागमें मणिको लटका दिया था और उक्त मनोहर

पालनेको धीरे-धीरे डुलाती हुई वह बालकको लोरियाँ सुना रही थी और गाते-गाते वह निम्नाङ्कित श्लोकका उच्चारण कर रही थी—

सिंहः प्रसेनमवधीत् सिंहो जाम्बवता हतः।
सुकुमारक मा रोदीस्तव ह्येष स्यमन्तकः॥
(पद्मपुराण, उ० ख० २७६ । १९)

'प्रसेनको सिंहने मारा और सिंह जाम्बवान्‌के हाथसे मारा गया है। सुन्दर कुमार! रोओ मत! यह स्यमन्तक मणि तुम्हारी ही है।'

इसी बीच अपरिचित पुरुषको देखकर धाय भयवश चिल्ला उठी। उसका चिल्लाना सुनकर जाम्बवान् बाहर निकले तो श्रीकृष्णको सर्वथा अपरिचित समझ क्रोधपूर्वक मारने दौड़े। फिर तो जाम्बवान् और वासुदेवमें युद्ध होने लगा। कई दिन बीत जानेपर जाम्बवान्‌की शक्तिका ह्रास होने लगा। उनके शरीरका प्रत्येक जोड़ टूटने लगा, तब उन्हें अपने प्रभु दशरथनन्दन श्रीरामके वचन स्मरण हो आये और उन्होंने समझ लिया कि 'पृथ्वीका भार उतारनेके लिये मेरे प्राणनाथ श्रीराम ही अवतरित हुए हैं और मेरा मनोरथ पूर्ण करनेके लिये यहाँ पधारे हैं।' तब पृथ्वीपर दण्डकी भाँति लोटकर श्रीभगवान्‌के चरणोंको पकड़कर ऋक्षराजने रोते हुए कहा—'प्रभो! मेरे पूर्वकालकी युद्धकी अभिलाषा आपने पूरी कर दी। मैं आपके पहले अवतारसे ही आपका भक्त हूँ। मैंने अनजानमें अपने स्वामीसे युद्ध किया, एतदर्थ आप मुझे कृपापूर्वक क्षमाप्रदान करें, दयामय स्वामी!'

जाम्बवान्‌ने इस प्रकार स्तुति कर प्रभुको रत्नमय सिंहासनपर बैठाया तथा अत्यन्त श्रद्धा-भक्तिपूर्वक उनकी विविध प्रकारसे पूजा की और फिर सदा प्रभुकी पूजाके लिये उन्होंने अपनी अत्यन्त लावण्यवती पुत्री जाम्बवतीसहित स्यमन्तक मणि भी उपहारमें दे दी।

गुफाके बाहर बारह दिनोंतक प्रतीक्षा करनेके बाद भगवान्‌के साथ आये यदुवंशी अत्यन्त दुःखी हो द्वारका लौटे। सभी द्वारकावासी अत्यन्त दुःखित होकर सत्राजित्‌की निन्दा करने लगे और अपने प्राणवल्लभ श्रीकृष्णके सकुशल लौट आनेके लिये देवाराधनमें लग गये। इसी बीच अपनी नवीन पत्नी जाम्बवतीके साथ स्यमन्तक मणि लिये श्रीकृष्ण भी लौट आये। फिर तो द्वारकावासियोंकी प्रसन्नताकी सीमा न रही। गोविन्दने मणि सत्राजित्‌को लौटा दी; किंतु सत्राजित् अत्यन्त लज्जित हो मुँह लटकाये घर लौटा। उसने अपने अपराधका मार्जन करनेके लिये शील-स्वभाव, सुन्दरता, उदारता आदि सद्गुणोंकी खान अपनी कन्या सत्यभामाके साथ स्यमन्तक मणि भी भगवान्‌को समर्पित कर दी। श्रीकृष्णने सत्यभामाका विधिपूर्वक पाणिग्रहण किया, किंतु स्यमन्तक मणि सत्राजित्‌को ही लौटा दी।

× × ×

सर्वज्ञ भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी कुन्तीसहित पाण्डवोंके जल मरनेके संवादसे व्यथित हो, कुलोचित व्यवहारका निर्वाह करनेके लिये, भीष्मपितामह, कृपाचार्य, विदुर, गान्धारी और द्रोणाचार्यसे मिलकर समवेदना और सहानुभूति प्रकट करनेके लिये, हस्तिनापुर पहुँचे और इधर उनकी अनुपस्थितिमें अक्रूर और कृतवर्माने शतधन्वाको पट्टी पढ़ाकर सत्राजित्‌की हत्या करा दी तथा शतधन्वाने उक्त स्यमन्तक मणि ले ली।

अपने पिताकी मृत देहको तेलके कड़ाहेमें रखवाकर रोती हुई सत्यभामा हस्तिनापुर पहुँची और श्रीभगवान्‌को अपने पिताकी हत्याका संवाद कह सुनाया। श्रीकृष्ण और बलराम तुरंत द्वारका लौट आये।

जब शतधन्वाको विदित हुआ कि श्रीकृष्ण मुझे मारना चाहते हैं, तब उसने कृतवर्मा और अक्रूरसे सहायताकी याचना की; किंतु उनकी ओरसे नैराश्यपूर्ण उत्तर सुनकर वह घोड़ेपर बैठ प्राण लेकर भागा। भगवान् श्रीकृष्ण और बलराम भी उसके पीछे लगे। मिथिलाके निकट एक उपवनके समीप शतधन्वाका अश्व गिर पड़ा, तब वह पैदल ही भागा। श्रीकृष्ण भी रथसे कूदकर पैदल ही उसके पीछे दौड़े और अपने तीक्ष्ण चक्रसे उसका सिर काट लिया। किंतु उसके पास भी मणि न पाकर उन्होंने लौटकर यह बात बलरामको बता दी। बलरामजी विदेहराज जनकसे मिलने चले गये और श्रीकृष्णको उन्होंने द्वारका लौटा दिया। इधर अक्रूर और कृतवर्मा भी भयवश द्वारकासे भाग गये थे।

श्रीभगवान्‌ने अपना दूत भेजकर अक्रूरको बुलवाया और उनका बड़ा स्वागत-सत्कार किया। फिर श्रीकृष्णने कहा—'चाचाजी! मैं जानता हूँ, स्यमन्तक मणि आपके पास है। यद्यपि अब उस मणिपर मेरे पुत्रोंका अधिकार होना चाहिये; फिर भी वह आपके ही पास रहे। बलरामजी, सत्यभामा और जाम्बवती आदि मेरी बातका विश्वास नहीं करते। आप केवल मणि इन लोगोंको दिखाकर इनका संदेह-निवारण कर दीजिये।'

श्रीभगवान्‌की वाणीसे आश्वस्त होकर अक्रूरजीने वस्त्रमें लपेटी सूर्यदीप्ति-तुल्य मणि निकालकर उन्हें दे दी। भगवान् श्रीकृष्णने उक्त मणिको अपने सभी यदुवंशियोंको दिखाकर अपना कलङ्क दूर कर दिया और समर्थ होनेपर भी उन्होंने अपने वचनके अनुसार उक्त स्यमन्तक मणि अक्रूरजीको लौटा दी।*

× × ×

पाण्डवोंके लाक्षाभवनसे सकुशल बच निकलनेका संवाद चारों ओर फैल गया था। अतएव भगवान् श्रीकृष्ण सात्यकि आदि यदुवंशियोंके साथ उनसे मिलने इन्द्रप्रस्थ पधारे। पाण्डवोंको जैसे नवजीवन मिल गया। माता कुन्तीने कहा—

न तेऽस्ति स्वपरभ्रान्तिर्विश्वस्य सुहृदात्मनः।
तथापि स्मरतां शश्वत् क्लेशान् हंसि हृदि स्थितः॥

(श्रीमद्भागवत १०। ५८। १०)

"मैं जानती हूँ कि तुम सम्पूर्ण जगत्‌के परम हितैषी ही नहीं, आत्मा हो। 'स्व' और 'पर'की भ्रान्ति तुम्हारे अंदर नहीं है। ऐसी बात होनेपर भी, श्रीकृष्ण! जो सदा तुम्हें स्मरण करते हैं, उनके हृदयमें आकर तुम बैठ जाते हो और उनकी क्लेश-परम्पराको सदाके लिये मिटा देते हो।"

कमल-लोचन श्रीकृष्ण इन्द्रप्रस्थवासियोंको कृतार्थ करते हुए वर्षाके चार मासतक वहीं रहे। एक दिन अर्जुन गाण्डीव धनुष और अक्षय तूणीर लिये श्रीकृष्णके साथ रथारूढ़ हो आखेटके लिये वनमें गये। वहाँ तृषाधिक्यके कारण यमुनामें जल पीने पहुँचे तो वहाँ कालिन्दीको श्रीकृष्ण-प्राप्तिके लिये तप करते देखा। कालिन्दीकी अतिशय प्रीति देखकर सर्वज्ञ श्रीकृष्ण उन्हें रथपर बैठाकर युधिष्ठिरके पास पहुँचे।

सर्वसमर्थ श्रीकृष्णने पाण्डवोंकी प्रत्येक सुख-सुविधाका ध्यान रखते हुए विश्वकर्माके द्वारा अत्यन्त उत्तम भवन बनवा दिया। अग्निदेवको खाण्डव-वनका आहार प्रदान किया और अर्जुनको गाण्डीव धनुष, चार श्वेत घोड़े, एक रथ, दो अक्षय बाणवाले तरकस तथा अभेद्य कवच प्रदान किया।

* भाद्रपद शुक्ला चतुर्थीको चन्द्र-दर्शनसे मिथ्या कलङ्क लगता है। अतएव उस दिन चन्द्र-दर्शन नहीं करना चाहिये और कदाचित् उस दिन चन्द्रमा दीख जाय तो इस स्यमन्तक मणिकी कथा सुननेसे दोष-निवारण हो जाता है।

कुछ दिनोंके बाद कंसारि श्रीकृष्ण सबकी अनुमतिसे द्वारका लौटे और वहाँ शुभ मुहूर्त्तमें सविधि कालिन्दीका पाणि-ग्रहण कर उन्हें कृतार्थ किया।

अवन्तीके राजा विन्द और अनुविन्दकी सुन्दरी बहन मित्रवृन्दा भगवान् श्रीकृष्णको हृदयसे अपना पति बनाना चाहती थीं; पर उनके भाई इसके विरुद्ध थे। भगवान् श्रीकृष्ण भरी राजसभामें राजाओंका मान-मर्दन करते हुए उनका हरण कर ले आये और उन्हें विधिपूर्वक अपनी पत्नी बना लिया।

कोसलनरेश नग्नजित्‌की पुत्री नाग्नजितीका सात दुर्जय बैलोंको एक साथ नाथकर विवाह किया। भगवान् श्रीकृष्णकी फूआ श्रुतकीर्तिके पुत्रोंने अपनी बहन भद्राका विवाह उनके साथ स्वयं कर दिया। मद्रप्रदेशके राजाकी अत्यन्त सुलक्षणा पुत्री लक्ष्मणाको भगवान् देवकीनन्दन अकेले ही स्वयंवरसे हर लाये।

× × ×

'पृथ्वीपुत्र भौमासुरने देवताओंको युद्धमें जीतकर वरुणका जल बरसानेवाला छत्र, मन्दराचलका मणिपर्वत-नामक शिखर—यहाँतक कि देवमाता अदितिके दो तेजस्वी कुण्डल भी छीनकर, देवता, सिद्ध, असुर और राजाओंकी कन्याओंको बलात्कारसे लाकर अपने अन्तः-पुरमें बंद कर रखा है। वह गगनमें विचरण करनेवाला आकाशमें ही नगर बसाकर उसके भीतर रहता है। उक्त नगर तीक्ष्ण छूरेकी धारा-सदृश पाशोंसे घिरा सर्वथा सुरक्षित है।' देवराज इन्द्रकी व्यथा-कथा सुनकर देव-देवेश्वर खड़े हो गये और उन्होंने देवताओंको अभयदान देकर विनतानन्दन गरुडका स्मरण किया।

सर्वदेववन्दित गरुड तुरंत प्रभु-चरणोंमें उपस्थित हुए। भगवान् श्रीकृष्णने सत्यभामासहित गरुडपर आसीन होकर, अत्यन्त वेगसे नरकासुरके नगर प्राग्ज्योतिषपुर पहुँचकर अपने चक्रसे उसके पाशोंको काट डाला। मुर-नामक राक्षस कुपित होकर सम्मुख आया तो एक ही झटकेमें मृत्युका ग्रास बन गया। फिर मुरके पुत्र ताम्र, अन्तरिक्ष, श्रवण, विभावसु, वसु, नभस्वान् और अरुणने अत्यन्त क्रुद्ध होकर पिताकी मृत्युका बदला लेनेके लिये पीठ-नामक दैत्यके सेनापतित्वमें सहस्रों दानवोंके साथ मुरारिपर आक्रमण कर दिया; पर वे क्षणार्द्धमें ही त्रैलोक्येश्वरके हाथों मुक्त हो

गये। फिर दैत्यदलका दलन करनेवाले प्रभुने प्राग्ज्योतिष-पुरमें प्रवेश किया। वहाँ नरकासुरने पूरी शक्तिसे श्रीकृष्णपर आक्रमण किया, पर प्रभुके चक्रने उसके दो टुकड़े कर दिये। उसके सहस्रों सैनिक काल-कवलित हुए। शेष प्राण बचाकर भाग गये। पुत्रकी मृत्यु हो जानेसे दुःखी पृथ्वीने प्रभुकी स्तुति करते हुए कहा—

यदाहमुद्धृता नाथ त्वया सूकरमूर्तिना।
त्वत्स्पर्शसम्भवः पुत्रस्तदायं मय्यजायत॥
सोऽयं त्वयैव दत्तो मे त्वयैव विनिपातितः।
गृहाण कुण्डले चेमे पालयास्य च संततिम्॥
प्रसीद सर्वभूतात्मन्नरकेण तु यत्कृतम्।
तत्क्षम्यतामदोषाय त्वत्सुतस्त्वन्निपातितः॥
(विष्णुपुराण ५। २९। २३-२४, २९)

'हे नाथ! जिस समय वराहरूप धारणकर आपने मेरा उद्धार किया था, उसी समय आपके स्पर्शसे मेरे यह पुत्र उत्पन्न हुआ था। इस प्रकार आपने ही मुझे यह पुत्र दिया था और अब आपने ही इसको नष्ट कर दिया; आप ये कुण्डल लीजिये और अब इसकी संतानकी रक्षा कीजिये। हे सर्वभूतात्मन्! आप प्रसन्न होइये और इस नरकासुरके सम्पूर्ण अपराध क्षमा कीजिये। निश्चय ही अपने पुत्रको निर्दोष करनेके लिये आपने उसे स्वयं मारा है।'

'तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो।'—कहकर भगवान् श्रीकृष्णने अन्तःपुरमें जाकर सोलह हजार एक सौ कन्याएँ देखीं। वे सब अपने उद्धारक श्यामसुन्दरके दिव्य सौन्दर्य एवं अलौकिक तेजसे प्रभावित होकर उन्हें अपना पति मान बैठीं। सर्वान्तर्यामी श्रीकृष्णने उन्हें पालकियोंपर ससम्मान द्वारका भिजवा दिया। इसके साथ ही नरकासुरकी अतुल सम्पत्ति, सहस्रों हाथी और घोड़े भी द्वारकाके लिये भेजकर भगवान्ने देवमाता अदितिके कुण्डल, वरुणका छत्र और मणिपर्वत गरुडकी पीठपर रखे और सत्यभामा-सहित स्वर्ग पहुँचे। वहाँ उन्होंने माता अदितिके चरणोंमें प्रणाम कर उनके कुण्डल दिये तो उन्होंने भगवान्की स्तुति करते हुए कहा—

यैः स्वधर्मपरैर्नाथ नरैराराधितो भवान्।
ते तरन्त्यखिलामेतां मायामात्मविमुक्तये॥
(विष्णुपुराण ५। ३०। १६)

'हे नाथ! जो स्वधर्मपरायण पुरुष आपकी आराधना करते हैं, वे अपने मोक्षके लिये इस सम्पूर्ण मायाको पार कर जाते हैं।'

फिर भगवान् श्रीकृष्ण—माता अदितिसे आशिष् प्राप्त कर, सत्यभामाके इच्छानुसार नन्दनवनसे पारिजात वृक्ष ले, गरुडपर रखकर द्वारकाके लिये चल पड़े। समाचार पाकर देवताओंसहित देवेन्द्र शस्त्र-सज्ज हो प्रभुसे युद्ध करने लगे, पर कुछ ही देरमें पराजित होकर उन्हें लौट जाना पड़ा।

द्वारका लौटकर भगवान्ने पारिजात महावृक्षको सत्यभामाके गृहोद्यानमें लगा दिया और शुभ मुहूर्त्तमें नरकासुरके बन्धनसे मुक्त सोलह हजार एक सौ कन्याओंसे उतने ही रूप धारणकर विधिपूर्वक विवाह किया। जगत्स्रष्टा विश्वरूपधारी श्रीकृष्ण रात्रिमें उन सभी महिमामयी भाग्यशालिनी पत्नियोंके साथ रहकर उन्हें अलौकिक सुख प्रदान करते थे।

× × ×

भक्तवर बलिका सबसे बड़ा पुत्र सहस्रबाहु बाणासुर अत्यन्त सुन्दर नगर शोणितपुरमें राज्य करता था। उसकी पुत्री ऊषा एक दिन स्वप्नमें श्रीकृष्णके परम सुन्दर पौत्र प्रद्युम्नकुमार अनिरुद्धका दर्शन कर उनपर मोहित हो व्याकुल हो गयी। बाणासुरके मन्त्री कुम्भाण्डकी प्रिय पुत्री, चित्रकलामें सुपटु ऊषा-सहचरी चित्ररेखाने चित्रोंके माध्यमसे ऊषाके प्रियतमको पहचान लिया और योगविद्यामें निपुण होनेके कारण वह द्वारकासे रात्रिमें अनिरुद्धको ले आयी। इस प्रकार अनिरुद्ध ऊषाके अन्तःपुरमें उसकी प्रेमपूर्ण सेवासे प्रसन्न होकर रहने लगे।

कुछ समय बाद जब यह संवाद बाणासुरको मिला, तब क्रोधसे उसके नेत्र लाल हो गये। उसकी भेजी गयी सेना अनिरुद्धसे पराजित हो गयी तो उसने स्वयं जाकर उन्हें नागपाशसे बाँध लिया। यह संवाद नारदजीने श्रीकृष्ण और बलरामके पास पहुँचा दिया।

फिर तो गरुडपर आरूढ़ हो श्रीकृष्ण और बलभद्र यदुवंशियोंसहित अत्यन्त शीघ्रतासे शोणितपुर पहुँच गये। भयानक युद्ध छिड़ा। पूर्वकालमें बाणके तपसे संतुष्ट होकर पार्वतीवल्लभ आशुतोष शिवने उसकी रक्षाका वरदान दे दिया था, इस कारण वे स्वयं उपस्थित होकर युद्ध करने

लगे; किंतु केशवके जृम्भणास्त्रसे जँभाई लेते हुए रथमें एक ओर सो गये। फिर भगवान् श्रीकृष्णने चक्रसे बाणासुरकी भुजाओंका वन काट डाला। जब केवल दो भुजाएँ शेष रह गयीं, तब महामहेश्वरने श्रीकृष्णसे प्रार्थना की—

अस्मत्संश्रयदृप्तोऽयं नापराधी तवाव्यय।
मया दत्तवरो दैत्यस्ततस्त्वां क्षमयाम्यहम्॥
(विष्णुपुराण ५।३३।४४)

'हे अव्यय! यह आपका अपराधी नहीं है; यह तो मेरा आश्रय पानेसे ही इतना गर्वीला हो गया है। इस दैत्यको मैंने ही वर दिया था, इसलिये मैं ही आपसे इसको क्षमा दिलाता हूँ।'

'आपने वर दिया है, तब यह अवश्य जीवित रहे।' भगवान् श्रीकृष्णने त्रिनयनसे अत्यन्त आत्मीयता एवं प्रीतिपूर्वक कहा। 'आपकी वाणीकी रक्षाके लिये मैं चक्रको रोक ले रहा हूँ। इसे आपने अभय दिया है, वह सब मैंने भी दिया।' फिर श्रीकृष्णने वृषभध्वजसे कहा—

योऽहं स त्वं जगच्चेदं सदेवासुरमानुषम्।
मत्तो नान्यदशेषं यत्तत्त्वं ज्ञातुमिहार्हसि॥
(विष्णुपुराण ५।३३।४८)

'आप यह भली प्रकार समझ लें कि जो मैं हूँ, वह आप हैं तथा देव, असुर और मनुष्योंसहित यह सम्पूर्ण जगत् मुझसे भिन्न नहीं है।'

नीलकण्ठ विदा हुए। तदनन्तर बाणासुरने भगवान्‌के चरणोंमें प्रणाम कर अनिरुद्धको बन्धनमुक्त करके उनकी वस्त्राभरणोंसे पूजा की और उन्हें अपनी प्राणप्रिय पुत्री ऊषाका दान कर दिया। फिर प्रसन्नतापूर्वक भगवान् श्रीकृष्ण, हलायुध, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध और ऊषा तथा सारी यदुवंशी सेना द्वारका लौटी। द्वारकामें आनन्दोत्सव मनाया जाने लगा।

× × ×

एक दिन साम्ब, प्रद्युम्न, चारुभानु और गद आदि यदुवंशियोंके मुखसे कूपमें पड़े पर्वततुल्य विशाल गिरगिटकी चर्चा सुनी तो जगदुद्धारक श्रीकृष्ण वहाँ पहुँचे। उन्होंने तुरंत गिरगिटको पकड़नेके लिये उसका स्पर्श किया ही था कि वह तेजस्वी स्वर्गीय देवतातुल्य हो गया। उसने श्रीकृष्णके चरणोंमें प्रणाम कर बताया कि 'प्रभो! भूलसे ब्राह्मणको दान की हुई एक गाय दूसरे ब्राह्मणके दानरूपमें देनेसे मेरी यह दुर्गति हुई थी। अब आपके परम पावन कर-कमलोंके स्पर्शसे मेरे सारे पाप-ताप मिट गये। मैं धन्य हो गया।'

परम धर्मात्मा एवं महादानी इक्ष्वाकुनन्दन राजा नृगने देवदेवेश्वर श्रीकृष्णके चरण-कमलोंकी बार-बार वन्दना की एवं उनके आदेशसे श्रेष्ठ विमानमें बैठ गये।

'ब्राह्मणोंका सदा सम्मान करो।' श्रीकृष्णने यदुवंशियोंको समझाया। 'ब्राह्मणोंका धन कभी भूलसे भी मेरे कोषमें न आये; क्योंकि जो लोग ब्राह्मणोंके धनकी इच्छा करते हैं—उसे छीननेकी बात तो अलग रही—वे इस जन्ममें अल्पायु, शत्रुओंसे पराजित और राज्यभ्रष्ट होते हैं और मृत्युके बाद भी वे दूसरोंको कष्ट देनेवाले सर्प होते हैं।' यदुवंशियोंको इस प्रकार उपदेश दे भगवान् अपने महलमें चले गये

× × ×

'भगवान् वासुदेव मैं हूँ।' अज्ञानी करूषनरेश पौण्ड्रक लोगोंके बहकानेसे अपनेको श्रीभगवान्‌का अवतार समझने लगा था। उसने श्रीकृष्णके पास संदेश भेजा—''मैंने जगत्‌की रक्षाके लिये पृथ्वीपर अवतार लिया है। तुम अपना मिथ्या 'वासुदेव' नाम त्याग मेरी शरण आ जाओ, अन्यथा युद्ध करो।''

उस समय पौण्ड्रक काशिराजके पास था। निखिल-सृष्टिनायक काशी पहुँचे। फिर तो पौण्ड्रक दो अक्षौहिणी सेनाके साथ श्रीकृष्णसे युद्ध करनेके लिये डट गया और उसके मित्र काशिराज भी तीन अक्षौहिणी सेनाके साथ उसके सहायतार्थ आ पहुँचे।

पौण्ड्रकने भगवान् विष्णुकी तरह पीताम्बर धारण कर रखा था। शङ्ख, चक्र, तलवार, गदा, शार्ङ्गधनुष और श्रीवत्सचिह्न भी उसने धारण किये थे। उसके वक्षःस्थलपर कृत्रिम कौस्तुभमणि और कण्ठमें वनमाला थी। रथकी ध्वजापर गरुडका चिह्न और मस्तकपर बहुमूल्य मुकुट और कानोंमें मकराकृत कुण्डल जगमगा रहे थे।

यह देखकर भगवान् श्रीकृष्णको हँसी आ गयी। युद्ध छिड़ा। कुछ ही देरमें पौण्ड्रक और काशिराजकी विशाल वाहिनी तहस-नहस हो गयी। भगवान्‌ने अपने तीक्ष्ण शरोंसे पौण्ड्रकके रथको तोड़-फोड़ डाला और चक्रसे उसका मस्तक काट दिया और एक ही बाणसे काशिराजका

सिर धड़से ऊपर उड़ाकर उनके अन्तःपुरमें गिरा दिया, जिसे देखकर काशी-निवासी अत्यन्त विस्मयमें पड़ गये।

इस प्रकार अपनेसे द्वेष रखनेवाले पौण्ड्रक एवं काशिराजको मुक्ति प्रदान कर भगवान् श्रीकृष्ण द्वारका लौट गये।

× × ×

जरासंधके बंदीगृहमें पड़े हुए बीस सहस्र दुःखी नरेशोंकी दूतके मुखसे मुक्तिकी प्रार्थना सुनते ही पुण्डरीकाक्ष श्रीकृष्ण पत्नियोंसहित इन्द्रप्रस्थके लिये प्रस्थित हुए। पाण्डवोंने अपने प्राणाधार वसुदेवकुमारके स्वागतमें पलक-पाँवड़े बिछा दिये। उनके आनन्दकी सीमा न रही। प्रार्थना करते हुए धर्मराज युधिष्ठिरने कहा—

त्वत्पादुके अविरतं परि ये चरन्ति
ध्यायन्त्यभद्रनशने शुचयो गृणन्ति।
विन्दन्ति ते कमलनाभ भवापवर्ग-
माशासते यदि त आशिष ईश नान्ये॥
(श्रीमद्भागवत० १०। ७२। ४)

'कमलनाभ! आपके चरण-कमलोंकी पादुकाएँ समस्त अमङ्गलोंको नष्ट करनेवाली हैं। जो लोग निरन्तर उनकी सेवा करते हैं, ध्यान और स्तुति करते हैं, वास्तवमें वे ही पवित्रात्मा हैं। वे जन्म-मृत्युके चक्करसे छुटकारा पा जाते हैं और यदि वे सांसारिक विषयोंकी अभिलाषा करें तो उन्हें उनकी भी प्राप्ति हो जाती है। परंतु जो आपके चरण-कमलोंकी शरण ग्रहण नहीं करते, उन्हें मुक्ति तो मिलती ही नहीं, सांसारिक भोग भी नहीं मिलते।'

फिर भगवान्के परामर्शसे महान् राजसूय-यज्ञका निर्णय हुआ और महाराज युधिष्ठिरने अपने भाइयोंको दिग्विजयका आदेश दिया। स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन और भीमके साथ ब्राह्मणोंके वेषमें जरासंधकी राजधानी गिरिव्रज पहुँचे। इस त्रिमूर्तिको देखकर जरासंधने प्रणामके अनन्तर इनकी पूजा करके कहा—'द्विजवरो! आपलोगोंने किस कारणसे पधारनेका कष्ट किया है? आज्ञा दें। मैं अवश्य आपकी अभिलाषा पूरी करूँगा।'

सम्पूर्ण चराचरके वन्दनीय श्रीभगवान् बोले—'राजन्! हम क्रमशः कृष्ण, अर्जुन और भीम हैं। तुम हम तीनोंमें किसी एकके साथ द्वन्द्व-युद्ध स्वीकार करो।'

'अच्छी बात है।' जरासंधने कहा और उसने भीमके साथ युद्ध स्वीकार किया। सत्ताईस दिनोंतक युद्ध चलता रहा। अन्ततः भगवान्के संकेतसे भीमने जरासंधको चीरकर दो टुकड़े कर दिया।

फिर तो भगवान्ने बंदी नरपतियोंको मुक्तकर जरासंधनन्दन सहदेवके द्वारा उनको वस्त्राभूषणोंसे सम्मानित किया। मुक्त नरेशोंने श्रीभगवान्के चरणोंमें प्रणाम कर उनकी स्तुति की और उनसे भक्तिका वरदान प्राप्तकर अपनी-अपनी राजधानियोंके लिये चले गये।

इसके अनन्तर जगदाधार श्रीकृष्ण इन्द्रप्रस्थ पहुँचे। वहाँ राजसूय-यज्ञका आयोजन हुआ। अग्रपूजा किसकी होनी चाहिये, इसपर अधिक देरतक विचार-विमर्श होते देखकर श्रीभगवान्की महिमा और उनके प्रभावसे परिचित सहदेवने कहा—

विविधानीह कर्माणि जनयन् यदवेक्षया।
ईहते यदयं सर्वः श्रेयो धर्मादिलक्षणम्॥
तस्मात् कृष्णाय महते दीयतां परमार्हणम्।
एवं चेत् सर्वभूतानामात्मनश्चार्हणं भवेत्॥
(श्रीमद्भागवत १०। ७४। २२-२३)

'सारा जगत् श्रीकृष्णके ही अनुग्रहसे अनेकों प्रकारके कर्मका अनुष्ठान करता हुआ धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप पुरुषार्थोंका सम्पादन करता है। इसलिये सबसे महान् भगवान् श्रीकृष्णकी ही अग्रपूजा होनी चाहिये। इनकी पूजा करनेसे समस्त प्राणियोंकी तथा अपनी भी पूजा हो जाती है।'

'सर्वोत्तम!' सभी सभासदोंके उच्चघोषसे प्रेमोद्रेकसे विह्वल धर्मराज युधिष्ठिरने भगवान् श्रीकृष्णके जगद्वन्द्य, सुर-मुनि-पूजित, परम दुर्लभ, पावनतम चरण-कमलोंको पखारकर चरणोदकका पान किया, उसे मस्तकपर चढ़ाया और अपने नेत्रोंमें लगाया तथा प्रेमानन्दपूरित हृदयसे पीताम्बरादि बहुमूल्य वस्त्राभूषणोंसे श्रीभगवान्की पूजा कर वे 'आपकी जय हो! आपकी जय हो!' का उच्चघोष करने लगे। आकाशसे विविध रंगोंके सुमनोहर सुगन्धित पुष्पोंकी वर्षा होने लगी।

यह देखकर शिशुपाल जल उठा! उसने सर्वशक्ति-सम्पन्न, महामहिम श्रीभगवान्के लिये अपशब्दोंका प्रयोग करना प्रारम्भ किया। श्रीकृष्ण कुछ देर तो उसके दुर्वचन

सहते रहे; किंतु अन्तमें उन्होंने सुदर्शन चक्रसे उसका मस्तक उतार लिया । शिशुपालके शरीरसे एक ज्योति निकलकर श्रीभगवान्‌में समा गयी ।

शिशुपालकी सद्गतिके अनन्तर महाराज- युधिष्ठिरने विधिपूर्वक यज्ञ सम्पन्नकर अवभृथ-स्नान किया ।

भगवान् श्रीकृष्ण इन्द्रप्रस्थसे द्वारका पहुँचे तो उन्होंने देखा कि शिशुपाल-सखा शाल्वने अपने अद्भुत विमान सौभपर आरूढ़ होकर सम्पूर्ण द्वारकापुरीको त्रस्त कर रखा है । प्रद्युम्न सात्यकि, चारुदेष्ण, साम्ब, भाइयोंके साथ अक्रूर, कृतवर्मा, भानुविन्द, गद, शुक, सारण आदि बहुत-से वीर यदुवंशियोंके साथ शाल्वसे घमासान भयंकर युद्ध कर रहे थे; किंतु मायावी शाल्वके सामने वे उसके सैनिकोंका तो संहार करते जा रहे थे, पर स्वयं शाल्व मायासे बच जाता । यदुवंशी पीड़ित थे । मायापति श्रीहरिने शाल्वकी माया नष्ट कर दी । उनके आयुधोंकी दुस्सह चोटसे शाल्वका विमान खण्ड-खण्ड होकर समुद्रमें जा गिरा, पर शाल्व गदा लेकर श्रीकृष्णके सम्मुख आ डटा । दयामयने देर करना उचित नहीं समझा और अपने परम तेजस्वी सुदर्शन चक्रसे धृष्ट शाल्वका मस्तक उतार लिया ।

अपने मित्र शिशुपाल, शाल्व और पौण्ड्रकके वधका संवाद पाकर हाथमें वज्रतुल्य गदा लिये दन्तवक्त्र एकाकी कंसनिषूदनसे बदला लेने पैदल ही चला । मुरारि भी कौमोदकी गदा लेकर डट गये । दन्तवक्त्रके भयानक गदाघातको सहकर अविचलित रहे मधुसूदन और जब उन्होंने बदलेमें उसके वक्षपर अपनी कौमोदकीका भीषण प्रहार किया, तब उसका वक्ष चूर्ण-विचूर्ण हो गया, उसकी आँखें उलट गयीं और रक्त-वमन करता हुआ वह कालके गालमें प्रवेश कर गया । शिशुपालके ही समान दन्तवक्त्रके मृत शरीरसे अत्यन्त सूक्ष्म ज्योति निकलकर देवकीनन्दनमें समा गयी ।

दन्तवक्त्रकी मृत्युका संवाद पाकर उसका भाई विदूरथ अत्यन्त कुपित हो तलवार हाथमें लेकर श्रीकृष्णके पास आ गया । वह श्रीकृष्णपर प्रहार करना ही चाहता था कि उन्होंने अपने चक्रसे उसका मस्तक उतारकर उसे अपने दुर्लभ धाममें भेज दिया ।

इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णने शाल्व, उसके अद्भुत विमान सौभ, दन्तवक्त्र और उसके भाई दुर्जय विदूरथको मारकर द्वारकापुरीमें प्रवेश किया । द्वारकामें सर्वत्र आनन्द-मङ्गल मनाया जाने लगा । भगवान् द्वारकावासियोंको नित्य-नूतन सुख प्रदान करते रहे ।

× × ×

श्रीकृष्ण और बलभद्रके सहपाठी, बालसखा, ब्रह्मज्ञानी, विषयोंसे विरक्त, शान्तचित्त और जितेन्द्रिय सुदामा-नामक दरिद्र ब्राह्मण अपनी साध्वी पत्नीके अनुरोधसे भगवान् श्रीकृष्णसे मिलने द्वारका पहुँचे । श्रीहरिने देखते ही अतिशय प्रीतिसे गले लगा लिया उन्हें । श्रीभगवान्‌के नेत्रोंसे प्रेमके अश्रु बहने लगे । उन्होंने अपने मित्रको अपने दिव्य एवं अनुपम रत्नजटित सिंहासनपर बैठाकर उनके पाँव पखारे और चरणोदक अपने माथेपर चढ़ाया । भगवती रुक्मिणीने चँवर डुलाया । श्रीभगवान्‌ने विविध प्रकारके दुर्लभ व्यञ्जनोंका ब्राह्मणदेवको भोजन कराया, रसमय ताम्बूल दिया और अपने दुर्लभ पर्यङ्कपर लिटाकर उनके चरण दबाये ।

भक्तवाञ्छा-कल्पतरु, शरणागतवत्सल श्रीकृष्णकी ब्राह्मण-भक्ति देखकर सुदामा मन-ही-मन उनकी प्रशंसा करने लगे । दूसरे दिन प्रेममूर्ति श्रीहरिने सुदामासे घरसे लाये हुए किसी उपहारकी याचना की । सुदामाने संकोचसे सिर झुका लिया; किंतु भिक्षाके रूपमें माँगकर लाये गये चार मुट्ठी चिउड़ोंकी पोटली श्रीहरिने उनके बगलसे छीन ली ।

नन्वेतदुपनीतं मे परमप्रीणनं सखे ।
तर्पयन्त्यङ्ग मां विश्वमेते पृथुकतण्डुलाः ॥
(श्रीमद्भागवत १० । ८१ । ९)

और बड़े आदरसे कहने लगे—'प्यारे मित्र ! यह तो तुम मेरे लिये अत्यन्त प्रिय भेंट लाये हो । ये चिउड़े न केवल मुझे, बल्कि सारे संसारको तृप्त करनेके लिये पर्याप्त हैं ।'

यह कहकर विश्वात्मा प्रभुने एक मुट्ठी चिउड़ा अपने मुखारविन्दमें रख लिया और उसकी अत्यन्त प्रशंसा करने लगे । वे दूसरी मुट्ठी उठाने ही जा रहे थे कि रुक्मिणीरूपा श्रीलक्ष्मीने उनके कर-पल्लवोंको पकड़कर रोक दिया । बोलीं—'मनुष्यको इस लोक तथा परलोकमें सम्पूर्ण सम्पत्तियाँ दिलानेके लिये यह एक मुट्ठी चिउड़ा ही बहुत है । आप तो इतनेसे ही परम प्रसन्न हो जाते हैं ।'

दूसरे दिन भगवान्‌से विदा होकर जब सुदामा रिक्तहस्त घरके लिये चले, तब उन्होंने श्रीभगवान्‌की बड़ी कृपा समझी । वे प्रभुकी ब्राह्मण-भक्ति, उनकी प्रीति एवं उनके स्वभावकी

मन-ही-मन सराहना करते हुए अपने घरके पास पहुँच गये। वहाँ वे द्वारका-जैसी ही दूसरी स्वर्गीय नगरी और उसका वैभव देखकर विस्मित हो गये। बहुमूल्य वस्त्र एवं स्वर्णाभरणोंसे अलंकृत उनकी पत्नीने उनकी आरती उतारी और अत्यन्त सुखद महलमें ले गयी, तब वे गद्गद होकर बोले—

तस्यैव मे सौहृदसख्यमैत्री दास्यं पुनर्जन्मनि जन्मनि स्यात्।
महानुभावेन गुणालयेन विषज्जतस्तत्पुरुषप्रसङ्गः॥
(श्रीमद्भागवत १०। ८१। ३६)

'मुझे जन्म-जन्ममें उन्हींका प्रेम, उन्हींकी हितैषिता, उन्हींकी मित्रता और उन्हींकी सेवा प्राप्त हो। मुझे सम्पत्तिकी आवश्यकता नहीं, सदा-सर्वदा उन्हीं गुणोंके एकमात्र निवासस्थान महानुभाव भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें मेरा अनुराग बढ़ता जाय और उन्हींके प्रेमी भक्तोंका सत्सङ्ग प्राप्त हो।'

इस प्रकार अपनी बुद्धिसे निश्चय कर सुदामा ब्राह्मण त्यागपूर्वक अनासक्तभावसे सर्वात्मा, सर्वसुहृद्, भक्त-प्राणधन, ब्राह्मणभक्त श्रीकृष्णके ध्यानमें तल्लीन हो गये। जीवनके दिन पूरे हो जानेपर अन्तमें सुदामाने संतोंके एकमात्र आश्रय भगवद्धामको प्राप्त कर लिया।

पाण्डवोंके तो प्राण और सर्वस्व ही श्रीकृष्ण थे। प्रत्येक विपत्तिमें श्रीकृष्ण उनके सहायक थे। द्यूतमें पराजित विवश पाण्डवोंकी पत्नी द्रौपदीको निर्वस्त्र करनेके लिये दुष्ट दुश्शासनने अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा दी, तब आपने वस्त्रावतार धारणकर उनकी लाज बचायी। दुर्योधनने महर्षि दुर्वासाको वनमें पाण्डवोंका सर्वनाश करनेके लिये भेजा था, किंतु शाकका एक पत्ता ग्रहणकर विश्वात्मा श्रीकृष्णने विश्वको तृप्त कर दिया और इस प्रकार महर्षिको भयभीत होकर भागनेके लिये विवश कर दिया। प्रेमपरवश वनमाली विदुरके घर केलेके छिलकोंको खाकर लक्ष्मीके परोसे अमृतमय व्यञ्जनोंको भूल गये। वे पाण्डवोंके संधि-दूत ही नहीं बने, युद्धमें अर्जुनके सारथि भी हुए और गीताका ज्ञान प्रदान कर उनमें नवीन प्रेरणा एवं शक्ति भर दी। पितामह भीष्मकी प्रतिज्ञाकी रक्षाके लिये अपनी प्रतिज्ञा भङ्गकर शस्त्र उठा लिया और विरोधियोंके अमोघ अस्त्रोंसे अनेक बार पाण्डवोंकी रक्षा की। पाण्डव विजयी हुए। युधिष्ठिर राजा बने। उनका एकमात्र वंशधर अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रसे मृत्युमुखमें चला ही गया था, यदि उनके सर्वस्व श्रीकृष्णने उसकी रक्षा न की होती।

पृथ्वीके भारभूत राजाओंका वध करनेके अनन्तर श्रीभगवान्‌ने अमित बल-वैभवसे उन्मत्त यदुकुलका भी संहार ही उचित समझा। महर्षि कण्वका शाप निमित्त बना और सम्पूर्ण यदुवंशी परस्पर लौहमय सरकण्डोंसे युद्ध कर मर मिटे।

फिर तो श्रीभगवान्‌का सुग्रीव-पुष्पक (अथवा मेघवपु) नामक रथ घोड़ोंसे आकृष्ट हो दारुकके देखते-देखते समुद्रके मध्यमार्गसे चला गया। इसके अनन्तर कमललोचन पद्मनाभके शङ्ख, चक्र, गदा, शार्ङ्गधनुष, तूणीर और खड्ग आदि दिव्य आयुध उनकी परिक्रमा कर सूर्य-पथसे चले गये।

इस प्रकार सबका संहार कर भगवान् श्रीकृष्ण घुटनेपर अपना एक पैर रखे अनेक लताओंसे आवृत कल्पवृक्षकी छायामें लेटे हुए मर्त्यधाम छोड़नेका विचार कर ही रहे थे कि जरा-नामक व्याधने दूरसे श्रीभगवान्‌के सुकोमल चरण-कमलको मृग समझकर अपना तीक्ष्ण शर छोड़ दिया। व्याध पास पहुँचकर क्या देखता है कि वहाँ देवोपम चतुर्भुज पुरुषके सुकोमल अरुण चरणसे रक्त प्रवाहित हो रहा है। भयाक्रान्त व्याध काँपता हुआ अपने अपराधके लिये क्षमा-याचना करने लगा।

कमलनयन श्रीकृष्णने व्याधको निर्भय ही नहीं किया, उनकी प्रेरणासे आकाशसे एक विमान उतरा और दयानिधान श्रीकृष्णने उसी समय उस व्याधको उस विमानमें बैठाकर स्वर्ग भेज दिया।

तदनन्तर निखिल सृष्टिके स्वामी, सर्वव्यापी, सर्वेश्वर, करुणा-वरुणालय, भक्त-प्राणधन, परब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण अपने नित्यधाम गोलोकके लिये प्रस्थित हो गये।

'ऐश्वर्य, धर्म, यश, शोभा, ज्ञान और वैराग्य—सबसे पूर्ण, पूर्णपुरुष, लीलावतार श्रीकृष्णने मुक्तिका द्वार खोल रखा था। आविर्भावसे लीला-संवरणतक उन्मुक्तहस्तसे उन करुणामयने मोक्ष-वितरण किया। पुण्यात्मा, महात्मा और भक्त ही नहीं, तृण-लता-गुल्म-पादप, सर-सरिता-सागर, रजःकण, चर-अचर और अत्यन्त पापात्मा और दुरात्मातक, जिन्होंने उन भुवनपावन करुणामय दाताका दर्शन, उनका स्पर्श, उनका वन्दन एवं उनसे सम्भाषण ही नहीं किया, जिन्होंने उन यशोदानन्दनसे वैर, उनसे युद्ध किया, उन्हें अपना शत्रु समझकर उन्हें मार डालना चाहा—जिन्होंने उन समदर्शी श्यामसुन्दरको प्यार किया, जो उनकी विरहाग्निमें तिल-तिल जलते रहे, उनकी तो बात ही क्या

जिन्होंने उन वनमालीको कठोर दुर्वचन कहे—सब-के-सब उस परमानन्दसिन्धुके अनुग्रहसे परमानन्दसिन्धुमें ही सदाके लिये निमज्जित हो गये। उनका कालपाश सदाके लिये छिन्न हो गया।

धन्य थे वे गोप, गोप-कुमार, गोप-वधुएँ और गोप-कन्यकाएँ, नन्द-यशोदा, गौएँ, गो-वत्स, वृन्दावन, मथुरा, गिरिराज, वसुदेव-देवकी, कुब्जा, सम्पूर्ण यदुवंशी और कंस, जरासंध, शिशुपाल, शाल्व और विदूरथ आदि असंख्य स्वेच्छाचारी, क्रूरकर्मी असुर, जिन्हें अखिलात्मा श्रीहरिके निरन्तर स्मरण, चिन्तन, दर्शन एवं उनकी क्षणिक संनिधिका भी परम पुण्यमय अवसर प्राप्त हो गया; वे निहाल हो गये। उनका जीवन-जन्म सफल हो गया।

श्रीसूतजीने शौनकादि ऋषियोंसे कहा था—

य इदमनुशृणोति श्रावयेद् वा मुरारे-
श्चरितममृतकीर्तेर्वर्णितं व्यासपुत्रैः।
जगदघभिदलं तद्भक्तसत्कर्णपूरं
भगवति कृतचित्तो याति तत्क्षेमधाम॥

(श्रीमद्भागवत १०। ८५। ५९)

'भगवान् श्रीकृष्णकी कीर्ति अमर है, अमृतमयी है। उनका चरित्र जगत्के समस्त पाप-तापोंको छिन्न-भिन्न करनेवाला तथा भक्तजनोंके कर्णकुहरोंमें आनन्द-सुधा प्रवाहित करनेवाला है। इसका वर्णन स्वयं व्यासनन्दन भगवान् श्रीशुकदेवजीने किया है। जो इसका श्रवण करता है अथवा दूसरेको सुनाता है, उसकी सम्पूर्ण चित्तवृत्ति भगवान्में लग जाती है और वह उन्हींके परम कल्याणस्वरूप धामको प्राप्त होता है।'

—शि० दु०

[२३]

भगवान् बुद्ध

प्रख्यात बौद्ध-धर्मके प्रवर्तक महाराज शुद्धोदनके यशस्वी पुत्र गौतम बुद्धके रूपमें ही श्रीभगवान् अवतरित हुए थे, यह विवादका विषय है। पुराणवर्णित भगवान् बुद्धदेवका प्राकट्य गयाके समीप कीकट देशमें हुआ था। उनके पुण्यात्मा पिताका नाम 'अजन' बताया गया है। यह प्रसङ्ग पुराणवर्णित बुद्धावतारका ही है।

दैत्योंकी शक्ति बढ़ गयी थी। उनके सम्मुख देवता टिक नहीं सके, दैत्योंके भयसे प्राण लेकर भागे। दैत्योंने देव-धाम स्वर्गपर अधिकार कर लिया। वे स्वच्छन्द होकर देवताओंके वैभवका उपभोग करने लगे; किंतु उन्हें प्रायः चिन्ता बनी रहती थी कि पता नहीं, कब देवगण समर्थ होकर पुनः स्वर्ग छीन लें। सुस्थिर साम्राज्यकी कामनासे दैत्योंने सुराधिप इन्द्रका पता लगाया और उनसे पूछा—'हमारा अखण्ड साम्राज्य स्थिर रहे, इसका उपाय बताइये।'

देवाधिप इन्द्रने शुद्ध भावसे उत्तर दिया—'सुस्थिर शासनके लिये यज्ञ एवं वेदविहित आचरण आवश्यक है।'

दैत्योंने वैदिक आचरण एवं महायज्ञका अनुष्ठान प्रारम्भ किया। फलतः उनकी शक्ति उत्तरोत्तर बढ़ने लगी। स्वभावसे ही उद्दण्ड और निरङ्कुश दैत्योंका उपद्रव बढ़ा। जगत्में आसुर-भावका प्रसार होने लगा।

असहाय और निरुपाय दुःखी देवगण जगत्पति श्रीविष्णुके पास गये। उनसे करुण प्रार्थना की। श्रीभगवान्ने उन्हें आश्वासन दिया।

श्रीभगवान्ने बुद्धका रूप धारण किया। उनकी वेष-भूषा अत्यन्त मलिन थी। वे स्नान नहीं करते थे। दाँततक नहीं साफ करते थे। उनके कथनानुसार इन क्रियाओंसे हिंसा होती थी। उनके हाथमें मार्जनी थी और वे मार्गको बुहारते हुए उसपर चरण रखते थे।

इस प्रकार अत्यन्त अपवित्र वेषमें भगवान् बुद्ध दैत्योंके समीप पहुँचे और उन्होंने उन्हें उपदेश दिया—'यज्ञ करना पाप है। यज्ञसे जीवहिंसा होती है। यज्ञकी प्रज्वलित अग्निमें ही कितने जीव भस्म हो जाते हैं। देखो, मैं जीवहिंसासे बचनेके लिये कितना प्रयत्नशील रहता हूँ। पहले झाड़ू लगाकर पथ स्वच्छ करता हूँ, तब उसपर पैर रखता हूँ।'

अत्यन्त मलिन एवं अपवित्र वेष धारण करनेवाले संन्यासी बुद्धदेवके उपदेशसे दैत्यगण प्रभावित हुए। उन्होंने यज्ञ एवं वैदिक आचरणका परित्याग कर दिया। वे अहिंसाको ही परम धर्म मानने लगे। परिणामतः कुछ ही दिनोंमें उनकी शक्ति क्षीण हो गयी।

फिर क्या था, देवताओंने उन दुर्बल एवं प्रतिरोधहीन दैत्योंपर आक्रमण कर दिया। असमर्थ दैत्य पराजित हुए और प्राण-रक्षार्थ यत्र-तत्र भाग खड़े हुए। देवताओंका स्वर्गपर पुनः अधिकार हो गया।

इस प्रकार संन्यासीके वेषमें भगवान् बुद्धने त्रैलोक्यका मङ्गल किया।

—शि० दु०

[२४]

भगवान् कल्कि

चराचरगुरोर्विष्णोरीश्वरस्याखिलात्मनः ।
धर्मत्राणाय साधूनां जन्म कर्मापनुत्तये ॥
(श्रीमद्भागवत १२ । २ । १७)

'सर्वव्यापक भगवान् विष्णु सर्वशक्तिमान् हैं । वे सर्वस्वरूप होनेपर भी चराचर जगत्के सच्चे शिक्षक—सद्गुरु हैं । वे साधु—सज्जन पुरुषोंके धर्मकी रक्षाके लिये, उनके कर्मका बन्धन काटकर उन्हें जन्म-मृत्युके चक्करसे छुड़ानेके लिये अवतार ग्रहण करते हैं ।'

× × ×

अभी तो कलिका प्रथम चरण है । कलिके पाँच सहस्रसे कुछ ही अधिक वर्ष बीते हैं । इतने दिनोंमें मानव-जातिका कितना मानसिक ह्रास एवं नैतिक पतन हो गया है, यह सर्वविदित है । यह स्थिति उत्तरोत्तर बढ़ती जायगी । ज्यों-ज्यों कलियुग आता जायगा, त्यों-त्यों धर्म, सत्य, पवित्रता, क्षमा, दया, आयु, बल और स्मरणशक्ति—सबका उत्तरोत्तर लोप होता जायगा । व्यावहारिक सत्य और ईमानदारी समाप्त हो जायँगे; छल-कपट-पटु व्यक्ति ही व्यवहारकुशल समझा जायगा । अर्थहीन व्यक्ति ही असाधु माने जायँगे । घोर दाम्भिक और पाखण्डी ही सत्पुरुष समझे जायँगे । धर्म, तीर्थ, माता-पिता और गुरुजन उपेक्षित और तिरस्कृत होंगे । मनुष्य-जीवनका सर्वश्रेष्ठ पुरुषार्थ होगा—उदर-भरण ! धर्मका सेवन यशके लिये किया जायगा । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंमें जो शक्तिसम्पन्न होगा, वही शासन करेगा । उस समयके नीच राजा अत्यन्त दुष्ट एवं निष्ठुर होंगे । लोभी तो वे इतने होंगे कि उनमें और लुटेरोंमें कोई अन्तर नहीं रह जायगा । उनसे भयभीत होकर प्रजा वनों और पर्वतोंमें छिपकर तरह-तरहके शाक, कंद-मूल, मांस, फल-फूल और बीज-गुठली आदिसे अपनी क्षुधा मिटायेगी । समयपर वृष्टि नहीं होगी, वृक्ष फल नहीं देंगे । भयानक सूखा, भयानक सर्दी और भयानक गर्मी पड़ेगी । तब भी शासक कर-पर-कर लगाते जायँगे । प्राणिमात्र धर्मकी मर्यादा त्यागकर स्वच्छन्द मार्गका अनुसरण करेंगे । मनुष्योंकी परमायु बीस वर्षकी हो जायगी ।

कलिके प्रभावसे प्राणियोंके शरीर छोटे-छोटे, क्षीण और रोगग्रस्त होने लगेंगे । वेदमार्ग प्रायः मिट जायगा । राजा-महाराजा डाकू-लुटेरोंके समान हो जायँगे । वानप्रस्थी, संन्यासी आदि विरक्त-जीवन व्यतीत करनेवाले गृहस्थोंकी भाँति जीवन व्यतीत करने लगेंगे । मनुष्योंका स्वभाव गधों-जैसा दुस्सह, केवल गृहस्थीका भार ढोनेवाला हो जायगा । लोग विषयी हो जायँगे । धर्म-कर्मका लेश भी नहीं रहेगा । लोग एक-दूसरेको लूटेंगे और मारेंगे । मनुष्य जपरहित, नास्तिक और चोर होंगे ।

पुत्रः पितृवधं कृत्वा पिता पुत्रवधं तथा ।
निरुद्वेगो बृहद्वादी न निन्दामुपलप्स्यते ॥
म्लेच्छीभूतं जगत् सर्वं भविष्यति न संशयः ।
हस्तो हस्तं परिमुषेद् युगान्ते समुपस्थिते ॥
(महा०, वन० १९० । २८, ३८)

'पुत्र पिताका और पिता पुत्रका वध करके भी उद्विग्न नहीं होंगे । अपनी प्रशंसाके लिये लोग बड़ी-बड़ी बातें बनायेंगे, किंतु समाजमें उनकी निन्दा नहीं होगी ।'''उस समय सारा जगत् म्लेच्छ हो जायगा—इसमें संशय नहीं । एक हाथ दूसरे हाथको लूटेगा—सगा भाई भी भाईके धनको हड़प लेगा ।'

अधर्म बढ़ेगा, धर्म विदा हो जायगा । स्त्रियाँ अपने पतियोंकी सेवा छोड़ देंगी । वे कठोर स्वभाववाली और सदा कटुवादिनी होंगी । वे पतिकी आज्ञामें नहीं रहेंगी । पथिकोंको माँगनेपर भी कहीं अन्न-जल या ठहरनेके लिये स्थान नहीं मिलेगा । सर्वत्र पाप-पीड़ा, दुःख-दारिद्र्य, क्लेश-अनीति, अनाचार और हाहाकार व्याप्त हो जायँगे ।

उस समय सम्भल-ग्राममें विष्णुयशा-नामक एक अत्यन्त पवित्र, सदाचारी एवं श्रेष्ठ ब्राह्मण होंगे । वे सरल एवं उदार होंगे । वे श्रीभगवान्के अत्यन्त अनुरागी भक्त होंगे । उन्हीं अत्यन्त भाग्यशाली ब्राह्मण विष्णुयशाके यहाँ समस्त सद्गुणोंके एकमात्र आश्रय, निखिल सृष्टिके सर्जक, पालक एवं संहारक परब्रह्म परमेश्वर भगवान् कल्किके रूपमें अवतरित होंगे । उनके रोम-रोमसे अद्भुत तेजोमयी किरणें छिटकती रहेंगी । वे महान् बुद्धि एवं पराक्रमसे सम्पन्न, महात्मा, सदाचारी तथा सम्पूर्ण प्रजाके शुभैषी होंगे ।

मनसा तस्य सर्वाणि वाहनान्यायुधानि च ॥
उपस्थास्यन्ति योधाश्च शस्त्राणि कवचानि च ।
स धर्मविजयी राजा चक्रवर्ती भविष्यति ॥

स चेमं संकुलं लोकं प्रसादमुपनेष्यति ।
उत्थितो ब्राह्मणो दीप्तः क्षयान्तकृदुदारधीः ॥
(महा०, वन० १९० । ९४–९६)

'(विष्णुयशाके बालकके) चिन्तन करते ही उसके पास इच्छानुसार वाहन, अस्त्र-शस्त्र, योद्धा और कवच उपस्थित हो जायँगे । वह धर्म-विजयी चक्रवर्ती राजा होगा । वह उदारबुद्धि, तेजस्वी ब्राह्मण दुःखसे व्याप्त हुए इस जगत्को आनन्द प्रदान करेगा । कलियुगका अन्त करनेके लिये ही उसका प्रादुर्भाव होगा ।'

भगवान् शंकर स्वयं कल्किभगवान्को शस्त्रास्त्रकी शिक्षा देंगे और भगवान् परशुराम उनके वेदोपदेष्टा होंगे ।

वे देवदत्त-नामक शीघ्रगामी अश्वपर आरूढ़ होकर राजाके वेषमें छिपकर रहनेवाले, पृथ्वीमें सर्वत्र फैले हुए दस्युओं एवं नीच स्वभाववाले सम्पूर्ण म्लेच्छोंका संहार कर डालेंगे । वे परम पुण्यमय भगवान् कल्कि भूमण्डलके सम्पूर्ण पातकियों, दुराचारियों एवं दुष्टोंका विनाश कर अश्वमेध-नामक महान् यज्ञ करेंगे और उस यज्ञमें सम्पूर्ण पृथ्वी ब्राह्मणोंको दानमें दे देंगे ।

भगवान् कल्कि दस्यु-वधमें सदा तत्पर रहेंगे । वे जिन-जिन देशोंपर विजय प्राप्त करेंगे, उन-उन देशोंमें काले मृगचर्म, शक्ति, त्रिशूल तथा अन्य अस्त्र शस्त्रोंकी स्थापना करेंगे । वहाँ उत्तमोत्तम ब्राह्मण उनका श्रद्धा-भक्तिपूर्ण स्तवन करेंगे और प्रभु कल्कि उन ब्राह्मणोंका यथोचित सत्कार करेंगे ।

वीरवर कल्किभगवान्के कर-कमलोंसे पृथ्वीके सम्पूर्ण दस्युओंका विनाश और अधर्मका नाश हो जायगा । फिर स्वाभाविक ही धर्मका उत्थान प्रारम्भ होगा ।

स्थापयित्वा च मर्यादाः स्वयम्भुविहिताः शुभाः ।
वनं पुण्ययशःकर्मा रमणीयं प्रवेक्ष्यति ॥
तच्छीलमनुवर्त्स्यन्ति मनुष्या लोकवासिनः ।
(महा०, वन० १९१ । २-३)

'उनका यश तथा कर्म—सभी परम पावन होंगे । वे ब्रह्माजीकी चलायी हुई मङ्गलमयी मर्यादाओंकी स्थापना करके (तपस्याके लिये) रमणीय वनमें प्रवेश करेंगे । फिर इस जगत्के निवासी मनुष्य उनके शील-स्वभावका अनुकरण करेंगे ।'

मङ्गलमय भगवान् कल्किके अङ्गरागको स्पर्शकर बहनेवाली वायु ग्राम, नगर, जनपद एवं देशकी सारी प्रजाके मनमें पवित्रताके भाव भर देगी । उनमें सहज सात्त्विकता उदित हो जायगी । फिर उनकी संतति पूर्ववत् हृष्ट-पुष्ट, दीर्घायु एवं धर्मपरायण होने लगेगी ।

इस प्रकार सर्वभूतात्मा सर्वेश्वर भगवान् कल्किके अवतरित होनेपर पृथ्वीपर पुनः सत्ययुग प्रतिष्ठित होगा ।

—शि० दु०

दशावतार-स्तवन

जयति वेणुधर चक्रधर शंखधर, पद्मधर गदाधर शृंगधर वेत्रधारी ।
मुकुटधर-क्रीटधर पीतपट-कटिनधर, कंठ-कौस्तुभ-धरन दुःखहारी ॥
मत्सको रूप धरि वेद प्रगटित करन, कच्छको रूप जल मथनकारी ।
दलन हिरनाच्छ बाराहको रूप धरि, दंतके अग्र धर पृथ्वि भारी ॥
रूप नरसिंह धर भक्त रच्छाकरन, हिरनकस्यप-उदर नख बिदारी ।
रूप बावन धरन छलन बलिराजको, परसुधर रूप छत्री सँहारी ॥
रामको रूप धर नास रावन करन, धनुषधर तीरधर जित सुरारी ।
मुसलधर हलधरन नीलपट सुभगधर, उलटि करषन करन जमुन-बारी ॥
बुद्धको रूपधर वेद निंदा करन, रूप धर कल्कि कलजुग-सँघारी ।
जयति दस रूपधर कृष्ण कमलानाथ, अतिहि अज्ञात लीला बिहारी ॥
गोपधर गोपिधर जयति गिरराजधर, राधिका बाहु पर बाहु धारी ।
भक्तधर संतधर सोइ 'हरिचंद' धर बल्लभाधीस द्विज वेषकारी ॥

—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

वेदोंके परम पुरुष वासुदेव विष्णु

(लेखक—डॉ० श्रीनीरजाकान्त चौधुरी देवशर्मा, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०, पी-एच्० डी०)

वासुदेवपरा वेदा वासुदेवपरा मखाः।
वासुदेवपरा योगा वासुदेवपराः क्रियाः॥
वासुदेवपरं ज्ञानं वासुदेवपरं तपः।
वासुदेवपरो धर्मो वासुदेवपरा गतिः॥

(श्रीमद्भागवत १।२।२८-२९)

सारे शास्त्रोंका तात्पर्य यह है कि वासुदेव मोक्ष प्रदान करते हैं, वे ही एकमात्र भजनीय हैं। वेदसमूह, यज्ञ, योग, क्रियाएँ, ज्ञान, तपस्या, दान-व्रत आदि धर्मकार्य—सब वासुदेवपरक हैं। सबका पर्यवसान भगवान् वासुदेवमें है।

सृष्टिके आदिमें भगवान्ने लोकोंके निर्माणकी इच्छा की। इच्छा होते ही उन्होंने महत्तत्त्व आदिसे निष्पन्न पुरुषरूप ग्रहण किया। उसमें दस इन्द्रियाँ, एक मन और पाँच भूत—ये सोलह कलाएँ थीं।'''योगीलोग दिव्यदृष्टिसे भगवान्के उस रूपका दर्शन करते हैं। भगवान्का वह रूप हजारों पैर, जाँघें, भुजाएँ और मुखोंके कारण अत्यन्त विलक्षण है; उसमें सहस्रों सिर, हजारों कान, हजारों आँखें और हजारों नासिकाएँ हैं। हजारों मुकुट, वस्त्र और कुण्डल आदि आभूषणोंसे वह उल्लसित रहता है। भगवान्का यही पुरुषरूप जिसे 'नारायण' कहते हैं, अनेक अवतारोंका अक्षय कोष है—इसीसे सारे अवतार प्रकट होते हैं। इस रूपके छोटे-से-छोटे अंशसे देवता, पशु-पक्षी और मनुष्यादि योनियोंकी सृष्टि होती है।' (श्रीमद्भागवत १।३।१, ४-५)

पुरुषसूक्तमें पूर्ण षोडशकल सहस्रशीर्षा पुरुष वासुदेव

वेदके प्रसिद्ध पुरुषसूक्तके मन्त्रोंमें इस 'सहस्रशीर्षा पुरुष' नारायणकी कथा ही व्यक्त हुई है। वह आदिपुरुष ही **'सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्'** हैं। वे ही सब हैं, उनके भीतर ही सब है। जो कुछ अतीत कालमें हुआ है, वर्तमान कालमें है तथा भविष्यत्में होगा, वह सब वे ही हैं। भगवान् षोडशकलासे पूर्ण हैं। वे समस्त अवतारों तथा देवता-तिर्यक्-मनुष्यादि जीवोंके निधान और बीजस्वरूप हैं।

(क) प्रश्नोपनिषद् कहता है—**'एवमेवास्य परिद्रष्टुरिमाः षोडशकलाः पुरुषायणाः।'** (६।५)

'षोडशकलात्मिका शक्ति उस सर्वद्रष्टा, सर्वशक्तिमान् परमात्मा पुरुषको आश्रय करके विराजमान है।'

(ख) छान्दोग्य उपनिषद्में लिखा है—**षोडशकलः सोम्य पुरुषः।** (६।७।१)

(ग) तैत्तिरीय ब्राह्मण भी कहता है—**'षोडशकलो वै पुरुषः'**। (१।७।५।५)

'वह विराट् आदिपुरुष षोडशकलासे पूर्ण शक्ति-सम्पन्न है।'

पुरुषसूक्तने समस्त वैदिक ऐतिह्यमें एक प्रधान और महत्त्वपूर्ण स्थान अधिकृत किया है। यह चारों वेदोंमें उपलब्ध होता है (ऋक्सं० १०।९०।१, सामसं० ६१७, अथर्वसं० १९।६।१, वाजसनेयिसं० ३१।१, तैत्तिरीय आरण्यक ३।१२।१)।

इस सूक्तमें **'ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्'** इत्यादि मन्त्रमें चातुर्वर्ण्यका उल्लेख है। जान पड़ता है, इसी कारण सुविधावादी भारतपुरातत्त्वविद् इसको आधुनिक (later) कहा करते हैं। किंतु उन्हें क्या यह नहीं सूझता कि यह सूक्त प्राचीन ऋषि स्वयं 'नारायण' द्वारा दृष्ट है? इसका बहुत लोग प्रतिदिन पाठ करते हैं और अनेक देव-देवियोंकी पूजा, विशेषतः वृषोत्सर्ग, श्राद्ध एवं यज्ञादिके अवसरोंपर तथा भगवान् नारायणके स्नानके उपलक्ष्यमें इसका पाठ सर्वदा होता है। पुरुषसूक्त ऋग्वेदके दशम मण्डलमें है, अतएव यह अर्वाचीन है—इस प्रकारकी धारणा भ्रान्त है; क्योंकि ऋग्वेदके मण्डलोंमें पौर्वापर्य प्रमाणित नहीं है।

राजा हरिश्चन्द्रके पुरुषमेध यज्ञमें शुनःशेप-नामक एक ब्राह्मण वटु उनके द्वारा क्रीत और पशुरूपमें यूपसे बद्ध हुए थे। विश्वामित्रने शुनःशेपको पुत्ररूपमें वरण किया। उनके उपदेशसे शुनःशेपने जिन वेदमन्त्रोंका दर्शन किया, वे ऋग्वेद (१।२४, ३० तथा ९।३) में हैं।

पुरुषमेध यज्ञमें पुरुषसूक्त अवश्यपाठ्य है, अतएव शुनःशेपके बहुत पहलेसे यह सूक्त वर्तमान था। दशममण्डलस्थ होनेपर भी यह प्रथम मण्डलके शुनःशेप-दृष्ट (१।२४, ३०) मन्त्रकी अपेक्षा भी प्राचीनतम है। अतएव पुरुषसूक्त अर्वाचीन नहीं हो सकता।

इसके देवता 'पुरुष' स्वयं वासुदेव विष्णु हैं। **'यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः'** (१।१६)—इस शुक्लयजुर्वेद-मन्त्रके भाष्यमें उवट कहते हैं—**'यज्ञपुरुषं वासुदेवम्'**। इसके

सिवा इसके एक मन्त्र बाद 'वेदाहमेतं पुरुषं महान्तम्' इत्यादि मन्त्र है।

पुरुष और विष्णुके सम्बन्धमें पाश्चात्त्य मत

हिंदू देव-देवियोंको पाश्चात्त्य मिशनरी और गवेषक लोग कभी अच्छी आँखोंसे नहीं देखते। पुरुषसूक्तके 'पुरुष'के सम्बन्धमें उनके कुछ मतोंका भावार्थ नीचे दिया जाता है—

रगोज़िन (Ragozin) नामकी एक महिला गवेषिकाने लिखा है कि "पुरुषसूक्त सृष्टिका वर्णन है। देवतालोग एक विराट् यज्ञ करते हैं। उसका मुख्य प्रतीक और बलि एक आदिमयुगीन दैत्य है। उसका नाम 'पुरुष' है, उससे मनुष्यका भी बोध होता है।"[1]

मैकडॉनेल साहब (Macdonell) ने प्रायः ७० वर्ष पूर्व 'संस्कृत-साहित्यके इतिहास'में इसी प्रकारकी बात लिखी है—"सुपरिचित पुरुष-यज्ञमें देवता ही कर्ता होते हैं। जिस उपादानके द्वारा विश्वसृष्टि होती है, वह एक आदियुगीन दानवकी देह ही है। वह 'पुरुष' सहस्र मस्तक और सहस्र चरणोंसे युक्त है और पृथ्वीके बाहर भी व्याप्त है। दैत्यकी देहसे जगत्-सृष्टिका मूल सिद्धान्त अति प्राचीन है और कतिपय आदिम पुराण-गाथाओंमें पाया जाता है।"[2]

अत्यन्त आश्चर्यकी बात है कि इस प्रकारके गवेषक लोगोंका मत ही इस देशमें प्रमाणरूप माना जाता है। रगोज़िन (Ragozin) की पुस्तक हमारे देशमें पुनर्मुद्रित हुई है। मैकडॉनेलका इतिहास तो संस्कृत-स्नातक तथा स्नातकोत्तर छात्रोंकी अवश्य-पाठ्य पुस्तक है।

यहाँ 'पुरुष'से परमपुरुषका बोध होता है। उसका अर्थ 'मानव' या 'दानव' नहीं—यह बात इन पण्डितम्मन्य तथाकथित गवेषकोंकी समझमें नहीं आती, यह सचमुच आश्चर्य है।

वैदिक देवतावादके सम्बन्धमें मैक्समूलर आदिका मत

भट्ट मैक्समूलर आदि भारतीयतत्त्वशास्त्रियोंके मतसे 'आदि वैदिकधर्ममें सूर्य, अग्नि, वायु, यम आदि प्राकृतिक देवता (Nature Deities) पूजे जाते थे। पश्चात् ब्राह्मणोंने नाना प्रकारके यज्ञादि कर्म-कलापोंका प्रवर्त्तन तथा अनेक देवी-देवताओंकी पूजा आरम्भ करके इस सहज सरल धर्म-प्रणालीको विकृत और दूषित कर दिया।

'पहले इन्द्र, रुद्र, मरुद्गण आदि देवताओंकी पूजा होती थी; पश्चात् क्रमशः ब्रह्मा, वरुण, विष्णु आदि उनके स्थानपर अधिकार करके मुख्य और प्रधान बन गये।' पौराणिक युगमें शिव, गणेश, कार्तिकेय, देवी (दुर्गा-काली) आदिका आविर्भाव हुआ। पुराने देवता विस्मृतिके गर्त्तमें विलीन हो गये। उनका फिर कोई समादर न रहा। अनादि अद्वैत ब्रह्मका तत्त्व पहले वेदमें नहीं था। क्षत्रियोंने ही उपनिषदोंमें ब्रह्मतत्त्वकी प्रथम अवतारणा की। अर्थ-गृध्नु ब्राह्मण पुरोहितोंने इसमें बाधा दी थी। अर्थात् विष्णु पहले एक नगण्य देवता थे। पहले इन्द्र और उसके बाद क्रमशः वरुणका प्रभाव अस्तमित होनेपर उनकी मर्यादा-वृद्धि होने लगी।'[3]

यह जो पहले एक देवताका प्राधान्य, पश्चात् उसके स्थानमें अन्य देवताकी प्रतिष्ठा है, यही वैदिक बहुदेववादकी विशेषता है। तथाकथित भारतबन्धु वेदविदग्ध मैक्समूलरने इसका नाम दिया है—'हेनोथीज़म' (Henotheism)।[4]

---

१. "The Purusha-hymn describes the act of creation in the guise of a huge sacrifice performed by the gods, in which the central figure and victim is a primeval giant, a being named Purusha, one of the names for man." —Ragozin : 'Vedic India', p. 280

२. Macdonell observes similarly, "In the well-known hymn of man (Purusha-Sukta), the gods are still the agents, but the material out of which the world is made consists of the body of a primeval giant Purusha (man), who being thousand-headed and thousand-footed, extends even beyond the earth, as he covers it. The fundamental idea of the world being created from the body of a giant is, indeed, very ancient, being met with in several primitive mythologies." (Macdonell: 'History of Sanskrit Literature', pp. 132-33)

३. "...in the Veda itself, Varuna is losing ground to the warrior Indra······, and in the post-Vedic age, Indra in turn is affected by Vishnu and Rudra". (Gordon Childe: 'The Aryans', pp. 80-81)

४. "...these so-called gods or Devas...the ease and naturalness with which now this one, now the other emerges, as supreme out of this chaotic theogony,...this henotheistic phase must

उनके मतसे प्राचीन वैदिक धर्म ईसाई मतके प्रायः अनुरूप था। परवर्ती विकृतधर्म और अनेक देवताओंके याग-यज्ञ, मूर्ति-पूजा आदिकी उन्होंने कठोर भाषामें निन्दा की है। 'यह ग्रीक और रोमन जातिकी मूर्तिपूजासे अपेक्षाकृत निम्नस्तरकी है। सिंह-व्याघ्रके समान यह बची हुई तो है; लेकिन एक दिन स्वाधीन चिन्तन और सभ्यताके आलोकके प्रभावसे इसका लोप हो जायगा। वस्तुतः ये सारे देवता नाममात्रके हैं। ठीक जूपिटर (Jupiter), अपोलो (Apollo) या मिनर्वा (Minerva) के समान इनका कभी अस्तित्व न था।'[५]

उनके मतसे वैदिक धर्ममें त्रिनेत्र, नग्न, नृमुण्ड-मालाधारी शिव, अर्द्धनरपक्षी-वाहन नागशायी विष्णु, गजवदन गणेश, षण्मुख कार्तिकेय, करालवदना, लोलजिह्वा, रक्तपिपासु कालीकी उपासना नहीं थी। वेदमें यूरोपियन लोगोंके अनुमोदनकी कोई वस्तु नहीं है। परंतु यह निस्संदेह है कि वेदमें शिव और कालीकी नृशंसता, कृष्णका लाम्पट्य या विष्णुकी अलौकिक अवतारकथाका आभास भी मिलता है।[६] कोई-कोई पाश्चात्य मिशनरी 'कृष्ण, शिव और काली आदि द्राविड देवता हैं, यह समझते हैं।'[७]

इन सब पाश्चात्य लेखकोंका पादानुध्यायी एतद्देशीय विद्वद्वर्ग भी प्रायः उन्हींके सुरमें सुर मिलाता है। विख्यात गवेषक श्रीरामकृष्ण भण्डारकरने अपना मत प्रकट किया है कि आदिमें विष्णु और नारायण पृथक् देवता थे। उन्होंने चार प्रकारके वैष्णव-सम्प्रदाय माने हैं।[८]

---

everywhere have preceded the more highly organized phase of polytheism which we see in Greece, in Rome and elsewhere."

MaxMuller, 'India, What can it teach us ?' p. 163

५. "Brahminism as a religion cannot stand the light of the day. The worship of Shiva or Vishnu and all other popular deities is of the same, nay, in many cases of a more degraded and savage character than the worship of Jupiter, Apollo and Minerva; it belongs to a stratum of thought which is long buried beneath our feet; it may live on, like the lion and tiger, but the mere advance of free thought and civilized light will extinguish it."

"A Hindu who believes only in Veda would be much nearer Christians than those who follow the Puranas and Tantras. From an European point of view, there is but little that we can fully approve, but there is no trace in the Vedas of the atrocities of Shiva and Kali, or of the licentiousness of Krishua, nor of the miraculous advent of Vishnu."

(MaxMuller: "Chips from a German Workshop—II"—p. 313)

६. "It is true that there are millions of men, women and children in India, who fall down before the stone images of Vishnu with his four arms, riding on a creature half-bird, half-man, or sleeping on a serpent; worship Shiva, a monster with three eyes, riding naked on a bull, with a necklace of skulls for his ornaments. There are human beings who still believe in a god of war, Kartikeya with six faces, riding on a peacock and holding bows and arrows in his hands, and who invoke a god of success, Ganesha, with four hands and an elephant's head, sitting on a rat. Nay, it is true that in the broad daylight of the nineteenth century, the figure of the goddess Kali is carried through the streets of her own city, Calcutta, her wild dishevelled hair reaching to her feet, with a necklace of human heads, her tongue protruded from her mouth, her girdle stained with blood. All this is true, but ask any Hindu who can read, write and think, whether these are the gods he believes in, and he will smile at your credulity. How long this living dead of national religion in India may last, who can tell ?"

(MaxMuller, "Lecture in Westminister Abbey on 3 - 12 - 1873")

७. Probably Krishna, the black god, was originally a primeval Dravidian divinity. This was certainly the case with Shiva and the goddess Kali, the black one, who plays a great part in Hinduism. (Dr. Albert Schweitzer: 'Indian Thought and Its Development.' p. 173)

८. "In the Puranic times,...three streams of religious thought, namely, one flowing from Vishnu, the Vedic god, at its source, another from Narayana, the cosmic and philosophic god, and the third from Vasudeva, the historical god, mingled together decidedly, and they

(१) विष्णु—ये वैदिक देवता हैं। (२) नारायण—सृष्टिके देवता, (३) वासुदेव—ऐतिहासिक देवता, पौराणिक युगमें अर्वाचीन वैष्णवमतसे सम्बद्ध, (४) गोपालकृष्ण—फिलिस्तीनसे आये आभीर गोपालकोंके देवता—ईसाका अनुकरण।

डा० रमेशचन्द्र मजूमदार तथा दूसरे कोई-कोई प्रख्यात ऐतिहासिक भी इसके अनुरूप मतका पोषण करते हैं। परंतु रामकी उपासनाका विषय 'वैष्णव-मत-विवेक'से भाण्डारकरने क्यों नहीं लिया, यह समझमें नहीं आता।

श्रीसूक्त—विष्णुपत्नी अवतार-सहायिनी श्री—लक्ष्मीदेवी

पाश्चात्त्य गवेषकोंके मतसे वैदिक-उपासनामें स्त्री-देवताका स्थान भी नगण्य था। इसका कारण जान पड़ता है कि सेमिटिक धर्मों (यहूदी, ईसाई, मुस्लिम) में किसी देवीका स्थान नहीं है। अथच वेद और पुराणके प्रायः प्रत्येक देवताकी शक्तिस्वरूपिणी देवीका नाम सुपरिज्ञात है। समस्त दृश्यमान चराचर विश्व जगन्माता मूलप्रकृतिका लीलादेहमात्र है।

ऋग्वेदका प्रसिद्ध 'श्रीसूक्त' शाकल-संहिताके पञ्चम मण्डलके अन्तमें खिलरूपमें संनिविष्ट है। यह निस्संदेह आज-कल लुप्त ऋग्वेदीय किसी शाखाका मन्त्र-समुदाय है। इसमें स्पष्टरूपमें श्री, मा या लक्ष्मीदेवीकी 'ईश्वरीं सर्वभूतानाम्' (९), 'भगवति हरिवल्लभे' (२४), 'विष्णुपत्नीं' 'माधवीं माधवप्रियाम्' (२५) कहकर स्तुति की गयी है। उनका गायत्री-मन्त्र 'महालक्ष्म्यै च विद्महे। विष्णुपत्न्यै च धीमहि। तन्नो लक्ष्मीः प्रचोदयात्' (२६) भी उसमें है।

इस सूक्तके बाद अवश्य-पाठ्य जो मन्त्र किसी-किसी प्रतिमें मिलते हैं, उनमें शंकर महादेवकी स्तुति है। इसके अतिरिक्त—

> यज्ञेशाच्युत गोविन्द माधवानन्त केशव।
> कृष्ण विष्णो हृषीकेश वासुदेव नमोऽस्तु ते॥
> कृष्णाय गोपिनाथाय चक्रिणे मुरवैरिणे।
> अमृतेशाय गोपाय गोविन्दाय नमो नमः॥
> एतान्यनन्तनामानि मण्डलान्ते [सदा] पठेत्।

—इस प्रकारका पाठ है। इसके सिवा हमें शुक्ल यजुर्वेदकी माध्यन्दिनसंहितामें मिलता है—

> श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे
> नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम्।
> इष्णन्निषाणामुं म इषाण
> सर्वलोकं म इषाण॥
> (३१। २२)

'वह पुरुष (विष्णु) सर्वलोक तथा देवलोकका ईश्वर है। वही इसका सर्वस्व है। श्री और लक्ष्मी उसकी दो पत्नियाँ हैं।' इस मन्त्रमें एक ही महादेवी मानो दो काय-व्यूह धारण कर रही हैं। लक्ष्मीकी पूजामें यह मन्त्र व्यवहृत होता है। वेदमें श्रीदेवीके और भी बहुत-से मन्त्र हैं।

विष्णुपुराणमें क्षीरोदधिमन्थन-कालमें इन्द्रने लक्ष्मीजीकी स्तुति की है। पश्चात् महर्षि पराशर कहते हैं—

> एवं यदा जगत्स्वामी देवदेवो जनार्दनः।
> अवतारं करोत्येषा तदा श्रीस्तत्सहायिनी॥
> देवत्वे देवदेहेयं मनुष्यत्वे च मानुषी॥
> (१। ९। १४२, १४५)

'जगत्स्वामी देवदेव जनार्दन जब अवतार लेते हैं, तब लक्ष्मीदेवी भी उनकी सहगामिनी होती हैं।' 'भगवान्‌के देवरूप होनेपर वे देवत्वमें दिव्य देह धारण करती हैं और मनुष्य होनेपर मानवी रूपमें प्रकट होकर विष्णुकी देहके अनुरूप शरीर ग्रहण किया करती हैं।'

---

formed the later Vaishnavism. There is however a fourth stream. Soon after the beginning of the Christian era, another element was contributed to this system of religion by the Abhiras or cowherds, who belonged to a foreign tribe, in the shape of the marvellous deeds of the boy-Krishna, who came to be regarded as a god, and of his amorous dalliances with cowherdesses." (p. 100) "...Abhiras must have migrated into the country in the first century. They probably brought with them the worship of the boy-god (Christ) also. It is possible that they brought with them the name Christ also, and this name probably led to the identification of the boy-god with Vasudeva Krishna. The Goanese and the Bengalis often pronounce the name Krishna as Kushto or Krishto, and so the Christ of the Abhiras was recognised as the Sanskrit Krishna." (Sri R. G. Bhandarkar, Vaishnavism, Śaivism and minor religious systems" pp. 37-38)

पाश्चात्त्य लेखकोंने यह सिद्धान्त स्थिर कर रखा है कि 'वेदसंहितामें, विशेषतः ऋग्वेदमें जिस-जिस देवताके मन्त्रोंकी संख्या अधिक है, उनमें उस-उस देवताकी प्रधानता है।' कहनेकी आवश्यकता नहीं है कि यह धारणा नितान्त भ्रान्त है। वस्तुतः यह विषय आलोचनाके योग्य नहीं है; क्योंकि वेदमन्त्र कविकी कल्पना नहीं हैं, समाधि-दृष्ट हैं। यहाँ मतगणनासे देवताके पदका निर्धारण नहीं हो सकता। इसके सिवा एक ही देवताके विभिन्न नाम हो सकते हैं।

१. वेदमें नारायणका उल्लेख

सहस्रशीर्षं देवं विश्वाक्षं विश्वशम्भुवम्।
विश्वं नारायणं देवमक्षरं परमं पदम्॥
(तैत्तिरीय-आरण्यक १० । ११)

'भगवान् नारायणके अनन्त मस्तक हैं, अनन्त चक्षु हैं, वे ही समस्त विश्व, विश्वके मङ्गलकारक हैं, वे ही अक्षर परम पद हैं।'

२. शिवसंकल्प-सूक्तमें—

ओंकारं चतुर्भुजं लोकनाथं नारायणम्।
सर्वस्थितं सर्वगतं सर्वव्याप्तं तन्मे मनः
शिवसंकल्पमस्तु॥
(ऋक्परिशिष्ट १० । १६६ । २२)

—यह मन्त्र मिलता है। ऋग्वेदकी वर्तमान कालमें लुप्त किसी शाखाका यह बड़ा-सा सूक्त है। इसमें शिव, कैलास, शिवालय तथा चतुर्भुज नारायणका स्पष्ट उल्लेख है। वङ्गदेशीय यजुर्वेदीय ब्राह्मणके वृषोत्सर्ग-श्राद्धमें इस सूक्तके मन्त्र पढ़े जाते हैं। नारायणकी लोकनाथ, सर्वस्थित, सर्वगत, सर्वव्याप्त कहकर स्तुति की गयी है।

३. नारायण, कृष्ण, वासुदेव

'नारायणाय विद्महे। वासुदेवाय धीमहि। तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्। सायणः—स च कृष्णावतारे वसुदेवस्य पुत्रत्वाद्वासुदेवः।' (तैत्ति० आरण्यक)

''विष्णु अथवा नारायण कृष्णावतारमें वसुदेवके पुत्र होकर जन्म लेते हैं, इस कारण वे 'वासुदेव'-नामसे विख्यात हैं।''

विष्णु और नारायण एक हैं। वे पृथक् थे, पश्चात् एक हो गये हैं, यह कहना उन्मत्तप्रलाप है। पाश्चात्त्य मतसे वेदमें विष्णु गौण देवता हैं, यह मत भी नितान्त भ्रान्त है।

किं बहुना, इन सारे मतोंका जो पोषण करते हैं, वे वैदिक शास्त्र और साधन-प्रणालीसे परिचित नहीं हैं। उनके तर्क और सिद्धान्त इसी कारण उपन्यासके साथ उपमेय हैं, इस प्रकारका नितान्त अलीक बकवास भूसी कूटनेके समान—**'तुषाणां कण्डनं यथा'** व्यर्थ है।

वेदमें विष्णु-वामन-त्रिविक्रम-उपासना तथा मोक्ष

शाकल-संहितामें दीर्घतमा ऋषिद्वारा दृष्ट तीन सूक्तोंमें १७ विष्णुदैवत मन्त्र हैं, जो **'विष्णोर्नु कं०'** (१ । १५४ । १) इत्यादि प्रसिद्ध मन्त्रसे प्रारम्भ होकर **'आ या विवाय'** (१ । १५६ । ५) इत्यादि मन्त्रपर समाप्त होते हैं।

इनमेंसे बहुतेरे मन्त्रोंमें विष्णुके वामन-अवतारमें किये गये त्रिपाद-निक्षेपकी बात है। वे हैं—उरुक्रम, वे अपने पगके द्वारा सारे ब्रह्माण्ड, चतुर्दश भुवनको व्याप्त करते हैं। उनका वीर्य अनन्त है, वे **'एक एवाद्वितीयः'** हैं। उनके भक्तजन उनकी कृपासे 'श्रुति-स्मृति-पुराणादि-प्रसिद्ध' अविनश्वर ब्रह्मलोकमें गमन करते हैं। उस महागतिके परम पद (गोलोक ?) में **'भूरिशृङ्गा'** गायें हैं; सर्वत्रगामी गरुडके लिये भी उस सत्यलोकमें जाना कठिन है। वे शोभन-फल-दाताओंमें श्रेष्ठ हैं, उस परमपदमें भूख-प्यास, जरा-मरण—पुनरावृत्त्यादिका भय नहीं है। संकल्पमात्रसे समस्त भोग वहाँ उपस्थित हो जाते हैं। वे कालात्मक बृहच्छरीर, विराडात्माके द्वारा सर्वदेव-मनुष्यादिके शरीरमें अधिष्ठित हैं, तथापि वे भक्ताधीन हैं।

वे तीन सूक्त भागवत-धर्म और वैष्णवी-भक्तिके रससे ओत-प्रोत हैं। द्वैतवादके माध्यमसे परमेष्ठ विष्णुका अद्वैत तत्त्व इन सब मन्त्रोंमें निहित है। **'अर्चत'** (ऋ० सं० १ । १५५ । १) **'राध्य'** (समाराधनीय ऋ० सं० १ । १५६ । १) आदि पद अर्चामूर्त्तिको संकेत करके कहे गये जान पड़ते हैं। (क्रमशः)

वेदों और पुराणोंमें विष्णु

(लेखक—श्रीविष्णुदेवजी उपाध्याय, नव्य-व्याकरणाचार्य)

एक समय था, जब कुछ भी नहीं था। तात्पर्य यह है कि वर्तमान समयमें हमारे समक्ष जो कुछ भी उपस्थित है, हमारे दृष्टि-पथमें जो कुछ भी विद्यमान है, वह सब कुछ अर्थात् 'सत्' उस समय नहीं था। 'सत्'के विपरीत 'असत्' भी उस समय नहीं था। किंतु कोई एक था अवश्य। वह कोई एक न तो 'सत्' ही कहा जा सकता है और न 'असत्' ही। 'सत्' इसलिये नहीं कहा जा सकता; क्योंकि उसमें तबतक ईश्वरभावका अभिनिवेश नहीं हुआ था, वह अपने अभिव्यक्त रूपमें नहीं था और उसे 'असत्' इसलिये नहीं कहा जा सकता; क्योंकि वह 'असत्' अर्थात् अभावरूप है ही नहीं। वह एक अवर्णनीय परम सत्ता है, जो आत्माओंकी आत्मा, विश्वात्मा होते हुए भी वाणीके द्वारा ठीक-ठीक विशेषणोंसे युक्त नहीं की जा सकती। अन्त-र्दृष्टिसे उसकी महिमाका केवल प्रत्यक्ष दर्शन किया जा सकता है। फिर इस परम सत्ताको 'असत्' मान लेनेसे सब कुछ विशृङ्खलित भी तो हो जायगा। सब कुछ विशृङ्खलित इसलिये हो जायगा कि अभावसे भला, भाव वस्तुका उदय कैसे हो सकता है, असत्से भला, सत्की उत्पत्ति कैसे हो सकती है, अथवा शून्यसे ही संसारका प्रादुर्भाव भला, कैसे सम्भव है। और जब ऐसी बात नहीं हो सकती, तब उसे 'असत्' भी नहीं कहा जा सकता; क्योंकि बादमें उससे ही तो समस्त सत्पदार्थ आविर्भूत हुए हैं। अतः यह बतलानेके लिये कि हम उस परमतत्त्वको 'सत्' अथवा 'असत्'—किसी भी रूपमें ठीक-ठीक नहीं जान सकते, कारण वह सत् और असत् दोनोंसे परे है, वैदिक ऋषि घोषणा करते हैं कि "प्रारम्भमें न तो 'भाव' (सत्) ही था और न 'अभाव' (असत्) ही, पृथिवी और अन्तरिक्ष भी तब विद्यमान नहीं थे और न अन्तरिक्षसे भी ऊपरका आकाश ही था।[1] 'उस समय मृत्यु नहीं थी तो अमरताकी भावना भी नहीं थी, न रात-दिनका ही कोई चिह्न था। बस, श्वास-प्रश्वासकी प्रक्रियाके बिना अपनी ही स्वधासे जीवित रहनेवाला एक परमब्रह्म ही शेष था। उसके अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं था। अन्य कुछ यदि था तो वह था (अव्याकृत प्रकृतिरूप) अन्धकारसे ढका अन्धकार—एक सूचीभेद्य अन्धकार और केवल जल-ही-जल।" इस एकमात्र शेष विश्वात्मा परमात्माने ही बादमें आप्तकाम होते हुए भी इच्छा-अनिच्छारूप 'एक'से 'बहुत' होनेकी स्वतः उत्पन्न इच्छासे ज्ञानरूप तप किया, एकाग्रचित्त होकर अपने स्वरूपमें स्वयं प्राप्त काल-कर्म और स्वभावको स्वीकार किया और इस ब्रह्माण्ड-प्रकृतिको अव्यक्तसे व्यक्तरूप प्रदान करने लगा। इस प्रक्रियामें उसने सर्वप्रथम महत्तत्त्व, अहंकार, पञ्चतन्मात्रा, पञ्चभूत तथा मनसहित दस इन्द्रियोंको व्यक्तरूप दिया और इन तेईस तत्त्वोंके समुदायको अपनी शक्तिसे प्रेरित-कर, उनके सुप्त अदृष्टको जाग्रत् कर उन्हें अपनी क्रिया-शक्तिसे युक्त कर दिया। इस प्रकार भगवान्ने जब अदृष्टको कार्योन्मुख किया, तब उन तेईस तत्त्वोंके समूहने (परस्पर कार्य-कारण-भाव स्वीकार करके) व्यष्टि-समष्टिरूप पिण्ड और ब्रह्माण्डकी रचना कर दी। आगेका रहस्य श्रीमद्भागवतमें इन शब्दोंमें उद्घाटित है—'यह ब्रह्माण्डरूप सुवर्णवर्ण अण्ड एक हजार दिव्य वर्षोंसे भी अधिक समयतक (३६०००० वर्ष) कारणाब्धिके जलमें पड़ा रहा। फिर उसमें श्रीभगवान्ने (विष्णुरूपसे) प्रवेश किया। उसमें अधिष्ठित हो जानेपर उनकी नाभिसे सहस्र सूर्योंके समान अत्यन्त देदीप्यमान एक कमल प्रकट हुआ, जो सम्पूर्ण जीवसमुदायका आश्रय-स्थान था। उसीसे ब्रह्माजीका आविर्भाव हुआ।'[2]

पुराणोंका एक अन्य स्थल भी इस सिद्धान्तकी पुष्टि करता है। उसके अनुसार—'जलके बुद्बुदके समान क्रमशः भूतोंसे बढ़ा हुआ वह गोलाकार और जलपर स्थित

---

१. नासदासीन्नो सदासीत् तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्।

× × ×

न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि न राज्या अह्न आसीत् प्रकेतः ॥
आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्न परः किंचनास ।
तम आसीत्तमसा गूळ्हमग्रे अप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम् ॥
(ऋग्वेद १० । १२९ । १–३)

२. सोऽशयिष्टाब्धिसलिले आण्डकोशो निरात्मकः ।
साग्रं वै वर्षसाहस्रमन्ववात्सीत्तमीश्वरः ॥
तस्य नाभेरभूत्पद्मं सहस्रार्कोरुदीधिति ।
सर्वजीवनिकायौको यत्र स्वयमभूत् स्वराट् ॥
(श्रीमद्भागवत ३ । २० । १५-१६)

महान् अण्ड ब्रह्मरूप विष्णुका अत्युत्तम प्राकृत आधार हुआ। उसमें वे अव्यक्तरूप जगत्पति विष्णु ब्रह्मारूपसे स्वयं ही विराजमान हुए।'[३]

इस प्रकार ब्रह्माण्डरूप सुवर्णवर्ण अण्डमें स्थित विश्वेश्वर भगवान् विष्णु ही ब्रह्माके रूपमें[४] रजोगुणका आश्रय लेकर इस संसारकी रचनामें प्रवृत्त होते हैं।[५] इन ब्रह्माजीको ही 'हिरण्यगर्भ' तथा 'प्रजापति' कहा गया है और इनके आसनके लिये कमल-संज्ञा पृथिवीकी है। 'इस कमलकी कर्णिका मेरु पर्वत है, जो नभमें बहुत ऊँचेतक गया है। इसके मध्यभाग-पर स्थित होकर ही ब्रह्माजी सम्पूर्ण लोकोंकी सृष्टि करते हैं।'[६] इनके ही 'पूर्वमुखसे ऋग्वेद, दक्षिणमुखसे यजुर्वेद, पश्चिम-मुखसे सामवेद तथा उत्तरमुखसे अथर्ववेद बहिर्गत हुए।'[७] यह ज्ञानराशि नूतन नहीं रची गयी थी, विष्णुभगवान्‌का स्वरूप होनेके कारण ईश्वरीय ज्ञानके रूपमें ब्रह्माजीमें स्वयं प्राप्त थी; क्योंकि वेदपाठी ब्राह्मणोंमें प्रचलित बहुश्रुतिके अनुसार 'ब्रह्मासे लेकर ऋषिपर्यन्त कोई भी वेदोंका स्रष्टा (कर्ता) नहीं है, सभी उनका स्मरण करनेवाले हैं।'[८] इन वेद-शब्दोंके आधारपर ही ब्रह्माजीने देवों तथा अन्य भूतोंके नाम, रूप और कार्योंका निर्माण किया तथा उनके अनुसार ही समस्त ऋषियोंका भी, उनके अपने-अपने पदोंके उपयुक्त नामकरण किया।[९]

अस्तु, विष्णु वेदोंके अनुसार 'जगत्‌के रक्षक हैं, उनको पराजित करनेवाला कोई नहीं है।'[१०] 'जो पृथ्वीपर उत्पन्न हो चुके हैं और जो आगे होंगे, उनमेंसे कोई भी उनकी महिमा-का अन्त नहीं पा सकता।'[११] 'वे एक परमदेवता बहुतोंकी स्तुतिके योग्य हैं[१२], आश्रयदाता हैं, गर्भपालक हैं।'[१३] 'वे ज्ञाता हैं, सर्वतोगामी हैं तथा प्रजाद्वारा भीतर-ही-भीतर सारे जगत्‌को व्याप्त करके[१४] और पृथिवी, द्यु एवं अशेष भुवनोंको धारण करके[१५] स्थित हैं।' 'वे इन्द्रके उपयुक्त सखा

---

३. तत्क्रमेण विवृद्धं सज्जलबुद्बुदवत् समम्।
भूतेभ्योऽण्डं महाबुद्धे महत्तदुदकेशयम्॥
प्राकृतं ब्रह्मरूपस्य विष्णोः स्थानमनुत्तमम्।
तत्राव्यक्तस्वरूपोऽसौ व्यक्तरूपो जगत्पतिः।
विष्णुर्ब्रह्मस्वरूपेण स्वयमेव व्यवस्थितः॥
(विष्णुपुराण १। २। ५४—५६)

४. इस सम्बन्धमें कुल्लूकभट्टका कथन विशेष ध्यान देने-योग्य है—'उस अण्डसे हिरण्यगर्भ उत्पन्न हुए अर्थात् उस व्यक्तिकी आत्मामें प्रविष्ट होकर, जो उस समय सूक्ष्मशरीरसे युक्त (विराट्में स्थित) थी, परंतु जिसने पूर्वजन्ममें 'मैं ही हिरण्यगर्भ हूँ' इस भेदाभेद-भावनासे परमेश्वरकी उपासना की थी, स्वयं परमात्मा ही हिरण्यगर्भ (ब्रह्मा) के रूपमें प्रादुर्भूत हुए थे।' देखिये मनु-स्मृति १। ९ पर कुल्लूकभट्टकी टीका—"तस्मिन्नण्डे हिरण्यगर्भो जातवान्। येन पूर्वजन्मनि 'हिरण्यगर्भोऽहमस्मि' इति भेदाभेद-भावनया परमेश्वरोपासना कृता तदीयं लिङ्गशरीरावच्छिन्नजीवमनु-प्रविश्य स्वयं परमात्मैव हिरण्यगर्भरूपतया प्रादुर्भूतः॥"

५. जुषन् रजोगुणं तत्र स्वयं विश्वेश्वरो हरिः।
ब्रह्मा भूत्वास्य जगतो विसृष्टौ सम्प्रवर्तते॥
(श्रीविष्णुपुराण १। २। ६१)

६. कर्णिका तस्य पद्मस्य मेरुर्गगनमुच्छ्रितः।
तस्य मध्ये स्थितो लोकान् सृजते जगतः प्रभुः॥
(महा०, शान्ति० १८२। ३८)

७. ऋग्यजुःसामाथर्वाख्यान् वेदान् पूर्वादिभिर्मुखैः।
(श्रीमद्भागवत ३। १२। ३७)

८. ब्रह्माद्या ऋषिपर्यन्ताः स्मारका न तु कारकाः॥

९. नाम रूपं च भूतानां कृत्यानां च प्रपञ्चनम्।
वेदशब्देभ्य एवादौ देवादीनां चकार सः॥
ऋषीणां नामधेयानि यथा वेदश्रुतानि वै।
तथा नियोगयोग्यानि ह्यन्येषामपि सोऽकरोत्॥
(श्रीविष्णुपुराण १। ५। ६८-६९)

सर्वेषां तु स नामानि कर्माणि च पृथक् पृथक्।
वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे॥
(मनुस्मृति १। २१)

१०. विष्णुर्गोपा अदाभ्यः। (ऋग्वेद १। २२। १८)

११. न ते विष्णो जायमानो न जातो देव महिम्नः परमन्तमाप। (ऋग्वेद ७। ९९। २)

१२. एक उरुगायः। (ऋग्वेद ८। २९। ७)

१३. विष्णुं निषिक्तपामवोभिः। (ऋग्वेद ७।३६।९)

१४. ते धीतिभिर्मनसा ते विपश्चितः परिभुवः परिभवन्ति विश्वतः॥ (ऋग्वेद १। १६४। ३६)

१५. य उ त्रिधातु पृथिवीमुत द्यामेको दाधार भुवनानि विश्वा॥ (ऋग्वेद १। १५४। ४)

भी है।'[१६] इन्द्रके उपयुक्त सखा इसलिये हैं कि 'इन्द्र विष्णुके साथ युक्त होकर ही (उनका सहयोग प्राप्त करके ही), वारि-निरोधक वृत्रका वध करनेमें समर्थ हुए थे।'[१७] वेद-वचन हमें बतलाते हैं—'विष्णु अन्तरिक्षसे परे सुदूर स्थानमें,[१८] जो पक्षियोंकी उड़ान और मर्त्य-चक्षुकी सीमाके उस पार है, निवास करते हैं।[१९] यह उनका परमप्रिय धाम है[२०]।' 'आकाशमें चारों ओर विचरण करनेवाले नेत्र जिस प्रकार दृष्टि रखते हैं, उसी प्रकार विद्वान् ज्ञानीजन सदा इस परमपदपर दृष्टि रखते हैं[२१] और उस परमपदसे ही स्तुतिवादी और मेधावी विद्वान् अपने हृदयको प्रकाशित करते हैं[२२]। उन पराक्रमी और सबके वस्तुतः बन्धु विष्णुके इस परमपदमें मधुर अमृतका क्षरण होता है।'[२३] ऋषि कहते हैं—'हम तुम्हारे दोनों लोकोंको जानते हैं अर्थात् हम अन्तरिक्ष और पृथिवी दोनोंसे परिचित हैं, लेकिन तुम्हारे परमलोकसे हम परिचित नहीं हैं, उसके विषयमें तो केवल तुम ही जानते हो।'[२४] ऐसे 'उन सर्वप्राचीन, मेधावी, नित्यनवीन और जगन्मादनशील श्रीपति[२५] विष्णुको जो व्यक्ति हव्य प्रदान करता है, जो उनकी महिमाका गान करता है, वह उनके समीप ही स्थान पाता है।'[२६] उन विष्णुने ही इस संसारका (लोकत्रयका) तीन पग रखकर विक्रमण किया था।[२७] अर्थात् उन्होंने ही स्वयंको पृथ्वी, अन्तरिक्ष और आकाशमें तीन देव-रूपोंके द्वारा प्रकट किया था। वे तीन देव-रूप क्या-क्या थे? दुर्गाचार्य अपने निरुक्तके भाष्यमें आचार्य शाकपूणिके इस सिद्धान्तका उल्लेख करते हुए निर्देश करते हैं कि 'विष्णुने स्वयंको पृथ्वीपर अग्निरूपमें, अन्तरिक्षमें विद्युत् (इन्द्र)के रूपमें और आकाशमें सूर्यके रूपमें प्रकट किया था।'[२८] एक अन्य स्थलके अनुसार 'त्रिविक्रम (तीन पग रखनेवालेके रूपमें) अवतार लेकर इन विष्णुने सम्पूर्ण विश्वपर तीन पगोंसे विक्रमण किया था, जिनमें उन्होंने प्रथम पग पृथ्वीपर, द्वितीय पग अन्तरिक्षमें और तृतीय पग द्युलोक (आकाश)में—इस प्रकार क्रमशः अग्नि, वायु तथा सूर्यके रूपमें तीन स्थानोंपर अपने पग रखे।'[२९] सायण भी लिखते हैं कि 'विष्णु ही पृथ्वीसे सम्बन्धित पार्थिव और रञ्जनात्मक लोकोंका तथा आकाश आदि तीन लोकोंका निर्माण कर उनमें अग्नि, वायु तथा आदित्यके रूपमें स्थित हुए।'[३०] ये अग्नि, वायु तथा आदित्य ही वस्तुतः सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण देवता हैं।

---

१६. इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ (ऋग्वेद १।२२।१९)

१७. अहिं यद् वृत्रमपो वव्रिवांसं हन्नृजीषिन् विष्णुना सचानः ॥ (ऋग्वेद ६।२०।२)

१८. तं त्वा गृणामि तवसमतव्यान् क्षयन्तमस्य रजसः पराके ॥ (ऋग्वेद ७।१००।५)

१९. द्वे इदस्य क्रमणे स्वर्दृशोऽभिख्याय मर्त्यो भुरण्यति। तृतीयमस्य नकिरा दधर्षति वयश्चन पतयन्तः पतत्रिणः ॥ (ऋग्वेद १।१५५।५)

२०. विष्णुर्गोपाः परमं पाति पाथः प्रिया धामान्यमृता दधानः। (ऋग्वेद ३।५५।१०)

२१. तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम् ॥ (ऋग्वेद १।२२।२०)

२२. तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते। विष्णोर्यत्परमं पदम् ॥ (ऋग्वेद १।२२।२१)

२३. उरुक्रमस्य स हि बन्धुरित्था विष्णोः पदे परमे मध्व उत्सः ॥ (ऋग्वेद १।१५४।५)

२४. उभे ते विद्म रजसी पृथिव्या विष्णो देवत्वं परमस्य वित्से ॥ (ऋग्वेद ७।९९।१)

२५. सायणने 'सुमज्जानये' शब्दके दो अर्थ दिये हैं—'स्वयमेवोत्पन्नाय' और 'सर्वजगन्मादनशीलश्रीपतये'।

२६. यः पूर्व्याय वेधसे नवीयसे सुमज्जानये विष्णवे ददाशति। यो जातमस्य महतो महि ब्रवत् सेदु श्रवोभिर्युज्यं चिदभ्यसत् ॥ (ऋग्वेद १।१५६।२)

२७. इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्। (ऋग्वेद १।२२।१७)

२८. देखिये निरुक्तमें उद्धृत—'त्रेधाभावाय पृथिव्यामन्तरिक्षे दिवि' इति शाकपूणिः—पर दुर्गाचार्यका भाष्य—पार्थिवोऽग्निर्भूत्वा पृथिव्यां यत्किञ्चिदस्ति तद्विक्रमते। तदधितिष्ठति। अन्तरिक्षे वैद्युतात्मना। दिवि सूर्यात्मना ॥ (१२।२।१९)

२९. विष्णुस्त्रिविक्रमावतारं कृत्वा इदं विश्वं विचक्रमे विभज्य क्रमते स्म। तदेवाह। त्रेधा पदं निदधे भूमावेकं पदमन्तरिक्षे द्वितीयं दिवि तृतीयमिति क्रमादग्निवायुसूर्यरूपेण इत्यर्थः। (वाजसनेयिसंहिता ५।१५ पर महीधर)

३०. यो विष्णुः पार्थिवानि पृथिवीसम्बन्धीनि रजांसि रञ्जनात्मकानि क्षित्यादिलोकत्रयाभिमानीन्यग्निवाय्वादित्यरूपाणि रजांसि विममे विशेषेण निर्ममे। (ऋग्वेद १।१५४।१ पर सायणभाष्य)

इसीलिये वैदिक ऋषि मुख्यतः इन तीन देवताओंके समक्ष नतमस्तक हो प्रार्थना करता है—'स्वर्गीय उपद्रवसे सूर्य, अन्तरिक्षके उपद्रवसे वायु तथा पृथ्वीके उपद्रवसे अग्नि हमारी रक्षा करें।'[३१]

किंतु—पृथ्वी, अन्तरिक्ष और आकाश—इन तीन स्थानोंमें अन्तरिक्षस्थानीय देवताके विषयमें विद्वानोंमें मतभेद रहा है; क्योंकि हम यत्र-तत्र देखते हैं कि विद्युत्, इन्द्र और वायु—ये तीन नाम इस स्थानके साथ बहुधा संयुक्त किये जाते रहे हैं।[३२] इनमें इन्द्रके कार्यको दृष्टिमें रखते हुए विद्युत् तो निश्चय ही इन्द्रका पर्यायवाची शब्द है, परंतु वायु और इन्द्रके विषयमें ज्ञानियोंकी दृष्टि किस प्रकारकी थी, वे उन्हें एक ही मानते थे या अलग-अलग—निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता। किंतु इससे कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। देवता कितने भी क्यों न हों, वे सब-के-सब हैं यज्ञमें हव्यद्वारा प्रापणीय और अभीष्टदाता विष्णुके अंश ही।[३३] अर्थात् अन्य देवता इन विष्णुकी शाखाओंके समान हैं, जब कि ये स्वयं सम्पूर्ण देवताओंकी आत्मा हैं।[३४] यही कारण है कि वेदोंमें विष्णुके बहुत-से लक्षणोंको अन्य पृथ्वीस्थानीय, अन्तरिक्षस्थानीय और द्युस्थानीय देवताओंके ऊपर भी घटा दिया गया है। अतः वेदोंमें विष्णुका स्थान गौण नहीं है; उनके सूक्तोंकी संख्या अल्प भले ही हो, जैसा कि मैकडॉनेल भी स्वीकार करते हैं—'यदि सांख्यिक दृष्टिसे न देखकर उन (विष्णु) पर अन्य पहलुओंसे विचार किया जाय तो उनका महत्त्व बहुत बढ़ कर सामने आता है[३५]।'

अब हम प्रसङ्गवश उन भगवान् रुद्रके विषयमें कुछ लिखेंगे, जिनका प्रादुर्भाव क्रोधमें भरे परमदेव श्रीहरि (विष्णु) के ललाटसे तब हुआ था, जब दो भयंकर राक्षसों—मधु और कैटभ—ने ब्रह्माजीके प्राण हरनेका प्रयत्न किया था।[३६] कहनेका मतलब यह है—'भगवान् रुद्र परमप्रभुके क्रोधका मूर्तिमान् रूप हैं, ठीक वैसे ही जैसे ब्रह्माजी उनके प्रसादका मूर्तिमान् रूप हैं।' महाभारतमें इस विषयमें वर्णित भी है कि—'ब्रह्मा और रुद्र, ये दोनों ही श्रेष्ठ देवता भगवान्के प्रसाद और क्रोधसे प्रकट हुए हैं तथा उनके द्वारा निर्देशित मार्गका आश्रय लेकर सृष्टि और संहारका कार्य पूर्ण करते हैं[३७]।' अब क्योंकि ऐसी बात है, इसीलिये हरिवंशपुराणमें मार्कण्डेय कहते भी हैं—'जो विष्णु हैं, वे ही रुद्र हैं और जो रुद्र हैं, वे ही ब्रह्मा हैं अर्थात् उनका मूलस्वरूप वस्तुतः एक ही है। हाँ, ये कार्यभेदसे रुद्र, विष्णु और ब्रह्मा—तीन देवता अवश्य कहलाते हैं। फलस्वरूप ये तीनों ही लोकस्रष्टा, वरदायक, जगन्नाथ, स्वयम्भू, अर्धनारीश्वर तथा तीव्र व्रतका आश्रय लेनेवाले हैं।'[३८]

इस प्रकार सिद्ध होता है कि ब्रह्मा, विष्णु और महेश वस्तुतः देवाधिदेव हैं, इस विश्व-ब्रह्माण्डके स्रष्टा, पालक और संहारक हैं। फलस्वरूप अन्य सम्पूर्ण देवताओंमें अग्रगण्य हैं, प्रमुख हैं; अधिक क्या—ईश्वर ही हैं।

---

३१. ऋग्वेद १० । १५८ । १

३२. अथास्य कर्म—रसानुप्रदानं वृत्रवधः या च का च बलकृतिरिन्द्रकर्मैव तत् ॥—वृष्टि आदि कराना, वृत्र-वध और बलसम्बन्धी अन्य समस्त कार्य इन्द्रदेवसे सम्बन्ध रखते हैं।' (निरुक्त ७ । १० । २)

३३. अस्य देवस्य मीळ्हुषो वयाः विष्णोरेषस्य प्रभृथे हविर्भिः । (ऋग्वेद ७ । ४० । ५)

३४. विष्णोः सर्वदेवात्मकस्य अस्य देवस्य अन्ये देवाः वया शाखाः इव भवन्ति ॥ —सायण

३५. मैकडॉनेलः—'वैदिक देवशास्त्र' पृ० ८४

३६. तं हन्तुमुद्यतौ घोरौ दानवौ मधुकैटभौ । तयोर्व्यतिक्रमं दृष्ट्वा क्रुद्धस्य भवतो हरेः ॥
ललाटाज्जातवाञ्छम्भुः शूलपाणिस्त्रिलोचनः । इत्थं तावपि देवेशौ त्वच्छरीरसमुद्भवौ ॥
(महाभारत, वन० १२ । ३९-४०)

३७. अह्नः क्षये ललाटाच्च सुतो देवस्य वै तथा । क्रोधाविष्टस्य संजज्ञे रुद्रः संहारकारकः ॥
एतौ द्वौ विबुधश्रेष्ठौ प्रसादक्रोधजावुभौ । तदादेशितपन्थानौ सृष्टिसंहारकारकौ ॥
(महाभारत, शान्ति० ३४१ । १८-१९)

३८. यो वै विष्णुः स वै रुद्रो यो रुद्रः स पितामहः । एका मूर्तिस्त्रयो देवा रुद्रविष्णुपितामहाः ॥
वरदा लोककर्तारो लोकनाथाः स्वयम्भुवः । अर्धनारीश्वरास्ते तु व्रतं तीव्रं समाश्रिताः ॥
(हरिवंशपुराण, विष्णुपर्व १२५ । ३१-३२)

महाभारतमें भगवान् विष्णु

(लेखक—कविराज पं० श्रीनन्दकिशोरजी गौतम 'निर्मल, एम्० ए०, साहित्य-आयुर्वेदाचार्य)

जिस प्रकार ग्रन्थोंमें सबसे बृहदाकार महाभारतका है, उसी प्रकार देवोंमें भी सबसे बृहत्स्वरूप भगवान् विष्णुका है । विशाल ग्रन्थ महाभारतमें भगवान् विष्णुका चरित्र ढूँढ़ना ठीक वैसा ही है, जैसा लवणनिर्मित नौकाके द्वारा महासमुद्रको पार करनेकी इच्छा करना । किंतु इसी बहाने उस निर्गुण-निराकारकी सगुण-साकार लीलाओंका ज्ञान तथा उसकी अपार महिमाका कुछ स्तवन हो सके, इसलिये मैंने इस विशाल समुद्र महाभारतमें अमूल्यरत्न विष्णुचरित्रको ढूँढ़नेका क्षुद्र प्रयास किया है ।

भगवान् विष्णुके नामकी व्युत्पत्ति

वसनात् सर्वभूतानां वसुत्वाद् देवयोनितः ।
वासुदेवस्ततो वेद्यो बृहत्त्वाद् विष्णुरुच्यते ॥

(म० भा०, उद्योग० ७० । ३)

"वे परम पिता परमेश्वर सर्वव्यापक होनेके कारण सभी प्राणियोंमें निवास करते हैं, अतः 'वसु' हैं; और देवोंकी उत्पत्तिके स्थान होनेसे अर्थात् सब देवोंके वे ही निवासस्थान हैं, इसीलिये उन्हें 'देव' कहा जाता है । अतएव उनका प्रथम नाम 'वासुदेव' जानना चाहिये । बृहत् अर्थात् व्यापक होनेके कारण वे ही 'विष्णु' कहलाते हैं ।"

'विष्णुर्विक्रमणाद् देवो जयनाज्जिष्णुरुच्यते ॥'

(म० भा०, उद्योग० ७० । १३)

"विक्रमण (वामनावतार) में तीनों लोकोंको आक्रान्त करनेके कारण वे भगवान् 'विष्णु' कहलाते हैं तथा सबपर विजय पानेसे वे ही 'जिष्णु' भी कहलाते हैं ।"

स्वयं आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्रने अपने प्रिय सखा अर्जुनको अपने 'विष्णु'-नामकी व्याख्या इस प्रकार बतायी है—

गतिश्च सर्वभूतानां प्रजनश्चापि भारत ।
व्याप्ता मे रोदसी पार्थ कान्तिश्चाभ्यधिका मम ॥
अधिभूतानि चान्तेषु तदिच्छंश्चास्मि भारत ।
क्रमणाच्चाप्यहं पार्थ विष्णुरित्यभिसंज्ञितः ॥

(म० भा०, शान्ति० ३४१ । ४२-४३)

"हे भारत ! मैं सम्पूर्ण प्राणियोंकी गति और उत्पत्तिका स्थान हूँ । हे पार्थ ! मैंने ही आकाश और पृथ्वीको व्याप्त कर रखा है । मेरी कान्ति सबसे बढ़कर है । हे भरतनन्दन ! समस्त प्राणी अन्तकालमें जिस ब्रह्मको पानेकी इच्छा करते हैं, वह भी मैं ही हूँ । कुन्तीकुमार ! मैं सबका अतिक्रमण करके स्थित हूँ । इन सभी कारणोंसे मेरा नाम 'विष्णु' हुआ है ।"

आइये, अब 'विष्णु' के पर्याय 'नारायण'-शब्दपर भी थोड़ा विचार कर लें—

'नराणामयनाच्चापि ततो नारायणः स्मृतः ॥'

(म० भा०, उद्योग० ७० । १०)

"भगवान् समस्त नरों (जीवात्माओं) के अयन (आश्रय) हैं, इसलिये उन्हें 'नारायण' कहते हैं ।"

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः ।
अयनं मम तत् पूर्वमतो नारायणो ह्यहम् ॥

(म० भा०, शान्ति० ३४१ । ४०)

"'नर' से उत्पन्न होनेके कारण 'जल' को 'नार' कहा गया है । वह 'नार' (जल) पहले मेरा 'अयन' (निवास-स्थान) था, इसलिये ही मैं 'नारायण' कहलाता हूँ ।"

महाभारतमें एक स्थानपर 'नारायण'-शब्दकी व्याख्या इस प्रकार भी मिलती है—

यः परः प्रकृतेः प्रोक्तः पुरुषः पञ्चविंशकः ।
स एव सर्वभूतात्मा नर इत्यभिधीयते ॥
नराज्जातानि तत्त्वानि नाराणीति ततो विदुः ।
तान्येव चायनं तस्य तेन नारायणः स्मृतः ॥

(म० भा०, अनुशासन० १२४ दाक्षिणात्यपाठ)

"जो चतुर्विंशति-तत्त्वमयी प्रकृतिसे परे उसका साक्षीभूत पचीसवाँ तत्त्व 'पुरुष' कहा गया है तथा जो सम्पूर्ण भूतोंका आत्मा है, उसीको 'नर' कहते हैं । 'नर'-से सम्पूर्ण तत्त्व प्रकट हुए हैं, इसलिये उन्हें 'नार' कहते हैं । 'नार' ही भगवान्का 'अयन' (निवासस्थान) है, इसलिये वे 'नारायण' कहलाते हैं ।"

भगवान् विष्णुके माता-पिता कश्यप और अदिति हैं । ये अदितिके इन्द्रादिप्रधान बारह पुत्रोंमें सबसे छोटे पुत्र हैं, जिनमें सम्पूर्ण लोक प्रतिष्ठित हैं—

द्वादशैवादितेः पुत्राः शक्रमुख्या नराधिप ।
तेषामवरजो विष्णुर्यत्र लोकाः प्रतिष्ठिताः ॥
(म० भा०, आदि० ६६ । ३६)

माता अदितिके पुत्र होनेके कारण धाता, मित्र, अर्यमा, इन्द्र, अंश (अंशु), वरुण, भग, विवस्वान्, पूषा, सविता, त्वष्टा और विष्णु—ये बारहों आदित्य कहलाते हैं । भगवान् विष्णु (उपेन्द्र अथवा वामन) इनमें सबसे छोटे हैं, किंतु छोटे होते हुए भी महाभारत (आदिपर्व ६५ । १५-१६) के अनुसार गुणोंमें सबसे बढ़कर हैं ।

भगवान् नन्दनन्दनने भी गीताके दसवें अध्यायके २१वें श्लोकमें अपनी दिव्य विभूतियोंमें अपने आपको 'विष्णु' ही बतलाकर इस बातकी और भी पुष्टि की है—'आदित्यानामहं विष्णुः'

भगवान् विष्णु संसारके रक्षकके रूपमें प्रसिद्ध हैं और यह भलीभाँति ज्ञात है कि रक्षा करनेके लिये शक्तिकी बड़ी आवश्यकता होती है । इसीलिये भगवान् व्रजेन्द्रनन्दनने अपनी शक्तिकी महत्ता बताते हुए कहा है—'हे भारत ! जब-जब भी धर्मका ह्रास और अधर्मका उत्थान होता है, तब-तब मैं अपने आपको प्रकट करता हूँ । मैं साधुपुरुषों (सज्जनों, भक्तों) के परिरक्षणार्थ तथा दुष्टोंका विनाश करनेके लिये एवं धर्मको संस्थापित करनेके लिये युग-युगमें प्रकट होता हूँ ।' (गीता ४ । ७-८)

शारीरिक शक्तिसे भी बौद्धिक शक्ति विशेष प्रबल है । भगवान् विष्णुमें ये दोनों ही शक्तियाँ अपरिमेय रूपमें मिलती हैं । अतः वे देवोंमें सर्वशक्तिमान् और चतुरतम रूपसे प्रसिद्ध हैं । धर्मज्ञ जानते हैं कि जब कभी शिव, ब्रह्मा तथा इतर देवोंपर विपत्ति आयी है, वहाँ भगवान् विष्णुने ही उनकी रक्षा की है । उदाहरणार्थ उन्होंने समुद्र-मन्थनमें मोहिनीरूप धरकर, हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपुके वधमें वराह तथा नृसिंहरूप धरकर, वृत्रासुर-वधमें वज्रमें प्रविष्ट होकर, बलि-मान-मर्दनमें वामनरूप धरकर, रावण-कुम्भकर्ण-वधमें दशरथनन्दन बनकर तथा दन्तवक्त्र, शिशुपाल और कंसका विनाश करनेके लिये योगेश्वर कृष्ण बनकर अपनी दोनों ही शक्तियोंको भलीभाँति प्रकट किया ।

कोशमें भगवान् विष्णुको इन्द्रका छोटा भाई 'उपेन्द्र' कहा है । बृहदारण्यक उपनिषद्के अनुसार 'विष्णु' वह शक्ति है, जो इन्द्रियों और आत्माको उनके कर्मानुसार नियुक्त करती है । इस प्रकार 'विष्णु' शरीरके अधिष्ठातृदेव भी कहे जा सकते हैं ।

भगवान् विष्णुके धामका वर्णन

महर्षि मुद्गलने जब अपने उञ्छ-धर्मका परिपालन कर महर्षि दुर्वासाको संतुष्ट कर दिया, तब एक देवदूत उन्हें सदेह स्वर्ग ले जानेके लिये एक दिव्य विमान लेकर उपस्थित हुआ और बोला—'मुने ! आप परमसिद्धिको प्राप्त हो चुके हैं । अतः इसपर बैठिये ।' (महा०, वन० २६० । ३२) तब मुनिने पहले उससे स्वर्गके गुण और दोष जाने तथा जानकर कहा—'देवदूत ! तुमने स्वर्गके महान् दोष बताये, परंतु स्वर्गकी अपेक्षा यदि कोई दूसरा लोक इन दोषोंसे सर्वथा रहित हो तो मुझसे उसीका वर्णन करो ।' (महा०, वन० २६१ । ३६)

इसपर देवदूतने कहा—"ब्रह्माजीके लोकसे भी ऊपर भगवान् विष्णुका धाम है । वह शुद्ध-सनातन-ज्योतिर्मय लोक है । उसे 'परब्रह्मका लोक' भी कहते हैं । विप्रवर ! जिनका मन विषयोंमें रचा-पचा रहता है, वे लोग वहाँ नहीं जा सकते । दम्भ, लोभ, महान् क्रोध, मोह और द्रोहसे युक्त मनुष्य भी वहाँ नहीं पहुँच सकते । जो ममता और अहंकारसे रहित तथा सुख-दुःखादि द्वन्द्वोंसे ऊपर उठे हुए हैं, जितेन्द्रिय एवं ध्यानयोगमें तत्पर हैं, वे मनुष्य ही उस लोकमें जा सकते हैं ।"(म० भा०, वन० २६१ । ३७—३९) भगवान् यशोदानन्दन, जो विष्णुकी ही सम्पूर्ण कलाओंके अवतार थे, गीतामें अपने धामको 'अपुनरावर्तनशील' बताकर इतर लोकोंको 'पुनरावर्तनशील' बताते हैं । उन्होंने अपने धामको एक ऐसा दिव्यधाम बताया है, 'जिसे चन्द्रमा और सूर्य भी प्रकाशित नहीं कर सकते । वह तो स्वयं उनकी ज्योतिसे विशेष ज्योतिर्मय लोक है । वहाँ निर्मम, जितेन्द्रिय, निरापी, द्वन्द्वातीत और नित्य अध्यात्मज्ञानमें स्थित रहनेवाले बुद्धिमान् महापुरुष ही पहुँच सकते हैं ।'

भगवान् विष्णुकी महिमा

जब कालकेय-नामक दैत्य तपस्वियोंको खा-खाकर समुद्रमें प्रविष्ट हो जाते थे तथा तपस्वियोंकी रक्षाका कोई उपाय न हो सका, तब उनके अभावमें समस्त यज्ञादि पुण्यकर्म बंद हो गये । जब इन्द्रादि देवता उन्हें मारनेमें असमर्थ रहे, तब सब मिलकर अशरण-शरण, भक्तवत्सल, अजन्मा, सर्वव्यापी,

अपराजित, वैकुण्ठनाथ भगवान् विष्णुकी शरणमें गये और उन्हें नमस्कार कर उनकी महिमाका इस प्रकार गुणगान करने लगे—'प्रभो ! आप ही हमारे स्रष्टा और पालक हैं। आप ही सम्पूर्ण जगत्का संहार करनेवाले हैं। इस स्थावर और जङ्गम सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि आपने ही की है। कमलनयन ! पूर्वकालमें आपने वराहरूप धारण करके सम्पूर्ण जगत्के हितके लिये समुद्रके जलसे इस खोयी हुई पृथ्वीका उद्धार किया था। पुरुषोत्तम ! प्राचीन कालमें आपने ही नृसिंह-शरीर धारण करके आदिदैत्य हिरण्यकशिपुका वध किया था। सम्पूर्ण प्राणियोंके लिये अवध्य बलिको भी आपने ही वामनरूप धरकर त्रिलोकीके राज्यसे वञ्चित किया था। क्रूरकर्मा जम्भ नामक महाबली असुरको भी आपने ही मारा था। ऐसे असंख्य अद्भुत कर्म करनेवाले मधुसूदन ! हम भयभीत होकर आपके शरण आये हैं। आप हमारी रक्षा करें।' (म० भा०, वन० १०२। १८–२५)

महात्मा भीष्मने दुर्योधनसे भगवान् श्रीकृष्णकी, जो विष्णुके ही अवतार थे, ब्रह्माद्वारा बतायी गयी महिमाका इस प्रकारसे वर्णन किया—''पहलेकी बात है, समस्त देवता और महर्षि गन्धमादन पर्वतपर आकर ब्रह्माजीके पास बैठे। वहाँ अचानक एक दिव्य विमान आया और उसमेंसे एक तेजस्वी पुरुष उतरे। ब्रह्माजीने उनकी आरती करके स्तुति की। तदनन्तर वे ब्रह्माजीको अवतारहेतु आश्वासन देकर अन्तर्धान हो गये। तब देवताओंने ब्रह्माजीसे प्रश्न किया—'प्रभो ! आपने विनयपूर्वक प्रणाम करके श्रेष्ठ वचनोंद्वारा जिनकी स्तुति की है, वे कौन थे ? हम उनके विषयमें सुनना चाहते हैं।' तब भगवान् ब्रह्माने उन देवाधिदेव भगवान् नारायणकी महिमाका इस प्रकार गुणगान किया—'हे श्रेष्ठ देवताओ ! जो परमतत्त्व हैं, भूत, भविष्य और वर्तमान—तीनों जिनके उत्कृष्ट स्वरूप हैं तथा जो इन सबसे विलक्षण हैं, जिन्हें सम्पूर्ण भूतोंका आत्मा और सर्वशक्तिमान् प्रभु कहा गया है, जो 'परम ब्रह्म' और 'परमपद'के नामसे विख्यात हैं, उन्हीं परमात्माने मुझे दर्शन देकर, मुझसे प्रसन्न हो बातचीत की है। मैंने उन जगदीश्वरसे सम्पूर्ण जगत्पर कृपा करनेके लिये यों प्रार्थना की है कि 'हे प्रभो ! आप वासुदेव-नामसे विख्यात होकर कुछ कालतक मनुष्योंमें रहें और असुरोंके वधके लिये इस भूतलपर अवतीर्ण हों।'

''सम्पूर्ण जगत्का स्वामी मैं ब्रह्मा उन भगवान्का ज्येष्ठ पुत्र हूँ। तुम सब लोगोंको उन सर्वलोकमहेश्वर भगवान् वासुदेवकी आराधना करनी चाहिये। सुरश्रेष्ठगण ! शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले उन पराक्रमी भगवान् वासुदेवका 'ये मनुष्य हैं' यों समझकर अनादर नहीं करना चाहिये। ये भगवान् ही परम गुप्त धन हैं। ये ही परमपद हैं। ये ही परम ब्रह्म हैं। ये ही परम यश हैं और ये ही अक्षर, अव्यक्त एवं सनातन तेज हैं। ये ही पुरुष-नामसे कहे जाते हैं, किंतु इनका वास्तविक स्वरूप जाना नहीं जा सकता। ये ही विश्वस्रष्टा मुझ ब्रह्माके द्वारा 'परम सुख,' 'परम तेज' और 'परम सत्य' कहे गये हैं। इसलिये 'ये मनुष्य हैं'—यों समझकर इन्द्रादि सम्पूर्ण देवताओं तथा संसारके मनुष्योंको अमित-पराक्रमी भगवान् वासुदेवकी अवहेलना नहीं करनी चाहिये। जो सम्पूर्ण इन्द्रियोंके स्वामी इन भगवान् वासुदेवको केवल मनुष्य कहता है, वह मूर्ख है। भगवान्की अवहेलना करनेके कारण उसे 'नराधम' कहा गया है। जो चराचरस्वरूप श्रीवत्स-चिह्नविभूषित, कान्तिसे सम्पन्न भगवान् पद्मनाभको नहीं जानता, उसे विद्वान् पुरुष 'तमोगुणी' कहते हैं। जो किरीट और कौस्तुभ-मणि धारण करनेवाले तथा मित्रों (भक्तजनों) को अभय देनेवाले हैं, उन परमात्माकी अवहेलना करनेवाला मनुष्य घोर नरकमें डूबता है।'' (म० भा०, भीष्म० ६६। ६–२२)

श्रीहरिके समान जीवका कोई दूसरा हितू नहीं है।

हरि सम हरि ही हितू हमारौ।
आश्रय एक दीन-पतितन कौ, सहज सहाय, सहारौ॥
अवगुन-दोष गनत नहिं एकहु सरनागत के भारी।
निज अवलंबन देय, मिटावत जन की पीड़ा सारी॥
अभय करत निज दयादान दै, भय-बिषाद हर सारे।
पठवत अंत दिब्य निज धामहिं निज सुभाव सौं हारे॥

—'भाईजी'

श्रीविष्णुसहस्रनाम-महिमा

[लेखक—प्रो० श्रीगौरीशंकरजी एम्० ए०, बी० लिट्० (ऑक्सन)]

विष्णुसहस्रनाम महाभारतके अनुशासनपर्वका १४९वाँ अध्याय है । इसमें महाराज युधिष्ठिरके पूछनेपर भीष्मपितामहने विष्णुभगवान्के एक सहस्र नाम स्मरण किये हैं । 'सहस्र' शब्द भी तो अनन्तताका ही प्रतीकमात्र है; क्योंकि अनन्तरूप भगवान्के अनन्त नाम हैं, जैसे कहा भी है—**'अनन्तोऽनन्तनामासि ।'**

श्रीमद्भगवद्गीता अ० १० । १७ में श्रीकृष्णभगवान्ने अर्जुनके यह पूछनेपर कि **'केषु केषु च भावेषु चिन्त्योऽसि भगवन्मया'**—'भगवन् ! आपका चिन्तन किस-किस रूपमें करूँ ?', उन्होंने 'भगवद्विभूतियोग' नामक दसवें अध्यायमें उदाहरणमात्र ७० विभूतियाँ कही हैं । इसी अध्यायके अन्तमें कहा गया है—

नान्तोऽस्ति मम दिव्यानां विभूतीनां परंतप ।
एष तूद्देशतः प्रोक्तो विभूतेर्विस्तरो मया ॥

(गीता १० । ४०)

'परंतप ! मेरी दिव्य विभूतियोंका अन्त नहीं है, यह तो मैंने अपनी विभूतियोंका विस्तार तेरे लिये एकदेशसे अर्थात् संक्षेपसे कहा है ।'

विष्णुसहस्रनाम वर्तमान रूपमें सातवीं (!) शताब्दीसे प्राप्य है । श्रीशंकराचार्यजीने इसपर अपना भाष्य लिखा है । बाणभट्टने कादम्बरीमें सूतिकागृहके वर्णनमें इसका उल्लेख किया है । महाभारतमें इस सहस्रनामको 'विष्णुभगवान्की शब्दमयी मूर्ति' कहा गया है । इस स्तोत्रकी गणना महाभारतान्तर्गत पाँच रत्नोंमें की गयी है । इस संग्रहको 'पञ्चरत्नगीता' भी कहते हैं । यथा—

गीता सहस्रनामैव स्तवराजो ह्यनुस्मृतिः ।
गजेन्द्रमोक्षणं चैव पञ्चरत्नानि भारते ॥

संस्कृतमें भगवत्स्तुति-साहित्यकी परम्परा अति प्राचीन है, जो वैदिक वाङ्मयसे लेकर आधुनिक कालतक चली आ रही है ।

'अग्निमीळे पुरोहितम्' (ऋग्वेद १ । १), **'विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्रवोचम्'** (ऋग्वेद १ । १५४ । १), **'सहस्रशीर्षा पुरुषः'** (शु० यजुर्वेद ३१ । १), **'नमस्ते रुद्र मन्यव'** (शु० यजुर्वेद १५ । १)'

—इत्यादि मन्त्र इस भक्ति-साहित्यके स्रोत माने जाते हैं । स्तोत्र-साहित्यके परमोत्कृष्ट उदाहरण अन्य पुराणोंके साथ-साथ श्रीमद्भागवतमें मिलते हैं । अध्यात्मरामायणमें भी कई स्थलोंपर रामकी स्तुति की गयी है । उसको भी स्तोत्र-शास्त्रकी कोटिमें ही रखा जा सकता है । महाभारतमें भी अनेक स्तोत्र रचे गये हैं । शैव, शाक्त, वैष्णव तथा अन्य सम्प्रदायोंमें अनेक प्रकारके स्तोत्र मिलते हैं । 'बृहत्स्तोत्ररत्नाकर' इत्यादि कई-एक स्तोत्र-संग्रह भी मुद्रित हो चुके हैं । महाकवि कालिदासने भी 'कुमारसम्भव' और 'रघुवंशमें' ब्रह्मा और विष्णुकी स्तुति गायी है और अपने ग्रन्थोंके आरम्भमें शिवकी प्रार्थना की है । कालिदासके अतिरिक्त अन्य महाकवियोंके काव्योंमें भी स्तोत्रकी परम्परा विकसित होती रही है; परंतु स्तोत्र-साहित्यपर अभीतक विशेष अनुसंधान नहीं किया गया है । और **'अग्निमीळे पुरोहितम्'** के वेदवाक्यसे लेकर 'जय जगदीश हरे' तकके स्तोत्रोंका इतिहास वाञ्छनीय है ।

श्रीमद्भगवद्गीतामें आये हुए **'ऋषिभिर्बहुधा गीतं छन्दोभिर्विविधैः पृथक् ।'** (१३ । ४), **'सततं कीर्तयन्तो माम्'**, **'नमस्यन्तश्च मां भक्त्या'** (९ । १४) इत्यादि वाक्य इस बातके प्रमाण हैं कि भगवन्नामकीर्तन भक्तिका अङ्ग माना जाता था और वह नवधा भक्तिमें समन्वित था । 'विष्णुसहस्रनाम'में भीष्मपितामह कहते हैं—

विष्णोर्नामसहस्रं मे शृणु पापभयापहम् ॥
यानि नामानि गौणानि विख्यातानि महात्मनः ।
ऋषिभिः परिगीतानि तानि वक्ष्यामि भूतये ॥

(१२-१३)

'युधिष्ठिर ! मुझसे पाप और भयका नाश करनेवाला भगवान्का सहस्रनाम सुनो । परमात्मा विष्णुके जो-जो गुणानुसारी नाम विख्यात हैं तथा ऋषियोंद्वारा कीर्तित हैं, उन्हें मैं सबके कल्याणके लिये कहता हूँ ।'

गीताकी शब्दावलि विष्णुसहस्रनामसे कई अंशोंमें मिलती है तथा सहस्रनाममें आये हुए **'भूतभव्यभवत्प्रभुः** (१४), **'भूतकृद् भूतभृद्भावः'** (१४), **'भूतात्मा भूतभावनः'** (१४) इत्यादि वाक्य गीताके **'भूतभावन भूतेश'** (१० । १५), **'ममात्मा भूतभावनः'** (९ । ५) इत्यादि वाक्योंसे मिलते हैं । इन दोनोंमें शब्दसाम्य और भावसाम्य पर्याप्त है ।

श्रीविष्णुसहस्रनामपर शांकरभाष्य प्रसिद्ध है, जो गीताप्रेससे हिंदी-अनुवादसहित छपा है । एक और भाष्य

लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर प्रेस, बम्बईसे संवत् १९५० (सन् १८९३) में मुद्रित हुआ था। इसका नाम 'भगवद्गुण-दर्पण' है। यह ग्रन्थ बड़े विद्वत्तापूर्ण ढंगसे लिखा गया है। इसके लेखक श्रीरङ्गाचार्य श्रीवेङ्कटाचार्य हैं। इसमें प्रत्येक नामका व्याकरण-प्रमाणित निर्वचन, व्युत्पत्ति तथा भाष्य दिया गया है। छन्दोबद्ध कारिकाओंमें प्रत्येक नामकी अर्थसहित निरुक्ति दी गयी है। इस प्रकार ७८३ कारिकाओंमें १००० भगवन्नाम-रूप शब्दोंकी निरुक्ति सम्पन्न की गयी है। इन निरुक्तियोंका महत्त्व उतना ही है, जितना यास्कप्रणीत निरुक्तमें दी गयी निरुक्तियोंका। पहली कारिकामें 'विष्णु' शब्दकी व्युत्पत्ति उदाहृत है—

विश्वं सर्वत्र पूर्णत्वात् स्वरूपगुणवैभवैः ।
चराचरेषु भूतेषु वेशनाद् विष्णुरुच्यते ॥ (इत्यादि)

"स्वरूप, गुणों एवं वैभवकी दृष्टिसे सर्वत्र पूर्ण होनेके कारण भगवान् विष्णु 'विश्व' और चराचर भूतोंमें प्रविष्ट होनेके कारण 'विष्णु' कहलाते हैं।"

विष्णुसहस्रनाम एक साहित्यिक सहस्रसंख्याक नामावलि है। इसमें चुन-चुनकर पदावलि श्लोकबद्ध की गयी है। इसमें शब्दप्रवाह इतनी अबाधगतिसे सरल जलधारा-सदृश चलता है कि पाठक एक हजार नामोच्चारणके उपरान्त अत्यधिक आह्लादका अनुभव करता है और भगवत्स्तुतिमें लीन हुआ पाठान्तमें कहता है—'हे भगवन्! आप अनन्त हैं, आपके नाम अनन्त हैं।' जैसे ऋषि कहते हैं—**'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति'** (ऋग्वेद १।१६४।४६), **'यस्य नाम महद्यशः'** (यजु० ३२।३)।

सूचनार्थ निवेदन है कि जिस प्रकार शंकराचार्यकृत विष्णुसहस्रनाम-भाष्य हिंदी-अनुवादसहित गीताप्रेस, गोरखपुर-द्वारा प्रकाशित हुआ है, उसी प्रकार विष्णुसहस्रनामकी टीकाएँ विभिन्न भाषाओंमें हुई हैं और भारतके विभिन्न भागोंसे प्रकाशित हुई हैं।

जो विष्णुसहस्रनामका माला-मन्त्ररूपमें पाठ करते हैं और जिन्हें यह समूचा सहस्रनाम कण्ठस्थ हो गया है, उनका अनुभव है कि इसका पदलालित्य और इसकी कोमल पदावलि इस स्तोत्रके सिद्ध करनेमें कितने सहायक हैं। पाठ करते समय ऐसा प्रतीत होता है, जैसे जलतरंगका सस्वर नाद हो रहा हो।

इस स्तोत्रका बीजमन्त्र ४०वें श्लोकमें कहा गया है—**'सिद्धार्थः सिद्धसंकल्पः सिद्धिदः सिद्धिसाधनः।'**

इसमें अनुप्रास कितना सुन्दर जुटा है। इसी प्रकारकी अनुप्रास-छटा सम्पूर्ण सहस्रनामावलिमें भरी पड़ी है। पाठक समस्त स्तोत्र पढ़कर स्वयं इस बातका अनुभव करते हैं कि काव्य-सौन्दर्य भी इस स्तोत्रमें प्रचुरमात्रामें मिलता है। अनुप्रास देखिये—

'भूतकृद् भूतभृद्भावो भूतात्मा भूतभावनः ॥' (१४)
'वेदो वेदविदव्यङ्गो वेदाङ्गो वेदवित्कविः ॥' (२७)
'श्रीदः श्रीशः श्रीनिवासः श्रीनिधिः श्रीविभावनः।' (७८)
'ब्रह्मण्यो ब्रह्मकृद्ब्रह्मा ब्रह्म ब्रह्मविवर्धनः।' (८४)

कुछ-एक और काव्यगुणोंके उदाहरण देखिये—**'पुष्पहासःप्रजागरः'** (११९)—तू फूलोंकी हँसी है, जो नित्य नवीन रहती है—कुम्हलाती नहीं, कम नहीं होती, सदाबहार है, सदा जागरूक है।

'अमानी मानदो मान्यो लोकस्वामी त्रिलोकधृक्।' (९३)

वह स्वयं अभिमान नहीं करता औरोंको मान देता है, इसीलिये माननेयोग्य होता है—केवल मान्य ही नहीं, लोकस्वामी है—एक लोकका नहीं, तीनों लोकोंका।

वेदोंसे लेकर महाभारतकालतक ऋषि-मुनियों, सिद्ध-साधकोंने जिन-जिन भगवन्नामोंका चिन्तन किया, उन समस्त वाग्विभूतियोंको व्यासजीने सहस्रनाममणिमालामें पिरो दिया है। इस नामावलिमें वैदिक, पौराणिक, दार्शनिक, लौकिक, अलौकिक, पारलौकिक तथा प्रातिभिक विचार-परम्परागत भगवन्नामोंका संग्रह हुआ है। इस संग्रहकी उपमा अमृत-मन्थन-घटसे दी जा सकती है, जो अमृतकलश गहन मन-आलोडन, तीव्र अनुराग और गाढ़ चिन्तनसे ही प्राप्त हो सकता है। इस नामहजारेमें गागरमें सागर भर दिया गया है।

एक बात अवश्य स्पष्ट है कि इस सहस्रनाममें अवतार-शृङ्खला ज्यों-की-त्यों क्रमबद्ध नहीं मिलती, जैसी भागवत-पुराणमें है।

यदि प्रस्थानत्रयीमें उपनिषद्, गीता और ब्रह्मसूत्र गिने जाते हैं तो 'विष्णुसहस्रनाम' भी विष्णु-भक्ति-मालाका प्रमुख मध्यमणि कहा जा सकता है। तभी तो श्रीशंकराचार्यने भी प्रस्थानत्रयीपर भाष्य लिखते समय विष्णुसहस्रनामको भुलाया नहीं। सत्य-नाम भगवान्की जाज्वल्यमान अद्भुत मणिके हजारों पहलू दीखते हैं। यही हमारे ऋषि-मुनियोंकी अक्षय देन है।

नामकी महिमा नामधारीसे अधिक कही गयी है।

नामधारीका दर्शन किसी बिरलेको ही होता है, पर नाम-स्मरणसे हजारों संसार-सागरसे तर जाते हैं । तुलसीदासजीने रामचरितमानसमें नामकी महिमा जी भरकर गायी है । हरिनाम 'औषधं जगतः सेतुः' (४४) है और सर्वपाप-प्रशमनमें साधन है ।

विष्णुसहस्रनामके प्रारम्भमें प्रथम नाम-स्थान 'विश्व'को दिया गया है, जब कि प्रारम्भ 'विष्णु'से भी हो सकता था । 'विश्वं विष्णुः' से प्रारम्भ होकर 'सर्वप्रहरणायुधः' में यह वैष्णवी नाममाला सम्पूर्ण होती है । इसका अर्थ यह हुआ कि यह विश्व ही विष्णुस्वरूप हैं और विष्णु ही इस विश्वके रक्षक हैं, वे कई साधनोंसे इसका पालन-पोषण करते हैं; उनके सिवा अन्य कोई नहीं । वे ही इसके करण-कारण-कर्त्ता हैं, वे ही शरण्य हैं ।

विष्णुसहस्रनामके आधारपर एक प्रार्थना प्रस्तुत है—

'हे भगवन् ! तू एक है और अनेक भी; तू अद्भुत, अचिन्त्य, अचल, अच्युत, अजित, अनीश, अग्राह्य, अदृश्य, अणु, अनन्त, अतुल, अव्यय, अमोघ, अव्यक्त, क्षर-अक्षर, अर्थ-अनर्थ, जय-विजय, पवन-पावन, यज्ञ-यज्ञपति है । तू अनल है, अनिल है, दण्ड-यम तू ही है । देव है देवेश भी, भगवान् है, भक्तवत्सल है, प्राण है, प्राणद भी, योग है, योगी भी, मनोजव है, मनोहर भी, सत्य है, ब्रह्म है । इस प्रकार दशशत भावनाओंसे भरे भगवन्नाम एकके बाद एक आते हैं और सम्मिश्रण ऐसा हुआ है कि नीर-क्षीरके विवेकी परमहंस-जन ही एक नामसे दूसरे नामको पृथक् कर सकते हैं । वास्तवमें यह सम्मिश्रण गङ्गा-यमुनाका संगम या गङ्गा-सागर-सम्मिलन है; क्योंकि 'एको नेकः' वाला वाक्य ही यथार्थ है । भगवान्का पुण्यनाम ही स्मरणीय है; चाहे वह किसी भी रूपमें क्यों न हो ।

'अंहः संहरदखिलं सकृदुदयादेव सकललोकस्य ।
तरणिरिव तिमिरजलधिं जयति जगन्मङ्गलं हरेर्नाम ॥

अर्थात् 'जैसे उदय होते ही सूर्यभगवान् सारे संसारसे अन्धकार दूर कर देते हैं, उसी प्रकार जगत्का मङ्गलकारी हरिनाम एक बारके उच्चारणसे ही उच्चारण करनेवाले सम्पूर्ण जन-समुदायके समस्त पापोंका नाश कर देता है ।'

श्रीविष्णुसहस्रनामस्तोत्रका प्रतिपाद्य

(लेखक—श्रीसुखमय भट्टाचार्य)

श्रीविष्णुसहस्रनामस्तोत्र महाभारतके अनुशासनपर्वका एक अंश है । कुरुक्षेत्रके महासमरमें असंख्य बन्धु-बान्धव, गुरुजन तथा ज्ञातिजनोंके निधनसे संतप्त युधिष्ठिरने शरशय्यापर पड़े पितामह भीष्मसे अनेक विषयोंपर प्रश्न पूछे थे और ज्ञान-विज्ञान-निधि पितामहने उन्हें सारगर्भित उपदेश दिये थे । सारे उपदेश और धर्मतत्त्व सुननेके बाद युधिष्ठिरने पुनः पितामहसे प्रश्न किया था कि 'किमेकं दैवतं लोके ? (२) —लोकमें एकमात्र देवता कौन है ?'—यह प्रथम प्रश्न है (१) ।

'**किं वाप्येकं परायणम्**—एकमात्र परायण अर्थात् परम प्राप्तव्य एक वस्तु क्या है, जिस एकको प्राप्त करनेपर सब कुछ प्राप्त हो जाता है—जिसको प्राप्त करनेपर जीवको संसारमें नहीं लौटना पड़ता ?'

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे ॥
(श्रीमद्भागवत १ । २ । २१)

'हृदयमें आत्मस्वरूप भगवान्का साक्षात्कार होते ही हृदयकी ग्रन्थि टूट जाती है, सारे संदेह मिट जाते हैं और कर्मबन्धन क्षीण हो जाता है ।'

इस प्रकारका परम प्राप्तव्य या उपेय क्या है ?' यह दूसरा प्रश्न है । (२)

'स्तुवन्तः कं कमर्चन्तः प्राप्नुयुर्मानवाः शुभम् ॥' (२)

'किस देवताकी स्तुति या गुण-कीर्तन करनेपर अथवा किस देवताकी बाह्य या आभ्यन्तर अर्चनासे मानव स्वर्गापवर्ग-आदि शुभ गतिको प्राप्त कर सकता है ?'—यहाँ दो और प्रश्न हुए । (३-४)

'को धर्मः सर्वधर्माणां भवतः परमो मतः ।' (३)

'सब धर्मोंमें आपके मतसे कौन धर्म श्रेष्ठ है ?'—यह पाँचवाँ प्रश्न है । (५)

'किं जपन्मुच्यते जन्तुर्जन्मसंसारबन्धनात् ॥' (३)
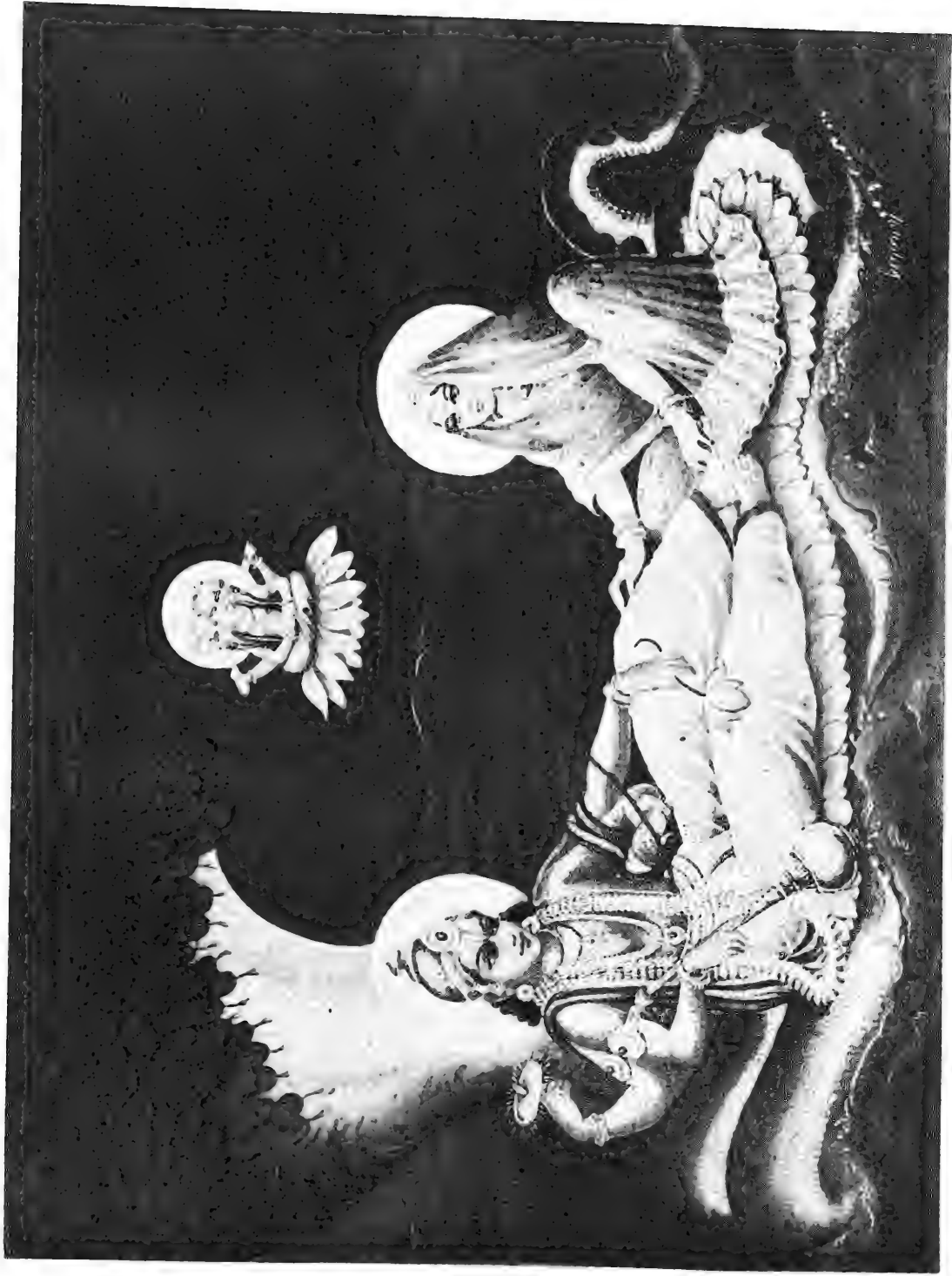
शेष-शय्यापर श्रीलक्ष्मी-विष्णु

'उच्च, उपांशु और मानस जपरूपी उपासनाके द्वारा किस देवकी आराधना करनेपर प्राणी अविद्याके कार्य जन्म तथा अविद्यारूप संसारसे अर्थात् सब प्रकारके दुःख और दुःखके कारणसे मुक्ति प्राप्त कर सकता है ?'—यह छठा प्रश्न है। (६)

युधिष्ठिरके इन छः प्रश्नोंको सुनकर पितामहने क्रम-पूर्वक उत्तर नहीं दिया, जिज्ञासुके समझनेयोग्य उत्तर दिया है। इस कारण पहले उन्होंने छठे प्रश्नका उत्तर दिया है—'स्थावर-जंगमात्मक जगत्के प्रभु, देव-देव, जो देश-काल और वस्तुके द्वारा परिच्छिन्न नहीं हैं, उन्हीं अनन्त पुरुषोत्तमके सहस्रनामका पाठ करके उनकी भक्तिके साथ स्तुति करनेपर जीव सब प्रकारके दुःखोंसे सदाके लिये मुक्त हो सकता है। तृतीय प्रश्नका उत्तर है—'**सर्वदुःखातिगो भवेत्**।' (६)—इसका प्रत्येक उत्तरके साथ सम्बन्ध है।

इसके बाद पितामहने चतुर्थ प्रश्नका उत्तर दिया है—'सदा भक्तिपूर्वक उस विनाश और विक्रियासे रहित अव्ययके ध्यानरूप आभ्यन्तर अर्चना तथा स्तुति और नमस्काररूप बाह्य अर्चना अर्थात् मानसिक, वाचिक और कायिक अर्चनाके द्वारा भक्त सब प्रकारके शुभ फलको प्राप्त कर सकता है।'

अब तृतीय प्रश्नके उत्तरमें कहते हैं कि 'छः भाव-विकारोंसे रहित, सर्वव्यापक विष्णु ब्रह्मा आदि नियामकोंके भी नियन्ता हैं, ईश्वर हैं, उन सर्वलोकमहेश्वरका निरन्तर गुण-कीर्तन करते रहनेसे मनुष्य सब प्रकारके दुःखोंसे सदाके लिये मुक्त हो जाता है। वे ही लोकनाथ हैं, वे ही परमार्थ सत्य हैं। वे ही सब भूतोंकी उत्पत्ति और प्रलयके स्थान हैं।'

इसके बाद पञ्चम प्रश्नके उत्तरमें भीष्मपितामह कहते हैं कि 'वेद-बोधित सब धर्मोंमें वक्ष्यमाण धर्मको ही मैं श्रेष्ठतम मानता हूँ।' इस स्तुतिरूप उपासनामें हिंसा, दूसरे पुरुषकी अपेक्षा तथा द्रव्य-देश-काल आदिके नियमकी अपेक्षा नहीं होती। इसी कारण यह उपासना श्रेष्ठ है। महाभारतकार कहते हैं—

जपस्तु सर्वधर्मेभ्यः परमो धर्म उच्यते।
अहिंसया च भूतानां जपयज्ञः प्रवर्त्तते॥

गीतामें भी श्रीभगवान्की वाणी है—'**यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि**।'

इन्हीं सब कारणोंसे भीष्मपितामह कहते हैं—

'**एष मे सर्वधर्माणां धर्मोऽधिकतमो मतः**।' (८)

'विधिरूप सम्पूर्ण धर्मोंमें मैं इसी धर्मको सबसे बड़ा मानता हूँ।'

भीष्मपितामह अब द्वितीय प्रश्नका उत्तर देते हैं—'जो देव परम तेज, परम तप, परम ब्रह्म, परम परायण हैं, वे ही एकमात्र सब भूतोंके परायण अर्थात् परम उपेय हैं।'

सबसे अन्तमें पितामह प्रथम प्रश्नके उत्तरमें युधिष्ठिरसे कहते हैं—'वे तीर्थ आदि पुण्यक्षेत्रोंको भी पावन करते हैं, वे संसारके हेतुस्वरूप पुण्यापुण्यरूप कर्मों तथा उनके कारणस्वरूप सर्वप्रकारके अज्ञानके नाशक हैं। वे देवताओंके भी देवता हैं, मङ्गलके भी मङ्गल हैं, वे अव्यय हैं तथा वे ही समस्त भूतवर्गके पिता हैं। अतएव वे ही संसारमें एकमात्र देवता हैं।' (१०)

इस प्रकार युधिष्ठिरके छः प्रश्नोंका संक्षिप्त उत्तर देकर पितामह बोले—'राजन्! जिससे सब भूतोंकी उत्पत्ति है, जिसमें स्थिति है और जिसमें प्रलय है, उन परमात्मा विष्णुके सहस्रनामस्तोत्रका तुम्हारे सामने कीर्तन करता हूँ। यह स्तोत्र पापनाशक और भयनाशक है। ऋषिलोग विष्णुके गौण और मुख्य नामोंका कीर्तन करते हैं। अचिन्त्य-प्रभावशाली परमात्माके इस सहस्रनामका मैं चारों पुरुषार्थोंकी सिद्धिके लिये कीर्तन करता हूँ। ध्यानसे सुनो।' (११—१३)

भाष्यकार आचार्य शंकर कहते हैं—''सहस्रनामके भीतर 'आदित्य' आदि शब्द अन्य अर्थमें प्रसिद्ध होनेपर भी परमात्मा विष्णुके विभूतिरूपमें उनसे अभिन्न हैं। अतएव प्रसिद्धार्थ ग्रहण करनेपर भी विष्णुकी स्तुतिके रूपमें उनका ग्रहण हो सकता है। श्रीपति, माधव आदि नामोंमें भी पुनरुक्तिकी आशङ्का नहीं है; क्योंकि सभी नाम एकमात्र विष्णुके प्रतिपादक हैं।''

इस प्रकार उपोद्घातके पश्चात् अध्यायके चौदहवें श्लोकसे नाम-समूह कीर्तित हुए हैं। नाम-समूहमें पुँल्लिङ्ग शब्द विष्णुके विशेषण हैं, स्त्रीलिङ्ग शब्द देवतावाची हैं और क्लीबलिङ्ग शब्द ब्रह्मके विशेषण हैं।

स्तोत्रमें पहला नाम '**विश्वम्**' है। विश्व अर्थात् जगत्के कारणरूपमें विश्व-शब्द ब्रह्मवाचक है। कार्यभूत '**विरिञ्चि**' आदि नामोंके द्वारा भी कारणरूपी विष्णुकी स्तुति समझनी

चाहिये। विश्व भी उससे भिन्न नहीं है, यह बात भी श्रुति-प्रतिपादित है—'ब्रह्मैवेदं विश्वम्।'

योगके द्वारा विष्णु उपेय हैं, इसी कारण उनका एक नाम 'योग' भी है। इस प्रकार व्याकरणकी व्युत्पत्तिका अनुसरण करके आचार्यने अपने रचित भाष्यमें प्रत्येक नामकी व्याख्या की है। व्याख्याके अनुकूल प्रचुरमात्रामें श्रुति-स्मृतिका उद्धरण दिया गया है।

किसी-किसी नाममें नामका एकदेश गृहीत हुआ है, यह भी देखनेमें आता है। जैसे, 'सिंह' शब्दमें पूर्वांश 'नृ' या 'नर' शब्द लोप कर दिया गया है। स्तोत्रमें विशेषण-युक्त नाम भी हैं—जैसे, 'महर्षिः कपिलाचार्यः'। इस स्तोत्रके भीतर दो श्लोकांशका अवलम्बन करके गौड़ीय वैष्णवाचार्योंमें कोई-कोई महाप्रभु श्रीचैतन्यदेवके विष्णुत्वके सिद्धान्तको दृढ़ करनेका प्रयास करते हैं। एक श्लोक है—

'संन्यासकृच्छमः शान्तो निष्ठा शान्तिः परायणम्॥'

(विष्णुसहस्रनाम ७५)

और दूसरा श्लोक है—

'सुवर्णवर्णो हेमाङ्गो वराङ्गश्चन्दनाङ्गदी॥'

(विष्णुसहस्रनाम ९२)

भविष्यमें भगवान् श्रीविष्णु इसी प्रकार अवतीर्ण होंगे, यह न कहनेपर भी किसी प्रकारकी असंगतिकी आशङ्का नहीं है। भगवान् शंकराचार्यने अन्य प्रकारसे व्याख्या की है। मोक्षके निमित्त जिसने चतुर्थ आश्रमकी सृष्टि की है, वह विष्णु ही **'संन्यासकृत्'** हैं। प्रधानतः संन्यासियोंके ज्ञान-साधन शमके वक्ताके रूपमें विष्णुका एक नाम 'शम' है। विषय-सुखमें अनासक्त होनेके कारण उनका एक नाम 'शान्त' है। श्रुति भी कहती है—**'शान्तं शिवमद्वैतम्।'**

विष्णुके ध्यानमन्त्रसे जाना जाता है कि वे **'हिरण्मयवपु'** हैं। **'यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णम्', 'य एषोऽन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषः'**—इत्यादि श्रुतियाँ भी इस विषयमें प्रमाण हैं। उसके ध्यानमन्त्रसे भी जाना जाता है कि वे **'केयूरवान् कनककुण्डलवान्'** हैं, अतएव भविष्यत्‌में वे सुवर्णवर्ण श्रीचैतन्यके रूपमें अवतीर्ण होंगे—यह कल्पना भक्तकी भावाभि-व्यक्ति है। स्तोत्रका उपसंहार करते हुए भीष्म कहते हैं—

वेदान्तगो ब्राह्मणः स्यात् क्षत्रियो विजयी भवेत्।
वैश्यो धनसमृद्धः स्याच्छूद्रः सुखमवाप्नुयात्॥

(विष्णुसहस्रनाम १२३)

'इस स्तोत्रका पाठ करनेसे ब्राह्मण वेदान्तमें पारंगत हो जाता है, क्षत्रिय विजय प्राप्त करता है, वैश्य धनवान् होता है और शूद्र इसे सुनकर ही सुख प्राप्त करता है।'

महाभारतकार महर्षि कहते हैं—

'श्रावयेच्चतुरो वर्णान् कृत्वा ब्राह्मणमग्रतः।'

'ब्राह्मणको आगे रखकर इस स्तोत्रका पाठ चारों वर्णोंके लोगोंको सुना सकते हैं।'

'व्यासोक्त इस स्तोत्रके पाठसे तथा श्रवणसे भक्तिमान् व्यक्ति सर्वविध कल्याणको प्राप्त करता है'—आचार्य शंकर कहते हैं कि यह उक्ति यथार्थ है; स्तोत्रकी प्रशंसामें अर्थवाद नहीं है। स्तोत्रके पाठ और श्रवणसे मानव धन्य, कृतार्थ और कृतकृत्य हो जाता है—

विश्वेश्वरमजं देवं जगतः प्रभवाप्ययम्।
भजन्ति ये पुष्कराक्षं न ते यान्ति पराभवम्॥

(विष्णुसहस्रनाम १४२)

'जो पुरुष विश्वेश्वर, अजन्मा और संसारकी उत्पत्ति तथा लयके स्थान देवदेव पुण्डरीकाक्षको भजते हैं, उनका कभी पराभव नहीं होता।'

वैष्णवोंकी रक्षामें स्वयं गोविन्द तत्पर रहते हैं

ध्यायन्ते वैष्णवाः शश्वद् गोविन्दपदपङ्कजम्। ध्यायते तांश्च गोविन्दः शश्वत्तेषां च संनिधौ॥
सुदर्शनं संनियोज्य भक्तानां रक्षणाय च। तथापि नहि निश्चिन्तोऽवतिष्ठेद्भक्तसंनिधौ॥

(ब्रह्मवैवर्त्तपुराण, ब्रह्म० ११। ४४-४५)

'वैष्णवजन सदा गोविन्दके चरणारविन्दोंका ध्यान करते हैं और बदलेमें भगवान् गोविन्द उनका ध्यान ही नहीं करते, वरं सदा उनके निकट रहते हैं। भक्तोंकी रक्षाके लिये सुदर्शनचक्रको नियुक्त करके भी श्रीहरि निश्चिन्त नहीं होते, अपितु स्वयं भी उनके पास उपस्थित रहते हैं।'

रामकाव्यमें विष्णु

(लेखक—डॉ० श्रीभवानीशंकरजी पंचारिया, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

भगवान् श्रीरामका गुण-गान करनेवाले काव्य-ग्रन्थ प्रभूत हैं; किंतु उस विशाल साहित्य-भंडारमें अग्रगण्य—वाल्मीकिरामायण, अध्यात्मरामायण और रामचरितमानस—इन तीन काव्योंको मुख्य आधार बनाकर ही भगवान् विष्णु और भगवान् श्रीरामकी अभिन्नताके विषयमें यत्किंचित् विवेचन किया जा रहा है।

'विष्णु' शब्द 'विष्लृ' धातुसे निष्पन्न है, जिसका अर्थ है—'सर्वत्र व्याप्त होना'। इसी तरह 'रा' विश्वका बोधक है और 'म' ईश्वरका वाचक। अतः जो समस्त लोकोंका ईश्वर है, वही 'राम' है—

रा-शब्दो विश्ववचनो मश्चापीश्वरवाचकः।
विश्वानामीश्वरो यो हि तेन रामः प्रकीर्तितः॥

भगवान् शंकरके मतसे यदि समस्त विष्णुसहस्रनाम-का पाठ न हो सके तो केवल 'राम-राम'के जपसे ही सहस्र-नामके पाठका फल मिल जाता है—

राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे।
सहस्रनाम तत्तुल्यं रामनाम वरानने॥
(बुधकौशिक रामरक्षास्तोत्र)

भगवान् शिव कहते हैं—"राम-राम-राम—इस प्रकार उच्चारण करता हुआ मैं मनोभिराम भगवान् राममें ही रमण करता हूँ। हे सुमुखि पार्वती! एक ओर भगवान् विष्णुका सहस्रनाम और दूसरी ओर एक राम-नाम—दोनों बराबर हैं।'

रामरहस्योपनिषद्में "'राम' ही परम ब्रह्म हैं, 'राम' ही परम तपःस्वरूप हैं, 'राम' ही परमतत्त्व हैं और 'राम' ही तारक ब्रह्म हैं।"

आदिकवि महर्षि वाल्मीकिके मतानुसार 'राम' स्वयं विष्णु हैं और 'सीता' लक्ष्मी हैं—'सीताकी अग्नि-परीक्षाके बाद ब्रह्मा, शिव तथा अन्य प्रमुख-प्रमुख देवता कहते हैं—

सीता लक्ष्मीर्भवान् विष्णुर्देवः कृष्णः प्रजापतिः॥
वधार्थं रावणस्येह प्रविष्टो मानुषीं तनुम्।
(वा० रा० ६। ११७। २७-२८)

विष्णुसहस्रनामके भाष्यमें भगवत्पादने राम (३९४), कपीन्द्र (५०१), धनुर्धर (८५७), धनुर्वेद (८५७)—विष्णुके इन नामोंकी रामके वाचक कहकर व्याख्या की है, जिससे ध्वनित होता है कि राम-कृष्ण-नारायण अभिन्न हैं।

वस्तुतः ऋग्वेदमें जिसे 'पुरुष' कहा गया है, उसीसे इन्द्र, अग्नि, सूर्य, वरुण आदि समस्त वैदिक देवता प्रादुर्भूत होते हैं—इस प्रकारकी हिंदू-शास्त्रोंमें सर्वत्र सहमति है। इसी पुरुष—ब्रह्म या ईश्वरके दो स्वरूप स्वीकार किये जाते हैं—'निर्गुण' और 'सगुण'। निर्गुण ब्रह्मके सगुण बननेका कारण स्वयं भगवान् विष्णुने कृष्णरूपमें अपने शिष्य अर्जुनसे 'धर्मकी संस्थापना, दुष्टोंका निग्रह और साधुपुरुषोंपर अनुग्रह' बताया है।

विष्णुके ये प्रमुख अवतार कहे जाते हैं—

मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नरसिंहोऽथ वामनः।
रामो रामश्च कृष्णश्च बुद्धः कल्किश्च ते दश॥

भगवान् विष्णुके इन सगुण अवतारोंका उल्लेख करती हुई सती मन्दोदरी महापण्डित रावणको श्रीरामके मानवरूपमें प्रादुर्भूत होनेका संदर्भ देते हुए कहती है—'तुम अथवा अन्य कोई भी रामको कभी नहीं जीत सकता। देवाधिदेव भगवान् राम साक्षात् प्रकृति और पुरुषके नियामक हैं।' (अध्यात्म० ६। १०। ४४। ४५) वह अपनी बातकी पुष्टिमें भगवान् विष्णुके पूर्व अवतारोंका संकेत करती हुई कहती है—

'इन्होंने ही कल्पके प्रारम्भमें मत्स्यरूपमें अवतीर्ण होकर वैवस्वत मनुकी समस्त आपत्तियोंसे रक्षा की थी। ये ही बादमें एक लक्ष योजन विस्तारवाले कच्छप हुए और समुद्रमन्थन-के समय इन्होंने अपनी पीठपर सुमेरु पर्वतको धारण किया और किसी समय वराहरूप धारण कर इस पृथ्वीका उद्धार कर महादुराचारी हिरण्याक्ष दैत्यको मारा था। इन्होंने ही नृसिंह-शरीरसे त्रिलोकीके कण्टकरूप हिरण्यकशिपु दैत्यको मारा था। पुनः इन रघुश्रेष्ठने ही वामन-अवतारमें बलिको बाँधकर सम्पूर्ण त्रिलोकीको तीन ही पगोंसे नापकर अपने सेवक इन्द्रको दे दिया था। जिस समय राक्षसगण क्षत्रिय-रूपसे उत्पन्न होकर पृथ्वीके भाररूप हुए, तब इन्होंने ही

परशुराम बन उन्हें कई बार संग्रामभूमिमें मारा और उसे कश्यप मुनिको दे दिया। इस समय वे ही परात्पर प्रभु रघुवंशमें रामरूपसे अवतीर्ण होकर आपके लिये मनुष्यरूपसे प्रकट हुए हैं।' (अध्यात्मरामायण ६ । १० । ४६-५२)

उपरिवर्णित संदर्भोंसे सिद्ध है कि मन्दोदरीके मतानुसार राम और विष्णु एक ही तत्त्व हैं। अब यह प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या रावण इस रहस्यसे अपरिचित था ? यदि वह वेदज्ञ और पण्डित था तो उसे रामके बारेमें संदेह क्यों हो गया ? क्या उसे विज्ञानवेत्ता मानते हुए भी अज्ञ कहा जायगा ? वस्तुतः रावणने मारीचको सीतापहरणके लिये प्रेरित किया, इसका कारण यही था कि वह यह जानना चाहता था कि क्या श्रीराम मानवरूपमें ईश्वर ही हैं। उसने मनमें यह निश्चय किया था कि यदि ये परात्पर ब्रह्म होंगे तो अवश्य ही कनकमृगके छद्मको जानकर उसका पीछा नहीं करेंगे; किंतु यदि वे कनकमृगसे मोहित होते हैं तो वे राजपुत्र ही हैं। कारण, ब्रह्मको मायाका पूर्ण ज्ञान होता है, उसके समक्ष किसीका छल नहीं चल सकता। वस्तुतः रामने रावणकी दृष्टिमें अपनेको साधारण मानवरूपमें दिखलाकर रावणको अपने व्यवहारसे भ्रमित कर दिया था, यद्यपि खर-दूषण-त्रिशिरादिके विनाशपर उसे यह अनुभव हो चुका था कि इन्हें जीतना किसी सामान्य वीर पुरुषका कर्म नहीं हो सकता। उसने विचार कर लिया था—

'खर दूषन मोहि सम बलवंता। तिन्हहि को मारइ बिनु भगवंता॥'
(रा० च० मा० ३ । २२ । १)

भगवान् विष्णु और रामके एक होनेके विभिन्न आधार हैं। अनेक स्थलोंपर श्रीरामको विष्णुसे सम्बन्धित विशेषणोंसे सम्बोधित किया गया है। 'हरि' शब्द विष्णुके लिये प्रयुक्त होता है। मानसकारने श्रीरामके लिये भी यत्र-तत्र इस शब्दको प्रयुक्त किया है, यथा—

'तेहि अवसर भंजन महि भारा। हरि रघुबंस लीन्ह अवतारा॥'
(रा० च० मा० १ । ४७ । ३/२)

वस्तुतः मानसकारकी मान्यता है कि श्रीराम विष्णुके ही अवतार हैं। किसी समय नारदने अखण्ड समाधि लगायी। अतः इन्द्रको यह भय होने लगा कि ये इन्द्र-पद-हेतु ही इस दुष्कर कर्ममें संलग्न हैं। उनके तपको भङ्ग करनेके लिये उसने कामको भेजा। किंतु कामपर नारदने विजय प्राप्तकर सबको आश्चर्यचकित कर दिया। नारदने अपनी काम-विजयको गाथाके रूपमें जब प्रचारित करना प्रारम्भ कर दिया, तब भगवान् विष्णुने अपनी मायासे रचित विश्वमोहिनी नामकी राजकुमारीके प्रेम-पाशमें जकड़कर उनकी अकड़ मिटा दी। विश्वमोहिनी-स्वयंवरमें क्रुद्ध होकर नारदने जिन दो हरगणोंको शाप दिया, वे ही बादमें रावण-कुम्भकर्णादि राक्षस हुए। साथ ही नारदजीने उपहास करनेके आरोपमें भगवान् विष्णुको भी मृत्युलोकमें जन्म लेनेका शाप दे दिया। इस तरह कहा जाता है कि नारदके उग्र शापके परिणामस्वरूप ही रावण-कुम्भकर्णका जन्म होता है और उनके अत्याचारको मिटानेके लिये ही स्वयं 'हरि'को रघुवंशमें दशरथ-कौसल्यादि तीन रानियोंसे चार अंशोंमें राम-लक्ष्मण एवं भरत-शत्रुघ्नके रूपमें अवतरित होना पड़ता है। निम्न चौपाईसे इस तथ्यका आभास होता है—

भुज बल बिस्व जितब तुम्ह जहिआ। धरिहहिं बिष्नु मनुज तनु तहिआ॥
समर मरन हरि हाथ तुम्हारा। होइहहु मुकुत न पुनि संसारा॥
(रा० च० मा० १ । १३८ । ३-३ १/२)

यहाँ मानसकारने इस बातका संकेत किया है कि नारदके शापसे ही शिवगणोंको राक्षस होना पड़ा और उनकी मुक्तिके लिये ही साक्षात् श्रीहरि (विष्णु) को ही रामरूपमें जन्म धारण करना पड़ा था। एक अन्य स्थानपर स्वयं नारदजीने यह जिज्ञासा भी की है कि पूर्व समयमें उन्हें भगवान् हरिने (अब रामने) विवाह करनेसे क्यों रोक दिया था। यहाँ यह ध्यान देनेकी बात है कि यदि राम और विष्णुमें अन्तर होता तो नारद उनसे ऐसा प्रश्न क्यों करते ? फिर नारद कोई ऐसे-वैसे तपस्वी नहीं थे, जो बिना रामको समझे-बूझे ही 'परं ब्रह्म' कहते। अतः नारदजीके मतसे भी राम और विष्णुमें एकत्व होना परिलक्षित होता है।

रामके लिये मानसने रमानिवास, रमेश, श्रीरमण, रमारमण, रमानाथ, इन्दिरापति, श्रीपति आदि विशेषणोंको प्रयुक्त किया है, जिससे उनका विष्णु होना स्पष्ट है।

श्रीराम-तत्त्वके आदि ज्ञाता भगवान् शिवने पार्वतीको रामका स्वरूप समझाते हुए कहा है—

रामः परात्मा प्रकृतेरनादिरानन्द एकः पुरुषोत्तमो हि ॥
स्वमायया कृत्स्नमिदं हि सृष्ट्वा नभोवदन्तर्बहिरास्थितो यः ।
सर्वान्तरस्थोऽपि निगूढ आत्मा स्वमायया सृष्टमिदं विचष्टे ॥
(अ० रा० १ । १ । १७-१८)

अर्थात् श्रीरामचन्द्रजी निस्संदेह प्रकृतिसे परे, परमात्मा, अनादि, आनन्दघन और अद्वितीय पुरुषोत्तम हैं, जो अपनी मायासे ही इस सम्पूर्ण जगत्को रचकर इसके बाहर-भीतर सब ओर आकाशके समान व्याप्त हैं तथा जो आत्म-रूपसे सबके अन्तःकरणमें स्थित हुए अपनी मायासे इस विश्वको परिचालित करते हैं। स्वयं श्रीरामने हनुमान्जीको अध्यात्म-तत्त्व समझाते हुए इस बातका रहस्योद्घाटन किया था कि जब विश्रवाके पुत्र रावणके अत्याचारोंसे संतप्त होकर समस्त देवगण ब्रह्मासहित श्रीहरिसे अवतार-हेतु प्रार्थना करते हैं, तब शेषशायी परात्पर नारायण उन्हें राजा दशरथके यहाँ पुत्ररूपमें प्रकट होनेका आश्वासन देते हैं। अतः इसी प्रयोजनसे उन्होंने क्षीर-सागरसे मृत्युलोक-में संचरण किया था।

महर्षि वाल्मीकिने भी इसी बातकी पुष्टि की है—

स हि देवैरुदीर्णस्य रावणस्य वधार्थिभिः ।
अर्थितो मानुषे लोके जज्ञे विष्णुः सनातनः ॥
(वा० रा० २ । १ । ७)

अर्थात् वे सनातन विष्णु थे और परम प्रचण्ड रावण-के वधकी अभिलाषा रखनेवाले देवताओंकी प्रार्थनापर मनुष्यलोकमें अवतीर्ण हुए थे।

गोस्वामी तुलसीदासजीके मतानुसार श्रीरामकी मानव-लीलासे भ्रमित होकर ही विभिन्न लोगोंको उनके ईश्वरत्वमें संदेह होने लगा था। उदाहरणार्थ जब सतीने पत्नी-वियोगसे श्रीरामको पीड़ित देखा, तब वे उनको राजपुत्र समझने लगीं। सतीके मनमें यह संदेह हुआ कि श्रीराम यदि साक्षात् सच्चिदानन्द परधाम हैं तो फिर उनके जीवनमें संयोग-वियोग, सुख-दुःख कहाँसे आया? अतः वे स्वयं उनका परीक्षण करती हैं। इस परीक्षामें सतीको बहुत बड़ी कीमत भी चुकानी पड़ी थी।

शंकरजीने उन्हें ऐसी शिक्षा दी कि फिर उन्हें श्रीरामके बारेमें किसी भी प्रकारका कोई भ्रम न रहा। सतीने देखा कि जो क्षणभर पूर्व सीताके वियोगसे दुःखी थे, वे ही श्रीराम सीतासहित अनेक शिव-ब्रह्मादि देवताओंसे पूजित होकर अत्यधिक कान्तिशाली लग रहे हैं। अतः सतीका भ्रम तो स्वयं श्रीरामने दूर कर दिया था। सतीने श्रीरामकृपासे श्रीरामरूपमें समस्त ब्रह्माण्डोंको प्रकाशित देखा।

श्रीरामके विषयमें विभिन्न व्यक्तियोंके भ्रमित होनेके प्रसङ्गोंके अनुशीलनसे ज्ञात होता है कि इसका मूल कारण उनकी आदर्श मानवीय भूमिका ही रही है। उदाहरणार्थ, जब बालकरूपमें काकभुशुण्डिजीको उन्होंने अपनी क्रीड़ाका परिचय दिया, तब वे उन्हें सामान्य शिशु समझने लगे। ज्यों ही श्रीरामको इसका आभास हुआ, उन्होंने अपनी थोड़ी-सी बाललीला की और काकभुशुण्डिको अपनी समस्त भूल-का आभास करा दिया। काकभुशुण्डिने देखा कि श्रीरामके उदरमें समस्त ब्रह्माण्ड हैं, वे ही जगत्के एकमात्र स्वामी हैं। उन्हें श्रीरामने प्रत्येक ब्रह्माण्डका दिग्दर्शन कराकर आत्मज्ञान दे दिया।

जिस तरह कोई नट अनेक वेष-भूषा धारणकर नृत्य करता है और रूपके अनुरूप वही भाव दिखाता है, जो जब जरूरी हो, परंतु वेष धारण करनेवाला स्वयं वह नहीं हो जाता, इसी तरह यद्यपि श्रीरामने आदर्श पुत्र, आदर्श भ्राता, आदर्श पति एवं आदर्श नरेशादिकी भूमिका जिस कुशलतासे निभायी, उससे लोगोंको उनके मानवीय आचरणका सत्याभास-सा होने लगता है; अतः वे उसे साक्षात् परमेश्वर होनेपर भी वैसा नहीं देख पाते। यही स्थिति रावणकी हो गयी थी। अतः रावण-ने उन्हें स्पष्टतः साक्षात् परमात्माके रूपमें नहीं जाना, यद्यपि उसे ऐसा आभास जरूर कहीं-कहीं होने लगा कि यह कोई ईश्वर तो नहीं है—

यद्वा न रामो मनुजः परेशो मां हन्तुकामः सबलं बलौघैः ।
सम्प्रार्थितोऽयं द्रुहिणेन पूर्वं मनुष्यरूपोऽद्य रघोः कुलेऽभूत् ॥
वध्यो यदि स्यां परमात्मनाहं वैकुण्ठराज्यं परिपालयेऽहम् ।
नो चेदिदं राक्षसराज्यमेव भोक्ष्ये चिरं राममतो व्रजामि ॥
(अ० रा० ३ । ५ । ५९-६०)

राक्षसोंके सामूहिक विनाशपर वह चिन्तित होकर सोचता है—'अथवा यह राम मनुष्य नहीं है, साक्षात् परमेश्वरने ही पूर्वकालमें की हुई ब्रह्माकी प्रार्थनापर मेरी सेना-सहित मुझे वानर-सेनाओंकी सहायतासे मारनेके लिये इस समय रघुवंशमें मनुष्यरूपसे अवतार लिया है। यदि परमात्माद्वारा

मैं मारा गया तो मैं वैकुण्ठका राज्य भोगूँगा, नहीं तो चिरकालपर्यन्त राक्षसोंका राज्य तो भोगूँगा ही। इसलिये रामके पास अवश्य ही चलूँगा।'

इस तरह यह स्पष्ट है कि रावणने विरोधबुद्धिसे ही अपना, अपने सब बान्धवोंका श्रीरामके हाथों उद्धार करवाया था।

मानसकारने श्रीरामको विष्णुके विभिन्न अवतारोंसे सम्बन्धित बताते हुए श्रीरामके लिये विभिन्न विशेषणोंका प्रयोग किया है, जिनसे स्पष्टतः ज्ञात होता है कि वे श्रीरामको विष्णु ही मानते थे।

मीन कमठ सूकर नरहरी। बामन परसुराम बपु धरी॥
जब जब नाथ सुरन्ह दुखु पायो। नाना तनु धरि तुम्हइँ नसायो॥
(रा० च० मा० ६। १०९। ४)

यहाँपर गोस्वामीजीने मत्स्य, कच्छप, वराह, नरसिंह, वामन, परशुराम आदि अवतारोंको श्रीरामपर आरोपित किया है।

हिरन्याक्ष भ्राता सहित मधु कैटभ बलवान।
जेहिं मारे सोइ अवतरेउ कृपासिंधु भगवान॥
(रा० च० मा० ६। ४८ 'क')

श्रीराम और विष्णुभगवान्‌की एकतामें किसी प्रकारका भी भ्रम उचित नहीं माना जा सकता। जो ब्रह्म अज, अद्वैत, अगुण है और सबके हृदयमें बसता है, जो कलारहित, इच्छारहित, अनाम, रूपरहित, अखण्ड, अनूप और अनुभवसे परे माना जाता है, वही जब कभी आवश्यकता होती है, भक्तोंके कारण विभिन्न स्वरूप धारण करता है। श्रीरामने अपने भक्तोंके लिये ही प्राकृत नररूप धारण किया था—

भगत हेतु भगवान प्रभु राम धरेउ तनु भूप।
किए चरित पावन परम प्राकृत नर अनुरूप॥
(रा० च० मा० ७। ७२ 'क')

'वाहिगुरु'—'विष्णु'का ही वाचक

(लेखक— पं० श्रीदेवशर्मांजी)

भारतकी संत-परम्परामें पंजाबके दस गुरुओंका स्थान अग्रगण्य है। उनकी वाणी, जो सामान्यतः 'गुरुवाणी' नामसे जानी जाती है, दो महान् ग्रन्थों—'गुरुग्रन्थसाहिब' तथा 'दशम् ग्रन्थ'में संकलित है। 'गुरुग्रन्थसाहिब' के सम्पादक पञ्चम गुरु श्रीअर्जुनदेवजी तथा उसके प्रथम लिपिक भाई गुरुदास भल्ला थे। भाई गुरुदासजीकी अपनी वाणी 'गुरुग्रन्थसाहिब' में संकलित नहीं की गयी, किंतु गुरु अर्जुनदेवजीने उसे 'गुरुग्रन्थसाहिब'की कुंजी मानकर सम्मानित किया है।

अन्य संतोंकी भाँति दस गुरुओंकी भी स्पष्ट मान्यता है कि भगवान् विष्णु परब्रह्म परमात्मा हैं। वे सृष्टिके सनातन सत्य हैं, मन-बुद्धि-इन्द्रियोंसे अगोचर एवं सूक्ष्मतम सत्ता हैं तथा जगत्‌के कर्त्ता, धर्ता और संहर्ता भी वे ही हैं। तथापि वे युग-युगमें भक्तोंके हित—'परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्' (गीता ४। ८) सदेह अवतरित होते हैं। ऋग्वेदके १। १५४ वें सूक्त 'विष्णुसूक्त' में भगवान् विष्णुको जगत्‌का कर्त्ता-धर्ता माना गया है—यथा—'एको दाधार भुवनानि विश्वा।' (ऋग्वेद १। १५४। ४) अर्थात् एक भगवान् विष्णु विश्वके समस्त भुवनोंको धारण करते हैं। वे ही विश्वकी परा सत्ता हैं, परब्रह्म हैं। किंतु बलिराजाका मान-मर्दन करनेके लिये वे वामनरूप धारणकर तीन पगोंमें पृथ्वी, आकाश एवं अन्तरिक्षको नाप लेते हैं। यथा—'एको विममे त्रिभिरित् पदेभिः।' (ऋ० १। १५४। ३) वे ही निर्गुण-निराकार यथासमय सगुण-साकार हो जाते हैं। वे ही परात्पर ब्रह्म लोकोपकारी स्वरूपको धारण करते हैं। वे वैकुण्ठविहारी ही व्रजविहारी हो जाते हैं।'' यही विचारधारा अवतारवादकी भित्ति है।

विष्णुनामके इस परम तत्त्वको, देवाधिदेवको, जगन्नियन्ताको 'गुरुवाणी' में 'वाहिगुरु' नामसे पुकारा गया है। समूचे 'ग्रन्थसाहिब' में केवल एक ही स्थानपर चौथे गुरु श्रीरामदासजीकी वाणीमें इस शब्दका प्रयोग हुआ है। यहाँ परात्पर विष्णु भगवान्‌को मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, राम, कृष्ण आदि रूपोंमें अवतरित माना गया है। यथा—

'वाहिगुरु, वाहिगुरु वाहिगुरु वाहि जीउ॥
कमल-नैन, मधुर बैन, कोटि सैन संग सोभ,
कहत माँ जसोदा जिसहि, दही-भात खाहि जीउ॥

देखि रूप अति अनूप मोह महा मगन भई
किंकिणी शब्द झनतकार खेल पाहि जीठ ॥
काल कलम हुकमु हाथि कहहु कौनु मेटि सकै
ईसु ब्रह्मु ज्ञानु ध्यानु धरत हिये चाहि जीठ ॥
सत्य साचु श्रीनिवासु आदि पुरुष सदा तूही
वाहिगुरु वाहिगुरु वाहिगुरु वाहि जीठ ॥ १ ॥
राम नाम परम धाम सुद्ध बुद्ध निराकार
बेसुमार सरबर कौ काहि जीठ ॥
सुथर चित्त भगत हित भेख धरियो
हरनाखसु हरियो नख बिदारि जीठ ॥
संख-चक्र-गदा-पदम आपि आपु कियो छदम
अपरंपर पारब्रह्म लखै कौन ताहि जीठ ॥
सत्य साचु श्रीनिवासु आदि पुरुष सदा तूही
वाहिगुरु वाहिगुरु वाहिगुरु वाहि जीठ ॥ २ ॥

उपर्युक्त दोनों पदोंसे स्पष्ट हो जाता है कि 'वाहिगुरु' अर्थात् भगवान् विष्णु शुद्ध-बुद्ध, निर्गुण-निराकार, आदि-पुरुष, परब्रह्म, अलक्ष्य-अगोचर एवं चिरंतन सत्य हैं। इसके अतिरिक्त वे सगुण-साकार भी हैं—वे श्रीनिवास हैं, एवं शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मयुक्त वेष धारण करते हैं। इतना ही नहीं, वे भक्तोंके हित राम, कृष्ण, नृसिंह आदिका रूप भी धारण करते हैं, हिरण्यकशिपुको अपने नखोंसे फाड़ डालते हैं, और कभी माता यशोदासे दही-भात खाते तथा नूपुर-ध्वनिसे नृत्य करते हैं। नीचेकी पंक्तियोंमें भगवान्के मत्स्य, कूर्म, वराह एवं वामन अवतारोंका वर्णन किया गया है। यथा—

बलिहि छलन सबल मलन भक्ति फलन कान्ह कुँवर
निहकलंक बजी डंक चढ़ू दल रविंद जीठ ॥
रमा-रमन, दुरत-दमन, सकल भुवन कुसल करन
सर्व भूत आप ही देवाधिदेव सहसमुख फणिंद जीठ ॥
जरम करम मछ कछ हुआ वराह
जमुना कै कूल खेल खेल्यो जिन गिंद जीठ ॥

वही वाहिगुरु भगवान् विष्णु मत्स्य, कूर्म, वराह आदिके रूप धारण करते हैं, वे ही वामनरूप धारणकर बलिको छलते हैं, वे ही यमुनाके तटपर ग्वाल-बालोंके संग गेंद खेलते हैं, वे ही दुष्टोंका दमन करते हैं, भक्तोंको फल देते हैं, सम्पूर्ण विश्व-ब्रह्माण्डमें कुशल-क्षेम करनेवाले तथा समस्त भूत-प्राणियोंके देवाधिदेव हैं।

भाई गुरुदासजीकी वाणीमें भी केवल एक ही पदमें 'वाहिगुरु' शब्दका प्रयोग हुआ है। उन्होंने 'वाहिगुरु' शब्दकी निष्पत्ति बतलाते हुए इसे भगवान्का 'जपमन्त्र' बताया है। यथा—

सतिजुगि सतिगुरु वासुदेव व वा विसना नामु जपावै ॥
दुआपुरि सतिगुरु हरी कृस्न हा हा हरि हरि नामु जपावै।
त्रेते सतिगुरु रामजी रा रा राम जपे सुखु पावै ॥
कलिजुगि नानक गुरु गोविंद गा गा गोविंद नामु अलावै।
चारे अच्छर इकु करि वाहिगुरु जपमन्त्र जपावै ॥

अर्थात् गुरु नानकदेवजीने चारों युगोंके लिये भगवान् विष्णुके चार नामों—(वासुदेव, हरि, गोविन्द तथा राम) को जपमन्त्रोंके रूपमें निर्दिष्ट किया है और इन चारों जपमन्त्रोंके आद्याक्षरोंको लेकर 'वाहिगुरु' शब्दकी रचना की तथा इसे चारों युगोंके लिये समानरूपमें एक जपमन्त्रका रूप दिया। अतएव पंजाबमें, विशेषतः सिक्ख-सम्प्रदायमें 'वाहिगुरु' अथवा 'सत्य नाम श्रीवाहिगुरु'को गुरुमन्त्र मानकर श्रद्धापूर्वक इसका जप किया जाता है। ॐ सत्यनाम श्रीवाहिगुरु ॥

जपु-जपु हरि नारायण !

मेरे मन ! जपु-जपु हरि नारायण।
कबहूँ न बिसरहु मन मेरे ते आठ पहर गुन गाइण ॥
साधू-धूरि करउ नित मज्जनु सभ किलविख पाप गवाइण।
पूरन पूरि रहे किरपानिधि घटि-घटि दिसटि समाइण ॥
जाप-ताप कोटी लख पूजा हरि-सिमरण तुलि ना लाइण।
दुइ कर जोड़ि नानक दान माँगि, तेरे दासनि दास दासाइण ॥

—गुरु अर्जुनदेव

मैं मारा गया तो मैं वैकुण्ठका राज्य भोगूँगा, नहीं तो चिरकालपर्यन्त राक्षसोंका राज्य तो भोगूँगा ही। इसलिये रामके पास अवश्य ही चलूँगा।'

इस तरह यह स्पष्ट है कि रावणने विरोधबुद्धिसे ही अपना, अपने सब बान्धवोंका श्रीरामके हाथों उद्धार करवाया था।

मानसकारने श्रीरामको विष्णुके विभिन्न अवतारोंसे सम्बन्धित बताते हुए श्रीरामके लिये विभिन्न विशेषणोंका प्रयोग किया है, जिनसे स्पष्टतः ज्ञात होता है कि वे श्रीरामको विष्णु ही मानते थे।

मीन कमठ सूकर नरहरी। बामन परसुराम बपु धरी॥
जब जब नाथ सुरन्ह दुखु पायो। नाना तनु धरि तुम्हइँ नसायो॥
(रा० च० मा० ६। १०९। ४)

यहाँपर गोस्वामीजीने मत्स्य, कच्छप, वराह, नरसिंह, वामन, परशुराम आदि अवतारोंको श्रीरामपर आरोपित किया है।

हिरन्याक्ष भ्राता सहित मधु कैटभ बलवान।
जेहिं मारे सोइ अवतरेउ कृपासिंधु भगवान॥
(रा० च० मा० ६। ४८ 'क')

श्रीराम और विष्णुभगवान्‌की एकतामें किसी प्रकारका भी भ्रम उचित नहीं माना जा सकता। जो ब्रह्म अज, अद्वैत, अगुण है और सबके हृदयमें बसता है, जो कलारहित, इच्छारहित, अनाम, रूपरहित, अखण्ड, अनूप और अनुभवसे परे माना जाता है, वही जब कभी आवश्यकता होती है, भक्तोंके कारण विभिन्न स्वरूप धारण करता है। श्रीरामने अपने भक्तोंके लिये ही प्राकृत नररूप धारण किया था—

भगत हेतु भगवान प्रभु राम धरेउ तनु भूप।
किए चरित पावन परम प्राकृत नर अनुरूप॥
(रा० च० मा० ७। ७२ 'क')

'वाहिगुरु'—'विष्णु'का ही वाचक

(लेखक— पं० श्रीदेवशर्माजी)

भारतकी संत-परम्परामें पंजाबके दस गुरुओंका स्थान अग्रगण्य है। उनकी वाणी, जो सामान्यतः 'गुरुवाणी' नामसे जानी जाती है, दो महान् ग्रन्थों—'गुरुग्रन्थसाहिब' तथा 'दशम ग्रन्थ'में संकलित है। 'गुरुग्रन्थसाहिब' के सम्पादक पञ्चम गुरु श्रीअर्जुनदेवजी तथा उसके प्रथम लिपिक भाई गुरुदास भल्ला थे। भाई गुरुदासजीकी अपनी वाणी 'गुरुग्रन्थसाहिब' में संकलित नहीं की गयी, किंतु गुरु अर्जुनदेवजीने उसे 'गुरुग्रन्थसाहिब'की कुंजी मानकर सम्मानित किया है।

अन्य संतोंकी भाँति दस गुरुओंकी भी स्पष्ट मान्यता है कि भगवान् विष्णु परब्रह्म परमात्मा हैं। वे सृष्टिके सनातन सत्य हैं, मन-बुद्धि-इन्द्रियोंसे अगोचर एवं सूक्ष्मतम सत्ता हैं तथा जगत्‌के कर्त्ता, धर्ता और संहर्ता भी वे ही हैं। तथापि वे युग-युगमें भक्तोंके हित—'परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्' (गीता ४। ८) सदेह अवतरित होते हैं। ऋग्वेदके १। १५४ वें सूक्त 'विष्णुसूक्त' में भगवान् विष्णुको जगत्‌का कर्त्ता-धर्ता माना गया है—यथा—'एको दाधार भुवनानि विश्वा।' (ऋग्वेद १। १५४। ४) अर्थात् एक भगवान् विष्णु विश्वके समस्त भुवनोंको धारण करते हैं। वे ही विश्वकी परा सत्ता हैं, परब्रह्म हैं। किंतु बलिराजाका मान-मर्दन करनेके लिये वे वामनरूप धारणकर तीन पगोंमें पृथ्वी, आकाश एवं अन्तरिक्षको नाप लेते हैं। यथा—'एको विममे त्रिभिरित् पदेभिः।' (ऋ० १। १५४। ३) वे ही निर्गुण-निराकार यथासमय सगुण-साकार हो जाते हैं। वे ही परात्पर ब्रह्म लोकोपकारी स्वरूपको धारण करते हैं। वे वैकुण्ठविहारी ही ब्रजविहारी हो जाते हैं।" यही विचारधारा अवतारवादकी भित्ति है।

विष्णुनामके इस परम तत्त्वको, देवाधिदेवको, जगन्नियन्ताको 'गुरुवाणी' में 'वाहिगुरु' नामसे पुकारा गया है। समूचे 'ग्रन्थसाहिब' में केवल एक ही स्थानपर चौथे गुरु श्रीरामदासजीकी वाणीमें इस शब्दका प्रयोग हुआ है। यहाँ परात्पर विष्णु भगवान्‌को मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, राम, कृष्ण आदि रूपोंमें अवतरित माना गया है। यथा—

'वाहिगुरु, वाहिगुरु वाहिगुरु वाहि जीउ॥
कमल-नैन, मधुर बैन, कोटि सैन संग सोभ,
कहत माँ जसोदा जिसहि, दही-भात खाहि जीउ॥

देखि रूप अति अनूप मोह महा मगन भई
किंकिणी शब्द झनतकार खेल पाहि जीउ ॥
काल कलम हुकमु हाथि कहहु कौनु मेटि सकै
ईसु ब्रह्मु ज्ञानु ध्यानु धरत हिये चाहि जीउ ॥
सत्य साचु श्रीनिवासु आदि पुरुष सदा तूही
वाहिगुरु वाहिगुरु वाहिगुरु वाहि जीउ ॥ १ ॥
राम नाम परम धाम सुद्ध बुद्ध निराकार
बेसुमार सरबर कौ काहि जीउ ॥
सुथर चित्त भगत हित भेख धरियो
हरनाखसु हरियो नख विदारि जीउ ॥
संख-चक्र-गदा-पदम आपि आपु कियो छदम
अपरंपर पारब्रह्म लखै कौन ताहि जीउ ॥
सत्य साचु श्रीनिवासु आदि पुरुष सदा तूही
वाहिगुरु वाहिगुरु वाहिगुरु वाहि जीउ ॥ २ ॥

उपर्युक्त दोनों पदोंसे स्पष्ट हो जाता है कि 'वाहिगुरु' अर्थात् भगवान् विष्णु शुद्ध-बुद्ध, निर्गुण-निराकार, आदि-पुरुष, परब्रह्म, अलक्ष्य-अगोचर एवं चिरंतन सत्य हैं। इसके अतिरिक्त वे सगुण-साकार भी हैं—वे श्रीनिवास हैं, एवं शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मयुक्त वेष धारण करते हैं। इतना ही नहीं, वे भक्तोंके हित राम, कृष्ण, नृसिंह आदिका रूप भी धारण करते हैं, हिरण्यकशिपुको अपने नखोंसे फाड़ डालते हैं, और कभी माता यशोदासे दही-भात खाते तथा नूपुर-ध्वनिसे नृत्य करते हैं। नीचेकी पंक्तियोंमें भगवान्के मत्स्य, कूर्म, वराह एवं वामन अवतारोंका वर्णन किया गया है। यथा—

बलिहि छलन सबल मलन भक्ति फलन कान्ह कुँवर
निहकलंक बजी डंक चढू दल रविंद जीउ ॥
रमा-रमन, दुरत-दमन, सकल भुवन कुसल करन
सर्व भूत आप ही देवाधिदेव सहसमुख फणिंद जीउ ॥
जरम करम मछ कछ हुआ वराह
जमुना कै कूल खेल खेल्यो जिन गिंद जीउ ॥

वही वाहिगुरु भगवान् विष्णु मत्स्य, कूर्म, वराह आदिके रूप धारण करते हैं, वे ही वामनरूप धारणकर बलिको छलते हैं, वे ही यमुनाके तटपर ग्वाल-बालोंके संग गेंद खेलते हैं, वे ही दुष्टोंका दमन करते हैं, भक्तोंको फल देते हैं, सम्पूर्ण विश्व-ब्रह्माण्डमें कुशल-क्षेम करनेवाले तथा समस्त भूत-प्राणियोंके देवाधिदेव हैं।

भाई गुरुदासजीकी वाणीमें भी केवल एक ही पदमें 'वाहिगुरु' शब्दका प्रयोग हुआ है। उन्होंने 'वाहिगुरु' शब्दकी निष्पत्ति बतलाते हुए इसे भगवान्का 'जपमन्त्र' बताया है। यथा—

सतिजुगि सतिगुरु वासुदेव व वा विसना नामु जपावै ॥
दुआपुरि सतिगुरु हरी कृस्न हा हा हरि हरि नामु जपावै ।
त्रेते सतिगुरु रामजी रा रा राम जपे सुखु पावै ॥
कलिजुगि नानक गुरु गोविंद गा गा गोविंद नामु अलावै ।
चारे अच्छर इकु करि वाहिगुरु जपमन्त्र जपावै ॥

अर्थात् गुरु नानकदेवजीने चारों युगोंके लिये भगवान् विष्णुके चार नामों—(वासुदेव, हरि, गोविन्द तथा राम) को जपमन्त्रोंके रूपमें निर्दिष्ट किया है और इन चारों जपमन्त्रोंके आद्याक्षरोंको लेकर 'वाहिगुरु' शब्दकी रचना की तथा इसे चारों युगोंके लिये समानरूपमें एक जपमन्त्रका रूप दिया। अतएव पंजाबमें, विशेषतः सिक्ख-सम्प्रदायमें 'वाहिगुरु' अथवा 'सत्य नाम श्रीवाहिगुरु'को गुरुमन्त्र मानकर श्रद्धापूर्वक इसका जप किया जाता है। ॐ सत्यनाम श्रीवाहिगुरु ॥

जपु-जपु हरि नारायण !

मेरे मन ! जपु-जपु हरि नारायण ।
कबहूँ न बिसरहु मन मेरे ते आठ पहर गुन गाइण ॥
साधू-धूरि करउ नित मज्जनु सभ किलविख पाप गवाइण ।
पूरन पूरि रहे किरपानिधि घटि-घटि दिसटि समाइण ॥
जाप-ताप कोटी लख पूजा हरि-सिमरण तुलि ना लाइण ।
दुइ कर जोड़ि नानक दान माँगै, तेरे दासनि दास दासाइण ॥

—गुरु अर्जुनदेव

हिंदीके निर्गुण संत-साहित्यमें वैष्णवभावना

(ले०—श्रीमती रानी साहिबा रमा श्रीनिवासप्रसादसिंह)

हिंदी-साहित्यकी ज्ञानाश्रयी धाराके प्रवर्तक संत कबीर कहे जाते हैं। सगुण-भक्तिकी सीमामें रामकाव्य और कृष्णकाव्यकी समृद्धि-वृद्धि हो सकी। निर्गुण संत-साहित्य अविच्छिन्न कालसे चली आती हुई वैष्णव विचार-धारासे अपने-आपको अलग नहीं रख सका। उसमें संत कबीर, संत रैदास, नामदेव तथा निर्गुण-सगुण विचार-धारासे प्रभावित राजरानी मीराँ, चरणदास और सहजोबाईकी काव्य-साधनाका योगदान स्पष्ट तथा महत्त्वपूर्ण है। भगवान् विष्णु निराकार-साकार दोनों रूपोंमें हमारे साहित्यमें अभिव्यक्त हैं। हिंदीके संत-साहित्यकी प्रगतिमें वैष्णवभावनाका सदा ही विशेष हाथ रहता आ रहा है।

हिंदीकी ज्ञानाश्रयी शाखाने संत कबीर, रैदास, नामदेव आदिके माध्यमसे परम्परागत ब्रह्मचिन्तन अथवा भगवच्चिन्तन-का इस रूपमें प्रतिपादन किया कि ब्रह्म एक, अद्वितीय, परमज्योतिःस्वरूप, निरञ्जन तथा सम्पूर्ण प्राणियोंके अन्तर्यामी आत्मारूपसे स्थित है। परमात्मा—सर्वव्यापक विष्णु सूक्ष्मसे भी अत्यन्त सूक्ष्म और महान्से भी अत्यन्त महान् हैं। सनातन परमेश्वर ही समस्त विश्वके कारण हैं। ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ पुरुष परम पवित्र परात्पर ब्रह्मरूपमें परमात्माका अनुभव अथवा साक्षात्कार करते हैं। उपर्युक्त संतोंकी वाणीमें इसी चिन्तन-परम्पराका दर्शन होता है।

हिंदीकी निर्गुणधाराके संतोंने लोकजीवनको सर्वव्यापक विष्णुके अविनाशी, अविकारी, अव्यक्त, अनादि, सर्वरूप, कल्याणकारी स्वरूप-चिन्तनसे कृतार्थ और समृद्ध कर आध्यात्मिक क्रान्तिके कल्पवृक्षका बीजारोपण किया। यह उनकी अमूल्य देन है, साहित्य-निधि है। परमात्माकी यह स्वरूपभूत अभिव्यक्ति ही हिंदी संत-साहित्यमें वैष्णवताकी आधार-शिला है। निर्गुणधाराके संतोंने लोकजीवनमें भगवद्-विश्वास—परमात्माकी वैष्णवी शक्ति–पोषणशक्तिके प्रति अटूट विश्वास पैदा किया। लोगोंकी आस्था सूक्ष्मरूपसे इस बातमें क्रमशः सुदृढ़ होती चली कि भगवान् विष्णु—पालनकर्ता परमात्माके उद्देश्यसे जो कुछ भी किया जाता है, वह अक्षय मोक्ष—भवबन्धसे मुक्तिका कारण होता है। वे ही धर्म, कर्म और उनके फल भी हैं, वे ही कार्य-कारण दोनों हैं, उनसे भिन्न किसी वस्तुकी सत्ता ही नहीं है। निर्गुणधाराके संतोंने परम वैष्णवी सत्ताके संरक्षणमें लोकजीवनको प्रतिष्ठित किया।

परमात्माकी वैष्णवी सत्ता—पालनशक्तिके प्रति विश्वासकी तीन धाराएँ प्रचलित हुईं। पहली धाराका प्रतिनिधित्व संत कबीर, रैदास आदिने किया; यह विशुद्ध निर्मल निर्गुण ज्ञानधारा-का प्रतीक है। दूसरी धारा पंढरपुरमें भगवान् विट्ठलके अनन्य भक्त संत नामदेवने सगुण-निर्गुण भगवच्चिन्तनके माध्यमसे उपस्थित की। इसका आभास राजरानी मीराँके साधनामय जीवनमें भी दीख पड़ा। साथ-ही-साथ राजरानी मीराँकी उपासना-पद्धतिपर निर्मल ज्ञानधाराके धनी संत रैदासकी वाणीका भी स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। राजरानी मीराँकी ही भावधाराका प्रस्फुटन महात्मा चरणदास और उनकी शिष्या सहजोबाई आदिके चिन्तनमें अभिव्यक्त हो उठा, यद्यपि चरणदासकी चिन्तन-पद्धति अपने-आपमें मौलिक और विलक्षण है। राजरानी मीराँकी साकार-उपासनामें निराकार-भावनाकी अभिव्यक्ति दीख पड़ती है, तो चरणदासकी निराकार-उपासनामें साकार-उपासनाके माधुर्यका मनोरम अभिव्यञ्जन मिलता है। पर स्वरूपतः दोनोंकी साधना वैष्णवी परम्पराकी देन है और उसमें साकार-निराकार भावनाका समन्वय है।

निस्संदेह संत कबीर और नामदेवका समय ज्ञानाश्रयी निर्गुण भक्तिसे समृद्ध था। कबीरकी निर्गुण साधनाने लोगोंको निर्भय आत्मज्ञानसे सम्पन्नकर उनके जीवनको निरापद कर दिया। ज्ञानाश्रयी संतोंकी भक्तिधाराका उद्गम वैष्णव-भक्तिरूपी मूल स्रोतसे हुआ। कबीरकी विचार-धारामें वैष्णवता भरी पड़ी है। उनकी उक्ति है—

> गोकल नाइक बीठुला, मेरौ मन लागौ तोहि रे।
> बहुतक दिन बिछुरें भये, तेरी औसेरि आवै मोहि रे॥
> करम कोटि कौ ग्रेह रच्यौ रे, नेह गये की आस रे।
> आपहिं आप बँधाइया, द्वै लोचन मरहिं पियास रे॥
> आपा पर संमि चीन्हिये, दीसै सरब समाँन।
> इहि पद नरहरि भेटियै, तूं छाडि कपट अभिमांन रे॥
> नाँ कतहूँ चलि जाइये, नाँ सिर लीजै भार।
> रसनाँ रसहि बिचारिये, सारँग श्रीरँग धार रे॥

× × ×

कहै कबीर संसा नहीं, भगति मुकति गति पाइ रे ।

(कबीर-ग्रन्थावली: पदावली ५)

संत कबीरने समझाया कि संसारका सुख केवल चार दिनोंके लिये है, क्षणिक है, विषयोंका त्यागकर भगवान् मुरारिके चरणोंका ही चिन्तन करना चाहिये, उन्हींका भजन करना चाहिये—यही श्रेयस्कर है ।

कहै कबीर यह सुख दिन चारि ।
तजि बिषया भजि चरन मुरारि ॥

(कबीर-ग्रन्थावली)

संत कबीरकी ही तरह निर्गुणरसके परम मर्मज्ञ संत रैदासने भगवान् नरसिंहके प्रति अचल निष्ठा-भक्तिका प्रतिपादन करते हुए आत्मा और परमात्माके प्रेमका निर्गुण-ज्ञानाश्रयी भावधाराके स्तरपर विलक्षण चित्र उरेहा है। उन्होंने परमात्मासे आत्मोद्धारकी प्रार्थना करते हुए उनकी असीम शक्तिमें आस्था प्रकट की है । संत रैदासका कथन है, वैष्णवी-शक्तिसम्पन्न भागवतसत्ताके प्रति आत्मनिवेदन है—

नरहरि ! चंचल है मति मोरी । कैसे भगति करूँ मैं तोरी ॥
तू मोहि देखै, हौं तोहि देखूँ । प्रीति परस्पर होई ॥
तू मोहि देखै, तोहि न देखूँ । यह मति सब बुधि खोई ॥
सब घट अंतर रमसि निरंतर । मैं देखन नहिं जाना ॥
गुन सब तोर, मोर सब अवगुन । कृत उपकार न माना ॥
मैं-तैं, तोरि-मोरि असमझ सौं । कैसे करि निस्तारा ॥
कह रैदास कृस्न करुनामय ! जय जय जगत-अधारा ॥

पंढरपुरके संत नामदेवने मराठी अभंगों और हिंदीके पदोंमें भगवान्‌के निर्गुण-सगुण रूपोंका समन्वय अथवा संतुलन स्थापितकर श्रीविट्ठल पाण्डुरङ्गके चरणोंमें अपनी निष्ठा व्यक्त की । संत रैदासने विशुद्ध निर्गुणधाराका प्रतिपादन किया तो संत नामदेवने समन्वयात्मक दृष्टिकोण अपनाया । नामदेवके उद्गार हैं—

मेरो बाप माधौ तू धन कैसौ, साँवलियो बिठुलराई ।
कर धरे चक्र बैकुंठ ते आयो, तू रे गजके प्रान उधारयो॥
दुहसासनकी सभा द्रौपदी अंबर लेत उबारयो ।
गौतम-नारि अहल्या तारी, पापिन केतिक तारयो ॥
ऐसा अधम-अजाति नामदेउ तव सरनागति आयो ।

राजरानी मीराँकी साधनापर संत रैदासकी वाणीका प्रभाव था, ऐसी मीराँबाईकी भी उक्ति है; इस दृष्टिसे मीराँ निर्गुण-भक्तिका भी अपने पदोंमें प्रतिनिधित्व करती हैं और साथ-ही-साथ नामदेव आदि संतोंद्वारा प्रवर्तित समन्वयात्मक दृष्टिकोणके अन्तर्गत निर्गुण-सगुण भक्तिका संगम भी उनकी रचनाओंमें प्रतिभासित होता है । ऐसे तो उनके अधिकांश पद सगुण-भक्तिका ही प्रतिपादन करते हैं । उन्होंने अपनी एक रचनामें अपने-आपको नारायणकी दासी बताया है । उनकी उक्ति है—

पग घुँघरु बाँध मीराँ नाची रे ।
मैं तो मेरे नारायण की आपइ हो गइ दासी रे ॥
लोग कहै मीराँ भई बावरी, न्यात कहै कुळनासी रे ।
बिषका प्याला राणाजी भेज्या पीवत मीराँ हाँसी रे ॥
मीराँके प्रभु गिरधर नागर सहज मिले अबिनासी रे ।

मीराँबाईने एक पदमें भगवान् विष्णुके प्रमुख लीला-चरित्रोंका भक्तिपूर्ण ढंगसे स्मरण किया है । उन्होंने मनको सम्बोधित किया है कि 'हे मन ! श्रीहरिके चरणका स्पर्श करो । ये चरण बड़े ही सुन्दर और कोमल हैं; इनकी कृपासे तीनों तरहके—दैहिक, दैविक, भौतिक तापोंका नाश हो जाता है । श्रीहरिके चरणोंका स्पर्शकर, चिन्तनकर प्रह्लाद इन्द्रपदपर प्रतिष्ठित हुए । भगवान् विष्णुने ध्रुवको अचलपद प्रदान कर अपनी स्थायी शरण प्रदान की; इन्हींके चरणोंने (त्रिविक्रम-अवतारमें) ब्रह्माण्डको धन्य किया; ये ऊपरके लोकोंसे लेकर नीचेके लोकोंतक अनुपम शोभा धारण करते हैं; अहल्याने प्रभुके इन चरणोंका स्पर्श कर शापसे मुक्ति प्राप्त की । श्रीकृष्णके इन चरणोंसे कालियनागका दमन हो गया । भगवान्‌ने गोवर्धन धारणकर इन्द्रका अहंकार मिटा दिया । भगवान्‌के ये चरण संसार-सागरसे पार उतार देनेमें समर्थ हैं—

मन रे परसि हरि के चरण ॥
सुभग, सीतल, कँवल-कोमल, त्रिविध ज्वाला हरण ।
जिण चरण प्रहलाद परसे, इंद्र-पदवी धरण ॥
जिण चरण ध्रुव अटल कीने, राखि अपनी शरण ।
जिण चरण ब्रह्मांड भेट्यो, नख सिखा सिरि धरण ॥
जिण चरण प्रभु परसि लीने, तरी गोतम-घरण ।
जिण चरण काली नाग नाथ्यो, गोप लीला करण ॥
जिण चरण गोबरधन धारयो, इंद्रको ग्रब हरण ।
दासि मीराँ लाल गिरधर, अगम तारण तरण ॥

(मीरा-मन्दाकिनी २)

उपर्युक्त पदमें राजरानी भक्तिमती मीराँबाईने भगवान्‌की वैष्णवी शक्तिकी महिमाका गान किया है। उनके विष्णु और कृष्ण स्वरूपतः एक हैं।

निर्गुण वैष्णवभक्ति-परम्पराकी तीसरी धाराका प्रवर्तन हिंदी संत-साहित्यमें महात्मा चरणदासने किया और संत सहजोबाई आदिकी साधना और वाणीमें उसकी पूर्ण पुष्टिका दर्शन होता है। चरणदासकी सरस निर्गुण-उपासनामें भगवान्‌के साकार सौन्दर्य और माधुर्यका रसास्वाद सहज सुलभ है। तीसरी निर्गुण वैष्णवभक्ति-परम्पराकी यह महती विशेषता है। चरणदासकी साधनामें निराकार, सर्वव्यापक परमात्माकी, साकार-सगुण भगवान्‌की लीलाकी मधुरतम तथा सुन्दरतम अभिव्यञ्जनाका समावेश मिलता है।

आवो साधो हिलि-मिलि हरिजस गावैं।
प्रेम-भक्तिकी रीति समुझ करि, हित सूँ राम रिझावैं॥
गोविंद के कौतुक-गुन-लीला, ताको ध्यान लगावैं।
सेवा-सुमिरन, बंदन-अरचन नौधा सूँ चित लावैं॥

× × ×

मन कूँ धो, निरमल करि, उज्ज्वल मगन रूप हो जावैं।
ताल-पखावज, झाँझ-मजीरा, मुरली-संख बजावैं॥
चरनदास सुकदेव दया सूँ आवागवन मिटावैं।

महात्मा चरणदासकी वाणीका भाष्य संत सहजोबाईके जीवन और साधनामें अभिव्यञ्जित है। निर्गुण-सगुण वैष्णव भावधाराके समन्वयस्वरमें सहजोबाईकी उक्ति है—

नाम नहीं, औ नाम सब, रूप नहीं, सब रूप।
सहजो सब कुछ ब्रह्म है, हरि परगट, हरि गूप॥

उपर्युक्त दोहेमें परमात्माके सर्वव्यापक नाम-रूपकी व्याख्या की गयी है तो नीचेके दोहेमें उनके साकार माधुर्यमय रूपका दिग्दर्शन कराया गया है सहजोबाईद्वारा अपनी साधनाके स्तरपर।

धन्य जसोदा, नंद धन, धन ब्रजमंडल देस।
आदि निरंजन सहजिया, भयो ग्वाल कें भेस॥

सहजोबाईकी स्वीकृति है कि हरिके गुणगानकी आदत बन गयी है। मैं गोपालकी लीलाके अतिरिक्त कुछ भी रसनासे उच्चारण करूँ तो मुझे अपने गुरुकी सौगंध है। प्रभुके गुणानुवादसे उनका दर्शन प्राप्त होता है और उनमें भक्ति बढ़ती है। सहजोबाईका पद है—

परो मन हरि-गुन गावन बान।
बिनु गोपाल और जो भाखौं, तो तोहि गुरु की आन॥

× × ×

गुनानुवाद गावत प्रभु-दरसन बढ़ै भगति को भाव।
सुखदेव गावत चरणदास हीं, सहजो को भी चाव॥

चरणदासद्वारा प्रवर्तित तीसरी निर्गुण वैष्णवभक्ति-धाराकी विशेषता है निराकारमें साकारके सौन्दर्य-माधुर्यकी सम्पूर्ण अभिव्यक्ति।

उपर्युक्त तीनों धाराओंके परिणामस्वरूप लोक-जीवनमें वैष्णवताका उदय हुआ और उसकी अविच्छिन्न धारा चिरकालतक प्रवाहित रहेगी। भागवतधर्म अथवा वैष्णव-धर्म लोक-जीवनमें प्रविष्ट हो गया। वैष्णव-धर्मने प्राणिमात्रको भागवत बननेकी प्रेरणा प्रदान की।

भागवत प्राणी हरिके चरणदेशमें आत्म-समर्पण कर देता है, सर्वस्व चढ़ा देता है। भगवान्‌की शरणागतिका वरणकर उनके चरणोंपर सर्वस्व अर्पित कर देना ही वैष्णव-जीवन है। ऐसा करके वैष्णव अभय हो जाता है। राजरानी मीराँका एक पद है—

हरि तुम हरो जन की भीर।
द्रौपता की लाज राखी तुरत बढ़ायो चीर॥
भगत कारण रूप नरहरि धरयो आप सरीर।
हिरणाकुशकूँ मारि लीन्हो धरयो नाहिन धीर॥
बूड़तो गजराज राख्यो, कियो बाहर नीर।
दासि मीराँ, लाल गिरधर, चरण कँवल पै सीर॥

(मीरा-मन्दाकिनी १०३)

निर्गुणधाराके संतोंकी वाणीमें वैष्णवकी प्रशंसा भरी पड़ी है। वैष्णव तो सदा ही कहता है कि वासुदेव ही परम धर्म हैं, वासुदेव ही परमगति हैं।

कबीरने प्रभुकी वैष्णवताका स्मरण कर कहा है कि 'श्रीहरिका ही भजन करना चाहिये। वे अपनी शरणमें आनेपर भक्तिकी रक्षामें तत्पर हो जाते हैं।'

मन रे हरि भजि, हरि भजि, हरि भजि, भाई।

× × ×

राजा अंबरीक कै कारणि चक्र सुदरसन जारै।
दास कबीर कौ ठाकुर ऐसो, भगत की सरन ठबारै॥

वैष्णव और विष्णु—ये दोनों-के-दोनों संसारके बन्धनसे असंख्य प्राणियोंको मोक्ष प्रदान करते हैं। वैष्णव-जीवनका यही है श्रेयस्कर रूप।

असमिया साहित्यमें भगवान् महाविष्णु

(लेखक—श्रीधर्मेश्वरजी नामलगवा)

जिस प्रकार हिंदी-भाषाके सर्वश्रेष्ठ वैष्णव कवि श्रीतुलसी हैं, उसी प्रकार असमिया-भाषाके हैं—भक्त श्रीशंकरदेव। भारतके पूर्वप्रान्तमें धर्मसंस्थापक श्रीमन्महाप्रभु श्रीमंत शंकरदेव, शिष्य श्रीमाधवदेव, उनके प्रशिष्य श्रीवदलाकमलाकान्त आताजी—ये सब एकेश्वरवादी हैं और इनके असमिया साहित्यमें श्रीविष्णुभगवान्के दो स्वरूप हैं—(१) श्रीमहाविष्णु, (२) पालक विष्णु—

हरि हर ब्रह्मा जार थाकै आज्ञा धरि।
ईश्वररो ईश्वर तेहेन्ते महाहरि॥

(श्रीमंत शंकरदेव—'निमि नवसिद्ध')

हेन देखि चिन्तिलन्त ईश्वर आपुने।
भैल तावक्षणे तिनि मूर्ति तिनि गुणे॥

(अनादिपातन)

जिस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु और शिवको भगवान्का रजोगुणात्मक, सत्त्वगुणात्मक और तमोगुणात्मक स्वरूप माना गया है, उसी प्रकार महाविष्णुको निर्गुण-निराकार माना गया है। निर्गुण महाविष्णुसे सबका प्राकट्य होता है और उनके आदेशसे वे तीनों देव क्रमशः सृष्टि, पालन और प्रलयका कार्य करते हैं।

हे ब्रह्मा, हे विष्णु, हे त्रिपुरारी।
आजिवरि तिनिको पातिलो अधिकारी॥
शुनियोक ब्रह्मा तुमि सजिओ जगत्।
सुरासुर, नाग-नर, पशु-पक्षी जत॥
इतो ब्रह्मान्दर सरथा भैला रजोगुणे।
माक मतै दिबा दृष्टि सृष्टित आपोने॥
मोर निज अंश तुमि विष्णु बनमाली।
थाकिवा सतते तुमि मोर आज्ञा पालि॥
निर्बलीक अन्याय येन न करय बलि।
सन्तक राखिबा तुमि दुष्टक निदलि॥
सुनियोक शंकर आवे आदेश आमार।
जगत-रे प्रलय तोमार अधिकार॥

(श्रीशंकरदेवविरचित 'अनादिपातन भागवत')

श्रीमहाविष्णुके नामको प्रधानरूपसे मालाद्वारा जपनेके लिये कहा गया है। श्रीमंत शंकरदेवने भगवान् विष्णुके मुख्यतः 'कृष्ण, विष्णु, हरि, राम'—इन चार नामोंका प्रचार किया। 'जगत प्रसिद्ध नाम कृष्ण, विष्णु, हरि, राम लाजपरि गाइबे महासुखे॥' ('निमि नवसिद्ध'—श्रीशंकरदेव)

आत्मारूपे जानाइतो जगतत, आछन्त हुया प्रवेस।
एहि हेतु तेसे ईश्वरक विष्णु, बुलिय नाम बिशेष॥

(श्रीमाधवदेवरचित 'नामघोषा')

सर्वपापहरा नित्यं सर्वसंकल्पसिद्धिदा।
विष्णुनामजपे दैवी माला प्रोक्ता द्विधा शुभे॥
वैष्णवेषु च मन्त्रेषु कृष्णमन्त्रो विशिष्यते।
कृष्णनाम्नि विशेषेण जपमात्रेण सिद्धिदा॥

भाव यह है कि श्रीमहाविष्णुका नाम जपनेसे वह नाम ही सब पापोंका हरण करता है, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष और भगवान्के प्रति अनन्यानुरागपूर्ण भक्ति प्रदान करता है। इसलिये मालाके सहयोगसे विष्णु और कृष्णका नाम जपना चाहिये।

श्रीमंत माधवदेव महापुरुषके अनुसार सबको 'पार' (मोक्ष) देनेवाले श्रीमहाविष्णु भगवान् ही हैं।

अपार संसार सिन्धु आर, विष्णुसे परम पार यत,
पार आछे तात परम परमात्मारूपे।
तेन्ते तुमि जाना ब्रह्मपार, परपारमुत यत पार,
तासम्बार पार विष्णुसे पार स्वरूपे।

(नामघोषा)

श्रीमन्महाप्रभु शंकरदेवकी मान्यता है कि श्रीमहाविष्णुका ही प्रादुर्भाव देवकीनन्दन श्रीकृष्णरूपके चतुर्भुज रूपमें हुआ।

अनन्तरे देवहरि भक्तर भयहारि वसुदेव मने हैला बास।
परम वैष्णव तेज मने लैया बसुदेव सूर्य जेन करन्त प्रकाश॥
दैवकीर गर्भ पाछे अर्पिलन्त बसुदेवे लैका बासा विष्णु उदरते।
जेन मते पूर्व दिशे आनन्दे चन्द्रके धरे देबीयो धरिला सेहि मते॥
पाछे ब्रह्मा हर त्रिदश सहित नारद प्रमुख्ये ऋषि।
स्तुति करिबाक लागिला विष्णुक सेइ बन्दि शाले पशि॥

(भा० १० म)

पाछे दैवकीक मातिलन्त देवगणे।
थाकियोक माव भय न करिवा मने॥

विष्णु बासा लैले आसि गर्भ ते तोमार।
हेन देखि मैल बर आनन्द आमार॥
(भा० १० म)

एकेश्वरवादी श्रीमन्महाप्रभु श्रीशंकरदेवने श्रीविष्णु-तत्त्व-को चार प्रकारका माना है—(१) निर्गुण विष्णु, (२) चतुर्भुज विष्णु, (३) द्विभुज विष्णु और (४) विश्वरूप विष्णु।

(१) निर्गुण विष्णु—श्रीविष्णुका रूप निर्मल, निर्गुण, निराकार माना गया है। वे सनातन नारायण ही सारे अवतारोंके कारण हैं। उनका वास्तविक स्वरूप जाननेमें नहीं आता, केवल अनुभवगम्य है।

प्रथमै प्रनामो ब्रह्म रूपी सनातन।
सर्व अवतारर कारण नारायण॥
तोमार निर्मल सुक्ष्म रूप जितो स्वामी।
देवे न जानन्त ताक केने जानो आमी॥

(२) चतुर्भुज विष्णु—यह परम कारण भगवान्‌का 'गुणमायामुपासृत' सगुण रूप है। यह चतुर्भुज स्वरूप भक्तोंके स्मरण-ध्यानके लिये है। 'अपर तोमार रूप जात भुजा चारी।' श्रीमंत शंकरदेवजीने भगवान् विष्णुके चतुर्भुज रूपका ध्यान इस प्रकार किया है।

मन, राम बोल, राम बोल, राम बोल, राम।
चित्त चिन्त चतुर्भुज चतुर्भुज हरि॥ (कीर्तनघोषा)

× × ×

मधुर मुरुति मुरारु मन देख हृदये हामारु।
रूपे अनङ्ग सङ्गे तुलना, तनु कोटि सुरुज उजियारु॥
मकर कुन्दल गन्द मन्दित खन्दित चान्द रुचि स्मित हासा।
कनक किरीटि जरित रतना नव नीरज नयन विकासा॥
चतुर उजर कर कङ्कण कैयुर भुज मह मोतिम हारु।
लीला बिनोदी कम्बु कौमुदी चक्र केरि कञ्ज धारु॥
श्याम शरीर रचित पीताम्बर उरे बनमाला लोले।
कौस्तुभ शोभि कंठ कटि कांचि किङ्किणि कनया दोले॥
अरविन्द निन्दि पाव नव पल्लव रतन नुपुर परकाशा।
भक्त परम धन ताहे मजोक मन शंकर पहु अभिलाषा॥
(बरगीत)

(३) द्विभुज विष्णु—भगवान् सच्चिदानन्द विष्णुने ही वृन्दावनमें अवतार लेकर गोप-वेष धारण किया है। मुरलीधारी ब्रजविहारीरूपी विष्णुकी अलौकिक लीला भक्तोंको दिव्यानन्द प्रदान करती है।

'चिदानन्द मुरुति कपत गोपवेश।'
(बरगीत)

(४) विश्वरूप विष्णु—समग्र चराचर अव्यक्त विष्णु-का व्यक्त रूप है। जो लोग विष्णु-मायासे विमोहित हैं, उनको यह जगत् हरिसे भिन्न दिखलायी देता है। वैष्णवके लिये सारा स्थावर-जङ्गम जगत् विष्णुमय है। श्रीमंत शंकरदेवजीने लिखा है—

यत देखा चराचर, हरिमय निरन्तर हरित पृथक् कोनो नोहे।
जि जन भकति हीन, सि देखे हरित भिन्न हरिर मायाये ताक मोहे॥
(हरमोहन कीर्तनघोषा)

भगवान् श्रीविष्णुके (१) निर्गुण ब्रह्मरूप, (२) चतुर्भुज रूप, (३) द्विभुज रूप और (४) विश्वरूपके अतिरिक्त कहीं-कहीं उनका वर्णन अष्टभुज स्वरूपमें भी आया है।

असममें भगवान्‌की वाङ्मयी मूर्तिके पूजनको सर्वाधिक प्रधानता दी जाती है। भगवान्‌के शब्द ब्रह्म-स्वरूप हैं। श्रीहरिमन्दिरमें उच्च आसन बनवाकर उसपर वेद-भागवत-गीतादि शास्त्रोंको स्थापित किया जाता है। उन शब्दब्रह्म वाङ्मयी मूर्तिमें भगवान् विष्णुकी भावना कर उच्च आराधना की जाती है। आराधनामें श्रवण-कीर्तनादि नवविध भक्ति ही प्रचलित है। महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव, माधवदेव, कमलाकान्त आता आदिका ऐसा ही मत है। उन्होंने नामको श्रीविष्णुका स्वरूप माना है। कहा है—

आपोन नामर सङ्ग नचारन्त हरि।
सेइ नाम सेइ हरि जाना निष्ठ करि॥

असमके वैष्णव भगवान्‌की चतुर्भुज मूर्ति या द्विभुज मूर्तिकी उपासना करते हैं, मन्दिरोंमें भी ऐसी मूर्तियाँ प्रतिष्ठित हैं। शालग्रामजीकी आराधना होती है, परंतु इनका उतना महत्त्व नहीं है, जितना महत्त्व अक्षरस्वरूप वाङ्मयी प्रतिमाका है। शास्त्रोंकी आराधनाके रूपमें ही भगवान् विष्णुकी आराधना होती है।

महापुरुष श्रीशंकरदेवके मतानुसार '**बालस्त्रीशूद्रजातीनां प्रतिमेयं विधीयते॥**—बाल, स्त्री, एवं शूद्र-जातिके लिये भी प्रतिमामें भगवदाराधन विधेय है।' जिस प्रकार सूरदासजीने

गाया है—'मो सम कौन कुटिल खल कामी।'' उसी प्रकार अपने पामर मन और पतित जीवनका सकरुण चित्र उपस्थित करते हुए हरिनामाश्रयी श्रीशंकरदेवजी भगवान् नारायणसे क्षमा-याचना करते हुए प्रार्थना करते हैं—

नारायण काहे भकति करो तेरा।
मेरि पामरु मन माधव धने घन घातुक पाप ना छोरा॥
यत जीव—जङ्गम कीट पतङ्गम अग नग जग तेरि काया।
सब कहु मारि पुरत ओहि ऊदर, नाहि करतु भुत दाया॥
ईश स्वरूपे हरि, सब घटे बैथह, येचन गगन बियापी।
निन्दाबाद, पिशुन हिंसा, हरि तेरि करो हो हामु पापी॥
काकु शङ्करे कर, करु करुणानाथ, यो नो छारहु राम बानी।
सब अपराधक, बाधक तुवा नाम, ताहे शरण लेहु जानी॥
(बरगीत)

भाव यह है कि 'हे नारायण! मैं आपकी भक्ति कैसे करूँ? मेरा मन तो पापी है। दूसरोंकी हानि करना ही मेरे जीवनका स्वभाव है। जगत्में जितने भी जीव—जंगम, कीट-पतंग, अग (वृक्ष-वन आदि), नग (पर्वत आदि) हैं, वे सब-के-सब भगवत्स्वरूप हैं। सबमें तो आप नारायण विराजमान हैं, यों जानकर भी मैं तो सबकी निन्दा-हिंसा कर रहा हूँ और सबकी हानि कर अपना पेट भर रहा हूँ। फिर कैसे आपकी भक्ति कर सकूँगा, मेरे सारे अपराध आप क्षमा करें। श्रीशंकरदेव कहते हैं कि मैंने आपके चरणोंकी शरण ली है और आपके नामका जप करता हूँ।'

वस्तुतः दैन्य, आत्मनिवेदन भगवदास्था, प्रभु-पद-शरण-याचना, हरिनाम-आश्रय आदि असमकी वैष्णवी भक्तिकी दिव्य वस्तु है।

वङ्ग-प्रदेशमें वैष्णव-धर्म और साहित्य

(लेखक—श्रीव्योमकेश भट्टाचार्य, साहित्यभूषण)

वेद अपौरुषेय हैं, वैष्णवधर्म वैदिक-धर्म है। ऋग्वेदकी अनेक ऋचाओंमें श्रीविष्णु-देवताका उल्लेख है। विष्णु सर्वव्यापक, विभु, वासुदेव हैं। ऐश्वर्य-लीलाके विग्रह-रूपमें जो श्रीविष्णु हैं, माधुर्यलीलामें वे ही श्रीकृष्ण हैं। श्रीविष्णु और श्रीकृष्ण एक तत्त्व हैं।

बंगाल या वङ्गदेश अति प्राचीन देश है। ऐतरेय-आरण्यक, पातञ्जल-महाभाष्य, रामायण, महाभारत आदि ग्रन्थोंमें वङ्गदेशका उल्लेख है। बलि राजाकी रानी सुदेष्णाके गर्भसे अङ्ग, वङ्ग आदि पाँच पुत्र उत्पन्न हुए। वङ्गके शासनाधीन जनपदको बंगाल या वङ्गदेश कहते हैं।

श्री (रामानुज), मध्व, विष्णुस्वामी और निम्बार्क—इन चार वैष्णव-सम्प्रदायोंके सिवा रामानन्दी और श्रीमत् सुन्दरानन्द विद्याविनोदके 'अचिन्त्यभेदाभेद' और 'श्रीकृष्णचैतन्य-परतत्त्वसीमा'—इन दो ग्रन्थोंके अनुयायी श्रीचैतन्यदेवद्वारा प्रवर्तित वैष्णव-धर्मको मध्व-सम्प्रदायके अन्तर्गत न मानकर 'गौड़ीय वैष्णव' नामसे एक पृथक् सम्प्रदायकी सृष्टि करते हैं। इन छः वैष्णव-सम्प्रदायोंका प्रभाव कब, किस प्रकार वङ्गदेशपर पड़ा है, इसका निर्णय करना कठिन है। विष्णुस्वामी या वल्लभाचार्यके पुष्टिमार्गका प्रभाव आज भी वङ्गदेशमें नहीं है। निम्बार्क-सम्प्रदायके श्रीकेशवकाश्मीरी और श्रीचैतन्यदेवकी भेंटके विषयमें मतभेद है। तथापि मध्यवर्ती माधवेन्द्रपुरीकी साधनाका प्रभाव प्राक्-चैतन्ययुगमें वङ्गदेशपर विशेषरूपसे पड़ा था। 'श्री' और 'निम्बार्क' सम्प्रदायका वङ्गदेशपर प्रभाव बीसवीं शताब्दीमें पड़ता दीखता है।

गौड़-युगमें उत्तर प्रदेशके विन्ध्यपर्वतसे आसामके प्राग्-ज्योतिषपुरपर्यन्त भूभाग 'पञ्चगौड़'के नामसे विदित था। ईसाकी सप्तम शताब्दीमें चीनी यात्री हुएनत्साङ्के अनुसार ''शिलादित्य पञ्चगौडेश्वर-उपाधिसे विभूषित थे। बंगालके हिंदू राजा शशाङ्कके बाद वङ्गदेशमें बौद्धधर्मका प्रभाव विशेषरूपसे पड़ा। नालन्दा विश्वविद्यालयके अध्यक्ष शीलभद्र और बौद्धाचार्य 'दीपंकर श्रीज्ञान' वङ्गदेशकी संतान थे। बौद्धयुगके बाद बंगालमें तन्त्र-साधनाके कुलाचार (पश्वाचार)का विशेष प्रभाव था। तन्त्र वङ्गदेशका स्वधर्म है। दुर्गा, काली आदि बंगालियोंके जातीय देवता हैं। वङ्गदेशमें प्रवर्तित दुर्गापूजा विश्वव्यापिनी है। अतएव इस तन्त्र-साधनाके प्रभावके भीतर अन्य धर्मका प्रवेश कहाँ-तक सहज-साध्य था, यह बतलाना कठिन है।'' श्रीचारुचन्द्र बन्द्योपाध्याय अपने 'विद्यापति और चण्डीदास' नामक ग्रन्थमें लिखते हैं कि ''ई० पू० २५०में वङ्गदेश विजातीय लोगोंके द्वारा विजित हुआ। तत्पश्चात् शुङ्ग, कुशाण, गुप्त और

पाल्वंशीय राजाओंने वङ्गदेशपर शासन किया। गुप्त और पालयुगमें वङ्गदेशके साथ मगध और काशीका भाषागत साम्य था। ११९९ ई०में वङ्गदेश विधर्मी तुर्कोंके द्वारा विजित हुआ। ईसाकी दसवीं शताब्दीमें बंगला भाषाने आधुनिक स्वरूप ग्रहण किया। ११५९ ई०में वङ्गकवि जयदेवने अपने अमर काव्य 'गीत-गोविन्द' का संस्कृत भाषामें प्रणयन किया। यही जान पड़ता है, वङ्गदेशमें वैष्णव-धर्म और साहित्यका सूर्योदय था।"

Dr. K. M. Munshi ने अपने 'Gujarat and Its Literature' नामक ग्रन्थमें लिखा है—

"Jayadev, the author of the 'Gīta-Govinda' in the twelfth, wrote highly artistic and sensuous poems of Shree Krishna. The linguistic, rhythmic and sentimental graces of 'Gīta-Govinda' caught the imagination of all Bhaktas in the country."

"गीतगोविन्द (१२वीं शताब्दी) के रचयिता जयदेवने श्रीकृष्णके विषयमें अत्यन्त कलापूर्ण और सरस काव्योंकी रचना की। 'गीतगोविन्द'के भाषा-लालित्य, संगीतमयता और भाव-सौन्दर्यने देशभरके भक्तोंको आकर्षित कर लिया।"

गौडेश्वर नसिर खाँने १३२५ ई०पर्यन्त वङ्गदेशमें शासन किया। उनके शासनकालमें उनके सहयोग से महाभारतका वङ्गभाषामें अनुवाद हुआ।

श्रीयुक्त नृपति से जे नसरत खान।
रचाइल पाञ्चाली जे गुणेर निदान॥
(कवीन्द्र परमेश्वर)

अब प्राक्चैतन्य-युगमें वङ्गदेशमें वैष्णव-धर्मके प्रभाव तथा कुछ वैष्णव-पदकर्त्ता और साहित्यिकोंका परिचय दिया जाता है—

विद्यापति—विद्यापतिकी जन्म-तिथिके विषयमें मतवैभिन्न्य होनेपर भी बहुतोंके मतसे वे १३५८ ई०में पैदा हुए थे। उस समय मिथिला पञ्चगौड़के अधीन थी। इसी कारण कवि विद्यापतिके ऊपर मैथिल और बंगाली दोनों दावा करते हैं। वङ्गदेशके विद्यार्थी उन दिनों स्मृति एवं प्राचीन न्यायके अध्ययनार्थ मिथिला आते थे। विद्यापतिने मैथिली और बंगला, दोनों भाषाओंके मिश्रणयुक्त बोलीमें राधाकृष्णविषयक पद-रचना करके अपने अमर काव्य 'कीर्तिलता' द्वारा बंगालके हृदयको जीत लिया था। वे थे विरहके कवि। विद्यापतिकी उपमा, वर्णनका चातुर्य, सौन्दर्य-सृष्टि काव्य-जगत्में अतुलनीय है। मैथिली और बंगला भाषामें अत्यल्प भेद दृष्टिगोचर होता है। जैसे—

चंचल नयने वक्ष निहारनि अंजन शोभन ताय।
अजु इन्दीवर पवने ठेलल अलि भये उलटाय॥

चण्डीदास—चण्डीदास बंगलाके आदि और श्रेष्ठ वैष्णव-पदकर्त्ता हैं। बहुतोंके मतसे उनका जन्मकाल १४२७ ई० है। श्रीकृष्ण-लीलावर्णनमें पटु चण्डीदास, द्विज चण्डीदास, दीन चण्डीदास एक ही व्यक्ति हैं या पृथक्-पृथक्—इस विषयमें मतभेद है। कविके भाव-गाम्भीर्य, भाषा-सौष्ठव, छन्दकी झंकार और असाधारण कवित्वने बंगाली जातिके हृदयको जीत लिया है। Dr. K. M. Munshi कहते हैं—

"...rang with the passionate love-songs of one of the greatest of Indian poets, Chandidas."

चण्डीदासके आविर्भावसे वङ्गदेशमें राधा-कृष्ण-प्रेमकी वैष्णव-साधना और साहित्यका उदय हुआ। चण्डीदासके परवर्ती कालमें नरहरि सरकार नामक एक वैष्णव कविका पता लगता है (जन्म १४६५ ई०)। उनका पद है—

कहिओ कानूरे सइ, कहिओ कानूरे।
एक बार पिया जेनो आइसे ब्रजपुरे॥
(कन्हैयासे कहना, कहना कन्हैयासे।
एक बार, हे प्यारे, ब्रजपुरमें फिर पधारे॥)

कवि कृत्तिवास (जन्म १४३२ ई०)—राम-लीलाका वर्णन करनेमें ये बंगलाके आदिकवि हैं। सुललित बंगला भाषामें उनकी अमर कीर्ति 'कृत्तिवासी रामायण' है। उनकी प्रार्थना है—

धरणी लुटाय कहे जुड़ि दुइ कर।
अकिंचने कर दया राम रघुबर॥

'पृथ्वीपर लोटकर दोनों कर जोड़कर कहता—राम रघुबर! अकिंचनपर दया कर।'

मालाधर वसु—वङ्गदेशका वसु-परिवार वैष्णव-धर्मानुरागी था। १४७३ ई०में मालाधर वसुने वङ्गभाषामें श्रीमद्भागवतका अनुवाद किया। अनूदित ग्रन्थका नाम

'श्रीकृष्ण-विजय' है। श्रीचैतन्य महाप्रभु जिन ग्रन्थोंका पाठ और कीर्तन करते थे, उनमें 'श्रीकृष्ण-विजय' भी एक था।

उनके पश्चात् काशीरामदासने नसरत साहबके आदेशसे, संजय, छूटी खाँके आदेशसे श्रीकरण नन्दी, षष्ठीवर आदि ३१ बंगालियोंने महाभारतका वङ्गानुवाद तथा महाभारतके सम्बन्धमें कई ग्रन्थोंका प्रणयन किया।

श्रीचैतन्यदेव (आविर्भाव १४८६ ई० और तिरोभाव १५३३ ई०)—श्रीचैतन्य महाप्रभु केवल बंगालके ही नहीं, समूचे भारतकी आत्मा थे। वे एक ही साथ भगवान्, युगावतार, सनातन-धर्मरक्षक और समाज-सुधारक थे। सिकंदरने अस्त्रसे और अंग्रेजोंने छल-कपटसे विश्वपर विजय प्राप्त की थी। पर श्रीचैतन्य महाप्रभुने प्रेममन्त्रसे विश्वके लोगोंके हृदयको जीता। आज भी उनका विश्वविजय चालू है। महाप्रभुकी सारे भारतकी पद-यात्रा, वर्तमान कालकी पदयात्राके समान न थी। प्रायः पाँच सौ वर्ष पूर्व विभिन्न स्वाधीन देशोंके बीच होकर विपद्-संकुल मार्गसे निर्भय होकर भारतमें पदयात्रा करके उन्होंने प्रेमधर्मका प्रचार किया था। उन्होंने अपनी पद-प्रतिष्ठाका ध्यान न रखकर अद्वैताचार्य, मुरारिगुप्त, श्रीवास आदि चारों भाई, चन्द्रशेखर आचार्य, सेन शिवानन्द, मुकुन्द, वासुदेव, पुण्डरीक विद्यानिधि, नित्यानन्द, तपनमिश्र आदि तत्कालीन दार्शनिक, आयुर्वेदाचार्य, संगीतज्ञ, वैज्ञानिक, अर्थविद्, समाज-तत्त्वज्ञ आदि बुद्धिजीवियों (Intellectuals) को लेकर एक महान् आध्यात्मिक गोष्ठी बनायी थी। यवन हरिदासको अपनी गोष्ठीमें श्रेष्ठ स्थान देकर विधर्मी शासकको स्तम्भित कर दिया था। श्रीगिरिजाशंकर राय चौधुरीने अपने बंगला-चरित-ग्रन्थोंके अन्तर्गत 'श्रीचैतन्य' नामक ग्रन्थमें लिखा है—'स्वतन्त्र वङ्गके सेना और राजस्व-विभागके दो मन्त्रियों (रूप और सनातन) ने केवल कौपीनधारी एक उन्मत्त संन्यासीके पैरोंपर सिर रगड़ा। तब वैष्णव-धर्मके आन्दोलनने इतिहासके एक नवीन पथपर पदार्पण किया।'

केवल स्वतन्त्र वङ्गके दो मन्त्री ही नहीं, उत्कलके राजा प्रतापरुद्र और उनके राज्यपाल राय रामानन्द भी प्रेमावतार श्रीचैतन्य महाप्रभुके चरणोंमें नतमस्तक हुए थे। Dr. K. M. Munshi ने अपने ग्रन्थमें लिखा है—

'A stern ascetic and a profound scholar, Chaitanyadev, prayed and sang to his Lover, quivering with emotion like a heart-broken girl. Soon he became the living embodiment of Bhakti. He revolutionized Vaishnavism.'

'कठोर तपस्वी और प्रकाण्ड विद्वान् श्रीचैतन्यदेवने भावावेशमें काँपती हुई एक दलितहृदया बालाकी भाँति अपने प्रेमी श्रीकृष्णको पुकारा और उनका गान किया। शीघ्र ही वे भक्तिके साकार विग्रह बन गये और उन्होंने वैष्णव-धर्ममें विप्लव मचा दिया।'

वस्तुतः श्रीचैतन्य महाप्रभुकी साधना और प्रतिभाने तन्त्र-प्रभावित वङ्गदेशमें वैष्णव-धर्म और वैष्णव-साहित्यके नवयुगकी सृष्टि की थी। महाप्रभुके निर्देशसे वङ्गदेशके राज-मन्त्री रूप और सनातनने श्रीवृन्दावनके लुप्त तीर्थोंका उद्धार किया था। तत्पश्चात् रूप-सनातन तथा जीवगोस्वामीने वैष्णव-साहित्यकी रचना करके उसकी श्रीवृद्धि की। कृष्णदास कविराज गोस्वामीने श्रीवृन्दावनमें राधाकुण्ड-के तटपर अवस्थान करके 'श्रीचैतन्यचरितामृत'-नामक जिस अपूर्व ग्रन्थका प्रणयन किया, वह वङ्गदेशके वैष्णव-साहित्यकी श्रेष्ठ देन है। दूसरी ओर वङ्गदेशमें वृन्दावनदास, मुरारिगुप्त, लोचनदास, जयानन्द, गोविन्द-दास आदि १५५ पद-कर्ताओंने श्रीकृष्ण-लीला और चैतन्य-लीलाके विषयमें अनेक ग्रन्थोंकी रचना करके वैष्णव-साहित्यको समृद्ध किया। उत्तर भारतके रसखानके समान वङ्गभाषा-में चाँदकाजी, कवि आलाउन, सैयद मुर्तजा अली आदि अनेक मुसल्मान पदकर्ता हो गये हैं। सुप्रसिद्ध टीकाकार श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती, वेदान्त-दर्शनके 'गोविन्द-भाष्य'के रचयिता श्रीबलदेव विद्याभूषण, आधुनिक कालके श्रीरसिकमोहन विद्याभूषण, डा० राधागोविन्दनाथ आदिने अनेक ग्रन्थोंकी रचना करके वैष्णव-साहित्यको समृद्ध किया है। डा० दिनेश सेनने अपने 'वङ्गभाषा और साहित्य' ग्रन्थमें लिखा है कि 'वङ्गदेशमें ऐसा कोई गाँव नहीं है, जहाँ प्राचीन कालमें दो-एक ग्रामीण कवि उत्पन्न न हुए हों। वैष्णव-साहित्य अति विशाल है। वैष्णव कवियोंने जिस उपादानका सृजन किया था, उसी उपादानको लेकर चैतन्य महाप्रभुने अपने भक्तिधर्म और प्रेमके स्वर्गकी रचना की थी। दूसरे वैष्णव-सम्प्रदाय दास्य—ऐश्वर्य-भावके उपासक हैं। महाप्रभुके द्वारा प्रवर्तित गौड़ीय वैष्णव-सम्प्रदायमें राधा-कृष्णकी उपासनाने माधुर्य-रसमें—गोपी-भावमें साधना-जगत्‌को रूपान्तरित किया है। इसके मूलमें निश्चयपूर्वक चण्डीदास-विद्यापतिकी कृतियाँ, रायके नाटक-गीति, कर्णामृत, श्रीगीतगोविन्द आदि ग्रन्थ हैं।'

'विद्यापति-चण्डीदास' ग्रन्थमें श्रीचारुचन्द्र बन्द्योपाध्यायने लिखा है—"चैतन्य महाप्रभु प्रायः राय रामानन्दके 'जगन्नाथ-वल्लभ' नाटक, पदावली और श्रीकृष्णकर्णामृत-ग्रन्थका रसास्वादन करते थे । श्रीचैतन्य महाप्रभुकी गोपीभावकी साधनाके साथ कृष्ण-प्रेम-पगली मीराँकी साधनाका कुछ मेल है ।" 'International Society for Shree Krishna consciousness' नामक संस्थाके संस्थापक श्रीमद्भक्तिवेदान्तस्वामी बंगालकी ही सुसंतान हैं । चीन, रूस और मुस्लिम राष्ट्रोंके सिवा सारे विश्वमें श्रीचैतन्य महाप्रभुकी साधना, बंगालका वैष्णवधर्म और साहित्य किस प्रकार प्रचारित हो रहा है, यह सभी विज्ञजनोंको विदित है । मनीषी विपिनचन्द्र पालने अपने 'Bengal Vaishnavism' नामक ग्रन्थमें लिखा है—

'The meaning of Vaishnavism is the religion or cult of Vishnu. The Absolute or the Ultimate Reality in Bengal Vaishnavism is both the Knower and the object of His own Knowledge. The art of Bengal Vaishnavism is built upon the conception of the Purusha and Prakriti, Shree Krishna is the Purusha or the Supreme Person, and Shree Radha is the name for His Prakriti. Radha-Krishna are, however, really not two, but one'. अर्थात् "वैष्णवमतका अर्थ है—विष्णुसे सम्बन्ध रखनेवाला धर्म या सम्प्रदाय । वङ्गदेशके वैष्णवमतमें परम या चरम तत्त्व दोनों हैं—ज्ञाता और ज्ञेय । वङ्गदेशके वैष्णवमतकी कला पुरुष और प्रकृतिकी धारणापर आधारित है । श्रीकृष्ण पुरुष अथवा पुरुषोत्तम हैं और श्रीराधा उनकी प्रकृतिका नाम है । राधा-कृष्ण वस्तुतः दो नहीं हैं, एक हैं, अभिन्न हैं ।"

श्रीविष्णुके वैष्णव-धर्मने बंगाली जातिको भावप्रवण तथा वैष्णव-धर्म और साहित्यको रसग्राही बनाया है ।

उत्कल-प्रदेशमें वैष्णव-धर्म और साहित्य

(लेखक—श्रीनीलमणि पट्टनायक)

करुणामय भगवान् विष्णुकी आराधना वैदिक कालसे होती आ रही है । अवश्य ही बौद्धधर्म और जैनधर्मके विस्तारसे वैष्णव-धर्मकी गतिमें कुछ हदतक शिथिलता आयी । पर आगे चलकर शुङ्गवंशीय राजा पुष्यमित्रके द्वारा इसका पुनरुत्थान भी हुआ । उसके बाद गुप्त-राजत्वकालमें भी वैष्णव-धर्मका अभ्युदय हुआ । उत्कलमें बुद्धदेवके पहलेसे ही होती आ रही विष्णु-आराधनाकी नींव तब सुदृढ़ हुई, जब वहाँ नरहरि तीर्थ, मध्वाचार्य आदिका आगमन हुआ । चैतन्य-देवके आगमनसे ही उत्कलमें वैष्णव-धर्म-आश्रयका ज्वार आ गया । इन महापुरुषोंके आगमनने और भागवतके प्रचारने उत्कलमें वैष्णव-धर्मकी नींव मजबूत कर दी । यहाँके पञ्चसखा (बलरामदास, जगन्नाथदास, यशोवन्तदास, अनन्तदास, अच्युतानन्ददास) भक्तोंने पुरुषोत्तम-धामको नित्यधाम और श्रीकृष्णको अवतारीके बजाय अवतारके रूपमें ग्रहण किया था । ये भजन 'हरे राम' आदि षोडश-नाम मन्त्रका करते थे ।

भागवतकार सारलादासके बाद वैष्णव कविके रूपमें मार्कण्डदासके दर्शन होते हैं । उनकी दो प्रमुख रचनाएँ 'महाभाप' और 'केशव-कोइली' हैं । आपके 'महाभाप' में शिवजीके मुखसे रामकी प्रशस्ति और 'केशव-कोइली'में कृष्णके बालरूपकी महत्ता वर्णित है । इसके अलावा कवि बलरामदासकी 'रामायण' और अर्जुनदासकी 'रामविभा'-में रामकी लीला वर्णित है । जगन्नाथदासका 'भागवत' तथा अच्युतानन्ददासका 'हरिवंश' तो बादकी रचनाएँ हैं । अन्य सखाओं अर्थात् अनन्त, यशोवन्त एवं अच्युतकी कृतियाँ श्री-कृष्णके महिमागानसे पूर्ण हैं । इनकी कृतियोंमें कृष्णके निराकार और साकार—दोनों रूपोंका वर्णन मिलता है । अपितु यह कहना उचित होगा कि वैदिक कालमें जिस वैष्णव-धर्मका बीजारोपण हुआ था, उसके अङ्कुरकी रक्षा पुष्यमित्रद्वारा की गयी । वही छोटा-सा अङ्कुर पंद्रहवीं शतीमें अनुकूल हवा पाकर फूलने-फलने लगा । १५१० ईस्वीमें श्रीचैतन्यदेवके उड़ीसा-आगमनसे और पञ्चसखाओंके साथ राजाके उनका शिष्यत्व ग्रहण करनेसे इस धर्मको अधिक बल मिला—'श्री राजा प्रताप शिष्य हैले पुणि, शिष्य हैले बहुलोक' । इस समय वैष्णव-धर्मका स्रोत इतने जोरसे प्रवाहित होने लगा कि उत्कलके

दुर्द्धर्ष वीर जवान भी वीरत्वको भूलकर महामहिमकी महान् लीलाके गानमें मस्त हो गये। जगन्नाथदासजीकी तन्मयता देखकर श्रीचैतन्यने उन्हें बहुत बड़ी उपाधिसे विभूषित किया। मोटे तौरपर उन पञ्चसखाओंका युग वैष्णव-धर्म-प्रचारका युग रहा।

पञ्च-सखा-युगके बाद उत्कल-साहित्यमें काव्य-युगका आरम्भ होता है। इस युगके स्मारक-स्वरूप 'राम-विभा' काव्य उड़ीसामें आजतक प्राप्त काव्योंमें पहला माना जाता है। उसमें राम-भक्तिका निदर्शन है। बादमें अनेक कवियोंने पुराणोंके आधारपर कृष्ण-महिमा और लीला-कीर्तन-समन्वित काव्योंकी रचना की है। उनमें शिशु-शंकरका 'ऊषा-भिलाप' और देवदुर्लभका 'रहस्यमञ्जरी' अपूर्व है और इन रचनाओंकी ललित-मधुर-कान्त पदावलीमें संगीतका समावेश है। 'रहस्य-मञ्जरी' काव्यमें कृष्णकी अपूर्व महिमाका वर्णन है। गोपियोंके रासके प्रसङ्गमें शिशु-शंकरदासने एक स्थानपर लिखा है—

गावन्ति, बावन्ति, नृत्यन्ति बाला। उन्मद मदन सखे भोला॥
झलमल झटकित ताटक गंडे। विद्युत-खेले कि जीमूत खंडे॥
रंगिका-अधरे भंगिमा-गारा। लोचन-बक्रे कृष्ण-मुख चाहे॥

देवदुर्लभदासने राधा-माधवसे अनुप्राणित होकर एक स्थानपर लिखा है—

'दूति तु कन्हाईं पास कु याउ किना,
बसन-कंकण याहा मात्रु ताहा नउ किना।'

दूसरे स्थानपर भी आप कहते हैं—

चारि भक्ति मध्ये अटे प्रेम भक्ति सार,
से भक्ति अटई कोठ गोपी मानंकर ये।
गोपीकी भजिला भक्ति प्रेम भक्ति पाइ,
बिना प्रेम भक्ति रे दर्शन मोटे नाहिं॥

यवन होते हुए भी सालबेगने उत्कलके जगन्नाथको 'विष्णु' समझकर जिस प्रकार अपने उद्गार प्रकट किये हैं, वे सदैव सराहनीय हैं। उनके विभिन्न भजन और आचरणद्वारा यह स्पष्ट होता है कि उन्होंने अपने तन-मन-धनको परमात्मा, परमसुख-विधायक श्रीविष्णुके पदतलमें अर्पित कर दिया था, इसमें संदेह करनेका कोई अवकाश नहीं। जगन्नाथ विष्णुके प्रति अपने उद्गार प्रकट करते हुए उन्होंने कहा है—

आहे नील शइल प्रबल मत्त बारण,
मो आरत नलिनी बनकु कल दलन।
× × ×

कहे सालबेग हीन जाति रे मुं यवन,
श्रीरंगा-चरण-तले पशु अधि शरण।
× × ×

जगबंधु हे गोसाईं।
मोह थिबा याके नंदि घोषे थिब रहि॥

'हे जगद्बन्धु स्वामी! आप मेरे जानेतक नंदीघोषपर बैठे रहें।'

आप मुसलमान होनेके कारण जगन्नाथके मन्दिरमें प्रवेश नहीं पा सकते थे। प्रसिद्ध रथयात्राके अवसरपर श्रीजगन्नाथका दर्शन इन्हें आत्म-समर्पणके अन्तिम छोरतक ले गया और आपने भक्त होनेके नाते श्रीजगन्नाथके पावन चरणोंमें स्थायी स्थान प्राप्त कर लिया।

भक्तियुगके बाद उत्कल-साहित्यमें रीति-युगका समय आया। देशभरमें मुगल बादशाहोंका शासन स्थापित हो गया। यत्र-तत्र जो कुछ स्वाधीन राज्य थे, वे नहींके बराबर थे। फिर भी उनके शासक-वर्ग विलासिताकी दृष्टिसे मुगल बादशाहोंसे पीछे न थे। उत्कलकी गिरी हुई सामाजिक दशासे प्रभावित होकर साहित्यकी दिशा भी बदल गयी। साहित्यकार विलासितासे परिपूर्ण जीवनका गुण-गान करनेमें मस्त रहने लगे। साहित्यमें विलासिताके वर्णनकी अधिकता होनेके बाद भी गङ्गा-यमुनाके बीच सरस्वती-जैसी एक अन्तः-सलिला धाराके रूपमें वैष्णव साहित्य प्रवाहित होने लगा। इस युगके प्रमुख कवि उपेन्द्रभंज और दीनकृष्ण आदिने भक्ति, भक्त और भगवान्के गीत गाये। दीनकृष्णका भक्ति-रसात्मक काव्य अब उड़ीसा-साहित्यमें एक मूर्धन्य स्थान प्राप्त करता है। अपने कृष्णको अपना सर्वस्व मानकर उन्होंने लिखा है—

कृष्ण रूप करु थिब धिआन। कृष्ण चरित करुथिब गान॥
कृष्ण कथा श्रवण रे शुणिब। कृष्ण बोलि जगतकु जाणिब॥
कृष्ण कार्ये ततपर होइब। कृष्ण गीत सरवारे गाइब॥
कृष्ण दासंकु प्रसन्न होइब।

इनकी आध्यात्मिकता भी नित्यलीलायित श्रीकृष्णके पाद-पद्मपर अर्पित है। वे कहते हैं—

कृष्ण नामरे ये नुहंई सुखी। सब संगत रे ताहाकु लेखि॥
× × ×
चंडाल होइण जेबे विष्णु रे भजन। ब्राह्मण हिं सरिताकु नुहंई अर्जुन॥

कवि अभिमन्यु सामन्त सिंहार भी कृष्णभक्त थे। अपनी सारी रचनामें दिव्य कौशलके साथ उन्होंने कृष्ण-लीलाका

गान किया है। उनकी रचना 'विदग्ध-चिन्तामणि'में भक्तिका उत्तम वर्णन है। 'विदग्ध-चिन्तामणि' उड़ीसामें ही नहीं, वरन् सारी भारतीय भाषाओंमें तथा वैष्णव-साहित्यमें एक अनोखा अनुपम रसात्मक अलंकारपूर्ण काव्य है। कविने कृष्णका लीलागान करते हुए 'अ'के अनुप्रासके साथ काव्यका आरम्भ किया है—

अप्राकृत प्रेम मूर्ति जय राधा हरि। अव्यक्त लीलाकु व्यक्त कर अवतरि॥
आदि-अनादि कारण निर्गुण-सगुण। आत्माराम सनातन ब्रह्म निरूपण॥
ईश्वर स्वतन्त्र स्वयं भगवान् तुहि। इच्छामय सर्वशक्तिवन्त तत्त्व विहि॥
ईश-शेषादि सेवक सेव्य एका तुहि। ईष्ट अभीष्टद दयानिधि भावग्राही॥
उत्पति पालनांत तो भ्रु भंगी विन्धारे। रतप्लुत तंतुवाय सूत्र परकारे॥

इनके अतिरिक्त इस युगमें जिन महानुभावोंने अपनी लेखनीके माध्यमसे वैष्णव-साहित्यकी श्री वृद्धि की है, उनकी झलक इस प्रकार है—

नाम	रचना	विषय
कविसूर्य सदानन्द ब्रह्मा	'किशोर चन्द्रानन-चम्पू'	कृष्णकी माधुर्यलीला
भक्त चरणदास	'मथुरा-मंगल'	कृष्ण-लीला (ऐश्वर्य और माधुर्य)
गोपाल कृष्ण	'मुक्तक'	कृष्ण-लीला

अन्तमें इतना ही कहना उचित होगा कि उपर्युक्त वैष्णव कवियोंकी रचनाने उत्कलके वैष्णव-धर्म तथा वैष्णव-साहित्यको समृद्ध ही नहीं, अपितु प्रभावशाली भी बनाया है। आजका युग भले ही बदल गया है, पर परमात्मा विष्णुके पदारविन्दकी ओर किसका मन उन्मुख नहीं होता। भगवान् विष्णुकी भक्तिकी वेगवती धारामें गोता लगानेको कौन उत्सुक नहीं है? यह सब उन वैष्णव कवियोंका ही प्रसाद है।

मिथिलामें विष्णु-भक्ति

(लेखक—पं० श्रीवैद्यनाथजी झा)

यह सौभाग्य भी इसी मिथिलाभूमिको प्राप्त है कि यहाँकी भूमिसे साक्षाज्जगज्जननी जानकी प्रकट होती हैं। परम ज्ञानकी दृष्टिसे इस देशको सर्वमूर्धन्य कहा जाय तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। सर्वोच्च ज्ञानके परमादर्श बृहदारण्यक-उपनिषद्-जैसे सद्ग्रन्थका प्रवचन यहीं, जनक-याज्ञवल्क्यकी सभामें हुआ था। मैत्रेयी-कात्यायनी आदि प्राचीन एवं लखिमा, सरस्वती आदि अर्वाचीन ब्रह्मज्ञानसम्पन्ना नारियाँ यहींकी पावन रजमें प्रकट हुई थीं। विद्याकी दृष्टिसे प्राचीन कालसे अद्यावधि यह पावन प्रदेश सर्वमूर्धन्य रहा है। प्राचीन न्यायके परमाचार्य महर्षि गौतम तथा नव्यन्यायके आद्याचार्य गङ्गेश यहींकी विभूतियाँ थे। दार्शनिक जगत्के देदीप्यमान रत्न षड्दर्शनोंके टीकाकार वाचस्पतिमिश्र, प्रसिद्ध शास्त्रार्थ-महारथी मण्डनमिश्र तथा पक्षधरमिश्र यहींके आलोक थे। संस्कृतके प्रकाण्ड विद्वानोंकी संख्या आज भी यहाँ अपेक्षाकृत बढ़ी-चढ़ी है। गाँव-गाँवमें संस्कृत-पाठशालाएँ यहाँकी संस्कृत-विद्यानुरागिताकी द्योतक हैं।

मिथिलाके कर्मकाण्ड, सदाचार तथा उपासनाकी प्रणाली वेदमूलक होते हुए भी कई विशेषताओं एवं विभिन्नताओंके कारण स्वतन्त्र है। यहाँके लोग न केवल शाक्त हैं न शैव हैं, न किसी एक सम्प्रदायके वैष्णव होते हैं, बल्कि स्मार्त होते हुए भी उन्हें विष्णुप्रधान स्मार्तवाद ही परमादर्शरूपेण ग्राह्य है। घर-घर तुलसी तथा श्रीशालग्रामकी पूजा यहाँकी महती विशेषता है। यहाँ प्रत्येक ब्राह्मणके घरमें श्रीशालग्रामकी पूजा नित्य नियमतः होती थी और अब भी अपेक्षाकृत अधिक होती है। यहाँके प्रत्येक कर्मकाण्डमें विष्णुस्मरणका ही विधान है।

मिथिलाके परमाचार्य विदेहराज जनकके ज्ञानगुरु महर्षि याज्ञवल्क्यने अपनी संहितामें भगवान् विष्णुको ही मोक्षप्रद सर्वोच्च तत्त्व मानकर उन्हींकी उपासनाको परम कर्तव्य बतलाया है। इतना ही नहीं, द्विजमात्रके परमाराध्य गायत्रीमन्त्रकी व्याख्या करते हुए उन्होंने गायत्रीका प्रतिपाद्य भगवान् विष्णुको ही माना है।

इस प्रकार उन्होंने भी भगवान् विष्णुको ही मोक्षप्रद सर्वातिशायी देवताके रूपमें मानकर उनकी ही उपासनाका विधान किया है। इस तरह याज्ञवल्क्य तथा गौतमके अनुयायी समस्त मैथिल उपर्युक्त प्रकारसे स्मार्त होते हुए भी मोक्षप्रद देवताके रूपमें भगवान् विष्णुकी उपासना करते हैं और यही प्रथा आजतक मिथिलामें चली आ रही

है। चाहे किसी भी देवताके भक्त क्यों न हों, मृत्युके समय यहाँके लोग तुलसी, गोपीचन्दन, गङ्गाकी मृत्तिका एवं गीताका ही आश्रय ग्रहण करते हैं, जो वैष्णव-धर्मके प्रधान चिह्न हैं। चाहे वे जीवनभर सप्तशतीका ही पाठ क्यों न करते हों, अन्त-समयमें गीता तथा गीतागायक गोविन्दका ही स्मरण करते हैं। इससे यहाँकी वैष्णवता स्पष्ट है।

श्रीवाचस्पतिमिश्र, श्रीरुद्रधरोपाध्याय तथा श्रीदत्तोपाध्याय आदि मिथिलाके प्रकाण्ड विद्वान् थे और वे यहाँके प्रधान आह्निककार माने जाते हैं। इन लोगोंके रचित आह्निकके अनुसार ही यहाँकी संस्कृति, सदाचार तथा समस्त व्यवहार नियमित हैं। उन लोगोंने भी अपने-अपने आह्निक-ग्रन्थोंमें भगवान् विष्णुकी ही उपासनाका विधान किया है। मिश्र महोदयने अपने 'द्वैतनिर्णय' नामक निबन्ध-ग्रन्थमें विष्णूपासनाको ही परम कर्तव्य बतलाया है। जैसे—

'व्रतोपासनादिना ब्राह्मणैर्विष्णुरेवाराध्यः सर्वधर्मानिति-गीतावाक्यात्।' (द्वैतनिर्णय, पृ० ४५)

"व्रत-उपवास आदिके द्वारा ब्राह्मणोंको भगवान् विष्णुकी ही आराधना करनी चाहिये; क्योंकि भगवान्ने कहा है—'समस्त धर्मोंको छोड़कर मेरी शरणमें चले आओ, मैं तुम्हें समस्त पापोंसे मुक्त कर दूँगा'।"

उपर्युक्त मिथिलाके प्राचीन आर्षग्रन्थों एवं यहाँके परम्परागत प्राचीन व्यवहारोंको पक्षपातहीन होकर देखनेसे पावनभूमि मिथिला विष्णुभक्तिमें ही ओत-प्रोत दीखती है।

यद्यपि कुछ शताब्दी पूर्व पड़ोसी प्रदेश बंगाल तथा आसामके सम्पर्कसे यहाँ वाममार्गी शाक्तोंका प्रभाव कुछ अंशोंमें अवश्य पड़ा, तथापि वह मिथिलाका स्वाभाविक रूप नहीं है; उसे आगन्तुक ही मानना चाहिये। जनक-जानकी-याज्ञवल्क्यकी मिथिला तो विशुद्ध विष्णुप्रधान पावन प्रदेश है।

विष्णु-भक्तिमें भी यहाँ श्रीकृष्ण-भक्तिकी प्रधानता रही है, यह भी एक विलक्षण बात है। यहाँ होनेवाले संतोंमें अधिकांश वैष्णव संत ही हुए हैं और उनमें भी श्रीराधा-कृष्णके आराधक ही अधिक हुए हैं। उदाहरणके लिये मिथिलाके प्रसिद्ध संत विद्यापति, गोविन्ददास, गोविन्द ठाकुर, श्रीरोहिणीदत्त गोस्वामी, श्रीलक्ष्मीनाथ गोस्वामी, श्रीकमलादत्त गोस्वामी, भैयाराम झा आदि वैष्णव-संत श्रीराधा-माधवके ही उपासक थे। मिथिलाके समस्त लोकगीत—तिरहुत, सोहर, मलार, वटगवनी, चौमासा, छमासा, बारहमासा आदि, जो विवाहादि माङ्गलिक अवसरों तथा अन्यान्य धार्मिक अवसरोंपर यहाँकी स्त्रियोंद्वारा गाये जाते हैं—वे सभी यहाँ आविर्भूत हुए उच्चकोटिके संतोंकी ही रचनाएँ हैं। इन गीतोंमें ९० प्रतिशत भगवान् श्रीराम तथा श्रीकृष्णसे ही सम्बद्ध हैं। सबसे बड़ी विशेषता तो यह है कि इनमें भी अधिकांश गीत श्रीराधा-कृष्णके मधुरभाव, श्रीवृन्दावन-धाम तथा श्रीगोपीजनोंकी प्रेमा-भक्तिसे ही सम्बन्धित हैं। यहाँ जनक-याज्ञवल्क्यके आदर्शका अधिक आदर होनेके कारण गृहस्था-श्रममें रहकर ही भजन करनेकी परिपाटी रही है। यही कारण है कि यहाँके उपर्युक्त तथा अन्यान्य संतोंने गृहस्था-श्रममें रहकर ही भगवान्का भजन किया और उनसे सम्बद्ध पद बनाये हैं। उपर्युक्त संतोंमें हमारे प्रातःस्मरणीय 'रसिकशेखर' कवि-कोकिल विद्यापति तथा उनकी रसमयी पदावली आज प्रेमी-जगत्में प्रसिद्ध ही हैं। विद्यापतिके सम्बन्धमें आजतक विभिन्न प्रकारकी आलोचनाएँ लोगोंके द्वारा हुई हैं और आज भी होती हैं, जिनमें कुछ लोगोंने उनकी आलोचना करते हुए उनकी पदावली एवं उनकी आत्मिक भावनाके साथ बड़ा अत्याचार करके अपनी बहिर्मुखता एवं कामुकताका ही परिचय दिया है; क्योंकि जिस 'विद्यापति-पदावली'को पढ़कर प्रेमावतार महाप्रभु चैतन्य रोया करते थे, जिनके भक्तिभावसे प्रसन्न होकर भगवान् शंकरने उनकी दासता स्वीकार की थी, उन संत-शिरोमणिकी पदावलीमें लौकिक कामकी कल्पना करना अपनी मूर्खता तथा विषय-लोलुपताका ही परिचय देना है। सत्य तो यह है कि—

'····माधव बहुत मिनति करि तोय।
दय तुलसी तिल देह समर्पिनु दय जनि छाड़बि मोय···।'
'माधव हम परिनाम निरासा··· ···।'
'देख देख राधा रूप अपार··· ··· ··· ···।'
'करु अभिलाषा मनहि, पद-पंकज अहोनिस कोर अगोरि॥'

—इत्यादि पदोंद्वारा उनकी हार्दिक भावना सर्वथा स्पष्ट है, जिसे देखते हुए किसी भी दूसरे प्रकारकी भावनाके लिये अवकाश नहीं रह जाता। ऐसा पद उन्होंने किसी भी दूसरे देवताके लिये नहीं कहा। ऐसी दशामें दूसरे प्रकारकी कल्पना करना उनके साथ अन्याय करना ही नहीं, महान् भगवदपराध भी है। विद्यापतिकी तरह यहाँ और भी अनेकों—गोविन्ददास, उमापति, रामदास, रमापति,

मनबोध, नन्दीपति, लोचन, हर्षनाथ, चंदा झा आद परम विरक्त संत हो चुके हैं। ये सभी वैष्णव-संत श्रीराधा-कृष्णके आराधक एवं परम भावुक थे। इनकी रचनाओंका 'मिथिला-गीत-संग्रह' नामसे कई भागोंमें प्रकाशन भी हो चुका है; पर आवश्यकता इस बातकी है कि इन सभी संतोंके जीवन-चरित्र, काल, परम्परा, उपासना आदि विषयोंका गवेषणापूर्ण अध्ययन करके एक विस्तृत साहित्यका निर्माण किया जाय, जो मैथिल-साहित्यके लिये भी अपूर्व देन होगी। मैंने तो जहाँतक इन साहित्योंका अध्ययन किया है, मुझे स्पष्ट प्रतीत हुआ कि कोई समय यहाँ ऐसा था, जिसमें वैष्णव-संतों तथा श्रीराधा-माधवकी मधुर-भक्तिका महान् प्रचार था और इस मधुर-परम्पराके मूल आधार विद्यापति थे; क्योंकि विद्यापतिसे अर्वाचीन सभी संतोंपर उनकी मधुर प्रेरणाका आभास प्रतीत होता है। अस्तु, जो कुछ भी हो, इतना तो सत्य है कि यहाँके स्वाभाविक प्राचीन व्यवहारों, आर्षग्रन्थों तथा यहाँके आह्निक-ग्रन्थोंको देखनेसे विष्णुप्रधान स्मार्तवाद ही यहाँका मूल आदर्श प्रतीत होता है।

वारकरी-सम्प्रदायमें विष्णु एवं वैष्णवता

(लेखक—डा० श्रीश्यामाकान्तजी द्विवेदी 'आनन्द', एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

'वारकरी-सम्प्रदाय' महाराष्ट्रका सर्वाधिक मान्य वैष्णव-सम्प्रदाय है। यह वैष्णव पंथ इतना समादृत एवं मान्य रहा है कि महाराष्ट्रके सभी संत इसके अनुयायी रहे हैं।

'वारकरी'-नामकरणका रहस्य—इस सम्प्रदायकी सर्वोच्च मान्यताओंमें एक मान्यता यह भी है कि इस पंथका प्रत्येक अनुयायी आषाढ़ एवं कार्तिककी शुक्ला एकादशीको पंढरपुरके विठ्ठलभगवान्के श्रीविग्रहका दर्शन करनेके लिये अवश्य यात्रा करे। भगवान् विठ्ठलके दर्शनार्थ की जानेवाली इन यात्राओंको ही 'वारी' एवं इनके अनुयायियों या यात्रियोंको ही 'वारकरी' कहा जाता है। इसी कारण इस सम्प्रदायका नाम 'वारकरी'-सम्प्रदाय पड़ गया।

प्रधान तीर्थस्थान—इस सम्प्रदायके अनुयायियोंका प्रधान तीर्थस्थान 'पंढरपुर' है। किंतु ये लोग पंढरपुरके अतिरिक्त प्रधान वारकरी संतोंके जन्मस्थल, समाधिस्थान एवं साधनास्थलीको भी तीर्थवत् मानते हैं एवं उनकी यात्रा करते हैं। जिस प्रकार आषाढ़ एवं कार्तिककी शुक्ला एकादशीको पंढरपुरकी यात्रा की जाती है, उसी प्रकार कृष्णपक्षकी एकादशीको लोग इन पवित्र पीठोंकी भी यात्रा करते हैं। संत नामदेवके समयसे ही वर्षमें दो बार उक्त मासकी उक्त तिथियोंपर पंढरपुरकी सामूहिक यात्रा करनेका नियम-पालन करना प्रत्येक वारकरी-पन्थानुयायीका प्रधान धर्म माना जाता रहा है।

उपास्यदेव—पंढरपुरके भगवान् 'विठ्ठल' एवं रखू माईकी युगलमूर्ति ही वारकरियोंके उपास्यदेव हैं।

'विठ्ठल' या 'विठोबा' शब्दके कई अर्थ किये गये हैं, जो इस प्रकार हैं—

(१) 'वि' (पक्षी-गरुड) + 'ठोबा' (वाहन)—'विठोबा'—गरुडको वाहन बनानेवाले अर्थात् भगवान् विष्णु।

…'वीचा केल्या ठांवा। म्होणोनि नाँव बिठोबा।'

—संत तुकाराम

(२) विठ्ठल—वि + ठान् + ल **'विदा ज्ञानेन ठान् शून्यान् लाति गृह्णाति इति विठ्ठल.'** (ज्ञानसे शून्य अज्ञानी जनोंको भी अपनानेवाले)—काशीनाथ आचार्य।

(३) विठोबा—विष्णु-शब्दका अपभ्रंश है।

भगवान् 'विठ्ठल' (विठोबा, पाण्डुरङ्ग या पंढरीनाथ) विष्णुके अवतार हैं और कृष्णभगवान्के बालरूप हैं।

उपास्यदेवका प्रथमोदय—पंढरीके 'विठोबा'का प्रथमोदय कब हुआ, इस संदर्भमें एक बहुप्रचलित जनश्रुति है। 'पुण्डरीक' या 'पुण्डलीक' नामक एक महात्मा पंढरपुरमें तपस्या किया करते थे। जब उनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर भगवान् विष्णुने उन्हें दर्शन दिया, तब उन्होंने उनको बैठनेके लिये सामने ईंट रख दी। भगवान्को रुक्मिणीके साथ उन्हीं ईंटोंपर विराजमान होना पड़ा। उनकी वही छवि श्रीविग्रहके रूपमें अद्यावधि वहाँ विराजित है और वही मूर्ति वारकरी-पन्थानुयायियोंके उपास्यदेवके रूपमें सहस्राब्दीसे पूजित होती चली आ रही है।

ऋषिप्रवर 'पुण्डरीक' या 'पुण्डलीक' की तपस्याके फलस्वरूप भगवान् हरिका पंढरपुरमें आगमन होनेके कारण ही प्रत्येक वारकरी-पंथानुयायी 'वारी' करते समय अद्यावधि-'पुण्डरीक वरदे हरि-विठ्ठल'का जयघोष करता हुआ यात्रा करता है। 'पाण्डुरङ्गाष्टक'में भगवान् शंकराचार्यने पुण्डरीककी इसी कथाकी ओर संकेत किया है—

महायोगपीठे तटे भीमरथ्या वरं पुण्डरीकाय दातुं मुनीन्द्रैः।
समागत्य तिष्ठन्तमानन्दकंदं परब्रह्मलिङ्गं भजे पाण्डुरङ्गम्॥

'भीमरथी (भीमा) नदीके तटपर भक्त पुण्डरीकको वर देनेके लिये मुनीन्द्रोंके साथ पधारकर महायोगपीठपर विराजित होनेवाले आनन्दकंद परब्रह्मके अवतार-विग्रहरूप भगवान् पाण्डुरङ्गकी मैं शरण ग्रहण करता हूँ।'

वारकरी-सम्प्रदायका प्रादुर्भाव-काल—वारकरी-सम्प्रदायके प्रादुर्भावकालके सम्बन्धमें अनेक मत-मतान्तर हैं। कुछ लोग तुकारामकी शिष्या बहिणाबाईके एक अभंगके आधारपर इस सम्प्रदायका प्रादुर्भाव ज्ञानेश्वरके द्वारा १३वीं शतीमें माननेके पक्षमें हैं। किंतु यह मत भ्रान्तिपूर्ण है; क्योंकि स्वयं ज्ञानेश्वर महाराजने पुण्डरीककी तपस्यासे प्रसन्न होकर पंढरीमें भगवान् पाण्डुरङ्गके आगमनकी कथाका उल्लेख किया है और भगवान् 'पाण्डुरङ्ग'की स्तुति की है। अतः सुस्पष्ट है कि उनके आविर्भावकालके पूर्वसे ही भगवान् विठ्ठल (पाण्डुरङ्ग) एवं ऋषिप्रवर पुण्डरीककी मान्यता रही होगी। यह तथ्य भी स्मरणीय है कि ज्ञानेश्वरके जन्मस्थान आलंदीमें ज्ञानेश्वरके आविर्भावके पूर्व से ही भगवान् विठ्ठलकी भक्तिका पुष्कल प्रचार था। अतः यह सम्प्रदाय ज्ञानेश्वरके आविर्भावकालके पूर्व अर्थात् १३वीं शतीके पूर्व भी रहा होगा।

भगवान् शंकराचार्यने 'पाण्डुरङ्गाष्टक'में भगवान् पाण्डुरङ्ग एवं ऋषिप्रवर पुण्डरीकका उल्लेख किया है, अतः सुस्पष्ट है कि पुण्डरीक एवं भगवान् पाण्डुरङ्गका आविर्भाव-काल ईसा-काल आठवीं शतीके भी पूर्व रहा होगा।*

निष्कर्षके रूपमें हम केवल इतना ही कह सकते हैं; क्योंकि पाण्डुरङ्ग भगवान्को अवतीर्ण करानेवाले ऋषिप्रवर पुण्डरीकका कालक्रम अद्यावधि अज्ञात है। अतः वारकरी-सम्प्रदायके प्रादुर्भावकालकी तिथि भी अनिर्णीत है। तथापि स्थूलरूपसे इतना अवश्य कहा जा सकता है कि महाराष्ट्रमें वारकरी-पंथ विगत सहस्राब्दसे पूर्णतया प्रचलित रहा है।

दार्शनिक सिद्धान्त—(१) विठ्ठल—इस मतके अनुसार परमात्मा हरि ही सर्वोच्च देवता हैं। राम एवं कृष्ण दुर्जनोंका संहार करनेवाले इनके प्रधान अवतार हैं। हरि-हर, विष्णु एवं शंकर दोनों मूलतः एक हैं। शिव एवं विष्णुके इस साम्यभावके निदर्शनार्थ ही विठ्ठलभगवान्के सिरपर शिव विराजमान हैं ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं—

रूप पाहतां डोळसूं। सुन्दर पाहतां गोपवेषु।
महिमा वर्णितां महेशू। जेणें मस्तकीं वंदिला॥

तुकाराम महाराज कहते हैं कि 'मैं हरि एवं हरमें भिन्नता ही कहाँ देखता। अतः मैं इस संदर्भमें कभी वाद-विवाद नहीं करता'—

'तुका म्हणे भक्ति साठीं हरिहर।
हरिहरा भेद नाहीं नका करूँ वाद।'

(२) निर्गुण अद्वैत ज्ञान एवं भक्तिमें सामञ्जस्य—इस सम्प्रदायकी दार्शनिक मान्यता है कि 'ज्ञान, भक्ति एवं वैराग्य एक ही तत्त्वके विभिन्न रूप हैं। भक्तिसे ज्ञान उत्पन्न होता है। भक्तिसे ज्ञानको गौरव प्राप्त होता है। भक्तिसे वैराग्य-रूपी फूल एवं ज्ञानरूपी फल उत्पन्न होते हैं।'

भक्ती चे उदरीं जन्म के ज्ञान। भक्ती ने ज्ञानासी दिधले महिमान॥
भक्ति ते मूळ, ज्ञान ते फळ। वैराग्य केवळ तेथींचे फूल॥

वारकरी-पंथानुयायी '**एकं ब्रह्म द्वितीयो नास्ति**' के अद्वैत-परक ज्ञानमार्गमें विश्वास करता हुआ भी भक्तिमार्गमें आस्था रखता है। उसकी दृष्टिमें 'समस्त विश्व विष्णुमय है। विष्णु सर्वगत, सर्वव्यापक, सर्वजीवस्थ, सर्वोच्च तत्त्व है और वही परमात्मा है। उसमें भेदाभेद दृष्टि रखना अनर्थकारी है।' हरी व्यापक सर्वगत हा तव मुख्यत्वे वेदान्त। विष्णुमय जग वैष्णवांचा धर्म। भेदाभेद भ्रम अमंगळ। (संत तुकाराम)

संत तुकाराम अद्वैतबोधकी उपलब्धिके बिना शुद्धा भक्तिका आविर्भाव होना ही सम्भव नहीं मानते। वे यह भी कहते हैं कि 'ब्रह्मप्राप्तिके लिये साधकको पहले स्वयं ब्रह्म बनना चाहिये और तदुपरि लोककल्याणार्थ सेवा करनी चाहिये।'

---

* आधुनिक ऐतिहासिक आदि शंकराचार्यका काल ईसाकी आठवीं शती मानते हैं, यद्यपि शंकरमतानुयायी उनका काल ईसासे भी पूर्व मानते हैं। —सम्पादक

लोकसंग्रहके प्रति इन संतोंकी इतनी आस्था है कि एकनाथ 'नाथ-भागवत'में कहते हैं कि 'ब्रह्मज्ञान प्राप्त करके सिद्ध हुए महात्माका भी जीवन व्यर्थ है, यदि उसने भवाकुल प्राणियोंका उद्धार नहीं किया'—

पावो निया ब्रह्मज्ञान । स्वयें तरला आपण ।
न करी च दीनोद्धरण । तें मंडणपण ज्ञात्याचें ।
(नाथभागवत)

३—भगवान्‌के विभिन्न रूप—इस सम्प्रदायका अनुयायी भगवान्‌के सगुण-साकार एवं निर्गुण-निराकार—दोनों रूपोंमें आस्था रखता है ।

४—राम और कृष्णके प्रति समदृष्टि—इस पंथमें राम एवं कृष्ण दोनोंको भगवान्‌का अवतार माना गया है और उनकी श्रेष्ठतामें भी समदृष्टि रखी गयी है । जहाँ एकनाथने 'नाथभागवत' में कृष्णलीलाका सुन्दर वर्णन किया है, वहीं उन्होंने 'भावार्थ-रामायण' में रामकी भी मधुर लीलाका गायन किया है ।

विशिष्ट ग्रन्थ—इस सम्प्रदायके विशिष्ट ग्रन्थ निम्न हैं—(क) ज्ञानेश्वर-रचित—१—ज्ञानेश्वरी, २—अमृतानुभव, ३—हरिपाठ, ४—चांगदेव पासष्टी, ५—योगवासिष्ठ-टीका, ६—ज्ञानदेवके अभंग, (ख) एकनाथरचित—१—नाथभागवत, २—रुक्मिणीस्वयंवर, ३—भावार्थ-रामायण । (ग) तुकाराम-रचित—तुकारामके अभंग । (घ) नामदेवरचित—नामदेवके अभंग । (ङ) रामदासका हरिपञ्चक, दासबोध आदि । इस पंथके मान्यतम आदिग्रन्थ १—श्रीमद्भगवद्गीता और २—भागवत हैं ।

ज्ञानेश्वरकी 'ज्ञानेश्वरी', 'हरिपाठ' एवं एकनाथकी 'नाथभागवत' भी मान्यतम संत-रचनाएँ हैं । प्रत्येक वारकरीका प्रतिदिन 'हरिपाठ' करना धर्म है ।

विशिष्टाचार—इस सम्प्रदायके विशिष्ट आचार निम्न हैं—१—स्वधर्मका पालन करना, २—भगवन्नाम-संकीर्तन, ३—एकादशीव्रतानुष्ठान, ४—अध्यात्मक्षेत्रमें जातिवादका बहिष्कार, ५—तिलक और तुलसीकी मालाको धारण करना, ६—पंढरपुरकी यात्रा ।

कर्नाटक-प्रदेशमें वैष्णवधर्म और साहित्य

(लेखक—डॉ० एन्० एस्० दक्षिणामूर्ति)

भारतवर्षमें जितने धर्म हैं, वे समस्त धर्म कर्नाटक प्रदेशमें विद्यमान हैं । इस दृष्टिसे कर्नाटक भारतवर्षका सच्चा प्रतिनिधि कहा जा सकता है । ईसा-पूर्व तीसरी शतीसे आज-तक सभी धर्मोंके लिये यहाँके द्वार खुले रहे हैं, इस कारण सभी धर्मों तथा सम्प्रदायोंने यहाँ अपना-अपना स्थान बनाया है । यह कहना अनुचित न होगा कि कर्नाटकने सदा नूतनता और अच्छाईका स्वागत किया है एवं सब धर्मों तथा सम्प्रदायोंको उदारता और सहिष्णुतासे देखा है ।

वैष्णवधर्मकी प्राचीनताके विषयमें यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि यह दो सहस्र वर्षोंसे भी अधिक प्राचीन धर्म है । इसके अनुयायी केवल इसी देशमें नहीं, अन्यत्र भी विद्यमान थे । अवतारी पुरुषके रूपमें विष्णुकी उपासना-पद्धति कर्नाटकमें बहुत प्राचीन कालसे रही है । इसके लिये अनेक प्रमाण मिलते हैं । हयग्रीव विष्णुके एक अवतार हैं । विद्वानोंका अभिमत है कि ईसाकी चौथी शतीमें यहाँ विष्णुके इस अवताररूपकी उपासना-पद्धति प्रचलित थी । चालुक्य-नरेश पुलिकेशी द्वितीयके चाचा मंगलीश (समय ५०० ई०) का एक शिलालेख बादामीकी एक गुफामें है, जो 'वैष्णवगुफा' कहलाती है । उसमें कहा गया है कि 'मंगलीशने उक्त गुफामें शेषशायी नारायणके विग्रहकी स्थापना करायी थी ।'[1]

आळवार भक्तों (साधारणतया आळवारोंका समय पाँचवीं शती ईसासे आठवीं शती ईसातक माना जाता है) की भक्तिधारासे कर्नाटक अछूता नहीं रहा है । रामानुजाचार्यजी (१०१७—११३७ ई०) के कारण तो यहाँ वैष्णवधर्मका अभ्युत्थान हुआ । शैवधर्मानुयायी कुलोत्तुङ्ग चोळके राजत्वकालमें वे तमिळनाडु छोड़कर कर्नाटक आ गये थे । होयसल राजा विट्ठदेवने, जो बादमें विष्णुवर्धन कहलाया, उनको आश्रय दिया था । आचार्यजीके व्यक्तित्वसे प्रभावित होकर विट्ठदेवने जैनधर्म त्यागकर वैष्णवधर्म स्वीकार किया था एवं उसके प्रसारके अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य किये थे । जगद्विख्यात बेलूरका केशव-मन्दिर इसका साक्षी है, जो होयसल-शिल्पकलाका परम सुन्दर निदर्शन है ।

१. द्रष्टव्यः डॉ० एस० सी० नंदिमठ, 'कन्नड नाडिन चरित्रे', पृ० ६७ ।

रामानुजाचार्यजीके समयके मन्दिरोंमें मेलुकोटेके मन्दिरका भी नाम यहाँ उल्लेखनीय है। मन्दिरोंके निर्माणके द्वारा आचार्यजीने वैष्णवभक्तिको बड़ा व्यापक रूप प्रदान किया।

द्वैत-सम्प्रदायके प्रवर्तक मध्वाचार्यजीका जन्मस्थान तो कर्नाटक ही है। उडुपिके पास पावक-ग्राममें सन् १२३८ में उनका जन्म हुआ था। उनका निधन सन् १३१७ में हुआ था। उन्होंने विष्णुकी उपासनाका क्रम जो चलाया, वह आज भी प्रभाववैशिष्ट्यके साथ विलसित है। उन्होंने उडुपिमें अष्ट मठोंकी स्थापना की और श्रीकृष्णको उपास्यदेव बनाया। उनकी शिष्य-परम्परामें टीकाचार्य, व्यासराय और राघवेन्द्र-स्वामी प्रभृति महान् आचार्य हुए हैं। कन्नडमें 'दासकूट' (भक्तवृंद) नामसे प्रख्यात पुरंदरदास, कनकदास आदि भक्त-कवि मध्व-सम्प्रदायके अनुयायी हैं। दासकूट-साहित्य कन्नड साहित्यका एक प्रमुख अङ्ग है।

वैष्णवधर्मके विकासमें विजयनगरके राजाओंका कम हाथ नहीं रहा है। यद्यपि ये राजा सभी धर्मोंको समान गौरव देते थे, तथापि यह सत्य है कि उनके राजत्वकालमें विष्णु-भक्तिप्रसारक ग्रन्थोंका अधिक प्रणयन हुआ। उन राजाओंने सब धर्मोंको एक सूत्रमें गूँथनेका प्रयास भी किया था। उनकी धार्मिक सहिष्णुता और उदारता लोकविश्रुत ही है।[2]

कर्नाटककी संस्कृतिका एक मुख्य अङ्ग है—भक्ति। श्रीमद्भागवत-माहात्म्यमें कहा गया है कि 'भक्तिका जन्म द्रविड देशमें हुआ, कर्नाटकमें उसका विकास हुआ, महाराष्ट्रमें कुछ-कुछ और गुर्जरदेशमें वह पूर्णतया वृद्धा हो गयी—

उत्पन्ना द्रविडे साहं वृद्धिं कर्णाटके गता।
क्वचित् क्वचिन्महाराष्ट्रे गुर्जरे जीर्णतां गता॥[3]

श्रीजगद्गुरु रामानुजाचार्य और मध्वाचार्य-जैसे महापुरुषोंकी निवासभूमि कर्नाटक होनेके कारण यहाँ भक्तिकी मन्दाकिनी बही। यहाँ भागवतोंके स्मार्त तथा वैष्णव-सम्प्रदायोंका विकास हुआ, इन सम्प्रदायोंके दर्शनोंका सर्वत्र प्रचार हुआ। भागवत-स्मार्त सम्प्रदायकी आधारभूमि स्वामी शंकराचार्यजीका अद्वैतवाद है तो भागवत-वैष्णव सम्प्रदायको स्वामी रामानुजाचार्य और मध्वाचार्यजीसे व्यापक रूप मिला। कर्नाटकमें उक्त तीनों आचार्योंके दर्शन फूले-फले एवं उनकी सुगन्ध चारों ओर फैली। तीनों आचार्योंके दार्शनिक सिद्धान्तोंमें भिन्नता होते हुए भी इनसे मानव-कल्याण और मानव-समाजकी एकताका महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पन्न हुआ। भक्ति-तत्त्व इस एकताका मुख्य साधन हुआ। कर्नाटकके भक्तिमार्गने अन्य प्रदेशोंको प्रभावित किया है। महाराष्ट्रके संतोंपर कर्नाटकके स्मार्त और वैष्णव भागवत-सम्प्रदायोंके भक्तोंका प्रभाव दृष्टिगत होता है। पंढरपुर, जो आज महाराष्ट्रके अन्तर्गत है, एक समय कर्नाटकके ही अन्तर्गत था। पुरंदरदास पंढरपुरमें रहते थे। उन-जैसे बड़े भक्तका महाराष्ट्रके संतोंपर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही था। कर्नाटकके अद्वैतवादी भागवत-सम्प्रदायसे महाराष्ट्रका अद्वैतवादी वैष्णव-सम्प्रदाय प्रभावित हुआ है। कन्नडके कवि चौण्डराजा उक्त सम्प्रदायके थे। वे पंढरीराय अभंगविट्ठलके उपासक थे।

मध्ययुग भक्तिकी प्रधानताका, विशेषतः वैष्णवभक्तिके प्रचारका युग कहा जा सकता है। मध्ययुगका उत्तरार्द्ध अर्थात् पंद्रहवीं शतीसे उन्नीसवीं शतीतकका समय कन्नड-साहित्यका विष्णुभक्तिप्राधान्यकाल कहा जा सकता है। राजनीतिक तथा सांस्कृतिक दृष्टिसे यह काल समृद्ध काल माना गया है। वैष्णव-साहित्यके आश्चर्यजनक विकासके आधारस्तम्भ महाकवि कुमारव्यास और दास-साहित्य (कीर्तनकार भक्तोंके साहित्य) एवं कर्नाटक-संगीतके उन्नायक पुरंदरदास इस कालके सुन्दर फल हैं।

मध्ययुगके प्रारम्भमें जिन कवियोंने वैष्णव-साहित्यकी वृद्धिमें अपना सहयोग प्रदान किया है, उनमें सर्वप्रथम रुद्रभट्टका नाम लिया जाता है। वे वीरबल्लाल (सन् ११७३-१२२०) के मन्त्री चन्द्रमौलिके सम्मानके पात्र बने थे। उनका 'जगन्नाथविजय' विष्णुपुराणके आधारपर लिखा गया भक्ति-रस-पूर्ण महाकाव्य है। वे स्मार्त ब्राह्मण थे, उन्होंने शिव और विष्णुमें अभेद माना है। उनके काव्यसे यह ज्ञात होता है कि वे श्रीकृष्णके परम भक्त थे। भक्तिरसका वर्णन करते समय वे 'काव्य-समाधि'में लीन दृष्टिगत होते हैं। श्रीकृष्णकी बाललीलाओंका उन्होंने रम्य वर्णन किया है। उनके वात्सल्यपूर्ण चित्रण पढ़कर पाठक आनन्दविभोर हो जाते हैं। कला और कल्पनाकी दृष्टिसे उनका काव्य श्रेष्ठ काव्य माना जाता है। चम्पूशैलीमें लिखित यह काव्य कन्नड़के वैष्णव-साहित्यका एक कण्ठहार है।

कन्नड़-महाभारतके प्रणेता कुमारव्यास अग्रगण्य भक्त-

---

२. द्रष्टव्यः 'कर्नाटक और उसका साहित्य' (इसी लेखककी कृति), पृ० ५१-५२।

३. श्रीमद्भागवत-माहात्म्य १।४८।

कवि थे। उनका अपर नाम गदुगु नारणप्पा था। उनका महाभारत 'गदुगु-भारत', 'कुमारव्यास-भारत' एवं 'भारत-कथा-मञ्जरी' नामसे भी प्रसिद्ध है। उनके प्रादुर्भाव-कालके सम्बन्धमें विद्वानोंमें मतभेद है। एक मतके अनुसार वे सन् १२३०—३५ के आस-पास वर्तमान थे, तो दूसरे मतके अनुसार उनका समय सन् १४०० के आस-पास माना जा सकता है। कुछ विद्वानोंने यह सिद्ध करनेका प्रयत्न किया है कि वे विजयनगरके राजा श्रीकृष्णदेवरायके राजत्वकालमें वर्तमान थे। वे स्मार्त थे या वैष्णव, इस सम्बन्धमें पर्याप्त चर्चा हुई है। इतना तो स्पष्ट है कि वे गदुगु वीरनारायण-नामक भगवद्विग्रहके परम भक्त थे। हाँ, उनकी दृष्टिमें शिव और विष्णुमें भेद नहीं है। ऐसी जनश्रुति है कि प्रतिदिन वे स्नान-के बाद भीगे वस्त्र पहनकर भगवान् वीरनारायणके सामने खड़े होकर भक्तिके आवेशमें महाभारतका गान करते थे। जबतक उनके वस्त्र सूख नहीं जाते, तबतक वे गाते रहते थे। इससे इतना तो स्पष्ट है कि कन्नड-महाभारत पवित्र वातावरणमें निर्मित हुआ है तथा उसका कवि हरिका परम भक्त है। इष्टदेवके प्रति कविकी असीम भक्ति-भावना और सौम्य प्रकृति इस प्रकार व्यक्त हुई है—

कवि वीरनारायण अत्र
कुँवरव्यास लिपिकार मात्र
श्रोता बुधजन सनकादि जंगम जनार्दन।

(महाभारत १।१।७)

महाभारतका प्रणयन करनेवाले भक्त कविने पदे-पदे पद्मनाभकी अपार महिमाका ही अवलोकन किया है। उनके शब्दोंमें—

पद-प्रौढिमा नव रस और
अभिधान-भाव अति सुन्दर
ढूँढ़ें नहीं प्रौढ़ जन इस कथान्तरमें।
विचार कर लें निज मनमें,
तुलसीपत्र-उदक ही इसमें—
हरिकी महिमा, धर्म-विचार मात्र इसमें॥

(महाभारत १।१।१४)

भक्तिकी पावन गङ्गा उनके काव्यमें सर्वत्र बही है एवं उसमें लीलानाटकसूत्रधारी भगवान्‌की अपार महिमाका वर्णन है। श्रीकृष्ण ही उनके काव्यके नायक हैं। उनको संतुष्ट करनेके लिये ही कविने पञ्चम वेदका गान किया है—

कृष्ण-कथाका उद्घाटन
करूँगा विबुध-मन-तोषण,
कृष्ण-तोषणार्थ रचूँगा यह पंचम श्रुति।

(महाभारत १।१।१३)

श्रीकृष्ण केवल नायक ही नहीं, सब पात्रोंके संचालक भी हैं। उनकी कथा नित्यनूतन श्रवण-सुधा है। उनका प्रभाव सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। परंतु कविने कहीं भी उनका अतिरञ्जित अथवा मितिरहित वर्णन नहीं किया है। वे नर-नाटक-सूत्रधारी हैं, पर स्वयं भी अभिनय करना नहीं भूलते। वे सबके आदर-पात्र हैं, पर स्वयं बड़ोंका आदर करना नहीं भूलते। वे जगद्वन्द्य हैं, पर कुन्तीको नमस्कार करते हैं। पाण्डव उनके परम भक्त हैं, पर उनके साथ वे स्वामीका-सा व्यवहार नहीं करते; पाण्डव उनके बहनोई जो ठहरे। वे करुणासमुद्र, जगद्रक्षक, आर्तत्राणपरायण और धर्मरक्षक हैं। उनकी सत्यनिष्ठायुक्त राजनीतिसे धर्मराजने अधर्मको पराजित किया। उनमें लौकिक तथा अलौकिक गुणोंका सामञ्जस्य दिखाकर कुमारव्यासने उनके अद्भुत चरित्रका चित्रण किया है। भक्तिपूर्ण ग्रन्थके रूपमें ही नहीं, उत्कृष्ट कलाकृतिके रूपमें भी 'कन्नड़-महाभारत' एक अनुपम ग्रन्थ है। कुमारव्यास उत्तर मध्ययुगके प्रतिनिधि कवि हैं। उनके भक्तिमार्ग और काव्यमार्गके आदर्शको अन्य कवियोंने ग्रहण किया है। कन्नड़-साहित्यमें पंद्रहवीं शतीके प्रथम चरणसे उन्नीसवीं शतीतकके कालको कुमारव्यास-काल नामसे अभिहित किया गया है।

कुमारव्यासके पदचिह्नोंपर चलकर जिन कवियोंने भक्ति-रसपूर्ण ग्रन्थोंका प्रणयन किया, उनमें 'तोरवे-रामायण'के रचयिता कवि कुमार वाल्मीकिका नाम यहाँ मुख्यरूपसे लिया जाना चाहिये। यह पाँच हजारसे भी अधिक छन्दोंका एक बृहत् महाकाव्य है। हिंदू-परम्पराकी कन्नड़-रामायणोंमें इसका नाम अग्रगण्य है। इसमें कविकी भावप्रवणता और भक्तिका आवेश सर्वत्र दिखायी पड़ता है। उसके कथानकमें सरसता, पात्रोंके चरित्र-चित्रणमें मनोवैज्ञानिकता और भाषा-शैलीमें उज्ज्वलता विद्यमान है।

कुमारव्यासने महाभारतके दस पर्वोंका प्रणयन कन्नड़में किया था, शेष पर्वोंको तिम्मण्णकविने श्रीकृष्णदेवरायके आज्ञानुसार लिखा। परंतु उनमें न कुमारव्यासकी महानताका ही दर्शन होता है न भक्तिकी सुरभि ही मिलती है। हाँ, यह

कहा जा सकता है कि वह कविके पाण्डित्य और कल्पना-शक्तिका सुन्दर परिचायक अवश्य है।

'कन्नड़-भागवत'के कवि चाटु विट्ठलनाथका समय १५३० ई०के आस-पास माना जाता है। वे श्रीकृष्णदेवराय और अच्युतरायके आश्रयमें रहते थे। कुमारव्यासके पदचिह्नों-पर चलकर उन्होंने भामिनी षट्पदी छन्दमें भागवतकी रचना की।[४] उसमें श्रीकृष्णकी कथा तथा भक्तिका सुन्दर निरूपण है।

भागवत-सम्प्रदायके कवियोंमें महाकवि लक्ष्मीश (१५५० ई० के आस-पास)का निश्चय ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। कुमारव्यासके व्यक्तित्वके समान ही इनका व्यक्तित्व भी अत्यन्त महान् परिगणित हुआ है। वे देवनूरु या सुरपुरके निवासी थे। उन्होंने 'कन्नड़-जैमिनि-भारत'में यौवनाश्व, सुधन्वा, मयूरध्वज, वीरवर्मा और चन्द्रहास प्रभृति महाभागवतों-के दिव्य चरितोंका प्रभावशाली वर्णन किया है। उनका सरस काव्य उनकी सहृदयता और महानताका प्रमाण बन गया है। उसकी समस्त विशेषताएँ उसकी सरसता अर्थात् भक्तिके सुन्दर निरूपणमें हैं। कविने ठीक ही कहा है कि "उनका काव्य 'श्रीकृष्णचरितामृत' है। श्रीकृष्णकी महिमाका वर्णन करना ही उनके काव्य-प्रणयनका उद्देश्य है।" उन्होंने अपने इष्टदेवके लोकोत्तर चरितका गुणगान नानारूपेण किया है। सम्पूर्ण कथा श्रीकृष्णमें ही केन्द्रित होनेके कारण श्रीकृष्ण ही काव्य-नायक हैं। परंतु इस कारण अन्य पात्रोंके चित्रणमें शिथिलता नहीं आयी है। संक्षेपमें यह कहा जा सकता है कि प्रायः सभी पुरुष-पात्रोंके चित्रणमें कविने वीर-रस और भक्तिका सुन्दर समन्वय किया है। बहुत स्थानोंमें भक्तिकी वेगवती धारा बही है। स्त्री-पात्रोंके चित्रणमें विशेषतः करुण-रसका अच्छा परिपाक हुआ है। लक्ष्मीशकी शैलीमें माधुर्य और लालित्य है। उनकी 'नादलोल' उपाधि सर्वथा सार्थक है।

सोलहवीं शतीके वैष्णव कवियोंमें 'चित्र-भारत'के कर्ता गोप या गोविन्द कवि और 'श्रीमद्भगवद्गीता'के कवि नागरसके नामोल्लेखके साथ अब हम कन्नड़के दास-साहित्य-पर विहंगम दृष्टि डाल सकते हैं। दास-साहित्यका प्रारम्भ स्वामी नरहरितीर्थ (तेरहवीं शती)से माना जाता है। ये मध्वाचार्यजीके शिष्य थे। इनके पदोंमें 'रघुकुलतिलक' अथवा 'श्रीरघुपति'की छाप मिलती है। इनके बाद श्रीपादराय, व्यासराय, पुरंदरदास और कनकदास प्रभृति कीर्तनकार भक्तों-के नाम लिये जाते हैं। 'लक्ष्मीनारायण मुनि' नामसे प्रख्यात श्रीपादरायजीका सम्प्रदायमें अत्यन्त सम्मानपूर्ण स्थान है। सम्प्रदायमें प्रसिद्ध है—

नमः श्रीपादराजाय नमस्ते व्यासयोगिने।
नमः पुरंदरार्याय विजयार्याय ते नमः॥

इससे स्पष्ट है कि वैष्णव कीर्तनकारोंमें श्रीपादरायजीका शीर्ष-स्थान है। ये बहुत बड़े पण्डित थे। पूजाके समय वेद-पारायणके साथ-साथ कन्नड़में 'भजन' करनेकी पद्धति इन्होंने ही चलायी। इन्होंने अनेक भक्तोंको कन्नड़में गीत रचनेकी प्रेरणा दी और स्वयं भी इस कार्यमें लगे। इनकी रचनाओंमें 'भ्रमरगीत', 'वेणुगीत' और 'गोपीगीत' प्रसिद्ध हैं, जो इनकी भक्तिकी क्रीड़ास्थली हैं। विजयनगर और चन्द्रगिरिके राजा इनके अपार पाण्डित्यसे प्रभावित हुए थे। ज्ञात होता है कि चन्द्रगिरिके राजा साळ नरसिंहने १४९७ ई० में इनका कनकाभिषेक किया था।

व्यासराय अथवा व्यासतीर्थ श्रीपादरायजीके शिष्य थे। ये भी महापण्डित थे और द्वैत-सम्प्रदायके आधारस्तम्भोंमें एक थे। इनका जन्म १४५७ ई० में और वैकुण्ठवास १५३९ ई०में हुआ था। पुरंदरदास, कनकदास, विजयेन्द्र-स्वामी, वादिराज, वैकुण्ठदास आदि इनके प्रमुख शिष्य थे। कहा जाता है कि चैतन्य महाप्रभु भी इनके शिष्योंमें थे। विजयनगर-साम्राज्यके विकासमें इनका बड़ा योगदान रहा है। इन्होंने कन्नड़में कई पद रचे हैं। इनके पदोंकी संख्याका निर्धारण नहीं हो सका है। 'वृत्तिनाम' नामक नयी पद्धति इनके समयमें प्रचलित हुई, जिसमें इन्होंने 'श्रीमद्भगवद्गीता' लिखी है। इनके पदोंमें भावोत्कर्षमें सहायक उपमा, रूपक आदि अलंकारोंका सर्वथा सुन्दर एवं सहज प्रयोग हुआ है। कन्नड़के दास-साहित्यके विकासके लिये इन्होंने अविस्मरणीय कार्य किया है।

भक्तश्रेष्ठ पुरंदरदास कर्नाटकके ही नहीं, समग्र भारतके गौरव-श्री-निकेतन हैं। इनका समय १४८०—१५६४ ई० माना जाता है। ये 'दासश्रेष्ठ' कहलाये और अपने गुरु व्यासरायजी-की प्रशंसाके पात्र बने—'दासरेंदरे पुरंदरदासरय्या' अर्थात्

४. कुछ लोगोंका कथन है कि कन्नड़-भागवतके पाँच कवि हैं—(१) आराध्येन्द्र अथवा नित्यात्मनाथ, (२) विद्यायोगी अथवा विद्यानाथ, (३) सदानन्दयोगी, (४) निर्वाणनाथ और ५) चाटु विट्ठलनाथ।

भक्त हों तो पुरंदरदास-जैसे हों। इनके जीवनचरितसे सम्बन्धित जो कथा प्रचलित है, उसका सारांश यही है कि ये पहले धनी थे। एक विचित्र घटनाने इनके जीवनको झकझोर दिया। इन्होंने समस्त श्री-सम्पदा त्यागकर, वीतरागी हो व्यासरायजीसे दीक्षा ग्रहण की। तप्त हेमकी भाँति इनका जीवन पवित्र हो गया था। इन्होंने देशाटन किया, भारतके पवित्र तीर्थोंके दर्शन किये। इनके पदोंमें जीवनके मार्मिक अनुभवोंकी चारु अभिव्यक्ति हुई है। स्वयं हँसना और दूसरोंको हँसाना इनकी प्रकृति थी। निश्चय ही इनका व्यक्तित्व महान् था। इनके पदोंकी संख्या चार लाख पचहत्तर हजार बतायी जाती है। परंतु अद्यावधि प्राप्त पदोंकी संख्या लगभग डेढ़ हजार ही है। इनके पदोंमें 'पुरंदर विठ्ठल' की छाप है। उपनिषदोंके तत्त्व इनके पदोंमें सरस, सरल, सुबोध और मार्मिक शैलीमें अभिव्यक्त हुए हैं, अतः इनको 'पुरंदरोपनिषद्' कहते हैं। इनके पदोंको पाँच वर्गोंमें रखा जा सकता है, यथा—नाम-महिमा, हरि-गुरु-महिमा, स्मरण-भजन, आत्मनिवेदन, श्रीकृष्णलीलागान एवं समाजकी आलोचना अथवा समाजका प्रबोध। 'दासकूट'की समस्त विशेषताएँ पुरंदरदासजीके पदोंमें देखी जा सकती हैं। हरिके सर्वोत्तमत्व तथा मोक्षके साधन भक्तिकी गरिमा इनके पदोंका प्रतिपाद्य विषय है। हरि भक्तवत्सल हैं, दयासागर हैं। उनपर विश्वास करना, उनका भजन करना ही मानवका कर्तव्य है। उनपर भरोसा रखकर कौन नहीं तर गये? इसी भावको भक्त-कवि यों व्यक्त करते हैं—'नम्बि केट्टवरिल्ल रंगय्यन, नम्बदे केट्टरे केडलि।' अर्थात् भगवानपर भरोसा रखकर कोई नष्ट नहीं हुए, बिना भरोसा रखे नष्ट हो जायँ तो हो जायँ। इनके 'आत्मनिवेदन'वाले पदोंमें भक्तिपूर्ण जीवनकी सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। इनके श्रीकृष्णकी लीलाओंसे सम्बन्धित पद तो इतने मनोरम और अनूठे हैं कि उन्हें पढ़कर हम रस-सागरमें निमज्जित हो जाते हैं। ये पद हमें सूरदासजीके बालकृष्ण-वर्णनका स्मरण दिलाते हैं। पुरंदरदासजीका यह महान् संदेश है—'मानव-जीवन अमूल्य है, उसका सदुपयोग होना चाहिये; सत्य, धर्म और नीतिका मार्ग अपनाना चाहिये। सांसारिकतामें रहकर भी सांसारिकतासे दूर रहना चाहिये।' पुरंदरदासजीका साहित्य जीवन्त साहित्य है। कन्नड़-साहित्य और कर्नाटक-संगीतको इनकी देन अद्भुत है।

'मोहन-तरङ्गिणि', 'हरिभक्तिसार', 'रामधान्यचरिते', 'नलचरिते' और फुटकर पदोंके रचयिता कनकदासजी सोलहवीं शतीके वैष्णव भक्त-कवियोंमें अपना पृथक् स्थान रखते हैं। ज्ञात होता है कि ये गड़रियोंके कुलमें पैदा हुए थे और व्यासरायजीके शिष्य बने थे। 'कागिनेले'के आदिकेशव इनके इष्टदेव थे। इनके पदोंमें इष्टदेवकी छाप मिलती है। वादिराज, भागण्णदास, जगन्नाथदास, वैकुण्ठदास, श्रीविजयीन्द्र-तीर्थ, श्रीराघवेन्द्रतीर्थ, प्रसन्नवेंकटदास, विजयदास और गोपालदास प्रभृति भक्त-कवियोंके पदोंसे कन्नड़का दास-साहित्य समृद्ध हुआ है। सोलहवीं और अठारहवीं शतीके वैष्णव कवियोंमें मुख्यरूपसे यहाँ 'गीतगोपाल', 'भागवत', 'शेषधर्म' तथा 'भारत'के प्रणेता चिक्कदेवराज ओडेयर (१६७२–१७०४ ई०) एवं कई पदोंकी कवयित्री हेलवनकट्टे गिरियम्माके नाम उल्लेखनीय हैं। उन्नीसवीं शतीके कवियोंमें 'श्रीरामपट्टाभिषेक', 'अद्भुतरामायण' और 'रामाश्वमेध'के कर्ता 'मुद्दण'-उपनामधारी लक्ष्मीनारणप्पाका नाम विस्मृत नहीं किया जा सकता।

श्रीविष्णुभक्तिप्रदायिनी गङ्गा

तथा गङ्गाम्बुसेकेन नाशयेत् किल्बिषं स्वकम्। केशवो द्रवरूपेण पापात् तारयते महीम्॥
वैष्णवो विष्णुभजनस्याकाङ्क्षी यदि वर्तते। गङ्गाम्बुसेकममलममलीकरणं चरेत्॥
विष्णुभक्तिप्रदा देवी गङ्गा भुवि च गीयते। विष्णुरूपा हि सा गङ्गा लोकनिस्तारकारिणी॥

(पद्मपुराण, स्वर्गखण्ड ६१। ६८–७०)

'गङ्गाजीके जलसे अभिषिक्त होनेपर मनुष्य अपने पापोंको दूर भगा देता है। भगवान् केशव ही जलके रूपमें इस भूमण्डलका पापसे उद्धार कर रहे हैं। यदि कोई वैष्णव विष्णुके भजनकी अभिलाषा रखता हो तो उसे गङ्गाजीके जलका निर्मल अभिषेक प्राप्त करना चाहिये; क्योंकि वह अन्तःकरणको शुद्ध करनेका उत्तम साधन है। इस पृथ्वीपर भगवती गङ्गा विष्णुभक्ति प्रदान करनेवाली बतायी जाती हैं। लोकोंको उद्धार करनेवाली गङ्गा वास्तवमें श्रीविष्णुका ही स्वरूप हैं।'

श्रीविद्यामें 'श्री'-तत्त्व एवं 'विष्णु'-तत्त्व

(लेखक—पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा)

हिरण्यगर्भं जगदीशितारमृषिं पुराणं रविमण्डलस्थम्।
गजाननं यं प्रविशन्ति सन्तस्तत्कालयोगैस्तमहं प्रपद्ये॥

अन्तःस्मितोल्लसितमिन्दुकलावतंस-
मिन्दीवरोदरसहोदरनेत्रशोभि।
हेतुस्त्रिलोकविभवस्य नवेन्दुमौले-
रन्तःपुरं दिशतु मङ्गलमादराद्वः॥

श्रीवत्सकौस्तुभधरं श्रितजनरक्षाधुरीणचरणाब्जम्।
मुचुकुन्दमोक्षफलदं मुकुन्दमानन्दकन्दमवलम्बे॥*

श्रीमार्कण्डेयपुराणमें कथा आती है कि एक बार देवताओं एवं दानवोंमें बड़ा ही भीषण एवं रोमहर्षण युद्ध हुआ। उस समय दैत्योंका स्वामी जम्भ था और सदाकी भाँति शचीपति देवेन्द्र ही देवतापक्षके नेता थे। एक पूरे दिव्य संवत्सरतक युद्ध चलनेके बाद भी दैत्योंकी ही जीत हुई और देवता हार गये। पराजित एवं हतोत्साह होकर देवतालोग देवगुरु बृहस्पति तथा वालखिल्य ऋषियोंके साथ बैठकर शत्रुओंको परास्त करनेका उपाय सोचने लगे। अन्तमें बृहस्पतिने देवताओंको श्रीविद्याके परमाचार्य भगवान् श्रीदत्तात्रेयजीकी शरण लेनेकी सम्मति दी और कहा कि उनके आशीर्वादसे आपलोग निश्चय ही दैत्योंको पराभूत कर सकेंगे।

इसपर जब देवतालोग श्रीदत्तात्रेयजीके आश्रमपर[1] पहुँचे, तब उन्होंने उन्हें कुछ विकृत वेषावस्थामें साक्षात् भगवती लक्ष्मीके साथ आसीन देखा। तथापि वे उनके चरणोंमें प्रणाम कर सब प्रकारसे उनकी आराधना करने लगे। दत्तात्रेयजीने पूछा कि 'मुझ विकृत-चरित्र व्यक्तिसे आपलोग क्या चाहते हैं।' इसपर देवताओंने उन्हें अपनी विपत्ति सुनायी और पुनः स्वर्ग-प्राप्तिके लिये उनसे आशीर्वाद चाहा। बहुत आनाकानीके बाद भगवान् श्रीदत्तात्रेयने किसी प्रकार अपने ही सामने दैत्योंको बुलाकर देवताओंको उनके साथ युद्ध करनेके लिये कहा। इसपर देवताओंने दैत्योंके पास जाकर युद्ध छेड़ दिया और जब दैत्य उन्हें मारने लगे, तब वे भागते हुए दत्तात्रेयजीके आश्रमपर पहुँच गये और पीछेसे खदेड़ते हुए दैत्य भी वहीं जा पहुँचे। दैत्यगण वहाँ उनकी पत्नी भगवती श्रीलक्ष्मीजीको देखकर अपने मनोवेगको न रोक सके और झट

---

* (क), संसारके स्वामी, पुराणऋषि, सूर्यमण्डलमें स्थित, हिरण्यगर्भ-स्वरूप, जिनमें संतलोग कालोचित योगाभ्यास—ध्यानादि-द्वारा प्रविष्ट होते हैं, उन श्रीगणेशजीकी मैं शरण ग्रहण करता हूँ।

(ख) जो आन्तरिक मुस्कानसे सुशोभित हैं, जो इन्दुकलाको शिरोभूषणके रूपमें धारण करती हैं, कमलके गर्भके समान सुन्दर और कोमल जिनके नेत्र हैं और जो त्रिलोकीके ऐश्वर्यकी हेतुभूत हैं, उन भगवान् चन्द्रमौलीश्वरकी अर्द्धाङ्गिनी भगवती उमा आदर-पूर्वक आप सबका मङ्गल करें।

(ग) जो श्रीवत्स एवं कौस्तुभमणिको धारण करते हैं, जिनके चरण-कमल आश्रितजनोंकी रक्षाका बीड़ा उठाये हुए हैं और जो मुचुकुन्दको मोक्षफल प्रदान करनेवाले हैं, उन आनन्दकंद भगवान् श्रीमुकुन्दका मैं आश्रय लेता हूँ।

१. दत्तात्रेयाश्रम कई हैं। 'वज्रकवच' ३ में कहा गया है—

वाराणसीपुरस्नायी कोल्हापुरजपादरः।
माहुरीपुरभिक्षाशी सह्यशायी दिगम्बरः॥

'अवधूत भगवान् श्रीदत्तात्रेय काशीमें स्नान करते, कोल्हापुरमें जप करते, माहुरीपुरमें भिक्षा ग्रहण करते तथा सह्यगिरिपर शयन करते हैं।'

इसके अनुसार काशी, करवीर(कोल्हापुर), माहुरीपुर और सह्यगिरिकी उपत्यकामें—चार जगह उनके चार विश्रामस्थल या आश्रम हैं। 'त्रिपुरारहस्य' (५।५९)में उनका एक आश्रम गन्धमादनपर (हिमालयमें) भी निर्दिष्ट है। तीर्थाङ्क (कल्याण)में भी उनके कई आश्रम निर्दिष्ट हैं। पृष्ठ २३९ पर माहुरीपुर या माहुरगढ़ (यवतमालके पास दत्तपर्वत) का उल्लेख है, जहाँ श्रीदत्तभगवान्‌का आश्रम था। पृष्ठ २४८ पर इनका दूसरा आश्रम त्र्यम्बकेश्वरके नीलगिरि पर्वतपर बतलाया गया है। इसे 'सिद्धतीर्थ' माना जाता है। पृष्ठ २६१ पर कोल्हापुरके पास शिरोलनामक स्थानमें 'भोजनपात्र' नामक दत्तात्रेयजीका मन्दिर बतलाया गया है। इसके अतिरिक्त काराष्ट्रान्तर्गत करवीर (कोल्हापुर) आदिमें भी उनके कई आश्रम हैं। तीर्थाङ्कके ही पृष्ठ ३९९ पर राजस्थानके आबू पर्वतके भी एक शिखरपर दत्तात्रेयजीके चरणचिह्नयुक्त आश्रमस्थलका उल्लेख है। काशीमें भी मणिकर्णिकाके पास दत्तपादुका-मन्दिर आदि हैं।

२. प्राचीन ग्रन्थोंमें श्री या लक्ष्मीके गायत्री, शोभा आदि अनेक अर्थोंको व्यक्त करते हुए दत्तकी पत्नीके अतिरिक्त सूर्यपत्नी,

सब कुछ छोड़-छाड़, उन श्रीको ही बलात् एक पालकीमें डालकर सिरपर ढोते हुए अपने वासस्थलको चल पड़े। इसपर भगवान् दत्तात्रेयने देवताओंसे कहा कि 'यह आपलोगोंके लिये बड़े सौभाग्यकी बात है कि ये लक्ष्मी इन दैत्योंके सात स्थानोंको लाँघकर आठवें स्थान (मस्तक) पर पहुँच गयीं। सिरपर पहुँचते ही ये तत्काल अपने आश्रयका परित्याग कर अन्यत्र चली जाती हैं।[3] अब ये मेरेद्वारा भी तेजोहीन एवं स्तब्ध कर दिये गये हैं। अतः आपलोग अपने शत्रुओंपर प्रहार कर इन्हें तत्काल मार डालें।' देवताओंने भी वैसा ही किया। दैत्य श्रीविहीन होकर नष्ट हुए और भगवती लक्ष्मी पुनः भगवान् श्रीदत्तके पास पहुँच गयीं—

शिरोगता संत्यजति ततोऽन्यं याति चाश्रयम्।···
प्रगृह्यास्त्राणि वध्यन्तां तस्मादेते सुरारयः॥···
लक्ष्मीश्चोत्पत्य सम्प्राप्ता दत्तात्रेयं महामुनिम्।
(मार्कण्डेयपु० १८। ५४-५५, ५७)

इसी प्रकार 'बृहस्पति-नीतिसार' (गरुडपुराण) ११४। ३५, चाणक्यनीति १५। ४, चा० राज शा० ७। ३९, शार्ङ्गधरपद्धति ६५७ आदिमें कुचैलता, बह्वाशिता आदिकी स्थितिमें लक्ष्मीद्वारा इन्द्र, कुबेर, आदिके किमधिकं, भगवान् विष्णुके भी कभी-कभी परित्यागकी बात कही गयी है—

कुचैलिनं दन्तमलोपधारिणं बह्वाशिनं निष्ठुरवाक्यभाषिणम्।
सूर्योदये ह्यस्तमयेऽपि शायिनं विमुञ्चति श्रीरपि चक्रपाणिम्॥

'जिसके वस्त्र तथा दाँत गंदे हैं, जो बहुत खाता तथा निष्ठुर-भाषण करता है, जो सूर्योदय एवं सूर्यास्तकालमें भी सोया रहता है, वह चाहे चक्रपाणि विष्णु ही क्यों न हों, उसका लक्ष्मी परित्याग कर देती हैं।'

नित्यं छेदस्तृणानां धरणिविलखनं पादयोश्चापमार्ष्टि-
र्दन्तानामप्यशौचं मलिनवसनता रूक्षता मूर्द्धजानाम्।
द्वे संध्ये चापि निद्रा विवसनशयनं ग्रासहासातिरेकः
स्वाङ्गे पीठे च वाद्यं हरति धनपतेः[4] केशवस्यापि लक्ष्मीम्॥
(बृहस्पतिनीति० ११४। ३६)

'सदा तिनके तोड़ना, जमीन कुरेदना, पैर रगड़ना, दाँत साफ न रखना, गंदे वस्त्र रखना बालोंमें तेल न लगाना, दोनों संध्याओंमें सोना, नंगे सोना, अधिक खाना और अधिक हँसना, अपने शरीरपर या पीढ़ेपर ताल लगाना कुबेर या विष्णुकी लक्ष्मीको भी हर लेते हैं।'

इसी प्रकार और भी कहा गया है—

परान्नं परवस्त्रं च परयानं परस्त्रियः।
परवेश्मनिवासश्च शक्रस्यापि श्रियं हरेत्॥
पर्णाग्रं पर्णमूलं च चूर्णपर्णं त्रिपर्णकम्।
गलितं शुष्कपर्णं च शक्रस्यापि श्रियं हरेत्॥
(बृहद्दैवज्ञरञ्जन १६८)

'पराया अन्न, दूसरेका वस्त्र, पराया यान (सवारी), परायी स्त्री और परगृहवास—ये इन्द्रकी श्री—सम्पत्तिको भी हरण कर लेते हैं। ताम्बूल-पत्रकी नोक, डंठल, चूरा या तीन पत्ते, सूखा पत्ता या सड़ा पत्ता—ये इन्द्रकी लक्ष्मीको भी हर लेते हैं।'

नापितस्य गृहे क्षौरं पाषाणे गन्धलेपनम्।
आत्मरूपं जले पश्यन् शक्रस्यापि श्रियं हरेत्॥
स्वयं दोहः स्वयं माल्यं स्वयं घृष्टं च चन्दनम्।
नापितस्य गृहे क्षौरं शक्रादपि श्रियं हरेत्॥
अजारजः खररजस्तथा सम्मार्जनीरजः।
स्त्रीणां पादरजो राजन् शक्रादपि हरेच्छ्रियम्॥

धर्मकी पत्नी तथा प्रजापतिकी पत्नी आदिका नाम भी 'लक्ष्मी' बतलाया गया है। वसन्तपञ्चमीको 'श्रीपञ्चमी' या 'सरस्वती-पञ्चमी' भी कहते हैं। अतः यह सरस्वतीका भी एक नाम है। सौन्दर्यलहरी, ललिता-सहस्रनाम आदिमें यह पार्वतीका ही नाम है। 'व्याडि'ने लिखा ही है—

लक्ष्मीसरस्वतीधीत्रिवर्गसम्पद्विभूतिशोभासु।
उपकरणवेशरचनाविधासु श्रीरिति प्रथिता॥

'ललितोपाख्यान' एवं 'हारितायनसंहिता' (त्रिपुरारहस्य, माहात्म्यखण्ड) अध्याय ५३ आदिमें २१ अरब वर्षोतक त्रिपुराकी आराधनाकर लक्ष्मीद्वारा त्रिपुराके साथ नामसाम्यादि-प्राप्तिका उल्लेख है। अतः 'श्री' का मुख्यार्थ 'त्रिपुरसुन्दरी' भी है। (द्रष्टव्य—'कल्याण'—शक्ति-अङ्क, पृ० ११३),

३. लक्ष्मीजीके अन्य अङ्गोंमें रहनेका फल भी वहीं (श्रीमार्कण्डेयपुराण, अ० १८। ४७ से ५७ में) विस्तारसे निरूपित है। जिज्ञासुओंको वहीं देखना चाहिये। पर दत्तात्रेयकी कृपासे इन्द्र, प्रह्लाद, परशुराम, संवर्त, राजा यदु, अलर्क एवं कीर्तवीर्यको अनपायिनी श्री प्राप्त हुई थी। ये 'स्मृतिमात्रानुगन्ता' या 'स्मर्तृ-स्मृत्यनुगामी' कहे गये हैं और स्पर्शमात्रसे परमात्म-दर्शन करानेमें सक्षम हैं (वज्रकवच २३, मार्कण्डेयपुराण १७। ५०, भागवत, स्कन्ध ११, आदिमहापुराण अध्याय ११७, २१३, स्कन्द० १। ११, महाभा० १३। १३८, १५२।

४. पाठान्तर—निधनमुपनयेत्।

'नाईके घर बाल बनवाना, पत्थरके होरसेसे लेकर चन्दन लगाना और अपने रूपको पानीमें देखना—ये इन्द्रकी भी सम्पत्ति हर लेते हैं। स्वयं गाय दूहना, स्वयं माला गूँथना, अपने हाथका घिसा हुआ चन्दन सिरपर अथवा शरीरपर लगाना, नाईके घर बाल बनवाना इन्द्रकी भी श्री हर लेते हैं। बकरी, गधे तथा झाड़ूकी धूल और स्त्रीकी चरणधूलि इन्द्रकी लक्ष्मीको भी हर लेती है।'

इस प्रकार कुबेर-बलि-इन्द्रादिसे, किमधिकं, भगवान् विष्णुसे भी रमादेवीके वियोग एवं पुनः सम्मिलनकी अनेक घटनाएँ एवं कथाएँ श्रीमद्देवीभागवत ९ । ४९ से अध्याय २३ तक तथा पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड, अध्याय ४ एवं विष्णुपुराण, महाभारत, शान्तिपर्व, २२४ से ५६ आदि अध्यायोंमें, बार-बार प्राप्त होती हैं[5]। इसके अतिरिक्त श्रीरक्षार्थ—

भूयसीं श्रियमाकाङ्क्षन् सत्यवादी भवेत् सदा।
प्रत्यगाशामुखोऽश्नीयात् स्मितपूर्वं प्रियं वदेत्॥

(शारदातिलक ८ । १६१ आदि)

अर्थात् 'अधिक श्रीकी कामनावाले व्यक्तिको सदा सत्यवादी होना चाहिये, पश्चिममुँह भोजन करना तथा हँसकर मधुर भाषण करना चाहिये।'

—आदि बहुत-से विधि-निषेधात्मक नियम भी निर्दिष्ट हैं, जिनका लक्ष्मीकामी साधकको दृढ़तापूर्वक पालन करना होता है।

श्रीविद्याकी अनपगामिनी—सुस्थिरा श्री (महालक्ष्मी)

सर्वश्री भगवान् शिव, महर्षि अगस्त्य, सूर्य, स्कन्द, इन्द्र, अग्नि, महर्षि दुर्वासा, (भगवान् दत्तात्रेय, महर्षि संवर्त), चन्द्रमा, मनु, लोपामुद्रा, कामदेव और कुबेरजी—ये श्रीविद्याके आचार्य कहे गये हैं—

......................अस्याः कृपावशात्।
जाता विद्येश्वरास्तेषु मुख्यास्ते द्वादश स्मृताः॥
× × ×
मनुश्चन्द्रः कुबेरश्च लोपामुद्रा च मन्मथः॥
अगस्तिरग्निः सूर्यश्च इन्द्रः स्कन्दः शिवस्तथा।
क्रोधभट्टारको देव्या द्वादशामी उपासकाः॥

(त्रिपुरारहस्य, माहा० ख० ४८ । ५८-६०)

वास्तवमें ये सब लोग योग-(ब्रह्म) ज्ञानमयी अनपगामिनी ब्राह्मी लक्ष्मीसे सम्पन्न थे। वाल्मीकि-रामायण, अरण्यकाण्डमें अगस्त्यादि इन सब ऋषियोंके आश्रमोंको भी 'ब्राह्मी लक्ष्मीसे दीप्त' कहा गया है। भगवान् शिव तो अर्द्धनारीश्वर ही ठहरे। केनोपनिषद्की 'उमा हैमवती' तथा ब्रह्मकी कथाका त्रिपुरारहस्य, शिवपुराण, देवीभागवत आदिमें इसी अर्थमें उपबृंहण हुआ है। साथ ही इन ग्रन्थोंमें उन्हें 'श्रीकी भी परा श्री' तथा 'सुन्दरतमा ब्रह्मविद्या' भी बतलाया गया है—

'श्रियाः श्रीश्च भवेद्ग्र्या कीर्त्याः कीर्तिः क्षमाक्षमा।'
(श्रियाः श्रीः; लक्ष्म्याः लक्ष्मीः)

'शोभमानानां शोभनतमा विद्या। तदा बहुशोभमानेति विशेषणमुपपन्नं भवति; हैमवतीं हेमकृताभरणवतीमिव बहुशोभमानामित्यर्थः।...नित्यमेव सर्वज्ञेनेश्वरेण सह वर्तते।'

(केनोप० ३ । १२ का शांकरभाष्य)

सर्वज्ञता तृप्तिरनादिबोधः स्वतन्त्रता नित्यमलुप्तशक्तिः।
अनन्तशक्तिश्च विभोर्विधिज्ञाः षडाहुरङ्गानि महेश्वरस्य॥

(वायुपुराण १२ । ३३, शिवपुराण १ । १ । १२ आदि)

'इस क्षणसे पूर्व जगत्में जो कुछ हो चुका है, वर्तमान क्षणमें विश्व-ब्रह्माण्डके किसी भी कोनेमें जो कुछ हो रहा है और इस क्षणके बाद अनन्तकालतक जो कुछ भी होनेवाला है, सब कुछ जान लेनेकी क्षमता, पूर्णकामता, अनादि ज्ञान, स्वाधीनता, कभी लुप्त न होनेवाली शाश्वती शक्ति और अपार शक्ति—सर्वशक्तिमान् परमेश्वरके ये छः लक्षण शास्त्रज्ञोंने बताये हैं।'

भगवती श्रीविद्या, ब्रह्मविद्या या श्री, पार्वती (या लक्ष्मी या महालक्ष्मी) सदा उस सर्वज्ञ परब्रह्म परमेश्वर (या

---

५. यह सृष्टिकी आरम्भिक अवस्थाका वर्णन है, प्राणीके सुधारके उपदेशके लिये।

६. धान्यगोगुरुहुताशनराणां न स्वपेदुपरि नाप्यनुवंशम्।
नोत्तरापरशिरा न च नग्नो नार्द्रपाणिचरणः श्रियमिच्छन्॥
—इत्यादि (शारदातिलक ८ । १६७ की 'पदार्थादर्श' टीका)

'श्रीकी कामनावाले साधकको धान्यराशिपर, गायके सहारे, गुरुके अङ्गपर, अग्निके ऊपर (चारपाई डालकर), अन्य मनुष्यके ऊपर, बाँसके पेड़के नीचे, उत्तर सिर तथा पश्चिमकी ओर सिर करके, नंगे बदन या गीले हाथ-पैर भी नहीं सोना चाहिये।'

७. त्रिपुरारहस्य, माहात्म्यखण्ड, अध्याय ४-५ के अनुसार ये महर्षि संवर्तके भी गुरु हैं।

८. 'अगस्ति' शब्द अगस्त्यका ही वाचक है। द्रष्टव्य—'सिद्धान्त', वर्ष १४, पृ० ४८९ पर मेरा लेख।

९. आग्नेयेन ऋग्वेदीयश्रीसूक्तेनाग्निं प्रार्थयेत्। अग्निस्तुष्टो यजमानाय श्रियं प्रयच्छति। अग्निस्तु रुद्र एव। रुद्रो हि पुरुषः। पुरुषो वै रुद्र

महाविष्णु) के साथ ही वर्तमान रहती हैं । (देखिये केनोपनिषद्के गीताप्रेस, आनन्दाश्रम तथा चरित्रवन, बक्सरसे प्रकाशित श्रीमत्त्रिदण्डीस्वामीजी आदिके विविध भाष्य-व्याख्यान आदि) ।

अथवा पार्वती, सरस्वती, लक्ष्मी—इन तीनोंकी भी जनयित्री, संचालिका, स्वामिनी साक्षात् चिति-शक्ति[१०] ही श्रीविद्याकी श्री हैं—

'तथा च श्रीगीर्जनकत्वाच्चेयं तत्समानकोटिभूता रुद्राणी, किंतु तत्त्रितयजनयित्री (परब्रह्ममहिषी) परा भट्टारिकेत्युक्तं भवति ।'''''''''सा हि श्रीरमृता सताम् ।'

(ललितासहस्रनामका सौभाग्यभास्करभाष्य ५२)

गिरामाहुर्देवीं द्रुहिणगृहिणीमागमविदो
हरेः पत्नीं पद्मां हरसहचरीमद्रितनयाम् ।
तुरीया कापि त्वं दुरधिगमनिस्सीममहिमा
महामाया विश्वं भ्रमयसि परब्रह्ममहिषी ॥

(सौन्दर्यलहरी ९७)

'श्रीश्च (ह्रीश्च) ते लक्ष्मीश्च पत्न्यौ ।'

(शु० यजु० ३१ । २२)

इत्यादिपर शौनक, उवट, महीधर आदिके भाष्योंके अनुसार 'परमानन्द ज्ञानस्वरूप परब्रह्म ही पुरुष हैं और चन्द्रकला श्रीविद्या ही उस परब्रह्मकी महिषी हैं ।'

'ह्री (श्री) श्चते लक्ष्मीश्च पत्न्यौ' ह्रीः भुवनेश्वरी, लक्ष्मीः श्रीविद्या, उभे ब्रह्मणस्ते पत्न्यौ । अत्र तयोर्मध्ये श्रीविद्यायाः प्राधान्यम्, श्रीविद्यायां भुवनेश्वर्या अन्तर्भावात् ।''''''सैव महिषीति ध्येयम् ।'''परब्रह्ममहिषी श्रीविद्यापर-नामधेया चन्द्रकला एकैवेति ।'

(सौन्दर्यलहरी ९७ की श्रीलक्ष्मीधरा व्याख्या)

इसीलिये इस परा श्रीविद्याके उपासकों, अगस्त्याश्रित दण्डकवनके ऋषियों तथा उनके आश्रमोंको भी 'ब्राह्मी श्री या लक्ष्मीसे सुशोभित' कहा गया है—

''''''''''''''ब्राह्मया लक्ष्म्या समावृतम् ।
यथा प्रदीप्तं दुर्दर्शं गगने सूर्यमण्डलम् ॥

(द्रष्टव्यः वा० रा०, अरण्यकाण्ड १ । २; ६ । ६; ११ । २१)

यहाँ सर्वत्र सभी टीकाकारोंने 'ब्राह्मी लक्ष्मी'का अर्थ ब्रह्मविद्या या श्रीविद्या ही किया है—

'ब्राह्मया—ब्रह्मसम्बन्धिन्या लक्ष्म्या—ब्रह्मविद्यया इत्यर्थः' (रामा० शि० टी० ३ । १ । २) 'ब्राह्मी लक्ष्मीः—ब्रह्मविद्या-भ्यासजनितस्तेजोविशेषः । तत्समावृतत्वादेव गगने प्रदीप्तं दुर्दर्शं''''''''', सूर्यमण्डलं यथा तथा भुवि स्थितम् ।' (उसीकी तिलक टीका)

इसीलिये सभी देवता, ऋषि, गन्धर्व आदि भी निरन्तर महर्षि अगस्त्यकी आराधना किया करते थे । वे सभी ब्राह्मी लक्ष्मीसे सम्पन्न थे ।

ब्रह्मश्रीश्च तपःश्रीश्च यज्ञश्रीः कीर्तिसंज्ञिता ।
धनश्रीश्च यशश्रीश्च विद्या प्रज्ञा सरस्वती ॥
भुक्तिश्रीश्चाथ मुक्तिश्च स्मृतिर्लज्जा धृतिः क्षमा ॥

(ब्रह्मपुराण १३७)

काशीखण्डमें भी महर्षि अगस्त्यके लिये देवताओंने ऐसे ही वचन कहे हैं—

तपोलक्ष्मीस्त्वयीहास्ति ब्राह्मं तेजस्त्वयि स्थिरम् ।
पुण्यलक्ष्मीस्त्वयि परा त्वय्यौदार्यं मनस्त्वयि ॥

(स्कन्द०, काशीखण्ड ४ । ५)

वाल्मीकि-रामायणमें भी कहा गया है—

अत्र देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः ।
अगस्त्यं नियताहाराः सततं पर्युपासते ॥

(अरण्यकाण्ड ११ । ८९)

श्रीअप्पय्यदीक्षितने 'रामायणतात्पर्यसंग्रह (निर्णय)' के पृष्ठ २-३ पर महर्षि अगस्त्यको ब्रह्मा-विष्णु-अग्नि-इन्द्र-सूर्य-सोम-कुबेरादि सभी देवताओंद्वारा उपास्य

इति श्रुतेः । तस्य पत्नी भगवत्युमैव लक्ष्मीः । श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यौ । पुरुषो हि महादेवः शिवः । 'वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमिति तत्रैवोक्तेः ।' (इत्यादि श्रीसूक्तका श्रीकण्ठभाष्य १)

१०. (क) पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं स्वरूप-प्रतिष्ठा वा चितिशक्तिरिति ।

(योगदर्शन ४ । ३४)

(ख) विविक्तं कैवल्यं परिगलिततापा चितिरसौ ।

(वाचस्पतिमिश्र, 'तत्त्ववैशारदी')

(ग) चिति सर्वं चितः सर्वं चित्सर्वं सर्वतश्च चित् ।
सत् सर्वात्मिकेत्येतद् दृष्टं तत्र मयाखिलम् ॥

(योगवासिष्ठ ६ । २ । ६० । २३)

(घ) प्रमाणानां प्रमात्री सा चिच्छक्तिरिति शब्दते ।

(त्रिपुरारहस्य ७ । ११)

(श्रीविद्या-ब्रह्मविद्या या ब्रह्मका उपासक) बतलाया है—
'तस्माद्ब्रह्मविष्ण्वादय एवागस्त्योपासकाः ।' इत्यादि ।

अतः भगवती श्री इन (श्रीदत्त-अगस्त्यादि ब्रह्मवेत्ताओं) के मस्तकादिसे संस्पृष्ट होकर भी अपगामिनी नहीं हुई, नहीं होतीं, अपितु नित्य उनके साथ ही बनी रहती हैं—

या विशाला विशालाक्षी निर्मला मलवर्जिता ।
सा योगिनी महामाया स्थातु श्रीर्मस्तके मम ॥२९॥
विश्वरूपा विशेषेण करोति च जगत्त्रयम् ।
सा योगिनी महामाया स्थातु श्रीर्मस्तके मम ॥४२॥
दर्शनेषु समस्तेषु विदिता परमेश्वरी ।
सा योगिनी महामाया स्थातु श्रीर्मस्तके मम ॥५४॥

इत्यादि श्रीविद्यारत्नाकरे[11] पूर्णाभिषेके श्रीत्रिपुरार्णवोक्त-वर्णान्तस्तोत्रम् । पृ० ३४१ से ३५८ ।

११. अनन्तश्री स्वामी करपात्रीजी महाराजद्वारा लिखित यह पुस्तक 'भक्तिसुधा-साहित्यपरिषद्', १४५, काटन स्ट्रीट, कलकत्ता—७ से प्रकाशित है । इसके प्रारम्भमें ही कल्याणमयी, करुणामूर्ति श्रीविद्याके श्रीविद्यारण्यस्वामीके समक्ष प्रकट हो, अत्यन्त दयार्द्र होकर लोक-कल्याणके लिये आत्मप्राप्तिके अत्यन्त सुगम साधनोंसे युक्त ग्रन्थ लिखानेकी बात कही गयी है—

आविरासीज्जगद्धात्री महामाया ममाग्रतः ।
इति प्रोवाच भो वत्स वृणीष्व वरमुत्तमम् ॥ इत्यादि

'यस्य निःश्वसितं वेदाः' आदिसे वेदादि शास्त्र भगवान्से ही उद्भूत हैं, अतः भगवान् महाविष्णु-महेश्वरादि निरावरणज्ञानमय विज्ञानरूप हैं ही—'सर्वज्ञत्वात्परिनाधिबोधः·······।' तदतिरिक्त व्यास-वसिष्ठ-नारद-दत्तात्रेय-दुर्वासा-शुकदेव-गोरखनाथ-शंकराचार्यादि भी दिव्यज्ञान-सम्पन्न एवं देवदर्शनक्षम थे । (द्रष्टव्यः ब्रह्मसूत्र शां० भा० १ । ३ । ३३) पर इस कलियुगमें मतभेदके कारण कुछ लोग शिव-स्कन्द-वायु-ब्रह्म-मार्कण्डेय-ब्रह्माण्ड-मत्स्य-ब्रह्मवैवर्त-अग्नि-लिङ्ग-देवीभागवत-कूर्म-स्कन्द-गरुडादि पुराणोंको भी प्रमाण नहीं मानते । योगवासिष्ठ, त्रिपुरा-रहस्य, महोपनिषत्, त्रिपुरोपनिषत्, त्रिपुरातापनी, भावना आदि उपनिषदों तथा योगभाष्य, वार्तिक, मीमांसा, शारदातिलक आदिको भी प्रमाण नहीं मानते । फिर तदनुसार योग-पूजाके अनुष्ठान, ज्ञाना-र्जन आदिकी तो बात ही क्या । शिवपुराणमें योगद्वारा ईश्वर-देव-साक्षा-त्कार, ज्ञानप्राप्तिकी सिद्धि आदिमें असफल होनेपर पुराणोंके स्वाध्यायका निर्देश है । गोस्वामी तुलसीदासजी भी 'नाना पुराणों'के प्रेमी होनेसे दिव्यज्ञानसम्पन्न थे । श्रीभाईजीकी भी 'कल्याण'में प्रायः सभी पुराण निकालनेकी योजना थी । अधिकांशका अनुवाद भी हुआ । श्रीसीता-राम कविराजने भी श्रीविद्यारत्नाकरकी भूमिका, पृ० ५ पर स्वामीजीके विषयमें ठीक ही लिखा है कि 'तपसा ग्रन्थिभेदेन ज्ञानशक्तिप्रादुर्भावाद् वेदवेदाङ्गेषु निखिलदर्शनेतिहासपुराणधर्मशास्त्रादिसम्मतशास्त्रेष्वेवं योगतन्त्रभक्तिज्ञानादिसमस्तमार्गेषु च येषां सर्वज्ञता सम्पन्ना, तैः प्रातः-स्मरणीयगुरुचरणैः प्राणिमात्रकल्याणतत्परैः करुणापूरपूरितमानसैर्मह-दुपकृतं श्रीविद्योपासकानां ग्रन्थमिमं निर्माय ।'

अतः भगवती श्रीविद्याके कृपेच्छुक उपासकोंके लिये इस समय यह ग्रन्थ सर्वश्रेष्ठ है । (द्रष्टव्य वही ग्रन्थ, पृ० २) परमोत्तम कागजके रायल डिमाई साइजके अनेक श्रेष्ठ चित्र-यन्त्रादियुक्त ५०० पृष्ठोंकी पुस्तकका मूल्य भी प्रचारदृष्ट्या कुल १२.०० ही रखा गया है । इसमें बहुत-से अलभ्य-स्तोत्र तथा साधन-विधियाँ भी हैं, जिन्हें देखकर सर्वथा आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है ।

भगवती लोपामुद्रा

त्रिपुरारहस्य, माहात्म्यखण्ड, अध्याय ५३ में लोपामुद्राको श्रीविद्याका अवतार बतलाया गया है । ये पतिव्रताओंमें श्रेष्ठतमा हैं । स्वयं भगवती त्रिपुरा (श्रीविद्या) ने ही महर्षि अगस्त्यसे कहा था कि 'तुम्हारी पत्नी इस राजकन्या (विदर्भनरेश राजसिंहकी पुत्री) लोपामुद्राने अपने पिताके घरपर ही परा श्रीविद्याकी भक्ति प्राप्त कर ली थी । फिर भगवतीने दर्शन देकर जब इससे वर माँगनेको कहा, तब इसने त्रिपुराकी भक्ति ही माँगी । फलतः आगे चलकर वह श्रीविद्याकी ऋषिकाके ही रूपमें प्रसिद्ध हुई ।'

यत्ते प्रिया सती लोपामुद्राख्या राजकन्यका ।
पुरा सा पितृगेहस्था प्राप भक्तिं परापदे ॥
तद्धेतुं ते प्रवक्ष्यामि न तज्जानाति कश्चन ।
... ...
एवं चिराराधनेन भक्त्या भावनयापि च ॥
तुतोष सा भगवती वरेण समच्छन्दयत् ।
वव्रे चासौ सर्वजगत्पूज्यायाः पादसेवनम् ॥
प्रसन्ना सापि सद्विद्यां त्रैपुरीं समलक्षयत् ।
लक्षिता चापि तां विद्यां वाक्समुद्रपरिप्लुताम् ॥
समुद्धरद्रत्नमिव ततस्तस्याः प्रसादनात् ।
विद्याऋषीत्वं सम्प्राप्ता तन्नाम्ना सा स्फुटङ्गता ॥
(त्रिपुरारहस्य, मा० खं० ५३ । २८—३५)

श्रीविद्यामें भगवान् विष्णु

श्रीविद्यामें पुराणपुरुष श्रीमन्नारायण भगवान् महाविष्णुको भी साक्षात् श्रीललिता, भगवती त्रिपुरा या श्रीविद्याका ही रूप बतलाया गया है। कूर्मपुराणमें (१२। २३०) हिमाचलकृत पराश्री ललिताकी स्तुतिमें कहा गया है—

सहस्रमूर्द्धानमनन्तशक्तिं सहस्रबाहुं पुरुषं पुराणम्।
शयानमब्धौ ललिते तवैव नारायणाख्यं प्रणतोऽस्मि रूपम्॥

'नारायणः परोऽव्यक्तादण्डमव्यक्तसम्भवम्।' में भी नारायणको ही मूल प्रकृति या 'श्रीविद्या' कहा गया है। 'ललिता-सहस्रनाम' में भी ललिताको 'विष्णुरूपिणी' कहा गया है—

'·········विद्रुमाभा वैष्णवी विष्णुरूपिणी।'
(२१७, किसीमें १६६)

'·········गोप्त्री गोविन्दरूपिणी।'
(११४)

ब्रह्माण्डपुराणके 'ललितोपाख्यान' में स्वयं ललिताने ही कहा है—

'ममैव पौरुषं रूपं गोपिकाजनमोहनम्।'

'गोपीजनमोहन श्रीकृष्णरूप मेरा ही पुरुष-रूप है।'

वहीं आगे चलकर भगवान् विष्णुने वीरभद्रसे कहा है—

'भोगे भवानीरूपा सा·······पुंरूपा च मदात्मिका।'

'भोगकालमें वे भवपत्नी तथा पुरुषरूपमें वे मेरा ही रूप हैं।'

'सनत्कुमार-संहिता' में भी राजा प्रभाकर तथा रानी पद्मिनीकी पार्वती-भक्तिके वर्णनमें कहा गया है कि 'पति-पत्नीमें अभेद होनेके कारण देवीरूपमें तथा अपने रूपमें स्वयं भगवान् विष्णु ही द्विधा आराधित हुए'—

एवं देव्यात्मना स्वेन रूपेण च जनार्दनः।
दम्पत्योरेककायत्वादेक एव द्विधार्चितः॥
—इत्यादि

पाणिनि ५। २। ९७ से शीलता भगवान् विष्णुकी श्रीलता है। इन्हें अपना रूप नहीं, भक्त ही प्राणोंसे भी अधिक प्रियतर है। वे भक्तकी पूजासे परम प्रसन्न होते तथा उसके प्रति किये गये अपराधसे (चाहे कोई विष्णुका कितना भी आराधक क्यों न हो, अपराधीपर) अत्यन्त रुष्ट हो जाते हैं—

सुनु सुरेस उपदेसु हमारा। रामहि सेवकु परम पिआरा।
मानत सुखु सेवक सेवकाई। सेवक बैर बैरु अधिकाई॥
(मानस २। २१८। १)

इसीलिये दुर्वासा-जैसे मुनिकी भी दुर्दशा हुई—

'साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रियः॥'
(भागवत ९। ४। ६३)

'मेरे सीधे-सादे सरल भक्तोंने मेरे हृदयको अपने हाथमें कर रखा है। भक्तजन मुझसे प्यार करते हैं और मैं उनसे।'

इसलिये वे शंकरजीके प्रति की गयी नीतिसे तुष्ट होते हैं—**'परस्परनतिप्रियौ।'** और **'वैष्णवानां यथा शम्भुः'** आदिकी घोषणा की गयी है।

'मद्भक्तस्य तु ये भक्तास्ते मे भक्ततमा मताः।'
(भक्तामृत'में रूपगोस्वामी)

'जो मेरे भक्तके भक्त हैं, वे मुझे सर्वश्रेष्ठ भक्तके रूपमें मान्य हैं।'

अतः निश्छलभावसे श्रेष्ठ भक्त संतका पता लगाकर उनकी हृदयसे आराधना करनी चाहिये। इनकी आराधनाके साथ शिव, शक्ति एवं धर्मकी आराधनाके लिये भी जो अपना प्राण तथा सर्वस्व दे सकता है, वही इनका परम भक्त है। ऐसे भक्तके लिये ये भी अपना सर्वस्व दे देते हैं—

काको सहज सुभाउ सेवक बस, काहि प्रनतपर प्रीति अकारन॥
जन-गुन अलप गनत सुमेरु करि, अवगुन कोटि बिलोकि बिसारन।
परम कृपालु, भगत-चिंतामनि, बिरद पुनीत, पतितजन-तारन॥
सुमिरत सुलभ, दास-दुख सुनि हरि चलत तुरत, पटपीत सँभारन।
साखि पुरान-निगम-आगम सब, जानत द्रुपद-सुता अरु बारन॥
जाको जस गावत कबि-कोबिद, जिन्ह के लोभ-मोह-मद-मार न।
तुलसिदास तजि आस सकल, भजु कोसलपति मुनिबधू-उधारन॥
(विनयपत्रिका २०६)

श्री, भूमि, नीला, तुलसी, ज्ञप्ति आदि इनकी नित्य शक्तियाँ हैं। शालग्राम-पूजा भी प्रतिकल्पकी अनादि है। हिरण्याक्षने पृथ्वीका अपहरण किया, हयग्रीवने ज्ञप्तिरूपा भगवती श्रुतिका और जालंधरने तुलसीका अपहरण किया, लक्ष्मी क्रुद्ध हो समुद्रमें प्रविष्ट हुईं, फिर निष्काम होते हुए भी इनकी बाह्याभ्यन्तरा भक्तिके कारण ही प्रभुने इनका उद्धार किया—

'जदपि अकाम तदपि भगवाना। भगत बिरह दुख दुखित सुजाना॥'
(मानस १। ७५। १)

अतः इनकी पुनः प्राप्तिकी कथा लीलामात्र एवं औपचारिक ही समझनी चाहिये।

परा प्रीति या परतम प्रेम भी श्रीविद्या

'भावनोपनिषत्'के अनुसार ''सदानन्दपूर्ण प्रत्यगात्मा ही 'ललिता' एवं निरुपाधिक संविद् ही 'कामेश्वर' हैं। इनकी रक्तता पराप्रीति ही 'श्रीविद्या' है''—

'निरुपाधिकसंविदेव कामेश्वरः। सदानन्दपूर्णः स्वात्मैव परदेवता ललिता। लौहित्यमेतस्य सर्वस्य विमर्शः।'

(भावनोप० २७—२९)

नित्य साहचर्य, विप्रयोगशून्य संयोगके कारण ये परस्पर एक दूसरेके भी आत्मा हैं—

स्वात्मैव देवता प्रोक्ता ललिता विश्वविग्रहा।
लौहित्यं तद्विमर्शः स्यादुपास्तिरिति भावना॥

(भाष्य)

तदनुसार यह दिव्य विशुद्ध सर्वशक्तिसम्पन्ना श्री या ललिता तथा संविद्रूप परब्रह्मका दिव्यराग भावना-विमर्श ही श्रीविद्या हैं। यह विशुद्ध ब्रह्म ही 'महाविष्णु' एवं मूलप्रकृति ही ललिता या महालक्ष्मी है। देवीमाहात्म्य, देवीभागवत, त्रिपुरा-रहस्यादिमें विष्णुके सम्पूर्ण तेजसे ललिता महालक्ष्मीकी भुजा बनी थी।[१२] धर्मपर ही यह विश्व टिका है। पर इस धर्मकी सीमा अध्यात्मज्ञानरूपी 'तप' है। ज्ञानकी भी सीमा 'वैराग्य' है—'ज्ञानस्यैव पराकाष्ठा वैराग्यम्' और इन सबकी भी सीमा तथा श्री और संविद्की प्रतिपल उत्तरोत्तर वर्द्धमाना प्रीति ही 'पराश्री' हैं, जो अपराध होनेसे घटतीं नहीं और नतिसे किंचित् भी प्रभावित नहीं होतीं—

'क्षीयेतापि न योऽपराधविधिना नत्या न यो वर्द्धते।'
'गुणरहितं कामनारहितं प्रतिक्षणवर्द्धमानं सूक्ष्मतरमनुभवरूपम्।'

(नारदभक्तिसूत्र ५४)

इसमें इनका निरावरण समस्त दिव्य ज्ञानराशि एवं योगशक्तिसे युक्त रूपका एवं दिव्यामृतरसपूर्ण नित्य शरीरका नित्य साहचर्य ही इनका नित्य सामरस्य है। यह प्रीतिरूपा 'पराश्री' आत्मवान् संविद्से कभी युक्त नहीं होतीं, तथापि इनका परस्पर राग बढ़ता ही जाता है। इनकी प्रीतिमें राग-स्वार्थ-काम-लालसा-ईर्ष्यादिके गन्धकी तो बात ही क्या, इन चितिरूपा पराश्रीके दर्शन, ध्यान या स्मृतिमात्रसे ही काम, क्रोध, लोभ, मोह, राग, वासना, ईर्ष्या, दम्भ, द्वेष, पाप—सबका समूल नाश हो जाता है—'परं दृष्ट्वा निवर्तते[१३]।' इतना ही नहीं, मन-बुद्धिकी परम पवित्रता, ग्रन्थित्रयभेद,[१४] जातिस्मरता, ध्रुवास्मृति, अनावरण, त्रिकालज्ञानोदय तथा सीमास्पर्शी शील-विनयादि समस्त गुण भी सहसा प्रकट हो जाते हैं—

---

१२. जब वृन्दाके वियोगमें भगवान् विष्णुको, सतीके वियोगमें रुद्रको तथा कन्दली आदिके वियोगमें दुर्वासा आदिको तीव्र सात्त्विक करुण-विप्रलम्भ उत्पन्न हुआ, तब इन सभीको इसी पराश्री, मूलप्रकृति त्रिपुराने ही शरण दी तथा पुनः इन्हें नित्या, विप्रयोगरहिता शुद्धतमा प्रेयसीके रूपमें श्रीतुलसी, पार्वती, एकानंशा आदिकी प्राप्ति हुई। 'देवाश्च तुष्टुवुर्मूलप्रकृतिं भक्तवत्सलाम्।' (स्कन्द, वैष्णव०, कार्तिक० २२। १७) इन आचार्योंके श्रीविद्या-मन्त्रोंमें किंचिदन्तर है। आचार्य दुर्वासाकी श्रीविद्या हादि दौर्वाससी त्रयोदशाक्षरी कही जाती है। (द्रष्टव्यः सौन्दर्यलहरीके श्लोक ३२ की विभिन्न टीकाएँ) इसे ही 'शाम्भवी विद्या' भी कहते हैं। (सौन्दर्यलहरीकी सौभाग्यवर्द्धनी टीका) वाचस्पतिमिश्रादिने सात्त्विकविप्रलम्भानुप्राणित करुणरसका लक्षण इस प्रकार बतलाया है—

यूनोरेकतरेऽस्मिन् गतवति लोकान्तरं पुनर्लभ्ये।
'विमनायते यदैकस्तदा भवेत् करुणविप्रलम्भः॥

'विष्णुमयी सात्त्विकताके कारण ही साधकको करुण रसमें वियुक्त—विप्रलब्ध व्यक्तिकी निश्चयरूपसे ही प्रायः अतिशीघ्र पुनः प्राप्ति हो जाती है।'

१३. योगवासिष्ठके 'बलिविश्रान्त्युपाख्यान'में इस परमात्मदर्शनका प्रकार बड़े सुन्दर ढंगसे समझाया गया है। वास्तवमें पूर्णमनोजय तथा सम्पूर्ण योग-वेदान्तादि शास्त्रोंके ज्ञानको हस्तामलकवत् आत्मसात् करनेपर ही इस सम्यग्दर्शन-साधन या श्रीविद्याकी साधनाका प्रारम्भ होता है। इसीलिये योगवासिष्ठमें ही आद्योपान्त इसे अनेक बार पढ़नेका दृढ़ आदेश है। इस साधनामें बाह्योपचार प्रायः नहीं होते (दुर्लभगान्तरङ्गम्—इत्यादि वरिवस्यारहस्य २। ६२-६३)। जो व्यक्ति ऐसा नहीं हैं, वह तत्त्वतः इस श्रीविद्याके साधनारम्भका भी अधिकारी नहीं है।

१४. ग्रन्थिभेदका वर्णन योगग्रन्थोंके 'चक्रभेदन-प्रकरण'में तथा श्रीविद्याकी 'सौन्दर्यलहरी', श्लोक ३२, 'शिवः शक्तिः कामः क्षितिरथ' आदिकी अरुणामोदिनी, लक्ष्मीधरा आदि टीकाओं तथा 'मूलाधारैक-निलया ब्रह्मग्रन्थिविभेदिनी। मणिपूरान्तरुदिता विष्णुग्रन्थिविभेदिनी। आज्ञाचक्रान्तरालस्था रुद्रग्रन्थिविभेदिनी।' (ल० स० ८८—९२ की विभिन्न व्याख्याओं, ब्रह्मसूत्र ३। ३। ३२, शारदातिलक, पृ० २४—४६ एवं दत्तात्रेय-संहितामें देखना चाहिये।)

सैषा प्रसन्ना वरदा नृणां भवति मुक्तये।
सा विद्या परमा मुक्तेर्हेतुभूता सनातनी॥
(दुर्गासप्तशती १ । ५७)

'वे ही प्रसन्न होनेपर मनुष्योंको मुक्तिके लिये वरदान देती हैं। वे ही मोक्षकी हेतुभूता सनातनी परा विद्या हैं।'

त्वया विलोकिताः सद्यः शीलाद्यैरखिलैर्गुणैः।
कुलैश्वर्यैश्च युज्यन्ते पुरुषा निर्गुणा अपि॥
(श्रीविष्णुपुराण १ । ९ । १३०)

'तुम्हारी कृपा-दृष्टि होनेपर तो गुणहीन पुरुष भी शीघ्र ही शील आदि सम्पूर्ण गुण और कुलीनता तथा ऐश्वर्य आदिसे सम्पन्न हो जाते हैं।'

अधिक क्या, वह स्वयः अपने परमानन्दस्वरूपमें प्रतिष्ठित होकर महाविष्णुत्वपद, स्वरूप-प्रतिष्ठा या निर्वृतिस्वरूपताको ही प्राप्त हो जाता है।

वास्तवमें इस निगूढ विष्णु-रहस्यका संक्षेपमें वर्णन शक्य नहीं है। इसके सविस्तर वर्णनके लिये अत्यधिक स्थान एवं साधनकी अपेक्षा होगी। आग्रहरहित निश्छल हृदयके बिना विष्णुदर्शन अथवा तत्त्वज्ञान नहीं होता। भोगेच्छाका लेश भी ज्ञानमें बाधक होता है। शीलहीनता, असहनशीलता भी बाधक होती हैं। अतः साधन ही कठिन है। फिर विष्णु-तत्त्व स्फटिकके समान उज्ज्वल है। लेशमात्र मात्सर्य भी विष्णु-दर्शनमें महाबाधक है। (विष्णुपुराण ३ । ७ । २३)

'जेहि सर काक कंक बक सूकर क्यों मराल तहँ आवत।'
(विनय० १८५ । ३)

पर इन साधनोंमें सर्वथा असमर्थ व्यक्तिके लिये शुद्ध संत-चरण उपाय है—

भवसागर कहँ नाव सुद्ध संतन के चरन।
तुलसिदास प्रयास बिनु मिलहिं राम दुखहरन॥
(विनय-पत्रिका २०३ । २०)

श्रीविष्णूपासनाका तन्त्र 'पञ्चरात्र'

श्रीविष्णुभगवान्‌के उपासक सत्त्वगुणभूयिष्ठ होते थे। अपने यज्ञ-यागमें वे पत्र, पुष्प, फल, जल, घृत, दुग्ध तथा हविष्यान्नका ही उपयोग करते थे। पशुहिंसाके वे सर्वथा विरोधी थे ही, अतएव 'सत्त्ववत्' कहलाये। 'सत्त्ववत्' शब्द ही 'सत्त्वत्' बना और इस पदका प्रयोग 'ऐतरेय' और 'शतपथ'ब्राह्मणोंमें भी हुआ है, जैसा कि इन उद्धरणोंसे स्पष्ट है—(१) **तदेतद्गाथयाभिगीतम्—शतानीकः समन्तासु मेध्यं सात्राजितो हयम्। आदत्त यज्ञं काशीनां भरतः सत्त्वतामिव॥** (शतपथब्राह्मण १३ । ५ । ४ । २१)

(२) **भरताः सत्त्वतां वित्तिं प्रयन्ति** (ऐतरेय० २ । ३ । २५)

सत्त्वतोंका धर्म हुआ—'सात्वत'। इस सात्वत धर्मके दो उपभेद हुए—पाञ्चरात्र और वैखानस। पाञ्चरात्र नामकी शाखा बड़ी थी और वैखानस नामकी छोटी। विखना अर्थात् जगत्स्रष्टाद्वारा उपदिष्ट होनेके कारण छोटी शाखाका नाम 'वैखानस' पड़ा, किंतु इसका अधिक प्रचार और विस्तार नहीं हुआ। 'पाञ्चरात्र' इतना लोकप्रिय हुआ कि वह सात्वत धर्मका पर्याय समझा जाने लगा।

'पाञ्चरात्र' शब्द बहुत प्राचीन है और संस्कृत-साहित्यमें **इसका सर्वप्रथम दर्शन हमें ब्राह्मण-कालमें होता है।** शतपथमें वर्णन है कि "श्रीनारायणने पूर्व समयमें यह कामना की कि मैं सब भूतोंको अतिक्रमण करूँ और मैं ही सब कुछ बनूँ। उन्होंने इस 'पाञ्चरात्र पुरुषमेध' नामक यज्ञविधिका दर्शन किया, उसका आयोजन किया, उससे यज्ञ किया और उससे यज्ञ करके सब भूतोंको अतिक्रमण किया और वे सब कुछ बन गये।"

नारायणद्वारा अनुष्ठित होनेसे इस पुरुषमेधकी महिमा चतुर्दिक् विस्तृत हुई। इसी पुरुषमेधके विशेषणरूपसे उपर्युक्त ब्राह्मण-वचनमें 'पाञ्चरात्र' शब्दका प्रयोग है। एक और भी वचन, जिसमें इस शब्दका इसी रूपमें प्रयोग है, इस प्रकार है—'**स वा एष पुरुषमेधः पाञ्चरात्रो यज्ञः क्रतुर्भवति**।'

इस 'पाञ्चरात्र' विशेषणका विशेष्यके पर्यायरूपसे भी प्रयोग होता था, जैसा कि '**यवमध्यः पाञ्चरात्रो भवति**' इस वचनसे विदित होता है।

'पाञ्चरात्रयज्ञ'का अर्थ है—पाँच रात्रियोंमें किया गया यज्ञ। यजनके लिये रात्रिकी प्रधानता ही इस नाममें हेतु प्रतीत होती है। दिनका परित्याग नहीं है; क्योंकि पञ्चरात्रकी **व्याख्यामें यह वचन आता है कि पञ्चरात्रमें पहले दिन**

अग्निष्टोम करना होता है, दूसरे दिन उक्थ्य, तीसरे दिन अतिरात्र, चौथे दिन फिर उक्थ्य और पाँचवें दिन पुनः अग्निष्टोम। अग्निष्टोमसे इस यज्ञका आरम्भ होता था और अग्निष्टोमसे ही समाप्ति। अतएव इसे **'उभयतोज्योति'** भी कहते हैं। दो बार अर्थात् दूसरे और चौथे दिन उक्थ्य किये जानेके कारण इसे **'उभयतउक्थ्य'** भी कहते हैं।

अग्निष्टोमकी अपेक्षा उक्थ्यमें अधिक समय लगता था और उक्थ्यकी अपेक्षा अतिरात्रमें; अतएव पाञ्चरात्रको 'यवमध्य' कहा गया है। जौकी गोलाई किनारोंपर न्यून और बीचमें अधिक होती है, इसी प्रकार पाञ्चरात्र मध्यमें अर्थात् तीसरे दिन बहुत देरतक होता रहता था। उस दिन जो यज्ञ किया जाता था, उसकी दीर्घताका अनुमान उसके 'अतिरात्र' नामसे ही लगाया जा सकता है। जिसके करते-करते रात बहुत बीत जाय, उसे 'अतिरात्र' कहते हैं।

'पाञ्चरात्र'-यागमें पुरुषसूक्तद्वारा पुरुषमेध यज्ञ होता था। पाञ्चरात्र और पुरुषमेध एक ही हैं। पुरुषमेधका स्वरूप हृदयंगम होनेसे ही पाञ्चरात्रका स्वरूप हृदयंगम हो जाता है।

'शतपथ'में 'पुरुष' शब्दकी निरुक्ति इस प्रकार की गयी है कि "समस्त जगत् ही 'पुरी' है और उस पुरीमें शयन करनेवाला 'पुरुष' कहलाता है।" 'शतपथ'के त्रयोदशकाण्डोक्त इस वचनकी चतुर्दशकाण्डान्तर्गत अन्तर्यामिब्राह्मणोक्त वाक्यके साथ एकवाक्यता करनेपर 'पुरुष' शब्दका अर्थ वही परमात्मा ठहरता है, जो सम्पूर्ण जगत्में (जड और चेतनमें) अन्तःप्रविष्ट होकर उसका शासन कर रहा है। इन लोकोंमें जो अन्न है, वह पुरुषका है, अतएव यह यज्ञ 'पुरुषमेध' कहलाता है। पुरुषमेधकी इस निरुक्तिका एक और विकल्प वहीं दिया गया है; वह यह कि इसमें मेध्य पुरुषोंके आलभनके कारण इस यज्ञका नाम 'पुरुषमेध' पड़ा।

पुरुषमेधमें यज्ञीय पुरुषोंका 'सहस्रशीर्षा' इत्यादि षोडश ऋचावाले पुरुषसूक्तद्वारा स्तवन किया गया। अग्निसे दक्षिण दिशामें स्थित ब्रह्माने नारायण-पुरुषकी स्तुति की, तब आकाशवाणी हुई कि 'हे शरीरपुरमें निवास करनेवाले जीव! हिंसाके लिये अग्निके निकट पुरुषोंको खड़ा न कर। यदि करेगा तो मनुष्य ही मनुष्यको खाने लगेगा।' इस वाणीका श्रवण करके पुरुष-पशुओंको तो छोड़ दिया गया और घीकी आहुतियाँ ब्रह्म, क्षत्र, मरुत् और तपस्की प्रसन्नताके लिये दी गयीं।

इस प्रकार विदित होता है कि 'पुरुषमेध' हिंसात्मक यज्ञ नहीं था। आजकल भी पाञ्चरात्र-धर्मके अनुगामी हिंसाशील नहीं हैं। उनके पूजन-विधानमें जीवोंकी बलि नहीं दी जाती।

'पञ्चरात्र' शब्दकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई, यह कहा जा चुका है; किंतु कालान्तरमें वर्णसादृश्यको लेकर इस शब्दकी और-और भी निरुक्तियाँ की गयीं। जैसे—

१—सांख्य, योग, बौद्ध, आर्हत और कापाल-नामक पाँच शास्त्र जिसके सम्मुख फीके पड़ जायँ, वह 'पञ्चरात्र' है।

२—सूर्यके उदय होनेपर जिस प्रकार रात्रियाँ पञ्चत्वको प्राप्त हो जाती हैं, उसी प्रकार जिस शास्त्रके उदय होनेपर अन्यान्य शास्त्र पञ्चत्वको प्राप्त हो जायँ, वह 'पञ्चरात्र' है।

३—'रात्र' नाम ज्ञानका है और वह वैषयिक, यौगिक, भक्तिप्रद, मुक्तिप्रद और तत्त्व-भेदसे पाँच प्रकारका है; अतएव ज्ञान-प्रतिपादक शास्त्रका नाम 'पञ्चरात्र' है।

४—'रात्रि' नाम अज्ञानका है और 'पञ्चन'का अर्थ है—नाशन। इससे अज्ञानविनाशक शास्त्र 'पञ्चरात्र' है।

५—परमेश्वरके पाँच (पर, व्यूह, विभव, अन्तर्यामी, अर्चा नामके) रूपोंका निरूपण करनेवाला शास्त्र 'पञ्चरात्र' है।

६—परमेश्वरको प्राप्त करके जीवकी पाँच रात्रियाँ (भौतिक शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध) नष्ट हो जाती हैं। इस विषयको समझानेवाला शास्त्र 'पञ्चरात्र' है।

७—नारायणभगवान्‌ने पाँच रात्रियोंमें क्रमशः अनन्त, गरुड़, विष्वक्सेन, ब्रह्मा और रुद्रको जो उपदेश दिया था, उसका नाम 'पञ्चरात्र' है।

८—अपने पाँच आयुधोंके अंशस्वरूप शाण्डिल्य, औपगायन, मौञ्ज्यायन, कौशिक और भारद्वाजमेंसे प्रत्येकको जगत्प्रभु भगवान्‌ने पृथक्-पृथक् जिस शास्त्रको पढ़ाया था, वह 'पञ्चरात्र' है।

इस प्रकारकी निरुक्तियाँ संस्कृत-साहित्यमें बहुधा मिलती हैं। **'महत्त्वाद् भारवत्त्वाच्च महाभारतमुच्यते'** यह

'महाभारत' शब्दकी निरुक्ति भी इसी कोटिकी है ।

पञ्चरात्र न केवल वेद-मूलक है, प्रत्युत स्वयं 'एकायन वेद' नामसे अभिहित है । महर्षि शाण्डिल्यने इसी एकायन वेदको द्वापरके अन्तमें और कलियुगके आदिमें स्वयं संकर्षणसे प्राप्त करके सुमन्तु, जैमिनि, भृगु, औपगायन और मौञ्ज्यायनको पढ़ाया था ।

पञ्चरात्रमें जिन विषयोंपर प्रकाश डाला गया है वे ये हैं—

१–(ज्ञान) दार्शनिक तत्त्व, मन्त्र एवं यन्त्र; २–(योग) ध्यान-विधि; ३–(क्रिया) मूर्ति-मन्दिरोंके निर्माणकी विधि; ४–(चर्या) ऊर्ध्वपुण्ड्र, व्रत, उत्सव आदिकी विधि ।

महाभारतमें पञ्चरात्रको 'महोपनिषद्' कहा गया है, जैसा कि **'इदं महोपनिषदं सर्ववेदसमन्वितम्'**—इस वचनसे स्पष्ट है । इससे पञ्चरात्रका प्राचीन कालमें अधिक आदर सूचित होता है । इस माहात्म्यातिशयका हेतु है—इसका नारायणभगवान्के श्रीमुखारविन्दसे निर्गमन । महोपनिषद्के अतिरिक्त इसके लिये 'शास्त्र', 'तन्त्र', 'आगम' और 'संहिता' शब्दोंका प्रयोग भी होता है—यथा पञ्चरात्रशास्त्र, पञ्चरात्रतन्त्र, पञ्चरात्रागम और पञ्चरात्रसंहिता ।

पञ्चरात्रपर अनेक मुनियोंने ग्रन्थ बनाये । उन-उन मुनियोंके नामोंके अनुसार पञ्चरात्रका नाम पड़ता गया । नारदपञ्चरात्रमें सात प्रकारके पञ्चरात्रोंका उल्लेख है—यथा ब्राह्म पञ्चरात्र, शैव पञ्चरात्र, कौमार पञ्चरात्र, वासिष्ठ पञ्चरात्र, कापिल पञ्चरात्र, गौतमीय पञ्चरात्र और नारदीय पञ्चरात्र । अग्निपुराणमें पञ्चरात्रोंके पचीस नाम मिलते हैं—यथा हायशीर्ष, त्रैलोक्यमोहन, वैभव, पौष्कर, प्राह्लाद, गार्ग्य, गालव, नारदीय, श्रीप्रश्न, शाण्डिल्य, ऐश्वर, सत्योक्त, शौनक, वासिष्ठ, ज्ञानसागर, स्वायम्भुव, कापिल, तार्क्ष्य, नारायणीय, आत्रेय, नारसिंह, आनन्द, आरुण, बौधायन और अष्टाङ्ग ।

पञ्चरात्रसम्बन्धी उपदेश और प्रवचनोंके संग्रह संहिताओंके नामसे प्रसिद्ध हुए । बनते-बनते इनकी संख्या दो सौसे भी आगे पहुँची, किंतु साम्प्रदायिकोंमें १०८ संहिताओंका ही आदर है ।

संहिताओंके सात्त्विक, राजस और तामस-भेदसे तीन वर्ग हैं । इनमेंसे भगवत्प्रोक्त संहिताओंको 'दिव्य' कहा जाता है । इस अष्टोत्तरशतसंहिता-मालामें तीन संहिताएँ सुमेरु-मणिके समान हैं । वे हैं—१–सात्त्वत-संहिता, २–जयाख्य-संहिता और ३–पौष्कर-संहिता । ईश्वर-संहिता सात्त्वत-संहिताका व्याख्यानरूप है, पाद्म-संहिता जयाख्य-संहिताका विवरण है, पारमेश्वर-संहिता पौष्करसंहिताका निर्वचन है । सात्त्वत, जयाख्य और पौष्कर तीन होकर भी एक शास्त्र हैं । उनमें पारस्परिक विरोध नहीं है ।

यदुशैलपर सात्त्वत-संहिताका, श्रीरङ्गमें पौष्करका और हस्तिशैलमें जयाख्यका बहुमान है; किंतु हस्तिशैलमें पाद्मके अनुसार, श्रीरङ्गमें पारमेश्वरके और यादवाद्रिमें ईश्वरसंहिताके आदेशानुसार विधि-विधान होता है ।

इन संहिताओंमेंसे बहुत थोड़ी संहिताओंका ही मुद्रण अभीतक हो सका है ।

पञ्चरात्रको माननेवाला पुरुष 'पाञ्चरात्रिक' कहलाता है । भक्तके अर्थमें इस शब्दका प्रयोग आगम-साहित्यमें हुआ है ।

यामुनाचार्यने 'आगम-प्रामाण्य' पुस्तक लिखकर पञ्चरात्र-शास्त्रके माहात्म्यकी सिद्धि की थी । रामानुजाचार्यने ब्रह्मसूत्रके द्वितीयाध्यायके द्वितीय चरणके अन्तिम दो सूत्रोंके भाष्यमें पञ्चरात्रतन्त्रका प्रामाण्य स्थापित किया था । तदनन्तर वेंकटनाथने 'पञ्चरात्ररक्षा' नामक ग्रन्थ लिखकर इस शास्त्रकी महिमाको विस्तृत किया था ।

वैष्णवोंमें पञ्चरात्रोक्त सिद्धान्तोंका परम आदर है ।

(कु० द० भा०)

शोकनाशका उपाय

लोकं शोकहतं वीक्ष्य हाहाकारसमाकुलम् । अशोकं भज रे चेतस्तद् विष्णोः परमं पदम् ॥

(श्रीताराकुमार)

'हे चित्त ! इस लोकको शोकसंतप्त और हाहाकारसे व्याकुल देखकर भगवान् विष्णुके उस शोकहीन परमपदको भज ।'

श्रीवैखानस-सम्प्रदाय—संक्षिप्त परिचय

(लेखक—श्रीभास्कर रामकृष्ण आचार्युलु, बी० ए०, बी० एड्०)

ज्ञानानन्दमयं देवं निर्मलं स्फटिकाकृतिम् ।
आधारं सर्वविद्यानां हयग्रीवमुपास्महे ॥
श्रौतस्मार्तादिकं कर्म निखिलं येन सूत्रितम् ।
तस्मै समस्तवेदार्थविदे विखनसे नमः ॥

'हम भगवान् हयग्रीवकी उपासना करते हैं, जो ज्ञानानन्द-स्वरूप, स्वयम्प्रकाश, निर्मल, स्फटिकके समान शुभ्रवर्ण तथा समस्त विद्याओंके आधार हैं। जिन्होंने सम्पूर्ण श्रौत एवं स्मृत्युक्त कर्मोंका सूत्ररूपमें निर्देश किया है, उन सम्पूर्ण वेदोंका तात्पर्य जाननेवाले भगवान् ब्रह्माको हमारा प्रणाम है।'

भगवान् विष्णु सकल देवताओंके स्वरूप हैं। श्रीहरिकी अर्चासे सकल देवताओंकी अर्चाका फल मिलता है और सकल देवतार्चनका फल विष्णुपद-प्राप्ति ही है, ऐसी शास्त्रोंकी घोषणा है—

'विष्णुर्वै सर्वा देवताः।' 'विष्णुः सर्वेषामधिपतिः परमः।
..................'पुराणः। परो लोकानाम्।
'अग्निर्वै देवानामवमो विष्णुः।' परमस्तदन्तरेण अन्या देवताः॥
(ऐतरेय ब्राह्मण १। १)

'विष्णु सर्वदेवस्वरूप हैं, सबके सर्वश्रेष्ठ अधिपति हैं। वे पुराणपुरुष हैं, सम्पूर्ण लोकोंसे परे हैं। अग्नि देवताओंमें सबसे छोटे और विष्णु सबसे बड़े। अन्यान्य देवता उनके बीचमें स्थित हैं।'

सर्वेऽपि वैदिकाचारास्सर्वे यज्ञास्तपांसि च।
विष्णुपूजाविधेर्भेदाःसत्कर्मफलदो हरिः॥
स्मृति

'सम्पूर्ण वैदिक आचार, सारे यज्ञ और तप भगवान् विष्णुकी पूजाके ही प्रकार हैं तथा भगवान् श्रीहरि सभी सत्कर्मोंका फल देते हैं।'

येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम्॥
(गीता ९। २३)

'हे अर्जुन! यद्यपि श्रद्धासे युक्त हुए जो सकाम भक्त दूसरे देवताओंको पूजते हैं, वे भी मुझे ही पूजते हैं; किंतु उनका वह पूजन अविधिपूर्वक अर्थात् अज्ञानपूर्वक है।'

उक्त उद्धरणोंसे स्पष्ट होता है कि विष्णु ही परमाराध्य हैं। उक्त विष्णुकी अर्चनाके दो प्रधान भेद साम्प्रदायिक दृष्टिसे हैं—(१) वैखानस और (२) पाञ्चरात्र। इनमें वैखानस-सम्प्रदाय भगवान् विखनामुनिके द्वारा भगवान् विष्णुके उपदेशानुसार प्रचलित है। भगवान् विष्णुने लोक-कल्याणके लिये अर्चारूपमें इस धरतीपर अवतार लेकर उक्त अर्चावतारकी अर्चनाकी परम्पराको स्थापित करनेके हेतु स्वांशसे विखनाको प्रकट किया और अर्चा-सम्प्रदायका उपदेश दिया। श्रीविखनामुनि ही विश्वके आदि वैष्णव-धर्मप्रवर्तक हुए। श्रीविखनामुनि साक्षात् ब्रह्मा ही हैं। ब्रह्माजीने ही भगवान् विष्णुके संकल्पानुसार विखनारूपसे सृष्टिके आदिमें यजुर्वेदकी वैखानसी शाखाके अनुसार 'वैखानससूत्र'का निर्माण किया—

आदिकाले तु भगवान् ब्रह्मा तु विखना मुनिः।
यजुश्शाखानुसारेण चक्रे सूत्रं महत्तरम्॥
भार्गवसंहितायाम्

वैखानसीं महाशाखां स्वसूत्रे विनियुक्तवान्।
पद्मभूः परमो धाता तस्मिन्नाराधनत्रयम्॥
(स्कन्दपुराण)

उन विखनामुनिने भगवान् विष्णुद्वारा उपदिष्ट विस्तृत आगमको संक्षिप्त किया और फिर भृगु, अत्रि, कश्यप, मरीचि आदि शिष्योंको उसका उपदेश दिया। उक्त वैखानस भगवच्छास्त्रको पुनः इन मुनियोंने चार लाख श्लोकोंमें संक्षिप्त करके भारतभूमिपर प्रकट किया—

ततः परं चतुर्वक्त्रो जटाकाषायदण्डभृत्।
तपस्तप्त्वा चिरं कालं................॥
पश्चादपश्यद्विष्णूक्तमागमं विस्तरात्तदा।
संक्षिप्य सारमादाय शाणोल्लिखितरत्नवत्॥
धाता विखनसो नाम्ना मरीच्यादिसुतान् मुनीन्।
अबोधयदिदं शास्त्रं सार्द्धकोटिप्रमाणतः।
मुनिभिस्तैश्च संक्षिप्तं चतुर्लक्षप्रमाणतः॥
(श्रीपञ्चरात्र)

पुरा चतुर्मुखादेशाच्चत्वारो मुनयोऽमलाः।
प्रणीय वैष्णवं शास्त्रं................॥
(गरुडपुराण)

उक्त भृगु-अत्रि-कश्यप एवं मरीचि ऋषियोंद्वारा रचित भगवच्छास्त्र क्रमशः अधिकार, संहिता, काण्ड तथा तन्त्रके नामोंसे जाने गये। भगवान् विखनामुनिद्वारा रचित गृह्यसूत्रमें विष्णु-अर्चाके लिये शारीरिक संस्कारोंका वर्णन किया गया है तथा उसके—

'अग्नौ नित्यहोमान्ते विष्णोर्नित्यार्चागृहे देवायतने वा भक्त्या भगवन्तं नारायणमर्चयेत्।'

—वाक्यमें भगवदर्चाको नित्य होमके अनन्तर नित्यकर्मके रूपमें करनेका निर्देश किया गया है। उक्त वाक्यमें भगवान् विष्णुकी अर्चा अपने घरपर या देवालयमें करनेका जो विधान है, उसके अनुसार परात्पर, परब्रह्म, परमज्योति, अक्षर, सर्वभूतात्मक, सर्वाधार, सनातन परमपुरुष श्रीविष्णुकी अर्चाके लिये देवालय-निर्माण-विधि, प्रतिमा-प्रतिष्ठा-विधि, अनेक प्रकारके ध्यान पूजा-भेदसहित समन्त्र, सप्रयोग भगवान्‌की अर्चा-विधिका उल्लेख विस्तृतरूपसे 'विमानार्चनकल्प' ग्रन्थमें महर्षि मरीचिने किया है।

पौराणिक तथा ऐतिहासिक कालमें इस वैखानस-सम्प्रदायका सभीने अनुसरण किया है। यह सम्प्रदाय केवल वैखानस लोगोंका ही है, ऐसी धारणा भी संगत नहीं है। शास्त्रोंमें स्पष्ट कहा गया है—

वेदे वैखानसे सूत्रे यो धर्मः परिकीर्तितः।
सर्वैः स धर्मोऽनुष्ठेयो नात्र कार्या विचारणा॥

'वेदोक्त वैखानस-सूत्रमें जिस (भगवत्पूजारूपी) धर्मका निर्देश किया गया है, उसका पालन सभीको करना चाहिये, इसमें ऊहापोह करनेकी आवश्यकता नहीं है।'

उक्त भगवान्‌की अर्चा हेतु-भेदसे सकाम-निष्काम—दो प्रकारकी होती है। वह साधनाकी दृष्टिसे 'अमूर्त अर्चा' तथा 'समूर्त अर्चा' दो प्रकारकी होती है। अग्निमें आहुति देकर अग्निमुखसे भगवान्‌की उपासना 'अमूर्त अर्चा' है।

'अग्नौ हुतममूर्तम्' (विमानार्चनकल्प)

भगवान्‌की प्रतिमाकी स्थापना करके उनकी अर्चा करना 'समूर्त अर्चा' कही गयी है और यह श्रेष्ठ है।

उक्त अर्चाके द्वारा अर्च्य भगवान् विष्णुके पाँच रूप कहे गये हैं—जो विष्णु, पुरुष, सत्य, अच्युत, अनिरुद्ध-नामोंसे प्रसिद्ध हैं। **'स वा एषः पुरुषः पञ्चधा पञ्चात्मा'** श्रुतिके अनुसार उस परमात्मतत्त्व विष्णुके पर, व्यूह, विभव, अन्तर्यामी एवं अर्चावतार-नामसे पाँच भेद हैं—

स्वरूपं पञ्चधा प्रोक्तं………………।
परो व्यूहश्च विभवश्चान्तर्यामी च सुव्रत॥
अर्चेति……………………………………।

(ब्रह्माण्डपुराण)

अखिल ब्रह्माण्डोंकी रचना करनेवाले विष्णुको 'पर' कहते हैं। विष्वक्सेन, गरुड, लक्ष्मी आदि परिवारसहित क्षीरसागरमें शयन करनेवाले विष्णुका रूप 'व्यूह' कहा जाता है। राक्षसोंके नाशके लिये पृथ्वीपर अवतरित हुए मत्स्य-कूर्मादि अवतार 'विभव' कहे जाते हैं। समस्त चराचर सृष्टि-जालमें व्याप्त भगवान्‌को 'अन्तर्यामी' कहते हैं। लोक-कल्याणार्थ भूमिपर अर्चारूप अवतार लेकर श्रीविग्रहके आलम्बसे प्राणियोंको तारनेके लिये अवतार लेना 'अर्चावतार' है। उपर्युक्त अर्चावतारके श्रीविग्रह ध्रुव, कौतुक, स्नपन, उत्सव तथा बलि-नामके पाँच रूपोंमें विष्णुके तत्त्वानुसार होते हैं।

उपर्युक्त विष्णु, पुरुष, सत्य, अच्युत, अनिरुद्ध नामके पाँचों रूपोंमें विष्णुसे पुरुष, महाविष्णुसे सत्य, सदाविष्णुसे अच्युत और सर्वव्यापी नारायणसे अनिरुद्धका प्राकट्य हुआ।

उपर्युक्त अर्चावतार (१) स्वयंव्यक्त, (२) दिव्य, (३) सैद्ध और (४) मानुष-भेदसे चार प्रकारके होते हैं—

अर्चावताराः श्रीविष्णोः कृताः स्वेन चतुर्विधाः।
स्वयंव्यक्ताश्च दिव्याश्च सिद्धा वै मानुषा इति॥

भक्तरक्षणार्थ या अनुग्रहार्थ भगवान्‌द्वारा स्वयं प्रकटित विग्रह 'स्वयंव्यक्त', ब्रह्मा-रुद्र आदिके द्वारा प्रतिष्ठित 'दिव्य', सिद्ध पुरुषोंद्वारा प्रतिष्ठित 'सैद्ध' तथा मनुष्यद्वारा प्रतिष्ठित 'मानुष' कहे जाते हैं। उनका तेजः-प्रसार क्रमशः तीन योजन, एक योजन, दो कोस तथा एक कोसतक कहा जाता है।

उक्त भगवान्‌की आराधना चार प्रकारकी होती है—जप, होम, अर्चना तथा ध्यान रूपसे—

'जपहुतार्चनाध्यानानि।'

जप—**'सावित्रीं पूर्वं वैष्णवीं ऋचं अष्टाक्षरं द्वादशाक्षरं च भगवन्तं ध्यात्वाभ्यसेत् स जपः।'**

''सावित्री (गायत्री) को पहले जपकर वैष्णवी ऋचाओं,

अष्टाक्षर तथा द्वादशाक्षर महामन्त्रोंका भगवद्ध्यानके साथ अभ्यास करना 'जप' है ।''

होम—

'अग्निहोत्रादि होमः यद्धूयते तद्धुतं होमः ॥'

''अग्निमें विष्णुके लिये हविर्भूकी आहुति देना 'होम' कहा जाता है ।''

अर्चना—

'गृहे देवायतने वा वैदिकेन मार्गेण प्रतिमादिषु पूजयेत्तदर्चनं च ।'

''अपने घरमें या देवालयमें वैदिक मार्गके अनुसार प्रतिमा आदिमें भगवान्‌की पूजा करना 'अर्चना' है ।'' यहाँ 'आदि' शब्दसे शालग्रामादिका भाव भी ग्रहण किया जा सकता है । अर्चनके दो भेद नित्य तथा नैमित्तिक रूपसे पहले ही बताये गये हैं । उनमें नित्यार्चा प्रधानतः स्वोत्तारणके लिये तथा लोक-कल्याणके लिये की जाती है । नैमित्तिक अर्चाके 'शान्तिक' तथा 'पौष्टिक' दो भेद हैं । दोषोंकी शान्तिके लिये की जानेवाली अर्चना 'शान्ति' कही जाती है—जैसे अद्भुत-शान्ति आदि ।

अद्भुत तीन प्रकारके हैं—दिव्य, आन्तरिक्ष तथा भौम । 'दिव्य' अद्भुतोंमें ग्रहविकार, ग्रहयुद्ध, अनावृष्टि आदि हैं । 'आन्तरिक्ष' अद्भुतोंमें उल्कापात, धूमकेतु, रातमें इन्द्रचाप दिखायी देना, राहु-पुच्छ आदि हैं । 'भौम' अद्भुतोंमें देश-काल-स्वभाव-विरुद्ध प्रसूति, प्रतिमा-रोदन, प्रतिमा-हसन, प्रतिमा-ज्वलन, वल्मीकोद्भव (बाँबीका प्रकट होना) आदि हैं ।

उक्त अद्भुतोंकी शान्तिके लिये भगवान् विष्णुकी विशेष पूजा, तर्पण, स्तवन और होम किया जाता है, जिनका विवरण 'विमानार्चनकल्प'में दिया गया है । वैखानस-शास्त्रोक्त रीतिसे विष्णुपूजाकी विधिका सविशेष विवरण 'अर्चना-नवनीत', 'विष्णवर्चनसार-संग्रह', 'भगवदर्चा-प्रकरण' आदि ग्रन्थोंमें विस्तृत रूपसे पाया जाता है ।

ध्यान—

'परमात्मनो जीवात्मना चिन्तनं ध्यानं च ॥'

''जीवद्वारा मनसे परमात्माका चिन्तन किया जाना ही 'ध्यान' कहलाता है ।'' ध्यान निष्कल-सकल-भेदसे दो प्रकारका होता है । 'निष्कल ध्यान'में उस परमात्माका ध्यान समस्त विश्वमें अन्तर्बहिर्व्याप्त रूपसे किया जाता है—जैसे दूधमें घी, तिलमें तैल और पुष्पमें गन्ध । 'सकल ध्यान' सगुण-निर्गुण भेदसे दो प्रकारका होता है । 'निर्गुण ध्यान' 'निष्कल ध्यान'की भाँति ही होता है ।

उक्त भगवदाराधनका लक्ष्य मोक्ष-प्राप्ति है, जो मानव-जीवनका परम प्राप्तव्य है । उस मोक्षकी प्राप्ति भगवान्‌की मायासे मुक्त होनेसे होती है । भगवान्‌के शरणापन्न होनेपर जीव भगवान्‌की कृपासे मायासे तर जाता है—

'मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ।'

(गीता ७ । १४)

उक्त मोक्ष सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य तथा सायुज्य भेदसे चार प्रकारका होता है । विष्णुलोक आमोद, प्रमोद, सम्मोद तथा वैकुण्ठ-नामसे चार प्रकारके हैं, जो एकके ऊपर एक स्थित हैं । उन चारों लोकोंमें स्थित भगवान् क्रमशः विष्णु, महाविष्णु, सदाविष्णु तथा सर्वव्यापी नारायण कहे जाते हैं । उक्त आमोदकी प्राप्तिको 'सालोक्य', प्रमोदकी प्राप्तिको 'सामीप्य', सम्मोदकी प्राप्तिको 'सारूप्य' तथा वैकुण्ठकी प्राप्तिको 'सायुज्य' कहा जाता है । ये सभी पुनरावृत्ति-रहित हैं—

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन ।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते ॥

(गीता ८ । १६)

'हे अर्जुन ! ब्रह्मलोकपर्यन्त सब लोक पुनरावर्ती हैं, परंतु हे कुन्तीपुत्र ! मुझको प्राप्त होकर पुनर्जन्म नहीं होता; क्योंकि मैं कालातीत हूँ और ये सब ब्रह्मादिके लोक कालके द्वारा सीमित होनेसे अनित्य हैं ।'

इस प्रकार संक्षेपमें वैखानस-सम्प्रदाय तथा विष्णुकी अर्चाका संक्षिप्त परिचय दिया गया । उक्त रीतिसे भगवान् विष्णुकी अर्चा करके भक्तलोग परम सुख पाते हैं ।

हरिनामका ही आश्रय लेना चाहिये

अरे भज हरेर्नाम क्षेमधाम क्षणे क्षणे । बहिस्सरति निःश्वासे विश्वासः कः प्रवर्तते ॥

(गुरुकौमुदी)

'अरे ! श्रीहरिके कल्याणधाम नामका आश्रय लो । क्षण-क्षणमें बाहर निकलनेवाले श्वासका क्या भरोसा है ।'

वैष्णव-दर्शन और उसके भेद

[विशिष्टाद्वैत, द्वैत, द्वैताद्वैत, शुद्धाद्वैत, अचिन्त्यभेदाभेद]

(लेखक—त्रिदण्डिस्वामी श्रीभक्तिकमल पर्वत महाराज)

श्रीराधिकामाधवयोरपार-
माधुर्यलीलागुणरूपनाम्नाम् ।
प्रतिक्षणास्वादनलोलुपस्य
वन्दे गुरोः श्रीचरणारविन्दम् ॥

'अपने इष्टदेव श्रीश्रीराधा-कृष्णके अपार माधुर्य, अपार लीलाओं, अपार गुण, अपार रूप एवं अनन्त नामावलियोंका प्रतिक्षण रसास्वादन करनेके लिये लालायित रहनेवाले श्रीगुरुदेवके शोभायमान चरणारविन्दकी मैं वन्दना करता हूँ।'

वैष्णव-दर्शन अत्यन्त विशाल है। एक-एक सम्प्रदायके शत-शत प्रसिद्ध वैष्णवाचार्य अपने-अपने सम्प्रदायकी विशिष्टता प्रदर्शित करनेके लिये अनेकानेक दार्शनिक ग्रन्थ एवं निबन्ध प्रस्तुत कर गये हैं। अतः इस लघु निबन्धमें इतने गम्भीर तथा विशाल विषयके ऊपर कुछ लिखनेसे पहले उन नित्यवन्दनीय तथा श्रीभगवत्कृपाप्राप्त मनीषियोंके चरणोंमें क्षमा-प्रार्थना करके यत्किंचित् लिखनेका प्रयास कर रहा हूँ। वे इस दीन-हीन जीवके क्षुद्र दोषोंको क्षमा करें।

भारतमें बौद्ध संस्कृतिके अभ्युदयसे जब वेदोंका बहिष्कार होने लगा, तब भगवान् शंकरके अवतार श्रीआदि-शंकराचार्यका उदय भारत-गगनमें उज्ज्वल भास्कर-सदृश हुआ। उन्होंने वेदोंकी मर्यादा स्थापित की, शून्यवादसे मिलते-जुलते अद्वैतवादका प्रचार किया तथा उसकी स्थापना की। इस प्रकार श्रीआदि-शंकराचार्यने वैदिक धर्मका पुनरुद्धार किया।

उनके पश्चात् वेदोपदिष्ट परतत्त्वका (अपनी-अपनी मान्यताके अनुसार) प्रचार करनेके लिये क्रमशः श्रीरामानुजाचार्य (विशिष्टाद्वैतवाद), श्रीमध्वाचार्य (द्वैतवाद), श्रीनिम्बार्काचार्य (द्वैताद्वैतवाद) और श्रीविष्णुस्वामी (शुद्धाद्वैतवाद) का प्राकट्य हुआ। इन प्रधान वैष्णवाचार्योंके शिष्य-प्रशिष्योंके द्वारा वैष्णवधर्म भारतवर्षमें अत्यधिक प्रचारित हुआ; परंतु विदेशी यवनोंने राजसत्ताको छीनकर न केवल वैष्णवधर्मका ही, प्रत्युत भारतके प्राचीन-अर्वाचीन वैदिक तथा अवैदिक—सभी धर्मोंका मूलोच्छेद कर केवलमात्र यवनधर्मको ही प्रतिष्ठित करनेके लिये परिश्रम किया तथा उन्हें सफलता भी पर्याप्तरूपमें मिली।

भक्तोंकी आर्त्त पुकार सुनकर तथा धर्मका विलोप संनिकट देखकर दयार्द्रहृदय भगवान् श्रीहरिका श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुके रूपमें अवतरण हुआ। उन्होंने श्रीमध्वसम्प्रदायान्तर्गत द्वैतवादको स्वीकार किया और चारों वैष्णवसम्प्रदायोंके मतोंको अपने अचिन्त्य-भेदाभेदरूप सिंहासनके चार पाये बनाये। इस अचिन्त्यभेदाभेद-दर्शनका अनुसरण करनेवाले 'श्रीब्रह्म-माध्व-गौड़ीय सम्प्रदाय' नामसे जाने जाते हैं।

विशिष्टाद्वैतवाद

श्रीरामानुजाचार्यके अनुसार 'ब्रह्म' एकमात्र तत्त्व न होनेपर भी ब्रह्मके 'एकत्व' तथा 'अद्वयत्व'की हानि नहीं होती; क्योंकि दूसरे दो तत्त्व—जीव तथा जगत्—ब्रह्मके अन्तर्गत और आश्रितरूपसे सत्य हैं, ब्रह्मसे बहिर्भूत अथवा स्वतन्त्ररूपसे नहीं। ब्रह्ममें सजातीय तथा विजातीय भेद नहीं हैं; क्योंकि सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान् ब्रह्मके अतिरिक्त समजातीय या भिन्नजातीय कुछ भी नहीं है; परंतु ब्रह्मका 'स्वगत-भेद' है। चित् (जीव) तथा अचित् (जगत्)के साथ उनका 'स्वगत-भेद' है। वे सम्पूर्ण रूपसे ब्रह्मके अन्तर्गत हैं, इसलिये ब्रह्मके समान सत्य हैं; परंतु ब्रह्मसे पृथक् दूसरी कोई वस्तु है ही नहीं।

श्रीरामानुजाचार्यपादका कहना है—चिदचिद्विशिष्ट ब्रह्म ही 'ईश्वर' है। ब्रह्म—'अंशी', जीव तथा जगत्—'अंश'; ब्रह्म—आत्मा, जीव तथा जगत्—'देह'; ब्रह्म—आधार या आश्रय, जीव तथा जगत्—आधेय या आश्रित। जीव तथा जगत् ब्रह्मसे विशिष्ट अर्थात् धर्मानुयायी भिन्न होनेपर भी 'ब्रह्माश्रयी' तथा 'पृथक्सत्त्वहीन' होनेके कारण 'अभिन्न' है। भेदके विचारसे तत्त्व तीन हैं—'ब्रह्म', 'चित्' तथा 'अचित्'; परंतु अभेदके विचारसे तत्त्व एक ही है। वह है 'चिदचिद्विशिष्ट ब्रह्म'। उदाहरणके लिये व्यष्टिके दृष्टिकोणसे मूल, काण्ड, शाखा, पत्र तथा पुष्प—ये पाँच अलग-अलग तत्त्व हैं; परंतु समष्टिके दृष्टिकोणसे मूल, काण्ड, शाखा, पत्र तथा पुष्पसे विशिष्ट वृक्ष—यह एक तत्त्व है। इसलिये श्रीरामानुजाचार्यके मतको 'विशिष्टाद्वैतवाद' कहा जाता है।

द्वैतवाद

'तत्त्ववादगुरु' श्रीमन्मध्वाचार्य परतत्त्वको सच्चिदानन्द-विग्रहवान् तथा स्वगत-भेदरहित बताते हैं—

'आनन्दमात्रकरपादमुखोदरादिःसर्वत्र च स्वगतभेदविवर्जितात्मा।'

(महाभारत-तात्पर्यनिर्णय १ । ११)

जीवात्मा विष्णुका ही निरुपाधिक प्रतिबिम्ब है । परमेश्वरके दो अंश हैं—(१) प्रतिबिम्बांश तथा (२) स्वरूपांश । प्रतिबिम्ब दो प्रकारके होते हैं—(१) सोपाधिक और (२) निरुपाधिक । जीवात्मा परमेश्वरका 'निरुपाधिक' प्रतिबिम्ब है तथा आकाशमें दीखनेवाला इन्द्रधनुष सूर्यका सोपाधिक प्रतिबिम्ब है, इसलिये यह अनित्य है । (ब्रह्मसूत्र २ । ३ । ५० सूत्रपर मध्वभाष्य) जीवसमूह श्रीहरिका नित्य अनुचर है । जीव 'स्वल्प'-ज्ञानानन्दात्मकविग्रह तथा भगवान् 'पूर्ण'-ज्ञानानन्दात्मक विग्रह हैं । भगवान् 'प्रयोजक कर्ता' और जीव 'प्रयोज्य कर्ता' है । विष्णु जगत्‌के 'निमित्त' कारण हैं, 'उपादान' कारण नहीं । जगत् 'अनित्य' है, परंतु 'असत्य' नहीं है । जीव तथा जगत् भगवान्‌के अधीन हैं । भगवान् जीव तथा जगत्‌से पूर्णतया पृथक् हैं । श्रीमन्मध्वाचार्य पाँच प्रकारके भेद स्वीकार करते हैं—(१) जीव-ईश्वरका भेद, (२) जीव-जीवमें परस्पर भेद, (३) ईश्वर-जडमें भेद, (४) जीव-जडमें भेद, (५) जड-जडमें परस्पर भेद—

जीवेशयोर्भिदा चैव जीवभेदः परस्परम् ।
जडेशयोर्जडानां च जडजीवभिदा तथा ॥
पञ्च भेदा इमे नित्याः सर्वावस्थासु नित्यशः ।
मुक्तानां च न हीयन्ते तारतम्यं च सर्वदा ॥

(महाभारत-तात्पर्यनिर्णय १ । ७०-७१)

ये पाँच भेद सभी अवस्थाओंमें नित्य हैं । मुक्ति होनेपर भी जीवका ईश्वरसे नित्य भेद रहेगा ।

श्रीमन्मध्वाचार्यने कहीं-कहीं 'भेदाभेदवाद' तथा परतत्त्वकी अचिन्त्य शक्तिका प्रमाण दिखाकर 'अचिन्त्यभेदाभेदवाद'का इशारा किया है । निम्नलिखित 'ब्रह्मतर्क'के प्रमाणसे ऐसा ही प्रतीत होता है—

अवयव्यवयवानां च गुणानां गुणिनस्तथा ।
शक्तिशक्तिमतोश्चैव क्रियायास्तद्वतस्तथा ॥
स्वरूपांशांशिनोश्चैव नित्याभेदो जनार्दने ।
जीवस्वरूपेषु तथा तथैव प्रकृतावपि ॥
चिद्रूपायामतोऽनंशा अगुणा अक्रिया इति ।
हीना अवयवैश्चेति कथ्यन्ते तु त्वभेदतः ॥
पृथग्गुणाद्यभावाच्च नित्यत्वादुभयोरपि ।
विष्णोरचिन्त्यशक्तेश्च सर्वं सम्भवति ध्रुवम् ॥
क्रियादेरपि नित्यत्वं व्यक्त्यव्यक्तिविशेषणम् ।
भावाभावविशेषेण व्यवहारश्च तादृशः ॥
विशेषस्य विशिष्टस्याप्यभेदस्तद्वदेव तु ।
सर्वं चाचिन्त्यशक्तित्वाद् युज्यते परमेश्वरे ॥
तच्छक्त्यैव तु जीवेषु चिद्रूपप्रकृतावपि ।
भेदाभेदौ तदन्यत्र ह्युभयोरपि दर्शनात् ॥
कार्यकारणयोश्चापि निमित्तं कारणं विना ॥

(भा० ११ । ७ । ५१ श्लोकका माध्वकृतभाष्यधृत ब्रह्मतर्कवाक्य)

''जनार्दनमें अवयवी तथा अवयव-समूह, गुणी तथा गुण-समूह, शक्तिमान् तथा शक्ति, क्रियावान् तथा क्रिया और अंशी तथा स्वरूपांश—इनमें आपसमें नित्य 'अभेद' है । जीवस्वरूपसमूह तथा चिद्रूपा प्रकृतिमें भी (उन सभी विषयोंमें) अभेद है । इसलिये (अंश प्रभृतिके साथ अंशी प्रभृतिके) अभेदके कारण गुणादिकोंके पृथक् अवस्थानके कारण तथा अंश प्रभृति—इन दोनोंके नित्य होनेके कारण वे (अंशी प्रभृति) अनंश, अगुण, अक्रिय तथा अवयवहीनरूपसे कहे जाते हैं तथा अचिन्त्यशक्ति विष्णुके लिये ये सभी सम्भव होते हैं । क्रियादिकोंका नित्यत्व, प्रकाश और अप्रकाशका भेद, अस्तित्व और अनस्तित्व रूपमें व्यवहार तथा विशेष और विशिष्टका अभेद भी उसी प्रकार सिद्ध होता है । अचिन्त्य-शक्ति होनेके कारण परमेश्वरमें सभी कुछ संगत है और उनकी शक्तिके कारण ही जीवसमूहमें तथा चिद्रूपा प्रकृतिमें भी उन-उन विषयोंका भेद तथा अभेद—दोनों ही देखनेको मिलते हैं । निमित्त-कारणरहित कार्य तथा कारणमें भी ऐसा भेदाभेद ज्ञातव्य है ।''

परंतु श्रीमन्मध्वाचार्यपादने अपनी वाणीमें शक्ति तथा शक्तिमान् अथवा जीव तथा ब्रह्म एवं जगत् तथा ब्रह्म आदिमें 'शुद्ध' या केवल भेदके सिवा स्पष्टरूपसे किसी भी मतको प्रकट नहीं किया है ।

द्वैताद्वैतवाद

द्वैताद्वैतवाद-प्रवर्तक श्रीनिम्बार्काचार्यने स्वाभाविक 'भेदा-भेदवाद'का संस्थापन किया है । श्रीनिम्बार्कके अनुसार ''भेद' तथा 'अभेद' केवल समानरूपसे सत्य ही नहीं, समानरूपसे

नित्य भी हैं। सभी कालमें, सभी अवस्थामें भेद तथा अभेद समभावमें वर्तमान हैं।" श्रीनिम्बार्कपादका कहना है—"ब्रह्म कारण, जीव तथा जगत् कार्य, ब्रह्म शक्तिमान्, जीव तथा जगत् शक्तिद्वय, ब्रह्म समग्र सत्ता, जीव तथा जगत् ब्रह्मके अन्तर्गत क्षुद्रातिक्षुद्र अंश हैं। कारण तथा कार्य, शक्ति तथा शक्तिमान्, अंशी तथा अंशमें भेद वास्तविक, स्वाभाविक तथा नित्य है। ब्रह्म ध्येय, ज्ञेय तथा प्रासव्य है और जीव ध्याता, ज्ञाता तथा प्रापक है। ब्रह्म सृष्टि-स्थिति-प्रलयकर्ता, सर्वव्यापी, पूर्ण स्वतन्त्र है और जीव सृष्टि आदिमें शक्तिहीन, अणुमात्र तथा शासित है। केवल बद्ध जीव ही नहीं, मुक्त जीव भी ब्रह्मसे भिन्न हैं। ब्रह्म तथा जीवका यह स्वभावगत तथा धर्मगत भेद नित्य है।"

जगत्के सम्बन्धमें भी यही बात है। ब्रह्म केवल चेतन, अजड, अस्थूल, नित्यशुद्ध है; परंतु जगत् अचेतन, जड, स्थूल तथा अशुद्ध है। इसलिये ब्रह्म एवं जगत्में स्वभावगत तथा धर्मगत भेद नित्य वर्तमान है; किंतु ब्रह्म तथा जीव और जगत्में स्वाभाविक भेद जिस प्रकार सत्य है, स्वाभाविक अभेद भी उसी प्रकार समानरूपसे सत्य है। कार्य कारणसे गुणतः तथा कर्मतः भिन्न है, परंतु स्वरूपतः अभिन्न है। कारण भी कार्यसे अतिरिक्त रूपमें कार्यसे भिन्न है, किंतु कार्यमें लीन तथा कार्यस्वरूपमें कार्यसे अभिन्न है। कार्य कारणसे भिन्न है; क्योंकि कार्य और कारणके गुण-समूह तथा कर्म-समूह एक नहीं हैं। मिट्टीका घड़ा मिट्टीके ढेलेसे भिन्न है; क्योंकि घड़ेका आकार तथा कर्म मिट्टीके ढेलेके आकार तथा कर्मसे पृथक् हैं। किंतु भिन्न होनेपर भी मिट्टीका घड़ा मिट्टीके ढेलेसे अभिन्न है; क्योंकि मिट्टीका घड़ा मिट्टीके सिवा और कुछ तो है ही नहीं। अर्थात् कार्य कारणात्मक, कारण-सत्तामय तथा कारणाश्रयी है; इसलिये कार्य तथा कारण अभिन्न हैं।

कारण भी कार्यसे भिन्न है; क्योंकि उस कारणसे बहुतसे विभिन्न कार्य हो सकते हैं। जिस प्रकार मिट्टीके ढेलेसे मिट्टीका घड़ा भिन्न है; क्योंकि मिट्टीके ढेलेसे न केवल मिट्टीका घड़ा ही बन सकता है, अपितु उससे मिट्टीका कटोरा, चूल्हा आदि बहुत-सी वस्तुएँ भी बनती हैं; किंतु फिर भी मिट्टीका ढेला घड़ेसे अभिन्न है; क्योंकि मिट्टीके घड़ेके समान ढेला भी मिट्टीका स्वरूप है। इसलिये कारण कार्यसे अतिरिक्त रूपमें कार्यसे भिन्न है, किंतु कार्यलीन तथा कार्यस्वरूपमें कार्यसे अभिन्न है। स्वाभाविक-भेदाभेदवादमें भेदका अर्थ—(क) कार्यकी ओरसे गुणतः तथा कर्मतः प्रभेद, (ख) कारणकी ओरसे कार्यसे अतिरिक्तता। अभेदका अर्थ—(क) कार्यकी ओरसे कार्य-लीनत्व। इसलिये ब्रह्म जगदतिरिक्त रूपमें जीव तथा जगत्से भिन्न होनेपर भी जगत्-लीन रूपमें जीव तथा जगत्से अभिन्न है।

शुद्धाद्वैतवाद*

शुद्धाद्वैतवादके प्रवर्तक श्रीविष्णुस्वामिपादने श्रीनृहरि या श्रीनृसिंहदेवको अपने ईश्वरके रूपमें स्वीकार किया है। श्रीश्रीधरस्वामिपादद्वारा लिखित श्रीमद्भागवतकी टीका (भावार्थदीपिका) के निम्नलिखित श्लोकमें श्रीविष्णुस्वामि-पादका सिद्धान्त प्रकाशित हुआ है—

तदुक्तं विष्णुस्वामिना—

ह्लादिन्या संविदाऽऽश्लिष्टः सच्चिदानन्द ईश्वरः।
स्वाविद्यासंवृतो जीवः संक्लेशनिकराकरः॥

* श्रीविष्णुस्वामीके सिद्धान्तोंका कहीं कोई स्वतन्त्ररूपसे उल्लेख नहीं मिलता। शुद्धाद्वैतके नामसे आचार्य वल्लभके ही सिद्धान्तोंका उल्लेख किया जाता है, जो अपनेको विष्णुस्वामीका अनुयायी घोषित करते हैं। ऐसी स्थितिमें इस प्रसङ्गमें उनके सिद्धान्तका उल्लेख करना भी आवश्यक है। अतः नीचे संक्षेपमें उसका विवरण दिया जा रहा है—

श्रीवल्लभाचार्यने अपना मत 'अणुभाष्य'में प्रकट किया है। श्रीमद्भागवतकी व्याख्या भी शुद्धाद्वैतमतके अनुसार ही है। श्रीवल्लभका मत श्रीशंकर और श्रीरामानुजसे बहुत अंशोंमें भिन्न है और श्रीमध्वके मतसे मिलता-जुलता है। आचार्य वल्लभके मतसे जीव अणु और सेवक है। प्रपञ्चभेद (जगत्) सत्य है। ब्रह्म निर्गुण और निर्विशेष हैं। ब्रह्म ही जगत्के निमित्त और उपादान कारण हैं। गोलोकाधिपति श्रीकृष्ण ही वह ब्रह्म हैं। वे ही जीवके सेव्य हैं। जीवात्मा और परमात्मा दोनों शुद्ध हैं। इसीसे इस मतका नाम 'शुद्धाद्वैत' पड़ा है। श्रीवल्लभके मतानुसार सेवा द्विविध है—फलरूपा और साधनरूपा। सर्वदा श्रीकृष्णश्रवणचिन्तनरूप मानसी सेवा फलरूपा एवं द्रव्यार्पण तथा शारीरिक सेवा साधनरूपा है। उनके मतसे गोलोकस्थ परमानन्द-संदोह वृन्दावनमें भगवत्कृपासे गोपीभाव प्राप्त करके अखण्ड रासोत्सवमें निर्भर रसावेशके साथ पतिभावसे भगवान्‌की सेवा करना ही 'मोक्ष' है। उनकी रायमें ज्ञानमार्ग कुछ भी नहीं, भक्तिमार्ग भी उत्कृष्ट नहीं, केवल प्रीतिमार्ग ही सर्वोत्कृष्ट है। —सम्पादक

स ईशो यद्वशे माया स जीवो यस्तयार्दितः।
स्वाविर्भूतपरानन्दः स्वाविर्भूतसुदुःखभूः ॥

तथा—

स्वादृगुत्थविपर्यासभवभेदजभीशुचः ।
यन्मायया जुषन्नास्ते तमिमं नृहरिं नुमः ॥

"ह्लादिनी (आनन्ददायिनी) तथा संवित्-शक्ति (सर्वज्ञता-शक्ति) द्वारा आलिङ्गित सच्चिदानन्द-विग्रह ही ईश्वर हैं और जीव निज (अनादि बहिर्मुखतारूप) अविद्याके द्वारा सम्यक् रूपसे आवृत तथा संक्लेश-समूहके आकर-स्वरूप है। माया जिनके वशमें अवस्थित है, अर्थात् जो मायाधीश हैं, वे 'ईश्वर' हैं और जो (व्यक्ति) मायाके द्वारा अर्दित—लाञ्छित या पीड़ित है, अर्थात् मायाग्रस्त है, वह 'जीव' है। परमेश्वर स्वप्रकाश परमानन्दस्वरूप हैं और जीव स्वरूपतः स्वप्रकाश (चेतन) होकर भी प्रचुर दुःखका आधार है।"

"जीवके पाँच क्लेश हैं—(१) अपने स्वरूपका अज्ञान, (२) उससे उत्पन्न निजस्वरूपके विषयमें अन्यथा-ज्ञान, (३) उक्त अन्यथा-ज्ञानसे होनेवाली स्वर-पर-भेद-बुद्धि अर्थात् आत्मासे भिन्न देह आदिमें 'मैं'-'मेरा' बुद्धि-स्वरूप, (४) भेदबुद्धिसे होनेवाला भय तथा (५) शोक।"

"जिनकी मायासे जीव इन पाँचोंका सेवन करता रहता है, उन श्रीनृसिंहभगवान्‌को हम नमस्कार करते हैं।"

श्रीविष्णुस्वामिपादके अनुसार—(१) मुक्तपुरुष अनेक हैं, (२) उनका नित्यतनु या सिद्धदेह है, (३) उनका भजन नित्य है, (४) श्रीनृहरिका श्रीविग्रह नित्य है तथा (५) मुक्तिसे भक्तिकी श्रेष्ठता है।

अचिन्त्यभेदाभेद

श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु तथा उनके पार्षद वैष्णवाचार्योंने श्रीमद्भागवतको ही वेदान्तका अकृत्रिम भाष्य मानकर किसी अन्य भाष्यकी रचना नहीं की। श्रीरूप गोस्वामी, श्रीसनातन गोस्वामी तथा श्रीजीव गोस्वामी गौड़ीय वैष्णवाचार्योंमें प्रधान हैं। परवर्तीकालमें श्रीविश्वनाथचक्रवर्ती-जैसे प्रधान वैष्णवाचार्योंकी आज्ञासे उनके शिक्षा-शिष्यने जयपुरमें स्थित गलतागद्दीमें जाकर श्रीगोविन्ददेवजीका स्वप्नादेश प्राप्त किया और वेदान्त-विषयक 'गोविन्द-भाष्य'की रचना की तथा इस सिद्धान्तकी स्थापना की कि गौड़ीय सम्प्रदाय श्रीमध्व-सम्प्रदायके अन्तर्गत एक विशिष्ट सम्प्रदाय है और श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुद्वारा प्रतिष्ठित 'अचिन्त्य-भेदाभेद' ही चारों वैष्णव-सम्प्रदायोंके मतवादोंसे विलक्षण एक परम उपादेय मौलिक दर्शन है।

स्वयं श्रीचैतन्यदेवने श्रीसनातन गोस्वामिपादके निकट श्रीकाशीधाममें इस 'अचिन्त्यभेदाभेद'-सिद्धान्तको प्रकाशित किया था।

श्रीजीव गोस्वामिपादने कहा—**'अद्वयत्वं चास्य स्वयंसिद्धं तादृशातादृशतत्त्वान्तराभावात् स्वशक्त्यैकसहायत्वात्।'** "जो वस्तु अपने-आप सिद्ध है तथा अपनी शक्तिसे स्वयं पूर्णतया निरपेक्ष रहकर स्थित रहती है, उसीको 'स्वयंसिद्ध' या 'अन्यनिरपेक्ष' कहते हैं। 'परतत्त्व' सभी प्रकारसे 'स्वयंसिद्ध' अद्वयतत्त्व है। उसके सदृश वह एक ही है। जीव तादृश अर्थात् चिज्जातीय होनेपर भी 'ब्रह्म'के समान 'स्वयंसिद्ध' नहीं हो सकता। 'प्रकृति', 'काल' प्रभृति तत्त्व 'जड' हैं, 'अतादृश' हैं, अतः ये 'स्वयंसिद्ध' नहीं हो सकते, ये अपनी स्थिति आदिके लिये ब्रह्मकी अपेक्षा रखते हैं।"

ब्रह्मकी तटस्था-शक्ति है—जीव; संधिनीका विलास श्रीभगवद्धाम है तथा संधिनीशक्तिपरिणत अनन्त भगवत्स्वरूप तथा परिकर हैं। ब्रह्म जिस प्रकार चिद्वस्तु है, उसी प्रकार ये भी चिद्वस्तु समझे जाते हैं। परंतु समजातीय होनेपर भी ये स्वयंसिद्ध नहीं हैं, परतत्त्व-सापेक्ष हैं। इसलिये इनके साथ ब्रह्मका सजातीय भेद नहीं है। सुतरां, ब्रह्म सजातीय-भेदशून्य है।

जड ब्रह्माण्ड ब्रह्मकी अचित्-शक्तिसे उत्पन्न है। इसलिये जड ब्रह्माण्डके साथ चित्स्वरूप ब्रह्मका विजातीय-भेद प्रतीत होता है। किंतु वास्तवमें यह बात सिद्ध नहीं है; क्योंकि ब्रह्माण्ड स्वयंसिद्ध वस्तु नहीं है। माया ब्रह्मकी ही शक्ति है। **'जन्माद्यस्य यतः'** (ब्र० सू० १। १। २)—ब्रह्मसे ही इस जगत्‌का जन्म, स्थिति तथा नाश हैं। इसलिये ब्रह्म विजातीय-भेदशून्य है।

ब्रह्म या परतत्त्व सच्चिदानन्द वस्तु है। उसके देह तथा देहीमें भेद नहीं है। उसका सब कुछ ही नित्य, सत्य, पूर्ण-चेतन तथा पूर्ण आनन्दमय है। उसमें उपादानगत कोई भी भेद नहीं है। इसलिये ब्रह्म स्वगत-भेदशून्य है। स्वर्णके कुण्डलरूप धारण कर लेनेसे उसके साथ कुण्डलका 'स्वगत-

भेद' हुआ, ऐसा प्रतीत होता है। वस्तुतः उसमें स्वर्णके अतिरिक्त अन्य कुछ प्रविष्ट नहीं हुआ है, वह स्वर्ण ही है, इसलिये उसमें 'स्वगत-भेद' नहीं है। कुण्डल यहाँ एकमात्र स्वर्णकी ही अपेक्षासे युक्त है। कुण्डलका आकार 'स्वयंसिद्ध' नहीं है। सुतरां, यहाँ भी स्वगत-भेद नहीं है।

परतत्त्वकी 'स्वरूप'-शक्ति, तटस्थाख्य 'जीव'-शक्ति और बहिरङ्गा 'माया'-शक्ति तथा यथाक्रमसे उन सब शक्तियोंकी परिणति 'भगवत्परिकर', 'भगवद्धाम', अनन्त 'मुक्त' और 'बद्ध' जीव तथा अनन्त 'ब्रह्माण्ड'—इन सब शक्तियों तथा शक्तिपरिणत वस्तुओंके साथ परतत्त्वका जो सम्बन्ध है, उसीको लेकर दार्शनिक मतवादोंकी उत्पत्ति हुई है। कोई कहते हैं—'शक्ति तथा शक्तिमान्‌में आत्यन्तिक भेद है।' इस मतके प्रवर्तक श्रीमन्मध्वाचार्यने द्वैतवादको प्रतिष्ठित किया है। और कोई कहते हैं—'भेदांश' व्यावहारिक एवं प्रातीतिक मात्र है, परमार्थतः ब्रह्मकी कोई 'शक्ति' नहीं है। ब्रह्मकी शक्ति स्वीकार कर लेनेपर ब्रह्मके अतिरिक्त दूसरा तत्त्व तथा शक्तिक्रियासे उत्पन्न 'भेद' स्वीकार करना होता है। फिर ब्रह्म 'अद्वितीय' नहीं रह सकता। प्रत्यक्षदृष्ट भेदसमूह 'व्यावहारिकमात्र' है—यही शंकराचार्यका 'केवलाद्वैतवाद' है। परमार्थतः ये 'भेद' स्वीकार नहीं करते। अन्य कोई यह प्रतिपादन करते हैं कि शक्ति तथा शक्तिमान्‌का 'भेद' स्वीकार करनेपर भी शक्ति स्वरूपके ही अन्तर्भुक्त है। इसीसे श्रीरामानुजाचार्यका विशिष्टाद्वैतवाद-प्रकाशित हुआ है। भेद तथा अभेद—दोनों ही समानभावसे सत्य, नित्य, स्वाभाविक तथा अविरुद्ध हैं, यों प्रतिपादन करनेवाले श्रीनिम्बार्काचार्यने स्वाभाविक ही 'द्वैताद्वैतवाद'की स्थापना की है। कोई-कोई तर्कके द्वारा 'भेद'-वाद तथा 'अभेद'-वादकी स्थापना न करके, अथवा शक्ति तथा शक्तिमान्‌में 'भेद' तथा 'अभेद'—दोनों ही स्वाभाविक हैं—इस प्रकारकी भी कल्पना न करके, 'श्रुतार्थापत्ति'-प्रमाण या 'शब्दमूलक'प्रमाणके बलसे शक्ति तथा शक्तिमान्‌के 'अचिन्त्यभेदाभेद'की स्थापनाद्वारा श्रुति-मन्त्र तथा वेदान्तसूत्र-समूहका समन्वय-विधान करते हैं। यही 'अचिन्त्यभेदाभेद'-सिद्धान्त है।

वैष्णव-दर्शनोंका साम्य-वैषम्य तथा वैशिष्ट्य

(लेखक—आचार्य डॉ० सुवालालजी उपाध्याय 'शुकरत्न', एम्० ए०, पी-एच्० डी०, साहित्याचार्य, शिक्षा-शास्त्री, तीर्थद्वय, रत्नद्वय)

समस्त विचारणाएँ वास्तव वस्तुसे परिचय प्राप्त करनेके लिये ही प्रारम्भ होती हैं।[1] सृष्टिके आरम्भसे ही मनुष्य सृष्टि और आत्माके रहस्यपर विचार करता आ रहा है। वैज्ञानिक अनुसंधानों, साधना एवं अपने सहज ज्ञानके आधारपर वह समस्त प्रापञ्चिक ज्ञानके सच्चे रहस्यको हस्तगत करनेकी धुनमें लगा हुआ है। उपनिषदोंमें आत्म-तत्त्वके परिज्ञानसे अशेष विश्व-रहस्यको जान लेनेकी घोषणा की गयी है[2]। आचार्य रामानुज प्रकारान्तरसे इसी तथ्यको कहते हैं[3]।

इसी रहस्यकी खोजमें अनेक विचार दर्शनोंके रूपमें विकसित हुए हैं। भारतीय तत्त्व-ज्ञानका लक्ष्य ब्रह्म, जीव और जगत्‌के स्वरूप तथा उनके परस्पर सम्बन्धोंका पता लगाना है। प्रस्थानत्रयीके रूपमें प्रसिद्ध उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र और गीताको आधार बनाकर, स्वसिद्धान्तके पोषणके लिये वैष्णव आचार्योंने समय-समयपर अपनी व्याख्याएँ प्रस्तुत की हैं। शंकराचार्यद्वारा निर्विशेषरूपसे की गयी परम सत्ताकी विवेचना मनुष्यकी सहज रागात्मक-वृत्तिको संतुष्ट नहीं करती। मुख्यतः भगवद्विषयक रागके परमोत्कर्षको दिखानेके लिये ही वैष्णव-दर्शन और वैष्णव-सम्प्रदायोंका विकास हुआ।

'प्रस्थानत्रयी'को आधार बनाकर वैष्णव आचार्योंद्वारा किये गये विश्लेषण सैकड़ों तपःपूत साधनामूलक, निर्मल-दृष्टि-सम्पन्न महान् आत्माओंद्वारा निर्णीत ब्रह्ममूलक जगत्-कारणवादकी ही भिन्न-भिन्न व्याख्याएँ हैं, जिनमें कर्कश तर्कोंके स्थानपर साक्षात्कृत अनुभूत सिद्धान्तों तथा तथ्योंकी रमणीय राशिका दर्शन होता है।

प्रत्येक वैष्णव आचार्यने श्रुतियोंके आधारपर ही अपने सिद्धान्तोंके समर्थनका सुदृढ़ प्रयास किया है। उनको विचारणाओंमें प्रवृत्त करनेवाला केन्द्रीय तत्त्व है—ब्रह्म-

१. वेद्यं वास्तवमत्र वस्तु शिवदम्। (भागवत १। १। २)

२. यथा सोम्यैकेन मृत्पिण्डेन सर्वं मृण्मयं विज्ञातं स्यात्। (छान्दोग्य० ६। १। ४)

३. कारणात् कार्यस्य अनन्यत्वेन कारणविज्ञानेन कार्यस्य ज्ञाततया एकविज्ञानेन सर्वविज्ञानं समीहितमुपपन्नतरम्। (गीता १३। २ रामानुजभाष्य)

कारणवाद। यह विश्व ब्रह्मस्पन्दनका एक बुद्बुद है, किंतु यह अन्तिम सत् एक है या दो है या दोसे अधिक—यह तथ्य ही वैष्णव आचार्योंकी विवेचनाओंमें उपलब्ध होता है।

सभी एक मतसे औपाधिक परमात्मा, मायाकल्पित ब्रह्माण्ड, निर्विशेष ब्रह्म और मायावादका प्रबल तर्कोंसे खण्डन कर ब्रह्मकी सविशेषता और उसके अगणित गुणगणका प्रतिपादन करते हैं तथा उसके उस सच्चिदानन्दमय स्वरूपका वर्णन करते हैं, जिसके चरणोंकी नूपुरध्वनि मुमुक्षुओंके सोये हुए मनको भी जगा देती है और वृत्तिशून्य बनाकर उसीमें लीन होनेकी स्थिति पैदा कर देती है। आचार्य मध्वको छोड़कर, सभीने ब्रह्मकी अभिन्ननिमित्तोपादानकारणता स्वीकार की है और सभी भिन्न-भिन्न दृष्टियोंसे ब्रह्मपरिणामवादका ही प्रतिपादन करते हैं। कोई उसे सत्-चित्का आविर्भाव-तिरोभाव कहता है तो कोई शक्ति या विशेषणोंका परिणमन।

परतत्त्वके स्वरूपके विषयमें कुछ मतभेद है। आचार्य रामानुज तथा मध्वाचार्य लक्ष्मी-नारायणके उपासक हैं। निम्बार्क, वल्लभ तथा चैतन्य शक्तिमान् कृष्णकी उपासनाका ही आग्रह रखते हैं। इन तीनोंकी उपासना-पद्धतियोंमें भी सख्य, वात्सल्य एवं मधुरभक्तिकी मुख्यताकी दृष्टिसे सूक्ष्म अन्तर है।

सभी आचार्य जीव-तत्त्वको ज्ञाता, कर्ता, परतत्त्वके अधीन और श्वेताश्वतरोपनिषद्के आधारपर अणु-परिमाण स्वीकार करते हैं। उनकी दृष्टिमें जीव स्वरूपतः ब्रह्म अथवा परतत्त्वसे भिन्न होते हुए भी स्वरूपस्थिति, प्रवृत्ति आदिमें परायत्त है। जीवकी सत्ता अन्तिम तो है; किंतु जीव सर्वोच्च सत्ता नहीं। केवल आचार्य वल्लभ जीवको अग्निसे व्युच्चरित विस्फुलिङ्गके समान परतत्त्वसे विनिर्गत अर्थात् उनके स्वरूपका ही एक आनन्द-तिरोहित अंश स्वीकार करते हैं। कट्टर द्वैतवादी आचार्य श्रीमध्वको छोड़कर, सभी आचार्य दृष्टिभेदसे ब्रह्मके साथ जीव और जगत्का भेदाभेद ही स्वीकार करते हैं, यद्यपि उनका अधिक झुकाव भेद-पक्षकी ओर ही है; क्योंकि भेदके बिना उनके अभिमत सेव्य-सेवकभावकी सार्थकता ही उपपन्न नहीं हो सकती। जीव सर्वदा ही दास, अणु एवं अंश है। उसका यह अणुत्व किसी भी दशामें निवृत्त नहीं होता। मुक्तावस्थामें भी उसके अणुत्वकी निवृत्ति नहीं होती। श्रीमध्वाचार्य तो मुक्तावस्थामें आनन्दानुभूतिका तारतम्य भी स्वीकार करते हैं। जीवात्माका यह भगवत्कैंकर्य अथवा भगवत्-पारतन्त्र्य वैष्णव-दर्शनकी असाधारण विशेषता है।

आचार्य वल्लभको छोड़कर सभी आचार्य जडतत्त्व (जगत्) को भी परतत्त्व या ब्रह्मसे स्वरूपतः भिन्न स्वीकार करते हैं और उसे एक प्रकारसे सांख्याभिमत प्रधानके रूपमें ही इस संशोधनके साथ स्वीकार किया गया है कि वह ब्रह्मात्मक है। आचार्य वल्लभने चिदानन्द-तिरोहित सदंशको ही जडतत्त्व (जगत्) माना है। सर्वसम्मतिसे जीव और जगत् दोनों ही परतत्त्व (ब्रह्म)के द्वारा नियम्य हैं; क्योंकि इस मान्यताके बिना परतत्त्वकी सर्वशक्तिमत्ता एवं उपास्यता साधित नहीं होती, यद्यपि यह बात गम्भीरतासे समझनेकी है कि जीव या जडतत्त्व परतत्त्वसे स्वरूपतः भिन्न होते हुए भी उससे सम्बद्ध कैसे हो सकते हैं। इसकी उपपत्तिके लिये श्रीरामानुजाचार्यने शरीरात्मभाव या विशेषण-विशेष्यभाव, निम्बार्कने शक्ति-शक्तिमद्-भाव और श्रीबलदेव विद्याभूषणने अचिन्त्य शक्तिका कार्य-वैचित्र्य स्वीकार किया है। दूसरे शब्दोंमें वैष्णव आचार्योंद्वारा स्वीकृत जीव और जगत्की स्वायत्तताके साथ-साथ अपृथक्सिद्धता, अघटित-घटना-पटीयसी शक्तिकी ही अचिन्त्य महिमा है।

सभी एकमतसे परतत्त्वकी प्राप्तिमें भक्ति या प्रपत्तिको ही अन्तिम एवं श्रेष्ठ साधन स्वीकार करते हैं। जीव कर्मसे अचित्-तत्त्वपर, ज्ञानसे चित्-तत्त्वपर अधिकार प्राप्तकर, अनन्या या पराभक्तिद्वारा ही परतत्त्वको पा सकता है, यद्यपि स्व-स्व-स्वीकृत परतत्त्वके स्वरूप-भेदसे किसीने दास्य, किसीने सख्य या वात्सल्य तो किसीने मधुरभक्तिको उपासनामें प्रमुखता दी है। सभीकी दृष्टिमें फलरूपा साध्यभक्ति, परमात्माकी सहज निर्हेतुक कृपाद्वारा ही लभ्य है, किंतु फिर भी जीवको तदर्थ प्रयत्न या उपासना निरन्तर जारी रखनी चाहिये, उसमें वह स्वतन्त्र है—'स्वतन्त्रः कर्ता'।

सभी वैष्णव आचार्योंकी दृष्टिमें मुक्तिका स्वरूप परम-पुरुष-कैंकर्य अथवा नित्यलीलामें अन्तःप्रवेश है। अतः उनकी आस्था केवल विदेह-मुक्तिपर है, जीवन्मुक्तिपर नहीं। वैष्णव आचार्योंके अनुसार साधक दिव्य देह प्राप्तकर, कार्य-

---

१. बालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च।
भागो जीवः स विज्ञेयः स चानन्त्याय कल्पते॥
(श्वेता० ५।९)

जगत्‌से अतीत तत्त्व सम्प्रदायोंद्वारा वर्णित साकेत या गोलोक धाममें पहुँचकर परमपुरुषके साथ अपने-अपने भावके अनुसार रसानुभवमें निमग्न हो जाता है। फलतः वैष्णवोंकी दृष्टिमें मुक्तिका अर्थ है—चित्-तत्त्वरूप जीवके आत्माभिमानकी समाप्ति और उसका नित्यलीलामें प्रवेश। मुक्तात्माको परमात्माके समान जगद्-व्यापारका अधिकार नहीं है।

वैष्णव आचार्य अनेक अन्तिम वस्तुएँ मानते हैं, परंतु साथ ही यह भी कहते हैं कि वे सब एक ही परमात्म-तत्त्वपर आश्रित हैं। वैष्णवोंके भक्तिमार्गमें मनुष्यमात्र भक्ति कर सकता है। यह दृष्टिकोण सामाजिक सद्भाव, सर्वोदय एवं संगठनकी दृष्टिसे किसी भी राष्ट्रके लिये नितान्त हितकर है। यही कारण है कि वैष्णवधर्मकी ओरसे समाजकी निम्न श्रेणियोंमें भी आध्यात्मिक आकाङ्क्षा उत्पन्न करनेकी दिशामें प्रबल प्रयत्न हुआ है। वस्तुतः वैष्णवधर्मके आन्दोलनका उद्देश्य आध्यात्मिक उन्नतिके साथ-साथ सामाजिक उत्थान भी था।

यह प्रवृत्तिके रूपान्तरणको साथमें लेकर चलनेवाला मार्ग है। इसमें निराशा एवं निवृत्तिके स्थानपर जीवनकी सार्थकताको खोजनेके प्रति ज्वलन्त राग है। गीताके 'मामनुस्मर युध्य च' (८।७)के अनुसार साधक प्रत्येक कार्यको भगवदीय सेवा समझकर पूर्ण निष्ठाके साथ करता हुआ ही आनन्दका अनुभव करता है। वैष्णव-धर्मके विकासकालमें नृत्य, संगीत, शिल्प आदि सम्पूर्ण कलाओंकी अभूतपूर्व उन्नति इसका प्रमाण है। उपासनाके साथ लौकिकताका इतना सुन्दर सामञ्जस्य सर्वथा अपूर्व है। वैष्णव राग-आसनमें निग्रह नहीं करते। वे दमनके स्थानपर प्रभुविषयक रागात्मक जीवनका विकास करनेवाली साधना-पद्धतिका उपदेश करते हैं। फलतः अन्तःकरणका विनाश भी उनको स्वीकार्य नहीं है; क्योंकि रागद्वारा ही अन्तःकरणकी सहायतासे परमतत्त्वको प्राप्त किया जा सकता है। यह धर्म नितान्त समन्वयवादी भी है। इसमें प्रवृत्ति और निवृत्तिका सन्तुलन कर समस्त भोगोन्मुख ऐन्द्रियता तथा सम्पूर्ण मानसिक प्रवृत्तियोंको भगवदर्पित करनेका विधान है।

'वैष्णव-साधना (भक्ति) विध्वंसात्मक नहीं होती, वरन् हमें सिखाती है कि जो शक्तियाँ हमको दी गयी हैं, उनमें कोई भी निरर्थक नहीं; वरन् उन्हींके माध्यमसे हमारी मुक्तिका स्वाभाविक मार्ग प्रशस्त होता है। भक्ति हमारी प्रवृत्तिको उच्च एवं शक्तिशाली दिशा देती है।' (विवेकानन्द)

मलूकदासका यह कथन कितना सटीक है—'जबतक मेरे घरमें अँधेरा था, तबतक ये सारे मेरे सर्वस्वका अपहरण कर रहे थे; अब जब हृदय-मन्दिरमें प्रेमका दीपक जल उठा, तब वे ही चोर मेरे मित्र हो गये।'[1] निष्कर्षतः वैष्णवधर्म यह सिखाता है कि भौतिक आवश्यकताओंको कुचल डालनेसे अध्यात्म-सिद्धि प्राप्त करनेके स्थानपर सच्ची सिद्धिका मार्ग है—अपनी सम्पूर्ण इच्छाओंको प्रभु-चरणोंमें समर्पित कर, सांसारिक कार्योंको प्रभु-सेवा समझकर कर्तव्यरत बने रहना। यद्यपि कुछ परमोच्च स्थितिप्राप्त रागानुगा-भक्तिके साधकोंके जीवनमें प्रभुविषयक रागका ही सागर सर्वदा उमड़ा रहता है, तथापि सर्वसामान्य अगणित साधकोंकी शुभ जीवन-यात्राके लिये यह दृष्टिकोण अत्यन्त हितकर, सामाजिक, राष्ट्रीय एवं विश्व-जीवनके लिये अत्युपयोगी है।

पुरुषोत्तममासकी महिमा

पुरुषोत्तमेति मासस्य नामाप्यस्ति सहेतुकम्। तस्य स्वामी कृपासिन्धुः पुरुषोत्तम उच्यते॥
ऋषिभिः प्रोच्यते तस्मान्मासः श्रीपुरुषोत्तमः। तस्य व्रतविधानेन प्रीतः स्यात् पुरुषोत्तमः॥

(बृहन्नारदीयपुराण, पुरुषोत्तम-मास-माहा० २। २५-२६)

'पुरुषोत्तममास एक महीनेका नाम है, यह नाम सकारण है। इस मासके स्वामी साक्षात् कृपासिन्धु भगवान् विष्णु कहे जाते हैं, इसलिये ऋषिलोग इस मासको पुरुषोत्तम-मास कहते हैं। इस पुरुषोत्तम-मासमें व्रतानुष्ठान करनेसे भगवान् पुरुषोत्तम प्रसन्न होते हैं।'

---

१. जब लगि था अँधियार घर, मूसि थके सब चोर। जब मंदिर दीपक बरयो भये सब चोर मम मोर॥

(मलूकदास)

भगवान् शंकराचार्य और उनके अद्वैत-सम्प्रदायमें श्रीविष्णुका स्थान

(लेखक—श्रीयुत एस० लक्ष्मीनरसिंह शास्त्री)

यह उक्ति बहुतोंके लिये आश्चर्यजनक होगी कि भगवान् शंकराचार्य श्रीविष्णुके उतने ही कट्टर भक्त थे, जितने और कोई भक्त, जिन भक्तोंकी महिमा श्रीमद्भागवत महापुराणमें गायी गयी है; अथवा भगवान् नारायणके वैसे ही निष्ठावान् भक्त थे, जितने पीछेके कोई भी भक्त रहे। यह विचार रूढ़ हो गया है कि अद्वैत-दर्शनमें, जिसका प्रतिपादन उक्त महान् आचार्यने उपनिषदोंके आधारपर इतने सुन्दर ढंगसे किया है, सगुण भगवान्‌की उपासनाके लिये कोई स्थान नहीं है और साधनप्रणालीमें भक्तिको जो स्थान मिलना चाहिये, वह उसे उसमें नहीं दिया गया है। किंतु श्रीशंकराचार्यके सिद्धान्तके सम्बन्धमें वास्तविकताको संक्षेपमें निम्नलिखित शब्दोंमें व्यक्त किया जा सकता है:—जबतक साधक अपना पृथक् एवं नित्य अस्तित्व मानता है, तबतक परमेश्वरकी सत्ता तथा विविध नाम-रूपात्मक बाह्य जगत्‌का भी अस्तित्व उसके लिये बना रहेगा। किंतु जब वह ब्रह्मके अखण्ड बोधमें स्थित रहकर, अपनी व्यष्टि-सत्ताको मिटाकर उसके ऊपर उठ जाता है, तब ईश्वर और जगत्‌का भी निर्गुण ब्रह्मके अंदर विलय हो जाता है। जीवोंकी और ईश्वरकी, जो ब्रह्मके ही विवर्त्त हैं, सत्ता तभीतक रहती है, जबतक हमारी भेद-बुद्धि बनी हुई है। परंतु जब एकात्म्य-बोधका उदय होता है, 'ईश्वर', 'जीव' और 'विविध-नाम-रूपात्मक जगत्' अद्वैत ब्रह्मके अखण्ड बोधमें विलीन हो जाते हैं। सारांश, जहाँ 'अहं'का विलय हो जाता है, वहाँ 'तू' और 'मैं'—दोनों ही समाप्त हो जाते हैं; क्योंकि 'मैं' और 'तू' नामके विरोधी तत्त्वोंकी उत्पत्ति मनसे ही होती है। संक्षेपमें यों कह सकते हैं कि शंकर-सिद्धान्त सत्ताके 'पर' और 'अपर'-नामक दो सोपान स्वीकार करता है, यद्यपि सत्ता एक और अखण्ड है। इन सोपानोंकी सृष्टि अविद्यासे होती है, जो यथार्थ अनुभूतिको आवरणके द्वारा ढक देती है। किंतु परात्पर निर्गुण ब्रह्मका सिद्धान्त, जिसका श्रीशंकराचार्यजीने प्रतिपादन किया है, सगुण ईश्वरकी उनके विराट्‌रूपमें अथवा उनके दिव्य अथवा अवताररूपमें उपासनाका किसी प्रकार निषेध नहीं करता।

ईश्वर और ब्रह्मके प्रति शंकरके इस दृष्टिकोणको ठीक तरहसे समझ लेनेपर किसीको भी यह कहनेका साहस नहीं होगा कि शंकराचार्यने ईश्वर और ईश्वरकी प्रेमसहित उपासनाका विरोध किया है। प्रस्तुत निबन्धका उद्देश्य उक्त महान् आचार्यके ग्रन्थोंसे यह दिखलाना है कि वे जितने अद्वैतवादी थे, उतने ही ईश्वरवादी भी थे और विशेषकर वे भगवान् विष्णुके उपासक थे, जो आचार्यकी दृष्टिमें निर्गुण ब्रह्मका ही सगुण स्वरूप हैं।

और यदि शंकरके इस दृष्टिकोणकी पुष्टि अभीष्ट हो तो हमें भागवत-पुराणका अध्ययन करना होगा, जो भक्ति-सम्प्रदायोंका सर्वोत्कृष्ट आधार है। उक्त पुराणमें निर्गुण ब्रह्म एवं सगुण ईश्वर, भगवान् वासुदेव—दोनोंका प्रतिपादन किया गया है।

महान् शंकराचार्य ईश्वरकी महिमासे कितने प्रभावित एवं अभिभूत हैं, यह हम उनके केनोपनिषद्-भाष्यसे देख सकते हैं। उक्त उपनिषद्‌के उस प्रसिद्ध उपाख्यानकी व्याख्या करते हुए, जिसमें यक्षरूपमें स्थित ब्रह्मके द्वारा, जो एक तिनकेके उपस्थित कर दिये जानेपर, जिसे अग्नि जला नहीं सका, आचार्य निम्नलिखित सारगर्भित टिप्पणी करते हैं—'ब्रह्मसे तात्पर्य ईश्वरका ही लेना चाहिये। ईश्वरकी इच्छासे एक तिनका वज्रके रूपमें बदल सकता है। सृष्टिमें व्यवस्था ईश्वरके अस्तित्वका सबसे बड़ा प्रमाण है। नित्य, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् एवं सर्वव्यापी ईश्वरकी सत्ता श्रुति एवं स्मृति—दोनोंके द्वारा समर्थित तो है ही, प्रतिदिन दृष्टिपथ-में आनेवाले तथ्योंसे भी उनकी सत्ताका समर्थन किया जा सकता है। यह विश्व—जिसमें देवता, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, पितर और पिशाच आदि अनेक योनियोंके छोटे-बड़े जीव रहते हैं, जिसमें अमेय आकाश, पृथ्वी, सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह एवं नक्षत्रोंका विचित्र क्रम दृष्टिगोचर होता है, जिसमें रहनेवाले जीव अपने-अपने कर्मोंका फलभोग करते हैं—वे विविध भुवन, जिनकी व्यवस्था अथवा प्रयोजनको बड़े-से-बड़ा शिल्पी भी समझ नहीं सकता, उनकी रचना तो दूर रही, ऐसे सत्ताके ही कार्य हो सकते हैं, जिसका ज्ञान सर्वोपरि है।' (केनोपनिषद्-भाष्य ३ । १)

निर्गुण ब्रह्मके सम्बन्धमें किये गये विलक्षण प्रतिपादनके अन्तर्गत उक्त वाक्यावलीसे हमें यह समझनेमें कठिनाई नहीं होगी कि शंकराचार्यकी दृष्टिमें ईश्वर और ब्रह्मके बीच कोई भेद नहीं है। अपने भगवद्गीताके भाष्यके उपोद्घातमें आचार्यने स्वयं इस बातको पर्याप्तरूपमें स्पष्ट कर दिया है। आचार्य कहते हैं—'ज्ञान, ऐश्वर्य, शक्ति, बल, वीर्य और तेज आदिसे सदा सम्पन्न भगवान् श्रीकृष्ण यद्यपि अज, अविनाशी, सम्पूर्ण भूतोंके ईश्वर और नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्त-स्वभाव हैं, तो भी वे अपनी निर्गुणात्मिका मूल प्रकृति-वैष्णवी मायाको वशमें करके अपनी लीलासे शरीरधारीकी तरह उत्पन्न हुए-से दीखते हैं।' इस प्रकार भगवान् शंकरकी दृष्टिमें 'ब्रह्म' और 'श्रीकृष्ण'में कोई अन्तर नहीं है।

इसी प्रकार गीताके चौथे अध्यायके छठे श्लोककी व्याख्या करते हुए वे श्रीकृष्णके शब्दोंकी इस प्रकार व्याख्या करते हैं:—'यद्यपि मैं अजन्मा—जन्मरहित, अव्ययात्मा, अक्षीण-ज्ञान-शक्ति और ब्रह्मासे लेकर स्तम्बपर्यन्त सम्पूर्ण भूतोंका नियमन करनेवाला ईश्वर हूँ, तो भी अपनी त्रिगुणात्मिका वैष्णवी मायाको, जिसके वशमें सम्पूर्ण जगत् है और जिससे मोहित हुआ मनुष्य वासुदेवरूप अपने स्वरूपको नहीं जानता, उस अपनी प्रकृतिको अपने वशमें रखकर अपनी लीलासे ही शरीरधारीकी भाँति जन्मा हुआ-सा दिखायी देता हूँ, यद्यपि अन्य लोगोंकी भाँति वास्तवमें मैं जन्म नहीं लेता।'

इस प्रकार भगवान् शंकर अवतारवादके सिद्धान्तका पूर्ण समर्थन करते हैं, जो भक्ति-सम्प्रदायोंका मुख्य आधार है और स्पष्ट शब्दोंमें यह कहते हैं कि 'जब धर्म अधर्मके द्वारा अभिभूत हो गया और अधर्मकी वृद्धि हो गयी, उस समय नारायण-नाम-धारी भगवान् विष्णु वसुदेवके द्वारा देवकीके गर्भसे जगत्की मर्यादा-रक्षाके लिये श्रीकृष्णरूपमें अपने अंश (बलरामजी) के सहित प्रकट हुए।'

गीता दशम अध्यायके दसवें श्लोकके 'अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः' इस भगवद्वाक्यकी व्याख्या आचार्य इस प्रकार करते हैं—'मैं श्रीकृष्ण समस्त भूतोंके अन्तर्हृदयमें रहता हूँ और भक्तोंको वहीं मेरा नित्य ध्यान करना चाहिये।'

अतः निर्गुण ब्रह्म और विष्णुरूप सगुण ईश्वरके बीच वही अन्तर है, जो एक सूर्यकी किरणमें और उस सप्तवर्ण प्रकाशमें होता है, जो त्रिगुणमयी मायारूपी त्रिकोण काचखण्ड-के अन्तरालसे व्यक्त होता है।

भगवान् शंकराचार्यके निर्वचनके अनुसार 'विष्णु' शब्द 'विष्लृ' धातुसे 'नुक्' प्रत्यय लगाकर बना है और उसका अर्थ—देश, काल और वस्तुकी सीमासे परे है। अतः शंकरकी दृष्टिमें विष्णुका अर्थ है—एक सर्वव्यापी प्रत्यक्ष सत्ता, न कि व्यक्तिविशेष।

इस निश्चयके कारण कि 'भगवान् नारायण आत्मा अथवा ब्रह्मके अतिरिक्त कोई वस्तु नहीं हैं', भगवान् शंकराचार्यका उनके प्रति दृष्टिकोण यही है कि वे उन्हें अपनी अचिन्त्य मायाशक्तिसे संवलित तथा उसके नियन्ता ब्रह्मके रूपमें निरन्तर देखते हैं। शंकरकी दृष्टिमें उनका स्वरूप विश्वव्यापी है और वे उन्हें मानव अथवा दिव्य रूपमें बहुत कम देखते हैं। अपनी प्रसिद्ध 'हरि-स्तुति'में भगवान् विष्णुके इस विराट्-स्वरूपका वर्णन करते हुए आचार्य कहते हैं कि 'आत्माकी एकताका चिन्तन करनेवाले साधक उनकी परमेश्वरके रूपमें अनुभूति करते हैं, जो परमेश्वर सबके अन्तःकरणमें स्थित रहकर देहको क्रियाशील बनाते हैं, जो सूर्यमें स्थित रहकर उन्हें ताप एवं प्रकाश देते हैं और जो संसाररूपी भ्रमका निराकरण करते हैं'—

योऽयं देहे चेष्टयितान्तःकरणस्थः
सूर्ये चासौ तापयिता सोऽस्म्यहमेव।
इत्यात्मैक्योपासनया यं विदुरीशं
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे॥
(हरिस्तुति ११)

किंतु आचार्य भक्ति-सम्प्रदायके अन्य किसी भी आचार्य-की भाँति भगवत्कृपाकी आवश्यकताका पूर्ण अनुभव करते हुए अपने 'षट्पदी-स्तोत्र'के पाँचवें छन्दमें घोषणा करते हैं—'मैं संसार-तापसे त्रस्त हूँ—वासनाने मुझे जीर्ण-शीर्ण कर दिया है। इस बातपर ध्यान देकर कि मैंने आपकी ही शरण ग्रहण की है, कृपापूर्वक मुझे बचाइये।'

भगवत्कृपा हमपर तबतक नहीं उतरती, जबतक अपने दोषोंका तीव्रतासे अनुभव करते हुए हम पूर्णरूपेण अपनेको उनके चरणोंमें नहीं डाल देते। अतः भगवान्के चरणोंमें अपनेको सर्वभावसे समर्पित करनेकी आवश्यकतापर वे पूरा बल देते हैं। वे कहते हैं—'हे लक्ष्मीनृसिंह! मुझे आप अपनी लंबी भुजाओंका सहारा देकर उबार लें। मैं अंधा हूँ, इन्द्रियरूपी बलवान् डाकुओंने मेरे विवेकरूपी

धनका हरण कर लिया है और उन्होंने मुझे अज्ञानकी अन्धकारमयी गुफामें ढकेल दिया है'—

अन्धस्य मे हृतविवेकमहाधनस्य
चौरैर्महाबलिभिरिन्द्रियनामधेयैः ।
मोहान्धकारकुहरे विनिपातितस्य
लक्ष्मीनृसिंह मम देहि करावलम्बम् ॥
(लक्ष्मीनृसिंहकरुणारसस्तोत्रम् १५)

इस बातको पूरी तरहसे जानते हुए कि अद्वय, निष्कल, अशरीरी एवं चिन्मय ब्रह्म आकार आदि उपाधियोंका ग्रहण इसीलिये करते हैं कि जिससे उपासक सहजमें उनका साक्षात्कार कर सकें—

चिन्मयस्याद्वितीयस्य निष्कलस्याशरीरिणः ।
उपासकानां कार्यार्थं ब्रह्मणो रूपकल्पना ॥
रूपस्थानां ··············· पुंस्त्र्यङ्गाद्यादिकल्पना ।
(रामपूर्वतापिन्युपनिषद् १ । ७-८)

—आचार्य कहते हैं कि ईश्वर अपनी सर्वव्यापकताको निर्बाध रखते हुए आकार ग्रहण कर सकते हैं। 'प्रबोध-सुधाकर' में भगवान् शंकराचार्य इस तत्त्वको दृष्टान्तके द्वारा बड़े सुन्दर ढंगसे समझाते हैं। वे कहते हैं कि 'जैसे आकाशके एकदेशमें स्थित रहते हुए और एक तेजोमय पिण्डके रूपमें दिखायी देनेपर भी सूर्य वास्तवमें सर्वत्र दिखायी देते हैं और एक ही साथ सम्पूर्ण विश्वको उद्भासित करते हैं, उसी प्रकार देखनेमें साकार एवं एकदेशमें स्थित रहते हुए भी ईश्वर वास्तवमें सर्वव्यापक, सर्वात्मा एवं सच्चिदानन्द ब्रह्म बने रहते हैं'—

साक्षाद्यथैकदेशे वर्तुलमुपलभ्यते रवेर्बिम्बम् ।
विश्वं प्रकाशयति तत्सर्वं सर्वत्र दृश्यते युगपत् ॥
यद्यपि साकारोऽयं तथैकदेशी विभाति यदुनाथः ।
सर्वगतः सर्वात्मा तथाप्ययं सच्चिदानन्दः ॥
(प्रबोधसुधाकर १९९-२००)

ईश्वरका आकार उनकी निराकारतामें भी किसी प्रकारकी बाधा नहीं देता। वैज्ञानिक रीतिसे परीक्षित तथ्योंके अनुसार अर्धचेतन अवस्थामें स्थित प्रेत-संदेशवाहक-आत्माओंके अन्तःकरणके माध्यमसे प्रेतात्माओंके सूक्ष्म-शरीर दृष्टिगोचर हो सकते हैं और उन व्यक्त हुए सूक्ष्म शरीरोंके छायाचित्र भी लिये गये हैं। ऐसी स्थितिमें ईश्वरके लिये तो उपासकके अन्तःकरणमें प्रकट होना सर्वथा सम्भवतर होना चाहिये और वे सारे प्रसङ्ग, जिनमें भक्त अपने इष्टदेवके निरन्तर सम्पर्कमें रहे हैं, प्रेतवादके वैज्ञानिक परिपाटीके अनुसार अनुसंधान किये हुए तथ्योंसे पूरा मेल खाते हैं। अतः ईश्वर निश्चय ही साकाररूपमें प्रकट हो सकते हैं।

अतः भगवान् विष्णुके विराट्स्वरूपके बोधमें स्थित रहते हुए भी आचार्य शंकर बहुधा भगवान् विष्णुके सौन्दर्यमय स्वरूपका आस्वादन भी करते पाये जाते हैं। अतएव वे भगवान् विष्णुके विराट्स्वरूपकी महिमाकी भाँति ही श्रीरामके लोकातिशायी स्वरूपकी भी भावविभोर होकर स्तुति करते हैं। 'श्रीरामभुजङ्गस्तोत्र'में आचार्य श्रीरामके स्वरूपका इस रूपमें ध्यान चित्रण करते हैं— 'कल्पवृक्षके नीचे रत्नजटित दिव्य सिंहासनपर वे शान्त-मुद्रासे आसीन हैं। सहस्रों सूर्योंके समान उनका तेज है और श्रीजानकी तथा लक्ष्मण उनके पार्श्वोंमें सुशोभित हैं।' (रामभुजङ्गप्रयातस्तोत्र ४)

'प्रबोध-सुधाकर' में श्लोक १८४ से १९८ तक भगवान् श्रीकृष्णका ध्यान करते समय आचार्य शंकर उनके स्वरूपका जैसा सुन्दर चित्रण करते हैं, उसपर भक्ति-सम्प्रदायके किसी भी कविको गर्व हो सकता है। वे लिखते हैं—'श्रीकृष्णके नेत्र उनके कर्णप्रान्ततक फैले हुए हैं। श्रवणोंमें कुण्डल जगमगा रहे हैं। वदन-कमल-पर मधुरस्मित क्रीड़ा कर रहा है। कौस्तुभमणिसे जगमगाता हुआ रत्नहार गलेमें सुशोभित है। कङ्कण, मुद्रिका आदि आभूषणोंकी शोभा उनके श्रीअङ्गोंके सम्पर्कके कारण कई गुनी हो गयी है। वे गलेमें वनमाला धारण किये हुए हैं और उनके श्रीविग्रहसे फूटती हुई ज्योति कलिके सम्पूर्ण दोषोंका नाश कर देती है।'

आकर्णपूर्णनेत्रं कुण्डलयुगमण्डितश्रवणम् ।
मन्दस्मितमुखकमलं सुकौस्तुभोदारमणिहारम् ॥
वलयाङ्गुलीयकाद्यानुज्ज्वलयन्तं स्वलंकारान् ।
गलविलुलितवनमालं स्वतेजसापास्तकलिकालम् ॥
(प्रबोधसुधाकर १८६-१८७)

इन श्लोकोंमें हमें वही माधुरी देखनेको मिलती है, जो श्रीमद्भागवतपुराणके दशम स्कन्धके अन्तर्गत भगवान् श्रीकृष्णकी शोभाका वर्णन करनेवाले किसी भी श्लोकमें प्राप्त होती है।

दर्शन-शास्त्रका यह एक सर्वमान्य सिद्धान्त है कि नाम और नामी अभिन्न ही नहीं, अपितु सर्वथा एक हैं। अतः भगवन्नाम तत्त्वतः भगवान्से अभिन्न ही नहीं, भगवत्स्वरूप है। यही कारण है कि आचार्य भगवन्नाम-कीर्तनको परम आवश्यक बतलाते हैं; क्योंकि उससे स्वाभाविक ही जापकका मन उसी प्रकार समाहित हो जाता है, जिस प्रकार भगवान् श्रीपतिके स्वरूपका ध्यान करनेवालेका—

'गेयं गीतानामसहस्रं ध्येयं श्रीपतिरूपमजस्रम्॥'

(मोहमुद्गर २७)

और भगवान् गोविन्दकी उपासनासे बढ़कर कलिकलुषके नाशके लिये कोई दूसरी सुनिश्चित औषध नहीं है। अतएव आचार्य उपदेश करते हैं—'भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते।' पुनः आचार्य शंकर, जिनके सम्बन्धमें भ्रान्तिवश यह कहा जाता है कि उन्होंने भक्तिका गला घोंट दिया, अपने आध्यात्मिक उच्चस्तरसे नीचे उतरकर एक बालककी भाँति गायन करने लगते हैं—

अच्युतं केशवं रामनारायणं कृष्णदामोदरं वासुदेवं हरिम्।
श्रीधरं माधवं गोपिकावल्लभं जानकीनायकं रामचन्द्रं भजे॥

(अच्युताष्टकम् १)

अथवा—

'नारायण नारायण जय गोविन्द हरे।
नारायण नारायण जय गोपाल हरे॥

(नारायणस्तोत्र १)

इस प्रकार भगवान् शंकराचार्यके अद्वैत-सम्प्रदायमें नामजप, नाम-संकीर्तन, भगवान् विष्णुकी प्रेमपूर्वक पूजा और उनके ध्यानका उतना ही बड़ा स्थान है, जितना किसी अन्य वैष्णव-सम्प्रदायमें। संक्षेपमें आचार्यकी भगवान् विष्णुके सम्बन्धमें धारणा यह है कि "परतत्त्वकी जब ज्ञानके द्वारा अनुभूति होती है, तब उसका नाम होता है—निर्गुण ब्रह्म; और जब भावके द्वारा उनका साक्षात्कार होता है, तब उसे 'विष्णु'की संज्ञा दी जाती है।" आचार्य शंकरकी विष्णुभक्तिका दिग्दर्शन करानेके लिये हम उनके 'प्रबोध-सुधाकर'के निम्नलिखित श्लोकको उद्धृत करना ही सर्वोत्तम साधन समझते हैं, जिसमें वे कहते हैं—'कर्म अथवा योगके परायण लोग क्षणिक भोगों एवं स्वर्गादि अनित्य फलोंकी कामना करते हैं; परंतु जिनका चित्त भगवान् यदुनाथके चरणोंके ध्यानमें निरन्तर लीन है, उन्हें इस लोक, स्वर्ग अथवा मुक्तिसे भी क्या प्रयोजन है'—

काम्योपासनयार्थयन्त्यनुदिनं किंचित्फलं स्वेप्सितं
किंचित्स्वर्गमथापवर्गमपरैर्योगादियज्ञादिभिः।
अस्माकं यदुनन्दनाङ्घ्रियुगलध्यानावधानार्थिनां
किं लोकेन दमेन किं नृपतिना स्वर्गापवर्गैश्च किम्॥*

(२५०)

भगवती तुलसीदेवीकी उपासना

तुलसीं पुष्पसारां च सतीं पूतां मनोहराम्। कृतपापेध्मदाहाय ज्वलदग्निशिखोपमाम्॥
पुष्पेषु तुलना यस्या नास्ति वेदेषु भाषितम्। पवित्ररूपा सर्वासु तुलसी सा च कीर्तिता॥
शिरोधार्यां च सर्वेषामीप्सिता विश्वपावनी। जीवन्मुक्तां मुक्तिदां च भजे तां हरिभक्तिदाम्॥

"परम साध्वी तुलसी-मञ्जरी पुष्पोंमें श्रेष्ठ हैं। इनका सम्पूर्ण मनोहर अङ्ग पवित्र है। किये हुए पापरूपी काष्ठको भस्म करनेके लिये ये धधकती हुई अग्निकी लपटके समान हैं। पुष्पोंमें किसीसे भी तुलसी-मञ्जरीकी तुलना नहीं की जा सकती, यह बात वेदोंमें कही गयी है। सभी अवस्थाओंमें ये पवित्रतामयी बनी रहती हैं। 'तुलसी' नामसे इनकी प्रसिद्धि है। भगवान् इन्हें अपने मस्तकपर धारण करते हैं। सभीको इन्हें पानेकी इच्छा बनी रहती है। विश्वको पवित्र करनेवाली ये देवी नित्यमुक्ता हैं। मुक्ति और भगवान् श्रीहरिकी भक्ति प्रदान करना इनका सहज गुण है। ऐसी भगवती तुलसीकी मैं उपासना करता हूँ।"

(श्रीमद्देवीभागवत ९। २५। ४२—४३)

---

* शंकराचार्यके द्वारा रचित स्तोत्रों आदिकी प्रामाणिकताके सम्बन्धमें विद्वानोंमें बहुत मतभेद है—यहाँतक कि 'विष्णुसहस्रनाम-भाष्य' और 'प्रबोध-सुधाकर' भी उनके द्वारा रचित नहीं माने जाते। श्रीशंकराचार्यके नामसे प्रचलित कुछ ग्रन्थ वास्तवमें प्रक्षिप्त हैं, परंतु जो उद्धरण हमने ऊपर इस निबन्धमें दिये हैं, वे सब-के-सब वाणीविलास प्रेस, श्रीरङ्गम् और अष्टेकर (पूना) के खोजपूर्ण संस्करणोंसे लिये गये हैं, जिनका दावा है कि उन्होंने आचार्य शंकरके प्रामाणिक ग्रन्थोंका ही उनमें समावेश किया है। —लेखक

श्रीवैष्णव-सम्प्रदायकी झाँकी

(लेखक—डॉ० श्रीनिखिलेशजी शास्त्री, एम्० ए०, एम्० लिट्०, पी-एच्० डी०)

वैष्णव-धर्मके उद्गमस्थान हैं—अनन्तकल्याणगुणनिकेतन भगवान् नारायण। वैष्णव-धर्मके चार प्रसिद्ध सम्प्रदाय हैं—(१) श्रीसम्प्रदाय, (२) ब्रह्म-सम्प्रदाय, (३) रुद्र-सम्प्रदाय और (४) सनक-सम्प्रदाय। इनमें श्रीसम्प्रदायके प्रवर्तक श्रीरामानुज, ब्रह्म-सम्प्रदायके श्रीमध्वाचार्य, रुद्र-सम्प्रदायके श्रीविष्णुस्वामी तथा सनक-सम्प्रदायके श्रीनिम्बार्क माने गये हैं।[1] वैष्णव-धर्मके इन सम्प्रदायोंमें 'श्रीसम्प्रदाय' ही सबसे पुरातन है। इसके अनुयायी 'श्रीवैष्णव' कहलाते हैं। इन अनुयायियोंकी मान्यता है कि भगवान् नारायणने अपनी शक्ति श्री (लक्ष्मी) को अध्यात्मज्ञान प्रदान किया। तदुपरान्त लक्ष्मीने यही अध्यात्मज्ञान विष्वक्सेनको और विष्वक्सेनने नम्माळवारको दिया। इसी आचार्य-परम्परासे कालान्तरमें श्रीरामानुजने वह अध्यात्मज्ञान प्राप्त किया। इसके फलस्वरूप श्रीरामानुजने 'श्रीवैष्णव'मतको प्रतिष्ठापित कर इसका प्रचार किया।

ईसाकी सातवीं शताब्दी (?) में दक्षिण भारतके तमिळ प्रान्तमें श्रीवैष्णव-मतके अनुयायी संतोंकी संख्यामें क्रमशः वृद्धि होने लगी। 'उपदेशरत्नमाला' में उल्लेख है कि श्रीरङ्गनाथ-भगवान्ने इन भक्तोंको 'आळवार' की संज्ञा दी। वस्तुतः 'आळवार' तमिळ भाषाका शब्द है, जिसका अर्थ है—'भक्ति-सागरमें निमग्न होनेवाला'। ये आळवार भगवान् नारायणके सच्चे भक्त थे और सभी स्वतन्त्ररूपसे अपना भक्तिमय जीवन बिताते रहे। इन आळवारोंने ७वींसे ९वीं शताब्दी-तक अपने अथक परिश्रमसे भक्तिको दृढमूल बनाकर श्रीवैष्णव-सम्प्रदायका प्रसार किया।

दशम शताब्दीमें इस सम्प्रदायके आचार्योंने आळवारोंकी भक्तिके अनुरूप अनेक धार्मिक एवं दार्शनिक ग्रन्थोंकी रचना की। इन आचार्योंकी परम्परामें निम्ननिर्दिष्ट आचार्य प्रमुख हैं, जिन्होंने श्रीवैष्णव-सम्प्रदायके विकासमें महत्त्वपूर्ण सहयोग दिया—

(१) **नाथमुनि** (८२४-९२४ ई०)—नाथमुनि श्रीवैष्णव-सम्प्रदायके आद्य आचार्य हुए। इन्होंने लुप्त 'तमिळ वेद' का पुनरुद्धार किया तथा सुप्रसिद्ध श्रीरङ्ग-मन्दिरमें इस वेदके गायनकी परम्परा स्थापित की। इनके द्वारा रचित 'न्यायतत्त्व' विशिष्टाद्वैतका प्रथम ग्रन्थ कहा जाता है।

(२) **श्रीयामुनाचार्य** (९१८-१०३८)—श्रीयामुनाचार्य श्रीनाथमुनिके पौत्र थे। ये अपने समयमें 'आळवन्दार' के नामसे विख्यात थे। कहा जाता है कि ये कुछ समयके लिये राज्यपदपर आसीन रहे; किंतु नम्माळवारके भक्तिमय पद्योंका अनुशीलन करनेके पश्चात् इनमें भगवान् नारायणके प्रति असीम भक्ति उद्बुद्ध हुई, जिसके परिणामस्वरूप श्रीयामुनने अपना सर्वस्व त्यागकर श्रीवैष्णव-सम्प्रदायको अङ्गीकार किया। अपने जीवनकालमें इन्होंने छः पाण्डित्यपूर्ण ग्रन्थोंका निर्माण किया, जिनमें 'गीतार्थ-संग्रह', 'श्रीचतुःश्लोकी', 'सिद्धित्रय', 'महापुरुषनिर्णय' (विष्णुकी श्रेष्ठताका प्रतिपादन), 'आगमप्रामाण्य' (पञ्चरात्रका विवेचन) एवं 'आळवन्दार-स्तोत्र' हैं। श्रीयामुनाचार्यजीकी इन कृतियोंमें भक्ति-भावनासे ओत-प्रोत 'आळवन्दारस्तोत्र' वैष्णव-जगत्में अत्यन्त मान्य है।

(३) **श्रीरामानुजाचार्य** (१०१७—११३७ ई०)—श्रीयामुनके पश्चात् श्रीरामानुजने श्रीवैष्णव-सम्प्रदायका आचार्य-पद ग्रहण किया। इनके जीवन-वृत्तान्तके विषयमें विश्रुत है कि इनका जन्म मद्रासके निकट 'श्रीपेरूम्बुदूर' में हुआ। आप परम्परासे वैष्णव थे और इसी कारण चोळ-नरेशके अत्याचारोंके कारण श्रीरङ्गक्षेत्र छोड़कर मैसूर प्रान्तमें चले गये। सन् ११०० ई०के लगभग इन्होंने 'ब्रह्मसूत्र'पर विशिष्टाद्वैतमतानुसारी 'श्रीभाष्य' की रचना कर, पुराण-रत्न विष्णुमहापुराणके प्रणेता श्रीपराशरमुनिके नामके प्रसारकी इच्छासे अपने भावी उत्तराधिकारी कूरेशके पुत्रका जातकर्म स्वयं करते समय 'पराशर' नाम देकर एवं नम्माळवारके 'तिरुवायमोळि' पर अपने मातुल-पुत्र कूरेशद्वारा तमिळ भाष्यका निर्माण करवाकर श्रीयामुनाचार्यके तीनों मनोरथोंकी पूर्ति की। इसके अतिरिक्त श्रीरामानुजने 'वेदार्थ-संग्रह', 'वेदार्थ-दीप', 'वेदान्तसार' एवं 'श्रीमद्भगवद्गीता-भाष्य'-

---

1. रामानुजं श्रीः स्वीचक्रे मध्वाचार्यं चतुर्मुखः।
श्रीविष्णुस्वामिनं रुद्रो निम्बादित्यं चतुस्सनः॥
(पद्मपुराण)

की रचना की । श्रीरामानुजकी इन सभी कृतियोंमें 'श्रीभाष्य' सर्वाधिक पाण्डित्यपूर्ण कृति है, जिसमें विशिष्टाद्वैतके सिद्धान्तका प्रतिपादन किया गया है ।

(४) श्रीवेदान्तदेशिकाचार्य (१२६८-१३६९ ई०)—श्रीवैष्णव-सम्प्रदायके आचार्योंमें श्रीवेदान्तदेशिक भी उल्लेखनीय हैं । इनके काव्यग्रन्थोंमें 'यादवाभ्युदय', 'पादुकासहस्र' आदि तथा दार्शनिक ग्रन्थोंमें 'तत्त्वटीका', 'न्यायपरिशुद्धि' एवं 'न्याय-सिद्धाञ्जन' अनुपम ग्रन्थ हैं । ये 'वडकलै (औदीच्य) मत'के आचार्य थे ।

(५) श्रीलोकाचार्य (१३२७ ई०)—श्रीलोकाचार्य श्रीवैष्णव-सम्प्रदायके 'तेन्कलै (दाक्षिणात्य) मत'के प्रवर्तक थे । इन्होंने १६ ग्रन्थोंका निर्माण किया, जिनमें 'श्रीवचन-भूषण', 'तत्त्वत्रय' तथा 'तत्त्वशेखर' परम महत्त्वपूर्ण कृतियाँ हैं ।

श्रीवैष्णव-सम्प्रदायके इन आचार्योंमें श्रीरामानुज ही सर्वसम्मानित आचार्य हैं । इन्होंने 'विशिष्टाद्वैत-मत'की स्थापना कर वैष्णव-दर्शनमें एक नवीन धारा प्रवाहित की । भगवान् श्रीरामानुजने अपने इस सिद्धान्तमें तीन तत्त्वोंको माना है—चित्, अचित् एवं ईश्वर । इनमें 'चित्'का अर्थ है—जीव, 'अचित्'का अर्थ है—प्रकृति या जड-तत्त्व तथा अन्तर्यामी तत्त्वको 'ईश्वर' कहा गया है । यह ईश्वर चित् एवं अचित्—इन दोनों तत्त्वोंसे विशिष्ट होता है तथा चित् एवं अचित्—दोनों ईश्वरके अधीन हैं । यहाँ ईश्वर प्रधान है, वह नियामक है; अतः ईश्वर 'शेषी' कहलाता है । इसके विपरीत जीव एवं जगत् गौण हैं, नियाम्य हैं, अतः ये 'शेष' कहे जाते हैं । इस प्रकार ईश्वर एवं चिदचिद्के बीच 'शेष-शेषी'-भाव सिद्ध है ।

जब प्रलयावस्थामें जीव एवं जगत् सूक्ष्मरूपापन्न होते हैं, तब ईश्वर इनकी सूक्ष्मावस्था अपनेमें धारण कर लेता है । ऐसी अवस्थामें ईश्वर 'सूक्ष्मचिदचिद्विशिष्ट' रहता है । इस स्थितिमें इसे 'कारणावस्थ ब्रह्म' कहते हैं । इसी प्रकार सृष्टि-कालमें स्थूलरूप धारण करनेपर 'स्थूलचिदचिद्विशिष्ट' होकर ईश्वर 'कार्यावस्थ ब्रह्म' कहलाता है । अतः श्रीरामानुजके सिद्धान्तमें ब्रह्म प्रलयावस्थामें एवं सृष्टिकालमें भी चित् एवं अचित्से विशिष्ट रहता है । इसी विशिष्टताके कारण इस सिद्धान्तको 'विशिष्टाद्वैत' कहा गया है—

[विशिष्टं (सूक्ष्मचिद्विशिष्टं) च विशिष्टं (स्थूलचिद्विशिष्टं) च इति विशिष्टे, विशिष्टयोः अद्वैतम् (एकस्मिन् श्रीमन्नारायणे ब्रह्मणि) इति विशिष्टाद्वैतम् ।

यहाँ 'विशिष्ट अर्थात् चित्-अचित्से विशिष्ट ब्रह्म ही अद्वैत' सिद्धान्तरूपसे स्वीकृत है; इसीलिये रामानुज-वेदान्त 'विशिष्टाद्वैत-दर्शन'के नामसे प्रख्यात है । विशिष्टाद्वैतका अर्थ इन शब्दोंमें व्यक्त किया गया है—

'वस्त्वन्तरविशिष्टस्यैव अद्वितीयत्वं श्रुत्यभिप्रायः सूक्ष्मचिदचिद्विशिष्टस्यैव अद्वितीयत्वं सिद्धम् ।'

श्रीरामानुज-दर्शनमें सृष्टि, जीव-जगत्, ईश्वर एवं मोक्ष आदिकी मीमांसा मुख्यतः उपनिषदोंके सिद्धान्तोंपर आधारित है । सृष्टिके विषयमें श्रीरामानुज श्वेताश्वतर-उपनिषद्में वर्णित प्रकृतिको स्वीकार करते हैं । वे मानते हैं कि 'प्रकृति एक है, अनादि (अजा) है, ईश्वरका एक अंश है तथा ईश्वरद्वारा संचालित है । अतः ईश्वर इस जगत्का निमित्तकारण है तथा उपादानकारण भी है'—(**स्थूलसूक्ष्मचिदचित्प्रकारकं ब्रह्मैव कारणं चेति ब्रह्मोपादानं जगत् ।—श्रीभाष्य**) यह सिद्धान्त सगुण ब्रह्मका उपासक है, जिसमें ईश्वर-तत्त्व वैकुण्ठाधिवासी शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधारी, भू-नीला-महालक्ष्मीके स्वामी, सर्वज्ञ, समस्त कल्याणगुणसे सम्पन्न श्रीमन्नारायण हैं ।

श्रीरामानुजकी मान्यता है कि जीव नियाम्य है, ब्रह्म नियामक; जीव आधेय है, ब्रह्म आधार । ऐसी स्थितिमें जीव ईश्वरपर पूर्णतया आश्रित है तथा ईश्वरकी शरणमें गये बिना जीवका कल्याण नहीं है । वह ईश्वर अशेष गुणोंका आकर है, दयाका सागर है । अतः दुःखत्रयसे पीड़ित जीवके लिये ईश्वर ही एकमात्र शरण्य है । एतावता श्रीरामानुजके मतमें 'शरणागति' या 'प्रपत्ति'—अर्थात् भगवान् नारायणकी शरणमें जाना ही जीवकी आध्यात्मिक उन्नतिका सर्वश्रेष्ठ साधन है । भक्त करुणाकर भगवान्के समक्ष निष्कपटभावसे यह प्रार्थना करता है कि 'मैं समस्त अपराधोंका आलय हूँ, अकिंचन तथा निराश्रय हूँ । अतः आप ही केवल मेरी मुक्तिके उपाय हों ।'—शरणागतिका यही भाव 'अहिर्बुध्न्यसंहिता'में संगृहीत है—

> अहमस्म्यपराधानामालयोऽकिंचनोऽगतिः ।
> त्वमेवोपायभूतो मे भवेति प्रार्थनामतिः ।
> शरणागतिरित्युक्ता सा देवेऽस्मिन् प्रयुज्यताम् ॥
>
> (अहि० ३७ । ३१)

भगवान्‌की अनुग्रहात्मिका शक्ति जीवके सकल क्लेशोंकी मुक्तिका उपाय है, अतः भगवान्‌के शरण जाना ही भक्ति-योगका सर्वोपरि सोपान है। यही 'शरणागति' है, यही 'प्रपत्ति' है। किंतु श्रीरामानुजने अपने गीता-भाष्यमें कर्मत्याग एवं वर्णाश्रमोचित कर्मानुष्ठानकी चर्चा की है। मोक्षोपायके लिये कर्मानुष्ठान करते रहना चाहिये अथवा पूर्णरूपसे कर्मानुष्ठानको त्यागकर अपने-आपको भगवान्‌की शरणमें सौंप देना चाहिये—इस प्रश्नको लेकर श्रीवैष्णव-मतके आचार्योंमें एक महत्त्वपूर्ण मतभेद हो गया।

श्रीरामानुजके लगभग सौ वर्ष पश्चात् ही इस मतभेदके आधारपर श्रीवैष्णवोंमें दो स्वतन्त्र मतोंका आविर्भाव हुआ। इनमेंसे एक मत 'तमिळ-वेद'को प्रामाणिक मानता था तथा दूसरा मत 'तमिळ-वेद' एवं संस्कृत-ग्रन्थोंमें तुल्य आस्था रखता था। प्रथम पक्षके अनुयायी 'तेन्कलै' (दक्षिणके) तथा दूसरे पक्षके 'वडकलै' (उत्तरके) कहे जाते थे। मोक्षोपायके सम्बन्धमें 'तेन्कलै'का मत है कि 'इसके लिये जीवको कर्म करनेकी आवश्यकता नहीं रहती, वह भगवान्‌की शरणमें स्वयंको समर्पित कर देता है और नारायण ही उसकी सुरक्षा करते हैं।' इस मतकी स्थापनामें वे दृष्टान्त देते हैं कि 'जिस प्रकार मार्जार-शावक (बिल्लीका बच्चा) अपनी माताके सामने निश्चेष्ट रहता है और मार्जारी स्वयं क्रियाहीन शरणागत शावककी रक्षा करती है, उसी प्रकार ईश्वर भी क्रियाहीन शरणागत भक्तोंकी रक्षा करते हैं।'

इसके विपरीत 'वडकलै'-मतका दृष्टिकोण यह है कि 'भक्तोंको शरणागतिमें भी सक्रिय रहना चाहिये। जिस प्रकार कपि-शावक शरणागत होनेपर भी अपनी माताके पेटको जोरसे पकड़े रहता है, तभी माता उसकी सुरक्षा कर पाती है।' 'वडकलै'-मतानुसार भक्तको शरणागतिकी अवस्थामें भी कर्मानुष्ठानमें संलग्न रहना चाहिये। ये दो मार्ग क्रमशः 'मार्जार-न्याय' एवं 'मर्कट-न्याय'के नामसे प्रसिद्ध हैं।

वस्तुतः उपर्युक्त विवाद होते हुए भी दोनों मतोंका यही सिद्धान्त है कि मोक्षके लिये भगवान् नारायणकी अनुकम्पा होनी चाहिये। अतः भक्तको भक्ति-भावसे भगवच्चरणारविन्द-के शरणागत हो जाना चाहिये। श्रीयामुनाचार्यने 'आळवन्दार-स्तोत्र'के अन्तर्गत अत्यन्त सरस शब्दोंमें इसी 'शरणागति'-तत्त्वका प्रतिपादन करते हुए आनन्दस्वरूप नारायणके चरणारविन्दोंमें स्वयंको अर्पित किया है—

न धर्मनिष्ठोऽस्मि न चात्मवेदी न भक्तिमांस्त्वच्चरणारविन्दे।
अकिंचनोऽनन्यगतिः शरण्यं त्वत्पादमूलं शरणं प्रपद्ये॥
(२२)

'मैं न धर्मनिष्ठ हूँ, न आत्मज्ञानी हूँ और न आपके चरणोंमें मेरी भक्ति ही है; मेरे पास अपनी कहनेके लिये कुछ भी नहीं है। अतएव मैं शरणागत-रक्षक आपके चरण-कमलोंकी शरणमें आया हूँ।'

यहाँ भक्त स्वयंको 'अकिंचन' एवं 'अनन्यगति' कहकर भगवान् नारायणकी शरणको अङ्गीकार करते हैं और नारायण भक्तोंकी अनन्य भक्तिसे प्रसन्न होकर उनपर कृपा करते हैं। तत्फलस्वरूप देहसे मुक्त होनेपर भक्त भगवत्सांनिध्यमें रहता हुआ 'न स पुनरावर्तते, न स पुनरावर्तते'—इस श्रुतिवचनानुसार पुनर्जन्मको प्राप्त नहीं होता और नित्य-मुक्त-शुद्ध-बुद्ध-स्वभाव होकर, वैकुण्ठमें अत्यन्त करुणाकर श्रीभगवान् नारायणके नित्यसांनिध्यमें कैंकर्य-निरत हो, सदा 'सायुज्य'का अलौकिक आनन्द प्राप्त करता है।

विष्णु-भक्तकी महिमा

सर्वे धन्यतमा ज्ञेया विष्णुभक्तिपरायणाः। तेषां दर्शनमात्रेण महापापात् प्रमुच्यते॥
उपपातकानि सर्वाणि महान्ति पातकानि च। तानि सर्वाणि नश्यन्ति वैष्णवानां च दर्शनात्॥
पावका इव दीप्यन्ते ये नरा वैष्णवा भुवि। विमुक्ताः सर्वपापेभ्यो मेघेभ्य इव चन्द्रमाः॥
संसारकर्दमालेपप्रक्षालनविशारदः। पावनः पावनानां च विष्णुभक्तो न संशयः॥

(पद्मपुराण, उत्तर० १३१। १७—१९, २३)

'जो विष्णुभक्तिपरायण हैं, उन सबको धन्यतम जानना चाहिये। उनके दर्शनमात्रसे महान् पापोंसे छुटकारा हो जाता है। जितने उपपातक और महापातक हैं, सब वैष्णवके दर्शनसे ही नष्ट हो जाते हैं। पृथ्वीमें वैष्णवगण अग्निकी भाँति देदीप्यमान हैं, वे मेघमुक्त चन्द्रमाकी भाँति समस्त पापोंसे मुक्त रहते हैं।'……'भगवान्‌का भक्त संसाररूप कीचड़के लेपको धोनेमें बड़ा निपुण होता है और पवित्रोंको भी पवित्र कर देता है—इसमें संदेह नहीं है।

श्रीरामानन्द-सम्प्रदायमें श्रीविष्णुभगवान्

(लेखक—श्रीअवधकिशोरदासजी श्रीवैष्णव, 'प्रेमनिधि')

अनन्तनामधेयाय सर्वाकारविधायिने ।
समस्तमन्त्रवाच्याय विश्वैकपतये नमः ॥

'जिनके अनन्तानन्त मङ्गलमय नाम हैं, अनन्त दिव्य विग्रह जिनके पावन स्वरूप हैं, समस्त मन्त्रसमूहवाच्य परात्पर परब्रह्म विश्वके एकमात्र प्रभु उन श्रीरामको मैं प्रणाम करता हूँ ।'

अनन्तानन्तकोटि ब्रह्माण्डोंका नायक तो एक ही परब्रह्म है, उपासकोंकी अभीष्टपूर्तिके लिये वह नाना रूप धारण करता है—'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति' (ऋग्वेद १ । १६४ । ४६) । एककी ही श्रीराम-कृष्ण-नारायणादि स्वरूपोंसे वैष्णव आराधना करते हैं । प्रेमपरवश प्रभु उपासकोंपर अनुग्रह करके जिस रूपमें भक्तजन उन्हें भजते हैं, उसी स्वरूपमें अपना प्रियत्व-परत्व-आत्मीयत्व प्रकटकर भक्तको कृतार्थ कर देते हैं ।

प्रभुके किसी स्वरूपको छोटा-बड़ा कहना अपराध ही है,—'को बड़ छोट कहत अपराधू ।' तथापि प्रेम-रस-वृद्धिके लिये लीला-गुण-विकासके तारतम्यसे भगवत्स्वरूपोंमें भक्तोंने तारतम्य माना है तथा शास्त्र एवं संहिताओंने भी ऐसा ही निरूपण किया है ।

वैष्णव-सम्प्रदायोंमें श्रीरामानन्द-सम्प्रदायका उदारभाव सुप्रसिद्ध है । 'प्रसङ्गपारिजात' में ऐसे कई प्रसङ्ग उल्लिखित हैं, जिनमें आचार्य श्रीरामानन्द स्वामीने साधकोंको उनकी उपासना-पद्धतिके अनुकूल ही परमतत्त्वका साक्षात्कार करा दिया । हिंदू-जातिमें परस्पर भेद-भाव मिटाकर अटूट प्रेमकी स्थापना करना तथा अपने इष्टके प्रति अनन्य रहकर सबमें समभाव रखना ही श्रीरामानन्दाचार्यके उपदेशोंका सारतत्त्व है । यही कारण है कि अन्य वैष्णवोंमें श्रीरामानन्दीय दूधमें मिश्रीकी भाँति ऐसे घुल-मिल गये कि आज उसका विश्लेषण करनेमें बड़े-बड़े ऐतिहासिक अपनेको असमर्थ पाते हैं ।

भक्तमालमें श्रीनाभा स्वामीजीने सभी भक्तोंको ऐसा गूँथा है कि पढ़नेवाले तो उनकी भावनापर ही निछावर हो जाते हैं । श्रीरामानन्दाचार्यकी प्रशिष्या मीराँबाई गिरधर-गोपालजीपर ऐसी बिक गयीं कि उनको श्रीरैदासजीकी शिष्या समझना भी कठिन हो गया है । गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीका सारा साहित्य अपने इष्टदेवके परत्वकी विजय-पताका फहराते हुए भी कहीं भेद-भावका स्पर्श भी नहीं करने देता । यही इस सम्प्रदायकी विशिष्टता है ।

भक्ति-ज्ञान-दुर्बल पक्षपाती, अंशांशिभावको न समझकर व्यर्थ ही श्रीराममें न्यूनत्व दिखाकर श्रीरामभक्तोंके हृदयमें क्षोभ उत्पन्न करना चाहते हैं । तब ये समुचित उत्तर देनेसे भी नहीं चूकते । इसीलिये श्रीराम तथा विष्णु एवं श्रीराम तथा श्रीकृष्णको लेकर कई ग्रन्थोंका निर्माण हुआ तथा उनमें शास्त्रीय पद्धतिसे शङ्काका समाधान भी किया गया है । 'कल्याण'के सुधी पाठकोंको उन्हीं ग्रन्थोंमेंसे दो-चार उद्धरण देकर जिज्ञासा-परितृप्तिका इस लेखमें प्रयत्न किया गया है । हमारे आचार्योंका उपदेश है—

तोरि-तारि ऐंचि-तानि, श्रुती को न मीजिये ।
जामें रस बन्योइ रहै, सोइ अरथ कीजिये ॥
(श्रीदेवस्वामीकृत 'वैराग्य-प्रदीप')

श्रीमद्भागवतके **'एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम् ।'** (१ । ३ । २८)—इस वाक्यको लेकर जहाँ कई लोग श्रीराममें बारह कलाएँ तथा श्रीकृष्णमें सोलह कलाएँ दिखाकर भेद-भाव उत्पन्न करते हैं । वहाँ हमारे आचार्य—

'पुंसः परब्रह्मश्रीरामचन्द्रस्य एते चांशकलाः । श्रीकृष्णस्तु स्वयं भगवान् श्रीराम एव ॥'

'परब्रह्म प्रभु श्रीरामके उपर्युक्त सभी अवतार अंशकला-कोटिमें हैं, परंतु श्रीकृष्णप्रभु तो स्वयं भगवान् श्रीराम ही हैं ।' इस भावमें दोनों अवतारोंमें कैसा विलक्षण प्रियत्व प्रकट किया गया है, पाठक स्वयं विचारें ।

श्रीरामानन्दाचार्यजीके कृपापात्र शिष्य श्रीकबीरजी कहते हैं—

बलिहारी वा दूध की जामें निकसे घीव ।
आधी साखि कबीर की, चार बेद का जीव ॥
(कबीरसाखी १३०)

जैसे एक स्वर्णको जान लेनेपर, सभी आभरण स्वर्णके ही हैं—यह जाननेमें विलम्ब नहीं लगता; वैसे ही एक श्रीरामरूपका ज्ञान हो जानेपर, सभी रूप उसीके हैं—यह समझनेमें देर नहीं लगती । इसलिये उस दूधका बिलोना ठीक है,

जिसमें प्रेमामृत-रस घृत निकले। विवादको बिलोनेसे तो वैररूप विष ही निकलता है। श्रीकबीरजीकी यह आधी साखी चारों वेदोंका प्राण है, सार है। इसलिये श्रीरामानन्दाचार्यजीने अपने ग्रन्थका नाम **'श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर'** रखा तथा उसमें श्रीरामनवमी-श्रीकृष्णाष्टमी-श्रीनृसिंहजयन्ती तथा श्रीवामनद्वादशी आदि सभी श्रीवैष्णव-व्रतोत्सवोंका विधान किया है।

श्रीरामानन्दाचार्यजी और विष्णुभगवान्

आपने **'महात्मभिर्विष्णुपरायणैरपि', 'अस्त्येव तद्विष्णु-कृपोपलभ्यते', 'विष्णोरचिन्त्याखिलवैभवस्य वै'** आदि वाक्य श्रीरामकृपा, श्रीरामपरायण तथा श्रीराम-वैभवके वर्णनमें दिये हैं। श्रीरामनवमी-प्रकरणमें—

'जातोऽत्र रामः स्वयमेव विष्णुः' (वै० म० भा० ७८)

'अत्रास्मिन्भूतले स्वयमेव विष्णुः श्रीरामो जातोऽवतीर्णः'—इस भूतलमें स्वयं विष्णु ही श्रीरामरूपमें अवतीर्ण हुए हैं', कहा गया है।

पाठकोंको यह स्मरण रखना चाहिये कि परविष्णु, महाविष्णु, स्वयं-विष्णु, सनातन विष्णु, साक्षात्-विष्णु आदि विशेषणविशिष्ट नाम परब्रह्म श्रीरामके ही वाचक हैं तथा पञ्चदेव-त्रिदेवान्तर्गत सत्त्वगुणाभिमानी एक ब्रह्माण्डके नायक विष्णु श्रीरामकी विभूति हैं, अंश हैं। किंतु अंश होते हुए भी वे अपनी सम्पूर्ण सत्ता लेकर हैं।

ये श्रीरामके अभिन्नांश हैं तथा अभिन्नांश हृदय-मस्तिष्कवत् **'दीपादुत्पन्नदीपवत्'** माने गये हैं। स्कन्द-पुराणकी श्रीरामगीतामें स्वयं श्रीविष्णुने कहा है—**'अहं ते हृदयं राम'** (अ० २। १०)। जब ये श्रीरामके हृदय ही हैं, तब विष्णुको प्रसन्न करना श्रीरामके हृदयको ही रिझाना हो जाता है।

अभिन्नांशतामें प्रमाण पं० श्रीसरयूदासजी 'वीरवैष्णव' ने 'श्रीविश्वम्भरोपनिषद्'की टीकामें यह दिया है कि नीलाम्बुज-श्यामता, भृगुलता तथा तुलसी-प्रियता प्रभुके सभी स्वरूपोंमें तथा अवतारोंमें समभावसे प्रकट हैं। इसलिये एककी आराधनासे सबकी आराधना तथा एकके अपमानसे सबका अपमान हो जाना स्वाभाविक है। इसलिये श्रीराम-भक्तोंने श्रीनिवास, श्रीरङ्ग, मुकुन्द, माधव, गोविन्द, नारायण, हरि, कृष्ण, गोपाल, विष्णु आदि प्रभुके सब नामोंका यथोचित सम्मान करते हुए अपने ग्रन्थोंमें श्रीराम-वैभवका वर्णन किया है।

श्रीमहाविष्णु श्रीरामके ही स्वरूप हैं

'चिन्मयेऽस्मिन्महाविष्णौ जाते दशरथे हरौ।'

(श्रीरामपूर्वतापनीयोपनिषद् १। १)

'श्रीहरि सच्चिदानन्द महाविष्णु श्रीराम ही दशरथकुमार होकर प्रकट हुए हैं।' **'वन्देऽहं तमशेषकारणपरं रामाख्यमीशं हरिम्'** कहकर श्रीरामचरितमानस (१। ६ श्लोक) में भी यही भाव व्यक्त किया गया है।

महाविष्णुर्महेशानः शिवो नारायणो हरिः।
वासुदेवो महादेवस्तं रामं प्रणमाम्यहम्॥

(श्रीहरिहरप्रसादकृत 'श्रीरामतत्त्वभास्कर')

इसमें भी 'महाविष्णु, महेश्वर, नारायण, हरि, वासुदेव, शिव, महादेव—ये सभी जिनके स्वरूप हैं, उन श्रीरामको मैं प्रणाम करता हूँ', यों कहा गया है।

श्रीजानकीभाष्यकार श्रीरामप्रसादाचार्यजी महाराज कहते हैं—

श्रीरामस्य द्विधा रूपे द्विभुजश्च चतुर्भुजः।
चतुर्भुजश्च वैकुण्ठे साकेते द्विभुजः स्वयम्॥

(धर्मशिक्षापत्री ११९)

'श्रीरामके दो स्वरूप प्रसिद्ध हैं—द्विभुज तथा चतुर्भुज; वैकुण्ठमें चतुर्भुज तथा साकेतमें स्वयं सनातन द्विभुज स्वरूपसे विराजते हैं।' श्रीरामानन्द-सम्प्रदाय भगवान् विष्णुके द्विभुज स्वरूपका उपासक है तथा नररूपधारी श्रीरामको ही अपना उपास्य मानता है। वाल्मीकि-रामायणके उपसंहारमें—

'आत्मानं मानुषं मन्ये रामं दशरथात्मजम्।'

(युद्धकाण्ड, सर्ग ११७। ११)

—वाक्यके अनुसार स्वयं श्रीराम अपनेको मनुष्यरूप—**'परात्मा नराकृतिः'** (अनन्तसंहिता) अथवा नित्य सनातन मानव मानते हैं। 'यहाँ लोकव्यवहारार्थ अथवा देवताओंके प्रति नम्रता दिखानेके लिये ऐसी बात कही गयी है—यह मान लेनेसे स्वयं विग्रहवान् धर्म श्रीरामपर मिथ्या-भाषण तथा दम्भाचरणका दोष आ जायगा। इसलिये यह यथार्थ वाक्य ही मानना चाहिये।' यह भाव श्रीस्वामी युगलानन्यशरणजी महाराजने 'श्रीरघुवर-गुणदर्पण' में पृ० ६० से ६३ तक विस्तारपूर्वक समझाया है। श्रीरामानन्दाचार्यजीने भी—

द्विभुजस्यैव रामस्य सर्वशक्तेः प्रियोत्तम ।
ध्यानमेवं विधातव्यं सदा रामपरायणैः ॥
(श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर)

'हे प्रियवर ! श्रीरामपरायण भक्तजनोंको सदा-सर्वदा सर्वसमर्थ श्रीरामके द्विभुज स्वरूपका ही ध्यान करना चाहिये ।'

श्रीरामः परमेव विष्णुपदतो ब्रह्म स्वयं वेद्यते
तस्याराधनतत्पराः सुविदिताः श्रीवैष्णवा एव ते ।

''स्वयं श्रीराम ही परब्रह्म हैं, श्रीराम ही विष्णु-नामसे जाने जाते हैं, उन्हीं श्रीरामका आराधन करनेसे प्रेमीजन 'श्रीवैष्णव' नामसे सुप्रसिद्ध हैं ।''

मरीचिमण्डले संस्थं बाणाद्यायुधलाञ्छितम् ।
द्विभुजं चैकवक्त्रं च रूपमाद्यमिदं हरेः ॥

'मरीचि (आदित्य)-मण्डलमें स्थित श्रीहरिका बाण आदि आयुधोंसे पहचाना जानेवाला द्विभुज तथा एकानन स्वरूप ही सबसे पुराना है ।'

—इत्यादि सहस्रों प्रमाणवाक्य आनन्दसंहिता, शिव-संहिता, पद्मसंहिता, महासुन्दरीतन्त्र आदि ग्रन्थोंसे दिये जा सकते हैं ।

श्रीविष्णुभगवान्‌का द्विभुज स्वरूप सुनकर बहुत-से लोग आश्चर्यमें पड़ जाते हैं । परंतु साम्प्रदायिक पक्षपातरहित होकर विचारा जाय तो 'प्रत्यक्षे किं प्रमाणम्' वाक्य सार्थक हो जाता है ।

श्रीरङ्गनाथ-धाम श्रीवैष्णव-दिव्यदेशोंमें सर्वश्रेष्ठ माना जाता है । श्रीरङ्गजी ही रघुवंशके आराध्य हैं । ये ही सर्वप्रथम स्वयंव्यक्त अर्चाविग्रह हैं । ये ही समस्त श्रीवैष्णव आळवारोंके परमोपास्य हैं । कोई प्रेमी नयनभर दर्शन करके देख ले, वे द्विभुज ही हैं । इससे श्रीमहाविष्णुका नित्य सनातन स्वरूप द्विभुज ही है, यह प्रत्यक्ष सिद्ध होता है । श्री० आर० नरसिंहन् द्वारा रचित 'श्रीरङ्गक्षेत्र-माहात्म्य'में लिखा है—

'श्रीरङ्गजीके निज मन्दिरमें गायत्री-महामण्डपके मध्य शेषशय्यापर शयन किये श्यामवर्णकी विशाल द्विभुज मूर्ति दक्षिणाभिमुखी स्थित है । भगवान्‌के मस्तकपर शेषजीके फनोंका छत्र है, बहुमूल्य रत्नाभरणोंसे विभूषित मूर्ति परम भव्य है ।'

यदि श्रीमन्नारायणोपासक अपने भावनानुसार श्रीमन्नारायण-के स्वरूपको ही परतत्त्व मानते हैं तो इसमें श्रीरामोपासकोंको प्रसन्नता ही है; क्योंकि—

'श्रीरामस्यैव स्वरूपभूतश्रीमन्नारायणोपासकाः श्रीमन्ना-रायणमेव परविभूतित्वेन प्रतिपादयन्ति तदुपासकाभिमत-प्रेमवशादेव । प्रेम्णा सर्वं समञ्जसमिति मन्तव्यम् ।'
(श्रीहरिदासाचार्यकृतं रहस्यत्रयभाष्यम्)

''वाल्मीकि-रामायणमें भी श्रीरामको भगवान् नारायणका ही स्वरूप बताया गया है—'भवान्नारायणो देवः श्रीमांश्चक्रा-युधः प्रभुः ।' (वा० रा०, युद्ध० ११७ । १३) श्रीमन्नारायण-के उपासक श्रीमन्नारायणको ही 'परविभूति' मानते हैं तो यह उनके उपासकोंका अतिशय प्रेमभाव प्रशंसनीय है । प्रेममें जो कुछ भी कहा जाय, प्रभु उसीको सर्वोत्तम मानते हैं ।''

श्रीवाल्मीकि-रामायणमें श्रीविष्णु

श्रीरामतत्त्वभाष्यकारका मत है—

स हि देवैरुदीर्णस्य रावणस्य वधार्थिभिः ।
अर्थितो मानुषे लोके जज्ञे विष्णुः सनातनः ॥
(वा० रा० २ । १ । ७)

'अत्र सनातन इति विशेषणेन महाविष्णुरेव न तु महा-विष्णोरंशभूतो विष्णुरिति भावः ।' अर्थात् यहाँ विष्णु भगवान्‌का 'सनातन' विशेषण होनेसे श्रीरामको महाविष्णु समझना चाहिये, न कि महाविष्णुके अंशभूत एक ब्रह्माण्डके नायक त्रिदेवान्तर्गत विष्णुको ।

संक्षिप्य हि पुरा लोकान् मायया स्वयमेव हि ।
महार्णवे शयानोऽप्सु मां त्वं पूर्वमजीजनः ॥
(वा० रा०, उत्तर० १०४ । ४)

ततस्त्वमसि दुर्धर्षात्तस्माद् भावात् सनातनात् ।
रक्षां विधास्यन् भूतानां विष्णुत्वमुपजग्मिवान् ॥
(वा० रा०, उत्तर० १०४ । ६)

ब्रह्माजी कहते हैं—'हे श्रीराम ! अपनी मायासे सम्पूर्ण लोकोंका संहार करके क्षीरसमुद्रमें शयन करते हुए आपने प्रथम मुझे उत्पन्न किया तथा लोकसंरक्षणके लिये अपने अपरिमेय नित्य सनातनभावसे आपने ही विष्णुस्वरूप धारण किया ।'

यहाँ श्रीरामके लिये ही 'विष्णुत्वमुपजग्मिवान्' कहा गया है, न कि विष्णुके लिये 'रामत्वमुपजग्मिवान्' कहा गया है । इसपर सुधीजनोंको विचार करनेके लिये श्रीहरि-दासाचार्यजी महाराज आग्रह करते हैं ।

विष्णुका परमधाम

'तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम्।'

(शु० यजु० ६। ५)

'विष्णुका परमधाम दिव्यलोकमें सूर्यकी भाँति चमक रहा है, जिसको तत्त्वद्रष्टा संत सदा ही भावनाकी आँखोंसे देखते हैं।' उसका नाम भी अथर्ववेदने स्पष्ट कर दिया है—

'अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या।'

(अथर्व० १०। २। ३१)

"प्रभुके उस परमपदका नाम 'श्रीअयोध्या' ही है।" इतना स्पष्ट अन्य किसी धामका नाम वेदोंमें स्पष्टरूपसे देखनेको नहीं मिलता।

श्रीविष्णुसहस्रनाम और रामनाम

यह बड़ा ही आश्चर्य है, भगवान्‌के सब नाम निस्सीम हैं, अतुलनीय हैं तथापि श्रीरामनामका ऐसा पक्षपात ऋषियोंने क्यों किया होगा—

'विष्णोर्नामसहस्राणां तुल्य एष महामनुः।' (बृहद्धारीतस्मृति),
'सहस्रनाम तत्तुल्यं रामनाम वरानने।' (पद्म० पु०)

इससे स्पष्ट होता है कि श्रीविष्णुका मुख्य नाम श्रीरामनाम ही है, जिसको श्रुतिने स्पष्ट किया है—

रमन्ते योगिनोऽनन्ते नित्यानन्दे चिदात्मनि।
इति रामपदेनासौ परं ब्रह्माभिधीयते॥

(श्रीरामपूर्वतापनीयोपनिषद् १। ६)

राका रजनी भगति तव राम नाम सोइ सोम।
अपर नाम उडगन बिमल बसहु भगत उर ब्योम॥

(श्रीरामचरितमानस ३। ४२)

यही कारण है कि श्रीरामानन्द-सम्प्रदायवाले महाविष्णु श्रीरामको ही अपना आराध्य मानते हैं, द्विभुज मानते हैं, अयोध्यापतिके रूपमें नित्यसाकेतविहारी मानते हैं; इनकी प्रभुके अन्य रूपोंके प्रति आसक्ति ही नहीं होती। वे तो कहते हैं—

बिष्नु चारि भुज बिधि मुख चारी। बिकट बेष मुख पंच पुरारी॥
अपर देउ अस कोउ न आही। यह छबि सखी पटतरिअ जाही॥

(मानस १। २१९। ४)

श्रीरामभक्त कहते हैं—"चार-चार हाथ, चार-चार मुँह, पाँच मुँह, पंद्रह नयन न जाने कैसे लगते होंगे। हमारे तो ये ही सलोने राजकुमार हृदयहार बने रहें।" गये थे प्रभु श्रीसुतीक्ष्ण मुनिको अपना चतुर्भुज स्वरूप दिखाने; परंतु—

भूपरूप तब राम दुरावा। हृदयँ चतुर्भुज रूप देखावा॥
मुनि अकुलाइ उठा तब कैसें। बिकल हीन मनि फनिबर जैसें॥

(मानस ३। ९। ९-९½)

'नख-सिख-सुन्दर सुकुमार राजकुमारका रूप छिपाकर जब प्रभुने मुनिके हृदयमें अपना चार भुजावाला रूप दिखाया, तब मणि छीन लेनेपर जैसे मणियारा सर्प विकल हो जाता है, वैसे ही अपने प्राणधन सर्वस्व श्रीरामरूपके अदृश्य होते ही मुनिवर सुतीक्ष्णजी अत्यन्त अकुला उठे।' यह श्रीरामोपासकोंका रसमय भाव है!

अपने इष्टमें अनन्य भाव एवं निष्ठा रखते हुए उन्हें सर्वोपरि मानना स्वाभाविक ही है, अतएव श्रीरामानन्दाचार्य भी श्रीरामको महाविष्णु मानें अथवा विष्णुका भी कारण मानें, भावुकोंके लिये सब ठीक ही है। इसीलिये आचार्योंका कथन है—

"एकस्योत्कृष्टत्वेऽपि अन्यस्यापकर्षो नास्ति। अचिन्त्यस्वरूपत्वेन, यथा श्रुतावपि—'पूर्णात्पूर्णे गृहीतेऽपि पूर्णमेवावतिष्ठति'।" (श्रीमधुराचार्यप्रणीत श्रीरामतत्त्वप्रकाश)

'एक स्वरूपका उत्कर्ष प्रतिपादन करते हुए भी प्रभुके अन्यान्य स्वरूपोंका अपकर्ष नहीं मानना चाहिये; क्योंकि भगवत्स्वरूप अचिन्त्य है। श्रुतिका भी कथन है कि 'उस परिपूर्ण परब्रह्ममेंसे सब-का-सब ले लेनेपर भी वह परिपूर्ण ही रहता है, उसमें किंचित् भी न्यूनता कदापि नहीं आती'।' अतएव अंश भी अंशीकी पूर्ण सत्तासे परिपूर्ण है। और वह अंश भी है, अंशी भी है। अतएव 'राम अतर्क्य बुद्धि मन बानी। मत हमार यह सुनहु भवानी॥' (मानस १। १२०। १½) में कहा गया है।

'वस्तुतस्तु श्रीरामानन्द-श्रीरामानुज-श्रीनिम्बादित्य-श्रीविष्णुस्वामि-श्रीमध्व-श्रीश्रीधरस्वामिप्रभृतिप्राचीनसिद्धान्त मते सर्वेषु पूर्णावतारेषु तारतम्यं नास्ति। अतः सर्वेऽपि भागवतप्रतिपाद्याः सन्ति।······'अन्यथा एकस्मिन्नवतारे पूर्णत्वमन्येषु न्यूनत्वमङ्गीकृत्य द्वेषं कुर्वन्ति। तेषां द्वेष एव फलं न तु भक्तिः।'

(श्रीरामतत्त्वप्रकाश, ६ ठा उल्लास, पृष्ठ १०३)

'वस्तुतः श्रीरामानन्द, श्रीरामानुज, श्रीनिम्बार्क, श्रीविष्णु स्वामी, श्रीमध्व, श्रीधरस्वामी प्रभृति प्राचीन आचार्यों एवं महाभागवतोंका निश्चित सिद्धान्त है कि सभी पूर्णावतारोंमें कुछ भी तारतम्य नहीं है, सभी श्रीमद्भागवतादिप्रतिपाद्य हैं। अन्यथा एकमें पूर्णत्व, एकमें न्यूनत्व मानकर जो द्वेष करते हैं, उनको द्वेषका ही विषमय फल हाथ लगता है, भक्ति-प्रेम-रसपूर्ण दिव्यानुरागरूपी फल कभी हाथ नहीं लगता।' इतनेसे भी किसीको संतोष न हो तो श्रीमधुराचार्यजी महाराज पुनः कहते हैं—

"लोकेऽपि पुरुषस्य सर्वाङ्गेषु चन्दनादिलेपनं कृत्वा एकस्मिन्नङ्गे प्रहारः कृतश्चेत्तस्यापराध एव पर्यवसन्नो भवति। तस्मात्—

'सर्वे सर्वगुणैः पूर्णाः सर्वदोषविवर्जिताः।'

(व० पु०)

"लोकमें भी किसीके सर्वाङ्गमें चन्दनका लेप कर एक अङ्गमें प्रहार किया जाय तो वह सेवा न होकर अपराध ही होगा। इसीलिये भावुक भक्तोंको—'सभी स्वरूप सर्वगुण-परिपूर्ण हैं, सर्वदोषरहित हैं'—यह वराहपुराणका वाक्य स्मरण रखना चाहिये।"

श्रीरामानन्द-सम्प्रदायकी अन्तरङ्ग उपासनासे सम्बद्ध 'श्रीसीताराम सम्बन्धपत्र'में भी कहा गया है—

'श्रीसीतारामजी सर्वावतारी हैं, अपने प्रिय भक्तोंके लिये चतुर्भुज एवं अष्टभुजरूपसे अनेक स्थलोंमें विराजते हैं।··· सबमें अभेद है, किसी स्वरूपका अनादर-तिरस्कार मनमें भी नहीं लाना चाहिये। ईश्वरस्वरूपका अपमान महापातक है।'

अन्तमें परमादरणीय नित्यगोलोकविहारी श्रीभाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारका एक वाक्य उद्धृतकर इस लेखको पूर्ण करता हूँ।

'भगवान् श्रीरामका प्रपञ्चातीत भगवत्स्वरूप कैसा है? इस बातको तो भगवान् ही जानते हैं। संसारमें कोई ऐसा नहीं है, जो उनके स्वरूपकी यथार्थ व्याख्या कर सके।··· भगवान्‌का जो वर्णन है, वह पूरा न होनेपर भी उन्हींका है—इस दृष्टिसे भगवान्‌के सम्बन्धमें जो जैसा भी कहते हैं, ठीक ही कहते हैं। भगवान् श्रीराम परात्पर ब्रह्म भी हैं, विष्णुके अवतार भी हैं, महापुरुष भी हैं, आदर्श राजा भी हैं और उनके काल्पनिक होनेकी कल्पना करनेवाला मन आत्मरूप भगवान्‌का आश्रित होनेके कारण काल्पनिक भी हैं।'

× × ×

'दशरथात्मज राम साक्षात् भगवान् हैं। हाँ, कल्पभेदसे भगवान् विष्णु रामरूपमें अवतीर्ण होते हैं तो कभी साक्षात् पूर्णब्रह्म परात्पर भगवान्‌का अवतार होता है। परंतु स्मरण रहे, विष्णु भी भगवान्‌के ही स्वरूप हैं; इसलिये स्वरूपतः इनमें कोई तारतम्य नहीं है, लीलाभेदसे ही पृथकत्व है। वे पूर्णब्रह्म परात्पर ब्रह्म भगवान् स्वयं हैं।'

—मानसपीयूष, बालकाण्ड, भाग २, पृष्ठ ९२७

श्रीभाईजी श्रीरामानन्दीय तो नहीं ही थे, परंतु उन्होंने इन पंक्तियोंमें श्रीरामानन्द-सम्प्रदायका ही रहस्य-सारतत्त्व निचोड़कर रख दिया है। इससे श्रीरामानन्द-सम्प्रदायमें विष्णुभगवान्‌का स्वरूप अत्यन्त स्पष्ट हो जाता है।*

* इस रहस्यको भलीभाँति समझनेके लिये श्रीवाल्मीकि-रामायणकी 'शिरोमणि' टीका, श्रीहर्य्याचार्य स्वामीका श्रीरामस्तवराज-भाष्य, श्रीहरिदासाचार्यजी महाराजका श्रीरामतापनीयोपनिषद्भाष्य, श्रीरामस्तवराजभाष्य तथा रहस्यत्रयभाष्य, श्रीमधुराचार्यजी महाराजका श्रीरामतत्त्वप्रकाश, श्रीकरुणासिन्धुजी, श्रीरामचरणदासजी महाराजकी श्रीरामचरितमानसपर टीका तथा श्रीरामनवरत्न एवं श्रीहरिहरप्रसादजीका श्रीरामतत्त्वभास्कर इत्यादि ग्रन्थोंका शान्त-चित्तसे अध्ययन करना चाहिये। साथ ही गीताप्रेससे प्रकाशित 'मानस-पीयूष' के 'मनु-शतरूपा' तथा 'अवतार-प्रकरण'को ध्यानसे पढ़ना चाहिये।

वैष्णवधर्मके मूल तत्त्व

(लेखक—योगिराज पूज्यपाद श्रीदेवरहवा बाबाजी महाराज)

उदात्त प्रेमकी भावना मनुष्यमात्रमें है—केवल उसका सही उपयोग नहीं है । प्रत्येक देशके सभी धर्मगुरु इस भावनाको सही दिशा देनेका प्रयास करते रहते हैं। वैष्णवधर्ममें इस भावनाको अधिक-से-अधिक उदार और व्यापक बनानेके प्रयास हुए हैं। इसीलिये वैष्णवधर्मका साधारण लक्षण ही यह हो गया कि "जिस धर्मके द्वारा मानवकी भावनाका परिष्कार होता है, जिससे उसके हृदयमें सत्य, अहिंसा, प्रेमकी प्रतिष्ठा होती है तथा जिसके द्वारा प्राणिमात्रके प्रति दयालुता, स्निग्धता, सहिष्णुता, उदारता और मधुरताका संचार होता है—वही 'वैष्णवधर्म' है ।" हिंदू, मुसल्मान, सिक्ख, ईसाई, आस्तिक-नास्तिक—सभी वर्गोंके लोग इस धर्मकी ध्वजाके नीचे समानभावसे बैठ सकते हैं। जाति-पाँतिके बन्धनोंसे परे सामाजिक भेद-भावोंको तोड़कर मानव-मानवको एक धरातलपर खड़ा करनेवाला यह वैष्णवधर्म मनुष्यकी स्वाभाविक प्रवृत्तिका प्रतिफलन है। भारतवर्षका इतिहास इस बातका साक्षी है कि अनेक विदेशियोंने भी इस धर्मको स्वीकारकर गर्व और गौरवका अनुभव किया है। हूण, आन्ध्र, पुलिन्द, पुक्कस, यवन, खस आदि अनेक जातियों और वर्गोंके लोग भी इस धर्मकी ध्वजाके आश्रयमें पवित्र माने गये हैं—

किरातहूणान्ध्रपुलिन्दपुक्कसा आभीरकङ्का यवनाः खसादयः।
येऽन्ये च पापा यदुपाश्रयाश्रयाः शुध्यन्ति तस्मै प्रभविष्णवे नमः॥
(श्रीमद्भागवत २ । ४ । १८)

'वसुधैव कुटुम्बकम्' इस धर्मका मूल मन्त्र है, अहिंसा इसका आधार है, प्रपञ्चमें भगवद्विलास इसकी साधना है तथा प्राणिमात्रसे प्रेम इसका सुमधुर फल है। यह धर्म प्रवृत्तिपरक है, निवृत्तिपरक नहीं—

नारायणपरो धर्मः पुनरावृत्तिदुर्लभः ।
प्रवृत्तिलक्षणश्चैव धर्मो नारायणात्मकः ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें वैष्णवधर्म और भारतीय संस्कृतिको लगभग समानार्थक ही माना गया है। यदि सूक्ष्म दृष्टिसे देखा जाय तो ज्ञात होगा कि वैष्णवधर्ममें विश्वजनीन संस्कृतिके सभी तत्त्वोंका समावेश है। श्रीमद्भगवद्गीतामें भी इसी धर्मका सार संगृहीत है। सभी वैष्णव आचार्यों तथा संतोंकी साधनाका मूल रूप भगवत्प्रेमकी प्राप्ति ही है। बाह्यरूपसे सम्प्रदायोंमें चाहे जितना वैषम्य हो, उनके मूल-तत्त्वोंमें कोई बड़ा भेद नहीं है। सभी वैष्णव-सम्प्रदाय भगवत्तत्त्वको सगुण और साकार मानते हैं और उसके मूलमें निर्गुण और निराकार ब्रह्म विद्यमान रहता है। भगवान् स्वभावसे ही स्वामी, विभु और शेषी हैं, जब कि जीव स्वभावसे दास, अणु और शेष हैं। कर्म चित्तशुद्धिका साधन है और ज्ञान आत्मबोधका हेतु । परम तत्त्वकी प्राप्ति भक्तिके द्वारा ही हो सकती है, जिसका एकमात्र साधन भगवत्प्रेम है। प्रपत्ति अर्थात् शरणागति और समर्पणकी भावनासे ही भगवत्प्रेम अथवा भगवदनुग्रहकी उपलब्धि सम्भव है।

विष्णुभक्तिके बिना मनुष्य-जन्म निष्फल है

विष्णौ भक्तिं विना नृणां निष्फलं जन्म चोच्यते । कलिकालपयोराशिं पापग्राहसमाकुलम् ॥
विषयासज्जनावर्तं दुर्बोधफेनिलं परम् । महादुष्टजनव्यालमहाभीमं भयानकम् ॥
दुस्तरं च तरन्त्येव हरिभक्तितरिस्थिताः । तस्माद्यतेत वै लोको विष्णुभक्तिप्रसाधने ॥
(पद्मपुराण, आदिखण्ड, ६१ । ७३—७५)

'भगवान् विष्णुकी भक्ति किये बिना मनुष्योंका जन्म निष्फल बताया जाता है। कलिकाल ही जिसके भीतर जल-राशि है, जो पापरूपी ग्राहोंसे भरा हुआ है, विषयासक्ति ही जिसमें भँवर है, दुर्बोध ही फेनका काम देता है, महादुष्टरूपी सर्पोंके कारण जो अत्यन्त भयावना प्रतीत होता है, उस भयानक दुस्तर भव-सागरको हरिभक्तिकी नौकापर बैठे हुए मनुष्य पार कर जाते हैं। इसलिये लोगोंको हरिभक्तिकी सिद्धिके लिये प्रयत्न करना चाहिये।'

श्रीविष्णुभक्तोंके लिये विशेष ज्ञातव्य

(लेखक—स्वामी श्रीकृष्णानन्दजी)

१—जो मनुष्य भगवान् विष्णुके भक्त हैं, उनसे कोई पाप होता ही नहीं। यदि संयोगवश कोई पाप हो भी जाय तो मनसे पश्चात्ताप करना, उसकी पुनरावृत्ति न करनेका संकल्प करना और श्रीहरिका स्मरण करना ही उसका सर्वश्रेष्ठ प्रायश्चित्त है।

२—भगवान्‌की प्रसन्नता प्राप्त करनेके लिये उनकी पूजा आठ प्रकारके भावपुष्पोंद्वारा करनी चाहिये। वे पुष्प ये हैं—(१) अहिंसा, (२) इन्द्रियसंयम, (३) दया, (४) क्षमा, (५) शम, (६) तप, (७) ध्यान और (८) सत्य। जो भक्त इन भावपुष्पोंसे श्रीहरिकी पूजा करता है, उसपर शीघ्र ही भगवत्कृपा प्रकट होती है।

३—'विष्णु' उसे कहते हैं, जो सर्वव्यापक हो। जल-स्थल-नभमें वह सर्वत्र व्याप्त है। इसलिये जो भक्त किसीकी बुराई करता है या किसीकी बुराई सुनता है या किसीकी बुराई देखता है या किसीका बुरा सोचता है या किसीको बुरा समझता है, उसे कभी भी श्रीविष्णुभक्त नहीं कहा जा सकता।

४—भगवान् विष्णुके प्रधानतः तीन रूप प्रसिद्ध हैं—(१) वैकुण्ठनाथ विष्णु, (२) क्षीरशायी विष्णु और (३) सर्वव्यापक विष्णु। तीनों रूपोंमें उसी प्रकार कोई भेद नहीं है, जैसे एक ही कलक्टर अपने बँगलेमें स्त्री-बच्चोंके साथ निवास करते हुए भोजन-शयन करता है तो चेम्बरमें बैठकर मित्रोंके साथ प्राइवेट बातें करता है और फिर वही आफिसमें बैठकर अपना इजलास लगाकर प्रजाकी फरियाद सुनता है और सम्पूर्ण जिलेपर शासन करता है।

५—भगवान् श्रीविष्णुका पूजन मालती, मल्लिका, यूथिका, गुलाब, कनेर, तगर, कदम्ब, अशोक, तिलक, कुन्द, तमाल और कमलके पुष्पोंसे करना चाहिये एवं तुलसी, वासक, केतकी और भृङ्गराजके पत्रोंसे भी कर सकते हैं; परंतु मदार, धतूरा, कुटज, शाल्मली और कटेरीके पुष्पोंका प्रयोग कभी नहीं करना चाहिये।

६—भगवान् श्रीविष्णु समस्त कामनाओंके लिये कल्पतरु हैं। केवल उनके पूजनसे ही सम्पूर्ण कामनाओंकी पूर्ति हो जाती है। अतः उनके भक्तोंको चाहिये कि अपनी कामनाओंकी पूर्तिके लिये कभी संसारका, अधर्मका और अन्यायका आश्रय न लें।

७—श्रीविष्णुभगवान्‌के भक्तोंको भगवन्-स्तोत्रोंका पाठ प्रतिदिन नियमपूर्वक अवश्य करना चाहिये। इससे मानस रोगोंका नाश होता है। साथ ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी प्राप्ति भी सुलभ हो जाती है और भगवत्प्रेम बढ़ता है।

८—भगवद्भक्तोंको रोग-नाशके लिये यथाशक्ति ओषधियोंका प्रयोग कम-से-कम अथवा नहीं करना चाहिये। उनको चाहिये कि सब रोगोंकी शान्तिके लिये श्रीविष्णुका ध्यान एवं पूजन करते रहें।

९—वैष्णवोंके प्रसिद्ध मन्त्र हैं—(१) ॐ नमो नारायणाय, (२) ॐ नमो भगवते वासुदेवाय और (३) ॐ हूं विष्णवे नमः। और भी हजारों मन्त्र हैं। किसी एक मन्त्रका भी जप करनेसे मनुष्य सभी प्रकारके पाप-ताप-शापसे मुक्त होकर कृतार्थ हो जाता है।

१०—इस घोर कलिकालमें भगवन्नामको छोड़कर और कोई कल्याणकारी उपाय नहीं है। इसलिये निरन्तर उसीका जप करते रहना चाहिये।

भव-सागरमें डूबते हुए जीवोंके लिये विष्णु ही रक्षक हैं

भवजलधिगतानां द्वन्द्ववाताहतानां सुतदुहितृकलत्रत्राणभारार्दितानाम्।
विषमविषयतोये मज्जतामप्लवानां भवतु शरणमेको विष्णुपोतो नराणाम्॥

(श्रीमुकुन्दमाला ११)

'जो संसार-सागरमें गिरे हुए हैं, (सुख-दुःखादि) द्वन्द्वरूपी वायुके थपेड़ोंसे आहत हो रहे हैं, पुत्र-पुत्री-स्त्री आदिके पालन-पोषणके भारसे पीड़ित हैं और विषयरूपी विषम जलराशिमें बिना नौकाके डूब रहे हैं, उन पुरुषोंके लिये एकमात्र विष्णुरूप जहाज ही शरण हो।'

वैष्णव-लक्षण

(लेखक—श्रीधुंडा महाराज देगलूरकर)

'जब हरिनाम और गुण-कीर्तनकी महिमा अखण्डरूपसे मनमें बनी रहती है और उसकी स्थिति स्वप्नमें ही होती है, तब हरिभक्ति दृढ़ होती है । जिसका इस प्रकार भक्ति करनेका व्रत दृढ़तर होता जाता है, उसका चित्त उसी प्रकार क्रमशः आर्द्र होता जाता है और हरिनाम-कीर्तनमें अद्भुत प्रेम उमड़ता है । हरि सबके परम प्रिय आत्मा हैं । इस कारण उसे नाम-संकीर्तनका बड़ा उत्साह होता है । भक्त हरिकीर्तनकी नित्य नयी अभिलाषा करता है । इससे उसको भीतर-बाहर सर्वत्र हरिका दर्शन होता है ।'

नामामृतकी मिठास जिसको मिली होती है, उस पुरुषकी ऐसी ही स्थिति होती है । ऐसा ही मनुष्य सच्चा वैष्णव होता है ।

'नाम संकीर्तन वैष्णवांची जोडी । पापे अनंत कोडी गेलीं त्याची ॥'

'वैष्णवोंके हरिनाम-कीर्तनके संग्रहसे उसके अनन्त पाप नष्ट हो जाते हैं ।'

ज्ञानेश्वर महाराज उपर्युक्त अभंगमें नामप्रेमी वैष्णवोंका वर्णन करते हुए नामस्मरणके महत्त्वका प्रतिपादन करते हैं । महाराज कहते हैं कि 'नाम-संकीर्तन ही वैष्णवका संग्रह अर्थात् पूँजी है । हरिनाम-संकीर्तनके सिवा उनके लिये कोई दूसरा व्यापार ही नहीं होता ।' पहले यह देखना चाहिये कि वैष्णव कौन कहला सकता है । आज इस भारतवर्षमें अपनेको 'वैष्णव' कहनेवाले बहुत-से साम्प्रदायिक लोग हैं । वैष्णवके जो आन्तर-बाह्य लक्षण पुराण आदिमें कहे गये हैं, वे यदि किसीमें हों तो उसको 'वैष्णव' कहना ठीक है । वे लक्षण न हों तो केवल दम्भ करनेवाला वैष्णव नहीं होता । एकनाथ महाराज कहते हैं—

दांभिक बाढवावया कीर्ती । वैष्णव दीक्षा अवलंबिती ॥
देवपूजा झळकवित दाविती । शंख लाविती दो हातीं ॥
(एक० भा० ७ । २८६)

'दाम्भिक लोग अपनी नामवरीके लिये वैष्णवी दीक्षा लेते हैं, दिखाऊ देवपूजा करते हैं और दोनों हाथोंसे शङ्ख बजाते हैं ।'

ज्ञानेश्वर महाराज एक अभंगमें वैष्णवके बाह्य लक्षण बतलाते हैं—

'नामामृत गोडी वैष्णव जाणती । येर चरफडती काग जैसे ॥'

वैष्णवको ही नामामृतकी सच्ची मधुरता मिली होती है । किंतु वैष्णव किसे कहें, इसका विचार करना आवश्यक है । अपनेको स्वयं वैष्णव कहनेवाले बहुत लोग मिलेंगे, परंतु वे वैष्णव कहलानेके पूर्णतः अधिकारी नहीं हैं । एकनाथ महाराज कहते हैं—

जाती उत्तम भक्ति हीन । तो वैष्णव नव्हे जान ॥
अथवा करी दांभिक भजन । वैष्णव पण त्या नाहीं ॥
जाणीव शहाणीव ज्ञाते पण । सांडूनि जाती चा अभिमान॥
जो मज होय अनन्य शरण । वैष्णव जाण तो माझा ॥
(एकनाथी भाग० ११–१३९९ । १४०१)

"जो उत्तम जातिमें जन्म लेकर भी भक्तिहीन है, वह सच्चा वैष्णव नहीं है; अथवा जो भजनका दम्भ करता है, वह भी वैष्णव नहीं है । जो वैष्णवोंमें जातिको आदर देता है, शालग्रामको पत्थर समझता है तथा गुरुको सामान्य मनुष्य कहता है, वह नितान्त पातकी है । जो अपनी बुद्धिमत्ता, विद्वत्ता, चतुराई और जातिका अभिमान छोड़कर मेरी अनन्य शरण लेता है, वही मेरा 'वैष्णव' है ।"

तुकाराम महाराज कहते हैं—

वैष्णव तो जया । अवघी देवावरी माया ॥
नाहीं आणिक प्रमाण । तन धन तृण जन ॥

'वैष्णव वही है, जिसको प्रभुसे पूर्ण प्रेम है । जो देव (प्रभु) के सिवा दूसरे किसीको नहीं मानता, देह, धन और गोत्रको तृणवत् समझता है । वही सच्चा वैष्णव है ।'

एकनाथ महाराज कहते हैं—

हरिनाम गुणकीर्ती । अखंड आवडे जागृतीं ॥
स्वप्नी ही तेंचि स्थिती । दृढ हरिभक्ती ठसावे ॥
ऐसियापरी भक्तियुक्त । दृढतर झाले ज्याचें व्रत ॥
तंव तंव होय आर्द्रचित्त । प्रेमा अद्भुत हरिनामकीर्ती ॥
आत्मा परम प्रिय हरि । त्याचे नामकीर्तीचा हर्ष भारी ॥
नित्य नवी आवड वरी । सबाह्याभ्यंतरी हरी प्रगटे ॥
(एकनाथी भागवत २ । ५५६–८)

कुंचे पताका झळकती। टाळ मृदंग वाजती॥
आनंदें प्रेमें गर्जती। भद्र जाती विठ्ठला चे॥ १॥
आले हरी चे विनट। वीर विठ्ठला चे सुभट॥
भेणें जाहले दिक्पट। पळती याट दोषां चे॥ २॥
तुळशी माळा शोभती कंठी। गोपीचंदना ची उटी॥
सहस्र विघ्नें लक्ष कोटी। बारा वाटा पळताती॥ ३॥

"ऊँची-ऊँची पताकाएँ झलकती हैं, मृदङ्ग और मँजीरे बजते हैं और उनके नादके साथ विठ्ठलके भक्त आनन्द और प्रेमसे भगवान्के नामकी गर्जना करते हैं, भगवान्के समीप जाकर वैष्णव वीर भगवान्के स्तोत्रका गान करते हैं। इससे दोषोंके समूह डरकर दिशाओंमें भाग जाते हैं। ललाटपर गोपीचन्दनका टीका और गलेमें शोभायमान तुलसीकी माला धारण करते हैं। ऐसे वैष्णव वीरोंको देखकर कोटि-कोटि विघ्न विभिन्न मार्गोंसे भाग जाते हैं।"

तुकारामजी कहते हैं—

गोपीचंदन उटी तुळशीच्या माळा। हार मिरवती गळा रे॥
टाळ मृदंग घाई पुष्पांचा वर्षाव। अनुपम सुख सोहळा रे॥

'उनके अङ्गमें और ललाटमें गोपीचन्दनका लेप और गलेमें तुलसीकी माला और फूलोंका हार सुशोभित होता है। वे मृदङ्ग और मँजीरोंके नादके साथ हरिनामका सतत घोष करते हैं। उनके इस अनुपम सुख-स्वातन्त्र्यको देखकर इन्द्रादि देवता अन्तरिक्षसे पुष्पवृष्टि करने लगते हैं।'

ये बाह्य लक्षण हैं, किंतु आन्तरिक लक्षणोंका महत्त्व अधिक है। ज्ञानेश्वर महाराज वैष्णवके आन्तरिक लक्षण बतलाते हैं—

सतत कृष्णमूर्ति सावळी। खेळे हृदयकमळीं।
शांती क्षमा तयाजवळी। जीवें भावें अनुसरल्या॥
सहस्रनामा चे हथियार। शंख-चक्रा चे शृंगार।
अतिबळ वैराग्या चे थोर। केला मार षड्वर्गां॥

'जिनके हृदयरूपी कमलमें अखण्ड कृष्णमूर्ति विराजमान रहती है या निवास करती है, उनके पास शान्ति और क्षमा बड़े प्रमाणमें रहनेके लिये आती हैं। यही नहीं, वे भगवान्के सहस्रनामका साधनरूपी हथियार मुखमें धारण करते हैं और शङ्ख-चक्रका अलंकार धारण कर तथा वैराग्यके विपुल बलसे वे अपने काम, क्रोध, मद, मत्सर, लोभ, मोह—इन षड्विकारोंको मार देते हैं।'

तुकाराम महाराज कहते हैं—

वर्ण-अभिमान विसरली याती। एक एका लोटांगण जाती रे॥
निर्मळ चित्तें झाली नवनीतें। पाषाणा पाझर फुटती रे॥

"भजन करते-करते देहका विस्मरण हो जानेके कारण वे 'मेरा अमुक वर्ण है, अमुक जाति है'—यह सहज ही भूल जाते हैं। अभिमानरहित होकर एक दूसरोंके पैरोंपर गिरने लगते हैं। भजनसे उनका चित्त निर्मल तथा नवनीतके समान कोमल हो जाता है। उनके भजनके आनन्द और उत्कट प्रेमको देखकर पत्थर भी द्रवित हो उठते हैं।"

"एकनाथ महाराज अपनी एक सुन्दर ओवीमें वैष्णवोंकी अत्यन्त सुन्दर व्याख्या करते हुए कहते हैं—

निमिषार्ध त्रुटि लव क्षण। जे न सोडिती हरिचरण॥
ते वैष्णवां माजी अग्रगण्य। राया ते जाण उत्तम भक्त॥
(एक० भा० २। ७२०)

'जो आधे क्षणके लिये भी हरिचरणको नहीं छोड़ता, वही वैष्णवोंमें अग्रगण्य है। राजन्! तुम उसको ही उत्तम भक्त जानो।' उपर्युक्त लक्षणोंसे युक्त जो वैष्णव हैं, उनको श्रीहरि तथा उनके नाम-संकीर्तनके सिवा दूसरा कुछ भी प्रिय नहीं लगता।

तुकाराम महाराज एक जगह कहते हैं—

मुक्ति पांग नाहीं विष्णुचिया दासा।
संसार तो कैसा न देखती॥
बैसला गोविंद जडोनिया चित्तीं।
आदि तेंचि अंतीं अवसानीं॥

'हरिभक्त वैष्णवको मुक्तिकी दरिद्रता नहीं होती; सांसारिक दुःख कैसा होता है, इसे वे जानते नहीं। उनके चित्तमें गोविन्द स्थायीरूपसे बसे रहते हैं, अतएव जीवनके आदि, मध्य और अन्तमें वह गोविन्दका ही स्मरण करता है।'

नामदेवराय कहते हैं—

'नामा म्हणे नाम केशवा चें घेसी।
तरि च वैष्णव होसी अरे जना॥'

'अरे मनुष्यो! यदि तुम केशवका नाम लोगे, तभी वैष्णव बनोगे।'

उपर्युक्त लक्षणोंसे युक्त जो वैष्णव हैं, उनका एक ही अभिलषित विषय है—भगवन्नाम-संकीर्तन। जिसको भगवन्नामकी अतिशय लगन है, उसे छोड़कर दूसरे किसी विषयकी रुचि नहीं, वही सच्चा वैष्णव है।

वैष्णवताके आधार—भक्ति और सत्सङ्ग

(लेखक—श्रीपरिपूर्णानन्दजी वर्मा)

वैष्णव-धर्म तथा वैष्णव-सम्प्रदायकी आजके युगमें एक सबसे बड़ी देन है। वह है कलियुगी सामाजिक तथा धार्मिक विघटनके बीचमें साधारण जनसमूहको ऐसे मार्गपर चला देना, जिसमें तर्क-कुतर्कके झमेलेसे बचकर, लंबे-चौड़े उपक्रम तथा आचार-संहिताकी जानकारीके बिना ही सच्चा, सही नागरिक जीवन बिताते हुए अपना, अपनी आत्माका एवं अपने भावी जीवनका कल्याण किया जा सकता है। ईसवी सन् १०१६ से १६०० के बीच रामानुज, ज्ञानदेव, रामानन्द, चैतन्य महाप्रभु एवं नामदेव आदि महान् उपदेशकोंने तीन सरल, उत्तम तथा महान् चीजें जनताके सामने रख दीं—सत्सङ्ग, भक्ति एवं सदाचार। इनके द्वारा पठित-अपठित, गृहस्थ तथा साधु—हरेकको भगवान्के प्रति श्रद्धा, प्रेम और विश्वासकी अनुभूति प्राप्त हो सकती है तथा सांसारिक जीवनमें कर्तव्य-पथपर चलते हुए मोक्षका मार्ग सुलभ हो जाता है। इनके बतलाये हुए मार्गको जनसाधारणके लिये और अधिक बोधगम्य तथा लोकप्रिय बनानेका कार्य कबीर-रैदास-सुन्दरदास-चरणदास-दादू-पलटू-बुल्ला-ऐसे संतोंने इन्हीं दो सौ, तीन सौ वर्षोंमें यानी सन् १४०० से १६०० के बीच अत्यन्त परिश्रमसे सम्पादित किया था। इन महापुरुषोंने हिंदू-समाजके भीतर विदेशी सम्पर्क तथा आक्रमण, परवशता तथा पराधीनतासे उत्पन्न अविश्वास, अन्धविश्वास, हल्चल एवं अज्ञानको दूर ही नहीं कर दिया, सनातनी मर्यादाको पुनः स्थापित कर दिया।

आर्यधर्मका सबसे बड़ा गौरव उसकी आचार-संहितामें है। पूजा, पाठ, यज्ञ, कर्मकाण्ड—सब अति आवश्यक होते हुए भी जीवनका साधारण आचरण अपना विशिष्ट स्थान रखता है।

समुचित आचरण हो, अहिंसाका पालन हो, मनुष्य इन्द्रियोंको नियन्त्रणमें रखे, दान करे, शास्त्रका अध्ययन करे तो फिर आत्मदर्शन तो होकर ही रहेगा। यही बात पराशर तथा याज्ञवल्क्यने भी कही है। जो इतना करेगा, उसे तो नारायणका परम धाम प्राप्त होगा ही।

नामका माहात्म्य

मनुष्यको अपने अनिवार्य अन्त—मृत्युकी चेतावनी देकर नाम-जपद्वारा भक्ति तथा सत्सङ्गसे अपने प्रयाणकी तैयारी करनेकी शिक्षा वैष्णव महात्माओंने बड़े सीधे तथा सरल शब्दोंमें दी है। नामदेवने सुन्दर शब्दोंमें कहा है—

'मन मेरी गज जिह्वा मेरी काती, मपि मपि काटौं जम की फाँसी।'

नाम-जपसे यमकी फाँसी काटी जा सकती है।

रैदास कहते हैं—

'रविदास जपै राम नामा, मोहिं जम सिउ नाहिं कामा।'

वे ही महात्मा रैदास कहते हैं—

ऊँचे मंदिर साल रसोई, एक घरी पुनि रहनि न होई। १।
यह तन जैसा घास की टाटी, जल गई घास, रलि गई माटी।
भाई-बंधू, कुटुँब सहेला, ओइँ भी लागै काढ़ सबेरा। २।
घर की नारि उरहिं तन लागी, वह तो भूत-भूत कर भागी। ३।
कह रैदास जबै जग लुट्यो, हम तौ एक राम कहि छुट्यो। ४।

नामके माहात्म्यमें कितना महान् वाक्य कहा है रैदासने—

सतयुग सत, त्रेता जगी, द्वापर पूजा-चार।
तीनों जुग तीनों दढ़ै, कलि केवल नाम अधार॥

संत दादू कहते हैं—

दादू नीका नाँव है, सो तू हिरदै राखि।
पाखँड परपँच दूरि करि, सुनि साधू जन की साखि॥

भक्त चरणदासने उपदेश दिया है—

सुनो भाइ नाम की महिमा।
मुक्ति चारों, सिद्धि आगे बसत हैं यहि माँ॥

भक्ति तथा नाम-जप साधारण वस्तु नहीं हैं। कबीरने स्पष्ट लिखा है—

सीस उतारै, भुइँ धरै, तब पैठे घर माहिं।
यह तो घर है प्रेम का, खाला का घर नाहिं॥

और नाम-जपके महान् पोषक कबीरने रामको अपना पति बना लिया—

रामदेव सँग भावँर लेऊँ, धनि-धनि भाग हमार।
कहै कबीर, हम ब्याह चले हैं, पुरुष एक अबिनासी॥

हरिनामका जप करनेवाला पूजाका पूरा उपक्रम नाम-जपसे ही कर लेता है। रैदास लिखते हैं—

नाम तेरी आरति-भजन मुरारे।
नाम तेरा आसन नाम तेरो उरसा, नाम तेरो केसर ले छिड़का रे॥
नाम तेरो अमुला, नाम तेरी बाती, नाम तेरी तेल मांहि पसारे।
नाम तेरो धागा, नाम फूलमाला, भार अठारह सकल जुटा रे॥

भक्त सुन्दरदासजीका उपदेश है—

निसिदिन हरि सों चितासक्ति, सदा ठग्यो सो रहिये।
कोउ न जान सकै यह भक्ति, सुप्रेम लक्षणा कहिये॥

श्रीमद्भागवतमें स्पष्ट लिखा है—

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥
(७।५।२३)

भगवान् विष्णुके नाम-गुणोंका श्रवण, कीर्तन, स्मरण, चरण-सेवा, पूजन, वन्दन, उनकी दासरूपमें सेवा, उनके प्रति सखाभाव तथा आत्मनिवेदन—यदि इतना हो जाय तो और चाहिये ही क्या। नारदीय भक्तिसूत्रमें भगवान् विष्णुके प्रति जो 'स्मरणासक्ति'—स्मरणमें आसक्तिका उपदेश है, वह भी नाम-माहात्म्यका विवेचन है। चैतन्य महाप्रभु तथा रामानुजाचार्यने संकीर्तनकी जो परमानन्ददायक मर्यादा स्थापित की, वह भी तो नामकी ही महत्ताको प्रतिपादित करता है।

श्रीमद्भागवतके उपदेशको ही रैदासने दुहराया है—

'चित्त सिमरन करूँ।'

और ऐसी भक्ति तथा भावनाके लिये आवश्यक है कि काम, क्रोध, मोह, अभिमान, दम्भ आदिका त्याग कर दिया जाय; क्योंकि इनसे बुद्धिका नाश होता है, सर्वनाश होता है। मनुष्य कहींका नहीं रहता। नारदीय भक्तिसूत्रमें लिखा है—

'अभिमानदम्भादिकं त्याज्यम्।' (६४)
'कामक्रोधमोहस्मृतिभ्रंशबुद्धिनाशसर्वनाशकारणत्वात्।' (४४)

भक्त रैदास कहते हैं—

रे मन राम-नाम सँभारि।
माया के भ्रम कहा भूल्यो, जाहिगो कर झारि।
देखि धौं, यह कौन तेरो, सगा सुत नहिं नारि॥
तोहे उछँग सब दूर करि हैं, देहिंगे तन जारि।

ऐसी दशामें स्वामी रामानन्द कहते हैं 'सब तजि हरि भजि।'

दादूने भी सावधान किया—

'दादू राम सम्हारि ले, जब लगि सुखी सरीर॥'

और रैदासने भगवान् विष्णुके सब नाम ही गिना डाले—

जपो राम गोविन्द बीठल बासुदेव, हरि बिष्नु बैकुंठ मधु कैटभारी।
कृस्न, केसो, रखीकेस, कंवलाकँत अहो भगवंत त्रिविध संताप हारी॥

भक्त चरणदासके शब्दोंमें—

'एक ओर हरि नाम रख, एक ओर जग तौल॥'

आदि शंकराचार्यने भजनको उतना ही महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है, जितना निर्विकल्प समाधिको—

विहरति विदितार्थे निर्विकल्पे समाधौ
ननु भजनविधौ वा तुल्यमेतद् द्वयं स्यात्॥

सत्सङ्ग

वैष्णव संतोंने सत्सङ्ग तथा कीर्तनको आजके युगमें बड़ा महत्त्व दिया है। कहा भी है कि सत्सङ्गके एक शब्दको सुन लेनेसे भी ज्ञानकी प्राप्ति होती है। सत्सङ्गके द्वारा ही तो हमें अपना प्राचीन इतिहास तथा पुराण मिला। नैमिषारण्यमें संतोंके वार्त्तालाप, शुकदेवके प्रवचन, काकभुशुण्डिके संवाद, ऋषि-मुनियोंकी गोष्ठी तथा विचार-विमर्श—यह सब सत्सङ्गका ही फल है। बौद्ध-धर्मका प्रचार केवल सत्सङ्गके द्वारा हुआ था। सत्सङ्गकी महिमामें कबीरने लिखा है—

कबीर संगत साधु की साईं आवै याद।
लेखे में सोई घड़ी, बाकी के सब बाद॥

महापुरुषोंके संसर्गसे ही उन्नति होती है—

'महाजनस्य सम्पर्कः कस्य नोन्नतिकारकः।'
(पञ्चतन्त्र ३।५९)

कबीर कहते हैं—

एक घड़ी, आधी घड़ी, आधी में पुनि आध।
कबिरा संगत साधु की कटै कोटि अपराध॥

भक्त चरणदास कहते हैं—

'तप के बरस हजार हैं, सतसंगति घड़ि एक।'

दादूके शब्दोंमें—

साध मिलै, तब ऊपजै हिरदै हरि का हेत।
दादू संगत साधु की कृपा करें, तब देत॥

रैदासने तो बहुत स्पष्ट कर दिया है—

गली गली को जल बहि आयो, सुरसरि जाय समायो।
संगति के परताप-महातम नाम गँगोदक पायो॥
स्वाति-बूँद बरसै फनि ऊपर सीस बिषम हुइ जाई।
वही बूँद के मोती उपजै, संगति की अधिकाई॥

संकीर्तनके सम्बन्धमें विष्णुपुराणमें लिखा है—

ध्यायन् कृते यजन् यज्ञैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन्।
यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ संकीर्त्य केशवम्॥
(६।२।१७)

'सत्ययुगमें ध्यान, त्रेतामें यज्ञ और द्वापरमें पूजन करनेसे जो फल मिलता है, कलियुगमें वही केशवका संकीर्तन करनेसे प्राप्त होता है।'

अतएव अपना जन्म-जन्मान्तर सुधारनेके लिये हमें उसीका जप-कीर्त्तन करना चाहिये, जिसकी स्तुतिमें इन्द्रद्युम्नने ब्रह्मपुराणमें कहा है—

यज्ञेशाच्युत गोविन्द माधवानन्त केशव।
कृष्ण विष्णो हृषीकेश तुभ्यं विश्वात्मने नमः॥
नमोऽस्तु ते सुसूक्ष्माय महादेवाय ते नमः।
नमः शिवाय शुद्धाय नमस्ते परमेष्ठिने॥

वैष्णव-धर्मकी लोक-कल्याण-भावना

(लेखक—पं० श्रीकिशोरीदासजी वाजपेयी, शास्त्री)

संसारका प्राचीनतम साहित्य भारतीय 'वेद' है। यह सब लोग मानते हैं कि संसारकी सबसे प्राचीन उपलब्ध पुस्तक 'ऋग्वेद' है। वैदिक साहित्यके अध्ययनसे पता चलता है कि संसारमें सबसे पहले सभ्यताका उद्गम तथा विकास इसी देशमें हुआ। उस समय अन्य देश किस अवस्थामें थे, इसका वर्णन हम भारतीयोंके मुखसे उचित नहीं जँचता।

वेदोंमें जहाँ विविध लौकिक उन्नतियोंका उल्लेख है, वहाँ पारलौकिक विषयोंकी भी पर्याप्त चर्चा है। मनुष्यके कर्तव्योंका भी वहाँ निरूपण है, जिसे 'धर्म' नाम दिया गया। वैदिक साहित्यमें स्पष्टतया आर्य-धर्मकी दो धाराएँ प्रवाहित दिखायी देती हैं—एक सात्त्विक और दूसरी राजस। सात्त्विक धाराको ही आगे चलकर 'सात्त्विक धर्म' तथा 'भागवत-धर्म' नाम मिला। इसी भागवत-धर्मको आगे चलकर 'वैष्णव-धर्म' नाम दिया गया, जब चार प्रमुख आचार्योंने एक व्यवस्थित समाजके रूपमें इसका संगठन किया। किसी विशेष उद्देश्यको लेकर जातिमें एक विशेष समाज संगठित किया जाता है और उससे सम्पूर्ण जातिको प्रेरणा मिलती है। इन चारों आचार्योंके नाम हैं—१—श्रीरामानुजाचार्य, २—श्रीनिम्बार्काचार्य, ३—श्रीमध्वाचार्य और ४—श्रीविष्णुस्वामी। ये ही वैष्णवोंके मुख्य चार सम्प्रदाय हैं। आगे चलकर इनकी शाखाएँ-उपशाखाएँ निकलीं, जिन्होंने देशमें फैलकर अपनी सुखद छाया तथा सुन्दर फलोंसे जन-कल्याण किया।

श्रीरामानुजाचार्यके सम्प्रदायसे एक मधुर धारा श्रीरामानन्दके रूपमें निकली। इस धाराने समाजको उन्नत करनेमें आशातीत सफलता प्राप्त की। धर्ममें सबका समान अधिकार तथा समाजमें बराबरीका दर्जा उद्घोषित हुआ। साधु रैदास तथा संत कबीर-जैसे रत्न सामने आये। श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदायकी भी कई शाखाएँ आगे हुईं, जिनसे समाजको बल मिला। श्रीमध्वाचार्यके सम्प्रदायमें आगे चलकर श्रीचैतन्य महाप्रभुका उदय हुआ। बंगालमें इन्होंने भक्तिकी वह सरस धारा बहायी, जो कभी कहीं अन्यत्र दिखायी न दी। उन्होंने हजारों अछूतोंको भगवन्नाममें लगाकर ऊपर उठाया और न जाने कितने मुसलमानोंको वैष्णव-धर्मकी दीक्षा दी।

कबीरसे ही प्रभावित होकर पंजाबमें गुरु नानकदेवने एक पंथ चलाया। गुरुग्रन्थसाहिबमें कबीर आदि वैष्णव संतोंकी 'वाणी' अत्यन्त आदरसे संगृहीत हुई है। उधर दक्षिणमें नामदेव, तुकाराम, समर्थ रामदास आदि शतशः संतोंने

वैष्णव-धर्मको समाजमें प्रवर्तित किया। इससे समाजका संशोधन हुआ, उसे बल मिला। यह स्पष्ट घोषणा की गयी कि—

'हरि को भजे सो हरि का होई। जाति-पाँति पूछे ना कोई॥'

वैष्णव-धर्मके समष्टि-भोजमें अब भी सभी वर्णोंके लोग एक साथ बैठकर भोजन करते हैं। इस प्रकारकी गोष्ठीमें वैष्णवेतर नहीं जाने पाते। वैष्णव-धर्मने बहुत काम किया, उस प्रतिकूल परिस्थितिमें। वह आजका युग न था। पद-पदपर विरोधका सामना करना पड़ता था। बड़ी-बड़ी यातनाएँ वैष्णवोंको उस समय सहनी पड़ीं। यदि आजका युग होता, तो बात ही कुछ और होती।

सात्त्विक व्यवहार

वैष्णव-समाजने उस समय सात्त्विक आचारके प्रचारमें अपनी पूर्ण शक्ति लगा दी। शाक्त तथा वाममार्गी लोगोंने मांस-मदिराकी जो अति कर दी थी, उसका नियन्त्रण एकमात्र वैष्णव-धर्मने किया। देवी-देवताओंके आगे पशु-बलिको रोकनेमें श्रीहरिव्यासदेव आदि वैष्णवाचार्योंने विशेष प्रयत्न किया और सफलता प्राप्त की, यह सब 'भक्तमाल'से विदित होता है। सात्त्विक आहार आदिका इतना प्रचार वैष्णव-धर्मके द्वारा हुआ कि आज भी इसके नामकी स्पष्ट छाप चमक रही है। आप किसी भी शहरके सात्त्विक होटलके द्वारपर जायँ, बड़े-बड़े अक्षरोंमें साइन बोर्ड लिखा मिलेगा—'वैष्णव होटल'। न वहाँ कोई माला रखता है, न तिलक। 'वैष्णव-होटल'का मतलब यही कि वहाँ मांस-मदिरा नहीं।

हिंदीको वैष्णव-धर्मने ही राष्ट्रभाषा बनाया—न सम्मेलनने और न कांग्रेसने। जिस भाषाको वैष्णव-धर्मने राष्ट्रभाषा बना दिया था, उसे इस युगमें सबने स्वीकार भर कर लिया है। वैष्णव-संतोंने अपनी पावन वाणीद्वारा हिंदीको देशव्यापिनी उसी समय बना दिया था। एक मद्रासी संत बंगाली या पंजाबी संतसे हिंदी भाषामें ही बात करता था। यही नहीं, मद्रास, महाराष्ट्र, गुजरात, बंगाल तथा उड़ीसा आदिके वैष्णव-संतोंने हिंदीमें रचना भी की थी। नामदेव आदिकी हिंदी कविता आज भी हमें प्रभावित करती है। नरसीका 'वैष्णव जन तो तेने कहिए, जो पीड़ पराई जाणे रे' मन्त्र महात्मा गांधी-जैसे लोकनेताका 'प्रार्थना-गीत' रहा है। इस प्रकार वैष्णव-धर्मने हिंदीको राष्ट्रभाषा बनाया, जिसे आजके प्रबुद्ध राष्ट्रने स्वीकार कर लिया है।

भाषा-प्रचारके अतिरिक्त हिंदी-साहित्यको भी वैष्णव-धर्मने लोकोत्तर बल दिया। सूर, तुलसी, कबीर आदि वैष्णव संतोंकी कृतियाँ अलग कर लें तो हिंदी-साहित्यमें रह ही क्या जाता है। कबीरकी वाणीसे तो वे जगद्वन्द्य कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुरतक प्रभावित हुए हैं, जिन्हें 'गुरुदेव' कहकर महात्मा गांधी भी सिर झुकाते थे। तुलसीका 'रामचरितमानस' आज भी गुजरात और महाराष्ट्र आदिमें उसी तरह प्रचलित है, जैसे उत्तरप्रदेशमें। सूरदासकी कला अप्रतिम है। इतर शतशः वैष्णव संतों और भक्तोंने हिंदी-साहित्यको रस दिया है, जिससे वह जीवित है। आधुनिक युगमें हिंदी-साहित्यके प्रधान परिपोषक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र भी वैष्णव थे। सार यह कि हिंदीको राष्ट्रभाषा बनानेका और इसे अमर साहित्य देनेका जो श्रेय वैष्णव-धर्मको है, वह अन्य किसी भी समाजको नहीं।

बहुत दिनतक शुद्धरूपमें रहनेके बाद वैष्णव-धर्मकी निर्मल गङ्गा आगे कुछ दूसरे रूपमें आ गयी। जैसे अन्य मत आगे चलकर कुछ विकृत हो जाते हैं, वही हाल वैष्णव-धर्मका भी हुआ। प्रतिगामी शक्तियोंसे यह दब गया और संकीर्णताके पचड़ेमें यह भी पड़ गया। परंतु इससे प्रेरणा लोगोंको अवश्य मिली। समयपर इस पुण्य-वटकी जड़ें बहुत दूर जाकर ऊपर निकलीं, नये रूपमें। बंगालमें श्रीचैतन्य-देव आदिने वैष्णव-धर्मकी जो सरस धारा प्रवाहित की थी, उसकी तरी शुष्क न हुई। अंग्रेजी राज्य आनेपर वहाँ राजा राममोहन रायने 'ब्रह्मसमाज'की स्थापना की, वैष्णव-धर्मके सिद्धान्तोंसे प्रेरित होकर। यह सब ब्रह्मसमाजका इतिहास तथा सिद्धान्त-ग्रन्थ देखनेसे स्पष्ट होता है। ब्रह्मसमाजने भी भगवद्भक्तिके साथ अन्य अनेक समाज-सुधारके काम अपनाये। परंतु इस 'समाज'का प्रसार इस देशमें न हो सका। कारण यह था कि इसके प्रवर्तक संस्कृत-साहित्यसे उतने परिचित न थे और वेद आदिको वैसी प्रधानता न देते थे। इस देशमें श्रद्धा बद्धमूल है। वेदका नाम लेकर जो कहो, मान लिया जायगा। उसे छोड़कर जो कुछ कहा जायगा, उसे कोई सुनेगा नहीं। इस तत्त्वको आर्यसमाजके प्रवर्तक स्वामी दयानन्द सरस्वतीने अच्छी तरह पहचान लिया और समाज-सुधारके उसी कार्यक्रमको वेद-मूलक कहकर प्रचार किया, जिसे 'ब्रह्मसमाज' ने अग्रसर किया था। स्वामीजी सफल हुए और देशभरमें आर्यसमाजका डंका बजने लगा। स्वामीजीपर भी वैष्णव-धर्मके सिद्धान्तोंका प्रभाव पड़ा था।

वैष्णव-धर्ममें एकेश्वरवाद

वैष्णव-धर्मका अपना 'दर्शन' है, अपना सिद्धान्त है। इस धर्ममें सर्वोपरि प्रमाण 'वेद' हैं। उसीके अनुसार 'स्मृति' आदि भी 'प्रमाण' हैं। वैष्णव-धर्मके दार्शनिक सिद्धान्तोंकी सूक्ष्मतामें न जाकर यहाँ केवल सामाजिक प्रकरण ही हम लेना चाहते हैं। वैष्णव-धर्मका गहन दार्शनिक साहित्य संस्कृतमें एक अमूल्य निधि है।

वैष्णव-धर्म 'एकेश्वरवाद'का प्रतिपादन करता है। भगवान्‌की 'अनन्य' उपासनाका यहाँ महत्त्व है। वैष्णव-धर्म भगवान्‌को सविशेष या सगुण मानता है और अवतारवादका पोषक है। वैष्णवोंने विशेष समयमें राम और कृष्णकी उपासना-पर जोर दिया। इससे देशको प्रत्यक्ष अवलम्बन मिला। जिन देवी-देवताओंकी पूजा शाक्तोंमें और वाममार्गियोंमें प्रचलित थी और जिन्हें मद्य-मांस प्रिय हैं, उन्हें वैष्णव-धर्मने बिल्कुल छोड़ दिया। काली, भैरव आदिकी पूजा वैष्णव नहीं करते; क्योंकि वहाँ पशु-बलिका विधान है। सात्त्विक देवता (हनुमान् आदि)की पूजा होती है उन्हें भगवान्‌के भक्त समझकर, भगवान् समझकर नहीं। ईश्वर तो एक ही है। विशिष्ट शक्तिसे सम्पन्न लोकहितकारक जीव ही वैष्णव-धर्मके पूज्य 'देवता' हैं। आगे चलकर वैष्णव-धर्ममें एक निर्गुण धारा भी निकली, जिसे कबीर आदिसे बल मिला। यों उपासनाकी दृष्टिसे एकेश्वरवादी वैष्णवधर्ममें दार्शनिक दृष्टिसे दो भेद हो गये—सगुणवादी और निर्गुणवादी। व्यवहार तथा आचारमें सब वैष्णव-सम्प्रदाय तथा उनकी शाखा-प्रशाखाएँ एकमत हैं।

'वैष्णव जन तो तेने कहिये'

(लेखक—श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)

'वैष्णव' कौन ?

किसे कहते हैं 'वैष्णव' ?

एक सीधा, सरल प्रश्न।

उत्तर भी सरल है—"विष्णुको जो माने, वह 'वैष्णव'। विष्णुमें जिसकी आस्था हो, विष्णुमें जिसकी श्रद्धा हो, विष्णु जिसका आराध्य हो, विष्णुके पाद-पद्मोंमें जिसने अपनेको समर्पित कर दिया हो—वह है 'वैष्णव'।"

× × ×

इस वैष्णवके लक्षण क्या हैं ?

कौन-से हैं वे लक्षण, जिन्हें देखते ही पता चल जाय कि अमुक व्यक्ति वैष्णव है ?

ऊपरी लक्षण—जप, माला, छापा, तिलक—देखकर बहुत लोग अंदाज लगाते हैं कि अमुक व्यक्ति वैष्णव है।

परंतु यह कसौटी सच्ची कसौटी नहीं है।

पाखंडी भी इस कसौटीपर खरे उतर सकते हैं।

जप माला छापें तिलक सरै न एकौ कामु।
मन काँचै नाचै वृथा, साँचै राचै रामु॥

—बिहारी

पाखंडी भी जप कर सकता है। गलेमें मोटी-मोटी मालाएँ पहन सकता है और गोमुखीमें हाथ डालकर घंटों माला फिरा सकता है। अथवा तिलक लगा सकता है, भस्म लगा सकता है। पाखंडी भी कथा-कीर्तन कर सकता है, वेद-पाठ कर सकता है, पूजा-उपासना, जप, यज्ञ कर सकता है। पर यदि हृदयमें राम नहीं हैं, हृदयमें विष्णु नहीं हैं, हृदयमें कृष्ण नहीं हैं, हृदयमें सत्य नहीं है, प्रेम नहीं है, करुणा नहीं है तो यह सब व्यर्थ है, बेकार है, ढोंग है, पाखंड है। वैष्णव-शिरोमणि नरसी मेहताके शब्दोंमें—

शुं थयुं स्नान-पूजा ने सेवा थकी, शुं थयुं घर रही दान दीधे ?
शुं थयुं धरी जटा, भस्म लेपन कर्ये, शुं थयुं बाळ लोचंन कीधे ?
शुं थयुं तप ने तीरथ कीधा थकी, शुं थयुं माळ ग्रही नाम लीधे ?
शुं थयुं तिलक ने तुळसी धार्या थकी, शुं थयुं गंगाजळ पान कीधे ?
शुं थयुं वेद व्याकरण वाणी वधे, शुं थयुं राग ने रंग जाण्ये ?
शुं थयुं खट दरशन सेव्या थकी, शुं थयुं वरणना भेद आण्ये ?

स्नान, पूजा, सेवा, दान, माला पहनना, बालोंका लुञ्चन, तप, तीर्थ, मालापर जप, तुलसी-धारण, तिलक, भस्म लगाना, गङ्गाजलका पान, वेद-व्याकरणका पाठ, राग-रंग, षड्दर्शनका अभ्यास, वर्णाश्रम-धर्मका पालन आदि करनेसे क्या होगा ? यह तो सारा प्रपञ्च है। इससे पेट भर सकता है, धन-सम्पत्ति और कीर्ति मिल सकती है, मान और प्रतिष्ठाकी प्राप्ति हो सकती है; पर इन सब बाहरी साधनोंसे 'वैष्णव' नहीं बना जा सकता।

× × ×

तब 'वैष्णव' कैसे बना जा सकता है ?

उपाय उसका भी है; पर कोई उस उपायको करे, तब तो। वैष्णव बननेकी पहली शर्त है—

'पीड़ पराई जाणे रे !'

नरसी मेहता थे सच्चे वैष्णव।

उनकी वैष्णवकी कसौटी भी सची है। वे कहते हैं—

'वैष्णव जन तो तेने कहिये, जे पीड़ पराई जाणे रे !'

वैष्णव वह, जो परायी पीड़ाको जाने। पराये दुःख-दर्दको समझे।

वैष्णव वह, जो दूसरेके कष्टको, दूसरेकी वेदनाको, मुसीबतको, दूसरेके संतापको, दूसरेके दर्दको महसूस करे।

वैष्णव वह, जो पराई पीड़ाको समझकर उस पीड़ाको मिटानेके लिये कृतसंकल्प हो। कोरी सहानुभूतिसे काम चलनेवाला नहीं। पीड़ित और दुःखित, लाञ्छित और अपमानित, शोषित और तापित व्यक्तिको देखकर जिसका हृदय द्रवित नहीं होता, उसकी वेदनाको, उसके दुःखको, उसकी पीड़ाको मिटानेके लिये जो आतुर नहीं होता, वह कैसा वैष्णव ?

तो परायी पीड़ाको समझना—यह है वैष्णवकी पहली कसौटी।

अर्थात् ?

वैष्णवका हृदय करुणासे ओतप्रोत होना चाहिये, प्रेमसे सराबोर होना चाहिये। हृदय जब करुणा, दया, प्रेम और क्षमासे लबालब होता है, तभी मनुष्य समझ पाता है दूसरेकी पीड़ाको।

तभी मनुष्य दौड़ पाता है दूसरेकी सेवाको।

अन्यथा—लोग कराहते हैं, छटपटाते रहते हैं, रोते-चिल्लाते रहते हैं, किंतु हमारे कानोंपर जूँतक नहीं रेंगती।

वैष्णव तो तुरंत दौड़ पड़ेगा कष्ट-पीड़ितके दुःख-दर्दको दूर करनेके लिये।

× × ×

बात है बिहारके चम्पारनकी। गोरे निलहोंके जुल्मके खिलाफ सत्याग्रह चल रहा था उन दिनों।

शामका वक्त, झुटपुटा हो गया। सत्याग्रही लोग आश्रममें पहुँचे तो गांधीजीने पूछा—'तुम्हारे साथ जो लोग थे, वे सब आ गये ? अमुक भाई तो दीखता नहीं। कहाँ है वह ?'

किसीको कोई खबर नहीं।

लालटेन लेकर गांधीजी निकले उसे खोजने।

देखा, वह थका-माँदा बैठा था एक पेड़के नीचे।

पैरमें घाव। महारोगी—कोढ़ी था वह बेचारा।

गांधीजीने अपनी चादर फाड़कर उसके खूनसे सने पैरोंको लपेट दिया। कहा,

'तुमसे चला नहीं जाता था तो मुझसे कहना न चाहिये था !' सहारा देकर वे उसे आश्रमपर ले आये।

आश्रममें उसे लाकर प्रेमसे उसे पास बैठाया। उसके पैर अच्छी तरह धोये, मरहम-पट्टी की और आरामसे उसे सुलाया ! इसे कहते हैं 'वैष्णवता'।

× × ×

कस्तूरबा पड़ी थीं बीमार, पूनाके आगाखाँ महलमें।

पर कैदी तो कैदी।

गांधी-जैसे कैदीपर भी ब्रिटिश सरकारने अनेक बंदिशें लगा रखी थीं। 'बा'को एलोपैथी रुचती न थी। एक वैद्य शिवशर्मा नामके उन्हें देखते, दवा देते; पर रातमें उन्हें जेलके भीतर रुकनेकी अनुमति नहीं थी। लाचार, बेचारे जेलके दरवाजेपर मोटरमें पड़े रहते।

रातको प्रायः 'बा'की हालत बिगड़ती। वैद्यकी जरूरत अनुभव होती, तब द्राविड़ प्राणायाम करना पड़ता। 'बा'की चर्यामें लगी मनु सिपाहीको जगाती। सिपाही जाता केटली साहबके पास, जेलके फाटककी चाबी माँगने। फिर जमादारको जगाना पड़ता। जमादार फाटकके चौकीदारको जगाता, चौकीदार गोरे सार्जेंटको। इतनी कसरतके बाद जेलका फाटक खुलता, तब वैद्यजी भीतर प्रवेश कर पाते और 'बा'के पास जाकर उसे देखकर उपयुक्त दवा दे पाते ! गांधीजीको 'बा'के लिये आठ-दस आदमियोंकी नींदमें इस तरहसे खलल पड़ना कचोटने लगा।

आखिर १६ फरवरी १९४४ को बीमारके बिछौनेसे रातके दो बजे उन्होंने सरकारको लिख ही दिया—'मुझे यह असह्य लगता है कि मेरी पत्नीके लिये इतने लोगोंको सारी रात बिना काम जागना पड़े, वह भी अनिश्चित कालतक।

इसे बचानेका उपाय यही है कि वैद्यजीको रात-दिन जेलके भीतर रहने दिया जाय। यदि कल राततक कोई उचित उत्तर न मिला तो मैं वैद्यका इलाज बंद करवा दूँगा।' आखिर सरकार पसीजी। वैद्यजीको भीतर रहनेकी अनुमति मिली। यदि अनुमति न मिलती तो गांधीजी 'बा'की मृत्युका खतरा उठानेके लिये तैयार हो गये थे; पर उन्हें यह स्वीकार नहीं था कि उनकी पत्नीके लिये आठ-दस आदमियोंकी नींद हराम की जाय!

× × ×

मालवीयजी महाराज, पण्डित मदनमोहन मालवीय बीमार थे।

एक रातको उन्हें शौचालयमें जानेकी जरूरत लगी। वे उठकर उधर चले गये।

एक बेटा पास ही था, खटकेसे जगा तो बोला—'बाबूजी, आपने हममेंसे किसीको जगा क्यों नहीं लिया?'

बोले—'क्यों किसीकी नींद खराब करता?'

इसे कहते हैं—'वैष्णवता'!

× × ×

गांधीजी जेलमें थे, सन् १९२२ में। उनकी सेवाके लिये एक बद्दू कैदी नियुक्त था।

एक दिन उसे बिच्छूने डंक मार दिया।

रोता-चिल्लाता वह पहुँचा गांधीजीके पास।

गांधीजीने उसके घावको धोकर अपना मुँह लगाकर बिच्छूका विष खींच लिया।

इसे कहते हैं—'वैष्णवता'।

× × ×

वैष्णव इस प्रकार जहाँ कहीं कष्ट देखता है, उसे दूर करनेके लिये आतुर हो उठता है।

इतना ही नहीं, वह—

'पर दुःखे उपकार करे, तोये मन अभिमान न आणे रे॥'

पराये दुःखको दूर करनेमें वह जी-जानसे जुट जाता है; परंतु उसमें उसे सफलता मिलती है तो वह उसका घमंड नहीं करता।

आजके जगत्‌का प्रवाह ऐसा है कि हम अपनी सेवाकी मोटी-मोटी रिपोर्टें छपाते हैं। कोई पीठ ठोके-न-ठोके, हम अपने-आप अपनी पीठ ठोक लेते हैं। दरवाजेपर बैठकर सबको सुनाते हैं कि 'मैंने फलाँ-फलाँकी सेवा की, फलाँ-फलाँका भला किया!' बहुत बड़ी बात है यदि मनुष्यमें सेवाका अहंकार न आये और वह उसका डंका न पीटे। परंतु वैष्णव तो पूर्णतया निरभिमान होता है। वह तो प्रभुको धन्यवाद देता है कि उसने उसे किसीकी सेवा करनेका अवसर प्रदान किया। प्रभुने उसे जो शक्ति दी है, सामर्थ्य दी है, शरीर दिया है, वाणी दी है, विद्या-बुद्धि और धन-सम्पत्ति दी है, उसका कुछ सदुपयोग कर वह किसीके आँसू पोंछ सका—यह उसका सौभाग्य है। इसमें अहंकार और अभिमानकी बात ही क्या।

× × ×

वैष्णव-शिरोमणि नरसीने वैष्णवकी अन्य कसौटियाँ इस प्रकार बतायी हैं—

'सकल लोक मां सहु ने वंदे, निंदा न करे केनी रे।
वाच-काछ-मन निश्चळ राखे, धन-धन जननी तेनी रे॥'

वह सबकी वन्दना करता है, किसीकी निन्दा नहीं करता। वह मनसा-वाचा-कर्मणा दृढ़ रहता है। वह अपनी वाणी दृढ़ रखता है, अपना आचार दृढ़ रखता है, अपना मन दृढ़ रखता है। कहीं ढुलमुलपना नहीं, कहीं फिसलना नहीं।

ऐसा जो वैष्णव है, धन्य है उसकी जन्मदात्री माँ।

× × ×

'समदृष्टि ने तृष्णा त्यागी, परस्त्री जेने मात रे।
जिह्वा थकी असत्य न बोले, परधन नव झाले हाथ रे॥'

वैष्णव समदृष्टि होता है।

समदृष्टि माने?

समदृष्टि वह है, जो सभीको एक समान मानता है।

उसके लिये ब्राह्मण जितना अपना है, चण्डाल भी उतना ही।

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः॥

(गीता ५। १८)

'विद्या और विनयसे ओत-प्रोत ब्राह्मण, गौ, हाथी, कुत्ता, कुत्तेको पकाकर खानेवाला चण्डाल—पण्डितकी दृष्टिमें ये सभी समान होते हैं।'

वैष्णव तृष्णारहित होता है। उसके मनमें किसी वस्तुकी तृष्णा नहीं रहती। उसे न धन चाहिये न पद। उसे न वैभव चाहिये न विलास। उसे न योग चाहिये न सम्मान। उसे न पुत्रैषणा रहती है न वित्तैषणा, न लोकैषणा।

परायी स्त्री वैष्णवके लिये माताके समान होती है। पतिव्रता स्त्रीकी भाँति वह पत्नी-व्रतका पालन करता है। वह मनसा-वाचा-कर्मणा ब्रह्मचर्यका पालन करता है।

वैष्णवकी जिह्वा पवित्र रहती है। वह सत्यव्रतका पालन करता है। असत्य वह बोल नहीं सकता। उसके मुखसे अपवित्र वाणी, अपवित्र शब्द निकल नहीं सकते। 'अपवित्र वाणी नको माझा मुखी'—यह आदर्श रहता है, उसका।

वैष्णव पराये धनको हाथ नहीं लगाता। परायी वस्तु वह छूता नहीं। पराया धन, परायी सम्पत्ति उसके लिये विषके समान है। एक वे हैं, जिन्हें 'राम-राम जपना—पराया माल अपना'—कहना स्वाभाविक लगता है। रात-दिन हम इन्हीं दंद-फंदोंमें लगे रहते हैं कि कैसे परायी जेबके पैसे निकलकर हमारी जेबमें आ जायँ। पर वैष्णव तो दाँत खोदनेकी एक सींक भी यों ही नहीं लेना पसंद करता। वह अपने पसीनेकी कमाईसे ही, ईमानदारीकी कमाईसे ही गुजर करता है। कबीरका यह आदर्श उसके आगे रहता है—

रूखी-सूखी खाय कर ठंडा पानी पीव।
देख पराई चोपड़ी, मत ललचावे जीव॥

× × ×

इसके अतिरिक्त, वैष्णवमें और भी कुछ गुण होते हैं—

'मोह माया व्यापे नहि जेने, दृढ़ वैराग्य जेना मन मारे।
रामनाम शुं ताळी लागी, सकळ तीरथ तेना तन मां रे॥'

वैष्णवको मोह-माया नहीं व्यापती। मायातीत होता है, वह। 'यह मेरा', 'यह पराया', ऐसी कोई भावना नहीं रहती उसमें।

वैष्णव वीतराग होता है। जगत्के किसी प्राणी-पदार्थके प्रति उसे आसक्ति या मोह नहीं रहता।

और राम-नाममें उसकी ताली लगी रहती है। रात-दिन वह राम-राम रटता रहता है।

गांधीजीकी राम-नाममें जो श्रद्धा थी, वह सच्चे वैष्णवकी श्रद्धा थी। और यह तो है ही कि जीवनभर जिस वस्तुका अभ्यास होगा, वही अन्तकालमें भी स्मरण रहता है। तभी तो भगवान् कहते हैं—

'तस्मात् सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।'
(गीता ८। ७)

'सदा मेरा स्मरण करते रहो और युद्धमें, अपने कर्तव्य कर्ममें प्रवृत्त रहो।'

राम-नामके सतत स्मरणका ही यह सुफल था कि गांधीजीको जब गोली लगी, तब उनके मुखसे निकला—

'राम-राम!'

× × ×

ऐसा वैष्णव पवित्रतम होता है। उसके शरीरमें मानो सभी तीर्थोंका वास होता है। तरन-तारन होता है वह।

वैष्णवका जीवन काम, क्रोध, लोभ, कपट आदि सभी दुर्गुणोंसे शून्य होता है—

'वण लोभी ने कपट रहित छे, काम-क्रोध निवार्यां रे।
भणे नरसैयो, तेनुं दरसण करतां कुळ एकोतेर तार्यां रे॥'

उसके दर्शनसे अनेक कुलोंका उद्धार हो जाता है।

× × ×

इसका सीधा-सादा अर्थ यह है कि वैष्णवमें ये गुण होने ही चाहिये—

वह पराये दुःख-दर्दको महसूस करे, फिर भी निरभिमान रहे।

वह नम्रातिनम्र हो। वह सबकी वन्दना करे, निन्दा किसीकी न करे। वह मनसा-वाचा-कर्मणा पवित्र रहे, दृढ़ रहे। वह काम, क्रोध, लोभ, मोह, कपट आदि दुर्गुणोंसे मुक्त हो। वह अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह आदि व्रतोंका पालन करता हो। वह मायातीत, वैराग्यवान् और रात-दिन प्रभुस्मरण करनेवाला हो।

× × ×

मतलब?

वैष्णव होता है—प्रेमका पुतला, करुणाका पुतला, सत्यका पुतला। सेवा उसका लक्ष्य, आत्मसंशोधन उसका मार्ग और निर्विकारता उसका पाथेय।

काश, हम कभी इस पवित्र आदर्शका पालन कर इस कसौटीपर खरे उतर सकें । तब हम कहे जायँगे—'वैष्णवजन' !

आज तो हमारा हाल उल्टा है । हम बातें तो करते हैं बहुत ऊँची-ऊँची, पर चलते हैं उल्टे रास्ते । वही हाल है—

'उसकी बातों से समझ रखा है तुमने उसे खिज्र*
उसके पाँवों को तो देखो कि किधर जाते हैं ।'

ये लक्षण नहीं हैं वैष्णवजन बननेके ।

पर बात हताश होनेकी नहीं है ।

हम भी वैष्णवजन बन सकते हैं, जरूर बन सकते हैं । जी-जानसे हम प्रयत्न करके देखें, इन लक्षणोंको अपने जीवनमें धारण करनेका । फिर तो बेड़ा पार है ।

'न हि कल्याणकृत् कश्चिद् दुर्गतिं तात गच्छति ॥'

(गीता ६ । ४०)

'क्योंकि, हे प्यारे ! आत्मोद्धारके अर्थात् भगवत्प्राप्तिके लिये कर्म करनेवाला कोई भी मनुष्य दुर्गतिको नहीं प्राप्त होता ।'

वैष्णवधर्म : अहिंसा-भावनाका उद्गम-स्रोत

(लेखक—श्रीश्रीरंजन सूरिदेवजी, एम्० ए०, साहित्य-आयुर्वेद-पुराण-पाली-जैनदर्शनाचार्य, व्याकरणतीर्थ, साहित्यरत्न, साहित्यालंकार)

जागतिक जीवोंमें सुख-शान्तिकी भावनाके उदयके साथ ही अहिंसा प्रतिष्ठित हुई । अहिंसा मानवकी उदार वृत्तिकी परिचायिका है और उदारतावादी दृष्टिकोण वैष्णव-धर्मकी ही महर्घ देन है । इसीलिये वैष्णवधर्म परम उदार धर्मोंमें पांक्तेय ही नहीं, शीर्षण्य भी है । एक तो वैदिक धर्म स्वयमेव उदार है और उसमें भी वैष्णवधर्म तो अतिशय उदार माना जाता है । वैष्णवधर्मका उपजीव्य ग्रन्थ 'श्रीमद्भगवद्गीता' प्राचीन भारतीय साहित्यमें अपनी समन्वयात्मक भूमिकाके लिये चिरख्यात रही है । वैष्णवधर्मको सवर्णवादके प्रति पूरी आस्था है, फिर भी वह अपनी उदारतावादी सूक्ष्मेक्षिकाके कारण भक्ति और उपासनाके क्षेत्रमें प्रत्येक वर्णको समान अधिकार देनेका आग्रही है । ज्ञातव्य है कि वैष्णवधर्म भक्तिप्रधान है और भक्तिका मानव-हृदयसे नेदिष्ठ सम्बन्ध है । समस्त मानव-हृदय एक है । फलतः, मानवैक्यवादी वैष्णवधर्म किसी भी मानवको व्यापक भगवत्प्रेमसे वञ्चित रखनेका पक्षपाती नहीं है । इसीलिये वैष्णवधर्मने अपना प्रवेश-द्वार सबके निमित्त सदाके लिये अर्गलाविहीन कर दिया है ।

मानववादी सिद्धान्तोंमें अहिंसा सर्वप्रमुख है । अहिंसा ही मानवका सत्कर्म या सद्धर्म है । चूँकि वैष्णवधर्म उदार मानवतावादी दृष्टिकोणका समर्थक है, इसलिये अहिंसासे उसका नैतियक सम्बन्ध सहज ही जुड़ जाता है । अहिंसा-मूलक होनेके कारण ही वैष्णवधर्मके द्वारा आधुनिक भारतीय समाजमें मानसिक, वाचिक और कायिक परिशुद्धि और पवित्रताका विनियोग हो पाया है । भारतीय जनजीवनमें आन्तर या बाह्य शुचिताको विन्यस्त करनेका सम्पूर्ण श्रेय वैष्णव-धर्मको ही प्राप्त है । इस भारत-भूपर अहिंसाके उद्घोषक धर्मोंमें वैष्णवधर्मकी प्रभुता सर्वातिशायिनी है, यह इतिहास-सिद्ध है । कालान्तरमें वैष्णवधर्मके परवर्त्ती जैन और बौद्ध-धर्मोंको प्रमुख अहिंसावादी धर्मके रूपमें जो विश्वव्यापिनी सत्ख्याति मिली, उसका आदिकारण वैष्णवधर्मद्वारा प्रवर्त्तित अहिंसाका अविकल अनुकरण ही है । अहिंसा-सिद्धान्तके प्रवर्त्तन-के संदर्भमें वैष्णव या जैन-बौद्धधर्मोंकी पूर्व-परवर्त्तिताके विषयमें मतवैभिन्न्य भी पाया जाता है । इस सम्बन्धमें 'भागवत सम्प्रदाय' के श्रुतधी लेखक पं० श्रीबलदेव उपाध्यायका तर्क बड़ा ही सशक्त है कि 'जो पाश्चात्त्य विद्वान् अथवा तदनुयायी भारतीय विद्वान् अहिंसामन्त्रकी सर्वप्रथम अवतारणाका श्रेय बौद्ध और तदनन्तर जैनधर्मको देते हैं, वे वस्तुतः वैष्णवधर्मके ऐतिहासिक परिवृत्तसे तो अपरिचित हैं ही, भागवतधर्मसे भी उनका महान् अपरिचय है । यही कारण है कि पाश्चात्त्य दृष्टिका विचार स्वतः वदतोव्याघातका एक चिन्तास्पद उदाहरण बन गया है ।

'स्पष्ट है कि तथाकथित पाश्चात्त्य विचारक वैष्णवधर्मकी

* पथप्रदर्शक ।

अपेक्षा प्रथमतः बौद्धधर्मसे ही परिचित हुए। अतः उन्होंने बौद्धधर्मको ही अहिंसाका प्रथम प्रचारक माना। परंतु जब प्रबल युक्तियों और प्रमाणोंके आधारपर जैनधर्मकी बौद्धधर्मसे पूर्ववर्त्तिता या पूर्वभाविता सिद्ध हो गयी, तब वे जैनधर्मको ही अहिंसा-सिद्धान्तके प्रथम प्रवर्त्तनका श्रेय देने लगे। इससे जैनधर्मको स्वतन्त्र धर्म माननेवाले जैन-विचारकोंको बड़ा बल मिला और उन्होंने तर्क उपस्थित किया कि जैनोंके आद्य तीर्थंकर श्रीऋषभदेव राम और कृष्णके भी पूर्ववर्त्ती रहे और उनके समयसे ही अहिंसा-सिद्धान्तका सूत्रपात हुआ। इतना ही नहीं, ब्राह्मणधर्मने जैन और बौद्धधर्मोंके अनेक मन्तव्योंको भी आत्मसात् किया, यह भी कहा गया। कहना न होगा कि यह विषय बड़ा ही खण्डन-मण्डन और शास्त्रार्थका है। परंतु, निष्कर्षरूपमें, ऐतिहासिक तथ्य या सचाई यही है कि वैष्णवधर्मने ही सर्वप्रथम वैदिकधर्मके हिंसामय यज्ञोंके विरुद्ध विरोधका झण्डा ऊपर उठाया। वैष्णवधर्म पूर्णरीतिसे वैदिक है, परंतु वैदिक कर्मकाण्डकी उपयोगिता मानते हुए भी इस धर्मने हिंसाप्रधान यज्ञोंके प्रति अपनी प्रखर विरोध-भावनाका प्रदर्शन किया है।[1]'

इस सम्बन्धमें महाभारतके 'नारायणीयोपाख्यान' (शान्ति-पर्व ३३६ । १०)के भागवतधर्मानुयायी राजा उपरिचरका आख्यान उदाहरणीय है। राजाने वैदिक-धर्मानुकूल अश्वमेध-यज्ञ किया; किंतु उसने यथाविहित पशुके आलम्भन-विधानका बहिष्कार कर यज्ञमें यवकी आहुति प्रदान की; क्योंकि वह स्वभावसे ही परम वैष्णव, पवित्रात्मा एवं अहिंसावादी राजा था।

स्वयं भगवान्‌ने वैष्णवधर्मके सिद्धान्तका निर्देश करते हुए ब्रह्मा आदि देवोंसे कहा था कि 'जहाँ वेद, यज्ञ, तप, सत्य तथा इन्द्रियसंयम अहिंसा-धर्मसे संयुक्त हों, वहीं आप निवास करें।' मूल श्लोक इस प्रकार है—

यत्र वेदाश्च यज्ञाश्च तपः सत्यं दमस्तथा ॥
अहिंसाधर्मसंयुक्ताः प्रचरेयुः सुरोत्तमाः।
स वो देशः सेवितव्यः ... ...॥

(महाभारत, शान्तिपर्व ३४० । ८८–८९)

अहिंसाका पक्षपाती होनेके कारण प्रसिद्ध सांख्य और योग दर्शनोंको भी भागवत या वैष्णवधर्मसे सहज सम्बद्ध माना गया है। वैदिकेतर जैन दार्शनिक गुणरत्नके द्वारा भी 'षड्दर्शनसमुच्चय'की टीकामें सांख्य और योग दर्शनोंके अनुयायियोंको 'भागवत' नामसे अभिहित किया गया है। कहना न होगा कि सांख्य तथा योगकी दृष्टिमें समस्त यम-नियमोंमें अहिंसा सार्वभौम धर्म है। इसीलिये वैष्णवधर्मका समुद्घोष है—'**अहिंसा परमो धर्मः**।'

वैष्णवधर्मने पशुयागके संदर्भमें जिस अहिंसाका संकेत किया, उसीका उत्तरकालीन विकास परवर्त्ती वैष्णव आचार्यों एवं तदितर जैनधर्म और बौद्धधर्मके प्रवर्त्तकोंने ततोऽधिक सूक्ष्मता और व्यापक विवेचनाके साथ सम्पन्न किया। पातञ्जलयोगसूत्र (२ । ३०) के भाष्यकारने बताया कि 'सर्व-प्रकारसे, सर्वकालमें, सर्वप्राणियोंके साथ अभिद्रोह न करना ही अहिंसा है'—

'**तत्र अहिंसा सर्वदा सर्वभूतेष्वनभिद्रोहः**।'

'गीता' में अहिंसाकी व्याख्या करते हुए भगवान् श्रीकृष्णने कहा है—

समं पश्यन् हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम्।
न हिनस्त्यात्मनाऽऽत्मानं ततो याति परां गतिम्॥

(१३ । २८)

अर्थात् ज्ञानी पुरुष ईश्वरको सर्वत्र समानरूपसे व्याप्त देखकर हिंसामें प्रवृत्त नहीं होता; क्योंकि वह जानता है कि हिंसा करना स्वयं आत्मघात करनेके समान है और इस प्रकार हृदयके शुद्ध और पूर्णरूपसे विकसित होनेपर वह उत्तम गतिको प्राप्त होता है, यानी उसे इस विश्वके बृहत्तम तत्त्व ब्रह्मकी प्राप्ति होती है।

'कूर्मपुराण'में अहिंसाकी जो परिभाषा उपन्यस्त हुई है, उसमें भी 'पातञ्जल महाभाष्य'के मन्तव्यकी बीजध्वनि पूर्व-मुखर है—

कर्मणा मनसा वाचा सर्वभूतेषु सर्वदा।
अक्लेशजननं प्रोक्ता त्वहिंसा परमर्षिभिः॥

(कू० पु०, उ० ११ । १४)

अर्थात् मन, वचन और कर्मसे किसी भी प्राणीको किसी प्रकारसे भी कष्ट न पहुँचानेको ही महर्षियोंने 'अहिंसा' कहा है। इसी परिभाषाकी अनुध्वनि भगवान् महावीरकी वाणीमें भी हुई है—'**अहिंसा निवणा दिट्ठा सव्वभूएसु संजमो**।' प्राणिमात्रके प्रति जो संयम है, वही पूर्ण अहिंसा है।

[1] द्र० 'भागवत सम्प्रदाय' पं० श्रीबलदेव उपाध्याय, ना० प्र० सभा, काशी, पृ० ७।

'सुत्तनिपात'के 'धम्मिक सुत्त'में अहिंसाकी व्याख्या करते हुए महात्मा बुद्धने कहा है—

पाणे न हाने न च घातयेय न चानुमन्या हननं परेसं।
सब्बेसु भूतेसु निधाय दंडं ये थावरा ये च तसंति लोके॥

अर्थात् 'त्रस या स्थावर जीवोंको स्वयं न मारे, न मारनेका आदेश दे और न मारनेवालेका अनुमोदन करे।'

"वैष्णव जन तो तेने कहिए जे पीड़ पराई जाणे रे।' के संगाता महात्मा गांधीने "सम्पूर्ण जीवधारियोंके प्रति दुर्भावनाके सम्पूर्ण अभाव' को ही पूर्ण अहिंसा माना है।' (गांधी-वाणी, पृ० ३७)।

गांधीजीके अनन्य अनुयायी एवं परम वैष्णव श्रीमश्रूवालाने भी 'स्वार्थवृत्ति-रहित न्यायपूर्ण भावना' में ही अहिंसाकी प्रोज्ज्वल प्रतिकृतिके दर्शन किये हैं।

इस प्रकार वैष्णवमतानुयायी सभी प्राचीन और अर्वाचीन आचार्योंने "प्राणिमात्रको कष्ट न पहुँचाने और सर्वप्राणियोंके प्रति समताका भाव रखनेको ही 'अहिंसा' कहा है।" इस प्रकार यह कहना अनपेक्षित न होगा कि आधुनिक युगमें जनकल्याण-भावनाकी जो परिव्याप्ति परिलक्षित होती है, उसका मूल उत्स वैष्णवधर्मके अहिंसावादमें ही निहित है। भूतदयाकी भाव-निर्झरिणीका उद्गम-स्रोत वैष्णवधर्म ही है।

वैष्णवधर्ममें अहिंसा

(लेखक—पं० श्रीगोविन्ददासजी 'संत' धर्मशास्त्री, पुराणतीर्थ)

अनन्तकोटिब्रह्माण्डनायक करुणा-वरुणालय सर्वेश्वर भगवान् श्रीविष्णुकी सर्वतोभावेन अनन्य उपासना करनेवाले उपासक-जनोंको 'वैष्णव' और उनके द्वारा परिपालित श्रीविष्णु-प्रिय विशेष नियमोंको 'वैष्णवधर्म' कहते हैं।

वैष्णवधर्म एक विश्वव्यापी विशाल धर्म है। जिस प्रकार श्रीविष्णु अनन्त और अनादि हैं, ठीक उसी प्रकार उनका यह धर्म भी अनन्त और अनादि है। इस कारण वैष्णवधर्म ही परम धर्म है। इसीको सनातन, भागवत एवं सद्धर्म आदि नामोंसे व्यवहृत किया जाता है।

वैष्णवधर्मका प्रतिपालन करनेवाले वैष्णवमें स्वभावतः हिंसाका अभाव रहता है। अर्थात् मन, वाणी और कर्मद्वारा उससे किसी भी प्रकारकी हिंसा नहीं बनती। इस धर्ममें सात्त्विक विचारोंपर विशेष बल दिया गया है। हिंसादि भावोंके लिये इसमें लेशमात्र भी गुंजाइश नहीं है। इसी कारण वैष्णवधर्म सर्वलोकप्रिय होनेका अपना एक विशेष महत्त्व रखता है।

'सर्वभूतहिते रताः' (गीता ५।२५), **'आत्मवत्सर्वभूतेषु'** तथा **'सर्वे भवन्तु सुखिनः'**के भावोंका जन्मसे लेकर मरणपर्यन्त क्रियात्मकरूपमें परिपालन करनेके आदेशने इसके प्रति विचारशील पुरुषोंके हृदयको और भी आकृष्ट कर दिया है। अहिंसाप्रेमी महापुरुषोंने इसे अपनाया और मन, वाणी तथा कर्मद्वारा संसारकी भलाईके लिये इस धर्मपर आरूढ होनेका संकेत भी किया। उन्होंने यहाँतक बतलाया कि किसी एक व्यक्ति या समूहका ही नहीं, अपितु स्थावरसे लेकर जंगमपर्यन्त सभीका यदि हित हो सकता है तो वह एक वैष्णवधर्मसे।

वैष्णवधर्म किसी मजहब, सम्प्रदाय या किसी विशेष धर्मका विरोधी नहीं, बल्कि सबको सात्त्विक भावोंपर निर्भर प्रेमके एक सूत्रमें बाँधना चाहता है—यहाँतक कि मूक पशुओंपर भी प्रेम करनेका अभ्यास सिखाता है। नाममात्रकी दिखावटी अहिंसाके ढाँचेमें हमें ढालना नहीं चाहता, यह चाहता है, सही अहिंसाके रंगमें मन, वाणी एवं कर्मको रँगना। वैष्णवधर्म प्राणिमात्रके प्रति दया तथा सद्भावना उत्पन्न करनेकी शिक्षा देता है।

वैष्णवधर्ममें वह शक्ति निहित है, जिसके अपनानेसे समस्त धर्मोंका समादर एवं उसके प्रवर्तक श्रीविष्णुकी प्रसन्नतासे समस्त देवी-देवताओंकी प्रसन्नता हो जाती है—

यथा तरोर्मूलनिषेचनेन तृप्यन्ति तत्स्कन्धभुजोपशाखाः।
प्राणोपहाराच्च यथेन्द्रियाणां तथैव सर्वार्हणमच्युतेज्या॥
(श्रीमद्भा० ४।३१।१४)

'जिस प्रकार वृक्षके मूल (जड़) में जल देनेसे उसकी शाखा-उपशाखा और पत्ते आदि सभीका पोषण हो जाता है और जैसे भोजनद्वारा प्राणोंको तृप्त करनेसे समस्त इन्द्रियाँ

परिपुष्ट हो जाती हैं, ठीक उसी प्रकार भगवान् श्रीविष्णुकी पूजासे सभी देवगणोंकी पूजा हो जाती है।'

अविरोधसे सब अङ्गोंका पालन करनेके कारण वैष्णव-धर्म सर्वोच्च अभयप्रद और वेद-पुराणादि शास्त्रोंद्वारा सम्मत है।

इस धर्मके सुरम्य मैदानमें सभी एक साथ बैठ सकते हैं। वैष्णवधर्म वर्ण, आश्रम, जाति आदि सीमासे बद्ध नहीं है। उसका क्षेत्र तो इनसे बहुत परे निकल गया है। वर्णाश्रमके पालनका अधिकार वर्णाश्रमियोंपर ही है; पर वैष्णवधर्म-पालनका अधिकार प्रत्येक जन-साधारणको है।

वैष्णव-धर्म संकुचित धर्म नहीं, उसके दृष्टिकोणके अनुसार उसका विस्तार एवं प्रचार-प्रसार पूर्वसे पश्चिम तथा उत्तरसे दक्षिण आसेतुपर्यन्त सर्वत्र है। वैष्णवधर्मकी महान् विशाल सहृदयताका वर्णन करते हुए भागवतकारने लिखा है—

किरातहूणान्ध्रपुलिन्दपुल्कसा
आभीरकङ्का यवनाः खसादयः।
येऽन्ये च पापा यदुपाश्रयाश्रयाः
शुद्ध्यन्ति तस्मै प्रभविष्णवे नमः॥
(श्रीमद्भा० २। ४। १८)

'वैष्णवधर्मका समाश्रय ग्रहणकर किरात, हूण, आन्ध्र, पुलिन्द, पुल्कस, आभीर, कङ्क, यवन और खस आदि तथा अन्य और पापजातियाँ भी जिन भगवान् श्रीहरिके भक्तोंका अवलम्बन (चरण-शरण) लेकर परम शुद्ध हो गयीं, उन भगवान् श्रीहरिको नमस्कार करते हैं।'

मुख्यतया वैष्णवोंके तीन प्रधान कर्म हैं—

वैष्णवानां त्रयं कर्म दया जीवेषु नारद।
श्रीगोविन्दे परा भक्तिस्तदीयानां समर्चनम्॥
(श्रीनारदपञ्चरात्र)

'एक तो जीवोंपर दया, दूसरे श्रीगोविन्दमें पराभक्ति तथा तीसरा कर्म वैष्णवजनकी सेवा।' अतः वैष्णवजनोंको इन तीनों कर्मोंका यथेष्ट परिपालन करना चाहिये।

वैष्णवधर्मके मूलप्रवर्तक भगवान् श्रीविष्णु हैं, जो सकल सृष्टिके सर्जन-पालनहार हैं। अतएव उनका यह परमप्रिय वैष्णवधर्म भी सभीको हिंसा, छल, कपट, राग-द्वेष आदिसे दूर रहनेका उपदेश करते हुए चराचरके साथ एक दूसरेका हित-चिन्तन, उन्हें प्रेमसरितामें अवगाहन करानेके लिये उत्कण्ठित करता है।

भगवान् विष्णुने ब्रह्माजीको वैष्णवजनोंके लक्षणोंका वर्णन करते हुए 'पद्मपुराण'में बताया है कि—

कामक्रोधविहीना ये हिंसादम्भविवर्जिताः।
लोभमोहविहीनाश्च ज्ञेयास्ते वैष्णवा जनाः॥
अमत्सरा दयायुक्ताः सर्वभूतहितैषिणः।
सत्योक्तिभाषिणश्चैव विज्ञेयास्ते च वैष्णवाः॥

'जो काम-क्रोधादिसे रहित, हिंसा, दम्भ (पाखण्ड)-से वर्जित और लोभ तथा मोहसे रहित हैं, उन्हींको वैष्णव जानना चाहिये। मत्सर (जलन) रहित, दयायुक्त, सब जीवोंके हितैषी और सत्यवक्ता मनुष्य ही वैष्णव जानने-योग्य हैं।'

वैष्णव-शिरोमणि देवर्षि श्रीनारदजीने कर्मकाण्डमें अत्यन्त आसक्त राजा प्राचीनबर्हिको वैष्णवधर्मका सदुपदेश करते समय हिंसावृत्तिकी निन्दा करते हुए आकाशकी ओर अँगुलीका संकेतकर यह बताया कि 'देखो, जिन-जिन पशुओंकी तुमने हिंसा की है, वे तुम्हारी बाट देख रहे हैं कि यह कब मरकर आये और हम इससे अपना बदला लें।' इस सम्बन्धमें श्रीनारदजीने एक विस्तृत कथानक सुनाकर राजाको घोर पतनकी ओर ले जानेवाली हिंसामयी प्रवृत्तिसे रोका और परमवैष्णव बनाकर सदाके लिये बन्धनमुक्त कर दिया। यह कथानक श्रीमद्भागवतके चतुर्थ स्कन्धमें 'पुरञ्जनोपाख्यान' के नामसे सुप्रसिद्ध है।

सम्पूर्ण वेद-मन्त्रोंको मान्यता देकर समन्वयात्मक रूपसे एकताका परिचय देनेवाले स्वाभाविक भेदाभेद (द्वैताद्वैत)-सिद्धान्त-प्रवर्तक श्रीसुदर्शनावतार आद्याचार्य जगद्गुरु भगवान् श्रीनिम्बार्क महामुनीन्द्रने भी बताया है—

सर्वं हि विज्ञानमतो यथार्थकं
श्रुतिस्मृतिभ्यो निखिलस्य वस्तुनः।
ब्रह्मात्मकत्वादिति वेदविन्मतं
त्रिरूपतापि श्रुतिसूत्रसाधिता॥
(वेदान्तदशश्लोकी ७)

'श्रुति-स्मृतियोंके प्रमाणोंद्वारा यह सिद्ध है कि समस्त चराचर जगत्‌की अन्तरात्मा ब्रह्म है और त्रिरूपता (ब्रह्म-जीव-जगत्) भी श्रुति-स्मृतियोंद्वारा सिद्ध है। अतः सभी विज्ञान ब्रह्मात्मक होनेसे यथार्थ (सत्य) हैं।'

भाव यह है कि समस्त चराचर जगत् ब्रह्मका अंश एवं परापरात्मिका प्रकृति (शक्ति) होनेके कारण सत्य है; अतएव किसी भी प्राणीको दुःख पहुँचाना या उसके साथ विद्वेष करना ईश्वरको ही दुःख पहुँचाना एवं उसके साथ विद्वेष करना ही है। जड वस्तुओंका भी दुरुपयोग करना निषिद्ध है। शास्त्रके आज्ञानुसार अचेतनतत्त्वमें भी समादरणीयभाव रखना आवश्यक है। यही सच्ची अहिंसा है।

श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदायके आचार्यचरण श्रीरसिकराज-राजेश्वर महावाणीकार अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजी महाराजने भी 'चटथावल' नामक ग्रामके एक मुखिया जागीरदारको, जो कट्टर शाक्त था और समय-समयपर पुष्कलरूपसे देवीजीको पशुबलि दिया करता था, इसी वैष्णवधर्मसे परम प्रभावित कर वैष्णव बनाया। उसी अवसरपर देवीने भी स्वयं आकर श्रीमहाराजसे मन्त्र-दीक्षा ग्रहण की। धन्य है यह वैष्णवधर्म, जिसके द्वारा प्रभावित होकर देवीने भी वैष्णवीदीक्षा ग्रहण की। यह प्रसिद्ध गाथा श्रीनाभास्वामीकृत 'भक्तमाल' नामक ग्रन्थकी प्रियादासजी-रचित टीकामें पढ़नेयोग्य है। इनके सम्बन्धमें अन्यत्र भी एक जगह बताया है—

महिमा बिदित कहौं कहा, देखत नगर मँझार।
देवी को उपदेश दे, मेट्यौ पसु संहार॥
(भक्तमाल, परमहंस-वंशावली ३२)

यद्यपि अहिंसा धर्मका एक अङ्ग है; फिर भी इसके परिपालनसे धर्मके सभी अङ्गोंका सहज ही परिपालन हो जाता है। 'पातञ्जलयोगदर्शन'में बताया गया है—

'अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्संनिधौ वैरत्यागः।'
(२। ३५)

अर्थात् अहिंसाका परिपालन करनेपर उसके आस-पासका वातावरण शुद्ध होकर वहाँ रहनेवाले पशु-पक्षियोंमें भी पारस्परिक वैरभाव छूटकर मित्रभाव बन जाता है।

इस प्रकार वैष्णवधर्ममें अहिंसापर पूर्ण बल देकर उसके परिपालनका स्थान-स्थानपर उपदेश दिया गया है।

विष्णवर्चन-गरिमा

(लेखक—पं० श्रीमूलनारायणजी मालवीय)

भगवान् विष्णुके नामका एक सीधा-सा अर्थ है—व्यापक। यह निम्नलिखित प्रमाणसे सिद्ध होता है—

जले विष्णुः स्थले विष्णुर्विष्णुः पर्वतमस्तके।
ज्वालमालाकुले विष्णुः सर्वं विष्णुमयं जगत्॥
(विष्णुपञ्जरस्तोत्र २३)

'जलमें विष्णु हैं, स्थलमें विष्णु हैं, पर्वतके शिखरपर भी विष्णु हैं तथा अग्निकी ज्वाला-मालाओंसे व्याप्त स्थानमें भी विष्णु हैं। इस प्रकार सारा जगत् ही विष्णुमय है।'

विष्णुपुराण (१। २। ६६) में आया है—

सृष्टिस्थित्यन्तकरणीं ब्रह्मविष्णुशिवात्मिकाम्।
स संज्ञां याति भगवानेक एव जनार्दनः॥

'एक ही भगवान् जनार्दन ब्रह्मा, विष्णु और महेश-नामकी संज्ञा धारणकर सृष्टि, स्थिति और संहार किया करते हैं।'

भगवान् विष्णुकी व्यापकता भक्त प्रह्लादकी बातोंसे भी प्रकट होती है। जिस समय हिरण्यकशिपुकी आज्ञासे दैत्यलोग प्रह्लादको मारने आये, उस समय वे निर्भय होकर कहते हैं—

विष्णुः शस्त्रेषु युष्मासु मयि चासौ व्यवस्थितः।
दैतेयास्तेन सत्येन माऽऽक्रमन्त्वायुधानि च॥
(विष्णुपुराण १। १७। ३)

'अरे दैत्यो! मेरे भगवान् विष्णु इन शस्त्रोंमें भी हैं, तुमलोगोंमें भी हैं और मुझमें भी हैं, वे सब जगह हैं—इस परम सत्यके प्रभावसे तुम्हारे इन शस्त्रोंका मुझपर कोई प्रभाव न हो।'

यों तो सभी देवताओंकी अर्चना फलवती होती है, किंतु भगवान् विष्णुका भजन, पूजन, ध्यान अनेक दृष्टियोंसे महत्त्वपूर्ण होता है। जो भक्तिभावसे सरलतापूर्वक इनका स्मरण-स्तवन, इनकी मूर्तियोंका पूजन, इनके नामोंका जप, व्रत एवं उपवास किया करता है, उसका अन्तःकरण पवित्र हो जाता है और उसे मनोवाञ्छित फलकी प्राप्ति हो जाती है। भगवान् विष्णुमें सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ये शत्रुभावसे लड़नेवालोंका वध तो करते हैं, किंतु उन्हें सायुज्य-

सारूप्य आदि मुक्ति प्रदान करते हैं। यह बात रावण-शिशुपालकी कथा पढ़नेवालोंसे छिपी नहीं है।

जब-जब देवताओंपर दानवोंका अत्याचार बढ़ा, पृथ्वीपर गौ-ब्राह्मण-साधुओंको पीड़ित किया गया, तब-तब भगवान् विष्णुने पालनकर्ता होते हुए भी दुष्टोंका दमन करके उनका संहार किया। भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनसे कहते हैं—

सब्रह्मकाः सरुद्राश्च सेन्द्रा देवाः सहर्षिभिः।
अर्चयन्ति सुरश्रेष्ठं देवं नारायणं हरिम्॥

'ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र तथा ऋषियोंसहित सम्पूर्ण देवता सुरश्रेष्ठ नारायणदेव श्रीहरिकी अर्चना करते हैं।'

भविष्यतां वर्ततां च भूतानां चैव भारत।
सर्वेषामग्रणीर्विष्णुः सेव्यः पूज्यश्च नित्यशः॥

'भरतनन्दन! भगवान् विष्णु ही भूत, भविष्य और वर्तमान—तीनों कालोंमें होनेवाले समस्त भूतोंके अग्रगण्य हैं; अतः सबको सदा उन्हींकी सेवा-पूजा करनी चाहिये।'

महाभारत, अनुशासनपर्वके एक सौ चौबीसवें अध्यायके प्रारम्भमें दाक्षिणात्य पाठमें एक लघु कथा है, जिसे भीष्मपितामहने धर्मराज युधिष्ठिरसे इस प्रकार कहा था—"प्राचीन कालकी बात है कि पुण्डरीक नामक एक ब्राह्मण किसी पुण्यतीर्थमें सदा जप किया करते थे। उन्होंने नारदजीसे परम कल्याणकारी साधनके विषयमें पूछा। नारदजीने ब्रह्माजीके द्वारा बताये हुए श्रेयोमार्गका उन्हें इस प्रकार उपदेश दिया कि 'जो चौबीस तत्त्वमयी प्रकृतिसे भिन्न उसका साक्षीभूत पचीसवाँ तत्त्व 'पुरुष' कहा गया है तथा जो सम्पूर्ण भूतोंका आत्मा है, उसीको 'नर' कहते हैं। नरसे सम्पूर्ण तत्त्व प्रकट हुए हैं, इसीलिये उन्हें 'नार' कहते हैं। 'नार' ही भगवान्का निवासस्थान है, इसीलिये वे 'नारायण' कहलाते हैं।'"

नारायणाज्जगत् सर्वं सर्गकाले प्रजायते।
तस्मिन्नेव पुनस्तच्च प्रलये सम्प्रलीयते॥

'सृष्टिकालमें यह सारा जगत् नारायणसे ही प्रकट होता है और प्रलयकालमें उन्हींमें इसका लय हो जाता है।'

मुहूर्तमपि यो ध्यायेन्नारायणमतन्द्रितः।
सोऽपि सद्गतिमाप्नोति किं पुनस्तत्परायणः॥

'जो आलस्य छोड़कर दो घड़ी भी नारायणका ध्यान करता है, वह भी उत्तम गतिको प्राप्त होता है। फिर जो निरन्तर उन्हींके भजन-ध्यानमें तत्पर रहता है, उसकी तो बात ही क्या है।'

नमो नारायणायेति यो वेद ब्रह्म शाश्वतम्।
अन्तकाले जपन्नेति तद्विष्णोः परमं पदम्॥

"जो '**ॐ नमो नारायणाय**'—इस अष्टाक्षर मन्त्रको सनातन ब्रह्मरूप जानता है और अन्तकालमें इसका जप करता है, वह भगवान् विष्णुके शाश्वत परमपदको प्राप्त कर लेता है।"

ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थोऽथ भिक्षुकः।
केशवाराधनं हित्वा नैव याति परां गतिम्॥

'ब्रह्मचारी हो या गृहस्थ, वानप्रस्थ हो या संन्यासी—कोई भी भगवान् विष्णुकी आराधना छोड़ देनेपर परम गतिको नहीं प्राप्त होता।'

उपर्युक्त बातें संक्षेपमें भीष्मपितामह और युधिष्ठिरके संवादके आधारपर लिखी गयी हैं। पितामह कहते हैं कि 'नारदजीके इस प्रकार उपदेश देनेपर विप्रवर पुण्डरीक भगवान् श्रीहरिकी आराधना करने लगे। वे स्वप्नमें भी शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधारी, किरीट और कुण्डलसे सुशोभित, सुन्दर श्रीवत्स-चिह्न एवं कौस्तुभमणि धारण करनेवाले, कमलनयन नारायणदेवका दर्शन करते थे। दीर्घकालके बाद भगवान् विष्णुने पुण्डरीकको प्रत्यक्ष दर्शन दिया। अन्तमें भीष्मपितामहने आग्रह और जोर देकर युधिष्ठिरसे कहा—

अजरममरमेकं ध्येयमाद्यन्तशून्यं
सगुणमगुणमाद्यं स्थूलमत्यन्तसूक्ष्मम्।
निरुपममुपमेयं योगिविज्ञानगम्यं
त्रिभुवनगुरुमीशं सम्प्रपद्यस्व विष्णुम्॥

'जो अजर, अमर, अद्वितीय, ध्येय, अनादि, अनन्त, सगुण, निर्गुण, सबके आदि कारण, स्थूल, अत्यन्त सूक्ष्म, उपमारहित, उपमाके योग्य तथा योगियोंके लिये ज्ञानगम्य हैं, उन त्रिभुवनगुरु भगवान् विष्णुकी शरण लो।'

श्रीविष्णुपादोदक-माहात्म्य

(लेखक—पं० श्रीरामसागरदासजी श्रीवैष्णव)

मानवके लिये भव-रोगसे छुटकारा प्राप्त करनेके लिये शास्त्रमें बहुत-से साधनोंका दिग्दर्शन कराया गया है; साथ-साथ उनमें अनेक कठिनाइयाँ भी हैं, जिनसे पार हो सकना आज हमारे-ऐसे असमर्थ मनुष्योंके लिये अत्यन्त कठिन है। अतः उसी शास्त्रमें एक महान् सुलभ, श्रमरहित, सुगमातिसुगम तथा सुख-शान्तिके साथ परब्रह्म परमात्मा भगवान् श्रीविष्णुका धाम प्राप्त करानेवाला साधन उन्हींका चरणोदक बताया गया है। पद्मपुराणमें व्यास-जैमिनि-संवादके अन्तर्गत आया है—

ततः पादोदकं प्राज्ञो महाविष्णोः परात्मनः।
समस्तपातकध्वंसि गृह्णीयाद् भक्तिभावतः॥
कणमात्रं वहेद्यस्तु विष्णोः पादोदकं शुभम्।
सः स्नातः सर्वतीर्थेषु जैमिने सत्यमुच्यते॥

'जैमिनि! ज्ञानीजन समस्त पापोंको नष्ट करनेवाला परमात्मा श्रीमहाविष्णुका चरणोदक भक्तिभावसे ग्रहण करें। हे जैमिनि! मैं सत्य कहता हूँ कि भगवान् श्रीविष्णुके पादोदकका कणमात्र भी जो धारण करता है, उसने समस्त तीर्थोंमें स्नान कर लिया।'

स्पृशेत्पादोदकं विष्णोर्गङ्गास्नानफलं भवेत्।
गाङ्गेयं सलिलं विप्र विष्णुपादोदकं यतः॥
अकालमरणं नास्ति नास्ति व्याधिभयं तथा।
यः स्पृशेत्पादसलिलं केशवस्य महात्मनः॥

'महात्मन्! जो भगवान् श्रीविष्णुके पादोदकका स्पर्श करता है, उसे गङ्गास्नानका फल होता है; क्योंकि विष्णुका पादोदक गङ्गाजलके समान है। जो भगवान् श्रीकेशवका चरणोदक-स्पर्श करता है, उसकी अकाल-मृत्यु नहीं होती तथा उसके लिये व्याधि-भय नहीं रह जाता।'

पापव्याधिविनाशार्थं विष्णुपादोदकौषधम्।
पापिनोऽपि नरास्ते च पिबन्तु प्रतिवासरम्॥
विष्णुपादोदकं विप्र यः पिबेद्वैष्णवो जनः।
पातकं तच्छरीरस्थं क्षणादेव तु नश्यति॥

'विप्र! पापरूपी व्याधिके समूलनाशके लिये श्रीविष्णु-पादोदक महान् औषध है। अतः पापीजन भी प्रतिदिन उसका पान करें। जो वैष्णवजन भगवान् श्रीविष्णुके चरणोदकका पान करते हैं, उनके देहस्थ सभी पाप क्षणमात्रमें ही नष्ट हो जाते हैं।'

यथौषधेन रोगास्तु हन्यन्ते देहिनो भृशम्।
तथैव पातकं सर्वं विष्णुपादोदकेन च॥
विष्णुपादोदकं शुद्धं तुलसीपत्रसंयुतम्।
यो वहेच्छिरसा विप्र तस्य पुण्यं वदाम्यहम्॥

'हे विप्र! जैसे औषधसे शारीरिक रोग नष्ट हो जाते हैं, वैसे ही श्रीविष्णुचरणोदकसे सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। हे विप्र! जो सिरपर तुलसीपत्रसंयुक्त शुद्ध श्रीविष्णुपादोदक धारण करता है, उसका पुण्य मैं कहता हूँ।'

ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्विमुक्तो विष्णुरूपधृक्।
अन्ते विष्णुपुरं गत्वा विष्णुना सह मोदते॥
मेरुप्रमाणहेमानि दत्त्वा भवति यत्फलम्।
विष्णुपादोदकं स्पृष्ट्वा तद्भवेदधिकं फलम्॥

'वह ब्रह्महत्यादि पापोंसे मुक्त हो विष्णुरूप हो जाता है और श्रीवैकुण्ठमें पहुँचकर भगवान् श्रीविष्णुके साथ आनन्द करता है। मेरु-प्रमाण स्वर्णदानसे जो फल होता है, उससे अधिक फल श्रीविष्णुपादोदकके स्पर्शमात्रसे होता है।'

अश्वकोटिप्रदानेन यत्फलं प्राप्यते जनैः।
सप्तद्वीपां महीं दत्त्वा द्विजेभ्यो यत्फलं लभेत्॥
तत्फलं लभते मर्त्यो विष्णुपादोदकं स्पृशन्।
अश्वमेधसहस्राणि कृत्वा भवति यत्फलम्॥
विष्णुपादोदकं स्पृष्ट्वा तद्भवेदधिकं फलम्।
दीर्घिकाशतदानेन यत्पुण्यं परिकीर्तितम्॥
तस्मादप्यधिकं पुण्यं लभेत्पादोदकं स्पृशन्।

'मनुष्य कोटि अश्व प्रदान करनेपर तथा ब्राह्मणोंके लिये सप्तद्वीपा पृथ्वी दान करनेपर जो फल प्राप्त करता है, वह फल विष्णु-पादोदकका स्पर्श करनेसे होता है। हजारों अश्वमेध करके जो फल प्राप्त होता है, विष्णुका पादोदक स्पर्श करनेसे उससे भी अधिक फलकी प्राप्ति होती है। सैकड़ों तलैयाओंके दानसे जो पुण्य होता है, उससे भी अधिक श्रीविष्णुपादोदक स्पर्श करनेमात्रसे होता है।'

बहुना हि किमुक्तेन संक्षेपादुच्यते मया॥
विष्णुपादोदकस्पर्शान्मुक्तो भवति मानवः।

भूयो भूयोऽपि विप्रेन्द्र सुदृढं कथ्यते मया ॥
पुनर्न लभते जन्म स्पृशन् पादोदकं हरेः ।

(पद्मपु० क्रियायोगसार० ११ । १४१–१५६)

'मैं संक्षेपमें ही कह रहा हूँ, विशेष कहनेसे क्या प्रयोजन । हे विप्रेन्द्र ! मैं बार-बार बहुत दृढ़ताके साथ कहता हूँ कि श्रीविष्णुपादोदकके स्पर्शमात्रसे मानव संसार-तापसे मुक्त हो जाता है तथा पुनर्जन्मको प्राप्त नहीं होता ।'

'श्रीहरिभक्तिविलास' तथा हलायुध आदिके वचनोंके अनुसार विष्णु-पादोदक-निर्माणमें शालग्रामशिला, शङ्खस्थ चन्दनमिश्रित जल, तुलसी तथा ताम्रपात्रके साथ पुरुषसूक्त-मन्त्रका पाठ और घण्टानाद भी किया जाना चाहिये । तभी यह पादोदक 'अष्टाङ्ग तीर्थ'के नामसे कहा जाता है—

शिला ताम्रं तथा तोयं शङ्खः पुरुषसूक्तकम् ।
गन्धो घण्टा च तुलसीत्यष्टाङ्गं तीर्थमुच्यते ॥

'तन्त्रसार'के अनुसार इस समय भी धूप दिखलाना चाहिये—'धूपयन्नन्तरान्तरा ।'

'हरिभक्तिविलास'में 'नरसिंहपुराण'के वचनसे कहा गया है कि 'गङ्गा, प्रयाग, गया, नैमिषारण्य, पुष्करक्षेत्र, कुरुक्षेत्र तथा यमुना आदि नदियाँ तथा अन्य तीर्थ मनुष्यके पापोंको बहुत देरमें दूर करते हैं, किंतु श्रीभगवान्‌का पादोदक तो प्राणियोंको तत्काल पवित्र कर देता है'—

गङ्गाप्रयागगयनैमिषपुष्कराणि
पुण्यानि यानि कुरुजाङ्गलयामुनानि ।
कालेन तीर्थसलिलानि पुनन्ति पापं
पादोदकं भगवतः प्रपुनाति सद्यः ॥

विष्णुपादोदकको किसी पात्रमें रखकर निम्नलिखित मन्त्रद्वारा पान करनेकी विधि है—

अकालमृत्युहरणं सर्वव्याधिविनाशनम् ।
विष्णोः पादोदकं पीत्वा शिरसा धारयाम्यहम् ॥

'मैं समस्त व्याधियों तथा अपमृत्यु एवं अकालमृत्युके नाशक श्रीविष्णु-पादोदकका पानकर, उसे सिरपर धारण करता हूँ ।'

मूर्तिकलामें भगवान् श्रीविष्णुकी अभिव्यक्ति

(लेखक—डॉ० श्रीब्रजेन्द्रनाथजी शर्मा, एम्०ए०, पी-एच्०डी०, डी०लिट्०, एफ्०आई० ए०एस्०)

भगवान् विष्णुकी पूजा भारतवर्षमें अत्यन्त प्राचीन कालसे प्रचलित है । भगवान् विष्णुकी गणना देवत्रयी अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु एवं शिवके मध्य होती है—वह भी प्रधानरूपमें । भगवान् विष्णुके अनेक रूप एवं अवतार हैं, जो उन्होंने साधु-परित्राण, दुष्ट-विनाश और धर्म-संस्थापनके लिये समय-समयपर लिये हैं ।

शुङ्गकालीन दूसरी शती ई०पू०के बेसनगर स्तम्भ-लेख तथा घोसुंडी-अभिलेखमें विष्णु-पूजाके स्पष्ट प्रमाण उपलब्ध हैं । मथुराके समीप मोरा नामक ग्रामसे प्राप्त एक अन्य अभिलेखमें, जो प्रथम शती ई०पूर्वका है, भगवान् वासुदेवके लिये एक 'शैलदेवगृह'के बनाये जानेका उल्लेख है । भगवान् विष्णुकी प्राचीनतम मूर्तियाँ कुषाण-काल—लगभग दूसरी शती ई०की हैं, जो मथुरासे मिली हैं । ये मूर्तियाँ, जो यक्ष एवं बोधिसत्त्व-मूर्तिका प्रतिरूप प्रतीत होती हैं, मथुरा-संग्रहालयमें सुरक्षित हैं । इनमें अधिकांश मूर्तियाँ चतुर्भुजी हैं तथा प्रदक्षिणा-क्रमसे हाथोंमें गदा, चक्र, शङ्ख तथा जलपात्र पकड़े हुए हैं और इनका निचला दाहिना हाथ अभयमुद्रामें उठा हुआ है ।

कुषाणकालीन—लगभग दूसरी शती ई०की ही लेख-युक्त भगवान् विष्णुके वराहावतारकी प्रतिमा विशेषरूपसे उल्लेखनीय है । इस मूर्तिमें उनके वक्षपर 'श्रीवत्स' चिह्न अङ्कित है, जिसका इस कालकी अन्य विष्णुमूर्तियोंपर सर्वथा अभाव है । इनकी बायीं ओर पृथ्वी हाथमें नीलोत्पल लिये खड़ी हैं, जिनका अनेक पुराणोंके अनुसार भगवान् विष्णुने उद्धार किया था । गन्धारसे प्राप्त चौथी-पाँचवीं शती ई०-की एक अत्यन्त कलात्मक कांस्य-प्रतिमा म्यूजियम फरवोलकर-कुण्डे, बर्लिनमें प्रदर्शित है । इसमें विष्णुके मूँछें तथा दोनों ओर सिंह और वराह एवं पीछे कपिल मुख भी बने हैं । वे निचले दो हाथोंमें क्रमशः पद्म एवं शङ्ख लिये हैं तथा उनका ऊपर-का बायाँ हाथ उनकी बायीं ओर खड़े आयुध चक्र-पुरुषपर रखा है । पृथ्वी-लक्ष्मीकी संयुक्त चतुर्भुजी मूर्ति उनके पैरोंके

मध्यमें स्थित है। मूर्तिकी शारीरिक बनावट, साज-सज्जा एवं मुकुट आदि 'ग्रीको-रोमन' कलाके परिचायक हैं।

गुप्तकाल (चौथी शती ई०से छठी शती ई०) की अनेक विष्णु-प्रतिमाएँ उत्तरी भारतके विभिन्न भागोंसे प्राप्त हुई हैं। भीटा, झूँसी तथा शंकरगढ़से प्राप्त विष्णुकी प्रतिमाएँ प्रयाग-संग्रहालयमें प्रदर्शित हैं। इसी संग्रहालयमें इलाहाबाद जिलेके कारा नामक स्थानसे प्राप्त विष्णुके कृष्णावतारकी मूर्ति भी रखी है, जिसमें वे अपने बायें हाथपर गोवर्धन पर्वतको उठाये दिखाये गये हैं तथा उनका दाहिना हाथ खण्डित है। उनकी दायीं ओर एक सिंह तथा बायीं ओर तीन गौएँ आदि प्रदर्शित हैं। मथुरासे प्राप्त गुप्त-कालीन विष्णुकी अनेक मूर्तियाँ देशके विभिन्न संग्रहालयोंमें भी सुरक्षित हैं। इनमें सबसे कलात्मक मूर्ति राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्लीमें सुरक्षित है, जिसका अभाग्यवश अधोभाग खण्डित हो चुका है। इनका मुखड़ा अत्यन्त सुन्दर है। इन्होंने किरीट-मुकुट, एकावली, यज्ञोपवीत, वैजयन्ती-माला आदि पहन रखे हैं।

गुप्तकालमें भगवान् विष्णुके वराहावतारकी पूजा विशेषरूपसे प्रचलित थी, जिसका अनेक अभिलेखोंमें भी वर्णन मिलता है। इस अवतारकी सबसे महत्त्वपूर्ण प्रतिमा विदिशाके निकट उदयगिरि पर्वतपर उत्कीर्ण है, जिसमें विष्णु (१२.८ फुट) पृथ्वीका उद्धार करते दिखाये गये हैं। भारतीय मूर्तिकलाके क्षेत्रमें यह अपनी तरहका बेजोड़ उदाहरण है। इसीके समीप शेषशायी विष्णुकी एक अत्यन्त विशाल मूर्ति है, जिसमें वे शेषनागकी शय्यापर योगनिद्रामें लीन हैं। मध्य प्रदेशमें ही एरण नामक स्थानसे भी वराहावतारकी विशाल प्रतिमा मिली है, जिसमें पृथ्वी भगवान्‌की एक दाढ़पर स्थित है।

गुप्तकालमें देवगढ़ भी विष्णु-पूजाका एक प्रमुख केन्द्र था। यहाँके दशावतार-मन्दिरपर, जो अब अत्यधिक खण्डित हो गया है, विष्णुके नर-नारायण, गजेन्द्रमोक्ष तथा शेषशायी स्वरूपकी कलात्मक प्रतिमाएँ विद्यमान हैं, जिनमें गुप्तकालके महान् शिल्पियोंका कला-सौष्ठव देखते ही बनता है। यहींसे प्राप्त रामद्वारा अहल्या-उद्धार, राम-सीताके सम्मुख लक्ष्मणद्वारा शूर्पणखाकी नाक काटना तथा कृष्ण-लीला-सम्बन्धी अनेक मूर्तियाँ अब राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्लीकी शोभा बढ़ा रही हैं।

मध्यप्रदेशमें सुहानियाँसे प्राप्त एक विशाल सिरदलमें, जो अब ग्वालियर-संग्रहालयमें है, भगवान् विष्णुके त्रिविक्रम अवतारका दृश्य अङ्कित है। इनके उठे हुए बायें पैरके नीचे भागवत एवं वामन आदि अनेक पुराणोंमें वर्णित बलि-वामनकी कथाका चित्रण किया हुआ है। यह भी गुप्तकाल, ५वीं शती ई०की कृति है।

राजस्थानमें मंडोर नामक स्थानसे भी गुप्तकालीन दो विशाल प्रस्तर-खण्ड मिले हैं, जो अब जोधपुर-संग्रहालयमें रखे हैं। इनपर कृष्णके जीवनसे सम्बन्धित अनेक दृश्य—जैसे गोवर्धन-धारण आदि उत्कीर्ण हैं।

पूर्व मध्ययुगमें, विशेषकर प्रतिहारोंके राज्यकालमें वैष्णव-धर्मका अधिक प्रचार हुआ—जैसा कि इस कालके साहित्य एवं अभिलेखोंसे भी ज्ञात होता है। इस कालमें यद्यपि विष्णुके सभी अवतारोंकी अभिव्यक्ति मूर्तिकलामें प्राप्त होती है, तथापि ऐसा प्रतीत होता है कि विष्णुका वराह अवतार लोगोंको विशेषरूपसे प्रिय था, जिसका प्रमाण उत्तरी भारतमें अनेक स्थानोंसे प्राप्त मूर्तियोंसे मिलता है। इसके अतिरिक्त प्रतिहार सम्राट् भोजने एक विशेष प्रकारकी मुद्राएँ जारी की थीं, जिनके पुरोभागपर वराहका अङ्कन है। इनको 'आदिवराह द्रम्म' कहा जाता है। प्रतिहारकालीन लगभग दसवीं शती ई०की विष्णुकी एक स्थानक (खड़ी) मूर्ति ब्रिटिश म्यूजियम, लंदनमें प्रदर्शित है। इसी कालकी अन्य मूर्तियाँ मुजफ्फरनगर, रायबरेली तथा फलौदीसे भी प्राप्त हुई हैं। रायबरेलीसे प्राप्त मूर्तिमें, जो १०वीं शती ई०-की है, उनके वराहावतारका बड़ी सजीवतासे चित्रण किया गया मिलता है। काले पत्थरकी बनी यह मूर्ति अब राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्लीमें सुरक्षित है।

भगवान् श्रीकृष्णद्वारा गीतामें अर्जुनको दिखाये गये 'विश्वरूप'का महत्त्वपूर्ण चित्रण कन्नौजसे मिली आठवीं शती ई०-की एक मूर्तिमें प्राप्त होता है। इसीकी समकालीन एक अन्य विश्वरूप मूर्ति बैजनाथसे भी मिली है, जो इससे काफी साम्य रखती है। जिला नैनीतालमें काशीपुरसे प्राप्त विष्णुके पाँचवें अर्थात् त्रिविक्रम अवतारकी प्रतिमा राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्लीमें प्रदर्शित है। इसकी विशेषता यह है कि इसमें उनके बायें पैरकी जगह दाहिना पैर आकाश नापनेके लिये उठा हुआ है और उसके नीचे बलिद्वारा वामनको दान देनेका सम्पूर्ण चित्रण है। त्रिविक्रमकी तथा विष्णुके कुछ

अन्य अवतारोंकी प्रतिमाएँ ओसियाके मन्दिरोंपर आज भी देखी जा सकती हैं। प्रतिहारयुगीन १०वीं शती ई०की एक प्रस्तर-प्रतिमामें विष्णुके वामन अवतारके दोनों ओर तथा ऊपरी भागमें उनके विभिन्न अवतारोंका भी चित्रण मिलता है, जो मूर्ति-कलाकी दृष्टिसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

प्रतिहार-साम्राज्यके पतनके बाद (१०३० शती ई०) उत्तरी भारतमें अनेक राज्योंकी स्थापना हो गयी, परंतु वैष्णवधर्म पूर्ववत् पनपता रहा। चालुक्य-राज्यकालके समय गुजरातमें विष्णुके अनेक देवालय बने, जिनमें उनके विभिन्न अवतारोंकी प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित हुईं। अनेक देवालयों-के अंदर आज भी कालियदमन तथा गोवर्धनधारी कृष्णकी मूर्तियाँ देखनेको मिलती हैं। जैन आचार्य हेमचन्द्रके अनुसार, चालुक्य-सम्राट् सिद्धराजने भी दशावतारोंकी मूर्तियाँ स्थापित की थीं। इस युगकी दशावतार-मूर्तियोंमें बुद्धको भी दशावतारोंके साथ स्थान दिया गया है।

राजस्थानमें उदयपुरके आहाड़ क्षेत्रमें भी विष्णुकी अनेक मूर्तियाँ मिली हैं, जो कि गुहिल-कलाकी परिचायक हैं। इनमें विशेषरूपसे विष्णुके कच्छप एवं मत्स्य अवतारोंकी मूर्तियाँ उल्लेखनीय हैं, जो आहाड़-संग्रहालयमें प्रदर्शित हैं। इस प्रकारकी पृथक् मूर्तियाँ अत्यन्त दुर्लभ हैं। हिमाचल प्रदेशके काँगड़ा जिलेमें निर्मित मसरूर-मन्दिरमें मत्स्य अवतारकी प्रतिमा उत्कीर्ण है तथा मत्स्य एवं कच्छप अवतारोंकी दो अन्य मूर्तियाँ ग्वालियर-संग्रहालयमें सुरक्षित हैं। इन दो अवतारोंका चित्रण साधारणतया दशावतार-पट्टोंपर या विष्णुमूर्तियोंके ऊपरी भागमें अथवा दोनों ओर ही मिलता है।

चौहान सम्राट् यद्यपि मुख्यरूपसे शैव मतके अनुयायी थे, फिर भी उन्होंने अन्य धर्मोंके प्रति उदार नीतिका निर्वाह किया। इनके समयमें पुष्करमें वराह-मूर्तिकी पूजा होती रही। इस कालकी एक प्रस्तर-प्रतिमा हाँसीके किलेमें आज भी विद्यमान है तथा दूसरी विक्टोरिया ऐंड अलबर्ट संग्रहालय, लंदनमें प्रदर्शित है। राजस्थानमें नरहड़नामक स्थानसे विष्णुकी अनेक प्रतिमाएँ कुछ वर्ष पूर्व खुदाईमें प्राप्त हुई थीं, जो राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्लीमें हैं।

भगवान् विष्णु-संकर्षणकी एक महत्त्वपूर्ण मूर्ति कुछ वर्ष पूर्व दिल्लीके महरौली गाँवमें लोहेकी लाटके समीपसे, जिसपर राजा चन्द्रका लेख उत्कीर्ण है, प्राप्त हुई थी और यह राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्लीमें प्रदर्शित है। इसपर विष्णुके विभिन्न रूपों एवं दशावतारोंका भी अङ्कन है। मूर्तिकी पीठिकापर उत्खनित अभिलेखसे ज्ञात होता है कि इसकी प्रतिष्ठापना ११४७ ई०में हुई थी। काले पत्थरकी यह मूर्ति तोमर-कालीन मूर्तिकलाका एक अद्वितीय उदाहरण है।

खजुराहोके चंदेल शासकोंने विष्णुकी पूजाके निमित्त अनेक भव्य मन्दिरोंका निर्माण कराया और उनके बाह्य तथा भीतरी भागमें अन्य देवताओंके साथ ही विष्णुकी भी मूर्तियाँ जड़ीं। खजुराहोके लक्ष्मण-मन्दिरके गर्भगृहमें विष्णुके वैकुण्ठ-स्वरूपकी स्थानक मूर्ति है, जिसमें दाहिनी ओर सिंह (नृसिंह) तथा बायीं ओर वराहका मुख बना है। यहाँके वराह-मन्दिरमें वराहकी विशाल प्रतिमा है, जिसपर विष्णुके विभिन्न अवतारोंके अतिरिक्त अनेक पौराणिक कथाओंके दृश्य भी बने हैं। खजुराहो-संग्रहालयमें विष्णु, शेषशायी विष्णु, चौसठ-भुजी नरसिंह, नृवराह, वामन-त्रिविक्रमके अतिरिक्त चतुर्भुज विष्णुकी एक अद्वितीय आसन-मूर्ति भी विद्यमान है, जिसमें उनका निचला बायाँ हाथ मुखकी ओर मुड़ा है और उसकी तर्जनी अधरको स्पर्श कर रही है।

चंदेलोंके समकालीन चेदि राजवंशके समयकी बनी अनेक कला-कृतियाँ बिल्हारीस्थित मुख्य मन्दिरमें भी देखी जा सकती हैं, जिनमें विष्णु एवं गरुड़ासीन वैकुण्ठ तथा लक्ष्मी-नारायण विशेषरूपसे उल्लेखनीय हैं। ये लगभग १२ वीं शती ई०की कलाके उदाहरण हैं।

प्रतिहारोंके साम्राज्य-पतनके बाद कन्नौज-वाराणसी-क्षेत्र-पर गहड़वालवंशीय राजाओंने लगभग ११९४ ई० तक शासन किया। गहड़वाल शासकोंद्वारा बनवाये गये अनेक मन्दिर एवं मूर्तियोंको बादमें मुसल्मान आक्रमणकारियोंने नष्ट कर दिया था, अतः इनके समयकी अधिक कला-कृतियाँ नहीं बच सकी हैं। जो शेष बची हैं, उनमें विशेषरूपसे उल्लेख-नीय वाराणसीसे प्राप्त विष्णु-विश्वरूप-प्रतिमा है, जो अब काशी हिंदू-विश्वविद्यालयमें है। इसके अतिरिक्त काँसेकी लक्ष्मी-नारायणकी गरुड़ासीन प्रतिमा अब राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्लीमें प्रदर्शित है। ये दोनों मूर्तियाँ लगभग ११,१२वीं-शती ई०की हैं।

श्रीविष्णु अपनी पत्नियों–श्री और सरस्वतीके साथ [११ वीं शती] पृष्ठ ४६१

श्रीविष्णु-अभिषेक, विजयनगर [१७ वीं शती] पृष्ठ ४६१

पृथ्वीसहित नृ-वराह-मूर्ति, एरन [ईसा ४ शती] पृष्ठ ४६३
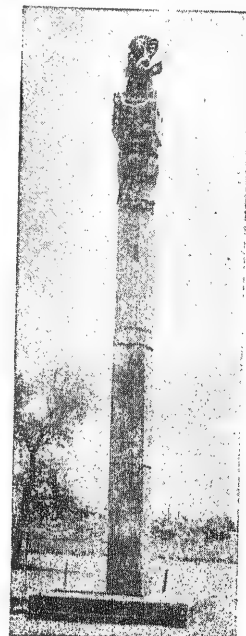
एरनके विष्णु-मन्दिरका गुप्तकालीन गरुड़-स्तम्भ [पृष्ठ ४६३]

श्रीलक्ष्मीनारायण-मन्दिर, नयी दिल्लीके श्रीविग्रह
[पृष्ठ ४७८]

भगवान् श्रीकृष्ण, हिंदू सेन्टर मन्दिर, लंदन
[पृष्ठ ४९७]
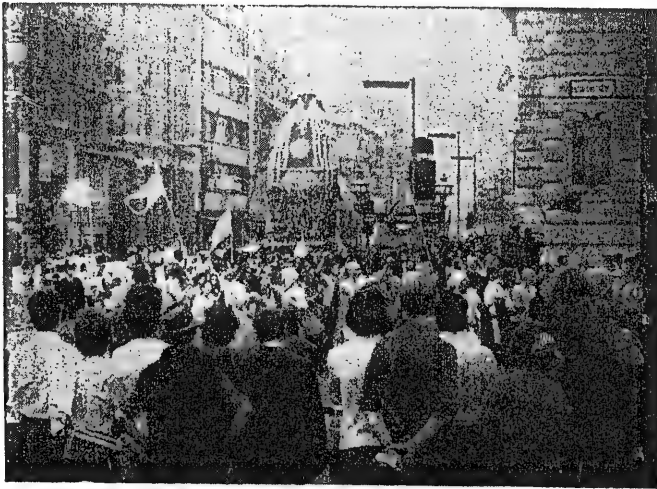
रथयात्रा-महोत्सव, लंदन [पृष्ठ ४९७]
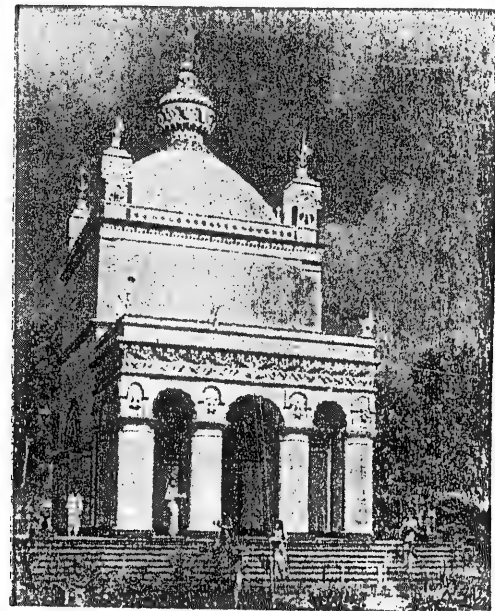
महेश्वरनाथ-मन्दिर, त्रियोले (मारीशस)
[पृष्ठ ४९६]

बिहार एवं बंगालके पालवंशीय शासक यद्यपि भगवान् बुद्धके अनुयायी थे, फिर भी उनके समयमें अन्य धर्मोंके साथ-साथ वैष्णवधर्म भी पनपता रहा। पाल-कलाकी अनेक सुन्दर विष्णुमूर्तियाँ देश एवं विदेशोंके प्रमुख संग्रहालयोंमें सुरक्षित हैं। इन मूर्तियोंमें भगवान् विष्णुको या तो अपनी दो पत्नियों अर्थात् लक्ष्मी एवं सरस्वतीके साथ अथवा अपने आयुध-पुरुषों चक्र-पुरुष एवं शङ्ख-पुरुषके साथ प्रदर्शित किया गया है। इनके अतिरिक्त वामन, त्रिविक्रम, नरसिंह तथा बलरामकी भी अनेक प्रतिमाएँ मिलती हैं, जिनका पौराणिक साहित्यमें विष्णुके अवतारोंके रूपमें उल्लेख हुआ है।

मध्यकालमें उड़ीसा शिव-पूजाका प्रमुख केन्द्र था और वहाँके अनेक देवालयोंपर शिव तथा उनके परिवारके अन्य सदस्योंका महत्त्वपूर्ण चित्रण मिलता है। परंतु उड़ीसामें विष्णुकी पूजा भी प्राचीन कालसे होती आ रही है। कोणार्कसे प्राप्त एक प्रतिमामें पूर्वी गंग-वंशीय राजा नरसिंह-वर्मन, जो स्वयं सूर्यके उपासक थे, भुवनेश्वरके लिङ्गराज, पुरीके जगन्नाथ तथा जाजपुरकी महिषासुरमर्दिनीकी पूजा करते दिखाये गये हैं। यह प्रस्तर-फलक अब राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्लीमें प्रदर्शित है। पुरी विष्णुकी पूजाका महान् केन्द्र रहा है, जहाँकी जगन्नाथजीकी रथ-यात्रा विश्वप्रसिद्ध है।

उत्तरी भारतकी भाँति दक्षिण भारतमें विष्णुकी पूजा किसी-न-किसी रूपमें अत्यन्त प्राचीन कालसे प्रचलित है। आन्ध्रप्रदेशमें तिरुपतिमें विष्णु-बालाजीका प्राचीन मन्दिर प्रत्येक हिंदूके लिये पुनीत स्थल है। पूर्व मध्ययुगमें पल्लव राजाओंके शासनकालमें विष्णु एवं उनके अवतारोंकी पूजाके लिये अनेक मन्दिरोंका निर्माण हुआ। मद्रासके समीप महाबलिपुरम्में पहाड़ीमें काटकर बनायी गयी विष्णुके त्रिविक्रम तथा शेषशायी स्वरूपोंकी विशाल मूर्तियाँ भारतीय कलामें अपना प्रमुख स्थान रखती हैं और पल्लव-कलाकी सातवीं-आठवीं शती ई०की महान् कृतियाँ मानी जाती हैं।

पल्लवोंकी शक्तिका ह्रास होनेके बाद चोळवंशीय नरेशोंने लंबे समयतक दक्षिण भारतपर राज्य किया। इनके शासनकालमें पाषाण एवं धातुकी अनेक मूर्तियाँ बनीं, जो आज भी मद्रास-संग्रहालयमें देखी जा सकती हैं। इस युगकी धातुकी विष्णुमूर्तियाँ काफी सुन्दर मानी जाती हैं। इनके अतिरिक्त विष्णुके विभिन्न अवतारोंकी मूर्तियाँ आज भी अनेक देवालयोंमें विद्यमान हैं। चोळकालीन मूर्तियोंमें विष्णुको अपनी दोनों पत्नियों—श्री-देवी एवं भू-देवीके साथ खड़े तथा बैठे दिखाया गया है।

चोळवंशकी शक्तिका ह्रास होनेपर विजयनगरवंशीय राजा दक्षिण भारतके विशाल भू-भागपर राज्य करते रहे। इनकी कलामें यद्यपि चोळकलाकी सुन्दरता देखनेको नहीं मिलती, फिर भी उसका अपना एक अलग महत्त्व है। विजयनगर-कालीन चौदहवीं शती ई०की विष्णुकी काँसेकी स्थानक-मूर्ति अमरीकाके बोस्टन संग्रहालयमें है। इनके पिछले दो हाथोंमें चक्र तथा शङ्ख हैं, जिनसे ज्वालाएँ निकल रही हैं। इनका सामनेका दाहिना हाथ अभय एवं साथवाला बायाँ हाथ कटिहस्त-मुद्रामें है। वक्षपर दाहिनी ओर 'श्रीवत्स' बना है। इसी संग्रहालयमें लक्ष्मी-नारायणकी काँसेकी एक मूर्ति भी है, जिसमें लक्ष्मी विष्णुकी बायीं जाँघपर बैठी है। यह सत्रहवीं शती ई०की कृति है। तमिळनाडुमें विद्यमान विजयनगरवंशीय राजाओंद्वारा बनवाये गये अनेक देवालयोंपर विष्णुकी उनके विभिन्न रूपोंमें असंख्य प्रतिमाएँ बनी हुई हैं। भगवान् विष्णुकी एक अद्वितीय कांस्य-प्रतिमामें उनकी पत्नियों—भू-देवी तथा श्री-देवीको भगवान्का अभिषेक करते प्रदर्शित किया गया है। विष्णु एक कमलासनपर सुखासनमुद्रामें विराजमान हैं और अपने पिछले दो हाथोंमें चक्र तथा शङ्ख लिये हैं। उनकी दाहिनी ओर भू-देवी तथा बायीं ओर श्री-देवी अपने-अपने हाथोंमें अभिषेक-घट लिये चित्रित हैं। प्रस्तुत मूर्ति विजयनगरकालके १७वीं शती ई०की कृति है।

मैसूरमें मध्यकालमें होयसल वंशके राजाओंने बारहवीं शती ई० तक हेलिविद तथा बेलूरमें अनेक मन्दिरोंका निर्माण कराया। मन्दिरोंके अंदर विष्णुकी प्रतिमाओंको स्थापित किया और बाह्यभागमें उनके अवतारोंका बड़ी सजीवतासे अङ्कन किया। इस कालकी बनी त्रिविक्रम, गोवर्धनधारी, शेषशायी आदिकी मूर्तियाँ विशेषरूपसे दर्शनीय हैं।

भारतवर्षके सुदूर दक्षिण प्रान्त केरलमें भी अनेक विष्णु-मन्दिरोंके अवशेष मिले हैं, जिनमें प्राचीन कालमें विष्णु-मूर्तियोंकी पूजा होती रही होगी। यहींपर शुचीन्द्रम् नामक स्थानपर विष्णुके त्रिविक्रम अवतारका भव्य चित्रण प्राप्त है, जिसमें दैत्यराज बलिसे तीन पग भूमिका दान

मिलनेपर उन्होंने प्रथम पगसे सम्पूर्ण पृथ्वी और दूसरे पगसे समस्त आकाश नाप लिया था, परंतु तीसरे पगसे नापनेके लिये कुछ भी शेष नहीं छोड़ा था। इस प्रकार विष्णुने बलि-द्वारा जीता साम्राज्य इन्द्रको वापस दिला दिया था।

इस प्रकारसे संक्षेपमें हम देखते हैं कि भगवान् श्रीविष्णुकी पूजा सम्पूर्ण भारतवर्षमें प्रचलित थी और उनकी अनेक प्रकारकी मूर्तियाँ पूजा-हेतु बनायी जाती थीं। आज भी भारतवर्षमें विष्णुके अनगिनत मन्दिर हैं, जिनमें वैष्णव-धर्मानुयायी विष्णुकी पूजा करनेके लिये जाते हैं और पुण्य-लाभ करते हैं।

मध्यप्रदेशकी मूर्तिकलामें भगवान् विष्णु

(लेखक—प्रो० श्रीकृष्णदत्तजी वाजपेयी)

भगवान् विष्णुकी प्रतिमाएँ विविध रूपोंमें भारतके अनेक स्थानोंसे प्राप्त हुई हैं। मथुरा, मध्यमिका, पद्मावती, विदिशा आदि नगरोंमें भागवत-धर्मके केन्द्र प्राचीन कालमें स्थापित हो गये थे। इन नगरोंमें भगवान् विष्णु तथा उनके अवतारों-की प्रतिमाएँ निर्मित की जाती थीं। मथुरासे प्राप्त विष्णुकी प्रारम्भिक प्रतिमाएँ उल्लेखनीय हैं। कुषाणकालीन बोधिसत्व-प्रतिमाओं तथा तत्कालीन विष्णुमूर्तियोंकी निर्माण-शैलीमें बहुत साम्य है। मथुरामें उपलब्ध कुषाणकालीन विष्णुकी एक मूर्तिमें उन्हें एक हाथमें गदा तथा दूसरेमें चक्र ग्रहण किये हुए दिखाया गया है। तीसरा हाथ अभयमुद्रामें है और चौथेमें वे अमृतघट लिये हैं। बादकी मूर्तियोंमें उनके चार हाथोंमें क्रमशः शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म अङ्कित मिलते हैं। ईसाकी द्वितीय और तृतीय शतीमें विष्णुकी कुछ ऐसी प्रतिमाएँ मथुरामें बनायी गयीं, जो अष्टभुजी हैं। गुप्त-काल तथा मध्यकालमें स्थानक विष्णु, महाविष्णु, शेषशायी एवं विष्णुके विभिन्न अवतारोंकी प्रतिमाएँ मथुरा तथा उत्तर भारतके अन्य कलाकेन्द्रोंमें निर्मित हुईं। पकी मिट्टीकी बनी हुई विष्णु और उनके अवतारोंकी कुछ अत्यन्त कलापूर्ण गुप्तकालीन मूर्तियाँ कानपुर जिलेके भीतरगाँव-मन्दिरमें प्राप्त हुई हैं।

मध्यप्रदेश-क्षेत्रमें विदिशा नगरको विशिष्ट वैष्णव केन्द्र बननेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। मथुरासे दक्षिणकी ओर जानेवाले मुख्य मार्गपर देवगढ़ (जिला झाँसी), पद्मावती (आधुनिक पवाया, जि० ग्वालियर) तथा विदिशा नगर स्थित थे। वहाँकी प्रारम्भिक कलामें मथुरा-कलाका प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है। विदिशामें मौर्यकालमें भगवान् विष्णुके मन्दिरका निर्माण हुआ। ईसवी पूर्व प्रथम शतीमें शुङ्ग राजाओंके शासन-कालमें गन्धारके यूनानी शासक अन्तलिकित-द्वारा प्रेषित राजदूत हेलियोदोर विदिशा गया और उसने वहाँ गरुडध्वजकी स्थापना की। शुङ्ग-शासकोंके समयमें वैदिक धर्मकी बड़ी उन्नति हुई।

गुप्त सम्राट् चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य विष्णुके परम भक्त थे। उन्होंने 'परमभागवत'-उपाधि धारण की। विदिशाके निकट उदयगिरि नामक पहाड़ीमें चन्द्रगुप्तने अनेक गुहा-मन्दिरोंका निर्माण कराया। ये गुहा-मन्दिर भारतीय वास्तु-कला तथा मूर्तिकलाके अध्ययनके लिये अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। भगवान् विष्णु तथा उनके अवतारोंकी अनेक मूर्तियाँ उदय-गिरिके गुहा-मन्दिरोंमें गुप्तकालमें निर्मित हुईं। मूर्तिशास्त्रकी दृष्टिसे इनकी विशेषता है। गुहा-संख्या ५ में नृ-वराह विष्णुकी अत्यन्त भव्य प्रतिमा उत्कीर्ण है। इसमें भगवान् वराहको पृथिवीका उद्धार करते हुए अङ्कित किया गया है। इस मूर्तिमें भगवान्के अङ्ग-प्रत्यङ्गोंका आलेखन तथा उनका वीरभाव विशेष प्रभावोत्पादक है। भूदेवी तथा अन्य देवी-देवताओंका चित्रण भी कलापूर्ण ढंगसे किया गया है। इसी युगमें गङ्गा-यमुनाके देवीरूपोंका प्रदर्शन तथा उनके संगमका दृश्य आकर्षक ढंगसे दिखाया गया है।

उदयगिरिकी १३वीं गुहामें १२ फुट लंबी शेषशायी विष्णुकी प्रतिमा है। इस प्रतिमाके साथ ब्रह्मा, शिव आदि देवता दिखाये गये हैं।

गुहा-संख्या ३, ६ तथा ९ में चतुर्भुज विष्णुका चित्रण है। ये प्रतिमाएँ प्रारम्भिक गुप्तकालमें निर्मित हुईं। मध्य-कालमें विदिशा और उसके आस-पास विष्णु तथा उनके अवतारोंकी मूर्तियाँ बड़ी संख्यामें बनायी गयीं। इस जिलेके बड़ोह-पठारी नामक स्थानमें पशुरूपमें वराहभगवान्की मूर्ति मिली है। उनके सारे शरीरपर देवी-देवताओं, ऋषि-

मुनियों आदिका अङ्कन है। उदयगिरिकी मूर्तिके समान नृ-वराहकी भी गुप्तकालीन प्रतिमा इस स्थलसे प्राप्त हुई है। यहाँ एक विशाल गरुडध्वज भी मिला है, जो विष्णु-मन्दिरके सामने निर्मित किया गया था।

मध्यप्रदेशका दूसरा बड़ा वैष्णव-केन्द्र ऐरिकिण नगर था। इसका वर्तमान नाम 'एरन' है, जो सागर जिलेकी खुरई तहसीलमें स्थित है। हालमें इन पंक्तियोंके लेखकके निर्देशनमें एरनमें पाँच वर्षोंतक उत्खनन-कार्य कराया गया। इस उत्खननसे यह ज्ञात हुआ है कि यहाँका नगर लगभग १९०० ई०पू० अस्तित्वमें आ गया था। तबसे लेकर ई० छठी शतीतक एरनमें सभ्यताका विकास होता रहा। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्यके समयमें इस नगरमें विशेष निर्माण-कार्य हुआ। उसने यहाँ विष्णुका मन्दिर बनवाया। इस मन्दिरके एक ओर नृसिंह तथा दूसरी ओर नृ-वराहके मन्दिर-का निर्माण कराया गया। इन तीनों देवताओंकी आकाय-परिमाण प्रतिमाएँ मिली हैं। विष्णु-मन्दिरके गर्भगृहकी छतका पाषाणखण्ड प्राप्त हुआ है, जिसपर कमलका अलंकरण अत्यन्त सुन्दर है। भगवान् विष्णुका मन्दिर तथा उनके पार्श्ववर्ती दोनों देव-मन्दिर साँचीमें प्राप्त गुप्तकालीन मन्दिरकी तरह सादे थे। उनकी छत सपाट थी। गर्भगृहके सामने छोटा-सा मण्डप था, जिसके चारों ओर प्रदक्षिणा-मार्ग रहता था।

गुप्त सम्राट् बुधगुप्तके समयमें प्राचीन ऐरिकिण नगरमें विष्णु-मन्दिरके सामने सैंतालीस फुट ऊँचा स्तम्भ निर्मित किया गया। इसपर सम्राट् बुधगुप्तके समयका लेख अङ्कित है। गरुडध्वजके शीर्षपर हाथोंमें साँप पकड़े हुए गरुड़-देवताकी प्रतिमाएँ आमने-सामने दिखायी गयी हैं। एरनसे पशु-वराहकी भी एक भव्य प्रतिमा मिली है।

विष्णु, नृसिंह तथा वराहकी उक्त मूर्तियाँ सौन्दर्य-पक्ष तथा मूर्ति-विज्ञान, दोनों दृष्टियोंसे बड़े महत्त्वकी हैं। तीनों देवोंको वनमाला धारण किये हुए प्रदर्शित किया गया है। उन्हें चारों ओरसे कोर कर बनाया गया था। नृ-वराह-प्रतिमाकी चौकीपर ईसवी चौथी शतीकी ब्राह्मी लिपिमें मूर्तिके निर्माताओंके नाम 'श्रीमहेश्वरदत्तस्य' तथा 'वराहदत्तस्य' खुदे हैं। ये सम्भवतः पिता-पुत्र या बड़े-छोटे भाई रहे होंगे। चौथी पशु-वराह-प्रतिमाके अङ्गोंपर ऋषि-मुनियों, देवी-देवताओं आदिके अङ्कन हैं। मूर्तिपर हूणराज तोरमाणके राज्यवर्ष प्रथमका लेख खुदा हुआ है। इससे ज्ञात होता है कि इस शासकने गुप्त साम्राज्यके ह्रासके दिनोंमें पूर्वी मालवा-क्षेत्रपर अपना अधिकार कर लिया। एरनमें कृष्ण-लीला-विषयक अनेक शिलापट्ट मिले हैं, जिनका निर्माण गुप्तकालमें हुआ।

विदिशा तथा एरनके उत्खननोंसे चन्द्रगुप्त द्वितीयके बड़े भाई रामगुप्तके ताँबेके सिक्के मिले हैं। उनपर भगवान् विष्णुका वाहन गरुड़ दिखाया गया है। गरुड़ गुप्त-शासकोंका मुख्य राजचिह्न हो गया। इस वंशके अधिकांश शासकोंके सिक्कों और मुहरोंपर गरुड़ या गरुडध्वजका अङ्कन मिलता है।

मध्यप्रदेश-क्षेत्रके अन्य कई प्राचीन नगरों—पद्मावती (पवाया), तुम्बवन (तुमैन, जिला गुना), उच्चकल्प (उँचेहरा, जि० सतना), श्रीपुर (सिरपुर) तथा राजिम (अन्तिम दोनों जि० रायपुर) में वैष्णवधर्मका विकास हुआ। पवाया तथा तुमैनसे भगवान् विष्णुकी विशिष्ट प्रतिमाएँ मिली हैं। मूर्तिशास्त्रके क्रमिक विकासके अध्ययनकी दृष्टिसे इनका विशेष महत्त्व है। झाँसी जिलेके देवगढ़ स्थानसे रामायण-विषयक तथा कृष्णलीला-विषयक अनेक सुन्दर प्रतिमाएँ मिली हैं। पन्ना जिलेके नचना नामक स्थानके कई ऐसे कलापूर्ण शिलापट्ट मिले हैं, जिनपर रामकथाके आलेखन हैं।

ई० छठीसे १३वीं शतीतक मध्यप्रदेशके अनेक स्थलोंमें विष्णुमन्दिरों तथा प्रतिमाओंका निर्माण बड़े रूपमें हुआ। इस कालमें पाण्डुवंश, गुर्जर-प्रतिहार, चंदेल, कलचुरि, परमार तथा कच्छपघात राजवंशोंने इस निर्माणमें विशेष योग दिया। चंदेलोंके शासनकालमें खजुराहोके जगत्प्रसिद्ध मन्दिर बनाये गये। शैव-मन्दिरोंके समान वैष्णव-मन्दिर-समूहका निर्माण उनके समयमें यहाँ बड़े रूपमें किया गया। ये मन्दिर विशाल होनेके साथ वास्तुकलाके उन सभी लक्षणोंका प्रतिनिधित्व करते हैं, जिनका स्वरूप पूर्व-मध्यकालमें निर्धारित हुआ था। इन मन्दिरोंमें भगवान् विष्णु और उनके अवतारों-को विविध रूपोंमें उत्कीर्ण किया गया है। राम-सीता, कृष्ण, वराह, नृसिंह आदि देवोंकी उल्लेखनीय प्रतिमाएँ इन मन्दिरोंमें विद्यमान हैं। भगवान् विष्णुके शास्त्रानुमोदित अनेक रूप खजुराहोकी कलामें मिले हैं। इन्हें देखनेसे ज्ञात होता है कि मध्यकालमें सूर्य, विष्णु, शिव आदि देवोंके जो मिश्र या संहत रूप निर्धारित हुए थे, उन्हें मूर्तरूप प्रदान

किया गया। इसी कारण इस कालकी कलामें हरि-हर, योग-नारायण, त्रिविक्रम, लक्ष्मी-नारायण, विष्णु, सर्वतोभद्र आदिकी प्रतिमाएँ मिलती हैं।

खजुराहोके अतिरिक्त पूर्व-मध्यकालमें मध्यप्रदेशके सुहानियाँ, पधावली, तेरही, कदवाहा, इन्द्रपुर, ग्यारसपुर, उज्जैन आदि अनेक स्थानोंमें वैष्णव प्रतिमाएँ मिली हैं। इन मूर्तियोंमें शास्त्रीय पक्षको प्रधानता दी गयी है। अलंकरणोंका भी प्रयोग इस कालमें अधिक मात्रामें किया जाने लगा। निर्धारित शास्त्रीय परम्पराके अनुकूल इन मूर्तियोंको मुख्य तथा गौणरूपोंमें उत्कीर्ण किया गया।

मध्यप्रदेश-क्षेत्रमें प्राचीन कालमें शैव तथा शाक्त धर्मोंका विशेष विकास हुआ, तो भी इस भूभागमें उपलब्ध वैष्णव-मन्दिरों तथा प्रतिमाओंकी बड़ी संख्याको देखते हुए यह निस्संदेह कहा जा सकता है कि यहाँ शुङ्ग-कालसे लेकर उत्तर-मध्यकालतक वैष्णवधर्मका विकास प्रचुर रूपमें हुआ।

श्रीविष्णुके मन्दिर तथा प्रतिमाओंका महत्त्वाङ्कन

सृष्टिमात्रमें—जड-चेतनमें सर्वत्र भगवान् विष्णु प्रतिष्ठित हैं। वे सबमें परिव्याप्त हैं, इस दृष्टिसे चराचर भूतमात्र उनके मन्दिर और प्रतिमा हैं। भगवान् वासुदेवमें समस्त प्राणी समवस्थित हैं और सभी प्राणियोंमें वे विद्यमान हैं—

सर्वाणि तत्र भूतानि वसन्ति परमात्मनि।
भूतेषु च स सर्वात्मा वासुदेवस्ततः स्मृतः॥

(विष्णुपुराण ६।५।८०)

वे प्राणियोंमें ही नहीं, समस्त देवोंमें भी व्याप्त हैं। प्रवेश करनेके अर्थमें 'विश' धातुका प्रयोग होता है, इसमें 'स्नु' प्रत्यय लगा देनेसे 'विष्णु' शब्द सिद्ध होता है—

विश प्रवेशने धातुस्तत्र स्नुप्रत्ययादनु।
विष्णुर्थः सर्वदेवेषु परमात्मा सनातनः॥

(वराहपुराण ७२।५)

हमारे पुराणोंमें श्रीविष्णुकी प्रतिमाके निर्माण और उपासनापर यथेष्ट प्रकाश डाला गया है, जिससे यह भी पता चलता है कि भगवान् विष्णुकी प्रतिमाका सबसे पहले कब निर्माण हुआ तथा कबसे उसकी उपासना अविच्छिन्नरूपसे चली आ रही है। पुराणोंके अध्ययनसे पता चलता है कि ब्रह्माकी इच्छासे सबसे पहले आदिकल्पमें देवशिल्पी विश्वकर्मा-ने श्रीविष्णुकी प्रतिमाका निर्माण किया था और स्वयं ब्रह्माने उसकी स्थापना की थी। नरसिंहपुराणके पचीसवें अध्यायमें वर्णन है कि 'इस आदिप्रतिमाको राजा इक्ष्वाकुने ब्रह्मासे प्राप्तकर अयोध्यामें प्रतिष्ठित किया' और ब्रह्मपुराणके १७६वें अध्यायमें उल्लेख है कि 'ब्रह्माने इसे इन्द्रको दिया और इन्द्रने अमरावतीमें इसकी स्थापना की।' नरसिंहपुराणमें वर्णन है कि ''राजा इक्ष्वाकु बड़े विष्णुभक्त थे। वे वसिष्ठजीकी आज्ञासे भगवान् विष्णुका दर्शन प्राप्त करनेके लिये वनमें निवास कर घोर तप करने लगे। उनकी असाधारण तपस्यासे प्रसन्न होकर ब्रह्माजी प्रकट हुए। इक्ष्वाकुद्वारा विष्णुदर्शन-की लालसा व्यक्त किये जानेपर उन्होंने तत्सम्बन्धी अपने कठोर तपका विवरण प्रस्तुत करते हुए कहा कि 'जगत्के प्राणियोंकी सृष्टि करके स्थित होनेपर मेरे हृदयमें प्रजापति विश्वकर्माका प्राकट्य हुआ। उन्होंने अनन्त नामक शेषनाग और भगवान् विष्णुकी दिव्य प्रतिमाएँ बनायीं। मैंने पहले जलके भीतर शेषशय्यापर हरिका जो रूप देखा था, उसीके अनुरूप भगवान्-की प्रतिमाएँ बनायी गयी थीं'—

सृष्टवान् लोकभूतानां सृष्टिं सृष्ट्वा स्थितस्य च।
आविर्बभूव मनसि विश्वकर्मा प्रजापतिः॥
अनन्तकृष्णयोस्तेन द्वे रूपे निर्मिते शुभे।
विमानस्थो यथापूर्वं मया दृष्टो जले नृप॥

(नरसिंहपुराण २५।५२-५३)

''तदुपरान्त ब्रह्माने इक्ष्वाकुसे कहा कि 'मैं सिद्धों और ब्राह्मणों-सहित उस विमानको, जिसपर भगवान्की प्रतिमा है, आपकी पुरीमें भेज दूँगा। आप अपनी पुरीको लौट जाइये।' ब्रह्माजीके चले जानेपर उपर्युक्त विष्णु और अनन्तकी प्रतिमाओंका विमान प्रकट हो गया। इक्ष्वाकुने अपनी पुरीमें राजभवनके विशाल मन्दिरमें उस वैष्णव-विमानकी स्थापना करके श्रीहरिकी आराधनासे अज, अशोक, अमल, विशुद्ध, शान्त एवं सच्चिदानन्दमय विष्णुपदको प्राप्त किया।''

स्वमन्दिरे विशाले तु विमानं वैष्णवं शुभम्॥
संस्थाप्याराधयामास तैर्द्विजैरर्चितं हरिम्।

(नरसिंहपुराण २५।६३-६४)

विष्णुप्रतिमा-निर्माणकी कथा ब्रह्मपुराणमें वर्णित है। उस आख्यानसे पता चलता है कि भगवान् विष्णुने रामरूपमें त्रेतामें अवतार लेकर स्वयं अपने ही स्वरूपकी प्रतिमाकी उपासना की थी। ब्रह्माने विश्वकर्मासे कहा कि तुम पृथ्वीपर भगवान् वासुदेवकी शिलामयी प्रतिमा बनाओ। विश्वकर्माने तत्काल ही एक सुन्दर सुदृढ़ प्रतिमा बनायी, जिसके हाथमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म शोभित थे। भगवान्‌का यह विग्रह सर्वलक्षणोंसे सम्पन्न और प्रभावशाली था, नेत्र कमल-दलके समान विशाल थे, वक्षःस्थलमें श्रीवत्सचिह्न था। हृदयदेशमें वनमाला थी। मस्तकपर मुकुट और भुजाओंमें अङ्गद शोभित थे। कंधे मोटे थे, कानोंमें कुण्डल झिलमिला रहे थे, श्याम अङ्गपर पीताम्बरकी अपूर्व शोभा थी। ब्रह्माका कथन है कि मैंने स्वयं इस प्रतिमाकी स्थापना की थी—

चकार प्रतिमां शुद्धां शङ्खचक्रगदाधराम्॥
सर्वलक्षणसंयुक्तां पुण्डरीकायतेक्षणाम्।
श्रीवत्सलक्ष्मसंयुक्तामत्युग्रां प्रतिमोत्तमाम्॥
वनमालावृतोरस्कां मुकुटाङ्गदधारिणीम्।
पीतवस्त्रां सुपीनांसां कुण्डलाभ्यामलंकृताम्॥
एवं सा प्रतिमा दिव्या गुह्यमन्त्रैस्तदा स्वयम्।
प्रतिष्ठाकालमासाद्य मयासौ निर्मिता पुरा॥

(ब्रह्मपुराण १७६। ८–११)

ब्रह्माको प्रसन्नकर इन्द्र उस प्रतिमाको अमरावती ले गये। त्रेतामें राक्षसराज रावणने दस हजार वर्ष तपस्या करके ब्रह्माके वरदानसे देवताओंसे भयंकर संग्राम किया। उसके पुत्र मेघनादने इन्द्रको जीत लिया। रावणने उपर्युक्त प्रतिमा पुष्पकविमानसे लङ्का भिजवा दी। लङ्काके नगराध्यक्ष रावणके भाई नारायणभक्त विभीषणने भगवान्‌की प्रतिमाको प्रणाम किया। उन्होंने विशेष आग्रह कर रावणसे प्रतिमा माँग ली और एक सौ आठ सालतक भगवान् विष्णुकी उपासना की। भगवान् रामने रावणका वध हो जानेपर विभीषणको लङ्काका राज्य प्रदान करके उपर्युक्त विष्णु-प्रतिमाको पुष्पक-विमानपर पधराकर अयोध्याके लिये प्रस्थान किया। उन्होंने अपने पुरातनस्वरूप श्रीविष्णुकी उस प्रतिमाकी आराधना करते हुए ग्यारह हजार वर्षोंतक पृथ्वीका पालन किया। वैष्णवधाममें प्रवेश करते समय उन्होंने वह प्रतिमा वरुणको समर्पित कर दी—

पुरातनीं स्वमूर्तिं च समाराध्य ततो हरिः।
दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च॥
भुक्त्वा सागरपर्यन्तां मेदिनीं स तु राघवः।
राज्यमासाद्य सुगतिं वैष्णवं पदमाविशत्॥
तां चापि प्रतिमां रामः समुद्रेशाय दत्तवान्।

(ब्रह्मपुराण १७६। ४९–५१)

द्वापरमें श्रीकृष्णका अवतार होनेपर समुद्रने उपर्युक्त प्रतिमाको पुण्यमय 'पुरुषोत्तम'-क्षेत्रमें प्रकट किया। उस मुक्ति-दायक क्षेत्रमें सबकी कामना पूर्ण करनेवाली प्रतिमा विराजमान है—

तदा तां प्रतिमां विप्राः सर्ववाञ्छाफलप्रदाम्।
सर्वलोकहितार्थाय कस्यचित्कारणान्तरे॥
तस्मिन् क्षेत्रवरे पुण्ये दुर्लभे पुरुषोत्तमे।
उज्जहार स्वयं तोयात्समुद्रः सरितांपतिः॥

(ब्रह्मपुराण १७६। ५४-५५)

आशय यह है कि आदिकल्पमें ही श्रीविष्णुकी प्रतिमाका विश्वकर्माने निर्माण किया, ब्रह्माने स्थापन किया और तबसे भगवद्विग्रहकी उपासना अविच्छिन्नरूपसे होती चली आ रही है।

वेदों, उपनिषदों, महाभारत तथा पुराणोंमें विष्णुकी उपासना और पूजाका जो निरूपण उपलब्ध होता है, वह इस बातका पोषण करता है कि उक्त उपासना अनादिकालसे प्रचलित है। बेसनगर (भेलसा)के लेखसे पता चलता है कि ईसासे लगभग दो सौ साल पहले हेलियोडोरने गरुडध्वज स्थापित किया था। उसमें विष्णुका 'वासुदेव' नामसे उल्लेख है। भारतीय इतिहासके गुप्तयुगमें भागवतधर्म राजधर्म स्वीकृत था। गुप्त शासक सम्राट् स्कन्दगुप्तके जूनागढ़-लेखमें भगवान् विष्णुकी स्तुति इन शब्दोंमें अङ्कित है—

श्रियमभिमतभोग्यां नैककालापनीतां
त्रिदशपतिसुखार्थं यो बलेराजहार।
कमलनिलयनायाः शाश्वतं धाम लक्ष्म्याः
स जयति विजितार्तिर्विष्णुरत्यन्तजिष्णुः॥

'जिन्होंने देवराज इन्द्रको सुख देनेके लिये दैत्यराज बलिके उस ऐश्वर्यको छीन लिया, जो यथेच्छ भोगा जा सकता था और जो कभी उनसे अलग नहीं होता था, जो कमलालया भगवती लक्ष्मीके शाश्वत निवास हैं, भक्तोंकी पीड़ाका नाश करनेवाले वे भगवान् विष्णु अत्यन्त जयशील हैं।'

विष्णु-उपासनाका हमारे साहित्य, धर्म, समाज, संस्कृति, मूर्तिकला, शिल्पकला आदिपर स्पष्ट प्रभाव दीख पड़ता

है। हमारे पुराणोंमें विष्णु-मन्दिरके निर्माणका महत्त्व स्पष्ट रूपसे स्वीकार किया गया है। अग्निपुराणके ३८वें अध्यायमें उल्लेख है कि 'भगवान् विष्णुके निमित्त मन्दिरका निर्माण कर मनुष्य अपने भूतपूर्व तथा भविष्यमें होनेवाले दस हजार कुलोंको तत्काल विष्णुलोकमें जानेका अधिकारी बना देता है। भगवान् विष्णु सप्तलोकमय हैं। जो उनका मन्दिर बनवाता है, वह अपने कुलोंको तारता है, उन्हें अक्षय लोकोंकी प्राप्ति कराता है और स्वयं भी अक्षय लोकोंको प्राप्त होता है। भगवान्की प्रतिमा बनानेवाला विष्णुलोकको प्राप्त होता है, उसकी स्थापना करनेवाला भगवान्में लीन हो जाता है और देवालय बनवाकर उसमें प्रतिमाकी स्थापना करनेवाला सदा भगवान्के लोकमें निवास पाता है।'

सप्तलोकमयो विष्णुस्तस्य यः कुरुते गृहम्।
तारयत्यक्षयाँल्लोकानक्षय्यान् प्रतिपद्यते ॥
प्रतिमाकृद् विष्णुलोकं स्थापको लीयते हरौ।
देवसद्मप्रतिकृतिप्रतिष्ठाकृत्तु गोचरे ॥

(अग्निपुराण ३८। ४७—४९)

नारदपुराणमें उल्लेख है कि 'ब्राह्मण, भूमि, अग्नि, सूर्य, जल, धातु, हृदय और चित्रपट—ये भगवान् केशवकी आठ प्रतिमाएँ हैं।' सनकने नारदजीसे कहा कि 'दूसरे किसीको पीड़ा न पहुँचाते हुए भक्तिपूर्वक इनके माध्यमसे सर्वमय भगवान् विष्णुका पूजन करना चाहिये।'

द्विजभूम्यग्निसूर्याम्बुधातुहृच्चित्रसंज्ञिताः ।
प्रतिमाः केशवस्यैताः पूज्या एतास्तु भक्तितः ॥
कर्मणा मनसा वाचा परपीडापराङ्मुखः।
तस्मात् सर्वगतं विष्णुं पूजयेद्भक्तिसंयुतः ॥

(नारदपुराण, पूर्व० ३३। ३३-३४)

प्रतिमाएँ चल, अचल और चलाचलरूपमें विभाजित हैं। प्रतिमाओंको चित्र, चित्रार्द्ध और चित्राभास भी कहा जाता है। 'चित्र'की समस्त भुजाएँ अभिव्यक्त रहती हैं, 'चित्रार्द्ध'में केवल ऊर्ध्वरूप अर्द्धभाग ही चित्रित रहता है और भित्ति तथा कपड़ोंपर अङ्कित मूर्ति अथवा प्रतिमाका नाम 'चित्राभास' है। भगवान् विष्णुकी प्रतिमाएँ योग, भोग, वीर तथा आभिचारिक—चार श्रेणियोंमें विभक्त हैं। प्रतिमाएँ रुद्र—उग्र और शान्त—सौम्य श्रेणीमें भी विभाजित की जाती हैं। उग्र प्रतिमाकी उपासना किसीपर बलात् विजय पानेके लिये शक्तिप्राप्त्यर्थ की जाती है और शान्त मूर्तिकी उपासना आत्मकल्याण और शान्तिप्राप्तिके लिये की जाती है। भगवान् विष्णुके विश्वरूप, नृसिंह, वटपत्रशायी, परशुराम आदि रूपोंकी प्रतिमाएँ उग्र श्रेणीमें परिगणित होती हैं। श्रीविष्णुकी योगमूर्ति—चाहे स्थानक (खड़ी) हो, या आसनस्थ (बैठी हो) या शयन करनेवाली—लेटी हो, ग्रामसे दूर नदीतटपर स्थित, वनप्रान्तमें अथवा पहाड़ीकी चोटीपर निर्मित मन्दिरमें स्थापित करनी चाहिये। यह मूर्ति आध्यात्मिक-यौगिक साधनामें सहायक होती है। विष्णुकी भोगमूर्तिकी स्थापना नगर और ग्राममें निर्मित मन्दिरमें की जाती है। यह भोग-सुख और आनन्द प्रदान करती है। विष्णुकी वीरमूर्ति शारीरिक शक्ति देती है। इसके मन्दिरका निर्माण नगरके बाहर या भीतर किया जा सकता है। विष्णुकी आभिचारिक मूर्तिकी उपासना शत्रुविजयकी शक्ति देती है। इस मूर्तिको नगर या ग्रामके मध्यमें निर्मित मन्दिरमें स्थापित करना विघ्नकारी सिद्ध होता है। इसके लिये मन्दिरका निर्माण किसी जंगलमें अथवा किले या दुर्गमें या ऐसे स्थानमें, जो दलदल-युक्त हो, करना चाहिये। यदि विष्णुकी शयनमूर्तिका सिर उत्तरकी ओर रहता है तो यह आभिचारिक फल देती है; यदि पूर्वकी ओर होता है तो शान्ति प्रदान करती है; यदि पश्चिमकी ओर होता है तो पुष्टि देती है और दक्षिण दिशामें होनेसे उससे जयकी प्राप्ति होती है। यदि ग्रामके पूर्वभागमें निर्मित मन्दिरमें विष्णुके किसी उग्र-विग्रहकी स्थापना की जाती है तो सारा गाँव विनष्ट हो जाता है; यदि दक्षिण-पूर्वमें प्रतिष्ठा की जाती है तो वहाँकी स्त्रियाँ दुराचारिणी हो जाती हैं; यदि दक्षिण दिशामें स्थापना होती है तो भूत-प्रेत विघ्न उपस्थित करते हैं; यदि दक्षिण-पश्चिममें स्थापना होती है तो सारा गाँव महामारीका शिकार हो जाता है और जनसंख्या कम हो जाती है; यदि पश्चिम दिशामें मूर्ति प्रतिष्ठित होती है तो गाँव अशान्ति और दुःखमें निमग्न हो जाता है तथा उसकी उत्तरमें स्थापना होनेपर यातना और पीड़ाका आक्रमण होता है। केवल उत्तर-पूर्व दिशामें ही उग्र विग्रहकी स्थापना होनेपर शान्ति और सुखकी प्राप्ति हो पाती है। यदि गाँवके मन्दिरमें उग्ररूप विग्रहकी स्थापना होती है तो विघ्ननाश और उत्पातकी शान्तिके लिये उसके ठीक सामने शान्त अथवा सौम्यमूर्तिकी प्रतिष्ठा नितान्त आवश्यक है। यदि यह सम्भव न हो तो मन्दिरके सामने तड़ागका निर्माण अपेक्षित है। शान्त-मूर्तिकी स्थापना गाँवके मध्यमें की जाती है।

विष्णुकी योगस्थानक-मूर्तिकी चार भुजाएँ होती हैं, श्यामवर्ण होता है; पिछले दाहिने हस्तमें चक्र रहता है, सामनेका दाहिना हस्त वरद अथवा अभय मुद्रामें अवस्थित होता है, पिछला वाम हस्त शङ्ख धारण करता है और सामनेका वाम हस्त कटिपर स्थित होता है। यह 'कटि-अवलम्बित हस्त' कहलाता है। विग्रहके दोनों ओर—दाहिनी ओर भृगु और बायीं ओर मार्कण्डेय एक घुटनेके बल विनत रहते हैं या दाहिनी ओर भूदेवी तथा बायीं ओर महर्षि मार्कण्डेयके विग्रह निर्मित रहते हैं। केन्द्रीय मन्दिर—मुख्य मन्दिरकी उत्तरी दीवारपर दक्षिणी दीवारके अभिमुख शिवका रूप अङ्कित करना चाहिये। इसकी चार भुजाएँ होती हैं। नीचेकी एक बायीं भुजा कटिपर अवलम्बित होती है तथा दूसरी बायीं भुजामें मृगचर्म होता है। ऊपर उठी दाहिनी भुजामें परशु रहता है और दूसरा दाहिना हाथ अभयमुद्रामें स्थित रहता है। इसी तरह उत्तरी दीवारके अभिमुख दक्षिणी दीवारपर ब्रह्माकी मूर्ति निर्मित होती है। इसकी चार भुजाएँ होती हैं। दो हाथोंमें तो अक्षमाला और कमण्डलु रहता है, तीसरा हाथ इस तरह अङ्कित रहता है मानो विष्णुके स्तवनमें उन्नत हो तथा चौथा हाथ कटिप्रदेशमें स्थित होता है। इस तरहका ऋषि, शिव और ब्रह्मासे संयुक्त विष्णु-विग्रह उत्तम श्रेणीका कहा जाता है; शिव और ब्रह्माकी मूर्तिके अभावमें यह मध्यम श्रेणीका विग्रह माना जाता है और यदि पूजक ऋषि भी अनुपस्थित हों तो यह अधम श्रेणीकी 'स्थानक योगमूर्ति' कहलाती है।

विष्णुकी 'भोगस्थानकमूर्ति'की चार भुजाएँ होती हैं। पिछले दोनों हाथोंमें शङ्ख-चक्र रहते हैं, सामनेका दाहिना हाथ वरद मुद्रामें रहता है और बायाँ हाथ कटितक नीचेकी ओर लटकता है या कटकमुद्रामें चित्रित होता है, जिसमें अँगूठेसे सारी अँगुलियाँ मिलकर अँगूठीकी तरह या सिंह-कर्णके समान दीख पड़ती हैं। भोगस्थानक मूर्ति श्यामवर्णकी होती है। विष्णुविग्रहकी दाहिनी ओर श्रीदेवीकी मूर्ति रहती है, जो खड़ी स्थितिमें रहती है। उसका दाहिना पैर सुदृढ़तापूर्वक भूमिका स्पर्श करता रहता है तथा बायाँ पैर थोड़ा-सा झुका रहता है। देवीके दाहिने हाथमें कमलका फूल रहता है और बायाँ हाथ स्वच्छन्दतासे बगलमें स्थित रहता है। श्रीदेवीका वर्ण पीतस्वर्णिम होता है। विष्णु-विग्रहकी बायीं ओर भूदेवीकी मूर्ति रहती है, जिसका वर्ण श्याम होता है। उसके बायें हाथमें नीलोत्पल रहता है तथा दाहिना हाथ बगलमें अवस्थित रहता है। विष्णु-विग्रहकी दाहिनी और बायीं ओर भृगु और मार्कण्डेयकी मूर्तियाँ क्रमशः उत्कुटिकासनमें विराजमान रहती हैं। उत्कुटिकासनमें दोनों एड़ियोंको बीचोबीच सटाकर बैठा जाता है। प्रमुख विष्णु-विग्रहके ऊपरकी ओर माया, संह्लादिनी, कामिनी, व्याजिनी, तुम्बुरु, नारद, युगल किंनर, यक्ष, विद्याधर, सनक और सनत्कुमार तथा सूर्य और चन्द्रके चित्र अङ्कित रहते हैं। प्रमुख मन्दिरकी उत्तरी-दक्षिणी दीवारोंपर शिव और ब्रह्माकी मूर्तियाँ निर्मित रहती हैं। विष्णुकी यह उत्तम 'भोगस्थानक-मूर्ति' कही जाती है; यक्ष, विद्याधर, नारद और तुम्बुरुकी मूर्तियोंके अभावमें वह मध्यम श्रेणीकी मानी जाती है। इसके साथ ही यदि सनक-सनत्कुमार, सूर्य, चन्द्र और दोनों पूजक मुनियोंकी भी मूर्तियाँ नहीं रहतीं तो यह भोगस्थानक विष्णु-मूर्ति अधम श्रेणीकी कही जाती है।

विष्णुकी 'वीरस्थानकमूर्ति' खड़ी होती है। इस मूर्तिके हाथोंमें शङ्ख-चक्र उपर्युक्त वर्णनके अनुसार रहते हैं और इसके चारों ओर ब्रह्मा, शिव, भृगु, मार्कण्डेय, किष्किन्धा, सुन्दर, सनक-सनत्कुमार, सूर्य-चन्द्रकी मूर्तियाँ रहती हैं। यह कहना कठिन है कि किष्किन्धा और सुन्दरकी मूर्तियाँ किनका प्रतिनिधित्व करती हैं। विष्णुकी यह मूर्ति उत्तम श्रेणीकी कही जाती है; सुन्दर, किष्किन्धा, सनक और सनत्कुमारकी मूर्तियोंके अभावमें यह मध्यम श्रेणीकी मानी जाती है। साथ ही सूर्य और चन्द्र तथा पूजक मुनियोंकी मूर्तियाँ भी न रहें तो वह अधम श्रेणीकी कही जाती है।

विष्णुकी 'आभिचारिक स्थानकमूर्ति' कहीं-कहीं दो भुजावाली, तो कहीं-कहीं चार भुजावाली होती है। इसका वर्ण काला होता है तथा मुख अस्पष्ट रहता है। इसको काले कपड़ेसे ही अलंकृत किया जाता है। इस मूर्तिके साथ किसी अन्य देवी-देवता या पूजकमुनियों आदिकी मूर्तियाँ नहीं रहतीं। इस मूर्तिकी स्थापनाके लिये निर्मित मन्दिर न तो देखनेमें सुन्दर होता है न उसका आकार-प्रकार ही समानुपातमें होता है। इस मन्दिरका निर्माण पैशाचपद दिशामें किया जाता है।

ग्रामं तु पञ्चधा कृत्वा भागमेकं बहिर्न्यसेत्।
तत्पैशाचमिति ज्ञेयं तत्र देवालयो भवेत्॥
(पूर्वकारणागम)

'गाँवको पाँच भागोंमें बाँटकर उनमेंसे एक भागको बाहर निकाल दे—अलग कर दे। उस पाँचवें पृथक्कृत

भागको 'पैशाचपद' कहा जाता है। वहीं आभिचारिक विष्णुमूर्तिका मन्दिर बनवाना चाहिये।'

आभिचारिक प्रतिमाका निर्माण मेष, कर्क, तुला अथवा मकर राशिके महीनेके कृष्णपक्षमें आर्द्रा नक्षत्रमें रातमें करना चाहिये।

विष्णुकी 'योगासन-मूर्ति' आसनस्थ—बैठी रहती है। इसकी चार भुजाएँ होती हैं, वर्ण श्वेत होता है, सिरपर जटा-मुकुट रहता है और आसन पद्मासन या ब्रह्मासन होता है। सामनेके दोनों हाथ योगमुद्रामें स्थित रहते हैं, दक्षिण करतल वाम करतलमें अवस्थित रहता है। इस मूर्तिके हाथमें शङ्ख-चक्र नहीं रहते। इस मूर्तिके अधोवस्त्रका रंग पीला होता है और ऊर्ध्ववस्त्र श्वेत वर्णका रहता है। मूर्तिके वक्षदेशमें यज्ञोपवीत, कानोंमें कुण्डल, भुजाओंमें केयूर तथा गलेमें हारका अलंकरण रहता है। आँखें थोड़ी-थोड़ी मुँदी रहती हैं। योगासन-मूर्तिके मन्दिरकी उत्तरी दीवारपर शिवकी आसनस्थ मूर्ति अङ्कित की जाती है तथा इसी तरह दक्षिणी दीवारपर ब्रह्माकी मूर्ति अङ्कित रहती है। पीछेकी ओर पश्चिमी दीवारपर सूर्य, चन्द्र, सनक-सनत्कुमारकी मूर्तियाँ अङ्कित की जाती हैं तथा विष्णु-विग्रहके दोनों ओर भृगु और मार्कण्डेय या मार्कण्डेय और भूदेवीकी मूर्तियाँ निर्मित रहती हैं। इस तरह यह योगासन-मूर्ति उत्तम श्रेणीकी कही जाती है। चन्द्र, सूर्य, सनक-सनत्कुमारकी मूर्तियोंकी अनुपस्थितिमें यह मध्यम श्रेणीकी होती है; साथ ही यदि भृगु और मार्कण्डेयकी भी मूर्तियोंका अभाव हो तो उपर्युक्त विष्णुप्रतिमा अधम श्रेणीकी गिनी जाती है।

विष्णुकी 'भोगासन-मूर्ति' सिंहासनासीन होती है तथा उसके दक्षिण और वामभागमें श्रीलक्ष्मी और भूदेवीकी मूर्तियाँ क्रमशः निर्मित रहती हैं। विष्णुका वर्ण कृष्ण होता है, उनकी भुजाएँ चार होती हैं; दाहिने हाथोंमेंसे एकमें तो चक्र रहता है और दूसरा हाथ अभय या वरद मुद्रामें रहता है। बायें हाथोंमेंसे एकमें शङ्ख रहता है और दूसरा कटिप्रदेशमें अवस्थित रहता है। यह कटि-अवलम्बित हस्त कहा जाता है। दक्षिण ओर स्थित लक्ष्मीमूर्तिका बायाँ चरण आसनपर टिका रहता है तथा दाहिना पद लटका रहता है; इसके विपरीत वामभागमें अवस्थित भूदेवीका दाहिना चरण आसनपर टिका रहता है और बायाँ चरण लटका रहता है। लक्ष्मीके बायें हाथमें पद्म रहता है, भूदेवीके दाहिने हाथमें नीलोत्पल शोभित होता है। भोगासन-मूर्तिके मन्दिरकी दक्षिणी दीवारपर ब्रह्मा और उत्तरी दीवारपर शिवकी आसन (बैठी)-मूर्तियाँ रहती हैं। मार्कण्डेय और भृगु घुटनेके बल झुककर विष्णु-विग्रहके प्रति पूज्यभाव अर्पित करते हैं। विष्णु-विग्रहके पीछेकी ओरकी दीवारपर माया, संह्लादिनी, तुम्बुरु, नारद, युगल किंनर, यक्ष, विद्याधर, सनक-सनत्कुमार, चन्द्र-सूर्य और कल्पवृक्ष प्रतिमाङ्कित रहते हैं। विष्णुकी यह भोगासन-मूर्ति उत्तम श्रेणीकी होती है; किंनर, तुम्बुरु, विद्याधर, यक्ष, नारदकी अनुपस्थितिमें यह मध्यम श्रेणीकी होती है और साथ ही यदि सनक-सनत्कुमार और पूजक मुनियोंकी मूर्तियाँ न हों तो यह अधम श्रेणीकी प्रतिमा कही जाती है।

विष्णुकी 'वीरासन-प्रतिमा' सिंहासनासीन होती है। इसका वाम चरण मुड़ा रहता है तथा दक्षिण चरण थोड़ा-थोड़ा प्रलम्बित रहता है। प्रतिमाकी दाहिनी ओर लक्ष्मी और बायीं ओर भूदेवीके विग्रह रहते हैं। उनके पैरका एक-एक घुटना झुका रहता है। इस वीरासन-प्रतिमाका वर्ण प्रवाल—मूँगेके समान लाल होता है और यह काले वस्त्रसे अलंकृत रहती है। दोनों दाहिने हाथोंमेंसे एकमें चक्र रहता है और दूसरा अभयमुद्रामें रहता है। दोनों बायें हाथोंमेंसे एकमें शङ्ख रहता है और दूसरा सिंहकर्णमुद्रामें स्थित रहता है। विष्णुकी प्रतिमाकी दाहिनी ओर ब्रह्मा और मार्कण्डेयकी मूर्तियाँ रहती हैं और बायीं ओर शिव और भृगुकी मूर्तियाँ निर्मित की जाती हैं। दोनों ओर दो देवाङ्गनाएँ कामिनी और व्याजिनी चामर झलती हुई मूर्त रहती हैं। विष्णुकी प्रतिमाके चारों ओर सनक, सनत्कुमार, तुम्बुरु, नारद, सूर्य एवं चन्द्रकी मूर्तियाँ निर्मित की जाती हैं। इस स्थितिमें विष्णुकी वीरासन-मूर्ति उत्तम श्रेणीकी कही जाती है। यदि तुम्बुरु, नारद, कामिनी, व्याजिनी, सनक तथा सनत्कुमारकी मूर्तियाँ अनुपस्थित हैं तो यह मध्यम श्रेणीकी मानी जाती है और ब्रह्मा, शिव, लक्ष्मी और भूदेवी तथा सूर्य-चन्द्रकी मूर्तियोंके अभावमें अधम श्रेणीकी कही जाती है।

विष्णुकी 'आभिचारिकासन-मूर्ति' बैठी—आसनस्थ होती है। इसकी या तो दो भुजाएँ होती हैं या चार भुजाएँ रहती हैं। इस मूर्तिका आसन 'वेदिकासन' कहलाता है। इसकी मुखाकृति तमोगुणी और भयावनी होती है। इसका वर्ण नीला होता है तथा वस्त्र काला रहता है। आँखें ऊपरकी ओर उठी रहती हैं। यह मूर्ति अकेली रहती है। इसकी

स्थापना मेष, कर्क, तुला और मकर राशिके महीनोंके कृष्णपक्षकी अष्टमीको आर्द्रा नक्षत्रमें की जाती है। इसका मन्दिर गाँवकी पैशाचपद दिशामें बनाया जाता है और अभिचारपात्र शत्रुके निवासस्थानकी दिशामें इसका दरवाजा रहता है।

विष्णुकी 'योगशयन-मूर्ति' शेषशायी होती है। इसके दो हाथ होते हैं। विग्रहके अङ्गका चौथाई भाग ऊपरकी ओर उठा रहता है तथा शेष तीन चौथाई भाग शेषकी शय्यापर स्थित रहता है। दाहिना हाथ सिरहानेकी ओर मुकुटका स्पर्श करता है और बायाँ हाथ अङ्गके समानान्तर स्थित रहते हुए जाँघका स्पर्श करता है। दाहिना पैर फैला रहता है और बायाँ पैर थोड़ा-थोड़ा मुड़ा रहता है। आभूषणोंसे यह मूर्ति समलंकृत रहती है। नेत्र अर्धोन्मीलित रहते हैं। इसका वर्ण पीत-कृष्ण होता है। मूर्तिके एक ओर भृगु और मार्कण्डेयकी मूर्तियाँ बनायी जाती हैं और दूसरी ओर चरणके निकट मधु-कैटभकी मूर्तियाँ रहती हैं। विष्णुकी नाभिसे उत्पन्न कमलपर ब्रह्मा आसनस्थ रहते हैं और मन्दिरकी पिछली दीवारपर तथा शेषशायी विष्णु-विग्रहके ऊपरकी ओर भीतरी छतपर आयुध-पुरुष, गरुड़ एवं विष्वक्सेनकी अञ्जलि-मुद्रावाले हाथोंसे युक्त खड़ी मूर्तियाँ बनायी जाती हैं। उत्तरी दीवारपर ब्रह्मा और दक्षिणी दीवारपर शिवकी आसनस्थ (बैठी) मूर्तियाँ अङ्कित रहती हैं। विष्णुकी उपर्युक्त शेषशायी प्रतिमा उत्तम श्रेणीकी कही जाती है। सप्तर्षि और विष्वक्सेनकी मूर्तियोंके अभावमें वह मध्यम श्रेणीकी मानी जाती है। साथ-ही-साथ यदि पूजक मुनियों और मधु-कैटभकी भी मूर्तियाँ नहीं हैं तो यह विग्रह अधम श्रेणीका गिना जाता है।

विष्णुकी 'भोगशयन-मूर्ति' द्विभुज अथवा चतुर्भुज होती है। यह सुडौल और गठित होती है। इसके सिरहाने कंधेके निकट लक्ष्मीजीकी आसनस्थ (बैठी) मूर्ति रहती है, लक्ष्मीजीके दाहिने हाथमें पद्म रहता है और बायाँ हाथ कटकमुद्रामें स्थित रहता है। पैरकी ओर भूदेवीकी आसनस्थ मूर्ति रहती है। भूदेवीके दाहिने हाथमें नीलोत्पल रहता है और बायाँ हाथ कटकमुद्रामें रहता है।"""""दाहिनी ओर मार्कण्डेय और बायीं ओर भृगुकी बैठी (आसनस्थ) मूर्तियाँ रहती हैं। दक्षिणी दीवारपर ब्रह्मा और उत्तरी दीवारपर शिवकी मूर्तियाँ अङ्कित रहती हैं। दोनों मूर्तियाँ बैठी (आसनस्थ) रहती हैं। मन्दिरकी दक्षिणी बाहरी दीवारपर गणेश और उत्तरी दीवारपर दुर्गाकी मूर्तियाँ अङ्कित रहती हैं। प्रमुख विष्णु-प्रतिमाके चरणके निकट मधु-कैटभकी मूर्तियाँ रहती हैं। मधु-कैटभ युद्ध करनेकी मुद्रा तथा विशेष उत्तेजित रूपमें अङ्कित रहते हैं और उनके घुटनोंके नीचेके चरणप्रान्त समुद्रकी तरंगोंमें निमग्न निर्मित किये जाते हैं। दोनों-के-दोनों शेषके मुखसे निकले विषैले श्वासोंसे विशेष उत्पीड़ित स्थितिमें अङ्कित किये जाते हैं। विष्णुके नाभि-कमलपर ब्रह्मा आसनस्थ प्रतिमाङ्कित किये जाते हैं। विष्णु-प्रतिमाकी दाहिनी ओर पञ्च आयुध-पुरुषों और गरुड़की मूर्तियाँ रहती हैं। गरुड़की दाहिनी ओर सूर्य तथा ब्रह्माकी बायीं ओर अश्विनी-कुमार, तुम्बुरु, नारद और चन्द्रमाकी मूर्तियाँ बनायी जाती हैं। साथ-ही-साथ दिक्पालों और चामर झलती अप्सराओंकी मूर्तियोंका भी अङ्कन किया जाता है। यह उत्तम श्रेणीकी भोगशयन विष्णु-प्रतिमा स्वीकार की जाती है। यदि तुम्बुरु, नारद एवं दिक्पालोंकी मूर्तियाँ नहीं रहतीं तो उसको मध्यम श्रेणीमें गिना जाता है और साथ ही यदि पूजक मुनियों और अप्सराओंकी भी मूर्तियाँ न रहें तो उपर्युक्त प्रतिमा अधम श्रेणीकी मानी जाती है।

विष्णुकी 'वीरशयन-मूर्ति'का वर्ण काला होता है। यह चतुर्भुज मूर्ति है। इसके एक दाहिने हाथमें चक्र रहता है और दूसरा तकियेका काम देता है; एक बायें हाथमें शङ्ख रहता है, दूसरा बायाँ हाथ जाँघके समानान्तर स्थित रहता है। चरणोंके दोनों ओर लक्ष्मी और भूदेवीकी आसनस्थ मूर्तियाँ रहती हैं। मधु और कैटभ विष्णुके चरणको अपने हाथोंमें रखते अङ्कित किये जाते हैं। मार्कण्डेय और भृगु— दोनों पूजक मुनियोंकी मूर्तियाँ भी निर्मित की जाती हैं। विष्णुके नाभि-कमलपर ब्रह्मा आसीन रहते हैं। मन्दिरकी पिछली दीवारपर पञ्च आयुध-पुरुष, गरुड़, चन्द्र, सूर्य, सप्तर्षि, बारह आदित्य, ग्यारह रुद्र, अप्सराओं, तुम्बुरु, नारद, युगल किंनर, सनक-सनत्कुमार, शिव तथा ब्रह्माकी मूर्तियाँ रहती हैं। विष्णुकी इस वीरशयन-प्रतिमाको उत्तम श्रेणीमें गिना जाता है। शङ्ख, चक्र, गदा, धनुष और खड्ग ही पञ्च आयुध-पुरुष हैं। यदि इस प्रतिमाके साथ रुद्र, आदित्य, अप्सरा और सप्तर्षियोंकी मूर्तियाँ न हों तो इसको मध्यम श्रेणीमें समझा जाता है और साथ ही यदि युगल किंनर, सनक, सनत्कुमार और पूजक मुनियोंकी भी मूर्तियाँ न हों तो उपर्युक्त विष्णु-विग्रह अधम श्रेणीका कहा जाता है।

विष्णुकी 'आभिचारिक शयनमूर्ति' भूमिपर आदिशेषकी शय्यापर लेटी रहती है। शेषके एक फन होता है और दो सिर होते हैं। उनका शरीर केवल दो कुण्डलियों—गेंडुरियोंसे शोभित रहता है। उनका फन अधिक उन्नत—उठा हुआ नहीं रहता। इस आभिचारिक शयनमूर्तिका रंग नीला होता है और यह द्विभुज अथवा चतुर्भुज होती है। प्रतिमा पूर्ण निद्रामें मग्न निर्मित की जाती है। इसकी मुखाकृति स्पष्ट नहीं अङ्कित की जाती तथा इसको काले वस्त्रसे आवेष्टित किया जाता है। इस रूपमें यह प्रतिमा उत्तम श्रेणीकी कही जाती है। यदि शेषका एक ही सिर बनाया जाता है और उसकी एक ही गेंडुरी होती है तो यह मध्यम श्रेणीकी प्रतिमा मानी जाती है। आदिशेषकी शय्याके अभावमें यह आभिचारिक शयनविग्रह अधम श्रेणीकागिना जाता है। 'रूपमण्डन' और 'अग्निपुराण'के अड़तालीसवें अध्यायमें यथाक्रम विष्णुकी चौबीस मूर्तियोंका नामोल्लेख है। वे हैं—केशव, नारायण, माधव, गोविन्द, विष्णु, मधुसूदन, त्रिविक्रम, वामन, श्रीधर, हृषीकेश, पद्मनाभ, दामोदर, वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, पुरुषोत्तम, अधोक्षज, नरसिंह, अच्युत, जनार्दन, वामनरूपधारी उपेन्द्र, हरि और श्रीकृष्ण। ये सभी मूर्तियाँ स्थानक (खड़ी) होती हैं। 'रूपमण्डन', 'शिल्परत्न', 'बृहत्संहिता', 'वैखानस आगम', 'विष्णुधर्मोत्तरपुराण' तथा 'अग्निपुराण' आदिमें श्रीविष्णुके दशावतार तथा उनसे सम्बद्ध आभूषण, आयुध-पुरुष तथा वाहन आदिकी प्रतिमाओंके सम्बन्धमें विचार किया गया है। भगवान् विष्णुके दस अवतार हैं—मत्स्य, कूर्म, वराह, नरसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध और कल्कि। किसी-किसी पुराणमें बुद्धके स्थानपर बलरामको दस अवतारोंमें सम्मिलित किया गया है। इन दशावतारोंके नामोच्चारणमात्रसे ब्रह्महत्यारा भी शुद्ध हो जाता है—

मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नृसिंहो वामनस्तथा।
रामो रामश्च कृष्णश्च बुद्धः कल्किस्ततः स्मृतः॥
एते दशावताराश्च पृथिव्यां परिकीर्तिताः।
एतेषां नाममात्रेण ब्रह्महा शुद्ध्यते सदा॥

(पद्मपुराण, उत्तर० ७१। २७-२८)

भगवान् विष्णुके मत्स्यावतारकी प्रतिमा मत्स्यके आकारकी बनायी जाती है या अर्धशरीर मनुष्यका और अर्धशरीर मत्स्यका रहता है। ऊर्ध्व अङ्ग मनुष्याकार होता है, नीचेका भाग मत्स्यके आकारका रहता है। यह प्रतिमा चतुर्भुज होती है। दो हाथोंमें शङ्ख और चक्र रहते हैं तथा दो हाथ वरद और अभय मुद्रामें स्थित रहते हैं। सिर किरीट-मुकुटसे शोभित रहता है।

कूर्मभगवान्‌की प्रतिमा कूर्मके आकारकी होती है। कूर्मकी प्रतिमाका ऊर्ध्वभाग मनुष्याकार और अधोभाग कच्छपाकार होता है। यह चतुर्भुज होती है; दो हाथोंमें शङ्ख और चक्र रहते हैं तथा दो हाथ वरद और अभयमुद्रामें स्थित रहते हैं।

भगवान् वराहकी प्रतिमाके निर्माणकी रीति अग्निपुराणके उन्चासवें अध्यायमें इस प्रकार उपलब्ध होती है कि 'पृथ्वीके उद्धारक वराहका विग्रह मनुष्याकार बनाना चाहिये। प्रतिमा दाहिने हाथोंमें गदा और चक्र और बायें हाथोंमें शङ्ख और पद्म धारण करती है। अथवा पद्मके स्थानपर वामभागमें पद्मादेवी सुशोभित होती हैं, लक्ष्मी उनके बायें कूर्पर (कोहनी) का सहारा लिये रहती हैं। पृथ्वी तथा अनन्त उपर्युक्त विग्रहके चरणोंके अनुगत होते हैं। भगवान् वराहकी प्रतिमा तीन तरहकी होती है। पहली प्रतिमा भू-वराह अथवा आदि-वराह या नृ-वराहकी है, दूसरी प्रतिमा यज्ञ-वराहकी होती है तथा तीसरी प्रलय-वराहकी है। भू-वराह अथवा आदि-वराहका मुख वराहके मुखकी तरह होता है और शेष अङ्ग मनुष्याकार बनाया जाता है। यह प्रतिमा चतुर्भुज होती है। एक हाथमें शङ्ख रहता है तो दूसरे हाथमें चक्र सुशोभित होता है। दाहिना पैर थोड़ा झुका रहता है और आदिशेषके मणिमय फनपर अवस्थित होता है। आदिशेषकी मूर्तिके साथ उनकी पत्नीकी भी मूर्तिका निर्माण किया जाता है। भूदेवी भगवान् वराहके झुके दाहिने पैरपर आसनस्थ रहकर अपने दोनों पैर लटकाये रहती हैं तथा वराहदेव अपने बायें हाथसे भूदेवीके पैरोंको सहारा देते हैं तथा दाहिने हाथसे उनका कटिदेश आवेष्टित रहता है। भगवान् वराहकी प्रतिमाका वर्ण गोधूलि-वेलाके अन्धकारके समान होता है। भूदेवीके हाथ अञ्जलि-मुद्रामें रहते हैं। वे फूलों और वस्त्र तथा आभूषणोंसे शोभित होती हैं। उनके शरीरका वर्ण कृष्ण होता है। यज्ञ-वराहकी प्रतिमाका वर्ण श्वेत होता है। यह चतुर्भुज होती है। इसके एक हाथमें शङ्ख होता है और दूसरे हाथमें चक्र रहता है। यह प्रतिमा सिंहासनासीन होती है। इसका दाहिना चरण लटका रहता है तथा बायाँ चरण आसनपर स्थित रहता है। यह पीत वस्त्र और आभूषणोंसे अलंकृत होती है। प्रतिमाकी

दाहिनी ओर श्रीलक्ष्मीकी स्वर्णिम पीतवर्णकी मूर्ति रहती है, उनका बायाँ चरण झुका रहता है और आसनपर स्थित होता है तथा दाहिना चरण लटका रहता है। श्रीलक्ष्मीकी मूर्तिके बायें हाथमें कमल रहता है तथा दाहिना हाथ आसनपर स्थित होता है। यज्ञ-वराहकी प्रतिमाकी बायीं ओर भूदेवीकी मूर्ति होती है। इस मूर्तिका रंग काला होता है। इसका दाहिना चरण झुका रहता है तथा आसनपर स्थित होता है और बायाँ चरण लटका रहता है। भूदेवीके दाहिने हाथमें नीलोत्पल रहता है तथा बायाँ हाथ आसनपर स्थित होता है। देवीका मुख भगवान् वराहके अभिमुख रहता है। भगवान् प्रलय-वराहकी प्रतिमा सिंहासनपर विराजमान रहती है। उनका दाहिना पैर लटका रहता है तथा बायाँ चरण झुका रहता है और आसनपर स्थित होता है। यह प्रतिमा चतुर्भुज होती है। पिछले दाहिने हाथमें शङ्ख रहता है तथा बायें हाथमें चक्र शोभित होता है; सामनेका दाहिना हाथ अभयमुद्रामें स्थित रहता है तथा बायाँ हाथ बायीं जाँघपर रहता है। इसका वर्ण नीला होता है, परिधान पीला होता है; यह आभूषणोंसे अलंकृत रहती है। प्रलय-वराहकी प्रतिमाकी दाहिनी ओर भूदेवीकी मूर्ति आसीन रहती है। भूदेवीका दाहिना पैर लटका रहता है तथा बायाँ पैर झुका रहता है और आसनपर स्थित होता है। प्रतिमाका वर्ण काला होता है। भूदेवीके बायें हाथमें उत्पल रहता है और दाहिना हाथ आसनपर स्थित रहता है।'

अग्निपुराणमें भगवान् नरसिंहकी प्रतिमाका उन्चासवें अध्यायमें इस प्रकार वर्णन है कि 'उनका मुख खुला रहता है, वे अपनी बायीं जाँघपर दानव हिरण्यकशिपुको दबाये रखते हैं तथा उसके वक्षको विदीर्ण करते हैं। उनके गलेमें मालाएँ रहती हैं और हाथोंमें गदा-चक्र सुशोभित रहते हैं। भगवान् नरसिंहकी प्रतिमा अनेक प्रकारकी होती है। इनमें गिरिजा-नरसिंह, स्थाणु-नरसिंह, पानक-नरसिंह तथा लक्ष्मी-नरसिंह—ये चार विग्रह प्रमुख हैं। गिरिजा-नरसिंह विग्रह पद्मासनस्थ होता है। गिरिजा-नरसिंहविग्रहका आशय यह है कि भगवान् गिरि-कन्दरासे निकलकर प्रकट हो रहे हैं। इस विग्रहका दूसरा नाम 'केवल-नरसिंह' है। यह विग्रह चतुर्भुज होता है। पिछले दाहिने-बायें हाथोंमें क्रमशः चक्र और शङ्ख रहते हैं। सामनेका दाहिना हाथ अभयमुद्रामें रहता है तथा बायाँ हाथ कटिदेश-पर स्थित होता है। प्रतिमाका वर्ण श्वेत होता है, वस्त्र लाल होते हैं, सिरपर मुकुट होता है। भगवान् नरसिंहकी दाहिनी ओर लक्ष्मी तथा बायीं ओर भूदेवीकी मूर्तियाँ उसी सिंहासन-पर विराजित रहती हैं। लक्ष्मीकी मूर्तिका रंग स्वर्णिम होता है। भूदेवीकी मूर्तिका वर्ण काला होता है। लक्ष्मीके बायें हाथमें कमल शोभित होता है, भूदेवीके दाहिने हाथमें नीलोत्पल रहता है। स्थाणुनरसिंह विग्रहका तात्पर्य है—भगवान्‌का खंभेसे प्रकट होना। इस प्रतिमाका वर्ण श्वेत होता है, वस्त्र लाल रंगका होता है। यह मूर्ति चतुर्भुज होती है। पानक-नरसिंह-विग्रहका तात्पर्य है—पानक (शरबत) पीनेवाली नरसिंह-मूर्ति। यह मूर्ति चतुर्भुज होती है। लक्ष्मीनरसिंह-विग्रहका तात्पर्य है—भगवान् नरसिंहकी मूर्ति भगवती लक्ष्मीकी मूर्तिके साथ शोभित होती है।'

भगवान् वामनका विग्रह छत्र और दण्डसे सुशोभित होता है। यह विग्रह चतुर्भुज भी होता है। द्विभुज वामनके एक हाथमें कमण्डलु और दूसरे हाथमें छत्र सुशोभित होता है। त्रिविक्रम वामनका विग्रह चतुर्भुज और अष्टभुज—दोनों प्रकारका होता है। चतुर्भुज त्रिविक्रम वामनकी प्रतिमाके दाहिने हाथमें शङ्ख और बायें हाथमें चक्र सुशोभित होता है। शेष दाहिना हाथ ऊपर उठा होता है और बायाँ हाथ ऊपर उठे चरणके समानान्तर स्थित रहता है। अष्टभुज त्रिविक्रम वामनके पाँच हाथोंमें क्रमशः शङ्ख, चक्र, गदा, शार्ङ्ग और हल रहते हैं तथा शेष तीन हाथ पूर्वस्थितिमें रहते हैं। इस प्रतिमाका वर्ण मेघश्याम होता है, वस्त्र लाल रंगका होता है। प्रतिमाके पीछे कल्पवृक्ष बनाया जाता है, इन्द्र वामनके सिरपर छत्र धारण करते हुए प्रतिमाङ्कित किये जाते हैं। भगवान्‌के दोनों ओर वरुण और वायु चामर झलते हैं। उनकी दाहिनी ओर चन्द्रमा और बायीं ओर सूर्यकी मूर्तियाँ सुशोभित होती हैं। ब्रह्मा वामनके उठे चरणको पकड़े रहते हैं तथा कमण्डलुके जलसे उसको धोते हैं। त्रिविक्रमके चरणदेशसे प्रवाहित जल हिम-धवल होता है। शिवकी मूर्तिके हाथ अञ्जलिमुद्रामें रहते हैं। निस्संदेह वामनका वास्तविक रूप विष्णु ही है—

'वामनो ह विष्णुरास।' (शतपथब्राह्मण १।२।५।५)

भगवान् परशुरामके विग्रहके हाथोंमें धनुष और बाण रहता है; वे खड्ग और फरसेसे भी शोभित होते हैं। परशुराम-की प्रतिमाके सिरपर जटा-मुकुट रहता है। उनका वक्ष यज्ञो-पवीतसे समलंकृत होता है। परशुरामके विग्रहका वर्ण लाल रंगका तथा वस्त्र श्वेत होते हैं; मृगचर्म भी उनका परिधान स्वीकार किया जाता है।

भगवान् रामचन्द्रका चतुर्भुज विग्रह धनुष, वाण, खड्ग और शङ्खसे सुशोभित होता है। उनका द्विभुज विग्रह विशेष प्रसिद्ध है। द्विभुज विग्रहके दाहिने हाथमें वाण और बायें हाथमें धनुष रहता है। यह प्रतिमा 'स्थानक' (होती) है। प्रतिमाका वर्ण श्याम तथा वस्त्र लाल रंगका होता है। सिरपर किरीट-मुकुट सुशोभित रहता है। इस प्रतिमाके साथ विराजित श्रीसीताकी मूर्ति स्वर्णिम पीत वर्णकी है तथा वस्त्र हरे रंगका होता है। यह मूर्ति आभूषणोंसे समलंकृत रहती है। श्रीसीताकी मूर्तिके बायें हाथमें नीलोत्पल रहता है। श्रीहनुमान्, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्नकी मूर्तियोंसे श्रीरामकी प्रतिमा विशेषरूपसे शोभित होती है।

बलरामजी गदा और हल धारण करते हैं। उनका विग्रह चतुर्भुज होता है। उनके बायें भागके ऊपरवाले हाथमें हल रहता है और नीचेके हाथमें शङ्ख सुशोभित होता है; दाहिने भागके ऊपरवाले हाथमें मुशल रहता है और नीचेके हाथमें सुदर्शनचक्र विराजित होता है। उनके नेत्र मदिरोन्मत्त होते हैं। उनके केवल एक कानमें कुण्डल सुशोभित रहता है। उनकी दाहिनी ओर रेवती देवीकी मूर्ति होती है। रेवतीकी प्रतिमाका वर्ण पीला है तथा वे पुष्पवस्त्र धारण किये रहती हैं। पुष्पवस्त्रसे आशय उस वस्त्रका है, जिसपर अनेक प्रकारके पुष्पोंकी आकृतियाँ कढ़ी रहती हैं। देवीके दाहिने हाथमें पद्म सुशोभित होता है।

श्रीकृष्णके विग्रह अनेक प्रकारके होते हैं। उनमें नवनीत-विग्रह, वेणुगोपाल-विग्रह, कालियमर्दन तथा गोवर्धनधर-विग्रह प्रमुख हैं। श्रीकृष्ण-विग्रहकी दाहिनी ओर भगवती रुक्मिणी और बायीं ओर भगवती सत्यभामाकी मूर्तियाँ रहती हैं। दोनों ही प्रतिमाएँ आभूषणोंसे अलंकृत होती हैं। कृष्णकी बायीं ओर अञ्जलिमुद्रामय हाथोंसे शोभित गरुड़की मूर्ति रहती है। नवनीत-मूर्तिके हाथमें नवनीत रहता है और यह आनन्दित होकर नृत्य करती अङ्कित की जाती है। वेणुगोपाल-मूर्तिमें श्रीकृष्णद्वारा वेणुवादनका अङ्कन किया जाता है।

भगवान् बुद्धका विग्रह पद्मासनस्थ होता है। उनके एक हाथमें वरद और दूसरेमें अभय मुद्रा निरूपित की जाती है। यह विग्रह शान्तस्वरूप होता है। इसका वर्ण श्वेत तथा वस्त्र पीला रहता है। सिरपर घुँघराले केश रहते हैं।

कल्कि भगवान्का विग्रह धनुष और तूणीरसे समलंकृत रहता है। यह विग्रह चतुर्भुज तथा घोड़ेकी पीठपर समवस्थित रहता है। उसके चार हाथोंमें क्रमशः खड्ग, शङ्ख, चक्र और गदा सुशोभित रहते हैं।

भगवान् विष्णुके विभिन्न अवतारोंकी गणना असम्भव है। संसारके प्राणियोंका संरक्षण करनेके लिये उनके कृपामय रूपोंका समय-समयपर अवतरण होता है तथा जगत्के लोग उन रूपोंको प्रतिमाङ्कित कर भगवान् विष्णुके प्रति अपनी श्रद्धा-भक्ति समर्पित करते रहते हैं।

विष्णुं शारदचन्द्रकोटिसदृशं शङ्खं रथाङ्गं गदा-
मम्भोजं दधतं सिताब्जनिलयं कान्त्या जगन्मोहनम्।
आबद्धाङ्गदहारकुण्डलमहामौलिं स्फुरत्कङ्कणं
श्रीवत्साङ्कमुदारकौस्तुभधरं वन्दे मुनीन्द्रैः स्तुतम्॥

(शारदातिलक १५। ४१)

'भगवान् विष्णु कोटि-कोटि शारदीय चन्द्रमाओंके-से प्रकाशसे अलंकृत हैं। उनके हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म शोभित रहते हैं। वे श्वेतकमलपर स्थित हैं और अपनी कान्तिसे जगत्को विमुग्ध कर रहे हैं। उनके अङ्गोंमें केयूर, हार, कुण्डल एवं विशाल मुकुटकी शोभा निराली होती है, हाथमें कङ्कण चमकते रहते हैं, वक्ष श्रीवत्स और कौस्तुभसे अलंकृत है। मुनिजन उनकी स्तुति करते हैं, ऐसे भगवान्की हम वन्दना करते हैं।'

—रामलाल

हरि को नामु सदा सुखदाई

हरि को नामु सदा सुखदाई।
जाको सिमरि अजामिल उधरियो, गनका हू गति पाई॥
पंचाली को राजसभा में राम नाम सुधि आई।
ताको दुखु हरिओ करुनामय, अपनी पैज बढ़ाई॥
जिह नर जसु गाइओ किरपानिधि ताको भइओ सहाई।
कहु नानक मैं इही भरोसै गही आन सरनाई॥

—गुरु तेगबहादुर

भगवद्धाम—वैकुण्ठ-श्वेतद्वीप

यद्यपि भगवान् विष्णु स्वरूपतः सर्वत्र व्याप्त—विद्यमान हैं, तथापि रूपतः वे वैकुण्ठ, श्वेतद्वीप आदि धामोंमें विराजमान रहते हैं और उन धामोंमें उनके परिकर तथा भक्तोंके द्वारा उनकी सेवा, उपासना और पूजा अनवरत होती रहती है। भगवान् विष्णु सर्वलोकमय हैं। वे सनातन पुरुष हैं। उनके धाम नित्य हैं। सनकादिका कथन अथवा स्तवन है—

> शिरसा ते दिवं व्याप्तं बाहुभ्यां पृथिवी तथा।
> जठरं ते त्रयो लोकाः पुरुषोऽसि सनातनः॥
> (महा०, भीष्म० ६८। ८)

'आपके मस्तकसे द्युलोक और भुजाओंसे भूलोक व्याप्त है। तीनों लोक आपके उदरमें स्थित हैं। आप ही सनातन पुरुष हैं।'

त्रिगुणातीत, अविकारी और अलौकिक वैष्णवधाम सत्त्व, रज, तम, विकार और माया आदिसे परे है—

> न यत्र सत्त्वं न रजस्तमश्च न वै विकारो न महान् प्रधानम्॥
> परं पदं वैष्णवमामनन्ति ....।
> (श्रीमद्भागवत २। २। १७-१८)

भगवद्धाम सर्वश्रेष्ठ है। उससे परे कोई दूसरा लोक नहीं है। उसमें किसी भी प्रकारके क्लेश, मोह, भय आदि नहीं हैं। उस वैकुण्ठमें लक्ष्मीजी सुन्दर रूप धारणकर अपनी विविध विभूतियोंके द्वारा भगवान्के चरण-कमलोंकी सेवा करती हैं—'श्रीर्यत्र रूपिण्युरुगायपादयोः करोति मानं बहुधा विभूतिभिः।'

(श्रीमद्भागवत २। ९। १३)

महाभारत, वनपर्वके १६३वें अध्यायमें महर्षि धौम्यने वैष्णवधामकी स्थितिका निरूपण इस प्रकार किया है कि 'मेरु-पर्वतके उत्तम शिखरपर रजोगुणरहित प्रदेशमें अपने आपमें तृप्त रहनेवाले देवताओंके साथ पितामह ब्रह्मा निवास करते हैं। ब्रह्मलोकसे भी ऊपर विष्णुका उत्तम स्थान प्रकाशित है। परमात्मा विष्णुका यह स्थान सूर्य और अग्निसे भी अधिक तेजस्वी है, यह अपनी ही प्रभासे प्रकाशित होता है।'

> प्राच्यां नारायणस्थानं मेरावति विराजते।
> यत्र भूतेश्वरस्तात सर्वप्रकृतिरात्मभूः॥
> भासयन् सर्वभूतानि सुश्रियाभिविराजते।
> (३। २०-२१)

'मेरुपर्वतपर ही पूर्व दिशामें भगवान् नारायणका स्थान सुशोभित है। यहाँ समस्त भूतोंके स्वामी और सबके उपादान-कारण स्वयम्भू विष्णु अपने उत्कृष्ट तेजसे सबको प्रकाशित करते हुए विराजमान रहते हैं।'

ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें वर्णन है कि 'वैकुण्ठ गोलोकसे पचास करोड़ योजन दूर दक्षिण भागमें अवस्थित है। प्रलयकालमें केवल ज्योतिःपुञ्ज प्रकाशित होता था। वह ज्योतिर्मण्डल नित्य और असंख्य विश्वके कारण, स्वेच्छामय रूपधारी, सर्वव्यापी परमात्माका परम उज्ज्वल तेज है। उस तेजके भीतर तीनों लोक विद्यमान हैं। उन तीनों लोकोंके ऊपर गोलोक है, जो परमेश्वरके समान ही नित्य है। उसकी लंबाई-चौड़ाई तीन करोड़ योजन है। वह मण्डलाकार है। तेज ही उसका स्वरूप है। उस चिन्मय लोककी भूमि दिव्य-रत्नमयी है'—

> स्वेच्छामयस्य च विभोस्तज्ज्योतिरुज्ज्वलं महत्।
> ज्योतिरभ्यन्तरे लोकत्रयमेव मनोहरम्॥
> तेषामुपरि गोलोकं नित्यमीश्वरवद् द्विज।
> त्रिकोटियोजनायामविस्तीर्णं मण्डलाकृति॥
> (ब्रह्मवैवर्त०, ब्रह्म० २। ५-६)

गोलोकके नीचे स्थित उपर्युक्त वैकुण्ठ मण्डलाकार है, उसका विस्तार एक करोड़ योजन है। उसमें भगवती लक्ष्मीके साथ नारायण सदा विराजमान रहते हैं—

> कोटियोजनविस्तीर्णं वैकुण्ठं मण्डलाकृति।
> ....लक्ष्मीनारायणान्वितम्॥
> (ब्रह्मवैवर्त०, ब्रह्म० २। ११)

ब्रह्मवैवर्तपुराणके ही कृष्णजन्मखण्डमें वैकुण्ठका वर्णन इस प्रकार किया गया है कि "भगवान्के परम धामका नाम 'वैकुण्ठ' है। वह जरा-मृत्युका नाश करनेवाला है। ब्रह्माण्डसे ऊपर उसकी स्थिति है। वह उत्तम लोक वायुके आधारपर स्थित है। वह चिन्मय लोक श्रीहरिसे भिन्न न होनेके कारण अपने आपमें ही स्थित है। उसकी स्थिति ब्रह्मलोकसे एक करोड़ योजन ऊपर है। दिव्य रत्नोंद्वारा निर्मित वैकुण्ठ धामका वर्णन कर पाना कवियोंके लिये असम्भव है।"

> वैकुण्ठं परमं धाम जरामृत्युहरं परम्।
> वायुना धार्यमाणं च ब्रह्माण्डादूर्ध्वमुत्तमम्॥

कोटियोजनमूर्ध्वं च ब्रह्मलोकात् सनातनम्।
न वर्णनीयं कविभिर्विचित्रं रत्ननिर्मितम्।
पद्मरागैरैन्द्रनीलै राजमार्गैर्विभूषितम्॥
(ब्रह्मवैवर्त०, कृष्णजन्म० ४। ५३-५४)

वैकुण्ठधाममें सभी लोग विष्णुरूप होकर रहते हैं और वह प्राप्त भी उन्हींको होता है, जो अन्य सब कामनाओंका त्याग कर भगवच्चरण-शरणकी प्राप्तिके लिये ही अपने धर्मद्वारा श्रीहरिकी आराधना करते हैं। वहाँ वेदान्त-प्रतिपाद्य धर्ममूर्ति आदिनारायण अपने भक्त हमलोगोंको सुख देनेके लिये शुद्ध सत्त्वमय स्वरूप धारणकर सदा विराजमान रहते हैं—

वसन्ति यत्र पुरुषाः सर्वे वैकुण्ठमूर्तयः।
येऽनिमित्तनिमित्तेन धर्मेणाराधयन् हरिम्॥
यत्र चाद्यः पुमानास्ते भगवाञ्छब्दगोचरः।
सत्त्वं विष्टभ्य विरजं स्वानां नो मृडयन् वृषः॥
(श्रीमद्भागवत ३। १५। १४-१५)

भगवान् विष्णु स्वयं भी वैकुण्ठ-नामसे विभूषित किये जाते हैं। महाभारतके शान्तिपर्वके ३४२वें अध्यायमें भगवान्‌ने अपने अनेक नामोंका भाष्य स्वयं किया है। अपने वैकुण्ठ-नामके निर्वचनमें उनकी उक्ति है—

मया संश्लेषिता भूमिरद्भिर्व्योम च वायुना।
वायुश्च तेजसा सार्धं वैकुण्ठत्वं ततो मम॥
(महा०, शान्ति० ३४२। ८०)

"मैंने भूमिको जलके साथ, आकाशको वायुके साथ और वायुको तेजके साथ संयुक्त किया है, इसलिये (**विगता कुण्ठा पञ्चानां मेलने असामर्थ्यं यस्य सः विकुण्ठः, विकुण्ठ एव वैकुण्ठः**—पाँचों भूतोंको मिलानेमें जिनकी शक्ति कभी कुण्ठित नहीं होती, वे 'विकुण्ठ' हैं और विकुण्ठ ही वैकुण्ठ हैं, इस व्युत्पत्तिके अनुसार) मैं 'वैकुण्ठ' कहलाता हूँ।" भगवान् विष्णुके इस नित्य परमधामके नाम मोक्ष, परमपद, दिव्य, अमृत, विष्णुमन्दिर, अक्षर, परमधाम, वैकुण्ठ, परमव्योम, सर्वश्रेष्ठ धाम, शाश्वतपद आदि कहे गये हैं—

मोक्षं परं पदं दिव्यममृतं विष्णुमन्दिरम्।
अक्षरं परमं धाम वैकुण्ठं शाश्वतं पदम्॥
नित्यं च परमं व्योम सर्वोत्कृष्टं सनातनम्।
पर्यायवाचकान्यस्य परधाम्नोऽच्युतस्य च॥
(पद्म०, उत्तर० २२७। ८०-८१)

'त्रिपाद्विभूति महानारायणोपनिषद्'के आठ अध्यायोंमें परमव्योम वैकुण्ठ तथा अवान्तर वैकुण्ठोंका वर्णन उपलब्ध होता है। वे ब्रह्ममय वैकुण्ठ, विष्वक्सेन वैकुण्ठ, ब्रह्मविद्यामय वैकुण्ठ, तुलसी वैकुण्ठ, शुद्ध बोधानन्दमय वैकुण्ठ, सुदर्शन वैकुण्ठ आदि हैं।

वैकुण्ठलोक लक्ष्मीनाथ भगवान् विष्णुका सम्पूर्ण तथा परम दिव्य विहारस्थल है—

नित्यापरिच्छिन्नमहासुखान्त्यकाष्ठावतस्तादृशवैभवस्य।
साक्षाद्रमानाथपदारविन्दक्रीडाभराजस्रविभूषितस्य॥
तत्प्रेमभक्तैः सुलभस्य वक्तुं वैकुण्ठलोकस्य परं किमीशे।
अद्वैतदुर्वासनया मुमुक्षाविद्धात्मनां हृद्यपि दुर्लभस्य॥
(बृहद्भागवतामृत २। ३। ९६-९७)

'उस वैकुण्ठलोककी क्या प्रशंसा की जाय। वहाँ नित्य अपरिच्छिन्न महासुख और उनके अनुरूप पराकाष्ठाके वैभव विद्यमान हैं। वह साक्षात् लक्ष्मीनाथके चरणारविन्दोंकी विविध प्रकारकी विहारस्थलियोंसे विभूषित है। वह उनके प्रेमद्वारा श्रेष्ठ भक्तोंको सुलभ है और उन मुमुक्षुओंको मनसे भी दुर्लभ है, जिनकी आत्माएँ अद्वैत ब्रह्मकी दुर्वासनासे दूषित हैं।'

श्वेतद्वीप भी भगवान् नारायणका एक अनिर्वचनीय धाम है। महाभारतके शान्तिपर्वके ३३५-३३६ तथा ३४३वें अध्यायमें श्वेतद्वीपका वर्णन उपलब्ध होता है। विष्णुधर्मोत्तरपुराण, नारदपञ्चरात्र आदिमें भी श्वेतद्वीप तथा वहाँके वैष्णव-लीला-परिकरों और निवासियोंका निरूपण किया गया है। यह विशाल द्वीप क्षीरसागरके उत्तर भागमें अवस्थित है और इसकी ऊँचाई मेरुपर्वतसे बत्तीस हजार योजन है। श्वेतद्वीप अत्यन्त प्रकाशमान है। इस द्वीपमें भगवान् नारायणका भजन करनेवाले पुरुष रहते हैं, जो चन्द्रमाके समान कान्तिमान् हैं। वे स्थूल इन्द्रियोंसे रहित, निराहार और निश्चेष्ट रहते हैं। उनके शरीरसे मनोहर सुगन्ध निकलती है तथा वे भगवान्‌के अनन्य भक्त होते हैं—

क्षीरोदधेरुत्तरतः श्वेतद्वीपो महाप्रभः॥
तत्र नारायणपरा मानवाश्चन्द्रवर्चसः।
एकान्तभावोपगतास्ते भक्ताः पुरुषोत्तमम्॥
... ...
अनिन्द्रिया निराहारा अनिष्पन्दाः सुगन्धिनः॥
(महा०, शान्ति० ३३६। २७—२९)

श्वेतद्वीपके निवासी सदा नारायणदेवकी पूजा-अर्चा करते हैं। भगवान् भी सदा उनके साथ प्रसन्नतापूर्वक क्रीड़ा करते रहते हैं। भगवान्को अपने भक्त बहुत ही प्रिय हैं। उन परमात्माको ब्राह्मण भी बहुत प्यारे हैं। विश्व-पालन-कर्ता सर्वव्यापी भगवान् भक्तवत्सल हैं; भगवद्भक्तोंके प्रेमी और प्रियतम लक्ष्मीपति श्रीहरि उनसे पूजित होकर सदा प्रसन्न रहते हैं—

तेऽर्चयन्ति सदा देवं तैः सार्धं रमते च सः।
प्रियभक्तो हि भगवान् परमात्मा द्विजप्रियः॥
रमते सोऽर्च्यमानो हि सदा भागवतप्रियः।
विश्वभुक् सर्वगो देवो माधवो भक्तवत्सलः॥

(महा०, शान्ति० ३४३। ५४-५५)

श्वेतद्वीपके परमाराध्य परमेश्वर ही कर्ता, कारण और कार्य हैं; उनका बल और तेज अनन्त है। वे महायशस्वी भगवान् ही हेतु, आज्ञा, विधि और तत्त्वस्वरूप हैं। वे अपने आपको तपस्यामें लगाकर श्वेतद्वीपसे भी परे प्रकाशमान तेजोमय स्वरूपसे विख्यात हैं। उनका वह तेज अपने ही प्रकाशसे प्रकाशित है—

तपसा योज्य सोऽऽत्मानं श्वेतद्वीपात् परं हि यत्।
तेज इत्यभिविख्यातं स्वयम्भासावभासितम्॥

(महाभारत, शान्ति० ३४३। ५७)

नारदपञ्चरात्रमें श्वेतद्वीपका बड़ा सुन्दर वर्णन इस रूपमें मिलता है कि 'क्षीरसमुद्रमें श्वेतद्वीप नामक एक मनोहर उपद्वीप है, जिसमें भगवान् विष्णु सिन्धुकन्या लक्ष्मीद्वारा सेवित हैं।'

श्वेतद्वीपश्च क्षीरोदे चोपद्वीपो मनोहरः।
तत्रैव भगवान् विष्णुः सेवितः सिन्धुकन्यया॥

(नारदपञ्चरात्र २। २। ८४)

यह श्वेतद्वीप नारायणांश है। इसका दूसरा नाम 'वैकुण्ठ' है। यह शुद्ध और सत्त्वगुणाश्रय है—

'नारायणांशो वैकुण्ठः शुद्धः सत्त्वगुणाश्रयः।'

(नारदपञ्चरात्र २। २। ८५)

यह श्वेतद्वीप सुखद और मोक्षदाता है, शोभासम्पन्न और सम्पत्तिप्रदायक है। यह चन्द्रबिम्बके समान विशुद्ध और वर्तुलाकार है। हरिकी इच्छासे अमूल्य रत्नोंसे निर्मित है। इस द्वीपको देखकर विश्वकर्मा अपने आपको तुच्छ समझते हैं—

'आत्मानं मन्यते तुच्छं विश्वकर्मा निरीक्ष्य यम्॥'

(नारदपञ्चरात्र २। २। ८९)

विष्णुधर्मोत्तरपुराणमें श्वेतद्वीपकी मण्डलाकार स्थिति क्षीर-सागरके मध्यमें निरूपित की गयी है और उसका परिमाण पचीस हजार योजन बताया गया है—

............'मध्ये क्षीरार्णवस्य तु॥
योजनानां सहस्राणि मण्डलः पञ्चविंशतिः।
श्वेतद्वीपस्तु विख्यातो द्वीपः परमशोभनः॥

(विष्णुधर्मोत्तर० ३। ४७। ३८-३९)

श्वेतद्वीपमें सूर्य नहीं तपते, चन्द्रमा नहीं प्रकाशित होते तथा दुष्कर तपस्यामें लगे श्रीहरिके समीप लौकिक वायु भी नहीं चलती—

न तत्र सूर्यस्तपति न सोमोऽभिविराजते।
न वायुर्वाति देवेशे तपश्चरति दुष्करम्॥

(महा०, शान्ति० ३४३। ५९)

भगवान् विष्णुके वैकुण्ठ, श्वेतद्वीप आदि धामोंके वैभव, ऐश्वर्य, सौन्दर्य, माधुर्य—सब-के-सब विष्णुस्वरूप होनेके नाते मनको विमुग्ध कर लेते हैं। परम भागवत शुकदेवका यह कथन नितान्त युक्तिसंगत है—

'पदं तत्परमं विष्णोर्मनो यत्र प्रसीदति॥'

(श्रीमद्भागवत २। १। १९)

भगवान् विष्णुके स्वरूप, धाम आदिकी महिमा अवर्णनीय है; उनकी कृपासे ही उनका चिन्तन सुलभ होता है।

(रामलाल)

यमराजका शासन किनपर नहीं चलता ?

गोविन्द माधव मुकुन्द हरे मुरारे शम्भो शिवेश शशिशेखर शूलपाणे।
दामोदराच्युत जनार्दन वासुदेव त्याज्या भटा य इति संततमामनन्ति॥

(स्कन्दपुराण, काशीखण्ड)

(धर्मराजने कहा—) 'जो लोग गोविन्द, माधव, मुकुन्द, हरे, मुरारे, शम्भो, शिव, ईश, शशिशेखर, शूलपाणि, दामोदर, अच्युत, जनार्दन, वासुदेव!—इस प्रकार निरन्तर उच्चारण करते रहते हैं, हे दूतो! उन्हें (दूरसे ही) त्याग देना।'

प्रधान वैष्णव तीर्थ एवं मन्दिर

[नीचेकी पंक्तियोंमें भगवान् विष्णुसे सम्बन्धित प्रधान-प्रधान तीर्थों एवं मन्दिरोंका विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है। भगवान् श्रीराम और भगवान् श्रीकृष्ण भगवान् विष्णुके प्रधान अवतार हैं तथा भगवान् शिव तो भगवान् विष्णुके अभिन्न रूप ही हैं। श्रीराम, श्रीकृष्ण और श्रीशिवका पूजन-अर्चन, ध्यान-वन्दन भारतमें सर्वत्र और सर्वाधिक होता है। भारतके कोने-कोनेमें श्रीराम, श्रीकृष्ण एवं श्रीशिवके मन्दिर-तीर्थादि हैं। उचित यह था कि श्रीराम, श्रीकृष्ण एवं श्रीशिवसे सम्बन्धित सभी पावन स्थलोंका वर्णन प्रस्तुत विवरणमें दिया जाता, किंतु विस्तारके भयसे इस लोभका संवरण किया गया और इस लेखमें प्रधानरूपसे उन्हीं पावन स्थलोंका विवरण दिया गया है, जो चतुर्भुज भगवान् विष्णुसे सम्बन्धित हैं। इसके अतिरिक्त भगवान् वराह-कूर्म-वामन नृसिंहादिसे सम्बन्धित पावन स्थलोंका भी उल्लेख हुआ है।

भारत-स्थित स्थानोंके साथ-साथ विदेशोंमें स्थित ऐसे पावन स्थलोंकी जानकारी प्राप्त करनेका भी प्रयास किया गया। विदेशके कई स्थानोंका विवरण लगातार पत्र-व्यवहार करते रहनेके बाद भी प्राप्त न हो सका। फिर भी विदेशोंसे जो भी विवरण प्राप्त हुए हैं, वे संक्षिप्त रूपमें इसमें समाविष्ट हैं।

भारत-स्थित पावन स्थलोंकी जानकारी प्राप्त करनेके लिये अनेक लोगोंसे सम्पर्क स्थापित किया गया। किन्हीं-किन्हीं महानुभावोंसे प्राप्त विवरण अत्यधिक विस्तृत है। किसी-किसी स्थलके बारेमें कई महानुभावोंने विवरण भेज दिये। कुछ ग्रन्थ भी संदर्भरूपमें देखे गये हैं। उन सभीके सहयोगसे यह संक्षिप्त विवरण तैयार किया गया है। विवरणमें भूल होना स्वाभाविक है। इसके लिये विनम्र क्षमा-याचना है।

इस विवरणमें कुछ पावन स्थलोंका उल्लेख नहीं भी हुआ है। उसका हेतु यही है कि उन स्थलोंका विवरण हमें प्राप्त नहीं हो सका। इसके अतिरिक्त कई स्थलोंका विवरण इसलिये भी समाविष्ट नहीं हो सका कि 'कल्याण'की पृष्ठ-संख्या कम कर दी गयी। त्रुटिके लिये भी क्षमा-याचना है।

जिन-जिन महानुभावोंसे इस विवरणको प्रस्तुत करनेमें सहायता मिली है, उन सभीके प्रति हम हृदयसे आभारी हैं।]

—सम्पादक

उत्तर भारतके मन्दिर-तीर्थ

१. वैष्णवीदेवी (कश्मीर)—भगवान् विष्णुकी शक्ति वैष्णवी देवीका यह सिद्ध-स्थल है। शुम्भ-निशुम्भ दैत्योंसे युद्धके समय श्रीब्रह्माणी, श्रीमाहेश्वरी, श्रीकौमारी, श्रीवाराही, श्रीनारसिंही आदिके साथ भगवती श्रीवैष्णवीदेवीका आविर्भाव हुआ था और तभीसे वे यहाँ निवास करती हैं। यह स्थान जम्मूसे ४६ मील उत्तर-पश्चिमकी ओर एक अत्यन्त अन्धकारमय गुफामें है। यहाँकी यात्रा नवरात्रमें होती है।

२. बदरीनाथ—उत्तरप्रदेशके चमोली जनपदमें ऋषिकेशसे लगभग १८७ मीलकी दूरीपर श्रीबदरीनाथजीका मन्दिर हिमालयकी गोदमें प्रायः १०५०० फुटकी ऊँचाईपर स्थित है। ऋषिकेशसे बदरीनाथतक अब बस-सर्विस होनेसे तीर्थ-यात्रियोंके लिये बदरीनाथ जाना बहुत सरल हो गया है; अन्यथा पर्वतीय पथको पार करना पहले बड़ा ही दुर्गम था। बदरीनाथजीका मन्दिर अलकनन्दाजीके तटपर है। धाराकी तीव्रता तथा शीतकी अधिकताके कारण अलकनन्दाजीमें स्नान सम्भव नहीं है। तटके एकदम पास गर्म जलका एक कुण्ड है, उसीमें स्नान करके भगवान् बदरीविशालजीका दर्शन किया जाता है।

भगवान् विष्णुके अवतार श्रीनर-नारायणने यहीं तपस्या की थी। मन्दिरके पूर्व और पश्चिम ओर स्थित पर्वत-शिखरोंको नर और नारायण कहा जाता है। यहाँ भगवान् नर-नारायण सदैव निवास करते हैं। बदरीक्षेत्रके दर्शनमात्रसे ही मुक्ति मनुष्यके हाथ लग जाती है। जहाँ साक्षात् सनातनदेव परमात्मा नारायण विराजमान हों, वहाँ सारे तीर्थ, सम्पूर्ण आयतन तथा जगत्‌को ही प्रस्तुत मानना चाहिये।

श्रीबदरीनाथजीकी मूर्ति शालग्राम-शिलामें बनी ध्यानमग्न चतुर्भुज मूर्ति है। कहा जाता है कि पहली बार यह मूर्ति देवताओंने अलकनन्दाके नारदकुण्डमेंसे निकालकर स्थापित की। देवर्षि नारद उसके प्रधान अर्चक हुए। उसके बाद जब बौद्धोंका प्राबल्य हुआ, तब इस मन्दिरपर उनका अधिकार हो गया। उन्होंने

बदरीनाथकी मूर्तिको बुद्धमूर्ति मानकर पूजा करना चालू रखा। जब शंकराचार्यजी बौद्धोंको पराजित करने लगे, तब इधरके बौद्ध तिब्बत चले गये। जाते समय वे मूर्तिको अलकनन्दामें फेंक गये। शंकराचार्यजीने जब मन्दिर खाली देखा, तब ध्यान करके अपने योगबलसे मूर्तिकी स्थिति जानी और अलकनन्दासे मूर्ति निकलवाकर मन्दिरमें प्रतिष्ठित करवायी। तीसरी बार मन्दिरके पुजारीने ही मूर्तिको तप्तकुण्डमें फेंक दिया और वहाँसे चला गया; क्योंकि यात्री आते नहीं थे और उसे सूखे चावल भी भोजनको नहीं मिलते थे। उस समय पाण्डुकेश्वरमें किसीको घण्टाकर्णका आवेश हुआ और उसने बताया कि भगवान्‌का श्रीविग्रह तप्तकुण्डमें पड़ा है। इस बार मूर्तिको तप्तकुण्डसे निकालकर श्रीरामानुजाचार्य (इस सम्प्रदायके किसी आचार्य)द्वारा प्रतिष्ठित किया गया।

श्रीबदरीनाथजीके दाहिने कुबेरकी (पीतलकी) मूर्ति है, उनके सामने श्रीउद्धवजी हैं तथा बदरीनाथजीकी उत्सवमूर्ति है। शीतकालमें इस उत्सवमूर्तिकी पूजा जोशीमठमें होती है। उद्धवजीके पास ही चरण-पादुकाएँ हैं। बायीं ओर नर-नारायणकी मूर्ति है। इनके समीप ही श्रीदेवी और भूदेवी हैं। परिक्रमामें श्रीलक्ष्मीजीका मन्दिर है। मुख्य मन्दिरमें सामने ही गरुड़जी हैं। भगवान् बदरीविशालजीको वन-तुलसीकी माला, चनेकी कच्ची दाल, गरी-गोला, मिश्री आदिका प्रसाद चढ़ाया जाता है। मन्दिरमें जाते समय बायीं ओर श्रीशंकराचार्यजीका मन्दिर है।

यहाँ नर-नारायणाश्रम, नारदशिला, मार्कण्डेयशिला, गरुड़शिला, वाराही शिला, नारसिंही शिला, कपाल-तीर्थ, ब्रह्मतीर्थ, वसुधारातीर्थ, पञ्चतीर्थ, सोमतीर्थ, द्वादशादित्य, चतुःस्रोत, ब्रह्मकुण्ड, मेरुतीर्थ, दण्डपुष्करिणी, गङ्गासंगम, धर्मक्षेत्र आदि कई प्रसिद्ध ऐतिहासिक धार्मिक स्थल हैं, जिनका विस्तृत वर्णन पुराणोंमें मिलता है।

३. जोशीमठ—यह बदरीनाथके मार्गमें है। शीतकालमें भगवान् बदरीनाथकी उत्सवमूर्तिकी पूजा यहीं होती है।

जोशीमठमें नृसिंहभगवान्‌का मन्दिर है। यहाँ शालग्रामशिलामें भगवान् नृसिंहकी अद्भुत मूर्ति है। भगवान् नृसिंहकी एक भुजा बहुत पतली है और लगता है कि पूजा करते समय वह मूर्तिसे कभी भी अलग हो सकती है। कहा जाता है कि जिस दिन यह हाथ अलग होगा, उसी दिन विष्णुप्रयागसे आगे नर-नारायण पर्वत (जो बिल्कुल पास आ गये हैं) मिल जायँगे और बदरीनाथका मार्ग बंद हो जायगा। उस दिनसे कोई बदरीनाथ नहीं जा सकेगा। उसके बाद यात्री भविष्यबदरी जाया करेंगे।

मन्दिरके पास ही ज्योतिष्पीठ नामसे प्रसिद्ध श्रीशंकराचार्यमठ है। श्रीआदिशंकराचार्यको यहींपर तपस्योपरान्त परम ज्योतिके दर्शन हुए थे, इसीलिये उनके द्वारा संस्थापित इस मठका नाम 'ज्योतिर्मठ' है। ज्योतिर्मठका बिगड़ा हुआ रूप ही 'जोशीमठ' है।

४. विष्णुप्रयाग—जोशीमठसे ३ मीलकी दूरीपर विष्णुगङ्गा और अलकनन्दाका पावन संगम है तथा भगवान् विष्णुका सुन्दर मन्दिर है। देवर्षि नारदने यहाँ भगवान्‌की आराधना की थी।

५. त्रियुगीनारायण—केदारनाथ एवं बदरीनाथके पर्वतीय मार्गमें पर्वतशिखरपर नारायण भगवान्‌का मन्दिर है। भगवान् नारायण भूदेवी तथा लक्ष्मीदेवीके साथ विराजमान हैं।

६. हरिद्वार—श्रवणनाथजीके मन्दिरके दक्षिण विष्णु-घाट है। यहाँपर विष्णुभगवान्‌ने तप किया था।

७. भीमगोडा—भीमगोडाके रास्तेमें गङ्गा-किनारे एक मन्दिर है, जिसमें चौबीस अवतारोंकी मूर्तियाँ दर्शनीय हैं।

८. ऋषिकेश—वाराह-मन्दिर एवं सत्यनारायण-मन्दिर देखने योग्य हैं। स्वर्गाश्रममें गीताभवन तथा परमार्थ-निकेतनके श्रीविष्णुमन्दिर भी दर्शनीय हैं।

९. अमृतसर—इस नगरमें कई मन्दिर हैं। सत्य-नारायण और श्रीलक्ष्मीनारायणजीके सुन्दर मन्दिर हैं।

१०. चंबा—डलहौजीसे २० मीलपर रावी नदीके तटपर यह सुन्दर नगर बसा है। नगरमें श्रीलक्ष्मीनारायणजीका प्राचीन मन्दिर है। मन्दिरमें भगवान् नारायणकी श्वेत संगमरमरकी प्रतिमा है।

११. मुलतान (पाकिस्तान)—यह पश्चिमी पंजाबका बड़ा नगर है। यहाँ नृसिंहभगवान्‌का मन्दिर है। कहा जाता है, भगवान् नृसिंहका अवतार यहीं हुआ था।

१२. कुरुक्षेत्र—यजुर्वेदने इसे विष्णु आदि देवताओंकी यज्ञभूमि बताया है। यहींपर महाभारतका प्रसिद्ध पाण्डव-कौरव-युद्ध हुआ था, जिसमें भगवान् श्रीकृष्णने वीर अर्जुनको गीतोपदेश दिया था और अपने चतुर्भुज विष्णुरूपका दर्शन कराया था।

यहाँ दो सरोवर हैं, ब्रह्मसर और संनिहितसर। ब्रह्मसरके बीच एक छोटे द्वीपपर गरुड़सहित भगवान् विष्णुका प्राचीन मन्दिर है। संनिहितसरके पश्चिमी तटके समीप श्रीलक्ष्मीनारायणका अति सुन्दर प्राचीन मन्दिर है।

१३. नाभि-कमल-तीर्थ—यह कुरुक्षेत्रके समीप ही है। कहा जाता है कि इसी स्थानपर भगवान् विष्णुकी नाभिसे उत्पन्न हुए कमलसे ब्रह्माजीकी उत्पत्ति हुई थी। यहाँपर यात्री सरोवरमें स्नान, जप तथा भगवान् विष्णु तथा ब्रह्माजीका पूजन करके अनन्त फलके भागी होते हैं। सरोवर छोटा, परंतु पक्का बना हुआ है तथा वहीं ब्रह्माजीसहित भगवान् विष्णुका छोटा-सा मन्दिर है।

१४. वराहतीर्थ—पानीपतके पास जींदसे थोड़ी दूर वराहतीर्थ है, जहाँ भगवान् विष्णु वराहका अवतार लेकर प्रकट हुए थे तथा उन्होंने पृथ्वीका उद्धार किया था। यात्री यहाँ स्नान करके भगवान् विष्णुका पूजन करते हैं।

१५. दिल्ली—यह भारतकी राजधानी है। यहाँ अनेक दर्शनीय स्थल हैं। दानवीर बिड़लाबन्धुओंद्वारा निर्मित भगवान् श्रीलक्ष्मी-नारायण-मन्दिर यात्रियोंके आकर्षणकी एक प्रमुख वस्तु है। दीवारोंपर नानक-तुलसी-जैसे संतों-भक्तोंकी सूक्तियोंके लिखे होनेसे मन्दिरमें आध्यात्मिकता मुखरित हो उठी है।

१६. गढ़मुक्तेश्वर—मेरठके पास इस शैवक्षेत्रमें भगवान् श्रीलक्ष्मीनारायणका भी मन्दिर है।

१७. सम्भल—मुरादाबाद जिलेके इस स्थानपर एक अति विशाल और प्राचीन मन्दिर है, जो 'हरिमन्दिर' कहलाता है। परंतु इस समय मुसल्मान उसमें प्रति शुक्रवारको नमाज पढ़ते हैं। उन्होंने इसकी कुछ-कुछ रूप-रेखा भी बदल डाली है।

१८. मथुरा-वृन्दावन—मथुराका प्राचीन नाम मधुरा या मधुवन है। भक्त बालक ध्रुवने यहाँ तपस्या करके भगवान् विष्णुके दर्शन प्राप्त किये थे। भगवान् विष्णुने श्रीकृष्णरूपमें यहीं अवतार लिया था।

वृन्दावन-मथुराको भगवान् श्रीकृष्णके बाल्यकाल एवं कैशोरकालकी लीलास्थली बननेका सौभाग्य प्राप्त है। जन्मभूमि स्थानपर वज्रनाभका बनवाया श्रीकेशवदेवका मन्दिर था, जिसे तुड़वाकर औरंगजेबने मस्जिद बनवा दी। मस्जिद तो अब भी खड़ी है, पर उसीके पास श्रीकृष्णजन्मभूमि-सेवा-ट्रस्टके द्वारा निर्मित 'कृष्ण-चबूतरे' पर नयी अर्चना-स्थली बनवा दी गयी है। कृष्णचबूतरेके सामने ही नये केशवदेव-मन्दिरका भी निर्माण हो गया है। मथुराका श्रीद्वारकाधीशका मन्दिर भी दर्शनीय है।

जिस प्रकार औरंगजेबद्वारा श्रीकृष्णजन्मस्थानका मन्दिर तुड़वाया गया, उसी प्रकार वृन्दावनका गोविन्ददेवजीका मन्दिर भी तुड़वाया गया, जो औरंगजेबकी धर्मान्धताका परिचय देता है। गोविन्ददेवजीके मन्दिरकी एक मंजिल बची है और इसकी कला कहती है कि उत्तर भारतका यह अति महत्त्वपूर्ण मन्दिर रहा है। वृन्दावनका मदनमोहन-मन्दिर, गोपीनाथमन्दिर, राधावल्लभमन्दिर, जुगलकिशोर-मन्दिर, ग्वालियरका राधागोपालमन्दिर, साहजीका मन्दिर, बाँकेबिहारीजीका मन्दिर, सेवाकुञ्ज, निधिवन, वंशीवट, श्रीरङ्गजीका मन्दिर आदि दर्शनीय हैं। श्रीरङ्गजीका मन्दिर दाक्षिणात्य शैलीपर विशाल परकोटेके भीतर बना है।

मथुरा-वृन्दावनके अतिरिक्त व्रजके अन्य स्थान—जैसे गोकुल, महावन, श्यामललाजीका मन्दिर, छठीपालना, मथुरा-नाथमन्दिर, गोवर्धन, मानसी गङ्गा, हरिदेव-मन्दिर, बरसानामें लाड़िलीजीका मन्दिर और जयपुर-मन्दिर, साँकरी खोर, मोरकुटी, नंदगाँव आदि स्थान जाने एवं दर्शन करनेयोग्य हैं।

१९. सोरों (वराहक्षेत्र)—कासगंजसे लगभग ९ मीलकी दूरीपर है। वराहक्षेत्रके नामसे भारतमें कई स्थान कहे जाते हैं, उनमेंसे एक स्थान सोरों है। यहाँका मुख्य मन्दिर वराहभगवान्‌का मन्दिर है। उसमें श्वेतवराहकी चतुर्भुज मूर्ति है। भगवान्‌के वामभागमें लक्ष्मीजी हैं।

२०. कन्नौज—फर्रुखाबाद जनपदका कन्नौज नगर अश्वतीर्थ कहा जाता है। मौखरियों, गुर्जर-प्रतिहारों तथा गहड़वालोंद्वारा निर्मित अनेक वैष्णव-मन्दिरोंके अवशेष नगरके आस-पास मिले हैं। महाविष्णु, चतुर्भुज विष्णु और वराहावतारकी प्राप्त प्रतिमाएँ विशेष उल्लेखनीय हैं।

२१. कानपुर—इस विशाल नगरमें श्रीजुग्गीलाल-

कमलापतिद्वारा निर्मित भगवान् विष्णुका भव्य मन्दिर देखने योग्य है।

२२. भीतरगाँव–कानपुरसे २० मील दक्षिणकी ओर अवस्थित इस ग्राममें ७० फुट ऊँचा पक्की ईंटसे निर्मित भगवान् विष्णुका मन्दिर दर्शनीय है।

२३. देवगढ़–झाँसी जनपदमें ललितपुरसे २३ मील पश्चिम बेतवा नदीके किनारे इस स्थानपर दशावतार विष्णुमन्दिर गुप्तकालीन वास्तुकलाका उत्कृष्ट उदाहरण है।

२४. कालपी–कालपीमें जौंधरनालाके पास व्यासटीला है। पास ही नृसिंहटीला है। कुछ लोग ऐसा मानते हैं कि व्यासटीला भगवान् व्यासजीका आश्रमस्थान है और नृसिंहटीला वह स्थान है, जहाँ प्रह्लादकी रक्षाके लिये नृसिंहभगवान् प्रकट हुए थे।

२५. प्रयाग–'प्रयाग-शताध्यायी'के अनुसार अक्षयवटके दाहिने भागमें आदि-वेणीमाधव वैष्णवपीठ होना चाहिये। किंतु अब त्रिवेणी-सङ्गमपर जलरूपमें ही वेणीमाधव माने जाते हैं। प्रयागमें कुल बारह माधव कहे गये हैं—१–शङ्खमाधव (झूँसीकी ओर छतनगाके पास मुंशीके बागमें), २–चक्रमाधव (अरैलमें), ३–गदामाधव (नैनीके एक मन्दिरमें यह मूर्ति है), ४–पद्ममाधव (वीकर-देवरियामें केवल स्थान-निर्देशक पत्थर है), ५–अनन्तमाधव (अक्षयवटके पास), ६–बिन्दुमाधव (कहीं मूर्ति नहीं है—स्थान द्रौपदीघाटके पास), ७–मनोहरमाधव (द्रवेश्वरनाथ-मन्दिरमें मूर्ति है), ८–असिमाधव (नागवासुकिके पास होना चाहिये), ९–संकष्ट-हर माधव (झूँसीमें हंसतीर्थके पीछे संध्यावटके नीचे), १०–आदिवेणीमाधव (त्रिवेणीपर जलरूपमें), ११–आदि माधव (अरैलमें), १२–श्रीवेणीमाधव (दारागंजमें)। दारागंजके श्रीवैष्णवाश्रममें भगवान् श्रीवेंकटेशका मन्दिर भी दर्शन करनेयोग्य है।

२६. गढ़वा–यह ग्राम प्रयागसे २५ मील दक्षिण-पश्चिम है। यहाँ उत्खननसे भगवान् विष्णुके दशावतारकी मूर्तियाँ मिली थीं, जो बड़ी कलापूर्ण हैं। इनमें ब्रह्मा, विष्णु और शिवकी त्रिमूर्ति भी है, जो नौ फुट लंबी और चार फुट चौड़ी है। ये ही मूर्तियाँ मन्दिरमें स्थापित हैं।

२७. बरेली–यहाँ विष्णुभगवान्‌का एक विशाल मन्दिर है, जो मुसल्मान भक्त सेठ श्रीफज्लुल रहमानद्वारा निर्मित है। इस आधुनिक मन्दिरके निर्माणमें लगी ढाई लाखकी विशाल धनराशिका व्यय उन परम वैष्णव आधुनिक 'रसखान'की श्रद्धा-भावनाका प्रतीक है। यह मन्दिर सन् १९६० ई० में बनकर तैयार हुआ और स्व० राष्ट्रपति श्रीराजेन्द्र प्रसादजीने २५-५-६० को इस मन्दिरका उद्घाटन किया।

२८. काशी–यह शैवक्षेत्र है। फिर भी यहाँ अनेक विष्णु-मन्दिर हैं। वरुणा और गङ्गाके सङ्गमपर 'विष्णु-पादोदकतीर्थ' है। घाटकी सीढ़ियोंके ऊपर एक अति प्राचीन 'आदि केशव' नामका विष्णुमन्दिर है। इस मन्दिरमें भगवान् केशवकी चतुर्भुज श्याम रंगकी खड़ी मूर्ति है। राजघाटपर श्रीलक्ष्मीनारायणमन्दिर, मेहताघाटपर नर-नारायणमन्दिर, भोंसलाघाटपर लक्ष्मीनारायणमन्दिर, मान-मन्दिर-घाटपर लक्ष्मीनारायणमन्दिर तथा वाराही मन्दिर और शिवालाघाटपर हयग्रीवकुण्ड एवं हयग्रीव-मूर्ति दर्शनीय हैं। पञ्चगङ्गाघाटपर विष्णुकाञ्चीतीर्थ तथा बिन्दुतीर्थ हैं। पुराना बिन्दुमाधवमन्दिर तोड़कर औरंगजेबने मस्जिद बनवा दी थी। उस मस्जिदके पीछे द्वारकाधीश तथा राधाकृष्णके मन्दिर हैं। श्रीअन्नपूर्णा-मन्दिरमें भगवान् लक्ष्मीनारायणकी भव्य मूर्ति है।

२९. चुनार–मुगलसरायसे २० मील दूर इस स्थानका पुराना नाम 'चरणाद्रि' है। कहा जाता है कि राजा बलिसे तीन पैर भूमिका दान लेकर भगवान् विष्णुके वामनावतारने जब पृथ्वीको नापना आरम्भ किया, तब उनका प्रथम चरण यहीं पड़ा था।

३०. अयोध्या–स्कन्दपुराणके अनुसार अयोध्या भगवान् विष्णुके सुदर्शनचक्रपर बसी है। 'अयोध्या' शब्दका निर्वचन करते हुए स्कन्दपुराणकी मान्यता है कि 'अकार' ब्रह्मा है, 'यकार' विष्णु है तथा 'धकार' रुद्रका स्वरूप है। अतएव 'अयोध्या' श्रीब्रह्मा, श्रीविष्णु तथा श्रीशंकर—इन तीनोंका समन्वित स्वरूप है।

भगवान् विष्णुने श्रीरामरूपमें यहींपर अवतार धारणकर धर्मकी स्थापना की थी। जहाँ भगवान् श्रीविष्णुका श्रीरामरूपमें प्राकट्य हुआ था, वहाँ एक प्राचीन मन्दिर था। इस मन्दिरको बाबरने तुड़वाकर मस्जिद बनवा दी थी। किंतु अब वहाँ फिर श्रीराममूर्ति विराजमान है। उस प्राचीन मन्दिरके घेरेमें जन्मभूमिका एक छोटा मन्दिर और है।

यहाँ कई तीर्थ हैं, कई मन्दिर हैं और कई साधु-आश्रम हैं, जो दर्शनीय हैं। जहाँ समस्त अवधवासियोंसहित भगवान्

श्रीरामचन्द्र वैष्णवतेजमें प्रविष्ट हुए थे, वह पुण्यसलिला सरयूके तटपर स्थित 'गोप्रतारतीर्थ' (गुप्तारघाट) है। यह अयोध्यासे पश्चिम है।

स्कन्दपुराण तथा रुद्रयामलके अनुसार भगवान् विष्णुका अयोध्याजीमें समय-समयपर सात बार अवतरण हुआ। उनकी स्मृतिमें यहाँके सात क्षेत्र विख्यात हैं—१-चन्द्रहरि, २-गुप्तहरि, ३-चक्रहरि, ४-विष्णुहरि, ५-धर्महरि, ६-बिल्वहरि और ७-पुण्यहरि।

२१. वराहक्षेत्र—अयोध्यासे २४ मील पश्चिम सरयू और घाघरा नदियोंका संगम-क्षेत्र ही पवित्र 'वराहक्षेत्र' है। यहाँ भगवान् वराहका प्राचीन मन्दिर है, जो अब जीर्ण दशामें है।

२२. गोरखपुर—यहाँका विष्णु-मन्दिर विख्यात है। विष्णु-मन्दिरके पीछे एक बड़ा पोखरा है। पोखरेके दक्षिण तटपर खोदते समय अचानक यह भव्य मूर्ति प्राप्त हुई थी। काले कसौटीके पत्थरसे निर्मित यह मूर्ति कलाकी दृष्टिसे अपूर्व है। मूर्तिका अङ्ग-प्रत्यङ्ग अति सुघर और सुडौल है। लोग अनुमान नहीं लगा पा रहे हैं कि मूर्ति कितनी प्राचीन है। कोई-कोई तो इसे डेढ़-दो हजार वर्ष पुरानी मानते हैं। मूर्तिकी भव्यता और कलात्मकतापर मुग्ध होकर अंग्रेजी सरकार इसे संग्रहालयमें प्रदर्शनार्थ रखना चाहती थी; पर हिंदुओंके संघर्ष करनेपर यह मूर्ति वापस मिल गयी और फिर इस विष्णु-मन्दिरमें इसकी प्राण-प्रतिष्ठा हुई। यह मन्दिर गोरखपुरका महान् आकर्षण है। इस मन्दिरके निर्माणमें एक विशेषता और है, जो अन्यत्र दुर्लभ है। इस मन्दिरके चारों कोनोंपर भारतके चार प्रधान तीर्थोंके चार आराध्य स्थित हैं। भारतके उत्तर उत्तराखण्डमें स्थित बदरीनाथपुरीके भगवान् बदरीविशालजी, पूर्वस्थित जगन्नाथपुरीके भगवान् कृष्ण-बलदेव-सुभद्राजी, दक्षिणस्थित रामेश्वरम् मन्दिरके भगवान् श्रीशिवजी और पश्चिम-स्थित श्रीद्वारकापुरीके भगवान् श्रीकृष्ण—ये चारों आराध्य विष्णु-मन्दिरके चारों कोनोंपर विराजित हैं और मन्दिरकी एक परिक्रमा लगानेका अर्थ है—चारों धामोंकी, चारों आराध्योंकी परिक्रमा लग जाना। विष्णु-मन्दिरके निर्माण एवं भगवद्विग्रहोंके संस्थापनकी यह शैली वस्तुतः सराहनीय एवं अनुकरणीय है।

२३. हरिहरक्षेत्र—सोनपुरके पास मही नामकी छोटी नदीके तटपर श्रीहरिहरनाथजीका मन्दिर है, जिसमें श्रीविष्णु-शिवकी हरिहरात्मक मूर्ति है। प्रत्येक कार्तिक पूर्णिमापर यहाँ विशाल मेला लगता है। वहाँके माहात्म्यमें लिखा है कि भगवान् विष्णुने गजराजको ग्राहसे विमुक्ति यहीं दिलायी थी।

२४. सीतामढ़ी—भगवती लक्ष्मीका यहींपर भगवती सीताके रूपमें प्राकट्य हुआ था। विदेहराज जनकको भगवती सीताकी उपलब्धि यहींपर खेत जोतते समय पृथ्वीसे हुई थी, इसी कारण इस भूमिको 'सीतामही' (सीतामढ़ी) कहते हैं।

२५. जनकपुरधाम—भगवती लक्ष्मीकी अवतारस्वरूपा श्रीसीताजीका लालन-पालन, विवाह यहीं विदेहराज जनकके यहाँ हुआ था। यहाँके श्रीराममन्दिरमें अति प्राचीन श्रीरामपञ्चायतन मूर्तियोंके अतिरिक्त श्रीलक्ष्मीनारायणकी मूर्तियाँ तथा दशावतारकी मूर्तियाँ स्थापित हैं। यहाँका श्रीजानकी-मन्दिर अवश्य दर्शनीय है।

२६. मुक्तिनाथ—नेपालकी राजधानी काठमांडूसे १४० मील दूर है। इसका नाम 'शालग्रामक्षेत्र' भी है। भगवान् श्रीहरि यहाँ पर्वतरूपमें स्थित हैं। वराहपुराणके अनुसार किसी कल्पमें गज-ग्राहका युद्ध भी यहीं हुआ था तथा भगवान् विष्णुने सुदर्शनचक्रसे ग्राहका मुख विदीर्ण करके गजराजका उद्धार किया था। इस क्षेत्रमें बहनेवाली गण्डकी नदीको 'नारायणी' या 'शालग्रामी' भी कहते हैं। गण्डकी नदीका उद्गम तो दामोदरकुण्ड है। इसके किनारे जहाँतक शालग्रामपर्वतका विस्तार है, वहाँतकका पूरा क्षेत्र शालग्राम-क्षेत्र है। रंग, आकार, चक्र तथा मुखादिके भेदसे शालग्रामशिला हरि, विष्णु, कृष्ण, राम, नृसिंह आदिका प्रतीक मानी जाती है।

२७. बूढ़ा नीलकण्ठ—यह स्थान काठमांडूसे सात मीलकी दूरीपर है। नेपालमें भगवान् विष्णुके अनेक मन्दिर एवं क्षेत्र हैं; किंतु यहाँके श्रीविग्रहकी गरिमा विशेष है। भगवान् 'जलशायी नारायण' शतरुद्र पर्वतके सरोवरके जलमें नागशय्याके ऊपर शयनावस्थामें सुशोभित हैं। आयुधसहित चतुर्भुज विग्रहके ऊपर शेषनागके ग्यारह फनोंके होनेसे जलशायी नारायणकी शोभा बहुत बढ़ गयी है। पूर्वकालमें एक-दो बार पर्वतोंके सरक जानेसे यह श्रीविग्रह मिट्टीसे नीचे दब भी गया था और तब-तब स्वप्नादेश होनेपर नेपालनरेश मिट्टी हटवाकर इस श्रीविग्रहको प्रकाशमें लाते रहे हैं। भगवान् पशुपतिनाथके दर्शनार्थ जानेवाले तीर्थयात्री बूढ़ा नीलकण्ठ प्रायः जाते ही हैं। नेपालमें इसकी बड़ी मान्यता है।

३८. चंगुनारायण—यह मन्दिर काठमांडूसे प्रायः १० मीलकी दूरीपर है और एक पहाड़ीके ऊपर बना है। मन्दिरका प्रमुख द्वार अत्यन्त सुन्दर है। प्रसिद्ध फ्रांसीसी लेखक सिलवाँ लेवीने इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है तथा नेपाली मन्दिरोंमें इसे सर्वोत्तम बताया है। दरवाजेके दोनों ओर दो प्रस्तर-स्तूपोंपर शङ्ख तथा चक्र बने हैं।

३९. नारायणचतुष्टय—चंगुनारायणके आस-पास विशङ्कुनारायण, शिखरनारायण तथा एचंगुनारायण नामके गाँव हैं और इन गाँवोंमें इन्हीं नामोंके भगवान् नारायणके मन्दिर हैं। इन चारों नारायण-मन्दिरोंका एक ही दिन दर्शन करना अत्यन्त पुण्यप्रद माना जाता है। इन चारों गाँवोंकी यात्रा करनेमें २२ मील चलना पड़ता है। श्रद्धालु लोग पर्याप्त कठिनाई उठाकर भी चारों नारायण-मन्दिरोंका एक ही दिन दर्शन करते हैं।

४०. पटना—यहाँ श्रीबिड़लाजीका बनवाया हुआ एक सुन्दर श्रीलक्ष्मीनारायणजीका मन्दिर है।

४१. गया—भारतवर्षका प्रमुख पितृतीर्थ गया है। 'विष्णुपद' ही यहाँका प्रधान मन्दिर है। फल्गु नदीके किनारे यह विशाल मन्दिर है। मन्दिरमें अष्टकोण वेदीपर भगवान् विष्णुका चरण-चिह्न बना है। मन्दिरके बाहर सभामण्डप है तथा लोगोंके श्राद्ध करनेके लिये दो बड़े मण्डप हैं। पास ही एक मन्दिरमें गरुड़जीकी प्रतिमा है। इस मन्दिरके दक्षिण जगन्नाथजीका मन्दिर है। वहीं एक धर्मशाला है। वहीं दूसरे मन्दिरमें भगवान् लक्ष्मीनारायणकी मूर्ति है। विष्णुपद-मन्दिरसे कुछ गज पूर्वोत्तर फल्गु नदीके किनारे गदाधर भगवान्‌का मन्दिर है, जिसमें गदाधर भगवान्‌की चतुर्भुज मूर्ति है।

४२. कलकत्ता—यह भारतकी महानगरी है। यहाँका बड़ाबाजार-स्थित श्रीवैकुण्ठनाथ भगवान्‌का मन्दिर बड़ा भव्य है। श्रीदेवी और भूदेवीसहित चतुर्भुज भगवान् श्रीवैकुण्ठनाथजीका दर्शन बड़ा चित्ताकर्षक है। कथा-कीर्तन, प्रवचन, अनुष्ठान, उत्सव आदिके रूपमें कोई-न-कोई कार्यक्रम यहाँ चलता ही रहता है। पूजा, अर्चा, भोग, आरतीकी व्यवस्था सुन्दर है।

४३. वराह-क्षेत्र—धूनीसाहबसे २० मील उत्तर धवलागिरि पर्वतकी कठिन चढ़ाई है। नेपालराज्यमें कोसी नदीके किनारे धवलागिरि पर्वतपर वराह-क्षेत्र है, जिसे 'कोकामुख' भी कहते हैं। एक मन्दिरमें वराहभगवान्‌की चतुर्भुज मूर्ति है। मन्दिरके पास कोबरा (कोका) नदी है, जिसका जल वराहभगवान्‌पर चढ़ाया जाता है।

४४. गौहाटी—यहाँसे १५ मील दूर हाजो-नामक स्थानपर नृसिंहरूपमें भगवान् विष्णुका मन्दिर है। यह सुन्दर मन्दिर एक शिखरपर स्थित है।

४५. बतद्रवा—यह स्थान आसाम प्रदेशके नौगाँव-जनपदमें है। यहाँका विष्णु-मन्दिर एवं पूजा-अर्चा दर्शनीय हैं। इसी प्रकार कामरूप जनपदमें बरपेटा, पाढबाउसी, चुनपरा; कूचबिहार-जनपदमें मधुपुर; शिवसागर-जनपदमें माजुलि, कमलाबारी और लक्ष्मीपुर जनपदमें मणिकुल आदि कुछ ऐसे स्थान हैं, जहाँ परम भक्त श्रीमंत शंकरदेव एवं उनके भक्तों-शिष्यों-प्रशिष्योंद्वारा विष्णु-मन्दिरों या केन्द्रोंकी स्थापना हुई और जिनके माध्यमसे असम-प्रदेशमें विष्णु-भक्ति तथा वैष्णवताके सफल प्रचारका प्रयास हुआ है।

४६. याजपुर—हबड़ावाल्टेयर लाइनपर कटकसे ४४ मील पहले ही जाजपुर क्योंझररोड स्टेशनसे ९ मील दूर याजपुर है। यह स्थान उत्कलका प्रमुख तीर्थस्थान है। पहले ब्रह्माजी-द्वारा यज्ञ किये जानेके कारण ही इसे यागपुर या याजपुर कहते हैं। यहाँ अन्य मन्दिरोंके अतिरिक्त वैतरणी नदीके घाटपर भगवान् विष्णुका मन्दिर है। वैतरणी नदी पार करके भगवान् वराहके मन्दिरमें जाना पड़ता है, जो यहाँका प्राचीन एवं प्रमुख मन्दिर है।

४७. सिंहापुर—जाजपुर क्योंझररोडसे १२ मील गढ़ मधुपुर स्टेशन है। वहाँसे दो मील दूर सिंहापुर ग्राम है। इस ग्राममें नारायणतीर्थ है। इस नारायणतीर्थ-सरोवरमें भगवान् नारायणकी शेषशायी मूर्ति पूरे वर्ष जलमें डूबी रहती है। इसीलिये इस मूर्तिको 'गङ्गा-नारायण' कहते हैं। मेष-संक्रान्तिके दिन यह मूर्ति जलके बाहर आती है। उस दिन बड़ा मेला लगता है।

४८. भुवनेश्वर—उड़ीसाकी राजनगरी भुवनेश्वरका श्रीलिङ्गराज-मन्दिर मुख्य मन्दिर है। श्रीलिङ्गराजका ही नाम भुवनेश्वर है। यह मन्दिर उच्च प्राकारके भीतर है। इस मन्दिरकी निर्माणकला उत्कृष्ट है। इसके बाहरी भागमें अत्यन्त मनोरम शिल्प-सौन्दर्य है। भीतरका अंश भी मनोहर है।

श्रीलिङ्गराजके निज-मन्दिरमें चपटा अनगढ़ विग्रह है। यह चक्राकार होनेसे हरिहरात्मक लिङ्ग माना जाता है और हरिहरात्मक मानकर हरिहर-मन्त्रसे इनकी पूजा होती है। हरिहरात्मक लिङ्ग होनेसे यहाँ त्रिशूल मुख्यायुध नहीं माना जाता, पिनाक (धनुष) ही मुख्यायुध माना जाता है। हरिहर-मन्त्रसे श्रीलिङ्गराजजीको भोग लगाया जाता है। प्राकारके भीतर बहुत-से देवी-देवताओंके मन्दिर हैं, उनमें लक्ष्मी-नृसिंहका मन्दिर भी दर्शनीय है।

भुवनेश्वरमें मन्दिरोंकी संख्या बहुत है। भुवनेश्वरके अधिष्ठातृ-देवता अनन्त वासुदेव हैं। भगवान् शंकर इन्हींकी अनुमतिसे इस क्षेत्रमें पधारे। यहाँके मन्दिरमें सुभद्रानारायण तथा लक्ष्मीजीके विग्रह हैं।

४९. श्रीजगन्नाथपुरी—श्रीजगन्नाथधाम चार परम पावन धामोंमें एक है। ऐसी भी मान्यता है कि शेष तीन धामोंमें बदरीनाथ सत्ययुगका, रामेश्वर त्रेताका तथा द्वारका द्वापरका धाम है, किंतु इस कलियुगका पावनकारी धाम तो पुरी ही है। इस क्षेत्रके अन्य अनेक नाम हैं। यह श्रीक्षेत्र, पुरुषोत्तमपुरी तथा शङ्खक्षेत्र भी कहा जाता है; क्योंकि इस पूरे पुण्यक्षेत्रकी आकृति शङ्खके समान है।

श्रीजगन्नाथजीके महाप्रसादकी महिमा तो भुवन-विख्यात है। महाप्रसादमें छुआछूतका दोष तो माना ही नहीं जाता, उच्छिष्टता-दोष भी नहीं माना जाता और व्रत-पर्वादिके दिन भी उसे ग्रहण करना विहित है। श्रीजगन्नाथजीका मन्दिर बहुत विशाल है। मन्दिर दो परकोटोंके भीतर है। इसमें चारों ओर चार महाद्वार हैं। मुख्य मन्दिरके तीन भाग हैं—विमान या श्रीमन्दिर, जो सबसे ऊँचा है। इसीमें श्रीजगन्नाथजी विराजमान हैं। उसके सामने जगमोहन और जगमोहनके पश्चात् मुखशाला नामक मन्दिर है। मुखशालाके आगे भोगमण्डप है। सिंहद्वारके सम्मुख कोणार्कसे लाकर स्थापित किया गया उच्च अरुणस्तम्भ है। इसकी प्रदक्षिणा तथा सिंहद्वारको प्रणाम करके द्वारमें प्रवेश करनेपर दाहिनी ओर पतितपावन जगन्नाथजीके विग्रह (द्वारसे ही) दृष्टिगोचर होते हैं। इनके दर्शन सभीके लिये सुलभ हैं। विधर्मी भी इनका दर्शन कर सकते हैं।

विशाल मन्दिरके अंदर देवी-देवताओंके अनेक छोटे-छोटे मन्दिर हैं। इनमें एक श्रीलक्ष्मीजीका मन्दिर है। इस मन्दिरमें श्रीलक्ष्मीजीकी मुख्य मूर्ति है। समीप ही श्रीशंकराचार्यजी तथा लक्ष्मी-नारायणकी मूर्तियाँ हैं। इसी मन्दिरके जगमोहनमें कथा तथा अन्य शास्त्र-चर्चा होती है।

यहाँसे आगे निजमन्दिरसे एक द्वार बाहर जाता है। इस द्वारको 'वैकुण्ठद्वार' कहते हैं। वैकुण्ठद्वारके समीप वैकुण्ठेश्वर महादेवका मन्दिर है। यहाँ बगीचा-सा है। बारह वर्षपर जब श्रीजगन्नाथजीका कलेवर-परिवर्तन होता है, तब पुराने विग्रहको यहीं समाधि दी जाती है।

जय-विजयद्वारमें जय-विजयकी मूर्तियाँ हैं। इनका दर्शन करके, इनसे अनुमति लेकर तब निज मन्दिरमें जाना उचित है। प्रायः मन्दिरकी परिक्रमा करके (जब थोड़ा परिक्रमांश शेष रहता है) यात्री निजमन्दिरके जगमोहनमें प्रवेश करता है। जगमोहनमें गरुड़स्तम्भ (भोगमण्डप) है। श्रीचैतन्यमहाप्रभु यहींसे श्रीजगन्नाथजीके दर्शन करते थे। वहाँ एक छोटा गड्ढा भूमिमें है। कहा जाता है कि वह गड्ढा महाप्रभुके आँसुओंसे भर जाया करता था। गरुड़स्तम्भको दाहिने करके तथा जय-विजय (भोगमण्डप) की मूर्तियोंको प्रणाम करके तब आगे निजमन्दिरमें जाना चाहिये।

निजमन्दिरमें १६ फुट लंबी, ४ फुट ऊँची वेदी है। इसे 'रत्नवेदी' कहते हैं। वेदीके तीन ओर ३ फुट चौड़ी गली है, जिससे यात्री श्रीजगन्नाथजीकी परिक्रमा करते हैं। इस वेदीपर श्रीजगन्नाथ, सुभद्रा तथा बलरामजीकी मुख्य मूर्तियाँ विराजमान हैं। श्रीजगन्नाथजीका श्यामवर्ण है। वेदीपर एक ओर ६ फुट लंबा सुदर्शनचक्र प्रतिष्ठित है। यहीं नीलमाधव, लक्ष्मी तथा सरस्वतीकी छोटी मूर्तियाँ भी हैं। यात्री एक बार श्रीजगन्नाथजीके मन्दिरमें भीतरतक जाकर चरणस्पर्श कर सकते हैं। जगमोहनमेंसे दर्शन तो प्रायः रात्रिमें पट बंद होनेके अतिरिक्त सभी समय होते हैं, किंतु यहाँकी सेवा-पद्धति कुछ ऐसी है कि यह निश्चित नहीं कि किस समय भोग लगेगा और कब सबके लिये भीतरतक जानेकी सुविधा प्राप्त होगी। प्रायः रात्रिमें ही यह सुविधा होती है। दिनमें भी एक समय यह सुविधा मिलती है, किंतु प्रतिदिन उसके मिलनेका निश्चय नहीं है।

५०. शिवपुरी—मध्यप्रदेशस्थित शिवपुरी नगरके पूर्वमें सिद्धेश्वरका प्राचीन मन्दिर है। इस मन्दिरमें भगवान् नारायणकी एक प्रतिमा है, जो पारासरी गाँवके पास मिली

थी । यह चतुर्भुज मूर्ति बहुत प्राचीन है । क्षीरसागरमें शेषशय्यापर भगवान् विष्णु विराजित हैं । समीप ही भगवती लक्ष्मी हैं । भगवान्‌की चार भुजाओंमें आयुध हैं ही, भगवान्‌के चारों ओर दशावतारकी मूर्तियाँ भी उसी एक पत्थरमें सुशोभित हैं । श्रीचरणोंके पास कमलपुष्प है तथा पास ही जय-विजय वन्दना कर रहे हैं । मूर्तिकलाकी दृष्टिसे भी यह मूर्ति अतिभव्य है ।

५१. ओरछा—ओरछासे तीन-चार मील दूर एक पहाड़ीपर लक्ष्मीजीका मन्दिर है । उसमें लक्ष्मी-नारायणकी युगल मूर्ति है ।

५२. शबरी-नारायण—बिलासपुरसे शबरीनारायण ४० मील दूर है । यहाँ माघ-पूर्णिमाको मेला लगता है । यहाँका मुख्य मन्दिर भगवान् नारायणका है । इसमें भगवान् नारायणकी चतुर्भुज मूर्ति है । कहा जाता है कि यह मन्दिर शबरजातिद्वारा बनाया गया है ।

५३. विदिशा (भेलसा)-उदयगिरि—मौर्य तथा शुङ्गकालमें विदिशाका बड़ा वैभव था । शुङ्गकालमें वैष्णव-धर्मका उत्थान हुआ । यूनानी राजाके राजदूत हेलियोदोरने विदिशामें भगवान् विष्णुकी प्रतिष्ठामें विष्णुमन्दिरके सामने एक गरुड़ध्वजकी स्थापना की थी । यह राजदूत स्वयं भागवत-धर्मका अनुयायी हो गया था । विदिशाके निकट उदयगिरिकी गुफाओंमें पृथ्वीका उद्धार करते हुए वराहभगवान्‌की अति कलापूर्ण मूर्ति है । तेरहवीं गुफामें बारह फुट लंबी शेषशायी भगवान् विष्णुकी प्रतिमा विशेष प्रभावोत्पादक है । भगवान् विष्णुकी अनेक सुन्दर प्रतिमाएँ इन गुफाओंमें देखी जा सकती हैं ।

५४. ग्वालियर—अन्य मन्दिरोंके अतिरिक्त 'सास-बहू'के नामसे विख्यात भगवान् विष्णुका मन्दिर दर्शनकी प्रमुख वस्तु है ।

५५. ऐरन—सागरसे ४७ मील उत्तर-पश्चिम इस स्थानपर गुप्तकालके सम्राटोंके सुन्दर मन्दिरोंके अवशेष हैं । नृसिंह-मन्दिर, वराहमन्दिर, महाविष्णुमन्दिर तथा श्रीकृष्ण-बाल-लीला वस्तुतः दर्शनीय हैं ।

५६. खजुराहो—यहाँके जगत्प्रसिद्ध देवालयोंमें वैष्णव-मन्दिर-समूहके अन्तर्गत लक्ष्मणमन्दिर सर्वश्रेष्ठ है, जिसमें चतुर्भुज विष्णुकी सुन्दर मूर्ति है । इसके अतिरिक्त वामन एवं वराहके मन्दिर भी दर्शनीय हैं ।

५७. उज्जैन—यह भारतका विख्यात तीर्थस्थान है । इसकी सप्त मोक्षदा पुरियोंमें गणना है । स्कन्दपुराणके अनुसार यहाँ शिवपुरी, विष्णुपुरी और ब्रह्मपुरी तीनों वर्तमान हैं । इस पुरीके मुख्यतः शैव क्षेत्र होते हुए भी यहाँके विष्णु-मन्दिर दर्शनीय हैं । गढ़कालिकापर स्थित चतुर्व्यूहमन्दिर अनोखा है, जहाँ एक ही मूर्तिमें वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध विराजमान हैं । इसके अतिरिक्त अनन्तपेठस्थित अनन्तनारायण-मन्दिर, अङ्कपाद-स्थित बलराम-मन्दिर और जनार्दन-मन्दिर, कपिलतीर्थ-स्थित नारायण-मन्दिर, अङ्कपादक्षेत्रस्थित हृषीकेश-मन्दिर, नईपेठस्थित वराह-मन्दिर, नृसिंहघारस्थित वराह-मन्दिर, वामनकुण्डस्थित वामन-मन्दिर तथा नयीसड़कस्थित शेषनारायण-मन्दिर दर्शनीय हैं । यहाँ प्रमुख वैष्णव-सम्प्रदायोंकी गद्दियाँ भी हैं ।

५८. शोणितपुर—इटारसीके पास शोणितपुर है, जहाँ भगवान् नृसिंहका प्राचीन मन्दिर है । शोणितपुरसे कुछ दूर नर्मदा-किनारे ब्रह्माण्डघाट है । यहाँ वराहभगवान्‌की मूर्ति है । कुछ दूरीपर वराहगङ्गा है ।

५९. मझौली—यहाँ भगवान् वराहका अत्यन्त प्राचीन प्रसिद्ध मन्दिर है । मन्दिरमें एक ही पत्थरमें सिंहासन तथा मूर्ति बनी है । भगवान् वराहकी मूर्ति लगभग ढाई गज ऊँची है । वराहभगवान्‌के शरीरमें सर्वत्र विभिन्न देवताओंकी मूर्तियाँ अङ्कित हैं । यह सर्वदेवमयी श्वेतवराहकी मूर्ति इधर बहुत प्रतिष्ठित है ।

६०. राजिम—रायपुरसे राजिम २८ मील दूर है । यहाँ महानदीमें दो नदियाँ पैरी और सोट मिलती हैं । इससे इसे 'त्रिवेणी' कहा जाता है । यहाँ राजीवलोचन भगवान्‌का प्राचीन मन्दिर है । मन्दिरमें भगवान् नारायणकी चतुर्भुज मूर्ति है । मन्दिरके भीतर ही दशावतार तथा बालमुकुन्दजीके मन्दिर हैं ।

६१. अमरकण्टक—पुण्यसलिला श्रीनर्मदाजी मेकल पर्वतपर अमरकण्टक नामक ग्रामके एक कुण्डसे निकलती हैं। अमरकण्टकमें भगवान् विष्णुका एक अति प्राचीन मन्दिर है । काले पत्थरसे बनी यह चतुर्भुजी मूर्ति चारों आयुधों-सहित सुशोभित है तथा पास ही श्रीलक्ष्मीजी चरणवन्दना कर रही हैं । इस कृष्णवर्णमयी विष्णुमूर्तिमें मण्डलाकार दशावतारकी अलग-अलग मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं और ऐसा

लगता है, मानो भगवान् विष्णुके एक ही अङ्गसे मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध और कल्कि अवतारोंका प्रादुर्भाव हुआ है।

६२. रतनपुर—रतनपुर छत्तीसगढ़की पुरानी राजधानी है। रतनपुरसे आध मील पश्चिम लक्ष्मी-मन्दिर है। यह मन्दिर पर्वतपर है। किलेमें श्रीलक्ष्मी-नारायण-मन्दिर है। वहीं जगन्नाथजीका भी मन्दिर है। यह मूर्ति पुरीसे आयी है।

६३. सकलनारायण—बस्तरजिलेमें पैदामाटूर ग्रामके पास चितबांगू नदी है। नदीके पास एक छोटे मन्दिरमें भगवान् विष्णुकी मूर्ति है। यह मूर्ति प्राचीन है और सुन्दर है। नदीमें स्नान करके विष्णुभगवान्के दर्शन करके तब यात्री पासके पर्वतपर चढ़ते हैं।

६४. मंडला—किलेके राजराजेश्वरी मन्दिरके सामने शिव-मन्दिरसे टिकी हुई भगवान् विष्णुकी एक प्राचीन मूर्ति है। यह चतुर्भुजी मूर्ति बड़ी भावपूर्ण है।

६५. हँड़िया-नेमावर—नर्मदाके दक्षिण तटपर हँड़िया नगर है। हरदा स्टेशनसे वह १३ मील है। हँड़ियासे थोड़ी दूर पश्चिम दूसरे तटपर नेमावरमें सिद्धनाथ-मन्दिर है। यहाँ भी जमदग्नि ऋषिकी तपोभूमि मानते हैं। यहाँ नर्मदामें सूर्यकुण्ड है, जो गर्मीमें दीखता है। कुण्डमें शेषशायी भगवान्की मूर्ति है। इसे नर्मदाका नाभिस्थान (मध्यभाग) कहते हैं।

६६. विष्णुपुरी—ओंकारेश्वरके पास विष्णुपुरीमें अमलेश्वरजी तथा भगवान् विष्णुके मन्दिर दर्शनीय हैं।

६७. चौबीस अवतार—ओंकारेश्वरसे (नर्मदाजीके ऊपरकी ओर) लगभग १ मील दूर, जहाँ कावेरी-धारा नर्मदाजीसे पृथक् हुई है, यह स्थान है। यहाँ चौबीस अवतार तथा पशुपतिनाथजीका मन्दिर है।

६८. मेहकर (मेघंकर)—

तीर्थं मेघंकरं नाम स्वयमेव जनार्दनः।
यत्र शार्ङ्गधरो विष्णुर्मेखलायामवस्थितः॥
(मत्स्यपु० २२। ४०)

'मेघंकरतीर्थ साक्षात् भगवान् जनार्दनका ही स्वरूप है। इसकी मेखलामें शार्ङ्ग-धनुष धारण किये हुए भगवान् विष्णु अवस्थित हैं।' यहाँ स्नान करनेका बड़ा माहात्म्य है।

खामगाँव स्टेशनसे मेहकर (मेघंकर) स्थान ५० मील है। नदीके तटपर खूब ऊँचाईपर श्रीशार्ङ्गधर-भगवान्का अत्यन्त प्राचीन भव्य मन्दिर है। इसका सभा-मण्डप विशाल एवं कलापूर्ण है। इस मन्दिरमें जो भगवान् शार्ङ्गधरकी मूर्ति है, वह एक भवनकी नींव खोदते समय काष्ठकी पेटीमें पूजा-सामग्रीसहित पायी गयी थी। वह स्थान एक प्राचीन खँडहर था। कई और भी मूर्तियाँ यहाँ मिलीं, किंतु उस समयके अंग्रेज अधिकारियोंने उन्हें लंदन-म्यूजियमके लिये भेज दिया। जनताके आग्रहके कारण भगवान् शार्ङ्गधरकी मूर्ति रख ली गयी। इस मूर्तिकी उसी समय प्रतिष्ठा हुई। भगवान्की यह मूर्ति ११ फुटकी शालग्राम शिलासे बनी है। भगवान्के समीप श्रीदेवी, भूदेवी तथा जय-विजयकी छोटी मूर्तियाँ हैं। कलाकी दृष्टिसे यह मूर्ति परम सुन्दर है।

पुराणोंमें जिन शार्ङ्गधर-भगवान्के दर्शनका उल्लेख है, यह वही प्राचीन मूर्ति है। मार्गशीर्ष शुक्ला पञ्चमीसे पूर्णिमातक यहाँ महोत्सव होता है।

६९. ऊन—खरगोनसे ऊन दो मील दूर है। कहा जाता है, यहाँ ९९ मन्दिर, ९९ सरोवर तथा ९९ बावलियाँ थीं। प्रत्येक सौमें एक कम होनेसे इस ग्रामका नाम ऊन (अर्थात् एक कम) पड़ा। यहाँके मन्दिर बहुत कलापूर्ण हैं; किंतु उनके सभा-मण्डपादि भग्न हो गये हैं। ऊन ग्रामसे कुछ दूरीपर महालक्ष्मी-मन्दिर है। इसमें महालक्ष्मीकी विशाल मूर्ति है। कहा जाता है, यह मूर्ति प्रातः, मध्याह्न, सायं—तीन रूपकी प्रतीत होती है।

७०. पूना—पूनामें मोटा और मूला नदियोंका संगम है। संगमके पास अनेकों देवमन्दिर हैं। बुधवारपेटके पास तुलसी बागमें राम-मन्दिर और बेलबागमें श्रीलक्ष्मी-नारायण-मन्दिर है। पेशवाकालके सुप्रसिद्ध श्रीमान् नानासाहेब फड़नवीसद्वारा निर्मित इस मन्दिरके श्रीविग्रह अति सुन्दर हैं।

७१. महाबलेश्वर (दक्षिण गोकर्ण)—यहाँ पासमें ही एक पर्वतसे कृष्णा नदी निकलती है। कृष्णाका उद्गम होनेसे यह पवित्र तीर्थ है। मूल महाबलेश्वर तथा नवीन महाबलेश्वर-में तीन मीलका अन्तर है। मूल महाबलेश्वरके सम्बन्धमें कहा जाता है कि यहाँ सृष्टिके आरम्भमें ब्रह्मा, विष्णु तथा महेशने तपस्या की थी। तपस्याके पश्चात् ब्रह्माजीने यज्ञ किया। यज्ञके

समय महाबल तथा अतिबल नामके दो दैत्योंने विघ्न प्रारम्भ किया। इनमेंसे अतिबलको तो भगवान् विष्णुने मार दिया, किंतु महाबल तपोबलसम्पन्न था। वह किसी पुरुषके द्वारा अवध्य था। इसलिये देवताओंकी प्रार्थनापर आदिमायाने प्रकट होकर उसे मारा। उस समय मृत्युसे पूर्व महाबल दैत्यने त्रिदेवोंसे वहाँ स्थित रहने तथा इस क्षेत्रके अपने नामसे प्रसिद्ध होनेका वरदान माँग लिया। इसके पश्चात् ब्रह्माका यज्ञ पूर्ण हुआ। सबने अवभृथ-स्नान किया।

यहाँ महाबलेश्वररूपसे भगवान् शंकर, अतिबलेश्वर-रूपसे भगवान् विष्णु तथा कोटीश्वररूपसे ब्रह्माजी नित्य निवास करते हैं। महाबलेश्वर, अतिबलेश्वर तथा कोटीश्वर—ये तीन प्राचीन मन्दिर तो हैं ही।

७२. वाई—धर्मपुरी मुहल्लेमें घाटपर रामेश्वरमन्दिर है। इनके अतिरिक्त धर्मपुरीमें व्यङ्कटेश्वर-मन्दिर, राम-मन्दिर तथा महालक्ष्मी, महाविष्णु आदिके विशाल मन्दिर हैं।

७३. कासेगाँव—यह स्थान सातारा जनपदके कहाड़ तालुकामें है। यहाँ भगवान् श्रीविष्णुका चतुर्व्यूहान्तर्गत वासुदेवरूपमें दर्शन होता है। एक ही शिलापर मूर्तिको बड़े ही कलात्मक ढंगसे उत्कीर्ण किया गया है।

७४. पंढरपुर—पंढरपुरमें चन्द्रभागाके किनारे चन्द्र-भागातीर्थ, सोमतीर्थ आदि स्थान हैं। वहाँ श्रीविठ्ठलभगवान्के मन्दिरके अतिरिक्त भी बहुत-से मन्दिर हैं। एक चबूतरेपर भगवान्के चरण-चिह्न हैं, जिन्हें 'विष्णुपद' कहते हैं। पंढरपुरमें कोदण्डराम तथा लक्ष्मीनारायणजीके मन्दिर हैं।

७५. वार्सी—मध्य-रेलवेकी मीरज-लाटूर लाइनमें कुर्दू-वाड़ीसे एक ओर पंढरपुर है और दूसरी ओर वार्सी। यहाँ भगवान् नारायणका विशाल मन्दिर है। यहाँ मन्दिरमें राजा अम्बरीषकी भी छोटी मूर्ति है। राजा अम्बरीष हाथ जोड़े खड़े हैं। भगवान्का एक हाथ उनके ऊपर अभयमुद्रामें है। वार्सीमें पुष्पावती नदी थी, जो महर्षि दुर्वासाके शापसे गुप्त है। वार्सी महाराज अम्बरीषकी राजधानी थी। महर्षि दुर्वासाके क्रोधसे भगवान्ने अम्बरीषकी रक्षा की और भगवान्का चक्र दुर्वासाके पीछे दौड़ा, यह कथा श्रीमद्भागवत आदि ग्रन्थोंमें प्रसिद्ध है।

७६. कोल्हापुर—कोल्हापुर पुराणप्रसिद्ध करवीर-क्षेत्र है। यहाँ महालक्ष्मीका नित्य निवास माना गया है। कोल्हापुर नगरमें पुराने राजमहलके पास खजाना-घर है। उसके पीछे महालक्ष्मीका विशाल मन्दिर है। इसे लोग अम्बाजीका मन्दिर भी कहते हैं। मन्दिरका घेरा बहुत बड़ा है। उस घेरेमें महालक्ष्मीजीका निजमन्दिर है। मन्दिरका प्रधान भाग नीले पत्थरोंसे बना है। श्रीलक्ष्मीजीका श्रीविग्रह बहुत प्राचीन है। अति जीर्णतासे बचानेके लिये सन् १९५४ ई० में कल्पोक्त विधानका अनुसरण करते हुए श्रीविग्रहपर वज्रलेप किया गया। यहाँ भोजनपात्र-नामक भगवान् दत्तका भी मन्दिर है।

७७. शोलापुर—यहाँ नगरमें रणछोड़रायजी, लक्ष्मी-नारायणजी, सत्यनारायणजी आदिके मन्दिर दर्शनीय हैं।

७८. गणगापुर—शोलापुरसे दक्षिण-पूर्व दिशामें लगभग ५० मीलकी दूरीपर यह स्थान है, जहाँ भगवान् विष्णुके अवतार श्रीदत्तात्रेयजीका दर्शनीय मन्दिर है।

७९. बदामी—शोलापुरसे बदामी १४१ मील है। बदामीकी बस्ती दो पहाड़ियोंके बीचमें है। दक्षिणकी पहाड़ीमें चार गुफा-मन्दिर हैं, जिनमें तीन गुफाएँ सनातनधर्मकी और एक जैनोंकी है। इनमें पहली गुफामें १८ भुजावाली शिवमूर्ति, गणेशमूर्ति तथा गणोंकी मूर्तियाँ हैं। उसमें आगे भगवान् विष्णु, लक्ष्मीजी तथा शिव-पार्वतीकी मूर्तियाँ हैं। दूसरी गुफामें भगवान् वामन, वराह, गरुडारूढ नारायण, शेषशायी नारा-यणकी तथा कुछ अन्य मूर्तियाँ हैं। तीसरी गुफा ही सबसे उत्तम एवं विस्तृत है। इसमें अर्धनारीश्वर, शिव-पार्वती, नृसिंह, नारायण, वराह आदिकी मूर्तियाँ हैं।

८०. आमेर—जयपुरसे पाँच मील दूर इस कस्बेमें श्रीजगत्-शिरोमणिजीका मन्दिर, नरसिंहजीका मन्दिर और विष्णुजीका मन्दिर अपनी प्राचीनता और कलात्मकताके कारण दर्शनीय हैं।

८१. श्रीकेशवराय—यह नगर कोटा डिविजनमें है। चर्मण्वती नदीमें विष्णुतीर्थ है। वहाँ नदीसे ५९ सीढ़ी ऊपर मन्दिरका द्वार है और २० सीढ़ी और ऊपर मन्दिर है। भगवान् श्रीकेशवरायकी चतुर्भुज मूर्ति मुख्य पीठपर स्थित है। यहीं एक छोटे मन्दिरमें श्रीचारभुजाजीकी श्रीमूर्ति है। भगवान् केशवके सम्मुख चौकमें गरुड़-स्तम्भ है।

८२. बदराना—राजस्थानमें झालावाड़से कुछ मील दूर बदराना गाँव है। यहाँ दो नदियोंके संगमपर श्रीहरि-हरेश्वर-जीका मन्दिर है। इस मन्दिरकी श्रीमूर्तिका आधा भाग शिवस्वरूप तथा आधा विष्णुस्वरूप है। दाहिनी ओर दो

भुजाएँ हैं, जिनमेंसे ऊपरके हाथमें भस्मका गोला और नीचेके हाथमें त्रिशूल है । इस भागमें कटिमें एक सर्प लिपटा है और मस्तकपर जटामें गङ्गाजी हैं, ललाटमें चन्द्रमा हैं । वाम भागमें ऊपरके हाथमें चक्र तथा नीचेके हाथमें शङ्ख है । मन्दिरमें ही नन्दीश्वर तथा गरुड़की मूर्तियाँ हैं ।

८३. **पुष्कर**—पुष्करका मुख्य मन्दिर ब्रह्माजीका मन्दिर है । यहाँका दूसरा मुख्य मन्दिर श्रीबदरीनारायणजीका है । यहाँका प्राचीन वराह-मन्दिर मुसल्मान बादशाहीके समय नष्ट कर दिया गया था । अब जो वराह-मन्दिर है, वह उसके बादका बना है । इन मन्दिरोंके अतिरिक्त श्रीरमावैकुण्ठ-मन्दिर उत्तम है । इसे श्रीरङ्गजीका मन्दिर कहा जाता है ।

८४. **ओसियाँ**—जोधपुरसे ३९ मील दूर इस स्थानपर प्राचीन मन्दिरोंके भग्नावशेष हैं, जिनमें शिव, विष्णु, ब्रह्मा, सूर्य, हरिहरके विग्रह दर्शनीय हैं । इन मन्दिरोंमें श्रीकृष्ण-लीलाकी बड़ी सुन्दर मूर्तियाँ हैं ।

८५. **खेड़**—यह स्थान जोधपुरमें लूनीसे ५० मील दूर है। किसी समय खेड़ एक विशाल नगर और महान् तीर्थ था । यहाँके खँडहर और भग्न मूर्तियाँ इस बातकी साक्षी हैं । वर्तमान समयमें यहाँ श्रीरणछोड़रायजीका विशाल मन्दिर है और उसके आस-पास तीन छोटे जीर्ण मन्दिर हैं ।

श्रीरणछोड़रायजीके मन्दिरमें श्रीकृष्णकी चतुर्भुज संगमरमरकी मनोहर मूर्ति है । मन्दिरके गर्भगृहके परिक्रमा-मार्गमें आठों दिक्पाल, वराह, नृसिंह, गणेश, दत्तात्रेय, सूर्य एवं चन्द्रकी मूर्तियाँ हैं । गवाक्षोंके स्तम्भोंपर अष्ट सिद्धियोंकी कलापूर्ण मूर्तियाँ थीं, जिनमेंसे तीन अब टूट चुकी हैं । रणछोड़जीके सभामण्डपसे बाहर ब्रह्माजीका तथा शंकरजीका मन्दिर है । सामने दीवारसे लगी भगवान् विष्णुकी शेषशायी मूर्ति है ।

८६. **नाथद्वारा**—यह स्थान उदयपुरसे लगभग ३० मील दूर है । यहाँका मुख्य मन्दिर श्रीनाथजीका है । भारतके प्रमुख वैष्णवपीठोंमें इसकी गणना है । यह मूर्ति गोवर्धनपर व्रजमें थी । मुसल्मानी शासनकालमें आक्रमणकी आशङ्का होनेपर व्रजसे यह मूर्ति मेवाड़ ले आयी गयी ।

८७. **काँकरोली**—नाथद्वारासे काँकरोली ११ मील है । वल्लभ-सम्प्रदायके सात उपपीठोंमेंसे काँकरोली एक प्रमुख पीठ है । कहा जाता है कि सृष्टिके आदिकालमें ब्रह्माजीके तप करनेपर भगवान् श्रीहरिने प्रसन्न होकर उन्हें जिस स्वरूपके दर्शन दिये थे, वह श्रीद्वारकाधीशके रूपमें विद्यमान है और यह भी कहा जाता है कि महाराज अम्बरीष इसी मूर्तिकी आराधना करते थे ।

८८. **चारभुजाजी**—काँकरोलीसे छः मील दूर इस गाँवमें चारभुजाजीका मन्दिर है, जिसमें भगवान् श्रीकृष्णकी चतुर्भुज प्रतिमा है ।

८९. **खाखड़**—उदयपुरसे ३५ मील दूर इस ग्राममें श्रीलक्ष्मीनारायणजीका लगभग ४०० वर्ष पुराना मन्दिर है, जिसके जीर्णोद्धारकी आवश्यकता है । यहाँके ठाकुरजी संत श्रीकिरपारामजीके सेव्य थे ।

९०. **उदयपुर**—उदयपुर राजस्थानका प्रसिद्ध एवं ऐतिहासिक नगर है तथा मेवाड़के राणाओंकी राजधानी रह चुका है । उदयपुरके राजप्रासादके रनिवासकी ड्योढ़ीमें श्रीपीताम्बर-रायजीके मन्दिरमें मीराबाईके उपास्य श्रीगिरधरलालजीकी मूर्ति विराजित है । झीलोंकी एवं सुन्दर प्राकृतिक दृश्योंकी इस नगरीमें भगवान् श्रीजगन्नाथ पर्वतकी गोदमें दर्शनीय हैं । औरंगजेबके आक्रमणसे इसका कुछ अंश क्षतिग्रस्त हो गया है । मन्दिरके सामने गरुड़जीकी धातु-प्रतिमा है ।

९१. **मध्यमिका नगरी**—चित्तौड़से आठ मील उत्तर इस स्थानको आजकल केवल 'नगरी' कहते हैं, पर मौर्यकालमें यहाँ भगवान् विष्णुकी पूजा-शिला, वेदिका तथा नारायण-वाटिका नामक उद्यानका निर्माण किया गया था । पूजा-शिलासे तात्पर्य उस शिलापट्टसे है, जो भगवान् विष्णुका प्रतीक था और जिसकी पूजा मूर्तिके स्थानपर की जाती थी ।

दक्षिण भारतके तीर्थ-मन्दिर

९२. **ऋष्यमूक पर्वत**—हास्पेटके पास ऋष्यमूक पर्वत-पर चक्रतीर्थसे आगे जानेपर गन्धमादनके नीचे एक मण्डप दिखायी देता है । उसकी एक भित्तिमें भगवान् विष्णुकी मूर्ति खुदी है । कुछ ऊपर एक गुफामें श्रीरङ्गजी (भगवान् विष्णु) की शेषशायी मूर्ति है ।

९३. **सोंडा**—यहाँ श्रीवादिराजस्वामीका विशाल मठ है । कहा जाता है, श्रीवादिराजस्वामीको यहाँ भगवान् हयग्रीवके दर्शन हुए थे । अतः मठमें भगवान् हयग्रीवका मन्दिर है ।

९४. गोकर्ण—समुद्रतटपर छोटी पहाड़ियोंके बीचमें गोकर्ण एक छोटा नगर है । गोकर्णमें भगवान् शंकरका आत्म-तत्त्व-लिङ्ग है। गोकर्ण ग्रामके मध्यमें श्रीवेङ्कटरमण नामक भगवान् विष्णुका मन्दिर है । ये भगवान् नारायण चक्रपाणि होकर इस पुरीके भक्तोंके रक्षार्थ स्थित हैं, यह माना जाता है ।

९५. हरिहर—तुङ्गभद्रा नदीके किनारे हरिहर एक अच्छा नगर है । यहाँके हरिहर-मन्दिरके पीछे ही तुङ्गभद्रा नदी है । यहाँ माघ-पूर्णिमाको रथोत्सव होता है । हरिहर-मन्दिर प्राचीन है । मन्दिरके आस-पास कई शिलालेख हैं । मन्दिरमें हरिहरात्मक भगवत्-मूर्ति है । मूर्तिका दाहिना भाग शिवरूप है । इस ओरके मस्तकके भागमें रुद्राक्षका मुकुट तथा ऊपरके हाथमें त्रिशूल है । बायाँ भाग विष्णु-स्वरूप है । उधर ऊपरके हाथमें चक्र है, नीचेके दोनों ओरके हाथोंमें अभयमुद्रा है ।

९६. बेलूर—मैसूर-राज्यके तीर्थोंमें बेलूरका विशिष्ट स्थान है । चेन्नकेशवका मन्दिर ही यहाँका मुख्य मन्दिर है । विष्णु-वर्द्धन हायसलने इस मन्दिरकी प्रतिष्ठा की थी । मन्दिर नक्षत्रकी आकृतिका है । प्रवेशद्वार पूर्वाभिमुख है । मुख्य द्वारसे प्रवेश करनेपर एक चतुष्कोण मण्डप आता है । यह मण्डप खुला है । भगवान्की मूर्ति लगभग ७ फुट ऊँची, चतुर्भुज है । उनके साथ उनके दाहिने भूदेवी और बायें लक्ष्मीदेवी—श्रीदेवी हैं । क्रमशः शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म उनके हाथोंमें हैं । इस मन्दिरके अतिरिक्त कप्पे चेन्निगरायका मन्दिर भी है, जो इस मन्दिरके दक्षिणमें स्थित है । इसका निर्माण विष्णु-वर्द्धनकी महारानीने कराया था । इसमें पाँच मूर्तियाँ हैं । श्रीगणेश-श्रीसरस्वती, श्रीलक्ष्मीनारायण, लक्ष्मी-श्रीधर और दुर्गा—महिषासुरमर्दिनी । इनके अतिरिक्त एक मूर्ति श्रीवेणु-गोपालकी है ।

९७. उदीपी—यह मंगलौरसे ३७ मील है । द्वैतमतके प्रतिष्ठापक श्रीमध्वाचार्यके यहाँ आठ मठ हैं । उदीपीके श्रीअनन्तेश्वर-मन्दिरकी गद्दीको ही श्रीमध्वाचार्यजी महाराज सुशोभित करते थे । श्रीकृष्णमठ अनन्तेश्वर-मन्दिरके उत्तर-पूर्वमें स्थित है । मन्दिरकी छतपर चाँदीका पत्र चढ़ा है तथा सोनेकी फूल-पत्तियाँ बनी हैं । दीवारोंपर भगवान् विष्णुके अवतारोंके चित्र अङ्कित हैं । मुख्य मूर्तियोंमें श्रीगरुड़का मन्दिर है । मुख्यमन्दिरमें श्रीकृष्णकी शालग्राम-शिलाकी अत्यन्त सुन्दर मूर्ति है ।

९८. गुरुवायूर—गुरुवायूर केरल प्रदेशमें त्रिचूरसे २० मील दूर पड़ता है । यहाँ भगवान् श्रीगुरुवायू-रप्पाका मन्दिर है । 'नारायणीयम्' नामक महान् भक्तिकाव्यके रचयिता श्रीमेलपत्तूर नारायण भट्टतिरिने इसी मन्दिरके शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधारी चतुर्भुज भगवान् महाविष्णु श्रीगुरुवायूरप्पन्के प्रति अपने अन्तरकी समस्त भक्ति-भावना समर्पित की थी ।

भगवान् श्रीकृष्णने अपने परम मित्र उद्धवको एक बार देवगुरु श्रीबृहस्पतिके पास एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण संदेश देकर भेजा था । संदेश यह था कि समुद्र द्वारकाको डुबा दे, इससे पूर्व ही वह मूर्ति, जिसकी श्रीकृष्णके पिता वसुदेव और माता देवकी पूजा किया करते थे, किसी सुरक्षित और पवित्र स्थानमें प्रतिष्ठित हो जाय । भगवान्ने उद्धवको समझाया कि वह मूर्ति कोई साधारण प्रतिमा नहीं है, कलियुगके आनेपर वह उनके भक्तोंके लिये अत्यन्त कल्याणदायक और वरदानरूप सिद्ध होगी । संवाद पाकर देवगुरु बृहस्पति द्वारका गये, किंतु उस समयतक द्वारका समुद्रमें लीन हो चुकी थी । उन्होंने अपने शिष्य वायुकी सहायतासे उस मूर्तिको समुद्रमेंसे निकाला । तत्पश्चात् वे मूर्तिकी प्रतिष्ठाके लिये उपयुक्त स्थान खोजते हुए इधर-उधर घूमने लगे । वर्तमानमें जहाँ यह मूर्ति प्रतिष्ठित है, वहाँ उस समय सुन्दर कमलपुष्पोंसे युक्त एक झील थी, जिसके तटपर परमेश्वर भगवान् शिव और माता पार्वती पवित्र जलक्रीड़ा करते हुए इस अत्यन्त पवित्र मूर्तिकी प्रतीक्षा कर रहे थे । बृहस्पतिजी वहाँ पहुँचे और भगवान् शिवकी आज्ञासे उन्होंने और वायुदेवने इस मूर्तिकी उचित स्थानमें प्रतिष्ठा की। तभीसे इस स्थानका नाम (गुरु+वायु + पुरम्) गुरुवायूर हो गया ।

सर्वप्रथम भगवान् विष्णुने अपनी साक्षात् मूर्ति ब्रह्माको उस समय प्रदान की, जब वे सृष्टि-कार्यमें संलग्न हुए । जब ब्रह्मा सृष्टि-निर्माण कर चुके, उस समय स्वायम्भुव मन्वन्तरमें प्रजापति सुतपा और उनकी पत्नी पृश्निने उत्तम पुत्रकी प्राप्तिके लिये ब्रह्माजीकी आराधना की । ब्रह्माने उन्हें यह मूर्ति प्रदान की तथा उन्हें उपासना करनेका आदेश दिया । बहुत कालकी आराधनाके पश्चात् भगवान् प्रकट हुए तथा उन्हें

स्वयं पुत्ररूपमें उनके गर्भसे जन्म लेनेका वचन देकर अन्तर्धान हो गये। तत्पश्चात् भगवान् पृश्निगर्भके रूपमें अवतरित हुए। दूसरे जन्ममें सुतपा कश्यप बने और पृश्नि अदिति। उस समय भगवान्ने वामनरूपमें अवतार लिया। तीसरे जन्ममें सुतपा वसुदेव बने और पृश्नि देवकी बनी, तब भी भगवान्ने श्रीकृष्णरूपमें इनकी कोखसे जन्म लिया। यह मूर्ति वसुदेवको धौम्य ऋषिने दी थी तथा उन्होंने इसे द्वारकामें प्रतिष्ठित कराके इसकी पूजा की थी।

सर्पयज्ञके पश्चात् जनमेजयको गलितकुष्ठ हो गया, तब उन्होंने इन्हीं भगवान्की आराधना की तथा भगवान्की कृपासे रोगके साथ-ही-साथ भव-रोगसे भी मुक्ति पायी।

श्रीआदिशंकराचार्य इस मन्दिरमें कुछ काल रुके थे। उन्होंने यहाँकी पूजा-पद्धतिमें कुछ संशोधन किये थे। अबतक पूजा उस संशोधित विधिसे ही होती है। श्रीलीलाशुक (बिल्व-मङ्गल) ने अपने आराधना-कालका बहुत-सा समय यहाँ व्यतीत किया था। कहते हैं, उनके साथ भगवान् बालरूप धारण करके क्रीडा करते थे। और भी अनेक सुप्रसिद्ध संतों एवं भक्तोंका सम्बन्ध यहाँसे रहा है।

९९. धर्मपुरी—तेलंगाना क्षेत्रका यह बहुत पुराना ग्राम है। आवागमनके साधन सरल नहीं होनेसे इस स्थानपर पहुँचनेमें कुछ कठिनाई होती है। यहाँपर नरसिंह स्वामीका बड़ा मनोहर मन्दिर है।

१००. सोमनाथपुर—मडवल्लीसे सोमनाथपुर १२ मील दक्षिण-पश्चिम है। एक ही स्थानपर सोमनाथपुरमें तीन बड़े मन्दिर हैं। मध्यमें प्रसन्नचेन्नकेशव-मन्दिर है। उसके दक्षिण गोपालमन्दिर और उत्तर जनार्दन-मन्दिर है। मन्दिरके बाहरी भागमें महाभारत, रामायण तथा भागवतकी बहुत-सी घटनाओंकी सैकड़ों भव्य मूर्तियाँ अङ्कित की गयी हैं।

१०१. मद्दूर—बंगलोरसे ४६ मील दूर मद्दूर स्टेशन है। मद्दूरमें श्रीवरदराज (भगवान् विष्णु) तथा योगनृसिंहके प्राचीन मन्दिर हैं। इनमें योगनृसिंह-मन्दिर बड़ा है।

१०२. शिवसमुद्रम्—मद्दूरसे १७ मील दूर मडवल्ली है। मडवल्लीसे शिवसमुद्रम् १२ मील है। शिवसमुद्रम् कावेरीकी दो धाराओंके मध्य एक मध्यरङ्गम् नामक द्वीप है। शिवसमुद्रम्में श्रीरङ्ग-मन्दिर है। उसमें श्रीरङ्गजी (भगवान् नारायण) की शेषशायी मूर्ति विराजमान है। भगवान् शेषशय्यापर पूर्वाभिमुख शयन कर रहे हैं। शिवसमुद्रम्-द्वीपसे लगभग तीन मील दक्षिण विडिगिरिरङ्ग नामक पर्वतपर चम्पकारण्य-क्षेत्रमें श्रीनिवासमन्दिर है। इस मन्दिरमें भगवान् विष्णुकी खड़ी चतुर्भुज मूर्ति है। यहाँ भार्गवी नदी है, जो पवित्र मानी जाती है। कहते हैं, भगवान् परशुरामने यहाँ तपस्या की थी।

१०३. श्रीरङ्गपट्टन—मैसूरसे ९ मीलपर श्रीरङ्गपट्टन स्टेशन है। तीन स्थानोंपर कावेरीमें दो धाराएँ हुई हैं और वे आगे परस्पर मिल गयी हैं। इस प्रकार कावेरीके पूरे प्रवाहमें तीन द्वीप बने हैं। ये तीनों ही द्वीप अत्यन्त पवित्र माने जाते हैं। इनमेंसे प्रथम द्वीपको आदिरङ्गम्, द्वितीयको मध्यरङ्गम् तथा तृतीयको अन्तरङ्गम् या श्रीरङ्गम् कहा जाता है। इनमें श्रीरङ्गम् बहुत प्रख्यात है। श्रीरङ्गपट्टन ही आदिरङ्गम् है। मध्यरङ्गम्का उल्लेख ऊपर हो चुका है। श्रीरङ्गम्का वर्णन आगे किया जायगा। इन तीनों ही रङ्ग-द्वीपोंमें श्रीरङ्गजीके मन्दिर हैं और उनमें भगवान् नारायणकी शेषशायी मूर्ति है। तीनों ही स्थानोंपर तीन-चार मीलपर श्रीनिवास-मन्दिर है। कावेरीकी दो धाराओंके मध्य यह द्वीप तीन मील लंबा और एक मील चौड़ा है; क्योंकि रेलवे-स्टेशन चौड़ाईके बीचमें है, अतः स्टेशनके दोनों ही ओर कावेरीकी धारा समीप ही मिलती है। स्टेशनके समीप ही श्रीरङ्ग-मन्दिर है। कावेरीमें स्नान करके यात्री श्रीरङ्गजीके दर्शन करते हैं। शेषशय्यापर श्रीनारायण शयन कर रहे हैं। यह मूर्ति वैसी ही है, जैसी श्रीरङ्गम्में है, किंतु विस्तारमें उससे छोटी है। कहते हैं, यहाँ महर्षि गौतमने तपस्या की थी तथा उन्होंने ही श्रीरङ्ग-मूर्तिकी स्थापना की थी। श्रीरङ्ग-मन्दिरके सामने ही श्रीलक्ष्मीनृसिंह-मन्दिर है। इस मन्दिरका पृष्ठ-भाग श्रीरङ्ग-मन्दिरके सम्मुख पड़ता है। इस मन्दिरमें भगवान् नृसिंहकी मूर्ति है।

१०४. मेलूकोटे (यादवगिरि)—इसका प्राचीन नाम यादवाद्रि या यादवगिरि है। दक्षिणके चार प्रधान वैष्णव क्षेत्र हैं—१—श्रीरङ्गम्, २—तिरुपति, ३—काञ्चीपुरम्, ४—मेलूकोटे। श्रीरामानुजाचार्यने ही इस क्षेत्रका पुनरुद्धार किया और वे यहाँ १६ वर्ष रहे। मेलूकोटेमें सम्पत्कुमार स्वामीका विशाल मन्दिर है। वस्तुतः सम्पत्कुमार यहाँकी उत्सव-मूर्तिका नाम है। मुख्य मूर्ति भगवान् तिरुनारायणकी है। मेलूकोटेके पास पर्वतपर योग-नृसिंहका मन्दिर है।

१०५. अहोबिल—यह श्रीरामानुज-सम्प्रदायके आचार्य-पीठोंमेंसे एक है। यहाँके आचार्य शठकोपाचार्य कहे जाते हैं। कहा जाता है कि यहीं हिरण्यकशिपुकी राजधानी थी। यहीं भगवान् नृसिंहने प्रकट होकर प्रह्लादकी रक्षा की थी। यहीं आस-पास प्रह्लादचरितके स्मारक कई स्थानोंमें बने हैं। यह क्षेत्र नव-नृसिंह क्षेत्र कहा जाता है। यहाँ नृसिंहभगवान्‌के नौ विग्रह हैं—१–ज्वालानृसिंह, २–अहोबिलनृसिंह, ३–मालोल (लक्ष्मी) नृसिंह, ४–क्रोडाकारनृसिंह, ५–कारञ्जनृसिंह, ६–भार्गवनृसिंह, ७–योगानन्दनृसिंह, ८–छत्रवटनृसिंह, ९–पावननृसिंह।

१०६. सिंहाचलम्—यह वाल्टेयरसे ५ मील दूर है। भगवान् श्रीवाराह लक्ष्मी-नृसिंहस्वामीका मन्दिर होनेके कारण सिंहाचलम् एक अत्यन्त प्रसिद्ध तीर्थ है। कहते हैं, पुराने समयमें हिरण्यकशिपुने अपने पुत्र प्रह्लादको समुद्रमें गिराकर उसके ऊपर इस पर्वतको आरोपित कर दिया था, किंतु भगवान् विष्णुने स्वयं प्रकट होकर इस पर्वतको धारण किये रखा और प्रह्लादको बचा लिया। तब प्रह्लादने स्वयं इस मूर्तिकी उपासना की थी।

१०७. श्रीकूर्मम्—श्रीकाकुलम् बाजारसे श्रीकूर्मम् ९ मील है। इस स्थानको लोग कूर्माचल भी कहते हैं। यहाँका मन्दिर बहुत प्राचीन है। इसमें श्रीकूर्मभगवान्‌की मूर्ति है। यह मूर्ति कूर्माकार शिला है, जिसमें आकृति अस्पष्ट है। पासमें श्रीगोविन्दराज (भगवान् विष्णु)का श्रीविग्रह है। भगवान्‌के समीप श्रीदेवी और भूदेवी दोनों ओर विराजमान हैं।

१०८. अन्नावरम्—वाल्टेयरसे ७० मील दूर अन्नावरम् स्टेशन है। स्टेशनसे २ मीलपर पम्पा नदीके किनारे अन्नावरम् एक छोटा-सा कस्बा है। यहाँ मुख्यतीर्थ पम्पा-नदी है। उसमें लोग स्नान-तर्पण-श्राद्धादि करते हैं। एक पहाड़ीपर श्रीसत्यनारायण-भगवान्‌का मन्दिर है। सत्यनारायण-भगवान्‌का श्रीविग्रह मनोहर है।

१०९. पना-नृसिंह—वेजवाड़ासे ७ मीलपर मङ्गलगिरि स्टेशन है। स्टेशनसे लगभग आधा मील दूर नगरमें लक्ष्मी-नृसिंहका मन्दिर है। लक्ष्मीनृसिंह-मन्दिरके पाससे ही पर्वतपर जानेको सीढ़ियाँ प्रारम्भ हो जाती हैं। ४४८ सीढ़ियाँ चढ़नेपर ऊपर पना-नृसिंह-मन्दिर मिलता है। पना (पानक) का अर्थ है—शर्बत। पना-नृसिंहका अर्थ होता है—शर्बत पीनेवाले नृसिंहभगवान्।

मन्दिरमें एक भित्तिमें भगवान् नृसिंहका धातुमुख बना है। कहते हैं, उनके मुखके भीतर शालग्राम-शिला है। पुजारी शङ्खसे नृसिंहभगवान्‌को शर्बत पिलाता है। आधा शर्बत वह पिला देता है और आधा प्रसाद रूपमें छोड़ देता है। प्रसाद छोड़नेके लिये वह इस ढंगसे मूर्तिके मुखमें शर्बत डालता है कि शर्बत भीतरके शालग्रामसे लगकर बाहर आने लगता है। पुजारी कहता है—'भगवान् आधा ही पीते हैं।' पूरे मन्दिरमें चारों ओर भूमिमें शर्बतका चीकट फैला रहता है; किंतु वहाँ मक्खी या चींटी कहीं दीखती नहीं, यह चमत्कार ही है। कहते हैं, भगवान् विष्णु हिरण्यकशिपु दैत्यको मारकर यहाँ स्थित हुए थे।

११०. पोन्नेरी—मद्राससे २२ मील दूर इस स्थानपर एक भगवान् विष्णुका और एक शंकरजीका मन्दिर है। दोनों ही मन्दिर विशाल हैं। वैशाखमें विष्णु-मन्दिरका महोत्सव दस दिनतक चलता रहता है। श्रावण, माघ तथा महाशिवरात्रिपर शिव-मन्दिरके महोत्सव होते हैं।

१११. मद्रास—भारतकी इस प्रमुख नगरीमें बालाजीके मन्दिरके अंदर श्रीलक्ष्मीनारायण, श्रीलक्ष्मीजी, श्रीनृसिंहजी और श्रीदेवी-भूदेवीसहित भगवान् वेङ्कटेश्वरके श्रीविग्रह दर्शनीय हैं। प्रसिद्ध पार्थसारथि-मन्दिरमें भगवान् नृसिंहका दर्शन चित्ताकर्षक है।

११२. तिरुपति-बालाजी—भगवान् वेङ्कटेश्वरको ही 'बालाजी' कहते हैं। जगमोहनसे मन्दिरके भीतर ४ द्वार पार करनेपर पाँचवेंके भीतर श्रीबालाजी (वेङ्कटेश्वरस्वामी) की पूर्वाभिमुख मूर्ति है। भगवान्‌की श्रीमूर्ति श्यामवर्णकी है। वे शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म लिये खड़े हैं। यह मूर्ति लगभग सात फुट ऊँची है। भगवान्‌के दोनों ओर श्रीदेवी तथा भूदेवीकी मूर्तियाँ हैं। भगवान्‌को भीमसेनी कपूरका तिलक लगता है। भगवान्‌के तिलकसे उतरा यह चन्दन यहाँ प्रसादरूपमें बिकता है। यात्री उसे (मन्दिरसे) अञ्जनके काममें लेनेके लिये ले जाते हैं।

श्रीबालाजीकी मूर्तिमें एक स्थानपर चोटका चिह्न है। उस स्थानपर दवा लगायी जाती है। कहते हैं, एक भक्त प्रतिदिन नीचेसे भगवान्‌के लिये दूध ले आता था।

वृद्ध होनेपर जब उसे आनेमें कष्ट होने लगा, तब भगवान् स्वयं जाकर चुपचाप उसकी गायका दूध पी आते थे। गायको दूध न देते देख उस भक्तने एक दिन छिपकर देखनेका निश्चय किया और जब सामान्य मानव-वेषमें आकर भगवान् दूध पीने लगे, तब उन्हें चोर समझ भक्तने डंडा मारा। उसी समय भगवान्ने प्रकट होकर उसे दर्शन दिया और आश्वासन दिया। वही डंडा लगनेका चिह्न मूर्तिमें है।

यहाँ मुख्य दर्शनके समय मध्याह्नमें प्रत्येक दर्शनार्थी-को भगवान्का भात-प्रसाद निश्शुल्क मिलता है। इस प्रसादमें स्पर्श आदिका दोष नहीं माना जाता। यहाँ मन्दिरमें मध्याह्नके दर्शनके पश्चात् प्रसाद बिकता भी है।

११३. विष्णुकाञ्ची, वरदराजस्वामी—यों तो यहाँ १८ विष्णु-मन्दिर बताये जाते हैं, किंतु मुख्य मन्दिर श्रीदेवराजस्वामीका है, जिन्हें प्रायः 'वरदराजस्वामी' कहा जाता है। भगवान् नारायण ही देवराज या वरदराजके नामसे यहाँ सम्बोधित होते हैं। श्रीवरदराज-मन्दिर विशाल है। भगवान्का निजमन्दिर तीन घेरोंके भीतर है। इस मन्दिरके पूर्वका गोपुर ग्यारह मंजिल ऊँचा है। वैशाख पूर्णिमाको इस मन्दिरका 'ब्रह्मोत्सव' होता है। यह दक्षिण-भारतका सबसे बड़ा उत्सव है।

सरोवरमें स्नान करके यात्री मन्दिरमें दर्शन करने जाते हैं। पश्चिम-गोपुरके भीतर सामने ही स्वर्णमण्डित गरुड़-स्तम्भ है। उसके दक्षिण एक मन्दिरमें श्रीरामानुजा-चार्यका श्रीविग्रह है। यह स्मरण रखनेकी बात है कि श्रीरामानुजाचार्यके आठ प्रधान पीठोंमें एक पीठ यहाँ विष्णु-काञ्चीमें है। यहाँके आचार्य 'प्रतिवादि-भयंकर' कहे जाते हैं।

गरुड़-स्तम्भके पूर्व दूसरे घेरेका गोपुर है। इस घेरेके भीतर दक्षिण-पश्चिम भागमें श्रीलक्ष्मीजीका मन्दिर है। श्रीलक्ष्मीजी-की झाँकी बहुत मनोरम है। यहाँ लक्ष्मीजीको 'श्रीपेरुन्देवी' कहते हैं। भगवान्के निजमन्दिरको 'विमान' कहते हैं। तीन द्वारोंके भीतर चार हाथ ऊँची श्रीवरदराज (भगवान् नारायण)की श्यामवर्ण चतुर्भुज मूर्ति विराजमान है। भगवान्के गलेमें शालग्रामोंकी एक माला है। वहाँ भगवान्की मनोहर उत्सव-मूर्तियाँ भी हैं।

विष्णुकाञ्चीमें श्रीवरदराज-मन्दिरके समीप धर्मशाला है।

११४. मन्नारगुडी—मन्नारगुडी तंजौरसे २९ मील है। इस क्षेत्रको चम्पाकारण्य तथा दक्षिणद्वारका कहा जाता है। यहाँका मुख्य मन्दिर श्रीराजगोपालस्वामी (भगवान् वासुदेव)का है। मन्नारगुडीके पास 'पाम्बणि' नामकी एक नदी बहती है। यह पवित्र मानी जाती है। यहाँपर कई धर्मशालाएँ हैं। श्रीराजगोपाल-मन्दिरमें सात प्राकार हैं, जिसमें १६ गोपुर हैं। मन्दिरमें भगवान् वासुदेवकी शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधारिणी चतुर्भुज मूर्ति है। भगवान्के अगल-बगल श्रीदेवी तथा भूदेवी हैं। कहा जाता है, यह श्रीविग्रह ब्रह्माजीके द्वारा प्रतिष्ठित है।

११५. कुम्भकोणम्—यह स्थान मायावरम्से २० मीलपर है। यह दक्षिण भारतका एक प्रमुख तीर्थ है। प्रति बारहवें वर्ष यहाँ कुम्भका मेला लगता है। यह नगर कावेरीके तटपर है। यहाँ मन्दिर तो बहुत हैं, किंतु मुख्य मन्दिर पाँच हैं—१—कुम्भेश्वर (यह तीर्थका सर्वप्रमुख मन्दिर है), २—शार्ङ्गपाणि, ३—नागेश्वर, ४—रामस्वामी और ५—चक्रपाणि।

पहले महामघम् सरोवरमें स्नान करके फिर शार्ङ्गपाणि-मन्दिरके दर्शन करके तब कुम्भेश्वरके दर्शनार्थ जा सकते हैं या कुम्भेश्वरके दर्शन करके इस मन्दिरमें आ सकते हैं। नागेश्वर-मन्दिर पहले मिलता है; किंतु शार्ङ्गपाणि, कुम्भेश्वर, रामस्वामी—ये मन्दिर पास-पास हैं। शार्ङ्गपाणि-मन्दिरके पीछे थोड़ी ही दूरपर कुम्भेश्वर-मन्दिर है।

शार्ङ्गपाणि-मन्दिर विशाल है। भीतर स्वर्णमण्डित गरुड़-स्तम्भ है। मन्दिरके घेरेमें अनेकों छोटे मन्दिर तथा मण्डप हैं। निजमन्दिरमें भगवान् शार्ङ्गपाणिकी मनोहर चतुर्भुज मूर्ति है। यह शेषशायी भगवान् नारायणकी मूर्ति है। श्रीदेवी और भूदेवी भगवान्की चरण-सेवा कर रही हैं। परिक्रमामें श्रीलक्ष्मीजीका मन्दिर है। यहाँका मुख्य मन्दिर, जो घेरेके मध्यमें है, एक रथके आकारका है, जिसमें घोड़े और हाथी जुते हुए हैं। मन्दिरकी रथाकृति इस बातको बोधित करती है कि भगवान् शार्ङ्गपाणि इसी रथमें आसीन होकर वैकुण्ठधामसे यहाँ उतरे थे।

यहाँकी कथा यह है कि भृगुने जब भगवान्के वक्षः-स्थलपर चरण-प्रहार किया और उसके लिये भगवान्ने भृगुको कोई दण्ड तो दिया ही नहीं, उलटे उनसे क्षमा माँगी, तब लक्ष्मीजी भगवान् नारायणसे रूठ गयीं। वे

रूठकर यहाँ आयीं और हेम नामक ऋषिके यहाँ कन्या-रूपसे अवतीर्ण हुईं। भगवान् नारायण भी अपनी नित्यप्रिया लक्ष्मीजीका वियोग सह न सके। वे भी यहाँ पधारे और ऋषिकन्यासे उन्होंने विवाह कर लिया। तभीसे शार्ङ्गपाणि और लक्ष्मीजी यहाँ श्रीविग्रहरूपमें स्थित हैं। शार्ङ्गपाणि-मन्दिरके पास एक सुन्दर सरोवर है। उसे 'हेम-पुष्करिणी' कहते हैं।

११६. **श्रीरङ्गम्**—श्रीरङ्गम् दक्षिणका प्रधान वैष्णव क्षेत्र है। कावेरीकी दो धाराओंके बीच श्रीरङ्ग-मन्दिरका विस्तार २६६ बीघेका कहा जाता है। श्रीरङ्गनगरके बाजारका बड़ा भाग मन्दिरके घेरेके भीतर आ जाता है। इतना विस्तारवाला मन्दिर भारतमें दूसरा नहीं है। पाँचवें घेरेमें दक्षिणके गोपुरके सामने उत्तरकी ओर गरुड़मण्डप है। उसमें बहुत बड़ी गरुड़जीकी मूर्ति है। इससे और उत्तर एक चबूतरेपर स्वर्णमण्डित गरुड़-स्तम्भ है। इसी घेरेके ईशानकोणमें चन्द्रपुष्करिणी नामक गोलाकार सरोवर है। यात्री इसमें स्नान करते हैं। उसके पास महालक्ष्मीका विशाल मन्दिर है। कल्पवृक्ष-नामक वृक्ष, श्रीराम-मूर्ति तथा श्रीवैकुण्ठनाथभगवानका प्राचीन स्थान भी वहीं पासमें है। श्रीलक्ष्मीजीको यहाँ 'श्रीरङ्गनायकी' कहते हैं। श्रीलक्ष्मीजीके मन्दिरके सामनेके मण्डपका नाम 'कम्बमण्डप' है। तमिळके महाकवि कम्बने यहीं अपनी कम्ब-रामायण जनताको सुनायी थी।

छठे घेरेके पश्चिम भागमें एक द्वार तथा दक्षिण भागमें मण्डप हैं। इसके भीतर सातवाँ घेरा है, जिसका द्वार दक्षिणकी ओर है। इसके उत्तरी भागमें श्रीरङ्गजीका निजमन्दिर है। इसका शिखर स्वर्णमण्डित है।

श्रीरङ्गजीके निजमन्दिरमें शेषशय्यापर शयन किये श्याम-वर्ण श्रीरङ्गनाथजीकी विशाल चतुर्भुजमूर्ति दक्षिणाभिमुखी स्थित है। भगवान्‌के मस्तकपर शेषजीके पाँच फनोंका छत्र है। बहुमूल्य वस्त्राभूषणोंसे मण्डित यह मूर्ति परम भव्य है। भगवान्‌के समीप श्रीलक्ष्मीजी तथा विभीषण बैठे हैं। श्रीदेवी, भूदेवी आदिकी उत्सव-मूर्तियाँ भी वहाँ हैं।

भगवान् नारायणने अपना साक्षात् श्रीविग्रह ब्रह्माजीको प्रदान किया था। वैवस्वत मनुके पुत्र इक्ष्वाकुने कठोर तपस्या करके ब्रह्माजीको प्रसन्न किया और उनसे विमानके साथ श्रीरङ्गजीकी मूर्ति प्राप्त की। तभीसे श्रीरङ्गजी अयोध्यामें विराजमान हुए और इक्ष्वाकुवंशीय नरेशोंके कुलाराध्य हुए।

त्रेतायुगमें चोळराज धर्मवर्मा अयोध्यानरेश महाराज दशरथके अश्वमेधयज्ञमें आमन्त्रित होकर अयोध्या गये। वहाँ उन्होंने श्रीरङ्गजीका दर्शन किया। उनका चित्त इस प्रकार श्रीरङ्गजीमें लग गया कि वे अपने यहाँ लौटकर श्रीरङ्गजीको प्राप्त करनेके लिये कठोर तप करने लगे; किंतु उन्हें सर्वज्ञ ऋषि-मुनियोंने यह कहकर तपस्यासे निवृत्त किया कि 'श्रीरङ्गजी स्वयं यहाँ पधारनेवाले हैं।'

लङ्का-विजयके पश्चात् मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजीका अयोध्यामें राज्याभिषेक हुआ। राज्याभिषेकके उपलक्षमें प्रभु सबको मुँहमाँगी वस्तुएँ प्रदान कर रहे थे। जब सुग्रीवादिको उपहार देकर प्रभु बिदा करने लगे, तब विभीषणने बिदा होते समय रघुनाथजीसे इक्ष्वाकुवंशके आराध्य श्रीरङ्ग-विग्रहकी याचना की। उदार-चक्र-चूड़ामणि श्रीरघुनाथजीने विभीषणको श्रीरङ्ग-मूर्ति विमान (निजमन्दिर) के साथ दे दी।

विभीषण उस दिव्य विग्रहको लेकर चले, तब देवताओंको ऐसा लगा कि यह दिव्य मूर्ति लङ्का नहीं जानी चाहिये। लङ्का जानेके मार्गमें यहाँ कावेरीके द्वीपमें विभीषणने पूरे विमानको चन्द्रपुष्करिणीके तटपर रखा और स्वयं नित्यकर्ममें लग गये। नित्यकर्मसे निवृत्त होकर विभीषणने विमान उठानेका बहुत प्रयत्न किया, किंतु वे सफल नहीं हो सके। उस समय श्रीरङ्गजीने विभीषणसे कहा—'विभीषण! तुम खिन्न मत हो। यह कावेरीका मध्यद्वीप परम पवित्र है। राजा धर्मवर्माने मुझे पानेके लिये कठोर तपस्या की है और ऋषिगण उसे आश्वासन दे चुके हैं। इसलिये मेरी इच्छा यहीं स्थित होनेकी है। तुम यहाँ आकर मेरा दर्शन कर जाया करो। मैं लङ्काकी ओर मुख करके दक्षिणमुख होकर यहाँ स्थित रहूँगा।'

विभीषण लौट गये। वे प्रतिदिन श्रीरङ्गधाम-दर्शन करने आने लगे। एक दिन वे श्रीरङ्गजीका दर्शन करने उतावलीमें वेगपूर्वक रथसे आ रहे थे। धोखेमें उनके रथसे एक ब्राह्मण कुचला जाकर मर गया। इसपर यहाँके ब्राह्मणोंने विभीषणको पकड़ लिया

और मार डालनेका प्रयत्न किया। किंतु विभीषणको तो भगवान् श्रीराम कल्पान्ततकके लिये अमर रहनेका वरदान दे चुके थे। विभीषण जब मरे नहीं, तब ब्राह्मणोंने उन्हें एक भूगर्भ-स्थित स्थानमें बंद कर दिया।

देवर्षि नारदसे भगवान् श्रीरामको अयोध्यामें यह समाचार मिला। वे भक्तवत्सल पुष्पक विमानसे यहाँ पधारे। ब्राह्मणोंने उनका स्वागत किया और विभीषणका अपराध बताकर दण्ड देनेके लिये उन्हें प्रभुके सम्मुख उपस्थित किया। श्रीरामने कहा—'सेवकका अपराध तो स्वामीका ही अपराध माना जाता है। ये मेरे सेवक हैं। इन्हें आपलोग छोड़ दें और मुझे दण्ड दें।' ब्राह्मण द्रवित हो गये प्रभुके भक्तवात्सल्यसे। विभीषणका छुटकारा हो गया। तबसे विभीषणजी प्रतिदिन श्रीरङ्गजीका दर्शन करने अलक्षितरूपमें आने लगे।

११७. रामेश्वरम्—भारतके चार प्रधान धामोंमें यह एक शैव-तीर्थ है। शेष तीन वैष्णव-तीर्थ हैं। रामेश्वरम् है तो शैवक्षेत्र, किंतु यहाँ भी सेतुमाधव नामक मन्दिरमें भगवान् विष्णु अपनी शक्तिसहित विराजमान हैं एवं तीर्थ-यात्रियोंद्वारा दर्शनीय हैं।

११८. मदुरा—सुन्दरराज पेरुमाळका विष्णु-मन्दिर नगरके पश्चिम भागमें मदुराके प्रसिद्ध मीनाक्षी-मन्दिरसे लगभग आध मीलपर है। इसे 'कूडल अळगर' भी कहते हैं। मन्दिर-में रामायणके कथा-प्रसङ्गोंके सुन्दर रंगीन चित्र दीवारोंपर बने हैं। यहाँ भगवान्‌का नाम 'सुन्दरबाहु' होनेसे इस मन्दिरको 'सुन्दरबाहु-मन्दिर' भी कहा जाता है। भगवान् विष्णु मीनाक्षी-का सुन्दरेश्वर (भगवान् शिव) के साथ विवाह कराने यहाँ पधारे थे और तभीसे विग्रहरूपमें विराजमान हैं। मन्दिरके भीतर निजमन्दिरमें भगवान् विष्णुकी चतुर्भुज मूर्ति है। भगवान्‌के दोनों ओर श्रीदेवी तथा भूदेवी सिंहासनपर बैठी हैं। इस मन्दिरके ऊपर खूब ऊँचा स्वर्ण-कलश है। मन्दिरके शिखरके भागमें ऊपर जानेकी सीढ़ियाँ बनी हैं। ऊपर सूर्यनारायणकी मूर्ति है। इसी मन्दिरमें भगवान् नृसिंहकी भी मूर्ति है। इस मन्दिरके घेरेमें ही एक अलग लक्ष्मी-मन्दिर है। श्रीलक्ष्मीजीका पूरा मन्दिर कसौटी-के चमकीले काले पत्थरका बना है। इसमें लक्ष्मीजीकी बड़ी भव्य मूर्तियाँ हैं। श्रीलक्ष्मीजीको यहाँ 'मधुवल्ली' कहते हैं।

११९. वृषभाद्रि (तिरुमालिरुंचोलै)—मदुरासे १२ मील उत्तर यह एक प्राचीन क्षेत्र है। इसे स्थानीय लोग 'अळगर-कोइल' कहते हैं। वृषभाद्रिपर एक पुराना किला है। किलेमें श्रीसुन्दरराजका विशाल मन्दिर है। इसमें कई परिक्रमा-मार्ग हैं और उनमें मुख्य-मुख्य देव-मूर्तियाँ हैं। मुख्य मन्दिरमें भगवान् श्रीसुन्दरराज (श्रीनारायण) श्रीदेवी तथा भूदेवीके साथ विराजमान हैं।

इस वृषभाद्रि-क्षेत्रका माहात्म्य वराहपुराण, वामनपुराण, ब्रह्माण्डपुराण तथा अग्निपुराणमें मिलता है। यहाँ यमधर्मराजने वृषरूप धारण करके महाविष्णुकी आराधना की थी। यहीं उन्हें भगवद्दर्शन हुआ। इसीसे इस पर्वतको 'वृषभाद्रि' कहते हैं।

यहाँ जब यमधर्मराजके सम्मुख भगवान् विष्णु प्रकट हुए, तब उनके नूपुरोंसे एक जलस्रोत प्रकट हुआ। उसे 'नूपुरगङ्गा' कहते हैं। गङ्गाजीके समान ही नूपुर-गङ्गाका जल पापनाशक माना जाता है। नूपुर-गङ्गामें स्नान करके यहाँ श्रीसुन्दरराजका दर्शन अर्चन किया जाता है। यमधर्मराजने ही भगवान् श्रीसुन्दरराजकी प्रतिष्ठा की थी।

१२०. श्रीविल्लिपुत्तूर—श्रीविष्णुचित्तस्वामी (पेरियाळ-वार)की यह जन्मस्थली है। उन्हींकी पुत्री आंडाळ (गोदाम्बा) हुईं, जिन्हें श्रीलक्ष्मीजीका अवतार माना जाता है। यहाँ श्रीरङ्गनाथजीका मन्दिर है। इसमें दीवारोंपर देवताओं, भगवल्लीलाओं तथा महाभारतकी घटनाओंके सुन्दर रंगीन चित्र बने हैं। यहाँ मन्दिरमें श्रीराम-लक्ष्मण-जानकीके मनोहर श्रीविग्रह हैं। मुख्य स्थानपर गोदाम्बाके साथ श्रीरङ्गनाथजी (भगवान् विष्णु) की मूर्ति है। उन्हें यहाँ 'रङ्गमन्नार' (रङ्गप्रभु) कहते हैं।

इस मन्दिरसे लगा हुआ एक दूसरा विशाल मन्दिर है। दोनों मन्दिरोंके मुख्यद्वार—गोपुर पृथक्-पृथक् हैं। किंतु दोनोंके मध्यकी दीवारमें एक द्वार कुण्डके समीप है, जिससे एकमें दर्शन करके यात्री दूसरे मन्दिरमें जाते हैं। इस मन्दिरमें नीचे भगवान् नृसिंहकी मूर्ति है। मन्दिरमें ऊपर शेषशायी भगवान् विष्णुका श्रीविग्रह है, जिनकी चरण-सेवामें लक्ष्मीजी लगी हैं। ऊपर ही वटपत्रशायी भगवान्‌की भी मूर्ति है। इनके अतिरिक्त यहाँ दुर्वासाजी तथा अन्य ऋषियोंकी मूर्तियाँ एवं गरुड़जीकी भी मूर्ति है।

श्रीद्वारकाधीश-मन्दिर, श्रीद्वारकाधाम
[पृष्ठ ४९४]

श्रीविष्णु-मन्दिर, गोरखपुरका श्रीविग्रह [पृष्ठ ४८०]

श्री-भू-देवियोंसहित श्रीवैकुण्ठनाथ, कलकत्ता
[पृष्ठ ४८१]

सिद्धेश्वरके भगवान् विष्णु (लक्ष्मीदेवीसहित)
[पृष्ठ ४८३]

श्रीराधाकृष्ण-मन्दिर, लंदनके श्रीविग्रह
[पृष्ठ ४९७]
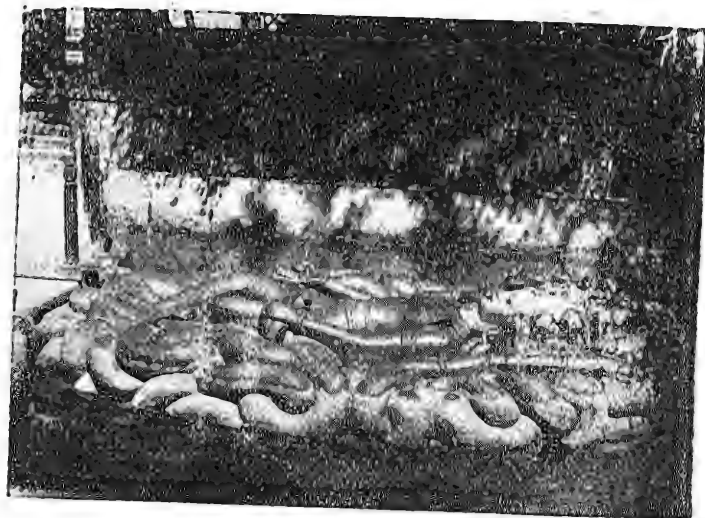
जलशायी नारायण, बूढा नीलकण्ठ, काठमांडू [पृष्ठ ४८०]

श्रीलक्ष्मीनारायण-मन्दिर, नयी दिल्ली [पृष्ठ ४७८]

१२१. तिरुनेल्वेली (तिन्नेवली)—ताम्रपर्णी नदीके किनारे तिरुनेल्वेली अच्छा नगर है। ताम्रपर्णीमें स्नान करके नगरके स्टेशनके समीपवाले भागमें देवदर्शन पहले किया जाता है। इस भागमें ताम्रपर्णी-तटके पास ही नगरमें भगवान् शंकरका मन्दिर है। नगरके मध्यमें वरदराज (भगवान् विष्णु) का मन्दिर है और बसें जहाँ खड़ी होती हैं, उसके समीप ही सुब्रह्मण्यम्-मन्दिर है।

१२२. श्रीवैकुण्ठम्—तिरुनेल्वेली (तिन्नेवली) से १८ मील दूर श्रीवैकुण्टम् है। गोपुरके भीतर जानेपर स्वर्णमण्डित स्तम्भ मिलता है। उसके आगे विशाल मण्डप है। निजमन्दिर-में शेषशायी भगवान् विष्णुका श्रीविग्रह प्रतिष्ठित है। समीप ही भगवान्की स्वर्णमण्डित चलमूर्ति है। श्रीदेवी तथा भूदेवीकी भी स्वर्ण-मूर्तियाँ हैं। परिक्रमामें श्रीलक्ष्मीजीका मन्दिर है।

१२३. आळ्वार तिरुनगरी—श्रीवैकुण्ठम्से ३ मील आगे आळ्वार तिरुनगरी है। यहाँ भगवान् विष्णुका विशाल मन्दिर है। यह क्षेत्र श्रीनम्माळ्वारका है। यहाँ वह इमलीका वृक्ष दिखाया जाता है, जिसके कोटरमें श्रीशठकोप-स्वामी दीर्घ कालतक रहे। यहाँ निजमन्दिरमें श्रीमहाविष्णुकी चतुर्भुज श्यामवर्ण भव्य खड़ी प्रतिमा है। भगवान्के समीप श्रीलक्ष्मीजी तथा आण्डाळ (गोदाम्बा) की मूर्तियाँ हैं। वहाँ भी परिक्रमामें अनेकों देव-दर्शन हैं।

१२४. तोताद्रि (नांगनेरी)—तिरुनेल्वेलीसे २० मीलपर नांगनेरी कस्बा है। यहाँ श्रीरामानुज-सम्प्रदायकी तोताद्रि-नामक मूल गद्दी है। यहाँ श्रीरामानुजाचार्यका उपदण्ड, पीठ (बैठनेका काष्ठासन) तथा शङ्ख-चक्र-मुद्राएँ अभीतक सुरक्षित हैं। बस्तीके एक ओर क्षीराब्धि पुष्करिणी है। कहा जाता है, यहाँ मन्दिरमें भगवान्का जो श्रीविग्रह है, वह उस पुष्करिणीसे स्वयं प्रकट हुआ है। यहाँ मन्दिरमें स्वर्णमण्डित ऊँचा गरुड़स्तम्भ है। मन्दिरके भीतर कई मण्डप हैं। निजमन्दिरमें शेष-फनोंके छत्रके नीचे भगवान् विष्णुकी श्रीमूर्ति विराजमान है। साथ ही श्रीदेवी-भूदेवीकी मूर्तियाँ हैं। कहा जाता है, भगवान्की यह श्रीमूर्ति अनेक विषौषधियोंके संयोगसे बनी है। भगवान्का यहाँ तैलाभिषेक होता है।

१२५. लंबे नारायण (तिरुक्कलंकुडि)—नांगनेरी (तोताद्रि) से ९ मीलपर तिरुक्कलंकुडि ग्राम है। यहाँ भगवान्का नाम तो 'परिपूर्णसुन्दर' है; किंतु मूर्ति लंबी होनेसे लोगोंने 'लंबे नारायण' नाम रख दिया। मन्दिरके भीतर भगवान् श्रीनारायण श्रीदेवी तथा भूदेवीके साथ खड़े हैं। तीनों ही विग्रह मनोहर हैं। ये मूर्तियाँ पर्याप्त ऊँची हैं, इसीसे लोग इन्हें 'लंबे नारायण' कहते हैं। इस निजमन्दिरके बगलमें एक दूसरा मन्दिर है, जिसमें भगवान्की शेषशायी मूर्ति है। एक ओर मन्दिरमें श्रीदेवी-भूदेवीके साथ भगवान् नारायण विराजमान हैं।

१२६. छोटे नारायण (पन्नगुडी)—लंबे नारायणसे ९ मीलपर पन्नगुडी ग्राम है। छोटे नारायणका मन्दिर शिव-मन्दिर है। इस शिव-मन्दिरके बाहरी घेरेमें मुख्यमन्दिरसे बाहर बगीचेमें एक छोटेसे मण्डपमें छोटे नारायणका श्रीविग्रह है। यह श्रीविग्रह छोटा होनेपर भी सुन्दर है। भगवान्के समीप श्रीदेवी और भूदेवीकी भी मूर्तियाँ हैं।

१२७. कृष्णपुरम्—यह स्थान तिरुनेल्वेलीसे ६ मील दूर है। श्रीदेवी एवं भूदेवीसहित श्रीवेङ्कटाचलपतिका भव्य श्रीविग्रह है, जिसके दर्शनार्थ यात्रियोंका ताँता लगा रहता है।

१२८. शुचीन्द्रम्—कन्याकुमारीसे शुचीन्द्रम् ८ मील है। इस स्थानको 'ज्ञानवनक्षेत्रम्' कहते हैं। गौतमके शापसे इन्द्रको यहीं मुक्ति मिली थी। यहाँ इन्द्र उस शापसे पवित्र हुए, इसलिये इस स्थानका नाम 'शुचीन्द्रम्' पड़ा। शुचीन्द्रम्-मन्दिरमें ब्रह्मा, विष्णु और महेश—इन तीनोंके अलग-अलग मन्दिर हैं। गोपुरके भीतर भगवान् शंकर तथा भगवान् विष्णुके मन्दिर समान विशाल हैं। इनमें कोई मुख्य-गौण नहीं है। विष्णु-मन्दिरमें श्रीदेवी तथा भूदेवीके साथ भगवान् विष्णुकी मनोहर चतुर्भुज-मूर्ति है। इस मन्दिरके सामने गरुड़जीकी उच्चाकृति मूर्ति है।

१२९. आदिकेशव (तिरुवट्टार)—कुछ यात्री त्रिवेन्द्रम् जाकर तब यहाँ आते हैं। त्रिवेन्द्रम्से तिरुवट्टार १२ मील पूर्व है। यहाँ ताम्रपर्णी नदीके किनारे आदिकेशवका मन्दिर है। आदिकेशव-मन्दिरमें भगवान् नारायणकी शेष-शय्यापर लेटी भव्य मूर्ति है। यह मूर्ति १६ फुट लंबी है। एक द्वारमें-से भगवान्के श्रीमुख, दूसरेमेंसे वक्षःस्थल तथा तीसरेमेंसे चरणोंके दर्शन होते हैं। शेषशय्याके नीचे एक राक्षस दबा है।

१३०. त्रिवेन्द्रम्—इस नगरका शुद्ध नाम 'तिरुअनन्त-पुरम्' है। पुराणोंमें इस स्थानका 'अनन्तवनम्' के

नामसे उल्लेख मिलता है। किलेके भीतर ही पद्मनाभ-भगवान्‌का मन्दिर है। इन्हें 'अनन्त-शयन' भी कहते हैं। दूसरे गोपुरसे भीतर जानेपर बहुत बड़ा प्राङ्गण मिलता है। इसमें चारों किनारोंपर मण्डप बने हैं और बीचमें पद्मनाभ-भगवान्‌का मन्दिर है। भगवान्‌का निजमन्दिर भी बहुत बड़ा है। यह काले कसौटीके पत्थरका बना है। निजमन्दिरमें शेषशय्यापर शयन किये भगवान् पद्मनाभकी विशाल मूर्ति है। यह मूर्ति इतनी विशाल है कि ऐसी बड़ी शेषशायी मूर्ति और कहीं नहीं है। भगवान्‌की नाभिसे निकले कमलपर ब्रह्माजी विराजमान हैं। भगवान्‌का दाहिना हाथ शिवलिङ्गके ऊपर स्थित है। इस मूर्तिके श्रीमुखका दर्शन एक द्वारसे, वक्षःस्थल तथा नाभिके दर्शन मध्यद्वारसे और चरणोंके दर्शन तीसरे द्वारसे होते हैं।

श्रीपद्मनाभ-भगवान्‌का दर्शन करके निजमन्दिरसे बाहर आकर पूरे मन्दिरकी प्रदक्षिणा की जाती है। मन्दिरके पूर्वभागमें स्वर्णमण्डित गरुड़-स्तम्भ है। उससे आगे एक बड़ा मण्डप है। पास ही एक कमरेमें अनेकों सुन्दर मूर्तियाँ हैं। मन्दिरके बाहर दक्षिण भागमें शास्ता (हरिहरपुत्र) का छोटा मन्दिर है। मन्दिरके पश्चिम-भागमें श्रीकृष्ण-मन्दिर है। मन्दिरके दक्षिणद्वारके पास एक सिद्ध मूर्ति है। यहाँ उत्सव-विग्रहके साथ श्रीदेवी, भूदेवी और नीलादेवी—भगवान्‌की इन तीन शक्तियोंकी मूर्तियाँ रहती हैं।

१३१. जनार्दन—त्रिवेन्द्रमसे ३६ मील दूर वरकला स्टेशन है। स्टेशनसे दो मीलपर जनार्दन बस्ती है। सीढ़ियोंसे ऊपर जानेपर भगवान् जनार्दनका मन्दिर मिलता है। मन्दिरका घेरा बड़ा है। घेरेके मध्यस्थित मन्दिरमें भगवान् जनार्दनकी चतुर्भुज श्यामवर्ण सुन्दर मूर्ति है। इस मन्दिरकी परिक्रमामें शास्ता, शंकरजी तथा वटवृक्षके दर्शन हैं।

१३२. धरणीधर—गुजरातके अन्तर्गत पश्चिम बनासकाँठा जिलेके ढीमा गाँवमें यह तीर्थ है। प्राचीन समयमें यह स्थान 'वराहपुरी' कहलाता था। पहले यहाँ भगवान् वराहकी विशाल मूर्ति थी। वह मूर्ति यवन-आक्रमणमें भग्न हुई। वराहमूर्तिके टूट जानेपर उस स्थानपर शालग्रामजीकी पूजा दीर्घकालतक होती रही। उस प्राचीन वराहमूर्तिकी जङ्घासे एक शिवलिङ्ग बना, जो जाङ्घेश्वर महादेवके नामसे प्रसिद्ध है। पीछे एक स्वप्नादेशके अनुसार बाँसवाड़ाकी एक पर्वतीय गुफासे धरणीधरजीकी श्रीमूर्ति लाकर यहाँ स्थापित की गयी। यह चतुर्भुज श्रीनारायणमूर्ति है।

१३३. सिद्धपुर—सरस्वती नदीके तटपर बसा हुआ यह स्थान महेसाणा (गुजरात) से २१ मील दूर है। भारतमें जैसे पितृश्राद्धके लिये गया प्रसिद्ध है, उसी प्रकार मातृश्राद्धके लिये सिद्धपुर प्रसिद्ध है। इसे 'मातृगया' क्षेत्र कहा जाता है और इसका पुराना नाम 'श्रीस्थल' है। महर्षि कर्दमका यहीं आश्रम था और यहीं भगवान् कपिलका अवतार हुआ था। यहाँके बिन्दु-सरोवरके दक्षिण किनारे छोटे मन्दिरोंमें महर्षि कर्दम, माता देवहूति, महर्षि कपिल तथा गदाधरभगवान्‌की मूर्तियाँ हैं। इनके अतिरिक्त पासमें शेषशायी भगवान् लक्ष्मीनारायण, राम-लक्ष्मण-सीता तथा सिद्धेश्वर महादेवके मन्दिर हैं

१३४. वडनगर (हाटकेश्वर)—महेसाणासे २१ मील दूर यह नगर नागर ब्राह्मणोंका मूल स्थान है और इनके कुल देवता भगवान् हाटकेश्वर महादेवका प्रधान मन्दिर यहीं है। वडनगरके इस शिव-मन्दिरके अतिरिक्त और भी कई मुख्य तीर्थ हैं। उनमेंसे नृसिंह-मन्दिर, लक्ष्मीनारायण-मन्दिर, नर-नारायण-मन्दिर, वाराही-माता-मन्दिर आदि दर्शनीय हैं।

१३५. श्रीद्वारकाधाम—भगवान् द्वारकाधीशकी यह पुरी पुराणोक्त सप्तपुरियोंमेंसे एक मानी जाती है। भगवान् श्रीकृष्णने जरासंधके आक्रमणके कारण मथुरासे यहाँ आकर चिर निवास किया।

दूरसे ही भगवान् द्वारकाधीशका त्रिलोकसुन्दर विशाल मन्दिर दृष्टिगोचर होता है। इस मन्दिरके सम्बन्धमें यह किंवदन्ती प्रचलित है, भगवान् श्रीकृष्णके प्रपौत्र वज्रनाभने इसे बनवाया था। कतिपय आधुनिक पुरातत्त्ववेत्ता इसे गुप्तकालीन भी मानते हैं। गोमतीकी ओरसे ५६ सीढ़ी चढ़नेपर यह मन्दिर अति भव्य जान पड़ता है। मन्दिरकी शोभा देखते ही हृदय प्रफुल्लित हो जाता है। मुख्य मन्दिरके गर्भगृहकी ऊँचाई १७० फुट और सतमंजिले शिखरकी शोभा अवर्णनीय है। इसीसे इस मन्दिरको 'विश्वमन्दिर' भी कहा जाता है।

मुख्य मन्दिरके गर्भगृहमें चाँदीके सिंहासनपर श्रीरणछोड़रायजीकी तीन फुट ऊँची श्याम-चतुर्भुज मूर्ति विराजमान है । यात्रीलोग भगवान्‌का चरण-स्पर्श करके पुष्प-तुलसी आदि चढ़ाते हैं । सभामण्डपके एक ओर बलदेवजीकी मूर्ति है । मन्दिरके प्राङ्गणमें त्रिविक्रम भगवान्‌का अलग मन्दिर है । दूसरी ओर श्रीप्रद्युम्नजीका मन्दिर है । श्रीलक्ष्मीनारायण, श्रीमाधव, श्रीदत्तात्रेयके मन्दिर भी इस मन्दिरके दक्षिण विभागमें हैं ।

१३६. बेट-द्वारका—यह गोमती-द्वारकासे २० मील दूर पूर्वोत्तर कच्छकी खाड़ीमें एक छोटा द्वीप है । द्वीपमें एक विशाल चौकमें दुमंजिले तीन तथा पाँच मंजिलके तीन महल हैं । इन महलोंमें भगवान् श्रीकृष्णके तथा सत्यभामा आदिके मन्दिर हैं । इन्हींमें श्रीलक्ष्मी-नारायणका मन्दिर भी दर्शनीय है ।

१३७. नारायण-सर—कच्छप्रदेशमें यह बड़ा प्राचीन तीर्थ समुद्रतटपर है । भुजसे नारायण-सर ८० मील है । नारायण-सर अच्छी छोटी-सी बस्ती है । यहाँ आदि-नारायण, लक्ष्मी-नारायण आदिके मन्दिर दर्शनीय हैं ।

१३८. माँगरोल—कहा जाता है कि भक्त नरसी मेहताके चाचा श्रीपर्वतराय मेहता माँगरोलसे प्रतिदिन तुलसी-मञ्जरी ले जाकर द्वारकामें श्रीरणछोड़रायको अर्पित करते थे । अड़सठ वर्षकी अवस्थामें जब उनके लिये इतनी लंबी यात्रा प्रतिदिन सम्भव न रही, तब स्वयं द्वारकानाथ श्रीविग्रहरूपमें माँगरोलमें प्रकट हुए और गोमतीतीर्थ भी प्रकट हुआ । माँगरोलमें उसी समयका श्रीभगवान्‌का मन्दिर है तथा पासमें गोमतीतीर्थ सरोवर है । यह स्थान समुद्रतटपर है ।

१३९. देलवाड़ा—इसका पुराना नाम देवलपुर है । यहींपर अपरनारायणका मन्दिर है ।

१४०. गुप्तप्रयाग—देलवाड़ाके समीप स्थित गुप्तप्रयाग-का स्कन्दपुराणमें बड़ा माहात्म्य वर्णित है । यहाँ भगवान् माधवका मन्दिर है । प्राचीन कुण्ड, नृसिंहजीका प्राचीन मन्दिर और उससे लगा हुआ बलदेवजीका मन्दिर है ।

१४१. ऊना—देलवाड़ासे ४ मीलपर ऊना नगर है । यहाँ श्रीदामोदररायजीका मन्दिर है । भक्तप्रवर नरसी मेहताको श्रीदामोदररायजीके श्रीविग्रहने ही अपने गलेकी माला पहनायी थी ।

१४२. तुलसीश्याम—यह स्थान ऊना-नगरसे २१ मील दूर है । इस स्थानका प्राचीन नाम 'तलश्याम' है । तुलसीश्याम नामसे प्रख्यात भगवान् विष्णुका यह मन्दिर प्राचीन एवं दर्शनीय है ।

१४३. कोड़ीनार—ऊनासे प्रभासकी ओर आनेपर कोड़ीनार नामक शहरमें एक छोटे-से मकानमें दशावतारकी एक सुन्दर मूर्ति है । उसी शहरके पश्चिम भागमें भग्न दशामें भगवान् वराहका एक मन्दिर है ।

१४४. सूत्रापाड़ा—सोमनाथ-पाटणसे ७ मील दूर यह एक छोटा-सा गाँव है । कहा जाता है कि यहाँ च्यवन ऋषिने तप किया था । इस गाँवसे दो मीलपर एक वराह-मन्दिर है । यह 'द्वारकाका मन्दिर' कहा जाता है । इस वराह-मन्दिरमें वराह, वामन तथा नृसिंहभगवान्‌की मूर्तियाँ हैं ।

१४५. जूनागढ़—प्राचीन मन्दिर जूनागढ़के पूर्व विभागमें रैवतक गिरि (गिरनार) की तलहटीमें सुवर्णरेखा नदीके दक्षिणतटपर श्रीदामोदरजीका मन्दिर है । इस मन्दिरमें दो चतुर्भुज स्वरूप विद्यमान हैं । ये मूर्तियाँ गुप्तकालीन मानी जाती हैं । सुवर्णरेखा नदीके मध्यमें ही श्रीदामोदरकुण्ड है । यहींपर श्रीनरसी मेहताजी नित्य स्नान करनेको आते थे ।

१४६. खोरासा—जूनागढ़से दक्षिण-पश्चिमकी ओर प्रायः १२ मील दूर खोरासा नामक गाँवमें श्रीवेंकटेशभगवान्‌का भव्य मन्दिर है । श्रीरामानुजीय श्रीसम्प्रदाय मतानुसार यहाँ पूजा-उत्सवादि होते हैं । मन्दिरका आकार-प्रकार दक्षिणके मन्दिरोंका-सा है । उसमें श्रीवेंकटेश्वरजीकी श्याम और सुन्दर मनुष्याकार भव्य मूर्ति विराजमान है ।

१४७. अहमदाबाद—गुजरातकी इस प्रसिद्ध नगरीमें सबसे प्रसिद्ध श्रीजगन्नाथजीका मन्दिर है । नगरमें तो अनेक दर्शनीय मन्दिर एवं स्थल हैं, किंतु यात्रियोंको नृसिंह-भगवान्‌के मन्दिरका अवश्य दर्शन करना चाहिये ।

१४८. शामलाजी—साबरकाँठा जिलेमें स्थित इस स्थानको 'गदाधरपुरी' भी कहते हैं । शामलाजी भगवान् श्रीकृष्णको कहते हैं । मन्दिरमें भगवान् श्रीकृष्णकी मूर्ति है । शामलाजीको पहले 'गदाधर' भगवान् कहते थे । यह भगवान्

विष्णु (अथवा श्रीकृष्ण) की चतुर्भुज मूर्ति है। कहा जाता है कि यह राजा हरिश्चन्द्रद्वारा प्रतिष्ठित है।

१४९. डाकोर—आनन्दसे १९ मील दूर डाकोर है। श्रीरणछोड़रायका मन्दिर ही डाकोरका मुख्य मन्दिर है। मन्दिर विशाल है। मुख्य द्वारसे भीतर जानेपर चारों ओर खुला चौक है। बीचमें ऊँची बैठकपर मन्दिर है। मन्दिरके मुख्य पीठपर श्रीरणछोड़रायके सेवक तथा चरणस्पर्श करनेवाले लोग उत्तरद्वारसे भीतर आकर दक्षिणद्वारसे बाहर जाते हैं।

श्रीरणछोड़जी द्वारकाधीश हैं। द्वारकाके मुख्य मन्दिरमें यही श्रीविग्रह था। डाकोरके अनन्यभक्त श्रीविजयसिंह बोडाणा और उनकी पत्नी गंगाबाई वर्षमें दो बार दाहिने हाथमें तुलसी लेकर द्वारका जाते थे। वही तुलसीदल द्वारकामें श्रीरणछोड़रायको चढ़ाते थे। ७२ वर्षकी अवस्थातक उनका यह क्रम चला। जब भक्तमें चलनेकी शक्ति नहीं रही, तब भगवान्‌ने कहा—'अब तुम्हें आनेकी आवश्यकता नहीं, मैं स्वयं तुम्हारे यहाँ आऊँगा।' श्रीरणछोड़रायके आदेशसे बोड़ाणा बैलगाड़ी लेकर द्वारका गये। श्रीरणछोड़राय गाड़ीमें विराज गये। इस प्रकार कार्तिक-पूर्णिमा सं० १२१२को रणछोड़रायजी डाकोर पधारे। बोडाणाने मूर्ति पहले गोमती-सरोवरमें छिपा दी। द्वारकाके पुजारी वहाँ मूर्ति न देखकर डाकोर आये; किंतु यहाँ लोभमें आकर मूर्तिके बराबर स्वर्ण लेकर लौटनेपर राजी हो गये। मूर्ति तौली गयी, बोडाणाकी पत्नीकी नाककी नथ और एक तुलसीदलके बराबर मूर्ति हो गयी। उधर स्वप्नमें प्रभुने पुजारियोंको आदेश दिया—'अब लौट जाओ। वहाँ द्वारकामें छः महीनेके बाद श्रीवर्धिनी बावलीसे मेरी मूर्ति निकलेगी।' इस समय द्वारकामें वही बावलीसे निकली मूर्ति प्रतिष्ठित है।

१५०. चाणोद—डभोईके पास चाणोद नर्मदाके किनारे एक नगर है, जिसमें शेष-नारायणका प्रसिद्ध मन्दिर है। इसके अतिरिक्त यहाँके सप्ततीर्थ बड़े पावन कहे जाते हैं।

१५१. रामपुरा—माँगरोलसे एक मील नर्मदाके दक्षिण तटपर स्थित इस स्थानपर दशावतारका सुन्दर मन्दिर है।

१५२. शुक्ल-तीर्थ—यह नर्मदाके उत्तर तटपर कल-कलेश्वरके सामने ही है और भरुचसे १० मील है। यहाँका प्रधान मन्दिर शुक्लनारायण-मन्दिर है। नारायणकी श्वेत चतुर्भुज सुन्दर मूर्ति है। उनके दोनों ओर ब्रह्मा तथा शंकरकी मूर्तियाँ हैं।

१५३. बम्बई—यहाँ बहुत अधिक मन्दिर हैं। नगरमें जो प्रसिद्ध मन्दिर हैं, केवल उनका नामोल्लेख मात्र यहाँ किया जाता है। लक्ष्मीनारायण-मन्दिर, माधवबागमें। यह बहुत सुन्दर नवीन मन्दिर है। महालक्ष्मी-परेलसे दक्षिण-पश्चिममें समुद्रतटपर यह प्राचीन मन्दिर है। पानसवाड़ीमें श्रीवेंकटेशजीका मन्दिर भी दर्शनीय है। इनके अतिरिक्त द्वारकाधीशका मन्दिर तथा नर-नारायण मन्दिर हैं।

१५४. कल्याण—बिड़ला-बन्धुओंद्वारा भगवान् श्रीविष्णुके नवनिर्मित विशाल मन्दिरकी बड़ी मान्यता है। मन्दिरमें प्रायः दर्शनार्थियोंकी भीड़ रहती है।

विदेशोंमें मन्दिर

विदेशोंमें जहाँ-जहाँ हिंदू बसे अथवा जिन-जिन जातियोंने हिंदू-उपासना-पद्धतिको स्वीकार किया, वहाँ भगवान् विष्णुके मन्दिर अथवा विष्णुके अवतार भगवान् राम एवं भगवान् कृष्णके मन्दिर पाये जाते हैं।

१५५. मारीशस—यह एक हिंदू-बहुल द्वीप है, जो अफ्रिकाके दक्षिणमें स्थित है। यहाँ अनेक स्थानोंपर भगवान् विष्णु, भगवान् राम, भगवान् श्रीकृष्ण आदिके मन्दिर हैं। यहाँके त्रियोले ग्राममें महेश्वरनाथका प्रसिद्ध मन्दिर है।

१५६. गुयाना—दक्षिणी अमेरिकाके उत्तरमें यह एक स्वतन्त्र देश है, जहाँ विशाल संख्यामें हिंदू बसते हैं। यहाँकी प्रमुख संस्था 'गुयाना-सनातन-धर्म-महासभा' के महामन्त्री श्रीभारतजीने गुयानास्थित छत्तीस विष्णु-मन्दिरोंकी (पतों-सहित) नामावली भेजी है। विस्तार-भयसे विस्तृत नामावली यहाँ छापी नहीं जा रही है।

१५७. बर्मा—बर्मामें भी विष्णु-मन्दिर बहुत हैं; किंतु उनमें सर्वाधिक प्राचीन विष्णुमन्दिर पागननगरका है। पागननगर वर्तमान रंगूनके सुदूर उत्तर और माण्डले-के उत्तर-पूर्वमें इरावदी नदीके तटपर बसा हुआ है। पागनका यह विष्णुमन्दिर, जो सम्भवतः ग्यारहवीं शताब्दीमें निर्मित हुआ, वैसे तो आजकल जीर्णप्राय है, किंतु केन्द्रीय सभागार ज्यों-का-त्यों है। सभागारका गोल शिखर और उसपरका गुंबद भी अक्षत है। बाहरी दीवालमें भगवान् विष्णुके दशावतार तराशे हुए हैं। इनमें नवें अवतारके रूपमें भगवान् बुद्धकी मूर्ति मिलती है।

बर्माकी जनता मुख्यतः भगवान् बुद्धकी अनुयायी है, जो भगवान् विष्णुके ही एक अवतार हैं।

इंगलैंड—विश्वके विभिन्न देशोंमें स्थित मन्दिरोंपर विहंगम-दृष्टि डालनेके बाद लंदनके मन्दिरोंका संक्षिप्त वर्णन प्रस्तुत करते हुए सम्मान्य श्रीश्रुतिशीलजी शर्मा लिखते हैं—

पुराणोंमें वर्णित विष्णुभगवान् अनेक रूपोंमें समस्त भारतमें ही नहीं, अपितु विश्वभरमें यत्र-तत्र विराजमान हैं। विदेशोंमें भगवान् विष्णुके कृष्णावतारकी पूजा-अर्चा सर्वाधिक होती है।

मुझे दक्षिणी अमेरिकाके गुयाना, सुरिनाम, ब्राजील, वेनेजुएला आदि देशों तथा करीबियन महासमुद्रके ट्रिनिडाड, बारबेडस आदि टापुओंमें घूमनेका अवसर मिला। इन सभी देशोंमें मैं जहाँ-जहाँ भी गया, वहाँके मन्दिरोंमें मुझे अधिकतर भगवान् श्रीकृष्णके पावन विग्रहका ही दर्शन हुआ।

दक्षिण अमेरिकासे चलकर मैं लंदन पहुँचा। पूरे लंदन नगरमें मुझे तीन ही विशेष उल्लेखनीय कृष्ण-मन्दिर दिखायी दिये। उनमें एक लंदनके पश्चिमोत्तर भागमें है, जो हिंदू-सेंटरके तत्त्वावधानमें चलता है, दूसरा लंदनके पश्चिम भागमें राधा-कृष्ण-मन्दिर है और तीसरा लंदनके पश्चिमोत्तर भागमें गोल्डर्स ग्रीन नामक स्थानपर है।

१५८. हिंदू-सेंटर-मन्दिर—लंदनके सभी छोटे-बड़े मन्दिरोंमें हिंदू-सेंटरका मन्दिर सबसे पुराना है। यह सेंटर सन् १९३५ में स्थापित हुआ था। इसके संस्थापकोंमें डा० चौधरीका नाम विशेषरूपसे उल्लेखनीय है। डा० चौधरी लंदनके प्रसिद्ध चिकित्सकोंमेंसे एक थे। इस मन्दिरकी स्थापना सर्वप्रथम गोल्डर्स ग्रीन नामक स्थानपर हुई थी। शुरू-शुरूमें एक घरके छोटेसे भागमें ही यह स्थापित हुआ था। बादमें यह मन्दिर अनेक जगहोंपर घूमता रहा, अन्तमें इस मन्दिरके शुभचिन्तकोंने मिलकर प्रयत्न किया और लंदनके पश्चिमोत्तर भागमें ग्राफ्टन टेरेस-नामक स्थानपर बीस हजार पौंडकी लागतसे एक चार मंजिला घर खरीद लिया और इसी जगह मन्दिर भी स्थायी हो गया।

ग्राफ्टन टेरेस आनेके बाद मन्दिरमें भगवान् कृष्णकी मूर्तिकी विधिवत् स्थापना हुई तथा जयपुर (भारत) से चार-पाँच हजार रुपये खर्च करके कृष्णकी संगमरमरकी मूर्ति मँगवाकर उसकी प्राण-प्रतिष्ठा की गयी। यह मूर्ति महाभारतके सुदर्शनचक्रधारी भगवान् श्रीकृष्णकी है।

इस मन्दिरमें प्रति रविवारकी शामको गीता-प्रवचन, प्रति सोमवार और बुधवारको योगाभ्यास, मंगलवारको ध्यान और प्रति शनिवारको सत्सङ्ग होता है, जिसमें सेंटरकी कीर्तन-मण्डली कीर्तन करती है। इस सेंटरकी अपनी कीर्तन-मण्डली है, जो जगह-जगह जाकर कीर्तन करती है।

मन्दिरमें सुबह-शाम, पूजा-अर्चा होती है, पर प्रत्येक मासके प्रथम रविवारको बड़े पैमानेपर पूजा होती है, जिसमें करीब ३००-४०० लोग आते हैं। उस दिन हवन-पूजनके बाद सभी अभ्यागतोंको प्रीतिभोज दिया जाता है। हिंदू-सेंटरका यह मन्दिर लंदनमें प्रसिद्ध है।

१५९. श्रीराधाकृष्ण-मन्दिर—यह मन्दिर बंगालके संत भक्त प्रभुपाद श्रीभक्ति-वेदान्तजीके द्वारा स्थापित है। प्रभुपाद १९६८-६९ में जगका प्रवास करते हुए लंदन भी आये। लंदनके केन्द्र-स्थान ट्रफलगर-स्क्वायरमें बड़े ही धूम-धामसे रथयात्राका उत्सव मनाया गया। 'हरे राम हरे कृष्ण' की धुनसे सारा स्क्वायर गूँज उठा और इस धुनपर भक्तों और प्रेक्षकोंके पाँव अनायास ही थिरक उठे। लंदनवासियोंके लिये यह बड़ा आकर्षक था, फलतः कुछ भक्त इस ओर आकर्षित हुए और सन् १९६९में लंदनमें 'श्रीराधाकृष्ण-मन्दिर' की स्थापना हुई। इसके एक वर्ष बाद सन् १९७०में श्रीराधाकृष्णकी संगमरमरकी मूर्तिकी स्थापना हुई। इस मूर्ति-स्थापनाके अवसरपर प्रभुपाद भक्तिवेदान्त स्वयं उपस्थित थे। इस मन्दिरका सारा प्रबन्ध गौराङ्ग-भक्तोंके हाथोंमें है। ये सभी अब पूरी तरह हिंदू-धर्ममें दीक्षित हो चुके हैं। इसलिये इन्होंने अपने नाम भी बदल लिये हैं। इस मन्दिरके मुख्य पुरोहितका नाम धनंजय है और मन्त्रीका नाम कौशिक है। दोनों ही अंग्रेज हैं। इस मन्दिरमें रोज सुबह पूजा-अर्चा होती है। राम और कृष्णकी धुनपर तल्लीनताके दर्शन इस मन्दिरमें किये जा सकते हैं। इस मन्दिरके द्वारा मनाये जानेवाले त्योहारोंमें रथयात्राका त्योहार विशेष उल्लेखनीय है।

प्रभुपाद श्रीभक्तिवेदान्तजीके द्वारा अमेरिकामें भी अनेक मन्दिरोंकी स्थापना हुई है।

श्रीलंका, इण्डोनेशिया, थाईलैंड, सिंगापुर, ट्रिनीडाड, कनडा, अमेरिका, अफ्रिका आदि देशोंसे पूरा विवरण प्राप्त नहीं हो सका। किंतु वहाँ भगवान् विष्णुके अथवा उनके अवतारोंके मन्दिर हैं। अभी कुछ वर्ष पूर्व ही सिंगापुरमें कुछ लाख डालरसे भगवान् विष्णुके विशाल मन्दिरका निर्माण हुआ है। इसी प्रकार थाईलैंडकी राजधानी बैंकाक-में भी भगवान् विष्णुका विख्यात मन्दिर है। गुयानाकी तरह ट्रिनिडाड भी हिंदूबहुल देश है, जहाँ अनेक मन्दिर हैं।

दक्षिण-पूर्व एशियाई देशोंमें श्रीविष्णुका शङ्खनाद

(लेखक—श्रीलल्लनप्रसादजी व्यास)

भारत तथा पूर्व एशियाई देशोंके सांस्कृतिक सम्बन्धोंपर विचार करते समय भले ही वर्तमान बदली हुई परिस्थितियाँ हमें समानता या समान संस्कृति अथवा समान सांस्कृतिक धरोहरकी बात करनेके लिये बाध्य करें; पर ऐतिहासिक तथ्य एवं साक्ष्य स्पष्ट बताते हैं कि कभी इस भूभागपर भारतीय संस्कृतिका वर्चस्व विद्यमान था, जिसे काल-चक्रके आँधी और तूफान आजतक मिटा नहीं सके हैं। ये तथ्य एवं साक्ष्य हैं—मन्दिर, मूर्तियाँ, शिला-लेख, भाषा, रीति-रिवाज, परम्पराएँ आदि। इसमें सबसे मुख्य साक्ष्य हैं—भारतीय देवी-देवताओंकी मूर्तियाँ और मन्दिर। हाँ, काल-चक्रके परिवर्तनका यह प्रभाव अवश्य पड़ा है कि इन देशोंके लोग इस सांस्कृतिक धरोहरको अपनी ही मानने लगे हैं, किसी अन्यकी नहीं। यह परिवर्तन शुभ ही कहा जा सकता है, यद्यपि इसका मुख्य कारण शताब्दियोंके अपने परतन्त्रताकालमें भारतका इन देशोंके साथ प्रभावी सांस्कृतिक सम्बन्धोंका न रहना है।

एशियाई देशोंमें जिन भारतीय देवी-देवताओंकी मूर्तियाँ और मन्दिर सबसे अधिक पाये गये हैं, उनमें भगवान् विष्णुके अवतार राम, गणेश, ब्रह्मा आदि प्रमुख हैं। विष्णुकी मूर्तियाँ और मन्दिर भी कम नहीं हैं। आज भले ही इन देशोंमें भारतीय देवी-देवताओंकी इन मूर्तियोंके प्रति पूज्य भावना नहीं है—भगवान् बुद्धकी बात अलग है; किंतु जब इन मूर्तियों और मन्दिरोंका निर्माण हुआ था, तब ऐसी बात नहीं थी। निष्ठा और धार्मिक श्रद्धाके अभावमें इनके निर्मातागण भव्यताके लिये विश्वविख्यात मन्दिरों-मूर्तियोंका निर्माण करा ही नहीं सकते थे। कम्बोडियाके विश्वविख्यात अंगकोर-मन्दिर और चम्पा (वियतनाम) के ध्वंसावशेष इसके जीवित साक्ष्य हैं। इतना ही नहीं, चम्पामें प्राप्त संस्कृत-शिलालेखोंसे विदित होता है कि इस भूभागमें वैष्णव-धर्म प्रचलित था। एक संस्कृत-शिलालेखसे, जो दक्षिण-पूर्व एशियाका सबसे पुराना शिलालेख माना जाता है, ज्ञात होता है कि ईसाकी प्रारम्भिक शताब्दीके आस-पास वहाँ फूनान साम्राज्यका हिंदू राजा श्रीमार राज्य करता था। यह साम्राज्य दक्षिण-बर्मासे लेकर दक्षिण-वियतनामतटतक विस्तृत माना जाता था। एक शिलालेखमें कौण्डिन्य-नामक भारतीय ब्राह्मणके आगमनकी चर्चा की गयी है, जिसने अपने पराक्रमसे उस समय इस क्षेत्रपर राज्य करनेवाली रानीको पराजित करके तथा उससे शादी करके अपने साम्राज्यकी स्थापना की।

इस राज्य-परम्पराके अनेक राजा भगवान् शिव और विष्णुके भक्त थे। इसके साथ-साथ बौद्धधर्मको भी पर्याप्त प्रश्रय मिला हुआ था, जिसकी चर्चा चीनी यात्रियोंने की है। अंगकोर वाट, जिसका निर्माण बारहवीं शताब्दीमें हुआ, भगवान् विष्णुको ही समर्पित है। यह सम्भवतः संसारका सबसे बड़ा मन्दिर-समूह है, जो वस्तुतः विष्णु-मन्दिर ही माना जा सकता है। इसमें एक स्थानपर विशालकाय शेषशय्या-शायी विष्णुभगवान्‌की मूर्ति है। शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये हुए विष्णुकी खड़ी प्रतिमा भी अत्यन्त शोभायमान है। अंगकोरके मन्दिर-समूहोंमें विष्णुकी अन्य अनेक प्रतिमाएँ तथा उनके वराह, कूर्म और नरसिंह अवतारोंकी भी आकर्षक प्रतिमाएँ हैं। इनमेंसे कुछ अब क्षतिग्रस्त हो चुकी हैं। गरुड़पर विराजमान विष्णुभगवान्‌की प्रतिमा विशेषरूपसे उल्लेखनीय है। एक प्राप्त शिलालेखसे ज्ञात होता है कि कम्बुजमें मृत्युके बाद जीवकी परम गति विष्णुलोककी प्राप्ति ही मानी गयी थी।

कम्बुज (कम्बोडिया) का पड़ोसी देश है स्याम (थाईलैंड), जिसमें भारतीय संस्कृति और परम्पराओंका आज भी पूर्ववत् महत्त्व है। बस, कालान्तरमें उनपर स्थानीय रंग चढ़ गया है। थाईलैंडमें एक प्रमुख नगर है, जिसका नाम विष्णुलोक (फिस्नु-लोक) है, यद्यपि इस नगरमें जानेपर विष्णुका कोई प्रभाव नहीं दिखायी पड़ा। पर राष्ट्रीय संग्रहालय, बैंकाकमें अत्यन्त विशालकाय कलात्मक एवं नयनाभिराम विष्णु-प्रतिमाओंको देखकर अवश्य अनुमान होता है कि इस देशमें कभी विष्णुभगवान्‌का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान था। यहाँ सुखोथाई शैलीकी विष्णुमूर्ति अपनी भव्यता और कलात्मकताके लिये प्रसिद्ध है। श्याम धातुकी ऐसी प्रतिमा भारतमें दुर्लभ है। इसके अतिरिक्त भी विभिन्न शैलियोंकी अनेक विष्णु-प्रतिमाएँ हैं। यहाँ हरि-हर (विष्णु एवं शिव) की सम्मिलित मूर्तियाँ भी अनेक हैं। इन देशोंमें हरिहरकी मूर्तियाँ अनेक स्थानोंपर पायी गयी हैं।

थाईलैंडके राजगुरु फ्रा वामदेव मुनिके मन्दिर (देवस्थान) में विष्णुभगवान्‌का पूजन आज भी विधि-विधानसे सम्पन्न होता है। विष्णुके साथ इस मन्दिरमें शिव, गणेश, ब्रह्मा, उमा, लक्ष्मी आदिकी मूर्तियाँ भी हैं। राजगुरुके पूर्वज शताब्दियों पूर्व दक्षिण-भारतसे यहाँ आये थे और स्वयं राजगुरु आज भी शिखा, यज्ञोपवीत, धोती आदि धारण करते हैं। इस बौद्ध देशके बौद्ध राजाद्वारा सम्पन्न किये जानेवाले कुछ माङ्गलिक कृत्योंमें राजगुरुकी उपस्थिति अनिवार्य होती है। बौद्ध राजाकी वंश-परम्परामें आज भी 'राम' शब्द जुड़ता है।

वियतनामके अनाम प्रान्तकी चम्पा-नामक प्राचीन नगरीमें अन्य भारतीय देवी-देवताओंके साथ विष्णुभगवान्‌का महत्त्व इस भूभागके इतिहासमें स्वर्णाक्षरोंसे अङ्कित है, जिसके साक्षी हैं वहाँ प्राप्त अनेक संस्कृत-शिलालेख। इन शिलालेखोंसे ज्ञात होता है कि चम्पाराज्यमें भारतीय धर्म और संस्कृति पूर्णतः प्रतिष्ठित थे और ईसाकी दूसरी शताब्दीसे लेकर लगभग पंद्रहवीं शताब्दीतक भारतीय मूलके राजा यहाँ राज्य करते थे। यहाँ प्राप्त संस्कृत-शिलालेखोंसे विदित होता है कि चम्पा मानो लघु भारत ही रहा हो। यहाँकी सम्पूर्ण जीवन-प्रणाली वस्तुतः भारतीय जीवन-प्रणाली ही थी। भारतके साथ ऐसी सांस्कृतिक एकरूपता अन्य देशोंमें बहुत कम मिली है।

चम्पामें यद्यपि शैवमतका प्राधान्य रहा और अधिकांश राजाओंने बड़ी निष्ठापूर्वक अनेक शिव-मन्दिरोंका निर्माण कराया था, तथापि धार्मिक सहिष्णुता एवं उदारताकी भारतीय परम्पराके अनुसार यहाँ वैष्णवमत भी विद्यमान था और भगवान् विष्णुकी उपासना होती थी। विष्णु-भगवान्‌से सम्बन्धित एक लेखमें 'भगवतः पुरुषोत्तमस्य विष्णोरनादेः' के रूपमें उनका उल्लेख हुआ है। चम्पाके कुछ नरेशोंने अपनेको विष्णुका अवतार भी घोषित किया है। इनमें जयरुद्रवर्मनका नाम विशेषरूपसे उल्लेखनीय है। चम्पाके ध्वंसावशेषोंमें प्राप्त क्षीरसागरमें विश्राम कर रहे चतुर्भुज विष्णुकी मूर्ति विशेष उल्लेखनीय है। एक मूर्तिमें उनके नाभि-कमलपर विराजमान ब्रह्मा भी दिखायी पड़ते हैं। गरुड़पर आसीन एवं पद्मासनयुक्त मूर्तियाँ भी अनेक हैं। एक मूर्ति गोवर्द्धनधारी विष्णु (श्रीकृष्ण)की भी है। यहाँ हरिहर एवं त्रिमूर्ति-का भी पर्याप्त महत्त्व था और उनकी मूर्तियाँ भी प्राप्त हुई हैं।

मुस्लिम-बहुल देश इंडोनेशियामें भगवान् विष्णुकी भव्य मूर्तिके दर्शन तब हुए, जब मैं जावामें स्थित परमबनन-मन्दिर देखने गया। इस मन्दिरकी दीवालोंपर रामायण और कृष्णायणके दृश्य अत्यन्त कलात्मक ढंगसे उत्कीर्ण हैं। यद्यपि यह मन्दिर ध्वंसावस्थामें विद्यमान है, फिर भी विष्णुसहित ब्रह्मा, अगस्त्य, दुर्गा आदिकी आदमकद प्रतिमाओंकी भव्यता पूर्ववत् है। इस देशके विभिन्न द्वीपोंमें कभी भारतीय संस्कृति और शासनव्यवस्था विद्यमान थी। बालीद्वीप आज भी हिंदूबहुल है और देशके शेष भागोंमें पूर्णतः इस्लाम-धर्म स्थापित हो जानेके बाद उस प्राचीन संस्कृतिके आज भी दर्शन किये जा सकते हैं। हर्षकी बात तो यह है कि इस सांस्कृतिक धरोहरको यह देश बिल्कुल अपनी मानता है।

इस अपनेपनका एक पुष्ट आधार भी है। बारहवीं शताब्दीके 'भारत-युद्ध' नामक एक स्थानीय काव्यमें कविने कहा है कि 'जावा-नामक सुन्दर द्वीपका युद्धमें विनाश होनेके कारण विष्णुभगवान्‌ने द्रवित होकर इसके कल्याणके लिये मानवरूपमें राजा बनकर पृथ्वीपर अवतार ग्रहण किया।' यहाँके विभिन्न प्राचीन लेखों और ग्रन्थोंसे ज्ञात होता है कि जावाके अनेक राजा विष्णुके अवतार माने जाते थे। इसीलिये मृत्युके बाद भी उन्हें पूजा जाता था। एरलंग नामक राजाके बारेमें कहा गया है कि 'वह एक बार प्रलयसे इसीलिये बच गया; क्योंकि वह विष्णुका अवतार था।' इसकी मूर्ति वेलहममें प्राप्त हुई है, जो गरुड़पर बैठे विष्णुके रूपमें है।

इस देशमें शिवका सर्वतोमुख महत्त्व रहा है; किंतु भगवान् शिवके साथ विष्णुभगवान्‌की मूर्तियाँ भी प्राप्त हुई हैं। 'चंडी लोरो जोगरंग'में प्रधान मन्दिर शिवका है; किंतु अगल-बगल विष्णु और ब्रह्माके भी मन्दिर हैं। ब्रह्मा, विष्णु और महेशकी त्रिमूर्तियोंमें मध्यमें शिव दिखाये गये हैं। राम, कृष्ण, मत्स्य, वराह और नृसिंहकी मूर्तियाँ भी प्राप्त हुई हैं, जिनसे व्यक्त होता है कि यहाँके निवासी विष्णुके सभी अवतारोंसे अवगत थे। हरि-हरकी मूर्तियाँ भी जावामें प्राप्त हुई हैं। इसके साथ ही यहाँ अश्वमुखपर विराजमान विष्णुकी मूर्ति भी मिली है। बालीमें आज भी हिंदूधर्म विद्यमान है और यहाँ विष्णु-भगवान्‌से सम्बन्धित अनेक मन्त्रोंका उच्चारण किया जाता है।

बोर्नियो द्वीपमें अन्य भारतीय देवी-देवताओंके अतिरिक्त चतुर्भुज विष्णुकी एक स्वर्णप्रतिमा मिली थी। प्रतिमामें पीछे दो मोर भी दिखाये गये हैं।

भारतके निकटतम पड़ोसी बर्मामें विष्णुका पर्याप्त प्रभाव रहा है, पर मुख्यतः देवस्वरूप ऋषिके रूपमें, भगवान्‌के रूपमें

नहीं। यहाँ कुछ नगरोंके नाम विष्णुके नामपर रखे गये हैं, जैसे—बिसुनोमयो यानी विष्णुका नगर। सिसित या श्रीक्षेत्र-नामक नगरके बारेमें एक बर्मी उल्लेखमें कहा गया है कि 'इसे गरुड़की सहायतासे विष्णुने बनाया था।' साथ ही पगानमें एक विष्णुमन्दिर पाया गया है, जो लगभग दसवीं शताब्दीका माना जाता है। इस मन्दिरमें विष्णुके दशावतारोंको दिखाया गया है। कुछ अवतारोंकी मूर्तियाँ क्षतिग्रस्त हो गयी हैं। मुख्य मूर्ति विष्णुजीकी थी, जो बादमें बर्लिन संग्रहालयमें भेज दी गयी। यह मूर्ति गरुड़पर कमलासनपर बैठे विष्णुकी है, जो पूर्णतः भारतीय शैलीकी है।

इस प्रकार सृष्टिके पालनकर्ता भगवान् विष्णुने सहस्रों वर्षपूर्व 'सर्वजनहिताय सर्वजनसुखाय' की भारतीय संस्कृतिका जो शङ्खनाद किया, वह मानो आज भी दक्षिण-पूर्व एशियाई देशोंसहित दिग्-दिगन्तमें व्याप्त है। और यही उद्घोष आज भी भारतके समस्त भौतिक अभावोंके बावजूद उसके अद्वितीय महत्त्वको पूर्ववत् बनाये हुए है। इस उद्घोषकी अमरताका रहस्य केवल यह है कि इसके स्वर कभी भी साम्राज्यवादी नहीं थे। इनमें तो मानवमात्रके लिये कल्याण और मङ्गलकामना निहित थी, जो उनके एक करमें शोभायमान कमलसे प्रतीकरूपमें प्रकट है।

आळ्वारोंके अष्टोत्तर-शत दिव्यदेश

(लेखक—आचार्यपीठाधिपति स्वामी श्रीराघवाचार्यजी)

'दिव्यदेश' कहलाता है, 'वह स्थान, जो प्राकृत न होकर दिव्य—चिन्मय हो।' इस दृश्यमान जगत्से परे भगवान्की नित्यविभूति है। वहाँ शुद्धसत्त्वकी स्थिति होती है। त्रिगुणात्मिका प्रकृतिका वहाँ प्रवेश नहीं होता। अतः उसे 'दिव्यदेश' कहना ही चाहिये। संसारमें भगवान्के प्रकट होनेपर यह नित्यविभूति उनके साथ प्रकट होती है और उनके साथ रहती है। भगवान् प्रकट हुआ करते हैं व्यूह, विभव अथवा अर्चारूपमें। तीनों ही प्रकारोंमें नित्यविभूतिका स्थिर-साहचर्य रहता है। अतः इन सभी अवतार-स्थलों तथा संनिधान-स्थलोंको दिव्यदेशके नामसे सम्बोधित करना उचित एवं उपादेय है।

आळ्वार संतोंकी दिव्य सूक्तियोंका अनुशीलन करनेपर १०८ दिव्यदेशोंकी चर्चा मिलती है। यद्यपि किसी भी आळ्वारने दिव्यदेशोंके कुल १०८ नाम नहीं गिनाये हैं, तथापि समस्त आळ्वार संतोंने कुल मिलाकर जितने दिव्यदेशोंका मङ्गलाशासन किया है, उनकी संख्या १०८ ही मानी जाती है। इस मान्यताके अनुसार नित्यविभूति श्रीवैकुण्ठ और क्षीराब्धिके अतिरिक्त शेष १०६ दिव्यदेश इसी भारत-भूमिपर हैं।

१०८ दिव्यदेशोंकी सूची

१—श्रीवैकुण्ठ, २—तिरुप्पाल्कडल (क्षीराब्धि), ३—तिरुवरङ्गम् (श्रीरङ्गम्), ४—उरैयूर, ५—तिरुवेळ्ळारै, ६—अन्बिल, ७—तिरुप्पेर-नगर, ८—करम्बनूर, ९—तञ्जैमामणिक्कोइल, १०—तिरुक्कण्डियूर, ११—कुडलूर, १२—कपिस्थलम्, १३—पुळ्ळम्बूदङ्कुडि, १४—आदनूर, १५—तिरुक्कुडन्दै (कुम्भकोणम्), १६—तिरुविण्णगर, १७—तिरुनारैयूर, १८—तिरुच्चेरै, १९—नन्दिपुरविण्णगरम् (नादन्-कोइल), २०—तिरुवेळ्ळियङ्कुडि, २१—तेरळुन्दूर, २२—तिरुविन्दलूर (तिरुवलु), २३—शिरुपुलियूर, २४—तिरुक्कण्णपुरम्, २५—तिरुक्कण्णमङ्गै, २६—तिरुक्कण्णङ्कुडि, २७—तिरुनागै (नागपट्टणम्), २८—कालिस्सीरामविण्णगरम् (शियाळी), २९—तिरुवालितिरुनगरी, ३०—अरिमेयविण्णगरम्, ३१—वैकुण्ठविण्णगरम्, ३२—अरिमेयविण्णगरम्, ३३—वण्पुरुषोत्तमम्, ३४—सेम्पोन्सेय-कोइल, ३५—तिरुत्तेट्रियम्बलम्, ३६—तिरुमणिक्कूडम्, ३७—तिरुक्कावळम्पाडि, ३८—तिरुदेवनार-तोकै, ३९—तिरुवेळ्ळक्कुळम् (अण्णन्-कोइल), ४०—पार्थन्पळ्ळि, ४१—तलैच्चन्काडु, ४२—तिल्लै-तिरुच्चित्रकूटम् (चिदम्बरम्), ४३—चिरुक्कुडल (मदुरै), ४४—तिरुमोहूर, ४५—तिरुमालिरुञ्चोलै (अळगर-कोइल), ४६—तिरुमेय्यम्, ४७—तिरुक्कोट्टियूर, ४८—तिरुप्पुल्लाणी, ४९—तिरुतङ्गालूर, ५०—श्रीविल्लिपुत्तूर, ५१—श्रीवरमङ्गै (तोताद्रि), ५२—तिरुक्करुङ्कुडि, ५३—तिरुक्कुरुकूर, ५४—तुलैविल्लिमङ्गलम्, ५५—श्रीवैकुण्ठम्, ५६—वरगुणमङ्गै, ५७—तिरुप्पुलिङ्कुडि, ५८—तिरुक्कुळन्दै, ५९—तिरुप्पेरै, ६०—तिरुक्कोलूर, ६१—तिरुवनन्तपुरम् (त्रिवेन्द्रम्), ६२—तिरुवाट्टारु, ६३—तिरुवण्परिसारम् (तिरुपतिसारम्), ६४—तिरुच्चेङ्कुन्नूर (त्रिचूर), ६५—कुट्टनाडु (तिरुप्पुलियूर), ६६—तिरुवण्वण्डूर, ६७—तिरुवल्लवाळ, ६८—तिरुक्कडित्तानम्, ६९—तिरुवारन्विळै,

७०–तिरुक्काट्करै, ७१–तिरुमूळिक्कलम्, ७२–विट्टुवक्कोडु, ७३–तिरुनावाय्, ७४–तिरुवायिन्दिरपुरम्, ७५–तिरुक्कोवलूर, ७६–तिरुवल्लिक्केणि (ट्रिप्लिकेन), ७७–तिरुनिन्रवूर, ७८–तिरुवेव्वलूर, ७९–तिरुक्कडिकै, ८०–तिरुनीर्मलै, ८१–तिरुविडवेन्दै (तिरुविडंतै), ८२–तिरुक्कडल्मलै (महाबलिपुरम्), ८३–हस्तिगिरि (काञ्चीपुरी), ८४–तिरुवेक्का, ८५–अष्टभुजम्, ८६–तिरुत्तङ्का (दीपप्रकाशक), ८७–वेलुक्कै, ८८–उरगम्, ८९–नीरकम्, ९०–कारकम्, ९१–कार्वानम्, ९२–तिरुक्कल्वनूर, ९३–पाटकम्, ९४–निलातिङ्गल्तुण्डम्, ९५–पवळवर्णम्, ९६–परमेश्वरविण्णगरम् (वैकुण्ठपेरुमाळ-कोइल), ९७–तिरुप्पुक्कुळि, ९८–तिरुवेङ्कटम् (वेङ्कटाद्रि), ९९–सिङ्गवेल्कुन्रम् (अहोबिल), १००–तुवरै (द्वारका), १०१–अयोध्या, १०२–नैमिषारण्य, १०३–मथुरा, १०४–तिरुवाइप्पाडि (गोकुलम्), १०५–देवप्रयाग (कण्डम्), १०६–तिरुप्पिरिदि (जोशीमठ), १०७–बदरिकाश्रम, १०८–शालग्रामम् ।

श्रीविष्णु-तत्त्व तथा वैष्णव

(लेखक–श्रीयोगपीठाधीश्वर श्रीकोशलेन्द्रप्रपन्नाचार्यजी महाराज)

भगवान् श्रीविष्णु अखिल-हेय-प्रत्यनीक-कल्याणगुणैक-निधान, मायातीत, ज्ञानातीत, गुणातीत, सर्वप्रपञ्चातीत, सर्वोपद्रवशून्य, शान्त, एकरस एवं अविनाशी हैं । उन भगवान् श्रीविष्णुके दो स्वरूप हैं—एक सगुण और दूसरा निर्गुण । श्रीरामामिश्र स्वामीका कथन है—

> दूरे गुणास्तु तव सत्त्वरजस्तमांसि
> तेन त्रयी प्रथयति त्वयि निर्गुणत्वम् ।
> नित्यं हरे निखिलसद्गुणसागरत्वात्
> त्वामामनन्ति परमेश्वरमीश्वराणाम् ॥

'भगवान् विष्णुमें प्राकृत गुण (सत्त्व-रज-तम, जनि-अस्तित्व-वृद्धि-परिणाम-अपक्षयादि तथा काम-क्रोध-लोभादि) न होनेसे वेदत्रयी उन्हें निर्गुण घोषित करती है तथा (सौशील्य, वात्सल्य, ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, वीर्य, तेज अथवा वशित्व, वदान्यता, गुणवत्ता, ऋजुता, दयालुता, मधुरता, समता, स्थिरता, शुचिता, ख्याति, प्रज्ञाता, कृतज्ञता, सानुक्रोशता, करुणानिधित्व, सुज्ञता आदि) सद्गुण-समन्वित होनेके कारण उनको सगुण नामसे पुकारा जाता है ।'

वसिष्ठ और पुलस्त्य—इन दो ऋषियोंके आशीर्वादसे जब पराशरजी पूर्ण तत्त्ववेत्ता हो गये, तब वेदोंके सागरमें अवगाहन करनेपर उन्हें श्रीविष्णु-तत्त्व ही साररूपमें मिला—'विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्रवोचम् (शुक्ल-यजुर्वेद ५ । १८)—हम विष्णुके वीर्यका उच्चस्वरसे गान करते हैं ।' 'इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् । (शुक्ल-यजु० ५ । १५)—इस विश्वको विष्णुने तीन डगोंसे नाप लिया ।' 'तद् विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः । (शुक्ल-यजु० ६ । ५)—उस विष्णुके परमपदको मुक्तात्मा सदा देखते रहते हैं ।' 'शं नो विष्णुरुरुक्रमः । (शुक्ल-य० ३६ । ९)—सृष्टिकी उत्पत्ति, स्थिति और संहारके कर्ता विष्णुभगवान् हम सबका कल्याण करें ।'

पराशरजीने विष्णुभगवान्के द्वारा सृष्टिकी उत्पत्ति, स्थिति, संहार माना है । सर्वान्तर्यामी होनेसे जगत्स्वरूप भी वे हैं ही और कहा भी है—

> विष्णोः सकाशादुद्भूतं जगत्तत्रैव च स्थितम् ।
> स्थितिसंयमकर्तासौ जगतोऽस्य जगच्च सः ॥
> (वि० पु० १ । १ । ३१)

> एतमेके वदन्त्यग्निं मनुमन्ये प्रजापतिम् ।
> इन्द्रमेकेऽपरे प्राणमपरे ब्रह्म शाश्वतम् ॥
> (मनुस्मृति १२ । १२३)

सर्वनामनामी एवं सर्वरूपरूपी होनेसे उन्हें अग्नि, मनु, प्रजापति, इन्द्र, प्राण तथा सनातन ब्रह्मके नामसे भी पुकारा जाता है; इसलिये सम्पूर्ण पूजाके परमास्पद श्रीविष्णु हैं ।

> ये यजन्ति पितॄन् देवान् ब्राह्मणान् सहुताशनान् ।
> सर्वभूतान्तरात्मानं विष्णुमेव यजन्ति ते ॥
> (बृहद्यमस्मृति)

'जो पितर, देव, विप्र एवं अग्निकी पूजा करते हैं, वे सर्वान्तर्यामी श्रीविष्णुकी ही पूजा करते हैं । 'सर्वदेवनमस्कारः केशवं प्रति गच्छति । (पाण्डवगीता ८५)—सभी देवताओंके प्रणामका पर्यवसान भगवान् केशवमें होता है ।'

मत्स्यः कूर्मो वराहो नरहरिणपतिर्वामनो जामदग्न्यः
काकुत्स्थः कंसघाती मनसिजविजयी यस्तु कल्किर्भविष्यन् ।
विष्णोरंशावतारा भुवनहितकरा धर्मसंस्थापनार्थाः
पायासुर्मां त एते गुरुतरकरुणाभारखिन्नाशया ये ॥

(विष्णुपादादिकेशान्तवर्णनस्तोत्र ४९)

'मत्स्यादि दशावतार भगवान्के अंशसे उत्पन्न होते हैं। त्रिभुवन-हितमें तत्पर होकर वे धर्म-संस्थापनाके लिये ही आते हैं। करुणा-भारसे जिनका चित्त सदा खिन्न रहता है, वे भगवान् विष्णुके अवतार-विग्रह हम सबकी रक्षा करें।'

पूर्वाचार्योंने दस अकाट्य हेतुओंसे मत्स्यादि अवतार धारण करनेवाले श्रीविष्णुभगवान्को परब्रह्म घोषित किया है। वे हेतु ये हैं कि उक्त सभी अवतार १—लक्ष्मीके पति, २—जगत्के कारण, ३—विश्वके उपास्य, ४—ब्रह्मा-शिवसे स्तुत्य, ५—पापोंके विध्वंसक, ६—अपने समान बनानेवाले, ७—वेदात्मा गरुड़रूप वाहनपर आरूढ़ होनेवाले, ८—ब्रह्माके जनक, ९—मोक्षेच्छुओंके शरण तथा १०—अनन्त आनन्दके प्रदाता हैं। उनकी परब्रह्मताके सूचक ये ही दस हेतु बताये गये हैं। वैसे तो सहस्रों हेतु श्रीविष्णुका परत्व घोषित कर रहे हैं।

वेदे रामायणे पुण्ये भारते भरतर्षभ ।
आदौ चान्ते च मध्ये च हरिः सर्वत्र गीयते ॥

(हरिवंश० ३ । १३२ । ९५)

'समस्त वेदोंमें, रामायणमें तथा महाभारतमें सर्वत्र—आदि, मध्य और अन्तमें हरि ही गाये जाते हैं।'

'तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥'

(शु० य० ३१ । १८)

'श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यौ…।' (शु० य० ३१ । २२)

अर्थात् श्रीलक्ष्मीके पति विष्णु ही महापुरुष हैं। उन्हींकी उपासनासे मृत्युका अतिक्रमण हो सकता है।

जब प्रह्लादके ऊपर पुरोहितोंने कृत्याका प्रयोग किया, तब वे स्वयं उस कृत्याके द्वारा मृत्युको प्राप्त हो गये। यह देखकर भक्तशिरोमणि श्रीप्रह्लादजीने कहा—

यथा सर्वगतं विष्णुं मन्यमानोऽनपायिनम् ।
चिन्तयाम्यरिपक्षेऽपि जीवन्त्वेते पुरोहिताः ॥

(वि० पु० १ । १८ । ४१)

'यदि शत्रुमें भी मैं सचमुच विष्णुकी भावना करता हूँ तो ये पुरोहित जीवित हो जायँ।' इतना कहनेपर वे सब जीवित हो, उठ बैठे। एक दूसरे स्थानमें भगवान् कहते हैं—'जो व्यक्ति मुझे उपायरूपमें वरण करता है, वही मृत्युसे तरता है'—

'मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥'

(गीता ७ । १४)

आज जो लोग यों तर्क करते हैं कि सर्वेश्वरके सर्वत्र निवास करनेपर भी उनके अंशभूत जीव दुःखी क्यों हैं, इसका उत्तर यह है कि पिताकी अमर गोदमें प्रसुप्त बालक स्वप्नमें पितासे दूर होकर स्वाप्निक दुःखोंका अनुभव करने लगता है। इसी बातका संकेत 'या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी'(गीता २ । ६९) में भगवान्ने किया है। श्रुति भी कहती है—'उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत (कठो० १ । ३ । १४)—मोह-निद्रासे उठो, जागकर श्रेष्ठ पुरुषोंसे श्रीविष्णु-तत्त्वको जानो।' जो धर्मका अक्षय कवच पहनकर संत-भगवन्तके साथ चलता है, वह भ्रम-श्रमसे रहित ईश्वरके अमरपदको पा जाता है। यह तो सर्वमान्य सिद्धान्त है कि विष्णुभगवान् ही मुक्तिप्रदानमें एकमात्र उपाय हैं तथा मुक्तोंके भोग्य भी वे ही माने जाते हैं।

उपनिषद्में लिखा भी है कि 'रसमयको पाकर जीव आनन्दपूर्ण हो जाता है'—

'रसो वै सः रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति।'

(तैत्तिरीयोपनिषद्, ब्रह्मानन्दवल्ली ७ । १)

भगवान् विष्णुकी पावनी भक्तिमें निमज्जित आनन्दपूर्ण वैष्णवोंका जीवन धन्य है; उनकी महिमा अपार है। गङ्गावतरणकालमें भगीरथजीसे गङ्गाजीने कहा—'राजन्! भूमिपर पापियोंके पापसे लद जानेपर मैं कहाँ उसका प्रक्षालन करूँगी?' तब भगीरथजीने कहा—'तेष्वास्ते ह्यघभिद्धरिः। (भागवत ९ । ९ । ६)—वैष्णव जब आपमें स्नान करेंगे, तब वे आपके सारे पाप हर ले जायँगे और उनका वह सारा पाप हरिस्मरण-वडवानलमें भस्मसात् हो जायगा।' श्रीवैष्णवोंकी सत्ताका उद्घोष यमराज अपने दूतोंसे इन शब्दोंमें करते हैं कि 'प्रभुरहमन्यनृणामवैष्णवानाम्' (वि० पु०

३ । ७ । १४) 'मैं तो वैष्णवसे इतर व्यक्तियोंका ही उनके पाप-पुण्यके अनुसार दण्डप्रदाता हूँ; क्योंकि वैष्णवके पाप-पुण्य कुछ अवशेष नहीं रह जाते ।'

महामहिमामय करुणा-क्षमा-सागर भगवान् श्रीविष्णु इसलिये सृष्टि नहीं करते कि जीव गर्भवास-नरकवास, आधि-व्याधिका कष्ट भोगे एवं चौरासी लाख योनियोंमें भटकें; बल्कि उनका महान् उद्देश्य यह है कि जीवात्मा उनकी नवधाभक्ति या शरणागतिका आश्रय ले, कर्म-जन्य शरीरसे निकलकर विष्णुकी महान् ज्योतिको प्राप्त हो जाय तथा प्रभुके दिव्यानन्दका भागी बने ।

परतत्त्व भगवान् विष्णु

(लेखक—कोसलेशसदनपीठाधीश्वर रामानुजाचार्य जगद्गुरु स्वामी श्रीरामनारायणाचार्यजी महाराज)

मानव अनादिकालसे तत्त्वान्वेषी रहा है । तत्त्वान्वेषण-की दिशामें मानवीय प्रवृत्तियाँ सदा ही संलग्न एवं सफल रही हैं । कतिपय दार्शनिक मनीषियोंने प्रत्यक्ष-अनुमानादि प्रमाणोंसे ही तत्त्वज्ञान प्राप्त किया है, किंतु इन प्रमाणोंकी अपेक्षा तत्त्वनिर्धारणके लिये क्रान्तदर्शी महर्षियों एवं पूर्वाचार्योंने नित्य-निर्दोष अपौरुषेय वेदोंको ही प्रबल प्रमाण माना है । स्वाध्यायके बिना वेदार्थ-ज्ञान विद्वानोंको भी दुरूह है, अतः वेदार्थके निश्चयके लिये वेदानुकूल स्मृति, इतिहास और पुराणवचनोंका भी सहयोग लेना नितान्त आवश्यक है—

इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत् ।
बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रहरिष्यति ॥
(महाभारत, आदि० १ । २६७)

'वेदार्थो निश्चेतव्यः स्मृतीतिहासपुराणैः ।'
(लोकाचार्य)

वेदोंके परिशीलनसे हमें तीन प्रमुख तत्त्वोंका ज्ञान होता है—(१) साध्य-तत्त्व—परम साध्य परब्रह्म भगवान् नारायण (विष्णु), रूप परतत्त्व, (२) साधना-तत्त्व—नित्य भगवान्से सायुज्य हेतु उपासनाका तत्त्व और (३) साधक-तत्त्व—उपासक जीवात्माओंका तत्त्व ।

भगवदुन्मुखी मानवीय प्रवृत्ति (साधना)के अन्तिम लक्ष्य भगवान् विष्णु हैं । वेदोंमें इसका स्पष्ट उल्लेख है—

'तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः ।'
(ऋग्वेद १ । २२ । २०)

'भगवान् विष्णुके सर्वोत्कृष्ट परम प्राप्य स्वरूपका नित्य-मुक्त चेतन दर्शन करते रहते हैं ।'

'सोऽध्वनः पारमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥'
(कठोप० १ । ३ । ९)

'सन्मार्गपर चलनेवाला साधक प्रकृतिमण्डलसे परे विष्णुके उस सर्वश्रेष्ठ पदको प्राप्त कर लेता है ।'

भगवान् नारायणको ही सर्वश्रेष्ठ तत्त्व कैसे माना जाय ? इसका समाधान यह है कि परतत्त्वके तीन प्रमुख लक्षण हैं—जगत्कारण होना, मुमुक्षुओंका उपास्य होना एवं मोक्ष-प्रदाता होना । ये तीनों लक्षण भगवान् विष्णुमें ही घटित होते हैं । अतः भगवान् विष्णु ही परतत्त्व हैं ।

वेदोंके तात्पर्यका निश्चय करनेके लिये कारण-तत्त्वका विवेचन करना आवश्यक बताया गया है । वेदोंने जगत्कारणरूपमें भगवान् विष्णु—नारायणका ही उल्लेख किया है ।

आर्षवचनोंसे भी उसका समर्थन मिलता है—'एको ह वै नारायण आसीत् । (महोपनिषद् १ । १)—सृष्टिके आरम्भमें जगत्-कारण एक नारायण ही थे ।' 'दिव्यो देव एको नारायणः । (सुबालोपनिषद् ६ । १)—जगत्की रचना करके उसमें क्रीड़ा करनेवाले एक नारायण ही हैं ।' 'अथ पुरुषो ह वै नारायणोऽकामयत् । (नारायणोपनिषद् १ । १)—जगत्कारण-रूपसे प्रसिद्ध नारायणने सृष्टिविस्तारकी कामना की ।' "अप एव ससर्जादौ तेन नारायणः स्मृतः । (मनुस्मृति १ । ८, १०)—सृष्टिके आरम्भमें विष्णुने जलकी रचना करके उसमें निवास किया, इसलिये उनका नाम 'नारायण' पड़ा ।" 'अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा । (गीता ७ । ६)—मैं समस्त विश्वका उत्पादक एवं संहारकर्ता हूँ ।' 'विष्णोः सकाशादुद्भूतं जगत्तत्रैव च स्थितम् । (विष्णुपुराण १ । १ । ३१)—विष्णुसे ही संसार उत्पन्न हुआ है और उनमें ही स्थित है ।'

लोक-वेदमें प्रसिद्ध है कि जगत्स्रष्टिकर्ता पितामह ब्रह्मा और संहारक भूतभावन शंकर हैं । इस दशामें भगवान् नारायण जगत्के कारण, उत्पादक एवं

संहारक कैसे हो सकते हैं? वस्तुतः ब्रह्मा एवं रुद्रके रूपमें परब्रह्म नारायण ही सारे संसारका उत्पादन एवं संहार करते हैं, किंतु निमित्त होनेसे ब्रह्म-रुद्रको भी उत्पादक-संहारक कहा जाता है।

समस्त लोकों और देवोंके रक्षार्थ विष्णु ही अवतार लेते हैं। पर इस तत्त्वका निश्चय नहीं हो सकता कि सृष्टिकर्ता ब्रह्मा, पालनकर्ता विष्णु और संहारकर्ता शंकरमें श्रेष्ठ कौन है। इस तत्त्वका वास्तविक विवेचन न होनेके कारण ही परतत्त्व-निर्णयके लिये भृगुऋषिको भेजा गया और उन्होंने विष्णुका ही परत्व निर्णय किया। वेदाहरण एवं मधु-कैटभकी आपत्तिसे ब्रह्माकी रक्षा तथा भस्मासुरकी आपदासे भूतभावन रुद्रकी रक्षा भगवान् विष्णुने ही की। अतः उनमें सर्वकारणत्व-सर्वरक्षकत्व-प्रयुक्त परत्व सुस्थिर है। प्रह्लाद, नारद, पराशर, पुण्डरीक, वसिष्ठ, शुकदेव, वामदेव, सनक-सनन्दनादि, मुचुकुन्द, अर्जुन, कुलशेखर, शठकोप, सूरि आदि मुमुक्षुओंके उपास्य तथा मोक्षप्रद भी भगवान् विष्णु ही हैं।

'यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वम्'''मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये।' (श्वेताश्वतर० ६।१८)—ब्रह्माके रचयिता उस कारणपुरुष नारायणकी मैं मोक्षहेतु शरण लेता हूँ।' 'अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि'* (गीता १८।६६), 'तं वेधममलं विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते।'† (ना० पु०) 'आराध्य कस्त्वां ह्यपवर्गदं हरे' (भागवत १०।५१।५६)—इन श्रुति-इतिहास-पुराण-वचनोंमें भगवान्‌को मोक्ष-प्रदाता बताया गया है। गजेन्द्र, गृध्रराज, अजामिल, शबरी आदि हजारों भक्तोंको विष्णुने ही मोक्ष प्रदान किया। हरिवंशके अनुसार अपने अनन्य भक्त घण्टाकर्णको बदरिकाश्रममें भेजकर भूतभावन शंकरने विष्णुसे ही मुक्ति दिलायी। इस प्रकार परत्वके तीनों लक्षण (जगत्कारणत्व, मुमुक्षूपास्यत्व और मोक्षप्रदत्व) भगवान् विष्णुमें घटित होनेसे परतत्त्व भगवान् नारायण—विष्णु ही हैं। इन्हीं 'साध्य' विष्णुके लिये साधकगण विविध प्रकारकी साधना करते हैं और साधनाके सफल होनेपर विमुक्तात्माओंको प्राप्ति होती है—विष्णुलोककी, जहाँ नित्यानन्द है।

श्रीविष्णु किससे प्रसन्न होते हैं?

परापवादं पैशुन्यमनृतं च न भाषते। अन्योद्वेगकरं वापि तोष्यते तेन केशवः॥
परदारपरद्रव्यपरहिंसासु यो रतिम्। न करोति पुमान् भूप तोष्यते तेन केशवः॥
न ताडयति नो हन्ति प्राणिनोऽन्यांश्च देहिनः। यो मनुष्यो मनुष्येन्द्र तोष्यते तेन केशवः॥
देवद्विजगुरूणां च शुश्रूषासु सदोद्यतः। तोष्यते तेन गोविन्दः पुरुषेण नरेश्वर॥
यथाऽऽत्मनि च पुत्रे च सर्वभूतेषु यस्तथा। हितकामो हरिस्तेन सर्वदा तोष्यते सुखम्॥
यस्य रागादिदोषेण न दुष्टं नृप मानसम्। विशुद्धचेतसा विष्णुस्तोष्यते तेन सर्वदा॥
वर्णाश्रमेषु ये धर्माः शास्त्रोक्ता नृपसत्तम। तेषु तिष्ठन्नरो विष्णुमाराधयति नान्यथा॥

(श्रीविष्णुपुराण ३।८।१३—१९)

जो पुरुष दूसरोंकी निन्दा, चुगली अथवा मिथ्या-भाषण नहीं करता तथा ऐसा वचन भी नहीं बोलता जिससे दूसरोंको खेद हो, उससे निश्चय ही भगवान् केशव प्रसन्न रहते हैं। राजन्! जो पुरुष परस्त्री, परधन और दूसरोंकी हिंसामें प्रीति नहीं करता, उससे सर्वदा ही भगवान् केशव संतुष्ट रहते हैं। नरेन्द्र! जो मनुष्य किसी प्राणी अथवा [वृक्षादि] अन्य देहधारियोंको पीड़ित अथवा नष्ट नहीं करता, उससे श्रीकेशव संतुष्ट रहते हैं। जो पुरुष देवता, ब्राह्मण और गुरुजनोंकी सेवामें सदा तत्पर रहता है, नरेश्वर! उससे गोविन्द सदा प्रसन्न रहते हैं। जो व्यक्ति स्वयं अपने और अपने पुत्रोंके समान ही समस्त प्राणियोंका भी हित-चिन्तक होता है, वह सुगमतासे ही श्रीहरिको प्रसन्न कर लेता है। नृप! जिसका चित्त रागादि दोषोंसे दूषित नहीं है, उस विशुद्ध-चित्त पुरुषसे भगवान् विष्णु सदा संतुष्ट रहते हैं। नृपश्रेष्ठ! शास्त्रोंमें जो-जो वर्णाश्रम-धर्म कहे गये हैं, उन-उनका ही आचरण करके पुरुष विष्णुकी आराधना कर सकता है, और किसी प्रकार नहीं।

* भगवान् विष्णुके ही अवतार श्रीकृष्ण अर्जुनसे कहते हैं—'मैं तुम्हें समस्त पापोंसे छुड़ा दूँगा, तुम सोच न करो।'

† परमवेध भगवान् विष्णुका सदा ध्यान करनेवाला सदाके लिये मुक्त हो जाता है।

भगवान् श्रीविष्णुका परत्व

(लेखक—वैष्णवपीठाधीश्वर १०८ श्रीविट्ठलेशजी महाराज)

सर्वव्यापकको 'विष्णु' कहते हैं। 'विष्णु' शब्दकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है—(१) **वेवेष्टि व्याप्नोतीति विष्णुः।** (२) 'विषेः किच'—इस उणादिसूत्रसे व्याप्ति अर्थवाली 'विष्लृ' धातुसे 'नु' प्रत्यय करनेपर 'विष्णु' शब्दकी निष्पत्ति होती है। जो तत्त्व स्थावर-जंगमके कण-कणमें प्रविष्ट है, परिव्याप्त है, उसे ही 'विष्णु' कहते हैं।

'अग्निर्वै देवानामवमो विष्णुः परमः', (ऐत० ब्रा० १।१) **'यज्ञो वै विष्णुः।'** (शत० ब्रा० १।१।२।१३) आदि श्रुतिवचन सिद्ध करते हैं कि चराचरमें समाविष्ट भगवान् विष्णुकी महिमा, चाहे जिस रूपसे हो, वेदोंके कालसे गायी गयी है।

'य आदित्ये तिष्ठन्नादित्यादन्तरो यमादित्यो न वेद यस्यादित्यः शरीरम्।' (बृहदारण्यक० ३।७।९)

'अन्तर्याम्यधिदैवादिषु तद्धर्मव्यपदेशात्।' (ब्र० सू० १।२।१८)

—वाक्योंसे प्रमाणित होता है कि विष्णुभगवान् सभीके अन्तर्यामी हैं। 'जिसे आधिदैविक तथा आध्यात्मिक आदि समस्त वस्तुओंमें अन्तर्यामी बतलाया गया है, वह परब्रह्म ही है; क्योंकि वहाँ उसीके धर्मोंका वर्णन है।' आदि विष्णुका अन्तर्यामी कोई नहीं है; वे सर्वव्यापी, परिपूर्ण, अनन्त कल्याणगुणोंके निधान हैं।

सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीकृष्ण ही 'विष्णु' शब्दसे व्यवहृत होते हैं। वेद, वेदान्त, स्मृति, पुराण, संहिता इत्यादि आर्ष एवं धार्मिक ग्रन्थोंमें वे ही ब्रह्म, परमात्मा, भगवान् आदि नामान्तरोंसे सम्बोधित होते हैं। **'बृहत्त्वाद् बृंहणत्वाद् वा ब्रह्म'**, **'आप्नोतीत्यात्मा'**—इन व्युत्पत्तियोंसे 'ब्रह्म', 'विष्णु', 'परमात्मा' शब्द समानार्थक ही हैं।

'ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते॥'
(भाग० १।२।११)

'परं ब्रह्म तु कृष्णो हि सच्चिदानन्दकं बृहत्।'
(श्रुति)

'कृष्णमेनमवेहि त्वमात्मानमखिलात्मनाम्।'
(भा० १०।१४।५५)

—इन वाक्योंसे श्रीकृष्णभगवान् ही परब्रह्म-पद-वाच्य हैं। अन्यथा गीतामें अर्जुन कृष्णसे **'परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान्।'** (१०।१२) वचन क्यों कहते। अतएव भगवान् श्रीकृष्ण ही सभी अवतारोंके बीजरूप होनेसे अवतारी हैं। राम, नृसिंह, वामन, वराह, मत्स्य-कूर्मादि अवतार इन्हींके अंश-कला-आवेशादि रूपसे पुराणादिकोंमें यत्र-तत्र वर्णित हैं। पुराणमूर्धन्य श्रीमद्भागवतमें तो स्पष्टतः श्रीकृष्णको स्वयं-भगवान् अवतारी बताया गया है—**'एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्॥'** (१।३।२८) भागवतके हृदयरूपी दशमस्कन्धमें ब्रह्मादि देववृन्दोंने देवकीके गर्भमें स्थित अखिलब्रह्माण्डनायक श्रीकृष्णको स्वयं अवतारी घोषित किया है—

'मत्स्याश्वकच्छपनृसिंहवराहहंसराजन्यविप्रविबुधेषु कृतावतारः।'
(१०।२।४०)

भक्तप्रवर महाराजा परीक्षित्ने भी दशमस्कन्धके उपक्रममें श्रीशुकदेवजीसे प्रश्नकालमें श्रीकृष्णके लिये 'विष्णु' शब्द प्रयुक्त किया है—**'विष्णोर्वीर्याणि शंस नः॥'** (भा० १०।१।२)। अतः सिद्ध हुआ कि 'विष्णु' शब्द भगवान् श्रीकृष्णका वाचक है। ब्रह्मसंहितामें भी नाना अवतारोंका मूल कारण श्रीकृष्णको ही ठहराया गया है और उन्हें 'परमपुरुष', 'आदिपुरुष' शब्दोंसे पुकारा गया है—

रामादिमूर्तिषु कलानियमेन तिष्ठ-
न्नानावतारमकरोद् भुवनेषु किंतु।
कृष्णः स्वयं समभवत् परमः पुमान्यो
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥
(ब्र० सं० ५।४८)

श्रीकृष्णका व्यापक होकर भी अवतार लेना, आवरण-रहित होकर भी कुक्षि आदिसे आवृत होना, अचल होकर भी चलना, अदृश्य होकर भी दृश्य होना—ये सभी परस्पर-विरुद्ध बातें, विरुद्ध-धर्माश्रयी, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिसम्पन्न, सर्वैश्वर्यमय परमेश्वर श्रीकृष्णभगवान्में असम्भावनीय नहीं हैं। इन्हीं कृष्णका आर्षकालीन नाम 'विष्णु' है तथा सभी देवोंमें प्रमुख-रूपसे विष्णुका ही वर्णन श्रुति-स्मृति-पुराणादिमें उपलब्ध है। **'तद्विष्णोः परमं पदम्'**, अथर्वैतर्हि विष्णुः' (निरुक्त), **'विष्णु-मुखा वै देवाः'** (तै० सं० ५।२।११)—देवताओंमें विष्णु मुख्य हैं।' **'मूलं हि विष्णुर्देवानां यत्र धर्मः**

सनातनः ।' (भा० १० । ४ । ३९), 'जन्माद्यस्य यतः ।' (ब्रह्मसूत्र १ । १ । २)—"इस जगत्के जन्म आदि (उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय) जिससे होते हैं, वह 'ब्रह्म' है।"—इत्यादि श्रुति-पुराणोक्त वाक्योंसे सम्पूर्ण देवताओंके मूल 'विष्णु' सिद्ध होते हैं। वे ही सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले हैं। विष्णु ही सर्वकारणोंके कारण हैं। जिसका परमपद योगीजनोंद्वारा ध्यान करनेयोग्य है तथा वाणीका विषय नहीं है; जिससे प्रकृति और पुरुष उत्पन्न हुए हैं और जो स्वयं विश्वरूप परमेश्वर है, वही 'विष्णु-तत्त्व' है। चराचर जगत्का निर्माण करनेवाले विष्णु ही हैं।

'सर्वं जगदिदं विष्णुर्विष्णुः सर्वस्य कारणम् ।'
(नारदपुराण)

न शब्दगोचरं यस्य योगिध्येयं परं पदम् ।
यतो यश्च स्वयं विश्वं स विष्णुः परमेश्वरः ॥
(विष्णुपु० १ । १७ । २२)

यतः प्रधानपुरुषौ यतश्चैतच्चराचरम् ।
कारणं सकलस्यास्य स नो विष्णुः प्रसीदतु ॥
(विष्णुपु० १ । १७ । ३०)

श्रीकृष्ण-तत्त्वके मननशील सनकादिक मुनियोंने ब्रह्माजीसे प्रश्न किया था—'कः परमो देवः ।—कौन श्रेष्ठ देव है ?' इसके उत्तरमें ब्रह्माजीने कहा—'कृष्णो वै परमं दैवतम् ।—श्रीकृष्ण ही सर्वश्रेष्ठ देवता हैं।' गीताजीमें भी श्रीकृष्णने स्वयं श्रीमुखसे कहा है—'मत्तः परतरं नान्यत् ।' (७ । ७) अतः श्रीविष्णु और श्रीकृष्णमें नाम-मात्रका भेद है, अपितु भेद ही नहीं। वे ही अखिलब्रह्माण्डनायक, सर्वज्ञ और सर्वशक्तियोंसे सम्पन्न हैं तथा उनकी अचिन्त्य-अनन्त शक्तियाँ स्वाभाविक हैं, जो सारे जगत्का निर्वाह करती हैं। 'श्वेताश्वतरोपनिषद्' (६ । ८) में कहा गया है—'परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च ।' भगवान् विष्णुके आदेश बिना कोई भी शक्ति स्वतन्त्ररूपसे कार्य करनेमें समर्थ नहीं है।

प्रभुकी अनन्त शक्तियोंमें तीन शक्तियाँ प्रमुख हैं—आह्लादिनी, संधिनी और संवित् । जो अपने सौन्दर्य, माधुर्य एवं सौष्ठवादि गुणोंसे स्वयं परमानन्दस्वरूप श्रीकृष्णभगवान्को आह्लादित करती है, वह 'आह्लादिनी-शक्ति' श्रीराधिकाजी हैं। संधिनी-शक्ति लीलाके परिकर, धाम, शय्या, आसन, आभूषण, मित्र एवं भृत्य आदिके रूपमें परिणत हो जाती है। यही अनेकों अवतारोंकी कारण है। संवित्-शक्ति ही ज्ञानशक्ति है और ज्ञानशक्तिको ही क्षेत्रज्ञ शक्ति कहते हैं। इच्छाशक्तिके अन्तर्गत मायाशक्ति है। वह सत्त्व, रज और तमोगुणरूपा है। इसका नामान्तर 'प्रकृति' है तथा वह बहिरङ्ग और जड है। जड होनेपर भी भगवान्की दृष्टि पड़नेसे वह अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोंकी रचना करती है। क्रियाशक्तिको 'लीलाशक्ति' कहते हैं। यह रहस्य 'श्रीराधोपनिषद्'में संनिहित है।

श्रीमद्भागवत, दशम स्कन्धके ८९वें अध्यायकी कथा है। तीनों देवताओंमें कौन देव श्रेष्ठ है, इस विषयका निश्चय करनेके लिये सारस्वत मुनियोंने भृगुजीको निर्णायक नियुक्त किया। वे ब्रह्माजी एवं शिवजीकी परीक्षा लेकर वैकुण्ठधाम गये। वहाँ लक्ष्मीजीकी गोदमें सिर रखकर शयन करते हुए भगवान् विष्णुको देखकर भृगुजीने उनकी छातीमें जोरसे लात मारी। भगवान्ने बड़े आदरसे उनके चरण छूए तथा क्षमा-याचना की। यह आश्चर्य देखकर भृगुजीने लौटकर मुनियोंसे भरी सभामें सब वृत्तान्त कह सुनाया तथा सभीने एक स्वरसे विष्णुभगवान्को सर्वश्रेष्ठ देव घोषित किया। सभासद् मुनियोंके सभी संदेह मिट गये तथा वे विष्णुभगवान्को ही श्रद्धा-भक्तिसे भजकर सद्गतिको प्राप्त हुए—

तन्निशम्याथ मुनयो विस्मिता मुक्तसंशयाः ।
भूयांसं श्रद्दधुर्विष्णुं यतः शान्तिर्यतोऽभयम् ॥
(भा० १० । ८९ । १५)

'नास्ति विष्णुसमं दैवम्' (नारदपु० ६ । ५८)—इस वचनके अनुसार विष्णुके समान कोई देव नहीं है। इसी कारण धर्मराज युधिष्ठिरके राजसूय-यज्ञमें सहदेवके प्रस्तावको सर्वसम्मतिसे स्वीकार कर कृष्णभगवान्की अग्रपूजा की गयी थी—यह बात महाभारतादिमें प्रसिद्ध है। कार्य-कारणमें अभेद होनेसे जो कुछ देखने-सुननेमें आता है, वह सब विष्णुमय ही है—'सर्वं विष्णुमयं जगत् ।' धर्म-कर्म, कर्म-फल, फलभोक्ता, कार्य-करण, सम्प्रदान, अपादान, सम्बन्ध, अधिकरण, मूल एवं भौतिक पदार्थ, जड-चेतन जो कुछ है, सब विष्णुस्वरूप ही है, उनके सिवा और कुछ नहीं—

यत्र येन यतो यस्य यस्मै यद् यद् यथा यदा ।
स्यादिदं भगवान् साक्षात् प्रधानपुरुषेश्वरः ॥
(भा० १० । ८५ । ४)

ज्योतींषि विष्णुर्भुवनानि विष्णुर्वनानि विष्णुर्गिरयो दिशश्च।
नद्यः समुद्राश्च स एव सर्वं यदस्ति यन्नास्ति च विप्रवर्य॥
(विष्णुपु० २। १२। ३८)

भगवान् श्रीकृष्ण ही मोक्षदाता होनेसे 'मुकुन्द' नामसे विभूषित हैं—'मुक्तिं ददातीति मुकुन्दः।' अतएव राजा परीक्षित्‌ने श्रीशुकदेवजीसे प्रश्न करते समय मुकुन्द-पदका प्रयोग किया है—'कस्मान्मुकुन्दो भगवान् पितुर्गेहाद् व्रजं गतः।' (भा० १०। १। ९) मुकुन्द-पदवाच्य श्रीकृष्ण-भगवान्‌के भजनसे ही मोक्षकी प्राप्ति होती है। अन्य देव भोग-ऐश्वर्य-दाता हैं। इसीलिये शिवजीका अनन्य भक्त घण्टाकर्ण मोक्षकी प्राप्तिके लिये शिवजीसे प्रेरित होकर नारायणकी शरणमें गया। शुद्ध सात्त्विक विष्णुके सेवनसे मोक्षकी उपलब्धि होती है।

वैदिक श्रीसूक्तमें भगवती श्रीलक्ष्मी

(लेखक—शास्त्री श्रीपाण्डुरङ्ग वैजनाथ आठवले महाराज)

वैदिक ऋषियोंने भूतधात्री, सर्वसहा, आदिजननी, कारुण्यमयी, आत्यन्तिक प्रेममूर्ति, दुःख-दारिद्र्य और दैन्यका नाश करनेवाली, जीवनको बनानेवाली, आनन्द प्रदान करनेवाली तथा जीवनको आकार देनेवाली आदिम शक्तिको 'लक्ष्मी' अथवा 'श्री' कहकर उसकी अपार महिमाका गान किया है। वैदिक श्रीसूक्तमें 'मा'का अति सुन्दर चित्रण है। लक्ष्मी माताका यह अलौकिक और अत्यन्त हृदयंगम चित्रण है।

अग्निको बीचमें रखकर अग्निके माध्यमसे ऋषि कहते हैं—'हे जातवेदो मे लक्ष्मीं आवह'—हे अग्निदेव! मेरे लिये लक्ष्मीको बुलाओ।' ऋषिके शब्दके पीछे तपश्चर्या थी, इस कारण 'मे आवह'—कहनेके साथ लक्ष्मी सामने आकर खड़ी हो गयीं। ऋषिने एकाग्रचित्तसे लक्ष्मीका जो रूप देखा, उसका वर्णन किया। ऋषिने अग्निसे कहा था—

'हे जातवेदः हिरण्यवर्णां हरिणीं सुवर्णरजतस्रजां चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं मे आवह।' (१)

'ऋषिने लक्ष्मीको 'हिरण्यवर्णा'—सोनेकी-सी कान्तिसे युक्त देखा। वे 'हरिणी' अर्थात् आह्लाददायक थीं, 'सुवर्णरजतस्रजा'—सोने और चाँदीकी मालाओंसे सुशोभित हो रही थीं; 'चन्द्रा'—चन्द्रके समान शीतल प्रकाश दे रही थीं और 'हिरण्मयी' अर्थात् तैजस तत्त्वसे ओत-प्रोत थीं।

अगले मन्त्रमें ऋषि कहते हैं—

तां म आवह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम्।
यस्यां हिरण्यं विन्देयं गामश्वं पुरुषानहम्॥ (२)

'मुझे अनपगामिनी लक्ष्मी चाहिये। अर्थात् जो लक्ष्मी मेरे पास आये, वह स्थायीरूपमें रहे।' थोड़ा विचार करनेपर जान पड़ता है कि इस जगत्‌में जो भौतिक वैभव है, वह गतिशील है। अनपगामिनी लक्ष्मीका दूसरा अर्थ है—'जो लक्ष्मी भगवान्‌को नहीं छोड़तीं, उन लक्ष्मीको चाहिये।' यदि लक्ष्मीके आनेपर भगवान्‌को भूल जाना पड़े तो वह लक्ष्मी मुझे नहीं चाहिये। अनपगामिनी लक्ष्मीका तीसरा अर्थ है कि ऋषि यहाँ अविनश्वर ऐश्वर्य माँगते हैं। जो नश्वर न हो, इस प्रकारके आत्मिक ऐश्वर्यकी यहाँ माँग है। लक्ष्मी अनपायिनी हों और उनके साथ सोना, गायें, अश्व और पुरुष प्राप्त हों। वैदिकलोग लक्ष्मीका लक्षण इस प्रकार कहते हैं—

ज्ञानैश्वर्यसुखारोग्यधनधान्यजयादिकम्।
लक्ष्म यस्याः समुद्दिष्टं सा लक्ष्मीरिति कथ्यते॥

'ज्ञान हो और ऐश्वर्य हो, ज्ञानैश्वर्य अर्थात् प्रत्येक क्रिया विवेकपूर्ण रीतिसे करनेकी वृत्ति, धन-धान्य और जय होना चाहिये; ये लक्ष्मीके लक्षण हैं।'

हमारी प्रत्येक क्रिया विवेकपूर्ण रीतिसे होनी चाहिये, अविवेकसे नहीं; क्योंकि—

सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम्।
वृणुते हि विमृश्यकारिणं गुणलुब्धाः स्वयमेव सम्पदः॥
(किरातार्जुनीय २। ३०)

अविवेक परम आपत्तिका स्थान है। सम्पत्ति गुणलुब्धा है। लक्ष्मीके विषयमें विवेकपूर्ण क्रिया क्या है? लक्ष्मीके साथ व्यवहार करनेमें तीन बातें आती हैं—दान, भोग और संचय।

वैदिक ऋषि कहते हैं कि 'इन तीनों बातोंमें मनुष्यको विवेकसे काम लेना चाहिये। जो मनुष्य दान करते समय जवान बन जाता है, भोगते समय बालक और सँभालते समय वृद्ध—वही मनुष्य लक्ष्मीके साथ ज्ञानैश्वर्यके सम्बन्धको निभा सकता है। जवान बेफिक्र होता है; अतएव लक्ष्मी आये तो जवानके समान बेफिक्र होकर दान-पुण्यादिमें उसका उपयोग करना चाहिये। लक्ष्मीको भोगनेके समय बालक बन जाना चाहिये। बालक सदा ही आत्मस्वार्थ-परायण (ego-centric) होता है। उसे केला दो तो किसीको देगा नहीं, तुरंत खाने लगेगा। लक्ष्मीको सँभालते समय वृद्ध बनना चाहिये। इस प्रकारकी क्रियासे जो लक्ष्मीको जोड़ता है, वह 'ज्ञानैश्वर्यसे युक्त' कहलाता है।

मनुष्यको जिससे सुख मिले, वह 'लक्ष्मी' है। सुख मनकी समृद्धि है। वस्तुसे सुख नहीं मिलता, सुख मनमें होता है। जो मनसे सबल होता है, समृद्ध होता है, उसके पास लक्ष्मी–ऐश्वर्य है, यह कहा जाता है। जैसे ...सा कमानेके लिये बाजार होता है, वैसे ही मनकी समृद्धिके लिये स्वाध्याय है; इसके बिना मनकी समृद्धि टिक नहीं सकती।

जहाँ धन-धान्य और विजयी जीवन है, वहाँ लक्ष्मी है। साथ ही शरीरका आरोग्य अच्छा होना चाहिये। यह लक्ष्मीके साथ स्वयं आ जाता है। अनपगामिनी लक्ष्मी माँगनेके बाद ऋषि माँगते हैं—

अश्वपूर्वां रथमध्यां हस्तिनादप्रमोदिनीम्।
श्रियं देवीमुप ह्वये श्रीर्मा देवी जुषताम्॥ (३)

'भगवन्! मेरे घर ऐसी लक्ष्मी पधारें, जो रथपर सवार हों और उनके आगे घोड़े दौड़ते हों, जो हाथीके ...को सुनकर आह्लादित हों। इस प्रकारकी सामर्थ्ययुक्त श्री–...-सम्पत्ति मुझे दो।' ऋषिकी इस माँगमें सम्पत्तिके साथ सत्ता भी है। सत्ता महान् वैभव है। मुझे सत्ता चाहिये, शक्ति चाहिये। अश्वशक्ति चपल शक्ति है, वह गतिमान् है। लक्ष्मीका वाहन हाथी है, इसका कारण है, उसकी मदोन्मत्तता। मनुष्यके पास थोड़ा-बहुत 'अहं' तो होना ही चाहिये। भगवान् ज्योतिर्मय हैं, तेजोमय हैं; निस्तेज मानव उनके पास कैसे जा सकता है। इस मन्त्रमें ऋषिने इसी कारण राजलक्ष्मी माँगी है।

जगज्जननीकी प्रभाका वर्णन करते-करते ऋषिकी वाणी कुण्ठित हो जाती है। वे स्तुति करते हैं—

चन्द्रां प्रभासां यशसा ज्वलन्तीं श्रियं लोके देवजुष्टामुदाराम्।
तां पद्मिनीमीं शरणमहं प्रपद्येऽलक्ष्मीर्मे नश्यतां त्वां वृणे॥ (४)

सारी भारतीय संस्कृति इस मन्त्रमें दीख पड़ती है। जीवके यशको देखकर मा (लक्ष्मी) दीप्तिमती होती हैं। ऋषि कहते हैं कि 'महालक्ष्मी देवजुष्टा हैं, उनका देवता आश्रय लेते हैं। सात्त्विक विचारके लोगोंको चाहिये कि लक्ष्मीको स्वीकार करें।' आज एक भ्रान्त धारणा फैली हुई है कि अपनेको सात्त्विक बनाना हो तो लक्ष्मीकी ओर ध्यान न दे। मा उदारा हैं। जिसमें कर्तृत्व हो, अन्तःकरणमें आत्म-विश्वास और ईश-विश्वास हो, वही उदार हो सकता है। मनमें स्वार्थकी भावना रखकर जो दान दिया जाता है, उसमें औदार्य नहीं होता। लक्ष्मी उदारा हैं, उदार मनुष्यके पास रहती हैं, वही उनका प्रिय होता है। लक्ष्मी विष्णु-पत्नी हैं। ऋषि कहते हैं कि "मुझे ऐसी लक्ष्मी चाहिये, 'जो विशाल अर्थमें प्रभुके कार्यमें लगी रहे; ऐसी पद्मिनी लक्ष्मी मेरे घर आयें—'तां पद्मिनीं ईं अहं शरणं प्रपद्ये।' अन्तमें, मा! मैं तुम्हारे शरण आया हूँ। आप मेरी भौतिक, बौद्धिक और मानसिक कंगाली-को नष्ट कर दें।'

नमस्कार—

विष्णुपत्नीं क्षमां देवीं माधवीं माधवप्रियाम्।
लक्ष्मीं प्रियसखीं भूमिं नमाम्यच्युतवल्लभाम्॥ (२५)

'मा विष्णुपत्नी, क्षमारूपा देवी माधवी, माधवप्रिया, अच्युतवल्लभा, लक्ष्मीजीको तथा उनकी प्रियसखी भूदेवीको मैं नमस्कार करता हूँ।'

लक्ष्मीजीका गायत्री-मन्त्र—

'ॐ महालक्ष्म्यै च विद्महे विष्णुपत्न्यै च धीमहि। तन्नो लक्ष्मीः प्रचोदयात्॥' (२६)

'हम महालक्ष्मीको जानते हैं, उन विष्णुपत्नीका ध्यान करते हैं। वे लक्ष्मी मेरी बुद्धिको सन्मार्गमें लगायें।'

बंगालमें वैष्णवधर्मकी धारा

(लेखक—श्रीरासमोहन चक्रवर्ती एम्० ए०, पी-एच्० डी०, पुराणरत्न, विद्याविनोद)

प्राचीनवङ्गमें वैष्णवधर्म (चतुर्थ ई० शतीसे १३-वीं ई० शतीतक)

अति प्राचीनकालसे भारतवर्षमें विष्णूपासनामूलक वैष्णव-धर्मका प्रचलन रहा है। प्राचीनतम ऋग्वेदके मन्त्रोंमें ऋषिलोग विष्णुकी उपासना करते थे, भोगैश्वर्य-प्रदानके निमित्त विष्णुसे प्रार्थना करते थे और समय-समयपर निष्काम भावसे विशुद्ध भक्तिपूत चित्तसे विष्णुकी महिमाका कीर्तन करके उनके श्रीचरणोंमें आत्मसमर्पण करते थे। हमको ऋग्वेदके प्रथम मण्डलके सूक्त २२ की १६ वीं ऋचामें सर्वप्रथम विष्णुका उल्लेख मिलता है। इस ऋचासे अगली ६ ऋचाओंमें विष्णुकी जो महिमा कीर्तित हुई है, उससे हमको वैदिक युगमें ही विष्णुकी आराधनाका प्रभाव, प्रसार और प्रतिपत्तिका पर्याप्त अवभास प्राप्त होता है। बुद्धभगवान्के चरण-चिह्नकी पूजाके पहले ही गयामें जो विष्णु-पाद-पद्मकी पूजा प्रचलित थी, उसको निरुक्तकार यास्कके द्वारा उद्धृत ऊर्णवाभके 'समारोहणे विष्णुपदे गयशिरसीत्यौर्णवाभः'—इस वचनसे काशीप्रसाद जायसवालने प्रमाणित किया है। पण्डितोंने यास्कका समय ई०पूर्व अष्टम शताब्दी माना है। ल्यूडस आदि पाश्चात्य पण्डितोंने प्रमाणित किया है कि 'नाना-घाट और घोसान्तिके शिलालेखोंने द्वितीय शताब्दी ई०पूर्वमें भारतमें भागवत-धर्मके अस्तित्वकी घोषणा की है।'

(क) गुप्तकाल एवं गुप्तोत्तर युगमें बङ्गदेशमें वैष्णवधर्म (चतुर्थसे अष्टम शताब्दी खिष्टाब्द)

वङ्गदेशमें वैष्णवधर्मका प्रवर्तन और प्रचलन ठीक कबसे आरम्भ होता है, इस विषयमें सुस्पष्ट प्रमाण न होनेपर भी ऐतिहासिक गवेषणासे ज्ञात होता है कि वङ्गदेशका आर्यीकरण गम्भीररूपसे तथा सार्थकरूपमें आरम्भ होता है गुप्तयुगमें—ईसाकी चौथी शताब्दीमें, जिस समय चन्द्रगुप्त प्रथम और समुद्रगुप्तने वङ्गदेशतक विजय करके विशाल गुप्त-साम्राज्यकी स्थापना की थी। उस समय वङ्गदेशमें किसी अंशमें स्वाधीन राज्य था। गुप्त सम्राट् परम वैष्णव थे। इसी कारण उनके समयसे विष्णुमन्दिरोंकी प्रतिष्ठा और विष्णुपूजाके लिये दानकी व्यवस्था क्रमशः बढ़ने लगी। चौथी शताब्दीमें ही हम देखते हैं कि वङ्गदेशके पश्चिमी भागकी बाँकुड़ा नगरीसे १२ मील उत्तर-पश्चिममें अवस्थित सुसुनिया नामक पर्वतकी गुहामें एक लेख उत्कीर्ण है और उस गुहाके पास खुदाईमें एक चक्र निकला है। उससे ज्ञात होता है कि 'राजा चन्द्रवर्मा चौथी शताब्दीमें राज्य करते थे और वे चक्रस्वामी अर्थात् विष्णुके उपासक थे।' पञ्चम शताब्दीकी उत्कीर्ण लिपिसे ज्ञात होता है कि 'उस समय बोगड़ा जिलामें—यहाँतक कि सुदूर हिमालयके शिखरपर गोविन्दस्वामी, श्वेत वराहस्वामी, कोकामुखस्वामी आदिके मन्दिर प्रतिष्ठित हुए थे। इन सबमें विष्णुकी ही मूर्त्तियाँ थीं।' सप्तम शताब्दीके उत्कीर्ण लोकनाथके ताम्रशासनसे ज्ञात होता है कि 'वङ्ग-देशके पूर्वभागके त्रिपुरा जनपदस्थित भगवान् अनन्तनारायणके मन्दिरमें भगवान्की पूजा होती थी।' इसी सप्तम शताब्दीके त्रिपुरास्थित कैलान-ताम्रशासनमें हम देखते हैं कि 'श्रीधाका रात परम वैष्णव थे और पुरुषोत्तमके उपासक थे।' केवल लिपिगत उल्लेख ही नहीं, साथ-साथ वङ्गदेशके विभिन्न अञ्चलोंसे प्राप्त विभिन्न विष्णुमूर्तियोंका साक्ष्य भी विद्यमान है। गुप्तकाल और गुप्तोत्तरकालमें वङ्गदेशके विभिन्न भागोंमें विष्णुमूर्त्तियाँ अनन्त-शय्यापर लेटी हुई विष्णुमूर्तियाँ, गरुड़-वाहन तथा सपरिवार विष्णुमूर्तियों आदिका संधान मिलता है। इन प्रतिमाओंकी रूप-कल्पना तथा लक्षणोंकी आलोचना करनेसे स्पष्ट ज्ञात होता है कि पौराणिक विष्णु अपनी निजी मर्यादामें तथा परिवारके साथ सारे लक्षण और चिह्न लेकर वङ्गदेशमें आकर आसन ग्रहण कर चुके हैं गुप्तकालमें ही। गुप्तयुगके राजा-महाराजा अपने परिचयमें साधारणतया अपने लिये 'परम भागवत' पदका व्यवहार करते थे। जान पड़ता है, वे सब वैष्णव भागवतधर्ममें दीक्षित थे। यही भागवतधर्म गुप्तकाल तथा गुप्तोत्तरकालमें वङ्गदेशमें फैला और पालवंशी राजाओंके युगमें सुप्रतिष्ठित हुआ।

वैष्णवधर्मके साथ घनिष्ठ सम्बन्धयुक्त कृष्णायण और रामायणकी कथा गुप्तकाल और गुप्तोत्तरकालके बाद ही वङ्ग-देशमें प्रसरित हुई। इसका स्पष्ट प्रमाण मिलता है, राजशाही जिलेके पहाड़पुर-मन्दिरमें लगे हुए पक्की मिट्टी और पत्थरके फलकोंपर। पहाड़पुर-मन्दिरकी दीवारोंपर श्रीकृष्णकी बाललीलाके अनेक प्रसङ्ग उत्कीर्ण हैं। रामायण-कथाके भी कई चित्र हैं—जैसे वानर-सेनाके द्वारा सेतु-बन्ध,

वैदिक ऋषि कहते हैं कि 'इन तीनों बातोंमें मनुष्यको विवेकसे काम लेना चाहिये। जो मनुष्य दान करते समय जवान बन जाता है, भोगते समय बालक और सँभालते समय वृद्ध—वही मनुष्य लक्ष्मीके साथ ज्ञानैश्वर्यके सम्बन्धको निभा सकता है। जवान बेफिक्र होता है; अतएव लक्ष्मी आये तो जवानके समान बेफिक्र होकर दान-पुण्यादिमें उसका उपयोग करना चाहिये। लक्ष्मीको भोगनेके समय बालक बन जाना चाहिये। बालक सदा ही आत्मस्वार्थ-परायण (ego-centric) होता है। उसे केला दो तो किसीको देगा नहीं, तुरंत खाने लगेगा। लक्ष्मीको सँभालते समय वृद्ध बनना चाहिये। इस प्रकारकी क्रियासे जो लक्ष्मीको जोड़ता है, वह 'ज्ञानैश्वर्यसे युक्त' कहलाता है।

मनुष्यको जिससे सुख मिले, वह 'लक्ष्मी' है। सुख मनकी समृद्धि है। वस्तुसे सुख नहीं मिलता, सुख मनमें होता है। जो मनसे सबल होता है, समृद्ध होता है, उसके पास लक्ष्मी—ऐश्वर्य है, यह कहा जाता है। जैसे सा कमानेके लिये बाजार होता है, वैसे ही मनकी समृद्धिके लिये स्वाध्याय है; इसके बिना मनकी समृद्धि टिक नहीं सकती।

जहाँ धन-धान्य और विजयी जीवन है, वहाँ लक्ष्मी है। साथ ही शरीरका आरोग्य अच्छा होना चाहिये। यह लक्ष्मीके साथ स्वयं आ जाता है। अनपगामिनी लक्ष्मी माँगनेके बाद ऋषि माँगते हैं—

अश्वपूर्वां रथमध्यां हस्तिनादप्रमोदिनीम्।
श्रियं देवीमुप ह्वये श्रीर्मा देवी जुषताम्॥ (३)

'भगवन्! मेरे घर ऐसी लक्ष्मी पधारें, जो रथपर सवार हों और उनके आगे घोड़े दौड़ते हों, जो हाथीके [illegible] को सुनकर आह्लादित हों। इस प्रकारकी सामर्थ्ययुक्त श्री—[illegible]-सम्पत्ति मुझे दो।' ऋषिकी इस माँगमें सम्पत्तिके साथ सत्ता भी है। सत्ता महान् वैभव है। मुझे सत्ता चाहिये, शक्ति चाहिये। अश्वशक्ति चपल शक्ति है, वह गतिमान् है। लक्ष्मीका वाहन हाथी है, इसका कारण है, उसकी मदोन्मत्तता। मनुष्यके पास थोड़ा-बहुत 'अहं' तो होना ही चाहिये। भगवान् ज्योतिर्मय हैं, तेजोमय हैं; निस्तेज मानव उनके पास कैसे जा सकता है। इस मन्त्रमें ऋषिने इसी कारण राजलक्ष्मी माँगी है।

जगज्जननीकी प्रभाका वर्णन करते-करते ऋषिकी वाणी कुण्ठित हो जाती है। वे स्तुति करते हैं—

चन्द्रां प्रभासां यशसा ज्वलन्तीं श्रियं लोके देवजुष्टामुदाराम्।
तां पद्मिनीमीं शरणमहं प्रपद्येऽलक्ष्मीर्मे नश्यतां त्वां वृणे॥(४)

सारी भारतीय संस्कृति इस मन्त्रमें दीख पड़ती है। जीवके यशको देखकर मा (लक्ष्मी) दीप्तिमती होती हैं। ऋषि कहते हैं कि 'महालक्ष्मी देवजुष्टा हैं, उनका देवता आश्रय लेते हैं। सात्त्विक विचारके लोगोंको चाहिये कि लक्ष्मीको स्वीकार करें।' आज एक भ्रान्त धारणा फैली हुई है कि अपनेको सात्त्विक बनाना हो तो लक्ष्मीकी ओर ध्यान न दे। मा उदारा हैं। जिसमें कर्तृत्व हो, अन्तःकरणमें आत्म-विश्वास और ईश-विश्वास हो, वही उदार हो सकता है। मनमें स्वार्थकी भावना रखकर जो दान दिया जाता है, उसमें औदार्य नहीं होता। लक्ष्मी उदारा हैं, उदार मनुष्यके पास रहती हैं, वही उनका प्रिय होता है। लक्ष्मी विष्णु-पत्नी हैं। ऋषि कहते हैं कि "मुझे ऐसी लक्ष्मी चाहिये, 'जो विशाल अर्थमें प्रभुके कार्यमें लगी रहे; ऐसी पद्मिनी लक्ष्मी मेरे घर आयें—'तां पद्मिनीं ईं अहं शरणं प्रपद्ये।' अन्तमें, मा! मैं तुम्हारे शरण आया हूँ। आप मेरी भौतिक, बौद्धिक और मानसिक कंगाली-को नष्ट कर दें।'

नमस्कार—

विष्णुपत्नीं क्षमां देवीं माधवीं माधवप्रियाम्।
लक्ष्मीं प्रियसखीं भूमिं नमाम्यच्युतवल्लभाम्॥ (२५)

'मा विष्णुपत्नी, क्षमारूपा देवी माधवी, माधवप्रिया, अच्युतवल्लभा, लक्ष्मीजीको तथा उनकी प्रियसखी भूदेवीको मैं नमस्कार करता हूँ।'

लक्ष्मीजीका गायत्री-मन्त्र—

'ॐ महालक्ष्म्यै च विद्महे विष्णुपत्न्यै च धीमहि। तन्नो लक्ष्मीः प्रचोदयात्॥' (२६)

'हम महालक्ष्मीको जानते हैं, उन विष्णुपत्नीका ध्यान करते हैं। वे लक्ष्मी मेरी बुद्धिको सन्मार्गमें लगायें।'

बंगालमें वैष्णवधर्मकी धारा

(लेखक—श्रीरासमोहन चक्रवर्ती एम्० ए०, पी-एच्० डी०, पुराणरत्न, विद्याविनोद)

प्राचीनवङ्गमें वैष्णवधर्म (चतुर्थ ई० शतीसे १३-वीं ई० शतीतक)

अति प्राचीनकालसे भारतवर्षमें विष्णूपासनामूलक वैष्णव-धर्मका प्रचलन रहा है। प्राचीनतम ऋग्वेदके मन्त्रोंमें ऋषिलोग विष्णुकी उपासना करते थे, भोगैश्वर्य-प्रदानके निमित्त विष्णुसे प्रार्थना करते थे और समय-समयपर निष्काम भावसे विशुद्ध भक्तिपूत चित्तसे विष्णुकी महिमाका कीर्तन करके उनके श्रीचरणोंमें आत्मसमर्पण करते थे। हमको ऋग्वेदके प्रथम मण्डलके सूक्त २२ की १६ वीं ऋचामें सर्वप्रथम विष्णुका उल्लेख मिलता है। इस ऋचासे अगली ६ ऋचाओंमें विष्णुकी जो महिमा कीर्तित हुई है, उससे हमको वैदिक युगमें ही विष्णुकी आराधनाका प्रभाव, प्रसार और प्रतिपत्तिका पर्याप्त अवभास प्राप्त होता है। बुद्धभगवान्‌के चरण-चिह्नकी पूजाके पहले ही गयामें जो विष्णु-पाद-पद्मकी पूजा प्रचलित थी, उसको निरुक्तकार यास्कके द्वारा उद्धृत ऊर्णवाभके 'समारोहणे विष्णुपदे गयशिरसीत्यौर्णवाभः'—इस वचनसे काशीप्रसाद जायसवालने प्रमाणित किया है। पण्डितोंने यास्कका समय ई०पूर्व अष्टम शताब्दी माना है। ल्यूडस आदि पाश्चात्त्य पण्डितोंने प्रमाणित किया है कि 'नाना-घाट और घोषान्तिके शिलालेखोंने द्वितीय शताब्दी ई०पूर्वमें भारतमें भागवत-धर्मके अस्तित्वकी घोषणा की है।'

(क) गुप्तकाल एवं गुप्तोत्तर युगमें वङ्गदेशमें वैष्णवधर्म (चतुर्थसे अष्टम शताब्दी खिष्टाब्द)

वङ्गदेशमें वैष्णवधर्मका प्रवर्तन और प्रचलन ठीक कबसे आरम्भ होता है, इस विषयमें सुस्पष्ट प्रमाण न होनेपर भी ऐतिहासिक गवेषणासे ज्ञात होता है कि वङ्गदेशका आर्यीकरण गम्भीररूपसे तथा सार्थकरूपमें आरम्भ होता है गुप्तयुगमें—ईसाकी चौथी शताब्दीमें, जिस समय चन्द्रगुप्त प्रथम और समुद्रगुप्तने वङ्गदेशतक विजय करके विशाल गुप्त-साम्राज्यकी स्थापना की थी। उस समय वङ्गदेशमें किसी अंशमें स्वाधीन राज्य था। गुप्त सम्राट् परम वैष्णव थे। इसी कारण उनके समयसे विष्णुमन्दिरोंकी प्रतिष्ठा और विष्णुपूजाके लिये दानकी व्यवस्था क्रमशः बढ़ने लगी। चौथी शताब्दीमें ही हम देखते हैं कि वङ्गदेशके पश्चिमी भागकी बाँकुड़ा नगरीसे १२ मील उत्तर-पश्चिममें अवस्थित सुसुनिया नामक पर्वतकी गुहामें एक लेख उत्कीर्ण है और उस गुहाके पास खुदाईमें एक चक्र निकला है। उससे ज्ञात होता है कि 'राजा चन्द्रवर्मा चौथी शताब्दीमें राज्य करते थे और वे चक्रस्वामी अर्थात् विष्णुके उपासक थे।' पञ्चम शताब्दीकी उत्कीर्ण लिपिसे ज्ञात होता है कि 'उस समय बोगड़ा जिलामें—यहाँतक कि सुदूर हिमालयके शिखरपर गोविन्दस्वामी, श्वेत वराहस्वामी, कोकामुखस्वामी आदिके मन्दिर प्रतिष्ठित हुए थे। इन सबमें विष्णुकी ही मूर्त्तियाँ थीं।' सप्तम शताब्दीके उत्कीर्ण लोकनाथके ताम्रशासनसे ज्ञात होता है कि 'वङ्ग-देशके पूर्वभागके त्रिपुरा जनपदस्थित भगवान् अनन्तनारायणके मन्दिरमें भगवान्‌की पूजा होती थी।' इसी सप्तम शताब्दीके त्रिपुरास्थित कैलान-ताम्रशासनमें हम देखते हैं कि 'श्रीधाका रात परम वैष्णव थे और पुरुषोत्तमके उपासक थे।' केवल लिपिगत उल्लेख ही नहीं, साथ-साथ वङ्गदेशके विभिन्न अञ्चलोंसे प्राप्त विभिन्न विष्णुमूर्तियोंका साक्ष्य भी विद्यमान है। गुप्तकाल और गुप्तोत्तरकालमें वङ्गदेशके विभिन्न भागोंमें विष्णुमूर्तियाँ अनन्त-शय्यापर लेटी हुई विष्णुमूर्तियाँ, गरुड़-वाहन तथा सपरिवार विष्णुमूर्तियों आदिका संधान मिलता है। इन प्रतिमाओंकी रूप-कल्पना तथा लक्षणोंकी आलोचना करनेसे स्पष्ट ज्ञात होता है कि पौराणिक विष्णु अपनी निजी मर्यादाओं तथा परिवारके साथ सारे लक्षण और चिह्न [illegible] आकर आसन ग्रहण कर चुके हैं गुप्तकालमें ही। [illegible] राजा-महाराजा अपने परिचयमें [illegible] [illegible]

[illegible]

वैदिक ऋषि कहते हैं कि 'इन तीनों बातोंमें मनुष्यको विवेकसे काम लेना चाहिये । जो मनुष्य दान करते समय जवान बन जाता है, भोगते समय बालक और सँभालते समय वृद्ध—वही मनुष्य लक्ष्मीके साथ ज्ञानैश्वर्यके सम्बन्धको निभा सकता है । जवान बेफिक्र होता है; अतएव लक्ष्मी आये तो जवानके समान बेफिक्र होकर दान-पुण्यादिमें उसका उपयोग करना चाहिये । लक्ष्मीको भोगनेके समय बालक बन जाना चाहिये । बालक सदा ही आत्मस्वार्थ-परायण (ego-centric) होता है । उसे केला दो तो किसीको देगा नहीं, तुरंत खाने लगेगा । लक्ष्मीको सँभालते समय वृद्ध बनना चाहिये । इस प्रकारकी क्रियासे जो लक्ष्मीको जोड़ता है, वह 'ज्ञानैश्वर्यसे युक्त' कहलाता है ।

मनुष्यको जिससे सुख मिले, वह 'लक्ष्मी' है । सुख मनकी समृद्धि है । वस्तुसे सुख नहीं मिलता, सुख मनमें होता है । जो मनसे सबल होता है, समृद्ध होता है, उसके पास लक्ष्मी—ऐश्वर्य है, यह कहा जाता है । जैसे धन कमानेके लिये बाजार होता है, वैसे ही मनकी समृद्धिके लिये स्वाध्याय है; इसके बिना मनकी समृद्धि टिक नहीं सकती ।

जहाँ धन-धान्य और विजयी जीवन है, वहाँ लक्ष्मी है । साथ ही शरीरका आरोग्य अच्छा होना चाहिये । यह लक्ष्मीके साथ स्वयं आ जाता है । अनपगामिनी लक्ष्मी माँगनेके बाद ऋषि माँगते हैं—

अश्वपूर्वां रथमध्यां हस्तिनादप्रमोदिनीम् ।
श्रियं देवीमुप ह्वये श्रीर्मा देवी जुषताम् ॥ (३)

'भगवन् ! मेरे घर ऐसी लक्ष्मी पधारें, जो रथपर सवार हों और उनके आगे घोड़े दौड़ते हों, जो हाथीके [illegible]को सुनकर आह्लादित हों । इस प्रकारकी सामर्थ्ययुक्त श्री—[illegible]-सम्पत्ति मुझे दो ।' ऋषिकी इस माँगमें सम्पत्तिके साथ सत्ता भी है । सत्ता महान् वैभव है । मुझे सत्ता चाहिये, शक्ति चाहिये । अश्वशक्ति चपल शक्ति है, वह गतिमान् है । लक्ष्मीका वाहन हाथी है, इसका कारण है, उसकी मदोन्मत्तता । मनुष्यके पास थोड़ा-बहुत 'अहं' तो होना ही चाहिये । भगवान् ज्योतिर्मय हैं, तेजोमय हैं; निस्तेज मानव उनके पास कैसे जा सकता है । इस मन्त्रमें ऋषिने इसी कारण राजलक्ष्मी माँगी है ।

जगज्जननीकी प्रभाका वर्णन करते-करते ऋषिकी वाणी कुण्ठित हो जाती है । वे स्तुति करते हैं—

चन्द्रां प्रभासां यशसा ज्वलन्तीं श्रियं लोके देवजुष्टामुदाराम् ।
तां पद्मिनीमीं शरणमहं प्रपद्येऽलक्ष्मीर्मे नश्यतां त्वां वृणे ॥ (४)

सारी भारतीय संस्कृति इस मन्त्रमें दीख पड़ती है । जीवके यशको देखकर मा (लक्ष्मी) दीप्तिमती होती हैं । ऋषि कहते हैं कि 'महालक्ष्मी देवजुष्टा हैं, उनका देवता आश्रय लेते हैं । सात्त्विक विचारके लोगोंको चाहिये कि लक्ष्मीको स्वीकार करें ।' आज एक भ्रान्त धारणा फैली हुई है कि अपनेको सात्त्विक बनाना हो तो लक्ष्मीकी ओर ध्यान न दे । मा उदारा हैं । जिसमें कर्तृत्व हो, अन्तःकरणमें आत्म-विश्वास और ईश-विश्वास हो, वही उदार हो सकता है । मनमें स्वार्थकी भावना रखकर जो दान दिया जाता है, उसमें औदार्य नहीं होता । लक्ष्मी उदारा हैं, उदार मनुष्यके पास रहती हैं, वही उनका प्रिय होता है । लक्ष्मी विष्णु-पत्नी हैं । ऋषि कहते हैं कि "मुझे ऐसी लक्ष्मी चाहिये, 'जो विशाल अर्थमें प्रभुके कार्यमें लगी रहे; ऐसी पद्मिनी लक्ष्मी मेरे घर आयें—'तां पद्मिनीं ईं अहं शरणं प्रपद्ये ।' अन्तमें, मा ! मैं तुम्हारे शरण आया हूँ । आप मेरी भौतिक, बौद्धिक और मानसिक कंगाली-को नष्ट कर दें ।'

नमस्कार—

विष्णुपत्नीं क्षमां देवीं माधवीं माधवप्रियाम् ।
लक्ष्मीं प्रियसखीं भूमिं नमाम्यच्युतवल्लभाम् ॥ (२५)

'मा विष्णुपत्नी, क्षमारूपा देवी माधवी, माधवप्रिया, अच्युतवल्लभा, लक्ष्मीजीको तथा उनकी प्रियसखी भूदेवीको मैं नमस्कार करता हूँ ।'

लक्ष्मीजीका गायत्री-मन्त्र—

'ॐ महालक्ष्म्यै च विद्महे विष्णुपत्न्यै च धीमहि । तन्नो लक्ष्मीः प्रचोदयात् ॥' (२६)

'हम महालक्ष्मीको जानते हैं, उन विष्णुपत्नीका ध्यान करते हैं । वे लक्ष्मी मेरी बुद्धिको सन्मार्गमें लगायें ।'

बंगालमें वैष्णवधर्मकी धारा

(लेखक—श्रीरासमोहन चक्रवर्ती एम्० ए०, पी-एच्० डी०, पुराणरत्न, विद्याविनोद)

प्राचीनवङ्गमें वैष्णवधर्म (चतुर्थ ई० शतीसे १३-वीं ई० शतीतक)

अति प्राचीनकालसे भारतवर्षमें विष्णूपासनामूलक वैष्णव-धर्मका प्रचलन रहा है। प्राचीनतम ऋग्वेदके मन्त्रोंमें ऋषिलोग विष्णुकी उपासना करते थे, भोगैश्वर्य-प्रदानके निमित्त विष्णुसे प्रार्थना करते थे और समय-समयपर निष्काम भावसे विशुद्ध भक्तिपूत चित्तसे विष्णुकी महिमाका कीर्तन करके उनके श्रीचरणोंमें आत्मसमर्पण करते थे। हमको ऋग्वेदके प्रथम मण्डलके सूक्त २२ की १६ वीं ऋचामें सर्वप्रथम विष्णुका उल्लेख मिलता है। इस ऋचासे अगली ६ ऋचाओंमें विष्णुकी जो महिमा कीर्तित हुई है, उससे हमको वैदिक युगमें ही विष्णुकी आराधनाका प्रभाव, प्रसार और प्रतिपत्तिका पर्याप्त अवभास प्राप्त होता है। बुद्धभगवान्‌के चरण-चिह्नकी पूजाके पहले ही गयामें जो विष्णु-पाद-पद्मकी पूजा प्रचलित थी, उसको निरुक्तकार यास्कके द्वारा उद्धृत ऊर्णवाभके 'समारोहणे विष्णुपदे गयशिरसीत्यौर्णवाभः'—इस वचनसे काशीप्रसाद जायसवालने प्रमाणित किया है। पण्डितोंने यास्कका समय ई०पूर्व अष्टम शताब्दी माना है। ल्यूडस आदि पाश्चात्त्य पण्डितोंने प्रमाणित किया है कि 'नाना-घाट और घोषान्तिके शिलालेखोंने द्वितीय शताब्दी ई०पूर्वमें भारतमें भागवत-धर्मके अस्तित्वकी घोषणा की है।'

(क) गुप्तकाल एवं गुप्तोत्तर युगमें वङ्गदेशमें वैष्णवधर्म (चतुर्थसे अष्टम शताब्दी खिष्टाब्द)

वङ्गदेशमें वैष्णवधर्मका प्रवर्तन और प्रचलन ठीक कबसे आरम्भ होता है, इस विषयमें सुस्पष्ट प्रमाण न होनेपर भी ऐतिहासिक गवेषणासे ज्ञात होता है कि वङ्गदेशका आर्यीकरण गम्भीररूपसे तथा व्यापकरूपमें आरम्भ होता है गुप्तयुगमें—ईसाकी चौथी शताब्दीमें, जिस समय चन्द्रगुप्त प्रथम और समुद्रगुप्तने वङ्गदेशतक विजय करके विशाल गुप्त-साम्राज्यकी स्थापना की थी। उस समय वङ्गदेशमें किसी अंशमें स्वाधीन राज्य था। गुप्त सम्राट् परम वैष्णव थे। इसी कारण उनके समयसे विष्णुमन्दिरोंकी प्रतिष्ठा और विष्णुपूजाके लिये दानकी व्यवस्था क्रमशः बढ़ने लगी। चौथी शताब्दीमें ही हम देखते हैं कि वङ्गदेशके पश्चिमी भागकी बाँकुड़ा नगरीसे १२ मील उत्तर-पश्चिममें अवस्थित सुसुनिया नामक पर्वतकी गुहामें एक लेख उत्कीर्ण है और उस गुहाके पास खुदाईमें एक चक्र निकला है। उससे ज्ञात होता है कि 'राजा चन्द्रवर्मा चौथी शताब्दीमें राज्य करते थे और वे चक्रस्वामी अर्थात् विष्णुके उपासक थे।' पञ्चम शताब्दीकी उत्कीर्ण लिपिसे ज्ञात होता है कि 'उस समय बोगड़ा जिलामें—यहाँ-तक कि सुदूर हिमालयके शिखरपर गोविन्दस्वामी, श्वेत वराहस्वामी, कोकामुखस्वामी आदिके मन्दिर प्रतिष्ठित हुए थे। इन सबमें विष्णुकी ही मूर्त्तियाँ थीं।' सप्तम शताब्दीके उत्कीर्ण लोकनाथके ताम्रशासनसे ज्ञात होता है कि 'वङ्ग-देशके पूर्वभागके त्रिपुरा जनपदस्थित भगवान् अनन्तनारायणके मन्दिर-में भगवान्‌की पूजा होती थी।' इसी सप्तम शताब्दीके त्रिपुरा-स्थित कैलान-ताम्रशासनमें हम देखते हैं कि 'श्रीधाकारात परम वैष्णव थे और पुरुषोत्तमके उपासक थे।' केवल लिपिगत उल्लेख ही नहीं, साथ-साथ वङ्गदेशके विभिन्न अञ्चलोंसे प्राप्त विभिन्न विष्णुमूर्तियोंका साक्ष्य भी विद्यमान है। गुप्तकाल और गुप्तोत्तरकालमें वङ्गदेशके विभिन्न भागोंमें विष्णुमूर्त्तियाँ अनन्त-शय्यापर लेटी हुई विष्णुमूर्तियाँ, गरुड़-वाहन तथा सपरिवार विष्णुमूर्तियाँ आदिका संधान मिलता है। इन प्रतिमाओंकी रूप-कल्पना तथा लक्षणोंकी आलोचना करनेसे स्पष्ट ज्ञात होता है कि पौराणिक विष्णु अपनी निजी मर्यादामें तथा परिवारके साथ सारे लक्षण और चिह्न लेकर वङ्गदेशमें आकर आसन ग्रहण कर चुके हैं गुप्तकालमें ही। गुप्तयुगके राजा-महाराजा अपने परिचयमें साधारणतया अपने लिये 'परम भागवत' पदका व्यवहार करते थे। जान पड़ता है, वे सब वैष्णव भागवतधर्ममें दीक्षित थे। यही भागवतधर्म गुप्तकाल तथा गुप्तोत्तरकालमें वङ्गदेशमें फैला और पालवंशी राजाओंके युगमें सुप्रतिष्ठित हुआ।

वैष्णवधर्मके साथ घनिष्ठ सम्बन्धयुक्त कृष्णायण और रामायणकी कथा गुप्तकाल और गुप्तोत्तरकालके बाद ही वङ्ग-देशमें प्रचारित हुई। इसका स्पष्ट प्रमाण मिलता है, राजशाही जिलेके पहाड़पुर-मन्दिरमें लगे हुए पक्की मिट्टी और पत्थरके फलकोंपर। पहाड़पुर-मन्दिरकी दीवारोंपर श्रीकृष्णकी बाललीलाके अनेक प्रसङ्ग उत्कीर्ण हैं। रामायण-कथाके भी कई चित्र हैं—जैसे वानर-सेनाके द्वारा सेतु-बन्ध,

वाली और सुग्रीवका युद्ध आदि । इससे प्रमाणित होता है कि गुप्तकाल और गुप्तोत्तरकालमें अर्थात् ईसाकी चौथीसे आठवीं शताब्दीके बीच वङ्गदेशमें तथा बंगाली जीवनमें कृष्णायण और रामायणकी गाथाएँ पर्याप्त आद्दत हो गयी थीं तथा इनके आधारपर ही वङ्गदेशमें वैष्णव-धर्मका सीमा-विस्तार हुआ था ।

(ख) पालयुगमें वङ्गदेशमें वैष्णवधर्म (ई० ८ वीं से ११ वीं शताब्दी) वङ्गदेशके पाल नृपति थे 'परमसौगत'—अर्थात् बौद्धधर्मावलम्बी; किंतु उनके मन्त्रीगण विष्णुके उपासक ब्राह्मण थे। इस युगके शिलालेख (Inscriptions) पढ़नेसे यह तथ्य स्पष्ट हो जायगा कि इन लेखोंकी रचना अधिकांशमें ब्रह्माण्डपुराण, रामायण और महाभारतकी कथाओंपर आधृत है, विशेषतया विष्णु और कृष्णकी कथाओं-के आधारपर सम्पादित है । इससे पालयुगमें बौद्धधर्मके साथ वङ्गदेशमें वैष्णवधर्मका प्रभाव सूचित होता है । धर्मपालके खालिमपुरके लेखमें नन्न-नारायणके एक देवलका उल्लेख मिलता है । यह नन्न नारायण 'नम्र नारायण' का बिगड़ा हुआ रूप है । अर्थात् इस मन्दिरमें जिनकी उपासना होती थी, वे नन्दलाल कृष्णरूपी नारायण थे । नारायणपालके राजत्वकालमें एक गरुड़स्तम्भ स्थापित हुआ था वर्तमान दीनाजपुर जिलेके एक गाँवमें । विष्णु-मन्दिरके सामने एक गरुड़स्तम्भकी प्रतिष्ठा करना साधारण शास्त्रीय प्रथा थी । स्तम्भके शीर्षपर बद्धाञ्जलि मुद्रामें गरुड़की एक मूर्ति होती थी । प्रथम महीपालके राजत्वके तीसरे वर्ष त्रिपुरा जिलेके बाघौरा ग्राममें एक विष्णुमूर्तिकी प्रतिष्ठा हुई थी । पादपीठमें उत्कीर्ण लेखमें अङ्कित है कि मूर्ति 'नारायणभट्टारकस्य' (भगवान् नारायणकी थी ।) अवताररूप विष्णुकी प्रतिमाएँ पालयुगकी वङ्ग-शिल्प-कलामें प्रचुरतासे मिलती हैं। विष्णुके दशावतारोंमें प्रधान वराह, नृसिंह और वामन या त्रिविक्रम हैं । इन तीनोंकी स्वतन्त्ररूपसे पूजा होती थी । परिवार-युक्त विष्णुमूर्तिमें उनकी दो पत्नियाँ लक्ष्मी और सरस्वती होती थीं और कहीं-कहीं पृथ्वीदेवी । नीचे वाहन-गरुड़ तथा वैकुण्ठके दो द्वारपाल जय-विजय होते थे । अधिकांश विष्णुमूर्तियाँ स्थानक अर्थात् खड़ी हुई मूर्तियाँ होती थीं । बैठी हुई और शय्यागत विष्णुमूर्तियाँ वङ्गदेशमें कम पायी गयी हैं ।

ग्यारहवीं शताब्दीके अन्तमें जब पालराज्यकी शक्ति क्रमशः क्षीण हो गयी, तब पूर्ववङ्गमें वर्मन्-उपाधिधारी एक राजवंश स्थापित हुआ । ढाका जिलेके अन्तर्गत वेलाव ग्रामसे प्राप्त ताम्र-शासनसे ज्ञात होता है कि राजा भोजवर्मा 'परम वैष्णव परमेश्वर परम भट्टारक महाराजाधिराज'की उपाधिसे विभूषित थे । वर्मन्-वंशके सभी राजा परम विष्णु-भक्त थे । इसी वर्मन् राज्यके एक मन्त्री स्मार्त भट्ट भवदेवने राढ़देशमें एक नारायण-मन्दिरकी स्थापना करके उसमें नारायण, अनन्त और नृसिंहकी मूर्तियाँ स्थापित की थीं ।

(ग) सेनयुगमें वङ्गदेशमें वैष्णवधर्म (१२-१३ वीं शताब्दी) सेन राजवंशके संस्थापक विजय सेन और उनके पुत्र वल्लाल सेन थे शैवधर्मावलम्बी । वे लोग 'परम माहेश्वर' उपाधि धारण करते थे । उनके ताम्रशासनमें पहले शिवको प्रणाम तथा मुद्रामें कुलदेवता सदाशिवकी मूर्ति अङ्कित होती थी । वल्लाल सेनके पुत्र लक्ष्मण सेनने राजा होनेपर सदाशिव-मुद्रामें परिवर्तन नहीं किया, किंतु उन्होंने परम माहेश्वरके बदलेमें 'परम वैष्णव' उपाधि ग्रहण की और उनका ताम्रशासन नारायणके प्रणाम और स्तुतिबोधक श्लोकसे प्रारम्भ किया गया है । अतएव जान पड़ता है कि लक्ष्मण सेन वैष्णवधर्ममें दीक्षित हुए थे । लक्ष्मण सेनके दो पुत्र हुए—विश्वरूप और केशव सेन । दोनों ही नारायणभक्त और सूर्यभक्त थे ।

विष्णुका लक्ष्मी-नारायण रूप ही सेनयुगमें वैष्णव देव-देवीरूपी कल्पनाका प्रधान अवदान है । पूर्ववङ्ग और उत्तर-वङ्गके किसी-किसी स्थानमें लक्ष्मी-नारायणकी कई प्रतिमाएँ पायी गयी हैं । लक्ष्मी-नारायणकी पूजा और रूप-कल्पनाका प्रसार दक्षिणभारतमें ही था, और सेन-वर्मन्-कालमें दक्षिणदेशसे ही यह पूजा और रूप-कल्पना वङ्गदेशमें प्रवर्त्तित हुई थी—ऐसा ऐतिहासिकोंका मत है । महाराज लक्ष्मण सेनके सभा-कवि धोयीने अपने 'पवनदूत' काव्यमें संकेत किया है कि 'लक्ष्मी-नारायण सेन राजाओंके कुलदेवता थे और वाराङ्गनाओंके नृत्य-गीतके साथ उनकी अर्चना होती थी ।'

सेनयुगके वङ्गदेशने वैष्णवधर्मके इतिहासको दो प्रकारसे समृद्ध किया है, ऐसा पण्डितोंका विचार है । एक तो है दशावतारसे समन्वित और रीतिबद्ध रूप; और दूसरा है राधाकृष्णका ध्यान तथा रूप-कल्पना । महाभारत और पुराणोंमें भी विष्णुके नाना अवतारोंकी कथाएँ मिलती हैं, किंतु विधिवद्ध समन्वित रूपकी चेष्टा सम्भवतः पहले-पहल देखनेमें आती है श्रीमद्भागवतपुराणमें । इस पुराणमें अवतारोंकी जो तीन तालिकाएँ हैं, उनमें एकमें विष्णुके तेईस अवतार हैं, दूसरेमें बाईस और तीसरेमें सोलह अवतारोंकी तालिका है । तब-तक दशावतारका स्वरूप समन्वित और विधिबद्ध नहीं हुआ था । मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम,

बलराम, बुद्ध और कल्कि—इन दशावतारोंका विधिबद्ध समन्वित उल्लेख देखनेमें आता है, लक्ष्मण सेनके सभाकवि जयदेवरचित 'गीतगोविन्द' नामक सुविख्यात संस्कृत-काव्यमें ।

श्रीचैतन्यमहाप्रभुके द्वारा प्रवर्तित गौडीय वैष्णव-धर्मकी जो विशेषता है, वह राधा-कृष्ण-लीला-तत्त्व और राधाकृष्णकी उपासना उनके आविर्भावसे प्रायः तीन सौ वर्ष पहले प्रचलित हो चुकी थी । सेन-राज्य-वंशके अन्तिम भागमें बंगाली वैष्णव कवि जयदेवने सुप्रसिद्ध 'गीत-गोविन्द' नामक अमर संस्कृत-गीतिकाव्यकी रचना और कीर्तन करके देशको राधाकृष्ण-प्रेमसे सुप्लावित कर दिया था । जयदेवके समकालीन कवि उमापतिधर, गोवर्द्धनाचार्य और महाराज लक्ष्मण सेनने स्वयं राधाकृष्ण-लीलाको केन्द्रित करके अनेक श्लोकोंकी रचना की थी । ईसाकी तेरहवीं शताब्दीके प्रथम पादमें श्रीधरदासद्वारा संकलित 'सदुक्तिकर्णामृत' नामक विख्यात संग्रह-ग्रन्थमें ये श्लोक तथा तत्कालीन अनेक कवियोंके श्लोक संगृहीत हैं । हरिभक्ति या स्तुतिके सम्बन्धमें 'सदुक्तिकर्णामृत' में जो श्लोक प्राप्त होते हैं, उनमें विशुद्ध भक्तिधर्मका तथा हृदयावेगका ऐसा परिचय मिलता है, जिससे जान पड़ता है कि मानो हम श्रीचैतन्यप्रवर्तित गौडीय भक्तिधर्मके पूर्वाभासको प्रत्यक्ष कर रहे हैं ।

(शेष आगे)

विष्णुका श्रेष्ठत्व

(लेखक—डा० श्रीसुधीन्द्रचन्द्र चक्रवर्ती, एम्० ए०, डी० लिट्०)

विष्णु-भक्तोंका यह दृढ़ विश्वास है कि विष्णु ही एकमात्र भगवान् हैं । वे सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापी, सर्वाश्रय, धर्मस्वरूप, अवतारी, भक्तप्रिय तथा करुणामय हैं । जीव और जगत् उनसे पृथक् होकर भी सतत उनके ऊपर ही अवलम्बित हैं; इनकी कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं है । विष्णु जगत्की सृष्टि, स्थिति और प्रलयके कारण हैं । जगत् मिथ्या नहीं है, जीव भी भगवान् नहीं है । जीवका प्रधान और प्रथम कर्त्तव्य है—स्वेच्छापूर्वक और तत्परतासे अपनेको भगवान् विष्णुकी उद्देश्य-सिद्धिके यन्त्ररूपमें परिणत करना । मानव-जीवनका चरम उद्देश्य है—विदेहमुक्ति प्राप्त करके उनकी सेवामें अपनेको लगा देना । भक्ति ही परमार्थकी प्राप्तिका श्रेष्ठ साधन है । वेदमें अनेक देवताओंका उल्लेख है । हिंदू जन-साधारणमें यह धारणा प्रचलित है कि ब्रह्मा जगत्के सृष्टिकर्त्ता हैं, शिव संहारकर्त्ता हैं और विष्णु पालनकर्त्ता हैं । कोई शक्तिको, कोई सूर्यको, कोई गणपतिको तथा कोई शिवको चरमतत्त्वके आसनपर प्रतिष्ठित करते हैं । किंतु मूल प्रश्नको किसीको भूलना नहीं चाहिये कि चरमतत्त्व एक है—'एकं सत्' । जो लोग अनेक देवताओंका प्रसङ्ग उठाते हैं, वे भी कहते हैं कि देवताओंमें रजोगुणके अधिपति ब्रह्मा, सत्त्वगुणके अधिपति विष्णु और तमोगुणके अधिपति शिव ही प्रधान हैं । किंतु इन तीनोंमें कौन सर्वापेक्षा श्रेष्ठ है, इस विषयमें भी एक बार सरस्वती-तट-निवासी यज्ञ-निरत मुनियोंमें भी संशय उत्पन्न हुआ था (भागवत १० । ८९) । मुनियोंने ब्रह्माजीके पुत्र भृगुजीसे इसका निर्णय करनेका अनुरोध किया ।

भृगुमुनिने पहले सुर-नर-दानवादि-वन्दित, विश्वस्रष्टा, चतुर्मुख पितृदेव ब्रह्माकी जनाकीर्ण उज्ज्वल सभामें पहुँचकर उनको रत्नजटित आसनपर देदीप्यमान देखा । पद्मयोनि ब्रह्माको कौन प्रणाम नहीं करता ? किंतु भृगुने आज उनके पुत्र होकर भी सब लोगोंके सामने ब्रह्माजीके प्रति अवज्ञाका भाव दिखलाया । उन्होंने उनको प्रणाम या स्तुति-स्तवन आदि कुछ भी नहीं किया । भृगुजी शास्त्रज्ञान-हीन नहीं थे, शिष्टाचार आदिसे भी विहीन न थे । ब्रह्माजीके महत्त्वकी परीक्षा करनेके उद्देश्यसे ही उन्होंने इस प्रकार अद्भुत आचरण प्रदर्शित किया । किं बहुना, पुत्रके इस अशिष्ट व्यवहारसे अपनेको अपमानित समझकर पद्मयोनि क्रोधसे प्रकम्पित हो उठे; किंतु ममत्वरूप प्रतिबन्धकके कारण भृगुको ध्वस्त करना उनके लिये सम्भव न हुआ । भृगुजीको यह समझनेमें देर न लगी कि ब्रह्माजी चाहे कितने ही बड़े क्यों न हों, उनके मानापमान-बोध, 'अहंबुद्धि' तथा ममता आदि अब भी दूर नहीं हुए हैं । किसीको कुछ भी न बोलकर भृगुजी पितृभवनसे शिवधाम कैलासकी ओर चल पड़े ।

भृगुजीके प्रति महेश्वरका भ्रातृभाव है । महेश्वरने उनको देखते ही अपने आसनसे उठकर आनन्दसे आलिङ्गन करनेके लिये दोनों भुजाओंको आगे बढ़ाया । भृगुजीको महेश्वरके सौजन्यसे अत्यन्त प्रसन्नता प्राप्त हुई; तथापि उनके महत्त्वकी परीक्षा करनेके उद्देश्यसे उनके साथ अभद्र व्यवहार किया । महादेव इस व्यवहारको

सहन न कर सके । अत्यन्त क्रोधित हो, त्रिशूल उठाकर भृगुका संहार करनेके लिये उद्यत हो उठे । यदि देवी शंकरीने पतिदेवके पाद-पद्मोंमें गिरकर नाना प्रकारसे अनुनय-विनय करके उनको शान्त न किया होता तो उस दिन भृगुके जीवनकी रक्षा नहीं होती । महादेवीकी कृपासे भृगुकी प्राण-रक्षा हुई । महातपस्वी, बुद्धिमान् भृगुजीने जान लिया कि 'शंकर अब भी शिष्टाचारके प्रतिदानके भिखारी हैं । अब भी इनकी भेदबुद्धि दूर नहीं हुई है । अब भी इन्होंने शत्रु-मित्र-उदासीन—सबके साथ एक-सा प्रेम करना नहीं सीखा । अस्तु, भृगुजी अब वहाँ न रुककर वैकुण्ठके लिये चल पड़े ।

वैकुण्ठके अतुल ऐश्वर्य, अपूर्व शोभा, अपार शान्ति और भृत्यवर्गके सौजन्य और सेवा-तत्परताकी उपेक्षा करके भृगुजी अबाधगतिसे विष्णुके शयन-कक्षमें प्रविष्ट हुए । देवदेव विष्णुभगवान् उस समय लक्ष्मीके क्रोडमें शयन कर रहे थे । 'वैकुण्ठमें लक्ष्मीके क्रोडमें विष्णु'—के दृश्यका चिन्तन करके किस भक्तका चित्त विगलित नहीं होता ? माता लक्ष्मीदेवी विष्णुके वक्षःस्थलपर स्थान प्राप्त करके भी कभी उनको क्रोडमें उठाती हैं, कभी उनका पाद-संवाहन करके आनन्दवर्द्धन करती हैं । जब विष्णुभगवान् उनकी सेवासे संतुष्ट होकर वर माँगनेके लिये कहते हैं, तब माता अपनी अधम-पतित संतानोंका उद्धार करनेके लिये उनसे प्रार्थना करती हैं । उनको स्वयं अपने लिये कुछ भी प्राप्तव्य नहीं है । शुद्ध सत्त्वमय श्वेत पलंगपर उन करुणामयी जननीकी गोदमें परमदेव विष्णुको सुप्त देखकर भृगुजीने अतिशय निष्ठुरके समान उन सर्वात्माके वक्षःस्थलपर पदाघात किया । भृगुजीके इस दुर्व्यवहारकी जो प्रतिक्रिया हुई, वही यहाँ द्रष्टव्य विषय है ।

राग-द्वेषहीन, अपार करुणामय, भक्तवत्सल, ब्रह्मण्यदेव भगवान् विष्णुने लक्ष्मीदेवीके साथ पलंगसे उतरकर सिर-द्वारा भृगुजीके चरणद्वयको स्पर्श करके उनको प्रणाम किया तथा अपनेको अपराधी समझकर कातर वचनोंसे वे उनसे क्षमा-याचना करने लगे । इस प्रकारके मधुर वचन क्या कहीं किसीने सुने होंगे ? ऐसा शिष्टाचार क्या किसीने कहीं देखा होगा ? भगवान् विष्णु कह रहे हैं—"हे ब्राह्मणकुलतिलक ! आपको यहाँ रास्तेमें कोई कष्ट तो नहीं हुआ ? आपको देखनेसे जान पड़ता है कि आप थके-माँदे हैं । प्रभो ! थोड़ी देर इस आसनपर बैठकर विश्राम करें । हे महात्मन् ! बड़े खेदका विषय यह है कि आपके शुभागमनके सम्बन्धमें हमको अबतक कोई जानकारी न थी । यह हमारा अमार्जनीय अपराध है । प्रभो ! आप हमलोगोंको अपने सौजन्यवश क्षमा करें, यही हमारी प्रार्थना है । भूदेवशिरोमणे ! आप पाद-प्रक्षालन करें, आपका पादोदक सब तीर्थोंको भी पवित्र करनेवाला है । आज वही पादोदक प्रदान करके हमको तथा हमारे अनुगत लोकपालगणको पवित्र करें । भगवन् ! आज आपकी कृपासे मैं एक अतुलनीय विभूतिका अधिकारी हो गया । आजसे आपके पदाघातका चिह्न मेरे वक्षःस्थलकी शोभावृद्धि करेगा । मैं 'भृगु-पद-लाञ्छन' नाम धारण करके गौरवका अनुभव करूँगा ।"

ब्रह्मण्यदेव विष्णुको शय्यासे उठते देखकर ही भृगुजी-को परम प्रसन्नता और तृप्ति हुई । वे क्या कहें—यह निश्चय नहीं कर पाये । भगवान् विष्णुके मधुर वचन और अनन्यसुलभ विनीत व्यवहारसे मुग्ध होकर वे चित्रलिखित-से खड़े रहे । हृदयमें भक्तिका आवेग प्रबल होनेके कारण अश्रु-प्रवाहको रोकना उनके लिये असम्भव हो गया । वे अवनत-सिर होकर सरस्वतीके तटपर लौट आये और मुनि-गणके समक्ष क्रमशः ब्रह्मा, महेश्वर और विष्णुके महत्त्वकी परीक्षाका विवरण प्रदान किये जानेपर उन लोगोंके लिये समझना शेष न रहा कि विष्णु ही सर्वश्रेष्ठ देवता हैं ।

शास्त्रकारोंने यथार्थ ही कहा है कि भगवान् विष्णु शान्ति, अभय, धर्म, ज्ञान, वैराग्य, अष्टैश्वर्य और यशके मूलस्रोत हैं । वे राग-द्वेषसे रहित, सर्वत्र समबुद्धि, शान्तचित्त, मुनियोंके समान आत्माराम और अकिंचन साधुओंके परम आश्रय हैं । भगवान् विष्णुको सगुण और सविशेष कहना ठीक होगा; क्योंकि उनके देह आदि विशुद्ध सत्त्वमय हैं तथा वे स्वयं कल्याण-गुण-गण-समन्वित हैं । ब्राह्मण उनको अतिशय प्रिय हैं । वे ब्राह्मणोंको इष्टदेवतुल्य मानते हैं । जो लोग निष्काम, शान्तबुद्धि तथा विवेकशील हैं, वे भगवान् विष्णुका भजन करते हैं । राक्षस, असुर और देवता भगवान् विष्णुकी त्रिगुणमयी मायाद्वारा रचित हैं । मायाके तीनों गुणोंमें सत्त्वगुण ही श्रेष्ठ है; क्योंकि वह विष्णुभक्तिका द्वार उन्मुक्त करके पुरुषार्थ-प्राप्तिका सुयोग उपस्थित करता है । सरस्वती-तीर-वर्ती भृगुजीके सहचर मुनिगण सत्त्वगुणके प्रभावसे पुरुषोत्तम विष्णुके प्रति आकर्षित हुए और उनके चरण-कमलकी सेवाके द्वारा मुक्तिको प्राप्त हुए ।

श्रीविष्णुमें श्रद्धा करें

(लेखक—श्रीयुत के० टी० डब्ल्यू० हम्फ्रे, इंग्लैंड)

मुझे आशा है कि इस लेखकी प्रस्तावनाको प्राचीन धर्ममतके अनुकूल न पाकर पाठक मुझसे अप्रसन्न न होंगे। यह मुझपर बीती एक सच्ची घटना है, आधुनिक जगत्को विष्णुभगवान्के भजन तथा उनमें श्रद्धाकी आवश्यकताका अतिरिक्त प्रमाण है।

'कल्याण'से मुझे एक पत्र मिला है, जिसमें 'आधुनिक जगत् और इसकी गति-विधि—'भगवान् श्रीविष्णुका भजन और उनमें श्रद्धाकी आवश्यकता'—इस विषयपर एक लेख भेजनेके लिये कृपापूर्वक मुझसे अनुरोध किया गया है। मुझ आँग्ल-देशवासीसे यह अनुरोध निश्चयपूर्वक एक बड़ा सम्मान है और इसको कर्त्तव्य समझकर पूरा करना चाहिये—यह मैं अनुभव कर रहा हूँ। यह सही है कि मैं आधुनिक जगत्में रहता हूँ और मैं विष्णुभगवान्में श्रद्धा रखने तथा उनका भजन करनेकी आवश्यकताको समझता हूँ; परंतु मुझे ऐसा लगता है कि आधुनिक जगत्में विष्णुभगवान्के प्रति श्रद्धाका पूर्णतया अभाव है। यहाँ प्रश्न होता है कि 'ऐसा क्यों है? तथा श्रद्धा और भजनकी आवश्यकता हृदयंगम करानेका क्या उपाय है?'

वह दिन सुन्दर रवि-किरणोंसे व्याप्त था और मैं घरसे बाहर रविकी प्रभासे लाभान्वित होने, स्वच्छ वायुका सेवन करने तथा वाटिकामें कुछ कार्य-सम्पादन करने गया था। भगवान्को देखनेके लिये उद्यानसे बढ़कर कौन-सा स्थान हो सकता है? वहाँ सारी वस्तुएँ प्रभुके द्वारा रचित हैं, प्रभुमय हैं। काम करते समय मैं एक अज्ञात मनुष्यके सम्पर्कमें आया, जिन्होंने उद्यानके तलदेशमें बाड़के पास मुझे बुलाया। प्रारम्भमें उन्होंने अच्छे मौसमकी प्रशंसा की, जिसका हम उपभोग कर रहे थे तथा तत्कालीन इँगलैंडसे सम्बन्धित एक समाचारके संदर्भमें बातें कीं, जहाँ श्रमिक-विवाद चल रहा था और फलतः जहाजोंसे माल उतारना बंद हो गया था। ऐसा लगता था कि माल न उतारनेके कारण खराब हो जानेवाली कुछ खाद्य-वस्तुओंको समुद्रमें फेंक देनेकी आवश्यकता पड़ सकती है। उनकी आलोचना महत्त्वपूर्ण थी और उसे मैं उनके ही शब्दोंमें उद्धृत करता हूँ—

'मैं धार्मिक नहीं हूँ और न धर्ममें विश्वास करता हूँ; परंतु मुझे खाद्य-सामग्रीका फेंक देना ठीक नहीं लगता। यदि मेरा कोई धर्म है तो वह प्रकृति माता है।'

उनके लिये धर्मका अर्थ है—ऐसे कठोर नियम, जिन्हें वे स्वीकार नहीं कर पाते थे। तथापि अनजाने तथा अपनी अन्तश्चेतनामें वे 'प्रकृति माता'को जानते और स्वीकार करते थे। उसके विषयमें वे अनुभव करते थे कि वह समझने और स्वीकार करनेयोग्य है। 'प्रकृति' क्या है? वह स्वयं स्रष्टा, भगवान् विष्णुके अतिरिक्त कुछ नहीं है। वह स्रष्टा तथा जगत् और जगत्की सारी वस्तुओंके साथ तद्रूप है। आधुनिक युगके मानवके लिये यह आवश्यक है कि वह अपने कष्टों और झंझटोंके साथ भगवान्की ओर उन्मुख हो, जिससे वह भविष्यमें अपनी श्रद्धा और नैतिक स्तर बनाये रखे। वे अनुभव करते थे कि धर्म नियमोंका एक पुलिंदा है और प्रकृति कहीं अधिक वास्तविक है। इसका कारण यह है कि नियम मनुष्यकृत हैं और प्रकृति स्वयं भगवान् विष्णु हैं। भगवान् विष्णु नियमोंकी एक तालिका नहीं हैं। वे जीवनका एक मार्ग हैं—ऐसा मार्ग, जिसका अनुसरण हम सबको करना चाहिये; ऐसा मार्ग, जिसमें भगवान् विष्णु हमको बतलाते हैं कि हमारे चारों ओर जितनी जागतिक वस्तुएँ हैं, सबका अवसान हो जायगा। यह अनुभूति हमारे हृदयके भीतरसे होनी चाहिये। यह जगत् और इसमें स्थित सारी वस्तुएँ भगवान् विष्णुके द्वारा रचित हैं और यह पृथिवी भगवान् विष्णुका स्वरूप है। इस पृथ्वीपर स्थित भौतिक वस्तुएँ निस्सार और निरर्थक हैं और हम उनके आदर्शका अनुसरण करके अपने ही अंदर रहनेवाले सुखको प्राप्त करें। जगत् मनुष्यकृत नियमोंके कारण उत्पन्न हुई समस्याओंसे परेशान है। इस दुःखमय स्थितिको वह एक ही प्रकारसे बदल सकता है और सुख प्राप्त कर सकता है। इसके लिये उसे केवल एक व्रतका पालन करना पड़ेगा—वह है भगवान् विष्णुका अनुसरण करना, उनमें श्रद्धालु होकर उनका भजन करना और उनके साथ तादात्म्य स्थापित करना। मनुष्यकी समस्याएँ नयी नहीं हैं,

आधुनिक जगत् एक शब्दावलीमात्र है, जिसका न कोई अर्थ है, न उद्देश्य है। वह जगत् ऐसा है, जिसमें हमारी समस्याएँ आज, और आगे, भगवान् विष्णुके शाश्वत ज्ञानके द्वारा हल हो सकती हैं। वे स्वयं कालरूप हैं, अतएव अजर हैं। वे पहले थे और जीर्ण वस्त्रके समान हमारी भौतिक देहके परित्यागके बाद भी रहेंगे। उनके ज्ञानकी अगाधता, सुख और प्रज्ञा सदा बनी रहेगी। हमको भगवान् विष्णुके द्वारा इस जगत्में आनन्दप्राप्तिके सही रास्तेको जानना-समझना और उसका अनुगमन करना चाहिये।

इस सच्ची घटनाके विषयमें लिखनेका मेरा उद्देश्य यह दिखलाना है कि इस आधुनिक जगत्के व्यापारमें बड़ी गड़बड़ी है। राष्ट्र हो या व्यक्ति, उसके लिये केवल व्यष्टिरूपमें ही नहीं, अपितु जगत्के व्यवहारमें सामूहिक रूपमें आचरणका एक ही लक्ष्य है—और वह है अपने भीतर यथार्थ अनुभूति प्राप्त करना। धर्म कोई पृथक् समाज नहीं है, जिसमें कुछ निर्धारित नियमोंको हमें मानना और उसपर अमल करना है। धर्मका अर्थ है—यह सच्ची अनुभूति कि भगवान् विश्वरूप हैं और हम उनके अङ्ग हैं—वे ही हमारे जीवन हैं, और अपने दैनंदिन जीवनमें उनमें श्रद्धा रखकर, भजनके द्वारा तथा उनकी सर्वज्ञताको अङ्गीकार करते हुए, इस आधुनिक जगत् और उसके व्यापारमें हम आत्मानुभूति और वास्तविक सुखकी ओर अग्रसर होंगे। उपनिषद्के इन अवतरणोंको उद्धृत करके उपसंहार करना अच्छा होगा।

'वे अविद्याके भीतर रहनेवाले, अपने-आप बड़े बुद्धिमान् बने हुए और अपनेको पण्डित माननेवाले मूढ़ पुरुष, अंधेसे ही ले जाये जाते हुए अंधेके समान, अनेकों कुटिल गतियोंकी इच्छा करते हुए भटकते रहते हैं।'*

'अपने अन्तःकरणमें स्थित उस (देव)को जो मतिमान् देखते हैं, उन्हें ही नित्य-सुख प्राप्त होता है, औरोंको नहीं।'†

'सदा परस्पर मिलकर रहनेवाले दो सखा सुपर्ण (सुन्दर गतिवाले पक्षी) एक ही वृक्षका आश्रय किये हुए हैं। उनमें एक उसके स्वादिष्ट फलोंको चखता है और दूसरा उन्हें न चखता हुआ (केवल) देखता रहता है।'‡

'हरि भजि, और न लेखो'

भाई रे इन नैनन हरि पेखो।
हरि की भक्ति, साधु की संगति, सोई यह दिल लेखो॥
चरन सोई, जो नचत प्रेम से, कर सोई, जो पूजा।
सीस सोई जो नवे साधु के, रसना और न दूजा॥
यह संसार हाट को लेखा, सब कोउ वनिजहिं आया।
जिन जस लादा, तिन तस पाया, मूरख मूल गँवाया॥
आतम राम देह धरि आयो, ता में हरि को देखो।
कहत नामदेव बलि-बलि जैहौं, हरि भजि, और न लेखो॥

—संत नामदेव

* अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः स्वयं धीराः पण्डितम्मन्यमानाः।
दन्द्रम्यमाणाः परियन्ति मूढा अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः॥ (कठोपनिषद् १।२।५)

† तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम्। (श्वेताश्वतरोपनिषद् ६।१२)

‡ द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति॥ (श्वेताश्वतरोपनिषद् ४।६)

मानवमें विष्णुकी पहचान

(लेखक—प्रो० श्रीधर्मवीरजी, एम्० ए०)

''एक दिन प्रातः भाई श्रीपरमानन्दजी सैरसे न लौटे। बहुत देर हो गयी थी। हमने समझा था, एक घंटेके बाद लौट आयेंगे। पर जब वे न आये, तब चिन्ता हुई। तीन ओर तीन सज्जन दौड़ाये गये। मैं भी उनमेंसे एक था। उस समय मैरिज़बर्गसे कुछ दूरीपर एक जंगल आरम्भ हो जाता था, जिसके अंदर हब्शी रहते थे। इनमेंसे किसी-किसीने अपनी झोंपड़ी डाल रखी थी। मैं हब्शियोंकी बिखरी बस्तीमें चला गया।

''एक झोंपड़ीके बाहर असाधारण भीड़ देखी। पहले तो मैंने उधर ध्यान देनेका विचार न किया; क्योंकि मैं जानता था कि श्रीभाईजी झोंपड़ीके अंदर नहीं जा सकते। झोंपड़ीके अंदर उनका कोई काम नहीं हो सकता था। फिर न मालूम क्या विचार आया, जो मैं उधर हो लिया। शायद मैं यह पता करना चाहता था कि किसी हब्शीने किसी पगड़ीवाले सज्जनको तो नहीं देखा। मैं हब्शियोंकी भाषाको कुछ-कुछ जानता हूँ (यहाँ कई बरस हो गये हैं रहते-रहते)।

''एक हब्शीसे पूछा—'यहाँ क्या है ?'

''उसने हँस दिया! मुझे उसकी हँसीका अर्थ समझमें न आया। मैंने उससे दुबारा पूछा—'इस झोंपड़ीके अंदर क्या हो रहा है ?'

''उसने फिर हँस दिया। अबकी उसने यह कहा—'जरा आगे बढ़कर देखो न।'

''मैंने उसके सुझावको स्वीकार किया और आगे हो गया। जो हब्शी स्त्रियाँ, पुरुष और बच्चे झोंपड़ीके बाहर खड़े थे (जिनमेंसे अधिकतर अधनंगे थे), उनकी भीड़को चीरकर आगे जाना मेरे लिये कठिन न था; क्योंकि हब्शी योरपियोंको रास्ता देनेके लिये स्वयमेव तैयार रहते हैं।

''धीरे-धीरे मैं अंदर पहुँच गया।

''अब क्या देखा कि श्रीभाईजी एक ऊँचे-से मोढ़ेपर बैठे हैं और दस-बारह वृद्ध हब्शियोंने उन्हें घेर रखा है। झोंपड़ीमें कुछ-कुछ अँधेरा था, इसलिये मनमें आया—कहीं मैं भूल तो नहीं कर रहा हूँ ? आँखें झपकीं, उन्हें हथेलियोंसे मला। देखा तो श्रीभाईजी ही नजर आये। इसपर मैं उनके पास पहुँच गया। वे मुस्करा रहे थे।

'आप यहाँ कैसे पहुँच गये ?' उन्होंने मुझसे प्रश्न किया।

'आपको ही ढूँढ़ रहा हूँ।'

'क्यों ? क्या मैं गुम होनेवाली वस्तु हूँ ?'

'यह तो नहीं हो सकता। लेकिन आपको घंटा डेढ़ हो चुका है मकानसे निकले। स्वाभाविकतया हमें चिन्ता लगी।'

'अरे भाई!' वे हँसकर कहने लगे—'मैं तो फँस गया हूँ।'

'कैसे ?' मैंने पूछा।

''उन बुड्ढे हब्शियोंमेंसे एकने मुझसे कहा—'ये तो देवता हैं, हमारे लिये पूजाके योग्य हैं।'

'यह कैसे ?' मैंने उससे उसीकी बोलीमें पूछा।

'बात यह है', वृद्धने धीरे-धीरे बताया—'हममेंसे एक लड़कीने आज प्रातः शहद चुराया। शायद पहले भी उसे चोरीकी आदत थी। माने उसे अपनी झोंपड़ीसे कुछ दूरीपर ले जाकर बाक़ायदा रस्सियोंसे वृक्षके साथ बाँध दिया। सूखा घास-फूस और झाड़-झंखार भी उसके इर्द-गिर्द जमा कर दिया। उसने निश्चय किया कि इसमें आग लगाकर लड़कीको समाप्त कर दूँगी। शायद उसके छोटे बच्चेने झोंपड़ीमें चिल्लाना शुरू कर दिया था और वह उसे चुप करानेके लिये उधर चली गयी। वृक्षके साथ बँधी यह लड़की रोती-चिल्लाती रही। उधरसे ये देवता गुजरे। इन्होंने देखा कि लड़कीको वृक्षके तनेसे बाँधकर घास-फूसकी सहायतासे इसे जलाया जानेवाला है। इन्होंने अपने हाथोंसे लड़कीकी रस्सियाँ खोल दीं। फिर उसका स्थान स्वयं ले लिया और अपने इर्द-गिर्द रस्सियाँ लपेट लीं या शायद इन्होंने उस लड़कीसे रस्सियाँ बँधवानेमें सहायता ली। हममेंसे एक (उसने भाईजीके पीछे नाटे-से कदवाले वृद्धकी ओर संकेत किया) अपनी झोंपड़ीसे निकलकर कहीं जा रहा था। उसने इस देवताको रस्सियोंसे बँधा देखा तो शोर मचा दिया। हब्शी स्त्रियाँ, पुरुष और बच्चे एकत्र

हो गये। सभी इन्हें रस्सियोंसे बँधा देखकर चकित रह गये। एकने पूछा—'इन्हें किसने बाँधा है ?' दूसरेने सवाल किया—'ऐसा काम कौन कर सकता है ?' तीसरेने गुस्सेसे जिज्ञासा प्रकट की—'उसकी अक्ल मारी गयी है क्या ?' इतनेमें उस लड़कीकी माँ भी अपने छोटे बच्चेको गोदमें लिये वहाँ पहुँच गयी। जब उसने इनको रस्सियोंसे बँधा देखा तो हैरान-परेशान रह गयी। उसने कहा—'अरे! यहाँ तो मैं अपनी छोटी लड़कीको बाँध गयी थी। उसे किसने खोला है ? उसके स्थानमें इस परदेशीको किसने बाँध दिया ?' अब सभी लोगोंकी समझमें सारी बात आ गयी। इस देवताने ही उस लड़कीको स्वतन्त्र करके उसका स्थान स्वयं ले लिया ताकि लड़की बच जाय और यदि किसीको जलाया ही जाना है तो इनको जला दिया जाय।'

"मैंने यह सुनकर श्रीभाईजीकी ओर देखा। उनकी आँखें भूमिकी ओर झुक रही थीं। उन्होंने हब्शियोंसे इजाजत लेनी चाही। वृद्ध हब्शी न माने। एकने उस नवयुवकको इशारा किया, जो उसके पास खड़ा था। वह वहाँसे खिसक गया। थोड़ी ही देरमें वह हाथीका एक लंबा दाँत ले आया। इसे भाईजीको भेंट किया गया। श्रीभाईजीने उनको धन्यवाद देते हुए कहा—'मैं इसका क्या करूँगा ? आप इसे बेचकर जरूरतकी अन्य वस्तुएँ खरीद सकते हैं।'

"मैंने श्रीभाईजीसे निवेदन किया—'आप इसे रख ही लीजिये, नहीं तो ये बुरा मानेंगे।'

"श्रीभाईजीने ऐसा ही किया। हम उन सबका धन्यवाद करके लौट आये।

"अब मुझे खयाल आता है कि मनुष्यके अंदर जो नारायण है, वह नरके साथ एक होकर रहता है। इसीको श्रीभाई परमानन्दजीने यहाँ अपने एक भाषणमें 'विष्णु' कहा था। क्या हब्शियोंने भी इस नारायण या विष्णुको पहचान लिया था ?"

ऊपरकी घटना लिखनेवाले सज्जनका नाम है—श्री जी० विलियम्स। ये मैरित्सबर्ग (नैटाल, दक्षिण अफ्रीका) के रहनेवाले हैं। जब सन् १९०५ में हिंदू-संस्कृतिके दूतके रूपमें श्रीभाईजी अफ्रीका गये, तब श्रीविलियम्सने उनसे हिंदुत्वकी दीक्षा ली। लाला हरदयालके क्रान्तिकारी कार्यों, विशेषकर गदरमें भाग लेने, के कारण जब श्रीभाईजीको फाँसीका दंड सुनाया गया (जो बादमें काला-पानीमें बदल दिया गया), तब श्रीविलियम्सको भी इससे बहुत दुःख हुआ। काला-पानीसे मुक्ति पानेपर श्रीविलियम्सने श्रीभाईजीसे अनुज्ञा माँगी कि 'मैं लाहौर आकर आपके दर्शन करना चाहता हूँ।' श्रीभाईजीने उन्हें उत्तर दिया—'यह मौसम गर्मीका है; आपके लिये अच्छा नहीं। गरमी बीतनेके बाद आपको आनेके सम्बन्धमें लिखा जायगा।'

श्रीहरिसे निवेदन

अब की करौ सहाय हमारी।
दुष्ट-दलन अरु भक्त-बचावन, ऐसी साखि तुम्हारी॥
जिन प्रह्लाद असुर गहि बाँध्यो, लीन्हो खड्ग निकारी।
हिरनाकुश हनि दास उबारो, नरसिंह को तनु धारी॥
खैंचि ग्राह गज बोरन लागो, राम कह्यो यकबारी।
सुनत पुकार पयादेहिं, धाये तजि कै गरुड़ सवारी॥
द्रौपदि लाज उघारण कारण लाये सभा मँझारी।
दीनानाथ लई सुधि बेगहि, बाढ़ो चीर अपारी॥
जिन-जिन सरण गही संकट मैं, कहा पुरुष, कह नारी।
चारो जुग हरि करी सहाई, रच्छक भये मुरारी॥
गुरु सुकदेव बतायो तोकों संतन की रखवारी।
'चरणदास' थकि द्वारे तेरे गुण-पौरुष दियो डारी॥

—महात्मा चरणदास

भगवान् श्रीविष्णुका प्रतीकात्मक मनन

(लेखक—डॉ० श्रीसुरेशचन्द्रजी सेठ, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

समस्त भारतीय वाङ्मय एक प्रकारसे प्रतीकात्मक है। जिस समय भगवान् श्रीविष्णुके दिव्य चित्रपटपर दृष्टि जाती है, उस समय विचारोंका सागर हिलोरें लेने लगता है। विष्णुभगवान्‌के चरणोंके चारों ओर लहलहाता समुद्र स्वयंमें संसार-सागरका प्रतीक है—जिसमें समस्त चर-अचर, काल-चक्रके वशीभूत होकर, बारंबार आ-जा रहे हैं; किंतु उस संसार-सागरके मध्य फिर भी जो एक त्रिकालातीत सत्ता सदा विद्यमान रहती है, वही वास्तवमें विष्णु-तत्त्व है। जलमें कमलवत् निर्लेप रहनेकी सामर्थ्य उसी तत्त्वमें है। भगवान् विष्णुके चतुर्भुज रूपको देखकर जीवनके बहुत-से अनोखे रहस्योंका उद्‌घाटन होता है, जिनको प्रतीकरूपसे स्वीकार कर बड़े-बड़े तत्त्ववेत्ताओं, ऋषि-महर्षियोंने भी जीवनको कृतकृत्य बनानेका प्रयत्न किया है।

जो विष्णु-तत्त्व एक होनेपर भी अनेक रूपवाला है, स्थूल-सूक्ष्म एवं अव्यक्त (कारण), व्यक्त (कार्य) रूप है तथा जो भुक्ति-मुक्तिका कारण है, ऐसे श्रीविष्णुभगवान्‌के अस्तित्वको स्वीकार कर, उस परब्रह्मस्वरूप सत्ताके सम्बन्धमें, आजकी दृष्टिसे कुछ कहना आवश्यक हो गया है। वैसे तो उस सत्ताको कोई स्वीकार करे या न करे, इससे उसकी महिमामें कोई अन्तर आनेवाला नहीं है; फिर भी मानवका हित इसमें अवश्य है कि वह अपने विवेकके प्रकाशमें, जीवनके सही स्वरूपको समझनेका प्रयत्न करे। आजका मानव विश्वके बारेमें न जाने क्या-क्या जानता है; किंतु जीवनकी सबसे बड़ी विडम्बना यह है कि वह अपने विषयमें ही सबसे कम जानता है। यदि वह अपने जीवनके रहस्यको समझनेके लिये एक बार भगवान् विष्णुको अपने समक्ष रखकर ज्ञान-चक्षुओंसे उनका दर्शन कर ले, तो जीवनके अनेक पहलुओंपर स्वतः ही नवीन प्रकाश प्राप्त हो जाय।

संसारका प्रत्येक व्यक्ति बहुत कुछ जानता है, किसी-न-किसीको मानता है और कुछ-न-कुछ करता अवश्य है; किंतु उसका व्यवहार इतना विचित्र रहता है कि जिसे जान सकता है, उसके बारेमें अनेक मान्यताएँ ग्रहण करता है; जिसे मानना चाहिये अर्थात् जिसको हृदयसे स्वीकार कर लेना चाहिये, उस साध्यको साध्य बनानेके लिये तर्क करता है और जो वस्तु कर्मसाध्य है, उसका अनावश्यक चिन्तन करता है। वैसे तो अविनाशी तत्त्वको न जानते हुए भी स्वीकार करना हितकर है; फिर भी आजका बुद्धिजीवी प्रमाणके आधारपर ही विश्वास करना स्वीकार करता है, अतएव उसी आधारपर तर्कयुक्त बातको प्रस्तुत करना अधिक श्रेयस्कर रहेगा।

चिन्मय जीवन एवं चिर शान्ति मानवमात्रकी मौलिक माँग है। उस माँगकी पूर्तिके लिये प्रत्येक मनुष्य दिन-रात दौड़-धूप कर यह समझता है कि सम्भवतः उसके इस श्रमसे जीवनमें शान्तिका अवतरण हो जायगा। लेकिन आजतकका भौतिक विकास इस बातका पुष्ट प्रमाण है कि जीवनमें सुख-सुविधाओंका बाहुल्य हो जानेपर भी जीवनकी शान्ति कहीं अन्यत्र खो गयी है। व्यक्ति चन्द्रतलतक पहुँच-कर भी, 'स्व'से इतना दूर निकल गया है कि अपनी आँखोंसे अपना स्वरूप देखना ही उसके लिये असाध्य हो गया है। विष्णु-तत्त्व हमें अपने वास्तविक स्वरूपके रहस्यको समझनेमें अत्यधिक सहायक हो सकता है। नररूपमें नारायणका चतुर्भुज रूप एक हाथमें शङ्ख, दूसरेमें चक्र, तीसरेमें गदा तथा चौथेमें पद्म लिये हुए दृष्टिगोचर होता है। मनुष्यका स्थूल शरीर तो यन्त्रमात्र है, जो मन, बुद्धि, चित्त तथा अहंकार अर्थात् सूक्ष्मशरीरके माध्यमसे संचालित है। इस सूक्ष्मशरीरकी गति भी जिस तत्त्वसे मिल रही है, वह विष्णु-तत्त्व ही है। सूक्ष्मशरीरके अन्तर्गत मानव-मन इतना बलवान् है कि उसपर बड़े-बड़े ऋषि-मुनि भी अङ्कुश लगानेमें सफल नहीं हो सके। वास्तवमें मन वायुवेगसे भी अधिक प्रबल एवं सशक्त होनेके कारण 'अपराजित' माना जाता है और इसीलिये वह नाना प्रकारसे संकल्प-विकल्प उत्पन्नकर मनुष्यको नचाता रहता है। उसकी गति नारायणके हाथमें घूमते हुए चक्रकी-सी है, जो सदा चक्कर लगाता ही रहता है। वैज्ञानिक दृष्टिसे यह तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि मनकी अपनी कोई स्वतन्त्र सत्ता सिद्ध नहीं होती, आभास होता है। अतः यह मानना ही पड़ेगा कि वह भी किसी शक्तिके हाथका खिलौना है, जिसे वह नाना भाँतिसे

गति देकर दिन-रात नाच नचा रहा है। बुद्धिमान् व्यक्तिको स्वीकार कर लेना चाहिये कि विष्णु-तत्त्वके द्वारा ही यह मन कार्य करनेकी शक्ति पा रहा है; अन्यथा उसका अपना कोई अस्तित्व नहीं है। विष्णुके हाथका चक्र मनुष्यको प्रतीकरूपमें यही संकेत दे रहा है कि वह उस सर्वशक्तिमान्‌की सत्ताको स्वीकार कर ले। अर्जुन-जैसे पराक्रमीको भी अन्तमें उसे स्वीकार करना पड़ा और परिणाम-स्वरूप उस विष्णु-तत्त्वकी शरण जाना ही पड़ा। गीता उसका प्रत्यक्ष प्रमाण है।

मनुष्यका दूसरा सूक्ष्म ज्ञानद्वार है—बुद्धि। बुद्धि व्यक्तिके जीवनमें बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य करती है। वास्तवमें वही हमारे लिये अन्तिम निर्णायक शक्ति है। उसके ही द्वारा आजका सकल विश्व संचालित है। प्राप्त विवेकके आधारपर बुद्धिके सदुपयोगसे व्यक्ति महान्-से-महान् दार्शनिक, वैज्ञानिक, श्रेष्ठ साहित्यकार तथा सिद्ध बन सकता है और उसी ज्ञानशक्तिका दुरुपयोग उसे विनाशके कगारतक पहुँचा सकता है। आज व्यक्तिने बुद्धिका उपयोग तो अवश्य किया है, किंतु निज विवेकका आदर नहीं किया। उसने प्राप्त ज्ञानकी उपेक्षा कर जीवनकी दिशाको ही मोड़ दिया है। इसका मूल कारण यह है कि बुद्धिके पीछे जो सूक्ष्म तत्त्व कार्य कर रहा है, उससे उसका प्रत्यक्ष सम्बन्ध-विच्छेद हो गया है। उसी बुद्धिको सही दिशा देनेके लिये विष्णुभगवान्‌ने हाथमें गदा धारण की है। विष्णुपुराणमें भगवान्‌के हाथमें खड्गका वर्णन भी मिलता है। खड्ग और गदा व्यक्तिके अहंको चूर करनेके साधनमात्र हैं, जिनका प्रयोग आवश्यकता पड़नेपर, उस कृपासागरको स्वयं करना पड़ता है। अज्ञानसे हटाकर ज्ञानकी ओर उन्मुख करनेका वही एकमात्र साधन है। भगवान् विष्णुके हाथका शङ्ख मनुष्यके अहंका प्रतीक है, जिसे अहंकारी व्यक्ति दिन-रात बजाता रहता है। यह मेरा है, यह मेरा है—यही उसकी रटन रहती है। इसके अतिरिक्त सारे विश्वमें संघर्षका मूल कारण भी व्यक्तिका अहंकार ही है। व्यक्तिका अहं इतनी विलक्षण वस्तु है कि जब वह संसारमें लग जाता है, तब व्यक्तिको दासतामें आबद्ध कर देता है और जब वह आत्मतत्त्वसे सम्बन्ध स्थापित कर लेता है, तब व्यक्तिको जीवन्मुक्त करा देता है। मानवकी विचित्र महिमा है। और धन्य है उसका निर्माता, जिसने उसे वह सब कुछ दे डाला है, जिससे वह अपनेको चाहे तो दास बना ले, बन्धनयुक्त कर ले और चाहे तो जीवन्मुक्त हो जाय। इस अहंने आज विश्वके बड़े-बड़े राष्ट्रोंको विनाशके कगारपर लाकर खड़ा कर दिया है। जिस अहंने रावण और कंस-जैसे योद्धाओंको नष्ट करवा दिया, वही अहं किसीके हाथका खिलौनामात्र है। इसी अहंसे जीवनमें महत्त्वाकाङ्क्षाओंको जन्म मिलता है और ये महत्त्वाकाङ्क्षाएँ ही विश्वमें संघर्षका कारण बन जाती हैं। जो व्यक्ति इस अहंके स्वरूपको समझकर विष्णु-तत्त्वकी शरण चला जाता है, भगवान् अच्युत उस व्यक्तिके अहंको अपने निर्मल खड्गद्वारा चूर-चूर कर देते हैं और साथ ही अज्ञानका नाश कर व्यक्तिको निज ज्ञानसे 'स्व'का बोध करा देते हैं। जब व्यक्तिको तत्त्वका बोध हो जाता है, तब उसका हृदय कमलवत् विकसित हो जाता है और वह जीवनमें परमपदको प्राप्तकर, संसारमें नरसे नारायण बन जाता है और विश्व-सरोवरमें कमलवत् रहकर जीवनको सार्थक कर लेता है। भगवान् विष्णुके हाथका कमल हमें निज कल्याणके लिये अपनी ओर आकर्षित कर रहा है।

मुक्ता, माणिक्य, पुष्पराग, इन्द्रनील और हीरकसे बनी हुई जो भगवान् विष्णुके वक्षकी सुन्दर माला है, वह पञ्चतन्मात्राओं तथा पञ्चमहाभूतोंका प्रतीक है। अतः प्रत्येक व्यक्तिको स्वीकार कर लेना चाहिये कि सभीकी उत्पत्ति, उसके विकास तथा विनाशके पीछे, वही एक मूलतत्त्व नाना रूपोंमें कार्य कर रहा है। आजका मनोविज्ञान—जो प्रारम्भमें आत्माका, तत्पश्चात् मनका और आज केवल मनुष्यके व्यवहारका विज्ञान रह गया है, वह भी जीवनकी समस्याओंका समाधान देनेमें असफल सिद्ध हो चुका है। पञ्च-ज्ञानेन्द्रियोंकी सत्ताको मनोविज्ञान अवश्य स्वीकार करता है; किंतु उनके पीछे जो संचालिका चेतन सत्ता है, उसका नामकरण करनेमें वह भी अभीतक सफल नहीं हो सका है। कारणके बिना कार्य कभी होता नहीं। अतः लक्ष्यप्राप्तिका एक ही मार्ग रह जाता है कि हम सुने हुएमें आस्था कर लें, नरमें नारायणका दर्शन कर प्रत्येक प्राणीको गले लगा लें, उसकी सेवामें लग जायँ तथा इच्छाओं-कामनाओंका परित्याग कर, उस अविनाशी विष्णु-तत्त्वसे प्रेमका सम्बन्ध स्थापित कर लें। उसकी सत्ताको स्वीकार कर लें।

मनुष्यकी उत्पत्ति एवं रचना किसीकी अहैतुकी कृपाका परिणाम है। जिस सत्तासे संसारमें जड-चेतनकी उत्पत्ति स्वीकार की जाती है, उसके मूलतत्त्वको ही हम दार्शनिक भाषामें विष्णु-तत्त्वकी संज्ञा देते हैं। इसीलिये सारे धर्मोंको

त्यागकर, उस एक विष्णु-तत्त्वकी शरण जानेका उपदेश श्रीकृष्णने अर्जुनको महाभारतमें दिया था। आज तो जीवनमें नित्य प्रति महाभारत हो रहा है। इसलिये गीताके इस कथनके आधारपर—

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः॥
(९।३४)

—उसी अविनाशी तत्त्वमें मन लगाकर, उसका भक्त बनकर, उसीका यजन कर तथा उस तत्त्वको ही नमस्कार कर, उसकी शरण जानेपर, उस तत्त्वसे अभिन्न होकर व्यक्ति मानव-जीवनको सार्थक कर सकता है—इस सत्यको समझ लें। इस रहस्यको जाननेवाला मानव नारायणरूपमें नरकी सेवा करके सच्चा वैष्णव हो जाता है, जिसे नरसी भक्तने इस रूपमें कहा है—

'वैष्णव जन तो तेने कहिये, जे पीड़ पराई जाणे रे।'

अतः सच्चे वैष्णव बनकर हम मिली वस्तु, योग्यता, सामर्थ्यसे सेवा करें; इच्छाओं-कामनाओंको त्यागकर, सुख-दुःखके बन्धनसे मुक्त हो, उस अविनाशी तत्त्वसे अभिन्न होकर, जीवनको सार्थक करें। इसीमें जीवनकी सफलता है। **'यत् पिण्डे तद् ब्रह्माण्डे'** के आधारपर यह स्पष्ट कहा जा सकता है कि स्वयं नारायणने ही अपनी सर्वोत्कृष्ट रचना मनुष्य-रूपमें प्रस्तुत की है, जिसके मूलमें वह अव्यक्त ही व्यक्त हो रहा है। अतः उस तत्त्वकी स्वीकृतिमें ही जीवनकी सफलता निहित है।

वैष्णव-महिमा

(लेखक—स्वामी श्रीविष्णुदेवानन्दजी सरस्वती)

पद्मपुराणके उत्तरखण्डमें आया है—

विष्णोरयं यतो ह्यासीत् तस्माद्वैष्णव उच्यते।
सर्वेषां चैव वर्णानां वैष्णवः श्रेष्ठ उच्यते॥

"विष्णुसे सम्बन्ध रखनेके कारण ही वैष्णव 'वैष्णव' कहलाते हैं तथा सब वर्णोंमें वैष्णव सर्वश्रेष्ठ कहलाते हैं।"

श्रीमद्भागवत २।३।२३ में लिखा है—

जीवञ्छवो भागवताङ्घ्रिरेणुं न जातु मर्त्योऽभिलभेत यस्तु।
श्रीविष्णुपद्या मनुजस्तुलस्याः श्वसञ्छवो यस्तु न वेद गन्धम्॥

'जो आदमी कभी विष्णुभक्तकी चरण-धूलि सर्वाङ्गमें धारण नहीं करता, वह जीवित रहे तो भी उसका शरीर शवके समान है। जो मनुष्य श्रीविष्णुके चरणोंमें संलग्न तुलसीको सूँघकर आनन्दित नहीं होता, वह श्वास लेते हुए भी मृतक-तुल्य है।'

पद्मपुराणके **'अर्च्ये विष्णुं शिलाधी०'**—इस श्लोकका मर्मार्थ यह है कि 'जो आदमी विष्णुके पूजा-विग्रहमें शिलाबुद्धि, वैष्णवगुरुमें मर्त्यबुद्धि, वैष्णवमें जातिबुद्धि, विष्णु-वैष्णव-पादोदकमें जलबुद्धि, सब पापोंका नाश करनेवाले विष्णुनाम-मन्त्रमें शब्द-सामान्यबुद्धि तथा सर्वेश्वर विष्णुके प्रति अन्य देवताओंके साथ समबुद्धि रखते हैं, वे नारकी हैं।'

स्कन्दपुराणके—**'निन्दां कुर्वन्ति ये मूढा वैष्णवानां०'**—इस श्लोकमें लिखा है कि 'वैष्णवकी हत्या करनेवाला, निन्दा करनेवाला, द्वेषी, वैष्णवकी पूजा न करनेवाला, वैष्णवके दर्शनसे आनन्दित न होनेवाला और वैष्णवको देखकर क्रोध करनेवाला दुर्जन अधःपतित होता है।'

इसके सिवा श्रीमद्भागवत ११।२०।३४ में आया है—

न किंचित् साधवो धीरा भक्ता ह्येकान्तिनो मम।
वाञ्छन्त्यपि मया दत्तं कैवल्यमपुनर्भवम्॥

'मेरे अनन्यप्रेमी एवं धैर्यवान् साधु भक्त स्वयं तो कुछ चाहते ही नहीं; यदि मैं उन्हें देना चाहता हूँ और देता भी हूँ तो भी दूसरी वस्तुओंकी तो बात ही क्या, वे कैवल्य-मोक्ष भी नहीं लेना चाहते।'

तथा श्रीमद्भागवत ९।४।६७ में आया है—

मत्सेवया प्रतीतं च सालोक्यादिचतुष्टयम्।
नेच्छन्ति सेवया पूर्णाः कुतोऽन्यत्कालविद्रुतम्॥

'मेरे अनन्यप्रेमी भक्त सेवासे ही अपनेको परिपूर्ण—कृतकृत्य मानते हैं। मेरी सेवाके फलस्वरूप जब उन्हें सालोक्य-सारूप्य आदि मुक्तियाँ प्राप्त होती हैं, तब वे उन्हें

भी स्वीकार नहीं करना चाहते; फिर समयके फेरसे नष्ट हो जानेवाली वस्तुओंकी तो बात ही क्या है।'

इसके सिवा 'चैतन्य-शिक्षाष्टक' (४) में कहा गया है—

न धनं न जनं न सुन्दरीं कवितां वा जगदीश कामये।
मम जन्मनि जन्मनीश्वरे भवताद्भक्तिरहैतुकी त्वयि॥

'जगन्नाथ! मैं धन, जन, कामिनी, कविता अथवा पाण्डित्यकी भी कामना नहीं करता। मैं तो यही चाहता हूँ कि परमेश्वर-स्वरूप तुम्हारे प्रति जन्म-जन्मान्तरमें मेरी अकारण भक्ति हो।'

—इत्यादि श्लोकोंमें वैष्णवके लिये आवश्यक निःस्पृहताकी महिमा बतलायी गयी है।

त्रिकालदर्शी ऋषिने इसी कारण श्रीमद्भागवत (११। २। ५३) में कहा है—

त्रिभुवनविभवहेतवेऽप्यकुण्ठ-
स्मृतिरजितात्मसुरादिभिर्विमृग्यात्।
न चलति भगवत्पदारविन्दा-
ल्लवनिमिषार्द्धमपि यः स वैष्णवाग्र्यः॥

'यदि त्रिभुवनका राज्य भी मिलता हो, तो भी जो इन्द्रादि देवताओंके द्वारा अन्वेषणीय भगवच्चरणारविन्दसे आधे पलके लिये भी विचलित नहीं होते, तथा जो भगवच्चरणारविन्दको ही दृढ़रूपसे सार समझते हैं, वे ही श्रेष्ठ वैष्णव हैं।'

भारतीय साहित्यके कतिपय विष्णु-यशोगायक

भारतीय साहित्यकी आदिभूमि वेद है। वेदार्थसे सम्पन्न रामायण, महाभारत तथा श्रीमद्भागवत आदि पुराण कल्पवृक्ष हैं, जिनकी शीतल, सुखद और पुण्यमयी छायामें भारतीय कवि चिरकालसे विश्राम करते आ रहे हैं तथा आगे भी करते रहेंगे। उपर्युक्त वाङ्मयसे ही भारतीय कवि काव्य-रचनाकी प्रेरणा प्राप्त करते आ रहे हैं। भगवान् विष्णु सर्वव्यापक हैं। उनके स्वरूप तथा अवतार-रूपोंपर भारतीय साहित्यमें—विशेषतया काव्य-साहित्यमें प्रचुर प्रकाश डाला गया है। श्रीविष्णु समस्त कल्याणमय गुणोंसे सम्पन्न निरामय विश्वमूर्ति भगवान्‌के रूपमें हमारे काव्य-साहित्यमें चित्रित किये गये हैं—

'यतो यश्च स्वयं विश्वं स विष्णुः परमेश्वरः।'
(विष्णुपुराण १। १७। २२)

'परमेश्वर विष्णुसे ही जगत् प्रकट हुआ है, वे ही विश्वके रूपमें प्रकट हैं।' श्रीविष्णुके परम स्वरूपका चिन्तन कर मनुष्य सुखी होता है और संसारसे उसका शीघ्र ही उद्धार हो जाता है—

एतस्य परमं रूपं यश्चिन्तयति मानवः।
स सुखी स च संसारात् समुत्तीर्णोऽचिराद् भवेत्॥
(मार्कण्डेयपुराण १९। ३९)

श्रीविष्णु सम्पूर्ण ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्यसे युक्त भगवान् हैं; वे सर्वाधार और सर्वपोषक हैं। स्तुति करनेवाले मेधावी कवि श्रीविष्णुके पवित्र चरित्रका चिन्तन कर अपने हृदयको प्रकाशित करते हैं तथा जगत्‌का कल्याण करते हैं।

(१)

आदिकवि वाल्मीकि

आदिकवि महर्षि वाल्मीकि वैष्णव कवि थे। उन्होंने रामायणमें भगवान् विष्णुके रामरूपका लीला-चरित्र चित्रित किया। वाल्मीकि-रामायण आदिकविके करुणापूर्ण वैष्णव-हृदयकी अप्रतिम देन है। यह वैष्णव-साहित्य है। महर्षि वाल्मीकि वरुणके पुत्र थे, तमसा नदीके तटपर उनका आश्रम था। स्कन्दपुराणके वैशाख-माहात्म्यमें उन्हें जन्मान्तरका व्याध बताया गया है। व्याध-जन्ममें शङ्ख-ऋषिके सत्सङ्ग और राम-नामके जापसे वे दूसरे जन्ममें अग्निशर्मा—रत्नाकर नामसे प्रसिद्ध हुए। इस जन्ममें भी व्याधोंके सङ्गमें रहनेसे वे व्याध-कर्ममें प्रवृत्त थे। सप्तर्षियोंका सत्सङ्ग प्राप्तकर तथा राम-नामका उलटा जप करके वे महर्षि वाल्मीकि कहलाये और तपके प्रभावसे तथा जगत्स्रष्टा ब्रह्माजीकी प्रेरणासे उन्होंने रामायणकी रचना की। अध्यात्मरामायण, अयोध्याकाण्डके छठे सर्गके ६४वेंसे ९६ तकके श्लोकोंमें वाल्मीकिके जीवनपर प्रकाश डाला गया है। इन श्लोकोंमें महर्षि वाल्मीकिने स्वयं अपनी आत्मकथा कही है कि किस तरह सप्तर्षियोंके उपदेशसे वे तप कर वल्मीक (दीमकों) की मिट्टीके ढेरसे ढक गये और उन ऋषियोंके फिर पधारनेपर उन्होंने किस तरह 'वाल्मीकि' नाम प्राप्त किया। उनके वचन हैं—

एवं बहुतिथे काले गते निश्चलरूपिणः।
सर्वसङ्गविहीनस्य वल्मीकोऽभून्ममोपरि ॥
ततो युगसहस्रान्ते ऋषयः पुनरागमन्।
मामूचुर्निष्क्रमस्वेति तच्छ्रुत्वा तूर्णमुत्थितः ॥
वल्मीकान्निर्गतश्चाहं नीहारादिव भास्करः।
मामप्याहुर्मुनिगणा वाल्मीकिस्त्वं मुनीश्वर ॥
वल्मीकात्सम्भवो यस्माद् द्वितीयं जन्म तेऽभवत्।
इत्युक्त्वा ते ययुर्दिव्यगतिं रघुकुलोत्तम ॥
(अध्यात्मरा०, अयो० ६। ८३-८६)

"इस तरह बहुत समयतक निश्चलतापूर्वक रहनेसे मुझ सर्वसङ्गविहीनके ऊपर वल्मीक (दीमकोंकी बाँबी) बन गया। इसके बाद एक हजार युग बीतनेपर वे ऋषिगण लौटे, तब उन्होंने मुझसे कहा—'निकल आओ।' यह सुनकर मैं तुरंत खड़ा हो गया। जिस तरह कुहरेके भीतरसे सूर्य निकल आता है, उसी तरह मैं वल्मीकसे निकल आया। मुनियोंने मुझसे कहा—'मुनिवर! तुम वाल्मीकि हो। इस समय तुम वल्मीकसे निकले हो, इसलिये तुम्हारा यह दूसरा जन्म हुआ है।'—यों कहकर वे दिव्यलोकको चले गये।"

एक दिनकी बात है, महर्षि वाल्मीकि अपने शिष्य भरद्वाजके साथ स्नानके लिये तमसा नदीके तटपर आये। सहसा एक पापमति निषादने कामविह्वल क्रौञ्चपक्षीके जोड़ेमेंसे नर क्रौञ्चको मार डाला। वाल्मीकिका हृदय इस महान् क्रूरकर्मसे संतप्त होकर द्रवित हो उठा; उनकी वैष्णवता–परदुःखकातरता काव्यके रूपमें फूट पड़ी—

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ॥
(वाल्मीकिरा०, बाल० २। १५)

'निषाद! तुझे चिरकालतक शान्ति न मिले; क्योंकि तूने क्रौञ्चके जोड़ेमेंसे एककी, जो कामसे मोहित हो रहा था, बिना किसी अपराधके ही हत्या कर डाली।'

पुण्यमय आदिकाव्यके रूपमें वाल्मीकि-रामायण भगवान् विष्णुकी रामरूपमें अभिव्यक्तिका सरस इतिहास है। यह वैष्णव-काव्य है।

यदि यह कहा जाय कि काव्यके समस्त गुण, अलंकार, रस, वृत्ति, ध्वनि आदि वाल्मीकिरामायणमें साकार हो उठे हैं, तो यह अतिशयोक्ति नहीं होगी।

इतना ही नहीं, महर्षि वाल्मीकिने अपने काव्यको विष्णुभक्तिसे धन्य कर दिया। इसके श्रवणसे विष्णुलोककी प्राप्ति होती है।

वाल्मीकि-रामायणमें आदिसे अन्ततक भगवान् विष्णुका ही लोकपावन चरित वर्णित है। ऋष्यश्रृङ्गद्वारा पुत्रेष्टि यज्ञ आरम्भ किये जानेपर देवताओंने विष्णुसे प्रकट होनेकी प्रार्थना की। भगवान् विष्णु प्रकट हुए। महान् तेजस्वी जगत्पति विष्णु मेघके ऊपर स्थित सूर्यकी भाँति गरुड़पर सवार होकर आ पहुँचे। उनके शरीरपर पीताम्बर, हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा आदि आयुध शोभित थे। दोनों भुजाओंमें तप्त स्वर्णके केयूर थे। देवता उनकी वन्दना कर रहे थे—

एतस्मिन्नन्तरे विष्णुरुपयातो महाद्युतिः।
शङ्खचक्रगदापाणिः पीतवासा जगत्पतिः ॥
वैनतेयं समारुह्य भास्करस्तोयदं यथा।
तप्तहाटककेयूरो वन्द्यमानः सुरोत्तमैः ॥
(वाल्मीकिरा०, बाल० १५। १६-१७)

देवताओंने प्रार्थना की—'हे देव! अपने चार स्वरूप बनाकर आप तीनों रानियोंके गर्भसे पुत्ररूपमें अवतार ग्रहण कीजिये। मनुष्यरूपमें प्रकट होकर आप संसारके लिये प्रबल कण्टकरूप, देवताओंसे अवध्य रावणको समर-भूमिमें मार डालिये'—

विष्णो पुत्रत्वमागच्छ कृत्वाऽऽत्मानं चतुर्विधम्।
तत्र त्वं मानुषो भूत्वा प्रवृद्धं लोककण्टकम् ॥
अवध्यं दैवतैर्विष्णो समरे जहि रावणम्।
(वाल्मीकिरा०, बाल० १५। २१-२२)

कमलनयन श्रीहरिने अपने-आपको चार स्वरूपोंमें प्रकट कर राजा दशरथको पिता बनानेका निश्चय किया—

ततः पद्मपलाशाक्षः कृत्वाऽऽत्मानं चतुर्विधम् ॥
पितरं रोचयामास तदा दशरथं नृपम्।
(वाल्मीकिरा०, बाल० १५। ३१-३२)

महर्षि वाल्मीकिने अयोध्याकाण्डके आरम्भमें स्वयं कहा है कि 'राम साक्षात् सनातन विष्णु थे। परम प्रचण्ड रावणके वधकी अभिलाषा रखनेवाले देवताओंकी प्रार्थनापर वे मनुष्यलोकमें अवतरित हुए थे'—

स हि देवैरुदीर्णस्य रावणस्य वधार्थिभिः।
अर्थितो मानुषे लोके जज्ञे विष्णुः सनातनः ॥
(वाल्मीकिरा०, अयो० १। ७)

वाल्मीकि-रामायणके युद्धकाण्डमें देवताओंके साथ ब्रह्माने विष्णुस्वरूप रामके स्तवनमें कहा है कि 'आप ही शार्ङ्गधन्वा, हृषीकेश, अन्तर्यामी पुरुष और पुरुषोत्तम हैं। आप किसीसे पराजित नहीं होते। आप नन्दक नामक खड्ग धारण करनेवाले विष्णु एवं महाबली कृष्ण हैं। आप अविनाशी परब्रह्म हैं। सृष्टिके आदि, मध्य और अन्तमें आप सत्यरूपसे विद्यमान हैं। आप ही लोकोंके परम धर्म हैं, विष्वक्सेन और चतुर्भुज हरि हैं। आप चक्र धारण करनेवाले सर्वसमर्थ श्रीमान् भगवान् नारायण हैं, एक दाढ़वाले पृथ्वीधारी वराह हैं तथा देवताओंके भूत एवं भावी शत्रुओंको जीतनेवाले हैं'—

भवान् नारायणो देवः श्रीमांश्चक्रायुधः प्रभुः।
एकश्रृङ्गो वराहस्त्वं भूतभव्यसपत्नजित्॥
अक्षरं ब्रह्म सत्यं च मध्ये चान्ते च राघव।
लोकानां त्वं परो धर्मो विष्वक्सेनश्चतुर्भुजः॥
शार्ङ्गधन्वा हृषीकेशः पुरुषः पुरुषोत्तमः।
अजितः खड्गधृग् विष्णुः कृष्णश्चैव बृहद्बलः॥

(वाल्मीकिरा०, यु० ११७। १३-१५)

महर्षि वाल्मीकिने 'कवि' शब्दको सार्थक कर दिया। उनका रामायणकाव्य अजस्र आनन्द-स्रोत है, ज्ञाननिधि है। उन्होंने अपने काव्यमें वैष्णवरस—भागवतरसकी दिव्य-धारा प्रवाहित की। वाल्मीकिकी मौलिक वैष्णव काव्यकृति रामायणके सम्बन्धमें प्रशस्ति है—

रामायणमादिकाव्यं सर्ववेदार्थसम्मतम्॥
सर्वपापहरं पुण्यं सर्वदुःखनिबर्हणम्।
समस्तपुण्यफलदं सर्वयज्ञफलप्रदम्॥

(स्कन्दपु०, वैष्णव०, रामायण-माहात्म्य ५। ६१-६२)

'रामायण आदिकाव्य है। यह सम्पूर्ण वेदोंके तात्पर्यके अनुकूल है। इसके द्वारा समस्त पापोंका निवारण हो जाता है। यह पुण्यमय काव्य सम्पूर्ण दुःखोंका विनाशक तथा समस्त पुण्यों और यज्ञोंका फल देनेवाला है।'

(२)

महर्षि व्यास

भगवान् विष्णु और उनके अनेक अवतारोंके तत्त्व, रूप और लीलाका चिन्तन करनेवालोंमें भारतीय साहित्यमें महर्षि व्यास अग्रगण्य हैं। उनके द्वारा रचित प्रायः सभी पुराणों और महाभारत आदिमें भगवान् विष्णुका प्रचुरतासे चित्रण उपलब्ध होता है। उन्होंने जगत्को प्रचुर वैष्णव-साहित्य प्रदान किया। नारदपुराणमें महर्षि वेदव्यासके विषयमें शौनकने कहा है कि 'भगवान् मधुसूदन ही प्रत्येक युगमें वेदव्यासके रूपमें प्रकट होते हैं और एक ही वेदके अनेक विभाग करते हैं। वेदव्यास मुनि साक्षात् नारायण ही हैं, हमने सब शास्त्रोंमें यह सुना है'—

युगे युगेऽल्पकान् धर्मान् निरीक्ष्य मधुसूदनः।
वेदव्यासस्वरूपेण वेदभागं करोति वै॥
वेदव्यासमुनिः साक्षान्नारायण इति द्विजाः।
शुश्रुमः सर्वशास्त्रेषु..........................॥

(नारदपु०, प्र० पाद १। १७-१८)

व्यासजी पराशरके आत्मज थे। उनके मुख-कमलसे निकले वाङ्मयरूपी अमृतका पान समस्त जगत् करता है। वे सत्यवतीके हृदयको आनन्दित करनेवाले थे—

जयति पराशरसूनुः सत्यवतीहृदयनन्दनो व्यासः।
यस्यास्यकमलगलितं वाङ्मयममृतं जगत्पिबति॥

(वायुपुराण १। १। २)

भारतीय वाङ्मयमें समस्त अध्यात्मज्ञान, परमात्मज्ञान, दर्शन-मर्म आदि परमवैष्णव व्यासदेव कृष्णद्वैपायनकी अहैतुकी करुणाकी देन हैं। उन्होंने मानवताको वैष्णवधर्म—भागवतधर्मसे समृद्धकर चिरकालके लिये उसको अपनी कृपाका आभारी बना लिया। उनके चरणदेशमें भगवल्लीला-कथा रसोन्मत्त परम भागवत शुकदेवकी श्रद्धाञ्जलि है—

नमस्तस्मै भगवते वासुदेवाय वेधसे।
पपुर्ज्ञानमयं सौम्या यन्मुखाम्बुरुहासवम्॥

(श्रीमद्भागवत २। ४। २४)

'संत-महात्मा जिनके मुख-कमलसे मकरन्दके समान झरती हुई ज्ञानमयी सुधाका पान करते हैं, उन परम तेजस्वी वासुदेवस्वरूप भगवान् व्यासदेवको नमस्कार है।'

वेदोंने व्यासदेवकी स्तुति इन शब्दोंमें की है—'महाप्राज्ञ व्यासदेव! आपको धन्यवाद है, धन्यवाद है। आप साक्षात् विष्णु-स्वरूप हैं, शरीरधारियोंके आत्मा हैं। अजन्मा होकर भी आप जन्म धारण करते हैं और लोकके ऊपर अनुग्रह करते हैं। आपको सांसारिक कर्मबन्धनका कोई भय नहीं है। आपपर माया—अविद्याका कोई प्रभाव नहीं है। अपनी इच्छासे ही

आप शरीर धारण करते हैं और तिरोहित होते हैं। आपने हम वेदोंद्वारा मान्य अर्थ ही प्रकाशित किया है'—

साधु साधु महाप्राज्ञ विष्णुरात्मा शरीरिणाम्।
अजोऽपि जन्म सम्पद्य लोकानुग्रहमीहसे॥
अन्यथा ते न घटते संसारकर्मबन्धनम्।
अस्पृष्टो मायया देव्या कदाचिज्ज्ञानगूह्या॥
बिभर्षि स्वेच्छया रूपं स्वेच्छयैव निगूह्यसे।
अस्मत्सम्मत एवार्थो भवता सम्प्रदर्शितः॥

(वायुपुराण १०४। १०५—१०७)

महर्षि व्यासका प्राकट्य सत्यवती नामकी वसुकन्यासे यमुनामध्यवर्ती एक द्वीपमें महर्षि पराशरके पुत्ररूपमें हुआ था। उनका वर्ण कृष्ण था और वे द्वीपमें उत्पन्न हुए थे, इसलिये उनका नाम कृष्णद्वैपायन प्रसिद्ध हो गया। महाभारतके अध्ययनसे विदित होता है कि पाराशर्य व्यास ही कृष्णद्वैपायन हैं। श्रीमद्भागवतमें कृष्णद्वैपायन व्यासका जो जीवन-चरित वर्णित है, उसका महाभारतमें वर्णित चरितसे पूर्ण साम्य प्रकट होता है।

भगवान् विष्णुके परम स्वरूपके चिन्तनकी महिमापर प्रकाश डालते हुए महर्षि व्यासकी सौभाग्यवती वाणीका संदेश है कि 'शङ्ख, चक्र, गदा और शार्ङ्ग धनुष धारण करनेवाले अनन्त और अप्रमेय भगवान् विष्णुके अनेक अवतार पुराणोंमें वर्णित हैं। जो मनुष्य उनके परम स्वरूपका चिन्तन करता है, वह सुखी होता है और संसारसे यथाशीघ्र पार उतर जाता है'—

विष्णोश्चराचरगुरोरनन्तस्य महात्मनः॥
प्रादुर्भावाः पुराणेषु कथ्यन्ते शार्ङ्गधन्वनः।
अनन्तस्याप्रमेयस्य शङ्खचक्रगदाभृतः॥
एतस्य परमं रूपं यश्चिन्तयति मानवः।
स सुखी स च संसारात् समुत्तीर्णोऽचिराद् भवेत्॥

(मार्कण्डेयपुराण १९। ३७—३९)

परम पुरुष नारायणका तत्त्व-निरूपण करते हुए महर्षि व्यास कहते हैं कि 'जितनी कथाएँ हैं तथा जो-जो श्रुतियाँ हैं, जो धर्म हैं तथा धर्मपरायण पुरुष हैं, जो विश्व तथा विश्वके स्वामी हैं, वे सब-के-सब भगवान् नारायणके ही स्वरूप हैं। जो सत्य है, मिथ्या है, आदि-मध्य-अन्तमें है, जो सीमारहित भविष्य है, जो चर-अचर प्राणी है तथा इनके अतिरिक्त भी जो कुछ वस्तु है, वह सब पुरुषोत्तम नारायण ही हैं'—

या कथा याश्च श्रुतयो यो धर्मो धर्मतत्परः।
विश्वं विश्वपतिर्यश्च स तु नारायणः स्मृतः॥

यत् सत्यं यदनृतमादिमध्यभूतं
　यच्चान्त्यं निरवधिकं च यद्भविष्यम्।
यत्किंचिच्चरमचरं यदस्ति चान्यत्
　सर्वं तत् पुरुषवरः प्रधानभूतः॥

(पद्मपुराण, सृष्टि० ४१। २७-२८)

महर्षि व्यासकी वाणी अजन्मा, आदि-पुरुष भगवान् विष्णुका संस्तवन करती है—'जो सृष्टिके लिये उन्मुख हो तीन गुणोंको स्वीकार कर ब्रह्मा, विष्णु, शिव नामके तीन दिव्य स्थूलशरीरोंको ग्रहण करते तथा विराट्-पुरुषरूप होकर अपने रोमकूपोंमें सम्पूर्ण विश्वको धारण करते हैं; जिन्होंने अपनी कलाद्वारा भी सृष्टि-रचना की है तथा जो सूक्ष्मरूपसे सदा सबके हृदयमें विराजमान हैं, उन महान् आदि पुरुष अजन्मा परमेश्वरका मैं भजन करता हूँ'—

स्थूलास्तनूर्विदधतं त्रिगुणं विराजं
　विश्वानि लोमविवरेषु महान्तमाद्यम्।
सृष्ट्युन्मुखः स्वकलयापि ससर्ज सूक्ष्मं
　नित्यं समेत्य हृदि यस्तमजं भजामि॥

(ब्रह्मवैवर्तपु०, ब्रह्मखं० १। २)

महर्षि व्यास नारायणांशसे प्रकट विष्णुस्वरूप वैदिक-ज्ञाननिधि हैं। उन्होंने श्रुतिगणोंको बछड़ा बनाकर भारती-रूपिणी कामधेनुसे अपूर्व, अमृतसे भी उत्तम एवं मधुर दुग्ध-स्वरूप पौराणिक स्वारस्यके प्रतीकरूपमें समस्त जगत्को भागवत माधुर्य—वैष्णवरस प्रदान किया।

—रामलाल

(शेष आगे)

भगवान् विष्णुका ध्यान और मानस-पूजा

(ब्रह्मलीन परमश्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

सशङ्खचक्रं सकिरीटकुण्डलं सपीतवस्त्रं सरसीरुहेक्षणम् ।
सहारवक्षःस्थलकौस्तुभश्रियं नमामि विष्णुं शिरसा चतुर्भुजम् ॥

'भगवान् शङ्ख और चक्र (तथा गदा-पद्म) धारण किये हुए हैं, उनके मस्तकपर सुन्दर किरीट-मुकुट और कानोंमें कुण्डल हैं। वे पीताम्बर पहने हुए हैं, उनके नेत्र कमल-दलके सदृश कोमल, विशाल और खिले हुए हैं। वक्षःस्थलपर कौस्तुभमणि, रत्नोंका चन्द्रहार और श्रीका चिह्न (स्वर्णरेखा) सुशोभित है। ऐसे चतुर्भुज भगवान् विष्णुको मैं मस्तक झुकाकर नमस्कार करता हूँ।'

महान् तपस्वी परम भक्त श्रीध्रुवजी महाराज '**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**' इस द्वादशाक्षर मन्त्रका जप करते थे और भगवान् श्रीविष्णुके चतुर्भुज-स्वरूपका ध्यान किया करते थे।

भगवान्का ध्यान करनेके पूर्व हमें आसनसे बैठना चाहिये। आसन अपनी सुविधा तथा अभ्यासके अनुकूल स्वस्तिक हो, पद्मासन हो या सिद्धासन हो; पर बैठना चाहिये सरल भावसे। भगवान्ने गीतामें छठे अध्यायके १३वें श्लोकमें बताया है—

समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः ।
सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् ॥

'काया, सिर और गलेको समान एवं अचल धारण करके और स्थिर होकर, अपनी नासिकाके अग्रभागपर दृष्टि जमाकर, अन्य दिशाओंको न देखता हुआ (ध्यान करे)।'

ध्यानका स्थान एकान्त और पवित्र होना चाहिये। ध्यानके समय प्रथम 'नारायण' नामकी ध्वनि करके भगवान्का आवाहन करना चाहिये। 'नारायण' भगवान् विष्णुका नाम है। 'नारायण' शब्दमें चार अक्षर हैं—ना रा य ण और भगवान् विष्णुके चार भुजाएँ हैं, चार ही आयुध हैं—शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म। ऐसे भगवान् विष्णुका ध्यान करना चाहिये। भगवान्का स्वरूप बहुत ही अद्भुत और सुन्दर है। भगवान्का ध्यान पहले बाहर आकाशमें करे। मानो भगवान् आकाशमें प्रकट हो गये हैं और आकाशमें स्थित होकर हमलोगोंके ऊपर अपने दिव्य गुणोंकी ऐसी वर्षा कर रहे हैं कि हम अनुपम आनन्दका अनुभव करते हुए आनन्दमुग्ध हो रहे हैं। जैसे पूर्णिमाका चन्द्रमा आकाशमें स्थित होकर अमृतकी वर्षा करता है, वैसे ही आकाशमें स्थित होकर भगवान् अपने गुणोंकी वर्षा कर रहे हैं। क्षमा, शान्ति, समता, ज्ञान, वैराग्य, दया, प्रेम और आनन्दकी मानो अजस्र वर्षा हो रही है और हमलोग उसमें सर्वथा मग्न हो रहे हैं। तदनन्तर यह देखे कि भगवान् आकाशमें हमसे कुछ ही दूरपर स्थित हैं। उनका आकार करीब ५॥ फुट लंबा और करीब १।-१॥ फुट चौड़ा है। भगवान्के श्रीअङ्गका वर्ण आकाशके सदृश नीला है, परंतु उस नीलिमाके साथ ही भगवान्में अत्यन्त उज्ज्वल दिव्य प्रकाश है। अतएव नीलिमाके साथ उस प्रकाशकी उज्ज्वलताका सम्मिश्रण होनेसे एक विलक्षण वर्णकी ज्योति बन गयी है। इस प्रकारका भगवान्का चमकता हुआ नीलोज्ज्वल सुन्दर वर्ण है। भगवान्का शरीर दिव्य भगवत्स्वरूप ही है। हमलोगोंके शरीरकी धातु पार्थिव है, भगवान्का श्रीविग्रह तेजोमय ही नहीं, चिन्मय है। सूर्य लाल रंगका है, किंतु प्रकाश विशेष होनेसे और समीप आनेसे वह श्वेतोज्ज्वल रंगका दीखता है। इसी प्रकार भगवान्का स्वरूप नील वर्णका होनेपर भी महान् प्रकाशसे युक्त होनेके कारण और समीप आनेसे वह ज्योतिर्मय श्वेत वर्ण-सा दीखता है। सूर्यके तेजमें बड़ी भारी गरमी रहती है, परंतु भगवान्के तेजोमय स्वरूपमें दिव्य और सुहावनी शीतलता है। वह अपार शान्तिमय है। भगवान्के चरण-युगल बहुत ही सुन्दर और सुकोमल हैं। भगवान्के चरणतलोंमें गुलाबी रंगकी झलक है एवं सुन्दर-सुन्दर रेखाएँ हैं—ध्वजा, पताका, वज्र, अङ्कुश, यव, चक्र, शङ्ख तथा ऊर्ध्वरेखा आदि-आदि। भगवान् आकाशमें नीचे उतर आये हैं। उनके श्रीचरण जमीनको छू नहीं रहे हैं। देवता भी आकाशमें स्थित होते हैं, जमीनको नहीं छूते; फिर ये तो देवोंके भी परम देव हैं। भगवान्के सुन्दर सुमृदुल चरण-कमल बहुत ही चिकने हैं। उनकी अङ्गुलियाँ विशेष शोभायुक्त हैं। उनके चरण-नखोंकी दिव्यज्योति चमक रही है। भगवान् पीताम्बर पहने हुए हैं और जैसे उनके चरण चमकीले, सुन्दर और सुकोमल हैं, ऐसे ही उनकी पिंडलियाँ और दोनों घुटने तथा ऊरु (जाँघें) भी हैं। भगवान्का कटिदेश बहुत पतला है। उसमें रत्नोज्ज्वल करधनी

शोभित है; नाभि गम्भीर है, उदरपर त्रिवली—तीन रेखाएँ हैं। विशाल वक्षःस्थल है और गलेमें वे अनेकों प्रकारकी सुन्दर मालाएँ पहने हैं। सुन्दर दिव्य पुष्पोंकी एक माला घुटनोंतक लटक रही है और दूसरी नाभितक। वे मोतियोंकी माला, स्वर्णकी माला, चन्द्रहार, कौस्तुभमणि और रत्नजटित कंठा पहने हैं।

विशाल चार भुजाएँ हैं, जिनमें दो भुजाएँ नीचेकी ओर लंबी पसरी हुई हैं। उनकी नीचेकी भुजाओंमें गदा और पद्म हैं तथा ऊपरकी दोनों भुजाओंमें शङ्ख और चक्र हैं। हस्ताङ्गुलियोंमें रत्नजटित अंगूठियाँ हैं। वे चारों हाथोंमें कड़े पहने हैं और ऊपर बाजूबंद सुशोभित हैं। चारों भुजाएँ घुटनोंतक लंबी हैं और बहुत ही सुन्दर हैं। वे ऊपर मोटी और नीचे पतली हैं तथा पुष्ट, चिकनी और चमकीली। कंधे पुष्ट हैं। भगवान् यज्ञोपवीत धारण किये और गुलेनार (अनारके फूल-जैसे लाल) रंगका दुपट्टा ओढ़े हुए हैं। ग्रीवा अत्यन्त सुन्दर शङ्खके सदृश है, ठोडी बहुत ही मनोहर है, अधर और ओष्ठ लाल मणिके सदृश चमक रहे हैं। दाँतोंकी पंक्ति मानो परमोज्ज्वल मोतियोंकी पंक्ति है। जब भगवान् हँसते हैं, तब ऐसा प्रतीत होता है, मानो सुन्दर सुषमायुक्त गुलाब या कमलका फूल खिला हुआ है। भगवान्‌की वाणी बड़ी ही कोमल, मधुर, सुन्दर और अर्थयुक्त है, कानोंको अमृतके समान प्रिय लगती है। भगवान्‌की नासिका अति सुन्दर है। कपोल (गाल) चमक रहे हैं—उनपर गुलाबी रंगकी झलक है। कानोंमें रत्नजटित मकराकृति स्वर्णकुण्डल हैं, जिनकी झलक गालोंपर पड़ रही है और वे गाल चम-चम चमक रहे हैं। भगवान्‌के खिले हुए दोनों नेत्र ऐसे लगते हैं, जैसे प्रफुल्लित मनोहर कमल-कुसुम हों। आकाशमें स्थित होकर भगवान् एकटक नेत्रोंसे हमारी ओर देख रहे हैं और नेत्रों द्वारा प्रेमामृतकी वर्षा कर रहे हैं। भगवान् समभावसे सबको देखते हैं, बड़े दयालु हैं, हमें भी दयाकी दृष्टिसे देख रहे हैं और मानो दया, प्रेम, ज्ञान, समता, शान्ति और आनन्दकी वर्षा कर रहे हैं। ऐसा लगता है मानो दया, प्रेम, ज्ञान, समता, शान्ति और आनन्दकी बाढ़ आ गयी है। भगवान्‌के दर्शन, भाषण, स्पर्श—सभी आनन्दमय हैं। भगवान्‌के श्रीअङ्गोंसे जो अद्भुत मधुर गन्ध निकल रही है, वह नासिकाको अमृतके समान प्रिय लगती है। भगवान्‌का स्पर्श करते हैं तो शरीरमें रोमाञ्च हो जाता है और हृदयमें बड़ी भारी प्रसन्नता होती है। भगवान्‌की भृकुटी सुन्दर, विशाल और मनोहर है। ललाट चमक रहा है, उसपर श्रीयुक्त तिलक सुशोभित है। ललाटपर काले घुँघराले केश चमक रहे हैं। उनपर रत्नजटित स्वर्णमुकुट सुशोभित है। भगवान्‌के मुखारविन्दके चारों ओर प्रकाशकी किरणें फैली हुई हैं। भगवान्‌की सुन्दरता अलौकिक है, मनको बरबस आकर्षित करती है। भगवान् नेत्रोंसे हमें ऐसे देख रहे हैं, मानो पी ही जायँगे।

भगवान्‌में पृथ्वीसे बढ़कर क्षमा है, चन्द्रमासे बढ़कर शान्ति है और कामदेवसे बढ़कर सुन्दरता है। कोटि-कोटि कामदेव भी उनकी सुन्दरताके सामने लजा जाते हैं। उनके स्वरूपको देखकर पशु-पक्षी भी मोहित हो जाते हैं, मनुष्यकी तो बात ही क्या है। उनके स्वरूपकी सुन्दरता अद्भुत है। जब भगवान् प्रकट होकर दर्शन देते हैं, तब इतना आनन्द आता है कि मनुष्यकी पलकें भी नहीं पड़तीं। हृदय प्रफुल्लित हो जाता है, शरीरमें रोमाञ्च और धड़कन होने लगती है। नेत्रोंसे प्रेमानन्दके अश्रुओंकी धारा बहने लगती है, वाणी गद्गद हो जाती है। कण्ठ रुक जाता है, हृदयमें आनन्द समाता नहीं। नेत्र एकटक वैसे ही देखते रहते हैं, जैसे चकोर पक्षी पूर्ण चन्द्रमाको देखता है। प्रभुसे हम प्रार्थना करते हैं कि 'जिस प्रकार हम आपका ध्यानावस्थामें दिव्य दर्शन कर रहे हैं, उसी प्रकारका दर्शन हमें हर समय होता रहे। आपके नामका जप, स्वरूपका ध्यान नित्य-निरन्तर बना रहे। आपमें हमारी परम श्रद्धा हो, परम प्रेम हो—यही आपसे प्रार्थना है। आप ही ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सूर्य, चन्द्रमा, आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी—सब कुछ हैं। आप ही इस विश्वके रचनेवाले हैं और आप ही रचनाकी सामग्री भी हैं। इस संसारके उपादानकारण और निमित्तकारण आप ही हैं। इसीलिये कहा जाता है कि जो कुछ है, सब आपका ही स्वरूप है। आपसे यही प्रार्थना है कि जैसे आप बाहरसे आकाशमें दीखते हैं, वैसे ही हमारे हृदयमें दीखते रहें।'

अब हृदयमें ध्यान करें—हृदयमें प्रफुल्लित कमल है। उस कमलपर शेषजीकी शय्या है और शेषजीपर श्रीभगवान् पौढ़े हुए हैं एवं मन्द-मन्द मुसकरा रहे हैं। वहीं सूक्ष्म शरीर धारणकर मैं भगवान्‌के स्वरूपको देख रहा हूँ। भगवान्‌के बहुत-से भक्त भगवान्‌के चारों ओर परिक्रमा कर रहे हैं और दिव्य स्तोत्रोंसे उनके गुणोंका स्तवन और नामोंका कीर्तन कर रहे हैं। मैं भी उनमें सम्मिलित हूँ। देवताओंमें भगवान्

शिव और ब्रह्माजी, ऋषि-मुनियोंमें नारद और सनकादि, यक्षोंमें कुबेर, राक्षसोंमें विभीषण, असुरोंमें प्रह्लाद और बलि, पशुओंमें हनूमान्‌जी और जाम्बवान्, पक्षियोंमें काकभुशुण्डिजी, गरुड़जी, जटायु और सम्पाति, मनुष्योंमें अम्बरीष, भीष्म, ध्रुव तथा और भी बहुत-से भक्त सम्मिलित होकर स्तुति कर रहे हैं। दिव्य स्तोत्रोंके द्वारा गुण गा रहे हैं, परिक्रमा कर रहे हैं और प्रेममें निमग्न हो रहे हैं। फिर मैं बाहर देखता हूँ तो भगवान्‌का उसी प्रकारका स्वरूप बाहर दीख रहा है। यही अन्तर है कि भीतर जो भगवान्‌का स्वरूप है, उसमें भगवती लक्ष्मीजी उनके चरण दबा रही हैं और उनकी नाभिसे कमल निकला है, जिसपर ब्रह्माजी विराजमान हैं। बाहर देखता हूँ तो भगवान् अकेले ही दीख रहे हैं और आकाशमें स्थित हैं। जहाँ हमारे मन और नेत्र जाते हैं, वहीं भगवान् दीख रहे हैं। प्रभुको देखकर हम इतने मुग्ध हो रहे हैं कि हमें दूसरी कोई बात अच्छी ही नहीं लगती। प्रभुकी स्तुति भी तो क्या करें? जो कुछ भी करते हैं, वह वास्तवमें स्तुतिकी जगह निन्दा ही होती है। हम उनकी कितनी ही स्तुति करें, बेचारी वाणीमें शक्ति ही नहीं कि उनके अल्प गुणोंका भी वर्णन कर सके। उनके अपरिमित गुण-प्रभावका वर्णन और स्तवन कौन कर सकता है।

भगवान्‌को पधारे बहुत समय हो गया, अब भगवान्‌की पूजा करनी चाहिये। इस प्रकार ध्यान करे कि अब मैं भगवान्‌की मानसिक पूजा कर रहा हूँ। मैं देख रहा हूँ कि एक चौकी मेरे दाहिनी ओर तथा दूसरी मेरे बायीं ओर रखी है। चौकीका परिमाण लगभग तीन फुट चौड़ा और छः फुट लंबा है। दाहिनी ओरकी चौकीपर पूजाकी सारी पवित्र सामग्री सजायी रखी है। भगवान् मेरे सामने विराजमान हैं। भगवान् स्नान करके पधारे हैं। उन्होंने वस्त्र धारण कर रखे हैं और उनके कंधेपर यज्ञोपवीत सुशोभित है। अब मैं पाद्य—चरण धोनेका जल लेकर भगवान्‌के श्रीचरणोंको धो रहा हूँ, बायें हाथसे जल डाल रहा हूँ और दाहिने हाथसे चरण धो रहा हूँ तथा मुखसे यह मन्त्र बोल रहा हूँ—

'ॐ पादयोः पाद्यं समर्पयामि नारायणाय नमः।'

फिर उस बर्तनको बायीं ओर चौकीपर रखकर हाथ धोकर दूसरा सुगन्धयुक्त गङ्गाजलसे भरा प्याला लेता हूँ और भगवान्‌को अर्घ्य देता हूँ। भगवान् दोनों हाथोंकी अञ्जलि पसारकर अर्घ्य ग्रहण करते हैं। इस समय उन्होंने अपने चार हाथोंके आयुध दो हाथोंमें ले लिये हैं। अर्घ्य अर्पण करते समय मैं मन्त्र बोलता हूँ—

'ॐ हस्तयोरर्घ्यं समर्पयामि नारायणाय नमः।'

इस प्रकार भगवान् अर्घ्य ग्रहण करके उस जलको छोड़ देते हैं। फिर मैं उस प्यालेको बायीं ओर चौकीपर रख देता हूँ तथा हाथ धोकर, आचमनका जल लेकर भगवान्‌को आचमन करवाता हूँ और मन्त्र बोलता हूँ—

'ॐ आचमनीयं समर्पयामि नारायणाय नमः।'

आचमनके अनन्तर भगवान्‌के हाथ धुलाता हूँ और प्यालेको बायीं तरफ चौकीपर रखकर हाथ धोता हूँ। फिर एक कटोरी दाहिनी ओरकी चौकीसे उठाता हूँ, जिसमें केसर, चन्दन आदि सुगन्धित द्रव्य घिसे हुए रखे हैं। उस कटोरीको मैं बायें हाथमें लेकर दाहिने हाथसे भगवान्‌के मस्तकपर तिलक करता हूँ और मन्त्र बोलता हूँ—

'ॐ गन्धं समर्पयामि नारायणाय नमः।'

उसके बाद उस कटोरीको बायीं ओरकी चौकीपर रख देता हूँ तथा दूसरी कटोरी लेता हूँ, जिसमें छोटे आकारके सुन्दर मोती हैं, जिन्हें 'मुक्ताफल' कहते हैं। मैं बायें हाथमें मोतीकी कटोरी लेकर दाहिने हाथसे भगवान्‌के तिलकपर मोती लगाता हूँ और यह मन्त्र बोलता हूँ—

'ॐ मुक्ताफलं समर्पयामि नारायणाय नमः।'

इसके पश्चात् सुन्दर सुगन्धित पुष्पोंसे, जिनमें तुलसीदल भी है, दोनों अञ्जलि भरकर भगवान्‌पर चढ़ाता हूँ और यह मन्त्र बोलता हूँ—

'ॐ पत्रं पुष्पं समर्पयामि नारायणाय नमः।'

यह मन्त्र बोलकर भगवान्‌पर पत्र-पुष्प चढ़ा देता हूँ। इसके अनन्तर एक अत्यन्त सुन्दर सुगन्धपूर्ण बड़ी पुष्प-माला दोनों हाथोंमें लेकर मुकुटपरसे गलेमें पहनाता हूँ और यह मन्त्र बोलता हूँ—

'ॐ पुष्पमालां समर्पयामि नारायणाय नमः।'

फिर देखता हूँ कि एक धूपदानी है, जिसमें निर्धूम अग्नि प्रज्वलित हो रही है। मैं एक कटोरीमें जो चन्दन, कस्तूरी, केसर आदि नाना प्रकारके सुगन्धित द्रव्योंसे मिश्रित धूप रखी है, उसे अग्निमें डालकर भगवान्‌को धूपकी गन्ध देता हूँ और यह मन्त्र बोलता हूँ—

'ॐ धूपमाघ्रापयामि नारायणाय नमः।'

तदनन्तर दाहिनी ओर जो गो-घृतका दीपक प्रज्वलित हो रहा है, उसे हाथमें लेकर भगवान्‌को दिखाता हूँ और मन्त्र बोलता हूँ—

'ॐ दीपं दर्शयामि नारायणाय नमः।'

तत्पश्चात् दीपकको बायीं ओरकी चौकीपर रखकर हाथ धोता हूँ। एक सुन्दर बड़ी थालीमें ५६ प्रकारके भोग और ३६ प्रकारके व्यञ्जन परोसकर उसे भगवान्‌के सामने रत्न-जटित चौकीपर रख देता हूँ। बड़ी सुन्दर स्वर्ण-रत्नजटित मलयगिरि चन्दनसे बनी दो चौकियाँ, जिनकी लंबाई-चौड़ाई २॥-२॥ फुट है, देवताओंद्वारा पहलेसे ही लाकर रखी हुई हैं। उनमेंसे एक चौकीपर आसन बिछा है, जिसपर भगवान् विराजमान हैं और दूसरीपर यह भोगकी सामग्री रखी है। भोग लगाते समय मैं मन्त्र बोलता हूँ—

'ॐ नैवेद्यं निवेदयामि नारायणाय नमः।'

भगवान् बड़े प्रेमसे भोजन करते हैं। थोड़ा-सा भोजन कर चुकनेपर जब वे भोजन करना बंद कर देते हैं, तब उस प्रसादवाली थालीको उठाकर मैं बायीं ओरकी चौकीपर रख देता हूँ और हाथ धोकर पवित्र जलसे भगवान्‌के हाथ धुला देता हूँ। तत्पश्चात् भगवान्‌को शुद्ध जलसे आचमन करवाता हूँ और यह मन्त्र बोलता हूँ—

'ॐ आचमनीयं समर्पयामि नारायणाय नमः।'

फिर उस चौकीको धोकर उसपर सुन्दर सुमधुर फल रख देता हूँ, जो तैयार किये हुए हैं और एक सुन्दर पवित्र थालीमें रखे हुए हैं। भगवान् उन फलोंका भोग लगाते हैं और मैं मन्त्र बोलता हूँ—

'ॐ ऋतुफलं समर्पयामि नारायणाय नमः।'

थोड़े-से फलोंका भोग लगानेपर जब भगवान् खाना बंद कर देते हैं, तब मैं प्रसादरूपमें बचे हुए फलोंकी थालीको उठाकर बायीं ओरकी चौकीपर रख देता हूँ। फिर अपने हाथ धोकर भगवान्‌के हाथ धुलाता हूँ। तदनन्तर पवित्र जलसे उन्हें पुनः आचमन करवाता हूँ और मन्त्र बोलता हूँ—

'ॐ पुनराचमनीयं समर्पयामि नारायणाय नमः।'

आचमन कराकर उस पात्रको बायीं ओरकी चौकीपर रख देता हूँ और उस चौकीको धोकर अलग रख देता हूँ। तदनन्तर हाथ धोकर एक थाली उठाता हूँ, जिसमें बढ़िया पान रखे हैं, जिनमें सुपारी, इलायची, लौंग तथा अन्य पवित्र सुगन्धित द्रव्य डाले हुए हैं। उस थालीको भगवान्‌के सामने रखता हूँ। भगवान् पान लेकर चबाते हैं और मैं यह मन्त्र बोलता हूँ—

'ॐ पूगीफलमेलालवङ्गसहितं च ताम्बूलं समर्पयामि नारायणाय नमः।'

इसके बाद उस पानकी थालीको बायीं ओरकी चौकीपर रख देता हूँ। फिर पवित्र जलसे अपने हाथ धोकर और भगवान्‌के हाथोंको धुलाकर मुख-शुद्धिके लिये उन्हें पुनः आचमन करवाता हूँ और यह मन्त्र बोलता हूँ—

'ॐ पुनर्मुखशुद्ध्यर्थमाचमनीयं समर्पयामि नारायणाय नमः।'

आचमन कराके फिर भगवान्‌के हाथ धुला देता हूँ और उस जलपात्रको बायीं ओरकी चौकीपर रख देता हूँ। इस प्रकार पूजा करके भगवान्‌को दक्षिणा देता हूँ। कुबेरने पहलेसे ही अपने भंडारसे अमूल्य रत्न लाकर रखे हैं, वे ही उनको अर्पण करता हूँ। भगवान्‌की वस्तु भगवान्‌को वैसे ही देता हूँ, जैसे सेवक अपने स्वामीको देता है और यह मन्त्र बोलता हूँ—

'ॐ दक्षिणाद्रव्यं समर्पयामि नारायणाय नमः।'

भगवान्‌को दक्षिणा अर्पण करके मैं अपने आपको भी उनके श्रीचरणोंमें अपण कर देता हूँ। अब भगवान्‌की आरती उतारता हूँ। एक थाली लेता हूँ। उसके बीचमें कटोरी है। उसमें कपूर प्रज्वलित हो रहा है। उसके चारों ओर माङ्गलिक द्रव्य, तुलसीदल, पुष्प, नारियल, दही, दूर्वा आदि सब सजाये हुए हैं। मैं दोनों हाथोंपर थाली रखकर भगवान्‌की आरती उतार रहा हूँ। आरती उतारकर आरतीकी थालीको बायीं ओरकी चौकीपर रख देता हूँ। फिर हाथ धोकर भगवान्‌को पुष्पाञ्जलि अर्पण करता हूँ। पुष्पाञ्जलि देकर मैं खड़ा हो जाता हूँ और भगवान् भी खड़े हो जाते हैं। फिर मैं भगवान्‌के चारों ओर चार परिक्रमा करता हूँ और साष्टाङ्ग प्रणाम करता हूँ। प्रणाम करके भगवान्‌की स्तुति गाता हूँ—

त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥
(पाण्डवगीता)

यं ब्रह्मा वरुणेन्द्ररुद्रमरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवै-
र्वेदैः साङ्गपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः।
ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो
यस्यान्तं न विदुः सुरासुरगणा देवाय तस्मै नमः॥
(भागवत १२।१३।१)

परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान्।
पुरुषं शाश्वतं दिव्यमादिदेवमजं विभुम् ॥
(गीता १० । १२)

इस प्रकार भगवान्‌की स्तुति करनेके बाद सबको आरती देकर भगवान्‌को लगाया हुआ प्रसाद उपस्थित भाइयोंको बाँटा जाता है। पहले तो सबके हाथ धुलाकर इकट्ठा किया हुआ चरणामृत बाँटता हूँ, फिर एक दूसरे भाई सबके हाथ धुलाते हैं, तदनन्तर तीसरे भाई भगवान्‌का बचा हुआ प्रसाद दे रहे हैं और चौथे भाई पुनः सबके हाथ धुलाकर आचमन कराते हैं। इस प्रकार सब लोग आचमन करके प्रसाद पाते हैं और फिर हाथ धोकर खड़े हो भगवान्‌के दिव्य स्तोत्रोंका पाठ कर रहे हैं, दिव्य स्तुति गा रहे हैं और भगवान्‌की परिक्रमा कर रहे हैं। परिक्रमा करते हुए भगवान्‌के दिव्य गुणोंका कीर्तन कर रहे हैं, भगवान्‌के नामका कीर्तन कर रहे हैं। भगवान् मुग्ध हो रहे हैं और हमलोग भी मुग्ध हो रहे हैं। इस प्रकार सब मिलकर भगवान्‌के नामका कीर्तन कर रहे हैं—

श्रीमन्नारायण नारायण नारायण,
श्रीमन्नारायण नारायण नारायण।

भगवान्‌के ये मानसिक दर्शन अमृतके समान मधुर और प्रिय हैं। उनका स्पर्श भी अमृतके समान अत्यन्त प्रिय है। उनकी सुकोमल मधुर वाणी कानोंके लिये अमृतके समान है, उनकी मधुर अङ्ग-गन्ध भी अमृतके समान है और भगवान्‌के प्रसादकी तो बात ही क्या है, वह तो अपूर्व अमृतके तुल्य है। यों भगवान्‌के दर्शन, भाषण, स्पर्श, वार्तालाप, चिन्तन, गन्ध—सभी अमृतके तुल्य हैं, सभी रसमय, आनन्दमय और प्रेममय हैं। भगवान्‌की श्रीमूर्ति बड़ी मधुर है, इसीलिये उन्हें 'माधुर्यमूर्ति' कहते हैं। उनके दर्शन बड़े ही मधुर हैं।

इस प्रकार भगवान्‌का ध्यान करता हुआ साधक भगवान्‌के प्रेमानन्दमें विभोर होकर कहता है—"ध्यानावस्थामें ही जब इतना बड़ा भारी आनन्द है, तब जिस समय आपके साक्षात् दर्शन होते हैं, उस समय तो न जानें कितना महान् आनन्द और अपार शान्ति मिलती है। जिनको आपके साक्षात् दर्शन होते हैं, वे पुरुष सर्वथा धन्य हैं। जिनको आपके दर्शन होते हैं, श्रद्धा होनेपर उनके दर्शनसे ही पापोंका नाश हो जाता है, तब फिर आपके दर्शनोंकी तो बात ही क्या है। आप साक्षात् परब्रह्म परमात्मा हैं। आप परम धाम हैं, परम पवित्र हैं। आप साक्षात् अविनाशी पुरुष हैं। आप इस संसारकी उत्पत्ति, स्थिति, पालन करनेवाले हैं। आपके समान कोई भी नहीं है, आपके समान आप ही हैं। मैं आपकी महिमाका गान कहाँतक करूँ। क्षमा, दया, प्रेम, शान्ति, सरलता, समता, संतोष, ज्ञान, वैराग्य आदि गुणोंके आप सागर हैं। आपके गुणोंके सागरकी एक बूँदके आभासका प्रभाव सारी दुनियामें व्याप्त है। सारे देवताओंमें, मनुष्योंमें गुण, प्रभाव, शक्ति आदि जो कुछ भी देखनेमें आते हैं, वे सब मिलकर आप गुण-सागरकी एक बूँदका आभासमात्र हैं। आपके रूप-लावण्यका वर्णन कौन कर सकता है। आपका स्वरूप चिन्मय है। आपके दर्शन अलौकिक हैं। आपके दर्शनसे मनुष्य इतना मुग्ध हो जाता है कि उसे अपने आपकी सुध नहीं रहती, एकमात्र आपका ही ज्ञान रहता है। आपका अपरिमित प्रभाव है। आपने गीतामें कहा है—

यद् यद् विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसंभवम् ॥
(१० । ४१)

'जो-जो भी विभूतियुक्त अर्थात् ऐश्वर्ययुक्त, कान्तियुक्त और शक्तियुक्त वस्तु है, उस-उसको तू मेरे तेजके अंशकी ही अभिव्यक्ति (प्राकट्य) जान।'

"आपने गीताके सातवें अध्यायमें यह भी बताया है कि 'बलवानोंका बल मैं हूँ, तेजस्वियोंका तेज मैं हूँ, बुद्धिमानोंकी बुद्धि मैं हूँ, ज्ञानवानोंका ज्ञान मैं हूँ। यानी संसारमें जो कुछ चीज प्रभावशाली, तेजवाली, बलवाली प्रतीत होती है, वह सब मेरे तेजके एक अंशका प्राकट्य है।' गीताके दसवें अध्यायके अन्तमें आपने अपने प्रभावको बताते हुए कहा है—

अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन।
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत् ॥
(१० । ४२)

'अथवा अर्जुन! इस बहुत जाननेसे तेरा क्या प्रयोजन है, मैं इस सम्पूर्ण जगत्‌को अपनी योगशक्तिके एक अंश-मात्रसे धारण करके स्थित हूँ।'

"आप ही निर्गुण, निराकार, सच्चिदानन्दघन ब्रह्म हैं। आप ही स्वयं सगुण-साकाररूपमें प्रकट होते हैं। "आप साक्षात् पूर्णब्रह्म परमात्मा हैं।"

भगवान् नारायणके पूजनकी विधि

देवताओं, ऋषियों, पितरों तथा अन्य प्राणियोंका तर्पण करनेके पश्चात् मौनभावसे आचमन करके एक चौकोर मण्डप बनाये । उसमें चार दरवाजे रखे। उसकी लंबाई-चौड़ाई एक हाथकी होनी चाहिये । मण्डप बहुत सुन्दर बनाया जाय। इस प्रकार मण्डप बनाकर उसके भीतर कर्णिकासहित अष्टदल कमल अङ्कित करे । उसमें अष्टाक्षर-मन्त्रके द्वारा अजन्मा भगवान् नारायणका पूजन करे। हृदयमें उत्तम ज्योतिःस्वरूप ॐकारका चिन्तन करके कमलकी कर्णिकामें विराजमान ज्योतिःस्वरूप सनातन विष्णुका ध्यान करे, फिर अष्टदल कमलके प्रत्येक दलमें क्रमशः मन्त्रके एक-एक अक्षरका न्यास करे । मन्त्रके एक-एक अक्षरद्वारा अथवा सम्पूर्ण मन्त्रद्वारा भी पूजन करना उत्तम माना गया है । सनातन परमात्मा विष्णुका द्वादशाक्षर-मन्त्रसे पूजन करे । तदनन्तर हृदयके भीतर भगवान्का ध्यान करके बाहर कमलकी कर्णिकामें भी उनकी भावना करे—'भगवान्के चार भुजाएँ हैं। वे महान् सत्त्वमय हैं। उनके श्रीअङ्गोंकी प्रभा कोटि-कोटि सूर्योंके समान है। वे महायोगस्वरूप हैं।' इस प्रकार उनका चिन्तन करके क्रमशः आवाहन आदि उपचारोंद्वारा पूजन करे।

आवाहन-मन्त्र—

मीनरूपो वराहश्च नरसिंहोऽथ वामनः ॥
आयातु देवो वरदो मम नारायणोऽग्रतः ।
ॐ नमो नारायणाय नमः ।

'मीन, वराह, नृसिंह एवं वामनके रूपमें अवतार ग्रहण करनेवाले वरदायक देवता भगवान् नारायण मेरे सम्मुख पधारें । सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीनारायणको बारंबार नमस्कार है ।'

आसन-मन्त्र—

कर्णिकायां सुपीठेऽत्र पद्मकल्पितमासनम् ॥
सर्वसत्त्वहितार्थाय तिष्ठ त्वं मधुसूदन ।
ॐ नमो नारायणाय नमः ।

'यहाँ कमलकी कर्णिकामें सुन्दर पीठपर कमलका ही आसन बिछा हुआ है । मधुसूदन ! सब प्राणियोंका हित करनेके लिये आप इसपर विराजमान हों । सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीनारायणको बारंबार नमस्कार है ।'

अर्घ्य-मन्त्र—

ॐ त्रैलोक्यपतीनां पतये देवदेवाय हृषीकेशाय विष्णवे नमः । ॐ नमो नारायणाय नमः ।

'त्रिभुवनपतियोंके भी पति, देवताओंके भी पूज्य, इन्द्रियोंके स्वामी भगवान् विष्णुको नमस्कार है । सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीनारायणको बारंबार नमस्कार है ।'

पाद्य-मन्त्र—

ॐ पाद्यं ते पादयोर्देव पद्मनाभ सनातन ॥
विष्णो कमलपत्राक्ष गृहाण मधुसूदन ।
ॐ नमो नारायणाय नमः ।

'देव पद्मनाभ ! सनातन विष्णो !! कमल-नयन मधुसूदन !!! आपके चरणोंमें यह पाद्य (पाँव पखारनेके लिये जल) समर्पित है; आप इसे स्वीकार करें । सच्चिदानन्द-स्वरूप श्रीनारायणको बारंबार नमस्कार है ।'

मधुपर्क-मन्त्र—

मधुपर्कं महादेव ब्रह्माद्यैः कल्पितं तव ॥
मया निवेदितं भक्त्या गृहाण पुरुषोत्तम ।
ॐ नमो नारायणाय नमः ।

'महादेव ! पुरुषोत्तम ! ब्रह्मा आदि देवताओंद्वारा आपके लिये तैयार किया हुआ मधुपर्क मैं भक्तिपूर्वक आपको निवेदन करता हूँ । कृपया इसे स्वीकार कीजिये । सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीनारायणको बारंबार नमस्कार है ।'

आचमनीय-मन्त्र—

मन्दाकिन्याः सितं वारि सर्वपापहरं शिवम् ॥
गृहाणाचमनीयं त्वं मया भक्त्या निवेदितम् ।
ॐ नमो नारायणाय नमः ।

'भगवन् ! मैंने स्वर्गमें बहनेवाली गङ्गाजीका स्वच्छ जल, जो सब पापोंको दूर करनेवाला तथा कल्याणमय है, आचमनके लिये भक्तिपूर्वक आपको अर्पित किया है; कृपया ग्रहण कीजिये । सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीनारायणको बारंबार नमस्कार है ।'

स्नान-मन्त्र—

त्वमापः पृथिवी चैव ज्योतिस्त्वं वायुरेव च ॥
लोकेश वृत्तिमात्रेण वारिणा स्नापयाम्यहम् ।
ॐ नमो नारायणाय नमः ।

'लोकेश्वर ! आप ही जल, पृथ्वी तथा अग्नि और वायुरूप हैं । मैं जीवनरूप जलके द्वारा आपको स्नान कराता

हूँ। सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीनारायणको बारंबार नमस्कार है।'

वस्त्र-मन्त्र—

देव तन्तुसमायुक्ते यज्ञवर्णसमन्विते ॥
स्वर्णवर्णप्रभे देव वाससी तव केशव।
ॐ नमो नारायणाय नमः।

'देव केशव! ये दिव्य तन्तुओंसे बुने हुए यज्ञवर्णसमन्वित तथा सुनहले रंग और सुनहली प्रभावाले दो वस्त्र आपकी सेवामें समर्पित हैं। सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीनारायणको बारंबार नमस्कार है।'

विलेपन-मन्त्र—

शरीरं ते न जानामि चेष्टां चैव न केशव ॥
मया निवेदितो गन्धः प्रतिगृह्य विलिप्यताम्।
ॐ नमो नारायणाय नमः।

'केशव! मुझे आपके शरीर और चेष्टाका ज्ञान नहीं है। मैंने जो यह गन्ध (रोली-चन्दन आदि) निवेदन किया है, इसे लेकर अपने अङ्गमें लगायें। सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीनारायणको बारंबार नमस्कार है।'

यज्ञोपवीत-मन्त्र—

ऋग्यजुःसाममन्त्रेण त्रिवृतं पद्मयोनिना ॥
सावित्रीग्रन्थिसंयुक्तमुपवीतं तवार्पये।
ॐ नमो नारायणाय नमः।

'भगवन्! ब्रह्माजीने ऋक्, यजुः और सामवेदके मन्त्रोंसे जिसको त्रिवृत् (त्रिगुण) बनाया है, वह सावित्री-ग्रन्थिसे युक्त यज्ञोपवीत मैं आपकी सेवामें अर्पित करता हूँ। सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीनारायणको बारंबार नमस्कार है।'

अलंकार-मन्त्र—

दिव्यरत्नसमायुक्ता वह्निभानुसमप्रभाः ॥
गात्राणि शोभयिष्यन्ति अलंकारास्तु माधव।
ॐ नमो नारायणाय नमः ॥

'माधव! अग्नि और सूर्यके समान चमकीले तथा दिव्य रत्नों-से जटित ये दिव्य आभूषण आपके श्रीअङ्गोंकी शोभा बढ़ायेंगे। सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीनारायणको बारंबार नमस्कार है।'

पूर्वोक्त अष्टदल कमलके पूर्वदलमें भगवान् वासुदेवका और दक्षिणदलमें श्रीसंकर्षणका न्यास करे, पश्चिमदलमें प्रद्युम्नका तथा उत्तरदलमें अनिरुद्धका न्यास करे। अग्निकोणवाले दलमें भगवान् वराहका तथा नैर्ऋत्यदलमें नृसिंहका न्यास करे, वायव्यदलमें माधवका तथा ईशान-दलमें भगवान् त्रिविक्रमका न्यास करे। अष्टाक्षर-देवस्वरूप भगवान् विष्णुके सम्मुख गरुड़जीकी स्थापना करनी चाहिये। भगवान्के वामभागमें चक्र और दक्षिणभागमें शङ्खकी स्थापना करे। इसी प्रकार उनके दक्षिणभागमें महागदा कौमोदकी और वामभागमें शार्ङ्गनामक धनुषको स्थापित करे। दक्षिणभागमें दो दिव्य तरकस और वामभागमें खड्गका न्यास करे। फिर दक्षिणभागमें श्रीदेवी और वामभागमें पुष्टिदेवीकी स्थापना करे। भगवान्के सम्मुख वनमाला, श्रीवत्स और कौस्तुभ रखे। फिर पूर्व आदि चारों दिशाओंमें हृदय आदिका न्यास करे। कोणमें देवदेव विष्णुके अस्त्रका न्यास करे। पूर्व आदि आठ दिशाओंमें तथा नीचे और ऊपर क्रमशः इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, कुबेर, ईशान, अनन्त तथा ब्रह्माजीका उनके नाम-मन्त्रोंद्वारा पूजन करे। इस विधिसे पूजित मण्डलस्थ भगवान् जनार्दनका जो दर्शन करता है, वह भी अविनाशी विष्णुमें प्रवेश करता है। जिसने उपर्युक्त विधिसे एक बार भी श्रीकेशवका पूजन किया है, वह जन्म, मृत्यु और जरा-अवस्थाको लाँघकर भगवान् विष्णुके पदको प्राप्त होता है। जो आलस्य छोड़कर निरन्तर भक्तिभावसे भगवान् नारायणका स्मरण करता है, उसके नित्य निवासके लिये श्वेतद्वीप बताया गया है।

'नमः' सहित ॐकार जिसके आदिमें है और जो अन्तमें भी 'नमः' पदसे सुशोभित है, ऐसा नारायणका 'नारायण' नाम सम्पूर्ण तत्त्वोंका प्रकाशक मन्त्र कहलाता है। (उसका स्वरूप है—**ॐ नमो नारायणाय**) इसी विधिसे प्रत्येकको गन्ध-पुष्प आदि वस्तुएँ क्रमशः निवेदन करनी चाहिये। इसी क्रमसे आठ मुद्राएँ बाँधकर दिखाये। पद्म, शङ्ख, श्रीवत्स, गदा, गरुड़, चक्र, खड्ग और शार्ङ्गधनुष—ये आठ मुद्राएँ बतायी गयी हैं। तदनन्तर मन्त्रवेत्ता पुरुष **'ॐ नमो नारायणाय'** इस मूल-मन्त्रका एक सौ आठ बार या अट्ठाईस बार अथवा आठ बार जप करे। किसी कामनाके लिये जप करना हो तो उसके लिये शास्त्रोंमें जितना बताया गया हो, उतनी संख्यामें जप करे अथवा निष्कामभावसे जितना हो सके, उतना एकाग्र-चित्तसे जप करे।

जो लोग शास्त्रोक्त मन्त्रोंद्वारा श्रीहरिकी पूजाका विधान न जानते हों, वे **'ॐ नमो नारायणाय'**—इस मूल-मन्त्रसे ही सदा भगवान् अच्युतका पूजन करें।

(श्रीनारदपुराण, उत्तरखण्ड, अध्याय ५७ के आधारपर)

श्रीविष्णोरष्टाविंशतिनामस्तोत्रम्

अर्जुन उवाच

किं नु नामसहस्राणि जपते च पुनः पुनः । यानि नामानि दिव्यानि तानि चाचक्ष्व केशव ॥

श्रीभगवानुवाच

मत्स्यं कूर्मं वराहं च वामनं च जनार्दनम् । गोविन्दं पुण्डरीकाक्षं माधवं मधुसूदनम् ॥
पद्मनाभं सहस्राक्षं वनमालिं हलायुधम् । गोवर्धनं हृषीकेशं वैकुण्ठं पुरुषोत्तमम् ॥
विश्वरूपं वासुदेवं रामं नारायणं हरिम् । दामोदरं श्रीधरं च वेदाङ्गं गरुडध्वजम् ॥
अनन्तं कृष्णगोपालं जपतो नास्ति पातकम् । गवां कोटिप्रदानस्य अश्वमेधशतस्य च ॥
कन्यादानसहस्राणां फलं प्राप्नोति मानवः । अमायां वा पौर्णमास्यामेकादश्यां तथैव च ॥
संध्याकाले स्मरेन्नित्यं प्रातःकाले तथैव च । मध्याह्ने च जपन्नित्यं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

इति श्रीकृष्णार्जुनसंवादे श्रीविष्णोरष्टाविंशतिनामस्तोत्रं सम्पूर्णम् ।

अर्जुनने पूछा—केशव ! मनुष्य बारंबार एक हजार नामोंका जप क्यों करता है ? आपके जो दिव्य नाम हों, उनका वर्णन कीजिये ।

श्रीभगवान् बोले—अर्जुन ! मत्स्य, कूर्म, वराह, वामन, जनार्दन, गोविन्द, पुण्डरीकाक्ष, माधव, मधुसूदन, पद्मनाभ, सहस्राक्ष, वनमाली, हलायुध, गोवर्धन, हृषीकेश, वैकुण्ठ, पुरुषोत्तम, विश्वरूप, वासुदेव, राम, नारायण, हरि, दामोदर, श्रीधर, वेदाङ्ग, गरुडध्वज, अनन्त और कृष्णगोपाल—इन अट्ठाईस नामोंका जप करनेवाले मनुष्यके भीतर पाप नहीं रहता । वह एक करोड़ गोदान, एक सौ अश्वमेध-यज्ञ और हजारों कन्यादानका फल प्राप्त कर लेता है । अमावस्या, पूर्णिमा तथा एकादशी तिथिको और प्रतिदिन सायं-प्रातः एवं मध्याह्नके समय इन नामोंका जप करनेवाला पुरुष सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाता है ।

पापप्रशमन विष्णुस्तोत्र

विष्णवे जिष्णवे नित्यं विष्णवे त्रिगुणे नमः ।
नमामि विष्णुं चित्तस्थमहंकारगतं हरिम् ॥
चित्तस्थमीशमव्यक्तमनन्तमपराजितम् ।
विष्णुमीड्यमशेषाणामनादिनिधनं हरिम् ॥

सम्पूर्ण विश्वमें व्यापक भगवान् श्रीविष्णुको सर्वदा नमस्कार है । विष्णुको बारंबार प्रणाम है । मैं अपने चित्तमें विराजमान विष्णुको नमस्कार करता हूँ । अपने अहंकारमें व्याप्त श्रीहरिको मस्तक झुकाता हूँ । श्रीविष्णु चित्तमें विराजमान, ईश्वर (मन और इन्द्रियोंके शासक), अव्यक्त, अनन्त, अपराजित, सर्वव्यापी, सबके द्वारा स्तवन करनेयोग्य तथा आदि-अन्तसे रहित हैं, उन श्रीहरिको मैं नित्य-निरन्तर प्रणाम करता हूँ ।

विष्णुश्चित्तगतो यो मे विष्णुर्बुद्धिगतश्च यः ।
योऽहंकारगतो विष्णुर्यो विष्णुर्मयि संस्थितः ॥
करोति कर्तृभूतोऽसौ स्थावरस्य चरस्य च ।
तत्पापं नाशमायाति तस्मिन् विष्णौ विचिन्तिते ॥

जो विष्णु मेरे चित्तमें विराजमान हैं, जो विष्णु मेरी बुद्धिमें स्थित हैं, जो विष्णु मेरे अहंकारमें व्याप्त हैं तथा जो विष्णु सदा मेरे स्वरूपमें स्थित हैं, वे ही कर्ता होकर सब कुछ करते रहते हैं । उन विष्णुभगवान्का चिन्तन करनेपर चराचर प्राणियोंका सारा पाप नष्ट हो जाता है ।

ध्यातो हरति यः पापं स्वप्ने दृष्टश्च पापिनाम् ।
तमुपेन्द्रमहं विष्णुं नमामि प्रणतप्रियम् ॥

जो ध्यान-पथमें आ जाने और स्वप्नमें दीख जानेपर भी पापियोंके पाप हर लेते हैं तथा चरणोंमें पड़े हुए शरणागत भक्त जिन्हें अत्यन्त प्रिय हैं, उन वामनरूपधारी भगवान् श्रीविष्णुको मैं नमस्कार करता हूँ ।

जगत्यस्मिन्निरालम्बे ह्यजमक्षरमव्ययम् ।
हस्तावलम्बनं स्तोत्रं विष्णुं वन्दे सनातनम् ॥

जो अजन्मा, अक्षर और अविनाशी हैं तथा इस अवलम्बशून्य संसारमें हाथका सहारा देनेवाले हैं, स्तोत्रोंद्वारा जिनकी स्तुति की जाती है, उन सनातन श्रीविष्णुको मैं प्रणाम करता हूँ।

सर्वेश्वरेश्वर विभो परमात्मन्नधोक्षज।
हृषीकेश हृषीकेश हृषीकेश नमोऽस्तु ते॥

हे सर्वेश्वर! हे ईश्वर! हे व्यापक परमात्मन्! हे अधोक्षज! हे इन्द्रियोंका शासन करनेवाले अन्तर्यामी हृषीकेश! आपको बारंबार नमस्कार है।

नृसिंहानन्त गोविन्द भूतभावन केशव।
दुरुक्तं दुष्कृतं ध्यातं शमयाशु जनार्दन॥

हे नृसिंह! हे अनन्त! हे गोविन्द! हे प्राणियोंके रक्षक! हे केशव! हे जनार्दन! मेरे दुर्वचन, दुष्कर्म और दुश्चिन्तनको शीघ्र नष्ट कर दीजिये।

यन्मया चिन्तितं दुष्टं स्वचित्तवशवर्तिना।
आकर्णय महाबाहो तच्छमं नय केशव॥

महाबाहो! मेरी प्रार्थना सुनिये—अपने चित्तके वशमें होकर मैंने जो कुछ बुरा चिन्तन किया हो, केशव! उसे शान्त कर दीजिये।

ब्रह्मण्यदेव गोविन्द परमार्थपरायण।
जगन्नाथ जगद्धातः पापं शमय मेऽच्युत॥

ब्राह्मणोंका हितसाधन करनेवाले देवता गोविन्द! परमार्थमें तत्पर रहनेवाले जगन्नाथ! जगत्को धारण करनेवाले अच्युत! मेरे पापोंका नाश कर दीजिये।

यच्चापराह्णे सायाह्ने मध्याह्ने च तथा निशि।
कायेन मनसा वाचा कृतं पापमजानता॥
जानता च हृषीकेश पुण्डरीकाक्ष माधव।
नामत्रयोच्चारणतः सर्वं यातु मम क्षयम्॥

मैंने अपराह्न, सायाह्न, मध्याह्न तथा रात्रिके समय शरीर, मन और वाणीके द्वारा, जानकर या अनजानमें जो कुछ पाप किया हो, वह सब 'हृषीकेश, पुण्डरीकाक्ष और माधव'—इन तीन नामोंके उच्चारणसे नष्ट हो जाय।

शारीरं मे हृषीकेश पुण्डरीकाक्ष मानसम्।
पापं प्रशममायातु वाक्कृतं मम माधव॥

हृषीकेश! आपके नामोच्चारणसे मेरा शारीरिक पाप नष्ट हो जाय, पुण्डरीकाक्ष! आपके स्मरणसे मेरा मानस पाप शान्त हो जाय तथा माधव! आपके नाम-कीर्तनसे मेरे वाचिक पापका नाश हो जाय।

यद्भुञ्जानः पिबंस्तिष्ठन् स्वपञ्जाग्रद् यदा स्थितः।
अकार्षं पापमर्थार्थं कायेन मनसा गिरा॥
महदल्पं च यत्पापं दुर्योनिनरकावहम्।
तत्सर्वं विलयं यातु वासुदेवस्य कीर्तनात्॥

मैंने खाते-पीते, खड़े होते, सोते-जागते तथा ठहरते समय मन, वाणी और शरीरसे स्वार्थ या धनके लिये जो कुत्सित योनियों और नरकोंकी प्राप्ति करानेवाला महान् या छोटा पाप किया है, वह सब भगवान् वासुदेवका नामोच्चारण करनेसे नष्ट हो जाय।

परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं च यत्।
अस्मिन् संकीर्तिते विष्णौ यत्पापं तत्प्रणश्यतु॥

जिसे परब्रह्म, परम धाम और परम पवित्र कहते हैं, वह तत्त्व भगवान् विष्णु ही हैं; उन श्रीविष्णुभगवान्का कीर्तन करनेसे मेरे जो भी पाप हों, वे नष्ट हो जायँ।

यत्प्राप्य न निवर्तन्ते गन्धस्पर्शविवर्जितम्।
सूरयस्तत्पदं विष्णोस्तत्सर्वं मे भवत्वलम्॥

जो गन्ध और स्पर्शसे रहित है, ज्ञानी पुरुष जिसे पाकर पुनः इस संसारमें नहीं लौटते, वह श्रीविष्णुका ही परमपद है। वह सब मुझे पूर्णरूपसे प्राप्त हो जाय।

पापप्रशमनं स्तोत्रं यः पठेच्छृणुयान्नरः।
शारीरैर्मानसैर्वाचा कृतैः पापैः प्रमुच्यते।
मुक्तः पापग्रहादिभ्यो याति विष्णोः परं पदम्॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन स्तोत्रं सर्वाघनाशनम्।
प्रायश्चित्तमघौघानां पठितव्यं नरोत्तमैः॥

यह 'पापप्रशमन' नामक स्तोत्र है। जो मनुष्य इसे पढ़ता और सुनता है, वह शरीर, मन और वाणीद्वारा किये हुए पापोंसे सर्वथा मुक्त हो जाता है। इतना ही नहीं, वह पापग्रह आदिके भयसे भी मुक्त होकर विष्णुके परम पदको प्राप्त होता है। यह स्तोत्र सब पापोंका नाशक तथा पापराशिका प्रायश्चित्त है, इसलिये श्रेष्ठ मनुष्योंको पूर्ण प्रयत्न करके इसका पाठ करना चाहिये।

(पद्मपुराण, पाताल० ८८। ७२—९१)

काम आदि दोषोंसे मुक्त करनेवाला ब्रह्मपारस्तोत्र

[साधुश्रेष्ठ महायोगी कण्डु मुनिने पुरुषोत्तमक्षेत्र नामक भगवान् विष्णुके धाममें रहते हुए एकाग्रचित्तसे तथा ऊर्ध्वबाहु रहकर चन्द्रमाके द्वारा उपदिष्ट 'ब्रह्मपार'स्तोत्रद्वारा श्रीविष्णुभगवान्‌की आराधना की थी। वह 'ब्रह्मपार'स्तोत्र इस प्रकार है—]

सोम उवाच

पारं परं विष्णुरपारपारः परः परेभ्यः परमार्थरूपी। स ब्रह्मपारः परपारभूतः परः पराणामपि पारपारः॥
स कारणं कारणतस्ततोऽपि तस्यापि हेतुः परहेतुहेतुः। कार्येषु चैवं सह कर्मकर्तृरूपैरशेषैरवतीह सर्वम्॥
ब्रह्म प्रभुर्ब्रह्म स सर्वभूतो ब्रह्म प्रजानां पतिरच्युतोऽसौ। ब्रह्माव्ययं नित्यमजं स विष्णुरपक्षयाद्यैरखिलैरसङ्गि॥
ब्रह्माक्षरमजं नित्यं यथासौ पुरुषोत्तमः। तथा रागादयो दोषाः प्रयान्तु प्रशमं मम॥
एतद्ब्रह्मपराख्यं वै संस्तवं परमं जपन्। अवाप परमां सिद्धिं स तमाराध्य केशवम्॥
इमं स्तवं यः पठति शृणुयाद्वापि नित्यशः। स कामदोषैरखिलैर्मुक्तः प्राप्नोति वाञ्छितम्॥

[श्रीविष्णुपुराण १।१५।५५—५९ (क)]

सोमने कहा—'श्रीविष्णुभगवान् संसार-मार्गकी अन्तिम अवधि हैं, उनका पार पाना कठिन है; वे पर (आकाशादि)-से भी पर अर्थात् अनन्त हैं, अतः सत्यस्वरूप हैं। तपोनिष्ठ महात्माओंको ही वे प्राप्त हो सकते हैं; क्योंकि वे पर (अनात्म-प्रपञ्च)से परे हैं तथा पर (इन्द्रियों)के अगोचर परमात्मा हैं और [भक्तोंके] पालक एवं [उनके अभीष्टको] पूर्ण करनेवाले हैं। वे कारण (पञ्चभूत)के कारण (पञ्चतन्मात्र)के हेतु (तामस-अहंकार) और उसके भी हेतु (महत्तत्त्व)के हेतु (प्रधान)के भी परम हेतु हैं और इस प्रकार समस्त कर्म और कर्त्ता आदिके सहित कार्यरूपसे स्थित सकल प्रपञ्चका पालन करते हैं। ब्रह्म ही प्रभु है, ब्रह्म ही सर्वजीवरूप है और ब्रह्म ही सम्पूर्ण प्रजाका पति (रक्षक) तथा अविनाशी है। वह ब्रह्म अव्यय, नित्य और अजन्मा है तथा वही क्षय आदि समस्त विकारोंसे शून्य विष्णु है; क्योंकि वह अक्षर, अज और नित्य ब्रह्म ही पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु है, इसलिये [उनका नित्य अनुरक्त भक्त होनेके कारण] मेरे राग आदि दोष शान्त हों।'

इस 'ब्रह्मपार'नामक परम स्तोत्रका जप करते हुए श्रीकेशवकी आराधना करनेसे मुनीश्वर कण्डुने परमसिद्धि प्राप्त की। जो पुरुष इस स्तवको नित्यप्रति पढ़ता या सुनता है, वह काम आदि सकल दोषोंसे मुक्त होकर अपना मनोवाञ्छित फल प्राप्त करता है।

वैष्णवी अनुस्मृति-विद्या

ॐ नमो भगवते तस्मै देहिनां परमात्मने॥
नारायणाय भक्तानामेकनिष्ठाय शाश्वते।

समस्त देहधारियोंके परमात्मा तथा भक्तोंके प्रति एकमात्र निष्ठा रखनेवाले उन सनातन भगवान् नारायणको नमस्कार है।

इमामनुस्मृतिं दिव्यां वैष्णवीं सुसमाहितः॥
स्वपन् विबुध्यंश्च पठन् यत्र तत्र समभ्यसेत्।

यह दिव्य वैष्णवी अनुस्मृति-विद्या है। मनुष्य एकाग्रचित्त होकर सोते, जागते और स्वाध्याय करते समय जहाँ-कहीं भी इसका जप करता रहे।

नारायणमृषिं देवं दशवर्षाण्यनन्यभाक्।
इदं जपन् वै प्राप्नोति तद् विष्णोः परमं पदम्॥

जो पुरुष अनन्यभावसे दस वर्षोंतक ऋषिप्रवर नारायण-देवका ध्यान करते हुए इस मन्त्रका जप करता है, वह भगवान् विष्णुके परमपदको प्राप्त कर लेता है।

किं तस्य बहुभिर्मन्त्रैर्भक्तिर्यस्य जनार्दने।
नमो नारायणायेति मन्त्रः सर्वार्थसाधकः॥

जिसकी भगवान् जनार्दनमें भक्ति है, उसे बहुत-से मन्त्रोंसे क्या लेना है? 'ॐ नमो नारायणाय'—यह एक मन्त्र ही सम्पूर्ण मनोरथोंकी सिद्धि करनेवाला है।

इमां रहस्यां परमामनुस्मृतिमधीत्य बुद्धिं लभते च नैष्ठिकीम्।
विहाय दुःखान्यवमुच्य संकटात्स वीतरागो विचरेन्महीमिमाम्॥

इस परम गोपनीय अनुस्मृति-विद्याका स्वाध्याय करके मनुष्य भगवान्‌के प्रति दृढ़ निष्ठा रखनेवाली बुद्धि प्राप्त कर लेता है। वह सारे दुःखोंको त्यागकर संकटसे मुक्त एवं वीतराग हो इस पृथ्वीपर विचरण करता है।

(महाभारत, शान्ति०, २०९ वाँ अध्याय)

संकष्टनाशनस्तोत्र

[कुशासनपर उत्तर या पूर्वकी ओर मुख करके शान्तचित्त हो बैठे । अपनी दाहिनी ओर घीका एक दीपक जलाकर रख ले । धूपबत्ती भी जला लेनी चाहिये । तदनन्तर शङ्ख, चक्र, गदा एवं पद्मधारी विष्णुभगवान्‌का ध्यान कर मानसिक पञ्चोपचार पूजन करे—

ॐ लं पृथिव्यात्मकं गन्धं समर्पयामि । ॐ हं आकाशात्मकं पुष्पं समर्पयामि । ॐ यं वाय्वात्मकं धूपं समर्पयामि । ॐ वं अमृतात्मकं नैवेद्यं समर्पयामि । ॐ सं सर्वात्मकं मन्त्रपुष्पं समर्पयामि ।

अनन्तर नीचे लिखे स्तवके पाँच या इक्कीस पाठ करे । ऐसा करनेसे आया हुआ संकट निश्चय ही दूर होता है । यह कितने ही महानुभावोंका अनुभव है । —चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्मा]

श्रीहरये नमः । अस्मद्गुरुभ्यो नमः । अस्मत्परमगुरुभ्यो नमः ।

देवा ऊचुः

नमो मत्स्यकूर्मादिनानास्वरूपैः सदा भक्तकार्योद्यतायार्तिहन्त्रे ।
विधात्रादिसर्गस्थितिध्वंसकर्त्रे गदापद्मशङ्खारिहस्ताय तेऽस्तु ॥
रमावल्लभायासुराणां निहन्त्रे भुजंगारियानाय पीताम्बराय ।
मखादिक्रियापाककर्त्रेऽघहन्त्रे शरण्याय तस्मै नताः स्मो नताः स्मः ॥
नमो दैत्यसंतापितामर्त्यदुःखाचलध्वंसदम्भोलये विष्णवे ते ।
भुजंगेशतल्पेशयायार्कचन्द्रद्विनेत्राय तस्मै नताः स्मो नताः स्मः ॥

नारद उवाच

संकष्टनाशनं स्तोत्रमेतद्यस्तु पठेन्नरः । स कदाचिन्न संकष्टैः पीड्यते कृपया हरेः ॥

(पद्मपुराण, उत्तर० १०० । १—५)

देवगण बोले—'जो मत्स्य और कच्छप आदि नाना प्रकारके स्वरूप धारण करके सदा भक्तोंका कार्य सिद्ध करनेके लिये उद्यत रहते हैं, उनकी पीडा दूर करते हैं, विधाता आदिकी सृष्टि, पालन तथा संहारके जो स्वतन्त्र कर्ता हैं और जिनके हाथोंमें गदा, पद्म, शङ्ख और चक्र शोभा पाते हैं, उन आप विष्णुको नमस्कार है । जो असुरोंका नाश करनेवाले हैं, सर्पोंके शत्रु गरुड़ ही जिनके वाहन हैं, जो पीत वस्त्र धारण करते हैं, यज्ञ आदि शुभ कर्मोंका फल देते और पापोंको निर्मूल कर देते हैं, उन शरणागतपालक भगवान् श्रीलक्ष्मीवल्लभको हम बारंबार मस्तक झुकाते हैं । जो दैत्योंद्वारा सताये हुए देवताओंके दुःखरूपी पर्वतका विध्वंस करनेके लिये वज्रके समान हैं, जो सर्पोंके स्वामी शेषनागकी शय्यापर शयन करनेवाले हैं तथा सूर्य और चन्द्रमा ही जिनके दो नेत्र हैं, उन आप विष्णुको हमारा बारंबार नमस्कार है ।'

नारदजी कहते हैं—जो मनुष्य इस 'संकष्टनाशन' नामक स्तोत्रका पाठ करता है, वह भगवान् श्रीहरिकी कृपासे कभी संकटोंद्वारा पीड़ित नहीं होता ।

हरिनाम-स्मरणकी महिमा

हरिर्हरति पापानि दुष्टचित्तैरपि स्मृतः । अनिच्छयापि संस्पृष्टो दहत्येव हि पावकः ॥
जिह्वाग्रे वसते यस्य हरिरित्यक्षरद्वयम् । स विष्णुलोकमाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥

(नारदपुराण, पूर्व० ११ । १००-१०१)

दूषित चित्तवाले पुरुषोंद्वारा स्मरण किये जानेपर भी भगवान् हरि उनके पापको वैसे ही हर लेते हैं, जैसे अग्निको बिना इच्छा किये भी छू दिया जाय तो भी वह जला ही देती है । जिसकी जिह्वाके अग्रभागपर 'हरि'—ये दो अक्षर वास करते हैं, वह पुनरावृत्तिरहित श्रीविष्णुधामको प्राप्त होता है ।

कृतार्थ हृदयके सहज उच्छ्वास

है जो त्रिगुणातीत, नित्य, अज, अव्यय, नाम-रूप-गति-हीन।
हिममें नीर-सदृश जो व्यापक सबमें, सबसे परे, अलीन॥
अद्वय कारण, अद्वय, जिसमें है सबका अत्यन्ताभाव।
शुद्ध बोधघन, सत्य, स्वस्थ, सनातन, रहित भावमय भाव॥

रवि-शशि-अनल प्रकाशित होते जिसका तेज-अंश पाकर।
व्योम, वायु, रस, भूमि, अग्निका एकमात्र जो है आकर॥
अधिष्ठान सब जगका, निज मायामें रचता नाना वेश।
परद्रष्टा, अनुमन्ता, जो भर्ता, भोक्ता, ईश्वर, परमेश॥

सुधा-सने सौन्दर्य-राशिका है जो अति अनुपम सागर।
त्रिभुवनकी सब रूप-छटा है जिसकी नन्ही-सी गागर॥
कर अधीन निज-प्रकृति, योगमायासे अघटन-घटनाकर।
है नित नूतन वेष धारता, विश्वविमोहन बाजीगर॥

सबका जो सर्वस्व, आत्मवित्, भक्तोंका जो जीवन-धन।
जिसके परमानन्द रूपसे, नित्यानन्दित हैं निज-जन॥
प्राणाधिक आराध्यदेव जो, नित नव-नव आनँद-निर्झर।
भक्तवश्य साकार सगुण, जन-मन-पङ्कजका जो दिनकर॥

जीवन-मन-तन-सुधि-हर होती जिसकी मधुर मन्द मुसुकान।
जिसकी सुन्दर छटा निरखकर छुटती लोक-वेद-कुल-कान॥
देव, दनुज, मुनि, ऋषि जिसके दर्शनको संतत ललचाते।
विविध भाँति तप-साधन करते, नहीं सहजमें हैं पाते॥

जन्म-जन्मसे लगी हुई थी जिसके दर्शनकी आशा।
रूप-सुधा-वारिधि-अवगाहनकी जिसके थी अभिलाषा॥
जिसने अपने मिलनेकी व्याकुलता भर दी थी मनमें।
विरहानल था धधक उठा जिससे उसके सारे तनमें॥

वही ब्रह्म साकार प्रकट हो, अद्भुत दर्शन है देता।
सत्वर अगणित जन्मोंकी अघराशि पूर्ण है हर लेता॥
यह साधन-विहीन था, कारण किंतु एक बलवान अपार।
निश्चित ब्रह्मरूप गुरुवरकी थी अनुकम्पा पारावार॥

उनकी प्रेम-रज्जुसे हरिको बँधना पड़ा स्वयं तत्काल।
रखनी पड़ी अभय करनेको नत मस्तकपर भुजा विशाल॥
कोमल कर-स्पर्शसे जनको निर्भय नित्य पड़ा करना।
चरण-स्पर्श, अभयवाणी, मधुर प्रसादसे दुख हरना॥

उस छवि-राशि अमितका वर्णन करनेमें वाणी लाचार।
मापा कभी न जा सकता है हाथोंसे आकाश अपार॥
भाग्यवती जिन आँखोंने वह देखी रूप-छटा अनुपम।
तृप्त हो गयीं, नहीं बता सकतीं, हैं वर्णनमें अक्षम॥

वाणी कुछ प्रयास करती है, नेत्रोंका सहाय लेकर।
मनमोहनके अतल रूपकी मधुर स्मृतिमें मन देकर॥
उस स्मृतिमें जाते ही तत्क्षण रूपमग्न मन हो जाता।
मनके रुकते ही वाणीका काम नहीं कुछ हो पाता॥

रुकी लेखनी, बंद हो गयी, चलता नहीं हाथ आगे।
क्षमा कीजिये प्रेमी पाठक, सरल पाठिका सद्भागे॥
पूर्ण प्रेमसे मिल करके, सब करिये उनका प्रेमाह्वान।
जिससे सत्वर पुनः प्रकट हों सबके सम्मुख श्रीभगवान॥

—'भाईजी'
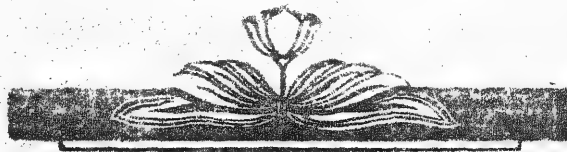
क्षमा-प्रार्थना एवं नम्र निवेदन

यं शैवाः समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनो
बौद्धा बुद्ध इति प्रमाणपटवः कर्तेति नैयायिकाः।
अर्हन्नित्यथ जैनशासनरताः कर्मेति मीमांसकाः
सोऽयं नो विदधातु वाञ्छितफलं त्रैलोक्यनाथो हरिः॥

''शैव 'शिव' के नामसे, वेदान्ती 'ब्रह्म' कहकर, बौद्ध 'बुद्ध' के नामसे और प्रमाण-पटु नैयायिक 'कर्त्ता' कहकर, जैन-शास्त्रके माननेवाले 'अर्हत्' के नामसे और मीमांसक 'कर्म' कहकर जिनकी भलीभाँति उपासना करते हैं, वे तीनों लोकोंके नाथ श्रीहरि हमें वाञ्छित फल प्रदान करें।''

भगवान् श्रीलक्ष्मी-नारायणकी अहैतुकी कृपा, नित्यलीलालीन परमश्रद्धेय श्रीभाईजी (श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) की परोक्ष सँभाल और हमपर तथा 'कल्याण'के प्रति कृपा एवं ममता रखनेवाले पूजनीय संत-महात्माओं, मनीषियों, विद्वानों, विचारकों और भक्तोंके शुभाशीर्वाद तथा सहयोगसे भगवान् श्रीविष्णुकी अर्चनाके रूपमें प्रकाशित 'श्रीविष्णु-अङ्क' इन पृष्ठोंमें पूर्ण हो रहा है। हमारे शास्त्रोंके अनुसार यों तो भगवान् सभी रूपोंमें हैं—चराचर विश्वके रूपमें वे ही हैं, वे ही अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोंके स्रष्टा, पालक, संहर्त्ता एवं नियन्ता हैं तथा प्रकृतिसे सर्वथा परे निर्गुण-निराकार-तत्त्व भी वे ही हैं—भगवद्गीताके दसवें अध्यायमें भगवान् श्रीकृष्णने अपनी अनेक विभूतियोंका उल्लेख किया है और अन्तमें वे यहाँतक कह देते हैं कि 'जो-जो भी विभूतियुक्त अर्थात् ऐश्वर्ययुक्त, कान्तियुक्त और शक्तियुक्त वस्तु है, उस-उसको तू मेरे तेजके अंशकी ही अभिव्यक्ति जान'—

यद् यद् विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम्॥
(१०।४१)

परंतु हमारे यहाँ मुख्यतया भगवान्‌की पाँच रूपोंमें अभिव्यक्ति मानी गयी है—१-शिव, २-शक्ति, ३-नारायण, ४-गणेश एवं ५-सूर्य। इसीलिये स्मार्तोंमें 'पञ्चाङ्गोपासना'का विधान है। भगवान् शंकराचार्यने उक्त पञ्चदेवोंके अतिरिक्त भगवान् षण्मुख (स्वामिकार्तिकेय) को भगवान्‌का छठा रूप माना है, यद्यपि उनकी उपासना दक्षिणभारतमें ही अधिक प्रचलित है, जहाँ स्थान-स्थानपर उनके भव्य विग्रह एवं मन्दिर विद्यमान हैं। इसीलिये भगवान् शंकराचार्यको 'षण्मतस्थापनाचार्य' कहकर आदर देते हैं। उपर्युक्त पाँच अथवा छः भगवत्स्वरूपोंमें भगवान् शिव एवं उनकी शक्ति तथा भगवान् विष्णुके ही दूसरे सर्वमान्य रूपों—श्रीकृष्ण एवं श्रीरामके विषयमें तो, जिन्हें उनके अनन्योपासक भगवान् विष्णुसे पृथक् एवं उनके भी अंशी मानते हैं, स्वतन्त्र विशेषाङ्क निकल चुके हैं। परंतु भगवान् विष्णुकी अर्चना 'कल्याण'के द्वारा इस रूपमें अबतक नहीं हो पायी थी। कई वैष्णवोंको—विशेषतया उनको, जो नारायणको ही 'परमतत्त्व,' 'अवतारी' अथवा 'अंशी' मानते हैं तथा श्रीराम-कृष्ण आदिको उनका 'अवतार' अथवा 'अंश'—यह अभाव बराबर खटकता रहा है। 'कल्याण' सभीका है और सभी दृष्टिकोणोंका प्रारम्भसे ही आदर करता आया है। उसकी नीति सदासे ही समन्वयकी—सबको साथ लेकर चलनेकी रही है। वह सदा ही मानता आया है और यह मान्यता सर्वथा शास्त्रानुमोदित है कि भगवान् साकार-निराकार, सगुण-निर्गुण, विश्वमय, विश्वातीत—सब कुछ हैं; शिव, शक्ति, नारायण, श्रीराम, श्रीकृष्ण, गणेश, सूर्य, षडानन—सभी रूप उन्हींके हैं; वे ही सब बने हुए हैं—एक ही तत्त्व अनेक नाम-रूपोंमें व्यक्त है—'**एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति**।' उपासकोंकी प्रकृति एवं रुचिके अनुसार जिसकी जिस रूपमें आस्था है, उसकी निष्ठाको उसी नाम-रूपमें दृढ़ करनेके लिये विभिन्न शास्त्रोंमें कहीं शिवको, कहीं विष्णुको, कहीं देवीको, कहीं श्रीरामको, कहीं श्रीकृष्णको, कहीं गणेशको और कहीं सूर्यको सर्वोच्च स्थान दिया गया है और उनसे भिन्न रूपोंको उनका अनुगत, अंश अथवा उपासकरूपमें व्यक्त किया गया है। वास्तवमें एक ही परम तत्त्व विविध रूपोंमें लीलायमान है; वह स्वयं ही अपना उपासक है और स्वयं ही अपना उपास्य है तथा जिस प्रकार एक ही स्थानपर अनेक मार्गोंसे पहुँचा जा सकता है—सभी नदियाँ समुद्रमें ही गिरती हैं, उसी प्रकार सभी सच्चे धर्म, जो दैवी-सम्पदाका आदर करते हैं—चाहे वे साकारवादी हों या निराकारवादी, सगुणवादी हों या निर्गुणवादी, एकेश्वरवादी हों या एक ही परमात्माको अनेक रूपोंमें देखते हों—देर-सबेर भगवान्‌की ओर ले जायँगे, यदि हमारा भाव सच्चा है। श्रीभाईजीके शब्दोंमें इस सत्यको हम इस प्रकार समझ सकते हैं—

एक सत्य जो परम तत्त्व परमात्मा ब्रह्म ईश भगवान।
निर्गुण-गुणलह-निराकार, साकार-सगुण, सब भाँति महान॥
नित्य, सच्चिदानन्द, सर्वमय, सर्वातीत, सर्व-आधार।
विष्णु, सूर्य, दुर्गा, शिव, गणपति, राम-कृष्ण अवतार उदार॥
अर्हत्, बुद्ध, पिता ईसाके, अहुरमज्द, अल्लाह, प्रधान।
प्रकृति, नियम, अणु, महत्, कर्म, कर्त्ता, अव्यक्त स्वरूपज्ञान॥
सभी प्राणियोंमें विभक्त-से जो प्रतीत होते 'अविभक्त'।
वही उपास्य, उपासित होते विविध रूपमें हो अभिव्यक्त॥

'श्रीविष्णु-अङ्क'में भगवान् विष्णु तथा भगवती लक्ष्मीके स्वरूपतत्त्व, नामतत्त्व, लीलातत्त्व और धामतत्त्वपर तथा भगवान् श्रीविष्णुके आदर्श गुणों, प्रभाव, महत्त्व आदिपर देशके शीर्षस्थानीय आचार्यों, भक्तों एवं विद्वानोंके बड़े ही महत्त्वपूर्ण विचार सम्मिलित किये गये हैं। इसी संदर्भमें अवतार-सिद्धान्तके विवेचनके साथ भगवान्के विभिन्न अवतारोंका संक्षिप्त, किंतु सरस परिचय भी दिया गया है। कथा-प्रसङ्गसे श्रीविष्णु-भक्तोंके चरित भी आये हैं।[1] त्रिदेवोंके स्वरूप, एकता एवं कार्योंपर भी पर्याप्त सामग्री इसमें है। वैष्णवी देवियों, वैष्णव शास्त्रों, वैष्णव आचार, उपासना, व्रत, तीर्थ, मन्दिरों आदिका भी संक्षिप्त दिग्दर्शन इसमें कराया गया है। भारतसे बाहर फैली हुई विष्णु-उपासनापर लेखों एवं चित्रोंद्वारा प्रकाश डाला गया है। विभिन्न वैष्णव-दर्शनों, उनके प्रवर्त्तक परमपूजनीय आचार्यों—महात्माओं आदिका परिचय भी दिया गया है। भगवान् श्रीलक्ष्मी-नारायणकी प्रसन्नता और कृपा-प्राप्तिके लिये तथा उनके साक्षात्कारके लिये सफल अनुष्ठान, मन्त्र, स्तोत्र आदि भी हैं।[2] भगवान् श्रीविष्णुके ध्यानके तथा उनके अवतारोंके ९ सुन्दर भावपूर्ण रंगीन एवं १५ हाफ्टोन चित्र दिये गये हैं। इस प्रकार भगवान् श्रीविष्णुसम्बन्धी सभी महत्त्वपूर्ण एवं आवश्यक विषयोंपर प्रामाणिक सामग्रीका संग्रह करके अङ्कको तत्त्व एवं साधनाकी दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण बनानेका प्रयास किया गया है। इस कार्यमें हमें कहाँतक सफलता मिली है, सुधीजन ही इसका निर्णय करेंगे।

भगवान्की मङ्गलमयी इच्छा, प्रेरणा एवं शक्तिसे आरम्भ हुआ 'कल्याण' उनकी इच्छा और कृपासे निरन्तर विकसित होता रहा है और आशा है, भविष्यमें भी इसी प्रकार विकसित होता रहेगा। भगवान्की मङ्गलमयी व्यवस्थाके अनुसार देशके सभी प्रमुख आचार्यों, महात्माओं, संतों, विद्वानों, विचारकों, भक्तों आदिने 'कल्याण'को उसके प्रवर्त्तनकालसे ही अपना माना है तथा अपने आशीर्वाद, सत्परामर्श एवं अमूल्य रचनाओंद्वारा इसे परम उपादेय और समुन्नत करनेका प्रयत्न किया है एवं इसके प्रचार-प्रसारमें भी अकथनीय सहयोग दिया है। 'श्रीविष्णु-अङ्क' भी उन सभीकी कृपाका ही फल है। हम अपने उन सभी गुरुजनों, प्रेमियों, हितैषियों, स्वजनोंके ज्ञात-अज्ञात उपकारों, सौहार्द एवं आत्मीयताके प्रति हृदयसे कृतज्ञ हैं। हमारी उन सभी महानुभावोंके श्रीचरणोंमें विनम्र प्रार्थना है कि भविष्यमें भी वे अपना सहज आशीर्वाद एवं सहयोग इसी प्रकार प्रदान करते रहें।

यह तो सर्वविदित है कि आजका युग अर्थयुग है तथा सभी वस्तुओंके मूल्योंमें बेहद वृद्धि हुई है और हो रही है। कागजके भी दाम लगातार बढ़ रहे हैं तथा छपाईके अन्य उपकरणोंके मूल्योंमें भी वृद्धि हो रही है। कर्मचारियोंके वेतन आदि इधर दो-तीन वर्षोंमें बहुत बढ़ गये हैं। गत वर्ष एक्साइज ड्यूटी तथा उसके पूर्व वर्ष डाकखर्च बढ़ गया था। इन सब कारणोंसे 'कल्याण'में इस वर्ष लगभग चार, साढ़े चार लाख रुपयेका घाटा लगनेकी सम्भावना हो गयी थी। गत वर्षोंसे 'कल्याण'को बराबर ढाई लाख रुपयेसे ऊपर घाटा हो रहा था; ऐसी परिस्थितिमें 'कल्याण'का वार्षिक शुल्क दो वर्ष पूर्व एक रुपया बढ़ाकर दस रुपये कर देना पड़ा था। इस वर्ष पुनः शुल्क बढ़ानेकी विवशतापूर्ण स्थिति उत्पन्न हो गयी थी, परंतु गम्भीरतासे विचार करनेपर यह बात ध्यानमें आयी कि यथासम्भव 'कल्याण'का शुल्क १० रुपयेसे अधिक न किया जाय; अन्यथा सर्वसाधारणको उसे प्राप्त करनेमें असुविधा हो सकती है। अतः बढ़ते हुए घाटेको कुछ नियन्त्रित करनेके लिये 'कल्याण'के विशेषाङ्ककी पृष्ठ-संख्या कम कर देना अधिक उपयुक्त होगा—इस विचारसे विशेषाङ्कमें पृष्ठ कुछ कम कर दिये गये हैं। गत विशेषाङ्कमें ७०० पृष्ठ थे, इस वर्ष केवल ५४० पृष्ठ दिये गये हैं। ऐसा निर्णय लेनेमें हम स्वयं बहुत संकुचित हैं, किंतु सर्वसाधारणको 'कल्याण' सरलतासे सुलभ करानेकी अपनी नीतिका निर्वाह करनेमें हमें ऐसा कदम उठानेके लिये विवश होना पड़ा है। आशा है, कृपालु सदस्य हमारे इस निश्चयका आदर ही करेंगे। पृष्ठ-संख्या कम करनेके साथ ही हम इसके लिये भी पूर्ण प्रयत्नशील रहे हैं कि श्रीविष्णु-सम्बन्धी सभी विषयों-पर आवश्यक ठोस सामग्रीका समावेश इतने कलेवरमें ही कर दिया जाय। अपने इस प्रयत्नमें हम कहाँतक सफल हुए हैं, इसका निर्णय कृपालु पाठक-पाठिकाएँ ही करेंगे। हाँ, इस प्रयासमें हमसे अक्षम्य एवं अवाञ्छनीय अपराध अवश्य हुए हैं। प्रायः सभी लेखोंका संक्षेप किया गया है और कई लेख तो बहुत ही संक्षिप्तरूपमें देने पड़े हैं। इससे लेखोंका स्वरूप विकृत हुआ है, यद्यपि अपनी जानमें हमने उनके मूल भावोंकी पूरी रक्षा की है। संस्कृत, बँगला, गुजराती, मराठी, अंग्रेजी भाषाओंमें प्राप्त लेखोंके अनुवादमें भी अनेकों भूलें हुई होंगी; कारण, हमें इन सभी भाषाओंका यथेष्ट ज्ञान नहीं है। इन सब अपराधोंके लिये हम सभी लेखक महानुभावोंसे हाथ जोड़कर बड़ी ही विनम्रताके साथ क्षमा-याचना करते हैं। अनेकों लेख-कविताओंका तो उपयोग ही नहीं हो पाया है। उनके लेखक महानुभावोंने

१. श्रीविष्णु-भक्तोंके और चरित्र मार्च, १९७३ के अङ्कमें देनेका विचार है।

२. श्रीविष्णु-उपासनापद्धति, सफल अनुष्ठान, मन्त्र, स्तोत्र आदि फरवरी, १९७३ के अङ्कमें भी दिये जा रहे हैं।

अपनी सहज कृपा एवं प्रीतिवश अपनी अमूल्य रचनाएँ हमें प्रेषित कीं, पर सीमित पृष्ठ होने आदिके कारण उनका उपयोग करना सम्भव नहीं हुआ; हम उन सबसे भी करबद्ध क्षमा-याचना करते हैं। बचे हुए लेखोंमेंसे कुछ लेखोंका उपयोग आगेके अङ्कोंमें करनेका विचार है।

हमारी इच्छा एवं प्रयत्न था कि 'श्रीविष्णु-अङ्क' जनवरीके आरम्भमें तैयार हो जाय; पर कतिपय अनिवार्य परिस्थितियोंके कारण पूरी तत्परता रखनेपर भी हम इसमें कृतकार्य नहीं हो पाये। कृपालु पाठक-पाठिकाएँ अपने शील एवं सौहार्दकी ओर देखकर हमें इस विवशताके लिये क्षमा करेंगे।

इस अङ्कके सम्पादनमें हमें श्रद्धेय महामहोपाध्याय पं० श्रीगोपीनाथजी कविराज महाशयका आशीर्वाद सदाकी भाँति प्राप्त हुआ है। उनकी इस अहैतुकी कृपाके लिये हम हृदयसे कृतज्ञ हैं। श्रीवैष्णव-साहित्यके मर्मज्ञ एवं परम्परागत वैष्णव हमारे सम्मान्य स्वजन डा० श्रीकृष्णदत्तजी भारद्वाज, एम्०ए०, पी-एच्० डी०, आचार्यने कई महत्त्वपूर्ण विषयों-पर अपने विद्वत्तापूर्ण एवं शास्त्रीय लेख भेजकर तथा कतिपय वरिष्ठ व्यक्तियोंद्वारा अमूल्य रचनाएँ भिजवाकर इस अङ्कको यथासम्भव सभी आवश्यक विषयोंसे पूर्ण बनानेमें बड़ा सहयोग प्रदान किया है। हम सम्मान्य श्रीभारद्वाजजीके हृदयसे आभारी हैं। सामग्रीका संचय करना, विविध विषयोंपर लेख तैयार करना, सम्पादन करना, प्रेस-कापी तैयार करना, प्रूफ देखना आदि कार्य हमारे सभी सहयोगियों, स्वजनों एवं मित्रों—पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा, पं० श्रीशिवनाथजी दुबे, श्रीरामलालजी, श्रीमाधवशरण, श्रीदुलीचंद दुजारी, श्रीकृष्णचन्द्र अग्रवाल, श्रीराधेश्याम बंका, श्रीहरिकृष्ण दुजारीके परामर्श एवं सहयोगसे सम्पन्न हुआ है। इन सबकी आत्मीयता एवं सौहार्दको देखते हुए उनके अमूल्य सहयोगके लिये कुछ भी कहना उनको संकोचमें डालना है। हमारे अपने पं० श्रीरामाधारजी शुक्ल शास्त्रीसे भी इस कार्यमें हमें सहायता प्राप्त हुई है। इस कृपाके लिये हम उनके प्रति हृदयसे आभारी हैं। हाँ, अपनी अल्पज्ञता, प्रमाद, अहंभाव आदिके कारण मेरेद्वारा जाने-अनजाने अनेकों भूलें हुई हैं। मैं उन सबके लिये सबसे नम्रतापूर्वक क्षमा-प्रार्थी हूँ। भगवान् श्रीविष्णु एवं उनके निजजन 'भावग्राहक' एवं सहजकृपालु होते हैं। बस, मेरे संतोषके लिये इतना आधार पर्याप्त है।

भगवान्का स्वरूप क्या और कैसा है, उनके रूप, गुण, महत्त्व आदि कैसे और कितने हैं, उसको वस्तुतः भगवान् ही जानते हैं। उसका विवेचन पूर्णरूपसे न तो आजतक कोई कर सका है, न आगे कर ही सकता है। भगवान्का जितना भी वर्णन है, सभी आंशिक है; परंतु आंशिक होनेपर भी है उन्हींका, इसलिये सभी यथार्थ है। अनन्तका अन्त कौन पा सकता है। असीमका माप-तौल कौन कर सकता है—यथार्थमें भगवान्के स्वरूप-तत्त्व-रहस्य-प्रभाव-लीला-गुण आदिका वर्णन उनके स्वरूपकी यथार्थ व्याख्याके लिये नहीं, वरं अपने कल्याणके लिये ही किया जाता है और इसी दृष्टिसे भगवान् श्रीविष्णुकी अर्चनाके रूपमें यह क्षुद्र प्रयास हुआ है। यह अर्चना कितनी सरस, कितनी सुवासित, कितनी भावपूर्ण तथा कितनी विधि-विधानपूर्वक हुई है, इसका निर्णय तो हमारे सहृदय पाठक-पाठिकाएँ ही करेंगे; हम तो इस प्रयासमें अपनी त्रुटि-ही-त्रुटि अनुभव करते हैं। हाँ, पिछले कई मास भगवान् श्रीविष्णुके परम मधुर चरित्र, गुण-गाथा आदिके पठन-स्मरण-मननमें बीते—यह हमारा परम सौभाग्य है।

सम्पादकके रूपमें यह नम्र निवेदन मैंने लिख तो दिया है, पर ऐसा करते हुए मुझे बहुत ही संकोच एवं ग्लानिका अनुभव हो रहा है। कारण, 'कल्याण' विशुद्ध आध्यात्मिक पत्र है, अतएव इसके सम्पादकका जीवन पूर्णतया अध्यात्मनिष्ठ होना चाहिये। इतना ही नहीं, 'कल्याण'द्वारा जिन बातोंका प्रचार-प्रसार किया जाता है, वे बातें इसके सम्पादकके जीवनमें होनी परमावश्यक हैं। 'कल्याण'के प्रवर्त्तक एवं आदि सम्पादक हमारे परम श्रद्धेय नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारने जीवनभर यह सावधानी रखी कि 'कल्याण'-में जो-जो बातें कही-लिखी जायँ, कम-से-कम वे बातें उनके अपने जीवनमें होनी ही चाहिये। उन्होंने अपनी कथनी-करनीमें एकरूपताको सदा बनाये रखा; इतना ही नहीं, 'कल्याण'में वे जो कुछ लिखते थे, उससे कहीं अधिक ही उनका जीवन था। यही कारण है कि गत ४६ वर्षोंमें 'कल्याण'का लाखों-लाखों व्यक्तियोंके जीवनपर ठोस प्रभाव पड़ा—वे भगवान्की ओर आकृष्ट हुए और उन्होंने जीवनके परम लक्ष्य—भगवान् या भगवान्के प्रेमकी प्राप्तिके महत्त्वको समझा और इन उद्देश्योंकी पूर्तिके लिये किस प्रकार सुगमतासे बढ़ा जा सकता है, इसकी शिक्षा ग्रहण की। हजारों-हजारों निराश व्यक्तियोंने आशा, उत्साह, स्फूर्ति, नवीन चेतना आदि प्राप्त की और उत्साहहीनता, निराशा और विनाशके गर्तमें गिरकर अपना सर्वस्व नष्ट करनेकी कुचेष्टासे वे विरत हुए। आपसके मनोमालिन्यको धोकर परस्पर प्रेमकी प्रतिष्ठा करनेकी प्रेरणा कितने परिवारोंने

कितने स्वजनोंको, कितने मित्रोंको प्राप्त हुई है, इसका हिसाब लगाना असम्भव है। मानव-स्वभावकी दुर्बलताओंसे घिरे रहकर सन्मार्गसे फिसलते हुए कितने-कितने साधक, गृहस्थ, नवयुवक भगवान्‌की सौहार्दमयी पतितपावनताका परिचय प्राप्तकर पाप-पङ्कसे निकलकर सत्त्वगुणकी ओर अग्रसर हुए और उन्नतिके शिखरपर पहुँचे हैं। जीवनकी ऐसी कौन-सी गुत्थी, समस्या, पहेली, उलझन है, जिसका समाधान पाठकोंको 'कल्याण'द्वारा प्राप्त न हुआ हो। इस महान् प्रभावके पीछे परमश्रद्धेय श्रीभाईजी-का जीवन ही प्रमुखरूपमें रहा है। श्रीभाईजीके शब्दोंमें—'विश्वकी सच्ची सेवा वही कर सकता है, जिसका जीवन विश्वात्मा भगवान्‌के अनुकूल होता है और जो अपनेको विश्वम्भरकी सेवामें समर्पित कर देता है।' परमश्रद्धेय श्रीभाईजी अपनेको विश्वम्भरकी सेवामें समर्पितकर उनके अतिशय कृपापात्र ही नहीं, देवर्षि नारदके शब्दोंमें 'तस्मिंस्तज्जने भेदाभावात्।(नारद-भक्तिसूत्र-४१)—भगवान् और उनके भक्तमें कोई अन्तर नहीं रह जाता—भक्त भगवत्स्वरूप ही हो जाता है'—की स्थितिको प्राप्त हो गये थे। परंतु मैं अपनेमें इस योग्यताका सर्वथा अभाव अनुभव करता हूँ; मैं तो इस स्थितिकी ठीकसे कल्पना भी नहीं कर सकता। हाँ, भगवान्‌की कृपासे मैं विश्वम्भरकी सेवामें अपनेको समर्पित करनेका इच्छुक अवश्य हूँ, पर अभीतक अपनेको समर्पित कर नहीं पाया हूँ। अतएव 'कल्याण'की सेवाका अपनेको सर्वथा अनधिकारी मानता हूँ। पर परमश्रद्धेय श्रीभाईजी-जैसे परम स्वजनके प्रति अपने कर्त्तव्य-निर्वाहकी भावनासे 'कल्याण'के कार्यको किसी रूपमें सँभाल रहा हूँ। वास्तवमें 'कल्याण'के कार्यको मैं श्रीभाईजी-द्वारा ही हुआ अनुभव करता हूँ; पद-पदपर वे अपने चिन्मयरूपसे इसकी सँभाल करते हैं। अन्यथा मुझ-जैसे अयोग्य, अल्पज्ञ, साधनहीन, तुच्छ व्यक्तिद्वारा यह महान् कार्य सम्पन्न होना सर्वथा असम्भव है। मैं स्वयं आश्चर्यचकित हूँ कि कैसे क्या कार्य हो जाता है। उनकी पद-पदपर प्राप्त सँभालको देखते हुए मनको यह विश्वास नहीं होता कि श्रीभाईजी 'कल्याण'से पृथक् हो गये हैं। मैं तो यह मानता हूँ कि 'कल्याण' उनका है, वे 'कल्याण'के हैं; या यों कहें वे 'कल्याण-स्वरूप' ही हो गये हैं। पर फिर चर्म-चक्षुओंद्वारा उनका दर्शन न होनेसे मन-प्राण व्यथित हो जाते हैं। विधिकी यह विडम्बना है! अस्तु।

भगवती श्रुतिका यह मङ्गलमय उद्घोष है—'प्रमाद (असावधानता) के कारण यज्ञानुष्ठान (किसी भी शुभकर्म) में जो स्खलन हो जाता है, त्रुटि हो जाती है, भगवान् विष्णुके स्मरणमात्रसे उसका मार्जन होकर वह कर्म सम्पूर्ण—साङ्गोपाङ्ग सम्पन्न हो जाता है'—

प्रमादात्कुर्वतां कर्म प्रच्यवेताध्वरेषु यत्।
स्मरणादेव तद्विष्णोः सम्पूर्णं स्यादिति श्रुतिः॥

—इसी विश्वासके साथ भगवान् श्रीलक्ष्मीनारायणकी अहैतुकी कृपा एवं शक्ति-मतिसे सम्पन्न यह सर्वथा त्रुटिपूर्ण अर्चना उनका मङ्गल स्मरण करते हुए हम उनके पाद-पद्मोंमें सभक्ति समर्पित करते हैं—

मङ्गलं भगवान् विष्णुर्मङ्गलं गरुडध्वजः।
मङ्गलं पुण्डरीकाक्षो मङ्गलायतनं हरिः॥

× × ×

विमल भाव-सुख निज दर्शनका यह अपना ही कृति-दर्पण।
ज्योति बढ़ाता सहज परस्पर, तुम्हें हो रहा है अर्पण॥
भली-बुरी यह वस्तु तुम्हारी, तुम्हीं सर्वथा स्वामी धन्य।
तुच्छ अबोध मलिन इस जनको बना निमित्त कर दिया धन्य॥

'भाईजी'

अन्तमें भगवान् श्रीविष्णुसे विनीत प्रार्थना है—'हे नाथ! ऐसी कृपा कीजिये, जिससे विश्वका कल्याण हो, सबकी बुद्धि शुद्ध हो; सभी भूत-प्राणी एक-दूसरेके प्रति शुभका चिन्तन करें, हमारा मन शुभका ही आश्रय ले और हमारी बुद्धि आपमें ही सहजरूपसे आविष्ट हो जाय—

स्वस्त्यस्तु विश्वस्य जनः प्रसीदतां
ध्यायन्तु भूतानि शिवं मिथो धिया।
मनश्च भद्रं भजतादधोक्षजे
आवेश्यतां नो मतिरप्यहैतुकी॥

॥ श्रीलक्ष्मीनारायणचरणकमलेभ्योऽर्पितम्॥
॥ हरिः ओऽम् तत्सत्॥

विनीत—
चिम्मनलाल गोस्वामी
सम्पादक

श्रीहरिः

'कल्याण'के नियम

उद्देश्य—भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, धर्म और सदाचारसमन्वित लेखोंद्वारा जनताको कल्याणके पथपर पहुँचानेका प्रयत्न करना इसका उद्देश्य है ।

नियम

(१) भगवद्भक्ति, भक्तचरित, ज्ञान-वैराग्यादि ईश्वर-परक, कल्याणमार्गमें सहायक, अध्यात्मविषयक, व्यक्तिगत आक्षेपरहित लेखोंके अतिरिक्त अन्य विषयोंके लेख भेजनेका कोई सज्जन कष्ट न करें । लेखोंको घटाने-बढ़ाने और छापने अथवा न छापनेका अधिकार सम्पादकको है । अमुद्रित लेख बिना माँगे लौटाये नहीं जाते । **लेखोंमें प्रकाशित मतके लिये सम्पादक उत्तरदाता नहीं हैं ।**

(२) इसका डाकव्यय और विशेषाङ्कसहित अग्रिम मूल्य भारतवर्षमें १०.०० रुपये और भारतवर्षसे बाहरके लिये रु० १६.७० (९० पेंस) नियत है । सजिल्द विशेषाङ्कका भारतमें रु० ११.५० तथा विदेशके लिये सजिल्दका १०० पेंस (१८.५० पैसे) है ।

(३) 'कल्याण'का नया वर्ष जनवरीसे आरम्भ होकर दिसम्बरमें समाप्त होता है, अतः ग्राहक जनवरीसे ही बनाये जाते हैं । वर्षके किसी भी महीनेमें ग्राहक बनाये जा सकते हैं और जनवरीके अङ्कके बाद निकले हुए तबतकके सब अङ्क उन्हें बिना मूल्य दिये जाते हैं । 'कल्याण'के बीचके किसी अङ्कसे ग्राहक नहीं बनाये जाते; छः या तीन महीनेके लिये भी ग्राहक नहीं बनाये जाते ।

(४) इसमें व्यवसायियोंके विज्ञापन किसी भी दरमें प्रकाशित नहीं किये जाते ।

(५) कार्यालयसे 'कल्याण' दो-तीन बार जाँच करके प्रत्येक ग्राहकके नामसे भेजा जाता है । यदि किसी मासका अङ्क समयपर न पहुँचे तो अपने डाकघरसे लिखा-पढ़ी करनी चाहिये । वहाँसे जो उत्तर मिले, वह हमें भेज देना चाहिये । डाकघरका जवाब शिकायती पत्रके साथ न आनेसे दूसरी प्रति मिलनेमें अड़चन हो सकती है ।

(६) पता बदलनेकी सूचना कम-से-कम १५ दिन पहले कार्यालयमें पहुँच जानी चाहिये । **लिखते समय ग्राहक-संख्या, पुराना और नया नाम-पता साफ-साफ लिखना चाहिये ।** महीने-दो-महीनेके लिये पता बदलवाना हो तो अपने पोस्टमास्टरको ही लिखकर प्रबन्ध कर लेना चाहिये । पता-बदलीकी सूचना न मिलनेपर अङ्क पुराने पतेसे चले जानेकी अवस्थामें दूसरी प्रति बिना मूल्य न भेजी जा सकेगी ।

(७) जनवरीसे बननेवाले ग्राहकोंको रंग-बिरंगे चित्रोंवाला जनवरीका अङ्क (चालू वर्षका विशेषाङ्क) दिया जायगा । विशेषाङ्क ही जनवरीका तथा वर्षका पहला अङ्क होगा । फिर दिसम्बरतक प्रतिमास ११ अङ्क बिना मूल्य मिला करेंगे । किसी अनिवार्य कारणवश 'कल्याण' बंद हो जाय तो जितने अङ्क मिले हों, उतनेमें ही संतोष करना चाहिये; क्योंकि केवल विशेषाङ्कका ही मूल्य १०.०० रुपये है । बाकी ११ अङ्क बिना मूल्य हैं ।

(८) नमूना मुफ्त भेजा जाता है ।

आवश्यक सूचनाएँ

(९) 'कल्याण'में किसी प्रकारका कमीशन या 'कल्याण'-की किसीको एजेन्सी देनेका नियम नहीं है ।

(१०) ग्राहकोंको अपना नाम-पता स्पष्ट लिखनेके साथ-साथ **ग्राहक-संख्या** अवश्य लिखनी चाहिये । पत्रमें आवश्यकताका उल्लेख सर्वप्रथम करना चाहिये ।

(११) पत्रके उत्तरके लिये जवाबी कार्ड या टिकट भेजना आवश्यक है । एक बातके लिये दुबारा पत्र देना हो तो उसमें पिछले पत्रकी तिथि तथा विषय भी देना चाहिये ।

(१२) ग्राहकोंको चंदा मनीआर्डरद्वारा भेजना चाहिये । वी० पी०से अङ्क बहुत देरसे जा पाते हैं ।

(१३) प्रेस-विभाग तथा कल्याण-विभागको अलग-अलग समझकर अलग-अलग पत्र-व्यवहार करना और रुपया आदि भेजना चाहिये । 'कल्याण'के साथ पुस्तकें और चित्र नहीं भेजे जा सकते । प्रेससे १.००रु०से कमकी वी० पी० प्रायः नहीं भेजी जाती ।

(१४) चालू वर्षके विशेषाङ्कके बदले पिछले वर्षोंके विशेषाङ्क नहीं दिये जाते ।

(१५) मनीआर्डरके कूपनपर रुपयोंकी संख्या, रुपये भेजनेका उद्देश्य, ग्राहक-नम्बर (नये ग्राहक हों तो 'नया' लिखें), पूरा पता आदि सब बातें साफ-साफ लिखनी चाहिये ।

(१६) प्रबन्ध-सम्बन्धी पत्र, ग्राहक होनेकी सूचना, मनीआर्डर आदि **व्यवस्थापक-'कल्याण', पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)** के नामसे और सम्पादकसे सम्बन्ध रखनेवाले पत्रादि **सम्पादक-'कल्याण', पो० गीतावाटिका (गोरखपुर)** के नामसे भेजने चाहिये ।

(१७) स्वयं आकर ले जाने या एक साथ एकसे अधिक अङ्क रजिस्ट्रीसे या रेलसे मँगानेवालोंसे चंदा कम नहीं लिया जाता ।